हरिवंशपुराण

(हिन्दी टीका सहित)

भाग : १

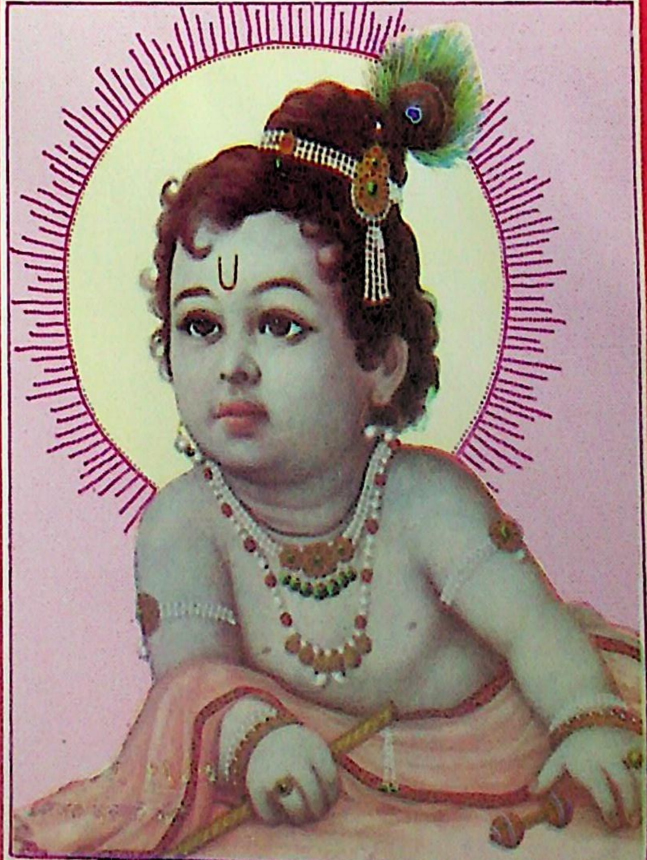
हरिवंशपुराण

हिन्दी टीका सहित

टीकाकार

विद्यावारिधि पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्र

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई



BK

संस्करण : जून २०१८, सम्वत् २०७५

मूल्य :
पत्राकार : १३०० रुपये मात्र।
सजिल्द : १५०० रुपये मात्र।

मुद्रक एवं प्रकाशक
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्री वेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग मुंबई – ४०० ००४

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop : Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg.
7 th Khetwadi, Mumbai. 400 004

Web Site : http://www.khe_shri.com
E-Mail- khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadas
Prop.: Shri Venkateshwar Press, Mumbai 400004
at their Shri Venkateshwar Press,
66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411013

॥ अथ हरिवंश-भूमिका-कथानुक्रमणिका-प्रारम्भः ॥

हरिवंशपुराणकी भूमिका.

सम्पूर्ण विद्याओंके भांडार भारत वर्षमें चार वेद, चार उपवेद, षट् दर्शन, अष्टादश पुराण, कर्म, उपासना, ज्ञान और पुरावृत्तोंसे पूर्ण जगत्के त्रिकाल वृत्तान्तको दर्पणवत् आद्योपान्त वर्णन कर रहे हैं; जिनके अभ्याससे अधिकारी जन अपने मनोरथको प्राप्त होकर परमानंदके भागी होते हैं; ईश्वर वचन वेदोंके आशयको समझना कोई साधारण बात नहीं है; बडे२विद्वानोंकी बुद्धि इस कार्यमें मोहित हो जाती है, वेदार्थ केवल विद्याहीसे नहीं जाना जाता, किन्तु उसका यथार्थ आशय तपश्चर्याद्वारा विदित होता है और इसका यही प्रमाण है कि जिन २ ऋषियोंको तपके द्वारा वेदार्थ प्रतीत हुआ है; वह मंत्र अनुक्रमणिकामें उनके नामसे उच्चारण किये जाते हैं, और उनका कथन किया आशयही अंगीकार किया जाता है. जिससे ज्ञाता लोग उनके आशयके अनुसार अनुष्ठान कर सुखके भागी हुए हैं; अनादि अविनाशी वेद भूत, भविष्य, वर्तमान, चरित्रोंको बहुधा भूतकालके समान वर्णन करते हैं वेदका ज्ञान और अभ्यास क्या फल देता है? यह वार्ता हमारे निर्मित किये यजुर्वेदके मिश्र भाष्यमें अच्छी रीतिसे मिलेगी; और यहभी सनातन धर्मावलम्बी महात्माओंका सिद्धान्त है कि समस्त विद्याओंका बीजरूप वर्णन वेदके मध्यमें पाया जाता है; तथा इतिहास पुराणोंका वर्णनभी अथर्ववेदके मंत्रभागमें इस प्रकारसे वर्णन किया है.

" स बृहतीं दिशि मनुर्व्यचलत् तमितिहासश्च पुराणञ्च नाराशंसीश्चानुव्यचलत् इतिहासस्य च वै सपुराणस्य गाथानाञ्च नाराशसीनाञ्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद "[1] इस प्रमाणसे प्रमाणभूत वेद इतिहास पुराणका प्रमाण कथन करता है; इसी कारण " भारतं पञ्चमं वेदानां वेद इति " अर्थात् महाभारत पांचवां वेद है, यह सनातनी श्रुति है; जिस कारणसे कि स्त्री और शूद्रको वेदाध्ययनका अधिकार नहीं है; इसी कारण ईश्वरावतार भगवान्

---

१ अथर्वका० १५ प्र० २० अ० १ मं० १४ ।

वेदव्यासजीने चार वेद छः शास्त्र तथा अष्टादश पुराणका सार एकत्र स्थापन करके कौरव पांडवोंके व्याजसे सम्पूर्ण धर्मका रहस्य यथा तथ्य भारतमें वर्णन किया है; भारतकी प्रतिष्ठा कुछ कौरवपांडवोंके युद्धके कारणसे नहीं है. किन्तु उसमें सम्पूर्ण वेद शास्त्र और धर्मका पूर्ण तत्त्व वर्णन किया है; यही महाभारतका भारतत्व है; स्वयं वैशम्पायनजीने कहा है कि जो भारतमें है वह अन्यस्थानमें मिल सकता है और जो भारतमें नहीं वह कहीं नहीं मिल सकता है.

मत्यलोकमें भारतग्रंथकी संख्या जो वैशंपायनने कही है एक लक्ष है और उपाख्यान तथा धर्मचर्चाके विना कौरव चरित्रमात्रसे यह ग्रंथ चौवीस सहस्र है यह सौतिका कथन है. पश्चात् यह ग्रंथ धर्मसंहिताओंके सहित वेदव्यासजीने साठ लक्षश्लोकोंमें किया, जो देवलोक गंधर्वलोक पातालादिकोंमें प्रचलित है उनमेंसे एक लक्ष मनुष्यलोक प्राप्त है; जो जन्मेजयको वैशंपायन महर्षिने सुनाया है.

पंडित दयानंद सरस्वती इन वाक्योंके आशयको न विचारकर भ्रान्त हो सत्यार्थ प्रकाशमें लिखते हैं कि भारतकी संहिता पहले १०००० सहस्र थी फिर वीस सहस्र हुई; राजा भोजके समयमें ६०००० सहस्र हुई इत्यादि महा अनर्गल वचन लिखकर स्वयं भ्रांत होकर दूसरे मनुष्योंको भ्रममें डालनाही उपरोक्त सरस्वतीका इष्ट था उनको यहभी विचार नहीं रहा कि यदि युद्धमात्रही भारत ग्रंथ है तो उसमें वेदत्व और प्रतिष्ठाकी बात क्या है;जब कि वह सम्पूर्ण जगत्का वृत्तान्त आद्योपान्त दिखा रहा है इसी कारणसे परमादरसे जनसमाजमें परिग्रहीत है, पंडित दयानंदके ऊपर कहे हुए वचनोंका उत्तर हमारे बनाये दयानंदतिमिरभास्करमें विस्तारसे मिल सकता है;

महाभारतमेंही भगवद्गीता, विदुरनीति, अनुगीता,भीष्मस्तवराज, विष्णु-शिवसहस्र नामादि अनेक रत्न और नल रामादि महापुरुषोंके आख्यान वर्णन किये गये हैं. जिनका आशय लेकर बडे २ कवि काव्य निर्माण कर जगत्में प्रतिष्ठा और कीर्तिको प्राप्त हुए हैं, यथा किराता-र्जुनीय, नैषध, माघकाव्यादि.

यदि बहुत विचार किया जाता है तो यहभी अनुमान होता है कि भारतकी कई संहिता होंगी, कारण कि प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि जैमिनीय अश्वमेधमें महाभारतके आश्वमेधिक पर्वका विस्तारसे वर्णन है, और कुछ आश्चर्य नहीं कि महर्षिजैमिनिने अठारहों पर्व निर्माण किये हों और कालक्रमसे यह ग्रंथ लुप्त हो गया है.

बहुत ध्यानसे यहभी विदित होता है कि समस्त भारतीय कथा अध्यात्मविद्याकी सूचना करती ह, जिसमें युद्धसे कठिन अवसरमेंभी ब्रह्मविद्याका उपदेश है; उसके अन्य स्थल ब्रह्मविद्यासे हीन कैसे हो सकते हैं और अठारह पर्व अठारह दिनका भारतीय युद्ध, तथा भगवद्गीताके अठारहही अध्याय क्यों हैं, इस वार्ताको यह प्रसंग अच्छी प्रकारसे पुष्ट करता है कि यह अध्यात्मशास्त्रका भंडार है और पूर्वमहात्माओंकी यह परिपाटी थी कि वे उभय पक्षीय प्रबन्ध लिखा करते थे, जिसमें लोक परलोक दोनोंहीका ज्ञान और लाभ होता रहे; इसी कारण पूर्वकालमें सभी कोई भारतीय कथाका परमादरसे श्रवण मननादि किया करते थे. बहुत क्या जिसके घरमें भारतकी पुस्तक विद्यमान है वह घर तीर्थरूप है.

भारतके अन्तमें हरिवंशपर्व, विष्णुपर्व, भविष्यपर्व यह तीन पर्व हरिवंश नामसे संसारमें भारतके फलस्थानमें कथित हुए हैं, हरिवंशके विधिपूर्वक श्रवण करनेसे मनुष्य पुत्रवान् होता है.

हरिवंशपर्वके देखनेसे विदित होता है कि यह ग्रंथ ठीक उसी समयसे कुछ कालके उपरान्त भगवान् वेदव्यासजीने कथन किया है, जब कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने चरणकमलसे इस भूमिको पवित्र कर अपने निज स्थानको पधार चुके थे; श्रीकृष्णचरित्रका यथायोग्य वर्णन करनेवाला प्रथम ग्रंथ कौनसा है तो उसके उत्तरमें सबसे प्रथम हरिवंशपुराणकाही नाम ले सकते हैं; जो कुछ दशा उस समय व्रजभूमिकी थी वह इसके अवलोकनमात्रसे नेत्रोंके सामने चित्रसी लिखित हो जाती है.

प्रथमपर्वमें अनेक राजोंके इतिहास सृष्टिकथन आदि परमावश्यकीय वर्णन इस ग्रंथमें आ गये हैं, और दूसरेमें जन्मसे प्रारंभ करके ऊषाचरित्र

पर्यन्त श्रीकृष्णके चारित्रोंका वर्णन परमोत्तम रीतिसे किया गया है. तीसरे पर्वमें अनेक श्रीकृष्णकी कथाओंका उल्लेख करके जिस प्रकार पुष्कर प्रादुर्भाव वर्णन किया है. उसके देखनेसेही उसकी महिमा जानी जाती है; अनेक संदिग्ध कथाओंकी ताली कुंजी इसी प्रसंगमें भगवान् वेदव्यासजीने वर्णन की है. पुराणप्रसंगमें ब्रह्मा, सरस्वती, मधुकैटभादि, अनेक कथाओंके मर्म पुष्करप्रादुर्भावके देखे विना कभी ध्यानमें नहीं आ सकते, और इसीसे निश्चयपूर्वक कहा जाता है कि जिसने पुष्करप्रादुर्भाव नहीं देखा उसको पुराणविद्याओंके जाननेमें बडी न्यूनता रहती है. "पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः" (शपथ)के प्रमाणसे पुराणभी विद्या कहलाती है और विद्याका मर्म गुरुमुखसे जाने विना कभी ध्यानमें नहीं आता; इस कारण पुराणोंका मर्म गुरुमुखसे जाने विना जो अनार्य पुरुष उनकी आलोचना करने लगते हैं वह सर्वथा भ्रान्त और अमान्य है; पुराणोंमें सैंकडों कथा सर्वथा अलंकार युक्त हैं, एक कथाका मर्म दूसरे पुराणमें खोला गया है; इस कारण पुराणविद्याको जाननेके लिये प्रथम अष्टादश पुराणोंका अवलोकनकर उसके अनेक संदिग्ध स्थलोंको गुरुमुखसे जानना परम उचित है; जो कुछ यह वर्णन किया गया है, तथा पुराणोंके कैसे गूढाशय हैं, यह बात पुष्कर प्रादुर्भावके देखनेसेही जानी जा सकती है यह सिद्धान्तवाक्य है कि विद्वान् श्रद्धा भक्ति सम्पन्न आस्तिक सरलचित्त पुरुषही पुराणोंके मर्म जाननेमें समर्थ होते हैं इसमें संदेह नहीं.

इस समय एक बात बहुतही हास्यकी प्रचलित की है कि अनेक पुरुष विद्वत्ताका अभिमान कर विद्यासे सर्वथा शून्य किंचित् फारसी और अंग्रेजी पढे वेद शास्त्र पुराणोंकी आलोचना करते हैं. भला वे पुरुष पुराणादिको क्या समझ सकते हैं ऐसे पुरुषोंका पुराणादि विषयमें जो कुछभी कथन हो, महात्मा बुद्धिमान् पुरुष उनके वचनोंको मत्त पुरुषके प्रलापमात्र समझते हैं.

इस समय कालक्रमसे सर्व साधारणको संस्कृतविद्याका ज्ञान नहीं रहा है, इसी कारण अनेक पुरुष स्वधर्मसे च्युत होते हुए पूर्वजोंकी रीति नीति त्यागन करनेसे दुःखभागी हो रहे हैं. उन्हींके उपकारके निमित्त बुद्धिमानोंने इस बातका विचार किया है कि जहांतक हो सके प्राचीन धर्मग्रन्थोंका देशभाषामें सुयोग्य विद्वानोंद्वारा अनुवाद कराकर प्रचार किया जाय. जिससे सर्व साधारण धर्मकी रीति जानकर सुखलाभ करें.

हमाराभी यह विचार दृढ हो गया है कि जहांतक हो सके इतिहास पुराण वेदादिका टीका भाषामें सर्वसाधारणके समझने योग्य किया जाय जिसमें प्राचीन ऋषिमुनियोंकी परिपाटी सहेतुक दरसाकर सर्वसाधारणको उनका मर्म समझा दिया जाय, तथा ऐसे ग्रन्थ लिखे जांय,जिनमें सम्पूर्ण धर्मका विषय, शंका समाधान द्वारा निर्णीत हो जाय इसी कारण इतिहासपुराणोंमें वाल्मीकि रामायण, अद्भुतरामायण, शिवपुराण, हरिवंशपुराणका भाषाटीका और श्रीमद्भागवतके पूर्व भाषाटीकेका सुगमभाषामें विस्तारपूर्वक परिवर्तन, टिप्पणी, तथा अनेक इतिहास उचित स्थलोंमें लिखकर शंकाओंका समाधान उत्तम रीतिसे किया है, जिन ग्रन्थोंका देशमें अधिक प्रचार है प्रथम उन्हीं ग्रन्थोंका तिलक करना उचित समझा गया है (अध्यात्मरामायण, कल्किपुराणका पंडित बलदेवप्रसाद मध्यम भ्राताने अनुवाद किया है,) धर्मनिर्णय तथा वैदिक सिद्धान्त जाननेके निमित्त दयानंद तिमिरभास्कर निर्माण किया है, जिसके द्वारा अनेक पुरुषोंकी मति शुद्ध होकर सुमार्ग पर विश्वासके साथ स्थित हुई है. धर्मके प्रायःसभी विषय इसमें आ गये हैं, संसारमें ईश्वरीय नियम और कर्मकाण्डका अधिक प्रचार हो इस कारण यजुर्वेदके भाष्यका आरम्भ किया है, जो अल्पकालमें पूर्ण होगा.

यद्यपि इस समय देखादेखी छोटे बडे प्रायःअनेक जन टीका करनेको उद्यत हो गये हैं,परन्तु यह सिद्धान्त है कि ग्रन्थपर टीका करना कोई सहज काम नहीं है ग्रंथकारके हृदयसे हृदय मिलाये विना जो अनुवाद किया जायगा, वह कदाचित्भी उपयुक्त अनुवाद नहीं हो सकता. प्राचीन संस्कृतके ग्रंथकार बडे२ आशयोंको अपने सूत्र और श्लोकोंमें ऐसे वर्णन कर गये हैं कि जिस प्रकार वटबीजमें महान् वटवृक्ष स्थित रहता है.इसी कारण संस्कृतके विद्वान् टीकाकारोंने ऐसे स्थलोंपर उन आशयोंको परिश्रमके साथ खोला है.इसकारण जबतक वे सब आशय जिनके होनेकी बडी आवश्यकता है,अनुवादमें न लिखे जांय और केवल अक्षरार्थ लिखा जाय या अधूरे टीकोंके अवलम्बनसे नेत्र मीचकर अनुवाद किया जाय तबतक नाम बडे दर्शन थोडे वृथा उपाधिधारी पण्डितमानी केवल नवयुवक शब्दावलम्बी गुरुचरणभक्तजनोंका टीका क्या कभी सुजनसमाजमें आदर पा सकता है ? कदापि नहीं. टीकाकार स्वयं विद्वान्, लोकव्यवहारदक्ष, देशकालका ज्ञाता, धर्माधर्मविचारकुशल, संदिग्धअंशोंका उद्घाटन करनेवाला, प्राचीन

व्याख्याकारोंका मर्म जाननेवाला होना चाहिये तब टीका हो सकती है, अन्यथा श्रममात्र है कारण कि "जो प्रबंध नहिं बुध आदरहीं, सो श्रम वृथा बालकवि करहीं"

यह बात हमारे जाननेमें आ गई है कि श्रेष्ठ ग्रन्थकर्ता अपने इष्ट देवता गुरुजनोंकी भक्ति और उनकी सहायता कृपाद्वाराही ग्रन्थ निर्माण करनेमें समर्थ हुए हैं और दिव्य बलसे युक्त होनेके कारणही वे अपने ग्रन्थोंमें अलौकिक चमत्कार दिखला गये हैं; और स्वार्थ यहांतक त्याग दिया है कि अपना नामतक ग्रन्थमें नहीं लिखा, परन्तु दिव्यबलके कारण उनका नाम चन्द्रसूर्यकी स्थितितक स्थित रहेगा, और यही कारण है कि जो ग्रन्थ उन्होंने दिनोंमें बनाये हैं उनके समझनेको वर्ष लग जाते हैं.

यदि उन महात्माओंका इस समयसे मेल किया जाय तो गुरुबल तो यह है कि जहां गुरुके निकट कुछ विद्या अध्ययन की कि अल्पकालमें ही गुरुजनोंको तुच्छ समझने लगे और अपनेको विद्याका आचार्य मानने लगे, तथा गुरु अवज्ञाके कारण विद्या, यश शक्तिसे रहित हो जाते हैं गुरुजनोंकी सेवा करनेकी धर्मशास्त्रमें बडी महिमा है.

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः । चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ मनुः ॥

इसी कारणसे सेवाभक्ति विना अन्तमें कलई खुल जाती है, और गोस्वामी तुलसी दासजीके यह वाक्य चरितार्थ हो जाते हैं कि–

उघरहिं अन्त न होय निबाहू ❋ कालनेमि जिमि रावण राहू ॥ सजल मूल जेहि सरिता नाहीं ❋ वरषि गये पुनि तबहि सुखाहीं ॥

यह तो गुरुबलकी दशा है. अब दैवबलकी कथा सुनिये कि जप, तप, ध्यान, संध्या, पूजा, दान, शौचादि दिव्य बलसे सर्वथा शून्य हैं. और जो कुछ किया जाता है उसमें अधिकतर दिखानेके निमित्तही है. परमार्थसे नहीं है. देखी हुई बात है कि बडे पुरुषोंके निकटसे संध्या करनेको कहकर

उठे हैं और शयन करते समयतकभी गायत्रीका जप नहीं है फिर भला दैवबल कहांसे हो और दिव्यबलके विना ग्रन्थकी रचना और उसका प्रमाण कैसे हो सकता है. दिव्यबलसेही ऋषिमुनियोंके वाक्योंपर लोग प्राण न्यौछावर करनेको तयार हैं, दिव्यबलसेही गोस्वामी तुलसीदासजीकी रामायण मंत्ररूप हो रही है. दिव्यबलसेही हरिभक्तोंका यश उदयसे अस्तपर्यन्त जागरूक हो रहा है दिव्यबलके विना केवल विद्याभी फलवती नहीं हो सकती कहाभी हैः—

इष्ट विना यह भ्रष्ट है, कवि पंडित अरु वेद ।

इत्यादि बहुत कहनेसे क्या है ग्रन्थ रचना और अनुवादमें दिव्यबलकी बडी आवश्यकता है, इसके होनेसेही ग्रन्थका जनसमाजमें आदर होता है, और प्रामाणीक तथा फलप्रद देखा जाता है, यहांपर यह कहनाभी अनुचित न होगा कि धर्मग्रन्थोंमें ब्राह्मण वचन अर्थात् ब्राह्मणमहात्माओंका किया अनुवाद विशेष फलदायक होता है. कारण कि विद्वान् ब्राह्मणोंमें दोनों बल मिलने सम्भव हैं तथा ब्राह्मणोंका ब्रह्मसे अधिक सम्बन्ध है इस कारण इन सब वस्तुओंको यथाशक्ति पुरस्कृत कर अनुवादादिमें प्रवृत्त होना बुद्धिमानोंको उचित है. ऐसा होनेसे ग्रन्थ शीघ्र फलदायक हो सकता है अन्यथा सिद्धि दुर्लभ है.

भाषाटीकाके सहित ग्रन्थोंको देखकर संस्कृतके कोई विद्वान् क्रोधसे अधीर हो कह बैठते हैं कि विद्याकी ढेर मार दी, उनसे यह कहना है कि जब आप कथा कहते हो तब भाषामें अर्थ क्यों करते हो? भाषासे तो आपग्रन्थकी हानि कहते हो और यदि कहो सब कोई देखगे तो इसमेंभी विद्वानोंकी कोई हानि नहीं हो सकती कारण कि पूर्वकालमें तीनों वर्ण अच्छी संस्कृत जानते थे तब क्या ब्राह्मणोंकी अवनति हुई थी, नहीं; बढी उन्नति थी इस कारण भाषाटीकेपर रोष करना बुद्धिमानोंका काम नहीं.

हरिवंशपुराणकी रचना व्यासजीने केवल इसी कारणसे की है कि इसके अनुशीलनसे मनुष्य समस्त भारत श्रवणका फल प्राप्त कर सक्ता है, जो

इसको श्रवण करते हैं उनको पुष्करतीर्थमें जानेकी क्या आवश्यकता है ? विधिपूर्वक श्रवणसे सन्तानकी प्राप्ति और ज्ञानियोंको मुक्तिकी प्राप्ति होती है.

यह ग्रन्थ कब निर्माण हुआ है इसके खोजकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है. केवल इतनाही कह देना उचित है कि महाभारतके साथही व्यासजीने इस ग्रन्थकी रचना की है जिसको लगभग पांच सहस्र वर्ष बीत चुके हैं.

परमोपकारी अनेक चरित्रोंसे पूर्ण यह ग्रन्थ संस्कृतमें होनेसे सर्वसाधारणकी समझमें नहीं आता था, इसी कारण हमारी इच्छा थी कि इसका अनुवाद करें उसी समय सर्वगुणसम्पन्न, परमोदार, हरिभक्त, ज्ञाननिष्ठ, गुणिजनमण्डलीमण्डन, सद्भावरत्नाकर, वैश्यवंशदिवाकर, लक्ष्मीवेंकटेश्वरयंत्रालयाध्यक्ष, सेठजी श्रीयुत गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजी महाशयने इस ग्रंथके अनुवाद करानेकी इच्छा प्रगट की तब मैंने इसका प्रारंभ कर श्लोकका अन्वयार्थ, भावार्थ, गूढार्थ, शंकासमाधान, आदि प्रयोजनीय समस्त विषय यथाशक्ति सम्पादन कर पूर्वज महात्माओंके उपदेशानुसार लिखा है. कोई बात स्वकल्पनासे नहीं लिखी है और जहां तहां श्रुतिगर्भित वाक्य तथा अध्यात्म गाथाओंका मर्म अच्छी रीतिसे खोलकर लिख दिया है. यथाशक्ति सर्वाङ्गसे पूर्णकर सब प्रकारके नियम और मर्यादा बद्ध होनेके कारण इस टीकेका नाम "मिश्रमर्यादापरिपाटी" रखकर इसका सम्पूर्ण अधिकार उक्त शेठजीकोही समर्पण कर दिया है.

सर्वान्तर्यामी भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रार्थना ह कि जिस मनोरथकी हमारे सेठजीको आकांक्षा है वा जिस मनोरथसे ग्रन्थ मुद्रित किया है वा जो इसके पाठका फल है उस फलसे शीघ्रही शेठजीको संयुक्त करें.

शेषमें अपने परम सुहृत विप्रवंशावतंस पण्डित ऋषिरामजी शास्त्री, पण्डित गङ्गाप्रसाद शास्त्री, स्वधर्मनिरत गोविप्रप्रतिपालक पंडित हरसहाय पाठकजी, श्रीयुत कुमर बनारसीदासजी M. A. श्रीयुत कालीप्रसन्नसिंह महाशय सबजज (फैजाबाद अवध), श्रीपंडित मथुराप्रसाद मिश्रजी, बाबू

उदितनारायण वकील गाजीपुर; लाला शालीग्रामजी वैश्य तथा शेठ कुन्दनलालजीभी धन्यवादके पात्र हैं कि यह महाशय सदैव धर्मोन्नति और देशभाषाके प्रचारमें तत्पर रहते हैं.

पाठकमहाशयोंसे विज्ञप्ति है कि यथाशक्ति इस ग्रंथमें कोई त्रुटि नहीं की है यदि कहीं भ्रमवश कुछ रह गया हो तो उसको क्षमा करें कारण कि सर्वज्ञ परमेश्वर है.

आपका कृपाभिलाषी–

मुरादाबाद, २८।१।९७. } पंडित ज्वालाप्रसादमिश्र
मोहल्ला दिनदारपुरा,
मुरादाबाद, N. W. P.

हरिवंशपुराणकी कथानुक्रमणिका ।

हरिवंशपर्व समाप्त ।

विष्णुपर्वप्रारम्भः ।

उत्तरार्ध.

विष्णुपर्व समाप्त।

भविष्यपर्वप्रारंभः।

भविष्यपर्व समाप्त।

हरिवंशकी कथानुक्रमणिका समाप्त।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना- खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर' स्टीम्-प्रेस बम्बई.

अथ भाषाटीकायुतं हरिवंशमाहात्म्यं सविधि प्रारभ्यते ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ दोहा–शिवा शम्भु गणपति गिरा, रवि श्रीकृष्ण मनाय ॥ श्रीहरिवंशमहात्म्यको, टीका लिखत बनाय ॥१॥ नारायण नर-नरोत्तम देवी सरस्वतीको नमस्कार करके जयग्रंथका उच्चारण करना चाहिये ॥ १ ॥ पराशरपुत्र सत्यवतीके हृदयके आनंद देनेवाले व्यासजीकी जय हो. जिनके मुखसे निकले वाणीरूप अमृतको सब जगत् पान करता है ॥ २ ॥ अज्ञानरूपी अन्धकारसे अन्धे हुए नेत्रोंको जो ज्ञानरूपी अंजनकी शलाकासे उन्मीलित करते हैं उन श्रीगुरुके निमित्त नमस्कार है ॥ ३ ॥ अखण्ड मंडलाकार कि जिन्होंने चराचर जगत् व्याप्त कर रक्खा है वह पद

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ हरिवंशमाहात्म्यप्रारम्भः ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ दवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥ जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ॥ यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥२॥ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ॥ चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥ अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ॥ तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४॥ जनमेजय उवाच॥ त्वया मे भगवन् प्रोक्तो भारतश्रवणे विधिः॥श्रवणे हरिवंशस्य विशेषाद्वद मे विधिम्॥५॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाना हरिवंशं जगुर्वपुः॥शब्दब्रह्ममयं विद्धि हरिवंशं सनातनम् शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातःपरब्रह्माधिगच्छति॥ हरिवंशपुराणे तु श्रुते वै राजसत्तम ॥७॥ कायिकं वचिकं पापं मनसा समुपार्जितम्॥ तत्सर्वं नाशतां याति तमःसूर्योदये यथा ॥८॥ अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत्फलं लभेत्॥तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः॥९॥

जिन्होंने दिखलाया है उन श्रीगुरुके निमित्त नमस्कार है ॥ ४ ॥ जन्मेजय बोले; हे भगवन् ! आपने जो भारतश्रवणकी विधि कही है वह आप विस्तारसे मुझसे वर्णन कीजिये ॥५॥ वैशंपायन बोले; ब्रह्मा विष्णु महेश हरिवंशका शरीर है, सनातन हरिवंशको शब्दब्रह्मका शरीर जानो ॥ ६ ॥ शब्दब्रह्मका पारगामी होकर परब्रह्मको प्राप्त होता है.हे राजन् ! हरिवंशपुराणके श्रवण करते ही ॥७॥ वचन मन कर्मसे जो पाप किया है, वह सब इस प्रकार नाश हो जाता है,जैसे सूर्यके उदयमें अंधकार नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥ जो फल अठारह पुराणके सुननेका है, वह फल वैष्णवको मिलता

है इसमें सन्देह नहीं ॥ ९ ॥ स्त्रियें पुरुष कोई हो वैष्णवपदको प्राप्त होता है, जम्बूद्वीपको प्राप्त होकर कलियुगमें श्रोता बडा दुर्लभ है ॥ १० ॥ हे राजन् ! कलियुगमें कथा सुननेवाले दुर्लभ हो जांयगे, यह मैं सत्य कहता हूं, पुत्रकी कामना ,करनेवाली स्त्रियोंको वैष्णवयश सुनना चाहिये ॥ ११ ॥ बालघाती पुरुष, मृतवत्सा स्त्री होती है उनको यथाविधि हरिवंशका श्रवण करना चाहिये ॥ १२ ॥ गुरु चन्द्रमा सूर्य अग्निके सन्मुख जो विष्ठा कर देता है अथवा जो वीर्य त्यागन करता है, वह त्यक्तवीर्य है ॥ १३ ॥ जो स्त्री फूल फल और बालघातिनी है फलोंकी

स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव वैष्णवं पदमाप्नुयुः ॥ जम्बूद्वीपं समाश्रित्य श्रोतारो दुर्लभाः कलौ ॥ १० ॥ भविष्यन्ति नरा राजन्सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः ॥ ११ ॥ बालघाती च पुरुषो मृतवत्सः प्रजायते ॥ श्रवणं हरिवंशस्य कर्तव्यं च यथाविधि ॥१२॥ गुरुचन्द्राग्निसूर्याणां संमुखे मेहते च यः॥ बीजमुत्सृज्यते तेन त्यक्तरेता नरो भवेत् ॥१३॥ योषित्पुष्पफलानां च बालानां घातिनी तथा ॥ फलानां कर्तनकरी मातापितृवियोगिनी ॥१४॥ स्राविणी परगर्भाणां तत्तत्प्रायोपपोषिणी ॥ ईदृग्विधा भविष्यन्ति पञ्चदोषयुताः स्त्रियः ॥ १५ ॥ अपुष्पा मृतवत्साश्च काकवन्ध्यास्तथैव च ॥ कन्याप्रजात्वं च तथा स्रावयुक्ताः स्वपातकैः ॥ १६ ॥ तासां दोषापहारार्थं हरिवंशोऽभिगर्जति ॥ मदीयश्रवणात्सद्यो दोषा नश्यन्ति सत्वरम् ॥ १७ ॥ नरः सुवर्णं सर्पिश्च पददानैः समन्वितम् ॥ दशावृत्तीः शृणोत्येवं बीजसाफल्यमाप्नुयात् ॥ १८ ॥

काटनेवाली पिता माताकी वियोगिनी है ॥ १४ ॥ दूसरी स्त्रियोंके गर्भकी गिरानेवाली और प्रायः उनकी उपपोषण करनेवाली है वे इस प्रकारसे पांच दोषसे युक्त स्त्री होगी ॥ १५ ॥ अथवा अपुष्पा जिनको रज नहीं होता है अपुष्पा मृतवत्सा काकवंध्या कन्याहीकी उत्पन्न करनेवाली स्रावयुक्त अपने पातकोंसे होती है ॥ १६ ॥ उनको दोष दूर करनेके निमित्त हरिवंश गर्जता है इसके श्रवण करनेसे बहुत शीघ्र दोष नष्ट हो जाते हैं ॥ १७ ॥ मनुष्य सुवर्ण घृत पददानके सहित दसवार इसको सुनकर बीजकी सफलताको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

जो रजस्वला न होती हो वह दशवार, जिसके बालक होकर मर जाते हों वह सातवार, जिसका गर्भ पतित हो जाता हो वह पांचवार, काकवंध्या तीनवार ॥ १९ ॥ और जिसके कन्याही होती हो वह एकवार इसको सुनकर पुत्रको प्राप्त होती है, सब दोषकी शान्तिके निमित्त जीवनपर्यन्त इसको सुनना चाहिये ॥२०॥ जो फिर भविष्य जन्ममें वंध्या न हो, अर्थसहित पाठ उत्तम है, विना अर्थके मध्यम है ॥२१॥ यदि अर्थके विनाभी शुद्ध पाठ हो तो उत्तमके समान होता है, नौ दिनमें इसका पारायण उत्तम है इक्कीस दिनमें मध्यम है ॥ २२ ॥ इकतीस दिनका निकृष्ट है परन्तु जो

दशावृत्तीरपुष्पार्थं मृतवत्सा तु सप्त वै ॥ पञ्चावृत्तीः स्रवद्गर्भा काकवन्ध्या त्रयं तथा ॥ १९ ॥ कन्याप्रसूश्चैकावृत्तिं श्रुत्वा पुत्रमवाप्नुयात् ॥ जीवितावधिकं श्राव्यं सर्वदोषोपशान्तये ॥२०॥ भविष्यं जन्म संप्राप्य न भवेत्तादृशी पुनः ॥ उत्तमं सार्थपाठं च मध्यमं च निरर्थकम् ॥२१॥ विनार्थं शुद्धपाठे चेदुत्तमेन समं भवेत् ॥ नवाहमुत्तमं प्रोक्तमेकविंशाहं मध्यमम् ॥ २२ ॥ निकृष्टमेकत्रिंशाहं सुखसाध्यं समाचरेत् ॥ बहुभिर्दिवसै राजन् साध्यानां साधनं कलौ ॥ २३ ॥ तेन पारायणं साध्यं प्रोक्तं नारायणात्मना ॥ नवाहो गर्जति कलौ चैकविंशाहिकस्तथा ॥ २४ ॥ एकत्रिंशाहिको यज्ञो वन्ध्यादोषविनाशकः ॥ गोव्रतं तु स्त्रिया कार्यं पारणं पुरुषेण च ॥ २५ ॥ श्रवणारम्भणे राजन् यथावत्कथयामि ते ॥ अवसायान्तपर्यन्तं कार्यं मासव्रतं शुभम् ॥ २६ ॥ चतुर्थ्यां प्रातरुत्थाय स्त्रिया हृष्टेन मानसा ॥ गोव्रतं नियतं कार्यं निराहारं निरूदकम् ॥ २७ ॥ सूर्यास्तकालपर्यन्तं यावद्ग्रामागमो भवेत् ॥ आगतां च सवत्सां हि पूजयित्वा यथाविधि ॥ २८ ॥

अपनेसे बन सके सो करे. हे राजन् ! कलियुगमें बहुतसे साधनोंसे सिद्धि होती है ॥ २३ ॥ इस कारण नारायणने इस प्रकार कहा है कि कलिमें नौ दिन और इक्कीस दिनका गर्जता है ॥ २४ ॥ इकतीस दिनका यज्ञ वंध्या दोषका निवारण करनेवाला है, स्त्रीको गोव्रत करना चाहिये ॥ २५ ॥ हे राजन् ! श्रवणके आरंभमें जो व्रत होता है वह मैं तुमसे यथायोग्य कहता हूं, एक महीनेतक पारायण समाप्तिपर्यन्त व्रत करे ॥२६॥ प्रसन्न हो स्त्री चौथके दिन उठकर निराहार जलरहित गोव्रत करे ॥ २७ ॥ और जबतक ग्रामसे आगमन हो सूर्यके अस्तकालप-

र्यन्त करे और जब सन्ध्याको सवत्सा गौ आवे तो उसका यथाविधि पूजन करके ॥ २८ ॥ जौका अन्नादि देकर उसकी स्वयं सेवा करे, इस प्रकार महीनेकी शुक्ल चतुर्थीका व्रत करे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! यह व्रत स्त्रीहीं नहीं किन्तु पुरुषभी करे इस प्रकार एक महीने व्रत करके अवश्य पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥३०॥ इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां श्रवणादिविधिकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! अब तुमसे नवाह सुननेकी विधि कहता हू यह विधि बहुत पुरुषोंकी सहायतासे हो सकती है ॥१॥ ज्योतिषीको बुलाय

यवसं पुष्कलं दत्त्वा यवान्नं कुरुते स्वयम् ॥ एवं मासे चतुर्थ्यां सा शुक्लायां व्रतमाचरेत् ॥ २९ ॥ स्त्रीव्रतं कथितं राजन् पुरुषस्य तथैव च ॥ एवं मासव्रतं कृत्वा सुपुत्रं लभते ध्रुवम् ॥३०॥ इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि नवाहश्रवणे विधिम् ॥ सहायैर्बहुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिस्त्वयम् ॥ १ ॥ दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ यत्नतः॥ विवाहं यादृशे वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥ नभस्यश्चाश्विनोर्जाश्च मार्गशीर्षः शुचिर्नभः ॥ एते मासाः कथारम्भे श्रोतृणां कामसूचकाः ॥ ३ ॥ सहायाश्च त एवात्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ॥ देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रोच्या प्रयत्नतः ॥ ४ ॥ भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः ॥ देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः ॥ ५ ॥ तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ॥ सतां समाजो भविता नवरात्रं सुदुर्लभः ॥ ६ ॥ आगन्तुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ॥ तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं स्मृतम् ॥ ७ ॥

यत्नसे मुहूर्त पूछे विवाहमें जैसा धन होता है वैसी कल्पना करे ॥ २ ॥ भादों श्रावण कार्तिक अगहन इतने महीने कथा श्रवणवालोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं ॥३॥ उद्यमी पुरुषोंको इसमें सहायक करना चाहिये, और देशदेशमें यह समाचार भेजना चाहिये ॥४॥ कि अमुक स्थानपर कथा होगी कुटुम्बी जनोंको आना चाहिये, जो देशदेशके वैष्णव कथा कीर्तन करनेमें उत्सुक हैं ॥ ५ ॥ उनकोभी पत्र भेजना चाहिये, कि नौ रात्रितक सत्पुरुषोंका समाज होगा जो दुर्लभ है ॥६॥ आनेवालोंको ठहरनेका प्रबन्ध करे, तीर्थ वन वा घरमें इसका श्रवण करना चाहिये ॥७॥

बडे लम्बे चौडे स्थानमें कथास्थल करना चाहिये. पृथ्वीका शोधन मार्जन लेपन धातुमण्डन करना चाहिये॥८॥गृहकी सामग्री घरके एक कोनेमें रख दे, केलेके खंभोंसे युक्त मण्डप बनाना चाहिये॥९॥फल पुष्प दलोंसे युक्त वन्दनवार और चंदोवा ताने, चारों ओर ध्वजा वन्दनवार आरोपण करे॥१०॥ सात ऊपर और सात नीचे ऐसे चौदह लोककी कल्पना करे, उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको बैठाना चाहिये ॥११॥ और यथा उचित उनके आसनोंकी कल्पना करे वक्ताकाभी दिव्य आसन कल्पित करे ॥१२॥ उत्तरको वक्ता और पूर्वको श्रोता मुख करके बैठें, अथवा वक्ता उत्तरको मुख और श्रोता

विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथास्थलम् ॥ शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ॥ ८ ॥ गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ॥ कर्तव्यो मण्डपः प्रोच्चैः कदलीस्तम्भमण्डितः ॥९॥ फलपुष्पदलैर्विस्वक् वितानेन विराजितः ॥ चतुर्दिक्षु ध्वजारोपस्तोरणेन विराजितः ॥ १० ॥ ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च सप्ताधः परिकल्पयेत् ॥ तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य वै ॥ ११ ॥ पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् ॥ वक्तुश्चापि तथा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥ १२ ॥ उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तथा ॥ प्राङ्मुखोऽथ भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तथा॥१३॥विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशारदः॥दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्यो दयान्वितः ॥१४॥ वेदवेदान्ततत्त्वज्ञैर्गुरुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ नृणां कृतोपदेशानां सद्यः सिद्धिर्हि जायते ॥१५॥ अथान्यजनसामान्यैर्गुरुभिर्नीतिकोविदैः ॥ नृणां कृतोपदेशानां सिद्धिर्भवति कीदृशी ॥ १६ ॥ अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्तेनाः पाखण्डवादिनः ॥ धर्मशास्त्रकथोच्चारैस्त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः ॥ १७ ॥

पूर्व दिशाको मुखकर बैठे ॥१३॥ जो विरक्त वैष्णव ब्राह्मण वेदशास्त्रका पारगामी हो दृष्टान्त देनेमें कुशलवक्ता कार्यकुशल ॥ १४ ॥ वेदवेदान्तके तत्त्व जाननेवाले ब्रह्मवादि गुरुओंसे जो मनुष्योंको उपदेश मिले तो शीघ्र सिद्धि हो जाती है ॥ १५ ॥ तथा दूसरे जनोंको सामान्य नीतिकुशल गुरुओंसे मनुष्य उपदेश लेकर सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ अनेक धर्मसे भ्रान्त हुए चोर पाखण्डवादी पुरुषोंसे चाहे वे पंडितभी हों कथा

सुननी उचित नहीं ॥ १७ ॥ वक्ताके निकट सहायता करनेके निमित्त उसी प्रकार एक पंडित और स्थापन करना चाहिये जो लोकोंके सन्देह छेदन करने और समझानेमें चतुर हो ॥ १८ ॥ व्रतके दिनसे एक दिन पहले वक्ताको क्षौर कराना चाहिये वक्ता श्रोता स्त्री पुरुष सबको चन्द्रशुद्धि देखनी उचित है ॥१९॥ अरुणोदयमें उठकर शौच स्नान करके सब विधि संक्षेपसे करके संध्या करे ॥२०॥ हाथ पैर धोय स्वस्तिवाचन

वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ॥ पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥१८॥ वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाक् व्रताप्तये ॥ वक्तुः श्रोतुश्चन्द्रशुद्धो दम्पत्योः शुभातारके ॥ १९ ॥ अरुणोदये विनिर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत् ॥ नित्यं संक्षेपतः कृत्वा सन्ध्याद्यं प्रयतस्ततः ॥२०॥ सुक्षालितपाणिपादः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ गोमयोपलिप्तदेशे सर्वतोभद्रकल्पनम् ॥ २१ ॥ स्वीयशक्त्यनुसारेण पूजनं सर्वमाचरेत् ॥ कथाविघ्नविनाशार्थं गणनाथं प्रपूजयेत् ॥२२॥ सलक्ष्मीपुत्रसहितं गोपालं स्थापयेत्ततः॥ निर्विघ्नेनैव सिध्यर्थं देवपूजनपूर्वकम्॥२३॥ संकल्पं कुर्यात् ॥ अद्येहेत्यादिदेशकालौ स्मृत्वा अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्यामुकशर्मणो मम जन्मनिजन्मनि सञ्चितमहापातकपटलनाशपूर्वकं तेन पापसञ्चयेन कृतसन्तानबाधकताविनाशपूर्वकमिह जन्मनि संतानोत्पत्तिहेतवे तस्य संतानस्य शरदां शतमायुषो वृद्ध्यर्थमात्मनश्च सकलसुखाप्तिहेतवे इह शरीरशुद्ध्यर्थं परत्र चेन्द्रादिलोकातिक्रमणपूर्वकश्रीमद्विष्णुभक्त्युद्रेकजनितकल्पावधितल्लोकगमनतत्रवासपूर्वकतत्स्वरूपावाप्तिहेतवे श्रीमद्धरिवंशपुराणश्रवणं कर्तृकतया करिष्यावहे ॥ अन्यतरकर्तृत्वे करिष्ये इत्येव संकल्पः इति कृत्वा तु संकल्पं वक्तारं वृणुयात्ततः ॥ श्रुताध्ययनसंपन्नं पूजयित्वा यथाविधि ॥ २४ ॥ सुवर्णमुद्रिकां गृह्य कुण्डले च विशेषतः ॥ धौतवस्त्रं सोत्तरीयं चोष्णीषेण समन्वितम् ॥ २५ ॥

कराय गोबरसे लीपे स्थानमें सर्वतोभद्रकी कल्पना करे ॥ २१ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार सब पूजन करे कथाका विघ्न नाश करनेको गणपतिका पूजन करे ॥२२॥ लक्ष्मीपुत्रसहित गोपालको स्थापन करे और निर्विघ्न सिद्धिके निमित्त देवपूजन करे ॥२३॥ संकल्प करे अद्येत्यादि० इस प्रकार संकल्प कर वक्ताका वरण करे श्रुत और वेदपाठसम्पन्न ब्राह्मणको यथाविधि पूजन करके ॥२४॥ सोनेकी मुद्रा और कुंडलको ग्रहण करके धोती

डुमट्टा पगडी ॥२५॥ सोलह पल सोना पुष्प ताम्बूल पूगीफल अक्षत ग्रहण कर शुद्ध मनसे वरण कर अद्येत्यादि० संकल्प करे ब्राह्मण "वृतोस्मि" कहे फिर ब्राह्मणके हाथमें रक्षाबंधन बांधे, और ब्राह्मण श्रोताओंका रक्षा बंधन करे ॥ २६ ॥ चंदन और पुष्पादि उपचार अक्षत सुवर्ण अलंकृत पूगीफल सम्पूर्ण ऋतुओंके फल भेंट करे ॥ २७ ॥ षोडशोपचारसे पुराणका पूजन करे ब्राह्मणश्रेष्ठकोपूजन करे तो पूजन फलदायक होता है ॥ २८ ॥ इस कारण सब प्रकार विधिसे पूजन करे, और व्यासको नमस्कार कर अगला मंत्र पढे ॥ २९ ॥ हे भगवन् व्यास ! सब शास्त्रके कोविद !

सुवर्णषोडशपलं पुष्पताम्बूलसंयुतम् ॥ पूगीफलं चाक्षतान् वै गृहीत्वा शुद्धमानसः ॥२६॥ (संकल्पः ॥ अद्येहेत्यादिअमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिश्चन्दनताम्बूलसुवर्णवस्त्रादिभिर्हरिवंशश्रवणे वाचकत्वेनावां दम्पती त्वां वृणीवहे ॥ वृतोऽस्मीति तेनोक्ते ॥ वृतेन दीक्षामाप्नोति इति मन्त्रेण वक्तुर्दक्षिणकरमूले रक्षाबन्धनं कार्यम् ॥ ब्राह्मणेन श्रोतॄणां रक्षाबन्धनं कार्यम् ॥) चन्दनाद्युपचारैस्तु वस्त्रपुष्पाक्षतैस्तथा ॥ हेमालङ्करणैः पूगैः फलैर्ऋतुसमुद्भवैः ॥ २७ ॥ पुराणपूजनं प्रोक्तं विधिना षोडशेन तु ॥ पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठाः श्रवणं फलदं स्मृतम् ॥ २८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं विधिपूर्वकम् ॥ अथ व्यासं नमस्कुर्युर्मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥२९॥ नमस्ते भगवन् व्यास सर्वशास्त्रार्थकोविद ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानमूर्ते सत्यवतीसुत ॥ ३० ॥ इति व्यासं नमस्कृत्य शुभे देशे कुशासने ॥ उपविश्य प्रतिदिनमुल्लसत्प्रीतमानसः ॥ ३१ ॥ बालो युवाथ वृद्धो वा दरिद्रो दुर्बलोऽपि वा ॥ पुराणज्ञः सदा वन्द्यः पूज्यश्च सुकृतार्थिभिः ॥३२॥ नीचबुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन ॥ यस्य वक्त्रोद्गता वाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ३३

आपको नमस्कार है सत्यवतीपुत्र ब्रह्मा विष्णु महेश तीनोंकी मूर्ति है ॥ ३० ॥ इस प्रकार व्यासको नमस्कार कर सुन्दर देश सुन्दर आसनमें प्रतिदिन प्रसन्न होकर बैठे और कथा सुने ॥ ३१ ॥ बालक युवा वृद्ध दुर्बल दरिद्री पुराणज्ञाता सदा वंदन और पूजन करनेके योग्य है ॥ ३२ ॥ पुराणके जाननेवालेमें किसी प्रकार नीच बुद्धि न करे, जिसके मुखसे शरीरवालोंको कामधेनुके समान वाणी निकलती है ॥ ३३ ॥

लोकमें जन्म और गुणके जो गुरु हैं उन सबमें पुराणका जाननेवाला परम गुरु है ॥ ३४ ॥ करोडों योनियोंमें वारंवार जन्म लेकर यह प्राणी दुःखी होता है, इसको जो पुण्यवृत्ति देता है इससे परे कौन गुरु है ॥ ३५ ॥ पुराणज्ञाता पवित्र चतुर शान्त मत्सरहीन साधु दयाल बोलनेवाला इस पवित्र कथाको कहे ॥ ३६ ॥ व्यास आसनके ऊपर बैठकर पौराणीक ब्राह्मण कथा समाप्त न होनेतक किसीको प्रणाम न करे ॥ ३७ ॥ जो धूर्त दुर्वृत्त दूसरेके जीतनेकी इच्छावाले हैं उनके आगे यह कथा न कहनी ॥ ३८ ॥ दुर्जन और शूद्रोंसे युक्त स्थानमें अपवित्र देशमें भी इस कथाको

गुरवः सन्ति लोकस्य जन्मतो गुणतश्च ये ॥ तेषामपि च सर्वेषां पुराणज्ञः परो गुरुः ॥३४॥ भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वा च सीदति ॥ यो ददाति पुण्यवृत्तिं कोऽन्यस्तस्मात्परो गुरुः ॥ ३५ ॥ पुराणज्ञः शुचिर्दान्तः शान्तोऽपि जितमत्सरः ॥ साधुः कारुण्यवान् वाग्मी वदेत्पुण्यकथां सुधीः॥३६॥ व्यासासनसमारूढो यदा पौराणिको द्विजः ॥ आसमाप्तेः प्रसङ्गस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ ३७ ॥ ये धूर्ता ये च दुर्वृत्ता ये चान्ये विजिगीषवः ॥ तेषां कुटिलवृत्तीनामग्रे नैव वदेत्कथाम् ॥ ३८ ॥ न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते ॥ देशे नापूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ ३९ ॥ सद्ग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्र देवतालये ॥ पुण्ये नदनदीतीरे वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥४०॥ ईदृशाद्वाचकाद्राजन् श्रुत्वा फलमवाप्नुयात् ॥ ऐहिकामुष्मिकं शर्म पुण्यं पुत्रादिसिद्धिदम् ॥ ४१ ॥ महापापादिशमनं पुराणं हरिवंशकम् ॥ योज्यं पुत्रादिसिद्ध्यर्थं हरिवंशं जितेन्द्रियैः ॥ ४२ ॥ शृणुयात्सर्वभावेन पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

न कहे ॥ ३९ ॥ अच्छे देश अच्छे मनुष्योंसे सुक्षेत्र देवस्थान पवित्र नदनदीके किनारे यह कथा कहनी चाहिये ॥ ४० ॥ हे राजन् ! ऐसे वाचकसे कथा सुने तो फलकी प्राप्ति होती है दोनों लोकमें कल्याण पुण्य पुत्रादि सिद्धि मिलती है ॥ ४१ ॥ हरिवंशपुराण महापापादिका शान्त करनेवाला है पुत्रादिकी प्राप्तिके निमित्त जितेन्द्रियोंको श्रवण करना चाहिये ॥ ४२ ॥ यह पवित्र पापनाशक सब भावसे सुनना चाहिये ॥ ४३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां श्रवणादिविधिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ ९ ॥

वैशंपायन बोले; विद्वानोंने जपसे हरिवंशका श्रवण करना कहा है, शुद्धिके निमित्त पितरोंको तृप्त करके प्रायश्चित्त करे ॥ १ ॥ मंडल पांच करके नारायणका स्थापन करना चाहिये, कृष्णको मंत्रसे पूजित करके पूजाविधि करे ॥ २ ॥ प्रदक्षिणा नमस्कार और पूजाके अन्तमें स्तुति करे. करुणानिधे ! संसारसागरमें मग्न हुए मुझको उद्धार करो ॥ ३ ॥ कर्मग्राहसे गृहीत हुए मुझको संसारसागरसे रक्षा करो, विधिपूर्वक हरिवंशकी पूजा करनी चाहिये ॥४॥ विधिपूर्वक षोडशोपचार और धूप दीप देकर श्रीफल देकर नमस्कार करे ॥५॥ और प्रसन्नचित्तसे केवल स्तुति करनी

वैशम्पायन उवाच ॥ जपाद्धि श्रवणं प्रोक्तं हरिवंशस्य सूरिभिः ॥ पितॄन् संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ १ ॥ मंडलं पञ्च कर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा ॥ कृष्णमुद्दिश्य मन्त्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात् ॥२॥ प्रदक्षिणानमस्कारान् पूजान्ते स्तुतिमाचरेत् ॥ संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ॥३॥ कर्मग्राहगृहीतोऽहं मामुद्धर भवार्णवात् ॥ श्रीमद्धै हरिवंशस्य पूजा कार्या प्रयत्नतः ॥४॥ विधिना षोडशेनैव धूपदीपसमन्विता ॥ ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत् ॥५॥ स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा॥ स्वीकृतोऽसि मया नाथ पुत्रार्थं भवसागरे ॥ ६ ॥ मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया ॥ निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ॥७॥ एवं दीनवचः प्रोक्त्वा वक्तारं चाथ पूजयेत् ॥ संभूष्यं वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते तं च संस्तवेत् ॥८॥ व्यासरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥९॥ तदग्रे नियमः पश्चात्कर्तव्यः श्रेयसे मुदा ॥ नवरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि ॥ १० ॥ वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये ॥ कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ११ ॥

चाहिये, हे नाथ ! मैंने भवसागरमें पुत्रके निमित्त आपको स्वीकार किया है ॥६॥ मेरा मनोरथ आपको पूरा करना चाहिये और यह कार्य निर्विघ्न हो जाय मैं आपका दास हूं ॥ ७ ॥ इस प्रकार दीन वचन कहकर वक्ताका पूजन करे,वस्त्रादिसे पूजन करके पूजाके अन्तमें स्तुति करे ॥ ८ ॥ हे व्यासरूपज्ञाता ! सब शास्त्रके पंडित ! इस कथाके प्रकाशसे मेरा अज्ञान नाश करो ॥ ९ ॥ और कल्याणके निमित्तही उसके आगे नियम करना चाहिये और यथाशक्ति नौ रात्रितक यह नियम सदा धारण करना चाहिये ॥१०॥ और कथाविघ्नकी निवृत्तिके निमित्त पांच ब्राह्मणोंका वरण करे,

वे द्वादश अक्षर मंत्रका जप करें ॥११॥ अथवा संतानगोपालका मंत्र, महारुद्रका जप, पार्थिव और गणनाथका पूजन करे ॥ १२ ॥ कीर्तन करनेवाले ब्राह्मण और विष्णुभक्तोंको प्रणाम कर उनके आज्ञासे स्वयं आसनपर बैठे ॥ १३ ॥ लोकविज्ञ धन अगारकी सब चिन्ताको दूर कर शुद्धमतिसे कथा सुनकर उत्तम फलकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥ दम्पती शुद्ध मनसे श्रद्धाभक्तिके सहित सब धर्मोंकी माता श्रद्धाको करे ॥१५॥ श्रद्धासेही मनुष्योंको उभय लोककी सिद्धि प्राप्त होती है, श्रद्धासे भजन करनेसे मनुष्योंको शिलाभी फल देनेवाली होती है ॥ १६ ॥ मूर्खभी भक्तिसे पूजित

संतानगोपालमन्त्रो महारुद्रजपस्तथा ॥ पूजनं पार्थिवस्यैव गणनाथमनूञ्जपन् ॥१२॥ ब्राह्मणान्वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः ॥ नत्वा संपूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत् ॥१३॥ लोकवित्तधनागारसर्वचिन्ता व्युदस्य च ॥ कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत्फलमुत्तमम् ॥ १४ ॥ दम्पती शुद्धमनसौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितौ ॥ श्रद्धैव सर्वधर्माणां मातेव हितकारिणी ॥१५॥ श्रद्धैव च नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः ॥ श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी ॥१६॥ मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति ज्ञानदः ॥ श्रद्धया भजतो मन्त्रः स्तवदोऽपि फलप्रदः ॥ १७ ॥ श्रद्धया पूजितो देवो नीचस्यापि वरप्रदः ॥ अश्रद्धया कृता पूजा दान यज्ञस्तपो व्रतम् ॥ १८ ॥ सर्वं निष्फलतां याति पुष्पं वन्ध्यतरोरिव ॥ सर्वत्र संशयाविष्टः श्रद्धाहीनोऽतिचञ्चलः ॥ १९ ॥ परमार्थात्परिभ्रष्टः संसृतेर्नहि मुच्यते ॥ मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ॥ २० ॥ यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥ अतो भावमयं विश्वं पुण्यपापं च भावतः ॥ २१ ॥

होनेसे ज्ञानका देनेवाला गुरु हो जाता है, श्रद्धासे भजन करनेसे मंत्र फल देनेवाला होता है ॥ १७ ॥ श्रद्धासे पूजन करनेसे नीचकोभी वर देनेवाला होता है, अश्रद्धासे की हुई पूजा दान यज्ञ तप व्रत ॥१८॥ पुष्पवंध्य वृक्षके समान सब निष्फल हो जाता है, जो सर्वत्र संदेहसे आविष्ट है, श्रद्धाहीन और अतिचंचल है ॥१९॥ वह परमार्थसे भ्रष्ट होता है, उसकी संसृति निवृत्त नहीं होती है मंत्र तीर्थ देव द्विज गुरु वैद्य ॥२०॥ इनमें जिसकी

जैसी भावना होती है वैसी सिद्धि होती है इस कारण पुण्यपापके अनुसार भावना होती है, भावमय ही संसार है॥ २१ ॥ परंतु वे दोनों कभी भावहीन न हों. हे राजन् ! इस कारण सर्वात्मासे भक्तिका आश्रय करे ॥ २२ ॥ सूर्योदयसे प्रारंभ कर साढे तीन प्रहरतक सम्यक् प्रकारसे धीर कंठसे कथा वाचनी चाहिये ॥२३॥ मध्याह्नमें दो घडी तक कथा विराम करनी चाहिये सदा कीर्तन आदिसे कथा विराम करे ॥ २४ ॥ इस प्रकार विधानसे सुननेसे सब कामनाओंकी प्राप्ति होती है ॥२५॥ इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्यभाषायां श्रवणादिविधिकथनं नाम तृतीयोऽ-

ते उभे भावहीनस्य न भवेतां कदाचन॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन् श्रद्धाभक्ती समाश्रयेत् ॥२२॥ आसूर्योदयमारभ्य सार्धं त्रिप्रहरार्धकम्॥ वाचनीया कथा सम्यग्धीरकण्ठं सुधीमता॥ २३ ॥ कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम्॥ तत्कथामनु कार्यं वै कीर्तनैश्च परैस्तदा ॥२४॥ एवं श्रुत्वा विधानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२५॥ इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच॥ नवाहव्रतिनां पुंसां नियमान् शृणु सत्तम॥ एककालाशनश्चैव अधःशायी भवेन्नरः ॥१॥ स्थातव्यं ब्रह्मचर्येण यावद् ग्रन्थः समाप्यते॥ हरिवंशे तथा राजन्पायसं चरुभोजनम् ॥२॥ पारणे पारणे यातं तथावद्भरतर्षभ॥ मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः॥ ३ ॥ हविष्यान्नेन कर्त्तव्यमेकवारं कथार्थिना॥ उपोष्य नवरात्रं वा शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ॥४॥ घृतपानं पयःपानं कृत्वा वा शृणुयात्सुखम्॥ फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तेन वा पुनः ॥ ५ ॥ सुखसाध्यं भवेद्यस्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत्॥ भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारकम्॥ ६ ॥

ध्यायः॥ ३ ॥ वैशंपायन बोले,नवाहव्रत करनेवाले पुरुषोंके नियम सुनो,एककाल भोजन और पृथ्वीमें सोना चाहिये ॥ १ ॥ जबतक ग्रंथ समाप्त हो ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिये. हे राजन् ! हरिवंशके श्रवण करनेमें पायस और चरु भोजन करे ॥२॥ हे श्रेष्ठ ! प्रत्येक पारणमें मलमूत्रके जय करनेको लघु भोजन करना चाहिये॥३॥ कथा सुननेवाले को एकही वार लघु भोजन करना चाहिये यदि शक्ति हो तो व्रती रह जाय,नौ दिनका व्रत करे ॥४॥ अथवा घृत दूध पान करके कथा सुने, अथवा एकफलाहार करके कथा सुने ॥ ५ ॥ जिससे सुखपूर्वक श्रवण हो सके सो करे,

कथा श्रवणमें कुछ भोजन अवश्य करे ॥ ६ ॥ यदि कथामें विघ्न हो तो उपवास करना अच्छा नहीं, एक चित्तसे पवित्र होकर जो सुनता है सो
फल पाता है ॥ ७ ॥ प्रातःकाल स्नानादि करके पुत्र स्त्री आदिके सहित कृष्णके पूजन सहित पुराणका श्रवण करे ॥८॥ पुष्प धूपके फलोंसे युक्त
श्रद्धापूर्वक नैवेद्य लाकर फलकी इच्छावालेको गुरुकी शुश्रूषा करनी चाहिये ॥ ९ ॥ सुनकर यथेच्छ पवित्रता पुण्यकार्यसे करनी चाहिये, संध्याके
समय बंधुसहित गुरुको संतुष्ट करके ॥ १० ॥ अपने कुटुम्बके सहित सुखपूर्वक शयन करे, पापनाशके निमित्त नियमादि,करने चाहिये ॥ ११ ॥

नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्नकरो यदि ॥ शृणुयाद्यः शुचिस्तिष्ठन्नेकचित्ततया सदा ॥७॥ प्रातः स्नानादिकं कृत्वा पुत्रदारस-
मन्वितः ॥ पुराणश्रवणं कुर्यात्कृष्णपूजनपूर्वकम् ॥ ८ ॥ पुष्पधूपफलैः सम्यक् नैवेद्यैः श्रद्धयोद्धृतैः ॥ गुरोः शुश्रूषणं तेन कर्तव्य
फलकांक्षिणा ॥ ९ ॥ श्रुत्वा यथेच्छया शौचं कार्यं पुण्येन वर्त्मना ॥ सायंकाले गुरुश्रेष्ठं तोषयित्वा सबान्धवः॥ १० ॥ स्वपरि-
ग्रहसङ्गेन सुखं स्वपिति वै तथा ॥ नियमादि प्रकर्तव्यं पापानां विनिवर्तने ॥ ११ ॥ यथासुखं व्यवहरेन्नित्यं विष्णुपरायणः ॥
शुचिः शुद्धमनास्तिष्ठन्पत्रावल्यां च भोजनम् ॥१२॥ कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ द्विदलं मधु तैलं च गरि-
ष्ठान्नं तथैव च ॥१३॥ भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ वृन्ताकं च कलिङ्गं च दग्धमन्नं मसूरिकाम् ॥ १४ ॥ निष्पावा-
नामिषाद्यं च वर्जयेच्च कथाव्रती ॥ पलाण्डुं लशुनं हिंगु मूलकं गृञ्जनं तथा ॥१५॥ नालिकामूलकूष्माण्डं नैवाद्याच्च कथाव्रती ॥
कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ॥ १६ ॥

विष्णुपरायण होकर यथासुख विहार करे पवित्र मनसे पत्तलमें भोजन करे॥१२॥ व्रती रहकर नित्य कथाकी समाप्तिमें भोजन करे, दोदल शाक
मधु तेल गरिष्ठ अन्न ॥ १३ ॥ जिसे चित्त न चाहे बासी अन्न कथा सुननेवाला नित्य त्यागे बैंगन गाजर दग्ध अन्न मसूर ॥ १४ ॥ पसाया
अन्न माडआदि आमिष अन्न व्रती सदा त्यागन करे प्याज ल्हसन हींग मूली गाजर ॥ १५ ॥ नालिका शाक मूल,पेठा यह व्रती नहीं खाय. काम,

क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, ॥ १६ ॥ दंभ, मोह, द्वेष इन वस्तुओंको कथाका व्रती दूर करे, वेद वैष्णव ब्राह्मण गुरु गौके व्रतवालेकी ॥ १७ ॥ स्त्री राजा और बडे पुरुषोंकी कभी निंदा न करे. रजस्वला, पतित म्लेच्छोंके सहित वार्ता न करे ॥ १८ ॥ वेदबाह्य ब्राह्मणोंसेभी व्रती न बोले सत्य, शौच दया मौन आर्जव विनय ॥१९॥ इत्यादि कथामें व्रती उदार मन करे श्रद्धाभक्तिसे युक्त रहे और कार्यमें लालसा न करे ॥ २० ॥ वाणीके जीतनेवाले पवित्र अव्यग्र श्रोता पुण्यभागी होते हैं और अभक्तिसे मनुजाधम जो कोई पवित्र कथा सुनते हैं ॥ २१ ॥ उसको पुण्यफल

दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती ॥ वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥१७॥ स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेच्च कथाव्रती॥ रजस्वलां त्यजेन्म्लेच्छां पतितां व्रतकैः सह ॥ १८ ॥ द्विजर्द्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेच्च कथाव्रती ॥ सत्यं शौचं दया मौनमार्जवं विनयं तथा ॥ १९ ॥ उदारं मानसं तद्वत्कुर्यादेवं कथाव्रती ॥ श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः ॥ २० ॥ वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥ अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः ॥२१॥ तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि ॥ पुराणं ये तु संपूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः ॥ २२ ॥ शृण्वन्ति च कथां भक्त्या दरिद्राः स्युर्न पापिनः ॥ कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः ॥ २३ ॥ भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च संपदः ॥ सोष्णीषमस्तका ये तु कथां शृण्वन्ति पावनीम् ॥२४॥ ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ॥ ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम् ॥२५॥ स्वविष्ठां खादयन्त्येतान्नरके यमकिंकराः ॥ नार्या रजस्वलायाश्च योनितुल्यं मुखं भवेत् ॥ २६ ॥

नहीं होता, जन्मजन्ममें दुःख होता है जो ताम्बूलादि उपायसे पुराणको पूजन करते हैं ॥ २२ ॥ और भक्तिसे कथा सुनते हैं वे पापी दरिद्री नहीं होते हैं, जो मनुष्य कथा होनेमें अन्य स्थानको चले जाते हैं ॥२३॥ भोगान्तरमें वे दारा और सम्पत्तिको देखते हैं, जो पगडी धारण किये पवित्र कथाको सुनते हैं ॥ २४ ॥ वे पापी मनुष्य बगले होते हैं और जो पवित्र कथा सुननेमें ताम्बूल भक्षण करते हैं ॥ २५ ॥ नरकमें यम किंकर उनको निज मल खवाते हैं और जो रजस्वला स्त्री सुने उसका योनितुल्य मुख हो जाता है ॥२६॥

जो पाखंडी ऊंचे स्थानपर स्थित होकर कथा सुनते हैं, वे बहुत दिनों नरक भोगकर कौवे होते हैं॥२७॥जो वीरासनमें आरूढ वा जो शय्यासनमें आरूढ होकर कथा सुनते हैं वे अर्जुनके वृक्ष होते हैं॥२८॥जो विना प्रणाम किये कथा सुनते हैं वे विषवृक्ष होते हैं,जो सोते हुए सुनते हैं,वे अजगर होते हैं॥२९॥जो कुटिल समान आसनपर स्थित हुए कथा सुनते हैं वे गुरुस्त्रीके निकट गमन करनेके पापका फलभागी होकर नरकको जाते हैं॥३०॥ जो पुराण जाननेवालेकी तथा पापनाशिनी कथाकी निंदा करते हैं,वे सौ जन्म कुत्ते होते हैं ॥ ३१ ॥ जो कथामें बहुत उत्तर प्रत्युत्तर करते हैं वे

ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः ॥ अक्षयान्नरकान्भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः॥२७॥ये च वीरासनारूढा ये च शय्यासनस्थिताः ॥ शृण्वन्ति तत्कथां ते वै भवन्त्यर्जुनपादपाः ॥ २८ ॥ असंप्रणम्य शृण्वन्तो विषवृक्षा भवन्ति ते ॥ तथा शयानाः शृण्वन्तो भवन्त्यजगराः नराः ॥२९॥ यः शृणोति कथां वक्रः समानासनमास्थितः ॥ गुरुतल्पसमं पापं संप्राप्य नरकं व्रजेत ॥३०॥ ये निन्दन्ति पुराणज्ञान्कथां वा पापहारिणीम् ॥ ते वै जन्मशतं मर्त्याः शुनकाः संभवन्ति च ॥ ३१ ॥ कथायां वर्तमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम् ॥ ते गर्दभाः प्रजायन्ते कृकलासास्ततः परम् ॥३२॥ कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः ॥ ते भुक्त्वा नरकान्घोरान्भवन्ति वनशूकराः ॥ ३३ ॥ कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः ॥ कोट्यब्दान्नरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ॥३४॥ मध्ये वार्तां न कुर्वीत चेत्कुर्यान्निरयं व्रजेत् ॥ कथायां श्रूयमाणायां न कुर्याच्छिशुलालनम् ॥३५॥ नर्मवादान्वदेन्नैव स्त्रिया संभाषणं तथा ॥ न कर्तव्यं प्रयत्नेन कथाविच्छेदकारकम् ॥ ३६ ॥

प्रथम गधे फिर गिरगट होते हैं ॥ ३२ ॥ और जो कभीभी पुण्यकथाको नहीं श्रवण करते हैं वे घोर नरक भोग वनके शूकर होते हैं ॥ ३३ ॥ कथाके कीर्तन में जो विघ्न करते हैं वह कोटि अर्बुद नरक भोगकर ग्रामशूकर होते हैं ॥३४॥ कथाके मध्यमें वार्ता न करे करनेसे नरकको जाता है, तथा कथा सुनतेमें शिशुलालन न करे ॥३५॥ नर्मवाद तथा स्त्रीजनोंसे संभाषण न करे,कारण कि इनसे कथाका विच्छेद होता है ॥ ३६ ॥

कथाके विच्छेदसे ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है. हे मुनिराज ! यह कथाके विच्छेदका पाप है ॥३७॥ कथाके बीचमें अन्य वार्ता न करे, नारी वा पुरुष ऐसा करनेसे नरकको प्राप्त होते हैं॥३८॥एक इतिहास मैं इसमें कथन करता हूं सो आप मन लगाकर सुनो,जिसको सुनकर कथाके मध्यमें किसी प्रकार पुरुष बात नहीं करेंगे॥३९॥पहले जनस्थानमें कोई वेदपारगामी ब्राह्मण धर्मशास्त्रमें निपुण सदाचारपरायण॥४०॥गंगास्नान पर्वमें कर पीछे मध्याह्नकी क्रिया कर तथा देवार्चन करके कथा सुनना ॥ ४१ ॥ उसकी भार्या बडी दुष्ट क्लेशकारिणी थी, असत्यवादिनी नित्य अन्य जनोंसे

विच्छेदेन कथायास्तु ब्रह्महत्यासमं त्वघम् ॥ प्राप्नोति मुनिशार्दूल कथा विच्छेदकः पुमान् ॥ ३७ ॥ न कुर्यात्तु कथामध्ये त्वन्यवार्ताः प्रयत्नतः ॥ नारी वा पुरुषो वापि कुर्यान्निरयमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ इतिहासं वदाम्यत्र शृणुष्वैकं हि मानद ॥ यं श्रुत्वा न वदेद्वार्तां कथामध्ये कदाचन ॥ ३९ ॥ जनख्याने पुरा कश्चिद्ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ धर्मशास्त्रेऽतिनिपुणः सदाचारपरायणः ॥४०॥ गङ्गास्नानं विधायादौ कृत्वा माध्याह्निकं तथा ॥ कृत्वा देवार्चनं चैव श्रवणे तत्परो भवेत् ॥४१॥ तस्य भार्यातिदुष्टा च कर्कशा कलहप्रिया ॥ असत्यालापनिपुणा परद्वेषपरायणा ॥४२॥ कृत्वा चक्रे धनस्यापि संग्रहं पापनिश्चया ॥ दधि दुग्धं समानीय शर्करागुडमेव च ॥४३॥ घृतं च नवनीतं च स्वयमानीय सर्वदा ॥ एकान्ते भक्षणं चक्रे भर्तर्यन्नं प्रशुष्ककम् ॥४४॥ दुराग्रहा दुष्टमनाः पतिनिन्दापरायणा ॥ बहुपापप्रकर्त्री च परवेश्मोपवेशिनी ॥४५॥ सुभाषणं वदेन्नैव दुष्टक्षेमविधायिनी ॥ पङ्क्तिभेदं प्रकुर्वाणा सदा निष्ठुरभाषिणी ॥ ४६ ॥ अतिथीषु सदा वैरकारिणी धर्मनाशिनी ॥ सज्जनोऽपि गुणी सौम्यस्तस्या भर्ता सुपूजितः ॥४७॥

द्वेष करती थी ॥४२॥ उस पापनिश्चयवालीने धनकाभी संग्रह किया था,दही दूध शर्करा गुड लाकर ॥ ४३ ॥ घृत मक्खन सदा अपने आप लाती एकान्तमेंही भक्षण करती स्वामीको सूखा अन्न देती ॥४४॥ दुराग्रह और दुष्टमतिपरायणा महापापकी करनेवाली पराये मंदिरमें प्रवेश करनेवाली॥४५॥कभी अच्छे वचन न कहे, सदा कुवाक्य बोले पंक्तिभद करके सदा निष्ठुर वचन बोलती ॥ ४६ ॥ सदा अतिथियोंमें वैर करके धर्म-

नाश करती, उसका स्वामी सज्जन गुणपूजित था और वह पुराणश्रवणमें सदा पूजित था ॥ ४७ ॥ और जब उसका पति पुराण श्रवण करने जाता तो प्रतिदिन वह उसकी निंदा करती॥४८॥संन्यासके समान कथाके श्रवणमें किस प्रकार व्यासवत् कृत्य करता है उद्योगकी प्राप्तिमें अब मुझे क्या उचित है कहिये॥४९॥मेरे बालक भूखसे दिनरात पीडित होते हैं कहो तो उनके भोजनका क्या उपाय है ॥ ५० ॥ घरमें अन्नधन वस्त्र कुछभी नहीं है, मैं क्या करूं कहां जाऊं ॥५१॥ पापात्मा विधिने मेरे मस्तकमें क्या लिख दिया है वह मूर्ख आलसी दरिद्र निष्ठुर है ॥५२॥ कुटुम्बसे

यदा भर्ता पुराणस्य श्रवणार्थं हि संस्थितः ॥ प्रत्यहं तत्र गत्वा तु तस्य निन्दां चकार है ॥ ४८ ॥ संन्यासिवत्कथं तत्र श्रवणे व्यासवत्कृतम् ॥ समुत्पन्ननिरुद्योगः किं कर्तव्यं मया वद ॥ ४९ ॥ शिशवो मां पीडयन्ति भक्षणार्थं दिने दिने ॥ किं तेषां च प्रकर्तव्यं भक्षणार्थं मया वद ॥ ५० ॥ नास्त्येवान्नं गृहे किंचिद्वस्त्रं वाप्यथ वा धनम् ॥ किं मया च प्रकर्तव्यं कुत्र गन्तव्यमेव च ॥ ५१ ॥ कथं विलिखितं दृष्टं धात्रा पापेन मां पुरा॥मूर्खश्चालससंयुक्तो दरिद्रो निष्ठुरस्तथा ॥५२॥ स्नेहहीनः कुटुम्बे च कथायाः श्रवणे रतः ॥ एतादृशः पतिर्मह्यं धात्रा दत्तो दुरात्मना ॥ ५३ ॥ पृथिव्यां दुर्भगैकाहं दरिद्रगृहमागता ॥ उदारं पूर्तिमान्नं हि नान्नं मे भक्षितं कदा ॥५४॥ सौभाग्यास्ताः स्त्रियो लोके यासामुद्योगशालिनः ॥ पतयो धनधान्यादिसमृद्धिपरिशोभिताः ॥५५॥ ते वै स्त्रीणां वाक्यकराः शिशुपालनतत्पराः॥ नित्यं गृहेषु तिष्ठन्ति स्त्रीणां संतोषकारकाः॥५६॥ सदन्नभक्षणात्पुष्टा भार्याज्ञापरिपालकाः॥ व्यवसाय च भार्याणां कुर्वन्ति बुद्धिशालिनः॥५७॥ अयं मूर्खश्च जडधीरुपेक्षां कुरुते गृहे॥ अद्य तैलं गृहे नास्ति इन्धनं लवणं तथा॥५८॥

स्नेह नहीं रखता सदा कथाश्रवणमें प्रीति करता है, इस प्रकारका पति दुष्ट विधाताने मुझे दिया है ॥ ५३ ॥ मैं पृथ्वीमें दरिद्रघरमें आकर दुर्भा-गिनी हुई हूं, कभी मैंने उदार और श्रेष्ठ अन्न नहीं भक्षण किया ॥ ५४ ॥ वेही स्त्री सौभाग्यवती हैं, जिनके उद्योगशाली धनधान्यकी समृद्धिसे शोभित पति हैं॥५५॥ वेही स्त्रियोंके वचन माननेवाले शिशुपालनमें तत्पर हैं वे स्त्रियोंके सन्तोष करनेवाले नित्य गृहोंमें स्थितरहते हैं॥५६॥ अच्छे अन्न भक्षणसे पुष्ट हुए भार्याकी आज्ञापालन करनेवाले बुद्धिमान् अपनी स्त्रियोंके कार्य करनेवाले हैं॥५७॥ मेरा स्वामी मूर्ख गृहकी उपेक्षा करता है, आज

॥ ९ ॥

घरमें ईंधन लवण और तेल नहीं है ॥ ५८ ॥ शाक तथा धान्यका लेशभी घरमें नहीं है इस प्रकारका पति मुझे मिला है मैं क्या करूं ॥ ५९ ॥ सतमार्गके मूर्ति पतिके कथा सुननेसे धान्यादिके विद्यमान होनेपरभी वह कहती कि घरमें नहीं है ॥६०॥ यह कर्कशा प्रतिदिन कथामें विघ्न करती, कुछ कालमें वह दुष्टमति मरणको प्राप्त हुई ॥६१॥ यमदूत उसको बांधकर यमराजके मंदिरमें ले गये, और यमराजकी आज्ञासे बहुत कालतक नरकमें डाली गई ॥६२॥ पीछे वह बडे भयावने निर्जल वनमें राक्षसी हुई, और पूर्वपापसे बडी प्यासी हुई ॥६३॥ इस कारण स्त्रीपुरुष किसी

शाकश्च मम नास्त्येव धान्यलेशो न मद्गृहे ॥ किं मया तु प्रकर्तव्यं पतिरेतादृशो मम ॥ ५९ ॥ कथायां श्रूयमाणायां पत्या सन्मार्गमूर्तिना ॥ धान्यादौ विद्यमानेऽपि मिथ्याभाषणतत्परा ॥ ६० ॥ कथाविघ्नं चकारासौ कर्कशा सा दिने दिने ॥ ततः कालेन मरणं प्राप्ता सा दुष्टमानसा ॥ ६१ ॥ यमदूतैस्तु बद्ध्वा सा नीता च यममन्दिरे ॥ ततो यमाज्ञया तैस्तु नरके पातिता चिरम् ॥ ६२ ॥ पश्चात्सा राक्षसी जाता भैरवे जलवर्जिते ॥ अरण्ये क्षुत्तृषायुक्तापूर्वपापप्रभावतः ॥ ६३ ॥ तस्माद्विघ्नं नकर्तव्यं भार्यया पुरुषेण वा ॥ श्रीहरेः सत्कथायास्तु तव सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६४ ॥ मृच्चालिनो महिषहंसबकस्वभावा मार्जारकाकवर-कङ्कजलौकतुल्याः॥सच्छिद्रकुम्भजलसिन्धुशिलोपमाश्च तेऽश्रावकाश्च सुचतुर्दशधा भवन्ति ॥६५॥ दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् ॥ अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयात्स कथामिमाम् ॥ ६६ ॥ अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका ॥ स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ॥ ६७ ॥

कोभी कथामें विघ्न न करना चाहिये, कथामें विघ्न न करे यह मैं सत्य कहता हूं ॥६४॥ मृत भौंरे भैंसे हंस बगले मार्जारी कौए जोंक छिद्रयुक्त जलभरे घडेके समान सिन्धुशिलाके तुल्य चौदह प्रकारके विघ्न करनेवाले होते हैं ॥६५॥ दरिद्री क्षयी रोगी निर्भाग्य पापकर्मवान् अनपत्य मोक्षकी इच्छावाला इस कथाको सुने ॥ ६६ ॥ जो रजोवती न होती हो काकवंध्या वंध्या मृतवत्सा जिसका गर्भास्राव हो जाता हो वह इसे यत्नसे श्रवण

करे ॥६७॥ हे राजन् ! उसको पुत्रकी प्राप्ति होगी यह व्यासका वचन है हरिकी यह कथा सुनकर सब कामनाओंकी प्राप्ति होती है ॥ ६८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये भाषायां श्रवणादिविधिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ वैशंपायन बोले;इस प्रकार विधानसे कथा सुनकर फिर उद्यापन करे, शक्तिमान् फलके जाननेवाले पुरुषोंको उसी प्रकार उद्यापन करना चाहिये ॥१॥ जोअकिंचन भक्त हैं उनको उद्यापनका आग्रह नहीं है वे निष्काम विष्णुभक्त सुननेसेही पवित्र हो जाते हैं॥२॥इस प्रकार नवाह यज्ञके समाप्त होनेपर बुद्धिमान् श्रोताओंको पुस्तक और वक्ताकी पूजा

सुपुत्रं लभते राजन्व्यासस्य वचनं यथा ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ॥ ६८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत् ॥ तद्वदुद्यापनं कार्यं भक्तिमद्भिः फलार्थिभिः ॥ १ ॥ अकिञ्चनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः ॥ श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥ २ ॥ एवं नवाहयज्ञेऽस्मिन्समाप्ते श्रोतृभिस्तदा ॥ पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्यातिभक्तितः ॥३॥ प्रसादतुलसीमालाः श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम् ॥ मृदङ्गताललसितं कीर्तनं कीर्त्यतां ततः ॥४॥ जयशब्दो नमःशब्दःशङ्खशब्दश्च गीयताम् ॥ विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ॥ ५ ॥ श्रवणान्ते हरेर्मूर्तिः सश्रीकस्य प्रदीयते ॥ सुवर्णस्य कृता सम्यक् लक्ष्म्यङ्का पलमानतः ॥ ६ ॥समाप्तौ विधिवद्वस्त्रं क्षौमं दद्याच्च वाचके ॥ विशेषोऽयं समुद्दिष्टो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ७ ॥ समाप्य सर्वं प्रयतः संहिताशास्त्रकोविदः ॥ शुभे दिने निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृतः ॥ ८ ॥

करनी चाहिये ॥३॥ प्रसाद और तुलसीकी माला श्रोताओंको देनी चाहिये, फिर मृदंग ताल लयसे कीर्तन करना चाहिये ॥ ४ ॥ जय नमः और शंखका शब्द कीर्तन करना चाहिये ब्राह्मण और वाचकको धन और अन्न देना चाहिये ॥५॥ श्रवणके अन्तमें लक्ष्मीसहित नारायणकी सुवर्णमूर्ति देनी चाहिये यह एक पल[१] हो ॥६॥ समाप्त होनेपर विधिसे रेशमीन और ऊनी वस्त्र दे, तत्त्वदर्शी मुनियोंने यह वार्ता कही है ॥७॥ संहिताशास्त्रमें

१ ६४ मास.

पंडित इस सबको पूर्ण कर अच्छे दिनमें रेशमीन वस्त्रसे युक्त होकर ॥ ८ ॥ शुक्ल वस्त्र धारण कर पवित्र और सावधान होकर गंधमालासे पृथक् २ ध्यान करे ॥ ९ ॥ और सावधान होकर यह संहिताकी पुस्तक भक्ष्य भोज्य अपूप और अनेक प्रकारके कौतुकोंसे ॥ १० ॥ सुवर्ण अन्य द्रव्य दक्षिणा दे, जो मनुष्योंको पवित्र पुराणकी कथा सुनाते हैं ॥ ११ ॥ वह सौ करोडसे भी अधिक वर्षतक ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं जो मनुष्य पुराणके वाचनेवालेको आसन देता है ॥ १२ ॥ तथा कम्बल अजिन वस्त्र चौकी फलक इनके दानसे स्वर्ग लोकको प्राप्त होकर वहां

शुक्लाम्बरधरस्तत्र शुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः ॥ अर्चयेत्तु यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक् ॥ ९ ॥ संहितापुस्तकं तत्र प्रयतः सुसमाहितः ॥ भक्ष्यैर्भोज्यैश्चापूपैश्च कौतुकैर्विविधैः शुभैः ॥ १० ॥ हिरण्यमन्यद्द्रव्यं च दक्षिणां तत्र दापयेत् ॥ ये श्रावयन्ति मनुजान्पुण्यां पौराणिकीं कथाम् ॥ ११ ॥ कल्पकोटिशतं साग्रं यान्ति ते ब्रह्मणः पदे ॥ आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ॥ १२ ॥ कम्बलाजिनवासांसि मञ्चाफलकमेव च ॥ स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ १३ ॥ स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ॥ पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये सूत्रं वसनं नवम् ॥१४॥ भोगिनो ज्ञानसंपन्नास्ते भवन्ति भवे भवे ॥ ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्चये ॥ १५ ॥ पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमं पदम् ॥ हरिवंशं लिखित्वा यो वाचकाय प्रदापयेत् ॥ १६ ॥ यत्फलं भूमिदानस्य तत्फलं लभते हि सः ॥ राजसूयेन तेनेष्टमश्वमेधेन वै नृप ॥ १७ ॥ दत्तानि सर्वदानानि हरिवंशे श्रुतेऽखिले ॥ राजसूयाश्वमेधाद्या यज्ञाश्चैव युगे युगे ॥ १८ ॥

अनेक भोगोंको भोगकर ॥ १३ ॥ ब्रह्मादि लोकोंमें प्राप्त होकर निरामय पदको प्राप्त होता है, जो पुराणके निमित्त सूत्र तथा नवीन वस्त्र देते हैं ॥ १४ ॥ वे जन्म जन्मान्तरमें सौभाग्यवान् होते हैं, जो महापातकी और उपपातकी हैं ॥ १५ ॥ पुराणके श्रवण करनेसे वे परमगतिको प्राप्त होते हैं, जो हरिवंश लिखकर वाचकके निमित्त प्रदान करता है ॥ १६ ॥ वह भूमिदानके फलको प्राप्त होता है उसको राजसूय और अश्वमेधका फल भी प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ हरिवंशके श्रवण करनेसे मानो संपूर्ण दान दे दिया राजसूय और अश्वमेध यज्ञ युगयुगमें होते हैं ॥ १८ ॥

हरिवंशके श्रवण करनेसे कलियुगमें यज्ञ फल देनेवाला है, श्रद्धावान् आस्तिक दान्त हरिवंशका जब आरंभ करे ॥ १९ ॥ उसी समय उसके पातक कांपकर विघ्नोंको उत्पन्न करते हैं, आदिसेही हरिवंशका आरंभ करे ॥ २० ॥ उसके स्पर्श और दर्शनसे विष्णुका दर्शन होता है, तीन जन्मके जो बडे पातक हैं ॥ २१ ॥ वह हरिवंशके समाप्त होनेपर सब दूर हो जाते हैं, भारतके श्रवण करनेसे पूर्वजन्मका पुण्य उदय हुआ जानना ॥ २२ ॥ जिसके कारण कि हरिवंशके अवधारणमें बुद्धि हो जाती है, सब वेद और पुराण तथा स्मृति ॥ २३ ॥ और अर्थ सब

श्रवणं हरिवंशस्य कलौ यज्ञफलप्रदम् ॥ श्रद्धावानास्तिको दान्तो हरिवंशं यदारभेत् ॥ १९ ॥ पातकानि प्रकम्पन्ते प्रत्यूहाञ्जनयन्ति च ॥ समारभ्य नयेत्पारं हरिवंशं य आदितः ॥ २० ॥ स्पर्शनाद्दर्शनात्तस्य विष्णुर्दृष्टो भवेन्नृप ॥ जन्मत्रयनिकषं पातकस्य च यो ध्रुवम् ॥२१॥ फलाभिश्च समाप्तौ च हरिवंशस्य बुध्यते ॥ भारतश्रोतुर्विज्ञेयं पूर्वसुकृतिलक्षणम् ॥२२॥ येन संजायते बुद्धिर्हरिवंशावधारणे ॥ सर्वाणि च पुराणानि वेदाश्च स्मृतयस्तथा ॥२३॥ हरिवंशेन बद्धार्था व्यासेन च महर्षिणा ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणानां निन्दकेभ्यः कथंचन ॥२४॥ पापिभ्यश्च महाराज श्रावयेन्नैव वाचकः ॥ श्रुत्वा तुष्टेन मनसा वाचकं परिपूजयेत् ॥२५॥ दान्तं यशस्विनं कान्तं शुचिस्पष्टाक्षरं ब्रुवन् ॥ त्रिशुक्लमाचारपरमक्रोधनमवादिनम् ॥ २६ ॥ ग्रामं दद्यात्सुवसितं कुण्डलोष्णीषमालिकाम् ॥ पादुकोपानहौ छत्रं सवितानं मसूरिकाम् ॥२७॥ एवं कृत्वा तु विधिवद्वाचकाय प्रदापयेत् ॥ यानं वृषं हयगजौ क्षौमं मणिमयासनम् ॥२८॥ पण्डभण्डाग्नितामस्य ताम्रस्यैवाम्बुजाजिनम् ॥ सकुटुम्बं च सस्त्रीकं वाचकं परया मुदा ॥ २९ ॥

हरिवंशमें बंधे हुए हैं, श्रुति स्मृति पुराणोंकी निन्दा करनेवाले और ॥२४॥ और पापियोंको किसी प्रकार श्रवण करना उचित नहीं है श्रवण करनेवाला सम्पूर्ण मनसे वाचकको प्रसन्न करे ॥ २५ ॥ चतुर यशस्वी स्पष्ट अक्षरका बोलनेवाला, त्रिशुक्ल आचारवान् क्रोधी न हो ॥ २६ ॥ उसको कुंडल पगडी आदि वस्त्रोंके सहित गाम प्रदान करे, खडाऊं, जूता, छत्री, बितान, मसूरिका ॥२७॥ यह वस्तु विधिपूर्वक कल्पना करके वाचकको प्रदान करे, यान वृषभ घोडे हाथी रेशमीन वस्त्र मणि आसन ॥ २८ ॥ पंड भांडाग्नि ताम्र अम्बुज धर्मके वस्त्र (पशमीना) कुटुम्ब स्त्री सहित

परम प्रसन्नतासे वाचकके निमित्त ॥२९॥ गहनोंसे अलंकृत कर सुन्दर वस्त्र धारण कर व्यासजीका ध्यान करके वाचकको नमस्कार करे ॥३०॥ वाचकके सन्तुष्ट होनेसे सब देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं, हरिवंशके फल चाहनेवालोंको वित्तकी शठता न करनी चाहिये॥३१॥और बछडेसहित एक सुवर्णसे पूजित गौ प्रदान करनी चाहिये सुवर्ण एक पल वा आधे पल दे॥३२॥जैसे हो वैसे वाचकको संतुष्ट करना चाहिये, और वाचकके संतुष्ट होनेपर सब देवता संतुष्ट हो जाते हैं ॥३३॥ सब देवताओंके प्रसन्न होनेमें कार्य सफल होता है, हरिवंशके समाप्त होनेपर वाचकके पूजित होनेसे ॥३४॥

विभूषणैरलंकृत्य परिधाप्य सुवाससी ॥ कृष्णद्वैपायनं ध्यायन्नमस्कुर्वीत भारत॥३०॥ वाचके परितुष्टे तु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं हरिवंशफलेप्सुभिः ॥३१॥ प्रदेया गौः शुभा चैका सवत्सा हेमपूरिता ॥ पलेन च पलार्धेन तदर्धेनाथ वा पुनः ॥ ३२ ॥ वाचकं येन केनापि तोषयेत्सुसमाहितः ॥ तुष्टे तु वाचके राजंस्तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ३३ ॥ तुष्टेषु सर्वदेवेषु कार्यं तु सफलं भवेत् ॥ हरिवंशे समाप्ते तु वाचके परिपूजिते ॥ ३४ ॥ ऋणत्रयेण मुक्ताः स्युस्ते नरा जनमेजय ॥ मोदन्ते पितरस्तेषां लोकान्प्राप्याक्षयान्नृप ॥ ३५ ॥ हरिवंशस्य प्रारम्भेसमाप्तौ चैव तैः सह ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति विपाप्मा जायते नरः ॥३६॥ एवं कृते विधाने तु प्रजां प्राप्नोति मानवः ॥ धनमारोग्यमायुष्यं सौभाग्यं गुणगौरवम् ॥ ३७ ॥ प्राप्नोति मनुजः सम्यङ् नात्र कार्या विचारणा ॥३८॥ इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ जनमेजय उवाच ॥ प्रारम्भस्तु कथं कार्यः कथं पूजाविधिः स्मृतः ॥ कथं विसर्जयेद्व्यासं कथं सम्यक्फलं लभेत् ॥ १ ॥

हे राजन्! वह मनुष्य तीनों ऋणसे मुक्त हो जाते हैं, और अक्षय्यलोकोंको प्राप्त होकर उनके पितर प्रसन्न होते हैं॥३५॥हरिवंशके समाप्त और प्रारंभमें मनुष्य पापरहित होकर सब कामनाओंको प्राप्त होता है॥३६॥इस प्रकार करनेसे मनुष्यको सन्तानकी प्राप्ति होती है, धन आरोग्य आयु सौभाग्य गुण गौरवकी प्राप्ति होती है ॥३७॥ यह सब कुछ मनुष्योंको प्राप्त होता है इसमें विचारकी आवश्यकता नहीं॥३८॥इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां श्रवणादिविधिकथनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥ जन्मेजय बोले; इसका आरंभ किस प्रकार करे,

और इसकी पूजा किस प्रकार करे॥१॥हे मुनिराज ! यह सब वार्ता विस्तारसे आप मुझसे वर्णन कीजिये, वैशंपायन बोले; हे राजन् ! सुनो जिस प्रकारसे वंध्याको पुत्रकी प्राप्ति होती है॥२॥वैशाख माघ कार्तिक वा और किसी शुभ महीनेमें शुक्लपक्ष पूर्णा ।तिथि नंदा भद्रा जयतिथिमें॥३॥ गुरु शुक्र सोम बुधवार, श्रवण हस्त पुष्य मूल पुनर्वसु नक्षत्रमें ॥४॥ ईन्द्र, चन्द्र, पौष्ण अश्विनीतारा, सौभाग्यादि योग, भद्रावर्जित, करण॥५॥ सुनने कहनेवालेको बलवान् चन्द्रमा होनेमें पूर्वाह्न वा मध्याह्नमें बुद्धिमानोंको इसका आरंभ करना चाहिये॥६॥प्रथम गणेश और पीछे कलशका पूजन

एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मुनिसत्तम ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु राजन्यथा वन्ध्या संततिं लभते ध्रुवम् ॥२॥ वैशाखे माघ ऊर्जे च अन्यस्मिन् शुभमासिके ॥ शुक्लपक्षे तिथौ पूर्णानन्दाभद्राजयासु च ॥३॥ तारे गुरौ तथा शुक्रे चन्द्रे चन्द्रात्मजे तथा ॥ नक्षत्रे श्रवणे हस्ते पुष्ये मूले पुनर्वसौ॥४॥ वासवे तुहिनांशौ च पौष्णे च हयतारके ॥ सौभाग्यादिषु योगेषु करणे त्रिष्टिवर्जिते ॥५॥ श्रोतुश्चाथापि वक्तुश्च चन्द्रे च बलशालिनि ॥ पूर्वाह्णे चापि मध्याह्ने प्रारम्भः क्रियते बुधैः॥६॥आदौ लम्बोदरः पूज्यः कलशस्त ततः परम् ॥ श्रीखण्डागरुकर्पूरकुङ्कुमामोदलेपनैः ॥७॥पङ्कजैश्चम्पकैरन्यैर्जातीपुष्पैः सुगन्धिभिः ॥ तुलसीबिल्वधात्रीणां पत्रैरन्यैर्नवाङ्कुरैः ॥ ८ ॥ धूपैर्दीपैश्च विविधैर्नारिकेरफलादिभिः ॥ ताम्बूलैर्मुखवासैश्चाखण्डितैः शुक्लतण्डुलैः ॥ ९ ॥ चामरैर्व्यजनैश्चैव घण्टावाद्यादिभिस्तथा ॥ प्रत्यहं पूजयेद्देवं यावद्ग्रन्थः समाप्यते ॥ १० ॥ लत्तादिदोषरहिते वारे च शुभसंज्ञके ॥ समर्पयेत्पुराणं तु ततः पूजां समाचरेत् ॥ ११ ॥ प्रारम्भे च यथा पूजा तथा कार्या विसर्जने ॥ चन्दनागरुकर्पुरकुङ्कुमैर्गन्धकादिभिः ॥ १२ ॥

करे, चंदन अगर कुंकुम सुगन्धिको लगाय ॥७॥ चंपे चमेलीके सुगन्धित फूल तुलसी बेल आमलेके पत्र नवीन अंकुर ॥८॥धूप दीप नारिकेल आदि फलोंकी भेंट मुखसुगन्धिके निमित्त ताम्बूल और जो टूटे न हो इस प्रकारके श्वेत चावलोंसे ॥९॥ चौंर व्यजन, घंटा बाजे आदिसे देवका प्रतिदिन पूजन करे, जबतक ग्रंथ समाप्त हो ॥१०॥ लत्तादि दोषरहित शुभवारमें पुराणको समर्पण कर पूजा करे ॥ ११ ॥ जैसी आरंभमें पूजा

१ ज्येष्ठा, मृगशिर, रेवती.

करे वैसीही विसर्जनमें करे,चंदन अगर कपूर कुमकुम गंधादिसे पूजा करे ॥१२॥ गीत वादित्र नृत्य करके महोत्सव करना उचित है,फिर पुराणकी पूजामें जो दान कहा है वह सुनो ॥१३॥ अठारहसे दान पुराणके निमित्त दे, यदि अभाव हो तो बारहसे दे॥१४॥ यदि अभाव हो तो छःसेही दे यह उत्तम अधम और मध्यम दान कहा हैं ॥१५॥ स्त्रीसहित व्यासको नवीन वस्त्र और फलसे भली प्रकार पूजन करे ॥१६॥ और पहरनेके योग्य सुन्दर वस्त्र देने चाहिये, मुकुट केयूर और बाजूबंद दे ॥१७॥ और गर्भिणी अथवा सवत्सा गौ देनी चाहिये, यान अश्वादि दासी प्रदान

गीतवादित्रनृत्यैश्च राजन्कार्यो महोत्सवः ॥ ततः पुराणपूजायां यथा दानं तथा शृणु ॥ १३ ॥ अष्टादशशतं दानं पुराणाय समर्पयेत् ॥ अभावे द्वादशशतं पूजा वै जनमेजय ॥१४॥ तदभावेऽपि राजेन्द्र षट्शतं परिकीर्तितम् ॥ उत्तमं मध्यमं दानमधमं च प्रकीर्तितम् ॥१५॥ सपत्नीकं ततो व्यासं दुकूलैरंशुकैर्नवैः ॥ पूजयेत्सर्वभावेन स सम्यक् फलमश्नुते ॥ १६ ॥ परिधाप्यानि देयानि कुण्डलानि शुभानि च ॥ मुकुटाद्यैरलंकृत्य केयूराङ्गदभूषणैः ॥ १७ ॥ गावस्तु कपिला देयाः सवत्सा गर्भसंयुताः ॥ यानमश्वादिकं राजन् दासीदासं समर्पयेत् ॥१८॥ आसनं पुरुषव्याघ्र धूपदीपादिभाजनम् ॥ शय्यातूलादिकं सर्वं सोपधानं सलड्डुकम् ॥१९॥ स्थालीपीठादिकं राजन् जलपात्रं तथैव च ॥ अन्नं च बहु दातव्यं लवणं जनमेजय ॥२०॥ घृततैलादिकं राजन् यावद्वर्षं समाप्यते ॥ एतत्सर्वं द्विजेन्द्राय व्यासासनगताय च ॥२१॥मनोभीष्टं वरं लब्ध्वा ततः कुर्यात्प्रदक्षिणाम्॥पारणान्तेन राजेन्द्रं द्विजेन्द्रं रुद्रजापिनम् ॥२२॥ वस्त्रादिभिरलंकृत्य मुद्रिकाभिस्तथैव च ॥नवीनं कम्बलं शुभ्रं ताम्रपात्रं तथैव च ॥ २३ ॥

करने चाहिये ॥ १८ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! आसन धूप दीपादि पात्र,शय्या, रुई, आदि सब उपधान आदि कल्पित करे ॥ १९ ॥ स्थालीपीठादि तथा जलपात्र बहुत अन्न और लवण देना चाहिये॥२०॥घृत तेल आदि वर्षकी समाप्तिपर्यन्त देना चाहिये,यह सब द्विजेन्द्र व्यासको देना चाहिये॥२१॥ और मनके अभीष्ट पदार्थोंको प्राप्त होकर प्रदक्षिणा करे,और पारणाके अन्तमें रुद्रजापी ब्राह्मणको ॥२२॥ वस्त्रादिसे और मुद्रिकादिसे अलंकार

करके नवीन ऊर्णावस्त्र ताम्रपात्र ॥२३॥ ब्राह्मणके उद्देश्यसे बहुतसी दक्षिणा देनी चाहिये, फिर अभिषेकयुक्त गुरु और पुरोहितको ॥२४॥ वस्त्र और अलंकार देकर दक्षिणासे संतुष्ट करे,फिर दूसरे ब्राह्मणोंको दक्षिणासे सन्तुष्ट करे ॥ २५ ॥ हे राजन् ! इस कर्मशान्तिके निमित्त हवन करना चाहिये, प्रतिश्लोकसे दशांश हवन करना चाहिये ॥२६॥ खीर मधु घृत तिल अन्नादिसे वा गायत्र्यादिसे हवन करना चाहिये ॥२७॥ कारण कि तत्त्वसे पुराण गायत्रीमय है,यदि होममें अशक्त हो तो कर्मसिद्धिके निमित्त सुवर्णदान करे॥२८॥अनेक छिद्र और न्यूनता अधिकताके निरोध

द्विजं द्विजं समुद्दिश्य दातव्या दक्षिणा बहु ॥ ततोऽभिषेकसंयुक्तं गुरुं चैव पुरोधसम् ॥ २४ ॥ वस्त्रादिभिरलंकृत्य दक्षिणाभिश्च तोषयेत ॥ ततोऽन्यान् ब्राह्मणान् सर्वान् दक्षिणाभिः समर्चयेत् ॥ २५ ॥ हवनं च तथा राजन् कर्तव्यं कर्मशान्तये ॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयाद्दशांशेनैव वा पुनः ॥२६॥ पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् ॥ अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः ॥ २७ ॥ तन्मयत्वात्पुराणस्य परमस्यास्य तत्त्वतः ॥ होमाशक्तौ बुधो हेम दद्यात्तत्फलसिद्धये ॥ २८ ॥ नानाछिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकताख्ययोः ॥ दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम् ॥ २९ ॥ तेन स्यात्सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः ॥ भोजयेन्मिथुनान्येव चतुर्विंशतिरादरात् ॥ ३० ॥ ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृत्य द्विजोत्तमान् ॥ तोषयेद्दक्षिणाहेमैर्धान्यै रत्नादिभिस्तथा ॥ ३१ ॥ भुक्तवत्सु च विप्रेषु यथावत्समयाचत ॥ वाचकं भारतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम् ॥ ३२ ॥ सपत्नीकं च संतोष्य वस्त्रालंकरणादिभिः ॥ ब्राह्मणेषु प्रसन्नेषु प्रसन्नास्तस्य देवताः ॥ ३३ ॥

करनेके निमित्त तथा अन्यदोषशान्तिके निमित्त सहस्र नामका पाठ करे ॥२९॥ उससे सब सफल हो जाता है इससे अधिक और कुछ नहीं है चौवीस ब्राह्मण ब्राह्मणीको आदरसे भोजन करावे ॥ ३० ॥ फिर गंधमालाओंसे ब्राह्मणोंको अलंकृत करके दक्षिणा सुवर्णादिसे रत्नोंसे सन्तुष्ट करे ॥३१॥ जब यथावत् ब्राह्मण भोजन कर चुके,और कथाके वांचनेवाला व्यास यथायोग्य भोजन कर चुके ॥३२॥ उनको वस्त्र अलंकारादिसे स्त्रीसहित संतुष्ट करे कारण कि ब्राह्मणके सन्तुष्ट होनेसे सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ३३ ॥

वाचकके प्रसन्न होनेसे सुन्दर और उत्तम प्रीति होती है, व्रतपूर्णकी सिद्धिके निमित्त सुवर्ण धेनु देनी चाहिये ॥३४॥ समर्थ हो तो तीन पल सुवर्णका सिंह बनाकर उसके मुखपर सुन्दर अक्षरोंसे लिखी पुस्तक रखकर ॥३५॥ आवाहनादिसे पूजन कर दक्षिणा और उपचार करके वस्त्र भूषण गंधादिसे पूजित महात्मा ॥३६॥ आचार्यके निमित्त देनेसे संसारबंधसे मुक्त हो जाता है इस प्रकार सब पाप निवारण विधानके करनेसे ॥३७॥ यह पुराण सब कामनाका सिद्धि करनेवाला सफल होता है. हे राजन् ! जो इस प्रकार पुराणको समाप्त करता है ॥३८॥ उसकी स्त्री एक मास उपरान्त अवश्य

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा ॥ दद्यात्सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्वसिद्धये ॥ ३४ ॥ शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च ॥ तस्यास्ये पुस्तकं स्थाप्य लिखितं ललिताक्षरम् ॥ ३५ ॥ संपूज्यवाहनाद्यैश्च उपचारैः सदक्षिणैः ॥ वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय महात्मने ॥ ३६ ॥ आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः ॥ एवं कृतविधानेन सर्वपापनिवारणे ॥३७॥ फलदं स्यात्पुराणं तु सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ अनेन विधिना राजन् यः पुराणं समापयेत् ॥ ३८ ॥ तस्य स्त्री लभते गर्भं मासैकेन च भारत ॥ अनेन विधिना राजन् व्यासं यस्तु समर्चयेत् ॥३९॥ पूजयेद्दानमानाभ्यां तस्य स्त्री गर्भिणी भवेत् ॥ यन्मया त्रिविधं प्रोक्तं भक्तिपूजादिकं पुनः॥४०॥ तत्कृत्वा लभते नारी पुत्रं भास्करतेजसम् ॥ तथा वन्ध्या लभेद्गर्भं व्यासस्य वचनं यथा॥४१॥ विप्ररत्नापहारी च सोऽनपत्यः प्रजायते ॥ तेन कार्यं विशुद्ध्यर्थं महारुद्रजपादिकम् ॥ ४२ ॥ अथ पारीक्षितो राजा श्रद्धायुक्तेन चेतसा ॥ भवता सत्ययुक्तेन चैकाग्रमनसा तथा ॥ ४३ ॥

गर्भिणी होती है. हे राजन् ! जो इस प्रकारसे व्यासको पूजन करती है ॥३९॥ वह दान मानसे पूजा करनेके कारण गर्भिणी होती है जो मैंने भक्ति पूजादि तीन प्रकारसे कही है ॥४०॥ उसके करनेसे स्त्री सूर्यके समान पुत्रको प्राप्त होती है, तथा व्यासवचनसे वंध्याभी गर्भिणी होती है ॥४१॥ जो ब्राह्मण किसीका रत्न हरण करता है, वह अनपत्य कहाता है, उसको शुद्धिके निमित्त महारुद्रादिका जप करना चाहिये ॥ ४२ ॥

परीक्षितके पुत्र आपको एकाग्र मनसे सत्ययुक्त चित्तसे॥४३॥कथा सुननी चाहिये,इसमें दंभ और शठता न होनी चाहिये इस प्रकार हरिवंशको सुनकर भक्तिसे व्यासका पूजन कर॥४४॥बहुतसा दान कर व्यासजीके आशीर्वादको ग्रहण कर प्रसन्नवदन हो समयपर रमणीसे रमण करे॥४५॥हे जंन्मेजय ! तब पहले जन्मके पाप क्षीण होनेमें उसकी कुलस्त्री गर्भकी धारण करनेवाली होती है॥४६॥दूसरे तीसरे चौथे पांचवे छठे सातवे आठवें॥४७॥नौवें दशवें महीने अवश्य गर्भकी स्थिति होती है,यह व्यासजीने वंध्याके गर्भ धारणका लक्षण कहा है॥४८॥वह पुत्र दश पहले दश अगले पितरोंका उद्धार

श्रुत्वा ते निश्चयं कृत्वा दम्भशाठ्यविवर्जितः॥श्रुत्वेमं हरिवंशं वै व्यासं सपूज्य भक्तितः॥४४॥ दानं च बहुलं कृत्वा व्यासाशीर्गृह्य भारत ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा रमते रमणीयतः ॥४५॥ प्राग्जन्मजनिते पापे क्षीणे वै जनमेजय ॥ ऋतावाद्ये तु संधत्ते गर्भं तस्य कुलाङ्गना ॥४६॥ द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थे मासि वै पुनः ॥ पञ्चमे वापि षष्ठे वा सप्तमे अष्टमेऽपि वा ॥ ४७ ॥ नवमे दशमे मासि दोहदं निश्चयं भवेत् ॥ व्यासेनोक्तमिदं पुण्यं वन्ध्यागर्भस्य लक्षणम् ॥४८॥ पितॄनुद्धरते सर्वान् दश पूर्वान् दशापरान् ॥ हरिवंशं नरः श्रुत्वाः सेतिहासं पुरातनम् ॥ ४९ ॥ इदं मया तवाग्रे च सर्वं प्रोक्तं नरर्षभ ॥ यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्युते ॥ ५० ॥ अपुत्रो पुत्रमाप्नोति ह्यधनो धनमाप्नुयात् ॥ नरमेधाश्वमेधाभ्यां यत्फलं प्राप्यते नरैः ॥ ५१ ॥ तत्फलं लभते सर्वं पुराणश्रवणाद्धरेः ॥ ब्रह्महा भ्रूणहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ॥ सकृत्पुराणश्रवणात्पूतो भवति नान्यथा ॥ ५२ ॥

करता है. हरिवंशको पुरात न इतिहासके सहित श्रवण कर अपने पितरोंका उद्धार करता है ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! आपके आगे यह सब मैंने वर्णन किया इसको सुनकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ५० ॥ अपुत्र पुत्रको निर्धनी धनको प्राप्त होता है जो फल मनुष्य नरमेध और अश्वमेधसे प्राप्त करते हैं ॥ ५१ ॥ वह फल पुराणश्रवणसे प्राप्त होता है ब्रह्महत्यारा, गर्भहत्यारा, गोघाती, सुरापी, गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेवाला, एकवारही पुराण श्रवण करनेसे पवित्र हो जाता है ॥ ५२ ॥

यह मैंने आपसे परम अद्भुत श्रीकृष्णका माहात्म्य कहा है, इसके सुनने पढनेसे शीघ्र फलकी प्राप्ति होती है, और लोकमें दुर्लभ फल मिलता है ॥ ५३ ॥

इदं मया ते परिकीर्तितं महच्छ्री कृष्णमाहात्म्यमपारमद्भुतम् ॥ शृण्वन्पठन्नाशु समाप्तवान्फलं यच्चापि लोकेषु सुदुर्लभं महत् ॥५३॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये पण्डितज्वालाप्रसादकृतभाषायां श्रवणविधौ दानविधानकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा–कृष्णचन्द्रपदकमलयुग, हिय धरि शीश नवाय ॥ हरिकुलमहिमाको तिलक, कह्यो यथामति गाय ॥ १ ॥
पौष शुक्ल ग्यारस गुरु, वासर सब सुखदान ॥ गुण शर अंक शशी सुभग,सम्वत् लखहिं सुजान ॥ २ ॥
गुण गावहु गोविंदके, जो सब सुखदातार ॥ प्रेमसहित जो भजहिं नित, मिलहिं पदारथ चार ॥ ३ ॥
वसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद ॥ तहां रहत हरिभजन रत, नित ज्वालाप्रसाद ॥ ४ ॥
श्रीयुत गंगाविष्णुको, श्रीकृष्ण सुखधाम ॥ देहिं पुत्र सुख सम्पदा, सिद्ध करहिं सब काम ॥ ५ ॥

इदं पुस्तकं मोहमयीनगर्यां श्रीकृष्णदासात्मज–खेमराजश्रेष्ठिना निज “श्रीवेंकटेश्वर” मुद्रणयन्त्रालये
मुद्रितं प्रकाशितं च ॥

इति भाषाटीकायुतं हरिवंशमाहात्म्यं सविधि समाप्तम् ।

॥ अथ हरिवंशे भाषाटीकायुतं प्रथमं हरिवंशपर्व प्रारभ्यते ॥


ऋषि मंडळ.
ब्रम्हदे.
देव.
भगवान
लक्ष्मी
सनत्कुमार

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ दोहा ॥ श्रीगोपीवल्लभ सुखद, वंशीधर घनश्याम ॥ चरणकमल सादर सुमरि, कहौं कछुक गुणग्राम ॥ १ ॥ इंद्रिय मन निर्मल भये, जिनकर सुख दरसात ॥ रह्यो व्याप सब जगत जिमि, मणिगण सूत्र समात ॥ २ ॥ प्रत्येक द्दक अणु अलख प्रभु, अक्षर श्रुति शिरताज ॥ कृपा करहिं निज भक्तपर, कृष्णचन्द्र ब्रजराज ॥ ३ ॥ मीमांसा और सांख्य पुनि, योग उपनिषद वृन्द ॥ जेहि गावत पावत नहीं, द्रवहु सो श्रीव्रजचन्द ॥ ४ ॥ विघ्न हरण मंगल करण, गौरितनय गणराज ॥ कृपादृष्टिकी वृष्टि कर, पूरण कीजै काज ॥५॥ जेहि मन निर्मल हेतु बहु, किय पुराण इतिहास ॥ भाष्य योग वेदांतके, कर्ता वेदव्यास ॥ ६ ॥ सो सब भव हरणकौ, देहिं ज्ञान भरपूरि ॥ हरि विधि शक्ति पराशर, गुरु वसिष्ठ शुकसूरि ॥ ७ ॥ वैशंपायन उग्रश्रव, कर्ता सकल पुरान ॥ तिनको वंदन कर पुनः, कणभक्षी सुखदान ॥ ८॥ अक्षचरण जैमिनि कपिल, पतञ्जलिहि शिर नाय ॥ व्यासवचनसागर विनय, वर्षा करण सुभाय ॥ ९ ॥ हरि हर श्रीगुरु वेद श्री, वाणी शक्ति मनाय ॥ बहुविधि संग्रह ग्रन्थ कर, टीकापाठ मिलाय ॥ १० ॥ विविध कोषसे अर्थ लिख, पूर्वकथा अनुकूल ॥ टीका श्रीहरिवंशकी, लिखत सुमंगल मूल ॥ ११ ॥ जाकी कृपाकटाक्षसे, मूक होत वाचाल ॥ बुध ज्वालाप्रसादपर, द्रवहु

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

सो दीनदयाल ॥ १२ ॥ अन्वयके अनुसार सब, भाषातिलक बनाय ॥ लिखत यथामति शोधकर, लखहिं सुजन चित लाय ॥ १३ ॥

श्रीभगवान् वेदव्यासजीसे सकल संसार जड मनुष्योंको उद्धार करनेकी इच्छासे सब वेदोंका सार महाभारत बनाकर सौ पर्वोंकी रचना की, उसमें अन्तके तीन पर्व हरिवंशरूप वर्णन किये हैं. जैसा अनुक्रमणिका अध्यायमें लिखा है—"हरिवंशस्तथा पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम् । विष्णुपर्व शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तथा ॥ भविष्यं पर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत् । एतत्पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मनेति ॥ " और महाभारतकी एक लक्ष संख्याभी इसीके मिलानेसे पूर्ण होती है. जिस प्रकार सोमयाग वेदान्त विहित स्तोत्र—शस्त्रोंके विना पूर्ण नहीं होता; इसी प्रकार इसके विना भारतका पारायण नहीं हो सक्ता. इस कारण भारतके अन्तमें इसका पारायण अवश्य है. अब विघ्न दूर करने और शिष्यशिक्षाके निमित्त मंगलका विधान करते हैं. नारायण जो कि, अनादि अविद्यावाले जीवोंके कर्मसे निर्मित हुए शरीरोंमें उनको नियममें रखनेके लिये अन्तरमें प्रविष्ट हैं । "अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्" इति श्रुतेः । तिनको

नमस्कार कर नर और नरोत्तम, हिरण्यगर्भ और उससे उत्तम अन्तर्यामी चिदात्माके तत्त्व दिखानेहारी देवी सरस्वती और व्यासजीको नमस्कार कर अविद्यानाशक जयग्रंथका पाठ करना उचित है ॥ १ ॥ व्यासजीके मुखसे निर्गत, उपमारहित, पुण्य, पवित्रस्वरूप, पापहारी, कल्याणदायक, भारतआख्यानको जो सुननेकी इच्छा करते हैं, उन्हें पुष्करतीर्थमें स्नान करनेकी आवश्यकता क्या है ॥ २ ॥ पराशरपुत्र सत्यवतीके हृदयके आनंद देनेहारे व्यासजीकी जय हो, जिनके मुखकमलसे निर्गत वाणीरूप अमृतको जगत् पान करता है ॥ ३ ॥ जो कोई वेदपाठी ब्राह्मणके निमित्त सोनेकी सींगि मढी सौ गौ प्रदान करता है, और जो पवित्र भारतकी कथा श्रवण करता है, उन दोनोंका फल बराबर होता है ॥ ४ ॥ जो सौ अश्वमेधका पुण्य है और इन्द्रपद प्राप्तिके चार सहस्र

द्वैपायनौष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च ॥ यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ॥ २ ॥ जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ॥ यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥ ३ ॥ ये गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति विप्राय वेदविदुषे बहुविश्रुताय ॥ पुण्यां च भारतकथां शृणुयाच्च तद्वत्तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ॥ ४ ॥ शताश्वमेधस्य यदत्र पुण्यं चतुःसहस्रस्य शतक्रतोश्च ॥ भवेदनन्तं हरिवंशदानात्प्रकीर्तितं व्यासमहर्षिणा च ॥ ५ ॥ यद्वाजपेयेन तु राजसूयाद्दृष्टं फलं हस्तिरथेन चान्यत् ॥ तल्लभ्यते व्यासवचः प्रमाणं गीतं च वाल्मीकिमहर्षिणा च ॥ ६ ॥ यो हरिवंशं लेखयति यथाविधिना महातपाः सपदि ॥ स जयति हरिपदकमलं मधुपो हि यथा रसेन संलुब्धः ॥ ७ ॥ पितामहाद्यं प्रवदन्ति षष्ठं महर्षिमक्षय्यविभूतियुक्तम् ॥ नारायणस्यांशजमेकपुत्रं द्वैपायनं वेद महानिधानम् ॥ ८ ॥

यज्ञका जो फल है, इस ग्रंथके पारायणसे इससेभी अधिक फल होता है, ऐसा व्यासजीने कहा है ॥ ५ ॥ जो वाजपेय राजसूय और हाथी सहित रथदानका जो फल है वह इसके श्रवणसे प्राप्त होता है ऐसा व्यासजी और दूसरे वाल्मीकि आचार्योंनेभी कहा है ॥ ६ ॥ जो तपस्वी विधानपूर्वक इस हरिवंशको शीघ्रतासे लिखता है, वह शीघ्रही नारायणके पदकमलको प्राप्त हो जाता है ॥ ७ ॥ जो महर्षि पिता ब्रह्माजीसे छठे, अविनाशी त्रिकालज्ञ, विभूतियुक्त हैं; जो नारायणके अंशसे प्रादुर्भूत एक शुकदेव जिनके पुत्र हैं; वा नारायणांश होनेसे जिनके हिरण्यगर्भ पुत्र हैं तिन वेदनिधान व्यासजी

महाराजको नमस्कार करता हूं ॥ ८ ॥ बीजांकुर वृक्षके फलकी उपमाके समान पांच पुरुष क्रमसे वर्णन कियेहैं; शुद्धचैतन्य १ माया शबल २ सूत्रात्मा ३ विराट् ४ विष्णु ५ उसमें पृथ्वीस्थानी शुद्ध चैतन्य आदि पुरुष है. ईशान दूसरे मायाशबल बीजस्थान है. "मायिनं तु महेश्वर" मिति श्रुतेः तु पुरुहूत, पुरुष्टुत यह अंकुरकी समान तृतीया सूत्रात्मा है; क्या यह तीनों पृथक् हैं; वा जलतरंगवत् एक हैं इसप्रकार कहते हैं; ऋतं "ऋतमेकाक्षरं ब्रह्मेति" सत्यस्वरूप और बाधारहित हैं; एक माया प्रपंचरहित अक्षर अकार्य होनेसे नाशरहित ब्रह्मही व्यक्ताव्यक्त सनातन अर्थात् सर्वदाएकरूप कूटस्थ ॥ १ ॥ असत् सदसत्से परे कार्यका कारण सूत्र ईशानसे अन्य शुद्ध ब्रह्म विराट् स्वरूप, सत्से विलक्षण, विश्वरूप, अनिर्वचनीय; सत् जो दीखता है असत् "नेहनानास्ति किंचन" इति। इससेभी परे परावरके पर सूत्रात्मा अपर विराज, इनके निर्माण करनेहारे विष्णु परं अव्यय अविनाशी ॥ २ ॥ आनंद, मंगलस्वरूप, सर्वव्यापी, मुमुक्षुओंसे वरणशील, आगंतुक दोष शून्य, स्वभावसे शुद्ध इन्द्रियोंके प्रवर्तक, चराचरके हित उपदेशकरनेवाले, सर्वपापहारी नारायको नमस्कार करके ॥ ३ ॥ नैमिषारण्यक्षेत्रमें महामुनि कुलपतिजी धर्मात्मा सम्पूर्ण शास्त्रके जाननेवाले शौनकजी सौतिसे पूछने लगे ॥ ४ ॥ शौनकजी बोले; हे सौति ! आपने भरतवंशी राजाओंका बहुत बडा आख्यान कथन किया है ॥ ५ ॥ देवता, दानव, गन्धर्व, उरग (सर्प), राक्षस, दैत्य, सिद्ध, गुह्यकादिकोंके ॥ ६ ॥

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ॥ ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥ १ ॥ असच्च सदसच्चैव यद्विश्वं सदसत्परम् ॥ परावराणां स्रष्टारं पुराणं परमव्ययम् ॥ २ ॥ मङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ॥ नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥ ३ ॥ नैमिषारण्ये कुलपतिः शौनकस्तु महामुनिः ॥ सौतिं पप्रच्छ धर्मात्मा सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ४ ॥ शौनक उवाच सौते सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम् ॥ भरतानां च सर्वेषां पार्थिवानां तथैव च ॥ ५ ॥ देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ दैत्यानामथ सिद्धानां गुह्यकानां तथैव च ॥ ६ ॥

---

१ जो १००० महात्माओंको अन्नदानसे पालन करे और वेदवेदांगका जाननहारा हो उसे कुलपति कहते हैं।
२ अग्निकुंडसे सूतकी उत्पत्ति हुई (सूत निर्मलमानसे) ऐसा प्रसिद्ध है; अग्नि से उत्पन्न हुए लोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा हैं

अत्यन्त अद्भुत कर्म विक्रम धर्म विचित्रकथाके योग और गर्भवासादि क्लेशरहित द्रोणादि धृष्टद्युम्नादिके धर्म सामर्थ्यसेही जन्म कहे ॥ ७ ॥
मनोहर वाणीसे आपने मुझे पवित्र पुराण श्रवण कराया है; हे सौति ! हमारे मन और कानोंको यह कथा अमृतस्वरूप है ॥ ८ ॥ हे लोमहर्षण !
उसमें तो तुमने कुरुवंशियोंका जन्मकर्म कथन किया, पर वृष्णि और अंधकोंका जन्म नहीं कहा सो आप कथन कीजिये ॥ ९ ॥ सौति बोले—व्यासजीने
शिष्य वैशंपायनसे जो धर्मात्मा जनमेजयने पूछा था, वह मैं तुमको आदिसे वृष्णिवंशकी कथा कहता हूं ॥ १० ॥ जनमेजय भारतवंशियोंकी सम्पूर्ण कथा

अत्यद्भुतानि कर्माणि विक्रमा धर्मनिश्चयाः ॥ विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ कथितं भवता पुण्यं पुराणं
श्लक्ष्णया गिरा ॥ मनःकर्णसुखं सौते प्रीणात्यमृतसंमितम् ॥ ८ ॥ तत्र जन्म कुरूणां वै त्वयोक्तं लौमहर्षणे ॥ नतु वृष्ण्यन्धकानां
च तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ ९ ॥ सौतिरुवाच ॥ जनमेजयेन यत्पृष्टः शिष्यो व्यासस्य धर्मवित् ॥ तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि वृष्णीनां वंशमा-
दितः ॥ १० ॥ श्रुत्वेतिहासं कात्स्न्र्येन भारतानां स भारतः ॥ जनमेजयो महाप्राज्ञो वैशम्पायनमब्रवीत् ॥ ११ ॥ जनमेजय
उवाच ॥ महाभारतमाख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् ॥ कथितं भवता पूर्वं विस्तरेण मया श्रुतम् ॥ १२ ॥ तत्र शूराः समाख्याता
बहवः पुरुषर्षभाः ॥ नामभिः कर्मभिश्चैव वृष्ण्यन्धकमहारथाः ॥ १३ ॥ तेषां कर्मावदातानि त्वयोक्तानि द्विजोत्तम ॥ तत्र तत्र
समासेन विस्तरेणैव मे प्रभो ॥ १४ ॥ न च मे तृप्तिरस्तीह कथ्यमाने पुरातने ॥ एकश्चैवमतो राशिर्वृष्णयः पाण्डवास्तथा ॥ १५ ॥
भवांश्च वंशकुशलस्तेषां प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ कथयस्व कुलं तेषां विस्तरेण तपोधन ॥ १६ ॥

सुनकर महापंडित वैशंपायनजीसे कहने लगे ॥ ११ ॥ जन्मेजय बोले—बहुत अर्थसम्मत श्रुतिसे अर्थसे विस्तृत महाभारत कथा आपने विस्तारसे कही सो
हमने सुनी ॥ १२ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! उसमें आपने बडे २ शूरोंका वर्णन किया परन्तु नाम और कर्मसे महारथी वृष्णि और अंधक शूर हैं ॥ १३ ॥ हे
द्विजोत्तम ! आपने उनके बडे २ अद्भुत कर्म वर्णन किये, वह आपने जहां कहे संक्षेपसेही कथन किये हैं; हे प्रभो ! अब आप विस्तारसे
कहिये ॥ १४ ॥ क्योंकि आपके पुरातन कथा कहनेसे मेरी तृप्ति नहीं होती, वृष्णि और पांडव एकही कुटुम्ब है ॥ १५ ॥ और आपने उनका वंश प्रत्यक्ष

॥ २ ॥

देखा है; कारण कि आप चतुर हो; हे तपोधन ! उनका कुल विस्तारपूर्वक मुझसे वर्णन करो ॥ १६ ॥ जिस २ वंशमें जो हुए उनके जाननेकी इच्छा करता हूं; हे महामुने ! वह आप सम्पूर्ण वर्णन कीजिये; प्रजापतिसे प्रारंभ कर उनकी आदिसृष्टिको विचारकर कहो ॥ १७ ॥ सौतिजी बोले– जब जनमेजयने महातपस्वी वैशंपायनसे सत्कारपूर्वक यह कथा पूछी; तब वह इस कथाको विस्तारपूर्वक कहने लगे ॥ ॥ १८ ॥ वैशंपायन बोले–हे राजन् ! पापनाशक इस दिव्य कथाको श्रवण कीजिये; जो कि मैं विचित्र बहुत अर्थयुक्त श्रुतिसम्मत इस कथाको तुमसे कहूंगा ॥ १९ ॥ जो इसे

यस्य यस्यान्वये ये ये तांस्तानिच्छामि वेदितुम् ॥ स त्वं सर्वमशेषेण कथयस्व महामुने ॥ तेषां पूर्वविसृष्टिं च विचिन्त्यैमां प्रजापतेः ॥ १७ ॥ सौतिरुवाच ॥ सत्कृत्य परिपृष्टस्तु स महात्मा महातपाः ॥ विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास तां कथाम् ॥१८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु राजन् कथां दिव्यां पुण्यां पापप्रमोचनीम् ॥ कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिसंमिताम् ॥ १९ ॥ यश्चेमां धारयेद्वाऽपि शृणुयाद्वाऽप्यभीक्ष्णशः ॥ स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥ २० ॥ अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ॥ प्रधानं पुरुषं तस्मान्निर्ममे विश्वमीश्वरम् ॥ २१ ॥ तं वै विद्धि महाराज ब्रह्माणममितौजसम् ॥ स्रष्टारं सर्वभूतानां नारायणपरायणम् ॥ २२ ॥ अहङ्कारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि जज्ञिरे ॥ भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः सनातनः ॥ २३ ॥ विस्तरावयवं चैव यथाप्रज्ञं यथाश्रुति ॥ कार्त्यमानं शृणु मया पूर्वेषां कीर्तिवर्धनम् ॥ २४ ॥

धारण करे वा नित्य प्रति सुने वह अपना वंश धारण करके स्वर्गलोकमें जाता है ॥ २० ॥ अव्यक्त, कारणस्वरूप, आदि अन्तशून्य, सदसदात्मक, मायाशबल, ब्रह्म प्रधानपुरुषसेही यह जगत् प्रगट हुआ है; यह ईश्वरसे अभिन्न है ॥ २१ ॥ हे महाराज ! उसीको तुम महापराक्रमी ब्रह्मा जानो. जो सब प्राणियोंके उत्पादक नारायणपरायण हैं ॥ २२ ॥ महत्से अहंकार और उससे पंच भूत उत्पन्न हुए और उन भूतोंसे भूतोंके भेद उत्पन्न हुए यही सनातन सृष्टि है ॥ २३ ॥ उनके चारित्र तुम जैसी मेरी बुद्धि है , जैसी सुना है जो पूर्वजोंकी कीर्तिका बढानेहारा है; सो तुम मुझसे सुनो ॥२४॥

यह कथा धन-यशदायक, शत्रुनाशक, स्वर्गदाता, आयु बढानेहारी है; जो कीर्तन करते हैं उनकी स्थिर कीर्ति और सबके पुण्यकर्मोंकी वृद्धि होती है॥ २५॥ श्रेष्ठ गुणसम्पन्न होनेसे सुनने और ग्रहण करनेमें समर्थ तुम्हारे प्रति वृष्णिवंशसे लेकर उत्तम सृष्टिसर्गवर्णन करता हूं॥ २६॥ तब भगवान् ब्रह्माजी अनेक प्रकारकी प्रजा रचनेकी इच्छासे प्रथम जलको निर्माण कर उसमें वीर्य डालते हुए॥ २७॥ जलोंको नार और नरसूनुभी कहते हैं, वे जल ईश्वरके पूर्वकालमें स्थान हुए, इसीसे उसका नाम नारायण हुआ॥ २८॥ वह अंड हिरण्यवर्णका होकर जलमें शयन करने लगा; उससे स्वयंभू ब्रह्मा उत्पन्न हुए ऐसा हमने सुना

धन्यं यशस्यं शत्रुघ्नं स्वर्ग्यमायुःप्रवर्धनम् ॥ कीर्त्तनं स्थिरकीर्तीनां सर्वेषां पुण्यकर्मणाम् ॥ २५ ॥ तस्मात्कल्पाय ते कल्पःसमग्रं शुचये शुचिः ॥ आवृष्णिवंशाद्वक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम् ॥ २६ ॥ ततः स्वयंभूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥२७॥आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः॥अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणःस्मृतः॥२८॥ हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम्॥तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयंभूरिति नःश्रुतम् ॥२९॥ हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥ तदण्डमकरोद्द्वैधं दिवं भुवमथापि च ॥३०॥ तयोः शकलयोर्मध्ये आकाशमसृजत्प्रभुः ॥ अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे ॥३१॥ तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ॥ ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन्प्रजापतीन् ॥३२॥ मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥ वसिष्ठं च महातेजाःसोऽसृजत्सप्त मानसान् ॥३३॥सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः॥नारायणात्मकानां वै सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम् ॥३४॥ ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसंभवम् ॥ सनत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥३५॥

है ॥२९ ॥ हिरण्यगर्भ भगवान् उसमें एक वर्ष रहकर उस अंडेके स्वर्ग और भूमिके भेदसे दो भाग करते हुए ॥३०॥ उन दोनों खंडके बीचमें विभुने आकाश रचना की; जलसे पृथ्वी और दश दिशा निर्माण की॥ ३१॥उस अंडमें काल, मन, वचन, काम, क्रोध रतिको बनाया; प्रजापतियोंके रचनेकी इच्छासे ब्रह्माने तद्रूप सृष्टिको बनाया॥ ३२ ॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महातेजस्वी वसिष्ठ इन सात ऋषियोंको निर्माण किया॥ ३३॥पुराणमें इन सातोंकोभी ब्राह्मणश्रेष्ठ माना है, यह सातों ब्रह्मवादी नारायणके निश्चयको प्राप्त हुए हैं॥ ३४॥फिर ब्रह्माजीने रोषसे रुद्रको

प्रगट किया और पूर्वजोंकेभी पूर्व सर्वज्ञ सनत्कुमारको उत्पन्न किया ॥३५॥ हे राजन् ! इन सात ऋषि और रुद्रने प्रजाकी रचना की; स्कंद और सनत्कुमार यह सृष्टि रचनेकी सामर्थ्य होनेपरभी ब्रह्मचारी रहे ॥ ३६ ॥ और उन सातोंके महावंश दिव्य और देवगणोंसहित क्रियावाले प्रजावाले महर्षियोंसे भूषित हुए ॥३७॥ विजली, मेघ, लाल इन्द्रधनुष, पक्षियोंको बनाकर पीछे मेघोंको बनाया ॥ ३८ ॥ और यज्ञसिद्धिके निमित्त ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद प्रगट किये; मुखसे देवताओंका यजन और वक्षस्थलसे पितृगणोंका यजन करते हैं॥३९॥उपस्थेन्द्रियसे

सप्तैते जनयन्ति स्म प्रजा रुद्रश्च भारत ॥ स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः ॥३६॥ तेषां सप्त महावंशा दिव्या देवगणान्विताः ॥ क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलंकृताः ॥३७॥ विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥ वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च ससर्ज ह ॥३८॥ ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ॥ मुखाद्देवानजनयत्पितॄंश्चैशोऽपि वक्षसः ॥३९॥ प्रजनाच्च मनुष्यान्वै जघनान्निर्ममेऽसुरान् ॥ साध्यानजनयद्देवानित्येवमनुशुश्रुम ॥४०॥ उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥ आपवस्य प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः ॥४१॥ सृज्यमानाः प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ॥ द्विधा कृत्वाऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ॥४२॥ अर्धेन नारी तस्यां स ससृजे विविधाः प्रजाः ॥ दिवं च पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य तिष्ठतः॥४३॥विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत्पुरुषं विराट्॥ पुरुषं तं मनुं विद्धि तद्वै मन्वन्तरं स्मृतम् ॥ ४४ ॥

मनुष्य और जांघोंसे असुरोंको बनाया; और साध्य और देवताओंकोभी बनाया है;ऐसा नित्य हमने श्रवण किया है ॥४०॥यहां श्रवण करनेका अर्थ यही है कि,ऐसा श्रुतिमें वर्णन किया गया है;ऊंचे नीचेप्राणी उन ब्रह्माजीके शरीरसे उत्पन्न हुये हैं;इसप्रकार परमात्मा प्रजापतिकी निर्माण की हुई॥४१॥ और रची हुई प्रजा जब वृद्धिको प्राप्त न हुई,तब यह प्रजापति अपने दो विभाग कर आधेसे पुरुष हुए ॥४२॥ और आधेसे स्त्री हुए, उसमें बहुतसी प्रजा उत्पन्न की और अपनी महिमासे स्वर्ग और पृथ्वीमें व्याप्त होकर वे सब स्थित हुए ॥४३॥ विष्णुने विराटको रचा और विराटने पुरुषको

रचना की, उस पुरुषको मनु कहते हैं; जिनसे यह मन्वन्तर कहाता है ॥ ४४ ॥ यह मानसिक प्रजाका अन्तर होनेमें मन्वन्तर कहलाता है और विराट्से उत्पन्न हुए प्रभु पुरुषने प्रजा उत्पन्न की, और नारायणकी सृष्टिकी प्रजा तो अयोनिज हुई ॥ ४५ ॥ जो इस आदिसर्गको जानता अथवा सुनता है, वह आयुष्मान्, कीर्तिमान् बडाईके योग्य, पुत्रवान्, शास्त्रसम्पन्न होकर यथेष्ट गतिको प्राप्त हो जाता है ॥ ४६ ॥ इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरंधरश्रीमत्सुखानंदमिश्रसूनोः पंडितज्वालाप्रसादमिश्रस्य कृतौ भाषायां हरिवंशार्थप्रकाशे आदिसर्गकथने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ वैशंपायनजी बोले—कि हे राजन्!

द्वितीयामापवस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते ॥ स वैराजः प्रजासर्गं ससर्ज पुरुषः प्रभुः ॥ नारायणविसर्गे स प्रजास्तस्याप्ययोनिजाः ॥ ४५ ॥ आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्यः प्रजावाञ्छ्रुतवांस्तथा ॥ आदिसर्गं विदित्वेमं यथेष्टां गतिमाप्नुयात् ॥ ४६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे ह० पर्वणि आदिसर्गकथने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स सृष्टासु प्रजास्वेवमापवो वै प्रजापतिः ॥ लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥ १ ॥ आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः ॥ धर्मेणैव महाराज शतरूपा व्यजायत ॥ २ ॥ सा तु वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥ भर्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥ ३ ॥ स वै स्वायम्भुवस्तात पुरुषो मनुरुच्यते ॥ तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ ४ ॥ वैराजात्पुरुषाद्वीरं शतरूपा व्यजायत ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात्काम्या व्यजायत ॥ ५ ॥ काम्या नाम महाबाहो कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिर्विराट् प्रभुः ॥ प्रियव्रतं समासाद्य पतिं सा सुषुवे सुतान् ॥ ६ ॥

यह प्रजापति इस प्रकार सृष्टिकी रचना कर पीछे अयोनिसे उत्पन्न हुई शतरूपा स्त्रीको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ और ऐसी प्रजा रचते हुए कि इनकी कीर्ति स्वर्गमें प्राप्त हुई; हे महाराज! वह शतरूपी धर्मसे उत्पन्न हुई ॥ २ ॥ पीछे यह दश सहस्र वर्ष बडा घोर कठिन तप करके दीप्त तपवाले पुरुष स्वामीको प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ हे तात! उन पुरुषको स्वयंभु मनु कहते हैं और उनके इकहत्तर चौकडी युगको मन्वन्तर कहते हैं ॥ ४ ॥ वैराज पुरुषसे वीरसुतको शतरूपी जनती हुई और वीरसे काम्यामें प्रियव्रत और उत्तानपाद हुए ॥ ५ ॥ हे महाबाहो! यह काम्यानामक कन्या कर्दम प्रजापतिकी थी; उन्होंने कर्दमकी काम्या

कन्यासे विवाह किया; इसके प्रियव्रत, उत्तानपाद दो पुत्र हुए और इन प्रियव्रतने वसिष्ठमुनिकी काम्या कन्याको प्राप्त होकर सम्राट्, कुक्षि, विराट्, प्रभु चार पुत्रोंको प्रगट किया ॥ ६ ॥ और उत्तानपादको पुत्र करके अत्रि प्रजापति ग्रहण करते हुए; उत्तानपादसे चार पुत्रोंको सूनृता उत्पन्न करती हुई ॥ ७ ॥ और यह सुश्रोणी धर्मकी कन्या सूनृता नाम वाजिमेधसे उत्पन्न हुई और यही ध्रुवकी माता हुई ॥ ८ ॥ और उसमें उत्तानपादने ध्रुव, कीर्तिमान्, आयुष्मान्, वसु पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ तिन्होंमें हे राजन् ! ध्रुवने महत् यशकी प्रार्थना की; देवताओंके तीन सहस्र वर्ष तप किया ॥ १० ॥

उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः ॥ उत्तानपादाच्चतुरः सूनृताऽजनयत्सुतान् ॥ ७ ॥ धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता ॥ उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा ॥ ८ ॥ ध्रुवं च कीर्तिमन्तं च शिवं शान्तमयस्पतिम् ॥ उत्तानपादोऽजनयत्सूनृतायां प्रजापतिः ॥ ९ ॥ ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भारत ॥ तपस्तेपे महाराज प्रार्थयन्सुमहद्यशः ॥ १० ॥ तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमप्रतिमं भुवि ॥ अचलं चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥ ११ ॥ तस्यातिमात्रामृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य च ॥ देवासुराणामाचार्यः श्लोकमप्युशना जगौ ॥ १२ ॥ अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो बलम् ॥ यदेनं पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥ १३ ॥ तस्मात् श्लिष्टिं च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत ॥ श्लिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥ १४ ॥ रिपुं रिपुंजयं पुण्यं वृकलं वृकतेजसम् ॥ रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ॥ १५ ॥

तिस ध्रुवजीको प्रजापति ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर सप्तऋषियोंके आगे अचल आत्मसमान स्थान दिया ॥ ११ ॥ और सम्पूर्ण देवता और असुरोंके आचार्य शुक्राचार्य इनकी समृद्धि और महिमाको देखकर यह श्लोक कहने लगे ॥ १२ ॥ कि अहो ! देखो, इसके तपका प्रभाव और अद्भुत शास्त्रका प्रभाव देखो कि, जिस ध्रुवको सप्तऋषि आगे करके स्थित हो रहे हैं ॥ १३ ॥ तिस ध्रुवसे शंभुनामा स्त्री श्लिष्टि और भव्य नाम पुत्रको उत्पन्न करती हुई; श्लिष्टिने सुच्छाया स्त्रीमें निर्मल पांच पुत्र उत्पन्न किये ॥ १४ ॥ रिपु, रिपुंजय, पुण्य, वृकल, वृकतेज और रिपु बृहती स्त्रीमें सम्पूर्ण तेजवाले चाक्षुषको

उत्पन्न करता हुआ ॥ १५ ॥ और वीरणकी कन्या पुष्करणी स्त्रीमें चाक्षुषमनुको उत्पन्न किया; पीछे यह अरण्यनाम महात्मा प्रजापतिकी पुत्री
॥ १६ ॥ नड्वलामें महातेजस्वी दश पुत्र उत्पन्न हुए; यह महापराक्रमी वैराजप्रजापतिकी कन्या थी ॥ १७ ॥ ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्य
वान्, कवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न यह नौ ॥ १८ ॥ और अभिमन्यु; यह दश पुत्र महातेजस्वी नड्वलासे उत्पन्न हुए; और आग्नेयी स्त्री ऊरुसे
बडे तेजवाले छः पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई; अंग, सुमनस, ख्याति, क्रतु, अंगिरस, गय, ॥ १९ ॥ इनमें अंगसे सुनीथा कन्यामें वेन उत्पन्न हुआ;

अजीजनत्पुष्करिण्यां वीरण्यां चक्षुषो मनुम् ॥ प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मनः ॥१६॥ मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौ-
जसः॥कन्यायामभवञ्छ्रेष्ठा वैराजस्य प्रजापतेः॥१७॥ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवान् कविः॥अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति
ते नव ॥ १८ ॥ अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायाः सुताःस्मृताः॥उरोरजनयत्पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान् ॥ अङ्गं सुमनसं ख्यातिं
क्रतुमङ्गिरसं गयम् ॥ १९ ॥ अङ्गात्सुनीथापत्यं वै वेनमेकमजायत ॥ अपचारात्तु वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत् ॥२०॥ प्रजार्थ-
मृषयो यस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् ॥ वेनस्य पाणौ मथिते बभूव मुनिभिःपृथुः ॥ २१ ॥ तं दृष्ट्वा ऋषयः प्राहुरेष वै मुदिताःप्रजाः॥
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ॥ २२ ॥ स धन्वी कवची खड्गी तेजसा निर्दहन्निव ॥ पृथुर्वैन्यस्तदा चेमां ररक्ष
क्षत्रपूर्वजः ॥ २३ ॥ राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः ॥ तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥ २४ ॥

पश्चात् वेनके देवताओंसे द्रोह करनेमें मुनियोंको महान् कोप हुआ ॥ २० ॥ पश्चात् ऋषि प्रजाके वास्ते इसके दक्षिण हाथको मथने लगे; मथते हुए
ऋषियोंसे पृथु उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥ उसको देखकर सम्पूर्ण मुनि बोले; कि यह प्रजाको आनंदित करेगा; और यह बडे तेजवाला महत् यशको प्राप्त
होवेगा॥२२॥वेनके हाथसे उत्पन्न हुए उस वेनका पृथु नाम रखते हुए; और अग्निके समान तेजवाला पृथु धनुष और कवच धारण करके क्षत्रियोंकी आदिमें
होकर इस पृथ्वीकी रक्षा करने लगा ॥२३॥ राजसूय यज्ञोंसे अभिषिक्त राजाओंमें यह प्रथम राजा हुआ; और उससेही चतुर सूत, मागध हुए ॥२४॥

हे राजन् ! उस पृथुने प्रजाकी वृत्तिके अर्थ देवता ऋषिगणोंके साथ पृथ्वी दुही ॥ २५॥ पितृ, दानव, गन्धर्व, अप्सरोगण, सर्प, राक्षस, वेल, पर्वत ॥ २६॥
सहित पृथक् पृथक् पात्र बनाकर सब सस्योंको दुहते हुए; और पृथ्वी दुही हुई वांछित दुग्ध देती हुई; उससे सम्पूर्ण प्राण धारण करने लगे ॥ २७ ॥
और पृथुराजाके धर्मके जाननेवाले अंतार्धि और पालित दो पुत्र हुए, पश्चात् शिखंडिनी स्त्री अन्तर्धानसे हविर्धानको जनती हुई ॥ २८ ॥
हविर्धानसे अग्निकी पुत्री धिषणा छः पुत्रोंको जनती हुई, प्राचीनबर्हि, शुक्ल, गय, कृष्ण, व्रज, अजिन यह हुए ॥ २९ ॥ उनमें प्राचीनबर्हि भगवान् महा-

तेनेयं गौर्महाराज दुग्धा सस्यानि भारत ॥ प्रजानां वृत्तिकामेन देवैः सर्षिगणैः सह ॥२५॥ पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैः साप्सरोगणैः ॥
सर्पैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ॥ २६ ॥ तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुंधरा ॥ प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधार-
यन् ॥ २७ ॥पृथुपुत्रौ तु धर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिपालितौ ॥ शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्द्धानाद्व्यजायत ॥ २८ ॥ हविर्धानात् षडाग्नेयी
धिषणाऽजनयत्सुतान् ॥ प्राचीनबर्हिषं शुक्लं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ॥ २९ ॥ प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत्प्रजापतिः ॥ हविर्धा-
नान्महाराज येन संवर्द्धिताः प्रजाः ॥ ३० ॥ प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां जनमेजय ॥ प्राचीनबर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणः
॥ ३१ ॥ समुद्रतनयायां तु कृतदारोऽभवत्प्रभुः ॥ महतस्तपसः पारे सवर्णायां महीपतिः ॥ ३२ ॥ सवर्णाऽऽधत्त सामुद्री दश
प्राचीनबर्हिषः ॥ सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ ३३ ॥ अपृथग्धर्मचरणास्ते तप्यन्त महत्तपः ॥ दश वर्षसहस्राणि समुद्रस-
लिलेशयाः ॥ ३४ ॥ तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतस्सु महीरुहाः ॥ अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥ ३५ ॥

प्रजापति हुए, हे महाराज ! उसने हविर्धानसे यह सम्पूर्ण प्रजावृद्धि की है ॥ ३० ॥ हे जनमेजय ! इन्होंने यज्ञमें पूर्वकी ओर अग्रभाग कर कुशा बिछाई
इससे प्राचीनबर्हि विख्यात हैं ॥ ३१ ॥ पीछे इन प्राचीनबर्हिने महान् तपसे समुद्रकी पुत्री सवर्णासे विवाह किया ॥ ३२ ॥ यह सवर्णा प्राचीनबर्हिसे
धनुर्विद्या जाननेवाले सम्पूर्ण प्रचेता नामसे प्रसिद्ध दश पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई ॥ ३३ ॥ यह दशों एक धर्मका आचरण करके जलोंमें दश सहस्र
वर्षोंतक घोर तप करने लगे ॥ ३४ ॥ इनके तप करनेपर रक्षित न होकर वृक्षोंसे पृथ्वीको दबा लिया और प्रजा नष्ट हो गई ॥ ३५ ॥

जब चाक्षुष मन्वन्तरमें प्रजा वृक्षोंकी दबाई हुई चेष्टा करनेको न समर्थ हुई, और वृक्षोंने आकाशकोभी आच्छादन कर लिया, तब पवनभी न चल सकी, जब इस प्रकार दश सहस्र वर्षतक प्रजा चेष्टा न कर सकी ॥ ३६ ॥ तब तप करनेवाले प्रचेताओंने यह सुनकर क्रोधित हो मुखसे वायु और अग्नि उत्पन्न की ॥ ३७ ॥ सो वायु उन वृक्षोंको उखाडकर सुखाने लगी, और घोर अग्नि उनको दग्ध करने लगी, जब इस प्रकार वृक्षोंका क्षय हुआ ॥ ३८ ॥ और कुछेक वृक्ष शेष रहे, तब सोम देवता वृक्षोंका नाश देखकर आये और प्रजापतियोसे यह वचन बोले ॥ ३९ ॥ हे प्रजापतियो ! कोपको त्यागो, तुम

नाशकन्मारुतो वातुं वृतं खमभवद् द्रुमैः ॥ दश वर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥ ३६ ॥ तदुपसृत्य तपसा युक्ताः सर्वे प्रचेतसः ॥ मुखेभ्यो वायुमग्निं च तेऽसृजन् जातमन्यवः ॥ ३७ ॥ उन्मूलानथ तान्कृत्वा वृक्षान्वायुरशोषयत् ॥ तानग्निरदहद् घोर एवमासीद् द्रुमक्षयः ॥ ३८ ॥ द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किंचिच्छिष्टेषु शाखिषु ॥ उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रजापतीन् ॥ ३९ ॥ कोपं यच्छत राजानः सर्वे प्राचीनबर्हिषः ॥ वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुतौ ॥ ४० ॥ रत्नभूता च कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी ॥ भविष्यं जानता तत्त्वं धृता गर्भेण वै मया ॥ ४१ ॥ मारिषा नाम कन्येयं वृक्षाणामिति निर्मिता ॥ भार्या वोऽस्तु महाभागा सोमवंशविवर्द्धिनी ॥ ४२ ॥ युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः ॥ अस्यामुत्पत्स्यते पुत्रो दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ ४३ ॥ य इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै ॥ अग्निनाऽग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्द्धयिष्यति ॥ ४४ ॥ ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः ॥ संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीधर्मेण मारिषाम् ॥ ४५ ॥

प्राचीनबर्हि राजाके पुत्र हो, इस कारण पृथ्वीको वृक्षोंसे शून्य मत करो, अग्नि वायुको शान्त करो ॥ ४० ॥ और यह वृक्षोंकी रत्नरूप कन्या तुम धारण करो, यह भविष्यत् जानकर तुम्हारेही निमित्त रक्खी है ॥ ४१ ॥ यह मारिषा नाम वृक्षोंकी कन्या है, हे महाराज ! यह तुम्हारी भार्या हो सोमवंशको बढावेगी ॥ ४२ ॥ और आधे हमारे तेजसे इसमें दक्षप्रजापति जन्म लेगा, इसमें आधा तुम्हारा तेज होगा ॥ ४३ ॥ और तुम्हारी तेजरूप अग्निसे दग्ध हुई इस पृथ्वीको फिर यह अग्नितुल्य तेजस्वी दक्ष बढावेगा ॥ ४४ ॥ तब सोनके वचनसे यह प्रचेता उस कन्याको ग्रहण कर वृक्षोंपर शान्त

॥ ६ ॥

हो पत्नीधर्मसे उसे धारण करते हुए ॥ ४५ ॥ और मनसेही उस मारिषामें गर्भ स्थापन किया; पीछे उन प्रचेताओंसे और सोमके अंशसे महातेजस्वी प्रजापति दक्षने जन्म लिया ॥४६॥ हे राजन् ! इस दक्षने सोमवंशके बढानेहारे चर, अचर, द्विपद, चतुष्पद, पुरुष, स्त्री यह मनसे उत्पन्न किये ॥४७॥ और अपनी कन्याओंमेंसे (१०) दश धर्मको, (१३) तेरह कश्यपको और नक्षत्र नामक सत्ताईस कन्या चन्द्रमाको दीं॥ ४८ ॥ उन्हींसे देवता, पक्षी, गौ, नाग, दितिके दानव, गन्धर्व और अप्सरा दूसरीजातियें उत्पन्न हुईं ॥४९॥ हे राजन् ! उसी समयसे मैथुनी प्रजा उत्पन्न हुई है; इससे पहले

मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः ॥ दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ॥ दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन भारत॥४७॥पुत्रानुत्पादयामास सोमवंशविवर्द्धनान्॥अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः॥स दृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादप्यसृजत् स्त्रियः ॥४७॥ ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ शिष्टाः सोमाय राज्ञेऽथ नक्षत्राऽऽख्या ददौ प्रभुः ॥ ४८ ॥ तासु देवाः खगा नागा गावो दितिजदानवाः ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥ ४९ ॥ ततः प्रभृति राजेन्द्र प्रजा मैथुनसंभवः ॥ संकल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात् पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ॥५०॥ जनमेजय उवाच ॥ देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ संभवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महात्मनः ॥५१॥ अंगुष्ठाद्ब्रह्मणो जातो दक्षः प्रोक्तस्त्वयाऽनघ ॥ वामांगुष्ठात्तथा चैव तस्य पत्नी व्यजायत ॥५२॥ कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लेभे महातपाः ॥ एतन्मे संशयं विप्र सम्यगाख्यातुमर्हसि ॥ दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ॥५३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यौ भूतेषु पार्थिव ॥ ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्वांसश्चैव ये जनाः ॥ ५४ ॥

प्रजाकी उत्पत्ति संकल्प दर्शन और स्पर्शसे होती थी ॥ ५० ॥ जनमेजय बोले हे भगवन् ! देव, दानव, गन्धर्व, उरग और महात्मा दक्षकी उत्पत्ति आपने पहले कही है ॥ ५१ ॥ कि ब्रह्माके दहिने अंगुष्ठसे दक्ष और वामसे उनकी पत्नीकी उत्पत्ति हुई है ॥ ५२ ॥ फिर यह दक्ष महातपस्वी प्रचेताके पुत्र किस प्रकार हुए; यह मेरा संदेह आप दूर करो; और सोमका दौहित्ररूप दक्ष श्वशुर किस प्रकार हुआ ॥५३॥ वैशंपायन बोले; प्राणियोंकी

उत्पत्ति और लय नित है, इस कारण इसकी कथामें विद्वान् और ऋषि मोहित नहीं होते ॥ ५४ ॥ युगयुगमें यह दक्षादि राजा होकर नष्ट हो जाते हैं, इसमें पण्डित मोहित नहीं होते ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! प्रथम बड़ाई छुटाई नहीं थीं, किन्तु तप बडा था; कारण कि प्रभावही महत्वका कारण है ॥५६॥ इस दक्षकी चराचर सृष्टिको जो जानता है, उसकी सन्तति बढती है और वह आपत्तिसे छूटकर अन्तमें स्वर्गको जाता है ॥ ५७ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपुराणे भाषाटीकायां प्रजासर्गे दक्षोत्पत्तिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ छ ॥ जन्मेजय बोले;

युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो नृप ॥ पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ॥ ५५ ॥ ज्येष्ठ्यं कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्वं नासीज्जनाधिप ॥ तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ॥ ५६ ॥ इमां विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात्सचराचराम् ॥ प्रजावानापदुत्तीर्णः स्वर्गलोके महीयते ॥ ५७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि प्रजासर्गे दक्षोत्पत्तिकथने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ जनमेजय उवाच ॥ देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ उत्पत्तिं विस्तरेणेमां वैशम्पायन कीर्तय ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ॥ यथा ससर्ज्ज भूतानि तथा शृणु महीपते ॥ २ ॥ मानसान्येव भूतानि पूर्वमेवासृजत्प्रभुः ॥ ऋषीन्देवान्त्सगन्धर्वानसुरानथ राक्षसान् ॥ यक्षभूतपिशाचांश्च वयःपशुसरीसृपान् ॥ ३ ॥ यदास्य तास्तु मानस्यो न व्यवर्धन्त वै प्रजाः ॥ अपध्याता भगवता महादेवेन धीमता ॥ ४ ॥ ततः संचिन्त्य तु पुनः प्रजाहेतोः प्रजापतिः ॥ स मैथुनेन धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! देव,दानव, गंधर्व, उरगोंकी उत्पत्ति विस्तारसे कहो ॥ १ ॥ वैशंपायन बोले;हे राजन्! जब ब्रह्माने दक्षको प्रजा रचनेकी आज्ञा दी,तब दक्षने जिस प्रकार प्राणियोंकी रचना की सो आप सुनिये ॥ २ ॥ आदिमें दक्ष मनसे प्राणियोंको रचने लगे; फिर देव, ऋषि, गन्धर्व, असुर, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच, पक्षी, पशु, सर्प इन सबकी मनसे रचना की ॥३॥ जब इनकी मानसी प्रजा न बढी, तब इन्होंने पूर्वमें किये महादेवके निरादरका फल विचार ॥४॥ प्रजाके निमित्त चिन्ता करके मैथुन धर्मसे प्रजा बढानेके निमित्त विचार करने लगे ॥ ५ ॥

और तपसे युक्त परम सती लोकोंकी धारण करनेहारी वीरण प्रजापतिकी असिक्की नाम कन्यासे विवाह करके ॥६॥उस असिक्कीमें दक्ष प्रजापतिने पांच सहस्र महाबली पुत्र उत्पन्न किये ॥ ७ ॥ उन महाभाग्यवान पुत्रोंको प्रजा बढानेकी इच्छामें देखकर देवर्षि नारदजीने उनसे यह प्रिय संवाद कहा; वह संवाद नारदजीने उनके नाश और अपने शापकेही कारण कहा ॥ ८ ॥ नारदजीका जन्म परमेष्ठी कश्यपसे हुआ है, सो दक्षके शापके भयसे वही मुनि ॥ ९ ॥ परमेष्ठीसे उत्पन्न हुए थे, उनही देवर्षिश्रेष्ठको वीरणकी असिक्कीने फिर उत्पन्न किया; इस प्रकार उन महामुनिको कश्यपने पिताके

असिक्कीमावहत्पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः ॥ सुतां सुतपसा युक्तां महतीं लोकधारिणीम् ॥ ६ ॥ अथ पुत्रसहस्राणि वीरण्यां पञ्च वीर्यवान् ॥ असिक्न्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः ॥ ७ ॥ तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान् संविवर्द्धयिषून्प्रजाः॥ देवर्षिः प्रियसंवादो नारदः प्राब्रवीदिदम् ॥ नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा ॥ ८ ॥ यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत् ॥ दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥ ९ ॥ पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमोष्ठिना ॥ असिक्न्यामथ वीरण्यां भूयो देवर्षिसत्तमः ॥ तं भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम् ॥१०॥ तेन दक्षस्य पुत्रा वै हर्यश्वा इति विश्रुताः ॥ निर्मथ्य नाशिताः सर्वे विधिना च न संशयः ॥ ११ ॥ तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायाप्रितविक्रमः॥ महर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना ॥ १२ ॥ ततोऽभिसन्धि चक्रुस्ते दक्षस्तु परमेष्ठिना ॥ कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति ॥ १३ ॥ ततो दक्षस्तु तां प्रादात् कन्यां वै परमेष्ठिने ॥ स तस्यां नारदो जज्ञे दक्षशापभयादृषिः ॥ १४ ॥

समान उत्पन्न किया ॥१०॥ इन नारदजीने दक्षके विख्यात हर्यश्व नाम पुत्रोंको ज्ञान सिखाकर नष्ट कर दिया ॥ ११ ॥ तब दक्ष महापराक्रमी नारदके मारनेका उद्योग करने लगे, तब ब्रह्माजीने ब्रह्मर्षियोंके साथ दक्षसे अनुनय की ॥ १२ ॥ तब ब्रह्माजीके साथ सम्मति कर दक्षने कहा; हे महाराज ! यदि यह तुम्हारा पुत्र नारद मेरी कन्यामें जन्म ले तो मैं मानूंगा ॥ १३ ॥ यह कहकर दक्षने अपनी कन्या ब्रह्माको दी, और दक्षके

शापके डरसे उसमें देवर्षि नारदने जन्म लिया ॥ १४ ॥ जन्मेजय बोले–हे भगवन् ! प्रजापतिके वे पुत्र महर्षि नारदने किस प्रकार नष्ट कर दिये, उसका तत्व जाननेकी मुझे इच्छा है ॥ १५ ॥ वैशंपायन बोले–हे राजन् ! महावीर्य प्रजा रचनेकी इच्छावाले दक्षके पुत्र हर्यश्वोंके निकट जाकर नारद मुनि इस प्रकार बोले ॥ १६ ॥ हे दक्षपुत्रो ! तुम मूर्ख हो, कारण कि इस पृथ्वीका प्रमाण जाने विना तुम प्रजा रचनेकी इच्छा करते हो, पृथ्वीका ऊपर नीचेका प्रमाण जाने विना कैसे प्रजा रच सकते हो ॥ १७ ॥ वे सम्पूर्ण नारदके यह वचन सुन पृथ्वीका

जनमेजय उवाच ॥ कथं विनाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा ॥ प्रजापतेर्द्विजश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ दक्षस्य पुत्रा हर्यश्वा विवर्द्धयिषवः प्रजाः ॥ समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥ १६ ॥ बालिशा बत यूयं वै नास्या जानीथ वै भुवः ॥ प्रमाणं स्रष्टुकामाः स्थ प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ॥ अन्तरूर्ध्वमधश्चैव कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ॥ १७ ॥ ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् ॥ प्रमाणं द्रष्टुकामास्ते गताः प्राचेतसात्मजाः ॥ १८ ॥ वायोरनशनं प्राप्य गतास्ते वै परा-भवम् ॥ अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥ १९ ॥ हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः ॥ वैरिण्यामेव पुत्राणां सह-स्रमसृजत्प्रभुः ॥ २० ॥ विवर्द्धयिषवस्ते तु शबलाश्वाः प्रजास्तदा ॥ पूर्वोक्तं वचनं तात नारदेनैव नोदिताः ॥ २१ ॥ अन्योऽन्य-मूचुस्ते सर्वे सम्यगाह महामुनिः ॥ भ्रातृणां पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः ॥ २२ ॥ ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः ॥ एकाग्राः स्वस्थमनसा यथावदनुपूर्वशः ॥ २३ ॥

प्रमाण जाननेको दिशाओंमें चले गये ॥ १८ ॥ और गौतमशास्त्रसे परब्रह्मको प्राप्त हो आजतक नहीं लौटे; जैसे सागरमें जाकर नदी नहीं लौटतीं ॥ १९ ॥ जब हर्यश्व नष्ट हुए तब प्रचेतापुत्र दक्षप्रजापतिने वैरिणी स्त्रीमें सहस्र पुत्र उत्पन्न किये ॥ २० ॥ प्रजा बढानेकी इच्छावाले शबलाश्व नाम उन पुत्रोंकोभी नारदजीने पूर्वोक्त वचनोंसे मोहित किया ॥ २१ ॥ वे नारदजीके वचन सुन परस्पर कहने लगे कि नारदजी सत्य कहते हैं, इस कारण भाइयोंकी पदवीको जाना उचितही है, इसमें संदेह नहीं ॥ २२ ॥ पृथ्वीका प्रमाण जानकर सुखपूर्वक प्रजा

रचेंगे,इस प्रकार वे सब एकाग्र चित्त और स्वस्थ मनसे यथावत् विचार कर॥२३॥उसी मार्गमें सम्पूर्ण दिशाओंको चले गये;हे राजन् ! जिस प्रकार समुद्रमें गई नदी नहीं लौटती, इस प्रकार वे आजतक नहीं लौटे ॥२४॥ जब शबलाश्व नष्ट हो गये, तब दक्ष क्रोधकर बोले; हे नारद ! तुम नाशको प्राप्त होकर गर्भवास करो॥२५॥वैशंपायन बोले; हे राजन् ! उस दिनसे भ्राताको भ्राता ढूंढने नहीं जाते और जांय तो नाशको प्राप्त होते हैं, इससे बुद्धिमान् ऐसा न करे ॥ २६ ॥ इसप्रकार पुत्र नष्ट होनेपर दक्षने वीरणी स्त्रीमें साठ कन्या उत्पन्न की ऐसा सुना है ॥२७॥ हे राजन् ! उनमें कुछ

तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतोदिशम् ॥ अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥ २४ ॥ नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्षः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ नारदं नाशमेहीति गर्भवासं वसेति च ॥२५॥ तदाप्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे नृप ॥ प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्यं विपश्चिता ॥ २६ ॥ तांश्चापि नष्टान्विज्ञाय पुत्रान्दक्षः प्रजापतिः ॥ षष्टिं भूयोऽसृजत्कन्या वीरण्यामिति नः श्रुतम् ॥ २७ ॥ तास्तदा प्रतिजग्राह भार्यार्थं कश्यपः प्रभुः ॥ सोमो धर्मश्च कौरव्य तथैवान्ये महर्षयः ॥२८॥ ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ सप्तविंशतिं सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥२९॥ द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ॥ द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥३०॥ अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती ॥ संकल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भारत ॥ धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि मे शृणु ॥ ३१ ॥ विश्वेदेवाश्च विश्वायाः साध्यान् साध्या व्यजायत ॥ मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥ ३२ ॥ भानोस्तु भानवस्तात मुहूर्ताया मुहूर्त्तजाः ॥ ३३ ॥

कश्यपको, कुछ सोमको, कुछ धर्म और महर्षियोंको प्रदान कर दीं ॥२८॥ दक्षने दश कन्या धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको ॥२९॥ दो भृगुपुत्रको, दो अंगिराको, दो बुद्धिमान्कृशाश्वको दीं; हे राजन् ! उन कन्याओंके नाम सुनो ॥३०॥ अरुंधति, वसु, यामी,लंबा,भानु, मरुत्वती; संकल्पा, मुहूर्ता,साध्या,विश्वा यह दश धर्मकी स्त्री हुईं; हे राजन् ! अब इनकी सन्ततिको सुनो ॥ ३१ ॥ विश्वासे विश्वेदेवा, साध्यासे साध्य, मरुत्वतीसे मरुत्वान्, वसुसे वसु ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! भानुसे भानव और मुहूर्तासे मुहूर्त हुए ॥३३॥

लंबासे घोष, यामीसे नागवीथी और पृथ्वीके सम्पूर्ण विषय अरुन्धतीसेउत्पन्न हुए ॥३४॥ संकल्पासे सब संकल्प, नागवीथी जामिनीकी पुत्रीसे वृषल हुआ ॥३५॥ हे राजन् ! जो प्रचेताके पुत्रने सोमको कन्या दी थीं; उन सबके नक्षत्र नाम थे. जो अश्विनी आदि ज्योतिषमें प्रसिद्ध हैं ॥३६॥ और जो दूसरे ज्योति पुरोगमादि देवता विख्यात हैं; वे ही आठ वसु कहाते हैं. उनका विस्तार कहते हैं ॥ ३७ ॥ आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास यह वसुओंके आठ नाम हैं॥ ३८॥ आपके पुत्र वैतंडय, श्रम, शांत और मुनि हुए. ध्रुवके पुत्र लोकको कलना करनेहारे भगवान्

लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी च यामिजा॥ पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत ॥३४॥ संकल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे संकल्प एव हि॥ नागवीथ्याश्च जामिन्या वृषलम्बा व्यजायत॥३५॥ या राजन्सोमपत्न्यस्तु दक्षः प्राचेतसो ददौ ॥ सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्तिताः ॥ ३६ ॥ ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिः पुरोगमाः ॥ वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥३७॥ आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलानलौ ॥ प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥ ३८ ॥ आपस्य पुत्रो वैतण्डचः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा ॥ ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालनः ॥३९॥ सोमस्य भगवान्वर्चा वर्चस्वी येन जायते ॥ धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ॥ मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥४०॥ अनिलस्य शिवाभार्या यस्याः पुत्रो मनोजवः ॥ अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥४१॥ अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रियान्वितः ॥ तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥ ४२ ॥ अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ॥ स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः ॥ ४३ ॥

काल हुए ॥३९॥ सोमके भगवान् वर्चा हुए, जिससे प्राणी वर्चस्वी (तेजमान्) होते हैं. धरके पुत्र द्रविण, हुतहव्यवह हुए. मनोहराके शिशिर, प्राण और रमण हुए ॥४०॥ अनिलकी शिवा भार्यामें मनोजव और अविज्ञातगति दो पुत्र हुए ॥४१॥ अग्निका पुत्र कुमार शरकण्डेमें हुआ, और इनसे छोटे शाख, विशाख और नैगमेय हुए ॥ ४२ ॥ कृत्तिकाओंके सन्तान होनेसे यही कुमार कार्तिकेय कहाये. स्कंद और सनत्कुमारको

अग्निने अपने चौथाई तेजसे रचा है ॥ ४३ ॥ प्रत्यूषके पुत्र ऋषि देवल नाम हुए, और देवलके क्षमा और तपसे युक्त दो पुत्र हुए ॥ ४४ ॥ जो बृहस्पतिकी भगिनी श्रेष्ठ स्त्री थी, वह ब्रह्मचारिणी योगसे सिद्ध हो आसक्तिरहित सब जगत्में विचरती थी ॥४५॥ यही आठवें वसु प्रभासकी भार्या हुई, जिसमें महाभाग प्रजापति विश्वकर्माने जन्म लिया॥४६॥यही विश्वकर्मा सहस्त्रों शिल्पोंके करनेवाले,देवताओंके कारीगर, सम्पूर्ण भूषणोंके निर्माता, कारीगरोंमें श्रेष्ठ हुए ॥ ४७ ॥ इन्हींने सम्पूर्ण देवताओंके विमान बनाये. जिन महात्माकी कारीगरीसे मनुष्य आजीविका करते हैं ॥४८॥

प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्ना च देवलम् ॥ द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ तपस्विनौ ॥ ४४ ॥ बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी ॥ योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता विचचार ह ॥ ४५ ॥ प्रभासस्य च सा भार्या वसूनामष्टमस्य च ॥ विश्वकर्मा महाभागस्तस्यां जज्ञे प्रजापतिः ॥४६॥ कर्त्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वार्द्धकिः ॥ भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः ॥ ४७ ॥ यः सर्वासां विमानानि देवतानां चकार ह ॥ मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः ॥ ४८ ॥ सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादश विनिर्ममे ॥ महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ॥ ४९ ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्राश्च भारत ॥ त्वष्टुश्चैवात्मजः श्रीमान् विश्वरूपो महायशाः ॥५०॥ हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ॥ वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥ ५१ ॥ मृगव्याधश्च सर्पश्च कपाली च विशांपते ॥ एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ ५२ ॥ शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम् ॥ पुराणे भरतश्रेष्ठ यैर्व्याप्ताः सचराचराः ॥ ५३ ॥

सुरभीने कश्यपसे ग्यारह रुद्रोंको उत्पन्न किया यह सुरभी महादेवजीकी प्रसन्नतासे तपसे सिद्ध हुई थी ॥ ४९ ॥ अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा और रुद्र उससे प्रगट हुए; हे राजन् ! त्वष्टाके महायशस्वी श्रीमान् विश्वरूप पुत्र हुआ ॥ ५० ॥ हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शंभु, कपर्दी, रैवत ॥५१॥ हे राजन् ! मृगव्याध, सर्प, कपाली यह ग्यारह रुद्र त्रिभुवनके ईश्वर हैं ॥ ५२ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! पुराणोंमें यह महातेजस्वी सौ

रुद्र कहाते हैं. इनसे चर अचर लोक व्याप्त हो रहा है ॥५३॥ हे भरतशार्दूल राजन् ! अब कश्यपकी संतान सुनो अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खशा ॥५४॥ सुरभी, विनता, ताम्रा,क्रोधवशा, इरा,कद्रू, मुनि यह कश्यपकी स्त्री थीं; हे राजन् ! अब इनकी संतान सुनो ॥५५॥ पूर्व वैवस्वत मन्वन्तरमें तुषिता नाम बारह देवता परस्पर कहने लगे ॥५६॥ पूर्व मन्वन्तरके चाक्षुषके अन्तमें सब जीवोंके हितके निमित्त मिलकर वे बोले ॥५७॥ हे देवताओ ! शीघ्र आओ हम अदितिमें प्रवेश कर वैवस्वत मन्वन्तरमें उत्पन्न हों,इसमें हमारा मंगल होगा॥५८॥ वैशंपायन बोले;इस प्रकार वे सब

लोका भरतशार्दूल कश्यपस्य निबोध मे ॥ अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खशा ॥ ५४ ॥ सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा ॥ कद्रुर्मुनिश्च राजेन्द्र तास्वपत्यानि मे शृणु ॥ ५५ ॥ पूर्वंमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन्सुरोत्तमाः ॥ तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥ ५६ ॥ उपस्थितेऽतियशसि चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ॥ हितार्थं सर्वसत्त्वानां समागम्य परस्परम् ॥ ५७ ॥ आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं संप्रविश्य वै ॥ मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्न श्रेयो भविष्यति ॥ ५८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ॥ मारीचात्कश्यपाज्जातस्तेऽदित्या दक्षकन्यया ॥५९॥ तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि ॥ अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा च भारत ॥६०॥ विवस्वान्सविता चैव मित्रो वरुण एव च ॥ अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥६१॥ चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासन्ये तुषिताः सुराः ॥ वैवस्वतेऽन्तरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ ६२ ॥ सप्तविंशति याः प्रोक्ता सोमपत्न्योऽथ सुव्रताः ॥ तासामपत्यान्यभवन्दीप्तान्यमिततेजसाम् ॥ ६३ ॥

कहकर चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें मरीचिके पुत्र कश्यपसे दक्षकी कन्या अदितिमें उत्पन्न हुए ॥५९॥उसीमें विष्णु और इन्द्रने भी जन्म लिया. हे राजन् ! अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा॥६०॥विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंश,अतितेजस्वी भग ये बारह आदित्य उत्पन्न हुए॥६१॥चाक्षुष मन्वन्तरमें जो पहले तुषित हुए थे, वेही वैवस्वत मन्वन्तरमें बारह आदित्य कहलाते हैं ॥ ६२ ॥ और जो महाव्रता (२७) सत्ताईस चन्द्रमाकी स्त्री थीं,

उनके प्रकाशमान् दीप्ति सन्तान हुई ॥६३॥ अरिष्टनेमिकी स्त्रियोंके सोलह सन्तान हुई और बहुपुत्र विद्वान्के चार तडित हुई ॥ ६४ ॥ ब्रह्मर्षियोंसे सत्कार की हुई प्रत्यंगिरा ऋषिके ऋचा हुई, कृशाश्व राजर्षिके देवप्रहरण पुत्र हुए ॥ ६५ ॥ यह सम्पूर्ण युगसहस्रके अन्तमें वारंवार जन्म लेते हैं, उनमें तेतीस देवता कामसे उत्पन्न हुए हैं. "सोकामयत बहुस्यां प्रजायेये" ति श्रुतेः । यह ईश्वरकी कामनासे उत्पन्न हुए हैं ॥६६॥हे राजन् ! वेद इनकी निरोध और उत्पत्ति कहता है ॥ ६७ ॥ जैसे यहां आकाशमें सूर्यका उदय और अस्त होता है, इसी प्रकारसे यह सम्पूर्ण देवता युगयुगमें जन्म लेते हैं ॥६८॥

अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ॥ बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥ ६४ ॥ प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठाः ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः ॥ कृशाश्वस्य तु राजर्षेर्देवप्रहरणानि च ॥ ६५ ॥ एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव ह ॥ सर्वदेव गणास्तात त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः ॥ ६६ ॥ तेषामपि च राजेन्द्र निरोधोत्पत्तिरुच्यते ॥ ६७ ॥ यथा सूर्यस्य गगने उदयास्तमने इह ॥ एवं देवनिकायास्ते संभवन्ति युगे युगे ॥ ६८ ॥ दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् ॥ ६९ ॥ सिंहिका चाभवत्कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ॥ सैंहिकेयो इति ख्यातास्तस्याः पुत्रा महाबलाः ॥ गणैश्च सह राजेन्द्र दशसाहस्रमुच्यते ॥७०॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ असंख्याता महाबाहो हिरण्यकशिपोः शृणु ॥७१॥ हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ॥ अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् ॥७२॥ संह्लादश्च चतुर्थोऽभूत् ह्रदपुत्रो ह्रदस्तथा ॥ संह्लादपुत्रःसुन्दश्च निसुन्दस्तावुभौस्मृतौ॥७३॥अनुह्लादसुतौ ह्यायुःशिबिकालस्तथैवच॥विरोचनश्च प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात्७४॥

हे राजन् ! और भी कश्यपसे दितिके दो पुत्र हिरण्याक्ष और वीर्यवान् हिरण्यकश्यप हुए यह सुना है ॥ ६९ ॥ और एक कन्या सिंहिका हुई, जो विप्रचित्तिको व्याही गई. हे राजन् ! उसके पुत्र महाबली सैंहिकेय गणोंसहित दशसहस्र कहे जाते हैं॥७०॥हे राजन् ! तिनके पुत्र और पौत्र सहस्रों कहे जाते हैं, जिनकी संख्या नहीं है. हे महाबाहो ! अब हिरण्यकश्यपका वंश सुनो॥७१॥विख्यात वीर्यवान् हिरण्यकश्यपके चार पुत्र हुए अनुन्हाद,ह्राद,प्रन्हाद॥७२॥ और चौथा संन्हाद हुआ. संन्हादका पुत्र ह्रद हुआ, संन्हादके दो पुत्र सुंदऔर निसुंद हुए॥७३॥अनुन्हादके पुत्र आयु, शिविकाल हुए. और प्रह्लादका

पुत्र विरोचन और उसके राजा बलि हुए ॥ ७४ ॥ हे राजन्! बलिके सौ पुत्र हुए, तिनमें बाणासुर बड़ा था; धृतराष्ट्र, सूर्य, चंद्रमा, इन्द्रतापन ॥७५॥ कुंभनाभ, गर्दभाक्ष कुक्षि इन्होंसे आदि लेकर उत्पन्न हुए, उनमें महाबली बडा बाणासुर महादेवजीको अति प्रिय हुआ ॥ ७६ ॥ जिस बाणासुरने प्रथम कल्पमें महादेवजीको प्रसन्न कर यह वरदान मांगा कि, तुम सम्पूर्ण कालमें मेरे निकट रहो ॥ ७७ ॥ हे राजन्! तिस बाणासुरके लोहिती भार्या इन्द्रदमन हुआ; और सौ हजार राक्षसोंके समूह हुए ॥ ७८ ॥ और हिरण्याक्षके बडे बलवाले ज्ञानी पांच पुत्र झर्झर, शकुनि, भूतसंता-

बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं नराधिप ॥ धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चन्द्रतापनः ॥ ७५ ॥ कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः ॥ बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥७६॥ पुराकल्पे हि बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम् ॥ पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं याचितो वरः ॥७७॥ बाणस्य चेन्द्रदमनो लोहित्यामुदपद्यत ॥ गणास्तथासुरा राजञ्छतसाहस्रसंमिताः ॥७८॥ हिरण्याक्षसुताः पञ्च विद्वांसः सुमहाबलाः ॥ झर्झरः शकुनिश्चैव भूतसंतापनस्तथा ॥ ७९ ॥ महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च अभवन्दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः ॥ तपस्विना महावीर्याः प्राधान्येन निबोध तान् ॥८०॥ द्विमूर्द्धा शकुनिश्चैव तथा शंकुशिरा विभुः॥शंकुकर्णो विराधश्च गवेष्ठी दुन्दुभिस्तथा ॥ अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा ॥ ८१ ॥ मरीचिर्मघवांश्चैव इरा शंकुशिरा वृकः ॥ विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतह्रदौ ॥८२॥ इन्द्रजित्सत्यजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ॥ महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च ॥ ८३ ॥ एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः ॥ वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहासुरौ ॥ ८४ ॥

॥ ११ ॥

पन ॥७९॥ महानाभ, विक्रांत, कालनाभ ये और हे राजन्! तपस्वी, बहुत पराक्रमवाले, महावीर्यवान् सौ पुत्र दनुके जन्मे; तिनमेंसे मुख्य मुख्य कहते हैं, सुनो ॥ ८० ॥ द्विमूर्द्धा, शकुनि, शंकुशिरा, विभु, शंकुकर्ण, विरोध, गवेष्ठी दुंदुभि, अयोमुख, शंबर, कपिल, वामन ॥८१॥ मरीचि, मघवान्, इरा, शकुंशिरा, वृक, विक्षोभण केतु, केतुवीर्य शतह्रद॥८२॥इन्द्रजित्, सत्यजित्, वज्रनाभ, महानाभ, विक्रांत, कालनाभ॥८३॥एकचक्र, महाबाहु, तारक,

वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महासुर॥८४॥स्वर्भानु, वृषपर्वा, तुहुंड,सूक्ष्म, अनिचंद्र, ऊर्णनाभ, महागिरि॥८५॥ असिलोमा, केशी, शठ, बलक, मद, गगनमूर्द्धा, कुंभनाभ ॥८६॥ प्रमद, मय, कुपथ, हयग्रीव, वैसृप, विरूपाक्ष, सुपथ, हर, अहर ॥८७॥ हिरण्यकशिपु, शतमायु, शंबर, शरभ, शलभ, बलवान् विप्रचित्ति॥८८॥ये बड़े वीर्यवान् दनुके पुत्र सम्पूर्ण कश्यपसे उत्पन्न हुए. विप्रचित्ति प्रधान वे महाबलवान् दानव हुए॥८९॥हे राजन् ! जो इनकी संतान पुत्र पौत्र हैं;तिनकी संख्या करनेको मैं समर्थ नहीं॥९०॥स्वर्भानुके प्रभा नाम कन्या हुई;पुलोमाके उपदानवी तीन कन्या हुई.हयशिरा,

स्वर्भानुर्वृषपर्वा च तुहुण्डश्च महासुरः ॥ सूक्ष्मश्चैवानिचन्द्रश्च ऊर्णनाभो महागिरिः॥८५॥ असिलोमा च केशी च शठश्च बलको मदः ॥ तथा गगनमूर्द्धा च कुम्भनाभो महासुरः ॥८६॥ प्रमदो मयश्च कुपथो हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥ वैसृपःसविरूपाक्षःसुपथोऽथ हराहरौ ॥ ८७ ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव शतमायुश्च शम्बरः ॥ शरभःशलभश्चैव विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ॥८८॥ एते सर्वे दनोःपुत्राः कश्यपादभिजज्ञिरे॥विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाःसुमहाबलाः॥८९॥ एतेषां यदपत्यं तु तन्न शक्यं नराधिप ॥ प्रसंख्यातुं महीपाल पुत्रपौत्राद्यनन्तकम् ॥ ९० ॥ स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नश्च सुतात्रयम् ॥ उपदानवी हयशिराःशर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥९१॥ पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे॥बह्वपत्ये महावीर्ये मारीचेस्तु परिग्रहः ॥९२॥ तयोःपुत्रसहस्राणि षष्टिं दानवनन्दनान् ॥ चतुर्दश शतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः ॥ ९३ ॥ मारीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः ॥ पौलोमाः कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः ॥ ९४ ॥ अवध्या देवतानां च हिरण्यपुरवासिनः ॥ कृताः पितामहेनाजौ निहताः सव्यसाचिना ॥ ९५ ॥

शर्मिष्ठा, वार्षपर्वणी॥९१॥और वैश्वानरके पुलोमा,कालिका दो पुत्री हुई,इन दोनोंको मरीचिके पुत्र कश्यपने व्याहा ॥९२॥ तिन दोनोंमें साठ हजार दानवोंको उत्पन्न किया;और चौदह सौ दानवोंको कालीसे प्रगट किया. यह हिरण्यपुरके रहनेवाले थे॥९३॥मरीचिने बडेतपसे युक्त पौलोम और कालकेय बलवान् दानव उत्पन्न किये॥९४॥हे राजन् ! हिरण्यपुरवासी दानव ब्रह्माका तप करके देवताओंसे अवध्य हो गये, पीछे अर्जुनने इनको मारा ॥९५॥

हे राजन् ! प्रभासे नहुष हुआ; और शचीसे संजय, शर्मिष्ठाने पुरुको उत्पन्न किया; और उपदानवीने दुष्यंतको ॥९६॥ तिसके अनंतर सिंहिकाके पुत्र विप्रचित्तिसे बड़े वीर्यवाले, अतिदारुण॥९७॥दैत्य-दानवके संयोगसे महापराक्रमी सैंहिकेय नामसे विख्यात तेरह पुत्र हुए॥९८॥ व्यंश, शल्य, महाबली नभ, वातापी, नमुचि, इल्वल, खसृम ॥९९॥ आंजिक,नरक, कालनाभ, शुक, पोतरण, वज्रनाभ ॥१००॥ राहु इनमें चंद्रमा-सूर्यको मर्दन करनेवाला सबसे बडा था; मूक तुहुंड ये दोनों ह्रादके पुत्र हुए ॥१०१॥ और सुंदका पुत्र मारीच ताडकामें जन्मा,शिवमाण और सुरकल्प महा

प्रभाया नहुषःपुत्रः सृञ्जयश्च शचीसुतः॥पुरुं जज्ञेऽथ शर्मिष्ठा दुष्यन्तमुपदानवी॥९६॥ततोऽपरे महावीर्या दानवास्त्वतिदारुणाः ॥ सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तदा ॥ ९७ ॥ दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः ॥ सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः ॥९८॥व्यंशः शल्यश्च बलिनौ नभश्चैव महाबलः॥वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा ॥९९॥ आञ्जिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥ शुकः पोतरणश्चैव वज्रनाभश्च वीर्यवान् ॥ १०० ॥ राहुर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै सूर्यचन्द्रविमर्दनः ॥ मूकश्चैव तुहुण्डश्च ह्रादपुत्रौ बभूवतुः ॥ १ ॥ मारीचः सुन्दपुत्रश्च ताटकायां व्यजायत ॥ शिवमाणस्तथा चैव सुरकल्पश्च वीर्यवान् ॥२॥ एते वै दानवाः श्रेष्ठा दनुवंशविवर्द्धनाः ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥३॥ संह्रादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले॥ समुत्पन्नाः सुतपसा महान्तो भावितात्मनः ॥ ४ ॥ तिस्रःकोटयःसुतास्तेषां मणिमत्यां निवासिनाम् ॥ तेऽप्यवध्यास्तु देवानामर्जुनेन निपातिताः ॥५॥ षट् सुताः सुमहासत्त्वास्ताम्रायाःपरिकीर्तिताः॥ काकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचि गृध्रिका ॥६॥

पराक्रमी हुआ॥१०२॥ यह संपूर्ण दानव दनुके वंशको बढ़ाने लगे, और तिन्होंके पुत्र और पौत्र सेकडों हजारों हुए ॥१०३॥ और संह्राद दैत्यके कुलमें निवातकवच संज्ञक बड़े तपस्वी हुए॥१०४॥यह तीन करोड़ पुत्र मणिमतीमें रहने लगे; सोभी स्वर्गनिवासी देवताओंसे अव ध्य हुए. पश्चात इन संपूर्णको अर्जुनने मारा ॥१०५॥ और बड़े पराक्रमवाली छः कन्या काकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि, गृध्रिका ये ताम्रासे उत्पन्न हुई ॥१०६॥

तिन्होंमें काकीने काकोंको उत्पन्न किया; और उलूकीने उल्लूओंको, श्येनीनेशिकरोंको, भासीने भासपक्षियोंको, गृध्रिकाने गिद्धोंको ॥१०७॥ शुचीने जल-जीव और पक्षियोंको हे राजन् ! सुग्रीवीने अश्व और गर्दभोंको उत्पन्न किया, ऐसे यह ताम्राका वंश कहा है॥१०८॥ हे राजन् ! विनताके अरुण और गरुड़ दो पुत्र हुए; यह गरुड़ सुन्दर श्रेष्ठ पंखोंवाला पक्षियोंमें श्रेष्ठ अपने कर्मसे कठिन हुआ॥१०९॥ और अपरिमित पराक्रमी एक सहस्र सर्प सुरसाके हुए; हे राजन् ! ये सर्प अनेक शिरवाले आकाशचारी हुए॥११०॥ और कद्रूके बड़े बलवाले सहस्र पुत्र हुए; और ये संपूर्ण अनेक शिरवाले नाग गरुड़के वश

काकी काकानजनयदुलूकी प्रत्यलूककान्॥श्येनीश्येनांस्तथा भासी भासान् गृध्रांश्च गृध्र्यपि॥७॥ शुचिरौदकान् पक्षिगणान्सुग्रीवी तु परंतप ॥ अश्वानुष्ट्रान् गर्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्तितः ॥८॥ विनतायास्तु पुत्रौ द्वावरुणो गरुडस्तथा ॥ सुपर्णः पततां श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्मणा ॥९॥ सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणाममितौजसाम् ॥ अनेकशिरसां तात खेचराणां महात्मना ॥ ११० ॥ काद्रवेयाश्च बलिनः सहस्रममितौजसः॥ सुपर्णवशगा नागा जज्ञिरेऽनेकमस्तकाः ॥११॥तेषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः ॥ ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ ॥१२॥एलापत्रस्तथा शङ्खः कर्कोटकधनंजयौ॥ महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रबलाहकौ॥१३॥ कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा ॥ शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो वामनस्तथा॥१४॥ नहुषः शंखरोमा च मणिरित्येवमादयः ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च गरुडेन निपातिताः॥१५॥चतुर्दश सहस्राणि क्रूराणामुरगाशिनाम् ॥ गणं क्रोधवशं विद्धि तस्य सर्वे च दंष्ट्रिणः ॥१६॥ स्थलजाः पक्षिणोऽब्जाश्च धरायाः प्रसवाः स्मृताः ॥ गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिषांस्तथा ॥१७॥

हुए ॥१११॥ और शेष, वासुकि, तक्षक इन्होंमें प्रधान हुए; तथा ऐरावत, महापद्म, कंबल, अश्वतर ॥ ११२ ॥ एलापत्र, शंख, कर्कोटक, धनंजय, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक ॥११३॥ कुहर, पुष्पदंत, दुर्मुख, सुमुख, शंख, शंखपाल, कपिल, वामन ॥११४॥ नहुष, शंखरोमा, मणि इनसे आदि लेकर बहुत नाग हुए. और तिनके क्रूर चौदह सहस्र पुत्र पौत्रोंको गरुडने मारडाला ॥ ११५ ॥ नहीं तौ बहुत बढ़ जाते, चौदह सहस्र क्रूर सर्पोंके गण महाक्रोधी हैं, और ये सब दाढ़वाले हैं॥११६॥जल-स्थलके जीव और पक्षी धराके उत्पन्न हुए, और सुरभि गाय भैंसोंको उत्पन्न करती

हुई॥११७॥और वृक्ष, वेल सम्पूर्ण स्थाणु जातिको इराने उत्पन्न किया, और यक्ष, रक्ष, मुनि, अप्सराओंको खशने उत्पन्न किया ॥ ११८ ॥ और बडे पराक्रमी गंधर्वोंको अरिष्टाने उत्पन्न किया; हे राजन् ! यह स्थावर जंगम कश्यपके वंशमें कहे हैं ॥११९॥ तिन्होंके पुत्र पौत्र सैकड़ों हजारों हुए; हे राजन् ! यह सृष्टि स्वारोचिष मन्वंतरमें वर्णन की है ॥१२०॥ और वैवस्वत मन्वन्तरमें विस्तृत वरुणके यज्ञमें आहुति देते हुए ब्रह्माकी सृष्टि कही है॥१२१॥पहले जो सात ब्रह्मर्षि ब्रह्माके मनसे हुए; ब्रह्माने उनकी पुत्रभावमें कल्पना की॥१२२॥पीछे हे राजन् ! देवता और दैत्योंका विरोध हुआ,

इरा वृक्षलता वल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः ॥ खशा तु यक्षरक्षांसि मुनीनप्सरसस्तथा ॥१८॥ अरिष्टा तु महासत्त्वान् गन्धर्वानमितौजसः ॥ एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः ॥१९॥ तेषां पुत्राश्चपौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ एष मन्वन्तरे तात सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः ॥१२०॥ वैवस्वते तु महति वारुणे वितते क्रतौ ॥ जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते ॥२१॥ पूर्वं यत्र तु ब्रह्मर्षीनुत्पन्नान्सप्त मानसान् ॥ पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः ॥ २२ ॥ ततो विरोधे देवानां दानवानां च भारत ॥ दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ॥ २३ ॥ तां कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ॥ वरेण छन्दयामास सा च वव्रे वरं ततः ॥ २४ ॥ पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥ स च तस्यै वरं प्रादात् प्रार्थितं सुमहातपाः ॥ २५ ॥ दत्त्वा च वरमव्यग्रो मारीचस्तामभाषत ॥ भविष्यति सुतस्तेऽयं यद्येवं धारयिष्यसि ॥ २६ ॥ इन्द्रं सुतो निहन्ता ते गर्भं वै शरदां शतम् ॥ यदि धारयसे शौचं तत्परा व्रतमास्थिता ॥ २७ ॥

तब दितिके संपूर्ण पुत्र नष्ट हुए, तब यह दिति दुःखित हो कश्यपजीकी पूजा करने लगी॥१२३॥तब प्रसन्नात्मा कश्यपजी उसके तपसे संतुष्ट हो उसको वरसे लुभाने लगे. तब उसने वर मांगा ॥१२४॥ मुझे बड़ा पराक्रमी समर्थ इन्द्रको मारनेवाला पुत्र दो,तब उन महातपस्वीने यह वर दिया॥१२५॥पश्चात् वर देके व्यग्रचित्त हो कश्यपजी दितिसे कहने लगे; हे प्रिये ! जो इस व्रतको शुद्ध होकर तू धारण करेगी तौ तेरा पुत्र इन्द्रको मारेगा और सौ वर्ष गर्भ धारण करना होगा ॥१२६॥ फिरभी महाप्रतापी कश्यपजीने कहा कि जो तू पवित्र होकर व्रतको धारण करेगी तौ अवश्य गर्भको धारेगी ॥१२७॥

तब उसने यह अंगीकार कर पवित्र हो महातपस्वीके गर्भको धारण किया॥ १२८॥और कश्यपजीने गर्भ स्थापन किया,इसप्रकार अमित पराक्रमी कश्यपजी देवसमूहको प्रकाश करते हुए ॥१२९॥ देवताओंसे अवध्य दुर्धर्ष तेजको दितिमें स्थापन कर तपकी इच्छासे पर्वतको चले गये ॥ १३० ॥ तब शंकित हो इन्द्र गर्भमें छिद्र देखने लगा और समयकी प्रतीक्षा करता उस स्थानमें रहने लगा,जब सौ वर्षमें एक वर्ष रहा तब हरीच्छासे इन्द्रको अवकाश मिला॥ १३१॥दितिने भूलकर विना चरण धोये शयन किया यह अवसर देखतेही इन्द्रने सूक्ष्म शरीर धारण कर॥ १३२॥वज्र ले दितिके गर्भमें प्रविष्ट हो

तथेत्यभिहितो भर्ता तया देव्या महातपाः ॥ धारयामास गर्भं तु शुचिः सा वसुधाधिप॥२८॥ ततोऽभ्युपगमद्दित्यां गर्भमाधाय कश्यपः ॥ रोचयन्वै गणश्रेष्ठं देवानाममितौजसाम्॥२९॥तेजः संभृत्य दुर्धर्षमवध्यममरैरपि ॥ जगाम पर्वतायैव तपसे शंसितव्रतः॥१३०॥ तस्याश्चैवान्तरप्रेप्सुरभवत्पाकशासनः ॥ ऊने वर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः॥३१॥अकृत्वा पादयोःशौचं दितिः शयनमाविशत् ॥ निद्रां च कारयामास तस्याः कुक्षिं प्रविश्य सः॥३२॥वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं न्यकृन्तत॥स पाट्यमानो वज्रेण गर्भस्तु प्ररुरोद ह ॥३३॥ मा रोदीरिति तं शक्रः पुनः पुनरथाब्रवीत् ॥ सोऽभवत्सप्तधा गर्भस्तामिन्द्रो रुषितः पुनः ॥३४॥ एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणैवारिकर्शनः ॥ मरुतो नाम देवास्ते बभूवुर्भरतर्षभ ॥३५॥ यथैवोक्तं मघवता तथैव मरुतोऽभवन् ॥ देवा एकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ॥ ३६ ॥ तेषामेवं प्रवृद्धानां भूतानां जनमेजय ॥ रोचयन्वै गणश्रेष्ठं देवानाममितौजसम्॥३७॥ निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात्प्रजापतीन् ॥ क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि भारत ॥ ३८ ॥

उस गर्भके सात खण्ड कर दिये,जब यह गर्भ खण्डित हो रोने लगा ॥१३३॥ तब "मा रुत"अर्थात् मत रो,इस प्रकार इन्द्रने कहा,परन्तु वह रोताही रहा.तब इन्द्रने क्रोधकर उस सात गर्भके खण्ड॥ १३४॥वज्रसे और सात२खण्ड कर दिये; हे राजन्! वेही मरुत् नाम उनंचास पवन हुए॥ १३५॥इन्द्रने जो मरुत् कहा इससे वे ४९ देवता मरुत् संज्ञक इन्द्रके सहायक हुए,इन्द्रके साथही वह सब उदरसे निकले,इससे इन्द्रके सहायक हुए॥ १३६॥हे जन्मेजय ! उनके इसप्रकार बढनेसे अमित पराक्रमी देवताओंके गण शोभित हुए॥ १३७॥ हे राजन् ! प्राणी और देवताओंके समूहको प्रकाश करते हुए;हरिने

इन सबको ब्रह्माजीको सौंप दिया, इस प्रकार क्रमसे संपूर्ण राज्य पूर्ण हो गये॥ ३८॥ वही हरि पुरुषवीर, कृष्ण, जिष्णु और प्रजापति हैं, वही पर्जन्य, सूर्य व्यक्तस्वरूप हैं, उन्हींसे जगत् व्याप्त है ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! इस सम्पूर्ण भूतसर्गको जानकर पाठ करनेसे और मरुतोंका सुन्दर जन्म पढनेसे सुननेसे संसारमें प्राणी फिर नहीं आता परलोकके भयकी बातही क्या है ॥ १४० ॥ ॥छ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि मरुतोत्पत्तिकथने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३॥ वैशंपायन बोले–हे राजन् ! ब्रह्माने प्रथम वेनके पुत्र पृथुको अभिषेक किया; पीछे क्रमसे दूसरोंको करने लगे ॥ १ ॥ ब्राह्मण, वेल, नक्षत्र-

स हरिः पुरुषो वीरः कृष्णो विष्णुः प्रजापतिः ॥ पर्जन्यस्तपनो व्यक्तस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥ ३९ ॥ भूतसर्गमिमं सम्यक् जानता भरतर्षभ ॥ मरुतां च शुभं जन्म शृण्वतः पठतोऽपि वा ॥ नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः ॥ १४० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि मरुदुत्पत्तिकथने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अभिषिच्याधिराज्ये तु पृथुं वैन्यं पितामहः ॥ ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥ १ ॥ द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा ॥ यज्ञानां तपस चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ २ ॥ अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं प्रभुम् ॥ बृहस्पतिं तु विश्वेषां ददावाङ्गिरसं पतिम् ॥ ३ ॥ भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम् ॥ ४ ॥ प्रजापतीनां दक्षं तु मरुतामथ वासवम् ॥ दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादममितौजसम् ॥ ५ ॥ वैवस्वतं च पितॄणां यमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ मातॄणां च व्रतानां च मन्त्राणां च तथा गवाम् ॥ ६ ॥ यक्षाणां राक्षसानां च पार्थिवानां तथैव च ॥ नारायणं तु साध्यानां रुद्राणां वृषभध्वजम् ॥ ७ ॥

॥ १४ ॥

ग्रह, यज्ञ, तपका राजा चन्द्रमाको किया ॥ २ ॥ जलोंका राजा वरुण और राजाओंका प्रभु वैश्रवणको और विश्वेदेवाओंका राजा अंगिराके पुत्र बृहस्पतिको किया ॥ ३॥ भृगुओंका राजा शुक्रको, आदित्योंका राजा विष्णुको और वसुओंका राजा अग्निको किया ॥ ४॥ प्रजापतियोंका राजा दक्ष, मरुतोंका इन्द्र और दैत्य-दानवोंका राजा प्रतापी प्रह्लादको ॥ ५ ॥ पितरोंका राजा धर्मराजको, माता, व्रत, मंत्र, गौ, ॥ ६ ॥ यक्ष, राक्षस, साध्य और नरपति-

योंका राजा नारायणको किया. रुद्रोंका राजा शिवको ॥ ७ ॥ दानवोंका अधिपति विप्रचित्ति और सब भूतपिशाचोंका अधिपति शूलपाणि शिवको किया ॥ ८ ॥ पर्वतोंका हिमालय, नदियोंका सागर, गंध, मरुत और शरीररहित प्राणी, शब्द और आकाशवालोंका राजा बली वायुका किया ॥ ९ ॥ गंधर्वोंका स्वामी चित्ररथ, नागोंका वासुकि और सर्पोंका राजा तक्षक किया ॥ १० ॥ हाथियोंका ऐरावत, घोडोंका उच्चैःश्रवा, पक्षियोका गरुड ॥ ११ ॥ मृगोंका सिंह, गौ और बैलोंका वृषभ और वनस्पतियोंका राजा पीपलको किया ॥ १२ ॥ सागर, नदी, मेघ, बर्षा और आदित्योंका अधिपति पर्जन्य-

विप्रचित्तिं तु राजानं दानवानामथादिशत् ॥ सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम् ॥ ८ ॥ शैलानां हिमवन्तं च नदीनामथ सागरम् ॥ गन्धानां मरुतां चैव भूतानामशरीरिणाम् ॥ शब्दाकाशवतां चैव वायुं च बलिनां वरम् ॥९॥ गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम् ॥ नागानां वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम्. ॥१०॥ वारणानां च राजानं ऐरावतमथादिशत् ॥ उच्चैःश्रवसमश्वानां गरुडं चैव पक्षिणाम् ॥ ११ ॥ मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषं च गवां पतिम् ॥ वनस्पतीनां राजनं प्लक्षमेवादिशत्प्रभुम् ॥ १२ ॥ सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षणस्य च ॥ आदित्यानामधिपतिं पर्जन्यमभिषिक्तवान् ॥ १३ ॥ सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं राजानमभ्य-षेचयत् ॥ सरीसृपाणां सर्पाणां राजानं चैव तक्षकम् ॥ १४ ॥ गंधर्वाप्सरसां चैव कामदेवं तथा प्रभुम् ॥ ऋतूनामथ मासानां दिवसानां तथैव च ॥ १५ ॥ पक्षाणां च क्षपाणां च मुहूर्ततिथिपर्वणाम् ॥ कलाकाष्ठाप्रमाणानां गतेरयनयोस्तथा ॥ १६ ॥ गणितस्याथ योगस्य चक्रे संवत्सरं प्रभुम् ॥ एवं विभज्य राज्यानि क्रमेण स पितामहः ॥१७॥ दिशापालानथ ततः स्थापयामास भारत ॥ पूर्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः ॥ १८ ॥

को किया ॥ १३ ॥ सब डाढवालोंका शेष, सरीसृप और सर्पोंका राजा तक्षक ॥ १४ ॥ गन्धर्व और अप्सराओंका कामदेव, ऋतु, मास, दिन ॥ १५ ॥ पक्ष, रात्रि, मुहूर्त, तिथि, पर्व, काल, काष्ठा, प्रमाण, दोनों अयनोंकी गति ॥१६॥ गणित और योगका राजा संवत्सरको किया. इस प्रकार पितामह क्रमसे राज्यविभाग करके ॥ १७ ॥ उनमें दिक्पालोंको स्थापन किया. पूर्व दिशा वैराज प्रजापतिके पुत्र ॥ १८ ॥

सुधन्वाको दिक्पाल किया, और दक्षिणदिशामें महात्मा कर्दम प्रजापतिके पुत्र॥ १९ ॥शंखपदको राज्यमें अभिषेक किया. तथा पश्चिम दिशामें राजसके पुत्र महात्मा ॥ २० ॥ केतुमानूको राज्यमें अभिषेक किया. इसी प्रकार पर्जन्य प्रजापतिके पुत्र हिरण्यरोमाको ॥ २१ ॥ उत्तर दिशाके राज्यमें दुर्धर्षको अभिषेक किया. उनसे सात द्वीप और पर्वतोंसहित यह पृथ्वी ॥ २२ ॥ यथास्थानोंमें अबभी धर्मपूर्वक पाली जाती है. इन राजाओंने पृथुको राजसूय यज्ञमें अभिषेक किया, और वेदविधिसे सबका राजाधिराज किया ॥ २३ ॥ जब तेजस्वी चाक्षुष मन्वन्तर बीच गया, तब ब्रह्माजीने

दिशापालं सुधन्वानं राजानं चाभ्यषेचयत्॥दक्षिणस्यां महात्मानं कर्दमस्य प्रजापतेः ॥१९॥ पुत्रं शङ्खपदं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥ पश्चिमायां दिशि तथा राजसः पुत्रमच्युतम् ॥ २० ॥ केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥ तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥ २१ ॥ उदीच्यां दिशि दुर्द्धर्षं राजानं सोऽभ्यषेचयत ॥ तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ॥ २२ ॥ यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते ॥ राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथुरेभिर्नराधिपैः ॥ वेददृष्टेन विधिना राजराज्ये नराधिप ॥ २३ ॥ ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि ॥ वैवस्वताय मनवे ब्रह्मा राज्यमथादिशत् ॥ तस्य विस्तरमाख्यास्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥ २४ ॥ तवानुकूल्याद्राजेन्द्र यदि शुश्रूषसेऽनघ ॥ महद्ध्येतदधिष्ठानं पुराणे परिकीर्तितम् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गवासकरं शुभम् ॥२५॥ जनमेजय उवाच ॥ विस्तरेण पृथोर्जन्म वैशम्पायन कीर्तय ॥ यथा महात्मना तेन दुग्धा चेयं वसुन्धरा ॥२६॥ यथा च पितृभिर्दुग्धा यथा देवैर्यथर्षिभिः ॥ यथा दैत्यैश्च नागैश्च यथा यक्षैर्यथा द्रुमैः ॥ २७ ॥

वैवस्वत मनुको राज्य दिया. इस कारण अब उस वैवस्वत मनुका विस्तार कहते हैं ॥ २४ ॥ यह चरित्र तुम्हारे अनुकूल है और तुमको इसके सुननेकी इच्छा है; हे पापरहित ! पुराणमें कहे इस बडे अधिष्ठानको जो धन्य यश आयु दाता और स्वर्गमें निवास करानेवाला है, तुमसे कहते हैं ॥ २५ ॥ जन्मेजय बोले–हे भगवन् ! जिस प्रकार पृथुने यह पृथ्वी दुही, सो उन पृथुका जन्म आप विस्तारसे कहिये ॥ २६ ॥ हे भगवन् !

जिस प्रकार पितर, देवता, ऋषि, दैत्य, नाग, यक्ष, वृक्ष ॥ २७॥ पर्वत, पिशाच, गन्धर्व, ब्राह्मण, शूरवीर राक्षसोंने पृथ्वीको दुहा सो कहो ॥ २८ ॥
हे मुने ! इनके पात्र विशेष भी वर्णन कीजिये और वत्सविशेष भी वर्णन कीजिये, दूध और दुहनेवालोंका भी क्रमसे कीर्तन करो ॥ २९ ॥ हे तात !
जिस कारण क्रोधित हुए महर्षियोंने वेनका हाथ मथा सो कारण भी कीर्तन करो ॥ ३० ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! बडे आनंदकी वार्ता है, वेनके
पुत्र पृथुका चरित्र तुमसे कहता हूं तुम मन लगाय एकाग्र चित्तसे सुनो ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! अपवित्र तुच्छ मन अशिष्य व्रतरहित कृतघ्न अहित

यथा शैलैः पिशाचैश्च गन्धर्वैश्च द्विजोत्तमैः॥राक्षसैश्च महासत्त्वैर्यथा दुग्धा वसुन्धरा ॥२८॥ तेषां पात्रविशेषांश्च वैशम्पायन
कीर्तय ॥ वत्सान् क्षीरविशेषांश्च दोग्धारं चानुपूर्वशः ॥ २९ ॥ यस्माच्च कारणात्पाणिर्वेनस्य मथितः पुरा ॥ क्रुद्धैर्महर्षिभिस्तात
कारणं तच्च कीर्तय ॥३०॥ वैशम्पायन उवाच॥हन्त ते कथयिष्यामि पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम्॥एकाग्रः प्रयतश्चैव शृणुष्व जनमे-
जय ॥ ३१ ॥ नाशुचेः क्षुद्रमनसःकुशिष्यायाव्रताय च ॥ कीर्तनीयमिमं राजन्कृतघ्नायाहिताय वा ॥३२॥स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं
धर्म्यं वेदेन संमितम् ॥ रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणु राजन्यथातथम्॥३३॥ यश्चैनं कथयेन्नित्यं पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम्॥ब्राह्मणेभ्यो
नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतैः ॥३४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ वैशम्पायन
उवाच ॥ आसीद्धर्मस्य गोप्ता वै पूर्वमत्रिसमः प्रभुः ॥ अत्रिवंशसमुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः ॥१॥ तस्य पुत्रोऽभवद्वेनो नात्यर्थं
धर्मकोविदः ॥ जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः ॥ २ ॥

पुरुषके आगे ॥ ३२ ॥ स्वर्ग यश आयु धनके देनेवाले, वेद सम्मत ऋषियोंके कहे हुए इस चरित्रको नहीं कहना चाहिये, आप भक्त हो इस
कारण यथावत् सुनिये ॥ ३३ ॥ हे राजन ! जोपुरुष नित्यप्रति वेनके पुत्र पृथुके चरित्रको ब्राह्मणोंको नमस्कार कर कहता है, उसको किसी
प्रकारका कष्ट नहीं होता ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपुराणे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ छ ॥ वैशंपायन बोले;
हे राजन् ! पूर्वमें अत्रिके वंशमें उत्पन्न और उन्हींके समान धर्मकी रक्षा करनेवाले, अंगनाम प्रजापति थे ॥ १ ॥ उनके मृत्युकी पुत्री

सुनीथामें महाअधर्मी वेन उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ यह वेन कालात्मजाका पुत्र नानाके दोषोंसे अपने धर्मको छोडकर काम लोभमें प्रवृत्त हुआ ॥ ३ ॥ और यह राजा वेन अधर्ममर्यादा स्थापन करके वेदधर्मोंको छोड अधर्ममें मन लगाने लगा ॥ ४ ॥ वेनके राज्यमें वेदपाठ और देवताओंका पूजन नहीं होता था और यज्ञोंमें होमा हुआ अमृतभी देवताओंको नहीं प्राप्त होता था ॥ ५ ॥ कारण कि अपना काल समीप आनेसे वेनने यह आज्ञा प्रचार की कि कोई देवताओंका यज्ञ और हवन मत करो ॥ ६ ॥ हे जन्मेजय ! उसने यह कहा कि मेराही यज्ञ करना

स मातामहदोषेण वेनः कालात्मजात्मजः ॥ स्वधर्मं पृष्ठतः कृत्वा कामाल्लोभेष्ववर्तत ॥ ३ ॥ मर्यादां स्थापयामास धर्मापेतां स पार्थिवः ॥ वेदधर्मानतिक्रम्य सोऽधर्मनिरतोऽभवत् ॥ ४ ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारस्तस्मिन् राजनि शासति ॥ प्रवृत्तं न पपुः सोमं हुत यज्ञेषु देवताः ॥ ५ ॥ न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः ॥ आसीत्प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ ६ ॥ अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति कुरूद्वह ॥ मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥ ७ ॥ तमतिक्रान्तमर्यादमाददानमसाम्प्रतम् ॥ ऊचुर्महर्षयः सर्वे मरीचिप्रमुखास्तदा ॥ ८ ॥ वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरगणान्बहून् ॥ अधर्मं कुरु मा वेन नैष धर्मः सनातनः ॥ ९ ॥ निधनेऽत्र प्रसूतस्त्वं प्रजापतिरसंशयम् ॥ प्रजाश्च पालयिष्येऽहमिति ते समयः कृतः ॥ १० ॥ तांस्तदा ब्रुवतः सर्वान्महर्षीनब्रवीत्तदा ॥ वेनः प्रहस्य दुर्बुद्धिरिममर्थमनर्थवित् ॥ ११ ॥

उचित है, यज्ञ करनेवाला और यज्ञरूपभी मैंही हूं, इसकारण मेरेही निमित्त यज्ञ हवन करने उचित है ॥ ७ ॥ जब इसप्रकार मर्यादाभंग हुए अधिक दिन बीत गये, तब आनकर मरीचिआदि ऋषि कहने लगे ॥ ८ ॥ हे वेन ! हम बहुतवर्षोंतक दीक्षा ग्रहण करेंगे; अब तुम यह अधर्म मत करो, कारण कि यह सनातन धर्म नहीं है ॥ ९ ॥ तुमने वंशनाश करनेको जन्म लिया है तुम प्रजापति हो और तुमने यह प्रतिज्ञाभी कर ली है कि मैं प्रजापालन करूंगा ॥ १० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार कहते हुए उन सम्पूर्ण ऋषियोंसे अर्थको अनर्थ जाननेवाला वेन हँसकर बोला ॥ ११ ॥

हे ऋषियो ! तुम मूर्ख हो, निश्चयही मुझे नहीं जानते, मेरे सिवाय धर्मका जाननेवाला दूसरा कौन है, तौ मैं किसका वाक्य सुनू, शास्त्र वीर्य तप सत्यमें पृथ्वीपर मेरे समान कौन है ॥ १२ ॥ सम्पूर्ण प्राणी और धर्मका उत्पन्न करनेवाला मैं हूं, तुम मूर्ख होकर मुझे नहीं जानते ॥१३॥ जो मैं इच्छा करूं तौ पृथ्वीको भस्म करदूं और जलसे डुबादूं और आकाश, पृथ्वीको रोकदूं इसमें सन्देह नहीं ॥ १४ ॥ हे राजन् ! जब राजा वेन मोह और अभिमानसे क्रूरतासे बोला; कहना न माना तब महात्मा महर्षि क्रोधित हुए ॥ १५ ॥ वे सब महात्मा चंचल उस महाबलीको पकडकर क्रोधसे इसकी

वेन उवाच ॥ स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वै मया ॥ श्रुतवीर्यतपः सत्यैर्मया वाकः समो भुवि ॥१२॥ प्रभुत्वं सर्व भूतानां धर्माणां च विशेषतः ॥ संमूढा न विदुर्नूनं भवन्तो मामचेतसः ॥१३॥ इच्छन् दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं तथा जलैः ॥ खं भुवं चैव रुन्धेयं नात्रकार्या विचारणा ॥ १४ ॥ यदा न शक्यते मोहादवलेपाच्च पार्थिवः ॥ अनुनेतुं तदा वेनस्ततः क्रुद्धा महर्षयः ॥ १५ ॥ निगृह्य तं महात्मानो विस्फुरन्तं महाबलम् ॥ ततोऽस्य सव्यमूरुं ते ममन्थुर्जातमन्यवः ॥ १६ ॥ तस्मिंस्तु मथ्यमाने वै राज्ञ ऊरौ प्रजज्ञिवान् ॥ ह्रस्वोऽतिमात्रः पुरुषः कृष्णश्चातिबभूव ह ॥ १७ ॥ स भीतः प्राञ्जलिर्भूत्वा स्थितवान् जनमेजय ॥ तमत्रिर्विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रवीत्तदा ॥ १८ ॥ निषादवंशकर्त्ताऽसौ बभूव वदतांवर ॥ धीवरानसृजच्चाथ वेनकल्मषसंभवान् ॥१९॥ ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुषारास्तुम्बरास्तथा ॥ अधर्मरुचयो ये च विद्धि तान् वेनसंभवान् ॥ २० ॥ ततः पुनर्महात्मानः पाणिं वेनस्य दक्षिणम् ॥ अरणीमिव संरब्धा ममन्थुस्ते महर्षयः ॥ २१ ॥

जंघा मथने लगे ॥१६॥ मथते हुए राजाकी जंघासे बहुत छोटा, दृढशरीर, श्यामवर्ण, पुरुष प्रगट हुआ ॥ १७ ॥ हे जन्मेजय ! वह भय पाय अंजली बांधकर सन्मुख स्थित हुआ, तब अत्रिने उसे विह्वल देखकर कहा, निषीद अर्थात् बैठो ॥ १८ ॥ हे राजन् ! इससे वह निषाद वंशकाही करनेवाला हुआ और उसने वेनके पापसे धीमरोंको उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ औरभी विंध्याचलके रहनेहारे अधर्मी जो तुषारतुम्बदेशके रहनेहारे गौंड भील हैं, यह सब वेनवंशीही जानने ॥ २० ॥ तब फिर वे महात्मा ऋषि अरणीके समान वेनके दक्षिण हाथको क्रोधित हो मथने लगे ॥ २१ ॥

तब अग्निके समान प्रकाशित अपने शरीरसे दीप्यमान उस हाथसे पृथु उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ यह महायशस्वी पृथु धनुष्य कवच महाश्रेष्ठ आजगव नाम धनुष्य रक्षाके निमित्त दिव्यबाण और दिव्यसुवर्णके कवचसहित जन्मे ॥ २३ ॥ उनके उत्पन्न होतेही सब प्राणी प्रसन्न हुए और राजा वेन स्वर्गको गया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! उस महात्मा सत्पुत्रके उत्पन्न होतेही वह राजशार्दूल नरकसे रक्षित हो स्वर्गको गया ॥२५॥ उस पृथुके निमित्त सम्पूर्ण नदी और सागर अनेकप्रकारके रत्न और जल लेकर अभिषेकको आये ॥२६॥ भगवान् ब्रह्मा आंगिरसादि देवतों सहित आये,और स्थावर

पृथुस्तस्मात्समुत्तस्थौ कराज्ज्वलनसंनिभः ॥ दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन् ॥ २२ ॥ स धन्वी कवची जातः पृथुरेव महायशाः ॥ आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महावरम् ॥ शरांश्च दिव्यान् रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम् ॥ २३ ॥ तस्मिन् जातेऽथ भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्वशः ॥ समापेतुर्महाराज वेनश्च त्रिदिवं गतः ॥ २४ ॥ समुत्पन्नेन कौरव्य सत्पुत्रेणमहात्मना ॥ त्रातः स पुरुषव्याघ्रः पुन्नाम्नो नरकात्तदा ॥ २५ ॥ तं समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्वशः ॥ तोयानि चाभिषेकाय सर्वं एवोपतस्थिरे ॥ २६ ॥ पितामहश्च भगवान्देवैराङ्गिरसैः सह ॥ स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च ॥२७॥ समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम् ॥ महता राजराज्येन प्रजापालं महाद्युतिम् ॥२८॥ सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्मकोविदैः ॥ आदिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ २९ ॥ पित्राऽपराञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ॥ अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत ॥ ३० ॥ आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः ॥ पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥ ३१ ॥ अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यत्यन्नानि चिन्तया ॥ सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥ ३२ ॥

जंगम सब प्राणी॥२७॥आकर राजा पृथु महाप्रतापीको साम्राज्यपदमें अभिषेक करने लगे॥२८॥ वह प्रतापी तेजस्वी पृथु उनधर्मके जाननेवालोंसे आदिराज्यमें अभिषिक्त होकर॥२९॥पितासे दुःखी 'प्रजाको रंजित'अर्थात् प्रसन्न किया प्रजाको अनुरंजित करनेसेही इसका नाम राजा हुआ॥३०॥ इसके यात्रा करनेसे समुद्रके जलभी स्थलवत् कठिन होजाते थे, पर्वतभी मार्ग देते थे, कहीं इसकी ध्वजा भंग न हुई ॥ ३१ ॥ पृथ्वी अन्नकी चिन्ता

करतेही विना जोते धान्य उत्पन्न करती थी, गौ कामदुहा और पत्तोंपत्तोंमें मधु होता था॥ ३२॥इसी समय पितामहके यज्ञमें सोमवल्लीरस निकालनेके समय महाबुद्धिमान् सूत॥ ३३॥और पण्डित मागध उस यज्ञसे उत्पन्न हुआ, महर्षियोंने पृथुकी स्तुतिके निमित्त उन दोनोंको बुलाया ॥ ३४॥ और उन ऋषियोंने कहा, तुम इस राजाकी स्तुति करो, कारण कि यह राजा श्रेष्ठकर्म और स्तुतिका पात्र है॥॥ ३५॥ तब सूत और मागध उन ऋषियोंसे बोले, हम देवता और ऋषियोंको उन उनके कर्मसे प्रसन्न करते है॥ ३६॥ इन पृथुके कर्म और लक्षणको हम नहीं जानते; हे ब्राह्मणो ! फिर हम

एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे ॥ सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ॥३३॥ तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ॥ पृथोः स्तवार्थे तौ तत्र समाहूतौ सुरर्षिभिः ॥३४॥ तावूचुर्ऋषयः सर्वे स्तूयतामेष पार्थिवः ॥ कर्मैस्तदनुरूपं वां पात्रं चायं नराधिपः ॥३५॥ तावूचतुस्तदा सर्वास्तानृषीन्सूतमागधौ ॥ आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्मभिः ॥ ३६ ॥ न चास्य विद्वो वै कर्म न तथा लक्षणं यशः ॥ स्तोत्रं येनास्य कुर्याव राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः ॥ ३७ ॥ ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ च भविष्यैः स्तूयतामिति ॥ यानि कर्मांणि कृतवान्पृथुः पश्चान्महाबलः ॥३८॥ सत्यवाग्दानशीलोऽयं सत्यसन्धो नरेश्वरः ॥ श्रीमान् जैत्रः क्षमाशीलो विक्रान्तो दुष्टशासनः ॥ ३९ ॥ धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च दयावान् प्रियभाषणः ॥ मान्यो मानयिता यज्वा ब्रह्मण्यः सत्य संगरः ॥ ४० ॥ शमः शान्तश्च निरतो व्यवहारस्थितो नृपः ॥ ततः प्रभृति लोकेषु स्तवेषु जनमेजय ॥ आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते सूतमागधबन्दिभिः ॥ ४१ ॥

इस तेजस्वी राजाकी किसप्रकार स्तुति करें ॥३७॥ तब ऋषियोंने कहा कि तुम भविष्य स्तुति करो, जिन कर्मको यह महाबली पृथु आगे करेंगे॥ ३८॥ यह राजा सत्यवाक्, दानशील, सत्यसंध, श्रीमान्, जीतनेवाला, क्षमाशील विक्रान्त दुष्टोंको दंडदेनेवाला ॥ ३९ ॥ धर्मज्ञ, किये हुएका जाननेवाला, दयावान, प्रियभाषी मान्य, दूसरेका मान करनेहारा, अनेक प्रकारके यज्ञ करनेवाला, ब्राह्मणोंका सत्कार करनेवाला, सत्यसागर ॥ ४० ॥ मन और अन्तर इन्द्रियोंको रोकनेवाला,शान्तिमें सम्यक् युक्त,व्यवहारमें स्थित राजा पृथुने जो जो कर्म किये तिससे आदि लेकर;हे राजन् जनमेजय !

सूत,मागध,बंदी जनोंने तिन२आशीर्वादोंसे प्राणियोंकी स्तुति की है ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! स्तुतिके अंतमें प्रजाके ईश्वर राजा पृथुने उनपर प्रसन्न होकर सूतको तौ अनूपदेश और मागधको मगधदेश दिया ॥४२॥ हे राजन् ! राजा पृथुको देखकर परम प्रसन्न हो ऋषि प्रजाओंसे कहने लगे कि; हे प्रजा ! तुम्हारी वृद्धिका देनेवाला यह राजा होगा ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! तब सम्पूर्ण प्रजा पृथुको प्राप्त होकर कहने लगीं; हे राजन् ! आप हमारे निमित्त वृत्ति दो, यह प्रजाके वचन सुन ॥४४॥ वह बली महर्षियोंके वचनसे प्रजाके हित करनेकी वांछासे प्रार्थित हो राजा पृथु धनुष और बाण

तयोः स्तवैस्तैः सुप्रीतः पृथुः प्रादात्प्रजेश्वरः ॥ अनूपदेशं सूताय मगधान्मागधाय च ॥४२॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाः प्राहुर्महर्षयः ॥ वृत्तीनामेष वो दाता भविष्यति जनेश्वरः ॥ ४३ ॥ ततो वैन्यं महाराज प्रजाः समभिदुद्रुवुः ॥त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवचनात्तदा ॥ ४४ ॥ सोऽभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया ॥ धनुर्गृह्य पृषत्कांश्च पृथवीमार्दयद्बली ॥ ४५ ॥ ततो वैन्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही॥तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥४६॥ सा लोकान्ब्रह्म लोकादीन् गत्वा वैन्यभयात्तदा ॥ प्रददर्शाग्रतो वैन्यं प्रगृहीतशरासनम् ॥४७॥ ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणैर्दीप्ततेजसमच्युतम् ॥ महायोगं महात्मानं दुर्धर्षममरैरपि ॥४८॥ अलभन्ती तु सा त्राणं वैन्यमेवान्वपद्यत ॥ कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकैस्त्रिभिः सदा ॥ ४९ ॥ उवाच वैन्यं नाधर्मं स्त्रीवधं कर्तुमर्हसि ॥ कथं धारयिता चासि प्रजा राजन्विना मया ॥ ५० ॥

लेकर पृथ्वीको मर्दन करने लगे,तब वह ॥ ४५ ॥ पृथुके भयसे व्याकुल हुई पृथ्वी गौ बनकर भागने लगी, राजा पृथुभी धनुष लेकर इसके पीछे हुए ॥४६॥यह वैन्यके भयसे ब्रह्मलोक आदि लोकोंमें दौडकर गई,परन्तु जहां गई आगे धनुष लिये पृथुको देखा ॥ ४७ ॥ पश्चात् जब इसने अपनी शरण कही नहीं देखी, तौ प्रकाशमान् तीक्ष्ण बाणोंसे दीप्त तेजवाले और सावधान, महायोगी, महात्मा, देवताओंसे अजित ॥४८॥ त्रिलोकीमें पूज्य, पृथुको प्राप्त होकर हाथ जोडकर वचन कहने लगी ॥४९॥ हे राजन् ! स्त्रीके वधरूपी अधर्म करनेको आप योग्य नहीं है; हे राजन् !

आप मेरे विना पृथ्वीको कैसे धारण करोगे ॥५०॥ हे राजन् ! मेरे ऊपर ये लोक स्थित हैं और इस जगत्कोभी मैं धारण करती हूं,सो जब मेरा नाश हो जायगा तब प्रजाकाभी नाश होजायगा, इसमें संदेह नहीं ॥ ५१ ॥ हे पृथ्वीपाल ! जो आप प्रजाके कल्याणकी इच्छा करते हो तौ मुझे मत मारो, मेरे वचन सुनो ॥ ५२ ॥ उपायसे प्रारंभ किये सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं; सो हे नृप ! उपायके विचारोंसे पृथ्वीको धारण करो ॥ ५३ ॥ हे नृप ! मुझे मारकेभी प्रजा धारण करनेमें तुम समर्थ न होंगे. इससे कोपको त्यागो, मैं तुह्मारी सहायभूत हूंगी ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! पशु आदि योनियोंमेंभी

मयि लोकाःस्थिता राजन्मयेदं धार्यते जगत्॥मद्विनाशे विनश्येयुःप्रजाःपार्थिव विद्धि तत्॥५१॥न त्वमर्हसि मां हन्तुं श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि ॥ प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेदं वचो मम ॥५२॥ उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः॥उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजा नृप ॥५३॥ हत्त्वापि मां न शक्तस्त्वं प्रजा धारयितुं नृप॥अनुभूता भविष्यामि यच्छ कोपं महाद्युते॥५४॥अव-ध्याश्च स्त्रियःप्राहुस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि॥सत्त्वेषु पृथिवीपाल न धर्मं त्यक्तुमर्हसि॥५५॥एवं बहुविधं वाक्यं श्रुत्वा राजा महामनाः॥ कोपं निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत् ॥५६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥ पृथुरुवाच ॥ एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा ॥ बहून्वै प्राणिनो लोके भवेत्तस्येह पातकम्॥१॥सुखमेधन्ति बहवो यस्मिंस्तु निहतेऽशुभे ॥ तस्मिन्नास्ति हते भद्रे पातकं चोपपातकम् ॥ २ ॥ एकस्मिन्यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि ॥ बहूनां भवति क्षेमं तत्र पुण्यप्रदो वधः ॥ ३ ॥

प्राप्त हुई स्त्री मारनेके योग्य नहीं होती, इस कारण तुम धर्म त्यागन करनेके योग्य नहीं हो॥५५॥हे राजन् जनमेजय ! उदारमना राजा पृथु इस प्रकार बहुतविध पृथ्वीके वचन सुनकर वह धर्मात्मा क्रोधको रोक पृथ्वीसे यह वचन कहने लगे॥५६॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वभाषायां पृथूपाख्याने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥छ॥ राजा पृथु बोले कि;हे भद्रे ! जो पुरुष एक अपने अर्थ अथवा दूसरेके अर्थ बहुत अथवा एक प्राणीकी हिंसा करता है, वह पापग्रसित होता है ॥ १ ॥ और जिस एकके मारनेमें बहुत सुखी होवें, तिसके मारनेमें दोष नहीं और उपपातकभी नहीं ॥ २ ॥ और जहांतक

दुष्टके मारनेसे बहुतोंकी प्रसन्नता हो, वह वध पुण्यका देनेवाला होता है ॥ ३ ॥ इस कारण यदि जगत्के हितविधानवाला मेरा वचन नहीं समझेगी, तो प्रजाके निमित्त तुझे मार डालूंगा॥४॥हे पृथ्वी ! मेरी शिक्षाको नहीं मानेंगी तो तुझे मैं बाणसे मारके प्रजा धारण करनेवालोंमें अपने आपको विस्तार करूंगा ॥ ५ ॥ इस कारण धर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ तू मेरी शिक्षा मानकर इस प्रजाको जीवदान दे. कारण कि, इस प्रजा धारण करनेमें तू समर्थ है ॥ ६ ॥ और तू मेरी पुत्रीभावको प्राप्त हो तौ घोरदर्शन तेरे मारनेको जो यह बाण लिया है,इसको त्याग दूंगा ॥ ७ ॥ हे जनमेजय ! इस प्रकार

सोऽहं प्रजानिमित्तं त्वां हनिष्यामि वसुंधरे॥यदि मे वचनं नाद्य करिष्यसि जगद्धितम्॥४॥त्वां निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम् ॥ आत्मानं प्रथयित्वाहं प्रजा धारयिता चिरम्॥५॥सा त्वं शासनमास्थाय मम धर्मभृतां वरे॥संजीवय प्रजाःसर्वाः समर्था ह्यसि धारणे॥६॥दुहितृत्वं च मे गच्छ तत एनमहं शरम् ॥ नियच्छेयं त्वद्वधार्थमुद्यतं घोरदर्शनम् ॥७॥ पृथिव्युवाच ॥ सर्वमेतदहं वीर विधास्यामि न संशयः ॥ उपायतः समारब्धाःसर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः ॥८॥उपाय पश्य येन त्वं धारयेथाःप्रजा इमाः॥वत्सं तु मम संपश्य क्षरेयं येन वत्सला ॥९॥ समां च कुरु सर्वत्र मां त्वं धर्मभृतांवर ॥ यथा विस्पन्दमानं मे क्षीरं सर्वत्र भावयेत्॥१०॥वैशम्पायन उवाच॥तत उत्सारयामास शैलाञ्छतसहस्रशः॥धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः ॥११॥ पृथुर्वैन्यस्तदा राजा महीं चक्रे समां ततः ॥ मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमासीद्वसुन्धरा ॥ १२ ॥

पृथुराजाके वचन सुन पृथ्वी बोली; हे शूर वीर ! यह सम्पूर्ण प्रजा मैं धारण करूंगी, इसमें संदेह नहीं,परन्तु सम्पूर्ण कार्य उपायसे सिद्ध होतेहैं ॥ ८ ॥ हे राजन् ! ऐसा उपाय विचारो, जिससे प्रजाओंको धारण कर सको; मेरा ऐसा बछडा करो, जिससे मैं प्रसन्न हो दुही जा सकूं ॥ ९ ॥ हे धर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ!सब जगह मुझे एकसार करो,जिससे झरा हुआ मेरा दूध सम्पूणको भिगो दे॥ १० ॥ वैशंपायनजी बोले; हे राजन् ! यह वचन सुन राजाने धनुषकी कोटीसे हजारों पर्वतोंको उखाड डाला पहाडोंपै पहाड धरदिये तिससे वे बढगये ॥११॥ और पृथ्वीको बराबर कर दिया,पहले मन्वन्त-

रोंमें यह पृथ्वी ऊंची नीचि थी ॥ १२ ॥ क्योंकि, स्वभावसेही इसके सम विषम हैं, औरपहले चाक्षुष मन्वंतरमें ऐसीही थी ॥ १३ ॥ पहले विसर्गमें पृथ्वीक विषम होनेसे पुर और ग्रामोंका विभागभी इस प्रकार नहीं था ॥१४॥ और खेती, गौरक्षा, वणिक् पथ, सत्य, असत्य, लोभ, मत्सरता यह पूर्वमें नहीं थीं ॥ १५ ॥ वैवस्वत मन्वन्तर प्राप्त होनेसे इस समय यह सब वस्तु पृथुसे प्रारंभ हुईं ॥ १६ ॥ हे पापरहित ! जहां जहां पृथ्वी बराबर हुई, वहां वहां प्रजा वसने लगी ॥ १७ ॥ हमने सुना है, उस समय बडे कष्टसे प्रजाओंको आहार मूल फल मिलता था ॥ १८ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ !

स्वभावेनाभवन्ह्यस्याः समानि विषमाणि च ॥ चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासीदेवं तदा किल ॥१३॥ नहि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले प्रविभागः पुरणां च ग्रामाणां वां तदाऽभवत् ॥ १४ ॥ न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः ॥ नैव सत्यानृतं तत्र न लोभो न च मत्सरः ॥ १५ ॥ववस्वतेऽन्तरे चास्मिन् साम्प्रतं समुपस्थिते ॥ वैन्यात्प्रभृति राजेन्द्र सर्वस्यतस्य संभवः ॥ १६ ॥ यत्र यत्र समं त्वस्या भूमेरासीदिह्वानघ ॥ तत्र तत्र प्रजाः सर्वा संवासं समरोचयन् ॥१७॥ आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा ॥कृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम ॥ १८ ॥ संकल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वयम्भुवं प्रभुम् ॥ स्वपाणौ पुरुषश्रेष्ठः दुदोह पृथिवीं ततः ॥ सस्यजातानि सर्वाणि पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥१९॥ तेनान्नेन प्रजास्तात वर्तन्तेऽद्यापि नित्यशः ॥ ऋषिभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ॥ वत्सः सोमाभवत्तेषां दोग्धा चाङ्गिरसः सुतः ॥ २० ॥ बृहस्पतिर्महातेजाः पात्रं छन्दांसि भारत ॥ क्षीरमासीदनुपमं तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ॥ २१ ॥ पुनर्देवगणैः सर्वैः पुरन्दरपुरोगमैः ॥ काञ्चनं पात्रमादाय दुग्धेयं श्रूयते मही ॥ २२ ॥

पश्चात् यह प्रतापवान् पृथु स्वायंभुव मनुको बछडा बनाकर अपने हाथसे पृथ्वीको दुहने लगा ॥ १९ ॥ उससे यह सम्पूर्ण खेती उत्पन्न हुई, और उसही अन्नसे अबभी सम्पूर्ण मनुष्य जीते हैं; हे राजन् ! पीछे यह ऋषियोंने दुही तब चंद्रमा बछडा बनाया,और अंगिराके पुत्र ॥ २० ॥ तेजस्वी बृहस्पतिजी दुहनेवाले हुए,वेद पात्र बनाया,उसमें नित्य ब्रह्मरूप दूधको दुहा॥२१॥पीछे इन्द्रादि देवताओंने दुही,उन्होंने सुवर्णका पात्र बनाया ॥२२॥

तब इन्द्र बछडा और सविता प्रभु दुहनेवाले हुए, बल करनेवाला अमृत दुहा गया ॥२३॥ पश्चात् इसे पितरोंने दुहा, उन्होंने चांदीका पात्र बनाया, उसमें उन पराक्रमियोंने स्वधाको दुहा ॥२४॥ प्रतापवान् वैवस्वत यम बछडे बने, और लोकोंको प्रेरणेवाला काल अंतक दुहनेवाला हुआ ॥२५॥ पीछे नागोंने तक्षकको बछडा करके तूंबी पात्र बनाकर विषरूपी दूध दुहा ॥२६॥ हे राजन् ! नागोंमें और सर्पोंमें श्रेष्ठप्रतापी ऐरावत और धृतराष्ट्र दुहनेवाले हुए॥२७॥तिस विषसेही महाकाय औरतीक्ष्ण विषवाले नाग और सर्प जीवते हैं, और इनके उस वीर्यकाही बल है, और उसीकाही आश्रय

वत्सस्तु मघवानासीद्दोग्धा च सविता प्रभुः ॥ क्षीरमूर्जस्करं चैव वर्तन्ते येन देवताः ॥ २३ ॥ पितृभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ॥ राजतं पात्रमादाय स्वधाममितविक्रमैः ॥२४॥ यमो वैवस्वतस्तेषामासीद्वत्सः प्रतापवान् ॥ अन्तकश्चाभवद्दोग्धा कालो लोकप्रकालनः ॥२५॥ नागैश्च श्रूयते दुग्धा वत्सं कृत्वा तु तक्षकम् ॥ अलाबुं पात्रमादाय विषं क्षीरं नरोत्तम ॥२६॥ तेषामैरावतो दोग्धा धृतराष्ट्रः प्रतापवान् ॥ नागानां भरतश्रेष्ठ सर्पाणां च महीपते ॥ २७ ॥ तेनैव वर्तयन्त्युग्रा महाकाय विषोल्बणाः ॥ तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तदुपाश्रयाः ॥ २८ ॥ असुरैः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ॥ आयसं पात्रमादाय मायां शत्रुनिबर्हणीम् ॥२९॥ विरोचनस्तु प्राह्लादिर्वत्सस्तेषामभूत्तदा ॥ ऋत्विक् द्विमूर्द्धा दैत्यानां मधुर्दोग्धा महाबलः ॥३०॥ तयैते माययाद्यापि सर्वे मायाविनोऽसुराः ॥ वर्तयन्त्यमितप्रज्ञास्तदेषाममितं बलम् ॥ ३१ ॥ यक्षैश्च श्रूयते तात पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ॥ आमपात्रे महाराज पुरान्तर्द्धानमक्षयम् ॥ ३२ ॥

है॥२८॥हे राजन् ! पीछे ऐसा सुना है कि इसे असुरोंने दुहा तिन्होंने लोहेका पात्र बनाया ॥२९॥ और प्रह्लादजीके पुत्र विरोचनको वत्स किया, और शत्रुओंको नाश करनेवाली मायाको दुहा, और दैत्योंमें श्रेष्ठ द्विमूर्द्धा और मधु ये दो बलवान् दुहनेवाले हुए॥३०॥हे राजन् ! उसी मायासे अबभी मायावी असुर जीते हैं, और तिस मायासेही बली और बुद्धिमान हो रहे हैं ॥३१॥पश्चात् यक्षोंने पृथ्वीको दुहा, उन्होंने कच्चा पात्र निर्माण

किया, और अंतर्ध्यानरूपी दूध दुहा ॥ ३२ ॥ यक्ष और पुण्यजनोंने कूबेरको बछडा किया, और तीन शिरोंवाला तपस्वी तेजस्वी मणिवरका पिता रजतनाभ दुहनेवाला हुआ ॥ ३३ ॥ इसी विद्याके द्वारा यह परमर्षियोंकी कांति धारण करनेवाले हुए हैं ॥ ३४ ॥ पीछे राक्षस और पिशाचोंने दुहा, उन्होंने प्रजाके खानेको मुरदेका कपाल पात्र किया ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! रजतनाभ उनको दुहनेवाला हुआ, और सुमाली बछडा किया; जिससे रुधिर-रूपी दूध दुहा ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! तिसी दूधसे यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूतसमूह सम्पूर्ण देवताओंकी तुल्य होकर वर्तते हैं ॥ ३७ ॥ पीछे हे राजन् !

वत्सं वैश्रवणं कृत्वा यक्षैः पुण्यजनैस्तदा ॥ दोग्धा रजतनाभस्तु पिता मणिवरस्य यः ॥ ३३ ॥ यक्षानुजो महातेजा त्रिशीर्षः सुमहातपाः ॥ तेन ते वर्तयन्तीति परमर्षिरुवाच ह ॥ ३४ ॥ राक्षसैश्च पिशाचैश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ॥ शावं कपालमादाय प्रजा भोक्तुं नरर्षभ ॥ ३५ ॥ दोग्धा रजतनाभस्तु तेषामासीत्कुरूद्वह ॥ वत्सः सुमाली कौरव्य क्षीरं रुधिरमेव च ॥ ३६ ॥ तेन क्षीरेण यक्षाश्च राक्षसाश्चामरोपमाः ॥ वर्तयन्ति पिशाचाश्च भूतसङ्घास्तथैव च ॥३७॥ पद्मपात्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैः साप्सरोगणैः॥ वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीन् गन्धान्नरर्षभ ॥ ३८ ॥ तेषां च सुरुचिस्त्वासीद्दोग्धा भरतसत्तम ॥ गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभः ॥ ३९ ॥ शैलैश्च श्रूयते राजन् पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ॥ औषधीर्वै मूर्तिमती रत्नानि विविधानि च ॥ ४० ॥ वत्सस्तु हिमवानासीन्मेरुर्दोग्धा महागिरिः ॥ पात्रं तु शैलमेवासीत्तेन शैला विवर्धिताः ॥ ४१ ॥ वीरुद्भिः श्रूयते राजन् पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ॥ पालाशं पात्रमादाय दग्धच्छिन्नप्ररोहणम् ॥ ४२ ॥ दुदोह पुष्पितः सालो वत्सः प्लक्षोऽभवत्तदा ॥ सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुन्धरा ॥ ४३ ॥

गंधर्व और अप्सराओंने दुहा, उन्होंने कमलपात्र किया और चित्ररथको बछडा बनाया, सुन्दर गंधको दुहा ॥ ३८ ॥ उस समय सूर्यसमान महात्मा अतिबली गंधर्वोंके राजा सुरुचि दुहनेवाले हुए ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! सुना है कि फिर इसको पर्वतोंने दुहा; अनेक प्रकारकी मूर्तिमान् औषधी और विविधरत्नोंको दुहा ॥ ४० ॥ तिन्होंने हिमवान्‌को बछडा किया, और महागिरि सुमेरु दुहनेवाले और पर्वतोंकोही पात्र किया, उनसे पर्वतोंकी वृद्धि हुई ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! पश्चात् इसको वनस्पतियोंने दुहा, उन्होंने पत्तोंका पात्र किया, जले और कटे अंकुरोंको दुहा ॥ ४२ ॥ पिलखनको बछडा

किया, और फूला हुआ साल दुहनेवाला किया हे राजन् ! सो यह पृथ्वी धात्री और विधात्री ॥ ४३ ॥ चरित्र करनेहारी चराचर जीवोंकी योनि जीवोंका स्थानरूप सम्पूर्ण कामोंको दुहनेवाली और सम्पूर्ण खेतियोंको उत्पन्न करनेवाली ॥ ४४ ॥ समुद्रपर्यंत पृथ्वी हो गई और मधुकैटभके भेदसे प्राप्त होनेसे मेदिनी विख्यात हुई; ब्रह्मवादी इसे मेदिनी कहते हैं ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! राजा पृथुके योगसे यह पुत्रीभावको प्राप्त हुई, तबसेही इसको देवी और पृथ्वी कहते हैं, पृथुसे सोधी हुई और बांटी हुई इस पृथ्वीमें बहुतसी खेतियां ॥ ४६ ॥ और खानि होकर बढीं और पुर, शहर, ग्राम, बहुत बसे, ऐसे प्रभाववाले राजाओंमें

चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥ सर्वकामदुघा दोग्ध्री सर्वसस्यप्ररोहिणी ॥ ४४॥ आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता ॥ मधुकैटभयोः कृत्स्ना मेदसाभिपरिप्लुता ॥ तेनेयं मेदिनी देवी प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः ॥ ४५ ॥ ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैन्यस्य भारत ॥ दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते ॥ पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुन्धरा ॥ ४६ ॥ सस्याकरवती स्फीता पुरपत्तनमालिनी ॥ एवं प्रभावो वैन्यः स राजासीद्राजसत्तमः ॥ ४७ ॥ नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामैर्न संशयः ॥ ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ४८ ॥ पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः ॥ पार्थिवैश्च महाभागैः पार्थिवत्वमभीप्सुभिः ॥ ४९ ॥ आदिराजो नमस्कार्यः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ योधैरपि च विक्रान्तैः प्राप्तुकामैर्जयं युधि ॥ पृथुरेव नमस्कार्यो योधानां प्रथमो नृपः ॥ ५० ॥ यो हि योद्धा रणं याति कीर्त्तयित्वा पृथुं नृपम् ॥ सघोररूपान्संग्रामान् क्षेमी तरति कीर्तिमान् ॥ ५१ ॥ वैश्यैरपि च वित्ताढ्यैः पण्यवृत्तिमनुष्ठितैः ॥ पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशाः ॥ ५२ ॥

श्रेष्ठ पृथुराजा हुए ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! जीवसमूहोंमें यह राजा पृथुही नमस्कार और पूजन करनेके योग्य है, और वेद वेदांगके जाननेवाले महाभाग ब्राह्मणोंकोभी ॥ ४८ ॥ यह पृथुही प्रणामके योग्य है, कारण कि जिससे वह सनातन ब्रह्मयोनि है और राजा होनेकी इच्छा करते हुए महाभाग राजाओंकोभी ॥ ४९ ॥ वही महाप्रतापी आदिराजा वेनपुत्र पृथुही पूजनेके योग्य है; और युद्धमें जीतनेकी इच्छावाले महापराक्रमी योधाओंमेंभी यह पृथुही प्रथम पूज्य है ॥ ५० ॥ कारण कि जो योधा पृथुका नाम लेकर रणमें जाता है, वह घोर संग्रामको तरके कीर्ति पाता है ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! व्यापार वृत्तियोंवाले, द्रव्ययुक्त वैश्यों-

कोभी यह वृत्तिका देनेवाला बडा यशस्वी पृथुही पूज्य है ॥५२॥ इसी प्रकार त्रिवर्णकी शुश्रूषा करनेवाले शूद्रोंकोभी उत्तमताके निमित्त यह आदिराजाही सेवनीय है ॥ ५३ ॥ हे जनमेजय ! ये बछडे दोहनेवाले दूध और पात्र मैंने तुम्हारे आगे कहे, अब और क्या कहूं ॥ ५४ ॥ जो कोई आदिसे इस पृथुके चरित्रको नित्य सुने, वह पुत्र पौत्र सहित बहुत कालतक पृथ्वीमें आनंद करता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां पृथूपाख्याने पृथ्वीदोहनो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ ॥ छ ॥ ॥ जनमेजय बोले; हे तपोधन वैशंपायनजी ! सम्पूर्ण मन्वन्तर और उनकी सृष्टिको विस्तारपूर्वक वर्णन

तथैव शूद्रैः शुचिभिस्त्रिवर्णपरिचारिभिः ॥ आदिराजो नमस्कार्यः श्रेयः परमभीप्सुभिः ॥ ५३ ॥ एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च ॥ पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि ते ॥५४॥ य इदं शृणुयान्नित्यं पृथोश्चरितमादितः ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तो मोदते सुचिरं भुवि ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥६ ॥ जनमेजय उवाच ॥ मन्वन्तराणि सर्वाणि विस्तरेण तपोधन ॥ तेषां सृष्टिं विसृष्टिं च वैशम्पायन कीर्त्तय ॥१ ॥ यावन्तो मनवश्चैव यावन्तं कालमेव च ॥ मन्वन्तरं तथा ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ न शक्यो विस्तरस्तात वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ मन्वन्तराणां कौरव्य संक्षेपं त्वेव मे शृणु ॥ ३॥ स्वायंभुवो मनुस्तात मनुः स्वारोचिषस्तथा ॥ उत्तमस्तामसश्चैव रैवतः चाक्षुषस्तथा ॥ ४॥ वैवस्वतश्च कौरव्य साम्प्रतो मनुरुच्यते ॥ सावर्णिश्च मनुस्तात भौत्यो रौच्यस्तथैव च ॥ ५ ॥ तथैव मेरुसावर्णाश्चत्वारो मनवः स्मृताः ॥ अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥ ६ ॥ कीर्तिता मनवस्तात मयैते तु यथाश्रुतम् ॥ ऋषींस्तेषां प्रवक्ष्यामि पुत्रान्देवगणांस्तथा ॥ ७ ॥

करो॥ १॥ हे ब्रह्मन् ! जितने मनु हैं और जितना काल है और जितने मन्वन्तर हैं; तिनके श्रवण करनेकी मेरी इच्छा है॥ २॥वैशंपायन बोले; हे राजन् ! विस्तारसे तौ मन्वन्तरोंका वर्णन सौ वर्षमेंभी करनेको मैं समर्थ नहीं, परन्तु संक्षेपसे कहता हूं श्रवण करो ॥ ३ ॥ हे तात ! स्वायंभुव मनु, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष,॥ ४ ॥वैवस्वत, हे राजन् ! यह मनु, अब वर्तमान हैं; सावर्णि, भौत्य, रौच्य,॥ ५॥ मेरु सावर्ण यह चार मनु आगे आवेंगे, इस प्रकार बीते हुए तथा वर्तमान आनेवाले सम्पूर्ण मनु तुमसे वर्णन किये हैं ॥ ६ ॥ अब इन्होंके ऋषि और पुत्र और देवसमूहोंका वर्णन जैसा मैंने सुना था करता

हूं श्रवण करो ॥ ७ ॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, वसिष्ठ ये सात ब्रह्माके पुत्र हैं ॥ ८ ॥ उत्तर दिशामें सप्तर्षि और शान्तरजस तथा यामा नाम देवता ये सम्पूर्ण स्वायंभुव मनुमें हुए ॥ ९॥ आग्नीध्र, अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन, पुत्र ॥१०॥ ये स्वायंभुव मनुके बडे पराक्रमी दश पुत्र हुए; हे राजन् ! यह तुमसे प्रथम मन्वन्तर कहा ॥११॥ और वसिष्ठके पुत्र और्व, स्तंब, काश्यप, प्राण, बृहस्पति दत्त, निश्च्यवन ॥ १२ ॥ हे तात ! यह महाव्रत महर्षि और तुषित नाम देवता स्वारोचिष मन्वन्तरमें हुए ॥ १३ ॥ हविर्ध्र, सुकृति, ज्योति, आपमूर्ति

मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः ॥ पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः ॥८॥ उत्तरस्यां दिशि तथा राजन्सप्तर्षयोऽपरे ॥ देवाश्च शान्तरजसस्तथा प्रकृतयः परे ॥ यामा नाम तथा देवा आसन्स्वायंभुवेऽन्तरे ॥ ९ ॥ आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः ॥ ज्योतिष्मान्द्युतिमान् हव्यः सवनः पुत्र एव च ॥१०॥ मनोः स्वायंभुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः ॥ एतत्ते प्रथमं राजन्मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥ ११ ॥ और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्बः काश्यप एव च ॥ प्राणो बृहस्पतिश्चैव दत्तो निश्च्यवनस्तथा ॥ १२ ॥ एते महर्षयस्तात वायुप्रोक्ता महाव्रताः ॥ देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे ॥ १३ ॥ हविर्ध्रः सुकृतिर्ज्योतिरापोमूर्तिरयस्मयः ॥ प्रथितश्च नभस्यश्च नभ ऊर्जस्तथैव च ॥ १४ ॥ स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोस्तात महात्मनः ॥ कीर्तिताः पृथिवीपाल महावीर्यपराक्रमाः ॥ १५ ॥ द्वितीयमेतत्कथितं तव मन्वन्तरं मया ॥ इदं तृतीयं वक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप ॥१६॥ वसिष्ठपुत्राः सप्तासन्वासिष्ठा इति विश्रुताः ॥ हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा नाम सुतेजसः ॥ १७ ॥ ऋषयोऽत्र मया प्रोक्ताः कीर्त्यमानान्निबोध मे ॥ औत्तमेयान्महाराज दश पुत्रान्मनोरमान् ॥ १८ ॥

अयस्मय, प्रथित, नभस्य, नभ, ऊर्ज ॥ १४ ॥ हे राजन् ! ये महावीर्य पराक्रमवाले और महात्मा स्वारोचिष मनुके पुत्र हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् ! यह दूसरा मन्वन्तर मैंने वर्णन किया, अब तीसरा मन्वन्तर कहते हैं सुनो ॥ १६ ॥ वसिष्ठजीके वासिष्ठ नामसे प्रसिद्ध सात पुत्र हुए, और हिरण्यगर्भके ऊर्जनामसे विख्यात पुत्र तेजस्वी हुए ॥ १७ ॥ अब इनके ऋषि सुनो, ये औत्तमिके दश मनोहर पुत्र हैं ॥ १८ ॥

॥ २२ ॥

ईष, ऊर्ज, तनूज, मधु, माधव, शुचि,शुक्र, सह, नभस्य, नभ, ॥ १९ ॥ भानव यह दश पुत्र हैं, अब चौथा मन्वंतर कहते हैं सुनो ॥ २० ॥ काव्य, पृथु, अग्नि, जन्यु, धाता, कपीवान्, अकपीवान्, ये सम्पूर्ण ऋषि ॥ २१ ॥ और पुराणोंमें इनके पुत्र पौत्र भी कहे हैं, और सत्य, देवगण ये तामस मन्वन्तरमें हुए ॥ २२ ॥ हे राजन् ! अब तामस मनुके पुत्र कहते हैं; द्युति, तपस्य, सुतपा, तपोमूल, तपोधन ॥ २३ ॥ तपोरति, अकल्माष, तन्वी, धन्वी, परन्तप यह महाबलवान् तामसके दश पुत्र हुए ॥ २४ ॥ पवन देवताने कहे हैं; हे महाराज ! अब पांचवा मन्वन्तर सुनो; वेदबाहु,

ईष ऊर्जस्तनूजश्च मधुर्माधव एव च ॥ शुचिः शुक्रःसहश्चैव नभस्यो नभ एव च ॥१९॥ भानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम्॥ मन्वन्तरं चतुर्थं ते कथयिष्यामि तच्छृणु ॥२०॥ काव्यः पृथुस्तथैवाग्निर्जन्युर्धाता च भारत॥कपीवानकपीवांश्च तत्र सप्तर्षयोऽपरे ॥२१॥ पुराणे कथितास्तात पुत्राः पौत्राश्च भारत ॥ सत्या देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनोः ॥२२॥ पुत्रांश्चैव प्रवक्ष्यामि तामसस्य मनोर्नृप ॥ द्युतिस्तपस्यः सुतपास्तपोमूलस्तपोधनः ॥२३॥ तपोरतिरकल्माषस्तन्वी धन्वी परंतपः ॥ तामसस्य मनोरेते दश पुत्रा महाबलाः ॥ २४ ॥ वायुप्रोक्ता महाराज पञ्चमं तदनन्तरम् ॥ वेदबाहुर्यदुध्रश्च मुनिर्वेदशिरस्तथा ॥२५॥ हिरण्यरोमा पर्जन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमजः ॥ सत्यनेत्रस्तथाऽऽत्रेय एते सप्तर्षयोऽपरे ॥ २६ ॥ देवाश्च भूतरजसस्तथा प्रकृतयोऽपरे ॥ पारिप्लवश्च रैभ्यश्च मनोरन्तरमुच्यते ॥२७॥ अथ पुत्रानिमांस्तस्य निबोध गदतो मम ॥ धृतिमानव्ययो युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः ॥२८॥ अरण्यश्च प्रकाशश्च निर्मोहः सत्यवाक् कविः ॥ रैवतस्य मनोः पुत्राः पञ्चमं चैतदन्तरम् ॥ २९ ॥

यदुध्र, वेदशिरा ॥२५॥ हिरण्यरोमा, पर्जन्य, सोमसे उत्पन्न हुआ ऊर्ध्वबाहु, सत्यवादी आत्रेय, यह सप्त ऋषि ॥ २६ ॥ और अभूत, रजस्वभाव, पारिप्लव, रैभ्य, देवता पांचवें मन्वंतरमें हुए ॥ २७ ॥ अब रैवतके पुत्र सुनो कहते हैं; धृतिमान्, अव्यय, युक्त, तत्वदर्शी, निरुत्सक ॥ २८ ॥ अरण्य, प्रकाश, निर्मोह, सत्यवाक्, कवि, ये रैवतके पुत्र हैं हे राजन् ! यह पांचवें मन्वंतरमें कहे हैं ॥ २९ ॥

हे राजन् ! अब छटा मन्वंतर कहते हैं; भृगु, नभ, विवस्वान्, सुधामा, विरजा ॥ ३० ॥ अतिनामा; सहिष्णु ये सप्तर्षि चाक्षुष मन्वंतरमें हुए; हे तात ! अब इनके देवता सुनो ॥३१॥ और आद्य, प्रभूत, ऋभु, पृथु, लेखा, नामोंवाले पांच देवताओंके समूह हुए ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! अंगिरा ऋषिके पुत्र महात्मा महातेजवाले ॥ ३३ ॥ नड्वलाके पुत्र ऊरूसे आदि लेकर दश हुए हे राजन् ! यह छटा मन्वन्तर वर्णन किया ॥३३॥ अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र ॥ ३४ ॥ ऋचीक पुत्र जमदग्नि यह सप्तऋषि अब स्वर्गमें वतमान हैं ॥ ३५ ॥ और साध्य, रुद्र,

षष्ठं ते संप्रवक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप ॥ भृगुर्नभो विवस्वांश्च सुधामा विरजास्तथा ॥ ३० ॥ अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते वै महर्षयः ॥ चाक्षुषस्यान्तरे तात मनोर्देवानिमान् शृणु ॥३१॥ आद्याःप्रभूता ऋभवःपृथग्भावा दिवौकसः॥लेखाश्च नाम राजेन्द्र पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥ ऋषेरङ्गिरसः पुत्रा महात्मानो महौजसः ॥३२॥ नाड्लेया महाराज दश पुत्राश्च विश्रुताः॥ऊरुप्रभृतयो राजन्षष्ठं मन्वन्तरं स्मृतम् ॥३३॥ अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषिः गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च॥३४॥ तथैव पुत्रो भगवान् ऋचीकस्य महात्मनः ॥ सप्तमो जमदग्निश्च ऋषयः साम्प्रतं दिवि ॥ ३५ ॥ साध्या रुद्राश्च विश्वे च मरुतो वसवस्तथा॥आदित्याश्चाश्विनौ चैव देवौ वैवस्वतौ स्मृतौ ॥३६॥ मनोर्वैवस्वतस्यैते वर्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे ॥ इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव दश पुत्रा महात्मनः ॥३७॥ एतेषां कीर्तितानां तु महर्षीणां महौजसाम् ॥ राजपुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ३८ ॥ मन्वन्तरेषु सर्वेषु प्राग्दिशः सप्तसप्तकाः॥स्थिता लोकव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च॥३९॥मन्वन्तरे व्यतिक्रान्ते चत्वारःसप्तका गणाः ॥ कृत्वा कर्म दिवं यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥ ४० ॥

विश्वेदेवा, मरुत, वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार ये देवता वैवस्वतमें अब वर्तते हैं ॥ ३६ ॥ और इक्ष्वाकुसे आदि लेकर महात्मा दश पुत्र ये विवस्वत मनुमें हुए ॥३७॥ हे राजन् ! इन सात महर्षियोंके पुत्र और पौत्र सम्पूर्ण दिशाओंमें ॥ ३८ ॥ और सम्पूण मन्वन्तरोंमें सब दिशाओंमें सात सात लोकव्यवस्थाके निमित्त और लोकरक्षाके हेतु स्थित होते हैं ॥ ३९ ॥ और जब मन्वन्तर व्यतीत हो जाता है, तब ये चार सप्तक कार्यकरके स्वर्गमें

जो अनामय ब्रह्मलोक है वहां जाते हैं ॥ ४० ॥ और दूसरे अन्यतपके युक्त इनके स्थानपर आ जाते हैं इस प्रकारसे यह सदा आते जाते रहते हैं ॥४१ ॥ हे राजन् ! ऐसे व्यतीत हुए और वर्तमान सात मनु क्रमसे तुमसे कहे, अब आनेवाले छः मनु कहते हैं ॥४२ ॥ हे राजन् ! तिन्होंमें पांच सावर्ण संज्ञक मनु जानों, और एक वैवस्वत इनमें चार प्रजापति ब्रह्माके ॥४३॥पुत्र सावार्णि ताको प्राप्त हुए हैं, ये चारों दक्षके दौहित्र और प्रियाके पुत्र हुए, यह बडे तेजस्वी ऋषि मेरु पर्वतमें तप करते हुए ॥४४॥ रुचिप्रजापतिके पुत्र रौच्य मनु हुए;भूति नाम स्त्रीमें रुचिका सुत भौत्य मनु हुआ॥४५॥

ततोऽन्ये तपसा युक्ताः स्थानमापूरयन्त्युत ॥ अतीता वर्त्तमानाश्च क्रमेणैतेन भारत ॥४१॥ एतान्युक्तानि कौरव्य सप्तातीतानि भारत ॥ मन्वन्तराणि षट् चापि निबोधानागतानि मे ॥४२॥ सावर्णा मनवस्तात पञ्च तांश्च निबोध मे ॥ एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः ॥ ४३ ॥ परमेष्ठिसुतास्तात मेरुसावर्णतां गताः ॥ दक्षस्यैते हि दौहित्राः प्रियायास्तनया नृप ॥ महान्तस्तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः ॥४४॥ रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः स्मृतः ॥ भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नाम रुचेः सुतः ॥ ४५ ॥ अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षयः ॥ मनोरन्तरमासाद्य सावर्णस्येह तान् शृणु ॥ ४६ ॥ रामो व्यासस्तथात्रेयो दीप्तिमानिति विश्रुतः॥भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः ॥४७॥ गौतमस्यात्मजश्चैव शरद्वान् गौतमः कृपः ॥ कौशिको गालवश्चैव रुरुः काश्यप एव च ॥४८॥ एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमाः ॥ ब्रह्मणः सदृशाश्चैते धन्याः सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ४९ ॥

और आनेवाले यह सात महर्षि स्वर्गमें हैं यह सावर्णि मनुके अन्तरमें प्राप्त होंगे सो कहते हैं ॥४६॥परशुराम, व्यास, अत्रिका पुत्र दीप्तिमान, भारद्वाज, द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा ॥४७॥ गौतम पुत्र शरप्लवके कृपाचार्य, कौशिक, गालव और काश्यप रुरु॥४८॥यह सातों ब्रह्माके सदृश और धन्य महात्मा मुनिश्रेष्ठ आगे होंगे ॥४९॥

और जाति, तप, मंत्र व्याकरण इन्होंसे ब्रह्मलोकमें यह निर्मल सप्त ऋषि ॥५०॥ भविष्य वर्तमान जानकर तपसे प्रसिद्ध और चिंतक ॥ ५१ ॥ मंत्र व्याकरणसे युक्त ऐश्वर्यवान् जानकर इन्हें गृहस्थी प्रणाम करते हैं ॥५२॥ और सात गुणोंसे युक्त यह सप्तऋषि कहलाते हैं; यह दीर्घायुवाले मंत्रके कर्ता स्वामी और सूक्ष्म दृष्टिवाले हैं ॥ ५३ ॥ बुद्धिसे प्रत्यक्ष धर्मोंवाले और सतआदि युगोंमें वारंवार गोत्रोंको प्रवृत्त करनेवाले ॥ ५४ ॥ सम्पूर्ण वर्णाश्रमके प्रवर्तक यह महाभागी सप्तऋषि सत्यधर्ममें परायण हैं ॥५५॥ धर्मके शिथिल होनेमें इन्हीके वंशमें मंत्र ब्राह्मणके कर्ता द्रष्टा वारंवार उत्पन्न

अभिजात्याऽथ तपसा मन्त्रव्याकरणैस्तथा ॥ ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृताः सप्तर्षयोऽमलाः ॥५०॥ भूतभव्यभवज्ज्ञानं बुध्वा चैव तु ये स्वयम् ॥ तपसा वै प्रसिद्धा ये सङ्गताः सविचिन्तकाः ॥५१॥ मन्त्रव्याकरणाद्यैश्च ऐश्वर्यात्सर्वशश्च ये ॥ एतान् भार्यान्द्विजो ज्ञात्वा नैष्ठिकानि च नाम च ॥५२॥ सप्त ते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृताः ॥ दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दीर्घचक्षुषः ॥५३॥ बुद्ध्या प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रावर्त्तकास्तथा ॥ कृतादिषु युगाख्येषु सर्वेष्वेव पुनः पुनः ॥५४॥ प्रावर्त्तयन्ति ते वर्णानाश्रमांश्चैव सर्वशः ॥ सप्तर्षयो महाभागाः सत्यधर्मपरायणाः ॥५५॥ तेषां चैवान्वयोत्पन्ना जायन्तीह पुनः पुनः ॥ मन्त्रब्राह्मणकर्त्तारो धर्मे प्रशिथिले तथा ॥५६॥ यस्माच्च वरदाः सप्त परेभ्यश्चापराः स्मृताः ॥ तस्मान्न कालो न वयः प्रमाणमृषिभावने ॥५७॥ एष सप्तर्षिकोद्देशो व्याख्यातस्ते मया नृप ॥ सावर्णस्य मनोः पुत्रान् भविष्याञ्छृणु सत्तम ॥५८॥ वरीयांश्चावरीयांश्च संमतो धृतिमान्वसुः ॥ चरिष्णुरप्यधृष्णुश्च वाजः सुमतिरेव च ॥ सावर्णस्य मनोः पुत्रान् भविष्या दश भारत ॥ ५९ ॥ प्रथमे मेरुसावर्णेः प्रवक्ष्यामि मुनीन् शृणु ॥ मेधातिथिस्तु पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव च ॥ ६० ॥

होते हैं ॥५६॥ जिस कारणसे कि यह सात ऋषि पर अवरको वर देनेवाले हैं, इसकारण ऋषियोंके विचारमें काल और वयका प्रमाण नहीं है ॥५७॥ इसप्रकार सप्तऋषियोंका आख्यान वर्णन किया; अब सावर्णि मनुके भविष्य पुत्रोंको सुनो ॥५८॥ वरीयान्, अवरीयान्, संमत, धृतिमान, वसु, चरिष्णु, आर्य, अधृष्णु, वाज, सुमति; हे राजन्! यह सावर्ण मनुके दशपुत्र हैं ॥ ५९ ॥ अब मेरु सावर्णीको कहते हैं सुनो;

मेधातिथि, पौलस्त्य, वसु, काश्यप ॥ ६० ॥ ज्योतिष्मान्, भार्गव, द्युतिमान् अंगिरा, सवन, वासिष्ठ, अत्रिके वंशमें हव्यवाहन, पौलह यह सप्तऋषि ॥ ६१ ॥ रोहित मन्वन्तरमें हुए हैं; हे राजन्! इन्हींसे देवताओंके गण हुए हैं ॥ ६२ ॥ और दक्षके पुत्रके पुत्र रोहित प्रजापतिके देवताओंके तीन गण हुए मनुके पुत्र धृष्टकेतु, पंचहोत्र, निराकृति ॥ ६३ ॥ पृथु, श्रवा, भूरिधामा, ऋचीक, अष्टहत, गय ये प्रथम सावर्णिके तेजस्वी नौ पुत्र हुए ॥ ६४ ॥ अब दशवां मनु कहते हैं, जो इस मनुके उपरांत हुए; हविष्मान्, पौलह, सुकृति, भार्गव, आपमूर्ति, आत्रेय, आठवें वासिष्ठ ॥ ६५ ॥ और पौलस्त्य, प्रामति,

जोतिष्मान् भार्गवश्चैव द्युतिमानाङ्गिरास्तथा ॥ सवनश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्यवाहनः ॥ ६१ ॥ पौलहः सप्त इत्येते मुनयो रोहितेऽन्तरे ॥ देवतानां गणास्तत्र त्रय एव नराधिप ॥ ६२ ॥ दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः ॥ मनोः पुत्रो धृष्टकेतुः पञ्चहोत्रो निराकृतिः ॥ ६३ ॥ पृथुः श्रवा भूरिधामा ऋचीकोष्टहतो गयः ॥ प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्रा महौजसः ॥ ६४॥ दशमे त्वथ पर्याये द्वितीयस्यान्तरे मनोः ॥ हविष्मान् पौलहश्चैव सुकृतिश्चैव भार्गवः ॥ आपोमूर्तिस्तथाऽत्रेयो वासिष्ठश्चाष्टमः स्मृतः ॥६५॥ पौलस्त्यः प्रामतिश्चैव नभोगश्चैव काश्यपः ॥ अङ्गिरा नभसः सत्यः सप्तैते परमर्षयः ॥ ६६ ॥ देवतानां गणौ द्वौ तौ ऋषिमन्त्राश्च ये स्मृताः ॥ मनोः सुतोत्तमौजाश्च निकुषञ्जश्च वीर्यवान् ॥ ६७ ॥ शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः ॥ भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च दश त्वेते मनोः सुताः॥ ६८ ॥ एकादशेऽथ पर्याये तृतीयस्यान्तरे मनोः ॥ तस्य सप्त ऋषींश्चापि कीर्त्यमानान्निबोध मे ॥ ६९ ॥ हविष्मान् काश्यपश्चापि हविष्मान्यश्च भार्गवः ॥ तरुणश्च तथाऽत्रेयो वासिष्ठस्त्वनघस्तथा ॥ ७० ॥ अङ्गिराश्चोदाधिष्ण्यश्च पौलस्त्यो निश्चरस्तथा ॥ पुलहश्चाग्नितेजाश्च भाव्याः सप्त महर्षयः ॥ ७१ ॥

नभोग, काश्यप, अंगिरा, नभस, सत्य ये सात परमर्षि हुए ॥ ६६ ॥ और ऋषियोंके मंत्र देवताओंके दो गण ऋषियोंके मंत्र हुए और उनके पुत्र, सुत, उत्तम, ओज, निकुषंज महापराक्रमी हुए॥ ६७॥ शतानीक, निरामित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न, सुवर्चा ये दश पुत्र हुए ॥ ६८ ॥ और ग्यारहवें मन्वन्तरमें तीसरेके अन्तर जो सप्तऋषि कहे हैं उनको सुनो ॥ ६९ ॥ हाविष्मान्, काश्यप, भार्गव और तरुण आत्रेय, पापरहित वासिष्ठ ॥ ७० ॥ अंगिरा, पौलस्त्य, निश्चर,

पुलह यह सप्तऋषि अग्निके समान तेजस्वी हैं ॥७१॥ और ब्रह्माके पुत्र तीन देवताओंक समूह हुए; और संवर्तक, सुशर्मा, देवानीक पुरूद्वह॥७२॥ क्षेमधन्वा, दृढायु, आदश, पंडक मनु ये नौ पुत्र सावर्णिके तीसरे पुत्रके हुए ॥७३॥चौथे सावर्णोंके सात पुत्रोंको सुनो द्युति वसिष्ठके पुत्र आत्रेय सुतपा ॥७४॥ आत्रेय वंशमें अंगिरा, तपस्वी काश्यप, पौलस्त्य पौलह तपोरवि ॥७५॥ भार्गव ये सप्तऋषि हुए; तप मूर्ति और छति ब्रह्माके मानसी पुत्र पांच देवताओंक समूह हुए ॥७६॥ देववायु, अदूर, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रदेव, मित्रसेन मित्रकृत,मित्रबाहु, सुवर्चा यह बारहपुत्र मनुके हुए॥७७॥

ब्रह्मणस्तु सुता देवा गणास्तेषां त्रयः स्मृताः ॥ संवर्त्तकः सुशर्मा च देवानीकः पुरूद्वहः ॥ ७२ ॥ क्षेमधन्वा दृढायुश्च आदशः पण्डको मनुः ॥ सावर्णस्य तु पुत्रा वै तृतीयस्य नव स्मृताः ॥७३॥ चतुर्थस्य तु सावर्णे ऋषीन्सप्त निबोध मे।॥द्युतिर्वसिष्ठपुत्रश्च आत्रेयः सुतपास्तथा ॥ ७४ ॥ अङ्गिरास्तपसो मूर्तिस्तपस्वी काश्यपस्तथा ॥ तपोशनश्च पौलस्त्यः पौलहश्च तपो रविः ॥७५॥ भार्गवः सप्तमस्तेषां विज्ञेयस्तु ततो धृतिः ॥ पञ्च देवगणाः प्रोक्ता मानसा ब्रह्मणश्च ते ॥७६॥ देववायुरदूरश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः ॥ मित्रवान् मित्रदेवश्च मित्रसेनश्च मित्रकृत् ॥ मित्रबाहुःसुवर्चाश्च द्वादशस्य मनोः सुताः ॥७७॥ त्रयोदशेऽथ पर्याय भाव्ये मन्वन्तरे मनोः ॥ अङ्गिराश्चैव धृतिमान् पौलस्त्यो हव्यपस्तु यः ॥ ७८ ॥ पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सुकः ॥ निष्प्रकम्पस्त थाऽत्रेयो निर्मोहः कश्यपस्तथा ॥ ७९ ॥ सुतपाश्चैव वासिष्ठः सप्तैते तु महर्षयः॥त्रय एव गणाःप्रोक्ता देवतानां स्वयंभुवा ॥८०॥ त्रयोदशस्य पुत्रास्ते विज्ञेयास्तु रुचेःसुताः ॥ चित्रसेनो विचित्रश्च नयो धर्मभृतो धृतः ॥ ८१ ॥ सुनेत्रः क्षत्रवृद्धिश्च सुतपा निर्भयो दृढः ॥ रौच्यस्यैते मनोः पुत्रा अन्तरे तु त्रयोदशे ॥ ८२ ॥

तेरहवें होनहारे मनुमें धृतिमान, अंगिरा, पौलस्त्य हव्यरक्षक॥७८॥तत्त्ववेत्ता पौलह, उत्सुकतारहित भार्गव अत्रिके वंशमें निष्प्रकंप, निर्मोह कश्यप॥७९॥ वासिष्ठ, सुतपा ये सप्तऋषि हुए; तीन देवताओंके गण स्वयंभूने कहे हैं ॥८०॥ ये तेरह रुचिके पुत्र हुए; चित्रसेन, विश्वचित्र, नय, धर्मभूत, धृत ॥८१॥ सुनेत्र, क्षत्रवृद्धि, सुतपा, निर्भय, दृढ यह रुचिसे तेरह मनुके पुत्र त्रयोदशके अन्तरमें जानने ॥८२॥

चौदहवें भौत्य मनुमें भार्गव, अतिबाहु,शुचि आंगिरस ॥८३॥ युक्त, आत्रेय,शुक्र, वासिष्ठ, अजित, पौलह यह सात ऋषि हुए जो अन्तके ॥ ८४ ॥ प्रातःकाल उठकर इनका स्मरण करनेसे सुखकी प्राप्ति होती है; यश और आयुकी प्राप्ति मनुष्यको होती है ॥ ८५ ॥ और भूत, भविष्य, वर्तमान ऋषियोंके स्मरणसेभी इसीप्रकार फल होता है और हे राजन् ! भौत्यमनुमें पांच देवताओंके समूह हुए ॥८६॥ तुरंगभीरु,वप्र, तरस्वानुग्र, अभिमानी, प्रवीण, जिष्णु, संक्रन्द ॥ ८७ ॥ तेजस्वी सबल यह भौत्य मनुके पुत्र हुए; भौत्यके अधिकारमें कल्प पूर्ण हो जाता है ॥ ८८ ॥ हे राजन् ! इस

चतुर्दशेऽथ पर्याये भौत्यस्यैवान्तरे मनोः ॥ भार्गवो ह्यतिबाहुश्च शुचिराङ्गिरसस्तथा ॥८३॥ युक्तश्चैवं तथाऽत्रेयः शुक्रो वासिष्ठ एव च ॥ अजितः पौलहश्चैव अन्त्याः सप्तर्षयश्च त ॥ ८४ ॥ एतेषां कल्य उत्थाय कीर्तनात्सुखमेधते ॥ यशश्चाप्नोति सुमहदायुष्मांश्च भवेन्नरः ॥८५॥ अतीतानागतानां वै महर्षीणां सदा नरः ॥ देवतानां गणाः प्रोक्ताः पञ्च वै भरतर्षभ ॥८६॥ तुरङ्गभीरु वप्रश्च तरस्वानुग्र एव च ॥ अभिमानी प्रवीणश्च जिष्णुः संक्रन्दनस्तथा ॥८७॥ तेजस्वी सबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः ॥ भौत्यस्यैवाधिकारे तु पूर्णे कल्पस्तु पूर्यते ॥ ८८ ॥ इत्येते नामतोऽतीता मनवः कीर्तिता मया ॥ तैरियं पृथिवी तात समुद्रान्ता सपत्तना ॥ ८९ ॥ पूर्णं युगसहस्रं तु परिपाल्या नराधिप ॥ प्रजाभिश्चैव तपसा संहारस्तेषु नित्यशः ॥९०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि मन्वन्तरवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥ जनमेजय उवाच ॥ मन्वन्तरस्य संख्यानं युगानां च महामते ॥ ब्रह्मणोऽह्नः प्रमाणं च वक्तुमर्हसि मे द्विजः ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच॥अहोरात्रं भजेत्सूर्यो मानवं लौकिकं परम् ॥ तासुपादाय गणनां शृणु संख्यामरिन्दम ॥ २ ॥

प्रकार होनहार मनुका तुह्मारे आगे कीर्तन किया; इन्होंनेही यह पृथ्वी समुद्रपर्यन्त नगरोंसहित ॥८९॥ सहस्र युग पर्यन्त पालना की है. और जपसे प्रजाओंके द्वारा संहार होता है ॥९०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वभाषायां मनुवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ जनमेजय बोले; हे भगवन् ! हे महामतिमान ! अब मन्वन्तरोंके दिन और युगोंके दिन ब्रह्माके दिनोंका प्रमाण आप वर्णन करो ॥ १ ॥ यह सुन वैशंपायनजी बोले–हे राजन् !

सूर्यसे मनुष्योंका दिन रात है; तिस दिनरातको लेकर गणना करते हैं; हे राजन् ! तुम सुनो ॥ २ ॥ पंद्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है और तीस
काष्ठाओंकी एक कला और तीस कलाओंका एक मुहूर्त और तीस मुहूर्तोंका ॥ ३ ॥ मनुष्योंका एक दिनरात बुद्धिमानोंने कहा है; हे नृप !
चंद्रमा-सूर्यकी गतिको अहोरात्र कहते हैं, यही सूर्यके उदयअस्तका भूमंडलमें जो मेरुके चारों ओर है दिनरात कहा है ॥ ४ ॥ और पंद्रह अहोरात्रोंका
एक पक्ष होता है दो पक्षोंका एक मास कहा है और दो महीनोंकी एक ऋतु होती है ॥ ५ ॥ और तीन ऋतुओंका एक अयन और दो अयनोंका एक
वर्ष कहलाता है; यह अयन दक्षिणायन और उत्तरायण नामसे विख्यात है, तत्त्वदर्शियोंने कहे हैं ॥६॥ मनुष्योंके दो पक्षोंके एक महीनेकी पितरोंकी एक

निमेषैः पञ्चदशभिः काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला ॥ त्रिंशत्कलो मुहूर्त्तस्तु त्रिंशता तैर्मनीषिणः ॥ ३ ॥ अहोरात्रमिति प्राहुश्चन्द्रसूर्यगतिं
नृप ॥ विशेषेण तु सर्वेषु अहोरात्रे च नित्यशः ॥ ४ ॥ अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिशब्दितः ॥ द्वौ पक्षौ तु स्मृतो मासो मासौ
द्वावृतुरुच्यते ॥५॥ अब्दं द्व्ययनमुक्तं च अयनं त्वृतुभिस्त्रिभिः ॥ दक्षिणं चोत्तरं चैवं संख्यातत्त्वविशारदैः ॥६॥ मानेनानेन यो मासः
पक्षद्वयसमन्विताः ॥ पितॄणां तदहोरात्रमिति कालविदो विदुः ॥ ७ ॥ कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लपक्षस्तु शर्वरी ॥ कृष्णपक्षे त्वहः श्राद्धं
पितॄणां वर्त्तते नृप ॥ ८ ॥ मानुषेण तु मानेन यो वै संवत्सरः स्मृतः ॥ देवानां तदहोरात्रं दिवा चैवोत्तरायणम् ॥ दक्षिणायनं स्मृता
रात्रिः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थकोविदैः ॥ ९ ॥ दिव्यमब्दं दशगुणमहोरात्रं मनोः स्मृतम् ॥ अहोरात्रं दशगुणं मानवः पक्ष उच्यते ॥ १० ॥
पक्षो दशगुणो मासो मासैर्द्वादशभिर्गुणैः ॥ ऋतुर्मनूनां संप्रोक्तः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थदर्शिभिः ॥ ऋतुत्रयेण त्वयनं तद्द्वयेनैव वत्सरः ॥ ११ ॥

दिनरात होती है, यह कालवेत्ता कहते हैं ॥७॥तिनमें कृष्णपक्ष पितरोंका दिन है और शुक्लपक्ष रात्रि है; हे राजन् ! कृष्णपक्षमें पितरोंका अहःश्राद्ध वर्तता
है ॥ ८॥ और मनुष्योंके एक वर्ष प्रमाणका देवताओंका एक दिनरात होता है, उसमें उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रि कहाती है यह तत्त्ववेत्ताओंने
कहा है ॥ ९॥ देवताओंके दश वर्षकी मनुकी एक रात होती है, और दश दिनोंका मनुका एक पक्ष होता है ॥ १०॥ दश पक्षोंका एक महीना होता है
और बारह महीनोंकी एक ऋतु विद्वानोंने कही है; और तीन ऋतुओंका एक अयन और दो अयनोंका एक वर्ष होता है ॥ ११ ॥

॥ २६ ॥

चार सहस्र वर्षोंका कृतयुग, और चार सौ वर्षकी संध्या और इतनाही उसका संध्यांश है ॥ १२ ॥ तीन सहस्र वर्ष त्रेता और तीन सौ वर्षकी संध्या और इतनाही संध्यांश है ॥ १३ ॥ इसीप्रकार दो सहस्र वर्षका द्वापर, और दोसौ वर्षकी उसकी संध्या और इतनाही संध्यांश है ॥ १४ ॥ और एक सहस्र वर्षका कलियुग और सौ वर्षकी इसकी संध्या और इसीप्रकारका संध्यांश है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! यह बारह सहस्र युगोंकी संख्या कही है, यह देवताओंके मानसे युगसंख्याजानननी ॥१६॥ हे राजन् ! कृत, त्रेता, द्वापर, कलियुग ये इकहत्तर चौकडीका ॥१७॥ एक मन्वन्तर होता है और इसीको

चत्वार्यैव सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् ॥ तावच्छती भवेत्सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा नृप ॥१२॥ त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेता स्यात्प रिमाणतः ॥ तस्याश्च त्रिशती संध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ १३ ॥ तथा वर्षसहस्रे द्वे द्वापरं परिकीर्तितम् ॥ तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ १४ ॥ कलिर्वर्षसहस्रं च संख्यातोऽत्र मनीषिभिः ॥ तस्यापि शतिका सन्ध्या सन्ध्यांशश्चैव तद्विधः ॥१५॥ एषा द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्त्तिता ॥ दिव्येनानेन मानेन युगसंख्यां निबोध मे ॥ १६ ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुर्युगी ॥ युगं तदेकसप्तत्या गणित नृपसत्तम ॥ १७ ॥ मन्वन्तरामात प्रोक्तं संख्यानार्थविशारदैः ॥ अयनं चापि तत्प्रोक्तं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे ॥ १८ ॥ मुनः प्रलीयते यत्र समाप्ते चायने प्रभोः ॥ ततोऽपरो मनुः कालमेतावन्तं भवत्युत ॥ १९ ॥ समतीतेषु राजेन्द्र प्रोक्तः संवत्सरः स वै ॥ तदेव चायुतं प्रोक्तं मुनिना तत्त्वदर्शिना ॥ २० ॥ ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं कल्पश्चेति स कथ्यते ॥ सहस्रयुगपर्यन्ता या निशा प्रोच्यते बुधैः ॥ २१ ॥ निमज्जत्यप्सु यत्रोर्वी सशैलवनकानना ॥ तस्मिन्युगसहस्रे तु पूर्णे भरतसत्तम ॥ २२ ॥

अयन कहते हैं, और जब दक्षिण और उत्तर दो मनु हो जावें ॥१८॥ तब मनुका लय हो जाता है; पश्चात् इतनेही काल दूसरा मनु रहता है ॥१९॥ हे राजन् ! दश सहस्र मनु बीतने पर ब्रह्माका एक वर्ष तत्त्व जाननेवाले मुनियोंने कहा है ॥ २० ॥ ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु बर्तते हैं, और इसीका नाम कल्प भी है, इतनेही सहस्र युग पर्यन्तकी रात्रि है॥२१॥इसमें पर्वत, वन, उपवनसहित पृथ्वी डूब जाती है; हे राजन् ! इस प्रकार चार

युगोंका एक सहस्र वीतनेपर ॥ २२ ॥ उसे निश्शेश कल्प कहते हैं, ऐसे कुछेक अधिक सत्तर युगोंको मन्वन्तर कहते हैं; ॥ २३ ॥ इसप्रकार सतयुग, त्रेतादि, युक्त इकहत्तर चौकडी युगका एक मन्वन्तर होता है,इसप्रकार चौदह मनु वर्णन किये; ये चौदह मनु कीर्तिके बढानेहारे हैं ॥ २४ ॥ यह वेद और पुराणोंमें विख्यात है, यह सब नारायणसे प्रगट होते हैं, यह प्रजापति हैं, इसका कीर्तन बडाईके योग्य है ॥ २५ ॥ मन्वन्तरोंमें संहार और संहारोंके अंतमें संभव होता है, इनका अंतर सौ वर्षसे भी नहीं कह सक्के ॥ २६ ॥ हे भारत! प्रजाओंका संहार और अन्तर वर्णन नहीं होसक्का

ब्राह्मे दिवसपर्यन्ते कल्पो निःशेष उच्यते ॥ युगानि सप्ततिस्तानि साग्राणि कथितानि ते ॥२३॥ कृतत्रेतानि बद्धानि मनोरन्तर मुच्यते ॥ चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्द्धनाः ॥२४॥ वेदेषु सपुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः ॥ प्रजानां पतयो राजन् धन्यमेषां प्रकीर्त्तनम् ॥२५॥ मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु संभवाः ॥ न शक्यमन्तरं तेषां वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ २६ ॥ विसर्गस्य प्रजानां वै संहारस्य च भारत ॥ मन्वन्तरेषु संहाराः श्रूयन्ते भरतर्षभ ॥२७॥ सशेषास्तत्र तिष्ठन्ति देवाः सप्तर्षिभिः सह ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समाहिताः ॥ २८ ॥ पूर्णं युगसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते ॥ तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यतेजसा ॥२९॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्विभुम् ॥ योगं योगीश्वरं देवमजं क्षेत्रज्ञमच्युतम् ॥ प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥३०॥ यः स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः ॥ अव्यक्तः शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥ ३१ ॥

और मन्वन्तरोंमें जो संहार सुना जाता है ॥ २७ ॥ वहां शेष, देवता, महर्षि, तप, ब्रह्मचर्य, श्रुति और शुद्धके सहित रहते हैं ॥ २८ ॥ जब सहस्र युग पूर्ण हो जाते हैं, तब निश्शेष कल्प होता है; इस समय सम्पूर्ण भूत सूर्यके तेजसे दग्ध होकर ॥ २९ ॥ ब्रह्माको आगे कर आदित्यके गणोंसहित सर्वव्यापक, योगस्वरूप, योगीश्वर,देव, अजन्मा, क्षेत्रज्ञ, अच्युत देवेश्वरहरि देवताओंमें श्रेष्ठ नारायण प्रभुमें प्रवेश कर जाते हैं ॥ ३० ॥ जो कल्पान्तमें वारंवार सम्पूर्ण भूतोंके रचनेहारे, अव्यक्त, शाश्वत, नारायण हैं तिनकाही यह सम्पूर्ण जगत् है; उनमेंही प्रविष्ट हो जाता है ॥ ३१ ॥

पश्चात् सम्पूर्ण जगत्के मिलनेपर रात्रि उपस्थित होती हैं, तब ब्रह्माजी सहस्र वर्ष नारायणके उदरमें निद्रित होते हैं॥ ३२॥इतनेही कालकी रात्रि होती हैं, जिसमें ब्रह्माजी निद्रायोगको प्राप्त होकर शयन करते हैं॥ ३३॥जब सहस्र युग बीतने पर रात्रि समाप्त होती है,तब ब्रह्माजी उठते हैं ॥३४॥ और फिर सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छासे सृष्टि रचनेमें मन लगाते हैं, वही पुराण, स्मृति और वही वृत्तान्त,वही चेष्टित ॥३५॥ और वही देवता, वही देवताओंके स्थान सम्पूर्ण वैसेही हो जाते हैं, और आदित्यकी किरणोंसे दग्ध हुए सम्पूर्ण भूत ॥३६॥ देवर्षि,यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, उरग,

तत्र संवर्त्तते रात्रिः सकलैकार्णवे तदा ॥ नारायणोदरे निद्रां ब्राह्मं वर्षसहस्रकम् ॥ ३२ ॥ तावन्तमिति कालस्य रात्रिरित्यभिशब्दिता ॥ निद्रायोगमनुप्राप्तो यस्यां शेते पितामहः ॥३३॥ सा च रात्रिरपक्रान्ता सहस्रयुगपर्यया ॥ तदा प्रबुद्धो भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥३४॥ पुनः सिसृक्षया युक्तः सर्गाय विदधे मनः ॥ सैव स्मृतिः पुराणेय तद्वृत्तं तद्विचेष्टितम् ॥ ३५ ॥ देवस्थानानि तान्येव केवलं च विपर्ययः ॥ ततो दग्धानि भूतानि सर्वाण्यादित्यरश्मिभिः ॥३६॥ देवर्षियक्षगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ जायन्ते च पुनस्तात युगे भरतसत्तम ॥ ३७ ॥ यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये॥दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्राह्मीषु रात्रिषु ॥३८॥ निष्क्रमित्वा प्रजाकारः प्रजापतिरसंशयम् ॥ ये च वै मानवा देवाः सर्वे चैव महर्षयः ॥ ३९ ॥ ते संगताः शुद्धसंगाःशश्वद्धर्मविसर्गतः ॥ न भवन्ति पुनस्तात युगे भरतसत्तम ॥४०॥ तत्सर्वं क्रमयोगेन कालसंख्याविभागवित्॥ सहस्रयुगसंख्यानं कृत्वा दिवसमीश्वरः ॥ ४१ ॥

राक्षस ये सब युगकी आदिमें उत्पन्न हो जाते हैं॥३७॥ऋतुके लक्षण शीत उष्णता जो अनेक प्रकारकी होती,हैं वे युगकी आदिमें सब दीखती हैं, ब्रह्मरात्रि बीतने पर॥३८॥ प्रजा रचनेहारे ब्रह्मा नारायणसे निकल कर रचना करते हैं, जो सम्पूर्ण मनुष्य देवता और सब महर्षि हैं ॥ ३९ ॥ वे सब जो ब्रह्मके संग एकीभावको प्राप्त हुए हैं,शुद्ध संगवाले हैं,जिन्होंने सृष्टिके गुण त्याग दिये हैं;हे भरतश्रेष्ठ । उनका फिर युगके प्रारम्भमें जन्म नहीं होता॥४०॥ हे राजन् ! इसीप्रकार कालसंख्याका जाननेहारा ईश्वर फिर ऐसेही सहस्र युगकी संख्याका दिन बनाकर ॥ ४१ ॥

और फिर सहस्र वर्षकी रात्रि बनाता है, इसी प्रकार वारंवार भूतोंको रचता है और संहार करता है॥४२॥स्थूल सूक्ष्मरूप महादेव स्वामी नारायण हैं और हे भरतश्रेष्ठ! अब वृष्णिवंशके प्रसंगसे पुरातन वर्तमान नारायणके अंश महाकांतिमान् वैवस्वतके विसर्गका वर्णन करूंगा॥४३॥४४॥जिन वृष्णियोंमें असुरोंके नाशके अर्थ और सम्पूर्ण लोकोंके हितके अर्थ हरि भगवान् ने जन्म लिया है॥४५॥इतिश्रीम०हरि०मन्वन्तरानुकीर्तनं नाम अष्टमोऽध्यायः॥८॥ वैशंपायनजी बोले; हे राजन् ! दक्षकी पुत्रीके कश्यपजीसे विवस्वान् जन्मे,तिन विवस्वानकी त्वष्टाकी पुत्री संज्ञा भार्या हुई ॥१॥सुरेणु नामसे त्रिलो

रात्रिं युगसहस्रान्तां कृत्वा च भगवान्विभुः ॥ संहरत्यथ भूतानि सृजते च पुनःपुनः॥४२॥व्यक्ताव्यक्तो महादेवो हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ तस्य ते कीर्तयिष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥४३॥ विसर्गं भरतश्रेष्ठ साम्प्रतस्य महाद्युते ॥ वृष्णिवंशप्रसङ्गेन कथ्यमानं पुरातनम् ॥४४॥ यत्रोत्पन्नो महात्मा स हरिर्वृष्णिकुले प्रभुः ॥ सर्वासुरविनाशाय सर्वलोकहिताय च ॥४५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥८॥ वैशम्पायन उवाच॥विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यामरिंदम॥तस्य भार्याभवत्संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वतः ॥ १ ॥ सुरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भामिनी ॥ सा वै भार्या भगवतो मार्त्तण्डस्य महात्मनः ॥२॥ भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी॥संज्ञाना स्त्री सुतपसा दीप्तेनेह समन्विता ॥३॥ आदित्यस्य हि तद्रूपं मण्डलस्य सुतेजसा॥ गात्रेषु परिदग्धं वै नातिकान्तमिवाभवत् ॥४॥ न खल्वयं मृतोण्डस्थ इति स्नेहादभाषत ॥ अज्ञानात्कश्यपस्तस्मान्मार्त्तण्ड इति चोच्यते ॥ ५ ॥

कीमें विख्यात हुई और महात्मा मार्तण्ड भगवान् सूर्यकी यह भार्या हुई॥२॥सुन्दर तपऔर तेजसे युक्त रूपयौवनवाली सुरेणु भर्ताके रूपसे नहींप्रसन्न हुई,और संज्ञानामसे विख्यात यही स्त्री अपने स्वामीके तपसे दीप्तिमान्३तथा उन आदित्यमंडलके तेजसे उसका रूप गात्रोंमें दग्ध हो गया,सो अत्यन्त मनोहर नहीं हुआ॥४॥तब स्नेहसे बोली;यह अंडस्थ मरा नहीं इसीकारण मार्तंड नाम होता हुआ,एक समय बुध अदितिके पास भिक्षा लेने गये;तौ अदितिको गर्भके गौरवसे भिक्षा देनेमें देर हुई तब बुधने शाप दिया,कि यह गर्भ मृतक हो जाय,तब अदितिको व्याकुल देख अपनी सामर्थ्यसे कश्यपजी शाप दूर करते

हुए बोले, कि यह मरा नहीं है किन्तु अण्डमें स्थित है, इसकारण अदितिके अज्ञानसे (कि यह मेरा अण्ड मृतक हो गया) मार्तण्ड कहलाया ॥ ५ ॥ हे तात ! विवस्वानका तेज अधिक था जिससे कि इनके तेजसे त्रिलोकी कंपित होती थी॥६॥हे राजन् ! संज्ञाके तप करनेवालोंमें श्रेष्ठ सूर्यने तीन सन्तान उत्पन्न किये, एक कन्या और दो पुत्र हुए ॥७॥ जिनमें बडे वैवस्वत मनु श्राद्धदेव प्रजापति हुए, यमराज और यमुना यह संग उत्पन्न हुए॥८॥संज्ञाने सूर्यका दुःसह रूप देखकर उसे न सहकर अपनी छायाको निर्माण किया अर्थात् सूर्यका तेज इतना अधिक था कि संज्ञा उसको नहीं सह सकती थी, तब उसने अपनी छायासे मायामयी स्त्री बनाई ॥ ९ ॥ हे राजन् ! पीछे यह मायावती संज्ञा तिसकी छायासे उत्पन्न होकर अंजलि बांध संज्ञाके आगे स्थित

तेजस्त्वभ्यधिकं तात नित्यमेव विवस्वतः ॥ येनातितापयामास त्रीँल्लोकान्कश्यपात्मजः ॥६॥ त्रीण्यपत्यानि कौरव्य संज्ञायां तपतां वरः ॥ आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती ॥७॥ मनुर्वैवस्वतः पूर्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः ॥ यमश्च यमुना चैव यमजौ संबभूवतुः ॥८॥ सा विवर्णं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः ॥ असहन्ती च स्वां छायां सवर्णां निर्ममे ततः ॥९॥ मायामयी तु सा संज्ञा तस्याश्छाया समुत्थिता ॥ प्राञ्जलिः प्रणता भूत्वा छायां संज्ञा नरेश्वर॥१०॥उवाच किं मया कार्यं कथयस्व शुचिस्मिते ॥ स्थिताऽस्मि तव निर्देशे शाधि मां वरवर्णिनि ॥११॥ संज्ञोवाच ॥ अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः ॥ त्वयेह भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विकारया ॥१२ इमौ च बालकौ मह्यं कन्या चेयं सुमध्यमा ॥ संभाव्यास्ते न चाख्येयमिदं भगवते क्वचित् ॥१३॥ छायोवाच ॥ आकचग्रहणाद्देवि आशापान्नैव कर्हिचित् ॥ आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखम् ॥ १४ ॥

होकर ॥ १० ॥कहने लगी कि; हे भामिनी ! मुझे आज्ञा करो म वैसेही करूंगी ॥११॥ हे वरवर्णिनी ! मैं तुह्मारी आज्ञामें स्थित हूं, मुझे आज्ञा दो, संज्ञा कहने लगी कि, हे छाये। तेरा कल्याण हो, मैं अपने पिताके भवनमें जाती हूं और तू विकारसे रहित होकर मेरे भवनमें निवास कर॥१२॥ये दोनों मेरे पुत्र और इस कन्याको तुझे रक्षा करनी योग्य है और हे छाये ! भगवान् सूर्यके आगे यह वृत्तान्त मत कहना ॥१३॥ यह सुन छाया बोली; हे देवि ! तुम सुखपूर्वक पधारो, जबतक कोई मेरे केशोंको ग्रहण नहीं करेगा, और शाप नहीं देगा, तबतक मैं किसीसे नहीं कहूंगी ॥ १४ ॥

वैशंपायन बोले; यह वचन सुन संज्ञा बोली कि यही होगा, पीछे यह तपस्विनी लज्जितसी हुई, त्वष्टा पिताके स्थानमें चली गई ॥ १५ ॥ जब यह पिताके समीप गई तब पिताने उसे घुडका और वारंवार कहा कि तु अपने स्वामीके पास जा ॥ १६ ॥ तब यह अपना रूप छिपाय घोडीका रूप धारण कर और उत्तरमें कुरुदेशोंमें जाके वहां तृण चरने लगी ॥ १७ ॥ और यहां आदित्यने इसको संज्ञाही जानकर इसमें अपने समान पुत्र उत्पन्न किये ॥ १८ ॥ हे तात ! यह पूर्वज मनुके समान उत्पन्न होनेका कारण यह सावर्ण मनु कहाये ॥ १९ ॥ उसी दिनसे इनकी

वैशम्पायन उवाच ॥ समादिश्य सवर्णां तां तथेत्युक्ता च सा तया ॥ त्वष्टुः समीपमगमद् व्रीडितेव तपस्विनी ॥१५॥ पितुः समीपगा सा तु पित्रा निर्भर्त्सिता तदा ॥ भर्तुः समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनः पुनः ॥१६॥ अगच्छद्वडवा भूत्वाऽऽच्छाद्य रूप मनिन्दिता ॥ कुरूनथोत्तर गत्वा तृणान्येव चचार ह ॥१७॥ द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्तयन् ॥ आदित्यो जनया मास पुत्रमात्मसमं तदा ॥१८॥ पूर्वजस्य मनोस्तात सदृशोऽयमिति प्रभुः सवर्णत्वान्मनोभूयः सावर्ण इति चोक्तवान् ॥ १९ ॥ मनुरेवाभवन्नाम्ना सावर्ण इति चोच्यते ॥ द्वितीयो यः सुतस्तस्याः स विज्ञेयः शनैश्चरः ॥ २० ॥ संज्ञा तु पार्थिवी तात स्वस्य पुत्रस्य वै तदा ॥ चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजेषु वै ॥ २१ ॥ मनुस्तस्याक्षमत्तत्तु यमस्तस्या न चक्षमे ॥ तां सरोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥ यदा संतर्जयामास संज्ञां वैवस्वतो यमः ॥ २२॥ तं शशाप ततः क्रोधात्सावर्णं जननी नृप ॥ चरणः पततामेष तवेति भृशदुःखिता ॥ २३ ॥

सावर्ण मनु संज्ञा हुई, और दूसरा पुत्र शनैश्चर हुआ ॥२०॥ हे राजन् ! यह संज्ञा पार्थिवी होनेके कारण अपने पुत्रोंसे अधिक प्रेम करती थी, और संज्ञाके पुत्रोंसे ऐसा नहीं करती थी॥२१॥मनु तो इस सब बातको सह लेते थे, परन्तु यमराजने यह बात नहीं सही, और पीछे इन्होंने कोपकर भावीके वश हो बालभावसे तिसको चरणसे ताडन किया ॥२२॥ तब इस छायाने दुःखित होकर शाप दिया कि, अरे ! तेरा चरण टूट जाय ॥ २३ ॥

पीछे यमने छायाके वाक्योंसे कंपित और शापसे उद्विग्न हो पिताके आगे अंजलि बांध सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा॥२४॥कि हे भगवन्! यह मेरा शाप दूर करो और हे भगवन् ! माताको सम्पूर्ण पुत्रोंमें बराबर वर्तना उचित है ॥ २५ ॥ सो यह हमको छोडकर छोटोंको प्यार करती है, सो मैंने इनको चरण तो उठाया परन्तु देहमें मारा नहीं ॥ २६ ॥ बाल्यस्वभाव अथवा अज्ञानसे जो कुछ मैंने किया है, वह आप क्षमा कीजिये, माताने मुझसे कहा हे पुत्र ! जिस कारणसे कि तुमने अपनी पूजनीय माताका तिरस्कार किया है ॥ २७ ॥ इस कारण यह तुम्हारा चरण अवश्य गिर पडेगा,

यमस्तु तत्पितुः सर्वं प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत्॥भृशं शापभयोद्विग्नः संज्ञावाक्यप्रतोदितः॥२४॥ शापोऽयं विनिवर्तेत प्रोवाच पितरं तदा॥ मात्रा स्नेहेन सर्वेषु वर्तितव्यं सुतेषु वै ॥२५॥ सेयमस्मानपाहाय यवीयांसं बुभूषति ॥ तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः ॥ २६ ॥ बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षन्तुमर्हति॥यस्मात्ते पूजनीयाहं लङ्घिताऽस्मि त्वया सुत ॥२७॥ यस्मात्त वैष चरणःपतिष्यति न संशयः॥अपत्यं दुरपत्यं स्यान्नाम्बा कुजननी भवेत् ॥२८॥ शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपतांवर ॥ तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते ॥२९॥ विवस्वानुवाच ॥असंशय पुत्र महद्भविष्यत्यत्र कारणम् ॥ येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥३०॥ न शक्यमन्यथा कर्तुं मया मातुर्वचस्तव ॥ कृमयो मांसमादाय यास्यन्ति धरणीतलम् ॥३१॥ तव पादान्महाप्राज्ञ ततस्त्वं प्राप्स्यसे सुखम् ॥ कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति ॥ ३२ ॥

सो हे पिताजी ! चाहें संतान खोटी हो जाय,परन्तु माता कुमाता नहीं होती॥२८॥हे लोकेश ! हे तपस्या करनेवालोंमें श्रेष्ठ!मुझे माताने शाप दिया है;हे इन्द्रियपति ! आपके प्रसादसे मेरा चरण न गिरे॥२९॥इतना वचन सुनकर विवस्वान् बोले कि हे पुत्र ! अवश्यही इसमें कोई बडा कारण होगा जिससे धर्मज्ञ और सत्यवादी तुमको क्रोध उत्पन्न हो गया॥३०॥मैं तुम्हारी माताके वचनकोभी अन्यथा नहीं कर सक्ता, कृमि तुम्हारे पैरसे मांस ले लेकर पृथ्वीमें जायगी ३१ ॥ हे महाभाग ! इसके उपरान्त तुम सुखको प्राप्त होगे, इसप्रकार तुम्हारी माताका वचनभी सत्य होगा ॥ ३२ ॥

शापके परिहारसे तभी तुम रक्षित होगे, इसप्रकार यमको कहकर सूर्य भगवानने छायासे जाकर कहा कि हे प्रिये ! तुल्य पुत्रोंमें ॥ ३३ ॥ तू न्यून स्नेह क्यों करतीहै, यह वचन सुन छायाने इस वार्ताको गुप्त करनेके निमित्त कुछ उत्तर नहीं दिया ॥३४॥तब विवस्वानने आत्माको समाधान कर योगसमाधि से सब सत्य देख लिया; तब हे राजन् ! उसे शाप देने और नाश करनेको तैयार हुए ॥३५॥ और उसके केश पकड लिये, यह समय होतेही छायाने सम्पूर्ण वृत्तान्त कह दिया ॥ ३६ ॥तब विवस्वान् सुनतेही क्रोधयुक्त होकर दग्ध करनेकी इच्छासे त्वष्टाके निकट गये,त्वष्टाने इनका

शापस्य परिहारेण त्वं च त्राता भविष्यसि॥आदित्योऽथाब्रवीत्सञ्ज्ञां किमर्थं तनयेषु वै ॥३३॥ तुल्येष्वभ्यधिकःस्नेहःक्रियतेऽति पुनः पुनः ॥ सा तत्परिहरन्ती तु नाचचक्षे विवस्वते॥३४॥ आत्मानं सुसमाधाय योगात्तथ्यमपश्यत॥तां शप्तुकामो भगवन्ना शाय कुरुनन्दन ॥ ३५ ॥ मूर्द्धजेषु च जग्राह समयेऽतिगतेऽपि च ॥ सा तत्सर्वं यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वते ॥३६॥ विवस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्यगात्॥त्वष्टा तु तं यथान्यायमर्चयित्वा विभावसुम्॥निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास वै तदा ॥३७॥ त्वष्टोवाच ॥ तवातितेजसाविष्टमिदं रूपं न शोभते ॥ असहन्ती च तत्संज्ञा वने चरति शाड्वले ॥३८॥ द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम् ॥ नित्यं तपस्यभिरतां वडवारूपधारिणीम् ॥३९॥ पर्णाहारां कृशां दीनां जटिलां ब्रह्मचारिणीम् ॥ हस्ति-हस्तपरिक्लिष्टां व्याकुलां पद्मिनीमिव ॥ श्लाघ्यां योगबलोपेतां योगमास्थाय गोपते ॥ ४० ॥

विधिसे पूजन कर जलानेवाले क्रोधको शांत कर इसप्रकार कहा ॥३७॥ त्वष्टा कहने लगे कि; हे भगवन् ! आपका यह रूप अधिक तेजसे शोभाको प्राप्त नहीं होता, सो आपके तेजको नहीं सहती हुई संज्ञा घोडीबनकर हरियालीमें चरती है ॥३८॥और आप उस शुभचारिणी नित्य तप करनेवाली और घोडीका रूप धारे फिरती हुई अपनी श्रेष्ठ भार्याको देखेंगे ॥ ३९ ॥ पत्तोंका भोजन करनेवाली, कृश और दीन जटाको धारण किये, ब्रह्मचारिणी, हाथीकी सूण्डसे व्याकुल करी पद्मिनीके समान अति दुःखी श्लाघाके योग्य और योगबलसे संयुक्त ऐसी स्त्रीको आज देखोगे॥४०॥

हे देवेश सूर्य ! जो मेरे मतको आप श्रेष्ठ जानो तो हे शत्रुनाशक ! आपके रूपकी मैं निवृत्ति कर दूं और मनोहर बना दूं ॥४१॥ सूर्यका रूप तिरछा ऊंचा समान था, इसीसे यह देव अग्नि रूपसे विराजते थे॥४२॥इसकारण प्रजापतिने तुष्टाके वचनको अच्छा माना और रूप सिद्धिके निमित्त उसे आज्ञा दी ॥ ४३ ॥ तब त्वष्टा मार्तण्ड विवस्वानके निकट जाकर उस तेजको भ्रमण यंत्रमें आरोपण कर रूपतेजको सूक्ष्म करते हुए ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! पहले तेजकी अल्पतासे तिनका निर्वासित रूप हुआ और मनोहर कांतिसेभी मनोहर रूप पहलेसेभी अधिक शोभित हुआ ॥ ४५ ॥ और जबसे उन

अनुकूलं तु देवेश यदि स्यान्मम तन्मतम् ॥ रूपं निर्वतयाम्यद्य तव कान्तमरिन्दम ॥४१॥ रूपं विवस्वतश्चासीत्तिर्यगूर्ध्वसमं तु वै ॥ तेनासौ संभृतो देवरूपेण तु विभावसुः ॥४२॥ तस्मात्त्वष्टुः स वै वाक्यं बहु मेने प्रजापतिः॥समनुज्ञातवांश्चैव त्वष्टारं रूपसिद्धये ॥४३॥ ततोऽभ्युपगमात्त्वष्टा मार्तण्डस्य विवस्वतः ॥ भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातयामास भारत ॥ ४४ ॥ ततो निर्भासितं रूपं तेजसा संहृतेन वै॥ कान्तात्कान्ततरं द्रष्टुमधिकं शुशुभे तदा ॥४५॥ मुखे निर्वर्तितं रूपं तस्य देवस्य गोपतेः ॥ ततः प्रभृति देवस्य मुखमासीत्तु लोहितम् ॥ मुखरागं तु यत्पूर्वं मार्त्तण्डस्य मुखच्युतम् ॥४६॥ आदित्या द्वादशैवेह संभूता मुखसंभवाः ॥ धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ॥४७॥ इन्द्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमस्तथा ॥ ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यजः ॥४८॥ हर्षं लेभे ततो देवो दृष्ट्वाऽदित्यान् स्वदहेजान् ॥ गन्धैः पुष्पैरलंकारैर्भास्वता मुकुटेन च ॥ ४९ ॥

देवका तेज मुखसे पृथक् किया है, तबसे उन देवका मुख लाल हुआ है; और सूर्यके मुखके प्रथम च्युतरूप तेजसे ॥४६॥ बारह आदित्य उत्पन्न हुए, इस कारण सब आदित्योंकी उत्पत्ति सूर्यके मुखसे मानी गई है;धाता १ अर्यमा २ मित्र ३ वरुण ४ अंश ५ भग ६॥४७॥इन्द्र ७ विवस्वान् ८ पूषा ९ पर्जन्य १० त्वष्टा ११ विष्णु १२ ॥ ४८ ॥ ये उपजनेवालोंके नाम हैं; इन आदित्यको अपने देहसे उपजे हुए देख सूर्य अतिआनंदको प्राप्त हुए; और गंध, पुष्प, आभूषण, रत्नोंसे जटित मुकुट से ॥ ४९ ॥

 सबका पूजन किया; तब त्वष्टा बोले; हे देव ! उत्तर कुरुके देशमें जाइये ॥ ५० ॥ वह घोडीके रूपको धारण किये और हरित दूबसे संयुत देशमें
 विचरती तृण चरती है; सो भार्याके समीप गमन करो; तब यह भी अपने भार्याके रूपकी लीला कर अर्थात् आपभी अश्वके रूपको धारण कर ॥ ५१ ॥
योगमें स्थित हो सबके तेजसे और नियमोंसे अतितेज और नियमवाली अपनी भार्याको देखने लगे ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! जब वह अश्वरूपसे निर्भय
चरती थी, तब अश्वहीके रूपमें सूर्य्यसे मैथुनके अर्थ चेष्टा करती हुई; उस अपनी भार्याके मुखमें उन्होंने समागम किया ॥ ५३ ॥ तब उस घोडीने

एवं संपूजयामास त्वष्टा वाक्यमुवाच ह ॥ गच्छ देव निजां भार्यां कुरूंश्चरति सोत्तरान् ॥ ५० ॥ वडवारूपमास्थाय वने चरति शाड्वले ॥ स तथारूपमास्थाय स्वभार्यारूपलीलया ॥ ५१ ॥ ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्यां वडवां ततः ॥ अधृष्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च ॥ ५२ ॥ वडवावपुषा राजंश्चरन्तीमकुतोभयाम् ॥ सोऽश्वरूपेण भगवांस्तां मुखे समभावयत् ॥ ५३ ॥ मैथुनाय विचेष्टन्ती परपुंसोपशङ्कया ॥ सा तन्निरवमच्छुक्रं नासिकायां विवस्वतः ॥ ५४ ॥ देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ ॥ नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति ॥ ५५ ॥ मार्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः ॥ संज्ञायां जनयामास वडवायां स भारत ॥ तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः ॥ ५६ ॥ सा च दृष्ट्वैव भर्तारं तुतोष जनमेजय ॥ यमस्तु कर्मणा तेन भृशं पीडितमानसः ॥ ५७ ॥ धर्मेण रञ्जयामास धर्मराज इव प्रजाः ॥ स लेभे कर्मणा तेन परमेण महाद्युतिः ॥ ५८ ॥

परपुरुषकी शंका कर सूर्यके वीर्यको अपनी नासिकाके द्वारा बाहिर निकाल दिया ॥ ५४ ॥ तब वैद्योंमें उत्तम और दिव्यरूपवाले ऐसे अश्विनीकुमार ॥ ३१ ॥
उससे उत्पन्न हुए, पीछे नासत्य और दस्र इस नामसे विख्यात हुए ॥ ५५ ॥ इस प्रकार आठवें प्रजापतिरूप सूर्यके यह दोनों पुत्र उत्पन्न हुए हैं; हे राजन् ! इस प्रकार वडवारूपी संज्ञासे यह उत्पन्न हुए, पीछे दिव्यरूपसे सूर्यने अपनी भार्याको देखा ॥ ५६ ॥ हे जनमेजय ! तब वह भार्या उनका रूप देख आनंदित होने लगी, पीछे अपने कर्मसे अति दुःखी मनवाले धर्मराज ॥ ५७ ॥ प्रजाको धर्मसे पालने लगे, अर्थात् धर्महीके आश्रय हुए, सो इस धर्मके

प्रतापसे उन्होंने अतिकीर्ति पाई ॥५८॥ पितरोंको राज्य और लोकपालताकी प्राप्ति हुई,और सूर्यके पुत्र तपोधन सावर्णि मनु॥५९॥ होनहाररूप सावर्णिके अंतरमें प्रकाशित होंगे;जो इस सुमेरुपर्वतके पृष्ठभागमें घोर तप कर रहे हैं॥६०॥इनके भ्राता शनैश्चर ग्रहत्वको प्राप्त हुए और अश्विनी-कुमार देवताओंक वैद्य हुए ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! इनका सेवन करनेसे अश्वोंको शांति होती है; और तिस बचे तेजसे त्वष्टाने एक विष्णुका चक्र बनाया ॥६२॥ जो युद्धमें प्रतिहत नहीं होता;और दानवोंके नाशकी इच्छासे बनाया है;और उन दोसे छोटी यशस्विनी जो यमी कन्या थी॥६३॥

पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च ॥ मनुः प्रजापतिस्त्वासीत्सावर्णः स तपोधनः ॥ ५९ ॥ भाव्यः सोऽनागते काले मनुः सावर्णिकेऽन्तरे।मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरति प्रभुः ॥६०॥ भ्राता शनैश्चरश्चास्य ग्रहत्वमुपलब्धवान्।नासत्यौ यौ समाख्यातौ स्ववैंद्यौ तौ बभूवतुः ॥६१॥ सेवतोऽपि तथा राजन्नश्वानां शान्तिदोऽभवत्।त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ॥६२॥ तदप्रतिहतं युद्धे दानवांतचिकीर्षया॥यवीयसी तयोर्या तु यमी कन्या यशस्विनी ॥६३॥ अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोक-भामिनी ॥ मनुरित्युच्यते लोके सावर्ण इति चोच्यते॥६४॥द्वितीयो यःसुतस्तस्य मनोर्भ्राता शनैश्चरः॥ग्रहत्वं स च लेभे वै सर्व-लोकाभिपूजितम् ॥६५॥ य इदं जन्म देवानां शृणुयाद्वापि धारयेत्॥आपद्भ्यः स विमुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्यशः॥६६॥इति श्रीम-हाभारते खिलेषु हरिवंशे वैवस्वतोत्पत्तौ नवमोऽध्यायः ॥९॥ वैशम्पायन उवाच ॥ मनोर्वैवस्वतस्यासन्पुत्रा वै नव तत्समाः ॥ इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्णुः शर्यातिरेव च ॥१॥ नरिष्यंश्च तथा प्रांशुर्नाभागारिष्टसप्तमाः॥करूषश्च पृषध्रश्च नवैते भरतर्षभ॥२॥

वह जो नदियोंमें श्रेष्ठ और लोकको सुख देनेवाली यमुना नामसे विख्यात नदी हुई,कोई इनको मनु और कोई सावर्ण मनु कहते हैं ॥६४॥और इस सावर्ण मनुका दूसरा भ्राता शनैश्चर सब लोकके पूजने योग्य ग्रहताको प्राप्त हुआ ॥६५॥ जोदेवताओंके इस जन्मको श्रवण करते हैं और धारण करते हैं वह मनुष्य दुःखोंसे रहित होकर अति यशको प्राप्त होते हैं ॥ ६६ ॥इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ छ ॥ वैशंपायन बोले कि,वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु १ नाभाग २ धृष्णु ३ शर्याति ४॥१॥नरिष्य ५ प्रांशु ६ नाभागारिष्ट ७ करूष ८ पृषध्र ९ नामोंवाले

९ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ हे राजन् ! इन पुत्रोंकी उत्पत्तिसे पहले पुत्रकी कामनावाले मनुने मित्रावरुणका यज्ञ किया था ॥ ३ ॥ हे भारत ! उन पुत्रोंके जन्मसे पहले उस यज्ञके प्रवृत्त होनेपर ॥ ४ ॥ मनुने मित्रावरुणके अंशसे अग्निमें बहुतसी आहुती दीं; तब आहुती देनेसे देवता, गन्धर्व, मनुष्य ॥ ५ ॥ और तपोधनवाले मुनि ये सब तृप्त हो गये, और बोले अहो ! इसका तप, पराक्रम और शास्त्र अद्भुत है ॥ ६ ॥ तब दिव्य वस्त्रोंको धारण करे और दिव्य आभूषणोंसे आभूषित और दिव्यरूपवाली इला नाम कन्या उत्पन्न हुई ॥ ७ ॥ ऐसे सुना है, तब दंडको धारण करनेवाला मनु इलासे कहने

अकरोत्पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः ॥ मित्रावरुणयोस्तात पूर्वमेव विशांपते ॥ ३ ॥ अनुत्पन्नेषु नवसु पुत्रेष्वेतेषु भारत ॥ तस्यां तु वर्तमानायामिष्ट्यां भरतसत्तम ॥ ४ ॥ मित्रावरुणयोरंशे मुनिराहुतिमाजुहोत् ॥ आहुत्यां हूयमानायां देवगन्धर्वमानुषाः ॥ ५ ॥ तुष्टिं तु परमां जग्मुर्मुनयश्च तपोधनाः ॥ अहोऽस्य तपसो वीर्यमहोऽस्य श्रुतमद्भुतम् ॥ ६ ॥ तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ॥ दिव्यसंहनना चैव इला जज्ञे इति श्रुतिः ॥ ७ ॥ तामिलेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा ॥ अनुगच्छस्व मां भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह ॥ धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥८॥ इलोवाच ॥ मित्रावरुणयोरंशे जाताऽस्मि वदतां वर ॥ तयोः सकाशं यास्यामि न मां धर्मो हतोऽवधीत् ॥ ९ ॥ सैवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरिला ॥ गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १०॥ अंशेऽस्मि युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम् ॥ मनुना चाहमुक्ता वै अनुगच्छस्व मामिति ॥ ११ ॥ तां तथावादिनीं साध्वीमिलां धर्मपरायणाम् ॥ मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुर्यन्निबोध तत् ॥ १२ ॥

लगा; हे पुत्री ! तू मेरे संग स्थानपै चल तब पुत्रकी कामनावाले मनुजीसे धर्मयुक्त वचन इला कहने लगी ॥ ८ ॥ इला बोली कि; हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! मैं मित्रावरुणके अंशमें जन्मी हूं इस कारण उनके निकट जाऊंगी, कारण कि हत किया धर्म मुझे न मारे ॥ ९ ॥ ऐसे मनुजीसे कह वित्रावरुणके समीपमें जाके इला अंजली बांध कहने लगी ॥ १० ॥ हे देवताओ ! मैं तुम दोनोंके अंशमें उपजी हूं, इस कारण आज्ञा दो, मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूं, और मनुजीने ऐसे कहा कि तू मेरी पुत्री है; मेरे पीछे आ ॥ ११ ॥ इस प्रकार कहनेवाली धर्ममें परायण इलासे मित्र और वरुणने जो कहा सो

सुनो ॥ १२ ॥ हे सुन्दर भृकुटिवाली वरवर्णिनी! इस तेरे धर्मसे और सत्यसे और विनयतासे, शांतिसे और सत्यसे हम दोनों प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥ हे महाभागे! तू हमारी पुत्री है, संसारमें विख्यात होगी; और वंशको उत्पन्न करनेवाला पुत्र तूही मनुजीके होगी ॥१४॥ हे शोभने! जगत्को प्रिय और मनुके वंशको बढानेवाला और तीन लोकमें सुद्युम्न नामसे विख्यात तू पुत्र होगा॥१५॥ तब यह वचन सुन वह निवृत्त हो पिताके समीपमें गमन करती भई, इसी अंतरमें चंद्रमाके पुत्र बुधने मैथुनके अर्थ याचना करी॥१६॥ तब चंद्रमाके पुत्र बुधसे तिस इलामें पुरूरवाने जन्म लिया; ऐसे पुत्रको उत्पन्न कर पीछे

अनेन तव धर्मेण प्रश्रयेण दमेन च ॥ सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि ॥ १३ ॥ आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं कन्येति यास्यसि ॥ मनोर्वंशधरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥ १४ ॥ सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने । जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोर्वंशविवर्द्धनः ॥१५॥ निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकम् ॥ बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता ॥ १६ ॥ सोमपुत्राद्बुधाद्राजन् तस्यां जज्ञे पुरूरवाः ॥ जनयित्वा सुतं सा तमिला सुद्युम्नतां गता ॥ १७ ॥ सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥ उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च भारत ॥ १८ ॥ उत्कलस्योत्कला राजन्विनताश्वस्य पश्चिमा ॥ दिक्पूर्वा भरतश्रेष्ठ गयस्य तु गया पुरी ॥१९॥ प्रविष्टे तु मनौ तात दिवाकरमरिन्दम ॥ दशधा तद्दधत् क्षत्रमकरोत्पृथिवीमिमाम् ॥ २० ॥ यूपाङ्किता वसुमती यस्येयं सवनाकरा ॥ इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥२१॥ कन्याभावाच्च सुद्युम्नो नैनं गुणमवाप्तवान् ॥ वसिष्ठवचनाच्चासीत्प्रतिष्ठाने महात्मनः ॥ २२ ॥

इला सुद्युम्न हो गई॥१७॥ और हे भरत! सुद्युम्नके परम धार्मिक और उत्कल, गय, विनताश्व इन नामोंसे विख्यात तीन पुत्र हुए॥१८॥ और उत्कलके उत्कला और विनताश्वके दिक् पश्चिमा और गयके गया पुरी हुई; उसमें राजकाज करने लगे ॥१९॥ हे अरिंदम! जब मनुजी सूर्यमें प्रवेश करते हुए, तब दश मनुके पुत्र इस पृथ्वीका विभाग कर ग्रहण करते हुए॥२०॥ जिसकी यह वन और खानोंसहित यज्ञस्तम्भोंसे युक्त पृथ्वी है, सो इक्ष्वाकुने इस मध्यदेशको प्राप्त किया॥२१॥ और कन्याभावसे प्राप्त होनेके कारण इस गुणको सुद्युम्नने नहीं प्राप्त किया; और वसिष्ठजीके वचनसे प्रतिष्ठानपुरमें॥२२॥

महात्मा पुरुषोंके समान प्रतिष्ठाको सुद्युम्न प्राप्त होकर प्रयागके समीपमें राज्यको प्राप्त हुए; हे राजन् ! उस राज्यको प्राप्त होकर उन्होंने पुरूरवाके अर्थ दे दिया ॥२३॥ और सुद्युम्न उसी स्थानमें राज्य करने लगे. उत्कलके त्रिलोकीमें विख्यात धृष्टक, अंबरीष, दंड नामोंवाले तीन पुत्र हुए ॥ २४ ॥ उनमें महात्मा दंड राजाने तपस्वियोंके योग्य उत्तम दंडकारण्य नाम लोकमें विख्यात वनको रचा ॥२५॥ उसमें प्रवेश करनेसेही मनुष्य पापोंसे छूट जाता है; हे भारत ! पीछे पुरूरवा पुत्रको उत्पन्न कर सुद्युम्न तौ स्वर्गमें चले गये॥२६॥ हे महाराज ! मनुका पुत्र स्त्रीपुरुषलक्षणसे युक्त बुद्धिमान इलाही

प्रतिष्ठा धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य कुरूद्वह ॥ तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः ॥ २३ ॥ सुद्युम्नः कारयामास प्रतिष्ठाने नृपक्रियाम् ॥ उत्कलस्य त्रयः पुत्रास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ धृष्टकश्चाम्बरीषश्च दण्डश्चेति सुतास्त्रयः ॥ २४ ॥ यश्चकार महात्मा वै दण्डकारण्यमुत्तमम् ॥ वनं तल्लोकविख्यातं तापसानामनुत्तमम् ॥ २५ ॥ तत्र प्रविष्टमात्रस्तु नरः पापात्प्रमुच्यते ॥ सुद्युम्नश्च दिवं यात ऐलमुत्पाद्य भारत ॥ २६ ॥ मानवेयो महाराज स्त्रीपुंसोर्लक्षणैर्युतः ॥ धृतवान् य इलेत्येव सुद्युम्नश्चेति विश्रुतः ॥२७॥ नरिष्यतः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भारत ॥ अम्बरीषोऽभवत्पुत्रः पार्थिवर्षभसत्तमः ॥ २८ ॥ धृष्णोस्तु धार्ष्टकं क्षत्रं रणधृष्टं बभूव ह ॥ करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ २९ ॥ सहस्रं क्षत्रियगणो विक्रान्तः संबभूव ह ॥ नाभागारिष्टपुत्रश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः॥३०॥प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः शर्यातिरिति विश्रुतः ॥ नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो दमः ॥ शर्यातेर्मिथुनं चासीदानर्त्तो नाम विश्रुतः ॥ ३१ ॥ पुत्रः कन्या सुकन्याऽख्या या पत्नी च्यवनस्यही ॥ आनर्त्तस्य तु दायादो रेवो नाम महाद्युतिः ॥ ३२ ॥

सुद्युम्ननामसे विख्यात हुआ॥२७॥ और नरिष्यनके शक जातिवाले राजे पुत्र हुए; और नाभागके राजाओंमें उत्तम अंबरीष पुत्र हुआ ॥२८॥ और धृष्णुके युद्धमें धृष्टरूप धार्ष्टक क्षत्र हुआ करुषके युद्धदुर्मद कारुष जाति क्षत्रिय उत्पन्न हुए ॥२९॥ विक्रान्तके सहस्रों क्षत्रिय हुए नाभारिष्टका पुत्र क्षत्रियसे वैश्य हो गया ॥३०॥ प्रांशुका एक पुत्र शर्याति हुआ और नरिष्यन्तका दायाद राजा दण्डधर इन्द्रियजित् हुआ, और शर्यातिके एक मिथुन आनर्त नामवाला पुत्र हुआ॥३१॥और सुकन्या नामसे विख्यात कन्या हुई, जो च्यवनमुनिकी भार्या हुई, इस भांति एक मिथुन उपजा है,और आनर्तके

महाद्युतिमान रेव नामवाला पुत्र उत्पन्नहुआ॥३२॥जिसकी आनर्तदेशमें कुशस्थली अर्थात् द्वारका राजधानी हुई; और रेवके ककुद्मीनाम धार्मिक रेवतनामसे विख्यात एक ज्येष्ठ पुत्र हुआ ॥३३॥ शेष औरभी १००पुत्र हुए उनमेंसे रैवत कुशस्थलीमेंराज्य करता था,वह अपनी कन्याको ग्रहण कर ब्रह्मलोकमें गाना सुननेको गया॥३४॥तब एक मुहूर्तके समान बहुतसे युगोंको बीते हुए सुन युवा अवस्थामें स्थित हुआही यादवोंसे आवृत अपनी पुरीमें आया ॥३५॥ और द्वारावती नामसे प्रसिद्ध, बहुत द्वारोंवाली,बहुत सुन्दर, श्रीकृष्णसेयुक्त;भोज,वृष्णि, अंधक कुलोंसे रक्षित ॥३६॥

आनर्तविषयश्चासीत् पुरी चास्य कुशस्थली ॥ रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः ॥ ३३ ॥ ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम् ॥ स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्वं ब्राह्मणोऽन्तिके ॥३४॥ मुहूर्तभूतं देवस्य गतं बहुयुगं प्रभो ॥ आजगाम युवैवाथ स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ॥ ३५ ॥ कृतां द्वारवतीं नाम्ना बहुद्वारां मनोरमाम् ॥ भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वासुदेवपुरोगमैः ॥३६॥ ततः स रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वमरिंदम ॥ कन्यां तां बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम् ॥३७॥ दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ॥ रेमे रामोऽपि धर्मात्मा रेवत्या सहितः सुखी ॥३८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥१०॥ जनमेजय उवाच ॥ कथं बहुयुगे काले समतीते द्विजोत्तम ॥ न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं च ककुद्मिनम् ॥ १ ॥ मेरुं गतस्य वा तस्य शार्यातेः संततिः कथम् ॥ स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ न जरा क्षुत्पिपासे वा न मृत्युर्भरतर्षभ ॥ ऋतुचक्रं न भवति ब्रह्मलोके सदानघ ॥ ३ ॥

अपनी पुरीमें आकर सब यथार्थ तत्व सुन रेवती पुत्रीको बलदेवजीके अर्थ विवाह कर दिया ॥३७॥ मेरुपर्वतके शिखरपर आप तप करनेको चला गया;और धर्मात्मा बलदेवजीभी सुखपूर्वक रेवतीके संग रमण करने लगे॥३८॥इतिश्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां ऐलोत्पत्तौ दशमोऽध्यायः॥१०॥ जनमेजय बोले; हे द्विजोत्तम ! वह समय व्यतीत होनेपरभी रेवती और रैवत राजाको वृद्धता कैसे नहीं हुई ॥१॥ और मेरुको गये हुए शर्याति राजाकी संतति इस समयमेंभी कैसे पृथ्वीमें स्थित रही सो तत्वसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥ वैशंपायन बोले कि; हे राजन् ! वृद्धता, क्षुधा, तृषा,

मृत्यु, ऋतुचक्र ये सब ब्रह्मलोकमें नहीं होते हैं ॥३॥ और जब रवतराजा ब्रह्मलोकमें चले गये, तब कुशस्थली यक्ष और राक्षसोंने विजय करके ग्रहण करी ॥४॥ और इस राजाके महात्मा १०० भ्राता राक्षसोंसे ताढित हो सब दिशाओंमें चले गये ॥५॥ हे राजेन्द्र! जब सब भ्राता पलायन कर गये, तब दूसरे क्षत्रियभी भयभीत हो जहां तहां पलायन करने लगे ॥ ६ ॥ हे महाराज ! इस प्रकारसे समूहके समूहइकट्ठे होकर शार्यात-नामसे विख्यात क्षत्रिय हो गये ॥ ७ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! वे धर्मात्मा सब दिशा और पर्वतगणोंमें प्रवेश कर गये ॥ ८ ॥और नाभागारिष्टके वैश्य-

ककुद्मिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह ॥ हता पुण्यजनैस्तात राक्षसैः सा कुशस्थली ॥४॥ तस्य भ्रातृशतं चासीद्धार्मिकस्य महात्मनः ॥ तद्वध्यमान रक्षोभिर्दिशः प्राद्रवदच्युतम् ॥ ५ ॥ विद्रुतस्य तु राजेन्द्र तस्य भ्रातृशतस्य वै ॥ तेषां तु ते भया-क्रान्ताः क्षत्रियास्तत्र तत्र ह ॥ ६ ॥ अन्ववायस्तु सुमहांस्तत्र तत्र विशांपते ॥ येषामेते महाराज शार्याता इति विश्रुताः ॥ ७ ॥ क्षत्रिया भरतश्रेष्ठ दिक्षु सर्वासु धार्मिकाः ॥ सर्वशः पर्वतगणान्प्रविष्टाः कुरुनन्दन ॥ ८ ॥नाभागादिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ ॥ करूषस्य च कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ ९ ॥ प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजातिरिति नः श्रुतम् ॥ पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां जनमेजय ॥१०॥ शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवैते परिकीर्तिताः ॥ वैवस्वतस्य तनया मनोर्वै भरतर्षभ ॥११॥ क्षुवतश्च मनो स्तात इक्ष्वाकुरभवत्सुतः ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् ॥ १२ ॥ तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोधताम् ॥ प्राप्तः परमधर्मज्ञः सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः ॥ १३ ॥

जतिवाले दो पुत्र ब्राह्मणताको प्राप्त हुए, और करुषके युद्धमें दुर्मद और कारूषनामसे विख्यात क्षत्रिय उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥ और प्रांशुके प्रजाति नाम पुत्र हुआ; हे राजन् ! पृषध्र राजा गुरुकी गायके मर जानेसे ॥ १० ॥ शापसे शूद्र होगया, ऐसे नव वैवस्वत मनुजीके पुत्रोंका वर्णन किया है ॥ ११ ॥ और मनुजीकी छींकसे इक्ष्वाकु उपजा और इक्ष्वाकुके बहुतसी दक्षिणा देनेवाले १०० पुत्र हुए ॥ १२ ॥ उनमें ज्येष्ठ पुत्र विकुक्षि हुआ, और यह बड़ी थौंदवाला होनेसे युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हुआ; और यह धर्मात्मा अयोध्या पुरीका स्वामीभी हुआ ॥ १३ ॥

विकुक्षिके उत्तमरूप शकुनि नाम ५० पुत्र उत्तरके देशमें प्राप्त हो प्रजाकी पालना करने लगे ॥ १४ ॥ और शशादनाम प्रजाकी पालना करनेवाले ४८ विकुक्षिके पुत्र दक्षिण दिशामें राज्य करने लगे ॥ १५ ॥ एक समयमें इक्ष्वाकु राजा पूर्वकालमें विकुक्षिसे बोले; हे महाबल ! श्राद्धके अर्थ मृगको मार मांस लाओ ॥ १६ ॥ तब पिताके वचनको न मान और श्राद्धका निरादर कर शशा (खरगोश) के मांसको भक्षण कर शशाद पुत्र मृगया खेलनेको चला गया ॥ १७ ॥ तब वसिष्ठजीके वचनसे इक्ष्वाकु राजाने विकुक्षिका परित्याग किया; तब इक्ष्वाकुके समीपमें शशाद निवास करने लगा ॥ १८ ॥

शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चाशदुत्तमाः ॥ उत्तरापथदेशस्था रक्षितारो महीपते ॥ १४ ॥ चत्वारिंशदथाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि ॥ शशादप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो विशांपते ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथादिशत् ॥ मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान्हत्वा महाबल ॥ १६ ॥ श्राद्धकर्मणि चोदिष्ट अकृते श्राद्धकर्मणि ॥ भक्षयित्वा शशं तात शशादो मृगयां गतः ॥ १७॥ इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात्प्रभुः ॥ इक्ष्वाकौ संस्थिते तात शशादः पुरमावसत् ॥ १८ ॥ शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान् ॥ इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थोऽजयतासुरान् ॥ १९ ॥ पूर्वमाडीबके युद्धे ककुत्स्थस्तेन हि स्मृतः ॥ अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथोरानेनसः स्मृतः ॥ २० ॥ विष्टराश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादार्द्रस्त्वजायत ॥ आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्य तु चात्मजः ॥ २१ ॥ जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता ॥ श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशाः ॥ २२ ॥ कुवलाश्वः सुतस्तस्य राजा परमधार्मिकः ॥ यः स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः ॥ २३ ॥

शशादके अतिवीर्यवाला ककुत्स्थ नाम पुत्र उत्पन्न हुआ. एक समयमें वृषरूप हुए इन्द्रपर स्थित हो इसीने सब राक्षसोंको जीता था ॥ १९ ॥ उस समय आडीबक नाम देवासुर संग्राम हुआ था, और इन्द्ररूप वृषके ककुदपर चढकर युद्ध किया इससे यह काकुत्स्थ कहाया; ककुत्स्थके अनेना पुत्र हुआ अनेनाके पृथु पुत्र हुआ ॥ २० ॥ पृथुके विष्टराश्व पुत्र हुआ; पीछे विष्टराश्वके आर्द्र पुत्र हुआ; आर्द्रके युवनाश्व, युवनाश्वके श्राव हुआ ॥ २१ ॥ श्रावके श्रावस्त पुत्र हुआ, जिसने श्रावस्ती नाम पुरी रची. श्रावस्तके बृहदश्व महायशस्वी पुत्र हुआ ॥ २२ ॥ और धुंधुदैत्यके मारनेसे यह धुंधुमार

कहाया ॥ २३ ॥ जनमेजय बोले; हे ब्रह्मन् ! धुंधुदैत्यके मारनेका आख्यान तत्त्वसे सुननेकी इच्छा करता हूं; जिस कारणसे कुवलाश्वका नाम धुंधुमार हुआ ॥ २४ ॥ वैशंपायन बोले; कुवलाश्वके सौ पुत्र उत्तम धनुर्विद्यायुक्त सब विद्याओंमें कुशल बलवंत और सुन्दर दुरासद हुए ॥ २५ ॥ वह सब धर्मात्मा और बडी दक्षिणाका यज्ञ करनेवाले हुए, बृहदश्व पिताने कुवलाश्व पुत्रको राज्यसिंहासनपर स्थापित किया ॥ २६ ॥ और आप वनको चला, उस समय उत्तंक ऋषिने उस राजाको जानेसे निवारण किया ॥ २७ ॥ उत्तंक मुनि बोले; हे राजन् ! तुम इस लोककी रक्षा करने योग्य हो; और

जनमेजय उवाच ॥ धुन्धोर्वधमहं ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ यदर्थं कुवलाश्वः सन् धुन्धुमारत्वमागतः ॥ २४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥ सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः ॥ २५॥ बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ कुवलाश्वं सुतं राज्ये बृहदश्वो न्ययोजयत् ॥ २६॥ पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा समाविशन् ॥ तमुत्तङ्कोऽथ विप्रर्षिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥ २७ ॥ उत्तङ्क उवाच ॥ भवता रक्षणं कार्यं तत्तावत्कर्तुमर्हसि ॥ निरुद्विग्नस्तपश्चर्तुं न हि शक्नोषि पार्थिव ॥ २८ ॥ त्वया हि पृथिवी राजन् रक्ष्यमाणा महात्मना ॥ भविष्यति निरुद्विग्ना नाऽरण्यं गन्तुमर्हसि ॥ २९ ॥ पालने हि महान् धर्मः प्रजानामिह दृश्यते ॥ न तथा दृश्यतेऽरण्ये मा तेऽभूद् बुद्धिरीदृशी ॥३०॥ ईदृशो न हि राजेन्द्र धर्मः क्वचन दृश्यते ॥ प्रजानां पालने यो वै पुरा राजर्षिभिः कृतः ॥ रक्षितव्याः प्रजा राज्ञा तास्त्वं रक्षितुमर्हसि ॥ ३१ ॥ ममाश्रमसमीपे हि समेषु मरुधन्वसु ॥ समुद्रो वालुकापूर्ण उज्जानक इति श्रुतः ॥ देवतानामवध्यश्च महाकायो महाबलः ॥ ३२ ॥

निरुद्विग्न होकर क्या तप करनेको समर्थ नहीं हो ॥ २८ ॥ हे राजन् ! आप महात्मासे रक्षित होकर यह पृथ्वी उपद्रवरहित हो राक्षित हो जायगी, इससे वनको मत जाओ ॥ २९ ॥ और प्रजापालनसे महाधर्म होता है, ऐसा फल वनमें नहीं होता. तुम्हारी बुद्धि ऐसी न हो ॥ ३० ॥ हे राजन् ! प्रजाओंके पालनेका धर्म जो ऋषियोंने कहा है, ऐसा और कोई धर्म नहीं है. राजाको प्रजाकी रक्षा करनी उचित है, सो तुम करो ॥ ३१ ॥ कारण कि मेरे आश्रमके समीपमें मरुधन्वा देशमें सागरके रेतसे पूर्ण उज्जानक नाम देवताओंसे अवध्य, बडे शरीर और अतिबलवान् ॥ ३२ ॥

पृथ्वीके भीतर प्रवेश किये वालूसे छिपा हुआ मधुराक्षसका पुत्र धुंधुनामवाला महाराक्षस तपलोकके नाशके अर्थ शयन करता है ॥ ३३॥ और १ वर्षके अंतमें जब २ वह राक्षस श्वासको छोडता है; तब तब पर्वत, वन आदिसे संयुक्त पृथ्वी कंपित होती है॥ ३४॥ और उसके श्वाससे उपजी हुई पवनमें रज अधिक उडकर सूर्यके मार्गको आंधीसे आच्छादित कर सात दिनोंतक पृथ्वीको कंपितही करती रहती है॥ ३५॥ और धूमसे संयुक्त अग्निके किणके उससे प्रकाशित होते हैं; इस कारण हे राजन् ! मैं इससे अपने आश्रममें ठहरनेको समर्थ नहीं होता ॥ ३६॥ हे महाराज ! लोकके हितकी इच्छा कर इस महाश-

अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितो महान् ॥ राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुन्धुनामा महासुरः ॥ शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥ ३३ ॥ संवत्सरस्य पर्यन्ते स निःश्वासं प्रमुञ्चति ॥ यदा तदा भूश्चलति स शैलवनकानना ॥ ३४ ॥ तस्य निःश्वासवातेन रज उद्धूयते महत् ॥ आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥ ३५ ॥ सविस्फुलिङ्गं साङ्गारं सधूममतिदारुणम् ॥ तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्वकाश्रमे ॥ ३६ ॥ तं मारय महाकायं लोकानां हितकाम्यया ॥ लोकाः स्वस्था भवन्त्यद्य तस्मिन् विनिहतेऽसुरे ॥ ३७ ॥ त्वं हि तस्य वधायैकः समर्थः पृथिवीपते ॥ विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्वयुगेऽनघ ॥ ३८ ॥ यस्त्वं महासुरं रौद्रं हनिष्यसि महाबलम् ॥ तस्य त्वं वरदानेन तेज आप्याययिष्यसि ॥ ३९ ॥ नहि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाऽल्पेन शक्यते ॥ निर्दग्धुं पृथिवीपाल स हि वर्षशतैरपि ॥ वीर्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम् ॥ ४० ॥ स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना ॥ कुवलाश्वं सुतं प्रादात्तस्मै धुन्धुनिवारणे ॥ ४१ ॥

रीरवाले राक्षसका वध करो, जब आप इसको मारोगे तब लोक स्वस्थ हो जायंगे ॥ ३७॥ हे राजन् ! तिसके वध करनेको आपही समर्थ हैं; हे अनघ ! पूर्वयुगमें विष्णु भगवान्‌ने मुझे वर दिया है॥ ३८॥ कि जो इस महाबली राक्षसको मारेगा तिसके तेजको तुम वृद्धित करोगे ॥ ३९॥ हे पृथ्वीपाल ! थोडे तेजस्वीसे महातेजस्वी यह राक्षस दिव्य शत (१००) वर्षोंमेंभी दग्ध होनेको समर्थ नहीं हो सकेगा, कारण कि उस राक्षसमें महाबल है॥ ४०॥ कि देवताओं-कोभी उसके समान शक्ति नहीं इस प्रकार महात्मा मुनिने राजासे वचन कहे, तब बृहदश्व राजाने अपने कुवलाश्व पुत्रको धुंधुदैत्यके मारनेको दिया ॥ ४१॥

और बृहदश्व बोले; हे भगवन् ! मैंने शस्त्रोंका त्याग कर दिया है; हे द्विजश्रेष्ठ ! यह मेरा पुत्र धुंधुराक्षसको अवश्य मारेगा, इसमें संदेह नहीं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार धुंधुमारके मारनेकी पुत्रको आज्ञा देकर वह राजर्षि तपके अर्थ पर्वतको गया ॥ ४३ ॥ तब कुवलाश्व राजा अपने १०० पुत्रोंको संग ले धुंधुराक्षसके मारनेको उत्तंकमुनिके साथ चला ॥ ४४ ॥ तिस समयमें कुवलाश्व राजाके शरीरमें उत्तंककी आज्ञासे जगत्के हितके निमित्त विष्णु भगवान् अपने तेजसे प्रवेश कर गये ॥ ४५ ॥ और जब राजाने गमन किया तब आकाशमें महा शब्द होने लगा कि यह श्रीमान् राजा अवध्य है; और धुंधुराक्षसका वध

बृहदश्व उवाच ॥ भगवन्न्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम ॥ भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ॥ ४२ ॥ स तं व्यादिश्य तनयं राजर्षिर्धुन्धुमारणे ॥ जगाम पर्वतायैव तपसे संशितव्रतः ॥ ४३ ॥ कुवलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह पार्थिवः ॥ प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य विनिग्रहे ॥ ४४ ॥ तमाविशत्तदा विष्णुर्भगवांस्तेजसा प्रभुः ॥ उत्तङ्कस्य नियोगाद्वै लोकस्य हितकाम्यया ॥ ४५ ॥ तस्मिन्प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत् ॥ एष श्रीमानवध्योऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति ॥ ४६ ॥ दिव्यैर्माल्यैश्च तं देवाः समन्तात्स-मवाकिरन् ॥ देवदुन्दुभयश्चापि प्रणेदुर्भरतर्षभ ॥ ४७ ॥ स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह वीर्यवान् ॥ समुद्रं खानयामास वालुकार्ण-वमव्ययम् ॥ ४८ ॥ नारायणेन कौरव्य तेजसाऽप्यायितः स वै ॥ बभूव स महातेजाः भूयो बलसमन्वितः ॥ ४९ ॥ तस्य पुत्रैः खनद्भिस्तु वालुकान्तर्हितस्तदा ॥ धुन्धुरासादितो राजन् दिशमावृत्य पश्चिमाम् ॥ ५० ॥ मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकानुद्वर्तयन्निव ॥ वारि सुस्राव वेगेन महोदधिरिवोदये ॥ ५१ ॥

करेगा ॥ ४६ ॥ दिव्यपुष्पोंकी वर्षा राजाके चारों तरफ देवता करने लगे हे भरतर्षभ ! देवताओंमें नगारे बजने लगे ॥ ४७ ॥ पीछे अपने १०० पुत्रों सहित राजाने वालू (रेत) से पूरित समुद्रको खुदा डाला ॥ ४८ ॥ हे कौरव्य ! नारायणके तेजसे पुष्ट होकर वह राजा फिर महा बलवान् हो गया ॥ ४९ ॥ जब राजाके पुत्रोंने सागर बहुत खोदा तब धुंधुराक्षस पश्चिम दिशाको प्राप्त हो खडा हुआ ॥ ५० ॥ तब उस वीरने लोकके नाश करनेकी इच्छासे अग्निकी समान मुखसे क्रोध कर बडे वेगसे जल निकालकर पृथ्वीको डुबा दिया, जैसे चंद्रोदयमें समुद्रका जल निकलकर पृथ्वी ढक लेता है ॥ ५१ ॥

हे राजन् ! पीछे उस राक्षसने मुखकी अग्निसे राजाके सब पुत्र दग्ध कर दिये, केवल तीन शेष रहे ॥ ५२ ॥ पीछे तिस अति बलवान् राक्षसके सन्मुख वह अति तेजस्वी पराक्रमी राजा हुआ ॥५३॥ उस योगी राजाने राक्षसके जलमयवेगको योगविद्यासे पानकर पीछे जलसे अग्निको शांत कर दिया ॥ ५४ ॥ पीछे उस कार्यकर्ता राजाने बलसे उस राक्षसको मार उत्तंक मुनिको दिखाया ॥ ५५ ॥ तब उत्तंक मुनिने महात्मा राजाको वर दिया कि; हे राजन् ! तुम्हारे पास अक्षयरूप द्रव्य होगा, किसी समयमेंभी शत्रुओंसे तुम पराजित नहीं

सोमस्य भरतश्रेष्ठ धारोर्मिकलिलं महत्॥तस्य पुत्रशतं दग्ध त्रिभिरूनं तु रक्षसा॥५२॥ततःस राजा कौरव्य राक्षसं तं महाबलम्॥ आससाद महातेजा धुन्धुं धुन्धुनिबर्हणः ॥५३॥ तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः ॥ योगी योगेन वह्निं च शमयामास वारिणा ॥५४॥ निहत्य तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम्॥उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्मा नराधिपः ॥५५॥ उत्तङ्कस्तु वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने॥ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजयम्॥५६॥धर्मे रतिं च सततं स्वर्गवासं तथाऽक्षयम्॥पुत्राणां चाक्षयाँल्लो-कान्स्वर्गे ये रक्षसा हताः ॥५७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि एकादशोऽध्यायः॥११॥वैशम्पायन उवाच॥ तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ॥ चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कुमारौ द्वौ कनीयसौ ॥१॥ धौन्धुमारिर्दृढाश्वस्तु हर्यश्व-स्तस्य चात्मजः ॥ हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत्क्षत्रधर्मरतः सदा ॥ २ ॥ संहताश्वो निकुम्भस्य पुत्रो रणविशारदः ॥ अकृशाश्वः कृशाश्वश्च संहताश्वसुतौ नृप ॥ ३ ॥

होंगे ॥ ५६ ॥ और धर्ममें रति और अक्षय कालतक स्वर्गमें वास करोगे, और जो राक्षससे तुम्हारेपुत्र मारे गये हैं उनकोभी अक्षयलोक प्राप्त होगा ॥ ५७ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां धुन्धुवधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ वैशंपायन बोले; तिस कुवलाश्व राजाके ३ पुत्र जो शेष रहे उनमें दृढाश्व बडा और चंद्राश्व कपिलाश्व दोनों छोटे पुत्र थे ॥ १ ॥ धुंधुशत्रु दृढाश्वके हर्यश्व पुत्र हुआ, हर्य्यश्वके क्षत्री धर्ममें रत निकुंभ पुत्र हुआ ॥२॥ निकुंभके युद्धमें विशारद संहताश्व पुत्र हुआ; हे राजन् ! अकृशाश्व और कृशाश्व नामोंवाले दो पुत्र

संहताश्वके हुए ॥ ३ ॥ सत्पुरुषोंकी माता और तीन लोकमें दृषद्वती नामसे प्रसिद्ध हैमवती कन्या उत्पन्न हुई, जिस हैमवतीका प्रसेनजित् नामक पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ और उसने गौरीनामवाली पतिव्रता भार्यासे व्याह किया; पीछे पतिके शापसे यही गौरी बाहुदा नदी हुई ॥ ५ ॥ बाहुदा नदीमें युवनाश्व राजा उत्पन्न हुआ; युवनाश्वके त्रिलोकीको जीतनेवाला मान्धाता पुत्र हुआ ॥ ६ ॥ मान्धाताने शशबिन्दुराजाकी पुत्री चैत्ररथी परमसाध्वी बिंदुमति नामसे प्रसिद्ध, अतिरूपवान्॥७॥पतिव्रता और दश हजार १०००० भ्राताओंसे बडी स्त्रीसे विवाह कर तिसमें पुरुकुत्स और मुचकुंद नामों-

तस्य हैमवती कन्या सतां माता दृषद्वती ॥ विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित् ॥४॥ लेभे प्रसेनजिद्भार्यां गौरीं नाम पतिव्रताम् ॥ अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाऽभवत् ॥५॥ तस्याः पुत्रो महानासीद्युवनाश्वो महीपतिः॥मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः ॥६॥ तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दोः सुताऽभवत्॥साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि॥७॥ पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य सा॥तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ नृप॥८॥पुरुकुत्सं च धर्मज्ञं मुचुकुन्दं च धार्मिकम्॥ पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत्त्रसदस्युर्महीपतिः ॥९॥ नर्मदायामथोत्पन्नः संभूतस्तस्य चात्मजः ॥ सम्भूतस्य तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः ॥१०॥ सुधन्वनः सुतश्चासीत्त्रिधन्वा रिपुमर्द्दनः ॥ राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद्विद्वांस्त्रय्यारुणः सुतः ॥११॥ तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः॥पाणिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्मतिः ॥१२॥ येन भार्याऽऽहृता पूर्वं कृतोद्वाहा परस्य वै॥बाल्यात्कामाच्च मोहाच्च संहर्षाच्चापलेन च॥१३॥जहार कन्यां कामात्स कस्यचित्पुरवासिनः ॥ अधर्मशङ्कुना तेन राज त्रय्यारुणोऽत्यजत् ॥१४॥

वाले दो धार्मिक पुत्र उत्पन्न किये. पुरुकुत्सके त्रसदस्यु पुत्र हुआ ॥ ८ ॥ ९ ॥ त्रसदस्युके नर्मदामें सम्भूत पुत्र हुआ; सम्भूतके सुधन्वा राजा पुत्र हुआ ॥ १० ॥ सुधन्वाके शत्रुनाशक त्रिधन्वा पुत्र हुआ; पीछे त्रिधन्वाके त्रय्यारुण पुत्र हुआ ॥११॥ उस त्रय्यारुणके अतिबलवाला सत्यव्रत पुत्र हुआ; इसी दुर्मति सत्यव्रतने विवाहके मंत्रोंमें विघ्न किया ॥ १२ ॥ जिसने प्रथम अन्यसे विवाहित करी भार्याको ग्रहण किया; और बालक व कामसे व मोहसे आनंदसे और चपलतासे ॥१३॥ किसी २ पुरवासीकी कन्याकोभी हरण किया ऐसे अधर्म करनेसे त्रय्यारुण राजाने उस पुत्रको त्यागन कर

दिया ॥ १४॥ और उसे वर्णसंकरादि शब्दोंसे क्रोधयुक्त हो पुकारा ॥ १५॥ तब तिसका पिता कहने लगा कि हे दुष्ट ! तू चांडालोंके कुलमें मिलजा; हे कुलनाशक ! मैं तुझसे पुत्रवाला नहीं हूं ॥ १६ ॥ ऐसे पिताके वचन सुन वह नगरसे निकल गया; और भगवान् वसिष्ठजीनेभी उसको नहीं रोका॥ १७॥ तब सत्यव्रत पुत्र धीरतायुक्त पितासे त्यागको प्राप्त हो चांडालोंमें वसने लगा, आर त्र्य्यारुण पिताभी वनमें चला गया ॥ १८॥ हे राजेन्द्र ! उस पापसे उसके राज्यमें बारह वर्षतक इन्द्रने वर्षा नहीं करी ॥ १९ ॥ तब तिस राजाके राज्यमें अपनी भार्याको स्थापित कर विश्वामित्र मुनि सागरके अनूपदेशमें

अपध्वंसोति बहुशो वदन् क्रोधसमान्वितः ॥ पितरं सोऽब्रवीत्त्यक्तः क्व गच्छामीति वै मुहुः ॥ १५ ॥ पिता त्वेनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्त्तय ॥ नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपांसन ॥ १६ ॥ इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद्वचनात्पितुः ॥ न च तं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ १७ ॥ स तु सत्यव्रतस्तात श्वपाकावसथान्तिके ॥ पित्रा त्यक्तोऽवसद्धीरः पिता तस्य वनं ययौ ॥ १८॥ ततस्त-स्मिंस्तु विषये नावर्षत्पाकशासनः ॥ समा द्वादश राजेन्द्र तेनाधर्मेण वै तदा ॥ १९ ॥ दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः ॥ संन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः ॥ २० ॥ तस्य पत्नी गले बद्धा मध्यमं पुत्रमौरसम् ॥ शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै ॥ २१ ॥ तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रीयन्तं नृपात्मजः ॥ महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास भारत ॥ २२ ॥ सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत ॥ विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ॥ २३ ॥ सोऽभवद्गालवो नाम गलबन्धान्महातपाः ॥ महर्षिः कौशिकस्तात तेन वीरेण मोक्षितः ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

महातप करने लगे ॥ २० ॥ विश्वामित्रकी स्त्री अपने मध्यम औरस पुत्रको गलेमें बांध कुटुम्ब पालनाके निमित्त १०० गायोंके मूल्यमें बेचनेको नगरमें चली ॥ २१ ॥ हे भारत ! उस गलेमें बंधे हुए महर्षिके पुत्रको धर्मात्मा उसी सत्यव्रतने छुडाया ॥ २२ ॥ महाबाहु सत्यव्रत विश्वामित्रकी प्रसन्नता और दया पानेके निमित्त उनके कुटुम्बका भरण पोषण करने लगा ॥ २३ ॥ अर्थके निमित्त गलेमें बांधनेसे वह विश्वामित्रका पुत्र गालवनामसे विख्यात हुआ; इस प्रकार गालवजीको सत्यव्रत वीरने छुटाया॥ २४॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्व भाषायां गालवोत्पत्तौ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

वैशंपायन बोले; कि वही सत्यव्रत दया व प्रतिज्ञासे विश्वामित्रकी स्त्रियोंको विनयमें स्थित हो ॥ १ ॥ मृग, शूकर, भैंसा, वनके पशूओंको मार मांसको विश्वामित्रके आश्रममें वृक्षपर बांधने लगा ॥ २ ॥ और उपांशुव्रत अर्थात् जिसे दूसरा न जान सके ऐसे नियम स्वीकार कर बारह वर्षकी दीक्षा ले पिताकी आज्ञाको पालता हुआ राजाके वनवासके उपरान्त पूर्वोक्त स्थानमेंही सत्यव्रत वसता रहा ॥ ३ ॥ तब अयोध्यापुरीको और सब राज्यको उपाध्यायके सम्बन्धसे वसिष्ठजी रक्षा करते रहे॥४॥ पीछे बालकपनसे व भावीसे सत्यव्रत वसिष्ठजीमें नित्यप्रति महाक्रोध मनमें करता रहा॥५॥कारण

वैशम्पायन उवाच ॥ सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया ॥ विश्वामित्रकलत्रं तद्बभार विनये स्थितः ॥१॥ हत्वा मृगान्वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान् ॥ विश्वामित्राश्रमाभ्याशे मांसं वृक्षे बबन्ध सः ॥२॥ उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ॥ पितुर्नियोगादवसत्तस्मिन् वनगते नृपे ॥३॥ अयोध्यां चैव राष्ट्रं च तथैवान्तःपुरं मुनिः ॥ याज्योपाध्यायसंबन्धाद्वसिष्ठः पर्यरक्षत ॥४॥ सत्यव्रतस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वा बलात् ॥ वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास वै तदा ॥५॥ पित्रा तु तं तदा राष्ट्रात्त्यज्यमानं स्वमात्मजम् ॥ न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन ह ॥६॥ पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे ॥ न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥ ७ ॥ जानन्धर्मं वसिष्ठस्तु न मां त्रातीति भारत ॥ सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाऽकरोत् ॥ ८ ॥ गुणबुद्ध्या तु भगवान्वसिष्ठः कृतवांस्तथा ॥ न सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥ ९ ॥ तस्मिन्नपरितोषो यः पितुरासीन्महात्मनः ॥ तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत्पाकशासनः ॥ १० ॥

जब पिताने सत्यव्रतपुत्रको त्यागा था तब वसिष्ठजीने किसी कारणसे उसको निषेध नहीं किया; कि यह कुछ समयतक पापका प्रायश्चित्त करे॥६॥ पाणिग्रहण मंत्रकी पूर्ति जो सप्तमपदमें हो जाती है; उसके नष्ट करनेसे यह बारह वर्षकी दीक्षा करनेसे शुद्ध होगा; इस बातको वह सत्यव्रत नहीं जानता था ॥७॥ और विचारने लगा कि वसिष्ठजी धर्म जानकरभी मेरी रक्षा नहीं करते, ऐसा विचार मनमें वैर रखने लगा ॥८॥ वसिष्ठजीने तौ यह काम गुण बुद्धिसे किया, परन्तु सत्यव्रतने उनके इस आशयको न जाना ॥९॥ और इस पिता पुत्रके ऐसे कारण होनेसे इन्द्रने बारह वर्षतक वर्षा नहीं की॥१०॥

इसके निवृत्त करनेको जब यह बारह वर्षकी कठिन दीक्षा लेगा तब इसके कुलकी निष्कृति होगी॥ ११॥ यह विचार कर पिताके त्यागने पर भगवान् वसिष्ठने इसको निवारण नहीं किया, मैं इसके पुत्रके अभिषेक करूंगा यह इच्छा वसिष्ठजीकी थी॥ १२॥ वह महाबली सत्यव्रत द्वादशवार्षिकी दीक्षा धारण कर उपांशु व्रतमें स्थित हो॥ १३॥ जहां तहां गया, परन्तु कहींभी मांस नहीं प्राप्त हुआ, तब धर्मात्मा वसिष्ठजीकी कामधेनु गायको उसने देखा॥ १४॥ क्रोधसे व मोहसे व परिश्रमसे संयुक्त क्षुधासे पीडित तथा मत्त १ प्रमत्त २ उन्मत्त ३ श्रांत ४ बुभुक्षित ५ त्वरमाण ६ भीरु ७ लुब्ध ८ क्रुद्ध ९ कामी १० इन दस

तेन त्विदानीं वहता दीक्षां तां दुर्वहां भुवि ॥ कुलस्य निष्कृतिस्तात कृता सा वै भवेदिति ॥११॥ न तं वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ॥ अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवं मतिर्मुनेः ॥ १२ ॥ स तु द्वादश वर्षाणि दीक्षां तामुद्वहद्बली ॥ उपांशुव्रतमास्थाय महत्सत्यव्रतो नृप ॥१३॥ अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ सर्वकामदुघां दोग्ध्रीं ददर्श स नृपात्मजः॥१४॥ तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैवक्षुधार्दितः॥दश धर्मान् गतो राजा जघान जनमेजय ॥१५॥ तच्च मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ॥ भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे ॥ क्रुद्धस्तु भगवान्वाक्यमिदमाह नृपात्मजम् ॥१६॥ वसिष्ठ उवाच॥ पातयेयमहं क्रूर तव शङ्कुमसंशयम्॥यदि ते द्वाविमौ शङ्कू न स्यातां वै कृतौ पुनः॥१७॥ पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च ॥ अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः॥१८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं त्रीण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः॥त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुरिति स स्मृतः ॥ १९ ॥

कारणोंसे युक्त हो, उस राजपुत्रने उस गायको मार डाला॥ १५॥ और उसका मांस ले विश्वामित्रके पुत्रोंको खवाकर पीछे आपनेभी खाया; उसकी यह व्यवस्था सुन वसिष्ठजीको महाक्रोध हुआ, और क्रुद्ध हुए भगवान वसिष्ठजी इस राजपुत्रके अर्थ इसप्रकार कहने लगे ॥१६॥ हे क्रूर ! तेरे पूर्वोक्त अपराधको दूर कर देता यदि तेरे यह अपराध न होते ॥ १७ ॥ परन्तु तैंने एक तो पिताका अपरितोष, दूसरा गायका वध, और तीसरा अप्रोक्षित गायके मांसको खाना यह तीन अपराध किये हैं ॥१८॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! इसप्रकार वह तपस्वी बोले; तैंने तीन शंकु अर्थात् तीन अपराध किये

हैं;इससे तू त्रिशंकु प्रसिद्ध होगा ॥१९॥ पीछे समयमें विश्वामित्रजी आकर अपने कुटुम्बकी पालना करते देख उस राजपुत्रसे बोले कि वर मांग ॥ २० ॥ तब राजपुत्रने कहा, मैं अपने इस शरीरसहित स्वर्गलोकमें जाऊं ऐसा वर दीजिये ॥२१॥ जब बारह वर्षके उपरान्त अनावृष्टिके भय शांत हो गये,तब इस राजपुत्रको पिताके राज्यपर प्रतिष्ठित कर विश्वामित्रजी यज्ञ कराने लगे॥२२॥तब देवता और वसिष्ठजीके देखते हुए विश्वामित्रजीने शरीरसहित इस राजपुत्रको स्वर्गमें प्राप्त किया ॥ २३ ॥ और इस सत्यव्रतके कैकय वंशकी सत्यरथा महारानीने दिव्यरूपवाले

विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते॥स तु तस्मै वरं प्रादान्मुनिःप्रीतस्त्रिशङ्कवे ॥२०॥ छन्द्यमानोवरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः॥ सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो मुनिः॥२१॥ अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके॥राज्येऽभिषिच्य पित्र्ये तु याजयामास तं मुनिः ॥ २२ ॥ मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः ॥ सशरीरं तदा तं तु दिवमारोपयत्प्रभुः ॥२३॥तस्य सत्यरथा नाम भार्या कैकयवंशजा॥कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥२४॥ स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति स्मृतः ॥ आहर्त्ता राजसूयस्य स सम्राडिति विश्रुतः॥२५॥हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम वीर्यवान् ॥ येनेदं रोहितपुरं कारितं राज्यसिद्धये॥२६॥ कृत्वा राज्यं स राजर्षिः पालयित्वा त्वथ प्रजाः ॥ संसारासारतां ज्ञात्वा द्विजेभ्यस्तत्पुरं ददौ॥२७॥हरितोरोहितस्याथ चञ्चुर्हारीत उच्यते ॥ विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्रौ बभूवतुः ॥ २८ ॥ जेता क्षत्रस्य सर्वस्य विजयस्तेन संस्मृतः ॥ रुरुकस्तनयस्तस्य राजधर्मार्थकोविदः ॥ २९ ॥

हरिश्चंद्र पुत्रको उत्पन्न किया ॥ २४ ॥ सो यह हरिश्चंद्र राजा त्रिशंकुका पुत्र हुआ और इसने राजसूय यज्ञ किया, पीछे यह चक्रवर्ती राजा हुआ ॥२५॥ हरिश्चंद्रके पराक्रमी रोहित पुत्र हुआ, जिसने देशकी सिद्धिके अर्थ रोहितपुर बनाया ॥ २६ ॥ पीछे राजर्षिने राज्यद्वारा प्रजाकी पालना कर संसारको असाररूप जान इस रोहितपुरको ब्राह्मणोंके अर्थ दिया ॥ २७ ॥ रोहितके हरित पुत्र हुआ, हरितके चंचु पुत्र हुआ, चंचुके विजय और सुदेव नामोंवाले २ पुत्र हुए॥२८॥इनमें विजयने सब क्षत्री जीत लिये इसकारण यह विजय नामसे प्रसिद्ध हुआ,पीछे विजयके धर्म-

अर्थका ज्ञाता रुरुक पुत्र हुआ ॥ २९ ॥ इस राजाको शक, यवन, कांबोज, पारद, पह्लव ॥ ३० ॥ हैहय, तालजंघ नामोंवाले मनुष्योंने राज्यसे भ्रष्ट कर दिया और यह राजा अधिक धार्मिकभी नहीं हुआ ॥३१॥ इस बाहुके और्वशीमें विषसे संयुक्त सगर पुत्र हुआ; तिसको भृगुवंशमें होनेवाले और्व मुनिने पालन किया ॥३२॥इसी मुनिसे सगर राजाने आग्नेय अस्त्रको सीख तालजंघ हैहयको मार सब पृथ्वीको जीता॥३३॥हे मुनिश्रेष्ठ! वह धर्मका ज्ञाता शक, पह्लव और पारद क्षत्रियोंके धर्मोंको छुटाता हुआ॥३४॥इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां त्रिशंकुचरित्रे त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥जनमेजय बोले;हे

रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद्बाहुस्तु जज्ञिवान् ॥ शकैर्यवनकाम्बोजैः पारदैः पह्लवैः सह ॥३०॥ हैहयास्तालजङ्घाश्च निरस्यन्ति स्म तं नृपम् ॥ नात्यर्थं धार्मिकस्तात स हि धर्मयुगेऽभवत् ॥३१॥ सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण च ॥ और्वस्याश्रममागम्य भार्गवेणाभिरक्षितः ॥३२॥ आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात्सगरो नृपः ॥ जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान्सहैहयान् ॥३३॥ शकानां पह्लवानां च धर्मं निरसदच्युतः ॥ क्षत्रियाणां कुरुश्रेष्ठ पारदानां स धर्मवित् ॥३४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि त्रिशङ्कुचरितकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ७॥ जनमेजय उवाच ॥ कथं स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युतः किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम् ॥१॥ धर्मं कुलोचितं क्रुद्धो राज निरसदच्युतः एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण तपोधन ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बाहोर्व्यसनिनस्तात हृतं राज्यमभूत्किल ॥ हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्द्धं विशाम्पते ॥ ३ ॥ यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवाः खसाः ॥ एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहयार्थे पराक्रमन् ॥ ४ ॥ हृतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वनं ययौ ॥ पत्न्या चानुगतो दुःखी वने प्राणानवासृजत ॥ ५ ॥

भगवन्! सगर राजा विषसहित कैसे जन्मा और किसकारण शकआदि क्षत्रियोंको ॥ १ ॥ कुलोचित धर्मोंको क्रोधकर राजाने छुटाया; हे तपोधन ! यह सब विस्तारसे मेरे प्रति कहिये ॥२॥ वैशंपायनजी बोले; हे राजन्! व्यसनवाले बाहुका राज्य जब हैहय, तालजंघ, शक ॥३॥ यवन, पारद, काम्बोज, पह्लव, खस इन पांच गणोंनेभी हैहयकी ओर होकर युद्ध किया और जीत लिया ॥४॥ राज्य हरण होनेसे राजा दुःखीहो पत्नियोंसहित वनको गया; और

वहीं मृतक हुआ॥५॥इस राजाकी गर्भिणी स्त्री जो उसके साथ गई थी; उसे प्रथम दूसरी रानीने विष दे दिया था॥६॥सो विषसंयुक्त बालकको धारण किये बाहुकी रानीभी संग गई, जब पतिके प्राणान्त हो गये, तब चिता बनाय वनमें पतिके संग गर्भवती रानी जलने लगी, तब दयाभावसे और्व मुनिने उसे जलनेसे निषेध किया॥७॥ पीछे और्वमुनिके आश्रममें विषसहित वह बालक जन्मा, जिसका सगर नाम हुआ ॥ ८ ॥ तब मुनिने उस बालकके जातकर्मादि कर पीछे उस महात्माको वेदोंका शास्त्रोंका अध्ययन कराया पीछे सब अस्त्र सिखाये॥९॥ तब देवताओंकोभी दुस्सह आग्नेय अस्त्रको सीख और सैना इकट्ठी

पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् ॥ सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्ता पूर्वमभूत्किल ॥ ६ ॥ सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वनं तामध्यरोहत ॥ और्वस्तां भार्गवस्तात कारुण्यात्समवारयत् ॥७॥ तस्याश्रमे च तं गर्भं गरेणैव सहाच्युतम् ॥ व्यजायत महाबाहुं सगरं नाम पार्थिवम् ॥८॥ और्वस्तु जातकर्मादि तस्य कृत्वा महात्मनः ॥ अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥ ९ ॥ आग्नेयं तु महाघोरममरैरपि दुःसहम् ॥ स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वितः ॥१०॥ हैहयान्निजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ आजहार च लोकेषु कीर्तिं कीर्तिमतां वरः ॥११॥ ततः शकान्सयवनान्काम्बोजान्पारदांस्तदा पह्लवांश्चैव निःशेषान्कर्तुं व्यवसितस्तदा ॥ १२ ॥ ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ॥ वसिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ॥१३॥ वसिष्ठस्त्वथ तान्दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः ॥ सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाभयं तदा ॥ १४ ॥ सगरः स्वां प्रतिज्ञां च गुरुवाक्यं निशम्य च ॥ धर्मं जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह ॥ १५ ॥

कर॥१०॥पराक्रम बलसहित हैहय संज्ञक क्षत्रियोंको उसने ऐसे मारा जैसे क्रुद्ध हुआ रुद्र पशुको मारता है, और उस कीर्तिमानने संसारमें अपनी कीर्ति बढाई ॥११॥ पीछे शक, यवन, कांबोज, पारद, पह्लव इन सबोंको निःशेष करनेकी इच्छा की ॥१२॥ तब हाहाकार करते हुए, ये सब वसिष्ठजीकी शरण गये॥१३॥और प्रणाम कर विनय करी, तब वसिष्ठजीने उन शरणमें आये हुओंको देखकर उन्हें अभय दे सगरको मारनेसे निवारण किया॥१४॥ तब सगर राजाने अपनी प्रतिज्ञा और वसिष्ठजीके वचनको सुन तिन क्षत्रियोंके धर्मोंको नाश कर दिया, और उनके वेषभी बदल दिये ॥ १५ ॥

पीछे शक जातिके क्षत्रियोंके आधे शिरको मुंड़ाकर छोड दिया; यवन और काम्बोज क्षत्रियोंके सम्पूर्ण शिरको मुंडाकर छोड दिया ॥ १६ ॥ पारद क्षत्रियोंको छूटे हुए केशवाले और पह्लवोंको श्मश्रुधारी बनाय छोड दिया, इस प्रकार सब स्वाध्याय वषट्कारसे रहित महात्मा सगरने कर दिये ॥ १७ ॥ और शक, यवन, काम्बोज, पारद, पल्हव, कोलिसर्प, महिष, दार्वा, चौल, केरल ॥ १८ ॥ इन सब क्षत्रियोंके धर्मोंका नाश कर दिया; और वसिष्ठजीके वचनसे महात्मा सगरने ॥ १९ ॥ खस; तुषार, चोल, मद्र, किष्किंधक, कौंतल, वंग, साल्व, कौंकण ॥ २० ॥ इन देशोंके राजाओंको धर्मसे रहित कर

अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डं कृत्वा व्यसर्जयत् ॥ यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥ १६ ॥ पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः ॥ निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥ १७ ॥ शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च विशांपते ॥ कोलिसर्पाः समहिषा दार्वाश्चोलाः स केरलाः ॥ १८ ॥ सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृतः ॥ वसिष्ठवचनाद्राजन् सगरेण महात्मना ॥ १९ ॥ खसांस्तुषारांश्चोलांश्च मद्रान् किष्किन्धकांस्तथा ॥ कौन्तलांश्च तथा वङ्गान् साल्वान् कौङ्कणकांस्तथा ॥ २० ॥ स धर्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम् ॥ अश्वं वै प्रेरयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ॥ २१ ॥ तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्वदक्षिणे ॥ वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥ २२ ॥ स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः ॥ आसेदुस्ते ततस्तत्र खन्यमाने महार्णवे ॥ २३ ॥ तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम् ॥ विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्तं पुरुषोत्तमम् ॥ २४ ॥ तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः ॥ दग्धास्ते वै महाराज चत्वारस्त्ववशेषिताः ॥ २५ ॥

दिया, ऐसे पृथ्वीको जीत धर्मको जाननेवाला सगर राजा अश्वमेधके यज्ञके अर्थ दीक्षित हो अश्वको छोडने लगा ॥ २१ ॥ पीछे चलता हुआ अश्व पूर्व दक्षिण समुद्रके समीपमें अपहृत हो पृथ्वीमें प्रवेश कर गया ॥ २२ ॥ तब राजाने उस देशको अपने पुत्रोंसे खुदवा डाला; तब उस महार्णव स्थानको खोदते हुये ॥ २३ ॥ आदिपुरुष कृष्ण हरि प्रजापति विष्णु नामोंवाले कपिल मुनिजीको शयन करते देखा ॥ २४ ॥ तब जागनेसे कपिल मुनिजीके

नेत्रोंके तेजसे सगरके पुत्र सब दग्ध हो गये. केवल चार शेष रहे ॥ २५ ॥ बर्हकेतु, सुकेतु, धर्मरथ,पंचजन यह चार शेष रहे ॥ २६ ॥ पुनः सगर जीके अर्थ कपिल मुनिजीने वरदान दिया कि इक्ष्वाकुका अक्षय वंश रहेगा, और तेरी सुन्दर कीर्ति बढेगी ॥२७॥ और समुद्र पुत्र होगा, और अक्षय स्वर्गवास होगा; और मेरे नेत्रोंके तेजसे जो पुत्र दग्ध हो गये हैं, तिन्होंको अक्षय लोक प्राप्त होंगे ॥२८॥ पीछे समुद्रने अर्घ्य ग्रहण कर तिस सगर राजाको प्रणाम किया, और उसी कर्मसे समुद्रको सागर कहते हैं ॥२९॥ ऐसे समुद्रसे उस अश्वको ग्रहण कर सौ (१००) अश्वमेध यज्ञ किये इस

बर्हकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्मरथो नृपः ॥ शूरः पञ्चजनश्चैव तस्य वंशकरो नृपः ॥ २६ ॥ प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरान् ॥ अक्षयं वंशमिक्ष्वाकोः कीर्तिं चाप्यनिवर्तनीम् ॥२७॥ पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गवासं तथाऽक्षयम् ॥ पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान् तस्य ये चक्षुषा हताः ॥ २८ ॥ समुद्रश्चार्घमादाय ववन्दे तं महीपतिम् ॥ सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ॥ २९ ॥ तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान् ॥ आजहाराश्वमेधानां शतं स सुमहायशाः ॥ पुत्राणां च सहस्राणि षष्टिस्तस्येति नः श्रुतम् ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सगरोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ जनमेजय उवाच ॥ सागरस्यात्मजा वीराः कथं जाता महात्मनः ॥ विक्रान्ताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा द्विज ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ द्वे भार्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे ॥ ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम विश्रुता ॥२॥ कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी ॥ अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ३ ॥

सगर राजाके साठ हजार (६००००) पुत्र हुए, ऐसे हमने सुना है॥३०॥इति श्रीम० भा० सगरोत्पत्तिचारित्रकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ जनमेजय बोले; हे भगवन्!तिस महात्मा रूप सगर राजाके साठ हजार(६०,०००)पुत्र कैसे जन्मे थे॥१॥वैशंपायन बोले कि सगर राजाके दो भार्या हुईं; इन दोनोंने तपसे पापोंको दग्धकर दिया; उनमें विदर्भकी पुत्री केशिनी नामसे विख्यात बड़ी रानी हुई ॥ २ ॥ और छोटी रानी अरिष्टनेमिकी

पुत्री रूपमें पृथ्वीभरमें अति सुन्दर और महती नामसे विख्यात हुई ॥३॥ हे जनमेजय! सुनो, और्व मुनिने तिन दोनोंको वर दिया कि एकके ६०००० पुत्र होंगे ॥४॥ और एकके वंशको धारण करनेवाला एक पुत्र होगा, सो तुम दोनों इच्छापूर्वक इनमेंसे एक वरको ग्रहण करो ॥ ५ ॥ तब एक भार्या लोभको प्राप्त हो शूरवीर रूप ६०००० हजार पुत्रोंको मांगती हुई; और एक भार्याने वंशको चलानेवाला एकही पुत्र मांगा; ऐसेहीमुनिने वरदान दिया, तब केशिनी भार्याके असमंजा नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥६॥ यह समय पाके महाबली पंचजन नाम राजा हुआ, और दूसरी रानीके बीजोंसे पूर्ण तोंबी उत्पन्न

और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तन्निबोध जनाधिप ॥ षष्टिं पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका तपस्विनी ॥४॥ एकं वंशधरं त्वेका यथेष्टं वरयत्विति॥ तत्रैका जगृहे पुत्राँल्लुब्धा शूरान् बहूंस्तथा ॥५॥ एकं वंशधरं त्वेका तथेत्याह च तां मुनिः ॥ केशिन्यसूत सगरादसमञ्जसमात्मजम् ॥६॥ राजा पञ्चजनो नाम बभूव सुमहाबलः ॥ इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः ॥ ७ ॥ तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः ॥ संबभूवुर्यथाकालं ववृधुश्च यथाक्रमम् ॥ ८ ॥ घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे पिता ॥ धात्रीश्चैकैकशः प्रादात्तावतीरेव पोषणे ॥९॥ ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम् ॥ कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रीतिवर्धनाः ॥ १० ॥ षष्टिः पुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन्नृप ॥ गर्भादलाबुमध्याद्वै जातानि पृथिवीपते ॥ ११ ॥ तेषां नारायणं तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम् ॥ एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह ॥ १२ ॥ सुतः पञ्चजनस्यासीदंशुमान्नाम वीर्यवान् ॥ दिलीपस्तनयस्तस्य खट्वाङ्ग इति विश्रुतः ॥ १३ ॥

हुई ऐसा सुना है ॥ ७ ॥ ६०००० तिलोंके समान गर्भकालके अनुसार उपजकर बढ़ने लगे ॥ ८ ॥ उनको सगर राजा घृतसे पूर्णकुंभमें प्राप्त करने लगा, और जितने गर्भ थे, उतनीही राजाने धायें पोषणके निमित्त प्राप्त कर दीं ॥९॥ पीछे दशवें महीनेमें क्रमसे सगरकी प्रीतिकोबढ़ानेवाले ॥१०॥ कालके अनुसार साठ सहस्र (६००००) बालक उपजे हे पृथ्वीपते! ऐसे तूंबीसे पुत्र उपजे हैं॥११॥ इन्हींके ऊपर कपिल नारायणका तेज पतित हुआ, एक पंचजन पुत्रही राजा हुआ ॥ १२ ॥ पीछे पंचजनके पुत्र अंशुमान् हुआ और अंशुमानके दिलीप पुत्र हुआ पीछे दिलीपके खट्वांग पुत्र हुआ॥१३॥

जिसने अपापने स्वर्गसे फिर इस लोकमें आगमन कर एक मुहूर्तभर जीकर सत्यसे और बुद्धिसे तीनों लोक अनुसंधित कर दिये॥ १४॥ पीछे दिलीपके महाराज भगीरथ पुत्र हुआ, जिसने श्रीगंगाजीको इस लोकमें लाया ॥ १५॥ वह इन्द्रतुल्य महापराक्रमी कीर्तिमान् गंगाजीको समुद्रमें मिला पुत्रीभावसे मानता हुआ, इसकारण वंशचिंतक गंगाको भागीरथी कहते हैं॥ १६॥ पीछे भागीरथके श्रुत पुत्र हुआ, श्रुतके नाभाग परमधार्मिक पुत्र हुआ ॥ १७॥ नाभागके अंबरीष अंबरीषके सिन्धुद्वीप, सिंधुद्वीपसे बली अयुताजित् पुत्र हुआ॥ १८॥ अयुताजितके महायशस्वी ऋतुपर्ण पुत्र हुआ, यह राजा पांसोंके

येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम् ॥ त्रयोऽनुसंधिता लोका बुद्ध्या सत्येन चानघ ॥ १४ ॥ दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथः ॥ यः स गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभुः ॥१५॥ कीर्तिमान् स महाभागः शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ समुद्रमानयच्चैनां दुहितृत्वेन कल्पयत् ॥ तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशचिन्तकैः ॥१६॥ भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः ॥ नाभागस्तु श्रुतस्यासीत्पुत्रः परमधार्मिकः ॥१७॥ अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपिताऽभवत् ॥ अयुताजित्तु दायादः सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् ॥१८॥ अयुताजित्सुतस्त्वासीदृतुपर्णो महायशाः ॥ दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली ॥१९॥ ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदार्तपर्णिर्महीपतिः ॥ सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसखोऽभवत् ॥ २० ॥ सुदासस्य सुतस्त्वासीत्सौदासो नाम पार्थिवः ॥ ख्यातकल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहस्तथा ॥ २१ ॥ कल्माषपादस्य सुतः सर्वकर्मेति विश्रुतः ॥ अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुतः सर्वकर्मणः ॥२२॥ अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नपुत्रौ बभूवतुः ॥ अनमित्रो रघुश्चैव पार्थिवर्षभसत्तमौ ॥२३॥ अनमित्रस्य धर्म्मात्मा विद्वान्दुलिदुहोऽभवत् ॥ दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामहः ॥ २४ ॥

खेलमें अति चतुर और नल राजाका मित्र हुआ॥ १९॥ पीछे ऋतुपर्णके आर्तपर्णी, आर्तपर्णीके सुदास हुआ, यह राजा इन्द्रका मित्र हुआ॥ २०॥ सुदासका पुत्र सौदास हुआ, इसीको कल्माषपाद और मित्रसहभी कहते हैं॥ २१॥ कल्माषपादकेसर्वकर्मा पुत्र हुआ, सर्वकर्माके अनरण्य पुत्र हुआ ॥ २२॥ अनरण्यके निघ्न, निघ्नके अनमित्र और रघुनामवाले दो श्रेष्ठ पुत्र हुए ॥ २३॥ अनमित्रके दुलिदुह पुत्र हुआ; दुलिदुहके दिलीप पुत्र हुआ; यह

रामचन्द्रजीका प्रपितामह लगा ॥ २४ ॥ दिलीपके दीर्घ बाहुओंवाला रघु पुत्र हुआ, वह अयोध्यापुरीमें महाबली हुआ ॥ २५ ॥ रघुके अज पुत्र हुआ, पीछे अजके दशरथ पुत्र हुआ, दशरथके धर्मात्मा और महायशवाले रामचन्द्रजी पुत्र हुए ॥ २६ ॥ रामचंद्रके कुश पुत्र हुआ कुशके अतिथि पुत्र हुआ; अतिथिके निषध और ॥ २७ ॥ निषधके नल पुत्र हुआ, नलके नभ हुआ, नभके पुंडरीक पुत्र हुआ, पुंडरीकके क्षेमधन्वा पुत्र हुआ ॥ २८ ॥ क्षेमधन्वाके प्रतापी देवानीक पुत्र हुआ, देवानीकके अहीनगु ॥ २९ ॥ अहीनगुके राजा सुधन्वा पुत्र हुआ सुधन्वाके नल पुत्र हुआ ॥ ३० ॥ नलके उक्थ

दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्नाऽभवत्सुतः ॥ अयोध्यायां महाराजो रघुश्चासीन्महाबलः ॥ २५ ॥ अजस्तु रघुतो जज्ञे अजाद्दशरथोऽभवत् ॥ रामो दशरथाज्जज्ञे धर्मात्मा सुमहायशाः ॥ २६ ॥ रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ॥ अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ॥ २७ ॥ निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु ॥ नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ॥ २८ ॥ क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान् ॥ आसीदहीनगुर्नाम देवानाकसुतः प्रभुः ॥ २९ ॥ अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः ॥ सुधन्वनः सुतश्चैव ततो यज्ञेऽनलो नृपः ॥ ३० ॥ उक्थो नाम स धर्मात्मा नलपुत्रो बभूव ह ॥ वज्रनाभः सुतस्तस्य उक्थस्य च महात्मनः ॥ ३१ ॥ शंखस्तस्य सुतो विद्वान् ध्युषिताश्व इति श्रुतः ॥ पुष्पस्तस्य सुतो विद्वान् अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥ ३२ ॥ सुदर्शनः सुतस्तस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात् ॥ अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रस्य तु मरुः सुतः ॥ ३३ ॥ मरुस्तु योगमास्थाय कलापद्वीपमास्थितः ॥ तस्यासीद्विश्रुतवतः पुत्रो राजा बृहद्बलः ॥ ३४ ॥ नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे भरतर्षभ ॥ वीरसेनात्मजश्चैव यश्चैक्ष्वाकुकुलोद्वहः ॥ ३५ ॥

नाम धर्मात्मा पुत्र हुआ, उक्थ महात्माके वज्रनाभ पुत्र हुआ ॥ ३१ ॥ वज्रनाभके शंख पुत्र हुआ शंखके ध्युषिताश्व पुत्र हुआ ध्युषिताश्वके पुष्प पुत्र हुआ पुष्पके अर्थसिद्धि पुत्र हुआ ॥ ३२ ॥ अर्थसिद्धिके सुदर्शन पुत्र हुआ, सुदर्शनके अग्निवर्ण पुत्र हुआ, अग्निवर्णके शीघ्र, शीघ्रके मरु पुत्र हुआ ॥ ३३ ॥ जो योगमें स्थित हो कलापग्राममें स्थित है. मरुके विश्रुतवत् पुत्र हुआ, विश्रुतवत्के बृहद्बल हुआ ॥ ३४ ॥ हे भरतर्षभ ! दो नल राजा पुराणोंमें विख्यात हैं; एक तौ वीर-

सेनका पुत्र और दूसरा इक्ष्वाकुवंशमें होनेवाला ॥ ३५ ॥ इक्ष्वाकु वंशके राजा प्रधान वर्णन किये; यह सब महातेजस्वी सूर्यके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ ३६ ॥ प्रजाओंके पुष्टि देनेवाले महात्मा श्राद्धदेव सूर्यवंशके आख्यानको सम्यक् प्रकार पाठ करनेसे और सुननेसे ॥ ३७ ॥ सन्तान और आयुकी प्राप्ति होती है, और यह प्राणी पाप और रोगादिसे रहित हो विवस्वान्‌की सायुज्यको पाता है॥ ३८॥ इति श्रीहरिवंशपुराणे भाषायां आदित्यवंशानुकीर्तनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५॥

जनमेजय बोले; हे भगवन् ! उत्तम श्रेष्ठ विवस्वान् सूर्यको श्राद्धदेवत्व किस प्रकार प्राप्त हुआ; और श्राद्धकी उत्तम विधिभी सुनना चाहता हूं ॥ १ ॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येनेह कीर्तिताः ॥ एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः ॥ ३६ ॥ पठन्सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः ॥ श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च ॥ ३७ ॥ प्रजावानोति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥ विपाप्मा विरजाश्चैव आयुष्मांश्च भवत्युत ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि आदित्यस्य वंशाऽनुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५॥

जनमेजय उवाच ॥ कथं वै श्राद्धदेवत्वमादित्यस्य विवस्वतः ॥ श्रोतुमिच्छामि विप्राग्र्य श्राद्धस्य च परं विधिम् ॥ १ ॥ पितृणामादिसर्गं च क एते पितरः स्मृताः ॥ एवं च श्रुतमस्माभिः कथ्यमानं द्विजातिभिः ॥ २ ॥ स्वर्गस्था पितरो ये च देवानामपि देवताः ॥ इति वेदविदः प्राहुरेतादिच्छामि वेदितुम् ॥ ३ ॥ ये च तेषां गणाः प्रोक्ता यच्च तेषां बलं परम् ॥ यथा च कृतमस्माभिः श्राद्धं प्रीणाति वै पितृन् ॥ ४ ॥ प्रीताश्च पितरो ये स्म श्रेयसा योजयन्ति हि ॥ एवं वेदितुमिच्छामि पितृणां सर्वमुत्तमम् ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ हन्त ते कथयिष्यामि पितृणां सर्गमुत्तमम् ॥ यथा च कृतमस्माभिः श्राद्धं प्रीणाति वै पितृन् ॥ प्रीताश्च पितरो ये स्म श्रेयसा योजयन्ति हि ॥ ६ ॥

कौन पितर हुए हैं, और हमने ब्राह्मणोंसे श्रवणभी करा है ॥ २ ॥ जो पितर स्वर्गमें स्थित और देवताओंकेभी देवते हैं, यह वेदके जाननेवालोंने कहा है, यह विस्तारपूर्वक मेरे जाननेकी इच्छा है ॥ ३ ॥ जो पितरोंके गुण हैं, जो पितरोंका बल, जैसे हमारे किये श्राद्धसे पितरोंकी तृप्ति होती है ॥ ४ ॥ और प्रसन्न हुए पितर हमको जैसे कल्याण देते हैं, उन पितरोंके उत्तम सर्गको जाननेकी मेरी इच्छा है ॥५॥ वैशंपायन बोले, हे जनमेजय ! पितरोंके उत्तम

सर्गको तुमसे कहता हूं, और जिस प्रकार कि श्राद्धसे पितर तृप्त होते हैं, और प्रसन्न होकर जिस प्रकार मनुष्यको मुक्ति करते हैं ॥ ६ ॥ यह सब मार्कंडेयजीने प्रश्न करनेवाले भीष्म पिताजीके अर्थ कहा है, इसके उपरान्त शरशय्यापर स्थित भीष्मजीसे राजा युधिष्ठिरनेभी इसी प्रश्नको पूछा था॥ ७ ॥ वह यथाक्रमसे जैसे भीष्मजीने कहा है, और मार्कण्डेयजीके अर्थ जो सनत्कुमारने वर्णन किया है सो सुन ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरजी बोले; हे धर्मज्ञ ! सृष्टिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको कैसे पुष्टि प्राप्त होती है और किस कर्मको करनेमें मनुष्य शोचको प्राप्त नहीं होता है ॥ ९ ॥ यह कथा सुननेकी मुझे इच्छा

मार्कण्डेयेन कथितं भीष्माय परिपृच्छते ॥ अपृच्छद्धर्मराजो हि शरतल्पगतं पुरा ॥ एवमेव पुरा प्रश्नं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ७ ॥ तत्तेऽनुपूर्व्या वक्ष्यामि भीष्मेणोदाहृतं यथा ॥ गीतं सनत्कुमारेण मार्कण्डेयाय पृच्छते ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पुष्टिकामेन धर्मज्ञ कथं पुष्टिरवाप्यते ॥ एतद्वै श्रोतुमिच्छामि किं कुर्वाणो न शोचति ॥ ९ ॥ भीष्म उवाच ॥ श्राद्धैः प्रीणाति हि पितॄन् सर्वकामफलैस्तु यः ॥ तत्परः प्रयतः श्राद्धी प्रेत्य चेह च मोदते ॥ १० ॥ पितरो धर्मकामस्य प्रजाकामस्य च प्रजाम् ॥ पुष्टिकामस्य पुष्टिं च प्रयच्छन्ति युधिष्ठिर ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ वर्त्तन्ते पितरः स्वर्गे केषांचिन्नरके पुनः ॥ प्राणिनां नियतं वापि कर्मजं फलमुच्यते ॥ १२ ॥ श्राद्धानि चैव कुर्वन्ति फलकामाः सदा नराः ॥ अभिसन्धाय पितरं पितुश्च पितरं तथा ॥ १३ ॥ पितुः पितामहं चैव त्रिषु पिण्डेषु नित्यशः ॥ तानि श्राद्धानि दत्तानि कथं गच्छन्ति वै पितॄन् ॥ १४ ॥ कथं च शक्तास्ते दातुं नरकस्थाः फलं पुनः ॥ के वा ते पितरोऽन्ये स्म कान्यजामो वयं पुनः ॥ १५ ॥

है. भीष्मजी बोले; सब कामोंके फलरूप श्राद्धोंसे जो पितरोंको नित्य तृप्त करते हैं, वे निरंतर श्राद्ध करनेवाले मनुष्य परलोकमें और इस लोकमें सुखको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ हे युधिष्ठिर ! पितर धर्मकी कामनावालेको धर्म और प्रजाकी कामनावालेको प्रजा, और पुष्टिकी कामनावालेको पुष्टि प्रदान करते हैं ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर बोले; किनके पितर स्वर्गमें वसते हैं और किनके पितर नरकमें वसते हैं; क्योंकि सब प्राणी कर्मके अनुसार प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥ और विशेषकर फलको चाहनेवाले मनुष्य श्राद्धको करते हैं; और पिता दादाके नामपर करते हैं ॥ १३ ॥ पिता, पितामह, प्रपितामह इन तीन पुस्तोंके अर्थ सर्वदा पिंडदान देते रहते हैं सो दिये हुए श्राद्ध पितरोंके अर्थ कैसे पहुँचते हैं ॥ १४ ॥ और नरकमें स्थित हुए पितर फल देनेको किस प्रकार समर्थ

हैं; अथवा वे पितर अन्य कोई हैं फिर हम किनकी पूजा करें ॥ १५ ॥ हमने सुना है देवताभी स्वर्गमें पितरोंका पूजन करते हैं; सो हे महाद्युते ! यह विस्तारपूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १६ ॥ सो आप कहिये जैसे पितरोंके देनेसे तृप्ति होती है ॥ १७ ॥ भीष्मजी बोले; हे शत्रुदमन ! इस विषयमें जो हमने सुना है सो कहते हैं; और जो अन्य पितर हैं; और जिनको हम सर्वदा पूजते हैं, यह सब लोकांतरसे गये हुए मेरे पिताने मुझसे कहा है ॥ १८ ॥ एक समय श्राद्धकालमें मैंने अपने पिताके अर्थ पिंड देने चाहा, अर्थात् पिंडको ग्रहण कर देनेको उद्यत हुआ; तब मेरे पिताने अपने

देवा अपि पितॄन् स्वर्गे यजंतीति च नः श्रुतम् ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महाद्युते ॥ १६ ॥ स भवान् कथयत्वेतां कथाममितबुद्धिमान् ॥ यथा दत्तं पितॄणां वै तारणायेह कल्पते ॥ १७ ॥ भीष्म उवाच ॥ अत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाश्रुतमरिंदम ॥ ये च ते पितरोऽन्ये स्म यान्यजामो वयं पुनः ॥ पित्रा मम पुरा गीतं लोकान्तरगतेन वै ॥१८॥श्राद्धकाले मम पितुर्मया पिण्डः समुद्यतः ॥ तं पिता मम हस्तेन भित्त्वा भूमिमयाचत ॥ १९ ॥ हस्ताभरणपूर्णेन केयूराभरणेन च ॥ रक्ताङ्गुलितलेनाथ यथा दृष्टः पुरा मया ॥ २० ॥ नैष कल्पे विधिर्दृष्ट इति संचिन्त्य चाप्यहम् ॥ कुशेष्वेव ततः पिण्डं दत्तवानविचारयन् ॥ २१ ॥ ततः पिता मे सुप्रीतो वाचा मधुरया तदा ॥ उवाच भरतश्रेष्ठ प्रीयमाणो मयाऽनघ ॥ २२ ॥ त्वया दायादवानस्मि कृतार्थोऽमुत्र चेह च ॥ सत्पुत्रेण त्वया पुत्र धर्मज्ञेन विपाश्चिता ॥ २३ ॥ मया तु तव जिज्ञासा प्रयुक्तैषा दृढव्रत ॥ व्यवस्थानं तु धर्मेषु कर्तुं लोकस्य चानघ ॥ २४ ॥

हाथसे पृथ्वीको भेदन कर पिंडको मांगा ॥ १९ ॥ तब हाथोंके आभूषणोंसे भूषित केयूरादिसे शोभित लाल अंगुली और लाल तलुओंसे संयुक्त हाथको मैंने देखा; और जैसे जीतेके हाथमें चिह्न देखे थे वेभी सब देखे ॥ २० ॥ परन्तु बौधायन आदि कल्पसूत्रोंमें ऐसी हाथपर पिंड देनेकी विधि नहीं देखी थी; इस कारण विचार कर कुशोंपर मैंने पिंडदान किया ॥ २१ ॥ तब प्रसन्न हुए मेरे पिताने मधुर वाणीसे मुझसे कहा ॥ २२ ॥ हे पुत्र ! तुझसे मैं पुत्रवाला हूं; इस लोकमें और परलोकमें कृतार्थ हुआ हूं, धर्मोंके जाननेवाले और अति पंडित ॥ २३ ॥ हे दृढव्रत ! तुझ पुत्रकी परीक्षा देखी; हे अनघ ! धर्ममें

लोककी स्थिति करनी चाहिये॥२४॥परन्तु जैसे धर्मकी रक्षा करनेवाला मनुष्य धर्मके चतुर्थांशको प्राप्त होता है, वैसेही अधर्मकी रक्षा करनेवाला मनुष्य पापके चतुर्थांशको प्राप्त होता है॥ २५॥ हे भरतश्रेष्ठ ! जैसे तैंने परम्परा और वेदकी मर्यादाकोजान वेद धर्मोंकी रक्षा करी;और मेरीभी प्रीति करी ॥२६॥ इसकारण मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हूं; मैं उत्तम वर दूंगा तुम तीनों लोकमें दुर्लभ वर मांगो ॥ २७ ॥ २८ ॥ और हे पुत्र! जबतक तुम जीनेकी इच्छा करोगे; तबतक तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी; तुम्हारी आज्ञा लेकर मृत्यु होगी ॥ २९ ॥ आगे अब जो तुम्हारी इच्छा हो

यथा चतुर्थं धर्मस्य रक्षिता लभते फलम् ॥ पापस्य हि तथा मूढःफल प्राप्नोत्यरक्षिता ॥२५॥ प्रमाणं यद्धि कुरुते धर्माचारेषु पार्थिवः ॥ प्रजास्तदनुवर्त्तन्ते प्रमाणाचरितं सदा ॥२६॥ त्वया च भरतश्रेष्ठ वेदधर्माश्च शाश्वताः॥ कृताःप्रमाणं प्रीतिश्च मम निर्वर्तिताऽतुला ॥२७॥तस्मात्तवाहं सुप्रीतःप्रीत्या च वरमुत्तमम्॥ददामि तं प्रतीच्छ त्वं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्॥२८॥ न ते प्रभविता मृत्युर्यावज्जीवितुमिच्छसि ॥ त्वत्तोऽभ्यनुज्ञां संप्राप्य मृत्युः प्रभविता तव ॥ २९ ॥ किंवा ते प्रार्थितं भूयो ददामि वरमुत्तमम् ॥ तद्ब्रूहि भरतश्रेष्ठ यत्ते मनसि वर्त्तते ॥३०॥इत्युक्तवन्तं तमहमभिवाद्य कृताञ्जलिः।अब्रुवं कृतकृत्योऽहं प्रसन्ने त्वयि सत्तम॥३१॥ यदि त्वनुग्रहं भूयस्त्वत्तोऽर्हामि महाद्युते॥प्रश्नमिच्छामि वै किंचिद्व्याहृतं भवतास्वयम् ॥३२॥ स मामुवाच धर्मात्मा ब्रूहि भीष्म यदिच्छसि ॥ छेत्तास्मि संशयं सर्वं यन्मां पृच्छसि भारत ॥३३॥ अपृच्छं तमहं तातं तत्रान्तर्हितमेव च ॥ गतं सुकृतिनां लोकं कौतूहलसमन्वितः ॥ ३४ ॥

वह मांगो, जो तुम्हारे मनमें हो वह कहो ॥३०॥ ऐसे कहते हुए पिताको मैं नमस्कार कर अंजलिबांध ऐसे कहने लगा; हे श्रेष्ठ ! आपकी प्रसन्नता होनेसे मैं कृतकृत्य हो गया ॥३१॥ जो आपसे मैं फिर अनुग्रहके योग्य हूं तो आपसे उत्तर पाये प्रश्नकी इच्छा करता हूं॥ ३२ ॥ तब वह धर्मात्मा मुझसे बोले; हे भीष्म ! जो तेरी इच्छा हो वह कह; हे पुत्र ! मैं तेरे संशयको दूर करूंगा ॥ ३३ ॥ तब मैं कौतूहलयुक्त हो पवित्र लोकमें प्राप्त हुए

और अंतर्हित हुए पितासे मैं पूंछने लगा ॥ ३४ ॥ भीष्म बोले पितर देवताओंकेभी देवता सुने हैं; इसकारण देवताही पितर हैं वा और अन्य कोई हैं; हम किसको पूजे ॥ ३५॥ हे पिता ! हमारा दिया हुआ श्राद्ध कैसे अन्य लोकोंमें जाय पितरोंको तृप्त करता है; और श्राद्ध करनेका फल क्या है.॥३६॥और देव, मनुष्य, दानव, यक्ष,राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, दिव्य सर्प ये किन पितरोंका पूजन करते हैं॥३७॥इसमें मुझे अति संदेह है; और अति आश्चर्य है; और आप सर्वज्ञ हैं, इसकारण हे धर्मज्ञ ! इस प्रश्नका उत्तर दीजिये.ऐसे भीष्मजीके वचनको सुन शंतनु राजा कहने लगे ॥३८॥

भीष्म उवाच॥श्रूयन्ते पितरो देवा देवानामपि देवताः॥देवाश्च पितरोऽन्ये वा कान्यजामो वयं पुनः॥३५॥ कथं च दत्तमस्माभिः श्राद्धं प्रीणात्यथो पितॄन् ॥ लोकान्तरगतांस्तात किन्न श्राद्धस्य वा फलम् ॥३६॥ कान्यजन्ति स्म लोका वै सदेवनरदानवाः ॥ सयक्षोरगगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥३७॥ अत्र मे संशयस्तीव्रःकौतूहलमतीव च ॥ तद् ब्रूहि मम धर्मज्ञ सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य भीष्मस्योवाच वै पिता ॥३८॥ शन्तनुरुवाच ॥ संक्षेपेणैव ते वक्ष्ये यन्मां पृच्छसि भारत॥पितरश्च यथो द्भूताः फलं दत्तस्य चानघ ॥३९॥ पितॄणां कारणं श्राद्धे शृणु सर्वं समाहितः॥ आदिदेवसुतास्तात पितरो दिवि देवताः ॥४०॥ तान् यजन्ति स्म वै लोकाःसदेवासुरमानुषाः ॥ सयक्षोरगगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥४१॥ आप्यायिताश्च ते श्राद्धे पुनराप्याययन्ति च ॥ जगत्सदेवगन्धर्वमिति ब्रह्मानुशासनम् ॥४२॥ तान्यजस्व महाभाग श्राद्धैरग्र्यैरतन्द्रितः॥ ते ते श्रेयो विधास्यन्ति सर्वकामफलप्रदाः ॥४३॥ त्वया चाराध्यमानास्ते नामगोत्रादिकीर्त्तनैः ॥ अस्मानाप्याययिष्यन्ति स्वर्गस्थानपि भारत ॥ ४४ ॥

हे भारत ! जो तुमने पूछा है उसका उत्तर संक्षेपसे कहता हूं; जैसे पितरोंकी उत्पत्ति हुई है, और हे अनघ ! जैसे दियेका फल मिलता है ॥ ३९ ॥ सावधान होकर पितृश्राद्धमें पितरोंका कारण सुनो; देवताओंके पितर ब्रह्माजीके पुत्र हैं ॥ ४० ॥ तिनको देव, मनुष्य, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, दिव्य सर्प पूजते हैं ॥ ४१ ॥ श्राद्धोंसे तृप्त किये ये सब देव गन्धर्वोंसेही जगत्को तृप्त करते हैं, यह ब्रह्माकी आज्ञा है ॥ ४२ ॥ हे महाभाग ! आलस्यको त्याग उत्तम श्राद्धोंसे तिनका पूजन करो ये सब कामना फलोंको देनेवाले पितर तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥४३॥ हे भारत ! तुमसे नाम गोत्र

॥ ४९ ॥

आदिसे आराधित किये वे पितर स्वर्गमें वसनेवाले हमकोभी तृप्त करेंगे॥४४॥इसविषयका शेष आख्यान पितरोंके भक्त और आत्मज्ञानको जानने-वाले मार्कण्डेय मुनितुमसे वर्णन करेंगे ॥ ४५ ॥ जो मुझपर अनुग्रह करनेको इस श्राद्धमें बैठे हुए हैं, ऐसेमहाभाग्यवाले मार्कण्डेय मुनिजीसे तुम पूछो ऐसे कह शंतनु राजा अंतर्हित हुए॥४६॥इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वणि भाषायां पितृकल्पे षोडशोऽध्यायः॥१६॥भीष्मजी बोले;हे युधिष्ठिर ! तब मैं पिताके वचनको मान जो प्रश्न अपने पितासे किया था वही फिर मुनि मार्कंडेयजीसे पूछा॥१॥तब धर्मात्मा और अति तपस्वी मार्कण्डेयजी मुझसे

मार्कण्डेयस्तु ते शेषमेतत्सर्वं प्रवक्ष्यति ॥ एष वै पितृभक्तश्च विदितात्मा च भारत ॥४५॥ उपस्थितश्च श्राद्धेऽद्य ममैवानुग्रहाय वै ॥ एनं पृच्छ महाभागमित्युक्त्वाऽन्तरधीयत ॥ ४६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि श्राद्धकल्पप्रसङ्गो नाम षोड-शोऽध्यायः ॥ १६ ॥ भीष्म उवाच ॥ ततोऽहं तस्य वचनान्मार्कण्डेयं समाहितः ॥ प्रश्नं तमेवान्वपृच्छं यन्मे पृष्टः पुरा पिता ॥ १ ॥ स मामुवाच धर्मात्मा मार्कण्डेयो महातपाः ॥ भीष्म वक्ष्यामि कार्त्स्न्येन शृणुष्व प्रयतोऽनघ ॥ २ ॥ अहं पितृ-प्रसादाद्वै दीर्घायुष्ट्वमवाप्तवान् ॥ पितृभक्त्यैव लब्धं च प्राग्लोके परमं यशः ॥ ३ ॥ सोऽहं युगस्य पर्यन्ते बहुवर्षसहस्रिके ॥ अधिरुह्य गिरिं मेरुं तपो तप्यं सुदुश्चरम् ॥ ४ ॥ ततः कदाचित्पश्यामि दिवं प्रज्वाल्य तेजसा ॥ विमानं महदायान्तमुत्तरेण गिरेस्तदा ॥ ५ ॥ तस्मिन्विमाने पर्यङ्के ज्वलितादित्यसन्निभम् ॥ अपश्यं तत्र चैवाहं शयानं दीप्ततेजसम् ॥ ६ ॥ अंगुष्ठमात्रं पुरुषमग्नावग्निमिवाहितम् ॥ सोऽहं तस्मै नमस्कृत्य प्रणम्य शिरसा विभुम् ॥ ७ ॥

कहने लगे; हे अनघ ! हे भीष्म ! ! तेरे प्रश्नका उत्तर विस्तारसे कहूंगा; इसलिये सावधान होकर सुन॥२॥और मैं पितरोंके प्रतापसे दीर्घआयुको प्राप्त हुआ, और पितरोंकी भक्तिसे पूर्व लोकमें मैंने उत्तम यश पाया है॥३॥मैं कई सहस्र वर्षोंवाले युगांतमें मेरु पर्वतपर स्थित हो तप करने लगा॥४॥ तब एक समय मैंने पर्वतकी उत्तर तरफसे आकाशको अपने तेजसे प्रकाशित करते हुए विमानको आते हुए देखा॥५॥और तिस विमानमें प्रकाशमान सूर्यके समान शय्यापर दीप्ततेजवाले॥६॥और मानमें अंगुष्ठमात्र पुरुषको उसमें शयन करते देखा; जैसे अग्निमेंस्थितअग्निहो,तब मैं उस पुरुषको शिरसे

प्रणाम कर ॥७॥ पाद्य अर्घसे पूजा कर निकटवर्ती हो उस दुर्धर्षसे कहने लगा; हे विभो ! आपको मैं कैसे जानूं॥८॥और तपके वीर्यसे उत्पन्न नारायण गुणोंसे संयुक्त आप देवताओंकेभी देवता हो ऐसी मेरी मति है॥९॥तब हे अनघ ! वह धर्मात्मा आश्चर्यको प्राप्त हो रूपकी तरह मुझसे कहने लगा,किआपने उस तपका आचरण नहीं किया है;जिससे मेरा ज्ञान हो सके॥१०॥परन्तु वह क्षणभरमें अति उत्तम रूपको धारने लगाऔर रूपमें मैंने ऐसा पुरुष कहींभीनहीं देखा॥११॥सनत्कुमारजी बोले; हे विभो ! मुझे प्रथम होनेवाला और मनसे उत्पन्न ब्रह्माका पुत्र जानो; और तपके वीर्यसे

सन्निविष्टं विमानस्थं पाद्यार्घाभ्यामपूजयम् ॥ अपृच्छं चैवं दुर्धर्षं विद्याम त्वां कथं विभो ॥८॥ तपोवीर्यात्समुत्पन्नं नारायणगुणात्मकम् ॥ दैवतं ह्यसि देवानामिति मे वर्त्तते मतिः ॥९॥ स मामुवाच धर्मात्मा स्मयमान इवानघ ॥ न ते तपः सुचरितं येन मां नावबुध्यसे ॥ १० ॥ क्षणेनैव प्रमाणं स बिभ्रदन्यदनुत्तमम् ॥ रूपेण न मया कश्चिद्दृष्टपूर्वः पुमान्क्वचित् ॥ ११ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ विद्धि मां ब्रह्मणः पुत्रं मानसं पूर्वजं विभोः ॥ तपोवीर्यसमुत्पन्नं नारायणगुणात्मकम् ॥१२॥ सनत्कुमार इति यः श्रुतो वेदेषु वै पुरा ॥ सोऽस्मि भार्गव भद्रं ते कं कामं करवाणि ते ॥ १३ ॥ ये त्वन्ये ब्रह्मणः पुत्रा यवीयांसस्तु ते मम ॥ भ्रातरः सप्त दुर्धर्षास्तेषां वंशा प्रतिष्ठिताः ॥१४॥ क्रतुर्वसिष्ठः पुलहः पुलस्त्योऽत्रिस्तथाङ्गिराः ॥ मरीचिस्तु तथा धीमान्देवगन्धर्वसेविताः ॥ त्रींल्लोकान्धारयन्तीमान्देवगन्धर्वपूजिताः ॥१५॥ वयं तु यतिधर्माणः संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ प्रजाधर्मं च कामं च व्यपहाय महामुने ॥ १६ ॥ यथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमारइति विद्धि माम् ॥ तस्मात्सनत्कुमारेति नामैतन्मे प्रतिष्ठितम् ॥ १७ ॥

नारायणके सब गुण मुझमें हैं॥१२॥इसकारण मुझे सनत्कुमार कहते हैं, ऐसे पहले वेदोंमें विख्यात है,सो वह मैं हूं.भार्गव तुम्हारा कल्याण हो और मैं आपके किस कार्यको करूं॥१३॥ और जितने ब्रह्माजीके पुत्र हैं वे मेरे छोटे भ्राता हैं उनके वंश इस संसारमें प्रतिष्ठित हो रहे हैं॥१४॥ क्रतु, वसिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य,अत्रि,अंगिरा, मरीच, इन सात नामोंवाले और देव गन्धर्व आदिसे सेवित और पूजित किये इन तीन लोकमें धारण कर रहे हैं॥१५॥हे महामुने!यतिधर्मको धारण करनेवाले आत्माको आत्मामें संयुक्त कर प्रजाके धर्म और कामको त्याग॥१६॥जैसे उत्पन्न हुआहूं वैसाही

मैं हूं इस कारण मुझे कुमार जानो, इसी कारणसे मुझे सनत्कुमार कहते हैं ॥ १७॥ मेरी भक्तिसे और दर्शनकी आकांक्षासे तुमने तप किया है, सो मैंने दर्शन दिया, अब मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं ॥ १८ ॥ ऐसे कहते हुए सनत्कुमारजीसे मैं कहने लगा, हे देव ! आपने प्रसन्न होकर ऐसी कृपा करी तो॥ १९॥ पितरोंके सर्ग और श्राद्धफलके आख्यानको वर्णन करो, यह मैंने सनातन देवसे पूछा ॥ २० ॥ तब हे भीष्म ! उस देवेश्वरने मेरे संशयको दूर किया और वह धर्मात्मा मुझसे बोले मैं तुमसे प्रसन्न हूं तुम सावधान होकर सुनो, बहुत वर्षोंकी कथाके अंतमें ॥ २१॥ एक समयमें ब्रह्माजीने देवता-

मद्भक्त्या ते तपश्चीर्णं मम दर्शनकाङ्क्षया ॥ एष दृष्टोऽस्मि भवता कं कामं करवाणि ते ॥ १८ ॥ इत्युक्तवन्तं तमहं प्रत्यवोचं सनातनम् ॥ अनुज्ञातो भगवता प्रीयमाणेन भारत ॥ १९ ॥ ततोऽहमेनमर्थं वै तमपृच्छं सनातनम् ॥ पृष्टः पितॄणां सर्गं च फलं श्राद्धस्य चानघ ॥ २० ॥ चिच्छेद संशयं भीष्म स तु देवेश्वरो मम ॥ स मामुवाच धर्मात्मा कथाऽन्ते बहुवार्षिके ॥ रमे त्वयाऽहं विप्रर्षे शृणु सर्वं यथातथम् ॥२१॥ देवानसृजत ब्रह्मा मां यक्ष्यन्तीति भार्गव ॥ तमुत्सृज्य तथात्मानं अयजंस्ते फलार्थिनः ॥ २२ ॥ ते शप्ता ब्रह्मणा मूढा नष्टसंज्ञा दिवौकसः ॥ न स्म किंचिद्विजानन्ति ततो लोकोऽप्यमुह्यत ॥ २३ ॥ ते भूयः प्रणताः शप्ताः प्रयाचन्त पितामहम् ॥ अनुग्रहाय लोकानां ततस्तानब्रवीदिदम् ॥ २४ ॥ प्रायश्चित्तं चरध्वं वै व्यभिचारो हि वः कृतः ॥ पुत्रांश्च परिपृच्छध्वं ततो ज्ञानमवाप्स्यथ ॥ २५ ॥ प्रायश्चित्तक्रियार्थं ते पुत्रानपप्रच्छुरार्तवत्॥ तेभ्यस्ते प्रयतात्मानः शशंसुस्तनयास्तदा ॥ २६ ॥

ओंको इस कारण रचा कि देवते मुझे पूजेंगे; तब देवते ब्रह्माजीको त्याग फलकी प्राप्तिके अर्थ अपनी पूजा करने लगे ॥ २२ ॥ तब ब्रह्माने शाप दिया कि तुमने योग्य बातको नहीं जाना इस कारण हे देवताओ ! तुमनष्ट संज्ञावाले हो जाओ और पीछे संसारवासी मनुष्यभी ऐसेही मोहित रहेंगे॥ २३॥ तब फिर देवते नम्ररूप होके ब्रह्माजीसे प्रार्थना करने लगे, तब संसारके हितके निमित्त ब्रह्माने यह कहा ॥ २४ ॥ कि तुमने व्यभिचार कर्म किया है इसलिये तुम प्रायश्चित्त करो; और पुत्रोंसे जाकर पूछो तब ज्ञानको प्राप्त हो जाओगे ॥ २५ ॥ तब वे देवते आर्तकी समान होकर प्रायश्चित्तके अर्थ पुत्रोंसे पूछने

लगे; तब उनसे शुद्ध आत्मावाले उन पुत्रोंने वाणी मन कर्मसे उपजनेवाले प्रायश्चित्तको कहा ॥ २६ ॥ वे प्रायश्चित्तके धर्म वाणी मन और कर्मसे होते हैं; और कुशल पुरुष इन्हें कहते और नित्य नेत्रोंसेभी चेष्टाकर कहते हैं ॥ २७ ॥ प्रायश्चित जानकर जब वे देवते संज्ञाको प्राप्त हुए, तब वे पुत्र उन देवताओंसे बोले; हे पुत्रो ! तुम जाओ ॥२८॥ जब इस प्रकार पुत्रोंने कहा, तब वे देवता आश्चर्य मानते हुए; कि इन्होंने हमारी पुत्रके शब्दसे निंदा करी और संदेहको प्राप्त हो ब्रह्माजीके समीपमें जा पूंछने लगे ॥ २९ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! जो हमने पुत्र उत्पन्न किये थे वे हमको पुत्ररूप कहने लगे, यह अति आश्चर्य

प्रायश्चित्तानि धर्मज्ञा वाङ्मनःकर्मजानि वै ॥ शंसन्ति कुशला नित्यं चक्षुर्भ्यामपि नित्यशः ॥ २७॥ प्रायश्चितार्थतत्त्वज्ञा लब्धसंज्ञा दिवौकसः ॥ गम्यतां पुत्रकाश्चेति पुत्रैरुक्ताश्च ते तदा ॥ २८ ॥ अभिशस्तास्तु ते देवाः पुत्रवाक्येन निन्दिताः ॥ पितामहमुपागच्छन् संशयच्छेदनाय वै ॥ २९ ॥ ततस्तानब्रवीद्देवो यूयं वै ब्रह्मवादिनः ॥ तस्माद्यदुक्तं युष्माकं तत्तथा न तदन्यथा ॥ ३० ॥ यूयं शरीरकर्त्तारस्तेषां देवा भविष्यथ ॥ ते तु ज्ञानप्रदातारः पितरो वो न संशयः ॥ ३१ ॥ अन्योऽन्यं पितरो यूयं ते चैवेति न संशयः ॥ देवाश्च पितरश्चैव तद्बुध्यध्वं दिवौकसः ॥ ३२ ॥ ततस्ते पुनरागम्य पुत्रानूचुर्दिवौकसः ॥ ब्रह्मणा च्छिन्नसंदेहाः प्रीतिमन्तः परस्परम् ॥ ३३ ॥ यूयं वै पितरोऽस्माकं यैर्वयं प्रतिबोधिताः ॥ धर्मज्ञाः कश्च वः कामः को वरो वः प्रदीयताम् ॥ ३४ ॥ यदुक्तं चैव युष्माभिस्तत्तथा न तदन्यथा ॥ उक्ताश्च यस्माद्युष्माभिः पुत्रका इति वै वयम् ॥ तस्माद्भवन्तः पितरो भविष्यन्ति न संशयः ॥ ३५ ॥

है ॥ ३० ॥ तब ब्रह्माजीने उनसे कहा तुम शरीरको उपजानेवाले हो, इस लिये तुम तिन्होंके देवते माने जावोगे और वे ज्ञानको देनेवाले हैं; इसलिये वे तुम्हारे पितर होंगे ॥ ३१ ॥ तुम दोनों परस्परमें शरीरदाता पितर और वे ज्ञानदाता पितर होंगे इसमें संदेह नहीं ऐसा जानो ॥ ३२ ॥ तब फिर वे आकर पुत्रोंके प्रति कहने लगे कि ब्रह्माजीने हमारा संदेह दूर किया है इसलिये आप और हम परस्पर प्रीतिवाले हैं ॥ ३३ ॥ और जो तुमने हमारा मोह दूर किया है; इस कारण तुम धर्मज्ञ हो तथा हमारे पितर हो सो कहो ॥ ३४ ॥ और जो तुमने हमको पुत्रभाव कहकर वचन कहा, वह सत्य है; इस

कारण आप हमारे पितर होंगे; इसमें संदेह नहीं है ॥ ३५ ॥ और जो कोई पितररूप तुमको श्राद्धमें विना पूजे कर्म करेंगे ॥ ३६ ॥ और श्राद्धके द्वारा दिव्य पितरोंसे प्रसन्न किये लौकिक पितर अपने अधिदेवतारूप सोमको बढावेंगे ॥ ३७ ॥ पीछे श्राद्धोंसे पुष्ट हुआ सोम अर्थात् चन्द्रमा समुद्र, पर्वत, वनसे युक्त स्थावर जंगमरूप जगत्को पुष्ट करेगा ॥ ३८ ॥ और पुष्टिकी कामना करनेवाले जो मनुष्य श्राद्धोंको करेंगे उनको पुष्टि, संतान आदिको पितर प्रदान करेंगे ॥ ३९ ॥ श्राद्धमें जो नाम गोत्रका उच्चारण कर तीन पिंडोंका दान करेंगे, उनके इस श्राद्धदानसे लोकांतरमेंभी वसते हुए तिनके पितर

यानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धैः क्रियाः काश्चित् करिष्यति ॥ राक्षसा दानवा नागाः फलं प्राप्स्यन्ति तस्य तत् ॥ ३६ ॥ श्राद्धैराप्यायिताश्चैव पितरः सोममव्ययम् ॥ आप्याय्यमाना युष्माभिर्वर्द्धयिष्यन्ति नित्यदा ॥ ३७ ॥ श्राद्धैराप्यायितः सोमो लोकानाप्याययिष्यति ॥ समुद्रपर्वतवनं जङ्गमाजङ्गमैर्वृतम् ॥ ३८ ॥ श्राद्धानि पुष्टिकामाश्च ये करिष्यन्ति मानवाः ॥ तेभ्यः पुष्टिं प्रजाश्चैव दास्यन्ति पितरः सदा ॥ ३९ ॥ श्राद्धे ये च प्रदास्यन्ति त्रीन्पिण्डान्नामगोत्रतः ॥ सर्वत्र वर्तमानांस्तान् पितरः सपितामहान् ॥ भावयिष्यन्ति सततं श्राद्धदानेन तर्पिताः ॥ ४० ॥ एवमाज्ञापितं पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ इति तद्वचनं सत्यं भवत्वद्य दिवौकसः ॥ पुत्राश्च पितरश्चैव वयं सर्वे परस्परम् ॥ ४१ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ त एते पितरो देवा देवाश्च पितरस्तथा ॥ अन्योऽन्यं पितरो ह्येते देवाश्च पितरश्च ह ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्तोऽहं भगवता देवदेवेन भास्वता ॥ सनत्कुमारेण पुनः पृष्टवान् देवमव्ययम् ॥ १ ॥

पितामहादि तृप्त होकर उनकी सदा वृद्धि करेंगे ॥ ४० ॥ इस प्रकार पूर्वमें ब्रह्माजीने आज्ञा दी है. हे देवताओ ! अब यह उनका वचन सत्य हो, इस प्रकार हम सब परस्पर पुत्र और पितर हैं ॥ ४१ ॥ सनत्कुमारजी बोले; वेही यह पितर देवता हैं और देवता पितर हैं; यह परस्पर एक दूसरेके पितर और देवता हैं ॥ ४२ ॥ इति श्रीम० हरि० हरिवंशप० भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले; कि इस प्रकार देवताओंके देवते और दिव्य

तेजयुक्त सनत्कुमारजीने जब मुझसे कहा, तब मैंने उन अविनाशी देवसे फिर पूछा ॥ १ ॥ हे भीष्मजी! मैंने उन शत्रुनाशकसे अपना संदेह नाश किया
वह आदिसे सुनो ॥ २॥ हे अमरश्रेष्ठ सनत्कुमारजी ! पितरोंके गण कितने हैं; और वह पितर किस लोकमें प्रतिष्ठित हैं, जो वे श्राद्धद्वारा देवताओंकी वृद्धि
करते हैं ॥ ३ ॥ तब सनत्कुमार कहने लगे; हे मार्कण्डेय ! स्वर्गमें पितरोंके सात गण हैं, उनमें चार मूर्तिवाले हैं और तीन मूर्तिसे रहित हैं, वे परमाणुमेंभी
प्रवेश करनेकी सामर्थ्ययुक्त हैं ॥४॥ उनके लोक और स्वर्गको मैं वर्णन करता हूं; तुम सुनो. हे तपोधन ! इन पितरोंका प्रभाव और महत्त्व मैं विस्तारसे कहता

संदेहममरश्रेष्ठं भगवन्तमरिन्दमम् ॥ निबोध तन्मे गाङ्गेय निखिलं सर्वमादितः ॥२॥ कियन्तो वै पितृगणाः कस्मिँल्लोके प्रतिष्ठिताः ॥
वर्त्तन्ते देवप्रवरा देवानां सोमवर्द्धनाः ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ सप्तैते यजतां श्रेष्ठ स्वर्गे पितृगणाः स्मृताः ॥ चत्वारो मूर्तिमन्तश्च
त्रयस्तेषाममूर्त्तयः ॥ ४ ॥ तेषां लोकविसर्गं च कीर्त्तयिष्यामि तच्छृणु ॥ प्रभावं च महत्त्वं च विस्तरेण तपोधन ॥ ५ ॥ धर्ममूर्त्ति-
धरास्तेषां त्रयो ये परमा गणाः॥ तेषां नामानि लोकांश्च कथयिष्यामि तच्छृणु ॥६॥ लोकाः सनातना नाम यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः॥
अमूर्त्तयः पितृगणास्ते वै पुत्राः प्रजापतेः ॥ ७ ॥ विराजस्य द्विजश्रेष्ठ वैराजा इति विश्रुताः ॥ यजन्ति तान्देवगणा विधिदृष्टेन
कर्मणा ॥ ८ ॥ एते वै योगविभ्रष्टा लोकान्प्राप्य सनातनान् ॥ पुनर्युगसहस्रान्ते जायन्ते ब्रह्मवादिनः ॥ ९ ॥ ते तु प्राप्य स्मृतिं
भूयः सांख्यं योगमनुत्तमम् ॥ यान्ति योगगतिं सिद्धाः पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥ १० ॥

हूं ॥५॥ अब प्रथम धर्मकी मूर्त्तिको धारण करनेवाले जो पितरगण कहे हैं, उनका नाम और लोकका कीर्तन करता हूं तुम सुनो ॥ ६ ॥ मूर्तिसे रहित अति
प्रकाशवान् विराट् प्रजापतिके पुत्र लोकमें वैराज्य नामसे प्रसिद्ध तीन पितृगण तो सनातन लोकमें निवास करते हैं॥ ७॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! ये नित्यप्रति प्रकट रहते
इससे यह देवता वैराज कहाते हैं; इन पितरोंको विधि दृष्टकर्मसे पूजते हैं ॥८॥ और यही पितृगण योगसे भ्रष्ट हो फिर सहस्रों (हजारों) युगोंके अंतमें ब्रह्मवादी
हो जाते हैं ॥ ९ ॥ और यही फिर स्मृतिको प्राप्त होकर सांख्ययोग गतिको प्राप्त हो जाते हैं और योगकी गतिसे दुर्लभ मुक्तिको प्राप्त हो जाते हैं॥ १०॥

यही योगबलसे योगियोंका योग बढाते; और यही पहले योगबलसे चंद्रमाको पुष्ट करते हैं ॥ ११ ॥ इसकारण इन योगीरूपपितरोंके निमित्त विशेष करके श्राद्ध देना चाहिये; यह अमृतपानकरनेवालेपितरोंकाप्रथम कल्प कहाता है ॥ १२ ॥ इन पितरोकमनसे मैना नाम कन्या उत्पन्न हुई; जो हिमालयपर्वतकी भार्या हुई है, इसीकारण हिमालयको मैनाकभी कहते हैं॥ १३॥ मैनाकके श्रीमान् श्रेष्ठ और अनेक प्रकारके रत्नोंसे युक्त क्रौंच नाम-वाला बडा पुत्र हुआ ॥ १४॥ और इन्ही पर्वतराजने मैना भार्यामें अपर्णा१एकपर्णा २ एकपाटला ३ नामवाली तीन कन्या उत्पन्न कीं ॥ १५ ॥

एते स्युः पितरस्तात योगिनां योगवर्द्धनाः ॥ आप्याययन्ति ये पूर्वं सोमं योगबलेन च ॥११॥ तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिनां तु विशेषतः ॥ एष वै प्रथमः सर्गः सोमपानां महात्मनाम् ॥१२॥ एतेषां मानसी कन्या मेना नाम महागिरेः ॥ पत्नी हिमवतः श्रेष्ठा यस्या मैनाक उच्यते ॥ १३ ॥ मैनाकस्य सुतः श्रीमान् क्रौञ्चो नाम महागिरिः ॥ पर्वतप्रवरः पुत्रो नानारत्नसमन्वितः ॥१४॥ तिस्रः कन्यास्तु मेनायां जनयामास शैलराट् ॥ अपर्णामेकपर्णां च तृतीयामेकपाटलाम् ॥ १५ ॥ तपश्चरन्त्यः सुमहद्दुश्चरं देवदानवैः ॥ लोकान्सतापयामासुस्तास्तिस्रः स्थाणुजङ्गमान् ॥१६॥ आहारमेकपर्णेन एकपर्णा समाचरत ॥ पाटलापुष्पमेकं च आदधावेकपाटला ॥१७॥ एका तत्र निराहारा तां माता प्रत्यषेधयत् ॥ उ मा इति निषेधन्ती मातृस्नेहेन दुःखिता ॥ १८ ॥ सा तथोक्ता तया मात्रा देवी दुश्चरचारिणी ॥ उमेत्येवाभवत् ख्याता त्रिषु लोकेषु सुन्दरी ॥ १९ ॥ तथैव नाम्ना तेनेह विश्रुता योगधर्मिणी ॥ एतत्तु त्रिकुमारीकं जगत्स्थास्यति भार्गव ॥ २० ॥

फिर वे दोनों कन्या देव दत्योंकोभी दुश्वर ऐसे तपको करने लगीं; जिससे स्थावर जंगमरूप जगत् तृप्त हो गया॥१६॥ एकपर्णा कन्या एक पत्तको आहार करने लगी और एकपाटला कन्या पाटला वृक्षके एक पुष्पका भोजन प्रतिदिन करने लगी॥१७॥अपर्णा कन्या निराहार रहने लगी,तब इसकी माताने इसे इस कार्यसे निषेध किया अर्थात् 'उ मा' ऐसाकहा तो माताके स्नेहसे दुःखित और ॥१८॥ मातासे वर्जित की हुई तीन लोकोंमें अति सुन्दर रूपवान यह अपर्णा ॥१९॥यह योगधर्मिणी इसीकारण उमा नामसे विख्यात हुई; हे भगवन् ! इन्ही तीन कन्याओंसे जगत् ठहरेगा ॥२०॥ वे

तीनों कन्या तप करनेवाली योगबलसे युक्त ब्रह्मको जाननेवाली और उर्ध्ववीर्यवाली थीं ॥ २१ ॥ परंतु इनमें उमा श्रेष्ठ और बडी महायोगबलसे युक्त हुई, और महादेवजीको विवाही गई ॥२२॥ एकपर्णा कन्या महात्मारूप योगाचार्य महाबुद्धिमान् असितदेवको विवाही गई ॥२३॥ एकपाटला कन्या जगीषव्यको विवाही गई, इसप्रकार येभी दोनों कन्या योगाचार्य्योंको दी गई ॥२४॥और सोमपद लोकमें वास करनेवाले मरीचिके पुत्र पितर हैं; उनको देवता पुष्ट करते हैं॥॥२५॥ ये सब महातेजस्वी अग्निष्वात्ता नामसे विख्यात हैं, और महाबलवाले हैं इनकी मानसी कन्या अच्छोदा नाम

तपः शरीरास्ताः सर्वस्तिस्रो योगबलान्विताः ॥ सर्वांश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वाश्चैवोर्ध्वरेतसः ॥ २१ ॥ उमा तासां वरिष्ठा च ज्येष्ठा च वरवर्णिनी ॥ महायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता ॥२२॥ असितस्यैकपर्णा तु देवलस्य महात्मनः ॥ पत्नी दत्ता महाब्रह्म-न्योगाचार्याय धीमते ॥२३॥ जैगीषव्याय तु तथा विद्धितामेकपाटलाम् ॥ एते चापि महाभागे योगाचार्यावुपस्थिते ॥२४॥ लोकाः सोमपदा नाम मरीचेर्यत्र वै सुताः ॥ पितरो यत्र वर्तन्ते देवास्तान्भावयन्त्युत ॥ २५ ॥ अग्निष्वात्ता इति ख्याताः सर्व एवामितौजसः ॥ एतेषां मानसी कन्या अच्छोदा नाम निम्नगा ॥ २६ ॥ अच्छोदं नाम विख्यातं सरो यस्याः समुत्थितम् ॥ तया न दृष्टपूर्वास्ते पितरस्तु कदाचन॥२७॥ अप्यमूर्त्तानथ पितॄन् सा ददर्श शुचिस्मिता ॥ संभूता मनसा तेषां पितॄन् स्वान्ना-भिजानती ॥ २८ ॥ व्रीडिता तेन दुःखेन बभूव वरवर्णिनी ॥ सा दृष्ट्वा पितरं वव्रे वसुं नामान्तरिक्षगम् ॥ २९ ॥ अमावसुरिति ख्यातमायोः पुत्रं यशस्विनम् ॥ अद्रिकाप्सरसा युक्तं विमानेऽधिष्ठितं दिवि ॥ ३० ॥

नदी है ॥२६॥ इसी विख्यात आच्छोदासे एक अच्छोद नाम सर हुआ है; इस कन्यासे कभी ये पितर पहले नहीं देखे थे ॥२७॥ फिर कभी उस मंद मुसकान भरी कन्याने अमूर्ति पितरोंको देखा और जिन अपने पितरोंसे उत्पन्न हुई थी, उनको नहीं जानती थी ॥ २८ ॥ इसी दुःखसे वह श्रेष्ठ स्त्रीदुः खी थी; और पतिके वरनेकी इच्छासे आकाशमें फिरते हुए अपने पिताहीको देख उसने वरण किया ॥ २९ ॥ अमावसु नाम और

यह मायाका पुत्र अद्रिका सहित विमानपर बैठा, अनेक अप्सराओंसे युक्त था ॥ ३० ॥ वह कामरूपिणी मनसेही उनमें व्यभिचार करती हुई, और पितासे इस विषयमें प्रार्थना करनेके कारणयोगसे भ्रष्ट हो नीचेगिरी ॥ ३१ ॥ और साथही उसने तीन विमानोंको गिरते देखा, उसमें त्रसरेणुके समान उसके पितर थे ॥ ३२ ॥ नीचेको शिर किये गिरती हुई वह पीडित हो, उनसे बोलीकि मेरी रक्षा करो ॥३३॥ तब पितर आकाशसे कहने लगे; हे पुत्री ! भय मतकर तब उसने दीनवचनोंसे पितरोंको प्रसन्न किया ॥ ३४ ॥ तब वे पितर बोले; हे कन्ये ! तू अपने अपराधसे योगसे

सा तेन व्यभिचारेण मनसः कामरूपिणी ॥ पितरं प्रार्थयित्वाऽन्यं योगभ्रष्टा पपात ह ॥ ३१ ॥ त्रीण्यपश्यद्विमानानि पतमाना दिवश्च्युता ॥ त्रसरेणुप्रमाणानि सापश्यत्तेषु तान् पितॄन्॥३२॥ सुसूक्ष्मानपरिव्यक्तानग्नीनग्निष्विवाहितान् ॥ त्रायध्वमित्युवाचार्त्ता पतन्ती तानवाक्शिराः ॥३३॥तैरुक्ता सा तु मा भैषीरिति व्योम्नि व्यवस्थिता ॥ ततः प्रसादयामास तान् पितॄन्दीनया गिरा ॥३४॥ ऊचुस्ते पितरः कन्यां भ्रष्टैश्वर्यां व्यतिक्रमात् ॥ भ्रष्टैश्वर्या स्वदोषेण पतसि त्वं शुचिस्मिते ॥३५॥ यः क्रियन्ते हि कर्माणि शरीरैर्दिवि दैवतैः ॥ तैरेव तत्कर्मफलं प्राप्नुवन्तीह देवताः ॥३६॥ सद्यः फलन्ति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे ॥ तस्मात्त्वं तपसः पुत्रि प्रेत्येदं प्राप्स्यसे फलम् ॥ ३७ ॥ इत्युक्ता पितृभिः सा तु पितॄन्प्रासादयत्स्वकान् ॥ ध्यात्वा प्रसादं ते चक्रुस्तस्याः सर्वेऽनुकम्पया ॥ ३८ ॥ अवश्यं भाविनं ज्ञात्वा तेऽर्थमूचुस्ततस्तु ताम् ॥ अस्य राज्ञो वसोः कन्या त्वमपत्यं भविष्यसि ॥ ३९ ॥ उत्पन्नस्य पृथिव्यां तु मानुषेषु महात्मनः ॥ कन्या च भूत्वा लोकान्स्वान् पुनः प्राप्स्यसि दुर्लभान् ॥ ४० ॥

भ्रष्ट हुई है, इसकारण पतित होती है ॥३५॥ क्योंकि जिन शरीरोंसे स्वर्गमें कर्म करते हैं; उनसेही देवताभी कर्मके फलको प्राप्त होते हैं ॥ ३६ ॥ और देवताके शरीरको त्याग पीछे मनुष्यके शरीरमें प्राप्त हो कर्मको भोगते हैं; इस कारण हे पुत्री ! इस शरीरको त्याग पीछे इस तपके फलको प्राप्त होवेगी ॥ ३७ ॥ ऐसे पितरोंके वचनको सुन पीछे अपने पितरोंको प्रसन्न करती हुई, तब उन पितरोंने कृपासे प्रसाद किया ॥ ३८ ॥ तब अवश्यभावीको जान वे पितर ऐसे कहने लगे; हे पुत्री ! तू इस वसुराजाकी कन्या फिर उत्पन्न होगी ॥ ३९ ॥ इसप्रकार पृथ्वीमें मनुष्यरूप होकर फिर अपने

लोकोंको प्राप्त होगी ॥ ४० ॥ और पराशरके पुत्र वेदव्यासजी विप्रकी माताभी तूही होगी; और वह वेदव्यास एक वेदके चार विभाग करेंगे ॥ ४१ ॥ आगेंके जन्ममें शंतनु राजाके कीर्तिके बढ़ानेवाले विचित्रवीर्य और चित्रांगद ॥ ४२ ॥ पुत्रोंको प्राप्त हो फिर उत्तम लोकोंमें वसेगी; हे पुत्री ! पितरोंके अपराध करनेसे तू निंदित जन्मको प्राप्त होगी ॥४३॥ और इसी राजाकी अद्रिका रानीमें तू कन्या होगी. अट्ठाईसमें द्वापरमें मच्छकी योनिसे उत्पन्न हो मच्छोदरी नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ४४ ॥ इसप्रकार मल्लाहकी पुत्री सत्यवती नामसे विख्यात उस वसुराजाकी कन्या मत्स्ययोनिसे द्वापरके अंतमें

पाराशरस्य दायादं त्वं पुत्रं जनयिष्यसि ॥ स वेदमेकं ब्रह्मर्षिश्चतुर्द्धा विभजिष्यति ॥४१॥ महाभिषस्य पुत्रौ द्वौ शन्तनोः कीर्तिवर्द्धनौ ॥ विचित्रवीर्यं धर्मज्ञं तथा चित्राङ्गदं शुभम् ॥४२॥ एतानुत्पाद्य पुत्रांस्त्वं पुनर्लोकानवाप्स्यसि ॥ व्यतिक्रमात्पितॄणां च जन्म प्राप्स्यसि कुत्सितम् ॥ ४३ ॥ अस्यैव राज्ञः कन्या त्वमद्रिकायां भविष्यसि ॥ अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा ॥४४॥ एवमुक्ता तु दाशेयी जाता सत्यवती तदा ॥ मत्स्ययोनौ समुत्पन्ना राज्ञस्तस्य वसोः सुता ॥४५॥ वैभ्राजा नाम ते लोका दिवि सन्ति सुदर्शनाः ॥ यत्र बर्हिषदो नाम पितरो दिवि विश्रुताः ॥४६॥ तान्वै देवगणाः सर्वे यक्षगन्धर्वराक्षसाः ॥ नागाः-सर्पाः सुपर्णाश्च भावयन्त्यमितौजसः ॥ ४७ ॥ एते पुत्रा महात्मानः पुलस्त्यस्य प्रजापतेः ॥ महात्मानो महाभागास्तेजोयुक्तास्तपस्विनः ॥ ४८ ॥ एतेषां मानसी कन्या पीवरी नाम विश्रुता ॥ योगा च योगिपत्नी च योगमाता तथैव च ॥४९॥ भवित्री द्वापरं प्राप्य युगं धर्मभृतां वरा ॥ पराशरकुलोद्भूतः शुको नाम महातपाः ॥ ५० ॥

॥ ५० ॥

उपजी है ॥ ४५ ॥ और सुन्दर दीखनेवाले वैभ्राजनाम लोकमें बर्हिषद नाम पितर स्वर्गमें वसते हैं ॥ ४६ ॥ तिनको देवता, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग, सर्प, गरुड ये सब पुष्ट करते हैं ॥ ४७ ॥ और पुलस्त्य प्रजापतिके ये महात्मारूप तेजस्वी तपस्वी पुत्र कहें हैं ॥ ४८ ॥ पीछे उनके मनसे उत्पन्न पीवरी नामसे विख्यात योगरूप योगाचार्यकी पत्नी योगीश्वरकी माता ॥४९॥ धर्मोंको धारण करनेवाली कन्या द्वापरके अंतमें उत्पन्न होगी, और पराशरके

कुलसे उत्पन्न शुकनामसे विख्यात॥५०॥महायोगी ब्राह्मणोंमें उत्तम ओर व्यासजीसे अरणीमें प्रकाशितरूप, धूमारहित अग्निके समान॥५१॥शुकदेवजी महाराज इस पीवरी कन्यामें जन्मेंगे,और पीछे शुकदेवजी महाराज॥५२॥कृष्ण,गौर,प्रभु,शंभु नामोंवाले चार पुत्र और कृत्वी नाम कन्या ब्रह्मदत्तकी माता और अणुह राजाकी रानी॥५३॥उनकी उत्पत्ति होगी,ऐसे इन धर्मात्मा पुत्रोंको और धर्मवती कन्याको उत्पन्न कर पीछे अपने पिता वेदव्यासजीके मुखसे धर्मोंको सुन॥५४॥महायोगी शुकदेवजी उत्तम गतिको पाकर शाश्वत अविनाशी ब्रह्ममें युक्त हो जायंगे ॥५५॥ और मूर्तिसे रहित और धर्मकी

भविष्यति युगे तस्मिन् महायोगी द्विजर्षभः॥व्यासादरण्यां संभूतो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्॥५१॥ स तस्यां पितृकन्यायां पीवर्यां जनयिष्यति ॥ कन्यां पुत्रांश्च चतुरो योगाचार्यान्महाबलान् ॥५२॥ कृष्णं गौरं प्रभुं शम्भुं कृत्वीं कन्यां तथैव च ॥ ब्रह्मदत्तस्य जननीं महिषीं त्वणुहस्य च ॥५३॥ एतानुत्पाद्य धर्मात्मा योगाचार्यान्महाव्रतान् ॥ श्रुत्वा स्वजनकाद्धर्मान्व्यासादमितबुद्धिमान् ॥५४॥ महायोगी ततो गन्ता पुनरावर्तिनीं गतिम् ॥ यत्तत्पदमनुद्विग्नमव्ययं ब्रह्म शाश्वतम् ॥५५॥ अमूर्तिमन्तः पितरो धर्ममूर्तिधरा मुने ॥ कथा यत्रेयमुत्पन्ना वृष्ण्यन्धककुलान्वया ॥५६॥ सुकाला नाम पितरो वसिष्ठस्य प्रजापतेः ॥ निरता दिवि लोकेषु ज्योतिर्भासिषु भासुरा॥सर्वकामसमृद्धेषु द्विजास्तान्भावयन्त्युत॥५७॥तेषां वै मानसी कन्या गौर्नाम्ना दिवि विश्रुता॥तवैव वंशे या दत्ता शुकस्य महिषी प्रिया ॥ एकशृङ्गेति विख्याता साध्यानां कीर्तिवर्द्धिनी ॥५८॥ मरीचिगर्भास्ताँल्लोकान्समाश्रित्य व्यवस्थिताः॥ये त्वथाङ्गिरसः पुत्राः साध्यैः संवर्द्धिताः पुरा ॥ ५९ ॥

मूर्तिको धारण करनेवाले और जिनसे वृष्णिअंधकके कुलकी कथा उपजी है ऐसे पितर ॥५६॥सुकाल नामसे प्रसिद्ध वसिष्ठ प्रजापतिके पुत्र स्वर्गलोकमें वसनेवाले पितर कहे जाते हैं,उनको उत्तम कर्मोंसे उत्तम ब्राह्मण पुष्ट करते हैं॥५७॥उनके मनसे उपजी कन्या गौनामसे स्वर्गमें प्रसिद्ध होगी.उसी वंशमें शुकदेवजीकी रानी एकशृङ्गानाम साध्योंकी कीर्तिको बढानेवाली होवेगी॥५८॥ये पितर मरीचिके गर्भको धारण करनेवालेलोकोंमें सूर्यकी किरणोंके

समान प्रकाशित हुए वसते हैं और जो अंगिरा मुनिक पुत्र पहले साध्योंसे वृद्धि पाये हुए पितर हैं॥५९॥हे तात!उनके फलको चाहनेवाले क्षत्रीगण पुष्ट करते हैं.इनकी मनसे उत्पन्न हुई कन्या यशोदा है॥६०॥वह विश्व महाराजकी स्त्री वह वृद्धशर्मा राजाकी पुत्रवधू महात्मा दिलीपराजाकी माता होवेगी॥६१॥ अश्वमेध महायज्ञमें प्रसन्न हुए मुनिजनोंने देवयुगमें जिस दिलीपकी यह गाथा गाई है ॥६२॥ कि महात्मा शांडिल्यके अग्निसे जन्मको सुनके सावधान हो जो पुरुष सत्यवादी महात्मा यजमानरूप दिलीप राजाको देखेंगे,वे सब स्वर्गमें वसनेवाले होंगे॥६३॥कर्दम प्रजापतिके पिता सुस्वधा नाम पुलह

तान्क्षत्रियगणांस्तात भावयन्ति फलार्थिनः॥तेषां तु मानसी कन्या यशोदा नाम विश्रुता ॥६०॥ पत्नी सा विश्वमहतःस्नुषा वै वृद्धशर्मणः ॥ राजर्षेर्जननी चापि दिलीपस्य महात्मनः ॥ ६१ ॥ तस्य यज्ञे पुरा गीता गाथाःप्रीतैर्महर्षिभिः॥ तदा देवयुगे तात वाजिमेधे महामखे ॥६२॥ अग्नेर्जन्म तथा श्रुत्वा शाण्डिल्यस्य महात्मनः॥ दिलीपं यजमानं ये पश्यन्ति सुसमाहिताः॥सत्यवन्तं महात्मानं तेऽपि स्वर्गजितो नराः ॥६३॥ सुस्वधा नाम पितरः कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ समुत्पन्नास्तु पुलहान्महात्मानो द्विजर्षभाः ॥६४॥ लोकेषु दिवि वर्तन्ते कामगेषु विहङ्गमाः ॥ तांश्च वैश्यगणांस्तात भावयन्ति फलार्थिनः ॥ ६५ ॥ तेषां वै मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता ॥ ययातेर्जननी ब्रह्मन् महिषी नहुषस्य च ॥६६॥ त्रय एते गणाःप्रोक्ताश्चतुर्थं तु निबोध मे॥उत्पन्ना ये स्वधायां ते सोमपा वै कवेःसुताः। हिरण्यगर्भस्य सुताः शूद्रास्तान् भावयन्त्युत ॥६७॥ मानसा नाम ते लोका यत्र तिष्ठन्ति ते दिवि ॥ तेषां वै मानसी कन्या नर्मदा सरितां वरा ॥ ६८ ॥

ऋषिसे उत्पन्न हुए महात्मा पितर हैं॥६४॥ये लोकोंमें तथा स्वर्गमें विमानोंमें बैठे हुए विचरते रहते हैं; इन्होंको फलके चाहनेवाले वैश्यगण पुष्ट करते हैं ॥ ६५ ॥ और इन पितरोंकी मानसी कन्या विरजा है, जो ययाति राजाकी माता और नहुषराजाकी रानी है ॥ ६६ ॥ ऐसे पितरोंके तीन गण तौ कह चुके, और चौथेको कहते हैं; जो शुक्राचार्यकी पुत्री स्वधामें उत्पन्न हुए सोमपा नामसे विख्यात हैं, वे हिरण्यगर्भके पुत्र हैं. उन पितरोंको शूद्र पुष्ट करते हैं ॥ ६७ ॥ और उनकी मानसी कन्या सब नदियोंमें उत्तम नर्मदानामसे प्रसिद्ध है ॥ ६८ ॥

सब जीवोंको पुष्ट करनेवाली और दक्षिण मार्गमें बहनेवाली और पुरुकुत्स राजाकी पत्नी और त्रसद्दस्यु राजाकी माता है॥६९॥इन पितरोंकी पूजाको स्वीकार करनेसे युग युगके प्रति धर्मोंकी नष्टता होनेपर॥७०॥ हे द्विजसत्तम!पितरोंके आदिसर्गमें उन सबको तृप्त करते हैं; इससे मनुजीको श्राद्धदेवभी कहते हैं॥७१॥और सबपितरोंके श्राद्धमें चांदीकेपात्र कहे हैं;अथवा चांदीसे युक्त अन्य धातुओंक पात्र कहे हैं,और पितृकर्ममेंप्रथम स्वधाशब्दोंकेउच्चारणसे संयुक्त श्राद्ध पितरोंको प्रसन्न कर देता है॥७२॥और जो मनुष्य प्रथम "सोमाय पितृमते स्वधा" इस मंत्रसे, पीछे "अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा" इस

या भावयति भूतानि दक्षिणापथगामिनी ॥ पुरुकुत्सस्य या पत्नी त्रसद्दस्योर्जनन्यपि ॥ ६९ ॥ तेषामथाभ्युपगमान्मनुस्तात युगे युगे ॥ प्रवर्तयति श्राद्धानि नष्टे धर्मे प्रजापतिः ॥७०॥ पितॄणामादिसर्गेण सर्वेषां द्विजसत्तम ॥ तस्मादेनं स्वधर्मेण श्राद्धदेवं वदन्ति वै ॥७१॥ सर्वेषां राजतं पात्रमथवा रजतान्वितम् ॥ दत्तं स्वधां पुरोधाय श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन् ॥७२॥ सोमस्याप्यायनं कृत्वा अग्नेर्वैवस्वतस्य च ॥ उदगायनमप्यग्नावग्न्यभावेऽप्सु वा पुनः ॥ ७३ ॥ पितॄन् प्रीणाति यो भक्त्या पितरः प्रीणयन्ति तम् ॥ यच्छन्ति पितरः पुष्टिं प्रजाश्च विपुलास्तथा ॥७४॥ स्वर्गमारोग्यमेवाथ यदन्यदपि चेप्सितम् ॥ देवकार्यादपि मुने पितृकार्यं विशिष्यते ॥ ७५ ॥ देवतानां हि पितरः पूर्वमाप्यायनं स्मृतम् ॥ शीघ्रप्रसादा ह्यक्रोधा लोकस्याप्यायनं परम् ॥ ७६ ॥ स्थिरप्रसादाश्च सदा तान्नमस्यस्व भार्गव ॥ पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे मद्भक्तश्च विशेषतः ॥ ७७ ॥

मंत्रसे, पीछे " नमो यमायांगिरसे स्वधा" इस मंत्रसे उत्तरायण सूर्यमें अग्निद्वारा अथवा जलके द्वारा आहुती कर पितरोंको प्रसन्न करते हैं॥७३॥ वह पितर उस पुरुषको पुष्टि और अनेक प्रकारकी संतान देते हैं, जो पितरोंको प्रसन्न करते हैं, वह पितर उन्हें प्रसन्न करते हैं ॥ ७४ ॥ स्वर्ग, आरोग्य और जो मनोभिलषित होता है,उसे पितर देते हैं, हे मुनि ! देवकार्यसे पितृकार्य श्रेष्ठ कहा है ॥७५॥ देवताओंकी अपेक्षा पहले पितरोंको तृप्त करै. वे शीघ्र प्रसाद करनेवाले, क्रोधरहित और लोकके तृप्त करनेवाले हैं ॥७६॥ और भक्तोंपर प्रसन्न हो दृढ प्रसाद देतेहैं; इसकारण हे भार्गव ! तिन

पितरोंको नमस्कार करो; कारण कि तुम पितरोंके और विशेषकर मेरेभी भक्त हो॥७७॥मैं तुम्हारा कल्याण करूंगा, तुम सब प्रत्यक्ष कहो; हे प्रिय पापरहित ! मैं तुम्हें दिव्य ज्ञान देता हूं॥७८॥इस गतिको हे मार्कण्डेय ! अप्रमत्त होके देखो; पितरोंकी गति अतिअगम्य है,वह किसी प्रकार प्राप्त नहीं होती वह योगगति नहीं॥७९॥तुमसरीखे सिद्धकोही प्रतीत हो सक्ती है;इस प्रकार वह देवेश मुझसे कह और मुझ आगे स्थित हुएको॥८०॥ देवताओंकोभी दुर्लभ दिव्यज्ञानकी चक्षु देकर अग्निके समान प्रकाशित होते हुए; सनत्कुमार मनोवांछित गतिको गये ॥ ८१ ॥ हे भीष्म ! यह

श्रेयस्तेऽद्य विधास्यामि प्रत्यक्षं कुरु तत्स्वयम् ॥ दिव्यं चक्षुः सविज्ञानं प्रदिशामि च तेऽनघ ॥७८॥ गतिमेतामप्रमत्तो मार्कण्डेय निशामय ॥ नहि योगगतिर्दिव्या पितॄणां च परा गतिः ॥ ७९ ॥ त्वद्विधेनापि सिद्धेन दृश्यते मांसचक्षुषा ॥ स एवमुक्त्वा देवेशो मामुपस्थितमग्रतः ॥ ८० ॥ चक्षुर्दत्त्वा सविज्ञानं देवानामपि दुर्लभम् ॥ जगाम गतिमिष्टां वै द्वितीयोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ८१ ॥ तन्निबोध कुरुश्रेष्ठ यन्मयाऽऽसीन्निशामितम् ॥ प्रसादात्तस्य देवस्य दुर्ज्ञेयं भुवि मानुषैः ॥ ८२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ ॥ ७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ आसन् पूर्वयुगे तात भरद्वाजात्मजा द्विजाः॥ योगधर्ममनुप्राप्य भ्रष्टा दुश्चरितेन वै ॥ १ ॥ अवभ्रंशमनुप्राप्ता योगधर्मापचारिणः ॥ महतः सरसः पारे मानसस्य विसंज्ञिताः ॥ २ ॥ तमेवार्थमनुध्यातो नष्टमप्स्विव मोहिताः ॥ अप्राप्य योगं ते सर्वे संयुक्ताः कालधर्मणा ॥ ३ ॥ ततस्ते योगविभ्रष्टा देवेषु सुचिरोषिताः ॥ जाताः कौशिकदायादाः कुरुक्षेत्रे नरर्षभाः ॥ ४ ॥

आप जानों तिस देवर्षिसे देवताओंको भी दुर्लभ ऐसा आख्यान मैंने श्रवण किया है॥८२॥इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वणि भाषाटीकायां पितृकल्पे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले; हे तात ! पूर्व युगमें भरद्वाजके पुत्र ब्राह्मण हुए हैं, वे योगविरोधी कर्म करके योगको न प्राप्त हो भ्रष्ट हो गये ॥ १ ॥ और अपभ्रंशको प्राप्त हो योगधर्मके अपचारी वे संज्ञारहित हो मानससरोवरके सरमें पतित हुए ॥ २ ॥ उसी योगके अर्थको विचारते हुए योगको न प्राप्त होकर कालधर्मको प्राप्त हुए॥३॥पीछे वे शरीरको त्याग मोहित हो बहुत दिनोंतक स्वर्गमें वसे, इसके

उपरान्त कुरुक्षेत्र देशमें कौशिक ऋषिके वंशमें उपजे ॥ ४ ॥ तब वे पिताके धर्मका अनुसरण कर हिंसामें रत हुए; फिर वे जातिभ्रष्ट हो कुत्सित जातिको प्राप्त होंगे ॥ ५ ॥ परन्तु पितरोंके प्रसादसे पूर्वजन्मकी स्मृति तिनकी कुत्सित जातिमेंभी बनी रहेगी ॥ ६ ॥ पीछे धर्मके करनेसे फिर कर्मोंके अनुसार ब्राह्मणोंके शरीरको प्राप्त होंगे, और अपने कर्मसे फिर ब्राह्मणपदको प्राप्त होंगे ॥ ७ ॥ तब पूर्वजातिमें प्रार्थित योगको प्राप्त हो उत्तम सिद्धिको प्राप्त कर शाश्वत लोकमें वसेंगे ॥८॥ हे मुने! इस प्रकारसे वारंवार तेरी धर्ममें बुद्धि होगी, और योगधर्ममें उत्तम सिद्धिको तू प्राप्त होवेगा ॥ ९॥ और अल्प बुद्धि-

हिंसया विहरिष्यन्तो धर्मं पितृकृतेन वै ॥ ततस्ते पुनरशजातिं भ्रष्टाः प्राप्स्यन्ति कुत्सिताम् ॥५॥ तेषां पितृप्रसादेन पूर्वजातिकृतेन वै ॥ स्मृतिरुत्पत्स्यते प्राप्य तां तां जातिं जुगुप्सिताम् ॥ ६ ॥ ते धर्मचारिणो नित्यं भविष्यन्ति समाहिताः ॥ ब्राह्मण्यं प्रतिलप्स्यन्ति ततो भूयः स्वकर्मणा ॥ ७ ॥ ततश्च योग प्राप्स्यान्ति पूर्वजातिकृतं पुनः ॥ भूयः सिद्धिमनुप्राप्ताः स्थानं प्राप्स्यन्ति शाश्वतम् ॥८॥ एवं धर्मे च ते बुद्धिर्भविष्यति पुनः पुनः ॥ योगधर्मे च नितरां प्राप्स्यसे बुद्धिमुत्तमाम् ॥ ९ ॥ योगो हि दुर्लभो नित्यमल्पप्रज्ञैः कदाचन ॥ लब्ध्वाऽपि नाशयन्त्येनं व्यसनैः कटुतामिताः ॥ अधर्मेष्वेव वर्तन्ते पीडयन्ते गुरूनपि ॥ १० ॥ याचन्ते न त्वयाच्यानि रक्षन्ति शरणागतान् ॥ नावजानन्ति कृपणान्माद्यन्ते न धनोष्मणा ॥ ११ ॥ युक्ताहारविहाराश्च युक्तचेष्टाः स्वकर्मसु ॥ ध्यानाध्ययन-युक्ताश्च न नष्टानुगवेषिणः ॥१२॥ नोपभोगरता नित्यं न मांसमधुभक्षणाः ॥ न च कामपरा नित्यं न विप्राऽसेविनस्तथा ॥ १३ ॥ नाऽनार्यसंकथासक्ता नालस्योपहतास्तथा नात्यन्तमानसंसक्ता गोष्ठिष्वनिरतास्तथा ॥ १४ ॥

वालोंको योग महाकठिन है, और कुत्सित व्यसनोंवाले मनुष्य योगको प्राप्त होकेभी नाश हो जाते हैं; अधर्मोंमें रहते और गुरुओंको पीडित करते हैं ॥ १० ॥ अयाच्य वस्तुको नहीं मांगनेवाले, शरणागतिकी रक्षा करनेवाले, कृपणोंपर कृपा करनेवाले, और धनकी ज्वाला अग्निसे अभिमानको नहीं प्राप्त होनेवाले ॥ ११ ॥ युक्त आहार और युक्त विहारमें वर्तनेवाले, अपने कर्मोंमें युक्त चेष्टावाले, और ध्यान और अध्ययनमें तत्पर नष्ट हुए द्रव्यकी प्राप्तिमें, तस्करोंकी खोजमें तत्पर॥ १२ ॥ नित्यप्रति भोगोंसे पृथक रहनेवाले, मांस मदिरा कामदेवसे पृथक् रहनेवाले, ब्राह्मणोंकी वृत्तिके न त्यागनेवाले॥ १३ ॥ दुष्ट मनुष्योंकी वा ग्रामीण

पुरुषोंमें बैठके चर्चाको न करनेवाले, अनार्य कथासे हीन, आलस्यरहित, अत्यन्त सन्मानरहित, ब्रह्मवादियोंकी सभामें निरंतर बैठनेवाले ॥ १४ ॥ इस प्रकारके मनुष्य योगको प्राप्त होते हैं; परन्तु पृथ्वीभरमें योग बहुत दुर्लभ है; शांतस्वरूप, क्रोधसे रहित, मानअहंकारसे हीन ॥ १५ ॥ जो कल्याणके साक्षात् पात्र हैं, वे उत्तम व्रतोंको धारण करते हैं; इस प्रकारके ब्राह्मण तब होते हैं ॥ १६ ॥ वे अपने दोष और प्रमादको स्मरण करते हैं; ध्यान और अध्ययनमें प्रतिक्षण मग्न रहते, और शांत मार्गमें सदा स्थित रहनेवाले ॥ १७ ॥ हे धर्मज्ञ मार्कण्डेय ! योगधर्मसे कोई धर्म विशेष नहीं, यह सम्पूर्ण धर्मोंसे श्रेष्ठ है; तुम

प्राप्नुवन्ति नरा योगं योगो वै दुर्लभो भुवि ॥ प्रशान्ताश्च जितक्रोधा मानाहंकारवर्जिताः ॥ १५ ॥ कल्याणभाजनं ये तु ते भवन्ति यतव्रताः ॥ एवंविधास्तु ते तात ब्राह्मणा ह्यभवंस्तदा ॥ १६ ॥ स्मरन्ति ह्यात्मनो दोषं प्रमादकृतमेव तु ॥ ध्यानाध्ययनयुक्ताश्च शान्ते वर्त्मनि संस्थिताः ॥ १७ ॥ योगधर्माद्धि धर्मज्ञ न धर्मोऽस्ति विशेषवान् ॥ वरिष्ठः सर्वधर्माणां तमेवाचर भार्गव ॥ १८ ॥ कालस्य परिणामेन लध्वाहारो जितेन्द्रियः ॥ तत्परः प्रयतः श्राद्धी योगधर्ममवाप्स्यसि ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वा भगवान्देवस्तत्रै वान्तरधीयत ॥ अष्टादशैव वर्षाणि त्वेकाहमिव मेऽभवत् ॥ २० ॥ उपासतस्तं देवेशं वर्षाण्यष्टादशैव मे ॥ प्रसादात्तस्य देवस्य न ग्लानिरभवत्तदा ॥ २१ ॥ न क्षुत्पिपासे कालं वा जानामि स्म तदानघ ॥ पश्चाच्छिष्यसकाशात्तु कालः संविदितो मया ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इसका आचरण करो ॥ १८ ॥ और कालके अनुसार थोडा भोजन करो, इन्द्रियोंको जीतो और निरंतर श्राद्धोंको करो; तब योग धर्मको प्राप्त होंगे ॥ १९ ॥ भगवान् देव सनत्कुमार इसप्रकार कहकर वहांही अंतर्हित हो गये; इसमें अठारह वर्ष बीते परन्तु मुझे एक दिन के समान प्रतीत हुए ॥ २० ॥ अठारह वर्षमें उन मुनिराजकी उपासना करता रहा, परन्तु उन मुनिकी कृपासे ग्लानि ॥ २१ ॥ क्षुधा, तृषा मुझे नहीं व्यापी, और अठारह वर्ष मुनिके संग जो संवाद हुआ यहभी समय मैंने शिष्यके मुखसे पीछेसे जाना ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां पितृकल्पे ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ छ ॥

मार्कण्डेयजी बोले; जब सनत्कुमारजी अंतर्ध्यान हो गये, तब उनकी कृपासे मेरे हृदयमें ज्ञानसहित दिव्यनेत्र प्रकट हुआ ॥ १ ॥ हे भीष्म ! जिन कौशिकके पुत्रोंका संवाद पहले सनत्कुमारजीने मुझसे कहा था, उन ब्राह्मणोंको कुरुक्षेत्रमें मैंने देखा ॥ २ ॥ तिनमें सातवां ब्राह्मण ब्रह्मदत्त नाम शीलकर्मसे युक्त राजा हुआ ॥ ३ ॥ और उसे शुकदेवजीकी कृत्वी नाम कन्याने अणुह नामवाले राजासे कांपिल्य नाम नगरमें उत्पन्न किया ॥४॥ भीष्मजी बोले; हे युधिष्ठिर ! जैसे मार्कण्डेय मुनिने मुझसे कहा है, वह सब इस वंशको मैं कहता हूं, आप श्रवण करो ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ तस्मिन्नन्तर्हिते देव वचनात्तस्य वै प्रभोः ॥ चक्षुर्दिव्यं सविज्ञानं प्रादुरासीत्तदा मम ॥१॥ ततोऽहं तानपश्यं वै ब्राह्मणान्कौशिकात्मजान् ॥ आपगेय कुरुक्षेत्रे यानुवाच विभुर्मम ॥२॥ ब्रह्मदत्तोऽभवद्राजा यस्तेषां सप्तमो द्विजः ॥ पितृवर्तीति विख्यातो नाम्ना शीलेन कर्मणा ॥३॥ शुकस्य कन्या कृत्वी तं जनयामास पार्थिवम् ॥ अणुहात्पार्थिवश्रेष्ठात्काम्पिल्ये नगरोत्तमे ॥४॥ भीष्म उवाच ॥ यथोवाच महाभागो मार्कण्डेयो महातपाः ॥ तस्य वंशमहं राजन् कीर्त्तयिष्यामि तच्छृणु ॥५॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अणुहः कस्य वै पुत्रः कस्मिन्काले बभूव ह ॥ राजा धर्मभृतां श्रेष्ठो यस्य पुत्रो महायशाः ॥ ६ ॥ ब्रह्मदत्तो नरपतिः किंवीर्यः स बभूव ह ॥ कथं च सप्तमस्तेषां स बभूव नराधिपः ॥७॥ न ह्यल्पवीर्याय शुको भगवाँल्लोक पूजितः॥कन्यां प्रादद्योगात्मा कृत्वीं कीर्तिमतीं प्रभुः ॥८॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महाद्युते ॥ ब्रह्मदत्तस्य चरितं तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥९॥ यथा च वर्तमानास्ते संसारे च द्विजातयः ॥ मार्कण्डेयेन कथितास्तद्भवान् प्रब्रवीतु मे ॥ १० ॥

युधिष्ठिरजी बोले; अणुहराजा किसका पुत्र था; और किस कालमें उत्पन्न हुआ, जिसके धर्ममें श्रेष्ठ और महायशस्वी ॥ ६ ॥ ब्रह्मदत्त नाम पुत्र हुआ, अणुहका पुत्र कैसा पराक्रमी राजा हुआ;उन पूर्वोक्त कौशिक ब्राह्मणोंमें यह ब्रह्मदत्त सातवां किस प्रकार हुआ ॥ ७ ॥ और उस अल्पवीर्यवालेको लोकपूजित योगात्मा शुकदेवजी कृत्वी नाम अपनी कीर्तिमती कन्या नहीं दे सकते ॥८ ॥ इसकारण विस्तारपूर्वक ब्रह्मदत्त राजाके चरित्रको सुननेकी इच्छा है, सो आप कहनेको योग्य हो ॥ ९ ॥ जैसे मार्कण्डेयजीने आपसे कहाहै,वह सब कहिये. जिस प्रकार वे सब ब्राह्मण संसारमें वर्ते ॥ १० ॥

तब भीष्मजी बोले;हे राजन् ! जब मेरे पितामह प्रतीप राजर्षिने जिस समयमें राज्य किया है, तब मैंने सुना है ॥ ११ ॥ महाभाग और योगी राजर्षियोंमें श्रेष्ठ, सब प्राणियोंके शब्दका ज्ञाता, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत ब्रह्मदत्त राजा हुआ है ॥ १२ ॥ जिस राजाका महायशस्वी योगाचार्य गालव मित्र हुआ है, जिसने तपसे शिक्षाकी उत्पत्ति कर क्रम बढा था तथा योगवियामें कुशल कंडरीक उसका महामंत्री था ॥ १३ ॥ और सात जन्मोंमें ये सातों आपसमें सहाय करनेवाले रहे हैं;सातों जातियोंमें यह सातों महा पराक्रमी हुए हैं,जैसे महाभागवान् तपस्वी मार्कण्डेयजीने कहा है॥ १४॥

भीष्म उवाच ॥ प्रतीपस्य तु राजर्षेस्तुल्यकालो नराधिपः ॥ पितामहस्य मे राजन् बभूवेति मया श्रुतम् ॥११॥ ब्रह्मदत्तो महाभागो योगी राजर्षिसत्तमः ॥ ऋतज्ञः सर्वभूतानां सर्वभूतहितेरतः ॥१२॥ सखाऽऽस गालवो यस्य योगाचार्यो महायशाः ॥ शिक्षामुत्पाद्य तपसा क्रमो येन प्रवर्तितः ॥ कण्डरीकश्च योगात्मा तस्यैव सचिवो महान् ॥१३॥ जात्यन्तरेषु सर्वेषु सखायः सर्व एव ते ॥ सप्त-जातिषु सप्तैव बभूवुरमितौजसा ॥ यथोवाच महाभागो मार्कण्डेयो महातपाः ॥१४॥ तस्य वंशमहं राजन् कीर्त्तयिष्यामि तच्छृणु ॥ ब्रह्मदत्तस्य पौराणां पौरवस्य महात्मनः ॥१५॥ बृहत्क्षत्रस्य दायादः सुहोत्रो नाम धार्मिकः ॥ सुहोत्रस्यापि दायादो हस्ती नाम बभूव ह ॥१६॥ तेनेदं निर्मितं पूर्वं हस्तिनापुरमुत्तमम् ॥ हस्तिनश्चापि दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥१७॥ अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च ॥ अजमीढस्य धूमिन्यां जज्ञे बृहदिषुर्नृप ॥ बृहद्धनुर्बृहदिषोः पुत्रस्तस्य महायशाः ॥१८॥ बृहद्धर्मेति विख्यातो राजा परमधार्मिकः ॥ सत्यजित्तनयस्तस्य विश्वजित्तस्य चात्मजः ॥ १९ ॥

हे राजन् ! पौरव वंशमें होनेवाले ब्रह्मदत्त राजाका पुरातन वंश वर्णन करता हूं;तुम श्रवण करो॥ १५ ॥प्रथम बृहत्क्षत्रके परमधार्मिक सुहोत्र नाम पुत्र हुआ; सुहोत्रके हस्ती पुत्र हुआ ॥ १६॥ जिसने यह प्रथम हस्तिनापुर बसाया, हस्तीके तीन परमधार्मिक पुत्र ॥ १७ ॥ अजमीढ, द्विमीढ, पुत्रमीढ हुए;हे राजन् ! अजमीढके धूमिनी रानीमें बृहदिषु पुत्र हुआ,पीछे बृहदिषुकेबृहद्धनु पुत्र हुआ॥ १८ ॥ पीछे बृहद्धनुके परमधार्मिक बृहद्धर्माके

पुत्र हुआ, बृहद्धर्माके सत्यजित्, सत्यजित्के विश्वजित् पुत्र हुआ ॥ १९ ॥ विश्वजित्के सेनजित् राजा पुत्र हुआ, सेनजित्के लोकमें माने हुए चार पुत्र ॥ २० ॥ रुचिर, श्वेतकेतु, महिम्नार, आवंतक यह अवंतिका देशके राजा परिवत्सक कहाये ॥ २१ ॥ रुचिरके महायशस्वी पृथुषेण पुत्र हुआ ॥ २२ ॥ नीपके अमितपराक्रमी और महारथी और शूर वीर १०० पुत्र हुए, इसी प्रकार वे बली राजा नीपनामसे विख्यात हुए हैं ॥ २३ ॥ नीपोंकी कीर्तिको बढानेवाला,और वंशके करनेवाला कांपिल्य नगरमें युद्ध करनेवाला समर पुत्र हुआ ॥२४॥ समरके पर,पार सदश्व नामोंवाले परमधर्मज्ञ

पुत्रो विश्वजितश्चापि सेनजित्पृथिवीपतिः ॥ पुत्राः सेनजितश्चासन् चत्वारो लोकविश्रुताः॥२०॥रुचिरः श्वेतकेतुश्च महिम्नारस्तथैव च ॥ वत्सश्चावन्तको राजा यस्यैते परिवत्सकाः ॥ २१ ॥ रुचिरस्य तु दायादः पृथुसेनो महायशाः ॥ पृथुसेनस्य पारस्तु पारान्नीपस्तु जज्ञिवान्॥२२॥नीपस्यैकशतं तात पुत्राणाममितौजसाम्॥महारथानां राजेन्द्र शूराणां बाहुशालिनाम्॥नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते ॥ २३ ॥ तेषां वंशकरो राजा नीपानां कीर्तिवर्धनः ॥ काम्पिल्ये समरो नाम सचेष्टसमरोऽभवत् ॥ २४ ॥ समरस्य परः पारः सदश्व इति ते त्रयः ॥ पुत्राः परधर्मज्ञाः परपुत्रः पृथुर्बभौ ॥ २५ ॥ पृथोस्तु सुकृतो नाम सुकृतेनेह कर्मणा ॥ जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः ॥ २६ ॥ विभ्राजस्य तु पुत्रोऽभूदणुहो नाम पार्थिवः ॥ बभौ शुकस्य जामाता कृत्वी भर्ता महायशाः ॥ २७ ॥ पुत्रोऽणुहस्य राजर्षिर्ब्रह्मदत्तोऽभवत्प्रभुः ॥ योगात्मा तस्य तनयो विष्वक्सेनः परंतपः ॥ २८ ॥ विभ्राजः पुनरायातः स्वकृतेनेह कर्मणा ॥ ब्रह्मदत्तस्य पुत्रोऽन्यः सर्वसेन इति श्रुतः ॥ २९ ॥

तीन पुत्र हुए;पीछे पारके पृथु पुत्र हुआ ॥ २५ ॥ पीछे पृथुके सुकृत, सुकृतके सब गुणोंवाला विभ्राज पुत्र हुआ ॥ २६ ॥ विभ्राजके अणुद पुत्र हुआ; और यही शुकदेवजीका जमाई और कृत्वी रानीका पति हुआ ॥ २७ ॥ अणुहके राजर्षिरूप ब्रह्मदत्त पुत्र हुआ; पीछे योगात्मा ब्रह्मदत्तके विश्ववसेन पुत्र हुआ ॥ २८ ॥ कोई कहते हैं, ब्रह्मदत्तका पिता महाविभ्राजही अपने कर्मसे विश्वकूसेन नाम पुत्र हो आया, और सर्वसेन नाम दूसरा भी पुत्र ब्रह्मदत्तके हुआ; ऐसा भी सुना है ॥ २९ ॥

कि एक पूजनी नाम पक्षीकी स्त्रीने ब्रह्मदत्तराजाके घरमें बहुत दिन वासकर इस सर्वसेनके दोनों नेत्र निकाल दिये ॥ ३० ॥ और ब्रह्मदत्तके विश्वसेन नाम दूसरे पुत्रकेजो महाबली पराक्रमी था ॥ ३१ ॥ दंडसेन नाम राजा पुत्र हुआ, दंडसेनके भल्लाट पुत्र हुआ, इसको राजाके पुत्र कर्णने पहले मारा था; दंडसेनका पुत्र शूर महाबली पराक्रमी महात्मा कुलवर्द्धन हुआ; हे युधिष्ठिर! भल्लाटके दुर्बुद्धि नाम पुत्र हुआ ॥ ३२ ॥ यह सब नीप नामवाले क्षत्रियोंका राजा हुआ ॥ ३३ ॥ और इसीसे नीपवंशका अन्त हुआ, इसके अर्थ उग्रायुध राजाने सब नीप नामवाले राजे नष्ट कर दिये ॥ ३४ ॥ पुनः

सुचिरोषितया राजन् ब्रह्मदत्तस्य वेश्मनि ॥ ३० ॥ अथास्य पुत्रस्त्वपरो ब्रह्मदत्तस्य चक्षुषी तस्य निर्भिन्ने पक्षिण्या पूजनीयया ॥ विष्वक्सेन इति ख्यातो महाबलपराक्रमः ॥ ३१ ॥ विष्वक्सेनस्य पुत्रोऽभूद्दण्डसेनो महीपतिः ॥ भल्लाटोऽस्य कुमारोऽभूद्राधेयेन हतः पुरा ॥ ३२ ॥ दण्डसेनात्मजः शूरो महात्मा कुलवर्द्धनः ॥ भल्लाटपुत्रो दुर्बुद्धिरभवच्च युधिष्ठिर ॥ ३३ ॥ स तेषामभवद्राजा नीपानामन्तकृन्नृप ॥ उग्रायुधेन यस्यार्थे सर्वे नीपा विनाशिताः ॥ ३४ ॥ उग्रायुधो मदोत्सिक्तो मया विनिहतो युधि ॥ दर्पान्वितो दर्परुचिः सततं चानये रतः ॥ ३५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ उग्रायुधः कस्य सुतः कस्मिन्वंशेऽथ जज्ञिवान् ॥ किमथ चैव भवता निहतस्तद्ब्रवीहि मे ॥ ३६ ॥ भीष्म उवाच ॥ अजमीढस्य दायादो विद्वान्राजा यवीनरः ॥ धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः सुतः ॥ ३७ ॥ जज्ञे सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान् ॥ दृढनेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः ॥ ३८ ॥ आसीत्सुधर्मणः पुत्रः सार्वभौमः प्रजेश्वरः ॥ सार्वभौम इति ख्यातः पृथिव्यामेकराड्विभुः ॥ ३९ ॥

अभिमानी और गर्वमें प्रीतियुक्त, निरंतर अन्यायमें रत, मदसे संयुक्त, उग्रायुध राजाका मैंने युद्धमें वध किया ॥ ३५ ॥ युधिष्ठिर बोले; उग्रायुध किसका पुत्र था; किस वंशमें जन्मा, और किस निमित्त आपने मारा, यह सब वृत्तान्त कहिये ॥ ३६ ॥ भीष्मजी बोले; अजमीढके विद्वान् यवीनर नाम राज पुत्र हुआ; यवीनरके धृतिमान्, धृतिमान्के सत्यधृती पुत्र हुआ ॥ ३७ ॥ सत्यधृतिके बडा प्रतापी दृढनेमि, दृढनेमिके सुधर्मा राजा पुत्र हुआ ॥ ३८ ॥ पीछे सुधर्माके

सार्वभौम नामक विख्यात और भूमंडलमें एक क्षत्रधारी अतिप्रतापी पुत्र हुआ ॥ ३९ ॥ सार्वभौमके वंशमें पौरवोंको आनंददाता पुत्र हुआ ॥ ४० ॥ रुक्मरथके सुपार्श्व नाम राजा पुत्र हुआ, सुपार्श्वके परमधार्मिक सुमति सुत जन्मा॥ ४१ ॥सुमतिके धर्मात्मा और वीर्यवान् सन्नति पुत्र हुआ, सन्नतिके महाबली कृत नाम पुत्र जन्मा ॥ ४२ ॥ यह कौशलदेशके महात्मा हिरण्यनाभका शिष्य था; इसने साम संहिताके चौवीस विभाग किये ॥ ४३ ॥ वे विभाग किये हुए सामकार्तय कहलाते हैं, वे मंत्र साममें गाये जाते हैं; कृतके महाबली पौरवनंदन पुत्र हुआ ॥४४॥ जिसने अपने बाहोंसे पांचाल

तस्यान्ववाये महति महान्पौरवनन्दनः ॥ महतश्चापि पुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः ॥४०॥ पुत्रो रुक्मरथस्यापि सुपार्श्वो नाम पार्थिवः ॥ सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः ॥ ४१ ॥ सुमतेरपि धर्मात्मा सन्नतिर्नाम वीर्यवान् ॥ तस्य वै सन्नतेः पुत्रः कृतो नाम महाबलः ॥ ४२ ॥ शिष्यो हिरण्यनाभस्य कौशलस्य महात्मनः ॥ चतुर्विंशतिधा तेन सम्प्राच्याः सामसंहिताः ॥ ४३ ॥ स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्त्तयो नाम सामगाः ॥ कीर्तिरुग्रायुधः सोऽथ वीरः पौरवनन्दनः ॥ ४४ ॥ बभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः ॥ नीपो नाम महातेजाः पाञ्चालाधिपतिर्हतः ॥ ४५ ॥ उग्रायुधस्य दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः ॥ क्षेम्यात्सुवीरो नृपतिः सुवीरात्तु नृपंजयः ॥ ४६ ॥ नृपंजयाद्बहुरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः ॥ स चाप्युग्रायुधस्तात दुर्बुद्धिरभवत्तदा ॥ ४७ ॥ प्रवृद्धचक्रो बलवान्नीपान्तकरणो महान् ॥ स दर्पपूर्णो हत्वाऽजौ नीपानन्यांश्च पार्थिवान् ॥ ४८ ॥

देशके स्वामी और पृषतके पितामह महातेजस्वी नीप नामवाले राजाको मारा ॥ ४५ ॥ उग्रायुधके महायशस्वी क्षेम्य पुत्र हुआ, क्षेमके सुवीर, सुवीरके नृपंजय पुत्र हुआ ॥ ४६ ॥ नृपंजयके बहुरथ सुत उपजा, इस प्रकार पौरवंशमें राजा उत्पन्न हुए हैं. हे युधिष्ठिर ! उस उग्रायुध राजाकीही बुद्धि भ्रष्ट हो गई ॥ ४७ ॥ कारण कि यह अतिबली नीप राजाको मारकर और उसके समीपवर्ती दूसरे राजाओंकोभी युद्धमें वधकर अभिमानसे पूर्ण

हुआ ॥ ४८ ॥ और मेरे पिताके मृतक होनेपर मंत्रियोंसहित पृथ्वीमें शयन करते हुए मुझसे ॥४९॥ उग्रायुधका दूत आके इस प्रकारके वचन कहने लगा कि; हे भीष्म ! अति यशस्विनी और स्त्रियोंमें रत्नरूप अपनी जननी योजनगंधाको मेरी भार्याके अर्थ देदो॥ ५०॥इसप्रकार करोगे तौ तुम्हारा राज्य और धन बना रहेगा, इसमें संशय नहीं है; और म तुम्हारी इच्छाको पूरी करूंगा; मेरे समान रत्नोंका भोगी दूसरा पुरुष नहीं है ॥ ५१ ॥ अब मेरे प्रज्वलित चक्रको सुनो; कि मुझे देखतेही युद्धमें वैरी भाग जाते हैं ॥ ५२ ॥ यदि तुम अपने देश, कुल और प्राणोंका कल्याण चाहते हो

पितर्युपरते मह्यं श्रावयामास किल्बिषम् ॥ माममात्यैः परिवृतं शयानं धरणीतले ॥ ४९ ॥ उग्रायुधस्य राजेन्द्र दूतोऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत् ॥ अद्य त्वं जननीं भीष्म गन्धकालीं यशस्विनीम् ॥ स्त्रीरत्नं मम भार्यार्थं प्रयच्छ पुरुपुङ्गव ॥५०॥ एवं राज्यं च ते स्फीतं धनानि च न संशयः ॥ प्रदास्यामि यथाकाममहं वै रत्नभाग्भुवि ॥ ५१ ॥ मम प्रज्वलितं चक्रं निशम्येदं सुदुर्जयम् ॥ शत्रवो विद्रवन्त्याजौ दर्शनादेव भारत ॥ ५२ ॥ राष्ट्रस्येच्छसि चेत्स्वस्ति प्राणानां वा कुलस्य वा ॥ शासने मम तिष्ठस्व न हि ते शान्तिरन्यथा ॥ ५३ ॥ अधःप्रस्तारशयने शयानस्तेन चोदितः ॥ दूतान्तर्हितमेतद्वै वाक्यमग्निशिखोपमम् ॥५४॥ ततोऽहं तस्य दुर्बुद्धेर्विज्ञाय मतमच्युत ॥ आज्ञापयं वै सङ्ग्रामे सेनाध्यक्षांश्च सर्वशः ॥ ५५ ॥ विचित्रवीर्यं बालं च मदुपाश्रयमेव च ॥ दृष्ट्वा क्रोधपरीतात्मा युद्धायैव मनो दधे ॥५६॥ निगृहीतस्तदाहं तैः सचिवैर्मन्त्रकोविदैः॥ ऋत्विग्भिर्वेदकल्पैश्च सुहृद्भिश्चार्थदर्शिभिः॥५७॥

तौ मेरी आज्ञाको मानो; अन्यथा इस विषयमें शांति नहीं होगी ॥ ५३ ॥ इसप्रकार उग्रायुधके दूतके वचनको सुन डाभकी शय्यापर शयन कियेही मैंने अग्निकी शिखाके समान उस दूतके वचनको स्मरण कर ॥ ५४ ॥ उस दुष्टबुद्धिवाले उग्रायुधके अभिप्रायको जानि, सब सेनापतियोंको संग्रामकी आज्ञा देदी ॥ ५५ ॥ अपने आश्रयभूत विचित्रवीर्य बालकको देख क्रोधयुक्त हो, मैंने युद्धके निमित्त विचार किया ॥ ५६ ॥ तब तात्पर्यको जाननेवाले मंत्री ऋत्विक् मित्रशास्त्रके जाननेवाले विद्वान् इन सबोंने मुझे निषेध किया ॥ ५७ ॥

शास्त्र जाननेवालोंने युद्धसे निवृत्ति करनेकी युक्ति संगत कारण सुनाया ॥ ५८ ॥ और मंत्री मुझसे कहने लगे कि; हे भीष्म ! उस पापी उग्रायुधका चक्र बढा हुआ है; आप पिताके पातकसे संयुक्त हैं,इसकारण अभी युद्धका समय नहीं है॥५९॥हम सब सामपूर्वक दामभेदको नियुक्त करते हैं;कि पिताके अशौचसे शुद्ध होकर पीछे देवताओंको नमस्कार कर॥६०॥फिर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराय ब्राह्मणोंकी पूजाकर ब्राह्मणोंकी आज्ञा ले गमन करनेमें जय पाओगे ॥६१॥और जबतक अशौच रहे, तबतक बुद्धिमान् शस्त्रोंको स्पर्श न करे, और न युद्धकाआरंभ करे; ऐसी वृद्धोंकी आज्ञा

स्निग्धैश्च शास्त्रविद्भिश्च संयुगस्य निवर्तने ॥ कारणं श्रावितश्चास्मि युक्तरूपं तदाऽनघ ॥ ५८ ॥ मन्त्रिण ऊचुः ॥ प्रवृत्तचक्रः पापोऽसौ त्वं चाशौचगतः प्रभो ॥ न चैषः प्रथमः कल्पो युद्धं नाम कदाचन ॥५९॥ ते वयं सामपूर्वं वै दानं भेदं तथैव च ॥ प्रयोक्ष्यामस्ततः शुद्धो दैवतान्यभिवाद्य च ॥ ६० ॥ कृतस्वस्त्ययनो विप्रैर्हुत्वाग्नीनार्च्य च द्विजान् ॥ ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रयास्यासि जयाय वै ॥ ॥ ६१ ॥ अस्त्राणि न प्रयोज्यानि न प्रवेश्यश्च संगरः ॥ आशौचे वर्तमाने तु वृद्धानामिति शासनम् ॥ ६२ ॥ सामदानादिभिः पूर्वमपि भेदेन वा ततः ॥ तं हनिष्यसि विक्रम्य शम्बरं मघवानिव ॥ ६३ ॥ प्राज्ञानां वचनं काले वृद्धानां च विशेषतः ॥ श्रोतव्यमिति तच्छ्रुत्वा निवृत्तोऽस्मि नराधिप ॥ ६४ ॥ ततस्तैः संक्रमः सर्वः प्रयुक्तः शास्त्रकोविदैः ॥ तस्मिन् काले कुरुश्रेष्ठ कर्म चारब्धमुत्तमम् ॥६५॥ स सामादिभिरेवादावुपायैः प्राज्ञचिन्तितैः ॥ अनुनीयमानो दुर्बुद्धिरनुनेतुं न शक्यते ॥६६॥ प्रवृत्तं तस्य तच्चक्रमधर्मनिरतस्य वै ॥ परदाराभिलाषेण सद्यस्तात निवर्तितम् ॥ ६७ ॥

है ॥ ६२ ॥ सो पहले उस दुष्टको साम उपाय दान और भेद करके समय पाके आप मारोगे, जैसे शंबरासुरको इन्द्रने मारा है ॥६३॥ हे राजन् ! तब विद्वान् और वृद्धोंके वचनको सुनके युद्धसे मैं निवृत्त हुआ, कारण कि ये समयपर इनके वचन अवश्य माने ॥ ६४ ॥ हे युधिष्ठिर ! मैंने पिताके अर्थ कर्मका आरंभ किया ॥६५॥ और अनेक प्रकारके सामआदि उपायोंसे शिक्षितभी किया; परन्तु उस दुर्बुद्धि उग्रायुधने नहीं माना ॥६६॥ तब अधर्म करनेवाले और पराई स्त्रीकी अभिलाषा करनेवाले उग्रायुधका चक्र (आज्ञा) आपही आप निवृत्त हो गया ॥ ६७ ॥

परन्तु मैंने न जाना कि,चक्र निवृत्त हो गया है; परन्तु कुत्सित कर्मोंके करनेसे मैंने जाना कि यह अवश्य भ्रष्ट हो जायगा ॥६८॥ तब मैं अशौचसे निवृत्त हो धनुष्यबाणको धारण कर ब्राह्मणोंके मुखसे स्वतिवाचन कराय रथमें बैठ हस्तिनापुरसे निकल उग्रायुधसे युद्ध करने लगा॥६९॥ तब समीपमें प्राप्त हो; बलसे और अस्त्रबलसे देवासुर युद्धके समान वह युद्ध तीन दिनतक होता रहा ॥७०॥ हे राजन् ! तब मैंने अस्त्रसे युद्धमें उसे दग्ध कर दिया; तब वह वीर उग्रायुध अपने प्राणोंको त्याग पृथ्वीमें गिर पडा ॥७१॥ हे तात ! इसी अंतरमें कांपिल्यनगरसे पृषत् नाम राजा नीपेश्वर उग्रायुध राजाके

न त्वहं तस्य जाने तन्निवृत्तं चक्रमुत्तमम् ॥ हतं स्वकर्मणा तं तु पूर्वं सद्भिश्च निन्दितम् ॥ ६८ ॥ कृताशौचः शरी चापी रथी निष्क्रम्य वै पुरात् ॥ कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः प्रायोधयमहं रिपुम् ॥६९॥ ततः संसर्गमागम्य बलेनास्त्रबलेन च ॥ त्र्यहमुन्मत्तवद्युद्धं देवासुरमिवाभवत् ॥७०॥ स मयास्त्रप्रतापेन निर्दग्धो रणमूर्धनि ॥ पपाताभिमुखः शूरस्त्यक्त्वा प्राणानरिंदम ॥ ७१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तात काम्पिल्ये पृषतोऽभ्ययात् ॥ हते नीपेश्वरे चैव हते चोग्रायुधे नृपे ॥ ७२ ॥ आहिच्छत्रं स्वकं राज्यं पित्र्यं प्राप महाद्युतिः ॥ द्रुपदस्य पिता राजन्ममैवानुमते तदा ॥ ७३ ॥ ततोऽर्जुनेन तरसा निर्जित्य द्रुपदं रणे ॥ आहिच्छत्रं सकाम्पिल्यं द्रोणायाथापवर्जितम् ॥७४॥ प्रतिगृह्य ततो द्रोण उभयं जयतां वरः ॥ काम्पिल्यं द्रुपदायैव प्रायच्छद्विदितं तव ॥७५॥ एष ते द्रुपदस्यादौ ब्रह्मदत्तस्य चैव ह ॥ वंशः कात्स्न्र्येन प्रोक्तो वै नीरस्योग्रायुधस्य च ॥ ७६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ किमर्थं ब्रह्मदत्तस्य पूजनीया शकुन्तिका ॥ अन्धं चकार गाङ्गेय ज्येष्ठं पुत्रं पुरा विभो ॥ ७७ ॥

मरनेके पीछे आया ॥७२॥ और आहिछत्र राजधानी पर्यन्त अपने पिताके राज्यको प्राप्त होकर, द्रुपदका पिता यह राजा मेरी आज्ञा मानता रहा ॥ ७३ ॥ पश्चात् अर्जुनने युद्धमें द्रुपदको जीत सब कांपिल्यका राज्य द्रोणाचार्यको दे दिया ॥ ७४ ॥ तब द्रोणाचार्यने उसे ले अपने दक्षिण और उत्तरके पांचाल राज्यको द्रुपदको दे दिया, सो तुम जानतेही हो ॥७५॥ इस प्रकार द्रुपद ब्रह्मदत्तका नीप और उग्रायुधका वंश विस्तारसे वर्णन किया॥७६॥तब युधिष्ठिरजी बोले;हे भीष्म ! पूजनीया नामवाली चिडियाने ब्रह्मदत्तके बडे पुत्रको किस कारण अंधा किया ॥७७॥

यद्यपि वह महात्मा राजाके घरमें बहुतकालसे रहती थी; फिर क्यों उस राजाका विप्रिय किया ॥ ७८ ॥ और वह पूजनीया कौन थी; और राजासे उसकी क्या मित्रता थी, यह मुझे संशय है, इसको आप सब कहकर दूर करो ॥ ७९ ॥ भीष्मजी बोले;हे महाराज ! जैसे ब्रह्मदत्त राजाके स्थानमें वृत्तान्त बीता है तिसे मैं कहता हूं; तिसको सुनो पश्चात् समझो ॥ ८० ॥ हे राजन् ! कोई एक सफेद पंख और लाल मस्तक, कृष्णरूप ऊपरले भाग और सफेद पेटवाली एक चिडिया ब्रह्मदत्त राजाकी सखी थी ॥ ८१ ॥ उसकी राजासे बडी मित्रता थी, राजाहीके साथमें रहती थी;

चिरोषिता गृहे चापि किमर्थं चैव यस्य सा ॥ चकार विप्रियमिदं तस्य राज्ञो महात्मनः ॥७८॥ पूजनीया चकारासौ किं सख्यं तेन चैव ह ॥ एतन्मे संशयं छिन्धि सर्वमुक्त्वा यथातथम् ॥७९॥ भीष्म उवाच ॥ शृणु सर्वं महाराज यथा वृत्तमभूत्पुरा॥ब्रह्मदत्तस्य भवने तन्निबोध युधिष्ठिर ॥८०॥ काचिच्छकुन्तिका राजन् ब्रह्मदत्तस्य वै सखी॥शितिपक्षा शोणशिरा शितिपृष्ठा शितोदरी ॥८१॥ सखी सा ब्रह्मदत्तस्य सुदृढं बद्धसौहृदा ॥ तस्याः कुलायमभवद्गेहे तस्य नरोत्तम ॥ ८२ ॥ सा सदाऽहनि निर्गत्य तस्य राज्ञो गृहोत्तमात् ॥ चचाराम्भोधितीरेषु पल्वलेषु सरस्सु च ॥८३॥ नदीपर्वतकुञ्जेषु वनेषूपवनेषु च ॥ प्रफुल्लेषु तडागेषु कह्लारेषु सुगन्धिषु ॥८४॥ कुमुदोत्पलकिञ्जल्कसुरभीकृतवायुषु ॥ हंससारसघुष्टेषु कारण्डवरुतेषु च ॥८५॥ चरित्वा तेषु सा राजन्निशि काम्पिल्यमागतम् ॥ नृपतेर्भवनं प्राप्य ब्रह्मदत्तस्य धीमतः ॥ ८६ ॥ राज्ञा तेन सदा राजन्कथायोगं चकार सा ॥ आश्चर्याणि च दृष्टानि यानि वृत्तानि कानिचित् ॥ ८७ ॥

और वहीं घोंसला कर लिया था ॥८२॥ सो वह चिड़िया प्रतिदिन राजाके घरसे निकलकर समुद्रके तीर छोटे सरोवर तालावमें विचरती॥८३॥ नदी, पर्वत, कुंज, वन, उपवन, कमल फूले हुए और सुगंधिवाले सरोवरों तथा ॥ ८४ ॥ कमल और सुगंधि कमलके केशरोंसे संयुक्त, हवा हंस, सारस, कारंडव शब्दोंसे संयुक्त ॥ ८५ ॥ स्थानोंमें दिनभर विचर रात्रिको कांपिल्यनगरके भीतर महात्मा ब्रह्मदत्त राजाके स्थानमें आवे ॥ ८६ ॥ राजाके संग वह सदा उन कथाओंको कहा करती थी; जिन आश्चर्योंको वह देख आयाकरती थी ॥ ८७ ॥

अनेक प्रकारके देशोंको देखकर रातको राजासे उनका वृत्तान्त सुनावे;हे युधिष्ठिर ! किसीसमय ब्रह्मदत्त राजाके ॥८८॥ सर्वसैन नाम पुत्र हुआ और उस चिडियानेभी एक अंडा अपने घोसलेमें दिया ॥ ८९ ॥ तब कालके वशसे वह अंडा फूटा और चरणसे संयुक्त वह मांसपिंड ॥९०॥ भौं मुख करके युक्त आंखें मीचे प्रगट हुआ, और पीछे नेत्रवान् तथा पंखोंसे युक्त हुआ॥९१॥वहचिडिया अपने पुत्र और राजाके पुत्रमें समान प्रेम करने लगी ॥९२॥ पीछे वह चिडिया अमृतके समान स्वादसे संयुक्त दो अमृतफलोंको वनसे लाय, सायंकालमें एक अपने पुत्रको और एक राजाके पुत्रको

चरित्वा विविधान्देशान्कथयामास सा निशि॥कदाचित्तस्य नृपतेर्ब्रह्मदत्तस्य कौरव॥८८॥पुत्रोऽभूद्राजशार्दूल सर्वसेनेति विश्रुतः॥ पूजनीयाऽथ सा तस्मिन्प्रासूताण्डमथापि च॥८९॥तस्मिन्नीडे पुरा ह्येकं तत्किल प्रास्फुटत्तदा॥स्फुटितो मांसपिंडस्तु बाहुपादास्यसं-युतः ॥९०॥ बभ्रुवक्रश्चक्षुर्हीनो बभूव पृथिवीपते॥चक्षुष्मानप्यभूत्पश्चादीषत्पक्षोत्थितश्च ह॥९१॥अथ सा पूजनीया वै राजपुत्रस्व-पुत्रयोः॥ तुल्यस्नेहात्प्रीतिमती दिवसे दिवसेऽभवत्॥९२॥आजहार सदा सायं चञ्च्वामृतफलद्वयम् ॥ अमृतास्वादसदृशं सर्वसे-नतनूजयोः ॥९३॥स बालो ब्रह्मदत्तस्य पूजनीयासुतश्च ह ॥ ते फले भक्षयित्वा च पृथुकौ प्रीतमानसौ॥९४॥ अभूतां नित्यमेवेह खादेतां तौ च ते फले॥तस्यां गतायामथ च पूजन्यां वै सदाऽहनि॥९५॥शिशुना चटकेनाथ धात्री त तु शिशुं नृप॥तेन प्रक्री-डयामास ब्रह्मदत्तात्मजं सदा॥९६॥नीडात्तमाकृष्य तदा पूजनीयाकृतात्ततः ॥ क्रीडता राजपुत्रेण कदाचिच्चटकः स तु ॥९७॥ निगृहीतः कन्धरायां शिशुना दृढमुष्टिना ॥ दुर्भङ्गमुष्टिना राजन्नसून् सद्यस्त्वजीजहत् ॥ ९८ ॥

देने लगी ॥९३॥ उन फलोंके खानेसे राजाका पुत्र और चिडियाका पुत्र दोनों अधिक पुष्ट होने लगे ॥ ९४ ॥ इस प्रकार वे नित्य खाने लगे; एक दिन जब वह चिडिया वनमें चली गई ॥ ९५ ॥ तब उस चिडियाके बालकसे ब्रह्मदत्तके पुत्र सर्वसेनको धाई खेल कराने लगी ॥ ९६ ॥ घोसलेसे उस चिडियाके पुत्रको उतार उस बालकको प्रसन्न करने लगी; किसी समय उस ब्रह्मदत्तके ॥९७॥ बालकने दृढ मुष्टिसे उस चिडियाकी गर्दन पकड जोरसे दबाई; तब वह चिडिया तत्काल मर गई ॥ ९८ ॥

तब मरे हुए और मुख फैलाये उस बच्चेको बालकके हाथसे छुटाय उसे मृतक देख, ब्रह्मदत्त राजा दुःखित हुआ ॥ ९९ ॥ और नेत्रोंसे अश्रुपात कर राजाने उस बालककी धायकी निंदा की,उस बच्चेको स्मरण कर राजा शोकयुक्त हो बैठा॥१००॥जब समय पाकर वह चिडिया दो फलोंको ग्रहण कर ब्रह्मदत्तके स्थानमें आई ॥१०१॥ हे युधिष्ठिर ! उसने अपने स्थानमें आकर, प्राणोंसे रहित उस अपने पुत्रको देखा॥१०२॥ प्रथम तौ अपने पुत्रको देख अचेत होगई;और फिर चैतन्यताको प्राप्त हो,वह तपस्विनी चिडिया विलाप करने लगी ॥१०३॥ हे पुत्र ! तू मुझे आती देख मेरे प्रति गमन

तं तु पञ्चत्वमापन्नं व्यात्तास्यं बालघातितम् ॥ कथंचिन्मोचितं दृष्ट्वा नृपतिर्दुखितोऽभवत् ॥ ९९ ॥ धात्रीं तस्य जगर्हे तां तदाश्रुपरमो नृपः ॥ तस्थौ शोकान्वितो राजन् शोचस्तं चटकं तदा ॥ १०० ॥ पूजनीयापि तत्काले गृहीत्वा तु फलद्वयम् ॥ ब्रह्मदत्तस्य भवनमाजगाम वनेचरी ॥ १ ॥ अथापश्यत्तमागम्य गृहे तस्मिन्नराधिप ॥ पञ्चभूतपरित्यक्तं शोच्यं तं स्वतनूद्भवम् ॥ २ ॥ मुमोह दृष्ट्वा तं पुत्रं पुनः संज्ञामथालभत ॥ लब्धसंज्ञा च सा राजन्विललाप तपस्विनी ॥ ३ ॥ पूजनीयोवाच ॥ न तु त्वमागतां पुत्र वाशन्तीं परिसर्पसि ॥ कुर्वंश्चाटुसहस्राणि अव्यक्तकलया गिरा ॥ ४ ॥ व्यादितास्यः क्षुधार्त्तश्च पीतेनास्येन पुत्रक ॥ शोणेन तालुना कथमद्य न सर्पसि ॥ ५ ॥ पक्षाभ्यां त्वां परिष्वज्य ननु वाशामि चाप्यहम् ॥ चीचीकूचीति वाशन्तं त्वामद्य न शृणोमि किम् ॥ ६ ॥ मनोरथो यस्तु मम पश्येयं पुत्रकं कदा ॥ व्यात्तास्यं वारि याचन्तं स्फुरत्पक्षं ममाग्रतः ॥ ७ ॥ स मे मनोरथो भग्नस्त्वयि पञ्च त्वमागते ॥ विलप्यैवं बहुविधं राजानमथ साऽब्रवीत् ॥ ८ ॥

करता;और अव्यक्त वाणीसे सुन्दर सहस्रों वचनोंको कहा करता॥१०४॥और क्या अब मुखको फाडे हुए भूंखसे संयुक्त और पीले मुख और लाल तलुयेसे युक्त मेरे समीप नहीं आता॥१०५॥और पंखोंसे मिलाप कर मैं तेरे संग निवास किया करती और अब चीचीकूची बोलते हुए तेरे वाक्यको मैं नहीं सुनती ॥ १०६ ॥ और जो मेरा मनोरथ था कि मुखको वाये हुए,और पानीको मांगते, पंखोंको फरकाते तुझे देखूं॥१०७॥सो तेरे मरनेसे मेरा मनोरथ नष्ट हो गया, ऐसे बहुत बिलापकर राजासे बोली॥१०८॥

हे राजन् ! राज्यसिंहासनपै प्राप्त होनेवाले आप सनातन धर्मको जानते हो,परन्तु मेरा पुत्र धायके हाथसे कैसे मरवा दिया॥१०९॥अपने पुत्रके हाथसे खैंचवाके मेरा पुत्र मरवा दिया;हे क्षत्रियोंमें नीच यह बता क्या तैंने इस अंगिरस श्रुतिका श्रवण नहीं किया॥११०॥वह यह है कि शरणमें आये, क्षुधासे पीडित और शत्रुओंसे सताये,अपने स्थानमें बहुत कालसे वसनेवाले जीव सब प्रकार पालनेके योग्य हैं॥१११॥और पालना न करनेसे वह मनुष्य कुंभीपाक नरकमें जाता है.और ऐसे पुरुषके हाथसे देवते द्रव्यको और पितर स्वधाको स्वीकार नहीं करते हैं॥११२॥ हे महाराज ! ऐसे दश

ननु मूर्द्धाभिषिक्तस्त्वं धम वेत्सि सनातनम् ।। अथ कस्मान्मम सुतं धात्र्या घातितवानसि।।९।।तव पुत्रेण चाकृष्य क्षत्रियाधम
शंस मे ॥ न च नूनं श्रुता तेऽभूदियमाङ्गिरसी श्रुतिः ॥ ११० ॥ शरणागतः क्षुधार्त्तश्च शत्रुभिश्चाप्युपद्रुतः ।। चिरोषितश्च
स्वगृहे पातव्यः सर्वदा भवेत् ॥ ११ ॥ अपालयन्नरो याति कुम्भीपाकमसंशयम् ॥ कथमस्य हविर्देवा गृह्णन्ति पितरः स्वधाम्
॥ १२ ॥ एवमुक्त्वा महाराज दशधर्मगता सती ॥ शोकार्त्ता तस्य बालस्य चक्षुषी निर्बिभेद सा ॥ १३ ॥ कराभ्यां राजपुत्रस्य
ततस्तच्चक्षुर- स्फुटत् ॥ कृत्वा चान्धं नृपसुतमुत्पपात ततोऽम्बरम् ॥ १४ ॥ अथ राजा सुतं दृष्ट्वा पूजनीयामुवाच ह ॥ विशोका
भव कल्याणि कृतं ते भीरु शोभनम् ॥ १५ ॥ गतशोका निवर्त्तस्व अजर्यं सख्यमस्तु ते ॥ पुरेव वस भद्रं ते निवर्त्तस्व रमस्व
च ॥ १६ ॥ पुत्रपीडोद्भवश्चापि न कोपः परमस्त्वयि ॥ ममास्ति सखि भद्रं ते कर्त्तव्यं च कृतं त्वया ॥ ॥१७ ॥

धर्मको जाननेवाली और शोकसे पीडित उस चिडियाने राजाके पुत्रके दोनों नेत्रोंको अपने पंजेसे फोड दिया॥११३॥इसप्रकार पंजोंसे राजपुत्रको अंधा कर वह चिडिया आकाशको उड गई ॥११४॥ तब ब्रह्मदत्त राजपुत्रको देख इस चिडियासे कहने लगा; हे कल्याणि ! तैंने अच्छा किया; परन्तु अब तू शोकको त्याग ॥११५॥ अपने घोसलेमें आजा; मेरी तेरी मित्रता सब कालमें रहनी उचित है;हे सखि ! तेरा कल्याण होगा, अपने स्थानमें आकर पहलेके समान विहार कर ॥११६॥ हे सखि ! पुत्रकी पीडाका कोपभी तेरा दूर हुआ; और जो तैंने किया अच्छाही किया है ॥ ११७॥

॥ ६९ ॥

तब चिडिया बोली; हे राजन् ! तेरे पुत्रस्नेहकोभी मैं जानती हूं; इसकारण तेरे पुत्रको अंधा बना तेरे स्थानमें मैं रहनेकी इच्छा नहीं करती॥११८॥ कारण कि, मैंने शुक्राचार्यकी कही गाथा सुनी है, वही गाथा कहती हूं कि; कुमित्र, कुत्सित देश, कुत्सित राजा, कुत्सित प्रीति, कुत्सित पुत्र और कुत्सित भार्याको बुद्धिमान् मनुष्य दूरसे त्यागें ॥११९॥ कुत्सित मित्रमें मित्रता नहीं होती है,कुत्सित भार्यामें रतिका सुख नहीं, कुत्सित राजामें सत्यता नहीं होती है ॥१२०॥ कुत्सित सौहृदमें विश्वास नहीं होता, कुदेशमें जीविका नहीं होती, कुराजमें सदा भय और कुपुत्रमें सब प्रकार

पूजनीयोवाच ॥ आत्मौपम्येन जानामि पुत्रस्नेहं तवाप्यहम् ॥ न चाहं वस्तुमिच्छामि तव पुत्रमचक्षुषम् ॥ कृत्वा वै राजशार्दूल त्वद्गृहे कृतकिल्बिषा ॥ १८ ॥ गाथा श्चाप्युशनोगीता इमाः शृणु मयेरिताः ॥ कुमित्रं च कुदेशं च कुराजानं कुसौहृदम्॥ कुपुत्रं च कुभार्यां च दूरतः परिवर्जयेत् ॥ १९ ॥ कुमित्रे सौहृदं नास्ति कुभार्यायां कुतो रतिः ॥ कुतः पिण्डः कुपुत्रे वै नास्ति सत्यं कुराजनि ॥ १२० ॥ कुसौहृदे क्व विश्वासः कुदेशे न तु जीव्यते ॥ कुराजनि भयं नित्यं कुपुत्रे सर्वतोऽसुखम् ॥ २१ ॥ अपकारिणि विस्रम्भं यः करोति नराधमः ॥ अनाथो दुर्बलो यद्वन्न चिरं स तु जीवति ॥ २२ ॥ न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ॥ विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥ २३ ॥ राजसेविषु विश्वासं गर्भसंकरितेषु च॥यः करोति नरो मूढो न चिरं स तु जीवति ॥ २४ ॥ अप्युन्नतिं प्राप्य नृपात्प्रावारः कीटको यथा ॥ स विनश्यत्यसंदेहमाहैवमुशना नृप ॥ २५ ॥ अपि मार्दवभावेन गात्रं संलीय बुद्धिमान् ॥ अरिं नाशयते नित्यं यथा वह्निर्महाद्रुमम् ॥ २६ ॥

असुख है ॥१२१॥ और जो मनुष्य अपकार करनेवालेमें विश्वास करता है,वह मनुष्योंमें अधम अनाथ दुर्बल है, यह बहुत कालतक नहीं जीता है ॥१२२॥ कारण जो विश्वासके योग्य नहीं हो, उसमें विश्वास और विश्वासके योग्यमें अतिविश्वास मनुष्यको करना उचित नहीं; क्योंकि विश्वाससे उपजा हुआ भय मूलतक नाश कर देता है॥१२३॥और राजसेवीमें और संकीर्णजातके मनुष्यमें जो मूढ पुरुष विश्वास कर लेता है, वह चिरकालतक नहीं जीता॥१२४॥ और राजासे उन्नतिको प्राप्त हो, मुंगला कीडाके समान आपही आप नष्ट हो जाता है; अर्थात् चेंटीके पंख निकलते हैं तो उसकी मृत्यु होती है ॥१२५॥ और कोमल भावसेभी शरीरमें प्राप्त हो मनुष्य वैरीको मार देता है, जैसे अमरबेल बडे वृक्षको नष्ट कर देती है ॥१२६॥

कोमल,स्निग्ध,कृश,शत्रु शरीरमें प्रवेश कर मनुष्य ऐसे मार देता है जैसे दीमक वृक्षके नीचे लगके जडको काट देती है॥१२७॥हे राजन् ! इन्द्रनेभी एक समयमें मुनिजनोंके अगाडी प्रतिज्ञा करके पीछे जलके झागोंमें वज्र लपेट नमुचि दैत्यको मार दिया था ॥१२८॥ इसकारण हे राजन् ! सोते हुए मदयुक्त और अति उन्मादी वैरीकोभी विष, अग्नि और शस्त्र मायासे मनुष्य मार देतेहैं ॥ १२९ ॥ बुद्धिमान् फिर वैरके भयसे शत्रुका शेष नहीं रखते हैं;मूलसहित वैरीका नाश कर देते हैं, यह प्रसिद्ध है कि॥१३०॥शत्रुका ऋण, अग्नि शेष थोडाभी रहे तो फिर वृद्धिको प्राप्त हो जाता है; इसकारण इनका शेष नहीं छोडे ॥१३१॥ और हंसता हुआ, अतिमीठा बोलता, एक पात्रमें भोजनभी करता हो, और एक आसनपै बैठभी जाय; परन्तु तीक्ष्ण

मृदुरार्द्रः कृशो भूत्वा शनैः संलीयते रिपुः ॥ वल्मीक इव वृक्षस्य पश्चान्मूलानि कृन्तति ॥ २७ ॥ अद्रोहसमयं कृत्वा मुनीनामग्रतो हरिः ॥ जघान नमुचिं पश्चादपां फेनेन पार्थिव ॥ २८ ॥ सुप्तं मत्तं प्रमत्तं वा घातयन्ति रिपुं नराः विषेण वह्निना वापि शस्त्रेणाप्यथ मायया ॥ २९ नच शेषं प्रकुर्वन्ति पुनर्वैरभयान्नराः ॥ घातयन्ति समूलं हि श्रुत्वेमामुपमां नृप ॥ १३० ॥ शत्रुशेषमृणाच्छेषं शेषमग्नेश्च भूमिप ॥ पुनर्वर्धेत संभूय तस्माच्छेषं न शेषयेत् ॥ ३१ ॥ हसते जल्पते वैरी एकपात्रे भुनक्ति च॥ एकासनं चारोहति स्मरते तच्च किल्बिषम् ॥३२॥ कृत्वा संबन्धकं चापि विश्वसेच्छत्रुणा नहि ॥ पुलोमानं जघानाजौ जामाता सन् शतक्रतुः ॥ ३३ ॥ निधाय मनसा वैरं प्रियं वक्ताह यो नरः ॥ उपसर्पेन्न तं प्राज्ञः कुरङ्ग इव लुब्धकम् ॥ ३४ ॥ न चासन्ने निवस्तव्यं सवैरे वर्धिते रिपौ ॥ पातयेत्तं समूलं हि नदीरय इव द्रुमम् ॥ ३५ ॥

वैरको मनुष्य नहीं भूलता है ॥ १३२ ॥ इसकारण संबंध करकेभी शत्रुमें विश्वास नहीं करे.क्योंकि देखो-पुलोमा दैत्यका जामाता होकर इन्द्रने पुलोमाहीको मार डाला था॥१३३॥ और जो मनुष्य मनमें वैर रक्खे और ऊपरसे मीठे वचन बोले, ऐसे मनुष्यके सपीपमें बुद्धिमान् पुरुष न रहे. जैसे पारधीके निकट मृग नहीं जाते ॥१३४॥ और बढते हुए वैरीके पासभी रहना योग्य नहीं है, कारण कि वह मूलसहित मनुष्यको गिरा देता है. जैसे नदीका वेग वृक्षको ॥ १३५ ॥

और शत्रु उन्नतिको प्राप्त हो विश्वास नहींकरे. क्योंकि उससे उन्नतिको प्राप्त हो नष्टहींहोगा. जैसे भुंगला कीडा स्वयं समयमें नष्ट हो जाता है ॥१३६॥ यह कथा शुक्राचार्यजीने कही है; हे राजन्! अपनी रक्षा करनेवाले बुद्धिमान् मनुष्यको यह कथा सदा धारण करनी चाहिये ॥१३७॥ औरमैंने तेरा दारुण अपराध किया कि तेरे पुत्रको अंधा बनाया, अब मैं तुझमें विश्वास नहीं कर सकती ॥१३८॥ इसप्रकार कहकर चिडिया आकाशमार्गमें उड गई; हे युधिष्ठिर! ब्रह्मदत्त राजाका चिडियाके संग जो वृत्तान्त मैंने सुना सो तुमसे सुनाया॥ १३९॥ फिर भीष्मजी बोले; हे महात्मा युधिष्ठिर! जो

अमित्रादुन्नतिं प्राप्य नोन्नतोऽस्मीति विश्वसेत् ॥ तस्मात् प्राप्योन्नतिं नश्येत्प्रावार इव कीटकः ॥३६॥ इत्येता ह्युशनोगीता गाथा धार्या विपश्चिता ॥ कुर्वता चात्मरक्षां वै नरेण पृथिवीपते ॥ ३७ ॥ मया सकिल्बिषं तुभ्यं प्रयुक्तमतिदारुणम् ॥ पुत्रमन्धं प्रकुर्वन्त्या तस्मान्नो विश्वसे त्वयि ॥३८॥ एवमुक्त्वा प्रदुद्राव तदाऽकाशे पतङ्गिनी ॥ इत्येतत्ते मयाऽऽख्यातं पुराभूतमिदं नृप ॥ ३९ ॥ ब्रह्मदत्तस्य राजेन्द्र यद्वृत्तं पूजनीयया ॥ श्राद्धं च पृच्छसे यन्मां युधिष्ठिर महामते ॥१४०॥ अतस्ते वर्तयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ॥ गीतं सनत्कुमारेण मार्कण्डेयाय पृच्छते ॥४१॥ श्राद्धस्य फलमुद्दिश्य नियतं सुकृतस्य च ॥ तन्निबोध महाराज सप्तजातिषु भारत ॥ ४२ ॥ सगालवस्य चरितं कण्डरीकस्य चैव हि ॥ ब्रह्मदत्ततृतीयानां योगिनां ब्रह्मचारिणाम् ॥१४३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि चटकाख्यानं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ श्राद्धे प्रतिष्ठितो लोकः श्राद्धे योगः प्रवर्त्तते ॥ हन्त ते वर्तयिष्यामि श्राद्धस्य फलमुत्तमम् ॥ १ ॥

तुमने ब्रह्मदत्त और पूजनीयाका वृत्तान्त श्रद्धासे पूछा था॥१४०॥ जोसनत्कुमारजीने मार्कंडेयजीसे कहा, वहीं पुरातन इतिहास कहता हूं ॥ १४१ ॥ हे महाभाग! श्राद्धके फलका उद्देश कर सात जन्मोंमें सुकृतका फल जो प्राप्त हुआ है, वहभी सुनो ॥१४२॥ तथा ब्रह्मचारी योगी गालव, कंडरीक, ब्रह्मदत्त राजाकाभी वृत्तान्त श्रवण करो॥१४३॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे हरिवंशपर्वभाषाटीकायां चटकाख्यानं नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥ मार्कण्डेयजी बोले; हे भीष्म! श्राद्धसे उत्तम लोक और उत्तम ज्ञान प्राप्त होताहै, सो मैं तुह्मारे प्रति उत्तम श्राद्धका फल कथन करता हूं ॥१॥

हे भारत ! जो सात जन्मोंमें ब्रह्मदत्तने योग और धर्म प्राप्त किया हैं और श्राद्धसे उसके पातक नष्ट हो गये॥२॥हे पापरहित ! तब मैंने उन धर्मनिष्ठ कुरुक्षेत्रमें पितृव्रत करनेमें तत्पर सनत्कुमारके कहे सातों ब्राह्मणोंको दिव्य नेत्रसे देखा ॥३॥और जैसे गायकी हिंसा कर श्राद्ध करनेसे ब्राह्मणोंको फल प्राप्त हुआ है वहभी श्रवण करो॥४॥तिनके वाग्दुष्ट १, क्रोधन २, हिंस्र ३, पिशुन ४,कवि, ५ खसृम ६, पितृवर्ती ७,ये क्रमानुसार नाम थे ॥५॥और ये सब विश्वामित्रके पुत्र हुए; जब विश्वामित्रने शाप दे दिया तब गर्गऋषिके शिष्य होके गुरुके घरमें वास करनेलगे ॥ ६ ॥ फिर

ब्रह्मदत्तेन यत्प्राप्तं सप्तजातिषु भारत ॥ तत एव हि धर्मस्य बुद्धिर्निर्वर्तते शनैः ॥२॥ पीडयाऽप्यथ धर्मस्य कृते श्राद्धे पुराऽनघ ॥ यत्प्राप्तं ब्राह्मणैः पूर्वं तन्निबोध महामते ॥ ३ ॥ ततोऽहं तात धर्मिष्ठान्कुरुक्षेत्रे पितृव्रतान् ॥ सनत्कुमारनिर्दिष्टानपश्यं सप्त वै द्विजान् ॥ ४ ॥ दिव्येन चक्षुषा तेन यानुवाच पुरा विभुः ॥ वाग्दुष्टः क्रोधनो हिंस्रः पिशुनः कविरेव च ॥ खसृमः पितृवर्ती च नामभिः कर्मभिस्तथा ॥ ५ ॥ कौशिकस्य सुतास्तात शिष्या गार्ग्यस्य भारत ॥ पितर्युपरते सर्वे व्रतवन्तस्तदाऽभवन् ॥ ६ ॥ विनियोगाद्गुरोस्तस्य गां दोग्ध्रीं समकालयन् ॥ समानवत्सां कपिलां सर्वे न्यायागतां तदा ॥ ७ ॥ तेषां पथि क्षुधार्तानां बाल्यान्मोहाच्च भारत ॥ क्रूरा बुद्धिः समभवत्तां गां वै हिंसितुं तदा ॥८॥ तान्कविः खसृमश्चैव याचेते नेति वै तदा ॥ न चाशक्यन्त ते ताभ्यां तदा वारयितुं द्विजाः ॥ ९ ॥ पितृवर्ती तु यस्तेषां नित्यं श्राद्धाह्निको द्विजः ॥ स सर्वानब्रवीद्भ्रातॄन्कोपाद्धर्मे समाहितः ॥ १० ॥

गुरुकी आज्ञासे समान वत्सवाली कपिला आई हुई और दूधको देनेवाली गायको वनमें ले जाने लगे ॥७॥हे भीष्म!तब मार्गमें उन भूंखसे व्याकुलोंकी बालकपनेसे या मोहसे गायको मार उसके मांस खानेकी क्रूर बुद्धि उपजी ॥८॥ तिन सातोंमें कवि और खसृम इनदोनोंको उन पांचोंने निषेधभी किया,तथापि वे निवारण करनेको समर्थ न हुए॥९॥ तब पितृवर्ती नाम विश्वामित्रका पुत्र जो नित्यश्राद्ध और अग्निहोत्र करता था, वह धर्ममें सावधानको पकड़ उन सब भाइयोंसे बोला॥१०॥

यदि तुम इस गायको मारतेही हो तौ पितरोंके उद्देशसे मारो ॥ ११ ॥ इससे यह गायभी धर्मको प्राप्त होगी; और पितृकर्ममें इस गायके मांसको वर्तनेमें हमेंभी पाप नहीं लगेगा॥१२॥हे भारत ! तब वे सब अंगीकार कर उस गायको जल आदिसे स्नान करायके पितरोंके अर्थ कल्पना कर उस गायके मांसको भक्षणकर गये ॥१३॥ उसे भक्षण कर वनसे बछडेको ग्रहण कर संध्याको गुरुके समीपमें जाय बोले; हे गुरो! सिंहने गाय तो मार डाली, बछडा बचा है इसको आप ग्रहण कीजिये॥१४॥तब कोमलतासे उस गुरुने उस बछडेको ग्रहण किया, ऐसे वे सातों गुरुको

यद्यवश्यं प्रहन्तव्या पितृनुद्दिश्य साध्विमाम् ॥ प्रकुर्वीमहि गां सम्यक्सर्व एव समाहिताः ॥११॥ एवमेषाऽपि गौर्धर्मं प्राप्स्यते नात्र संशयः ॥ पितॄनभ्यर्च्य धर्मेण नाधर्मोऽस्मान् भविष्यति ॥ १२ ॥ तथेत्युक्त्वा च ते सर्वे प्रोक्षयित्वा च गां ततः ॥ पितृभ्यः कल्पयित्वैनामुपायुञ्जन्त भारत ॥ १३ ॥ उपयुज्य च गां सर्वे गुरोस्तस्य न्यवेदयन् ॥ शार्दूलेन हता धेनुर्वत्सोऽयं गृह्यतामिति ॥१४॥ आर्जवात्स तु तं वत्सं प्रतिजग्राह वै द्विजः ॥ मिथ्योपचर्य ते तं तु गुरुमन्यायतो द्विजाः ॥ कालेन समयुज्यन्त सर्वे एवायुषः क्षये ॥ १५ ॥ ते वै क्रूरतया हिंस्रा अनार्यत्वाद्गुरौ तथा ॥ उग्रा हिंसाविहाराश्च सप्ताजायन्त सोदराः ॥ १६ ॥ लुब्धकस्यात्मजास्तात बलवन्तो मनस्विनः ॥ पितॄनभ्यर्च्य धर्मेण प्रोक्षयित्वा च गां तदा ॥ १७ ॥ स्मृतिः प्रत्यवमशश्च तेषां जात्यन्तरेऽभवत् ॥ जाता व्याधा दशार्णेषु सप्त धर्मविचक्षणाः ॥ १८ ॥ स्वकर्मनिरताः सर्वे लोभानृतविवर्जिताः ॥ तावन्मात्रं प्रकुर्वन्ति यावता प्राणधारणम् ॥ १९ ॥

अन्यायसे ठगके आयुके क्षय होनेपै मृतक हुए ॥१५॥ तौ वे सातों क्रूरतासे और गायके मारनेसे और गुरुकी अगाडी मिथ्या बोलनेसे उग्र और हिंसाविहारी बली व्याधके पुत्र हुए॥१६॥परंतु उन महाबली लुब्धकके पुत्रोंने जो पितरोंका पूजन गायको प्रोक्षण कर किया था॥१७॥इसी कारण पूर्वजन्मकी भी जातिका ज्ञान बना रहा;और सुकृत कर्मानुसंधान भी बना रहा; वे सातों पारधी धर्ममें चतुर दशार्ण देशमें विचरते हुए ॥१८॥अनेक कर्ममें सावधान

लोभ और असत्यसे रहित जितनेमें अपना उदर पूर्ण हो जाय, उतनाही आहार संग्रह करनेवाले ॥ १९ ॥ शेष सब समयमें कर्मका ध्यान करते थे; हे राजन् ! मैं इनके नामभी कहता हूं॥२०॥निर्वैर १, निर्वृति २, शांत ३, निर्मन्यु ४, कृति ५, वैधस ६, मातृवर्ती ७, इसप्रकार सातों व्याधे परम धार्मिक हुए ॥२१॥ और हिंसाधर्मकोभी करते हुए उन्होंने माता और वृद्ध पिताको सत्कारसे अति प्रसन्न किया ॥ २२ ॥ जब दैवयोगसे माता-पिताकी मृत्यु हो गई,तब वे अपने२ धनुषोंको त्याग वनमें जाय अपने प्राणोंको त्यागते हुए॥२३॥इस शुभकर्मकेकरनेसे और पूर्वोक्त कर्मके फलको

शेषं ध्यानपराः कालमनुध्यायन्ति कर्म तत् ॥ नामधेयानि चाप्येषामिमान्यासन्नराधिप ॥ २० ॥ निर्वैरो निर्वृतिः शान्तो निर्मन्युः कृतिरेव च ॥ वैधसो मातृवर्ती च व्याधाः परमधार्मिकाः ॥ २१ ॥ तैरेवमुषितैस्तात हिंसाधर्मरतैः सदा ॥ माता च पूजिता वृद्धा पिता च परितोषितः ॥ २२ ॥ यदा माता पिता चैव संयुक्तौ कालधर्मणा ॥ तदा धनूंषि ते त्यक्त्वा वने प्राणानवासृजन् ॥ २३ ॥ शुभेन कर्मणा तेन जाता जातिस्मरा मृगाः ॥ त्रासानुत्पाद्य संविग्ना रम्ये कालञ्जरे गिरौ ॥ २४ ॥ उन्मुखो नित्यवित्रस्तः स्तब्धकर्णो विलोचनः ॥ पण्डितो घस्मरो नादी नामतस्तेऽभवन्मृगाः ॥ २५ ॥ तमेवार्थमनुध्यान्तो जातिस्मरणसंभवम् ॥ आसन्वनचराः क्षान्ता निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥२६॥ ते सर्वे शुभकर्माणः सधर्माणो वनेचराः ॥ योगधर्ममनुप्राप्ता विहरन्ति स्म तत्र ह ॥ २७ ॥ जहुः प्राणान्मरुं साध्य लब्धाहारास्तपस्विनः ॥ तेषां मरुं साधयतां पदस्थानानि भारत ॥ तथैवाद्यापि दृश्यन्ते गिरौ कालञ्जरे नृप ॥ २८ ॥

भोगनेके निमित्त वे व्याधे सातों मनोहर कालंजर पर्वतमें मृग हुए॥२४॥उन्मुख १,नित्यवित्रस्त २, स्तब्धकर्ण ३, विलोचन ४, पंडित ५, घस्मर ६,नादी,७,नामवाले सात मृग हुए॥२५॥पूर्वजन्मके ज्ञानसे उसी अर्थका ध्यान करते वे वनमें फिरनेवाले,इन्द्रियोंको शांत किया, द्वंद्वसेरहित॥२६॥ और शुभकर्मके कर्ता, हिंसारहित, उत्तम धर्मका अनुष्ठान करनेवाले,योगधर्मको प्राप्त हो इधर उधर विचरने लगे॥२७॥पीछे निर्जल मरुदेशमें हलका भोजन कर तपको धारण कर जलत्याग व्रतसे पर्वतसे गिरकर प्राण त्याग दिये. हे राजन्! तिनके पैरोंके चिन्ह कालंजर पर्वतमें अबतकभी दीखते

॥ ६२ ॥

हैं ॥२८॥ इस शुभकर्मके करनेसे पापरहित उन सातोंने परमोत्तम चक्रवाकोंके शरीरको पाया ॥ २९ ॥ वे नदीके समीप शरद्वीपमें उत्पन्न हुए; परंतु इस शरीरमेंभी मैथुनधर्मको त्याग और मुनिके समान धर्मोंको धारण कर ॥३०॥ निस्पृह १, निर्मम (ममतारहित) २, क्षांत ३, निर्द्वंद्व ४, निष्परिग्रह (स्त्रीत्यागी)५,निर्वृति६,निभृत७,नामोंवाले॥३१॥उन पक्षियोंने पक्षिधर्मके आश्रित हो तप करके निराहार हो नदीके तटपर प्राण त्याग दिये॥३२॥तब वह सातों मानस सरोवरमें सहोदर हंस हुए, परंतु पूर्व जन्मका ज्ञान तहांभी बना रहा, यहांभी ब्रह्मचारी हुए ॥३३॥ ब्राह्मणयोनिमें जो गुरुसे असत्य बोला,

कर्मणा तेन ते तात शुभेनाशुभवर्जिताः ॥ शुभाच्छुभतरां योनिं चक्रवाकत्वमागताः ॥ २९ ॥ शुभे देशे शरद्वीपे सप्तैवासन् जलौकसः ॥ त्यक्त्वा सहचरीधर्मं मुनयो ब्रह्मचारिणः ॥ ३० ॥ निःस्पृहो निर्ममः क्षान्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥ निर्वृतिर्निभृतश्चैव शकुना नामतः स्मृताः ॥ ३१ ॥ते तत्र पक्षिणः सर्वे शकुना धर्मचारिणः ॥ निराहारा जहुः प्राणांस्तपोयुक्ताः सरित्तटे ॥ ३२ ॥ अथ ते सोदरा जाता हंसा मानसचारिणः ॥ जातिस्मराः सुसंयुक्ताः सप्तैव ब्रह्मचारिणः ॥ ३३ ॥ विप्रयोनौ यतो मोहान्मिथ्योपचरितो गुरुः ॥ तिर्यग्योनौ ततो जाताः संसारे परिबभ्रमुः ॥ ३४ ॥ यतश्च पितृवाक्यार्थः कृतः स्वार्थेऽव्यवस्थितैः ॥ ततो ज्ञानं च जातिं च ते हि प्रापुर्गुणोत्तराम् ॥ ३५ ॥ सुमनाः शुचिवाक् शुद्धः पञ्चमश्छिद्रदर्शनः ॥ सुनेत्रश्च स्वतन्त्रश्च शकुना नामतः स्मृताः ॥ ३६ ॥ पञ्चमः पञ्चिकस्तत्र सप्तजातिष्वजायत ॥ षष्ठस्तु कण्डरीकोऽभूद्ब्रह्मदत्तस्तु सप्तमः ॥ ३७ ॥ तेषां तु तपसा तेन सप्तजातिकृतेन वै ॥ योगस्य चापि निर्वृत्त्या प्रतिभानाच्च शोभनात् ॥ ३८ ॥

इसकारण पक्षियोनिमें जन्म लेके संसारमें भ्रमे ॥३४॥ और पितरोंकी पूजाके अर्थ अपने स्वार्थमें तत्पर होकर जो गायको वर्ता इसकारण इन्हें उत्तम जन्म और उत्तम ज्ञान उत्तरोत्तर प्रगट हुआ ॥३५॥ सुमन, शुचिवाक्, शुद्ध, पंचम, छिद्रदर्शन, सुनेत्र, स्वतंत्र यह उनके नाम हुए ॥३६॥ और पांचवां जिसका आदिमें कविनाम था वह सात जातिमें होकर पांचिक राजाका मंत्री हुआ, और तिनमें छटा षष्ठनामवाला कंडरीक नामवाले राजाका मंत्री हुआ॥३७॥तिनमें पितृवर्ती नामसे विख्यात सातवां ब्रह्मदत्त राजा हुआ; इसप्रकार सातों योनिमें तप करनेसे और योगकी प्राप्तिसे उनकी बुद्धि निर्मल

होती गई ॥३८॥ पूर्व जन्ममें गुरुकुलमें प्राप्त हो जो वेद श्रवण किया था उसीके प्रतापसे जन्मजन्ममें बुद्धि संसारसे पृथक् होनेलगी और निर्मल हुई ॥३९॥ वे सातों हंस ब्रह्मचारियोंके समान धर्मको जाननेवाले ब्रह्मज्ञानी योगधर्मको प्राप्त हो जहां तहां विचरने लगे ॥४०॥ उन हंसोंको समुद्रमें विचरते हुए बहुत दिन हो गये; तब एक समयमें नीपोंका ईश्वर पौरवंशमेंउत्पन्न विभ्राज नाम राजा॥४१॥सुन्दर वस्त्र और भूषण आदिसे अपने शरीरको भूषित कर रनवाससहित उस वनमें गया ॥ ४२ ॥ जहां वे हंस रहा करते थे; तब सातवां स्वतंत्र नाम हंस उस राजाको देखकर

पूर्वजातिषु यद्ब्रह्म श्रुतं गुरुकुलेषु वै ॥ तथैवावस्थिता बुद्धिः संसारेष्वपि वर्त्तताम् ॥ ३९ ॥ ते ब्रह्मचारिणः सर्वे विहङ्गाब्रह्मवा-दिनः ॥ योगधर्ममनुध्यान्तो विहरन्ति स्म तत्र ह ॥ ४० ॥ तेषां तत्र विहङ्गानां चरतां सहचारिणाम् ॥ नीपानामीश्वरो राजा विभ्राजः पौरवान्वयः ॥ ४१ ॥ विभ्राजमानो वपुषा प्रभावेन समन्वितः ॥ श्रीमानन्तः पुरवृतो वनं तत्प्रविवेश ह ॥ ४२ ॥ स्वत-न्त्रश्च विहङ्गोऽसौ स्पृहयामास तं नृपम् ॥ दृष्ट्वा यान्तं श्रियोपेतं भवेयमहमीदृशः ॥ ४३ ॥ यद्यस्ति सुकृतं किञ्चित्तपो वा निय-मोऽपि वा ॥ खिन्नोऽस्मि ह्युपवासेन तपसा निष्फलेन च ।४४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि एकविंशो-ऽध्यायः ॥ २१ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्तं चक्रवाकौ द्वावूचतुः सहचारिणौ ॥ आवां ते सचिवौ स्यावस्तव प्रियहितैषिणौ ॥ १ ॥ तथेत्युक्त्वा च तस्यासीत्तदा योगात्मिका मतिः ॥ एवं ते समयं चक्रुः शुचिवाक्तमुवाच ह ॥ २ ॥

यह विचारने लगा कि इसके समान मैं हो जाऊं॥४३॥जो कुछ मैंने सुकृत नियम और तप किया है,उसके प्रतापसे निष्फलरूप तप और व्रतआदिसे मैं दुःखी हो रहा हूं ॥ ४४ ॥ ॥ ६७ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ मार्कंडेयजी बोले; हे भीष्म! जब सातवें हंसने यह मनमें विचारा और निकटवर्त्तियोंको समाचार सुनाया,तब छिद्रदर्शन और सुनेत्र दोनों हंस उससे बोले,कि हम दोनों तुम्हारे प्रियकी इच्छासे तुम्हारे मंत्री होना चाहते हैं॥१॥बहुत अच्छा ऐसा कहनेपर उसकी योगाग्नि कमती हुई और उनने प्रतिज्ञा की; तब शुद्धवाक् नाम दूसरा

हंस कहने लगा ॥ २ ॥ हे स्वतंत्र सातवें हंस ! जो कि तू कामकी वांछा करके योग धर्मको त्याग तुच्छवरकी इच्छा करता है तौ मेरी वाक् सुन ॥ ३ ॥ हे प्रिय ! कांपिल्य नगरमें ब्रह्मदत्त नामसे प्रसिद्ध तू राजा होगा, और ये दोनों हंस तेरे मंत्री होवेंगे ॥ ४॥ इसप्रकार चार हंसोंने उन तीनों हंसोंको शाप देकर बोलनेके अयोग्य किया,वे तीनों हंस उन हंसोंसे कहने लगे ॥५॥ कि हमपर कब कृपा होगी,वे तीनों राज्य इच्छारूपी व्यभिचारसेप्रधर्षित हो योगधर्मसे भ्रष्ट हो गये॥६॥ ऐसे शापित और योगसे भ्रष्टचित्त होनेपर सुमना नाम हंस अपने सहचारी हंसोंकी सम्मतिसे उनपर कृपा करनेको बोला ॥७॥ तुम्हारे शापका अंत होगा इसमें संशय नहीं. अर्थात् इस हंसके शरीरको त्याग मनुष्यके शरीरको प्राप्त होकर पीछे

यस्मात्कामप्रधानस्त्वं योगधर्ममपास्य वै ॥ एवं वरं प्रार्थयसे तस्माद्वाक्यं निबोध मे ॥३॥ राजा त्वं भविता तात काम्पिल्ये नात्र संशयः ॥ भविष्यतः सखायौ च द्वाविमौ सचिवौ तव ॥ ४ ॥ शप्त्वा चाऽनभिभाष्यांस्तांश्चत्वारश्चक्रुरण्डजाः ॥ तांस्त्रीनभीप्सतो राज्यं व्यभिचारप्रधर्षितान् ॥५ ॥ शप्ताः खगास्त्रयस्ते तु योगभ्रष्टा विचेतसः ॥ तानयाचन्त चतुरस्त्रयस्ते सहचारिणः ॥६॥ तेषां प्रसादं ते चक्रुरथैतान्सुमनाऽब्रवीत ॥ सर्वेषामेव वचनात्प्रसादानुगतं वचः ॥ ७ ॥ अन्तवान् भविता शापो युष्माकं नात्र संशयः ॥ इतश्च्युताश्च मानुष्यं प्राप्य योगमवाप्स्यथ ॥८॥ सर्वसत्त्वरुतज्ञश्च स्वतन्त्रोऽयं भविष्यति ॥ पितृप्रसादो ह्यस्माभिरस्य प्राप्तः कृतेन वै ॥९॥ गां प्रोक्षयित्वा धर्मेण पितृभ्य उपकल्प्यताम् ॥ अस्माकं ज्ञानसंयोगः सर्वेषां योगसाधनः ॥१०॥ इमं च वाक्यसंदर्भं श्लोकमेकमुदाहृतम् ॥ पुरुषान्तरितं श्रुत्वा ततो योगमवाप्स्यथ ॥११॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृवाक्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

योगधर्मको प्राप्त हो जाओगे ॥८॥ और सब प्राणियोंकी बोलियोंको जाननेवाला और ब्रह्मदत्त नाम यह स्वतंत्र होगा; इसीके प्रतापसे हमको पितरोंकी प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥९॥ तेरेहीं उपदेशसे गुरुकी गायको पितरोंके अर्थ हमने वर्ता, तुह्मारेही उपदेशसे हम सबको योग साधन प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ हे तीनों हंसो ! जब तुम राजा और राजाके मंत्री होके बहुत भोगोंको भोग चुकोगे, तब एक ब्राह्मणके मुखसे कहे हुए श्लोकको सुनके योगधर्मको प्राप्त होओगे ॥ ११ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां पितृकल्पे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ छ ॥

मार्कंडेयजी बोले कि सातों हंस पवन जलको भक्षण करते योगधर्ममें निरत मानससरोवरमें फिरनेवाले पद्मगर्भ, अरविन्दाक्ष, क्षीरगर्भ, सुलोचन ॥ १ ॥ उरुबिन्दु सुबिन्दु और सातवां हेमगर्भ इन्होंने वायु और जलके निरन्तर आहारसे शरीरको सुखा डाला ॥ ॥२ ॥ और वह विभ्राज नाम राजा उस वनमें अंतःपुरसहित नंदनवनमें इन्द्रके समान विचरता हुआ ॥३॥ फिरते हुए उन योगधर्मवाले हंसोंको देख दयाभावसे उन हंसोंकोही स्मरण करता हुआ कि यह पक्षी होकर योग करते हैं, मैं मनुष्य होकरभी धर्म नहीं करता; यह विचारता हुआ अपने पुरमें आया ॥ ४ ॥ विभ्राजके परम

मार्कण्डेय उवाच ॥ ते योगधर्मनिरताः सप्त मानसचारिणः ॥ पद्मगर्भोऽरविन्दाक्षः क्षीरगर्भः सुलोचनः ॥ १ ॥ उरुबिन्दुः सुबिन्दुश्च हेमगर्भस्तु सप्तमः ॥ वाय्वम्बुभक्षाः सततं शरीराण्युपशोषयन् ॥ २ ॥ राजा विभ्राजमानस्तु वपुषा तद्वनं तदा ॥ चचारान्तः पुरवृतो नन्दनं मघवानिव ॥ ३ ॥ स तानपश्यत्खचरान् योगधर्मात्मकान्नृप ॥ निर्वेदाच्च तमेवार्थमनुध्यायन् पुरं ययौ ॥ ४ ॥ अणुहो नाम तस्याऽसीत्पुत्रः परमधार्मिकः ॥ अणुधर्मरतिर्नित्यमणुं सोऽध्यगमत्पदम् ॥ ५ ॥ प्रादात्कन्यां शुकस्तस्मै कृत्वीं पूजितलक्षणाम् ॥ सत्यशीलगुणोपेतां योगधर्मरतां सदा ॥६॥ सा ह्युद्दिष्टा पुरा भीष्म पितृकन्या मनीषिणी ॥ सनत्कुमारेण तदा सन्निधौ मम शोभना ॥७॥ सत्यधर्मभृतां श्रेष्ठा दुर्विज्ञेया कृतात्मभिः ॥ योगा च योगपत्नी च योगमाता तथैव च ॥ ८ ॥ तथा ते कथितं पूर्वं पितृकल्पेषु वै मया ॥ विभ्राजस्त्वणुहं राज्ये स्थापयित्वा नरेश्वरः ॥ ९ ॥ आमन्त्र्य पौरान् प्रीताऽऽत्मा ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य च ॥ प्रायात्सरस्तपश्चर्तुं यत्र ते सहचारिणः ॥ १० ॥

धार्मिक अणुह नाम पुत्र था. यह सदा धर्ममें प्रीति करनेवाला सूक्ष्म अर्थोंको प्राप्त होकर यथार्थ नाम हुआ ॥ ५ ॥ इस अणुहके अर्थ शुकदेव स्वामीने अच्छे लक्षणसे युक्त सत्वशील गुणोंसे संयुक्त योग धर्ममें रत कृत्वी नामसे प्रसिद्ध ऐसी कन्या दे दी॥६॥हे भीष्म! सनत्कुमारजीने यह बुद्धिमती पितरोंकी कन्या मेरे निकट प्रकाशितकी है॥७॥यह सत्यधर्मोंमें श्रेष्ठ, अजितेन्द्रियोंके दर्शनमें न आनेवाली योगरूप, योगीकी पत्नी और योगीकी माता है ॥ ८ ॥ सो मैं पितृसर्गमें तुमसे कह चुका हूं, पीछे विभ्राज राजा अणुह पुत्रको राज्यपै स्थापन कर ॥९॥पुरके जनोंसे सम्मति ले और ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन

कराय तप करनेके निमित्त जिस मानससरोवरमें वे हंस वास करते थे, उस स्थानमेंगया ॥१०॥ तहां जाकर भोजनको त्याग पवनको भक्षण कर, सब कामना त्याग तपको धारण कर सरोवरके तटपर उग्र तप करने लगा ॥११॥ तब उस राजाकी यहइच्छा हुई कि इन हंसोंमेंसे एक किसीका पुत्र होकर मैं रमण करूं ॥१२॥ ऐसा विचार कर महातप करने लगा जिससे यह विभ्राज राजा सूर्यके समान प्रकाशित हुआ ॥१३॥ हे राजन् ! जिसके प्रतापसे विभ्राजित नाम वन और वैभ्राज नाम सरोवर विख्यात है ॥ १४ ॥ पश्चात् उन सात हंसोंमेंसे चार योगधर्मी रहे; और तीन योगसे भ्रष्ट हुए पश्चात् ये

स वै तत्र निराहारो वायुभक्षो महातपाः ॥ त्यक्त्वा कामांस्तपस्तेपे सरसस्तस्य पार्श्वतः ॥ ११ ॥ तस्य संकल्प आसीच्च तेषामेक तरस्य वै ॥ पुत्रत्वं प्राप्य योगेन युज्येयमिति भारत ॥ १२ ॥ कृत्वाऽभिसन्धिं तपसा महता स समन्वितः ॥ महा तपाः स विभ्राजो विरराजांशुमानिव ॥ १३ ॥ ततो विभ्राजितं तेन वैभ्राजं नाम तद्वनम् ॥ सरस्तच्च कुरुश्रेष्ठ वैभ्राजमिति संज्ञि तम् ॥ १४ ॥ यत्र ते शकुना राजन् चत्वारो योगधर्मिणः ॥ योगभ्रष्टास्त्रयश्चैव देहन्यासकृतोऽभवन् ॥१५॥ काम्पिल्ये नगरे ते तु ब्रह्मदत्तपुरोगमाः ॥ जाताः सप्त महात्मानः सर्वे विगतकल्मषाः ॥ १६ ॥ ज्ञानध्यानतपः पूजावेदवेदाङ्गपारगाः ॥ स्मृति मन्तोऽत्र चत्वारस्त्रयस्तु परिमोहिताः ॥१७॥ स्वतन्त्रस्त्वणुहाज्जज्ञे ब्रह्मदत्तो महायशाः॥यथा ह्यासीत्पक्षिभावे सङ्कल्प पूर्वचिन्तितः ॥ ज्ञानध्यानतपःपूतो वेदवेदाङ्गपारगः ॥१८॥ छिद्रदर्शी सुनेत्रश्च तथा बाभ्रव्यवत्सयोः॥ जातो श्रोत्रियदायादौ वेदवेदाङ्गपारगौ॥१९॥

सातों हंसके देहको त्याग ॥ १५ ॥ कांपिल्यनगरमें ब्रह्मदत्त आदि नामोंसे विख्यात और पापोंसे विहीन हो सातों महात्मा जन्मे ॥१६॥ इनमें चार तौ ज्ञान, ध्यान, तप, पूजा करते वेदवेदांगके ज्ञाता हुए, और योगके कारण पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा और तीन मोहित होकर पूर्वजन्मको नहीं जान सके ॥१७॥ वह सातवां स्वतंत्र हंस अणुह राजाके ब्रह्मदत्त नामसे पुत्र उपजा और इसका पूर्वचिंतित योनिमें जो संकल्प रहा वही हुआ. यह ब्रह्मदत्त राजा ज्ञान ध्यान तपसे पवित्र वेद और वेदांगोंका पारगामी हुआ ॥१८॥ और छिद्रदर्शी पांचवां हंस और सुनेत्र छटा हंस ये दोनों बाभ्रव्य और वत्स इन राज-

मंत्रियोंके कुलमें उपजे, और वेदवेदांगोंके जाननेवाले हुए ॥१९॥ यही पूर्वजन्मके प्रभावसे ब्रह्मदत्त राजाके सहायक और पांचाल कंडरीक नामसे प्रसिद्ध हुए॥२०॥तिन्होंमें पांचाल नामवाला ऋग्वेदको पढके ब्रह्मदत्त राजाका आचार्य्य हुआ, और कंडरीक सामवेद और यजुर्वेदको पढके अध्वर्यु हुआ॥२१॥ अणुहके पुत्र सब प्राणियोंकी भाषा जाननेवाले ब्रह्मदत्त राजाके यह दोनों पांचाल और कंडरीक मित्र हुए॥२२॥यहतीनों ग्राम्यधर्ममें निरत और कामदेवके वशमें वर्तनेवाले धर्म काम अर्थको जाननेवाले हुए ॥२३॥ अणुह राजा ब्रह्मदत्तको राज्यपर स्थितकर योगधर्मके प्रतापसे परम गतिको प्राप्त हुआ

सहायौ ब्रह्मदत्तस्य पूर्वजातिः सहोषितौ ॥ पाञ्चालः पाञ्चिकश्चैव कण्डरीकस्तथापरः ॥ २० ॥ पाञ्चालो बह्वृचस्त्वासीदाचार्यत्वं चकार ह ॥ द्विवेदः कण्डरीकस्तु छन्दोगोऽध्वर्युरेव च ॥ २१ ॥ सर्वसत्त्वरुतज्ञस्तु राजाऽऽसीदणुहात्मजः ॥ पाञ्चालकण्डरीकाभ्यां तस्य सख्यमभूत्तदा ॥ २२ ॥ ते ग्राम्यधर्माभिरताः कामस्य वशवर्तिनः ॥ पूर्वजातिकृतेनासन् धर्मकामार्थकोविदाः ॥ २३ ॥ अणुहस्तु नृपश्रेष्ठो ब्रह्मदत्तमकल्मषम् ॥ राज्येऽभिषिच्य योगात्मा परां गतिमवाप्तवान् ॥ २४ ॥ ब्रह्मदत्तस्य भार्या तु देवलस्यात्मजाऽभवत् ॥ असितस्य हि दुर्धर्षा सन्नतिर्नाम नामतः ॥ २५ ॥ तामेकभावसंपन्नां लेभे कन्यामनुत्तमाम् ॥ सन्नतिं सन्नतिमतीं देवलाद्योगधर्मिणीम् ॥ २६ ॥ पञ्चमः पाञ्चिकस्तत्र सप्तजातिषु भारत ॥ षष्ठस्तु कण्डरीकोऽभूद्ब्रह्मदत्तस्तु सप्तमः ॥ २७ ॥ शेषा विहङ्गमा ये वै काम्पिल्ये सहचारिणः ॥ ते जाताः श्रोत्रियकुले सुदरिद्रे सहोदराः ॥२८॥ धृतिमान्सुमना विद्वान् तत्त्वदर्शी च नामतः ॥ वेदाध्ययनसंपन्नाश्चत्वारश्छिद्रदर्शिनः ॥ २९ ॥

॥ २४ ॥ ब्रह्मदत्त राजाने योगवेत्ता दुर्धर्ष सन्नति नामसे देवलकी पुत्रीसे विवाह किया ॥२५॥ देवल ऋषिसे ब्रह्मदत्तने उस एकभावमें प्राप्त हुई बुद्धिमती योगधर्मिणी उत्तम कन्याको प्राप्त किया॥२६॥ऐसे पांचवां हंस पांचाल नामसे विख्यात और छटा हंस कंडरीक नामसे विख्यात औरसातवां हंस ब्रह्मदत्त नामसे विख्यात हो जन्मा॥२७॥शेष सहचारी चार हंस दरिद्रसे युक्त श्रोत्रिय कुलमें चार भ्राता उत्पन्न हुए॥२८॥धृतिमान १ सुमना २ विद्वान ३ तत्वदर्शी ४ नामवाले वेदके अध्ययनमें कुशल, और अपने सहचारियोंके छिद्रको देखनेवाले हुए, अथवा मोक्षमार्गका अवकाश देखने लगे ॥२९॥

पूर्वजन्मके प्रभावसे चारोंकी एक मति उपजी तब वे चारों मातापितासे आज्ञा लेकर योगधर्मके निमित्त गमन करने लगे॥३०॥तब तिनके पिता कहने लगे,हे पुत्रो ! हमको त्यागके जो तुम जाते हो यह अधर्म है॥३१॥क्योंकि हमारी दारिद्रताको दूर करे विना और पुत्रभावके उत्तम सुखोंको हमारे निमित्त दिये विना और हमारी सेवा करे विना तुम कैसे जाते हो॥३२॥तब वे चारों पितासे बोले कि हम तुह्मारी आजीविकाके निमित्त उपाय कहते हैं, तुम सुनो ॥३३॥ जो हमतुमसे कहते हैं, तुम इन दो श्लोकोंको मंत्रियोंसहित पापरहित ब्रह्मदत्त राजाको सुनाओ ॥३४॥ वह राजा महाप्रसन्न हो

तेषां संवित्तथोत्पन्ना पूर्वजातिकृता तदा ॥ ते योगनिरताः सिद्धाः प्रस्थिताः सर्व एव हि ॥ ३० ॥ आमन्त्र्य पितरं तात पिता तानब्रवीत्तदा ॥ अधर्म एष युष्माकं यन्मां त्यक्त्वा गमिष्यथ ॥ ३१ ॥ दारिद्र्यमनपाकृत्य पुत्रार्थांश्चैव पुष्कलान् ॥ शुश्रूषामप्रयुज्यैव कथं वै गन्तुमर्हथ ॥ ३२ ॥ ते समूचुर्द्विजाः सर्वे पितरं पुनरेव च ॥ करिष्यामो विधानं ते येन त्वं वर्तयिष्यसि ॥ ३३ ॥ इमं श्लोकं महार्थं त्वं राजानं सहमन्त्रिणम् ॥ श्रावयेथाः समागम्य ब्रह्मदत्तमकल्मषम् ॥ ३४ ॥ प्रीताऽऽत्मा दास्यति स ते ग्रामान् भोगांश्च पुष्कलान् ॥ यथेप्सितांश्च सर्वार्थान् गच्छ तात यथेप्सितम् ॥ ३५ ॥ एतावदुक्त्वा ते सर्वे पूजयित्वा च तं गुरुम् ॥ योगधर्ममनुप्राप्य परां निर्वृतिमाययुः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ब्रह्मदत्तस्य तनयः स वैभ्राजस्त्वजायत॥ योगाऽऽत्मा तपसा युक्तो विश्वक्सेन इति श्रुतः ॥ १ ॥ कदाचिद्ब्रह्मदत्तस्तु भार्यया सहितो वने ॥ विजहार प्रहृष्टाऽऽत्मा यथा शच्या शचीपतिः ॥ २ ॥

तुमको ग्राम, अतिभोग और सब मनोवांछित पदार्थ देगा ॥३५॥ इसकारण हे तात ! तुम राजाके पास जाओ. इस प्रकार चारों विप्रकहकर और पिताका पूजन कर योगधर्मको प्राप्त हो, मुक्त हो गये ॥ ३६ ॥ इति श्रीम०हरिवंशपर्वभाषायां पितृकल्पे त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥मार्कंडेयजी बोले, हे भीष्म ! जो प्रथम ब्रह्मदत्तके पितामह विभ्राज राजाने उन हंसोंका पुत्र होना चाहा था, इसकारण वह विभ्राज विष्वक्सेन नाम पुत्र ब्रह्मदत्त राजाके उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ एक समय अपनी भार्याके संग ब्रह्मदत्त राजा वनमें विचरता,इन्द्राणीके संग इन्द्रके समान विहार करता विचरता था ॥ २ ॥

वहां राजाने वनमें कामसे पीडित पिपीलिकाको कामसे पीडित पिपीलिक चेंटीके पतिको भोगके निमित्त याचना करने सुना ॥ ३ ॥
उस याचनायुक्त क्रोध करनेवाली चेंटीके वचनको सुन ब्रह्मदत्त राजा आपही आप अत्यन्त हास्य करने लगा ॥ ४ ॥ तब सन्नति नाम
राजाकी भार्या महा लज्जित हुई, और उदासीन हो भोजन करना त्याग दिया. इसप्रकार बहुत दिन हो गये ॥ ५ ॥ तब राजाने
बहुत प्रकार प्रसन्नकर उदासीका कारण पूछा, तब वह कहने लगी, हे राजन्!तुमने मेरा मार्गमें ऐसा उपहास किया है कि मैं जीनेकी इच्छा

ततः पिपीलिकरुतं स शुश्राव नराधिपः ॥ कामिनीं कामिनस्तस्य याचतः क्रोशतो भृशम् ॥ ३ ॥ श्रुत्वा तु याच्यमानां तां क्रुद्धां सूक्ष्मां पिपीलिकाम् ॥ ब्रह्मदत्तो महाहासमकस्मादेव चाहसत् ॥ ४ ॥ ततः सा संनतिर्दीना व्रीडितेवाभवत्तदा ॥ निराहारा बहुतिथं बभूव वरवर्णिनी ॥५॥ प्रसाद्यमाना भर्त्रा सा तमुवाच शुचिस्मिता ॥ त्वया च हसिता राजन्नाहं जीवितुमुत्सहे ॥६॥ स तत्कारणमाचख्यौ न च सा श्रद्दधाति तत् ॥ उवाच चैनंकुपिता नैष भावोऽस्ति मानुषे ॥ ७ ॥ को वै पिपीलिकरुतं मानुषो वेत्तुमर्हति ॥ ऋते देवप्रसादाद्वा पूर्वजातिकृतेन वा ॥ ८ ॥ तपोबलेन वा राजन्विद्यया वा नराधिप ॥ यद्येष वै प्रभावस्ते सर्वसत्त्वरुतज्ञता ॥ ९ ॥ यथाऽहमेतज्जानीयां तथा प्रत्याययस्व माम् ॥ प्राणान्वापि परित्यक्ष्ये राजन्सत्येन ते शपे ॥ १० ॥ तत्तस्या वचनं श्रुत्वा महिष्याः परुषाक्षरम् ॥ स राजा परमापन्नो देवश्रेष्ठमगात्ततः ॥ ११ ॥

नहीं करती॥६॥तब राजाने सब वृत्तान्त चेंटी और चेंटीके पतिका वर्णन किया.उसने इसे सत्य न माना और कहने लगी कि ऐसा मनुष्यके शरीरमें
प्रभाव नहीं होता ॥७॥ देवताके प्रसाद और पूर्वजन्मके स्मरण विना चेंटीके शब्दको कौन मनुष्य जान सकता है ॥८॥ हे राजन् ! यदि तपके बलसे
अथवा विद्यासे सब प्राणियोंके शब्दके जाननेकी तुझें सामर्थ्य है॥९॥तौ मुझेभी यथार्थ कर ऐसा उपदेश करो कि मै भी जान जाऊं नहीं तौ मैं अपने
प्राणोंको त्याग दूंगी,वह मेरी सत्यप्रतिज्ञा है ॥१०॥तब उस रानीके कठोर वचन सुन परम आपतसे त्रस्त होकर वह राजा देवताओंमेंश्रेष्ठ॥११॥

सब भूतोंके ईश और शरणागतके दुःखको मेटनेवाले नारायण हरि परमेश्वरका सावधान होकर भोजनको त्याग छःरात्रितक ध्यान करता रहा॥१२॥ तब छटी रात्रिमें साक्षात् नारायणका दर्शन हुआ, और सब प्राणियोंपै दया करनेवाले नारायणने राजासे यह वचन कहा॥१३॥ हे ब्रह्मदत्त! कल प्रातःकाल तू कल्याणको प्राप्त होगा, ऐसे कहकर नारायण वहांही अंतर्हित होगये॥१४॥ इधर उन चार ब्राह्मणोंका पिता पुत्रोंसे पूर्वोक्त श्लोकोंको याद कारि कृतकृत्यके समान हुआ॥१५॥ मंत्रियोंसहित ब्रह्मदत्त राजाके अर्थ उन श्लोकोंको सुनानेके निमित्त उपाय करने लगा, परन्तु समय नहीं मिलता

शरण्यं सर्वभूतेशं भक्त्या नारायणं हरिम्। समाहितो निराहारः षड्रात्रेण महायशाः॥१२॥ ददर्श दर्शने राजा देव नारायणं प्रभुम्॥ उवाच चैनं भगवन् सर्वभूतानुकम्पकः॥१३॥ ब्रह्मदत्त प्रभाते त्वं कल्याणं समवाप्स्यसि॥ इत्युक्त्वा भगवान्देवस्तत्र-वान्तरधीयत॥१४॥ चतुर्णां तु पिता योऽसौ ब्राह्मणानां महात्मनाम्॥ श्लोकं सोऽधीत्य पुत्रेभ्यः कृतकृत्य इवाभवत्॥१५॥ स राजानमथान्विच्छन्सहमन्त्रिणमच्युतम्॥ न ददर्शान्तरं किञ्चित् श्लोकं श्रावयितु तदा॥१६॥ अथ राजा सरःस्नातो लब्ध्वा नारायणाद्वरम्॥ प्रविवेश पुरीं प्रीतो रथमारुह्य काञ्चनम्॥१७॥ तस्य रश्मीन्प्रत्यगृह्णात्कण्डरीको द्विजर्षभः॥ चामरं व्यजनं चापि बाभ्रव्यः समवाक्षिपत्॥१८॥ इदमन्तरमित्येव ततः स ब्राह्मणस्तदा॥ श्रावयामास राजानं श्लोकं तं सचिवौ च तौ॥१९॥ सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ॥ चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥२०॥

था॥१६॥ पश्चात् जब राजा नारायणसे वरको प्राप्त हो सुन्दर सरोवरमें स्नान कर सुवर्णके रथमें बैठ प्रसन्न हुआ, अपनी पुरीमें प्रवेश करनेलगा॥१७॥ और कंडरीकमंत्री घोडोंकी रस्सीको पकड रथमें बैठा और पांचाल मंत्री बाभ्रव्य चमर और व्यजनको धारण किये रथमें बैठा॥१८॥ तब इसप्रकार उन्हे देख यही कहनेका अवसर है, ऐसा विचार कर वह ब्राह्मण वक्ष्यमाण श्लोकको मंत्रियोंसहित राजाको सुनाने लगा॥१९॥ दशार्णदेशमें सात पारधि जन्मे, फिरपीछे कालंजर पर्वतमें वेही सात मृग उत्पन्न हुए, पीछे शरद्वीपमें वेही सात चकवे हुए, पीछे वेही मानस सरोवरमें सात हंस जन्मे॥२०॥

फिर तिन्होंमेंसे चार कुरुक्षेत्रमें वेदको जाननेवाले विप्र जन्मे,सो वे चारों उत्तम मार्ग मुक्तिको प्राप्त हुए,फिर तुम तीनोंक्यों योगसे भ्रष्टहुए शिथिलरूप वास
करते हो॥ २१ ॥ हे राजन् इस वचनको सुनकर ब्रह्मदत्त राजा मोहको प्राप्त हुआ,और पांचाल और कंडरीक मंत्रीभी मोहको प्राप्त हुए ॥ २२॥
और कंडरीक मत्रीके हाथसे घोडोंकी रस्सी और चाबुक छुट गया; पांचालमंत्रीके हाथसे चँवर और व्यजन छुट गया; इसप्रकार इनको पुरवासी
और राजमंत्री तथा सुहृद देखके आश्चय करने लगे ॥२३॥ हे शत्रुदमन ! दो घडीमें संज्ञाको प्राप्त हो राजा रथमें बैठा और उन मंत्रियोंके सहित

तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्र ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ ॥२१॥ तच्छ्रुत्वा मोहमगमद्ब्रह्मदत्तो नरा-
धिपः ॥ सचिवश्चास्य पाञ्चाल्यः कण्डरीकश्च भारत ॥ २२ ॥ स्रस्तरश्मिप्रतोदौ तौ पतितव्यजनावुभौ ॥ दृष्ट्वा बभूवुरस्वस्थाः
पौराश्च सुहृदस्तथा ॥२३॥ मुहूर्तमेव राजा स सह ताभ्यां रथे स्थितः ॥ प्रतिलभ्य ततः संज्ञां प्रत्यागच्छदरिन्दमः ॥ २४ ॥
ततस्ते तत्सरः स्मृत्वा योगं तमुपलभ्य च ॥ ब्राह्मणं विपुलैरर्थैर्भोगैश्च समयोजयन् ॥ २५ ॥ अभिषिच्य स्वराजे तु विष्वक्से-
नमरिन्दमम्॥जगाम ब्रह्मदत्तोऽथ सदारो वनमेव ह॥२६॥अथैनं सन्नतिर्धीरा देवलस्य सुता तदा॥ उवाच परमप्रीता योगाद्वनगतं
नृपम् ॥ २७ ॥ जानन्त्या ते महाराज पिपीलिकरुतज्ञताम् ॥ चोदितः क्रोधमुद्दिश्य सक्तः कामेषु वै मया ॥२८॥ इतो वयं
गमिष्यामो गतिमिष्टामनुत्तमाम् ॥ तव चान्तर्हितो योगस्ततः संस्मारितो मया ॥ २९ ॥

पुरीमें आया ॥ २४ ॥ तब उस सरोवरको और पूर्वजन्मके योगधर्मको स्मरण कर उस ब्राह्मणको विपुल भोगोंसे और द्रव्योंसे प्रसन्न कर ॥ २५ ॥
अपने विष्वक्सेन पुत्रको राज्यपर स्थापित कर, रानीसहित ब्रह्मदत्त राजा वनको चला गया॥२६॥तब देवलकी पुत्री सन्नति नामवाली रानी परम
प्रसन्न होके वनको गमन करनेवाले राजासे कहने लगी॥२७॥हे महाराज ! उस पिपीलिकाके शब्दको जाननेवाली मैंने क्रोधका उद्देश कर कामोंमें आसक्त
हुए आपको प्रेरणा की थी॥२८॥अब हम उत्तम और वांछित गतिको प्राप्त होवेंगे; आप पूर्वजन्मके योगधर्मको भूल गये थे; इसकारण मैंने फिर

स्मरण कराया था॥२९॥राजा रानीके वचनको सुन प्रसन्न हो योगधर्मको प्राप्त हो उत्तम गतिको प्राप्त हुआ;जो महादुर्लभ है ॥ ३० ॥ धर्मात्मा कंडरीक मंत्रीभी उत्तम सांख्ययोगधर्मको प्राप्त हो अपने श्रेष्ठ कर्मोंसे उत्तम गतिको प्राप्त हुआ॥३१॥और पांचाल मंत्रीभी उत्तम शिक्षाको प्राप्त हो योगाचायकी गतिको प्राप्त हो,उत्तम गतिको प्राप्त हुआ;इस महातपस्वींका यश बडा है॥३२॥हे भीष्म ! यह पुरातन वृत्तान्त तेरे सामनेका है,इसको तू धारण कर तौ कल्याणसे युक्त होगा॥३३॥और इस ब्रह्मदत्त आदि आख्यानको जो धारण करेंगे वे मनुष्य मरके तिरछी योनिवाले पक्षियोंके

स राजा परमप्रीतः पत्न्याः श्रुत्वा वचस्तदा ॥ प्राप्य योगं बलादेव गतिं प्राप्य सुदुर्लभाम् ॥ ३० ॥ कण्डरीकोऽपि धर्मात्मा साङ्ख्ययोगमनुत्तमम् ॥ प्राप्य योगगतिः सिद्धो विशुद्धस्तेन कर्मणा ॥ ३१ ॥ क्रम प्रणीय पाञ्चाल्यः शिक्षां चोत्पाद्य केवलाम् ॥ योगाचार्यगतिं प्राप यशश्चाग्र्यं महातपाः ॥३२॥ एवमेतत्पुरावृत्तं मम प्रत्यक्षमच्युत ॥ तद्धारयस्व गाङ्गेय श्रेयसा योक्ष्यसे ततः ॥३३॥ ये चान्ये धारयिष्यन्ति तेषां चरितमुत्तमम् ॥ तिर्यग्योनिषु ते जातु न गमिष्यन्ति कर्हिचित् ॥ ३४ ॥ श्रुत्वा चेदमुपाख्यानं महार्थं महतां गतिम् ॥ योगधर्मो हृदि सदा परिवर्त्तति भारत ॥ ३५ ॥ स तेनैवानुबन्धेन कदाचिल्लभते शमम् ॥ ततो योगगतिं याति शुद्धां तां भुवि दुर्लभाम् ॥३६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमेतत्पुरा गीतं मार्कण्डेन धीमता ॥ श्राद्धस्य फलमुद्दिश्य सोमस्याप्यायनाय वै ॥३७॥ सोमो हि भगवान् देवो लोकस्याप्यायनं परम् ॥ वृष्णिवंशप्रसङ्गेन तस्य वंशं निबोध मे ॥३८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पसमाप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

शरीरको नहीं प्राप्त होंगे॥३४॥इस आख्यानके श्रवण करनेसे उत्तमगतिकी प्राप्ति होती है;जो अपने हृदयमें इसको धारण करता है वह॥३५॥इसको विशेषकर श्रवण करनेसे शांतिको प्राप्त होता है;योगगतिको प्राप्त हो मुक्त हो जाता है॥३६॥वैशंपायनजीबोले;हे जनमेजय ! इसप्रकार श्राद्धके फलका उद्देश कर चंद्रमाकी तृप्तिके निमित्त मार्कण्डेयजीने भीष्मजीसे यह वर्णन किया है॥३७॥सम्पूर्ण लोक चंद्रमाके द्वाराही तृप्त होताहै;इसकारण क्षत्री वंशके प्रसंगसे चंद्रवंशका वर्णन करता हूं; आप श्रवण कीजिये॥३८॥इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषाटीकायां पितृकल्पे चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

वैशंपायनजी बोले; हे राजन् ! प्रजाको रचनेकी इच्छा करनेवाले ब्रह्माके मनसे चंद्रमाके पिता अत्रि ऋषि उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ ये अत्रीजी कर्म मन वाणीसे सब मनुष्योंके कल्याणके निमित्त पुत्रोंसहित शुभकर्मोंके आचरण करने लगे ॥२॥ तब सब प्राणियोंमें दयावान् धर्मात्मा उग्र व्रतधारी काष्ठ पीत पत्थरके समान शरीरको धारण किये,आकाशके सन्मुख दोनों भुजाओंको उठाये॥३॥ महातेजस्वी अत्रि ऋषि सब इन्द्रियोंका निग्रह कर मौनको प्राप्त हो तीन सहस्र दिव्य वर्षोंतक उग्र तप करते रहे हमने सुना है॥४॥ हे भारत ! तब महापराक्रमी और ऊर्ध्वगत वीर्यको धारण करनेवाले अत्रि

वैशम्पायन उवाच पिता सोमस्य वै राजन् जज्ञेऽत्रिर्भगवान् ऋषिः ॥ ब्रह्मणा मानसात्पूर्वं प्रजासर्गं विधित्सतः ॥ १ ॥ तत्रात्रिः सर्वभूतानां तस्थौ स्वतनयैर्युतः कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येव चचार सः ॥ २ ॥ अहिंस्रः सर्वभूतेषु धर्मात्मा संशितव्रतः ॥ काष्ठकुडचशिलाभूत ऊर्ध्वबाहुर्महाद्युतिः ॥ ३ ॥ अनुत्तरं नाम तपो येन तप्तं महत्पुरा ॥ त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम् ॥ ४ ॥ तत्रोर्ध्वरेतसस्तस्य स्थितस्यानिमिषस्य ह ॥ सोमत्वं तनुरापेदे महासत्त्वस्य भारत ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य सोमत्वं भावितात्मनः ॥ नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयद्दिशः ॥६॥ तं गर्भं विधिना हृष्टा दश देव्यो दधुस्तदा ॥ समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन् ॥ ७ ॥ स ताभ्यः सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भः प्रभान्वितः ॥ पपात भासयँल्लोकान् शीतांशुः सर्वभावनः ॥ ८ ॥ यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिशः ॥ ततस्ताभिः सहैवाशु निपपात वसुंधराम् ॥ ९ ॥ पतितं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया ॥ १० ॥

ऋषिके शरीरके ऊर्ध्वभागसे अमृत उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ तब नेत्रोंके द्वारा दशों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ जल गिरने लगा ॥६॥ तिस तेजसंयुक्त रूप गर्भको प्रफुल्लित हुई दशों दिशा मिलके धारण करने लगीं;परन्तु धारण करनेमें समर्थ न हुईं॥७॥ तब वह प्रभायुक्त गर्भ उन दिशाओंसे धारण नहीं किया गया;तब वह तेजरूप गर्भ लोकको शीत किरणोंसे प्रकाशित करता हुआ गिरने लगा ॥ ८ ॥ तब लोकपितामह ब्रह्माजीने उस अमृतरूप गर्भको गिरता देखके लोकोंके कल्याणके अर्थ रथमें स्थापित कर लिया ॥ ९ ॥ १० ॥

हे जन्मेजय ! काष्ठके समान वेदोंसे निर्मित धर्म और सत्यरूप ब्रह्मका संग्रह श्वेतरंगवाले सहस्रों वेदके मंत्ररूप घोडोंसे संयुक्त रथका स्वरूप हमने सुना है॥११॥और जब चंद्रमारूप तेज पृथ्वीमें पडने लगा; तब ब्रह्माके मनसे उपजे सात पुत्र उसकी प्रार्थना करने लगे ॥ १२ ॥ इसीप्रकार अंगिरा और अंगिराके भृगु पुत्र और भृगुके पुत्र ऋग्वेद और यजुर्वेदके द्वारा चंद्रमाकी स्तुति करने लगे॥१३॥उनसे स्तुतिको प्राप्त हो चंद्रमाका तेज बढके सब लोकोंको पुष्ट करता हुआ त्रिलोकी को प्रकाशित करने लगा ॥१४॥ और उस श्रेष्ठ रथमें बैठके सागर पर्यंत सम्पूर्ण पृथ्वीकी इक्कीस परिक्रमा

स हि वेदमयस्तात धर्मात्मा सत्यसंग्रहः ॥ युक्तो वाजिसहस्रेण सितेनेति हि नः श्रुतम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि ॥ तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सप्त ये श्रुताः ॥ १२ ॥ तथैवाङ्गिरसस्तत्र भृगुरेवात्मजैः सह ॥ ऋग्भिर्यजुर्भिर्बहुलै-रथर्वाङ्गिरसैरपि ॥ १३ ॥ तस्य संस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः ॥ आप्यायमानं लोकांस्त्रीन् भासयामास सर्वशः ॥१४॥ स तेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुंधराम् ॥ त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥ १५ ॥ तस्य यत् च्यावितं तेजः पृथिवीमन्वपद्यत ॥ औषध्यस्ताः समुद्भूतास्तेजसा प्रज्वलन्त्युत ॥ १६ ॥ ताभिर्धार्यास्त्रयो लोकाः प्रजाश्चैव चतुर्विधाः ॥ पोष्टा हि भगवान् सोमो जगतो जगतीपते ॥ १७ ॥ स लब्धतेजा भगवान्संस्तवैस्तैश्च कर्मभिः ॥ तपस्तेपे महाभाग पद्मानां दशतीर्दश ॥ १८ ॥ हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत् ॥ निधिस्तासामभूद्देवः प्रख्यातः स्वेन कर्मणा ॥ १९ ॥

चंद्रमाने करी ॥१५॥ जो रथके वेगसे चंद्रमाका तेज पृथ्वीमें गिरा;उससे सब प्रकाशित औषधियां उपजने लगीं॥१६॥इसकारण चंद्रमाके तेजसे अब अन्न आदि औषधियें प्रफुल्लित होती हैं;और इन अन्नआदि औषधियोंके प्रतापसे अंडज,स्वेतज, जरायुज, उद्भिज्ज चार प्रकारकी प्रजा जीती है; हे राजन् ! इस प्रकार सब जगत्को पुष्ट करनेवाला चंद्रमा कहाहै ॥ १७ ॥ फिर उत्तम कर्मोंसे उत्तम तेजको प्राप्त हो भगवान् चंद्रमाने एक सहस्र वर्षोंतक तप किया॥१८॥ इसी कारण जो रजत श्वेतवर्ण व सुवर्ण वर्ण देवी (जल) इस जगत्को धारण करती है; चंद्रमा उनका निधि हो अपने

कर्मसे विख्यात हुआ ॥१९॥ हे जनमेजय ! यही चंद्रमा सब प्रकारक बीज, औषधी और ब्राह्मण और जलोंका स्वामी बनाया गया ॥२०॥
हे महाराज ! वह चंद्रमा उत्तम राज्यपै प्राप्त हो तीन लोक और लोकांतरोंको अपने तेजसे प्रकाशित करता है।॥२१॥दक्ष प्रजापतिने अपनी अश्विनीसे
आदि ले रेवतीपर्यंत २७ पुत्री जो सत्ताईस नक्षत्र हैं, चंद्रमाके अर्थ विवाह दीं ॥२२॥ तब पितृपति चंद्रमा उत्तम राज्यको प्राप्त हो राज्यरूप यज्ञका
आरंभ करने लगा; जिसमें जहांएक सुवर्णनिष्क एक गौकी दक्षिणा थी; उस स्थानपर लाख लाख अशरफी और लक्ष २ गौका दान किया॥२३॥उस

ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥ बीजौषधीनां विप्राणामपां च जनमेजय ॥२०॥ सोऽभिषिक्तो महाराज राजराज्येन
राजराट् ॥ लोकांस्त्रीन्भासयामास स्वभासा भास्वतां वरः ॥ २१ ॥ सप्तविंशतिमिन्दोस्तु दाक्षायिण्यो महाव्रताः ॥ ददौ प्रा-
चेतसो दक्षो नक्षत्राणीति या विदुः । २२ ॥ स तत्प्राप्य महद्राज्यं सोमः सोमवतां वरः ॥ समाजह्रे राजसूयं सहस्रशतदक्षि
णम् ॥ २३ ॥ होताऽस्य भगवानत्रिरध्वर्युर्भगवान् भृगुः ॥ हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा ब्रह्मत्वमेयिवान् ॥२४॥ सदस्यस्तत्र भगवा-
न् हरिर्नारायणः स्वयम् ॥ सनत्कुमारप्रमुखैराद्यैर्ब्रह्मर्षिभिर्वृतः ॥ २५ ॥ दक्षिणामददात्सोमस्त्रींल्लोकानिति नः श्रुतम् ॥ तेभ्यो
ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भारत ॥ २६ ॥ तं सिनिश्च कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभा वसुः ॥ कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः
सिषेविरे ॥ २७ ॥ प्राप्यावभृथमव्यग्रः सर्वदेवर्षिपूजितः ॥ विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन् दिशः ॥ २८ ॥

यज्ञमें अत्रिमुनि भृगुमुनि अध्वर्यु बने और अंगिरा मुनि उद्गाता बने थे. साक्षात् ब्रह्मा ब्रह्माजी हुए, अथवा वसिष्ठजी ब्रह्माजी हुए थे॥२४॥साक्षात्
नारायण सनत्कुमार आदि ब्रह्मर्षियोंसे संयुक्त हो सभापति बने थे॥२५॥हे जनमेजय ! ऐसा सुना है कि यज्ञके अंतमें मुनिजनोंको चंद्रमाने त्रिलोकीका
दान कर दिया था॥२६॥सिनीवाली, कुहू अर्थात् अमावास्या, द्युति, पुष्टि,प्रभा,वसु,कीर्ति,धृति और लक्ष्मी ये नवों देवी चंद्रमाको सेवने लगीं॥२७॥
ऐसे यशको पूर्णकर देवते और मुनिजनोंसे पूजित हो चंद्रमा सब राजाओंसे प्रधान होके दशों दिशाओंको भासित करता प्रकाशित हुआ॥२८॥

हे तात ! तब ऐसे उत्तम ऐश्वर्यको प्राप्त हो और मदके भ्रमसे अनीतिके कारण चंद्रमाकी बुद्धिभ्रष्ट होने लगी॥२९॥तब चंद्रमाने अतियशस्विनी तारा नाम बृहस्पतिकी भार्याको हरण किया॥३०॥तब देवता और राजर्षियोंने उसे अत्यन्त समझाया परन्तु उसने उस स्त्रीको नहीं छोडा;तबचंद्रमाके संग बृहस्पतिजी युद्ध करनेको सन्नद्ध हुए॥३१॥तब चंद्रमाकी ओर सहायकारी शिष्योंसहित महातेजस्वी दैत्योंके गुरु शुक्राचार्यजी हुए;और एक समयमें बृहस्पतिजीने अपने पितासे पहले महादेवजीसे पठन किया था॥३२॥उस स्नेहके कारण महादेवजी अपने आजगव नामवाले धनुषको धारण कर

तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्यं मुनिसत्कृतम् ॥ विबभ्राम मतिस्तात विनयादनयाऽहता ॥२९॥ बृहस्पतेः स वै भार्यां तारां नाम यशस्विनीम् ॥ जहार तरसा सर्वानवमत्याङ्गिरः सुतान् ॥३०॥ स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिः सह ॥ नैव व्यसर्जयत्तारां तस्मा आङ्गिरसे तदा ॥ स संरब्धस्ततस्तस्मिन्देवाचार्यो बृहस्पतिः ॥३१॥ उशनास्तस्य जग्राह पार्ष्णिमाङ्गिरसस्तदा ॥ स हि शिष्यो महातेजाः पितुः पूर्वो बृहस्पतेः ॥ २ ॥ तेन स्नेहेन भगवान् रुद्रस्तस्य बृहस्पतेः ॥ पार्ष्णिग्रहोऽभवद्देवः प्रगृह्याजगवं धनुः ॥३३॥ तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना ॥ उद्दिश्य दैत्यानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः ॥३४॥ तत्र तद्युद्धमभवत्प्रख्यातं तारकामयम् ॥ देवानां दानवानां च लोकक्षयकरं महत् ॥३५॥ तत्र शिष्टास्तु ये देवास्तुषिताश्चैव भारत ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम् ॥३६॥ ततो निवार्योशनसं रुद्रं ज्येष्ठं च शङ्करम् ॥ ददावङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥ ३७ ॥

बृहस्पतिजीके सहायक हुए ॥३३॥उसी समय दैत्योंका नाश करनेवाला ब्रह्मशिर नाम उग्र अस्त्र महात्मा शंकरने लिया;जिससेदैत्योंका यश नाश हो गया॥३४॥तब वहां देवता और दैत्योंका परस्पर लोकको क्षय करनेवाला तारकामय नामसे विख्यात युद्ध होने लगा॥३५॥उसमें बहुतसे दैत्य और बहुतसे देवतें नाशको प्राप्त हो गये;उस युद्धसे बचे हुए तुषित[1] संज्ञावाले देवता आदि देव सनातन ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥३६॥तब ब्रह्माजीने स्वयं

---

१ चंद्रमाकी ओरके तुषित देवता तुषित कहलाते हैं।

आकर शुक्राचार्य और श्रेष्ठ महादेवजीको निवारण कर तारा स्त्री चंद्रमासे ले बृहस्पतिजीको दे दी॥३७॥तब उस गर्भवती स्त्री ताराको देख बृहस्पति जी कहने लगे कि तू मेरे स्थानमें इसगर्भको मत धारण कर॥३८॥एकांत स्थानमें इस गर्भको त्याग दे;तब एकांत स्थानमें उसताराने चौरोंके नाश करनेहारे उस गर्भको इषीकस्तंबमें त्याग दिया,जो कि अग्निके समान प्रज्वलित था॥३९॥उस गर्भने जन्म लेतेही अपने रूपसे देवताओंका तिरस्कार कर दिया;तब सब देवते संशयको प्राप्त हो कहने लगे॥४०॥कि हे कल्याणि!तू सत्य कह यह बालक चंद्रमाका पुत्र है या बृहस्पतिका ?जब इसप्रकार

तामन्तः प्रसवां दृष्ट्वा तारां प्राह बृहस्पतिः ॥ मदीयायां न ते योनौ गर्भोधार्यः कथंचन ॥ ३८ ॥ अयोनावुत्सृजत्तं सा कुमारं दस्युहन्तमम् ॥ इषीकास्तम्बमासाद्य ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ३९ ॥ जातमात्रः स भगवान् देवानामक्षिपद्वपुः ॥ ततः संशयमापन्ना इमामकथयन्सुराः ॥४०॥ सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः ॥ पृच्छ्यमाना यदादेवैर्नाह सा साध्वसाधु वा ॥ ४१ ॥ तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्तमः ॥ तं निवार्य ततो ब्रह्मा तारां पप्रच्छ संशयम् ॥ ४२ ॥ तदत्र तथ्यं तद् ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ॥ सा प्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरद प्रभुम् ॥ ४३ ॥ सोमस्येति महात्मानं कुमारं दस्युहन्तमम् ॥ ततस्तं मूर्ध्न्युपाघ्राय सोमो धाता प्रजापतिः ॥ ४४ ॥ बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः ॥ प्रतिकूलं च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः ॥ ४५ ॥ उत्पादयामास ततः पुत्रं वैराजपुत्रिका ॥ तस्यापत्यं महाराजो बभूवैलः पुरूरवाः ॥ ४६ ॥

देवताओंने पूछा; तब उस ताराने अच्छा बुरा कुछभी नहीं कहा॥४१॥तब चोरनाशक वह बालक ताराको शाप देने लगा; तब उस बालकको वर्जकरब्रह्माजीने तारासे पूछा॥४२॥ हे देवी ! यह किसका पुत्र है ? सो तू सत्य वर्णन कर; तब दोनों हाथ जोड वरके देनेवाले ब्रह्माजीसे तारा बोली ॥४३॥ हे स्वामिन् ! दुष्टजनोंको दुःख देनेवाला यह बालक चंद्रमाका पुत्र है; तब सोमपति चंद्रमा उस बालकके मस्तकको सूंघ ॥ ४४ ॥ अपने पुत्रका बुध नाम धरता हुआ. जो यह बुध आकाशमें प्रतिकूलतासे उदय होता है ॥ ४५ ॥ और वैराजमनुके इला नाम

कन्या उत्पन्न हुई; तिसमें इस बुधने पुरूरवा पुत्रको उत्पन्न किया ॥४६॥ इस पुरूरवाके उर्वशीमें सात पुत्र उपजे, और राजयक्ष्मा रोगने चंद्रमाको ग्रस लिया॥४७॥तब इस रोगसे चंद्रमाका मंडल क्षीण होने लगा; तब चंद्रमा अपने पिता अत्रिमुनिकी शरणमें गया॥४८॥तब महातपवाले अत्रि मुनिने तिस पापरूप रोगकी शांति की, तब राजयक्ष्मासे छूटके उत्तमशोभाको प्राप्त हो चारों ओरसे प्रकाशित हुआ॥४९॥ऐसे कीर्तिको बढानेवाला चंद्रमाका जन्मवर्णन किया है; हे राजन् ! अब सोमवंशका श्रवण करो॥५०॥ धन, रूप, आरोग्य, आयुके देनेवाले पवित्र और मनोवांछित दाता

उर्वश्यां जज्ञिरे यस्य पुत्राः सप्तमहात्मनः ॥ प्रसह्य धर्षितस्तत्र सोमो वै राजयक्ष्मणा॥४७॥ततो यक्ष्माभिभूतस्तु सोमःप्रक्षीण-मण्डलः ॥ जगाम शरणार्थाय पितरं सोऽत्रिमेव तु ॥ ४८ ॥ तस्य तत्तापशमनं चकारात्रिर्महातपाः ॥ स राजयक्ष्मणा मुक्तः श्रिया जज्वाल सर्वतः॥४९॥ एवं सोमस्य वै जन्म कीर्तितं कीर्तिवर्धनम् ॥ वंशमस्य महाराज कीर्त्यमानं च मे शृणु ॥ ५० ॥ धन्यमारोग्यमायुष्यं पुण्यं संकल्पसाधनम्॥सोमस्य जन्म श्रुत्वैव पापेभ्यो विप्रमुच्यते॥५१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बुधस्य तु महाराज विद्वान् पुत्रः पुरूरवाः ॥ तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः ॥१॥ ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्जयः ॥ आहर्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानां च महीपतिः॥२॥ सत्यवादी पुण्यमतिः काम्यः संवृतमैथुनः ॥ अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाऽप्रतिमः सदा ॥३॥ तं ब्रह्मवादिनं क्षान्तं धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥ उर्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी ॥ ४ ॥

चंद्रमाके जन्मको सुननेसे मनुष्यके सब पाप नष्ट हो जाते हैं॥५१॥इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां सोमोत्पत्तिकथने पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥ वैशंपायनजी बोले; हे जनमेजय! बुधके अतिविद्वान् और तेजस्वी और दानशील, यज्ञ करनेवाला, अतिदक्षिणा देनेवाला ॥१॥ ब्रह्मवादी, शत्रुओंको युद्धमें जीतनेवाला और अग्निहोत्र आदि यज्ञोंका कर्ता, पृथ्वीका पति॥२॥सत्यवादी, निर्मल बुद्धिमान्, त्रिलोकीमें सबके यशोंसे उत्तम यशस्वी, संवृत मैथुनयुक्त ऐसा पुरूरवा राजा हुआ ॥३॥ उस ब्रह्मवादी, शांतस्वरूप, धर्मके जाननेवाले और सत्यवादी इस पुरूरवा राजाको त्यागकर उर्वशीने वरण

किया ॥ ४ ॥ हे राजन् ! उस उर्वशीके संग यह राजा चैत्ररथ वनमें दश वर्ष और मंदाकिनी नदीके तटपर पांच वर्ष अलकापुरीमें पाच वर्ष; और बदरी-पुरीमें छः वर्ष और नंदनवनमें सात वर्ष ॥ ५ ॥ ६ ॥ और उत्तर कुरुओंके देशमें आठ वर्ष और गंधमादन पर्वतमें दश वर्ष और सुमेरुपर्वतमें आठ वर्ष ॥ ७ ॥ ऐसे यह राजा अनेक वनोंमें उर्वशीके संग प्रसन्न हो विहार करने लगा ॥ ८ ॥ यह राजा परम पवित्र देव ऋषियोंसे सेवित प्रयागमें राजधानी कर राज्य करने लगा ॥ ९ ॥ और इस पुरूरवा राजासे उर्वशीमें देवताओंकी समान सात पुत्र रूपवान् आयु १ अमावसु २ ॥ १० ॥ विश्वायु ३

तया सहावसद्राजा वर्षाणि दश पञ्च च ॥ पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च भारत ॥५॥ वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे ॥ अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे ॥ ६ ॥ उत्तरान्स कुरून्प्राप्य मनोरथफलद्रुमान् ॥ गन्धमादनपादेषु मेरुपृष्ठे तथोत्तरे॥७॥ एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च ॥ उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा ॥ ८ ॥ देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते ॥ राज्यं च कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः ॥ ९ ॥ तस्य पुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोपमाः ॥ दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमा-वसुः ॥ १० ॥ विश्वायुश्चैव धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः ॥ दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः ॥ ११ ॥ जनमेजय उवाच ॥ गान्धर्वी चोर्वशी देवी राजानं मानुषं कथम् ॥ देवानुत्सृज्य संप्राप्ता तन्नो ब्रूहि बहुश्रुत ॥ १२ ॥वैशम्पायन उवाच ॥ ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समपद्यत ॥ ऐलं तु सा वरारोहा समयात्समुपस्थिता ॥ १३ ॥आत्मनः शापमोक्षार्थं समयं सा चकार ह ॥ अनग्नदर्शनं चैव सकामायां च मैथुनम् ॥ १४ ॥ द्वौ मेषौ शयनाभ्याशे सदा बद्धौ च तिष्ठतः ॥ घृतमात्रा तथाऽऽहारः कालमेकं तु पार्थिव ॥ १५ ॥

श्रुतायु ४ दृढायु ५ वनायु ६ शतायु ७ नाम सात पुत्र स्वर्गमें उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ जनमेजय बोले; हे बहुश्रुत ! गंधर्वोंकी रानी उर्वशी देवताओंको त्याग मनुष्यरूप पुरूरवापर कैसे आई यह मुझसे कहो ॥ १२ ॥ वैशंपायनजी बोले; ब्रह्माके शापसे उर्वशी समयके आधीन हो मनुष्यरूपको प्राप्त हो पुरूरवा राजापर आई ॥ १३ ॥ और अपने शापको दूर करनेके निमित्त उस राजासे यह प्रतिज्ञा की कि मैं नग्नको नहीं देखूंगी; जब मेरे काम उपजे तब विषय करूंगी ॥ १४ ॥ दो मेंढोंको अपनी शय्याके समीपमें प्रतिक्षण बांधके रखने लगी; हे राजन् ! दिन रात्रिमें एकवार घृतमात्रका भोजन किया करती॥ १५॥

और कहने लगी;हे पुरूरवाजी! मैंने प्रतिज्ञा की है; इस प्रतिज्ञाको जबतक तू धारण करेगा तबतक मैं तेरे पास रहूंगी॥ १६॥तब उस उर्वशीकी प्रतिज्ञाको राजा पालन करने लगा;इसप्रकार शापसे मोहित वह ॥ १७॥ भामिनी उर्वशी उनसठ वर्षौंतक राजाके संग रही, तब चिंतासे युक्त हुए गंधर्व परस्पर कहने लगे॥ १८॥हे महाभाग ! ऐसा उपाय विचारो कि जिस प्रकारसे स्वर्गका भूषणरूप वह उत्तम उर्वशी फिर देवताओंके समीपमें प्राप्त हो॥ १९॥ तब तिनमें विश्वावसु गंधर्व बोला कि; हे मित्रो ! राजा और उर्वशीकी परस्पर की हुई प्रतिज्ञाको मैंने सुनाहै ॥२०॥ जब उर्वशींकी प्रतिज्ञाको राजा

यद्येष समयो राजन् यावत्कालं च ते दृढः ॥ तावत्कालं तु वत्स्यामि त्वत्तः समय एष नः ॥ १६ ॥ तस्यास्तं समयं सर्वं स राजा समपालयत् ॥ एवं सा वसते तत्र पुरूरवसि भामिनी ॥१७॥ वर्षाण्येकोनषष्टिस्तु तत्सक्ता शापमोहिता ॥ उर्वश्यां मानुषस्थायां गन्धर्वाश्चिन्तयान्विताः ॥ १८ ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ चिन्तयध्वं महाभागा यथा सा तु वराङ्गना ॥ समागच्छेत्पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूषणम् ॥१९॥ ततो विश्वावसुर्नाम तत्राह वदतां वरः ॥ मया तु समयस्ताभ्यां क्रियमाणः श्रुतः पुरा ॥२०॥ व्युत्क्रान्तसमयं सा वै राजानं त्यक्ष्यते यथा ॥ तदहं वेद्म्यशेषेण यथा भेत्स्यत्यसौ नृपः ॥ २१ ॥ स सहायो गमिष्यामि युष्माकं कार्यसिद्धये ॥ एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठानं महायशाः॥ २२ ॥ निशायामथ चागम्य मेषमेकं जहार सः ॥ मातृवद्वर्तते सा तु मेषयोश्चारुहासिनी ॥ २३ ॥ गन्धर्वागमनं श्रुत्वा शापान्तं च यशस्विनी ॥ राजानमब्रवीत्तत्र पुत्रो मेऽह्रियतेति सा ॥ २४ ॥ एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नो नैवोदतिष्ठत ॥ नग्नं मां द्रक्ष्यते देवी समयो वितथो भवेत् ॥ २५ ॥

तोड देगा; तब वह उर्वशी राजाको त्याग इस लोकमें प्राप्त होगी; और जिस प्रकारसे यह राजा प्रतिज्ञा त्यागेगा वहभी मैं जानताहूं॥ २१॥इस कारण तुम्हारे कार्यकी सिद्धिके अर्थ तुम्हारी सहायतासे संयुक्त मैं वहां जाऊंगा; ऐसे कह पुरूरवाके स्थानपर वह महायशस्वी गया ॥ २२ ॥ और रात्रिमें एक मेंढेको हरण किया;वह उर्वशी दोनों मेंढोंमें माताके समान प्रेमकिया करती थी ॥ २३ ॥ तब गंधर्वोंका आगमन तथा अपने शापके अंतको जानके वह यशस्वनी उर्वशी राजासे कहने लगी कि मेरे पुत्रको कोई हर ले गया ॥ २४ ॥ इसप्रकार राजासे जब कहा तब नग्नं

होनेके कारण उससमय यह विचारने लगा कि मैथुनसे पृथक् जो यह देवी मुझे देखेगी तो प्रतिज्ञाभंग हो जानेसे यह चली जायगी ॥ २५ ॥ इसकारण राजा न उठा फिर गंधर्वोंने दूसरा मेंढाभी हर लिया; तब उर्वशी कहने लगी॥२६॥हे प्रभो !हे राजन् ! दूसराभी मेरा अनाथके समान पुत्र हर लिया; इससे मैं क्या करूं; यह वचन सुन राजा नंगाही उठकर चला॥२७॥और मेंढोंके पीछे हुआ; तब गंधर्वोंने अतिउग्र बिजली उत्पन्न करके राजाके महलमें प्रकाशित कर दी; जिससे वह राजाका मंदिर सहसा प्रकाशित हो गया॥२८॥तब उस चांदनेमें कामरूपिणी नग्नभूत राजाको

ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीयं मेषमाददुः ॥ द्वितीये तु हृते मेषे ऐलं देव्यब्रवीदिदम् ॥ २६ ॥ पुत्रो मेऽपहृतो राजन्ननाथाया इव प्रभो ॥ एवमुक्तस्तथोत्थाय नग्नो राजा प्रधावितः ॥ २७ ॥ मेषयोः पदमन्विच्छन् गन्धर्वैर्विद्युदप्यथ ॥ उत्पादिता सुमहती यया तद्भवनं महत् ॥ २८ ॥ प्रकाशितं वै सहसा ततो नग्नमवैक्षत ॥ नग्नं दृष्ट्वा तिरोभूता साऽप्सरा कामरूपिणी ॥ २९ ॥ उत्सृष्टावुरणौ दृष्ट्वा राजा गृह्यागतो गृहे ॥ अपश्यन्नुर्वशीं तत्र विललाप सुदुःखितः ॥ ३० ॥ चचार पृथिवीं सर्वां मार्गमाण इतस्ततः ॥ अथापश्यत्स तां राजा कुरुक्षेत्रे महाबलः ॥ ३१ ॥ प्लक्षतीर्थे पुष्करिण्यां हैमवत्यां समाप्लुताम् ॥ क्रीडन्तीमप्सरोभिश्च पञ्चभिः सह शोभनाम् ॥ ३२ ॥ तां क्रीडन्तीं ततो दृष्ट्वा विललाप सुदुःखिताः ॥ सा चापि तत्र तं दृष्ट्वा राजानमविदूरतः ॥ ३३ ॥ उर्वशी ताः सखी प्राह स एष पुरुषोत्तमः ॥ यस्मिन्नहमवात्सं वै दर्शयामास तं नृपम् ॥ ३४ ॥

देख अन्तर्धान हो गई॥२९॥तब अंतर्हित हुई उर्वशीको देख मेंढाओंको त्याग गंधर्व स्वर्गलोकको चले गये;और राजा उन दोनों मेंढोंको ग्रहण कर जब अपने स्थानमें आया और उर्वशीको न देखा तब दुःखित होके विलाप करने लगा॥३०॥और जहांतहां ढूंढता हुआ सम्पूर्ण पृथ्वीभरमें विचरा; तब कुरुक्षेत्रमें प्लक्षतीर्थके समीपमें उस महाबलीने देखा कि॥३१॥हैमवती नदीमें पांच अप्सराओंके संग वह उर्वशी स्नानसंबन्धी क्रीडा करती हुई शोभाको प्राप्त हो रही है॥३२॥ उस उर्वशीको देख राजा विलाप करने लगा; और वह उर्वशीभी उस राजाको निकट देख ॥ ३३ ॥ उन पांच

अप्सराओंसे बोली; कि जिसके स्थानपै मैं बहुत दिनतक रही थी; वह पुरुषश्रेष्ठ राजा यही है ॥ ३४ ॥ तब वे सब जानेकी इच्छा करने लगीं; उस उर्वशीको देख राजा बोला कि हे प्रिये ! जाये ! तुम स्थित हो; और वचनको सुन स्थित हो ॥ ३५ ॥ इस प्रकारके बहुतसे वचन परस्पर कहे गये; तब उर्वशी कहने लगी; हे राजन् ! मैं तुमसे गर्भवती हूं ॥ ३६ ॥ एक वर्षमें मुझसे तुम्हारा पुत्र होगा इसमें संशय नहीं; हे राजन् ! तब फिरभी एक रात तुम्हारे संग रहूंगी ॥ ३७ ॥ यह सुन प्रसन्न हो राजा अपने पुरको चला गया; जब एक वर्ष व्यतीत हो गया; तब वह उर्वशी फिर

समविग्नास्तु ता सर्वाः पुनरेव नराधिप ॥ जायेह तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ ह ॥ ३५ ॥ एवमादीनि सूक्तानि परस्परमभाषत ॥ उर्वशी चाब्रवीदैलं सगर्भाऽहं त्वया प्रभो ॥ ३६ ॥ संवत्सरात्कुमारास्ते भविष्यन्ति न संशयः ॥ निशामेकां च नृपते निवत्स्यसि मया सह ॥ ३७ ॥ हृष्टो जगाम राजाऽथ स्वपुरं तु महायशाः ॥ गते संवत्सरे भूय उर्वशी पुनरागमत् ॥ ३८ ॥ उषितश्च तया सार्द्धं एकरात्रं महायशाः ॥ उर्वश्यथाब्रवीदैलं गन्धर्वा वरदास्तव ॥ ३९ ॥ तान् वृणष्व महाराज ब्रूहि चैनांस्त्वमेव हि ॥ वृणीष्व समतां राजन् गन्धर्वाणां महात्मनाम् ॥ ४० ॥ तथेत्युक्त्वा वरं वव्रे गन्धर्वांश्च तथास्त्विति ॥ पूरयित्वाऽग्निना स्थालीं गन्धर्वांश्च तमब्रुवन् ॥ ४१ ॥ अनेनेष्ट्वा च लोकान्नः प्राप्स्यासि त्वं नराधिप ॥ तानादाय कुमारांस्तु नगरायोपचक्रमे ॥ ४२ ॥ निक्षिप्याग्नि-मरण्ये तु सपुत्रस्तु गृहं ययौ ॥ स त्रेताऽग्निं तु नापश्यदश्वत्थं तत्र दृष्टवान् ॥ ४३ ॥

आकर ॥ ३८ ॥ एक रात्रि राजाके संग रही; और राजासे कहने लगी ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! तुम इस प्रकारका वरदान मांगो कि मैंभी महात्मा गंधर्वोंके समान हो जाऊं ॥ ४० ॥ बहुत अच्छा यही करूंगा; यह कह राजाने गंधर्वोंसे वर मांगा तब गंधर्वोंने वर दिया; और अग्निसे स्थालीको पूर्ण कर गंधर्व उससे कहने लगे ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! इस देवकी पूजा करनेसे तुम हमारे लोकोंको प्राप्त होगे. तब तिन उर्वशीपुत्रोंको लेकर राजा नगरको चला ॥ ४२ ॥ और गंधर्वोंकी दी हुई अग्निको वनमें डाल पुत्रोंसहित अपने स्थानपै आया; और फिर लौटकर देखा तो जहां अग्नि डाली थी उस

स्थानमें अग्नि नहीं है ॥ ४३ ॥ किंतु जाठीके वृक्षसे संयुक्त पपिलका वृक्ष उगा हुआ देख राजा आश्चर्यको प्राप्त हुआ; और इस अग्निनाशको गंधर्वोंसे वर्णन किया ॥ ४४ ॥ इस वचनको सुन गंधर्व बोले कि इस पीपलके वृक्षकी अरणी बना तिसको मथके अग्निको उपजा लो तब राजाने उस अग्निको मथकर अनेक यज्ञोंको किया ॥ ४५॥ और विधिपूर्वक यज्ञ करनेका कारण गंधर्वोंके लोकमें प्राप्त हुआ ॥ ४६ ॥ गंधर्वोंसे वरदान पाय इस प्रकार राजाने तीन अग्निकी कल्पना की. पहले एकही अग्नि थी; पुरूरवाने तीन की ॥ ४७॥ हे राजन् ! ऐसा प्रतापी पुरूरवा राजा था; वह मुनिजनोंसे स्तुतिको प्राप्त हो

शमीजातं तु तं दृष्ट्वा अश्वत्थं विस्मितस्तदा ॥ गन्धर्वेभ्यस्तदाशंसदग्निनाशं ततस्तु सः॥ ४४ ॥ श्रुत्वा तमर्थमखिलमरणीं तु समादिशत् ॥ अश्वत्थादरणीं कृत्वा मथित्वाऽग्निं यथाविधि ॥ ४५ ॥ मथित्वाऽग्निं त्रिधा कृत्वा अयजत्स नराधिपः ॥ इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैर्गतस्तेषांसलोकताम् ॥ ४६ ॥ गन्धर्वेभ्यो वरं लब्ध्वा त्रेताग्निं समकारयत् ॥ एकोऽग्निः पूर्वमेवासीदैलस्त्रेतामकारयत् ॥ ४७ ॥ एवं प्रभावो राजासीदैलस्तु नरसत्तम ॥ देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते ॥ ४८ ॥ राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः ॥ उत्तरे जाह्नवीतीरे प्रतिष्ठाने महायशाः॥४९॥ इति श्रीमहाभारत खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि ऐलोत्पत्तिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ ऐलपुत्राबभूवुस्ते सर्वे देवसुतोपमाः ॥ दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसुः ॥ १ ॥ विश्वायुश्चैव धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः ॥ दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः ॥ अमावसोश्च दायादो भीमो राजाऽथ नग्नजित् ॥ २ ॥ श्रीमान् भीमस्य दायादो राजाऽऽसत्काञ्चनप्रभः ॥ विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः ॥ ३ ॥ सौहोत्रिरभवज्जह्नुः केशिन्या गर्भसंभवः ॥ आजह्रे यो महत्सत्रं सर्वमेधमहामखम् ॥ ४ ॥

और पवित्र देश ॥ ४८ ॥ प्रयागमें गंगाजीके उत्तर प्रतिष्ठान पुरमें वह महायशस्वी राज्य करता रहा ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषाटीकायां ऐलोत्पत्तिकथनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥ वैशंपायन बोले; पुरूरवा राजाके देवताओंकी समान स्वर्गमें उपजनेवाले महात्मा आयु १ अमावसु२ ॥ १॥ धर्मात्मा विश्वायु ३ श्रुतायु ४ दृढायु ५ वनायु ६ शतायु ७ नामोंवाले उर्वशीके सात पुत्र हुए; अमावसुके भीम और नग्नजित् दो पुत्र हुए ॥ २ ॥ भीमके श्रीमान् कांचनप्रभ पुत्र जन्मा; कांचनप्रभके पंडित महाबली सुहोत्र पुत्र हुआ॥ ३॥ सुहोत्रके केशनी रानीसे जह्नु पुत्र उपजा; जिसने सर्व मेध और

महासुख नाम महायज्ञ किया ॥४॥ पतिके बनानेके लोभसे जिसको गंगाजी प्राप्त हुई, जब गंगाजीकी उन्हे इच्छा नहीं हुई तब गंगाजीने उनका सब यज्ञ स्थान जलसे डुबोदिया ॥५॥ तब क्रोधित हो जन्हु राजाने कहा ॥ ६ ॥ कि हे गंगे ! तैंने बहुत बुरा कार्य किया है, इसकारण मैं तेरे जलका पान करूंगा, तू अपने इस कार्यके फलको तत्काल प्राप्त होगी ॥७॥ यह वचन कह जब राजर्षि जन्हु गंगाजल पान करने लगे, तौ पी हुई गंगाको देख महर्षियोंने गंगाको जह्नु राजाकी पुत्री बनाया ॥ ८ ॥ पीछे युवनाश्व राजाकी पुत्री कावेरीसे जह्नु राजाने विवाह किया, युवनाश्वके शापसे पहलेही

पतिलोभेन यं गङ्गा पतित्वेऽभिससार ह ॥नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गा च तत्सदः॥ स तया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः ॥५॥ सौहोत्रिरब्रवीद्गङ्गां क्रुद्धो भरतसत्तम ॥ ६ ॥ एष ते विफलं यत्नं पिबन्नम्भः करोम्यहम् ॥ अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ॥ ७ ॥ राजर्षिणा ततः पीतां गङ्गां दृष्ट्वा महर्षयः ॥ उपनिन्युर्महाभागां दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ॥ ८ ॥ युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत् ॥ युवनाश्वस्य शापेन गङ्गाऽर्धेन विनिर्ममे ॥ कावेरीं सरितां श्रेष्ठां जह्नोर्भार्यामनिन्दिताम् ॥९॥ जह्नुस्तु दयितं पुत्रं सुनहं नाम धार्मिकम् ॥ कावेर्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मजः ॥ १० ॥ अजकस्य तु दायदो बलाकाश्वो महीपतिः ॥ बभूव मृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ ११ ॥ कुशपुत्रा बभूवुर्हि चत्वारो देववर्चसः ॥ कुशिकः कुशनाभश्च कुशाम्बो मूर्तिमांस्तथा ॥१२॥ पह्लवैः सह संवृद्धो राजा वनचरैस्तदा ॥ कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमप्रभम् ॥ लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान् ॥ १३ ॥

गंगाने अपने आधे भागसे कावेरीको निर्माण किया है, यही निंदारहित नदीश्रेष्ठ कावेरी जह्नुकी भार्या हुई ॥ ९ ॥ जह्नु राजाने कावेरी रानीमें परम धार्मिक सुनह नाम पुत्र उत्पन्न किया, सुनहके अजक नाम पुत्र जन्मा ॥ १० ॥ अजकके बलाकाश्व नाम पुत्र हुआ, यह मृगयामें आसक्त हुआ, बलाकाश्वके कुश नाम पुत्र उपजा ॥११॥ कुशके देवसमान तेजस्वी चार पुत्र हुए, जिनके नाम कुशिक, कुशनाभ, कुशांब, मूर्तिमान् हुए ॥१२॥ वनचारी और पह्लव जातिके संग बुद्धिको प्राप्त हो कुशिक राजा तप करने लगा, और यह इच्छा की कि मेरे इन्द्रके समान पुत्र हो, मेरे समान और कौन

हो सक्ता है; यह विचार स्वयं इन्द्रही उसके पुत्र हुए थे ॥ १३ ॥ सहस्र वर्ष जब तप करते बीत गये, तब सहस्राक्ष इन्द्र अतितप करनेवाले उस कुशिक राजाको देख ॥ १४ ॥ पुत्र उत्पन्न करनेमें समर्थ देवताओंके पति सुरश्रेष्ठने अपनेही अंशको उस राजाके पुत्ररूपसे उपजाया ॥ १५ ॥ तब गाधि-नामसे स्वयं इन्द्र कुशिकके पुत्र साक्षात् पौरुकुत्सी रानीमें उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ गाधिके महाभाग्यवान् सत्यवती नाम कन्या उपजी; इसको प्रधान ऋचीक नामक भृगुपुत्रके अर्थ दे दिया ॥ १७ ॥ तब प्रसन्न हो ऋचीक मुनिने अपने और गाधिके पुत्र होनेके अर्थ चरु बनाया ॥ १८ ॥ और

पूर्णे वर्षसहस्रे वै तं तु शक्रो ह्यपश्यत ॥ अत्युग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरंदरः ॥ १४ ॥ समर्थः पुत्रजनने स्वमेवांशमवासयत् ॥ पुत्रत्वे कल्पयामास स देवेन्द्रः सुरोत्तमः ॥ १५ ॥ स गाधिरभवद्राजा मघवान् कौशिकः स्वयम् ॥ पौरुकुत्स्यभवद्भार्या गाधि-स्तस्यामजायत ॥ १६ ॥ गाधेः कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा ॥ तां गाधिर्भृगुपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः ॥ १७ ॥ तस्याः प्रीतोऽभवद्भर्ता भार्गवो भृगुनन्दनः ॥ पुत्रार्थं कारयामास चरुं गाधेस्तथैव च ॥ १८ ॥ उवाचाहूय तां भर्ता ऋचीको भार्गवस्तदा ॥ उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा त्वयं तव ॥ १९ ॥ तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभः ॥ अजेयः क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदनः ॥ २० ॥ तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोनिधिम् ॥ शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति ॥ २१ ॥ एवमुक्त्वा तु तां भार्यामृचीको भृगुनन्दनः ॥ तपस्याभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह ॥ २२ ॥ गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकावासमभ्यगात् ॥ तीर्थ-यात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं जनेश्वरः ॥ २३ ॥

अपनी स्त्रीसे कहने लगा; कि हे प्रिये ! यह दो चरुके देने हैं इन्होंमेंसे एक तौ यह तेरी माताके भक्षण करनेको है ॥ १९ ॥ इसके प्रतापसे तेरी माताके अतितेजस्वी क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ उत्तम संसारके क्षत्रियोंसे अजित महाबली क्षत्रियोंका नाशक पुत्र होगा ॥ २० ॥ इस कारण यह चरु अपनी माताको देना; हे कल्याणी ! यह दूसरा चरु तेरे निमित्त है इसके भक्षणसे धीर्यवान् तपस्वी शांतस्वरूप और ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥ २१ ॥ इस प्रकार ऋचीक मुनि सत्यवती भार्यासे कहकर तप करनेको वनमें चले गये ॥ २२ ॥ एक समय अपनी भार्याके सहित गाधि तीर्थयात्राके प्रसंगसे अपनी पुत्रीको देखनेके निमित्त

आश्रममें गये ॥२३॥ तब दोनों चरुके दोनोंको ग्रहण कर सत्यवतीने माताको दिये; और सब वृत्तान्त सुनाया ॥ २४ ॥ परन्तु दैवयोगसे माताने अपना चरुका दोना पुत्रीको दे दिया; और पुत्रीके दोनेको आप ले लिया ॥२५॥ तब क्षत्रियोंके अंत करनेवाले घोर गर्भको सत्यवतीने धारण किया देख॥२६॥ महायोगी ऋचीक मुनि योगविद्यासे विचार अपनी श्रेष्ठ स्त्रीसे कहने लगे ॥ २७ ॥ हे भद्रे ! चरुके दोनेके बदलनेसे माताने तुझे ठग लिया; इस कारण ते रे क्रूरकर्मा और अतिदारुण पुत्र होगा ॥ २८ ॥ और ब्रह्मस्वरूप महाउग्र तपस्वी तेरा भ्राता तेरी माताके होगा, कारण कि उसके दोनेमें मैंने ब्रह्मतेज

चरुद्वयं गृहीत्वा तदृषेः सत्यवती तदा ॥ चरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत् ॥ २४ ॥ माता व्यत्यस्य दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ ॥ तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह ॥ २५ ॥ अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियान्तकरं तदा ॥ धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शनम् ॥ २६ ॥ तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्यनुसृत्य च ॥ तामब्रवीद्द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्यां वरवर्णिनीम् ॥ २७ ॥ मात्राऽसि वञ्चिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना ॥ जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्माऽतिदारुणः ॥ २८ ॥ भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधनः ॥ विश्वं हि ब्रह्मतपसा मया तस्मिन् समर्पितम् ॥ २९ ॥ एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ॥ प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत् ॥ ब्राह्मणापसदस्तत्र इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥ ३० ॥ नैष संकल्पितः कामो मया भद्रे तथास्त्विति ॥ उग्रकर्मा भवेत्पुत्रः पितुर्मातुश्च कारणात् ॥ पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्ताब्रवीदिदम् ॥३१॥ इच्छँल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम् ॥ शमात्मकमृजुं त्वं मे पुत्रं दातुमिहार्हसि ॥ ३२ ॥ काममेवंविधः पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो ॥ यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्तुमेतद्द्विजोत्तम ॥ ३३ ॥

तपसे अर्पण कर दिया था; वही दोना तेरी माताने भक्षण किया ॥ २९ ॥ यह पतिके वचनको सुन महाभागा सत्यवती पतिको प्रसन्न करने लगी; और बोली कि मैं ऐसे पुत्रको नहीं चाहती; मेरा ऐसा ब्राह्मण अधम पुत्र न हो; तब मुनि कहने लगे ॥ ३० ॥ कि हे भद्रे ! यह तेरा संकल्प पूर्ण होना कठिन है, और पितामाताके कारणसे तेरे बडा उग्रकर्मा पुत्र होगा, तब फिर सत्यवती इस प्रकार कहने लगी ॥ ३१ ॥ हे मुने ! जो आप इच्छा करो तौ संसारकोभी रच सकते हो, पुत्रके रचनेकी तौ बातही क्या है, आप मुझे पुत्र दीजिये ॥ ३२ ॥ यदि आप इसे अन्यथा नहीं कर सक्के तौ क्षत्रियनाशक

आदि गुणयुक्त पौत्र हो ऐसा कीजिये॥३३॥तब सत्यवतीपर प्रसन्न हो तपके बलसे मुनि कहने लगे;हे भद्रे ! पुत्र और पौत्रमें विशेष नहीं है इसकारण तेरी इच्छा पूरी होगी॥३४॥तब सत्यवतीने तपस्वी इन्द्रिय जीतनेवाला शांतस्वरूप जमदग्नि नाम पुत्र उत्पन्न किय। ॥३५॥ ऋचीक ऋषिके देवाराधन तपके प्रभावसे विष्णुमें पालन करनेके अंशसे जमदग्नि उत्पन्न हुए॥३६॥फिर यही सत्यधर्ममें परायण पवित्र सत्यवती कौशिक नामसे प्रसिद्ध महानदी हुई ॥३७॥ और इक्ष्वाकु वंशमें एक रेणु नाम राजा हुआ; उसकी भाग्यवान् कामली नामक रेणुका पुत्रीके संग जमदग्निका विवाहहुआ॥३८॥

ततः प्रसादमकरोत्स तस्यास्तपसो बलात् ॥ भद्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे च वरवर्णिनि ॥ त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति ॥ ३४ ॥ ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम् ॥ तपस्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम् ॥३५॥ भृगोश्चरुविपर्यासे रौद्रवैष्णवयोः पुरा ॥ यजनाद्वैष्णवेऽथांशे जमदग्निरजायत ॥ ३६ ॥ सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा ॥ कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेयं महानदी ॥ ३७ ॥ इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिपः ॥ तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका॥३८॥ रेणुकायां तु कामल्यां तपोविद्यासमन्वितः ॥ आर्चीको जनयामास जामदग्न्यं सुदारुणम् ॥ ३९ ॥ सर्वविद्यानुगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ॥ रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥ ४० ॥ और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महायशाः ॥ जमदग्निस्तपोवीर्याज्जज्ञे ब्रह्मविदां वरः ॥ ४१ ॥ मध्यमश्च शुनःशेफः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः ॥ विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः ॥ ४२ ॥ जनयामास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम् ॥ प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽयं सप्तर्षितां गतः ॥ ४३ ॥

जमदग्निके रेणुका स्त्रीमें अतिदारुण और सब विद्याके पारगामी ॥३९॥ धनुर्वेदके ज्ञाता, क्षत्रियोंके नाशक, अग्निके समान दीप्तिमान् परशुराम पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार सत्यवतीमें जमदग्नि ऋषि उत्पन्न हुए हैं ॥ ४१ ॥ इनका मध्यम भ्राता शुनःशेफ और कनिष्ठ शुनःपुच्छ था;और कुशिकका पुत्र गाधिराजाके॥४२॥ऋचीक मुनिके चरुके प्रतापसे अतितपस्वी,विद्यावान् और शांतस्वरूप विश्वामित्र उत्पन्न हुआ.यहअपने

कर्त्तव्यसे ब्रह्मर्षियोंके समान होकर सप्तऋषियोंमें प्राप्त हुए॥४३॥पहले यह विश्वामित्र गाधिराजा भृगुके प्रसादसे विश्वरथ नामसे विख्यात वंशवर्द्धन पुत्र हुआ॥४४॥विश्वामित्रके त्रिलोकीमें विख्यात देवरात आदि पुत्र हुए; तिनके नाम सुनो॥४५॥देवश्रवा और कति इन कतिसेही कात्यायन नामसे विख्यात पुरुष कहाये; और शालावती स्त्रीमें हिरण्याक्ष पुत्र हुआ; और रेणु नाम स्त्रीमें रेणुमान् ॥४६॥ सांकृति,गालव,मुद्गल,मधुच्छंद,जय और देवल ॥४७॥ दृष्टवती रानीमें अष्टक कच्छप और हारित तीन पुत्र उपजे;इसप्रकार विश्वामित्रके पुत्र हुए हैं; तिन महात्मा कौशिकोंके गोत्र संसारमें

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः ॥ जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्धनः ॥४४॥ विश्वामित्रस्य तु सुता देवरातादयः स्मृताः ॥ प्रख्याता त्रिषु लोकेषु तेषां नामानि मे शृणु ॥ ४५ ॥ देवश्रवाः कतिश्चैव यस्मात्कात्यायनाः स्मृताः ॥ शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणोर्जज्ञेऽथ रेणुमान् ॥ ४६ ॥ सांकृतिर्गालवश्चैव मुद्गलश्चेति विश्रुताः ॥ मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टकः ॥ ४७ ॥ कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य वै सुताः ॥ तेषां ख्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम् ॥ ४८ ॥ पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ॥ पार्थिवा देवराताश्च शालङ्कायनबाष्कलाः ॥४९॥ लोहिता यामदूताश्च तथा कारीषवः स्मृताः ॥ सौश्रुताः कौशिका राजन् तथान्ये सैन्धवायनाः ॥ ५० ॥ देवला रेणवश्चैव याज्ञवल्क्याघमर्षणाः ॥ औदुम्बरा ह्यभिष्णाता स्तारकायनचुञ्चुलाः ॥५१॥ शालावत्या हिरण्याक्षाः साङ्कृत्या गालवास्तथा॥बादरायणिनश्चान्ये विश्वामित्रस्य धीमतः ॥५२॥

अनेक प्रसिद्ध हैं ॥४८॥ पाणिनि १बभ्रव २ ध्यान ३ जप ४ पार्थिव ५ देवरात ६ शालंक ७ अयन ८ बाष्कल ९ ॥४९॥ लोहित १०यामदूत ११ कारीषव१२ यह बारह देवके पुत्र हुए, अर्थात् विश्वामित्रजीके पौत्र हुए; हे राजन् ! सैंध वायन आदि सुश्रुतके पुत्र हुए;यह विश्वामित्रके पौत्र कहाये ॥ ५० ॥ याज्ञवल्क्य, अघमर्षण, औदुंबर, अभिष्णात, तारकायन और चुंचुल ॥ ५१ ॥ नाम छः पुत्र हिरण्याक्षके उपजे; येभी विश्वामित्रके पौत्र कहाये; और सांकृति, गालव ये रेणुमानके पुत्र हुए; अर्थात् विश्वामित्रके पौत्र कहाये, और बादरायणि अर्थात् नारायण

और नर ये दोनों और विश्वामित्रके पुत्र भए ॥ ५२ ॥ पीछे यह सब प्रवर भेद करके विवाह करने लगे. ब्रह्मर्षि विश्वामित्रके वंशमें जन्मे हुओंका वसिष्ठादिके वंशवालोंके संग कौशिक गोत्रवालोंका संबन्ध हुआ ॥ ५३ ॥ विश्वामित्रके पुत्रोंमें शुनःशेफ नाम प्रथम पुत्र हुआ; यह भृगुवंशमें उत्पन्न होकर कौशिक वंशमें हुआ।।५४।।और यह इसप्रकार विश्वामित्रका पुत्र हुआ कि एक समयमें हरिश्चंद्र राजाके यज्ञमें शुनःशेफ पशुके स्थानमें नियुक्त किया गया ।।५५।। तब देवताओंने विश्वामित्रको फिर अर्पण किया;इस कारण यह देवरात नामसे प्रसिद्ध हुआ ।।५६।।

ऋष्यन्तरविवाह्याश्च कौशिका बहवः स्मृताः ॥ पौरवस्य महाराज ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च ॥ सम्बन्धोऽप्यस्य वंशेऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः ॥ ५३ ॥ विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेफोऽग्रजः स्मृतः ॥ भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः ॥५४॥ विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेफोऽभवत्किल ॥ हरिदश्वस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनियोजितः ॥ ५५ ॥ देवैर्दत्तः शुनःशेफो विश्वामित्राय वै पुनः ॥ देवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥५६॥ देवरातादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै सुताः ॥ दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात्तथाऽष्टकः ॥ ५७ ॥ अष्टकस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जह्नुगणो मया ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंशमायोर्महात्मनः ॥ ५८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि अमावसुवंशकीर्त्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ आयोः पुत्रास्तथा पञ्च सर्वे वीरा महारथाः ॥ स्वर्भानुतनयायां च प्रभायां जज्ञिरे नृप ॥ १ ॥ नहुषः प्रथमं जज्ञे वृद्धशर्मा ततः परम् ॥ रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ २ ॥ रजिः पुत्रशतानीह जनयामास पञ्च वै ॥ राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ॥ ३ ॥

इसप्रकार देवरात आदि सात पुत्र विश्वामित्रके हुए हैं. विश्वामित्रसे दृषद्वतीका पुत्र अष्टक हुआ ।।५७।। अष्टकके लौहि पुत्र हुआ;यह मैंने जन्हुगण प्रकाशित किया; अब इसके उपरान्त महात्मा आयु राजाका वंश वर्णन करते हैं ।। ५८ ।। इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां अमावसुवंशकीर्त्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ छ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! आयु राजाके राहुकी पुत्री प्रभामें महारथी पराक्रमी पांच पुत्र हुए ॥१॥ नहुष, वृद्धशर्मा, रंभ, रजि और अनेना नाम त्रिलोकीमें प्रसिद्धहुए ॥ २ ॥इनमेंसे रजि राजाके पांच सौ पुत्र उत्पन्न हुए;जिनके प्रतापसे

इन्द्रको भयदायक राजेय नाम क्षत्र हुआ ॥३॥ जब एक समय देवता और दैत्योंमें महासंग्राम प्रारंभ हुआ; तब देवता और दैत्य ब्रह्माजीके निकट जाकर बोले ॥४॥ हे भगवन् ! हम दोनोंमें किसकी जीत होगी; यह आप वर्णन कीजिये.हे प्रजापति ! हम तुम्हारे वचनको श्रवण करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले; जिनका सहायक हो महाबली रजि राजा शस्त्रोंको धारण कर युद्ध करेगा ये तीनों लोकोंकोभी जयकर लेंगे; इसमें संदेह नहीं है ॥ ६ ॥ जहां रजि राजा होवेगा; वहीं धैर्यता होगी जहां लक्ष्मी होगी वहीं धर्म होगा; जहां धर्म होगा वहां जय होगी; इसमें संशय

यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे ॥ देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाऽब्रुवन् ॥४॥ आवयोर्भगवन्युद्धे को विजेता भविष्यति ॥ ब्रूहि नः सर्वभूतेश श्रोतुमिच्छामि ते वचः ॥५॥ ब्रह्मोवाच ॥ येषामर्थाय संग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः ॥ योत्स्यते ते जनिष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः ॥ ६ ॥ यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः ॥ यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्मस्तत्र जयस्तथा ॥ ७ ॥ ते देवदानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजेर्जये ॥ अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृण्वाना भरततर्षभम् ॥ ८ ॥ स हि स्वर्भानुदौहित्रः प्रभायां समपद्यत ॥ राजा परमतेजस्वी सोमवंशप्रवर्द्धनः ॥ ९ ॥ ते हृष्टमनसः सर्वे रजिं देवाश्च दानवाः ॥ ऊचुरस्माज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्मुकम् ॥ १० ॥ अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदैत्ययोः ॥ स्वार्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्वं च प्रकाशयन् ॥ ११ ॥ रजिरुवाच ॥ यदि दैत्यागणान्सर्वान् जित्वा शक्रपुरोगमाः ॥ इन्द्रो भवामि धर्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे ॥ १२ ॥

नहीं ॥७॥ तब ब्रह्माजीके वचन सुनकर देवता और दैत्य रजिके आधीन जय जान अपनी २ जयकी इच्छासे उस श्रेष्ठ रजि राजाको वरनेके निमित्त गये ॥८॥ वह राहुका दौहित्र प्रभामें उत्पन्न चंद्रमाके कुलको वृद्धि करनेवाला था ॥ ९ ॥ उस रजि राजाके पास प्रसन्न हुए देवता और दैत्य जाकर बोले; हे राजन् ! अपने धनुषको धारण कर हमारी जयके निमित्त उद्यत हूजिये ॥१०॥ दैत्योंका प्रयोजन जाननेवाला, अपने यशको प्रकाश करता हुआ; स्वार्थके उद्देशसे रजि राजा बोला ॥११॥ हे देवताओ ! जो सब दैत्योंके समूहोंको अपने पराक्रमसे जीत लू तो मुझे धर्मसे इन्द्रपद दे

दो; तौ मैं युद्ध करूंगा ॥ १२ ॥ तब प्रथमसब देवता प्रसन्न होकर बोले, हे नृपते!तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा; ऐसे कहकर ॥ १३ ॥ सब देवता
चले गये तब; रजि राजाने जो देवतोंसे पूछा था; वही दैत्योंसे पूछा; कि यदि अपने वीर्यसे मैं सब देवताओंको जीत लूं तो तुम्हाराभी इन्द्र
बनूं ॥ १४ ॥ तब गर्वसे परिपूर्ण हुए दैत्य अपने प्रयोजनको जान राजासे अहंकार सहित वचन बोले॥१५॥ हे राजन् ! हमारा इन्द्र तो प्रहलाद
है; जिसके निमित्त हम देवताओंके जीतनेकी इच्छा करते हैं; हे राजन् ! जो आप हमारेभी इन्द्र होनेकी इच्छा करते हैं;तो आप यहीं रहिये आपकी
हमें आवश्यकता नहीं ॥ १६ ॥ तब रजि राजाने कहा सत्य है; पीछे देवताओंने आकर कहा, हे राजन् ! इन दैत्योंका जयकर आप हमारे इन्द्र

देवाः प्रथमतो भूयः प्रत्यूचुर्हृष्टमानसाः ॥ एवं यथेष्टं नृपते कामः संपद्यतां तव ॥ १३ ॥ श्रुत्वा सुरगणानां तु वाक्यं राजा
रजिस्तदा ॥ पप्रच्छासुरमुख्यांस्तु यथा देवानपृच्छत ॥ १४ ॥ दानवा दर्पपूर्णास्तु स्वार्थमेवानुगम्य ह ॥ प्रत्यूचुस्तं नृपवरं
साभिमानमिदं वचः ॥१५॥ अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यार्थे विजयामहे ॥ अस्मिंस्तु समये राजन् तिष्ठेथा राजसत्तम ॥ १६ ॥
स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यभिचोदितः ॥ भविष्यसीन्द्रो जित्वैवं देवैरुक्तस्तु पार्थिवः ॥ जघान दानवान्सर्वान्येऽवध्या वज्रपाणिनः
॥१७॥ स विप्रनष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी ॥ निहत्य दानवान्सर्वानाजहार रजिः प्रभुः ॥ १८ ॥ ततो रजिं महावीर्यं देवैः सह
शतक्रतुः ॥ रजेः पुत्रोऽहमिक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥ १९ ॥ इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्वेषां नात्र संशयः ॥ यस्याहमिन्द्रः
पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि कर्मभिः ॥ २० ॥

होंगे; इस कारण आप युद्धमें हमारी सहायता करो, तब उस संग्राममें जो इन्द्रसे नहीं मर सकते थे;उन सब दैत्योंको मार ॥१७॥ बहुत समयसे भ्रष्ट
हुई देवताओंकी लक्ष्मीको दैत्योंसे ग्रहण कर लिया ॥१८॥ तब महावीर्य रजि राजासे देवतोंसहित इन्द्र कहने लगा, हे राजन्!आप सब देवताओंके
इन्द्र हैं; इसमें संदेह नहीं कारण कि मैं इन्द्रकर्मसे तुम्हारा पुत्र कहलाऊंगा ॥ १९ ॥ इस प्रकार इन्द्रके वचनको सुन और इन्द्रकी मायासे
मोहित हो राजा प्रसन्न होकर इन्द्रसे बोला ॥ २० ॥

आपका मनोरथ पूर्ण होगा;जब देवताओंके समान राजा स्वर्गलोकमें बैठा ॥२१॥ तब राजाके पांच सौ पुत्र इन्द्रके सब पदार्थोंको ग्रहणकर स्वर्गलोकमें राज्य करने लगे ॥२२॥ इसप्रकार उन पांच सौ पुत्रोंने इन्द्रका सब स्थान सब प्रकारसे अपने आधीन कर लिया ॥ २३ ॥ तब बहुत दिन बीतनेपर राज्यभ्रष्ट और भाग्यभ्रष्ट महाबली इन्द्र बृहस्पतिजीसे कहने लगा॥२४॥हे ब्रह्मर्षि ! वडवेरीके फलके समान यज्ञके भागको मुझेभी दिया करो, जिससे मैं तृप्त होकर स्थित रहूं ॥२५॥ हे बृहस्पतिजी ! हे प्रभो ! मैं कृश दुःखित राज्यभ्रष्ट और यज्ञभागसे विहीन, बलपराक्रमसे

स तु शक्रवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया ॥ तथेत्येवाब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम् ॥ २१ ॥ तस्मिंस्तु देवसदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ ॥ दायाद्यमिन्द्रादाजह्रुराचारात्तनया रजेः ॥२२॥ पञ्च पुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः ॥ समाक्रमन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ॥२३॥ ततो बहुतिथे काले समतीते महाबलः ॥ हृतराज्योऽब्रवीच्छक्रो हृतभागो बृहस्पतिम् ॥२४॥ इन्द्र उवाच ॥ बदरीफलमात्रं वै पुरोडाशं विधत्स्व मे ॥ ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेयं तेजसाऽऽप्यायितः सदा ॥ २५ ॥ ब्रह्मन्कृशोऽहं विमना हृतराज्यो हृताशनः ॥ हतौजा दुर्बलो मूढो रजिपुत्रैः कृतः प्रभो ॥ २६ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ यद्येव चोदितः शक्रः त्वयाऽस्यां पूर्वमेव हि ॥ नाभविष्यत्त्वत्प्रियार्थमकर्त्तव्यं ममानघ ॥ २७ ॥ प्रयतिष्यामि देवेन्द्र त्वत्प्रियार्थं न संशयः यथा भागं च राज्यं च न चिरात्प्रतिलप्स्यसे ॥ २८ ॥ तथा तात करिष्यामि मा भूत्ते विक्लवं मनः ॥ ततःकर्म चकारास्य तेजसो वर्द्धनं तदा ॥ २९ ॥ तेषां च बुद्धिसंमोहमकरोद्द्विजसत्तमः ॥ नास्ति वादार्थशास्त्रं हि धर्मविद्वेषणं परम् ॥ ३० ॥

रहित,मूढ हो रहा हूं.यह मेरी दशा राजाके पुत्रोंने कर दी है ॥२६॥ बृहस्पतिजी बोले; हे इन्द्र!जो तुम्हारी यह इच्छा है, तो संशय मत करो; हे पापरहित!मैं तुम्हारी प्रीतिसे अकर्तव्य कार्य नहीं करता था ॥२७॥परन्तु हे देवेन्द्र! मैं तुम्हारे निमित्त उपाय करूंगा; कि जिसके प्रतापसे तुम्हे शीघ्रही यज्ञभाग और राज्यकी प्राप्ति होगी ॥२८॥ हे पुत्र!तू ग्लानिको मत करे; मैं तुम्हारा कार्य करूंगा. यह कह बृहस्पतिजीने ऐसा कर्म कराया कि जिससे इन्द्रका तेज बढने लगा ॥२९॥ और रजि राजाके पुत्रोंकी बुद्धिमें मोह उपजने लगा;उनको नास्तिवाद प्रतिवाद अर्थात् ईश्वर और धर्म

कुछ नहीं है, ऐसे प्रयोजनसे संयुक्त धर्मका शत्रु ॥ ३० ॥ अतितर्कोंसे संयुक्त असत् पुरुषोंको माननीय कथा सुनाई कि जिससे धर्ममें मन न लगे कथामेंभी धर्म न भावे ॥ ३१ ॥ और फिर अधर्मरूप शास्त्र बनाके उन अल्पबुद्धिवाले रजि राजाके पुत्रोंको पढाने लगे; वह निर्बुद्धि इस शास्त्रको पढकर सब धर्मशास्त्रोंके शत्रु हो गये ॥ ३२ ॥ उस कुत्सित मतको स्वीकार कर न्यायसे रहित कर्मोंको करने लगे; तिस अधर्मके प्रतापसे वे सब राजाके पुत्र क्षय हो गये ॥ ३३ ॥ तब अतिदुर्लभ त्रिलोकके राज्यको बृहस्पतिजीके प्रसादसे प्राप्त हो, इन्द्र परम प्रसन्न हुआ ॥ ३४ ॥ जब वे राजपुत्र राग द्वेष आदिसे उन्मत्त हो, ब्राह्मणके शत्रु धर्महीन ब्राह्मणके द्वेषी हुए, तब २ उनका बल पराक्रम नष्ट हो गया ॥ ३५ ॥ तब काम क्रोधसे

परमं तर्कशास्त्राणामसतां तन्मनोऽनुगम् ॥ न हि धर्मप्रधानानां रोचते तत्कथान्तरे ॥ ३१ ॥ ते तत्बृहस्पतिकृतं शास्त्रं श्रुत्वाऽल्पचेतसः ॥ पूर्वोक्तधर्मशास्त्राणामभवन् द्वेषिणः सदा ॥ ३२ ॥ प्रवक्तुर्न्यायरहितं तन्मतं बहु मेनिरे ॥ तेनाधर्मेण ते पापाः सर्व एव क्षयं गताः ॥ ३३ ॥ त्रैलोक्यराज्यं शक्रस्तु प्राप्य दुष्प्रापमेव च ॥ बृहस्पतिप्रसादाद्धि परां निर्वृतिमभ्ययात् ॥ ३४ ॥ ते यदा तु सुसंमूढा रागोन्मत्ता विधर्मिणः ॥ ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः ॥ ३५ ॥ ततो लेभे सुरैश्वर्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम् ॥ हत्वा रजिसुतान्सर्वान् कामक्रोधपरायणान् ॥ ३६ ॥ य इदं च्यावनं स्थानात्प्रतिष्ठां च शतक्रतोः ॥ शृणुयाद्धारयेद्वाऽपि न स दौरात्म्यमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि आयुर्वंशकीर्त्तनं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ रम्भोऽनपत्यस्तत्रासीद्वंशं वक्ष्याम्यनेनसः ॥ अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः ॥ १ ॥ प्रतिक्षत्रसुतश्चापि सृञ्जयो नाम विश्रुतः ॥ सृञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः ॥ २ ॥

युक्त मोहित चित्त रजि राजाके पुत्रोंको मारके इन्द्र अपने सिंहासनपर बैठा ॥ ३६ ॥ इस इन्द्रके स्थान भ्रष्ट होने और फिर प्रतिष्ठा प्राप्त होनेके आख्यानको जो मनुष्य श्रवण करता वा धारण करता है; वह दुःखको प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसका चित्त नहीं बिगडता है ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां आयुर्वंशानुकीर्त्तने अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ वैशंपायनजी बोले; कि रंभ राजाका वंश नहीं चला; इस कारण अनेनाके वंशको कहते हैं; अनेनाके अति यशस्वी प्रतिक्षत्र पुत्र हुआ ॥ १ ॥ प्रतिक्षत्रके सृंजय पुत्र जन्मा सृंजयके जय पुत्र हुआ; जयके विजय पुत्र हुआ ॥ २ ॥

पीछे विजयके कृति, कृतिके हर्य्यश्वत, हर्य्यश्वतके प्रतापी सहदेव पुत्र हुआ ॥३॥ सहदेवके धर्मात्मा नदीन, नदीनके जयत्सेन, जयत्सेनके संकृति पुत्र हुआ ॥४॥ संकृतिके महायशस्वी क्षत्रधर्मा पुत्र जन्मा; इसप्रकार अनेना राजाका वंश कहा. अब क्षत्रवृद्धका वंश सुनो ॥ ५ ॥ क्षत्रवृद्धके सुनहोत्र पुत्र जन्मा; सुनहोत्रके परम धार्मिक तीन पुत्र ॥ ६ ॥ काश, शल, गृत्समद हुए; गृत्समदसे शुनक, शुनकके शौनक नामसे प्रसिद्ध ॥ ७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र उत्पन्न हुए; और शल राजाके आर्ष्टिषेण, आर्ष्टिषेणके काशक पुत्र हुआ ॥ ८ ॥ हे राजन् ! काशकके काशय पुत्र हुआ; काशयके दीर्घतपा,

विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्यश्वतः सुतः हर्यश्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान् ॥ ३ ॥ सहदेवस्य धर्मात्मा नदीन इति विश्रुतः ॥ नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य संकृतिः ॥ ४ ॥ संकृतेरपि धर्मात्मा क्षत्रधर्मा महायशाः ॥ अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य मे शृणु ॥ ५ ॥ क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशाः ॥ सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकः ॥ ६ ॥ काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः ॥ पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ॥ शलात्मजश्चार्ष्टिषेणस्तनूजस्तस्य काशकः ॥ ८ ॥ काशस्य काशयो राजन्पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥ धन्वस्तु दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ॥९॥ तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः ॥ पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान् ॥१०॥ जनमेजय उवाच ॥ कथं धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान् ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि तन्मे ब्रूहि यथातथम् ॥ ११ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ धन्वन्तरेः संभवोऽयं श्रूयतां भरतर्षभ ॥ जातः स हि समुद्रात्तु मथ्यमाने पुराऽमृते ॥ १२ ॥ उत्पन्नः कलशात्पूर्वं सर्वतश्च श्रिया वृतः ॥ अभ्यसन् सिद्धिकार्यं हि विष्णुं दृष्ट्वा हि तस्थिवान् ॥ १३ ॥

दीर्घतपाके धन्व, धन्वके धन्वंतरि पुत्र हुआ ॥९॥ महातपस्या करनेके अंतमें फिर धन्वंतरीने देवता और मनुष्योंमें जन्म लिया ॥ १० ॥ जनमेजय बोले; धन्वंतरि देवता मनुष्योंमें कैसे जन्मे, यह जाननेकी मुझे इच्छा है; इस कारण इसे विस्तारसे कहो ॥११॥ वैशंपायनजी बोले; हे राजन् ! धन्वंतरीकी उत्पत्ति सुनो; जैसे अमृतके निमित्त समुद्र मथनेके समय वह सागरसे निकले थे॥१२॥ कलशेसे प्रथम उत्पन्न हुआ चारों ओर लक्ष्मीसे युक्त

सिद्धिकार्यका अभ्यास करता भगवान्‌को जपता हुआ एक पुरुष विष्णुके आगे स्थित हुआ ॥१३॥ तब विष्णुने कहा कि तुम जलसे उत्पन्न हुए हो, इस कारण तुम्हारा नाम अब्ज धरा; तब वह अब्ज विष्णुजीसे कहने लगा; हे प्रभो! मैं आपका पुत्र हूं ॥ १४ ॥ हे लोकेश्वर! आप मुझे यज्ञभाग और स्थान दीजिये; यह सुन विष्णु भग वान् सत्य वचन बोले ॥१५॥ कि यज्ञका विभाग और अग्निहोत्र आदि मैंने देवता और मुनियोंको विभाग कर दिये हैं॥१६॥और क्षुद्रवस्तु तुमसे महानुभावको देनी योग्य नहीं;और तुम इस समय उत्पन्न हुए हो,इससे अब कोई अवैदिक प्रधान भागभी कल्पना

अब्जस्त्वमिति होवाच तस्मादब्जस्तु स स्मृतः॥ अब्जः प्रोवाच विष्णुं वै तव पुत्रोऽस्मिवै प्रभो ॥१४॥ विधत्स्व भागं स्थानं च मम लोके सुरेश्वर ॥ एवमुक्तः स दृष्ट्वा वै तथ्यं प्रोवाच तं प्रभुः ॥ १५ ॥ कृतो यज्ञविभागो हि यज्ञियैर्हि सुरैः पुरा ॥ देवेषु विनियुक्तं हि विद्धि होत्रं महर्षिभिः ॥ १६ ॥ न शक्यमुपहोमा वै तुभ्यं कर्तुं कदाचन ॥ अर्वाक्भूतोऽसि देवानां पुत्र त्वं तु महीश्वरः ॥ १७ ॥ द्वितीयायां तु संभूत्यां लोके ख्यातिं गमिष्यसि ॥ अणिमादिश्च ते तसद्भिर्गर्भस्थस्य भविष्यति ॥१८॥ तेनैव त्वं शरीरेण देवत्वं प्राप्स्यसे प्रभो ॥ चरुमन्त्रैर्व्रतैर्जाप्यैर्यक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः ॥ १९ ॥ अष्टधा त्वं पुनश्चैवमायुर्वेदं विधास्यसि ॥ अवश्यं भावी ह्यर्थोऽयं प्राग्दृष्टस्त्वब्जयोनिना ॥२०॥ द्वितीयं द्वापरं प्राप्य भविता त्वं न संशयः ॥ इमं तस्मै वरं दत्त्वा विष्णुरन्तदधे पुनः ॥ २१ ॥ द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्रिः स काशिराट् ॥ पुत्रकामस्तपस्तेपे धिन्वन्दीर्घतपास्तदा ॥ २२ ॥

नहीं कर सक्के॥ १७ ॥ इससे दूसरे जन्ममें संसारमें तुम महा ख्यातिको प्राप्त होगे;गर्भमेंही अणिमादिक अष्टसिद्धि प्राप्त होगी ॥ १८ ॥ और उस शरीरसेही तुमको देवत्व प्राप्त होगा; हे प्रिये ! चरु, मंत्र, व्रत, जप आदिसे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ १९ ॥ तुम आयुर्वेदके आठ विभाग करोगे; इस अवश्यंभावीको ब्रह्माजी जानते हैं ॥ २० ॥ इसकारण द्वापर युगमें तुम दूसरे शरीरको प्राप्त होगे; इसमें संदेह नहीं; इसप्रकार वर देकर विष्णु भगवान् अंतर्धान हो गये॥२१॥जब द्वापर युग प्राप्त हुआ; तब काशीका राजा धन्व नाम पुत्रकी कामनासे कठोर तप करने लगा॥२२॥

१ कायचिकित्सा, बालचिकित्सा, भूतप्रेतादि, शिरोनेत्रादि, शल्य (शस्त्रघात), दंष्ट्रा (स्थावरजंगमविष) की चिकित्सा, जरा (रसायनादिसे वृद्धावस्था दूर करनी), वृष (वाजीकरण) यह वैद्यकके आठ अंग हैं.

और यह ध्यान करने लगा कि जो देवता मुझे पुत्र देगा मै उसीकी शरण हुआ हूं; अर्थात् समुद्र मथनेके समय जो अब्ज नाम देवता हुआ, तिसको पुत्रके निमित्त आराधना करने लगा ॥ २३ ॥ तब प्रसन्न होकर वही अब्ज देवराजसे बोले; जो तेरी इच्छा है सो वर मांग; हे राजन्! वही मैं तुझे दूंगा॥२४॥तब राजा बोला; हे भगवन्! जो आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं तो आपही मेरे पुत्र होकर संसारमें प्रसिद्ध हो;तब वह देव ऐसेही होगा यह कह अंतर्धान हो गये ॥ २५॥ तब तिस राजाकी रानीमें धन्वंतरि नाम साक्षात् देवस्वरूप सब रोगोंके नाश करनेवाले काशिराज उत्पन्न हुए॥२६॥

प्रपद्ये देवतां तां तु या मे पुत्रं प्रदास्यति ॥ अब्जं देवं सुतार्थाय तदाऽऽराधितवान्नृपः ॥२३॥ ततस्तुष्टः स भगवानब्जः प्रोवाच तं नृपम् ॥ यदीच्छसि वरं ब्रूहि तत्ते दास्यामि सुव्रत ॥२४॥ नृप उवाच ॥ भगवन्यदि तुष्टस्त्वं पुत्रो मे ख्यातिमान् भव ॥ तथेति समनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत ॥२५॥ तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा ॥ काशिराजो महाराज सर्वरोगप्रणाशनः॥ २६ ॥ आयुर्वेदं भरद्वाजात्प्राप्येह भिषजां क्रियाम् ॥ तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥२७॥ धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ॥ अथकेतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः ॥ २८ ॥ सुतो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः ॥ दिवोदासस्तु धर्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥२९॥ एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं नृप ॥ शून्यां निवासयामास क्षेमको नाम राक्षसः ॥ ३० ॥ शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना ॥ शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री नात्र संशयः ॥३१॥ तस्यां तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः ॥ विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत् ॥ ३२ ॥

फिर उन्हीं धन्वंतरिने कर्तव्यसहित आयुर्वेदको भरद्वाज ऋषिसे पढके पुनः विस्तारपूर्वक बनाय आठ प्रकारसे शिष्योंको पढाया ॥ २७ ॥ धन्वंतरीके केतुमान् पुत्र हुआ; केतुमानके भीमरथ पुत्र हुआ॥२८॥भीमरथके प्रजेश्वर दिवोदास पुत्र हुआ; यही धर्मात्मा दिवोदास काशीका राजा हुआ॥२९॥ हे राजन्! उसी कालमें शून्यरूप काशीपुरीमें क्षेमक नाम राक्षसने प्रवेश किया ॥ ३०॥ क्योंकि कारण यह था कि बुद्धिमान् निकुंभ मुनिने काशीपुरीको शाप दिया कि सहस्र वर्षतक काशी पुरी शून्य रहेगी, इसमें संदेह नहीं॥ ३१ ॥ जब काशी पुरीको शाप दिया तब दिवोदास राजाने

गोमती नदीके तटपर काशी बसाई ॥ ३२ ॥ उस पुरीमें पहले भद्रश्रेण्य राजाका राज्य था; फिर दिवोदास राजाने भद्रश्रेण्यके उत्तम धनुष्य धारण करनेवाले १०० पुत्रोंको ॥ ३३ ॥ वधकर अपने बलसे उस पुरीमे अपना राज्य कर लिया ॥ ३४ ॥ जन्मेजय बोले कि काशी पुरीको निकुंभ मुनिने किसकारण शाप दिया; इन धर्मात्मा मुनिने सिद्ध क्षेत्रको क्यों शापित किया ? निकुंभ मुनि कौन थे ॥ ३५ ॥ वैशंपायन बोले; कि महाप्रतापी राजर्षि दिवोदास राजा प्रकाशमान् काशी पुरीमें राज्य करने लगा ॥ ३६ ॥ उसी समय पार्वतीसहित महादेवजी पार्वतीकी प्रीति करनेको हिमालयके

भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसीत्यभूत् ॥ भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥३३॥ हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नरर्षभः ॥ भद्रश्रेण्यस्य तद्राज्यं हृतं तेन बलीयसा ॥३४॥ जनमेजय उवाच ॥ वाराणसीं निकुम्भस्तु किमर्थं शप्तवान् प्रभुः ॥ निकुम्भकश्च धर्मात्मा सिद्धिक्षेत्रं शशाप यः ॥३५॥ वैशम्पायन उवाच ॥ दिवोदासस्तु राजर्षिर्नगरीं प्राप्य पार्थिवः ॥ वसति स्म महातेजाः स्फीतायां तु नराधिपः ॥ ३६ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु कृतदारो महेश्वरः ॥ देव्याः स प्रियकामस्तु न्यवसच्छ्वशुरान्तिके ॥ ३७ ॥ देवाज्ञया पार्षदा ये त्वधिरूपास्तपोधनाः ॥ पूर्वोक्तैरुपदेशश्च तोषयन्ति स्म पार्वतीम् ॥३८॥ हृष्यते वै महादेवी मेना नैव प्रहृष्यति ॥ जुगुप्सत्यसकृत्तां वै देवीं देव तथव सा ॥३९॥ सपाषदस्त्वनाचारस्तव भर्ता महेश्वरः ॥ दरिद्रः सर्वदैवासौ शीलं तस्य न वर्त्तते ॥४०॥ मात्रा तथोक्ताऽवरदा स्त्रीस्वभावाच्च चुकुधे ॥ स्मितं कृत्वा च वरदा भवपार्श्वमथागमत् ॥ ४१ ॥ विवर्णवदना देवी महादेवमभाषत ॥ नेह वत्स्याम्यहं देव नय मां स्वं निकेतनम् ॥ ४२ ॥

समीपमें वास करते थे ॥ ३७ ॥ और महादेवजीकी आज्ञासे सब तपस्वीरूप पार्षद पूर्वोक्त उपदेशों करके पावतीजीको संतुष्ट करने लगे ॥ ३८ ॥तब पार्वतीजी प्रसन्न होने लगीं,परन्तु पार्वतीजीकी माता मना प्रसन्न न हुई; और वारंवार पावतीजी और महादेवजीकी निंदा करती थीं ॥ ३९ ॥ और कहने लगी कि हे पुत्री ! पार्षदोंसहित तुम्हारे स्वामी महादेव सदा दरिद्रही बने रहते हैं; इनमें शीलादिक कुछ नहीं है ॥ ४० ॥ इसप्रकार माताके वचनको सुन स्त्रीस्वभावसे क्रोधित हो और आश्चर्यमान् वह शिवनिंदकोंको दंड देनेहारी पार्वती महादेवके समीप आ ॥ ४१ ॥ और खिन्नवदन हो महा-

देवजीसे बोली; हे देव ! मैं यहां रहना नहीं चाहती; अपने स्थानको मुझे ले चलो ॥ ४२ ॥ तब महादेवजी त्रिलोकीके स्थानोंको देखकर पृथ्वीमंडलमें सिद्ध क्षेत्र ॥ ४३ ॥ काशीपुरीकोवसने योग्य विचारा; परंतु दिवोदास राजाके राज्यसे युक्त उस काशीपुरीको विचार कर शिवजी ॥ ४४ ॥ निकटमें स्थित हुए निकुंभ पार्षदसे बोले; हे गणाधीश ! तुम जाकर वाराणसीको जनशून्य कर दो ॥ ४५ ॥ और यह कार्य कोमल उपायसे करना; क्योंकि काशीपुरीका दिवोदास राजा अतिपराक्रमी है; तब निकुंभ पार्षदने काशीपुरीमें ॥४६॥ जाकर कंडुकनाम नापितको स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा; हे अनघ ! तू मेरा स्थान रच मैं तेरा कल्याण करूंगा॥४७॥ तू मेरे रूपकी प्रतिमा बना काशी पुरीमें स्थापित कर दे; तब स्वप्नके उपरान्त इसी प्रका-

तथा कर्तुं महादेवः सर्वलोकानवैक्षत ॥ वासार्थं रोचयामास पृथिव्यां कुरुनन्दन ॥४३॥ वाराणसी महातेजाः सिद्धिक्षेत्रंमहेश्वरः॥ दिवोदासेन तां ज्ञात्वा निविष्टां नगरीं भवः॥४४॥पार्श्वे तिष्ठन्तमाहूय निकुम्भमिदमब्रवीत् ॥ गणेश्वर पुरीं गत्वा शून्यां वाराणसीं कुरु ॥ ४५ ॥ मृदुनैवाभ्युपायेन ह्यतिवीर्यः स पार्थिवः ॥ ततो गत्वा निकुम्भस्तु पुरीं वाराणसीं तदा ॥४६॥ स्वप्ने निदर्शयामास कण्डुकं नाम नापितम् ॥ श्रेयस्तेऽहं करिष्यामि स्थानं मे रोचयानघ ॥ ४७ ॥ मद्रूपां प्रतिमां कृत्वा नगर्यन्ते तथैव च ॥ ततः स्वप्ने यथोदिष्टं सर्वं कारितवान्नृप ॥ ४८ ॥ पुरीद्वारे तु विज्ञाप्य राजानं च यथाविधि ॥ पूजां तु महतीं तस्य नित्यमेव प्रयोजयत् ॥४९॥ गन्धैश्च धूपमाल्यैश्च प्रोक्षणीयैस्तथैव च ॥ अन्नपानप्रयोगैश्च अत्यद्भुतमिवाभवत् ॥ ५० ॥ एवं संपूज्य ते तत्र नित्यमेव गणेश्वरः ॥ ततो वरसहस्रं तु नागराणां प्रयच्छति ॥ पुत्रान् हिरण्यमायुश्च सर्वान्कामांस्तथैव च ॥ ५१ ॥ राज्ञस्तु महिषी श्रेष्ठा सुयशा नाम विश्रुता ॥ पुत्रार्थमागता देवी साध्वी राज्ञा प्रचोदिता ॥ ५२ ॥

रसे उस नापितने मूर्तिको स्थापित किया ॥४८॥ और राजाको जनाके पुरीके द्वारपर उस मूर्तिके निमित्त बहुतसी पूजा नित्यप्रति करने लगा॥४९॥ गंध, धूप, फूलोंकी माला, अनेक प्रकारकी बली, अन्न पान आदिसे अत्यन्त पूजा होने लगी ॥५०॥ इस प्रकार वह निकुंभ पार्षद नित्य पूजित हो काशीवासियोंको पुत्र, द्रव्य, आयु, मनःकामना आदि सहस्रों प्रकारके वरदेने लगा ॥ ५१ ॥ एक समयमें सुयशा नाम काशीके राजाकी पटरानी राजाकी भेजी पुत्रकी कामनासे आई ॥ ५२ ॥

उस मूर्तिके निकट जाकर उसने अनेक प्रकारकी पूजा कर पुत्रकी याचना की।।५३।।इसप्रकार रानीने प्रतिदिन पूजा की,परन्तु उसने पुत्र नहीं दिया इस कारणसे कि मुझपर राजा क्रोध करे तौ कार्यकी सिद्धि होवे।।५४।।तब बहुत कालमें राजाको क्रोध आया और कहने लगा कि देखो,यह भूत महाद्वारपै स्थित हो नगरके मनुष्योंपर प्रसन्न हो सैंकड़ों वर देता है ।।५५।। और मुझे क्यों नहीं देता; और मेरे मित्र इस नगरीमें अनेक प्रकारसे पूजतेभी हैं।।५६।।तथा पुत्रकी प्राप्तिके निमित्त मैंने अपनी रानीभी इसकी पूजाको वारंवार भजी, परन्तु यह देव मुझे पुत्र नहीं देता; किसी कार-

पूजां तु विपुलां कृत्वा देवी पुत्रमयाचत ॥ पुनः पुनरथागत्य बहुशः पुत्रकारणात् ॥ ५३ ॥ न प्रयच्छति पुत्रं हि निकुम्भः कारणेन हि ॥ राजा तु यदि नः कुप्येत्कार्यसिद्धिस्ततो भवेत् ॥५४॥अथ दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत् ॥ भूत एष महान्द्वारि नागराणां प्रयच्छति ॥५५॥ प्रीतो वरान्वै शतशो मम किं न प्रयच्छति ॥ मामकैः पूज्यते नित्यं नगर्यां मे सदैव हि ॥५६॥ विज्ञापितो मयाऽत्यर्थं देव्या मे पुत्रकारणात् ॥ न ददाति च पुत्रं मे कृतघ्नः केन हेतुना ॥ ५७ ॥ ततो नार्हति सत्कारं मत्सकाशाद्विशेषतः ॥ तस्मात्तु नाशयिष्यामि स्थानमस्य दुरात्मनः ॥ ५८ ॥ एवं स तु विनिश्चित्य दुरात्मा राजकिल्विषी ॥ स्थानं गणपतेस्तस्य नाशयामास दुर्मतिः ॥ ५९ ॥ भग्नमायतनं दृष्ट्वा राजानमशपत्प्रभुः ॥ यस्मादनपराधस्य त्वया स्थानं विनाशितम् ॥ पुर्यकस्मादियं शून्या तव नूनं भविष्यति ॥ ६० ॥ ततस्तेन तु शापेन शून्या वाराणसी तदा ॥ शप्त्वा पुरीं निकुम्भस्तु महादेवमथागमत् ॥ ६१ ॥

णसे यह कृतघ्नी है ॥५७॥ अब यह मुझसे विशेष सत्कार नहीं पावेगा; और इसी कारणसे मैं इस दुष्ट देवके स्थानका नाश कर दूंगा ॥५८॥ इसप्रकार विचार कर दुरात्मा काशीके राजाने उस निकुंभ नामवाले महादेवजीके पार्षदके स्थानको नाश कर दिया ॥५९॥ तब गिरे हुए स्थानको देखकर उस गणने राजाको शाप दिया कि विना अपराधके तैंने मेरा स्थान नष्ट किया; इस कारण आपही आप तेरी पुरीभी शून्य हो जायगी॥ ॥ ६० ॥ तिस निकुंभके शापसे काशीपुरी शून्य हो गई. इसप्रकार निकुंभ पुरीको शाप देके फिर महादेवजीके समीप चला गया ॥ ६१ ॥

तब अकस्मात् चारों ओरसे वह पुरी शून्य हो गई; तब उस पुरीमें महादेवजीने 'मोक्षलक्ष्मीविलास नामक' अपना स्थान बनाया ॥ ६२ ॥ वहां पार्वतीके संग महादेवजी निवास करने लगे; परन्तु गृहक आश्चर्यसे पार्वतीका मन वहां नहीं लगा (कारण कि वहां अनधिकारीकी भी मुक्ति होती थी) और महादेवजीसे बोली, इस पुरीमें मैं नहीं वसूंगी ॥ ६३ ॥ तब महादेवजी बोले; इस स्थानको हम नहीं त्यागेंगे; और अन्य स्थानमें नहीं जायंगे; हे देवी ! तुम घरको जाओ; अथवा शिवजी कहते हैं मैं नित्य मुक्त ईश्वर शरीर नामक गृहमें निवास नहीं करता; क्योंकि मेरा स्थान अविमुक्त है. जो तीन कालमें भी आत्मस्वरूप होनेसे अत्याज्य है; अपनी महिमामें स्थित हो मैं देहकी

अकस्मात्तु पुरी सा तु विद्रुता सर्वतोदिशम् ॥ तस्यां पुर्यां ततो देवो निर्ममे पदमात्मनः ॥ ६२ ॥ रमते तत्र वै देवो रममाणो गिरेः सुताम् ॥ न रतिं तत्र वै देवी लभते गृहविस्मयात् ॥ वसाम्यत्र न पुर्यां तु देवी देवमथाब्रवीत् ॥६३॥ देव उवाच ॥ नाहं वेश्मनि वत्स्यामि अविमुक्तं हि मे गृहम् ॥ नाहं तत्र गमिष्यामि गच्छ देवि गृहं प्रति ॥६४॥ हसन्नुवाच भगवान् त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ॥ तस्मात्तदविमुक्तं हि प्रोक्तं देवेन वै स्वयम् ॥६५॥ एवं वाराणसी शप्ता अविमुक्तं च कीर्तितम् ॥ ६६ ॥ यस्मिन्वसति व देवः सर्वदेवनमस्कृतः ॥ युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वरः ॥ ६७ ॥

प्रतिष्ठा नहीं चाहता, जो तुम्हारा मन यहां न लगे तौ घर जाओ अर्थात् संसारदेहमें प्रवेश करो; म तौ असंग हूं इससे काशीका त्याग होनेहीमें संसार होता है यह सिद्ध हुआ ॥ ६४ ॥ जब भगवान् त्र्यम्बक त्रिपुरहन्ताने यह वचन हंसकर कहा उसी दिनसे यह क्षेत्र अविमुक्त सिद्ध हुआ; श्रवण, मनन, निदिध्यासन रूप तीन नेत्र होनेसे शिवका त्र्यम्बक नाम है;यथा 'आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्ये' ति श्रुतेः स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरोंके नाश करनेसे त्रिपुरान्तक है ॥ ६५ ॥ ऐसे वाराणसीको शाप हुआ; और यह अविमुक्त क्षेत्र कहाया ॥ ६६ ॥ इसकारण सब देवताओंसे पूजित महादेवजी सब कलामें काशीपुरीमें वसते रहते हैं; तथा कृतयुग, त्रेता, द्वापर इन तीन युगोंमें साक्षात् पार्वतीके संग महादेव काशीमें

वसते हैं ॥ ६७ ॥ और कलियुगमें उन महात्मा महादेवजीका वह पुर दीखता नहीं है; काशीमें अंतर्धान हो जाता है, इस पुरके अंतर्धान होनेमें पुरी तौ फिरभी वस जाती है;इस प्रकार काशीको शाप हुआ और फिर वसी ॥ ६८ ॥ भद्रश्रेण्य राजाके दुर्दम पुत्र हुआ;यह दिवोदास राजाने बालक जान दयासे छोड़ दिया ॥ ६९ ॥ समय पाके इस दुर्दमने हैहयको पुत्रत्व करके राजा दिवोदाससे सब पदार्थ छीन लिये ॥ ७० ॥ इस भद्रसेनके महात्मा दुर्दम पुत्रने क्षत्रिय होनेके कारण अपना वैर पूरा निकाला ॥ ७१ ॥ दिवोदासके दृषद्वती रानीमें प्रतर्दन पुत्र हुआ,

अन्तर्धानं कलौ याति तत्पुरं हि महात्मनः ॥ अन्तर्हिते पुरे तस्मिन्पुरी सा वसते पुनः ॥ एवं वाराणसी शप्ता निवेशं पुनरागता ॥ ६८ ॥ भद्रश्रेण्यस्य पुत्रो वै दुर्दमो नाम विश्रुतः ॥ दिवोदासेन बालेति घृणया स विवर्जितः ॥ ६९ ॥ हैहयस्य तु दायाद्यं कृतवान् वै महीपतिः ॥आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥ ७० ॥ भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना ॥ वैरस्यान्तं महाराज क्षत्रियेण विधित्सता ॥ ७१ ॥ दिवोदासाद्दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः ॥ तेन पुत्रेण बालेन प्रहृतं तस्य वै पुनः ॥ ७२ ॥ प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सभार्गौ बभूवतुः ॥ वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ॥ ७३ ॥ अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥ अलर्कं प्रति राजर्षिं लोकैर्गीतः पुरातनैः ॥ ७४ ॥ षष्टिर्वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च ॥ युवा रूपेण संपन्न आसीत्काशिकुलोद्वहः ॥ ७५ ॥

उसने महात्मा बाल्यावस्थाहीमें दुर्दमका राज्य ले लिया ॥७२॥ प्रतर्दनके वत्स, भार्गव नाम दो पुत्र हुए; वत्सके अलर्क और अलर्कके सन्नति पुत्र हुआ ॥ ७३ ॥ यह अलर्क काशीका राजा ब्रह्मण्य और सत्यवादी हुआ; और इस राजर्षिके विषयमें प्राचीनोंसे ॥ ७४ ॥ ऐसा भी सुना है; कि६६सहस्र वर्षतक तरुण रूपसम्पन्न यह राजा रहा है ॥ ७५ ॥

१ जबतक कलियुगका संध्यांश रहता है, तबतक द्वापरके धर्म रहते हैं. इससे छत्तीस सहस्र वर्षतक कलियुगमें पुरी रहती है.

और लोपामुद्राके प्रतापसे इस राजाने परम आयु पाई थी;इन यौवनसम्पन्नका बड़ा राज्य था; इसीने शापके अंतमें क्षेमक राक्षसको मार ॥ ७६ ॥ फिर मनोहर काशी पुरी बसाई है; सन्नतिके धर्मात्मा सुनीथ पुत्र हुआ ॥७७॥ सुनीथके अतियशस्वी क्षेम्य नाम पुत्र हुआ; क्षेम्यके केतुमान्, केतुमानके सुकेतु पुत्र हुआ ॥ ७८ ॥ सुकेतुके धर्मकेतु पुत्र हुआ; धर्मकेतुके महारथी सत्यकेतु पुत्र उपजा ॥७९॥ सत्यकेतुके विभु पुत्र राजा हुआ,

लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः ॥ तस्यासीत्सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः ॥ शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ॥७६॥ रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं पुनः ॥ सन्नतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः ॥ ७७ ॥ सुनीथस्य तु दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः॥क्षेम्यस्य केतुमान्पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः ॥७८॥ सुकेतोस्तनयश्चापि धर्मकेतुरितिस्मृतः॥धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः ॥ ७९ ॥ सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥ आनर्त्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्तु तत्सुतः ॥ ८० ॥ सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः सुधार्मिकः ॥ धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः ॥८१॥ वेणुहोत्रसुतश्चापि भर्गो नाम प्रजेश्वरः॥ वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भृगुभूमिस्तु भार्गवात् ॥ ८२ ॥ एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तयोः पुत्राः सहस्रशः ॥ इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता नहुषस्य निबोध मे ॥ ८३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ छ ॥

विभुके आनर्त, आनर्तके सुकुमार पुत्र हुआ॥८०॥ सुकुमारके धर्मात्मा धृष्टकेतु पुत्र हुआ; धृष्टकेतुके वेणुहोत्र पुत्र हुआ ॥८१॥ वेणुहोत्रके भर्ग नाम पुत्र हुआ; पूर्वोक्त वत्सके वत्सभूमि पुत्र हुआ; और भार्गवके भृगुभूमि पुत्र हुआ ॥८२॥ इस प्रकार अंगिराके पुत्र भार्गवके वंशमें हुए हैं;उनके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सहस्रों पुत्र हुए, यह काश्यपके पुत्र वर्णन किये. अब नहुषके पुत्रोंको सुनो ॥ ८३ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्व-भाषाटीकायां ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

वैशपायनजी बोले; विरजा नाम पितृकन्यामें इन्द्रके समान तेजस्वी नहुषके पुत्र ॥१॥ यति, ययाति, संयाति, आयति, पांचिक, सुयाति, यह छः पुत्र हुए; इनमें आयति राजा हुआ,तिनमें यति बडा पुत्र हुआ,इससे छोटा ययाति हुआ ॥ २ ॥ और ययातिने ककुत्स्थकी कन्या गौसे विवाह किया. यति मोक्षमार्गमें स्थित हो मुनि हो गया ॥ ३ ॥ और ययातिने पांचों भाइयोंको जीत शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानीकोऔर वृषपर्वा राक्षसकी पुत्री शर्मिष्ठाको विवाहा ॥ ४ ॥ यदु, तुर्वसु ये दो पुत्र देवयानीके उपजे और द्रुह्यु, अण, पूरु ये तीन पुत्र शर्मिष्ठाके उपजे ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः ॥ नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः ॥१॥ यतिर्ययातिः संयातिरायतिः पाञ्चिको भवः ॥ सुयातिः षष्ठस्तेषां वै ययातिः पार्थिवोऽभवत् ॥ यतिर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै ययातिस्तु ततः परम् ॥२॥ ककुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे परमधार्मिकः ॥ यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः ॥ ३ ॥ तेषां ययातिः पञ्चानां विजित्य वसुधामिमाम् ॥ देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः ॥ शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः ॥ ४ ॥ यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ॥ द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ५ ॥ तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम् ॥ असङ्गं काञ्चनं दिव्यं दिव्यैः परमवाजिभिः ॥ ६ ॥ युक्तं मनोजवैः शुभ्रैर्येन भार्यामुवाह सः ॥ स तेन रथमुख्येन षड्रात्रेणाजयन्महीम् ॥ ययातिर्युधि दुर्द्धर्षस्तथा देवान्सवासवान् ॥७॥ स रथः पौरवाणां तु सर्वेषामभवत्तदा ॥ यावत्तु वसुनाम्नो वै कौरवाज्जनमेजयः ॥ ८ ॥ कुरोः पुत्रस्य राजेन्द्र राज्ञः पारीक्षितस्य ह ॥ जगाम सरथो नाशं शापाद्गार्ग्यस्य धीमतः ॥ ९ ॥

॥ ८३ ॥

और इसी ययाति राजासे प्रसन्न हो इन्द्रने मनक वेगके समान वेगवान् और श्वेतरंगके ॥ ६ ॥ दिव्य घोडोंसे संयुक्त और परम प्रकाशवान् सुवर्णसे बना हुआ रथ दिया; जिसमें वह भार्याको लाया था और इसी रथसे छः रात्रिमें सम्पूर्ण पृथ्वीको और इन्द्रसहित सब देवताओंको युद्धमें इसने जीत लिया था॥७॥यही रथ इनक वंशमें सब राजोंपर रहा, परन्तु जिस समय सुनामा जन्मेजय कौरव वंशमें हुआ ॥ ८ ॥ तब कुरुके पुत्र राजेन्द्र

राजा परीक्षित् पुत्र जन्मेजयके समय गर्ग मुनिके पुत्रके शापसे वह रथ नष्ट हो गया ॥ ९ ॥ इस जन्मेजय राजाने वाक्शूर नाम गर्ग मुनिके पुत्रको वधकर डाला. इससे राजाको ब्रह्महत्या लगी ॥ १० ॥ लोहूकी गंधसे संयुक्त हो यह राजा जहां जहां जाता था, वहीं वहीं पुरवासी मनुष्य इसका त्याग करते, तब यह कहीं भी सुखको प्राप्त न हुआ ॥११॥ जब इसे कहीं भीख न मिली, तब यह इन्द्रोत नाम शौनककी शरणमें जा रहा ॥ १२ ॥ शौनक मुनिने इस जनमेजयसे पवित्र होनेके निमित्त अश्वमेध यज्ञ कराया ॥ १३ ॥ यज्ञान्त स्नान करनेसे राजाके शरीरसे लोहूकी गंधि नष्ट हो गई;

गार्ग्यस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः ॥ वाक्शूरं हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः ॥१०॥ स लोहगन्धी राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः ॥ पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित् ॥ ११ ॥ ततः स दुःखसंतप्तो नालभत्संविदं क्वचित् ॥ इन्द्रोतः शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत ॥१२॥ याजयामास चेन्द्रो ताः शौनको जनमेजयम् ॥ अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः ॥ १३ ॥ स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावभृथमेत्य ह ॥ स च दिव्यो रथा राजन् वसोश्चेदिपतेस्तदा ॥ दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः ॥१४॥ बृहद्रथात्क्रमेणैव गतो बार्हद्रथं नृपम् ॥ ततो हत्वा जरासंधं भीमस्तं रथमुत्तमम् ॥१५॥ प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ॥ सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम् ॥१६॥ व्यभजत्पञ्चधा राजन्पुत्राणां नाहुषस्तदा ॥ दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं मतिमान्नृपः ॥ १७ ॥ प्रतीच्या मुत्तरस्यां च द्रुह्युं चानु च नाहुषः ॥ दिशि पूर्वोत्तरस्यां वै यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत् ॥ १८ ॥

तिस समय प्रसन्न हुए इन्द्रसे यही दिव्यरथ वसु नाम चदरीक राजाने ले लिया ॥ १४ ॥ फिर वही रथ बृहद्रथसे जरासंधने लिया. जरासंधको मार वही रथ भीमसेनने लिया ॥ १५ ॥ हे जनमेजय ! भीमसेनने प्रसन्न हो वही रथ श्रीकृष्णको दिया; और सात द्वीपोंसे संयुक्त सागरपर्यन्त इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत ॥१६॥ ययाति राजाने अपने पुत्रोंको पांच भाग करके पृथ्वी बांट दी; दक्षिण पूर्वकी दिशा अग्निकोणमें तुर्वसुको राज्य दिया॥१७॥ और पश्चिम दिशामें द्रुह्युको राज्य दिया; पूर्व और उत्तर दिशामें ईशानमें यदुको राज्य दिया ॥ १८ ॥

मध्यदेशमें पूरुको राज्य दिया; इस प्रकार सात द्वीपोंपर्यंत पृथ्वीको ययाति राजाने पुत्रोंको वांट दी ॥ १९ ॥ वह अबभी धर्मपूर्वक सब स्थानोंको पालन करते हैं, हे राजन् ! इनका वंश आगे कहेंगे ॥२०॥ इसप्रकार महाबली पांच पुत्रोंको राज्य दे, धनुषको धार वृद्धाअवस्था होनेसे शेष भार बंधुओंको समर्पण कर दिया, और शस्त्र त्यागन कर पृथ्वीपति पृथ्वीको देख॥२१॥राजा ययाति बहुत प्रसन्न हुआ, और विभाग करने उपरान्त यदुसे बोला ॥ २२ ॥ हे पुत्र! मेरी वृद्धावस्थाको तू ग्रहण कर, तुझे वृद्धावस्था दे मैं तेरी तरुण अवस्था ले पृथ्वीमें विचरूंगा, तब यदु कहने लगा

मध्ये पूरुं च राजानमभ्यषिञ्चत नाहुषः ॥ तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥१९॥ यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते ॥ प्रजास्तेषां पुरस्तात्तु वक्ष्यामि नृपसत्तम ॥ २० ॥ धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च पञ्चभिः पुरुषर्षभैः ॥ जरावानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥ निःक्षिप्तशस्त्रः पृथिवीं निरीक्ष्य पृथिवीपतिः ॥ २१ ॥ प्रीतिमानभवद्राजा ययातिरपराजितः ॥ एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमब्रवीत् ॥२२॥ जरां मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरण वै ॥ तरुणस्तव रूपेण चरेय पृथिवीमिमाम् ॥ जरां त्वायि समाधाय तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥२३॥ अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ॥ अनपाकृत्य तां राजन्न ग्रहीष्यामि ते जराम्॥२४॥ जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः ॥ तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥ २५ ॥ सन्ति ते बहवः पुत्रा भक्तः प्रियतरा नृप ॥ प्रतिग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥ २६ ॥ स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः ॥ उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्हयन्सुतम् ॥ २७ ॥ क आश्रयस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते ॥ मामनादृत्य दुर्बुद्धे यदहं तव देशिकः ॥ २८ ॥

॥ २३ ॥ मैंने अबतक कुछ सुकृत नहीं किया है और पान भोजन आदिसे उपजे बहुतसे दोष वृद्ध अवस्थामें पीडा देते हैं, इस कारण हे राजन् ! तुम्हारी वृद्धाअवस्थाको मैं ग्रहण नहीं कर सक्ता ॥२४॥२५॥ हे नृप ! मुझसेभी अतिप्रिय तुम्हारे बहुतसे पुत्र हैं, हे धर्मज्ञ ! तिनमेंसे एक किसीको वृद्धाअवस्था देदो ॥२६॥ यह वचन यदुके सुन कोपकर ययाति राजा पुत्रकी निन्दा करते कहने लगा ॥२७॥ हे दुर्बुद्धे ! मेरा अनादर करके ऐसा

कौन आश्रम व कौन धर्म है जिसका तू आचरण करेगा ॥ २८ ॥ ऐसे कहकर राजाने यदुको शाप दिया कि हे मूढ ! तुम्हारी सन्तानको राज्यपदवी नहीं मिलेगी ॥ २९ ॥ फिर ययाति राजाने तुर्वसु, द्रुह्यु, अणु इन तीन पुत्रोंसे वही पूर्वोक्त वृत्तान्त कहा, तब इन्होंनेभी राजाका कहना नहीं माना ॥ ३० ॥ जो हमने पूर्वोक्त कहा है वही शाप ययातिने इनकोभी दिया ॥ ३१ ॥ इसप्रकार चार पुत्रोंको शाप देकर राजा पूरुपुत्रसे कहने लगा ॥ ३२ ॥ हे पुत्र ! तू मेरी वृद्ध अवस्थाको ग्रहण कर और मैं तेरी तरुण अवस्थासे पृथ्वीमें विचरूं, जो तेरी इच्छा हो तो दे ॥ ३३ ॥ तब प्रतापी पूरुने पिताकी

एवमुक्त्वा यदुं तात शशापैनं स मन्युमान् ॥ अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति नराधम ॥ २९ ॥ स तुर्वसुं च द्रुह्युं चाप्यनुं च भरतर्षभ ॥ एवमेवाब्रवीद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि ॥ ३० ॥ शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः ॥ यथा ते कथितं पूर्वं मया राजर्षिसत्तम ॥ ३१ ॥ एवं शप्त्वा सुतान्सर्वान् चतुरः पूरुपूर्वजान् ॥ तदेव वचनं राजा पूरुमप्याह भारत ॥ ३२ ॥ तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम् ॥ जरां त्वयि समाधाय त्वं पूरो यदि मन्यसे ॥ ३३ ॥ स जरां प्रतिजग्राह पितुः पूरुः प्रतापवान् ॥ ययातिरपि रूपेण पूरोः पर्यचरन्महीम् ॥ ३४ ॥ स मार्गमाणः कामानामन्तं भरतसत्तम ॥ विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभुः ॥ ३५ ॥ यदाऽवितृष्णः कामानां भोगेषु स नराधिपः ॥ तदा पूरोः सकाशाद्वै स्वां जरां प्रत्यपद्यत ॥ ३६ ॥ तत्र गाथा महाराज शृणु गीता ययातिना ॥ याभिः प्रत्याहरेत्कामान् सर्वतोऽङ्गानि कूर्मवत् ॥ ३७ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ ३८ ॥

वृद्ध अवस्था ग्रहण की, और पूरुकी तरुण अवस्थाको ययाति राजा ग्रहण कर पृथ्वीभरमें विचरने लगा ॥ ३४ ॥ वह कामोंके अंतको विचारता हुआ अपनी विश्वाची रानीके संग चैत्ररथ वनमें विहार करने लगा ॥ ३५ ॥ परन्तु कामोंके भोगसे परितृप्त नहीं हुआ, तब अपने पूरु पुत्रसे वृद्ध अवस्थाको ग्रहण कर ॥ ३६ ॥ उसकी तरुण अवस्था फेर दी; हे जन्मेजय ! उस समय ययाति राजाने जो गाथा गाई है तिसको सुनो; तिसके सुननेसे मनुष्य कामदेवसे संकुचित हो जाता है, जैसे कछुआ अपने अंगोंको सकोड लेता है ॥ ३७ ॥ कामोंकी शांति उपभोग करनेसे कभी नहीं होती है, जैसे घृतसे

अग्नि शांत नहीं होती, किन्तु बढतीही है ॥ ३८ ॥ और इस पृथ्वीके अन्न, सुवर्ण पशु, स्त्रियें सबभी एक मनुष्यको पूर्ण नहीं हैं; इस कारण मनुष्यको प्रथमही शांत हो जाना चाहिये ॥ ३९ ॥ जब सब प्राणियोंमें कर्म मन वाणीसे पापका आचरण नहीं करता है, तब ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ जब यह दूसरेसे नहीं डरता है; और न दूसरे इससे डरते हैं; और न पापकी इच्छा करता है और न वैर करता है, तब ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ जो दुर्मति मनुष्योंसे त्यागी नहीं जाती, जो शरीरके वृद्ध होनेपर जीर्ण नहीं होती; ऐसे प्राण नाशनेवाले रोगके समान तृष्णा

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ॥ नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥ ३९ ॥ यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेष्व-पापकम् ॥ कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ४० ॥ यदान्येऽभ्यो न बिभ्येत यदा चास्मान्न बिभ्यति ॥ यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ४१ ॥ या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यत जीर्यतः ॥ योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥ ४२ ॥ जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ॥ जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति ॥ ४३ ॥ यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ॥ तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥ ४४ ॥ एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम् ॥ कालेन महता वापि चचार विपुलं तपः ॥ ४५ ॥ भृगुतुङ्गे तमस्तप्त्वा तपसोऽन्ते महातपाः ॥ अनश्नन्देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥ ४६ ॥ तस्य वंशे महाराज पञ्च राजर्षिसत्तमाः ॥ यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गभस्तिभिः ॥ ४७ ॥

त्यागनेहीमें सुख होता है ॥ ४२ ॥ और वृद्ध अवस्थाके संगके सभी वृद्ध (जीर्ण) हो जाते हैं, दांतभी जीर्ण हो जाते हैं, परन्तु धनकी आशा और जीनेकी आशा जीर्ण नहीं होती ॥ ४३ ॥ लोकमें जो कामसुख है, स्वर्गादिक सुख है, यह सब तृष्णाक्षयरूप सुखके सोलहवें भागकी समानभी नहीं है ॥ ४४ ॥ ऐसे भार्यासहित ययाति राजा गाथा गाकर वनमें प्रवेश कर गया, और बहुत कालतक उग्र तप करता रहा ॥ ४५ ॥ पुनः भृगुतुंगपै तप करके भोजन आदिको छोड देह त्यागकर अपनी भार्यासहित स्वर्गमें प्राप्त हुआ ॥ ४६ ॥ तिसके वंशमें जो पांच पुत्र हुए हैं, तिन्होंके वंशोंसे सूर्यकी

किरणोंके समान यह सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त हो रही है ॥ ४७ ॥ हे जन्मेजय ! प्रथम राजार्षियोंका माना यदुके वंशका श्रवण करो; जिस वृष्णिकुलमें साक्षात् नारायणने जन्म लिया ॥४८॥ हे राजन् ! इस पवित्ररूप ययातिके चारित्रको पठन और श्रवण करनेसे मनुष्य संतानयुक्त आयुष्मान् कीर्तिमान् हो जाता है ॥४९॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषाटीकायां ययातिचरिते त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३०॥ जनमेजय बोले;हे ब्रह्मन् ! पूरु, द्रुह्यु, अणु,तुर्वसुके वंशकी कथा म पृथक्२ सुनना चाहता हूं ॥१॥ और वृष्णिवंशके प्रसंगसे अपने वंशको प्रथम सुननेकी इच्छा करता हूं; हे भगवन् ! यह

यदोस्तु शृणु राजर्षेर्वंशं राजर्षिसत्कृतम् ॥ यत्र नारायणो जज्ञे हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥४८॥ धन्यः प्रजावानायुष्मान् कीर्तिमांश्च भवेन्नरः ॥ ययातेश्चरितं पुण्यं पठञ्च्छृण्वन्नराधिप ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि ययातिचरिते त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ जनमेजय उवाच ॥ पूरोर्वंशमहं ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ द्रुह्योश्चानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च पृथक्पृथक् ॥ १ ॥ वृष्णिवंशप्रसङ्गेन स्वं वंशं पूर्वमेव तु ॥ विस्तरेणानुपूर्व्या च तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु पूरोर्महाराज वंशमुत्तमपौरुषम् ॥ विस्तरेणानुपूर्व्या च यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥ ३ ॥ हन्त ते कीर्तयिष्यामि पूरोर्वंशमनुत्तमम् ॥ द्रुह्योश्चानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च नराधिप ॥ ४ ॥ पूरोः पुत्रो महावीर्यो राजासीज्जनमेजयः ॥ प्रचिन्वांस्तु सुतस्तस्य यः प्राचीमजयद्दिशम् ॥ ५ ॥ प्रचिन्वतः प्रवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः ॥ राजा चाभयदो नाम मनस्योरभवत्सुतः ॥ ६ ॥

विस्तारपूर्वक आप मुझसे कहिये ॥ २ ॥ वैशंपायनजी बोले; हे राजन् ! पूरुके वंशको आप विस्तारसे श्रवण करें, जिसमें आपने जन्म लिया है ॥३॥ इसकारण प्रथम पूरुके वंशको कहता हूं;पीछे द्रुह्य, अण, यदु,तुर्वसुका वंश वर्णन किया जायगा ॥४॥ पूरुके महावीर्यवान् जनमेजय पुत्र हुआ; और जनमेजयके प्रचिन्वान् पुत्र हुआ, जिसने पूर्वदिशाके राजाओंको जीता ॥५॥ प्रचिन्वान्के प्रवीर पुत्र हुआ; प्रवीरके मनस्यु पुत्र हुआ; मनस्युके अभयद पुत्र हुआ ॥ ६ ॥

अभयदके सुधन्वा पुत्र हुआ, सुधन्वाके बहुगव बहुगवके शम्याति पुत्र हुआ ॥ ७ ॥ शम्यातिके रहस्याति रहस्यातिके रौद्राश्व, रौद्राश्वके घृताचि नाम अप्सरामें ॥ ८ ॥ ऋचेयु, कृकणेयु, कक्षेयु, स्थंडिलेयु, सन्नतेयु, ॥ ९ ॥ दशार्णेयु, जलेयु; स्थलेयु, महाबली, धनेयु, वनेयु नाम दश पुत्र हुए ॥ १० ॥ और रुद्रा १ शूद्रा २ भद्रा ३ मलदा ४ मलहा ५ खलदा ६ नलदा ७ सुरसा ८ चला ९ गोचपला १० नाम अप्सराओंके रूपसे श्रेष्ठ रूपवान् दश पुत्री हुईं ॥ ११ ॥ और इन दशोंको अत्रि वंशमें उत्पन्न हुए प्रभाकर नाम महात्माने विवाहा, रुद्रामें इन्हींसे यशस्वी सोम नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥

तथैवाभयदस्यासीत्सुधन्वा तु महीपतिः ॥ सुधन्वनो बहुगवः शम्यातिस्तस्य चात्मजः ॥ ७ ॥ शम्यातेस्तु रहस्याती रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः ॥ रौद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः ॥८॥ ऋचेयुः प्रथमस्तेषां कृकणेयुस्तथैव च ॥ कक्षेयुः स्थण्डिलेयुश्च सन्नतेयुस्तथैव च ॥ ९ ॥ दशार्णेयुर्जलेयुश्च स्थलेयुश्च महायशाः ॥ धनेयुश्च वनेयुश्च पुत्रिकाश्च दश स्त्रियः ॥ १० ॥ रुद्रा शूद्रा च भद्रा च मलदा मलहा तथा ॥ खलदा चैव राजेन्द्र नलदा सुरसापि च ॥ तथा गोचपला तु स्त्रीरत्नकूटा च ता दश ॥ ११ ॥ ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे तु तासां भर्ता प्रभाकरः ॥ रुद्रायां जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम् ॥ १२ ॥ स्वर्भानुना हते सूर्ये पतमाने दिवो महीम् ॥ तमोऽभिभूते लोके च प्रभा येन प्रकल्पिता ॥ १३ ॥ स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्तो वै पतमानो दिवाकरः ॥ वचनात्तस्य विप्रर्षेर्न पपात दिवो महीम् ॥ १४ ॥ अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः ॥ यज्ञेष्वत्रेर्धनं चैव सुरैर्यस्य प्रवर्तितम् ॥ १५ ॥

॥ ८६ ॥

जब राहुने सूर्य हतकर दिया तब आकाशसे पृथ्वीमें सूर्य गिरने लगा, तब अंधकारसे युक्त इन्होंने प्रभासे प्रकाश किया ॥ १३ ॥ और गिरते पडते हुए सूर्यसे कहा कि तेरा कल्याण हो, उस समय उन मुनिके वचनसे सूर्य पृथ्वीमें नहीं गिरे ॥ १४ ॥ और इन्हीं तपस्वीने अत्रिके बहुतसे गोत्र आत्रेयनामसे प्रकाशित किये, और तभीसे यज्ञोंमें अत्रिगोत्रवालोंको स्वतंत्रतासे दक्षिणाका विधान है; देवताओंसे इसकी प्रवृत्ति है ॥ १५ ॥

इन्होंने पुत्रिकाधर्मवाली उन दश कन्याओंमें अतितपस्वीरूप दश पुत्रांको उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ हे राजन् ! वेदको जाननेवाले गोत्रके प्रवर्तक ऋषि स्वस्त्यात्रेय नामसे विख्यात हुए; और अन्यके धनसे रहित हुए ॥ १७ ॥ और पूर्वोक्त कक्षेयुके महारथी सभानर, चाक्षुष, परमंथु नाम तीन पुत्र हुए ॥ १८ ॥ सभानरके विद्वानरूप कालानल पुत्र हुआ कालानलके धर्मके ज्ञाता सृंजय पुत्र हुआ ॥ १९ ॥ सृंजयके वीररूप पुरंजय पुत्र हुआ पुरंजयके जनमेजय हुआ ॥ २० ॥ जनमेजयके महाशाल पुत्र हुआ महाशलके वेदमें प्रसिद्ध अतिप्रतिष्ठावान् ॥ २१ ॥ परम धार्मिक महामना पुत्र

स तासु जनयामास पुत्रिकासु सनामकान् ॥ दश पुत्रान्महात्मा स तपस्युग्रे रतान् सदा ॥ १६ ॥ ते तु गोत्रकरा राजन् ऋषयो वेदपारगाः ॥ स्वस्त्यात्रेया इति ख्याताः किं त्वत्रिं धनवर्जिताः ॥ १७ ॥ कक्षेयोस्तनयाश्चासन् त्रय एव महारथाः ॥ सभानरश्चाक्षुषश्च परमन्थुस्तथैव च ॥ १८ ॥ सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान्कालानलो नृपः ॥ कालानलस्य धर्मज्ञः सृञ्जयो नाम वै सुतः ॥ १९ ॥ सृञ्जयस्याभवत्पुत्रो वीरो राजा पुरंजयः ॥ जनमेजयो महाराज पुरंजयसुतोऽभवत् ॥ २० ॥ जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत्सुतः ॥ वेदेषु स परिज्ञातः प्रतिष्ठितयशा भुवि ॥ २१ ॥ महामना नाम सुतो महाशालस्य धार्मिकः ॥ जज्ञे वीरः सुरगणैः पूजितः सुमहायशाः ॥ २२ ॥ महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास भारत ॥ उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुं च महाबलम् ॥ २३ ॥ उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः ॥ नृगा कृमी नवा दर्वा पञ्चमी च दृषद्वती ॥ २४ ॥ उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः ॥ तपसा वै सुमहता जाता वृद्धस्य भारत ॥ २५ ॥ नृगायास्तु नृगः पुत्रः कृम्यां कृमिरजायत ॥ नवायास्तु नवः पुत्रो दर्वायाः सुव्रतोऽभवत् ॥ २६ ॥

हुआ. यह महायशस्वी देवताओंसे पूजित हुआ ॥ २२ ॥ पीछे महामनाके धर्मात्मा उशीनर और महाबली तितिक्षु नाम दो पुत्र हुए ॥ २३ ॥ और उशीनरके राजर्षिके वंशमें उत्पन्न नृगा, कृमि, नवा, दर्वा, दृषद्वती ॥ २४ ॥ नाम पांच रानियोंमें पांच पुत्र उपजे; हे राजन् ! बडे तपसे वृद्धावस्थामें उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ उशीनरके नृगा रानीमें नृग पुत्र हुआ; कृमि रानीमें कृमी पुत्र हुआ, नवा रानीमें नव और दर्वा रानीमें सुव्रत पुत्र हुआ ॥ २६ ॥

और दृषद्वती रानीमें शिबि पुत्र हुआ, शिबिके शिबिय नामसे विख्यात पुत्र हुआ॥२७॥ और नवका नौ देशोंमें राज्य हुआ; और कृमीने कृमिला पुरी रची;और सुव्रतके अंबष्ठ नाम पुत्र हुआ.अब शिबिके पुत्र सुनो ॥२८॥शिबिके विश्रुत वृषदर्भ, सुवीर, कैकय, मद्रक चार पुत्र हुए, ॥ २९ ॥ तिनके नामोंसे कैकेय, मद्रक, वृषदर्भ और सुवीर देश प्रसिद्ध हुए, अब तितिक्षुके वंशको सुनो ॥ ३० ॥ तितिक्षुके पूर्वदिशाका रांजा उषद्रथ पुत्र हुआ; उषद्रथके फेन पुत्र हुआ॥ ३१ ॥ फेनके सुतपा, सुतपाके सुवर्णका तरकस धारे मनुष्ययोनिम कलि पुत्र हुआ ॥ ३२ ॥ यह महायोगी प्रथम

दृषद्वत्यास्तु संजज्ञे शिबिरौशीनरो नृपः ॥ शिबेस्तु शिबयस्तात योधेयास्तु नृगस्य ह ॥ २७ ॥ नवस्य नवराष्ट्रं तु कृमेस्तु कृमिला पुरी ॥ सुव्रतस्य तथाऽम्बष्ठा शिबिपुत्रान्निबोध मे ॥ २८ ॥ शिबेश्च पुत्राश्चत्वारो वीरास्त्रैलोक्यविश्रुताः ॥ वृषदर्भः सुवीरश्च मद्रकः कैकयस्तथा ॥ २९ ॥ तेषां जनपदाः स्फीताः कैकया मद्रकास्तथा ॥ वृषदर्भाः सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजाः शृणु ॥ ३० ॥ तैतिक्षवोऽभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि भारत ॥ उषद्रथो महाबाहुस्तस्य फेनः सुतोऽभवत् ॥ ३१ ॥ फेनात्तु सुतपा जज्ञे सुतः सुतपसो बलिः ॥ जातो मानुषयोनौ तु स राजा काञ्चनेषुधिः ॥ ३२ ॥ महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपतिः पुरा ॥ पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान् भुवि ॥ ३३ ॥ अङ्गःप्रथमतो जज्ञे वङ्गः सुह्मस्तथैव च ॥ पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते ॥३४॥ बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा भुवि ॥ बलेस्तु ब्रह्मणा दत्ता वराः प्रीतेन भारत ॥३५॥ महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणतः संग्रामे वाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रधानता ॥ ३६ ॥

जन्मका राजा बलिही था; इसने वंशप्रवर्तक पांच पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३३ ॥ अंग,वंग,सुह्म,पुंड्र, कलिंग नाम पांच पुत्र थे; इसीकारण यह क्षत्रवंश कालेयनामसे विख्यात हुआ ॥ ३४ ॥ इसी बलीके वंशमें बालेय ब्राह्मण वंश करनेवाले हुए; बलीको प्रसन्न हो ब्रह्माजीने वर दिया ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! तू महायोगी होगा; और एककल्पकी तुम्हारी आयुहोगी और संग्राममें तुम्हें कोई जीत न सकेगा; और धर्ममें प्रधानता होगी ॥ ३६ ॥

और त्रिलोकीमें श्रेष्ठ सुन्दर पुत्रोंको तू उत्पन्न करेगा और बलमें तुम्हारे समान कोई नहीं होगा और धर्मतत्वकोभी तुम देखनेवाले होंगे ॥ ३७ ॥ तुम चारों वर्णोंके स्थापन करनेवाले होगे;जब ब्रह्माजीने ऐसा कहा तब वचनको सुन राजा बली परम शांतिको प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ और इसी राजाकी सुदेष्णा रानीमें मुनियोंमें श्रेष्ठ दीर्घतपा मुनिसे क्षेत्रज संज्ञावाले पूर्वोक्त पांच पुत्र हुए ॥ ३९ ॥ बलिने उन पापरहित पांच पुत्रोंको राज्यमें स्थापित कर अपनेको कृतार्थ माना; पीछे यह योगात्मा बली राजा योगके आश्रित हो ॥ ४० ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंसे अधृष्य हो, समयकी

त्रैलोक्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा ॥ बले चाप्रतिमत्त्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम् ॥ ३७ ॥ चतुरो नियतान्वर्णान् त्वं च स्थापयिता भुवि ॥ इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ ॥ ३८ ॥ तस्य ते तनयाः सर्वे क्षेत्रजा मुनिपुङ्गवाः ॥ संभूता दीर्घतपसो सुदेष्णायां महौजसः ॥ ३९ ॥ बलिस्तानभिषिच्येह पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥ कृतार्थः सोऽपि योगात्मा योगमाश्रित्य स प्रभुः ॥ ४० ॥ अधृष्यः सर्वभूतानां कालापेक्षी चरन्नपि ॥ कालेन महता राजन् स्वं च स्थानमुपागमत् ॥ ४१ ॥ तेषां जनपदाः पञ्च अङ्गाः वङ्गाः सुमुह्मकाः ॥ कलिङ्गाः पुंड्रकाश्चैव प्रजास्त्वङ्गस्य मे शृणु ॥ ४२ ॥ अङ्गपुत्रो महानासीद्राजेन्द्रो दधिवाहनः ॥ दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत् ॥४३॥ पुत्रो दिविरथस्यासीच्छक्रतुल्यपराक्रमः ॥ विद्वान् धर्मरथो नाम तस्य चित्ररथः सुतः ॥ ४४ ॥ तेन चित्ररथेनाथ तदा विष्णुपदे गिरौ ॥ यजता सह शक्रेण सोमः पीतो महात्मना ॥ ४५ ॥ अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत् ॥ लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताभवत् ॥ ४६ ॥

प्रतीक्षा करता हुआ विचरने लगा; हे राजन् ! फिर बहुत समय बीतने पर यह अपने स्थानमें आया ॥ ४१ ॥ और तिसके पांचों पुत्रोंके नामोंसे अंग, वंग, सुह्मक, कलिंग, पुंड्र नाम देश प्रसिद्ध हो रहे हैं; अब अंगके वंशको सुनो ॥४२॥ अंगके राजाओंका राजा दधिवाहन पुत्र हुआ; दधिवाहन के दिविरथ पुत्र हुआ॥४३॥दिविरथके इन्द्रके समान पराक्रमी विद्वान् धर्मरथ पुत्र हुआ; पीछे धर्मरथके चित्ररथ जन्मा ॥ ४४ ॥ पीछे इसी धर्मरथने विष्णुपद पर्वतमें यज्ञके समय इन्द्रके साथ सोमरसका पान किया था ॥४५॥ चित्ररथके दशरथ पुत्र हुआ; पीछे यही लोमपादनामसे

विख्यात हुआ; और इसीके शांता नाम कन्या हुई ॥४६॥ इसीके ऋष्यशृंग मुनिकी कृपासे महावीर कुलका बढानेवाला चतुरंग पुत्र हुआ ॥४७॥ चतुरंगके पृथुलाक्ष पुत्र हुआ; पृथुलाक्षके चंप नाम महायशस्वी पुत्र हुआ ॥४८॥ इसीने मालिनी पुरीका नाम चंपा रक्खा; चंपके पूर्णभद्र मुनिके प्रसादसे हर्यंग पुत्र हुआ॥४९॥इसीराजाके समयमें ऋष्यशृंग मुनिने इन्द्रके ऐरावत हस्तीको अपने मंत्रोंके बलसे पृथ्वीमें उतार लिया था ॥ ५० ॥ हर्य्यंगके भद्ररथ पुत्र हुआ, भद्ररथके राजा बृहत्कर्मा पुत्र हुआ ॥ ५१ ॥ बृहत्कर्माके बृहद्दर्भ पुत्र हुआ, बृहद्दर्भके बृहन्मना और बृहन्मनाके॥५२॥

तस्य दाशरथिर्वीरचतुरङ्गो महायशाः ॥ ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे कुलविवर्द्धनः ॥ ४७ ॥ चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः ॥ पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशाः ॥ ४८ ॥ चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्यभवत्पुरा ॥ पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यंगोऽस्य सुतोऽभवत् ॥ ४९ ॥ ततो वैभाण्डकिस्तस्य वारणं शक्रवारणम् ॥ अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ॥ ५० ॥ हर्यंगस्य तु दायादो राजा भद्ररथः स्मृतः ॥ पुत्रो भद्ररथस्यासीद्बृहत्कर्मा प्रजेश्वरः ॥५१॥ बृहद्दर्भः सुतस्तस्य तस्माज्जज्ञे बृहन्मनाः ॥ बृहन्मनास्तु राजेन्द्रजनयामास वै सुतम् ॥५२॥ नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद्दृढरथो नृपः ॥ आसीद्दृढरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजय ॥५३॥ दायादस्तस्य कर्णस्तु विकर्णस्तस्य चात्मजः ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीदङ्गानां कुलवर्द्धनम् ॥ बृहद्दर्भसुतो यस्तु राजा नाम्ना बृहन्मनाः ॥ ५४ ॥ तस्य पत्नीद्वयं चासीच्चैद्यस्यैते सुते शुभे ॥ यशोदेवी च सत्या च ताभ्यां वंशस्तु भिद्यते ॥ ५५ ॥ जयद्रथस्तु राजेन्द्र यशोदेव्यां व्यजायत ॥ ब्रह्मक्षत्रोत्तरः सत्यां विजयो नाम विश्रुतः ॥ ५६ ॥

जयद्रथ पुत्र हुआ; जयद्रथके दृढरथ, दृढरथके विश्वजित् पुत्र हुआ ॥५३॥ विश्वजित्के कर्ण, कर्णके विकर्ण, विकर्णके कुलको बढानेवाले१०पुत्र हुए; और बृहद्दर्भका पुत्र बृहन्मना राजा जो पूर्वमें कहा है॥५४॥उसके यशोदेवी और सत्या नाम दो रानी चैद्यकी कन्या थीं, इनसे वंशमें भेद हुआ॥५५॥यशोदेवीमें जयद्रथ उत्पन्न हुआ; सत्या रानीमें ब्राह्मणोंसे शांतिमें श्रेष्ठऔर क्षत्रियोंमें शूर वीरतामें श्रेष्ठ विजय नाम पुत्र हुआ ॥५६॥

विजयके धृति, धृतिके धृतव्रत, धृतव्रतके यशस्वी सत्यकर्मा पुत्र हुआ॥५७॥सत्यकर्माके अधिरथ नाम सूतपुत्र हुआ; इसी अधिरथने नदीमें बहते हुए कर्णको ग्रहण कर अपना पुत्र बनाया; इसकारण सूतका पुत्र कहाया॥५८॥यह सम्पूर्ण आपको सुनाया; कर्णके वृषसेन, वृषसेनके वृष पुत्र हुआ॥५९॥ इस प्रकार सत्यव्रत महात्मा पुत्रवान् महारथी राजा इस वंशमें उत्पन्न हुए, सो तुमसे कहे हैं॥६०॥हे जन्मेजय! जिस वंशमें आप उत्पन्न हुए हो, उस रौद्राश्वके पुत्र ऋचेयुके वंशको श्रवण कीजिये ॥ ६१ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां कक्षेयुवंशानुकीर्त्तने एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

विजयस्य धृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो धृतव्रतः ॥ धृतव्रतस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महायशाः ॥ ५७ ॥ सत्यकर्मसुतश्चापि सूतस्त्वधिरथस्तु वै ॥ यः कर्णं प्रतिजग्राह ततः कर्णस्तु सूतजः ॥ ५८ ॥ एतद्वः कथितं सर्वं कर्णं प्रति महाबलम् ॥ कर्णस्य वृषसेनस्तु वृषस्तस्यात्मजः स्मृतः ॥५९॥ एतेऽङ्गवंशजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया॥सत्यव्रता महात्मानः प्रजावन्तो महारथाः ॥ ६० ॥ ऋचेयोस्तु महाराज रौद्राश्वतनयस्य ह ॥ शृणु वंशमनुप्रोक्तं यत्र जातोऽसि पार्थिव॥६१॥इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि कुक्षेयुवंशानुकीर्त्तनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अनाधृष्यस्तु राजर्षिर्ऋचेयुश्चैकराट् स्मृतः ॥ ऋचेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा ॥ १ ॥ तस्यां स देव्यां राजर्षिर्मतिनारो महीपतिः ॥ मतिनारसुताश्चासन् त्रयः परमधार्मिकाः ॥ २ ॥ तंसुराद्यः प्रतिरथः सुबाहुश्चैव धार्मिकः ॥ गौरी कन्या च विख्याता मान्धातृजननी शुभा ॥ ३ ॥ सर्वे वेदविदस्तत्र ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥ सर्वे कृतास्त्रा बलिनः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४ ॥

वैशंपायन बोले; सब राजाओंको दुस्सह अनाधृष्य पृथ्वीमंडलमें एकक्षत्र राजा ऋचेयु हुआ, पीछे इसके तक्षक सर्पकी ज्वलना नाम पुत्रीमें ॥ १ ॥ राजर्षि महाराज मतिनार उत्पन्न हुआ; मतिनारके परम धार्मिक तीन पुत्र हुए ॥२॥ वे तंसु, प्रतिरथ, सुबाहु नाम हुए; और गौरी नाम एक कन्या मांधाताकी माता हुई ॥ ३ ॥ वे तीनों पुत्र वेदके ज्ञाता, ब्रह्मण्य, सत्यबादी और अस्त्र विद्यामें निपुण महाबली और युद्धमें विशारद हुए ॥ ४ ॥

प्रतिरथके कण्व पुत्र हुआ, कण्वके मेधातिथि हुआ, इसीसे कण्वगोत्र प्रारंभ हुआ ॥ ५ ॥ मेधातिथिके ब्रह्मवादिनी ईलिनी नाम कन्या उपजी, इसे तंसुने विवाहा ॥ ६ ॥ तंसुके धर्मका ज्ञाता प्रतापी ब्रह्मवादी सुरोध पुत्र हुआ; सुरोधके उपदानवी भार्या हुई ॥ ७ ॥ इसी उपदानवीके चार पुत्र हुए; जिनके नाम दुष्यंत, सुष्मन्त, प्रवीर, अनघ थे ॥ ८ ॥ दुष्यंतके शकुन्तला भार्यामें सब जीवोंको दमन करनेवाला और दश सहस्र हाथियोंके बलको धारण करनेवाला॥९॥चक्रवर्ती भरत पुत्र हुआ,जिसके नामसे इस वंशके भारत कहलाये॥१०॥

पुत्रः प्रतिरथस्यासीत्कण्वः समभवन्नृपः ॥ मेधातिथिः सुतस्तस्य यस्मात्काण्वायना द्विजाः ॥५॥ ईलिनी भूप यस्याऽसीत्कन्या वै जनमेजय ॥ ब्रह्मवादिन्यधिस्त्री च तंसुस्तामभ्यगच्छत ॥६॥ तंसोः सुरोधो राजर्षिर्धर्मनेत्रो महायशाः ॥ ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्योपदानवी ॥७॥ उपदानवी सुतांल्लेभे चतुरस्त्वैलिकात्मजान् ॥ दुष्यन्तमथ सुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥ ८ ॥ दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम वीर्यवान् ॥ स सर्वदमनो नाम नागायुतबलो महान् ॥९॥ चक्रवर्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः ॥ शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना स्थ भारताः ॥१०॥ दुष्यन्तं प्रति राजानं वागुवाचाशरीरिणी ॥ माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥११॥ भरस्व पुत्रं दुष्यन्तमावमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥ रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेव यमक्षयात् ॥ १२ ॥ त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥ भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः ॥१३॥ मातॄणां तात कोपेन मया ते कथितं पुरा ॥ बृहस्पतेराङ्गिरसः पुत्रो राजन्महामुनिः ॥ संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभुः ॥ १४ ॥

जब कि राजा दुष्यंतने शकुन्तला रानीको ग्रहण नहीं किया था;तब दुष्यंत राजाके प्रति यह आकाशवाणी हुई कि माता लुहारकी धौंकनीके समान होती है; और जिससे उत्पन्न होता है उसी पिताका पुत्र कहाता है ॥ ११ ॥ इसकारण हे दुष्यंत ! पुत्रकी पालना कर; और शकुन्तलाका तिरस्कार मतकर; और अपने वीर्यसे उपजा पुत्र उत्तम लोकोंमें ले जाता है ॥१२॥ और यह बालक तुझसेही उपजा है, शकुन्तला सत्य कहती है. पीछे राजा भरतके पुत्र माताओंके कोपसे नष्ट हो गये ॥ १३ ॥ हे जन्मेजय ! यह मैंने पहलेही तुम्हे सुना दिया है;तब मरुतदेवताओंने बृहस्पतिके पुत्र भरद्वाजको

भरतका पुत्र बनाया, जब कि वह राजा मरुतोंका यज्ञ करता था ॥ १४ ॥ अब भरद्वाजके आख्यानकी पुरातन कथा कहता हूं; जो कि मरुतोंने भरतके निमित्त धर्मपुत्र दिया ॥ १५ ॥ जब भरद्वाज मुनिने मरुत यज्ञ कराया, पुत्रके जन्ममें पूर्वकालमें वितथ होनेसे ॥ १६ ॥ वितथ नाम पुत्र हुआ, वितथके उत्पन्न होनेपर राजा भरत स्वर्गको गया ॥ १७ ॥ वितथको राज्यपै स्थापित कर भरद्वाज वनको गये; वितथ राजाके पांच पुत्र हुए ॥ १८ ॥

अत्रैवोदाहरन्तीमं भारद्वाजस्य धीमतः ॥ धर्मसंक्रमणं चापि मरुद्भिर्भरताय वै ॥ १५ ॥ अयोजयद्भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्हितम् ॥ पूर्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि ॥ १६ ॥ ततोऽथ वितथो नाम भरद्वाजसुतोऽभवत् ॥ ततोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिवं ययौ ॥ १७ ॥ वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ ॥ स राजा वितथः पुत्रान् जनयामास पञ्च वै ॥ १८ ॥ सुहोत्रं च सुहोतारं गयं गर्गं तथैव च ॥ कपिलं च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम् ॥ १९ ॥ काशिकश्च महासत्त्वस्तथा गृत्समतिर्नृपः ॥ तथा गृत्समतः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ॥२०॥ काशिकस्य तु काशेयो पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥ बभूव दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिः सुतः ॥२१॥ धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ॥ अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथो नृपः ॥ २२ ॥ सुतो भीतरथस्यासीद्दिवोदासः प्रजेश्वरः ॥ दिवोदास इति ख्यातः सर्वरक्षोविनाशनः ॥ २३ ॥

उनके नाम सुहोत्र, सुहोता, गय, गर्ग, कपिल थे; सुहोत्रके दो पुत्र हुए ॥ १९ ॥ जिनका नाम काशिक और गृत्समति था; गृत्समतिके ब्राह्मण; क्षत्रिय वैश्य; बहुतसे पुत्र हुए ॥ २० ॥ कांशिकके काशेय पुत्र हुआ, काशेयके दीर्घतपा, दीर्घतपाके विद्वान् धन्वन्तरि पुत्र हुआ ॥ २१ ॥ धन्वन्तरिका केतुमान्, केतुमान्का वीर भीमरथ पुत्र हुआ ॥ २२ ॥ भीमरथका पुत्र राजा दिवोदास हुआ; यह दिवोदास सब राक्षसोंका नाश करनेवाला था ॥ २३ ॥

---

१ यह कथा पीछेभी २९ वें अध्यायमें आ चुकी है.

हे राजन् ! इसी समय वाराणसी पुरीको जो महात्मा निकुंभके शापसे शून्य पडी थी;क्षेमक नाम राक्षसने वसाया ॥ २४ ॥ निकुंभने कहा था, यह सहस्र वर्ष सूनी पडी रहेगी; उसके शापित होनेसे राजा दिवोदासने गोमतीके निकट दूसरी पुरी वसाई॥२५॥पहले यह वाराणसीपुरी यदुवंशमें उत्पन्न तपशील भद्रश्रेण्य राजाकी थी ॥२६॥ भद्रश्रेण्यके सौ बली पुत्रोंको मारकर दिवोदासने इस पुरीमें प्रवेश किया ॥ २७ ॥ दिवोदासका पुत्र वीर राजा प्रतर्दन हुआ, प्रतर्दनके दो पुत्र वत्स और भाग हुए ॥ २८ ॥ राजपुत्र अलर्कने पृथ्वीमें बुद्धिसे विख्यात हो, हैहयका धन हरण किया था ॥ २९ ॥ यह

एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं नृप ॥ शून्यां निवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः ॥ शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना ॥ २४ ॥ शून्यां वर्षसहस्रं वै भवित्रीति नराधिपः ॥ तस्यां तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः ॥ विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत् ॥ २५ ॥ भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसी भवत् ॥ यदुवंशप्रसूतस्य तपस्यभिरतस्य च ॥ २६ ॥ भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥ हत्वा निवेशयामास दिवोदासः प्रजेश्वरः ॥ २७ ॥ दिवोदासस्य पुत्रस्तु वीरो राजा प्रतर्दनः ॥ प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो भार्गस्तथैव च ॥२८॥ अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्नतिमान् भुवि ॥ हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वै महीपतिः ॥ २९ ॥ आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥ भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना ॥ दिवोदासेन बालेति घृणया परिवर्जितः ॥ ३० ॥ अष्टारथो नाम नृपः सुतो भीमरथस्य वै ॥ तेन पुत्रेषु बालेषु प्रहृतं तस्य भारत ॥ ३१ ॥ वैरस्यान्तं महाराज क्षत्रियेण विधित्सता ॥ अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥ ३२ ॥

हैहय इसके पिताका द्रव्य हर ले गये थे, सो यह अपने बलसे ले आया. दिवोदासने जिस दुर्दम, भद्रश्रेण्यके बेटेको बालक जानकर छोड दिया था, उसने बडे होनेपर अपने पिताका द्रव्य बलसे दिवोदाससे ग्रहण किया ॥३०॥ भीमरथका पुत्र राजा अष्टारथ हुआ (भीमरथ नामभी दिवोदासकाही है) उसने उस दुर्दमके बालक पुत्रोंमेंही प्रहार किया ॥३१॥ हे महाराज ! क्षत्रिय होनके कारण वैर निकाला, यह काशीका राजा ब्रह्मण्य और सत्य बोलनेवाला हुआ॥ ३२ ॥

उस रूपयौवनशालीने छयासठ (६६) सहस्र वर्षतक राज्य किया ॥ ३३ ॥ तबतक यह काशीका राजा तरुणही रहा, लोपामुद्राके प्रसादसे इसने परमायु पाई थी ॥ ३४ ॥ अन्तमें इसने क्षेमक राक्षसको मार शून्य काशीपुरीको फिरबसाया ॥ ३५ ॥ अलर्कका पुत्र राजा सुनीथ, सुनीथका महायशस्वी क्षेम्य ॥३६॥ क्षेम्यका केतुमान्, केतुमान्का वर्षकेतु, उसका पुत्र राजा विभु हुआ ॥ ३७ ॥ विभुका आनर्त, उसका सुकुमार, उसका

षष्टिंवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ॥ तस्याऽऽसीत्सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः ॥ ३३ ॥ युवा रूपेण संपन्न आसीत्काशिकुलोद्वहः ॥ लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः ॥ ३४ ॥ वयसोऽन्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ॥ शून्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं नृप ॥३५॥ अलर्कस्य तु दायादः सुनीथो नाम पार्थिवः ॥ सुनीथस्य तु दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः ॥ ३६ ॥ क्षेम्यस्य केतुमान्पुत्रो वर्षकेतुस्ततोऽभवत् ॥ वर्षकेतोस्तु दायादो विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥३७॥ आनर्तस्तु विभो पुत्र सुकुमारस्ततोऽभवत् ॥ पुत्रस्तु सुकुमारस्य सत्यकेतुर्महारथः ॥ ३८ ॥ ततोऽभवन्महातेजा राजा परमधार्मिकः ॥ वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गवात् ॥३९॥ एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च भरतर्षभ ॥४०॥ सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः ॥ अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्चवीर्यवान् ॥ ४१ ॥ अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो वै यशसाऽन्विताः ॥ नीलिनी केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गना ॥ ४२ ॥ अजमीढस्य केशिन्यां जज्ञे जह्नुः प्रतापवान् ॥ आजह्रे यो महासत्रं सर्वमेधं महामखम् ॥ ४३ ॥

महारथ सत्यकेतु ॥ ३८ ॥ उसके महातेजस्वी परमधार्मिक राजा वत्स हुआ; उसके वत्सभूमि और भार्गवके भार्गभूमि हुआ ॥३९॥ यह भार्गववंशमें अंगिराके पुत्र हुए; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अनेक हुए ॥४०॥सुहोत्रका पुत्र बृहत् उसके अजमीढ, द्विमीढ, पुरुमीढ तीन पुत्र हुए ॥ ४१ ॥ अजमीढकी यशस्विनी तीन पत्नी थीं; नलिनी, केशिनी और धूमिनी ॥४२॥ अजमीढके केशिनीमें जह्नु हुए;जिन्होंने सर्वमेध महायज्ञ किया ॥४३॥

जिनके निकट विनीत हो पति बनानकी इच्छासे गंगा आई और उन्होंने उसे नहीं वरा, तब क्रोधित हो गंगाने वह सब सामग्री डुबा दी ॥४४॥ तब यज्ञस्थानको जलसे भ्रष्ट देख जह्नु क्रोधकर गंगासे बोले ॥ ४५ ॥ त्रिलोकीमें व्याप्त तुझको लघु करके तपके बलसे मैं पिये जाता हूं; तू अपने अभिमानका फल शीघ्र पावेगी ॥ ४६ ॥ तब महर्षियोंने जह्नुको गंगा पान करते देख गंगाको उनकी पुत्री बनाया ॥४७॥ और जह्नुने युवनाश्वकी पुत्री कावेरीसे विवाह किया. गंगाके शापसे जिसका आधा देह पीछे नदीरूप होगया॥ ४८ ॥ जन्हुके पुत्र महाबली अजक हुआ; उसका राजा

पतिलोभेन यं गङ्गा विनीताऽभिससार ह ॥ नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गाऽथ तत्सदः ॥ ४४ ॥ स तया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं परंतप ॥ जह्नुरप्यब्रवीद्गङ्गां क्रुद्धो भरतसत्तम ॥४५॥ एष ते त्रिषु लोकेषु संक्षिप्याऽऽपः पिबाम्यहम् ॥ अस्य गंगेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ॥ ४६ ॥ ततः पीतां महात्मानो गंगां दृष्ट्वा महर्षयः ॥ उपनिन्युर्महाभागा दुहितृत्वाय जाह्नवीम् ॥ ४७ ॥ युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत् ॥ गङ्गाशापेन देहार्द्धं यस्याः पश्चान्नदीकृतम् ॥ ४८ ॥ जह्नोस्तु दयितः पुत्रस्त्वजको नाम वीर्यवान् ॥ अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपतिः ॥ ४९ ॥ वभूव मृगयाशीलः कुशिकस्तस्य चात्मजः ॥ पह्लवैः सह संरुद्धो राजा वनचरैस्तदा ॥५०॥ कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमं प्रभुः ॥ लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान् ॥ ५१ ॥ स गाधिरभवद्राजा मघवान्कौशिकः स्वयम् ॥ विश्वामित्रस्य गाधेयो राजा विश्वरथस्तदा ॥ ५२ ॥ विश्वकृद्विश्वजिच्चैव तथा सत्यवती नृप ॥ ऋचीकाज्जमदग्निस्तु सत्यवत्यामजायत ॥ ५३ ॥

बलाकाश्व ॥ ४९ ॥उसका पुत्र कुशिक मृगयाविहारी हुआ. इस राजाकी वनचारी पल्हवोंसे संगति हुई ॥ ५० ॥कुशिकने इन्द्रके समान पुत्र उत्पन्न होनेके निमित्त तप किया; तब डरकर इन्द्रने आकर कुशिकके स्वयं जन्म लिया ॥५१॥वह मघवा राजा गाधि हुआ; इसीसे इन्द्रको कौशिकभी कहते हैं. गाधिके विश्वामित्र हुए और दूसरे विश्वरथ ॥ ५२ ॥विश्वकृत, विश्वजित् पुत्र और सत्यवती कन्या हुई. सत्यवतीमें ऋचीकसे जमदग्नि हुए॥५३॥

विश्वामित्रके देवरातादि पुत्र त्रिलोकीमें विख्यात हैं; उनके नाम सुनो॥५४॥ देवश्रवा, कति जिससे कात्यायन हुए हैं. शालावतीके हिरण्याक्ष, रेणुके रेणुमान् हुए ॥ ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! और भी सांकृत्य, गालव, मौद्गल विख्यात हैं; इन्ही महात्मा कौशिक वंशियोंके गोत्र विख्यात हुए हैं ॥५६॥ पाणिनि, बभ्रु, ध्यान, जप्य, राजा देवरात, शालंकायन, सौश्रव ॥५७॥ लौहित्य, यामदूत, कारीष और सैंधवायन यह सब कौशिक कहाते हैं॥५८॥

विश्वामित्रस्य तु सुता देवरातादयः स्मृताः ॥ प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामानि मे शृणु ॥ ५४ ॥ देवश्रवाः कतिश्चैव यस्मा-त्कात्यायनाः स्मृताः ॥ शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणोर्जज्ञेऽथ रेणुमान् ॥५५॥ साङ्कृत्यो गालवो राजन् मौद्गल्यश्चेति विश्रुताः ॥ तेषां ख्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम् ॥५६॥पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ॥ पार्थिवा देवरातश्च शालङ्का-यनसौश्रवाः ॥५७ ॥ लौहित्या यामदूताश्च तथा कारीषयः स्मृताः ॥ विश्रुताः कौशिका राजन् तथाऽन्ये सैन्धवायनाः ॥ ५८ ॥ ऋष्यन्तरविवाह्याश्च कौशिका बहवः स्मृताः ॥ पौरवस्य महाराज ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य ह ॥ ५९ ॥ संबन्धो ह्यस्य वंशेऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः ॥ विश्वामित्राऽऽत्मजानां तु शुनःशेफोऽग्रजः स्मृतः ॥ ६० ॥ भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः ॥ देवरातादयश्चान्ये विश्वामित्रस्य वै सुताः ॥ ६१ ॥ दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रादथाष्टकः ॥ अष्टकस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जह्नुगणो मया ॥ ६२ ॥

हे महाराज ! ऋषियोंके अन्तरमें विवाह करके बहुत कौशिक वंश हुआ और पौरवोंका और ब्रह्मर्षि कुशिकका ॥ ५९ ॥ यह ब्रह्मक्षत्रका सम्बंध इस वंशमें विख्यात है. विश्वामित्रके पुत्रोंमें शुनःशेफ बड़ा कहा है॥ ६० ॥यह भार्गव मुनिश्रेष्ठ शुनःशेफ कौशिकत्वको प्राप्त हुआ; और दूसरे विश्वामित्रके दवरातादिक पुत्र हुए ॥ ६१ ॥ विश्वामित्रसे दृषद्वतीका पुत्र अष्टक हुआ; अष्टकका लौहि हुआ, यह मैंने जन्हुगण वर्णन किया ॥ ६२ ॥

अब अजमीढके वंशको श्रवण करो; अजमीढके नीलिनी रानीमें सुशांति पुत्र हुआ ॥ ६३ ॥ पीछे सुशांतिके पुरुजाति पुत्र हुआ, पीछे पुरुजातिके बाह्याश्व पुत्र हुआ, बाह्याश्वके देवताओंके समान पांच पुत्र ॥ ६४ ॥ मुद्गल, सृंजय, बृहदिषु, यवीनर, क्रमिलाश्व हुए ॥ ६५ ॥ इन्होंने बहुत देशोंकी पालना करी; इन पांचोंके समृद्धि पूर्ण देश हुए ॥ ६६ ॥ इसी कारण ये पंचाल नामसे विख्यात हुए; मुद्गलके अतियशश्वी मौद्गल्य पुत्र हुआ ॥६७॥ यह सब महात्मा क्षत्रियसे द्विजाति हुए, यह कण्व और मौद्गल्य अंगिराके पक्षके आश्रित हुए ॥६८॥ मौद्गल्यके महा-

अजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां पुरुषर्षभ ॥ अजमीढस्य नीलिन्यां सुशान्तिरुदपद्यत ॥ ६३ ॥ पुरुजातिः सुशान्तेस्तु बाह्याश्वः पुरुजातितः ॥ बाह्याश्वतनयाः पञ्च बभूवुरमरोपमाः ॥ ६४ ॥ मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुः स्मृतः ॥ यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलाश्वश्च पञ्चमः ॥ ६५ ॥ पञ्चैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः ॥ पञ्चानां विद्धि पञ्चालान् स्फीतैर्जनपदैर्वृतान् ॥ ६६ ॥ अलं संरक्षणं तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः ॥ मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्यः सुमहायशाः ॥ ६७ ॥ सर्वे एते महात्मानः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥ एते ह्याङ्गिरसाः पक्षं संश्रिताः कण्वमौद्गलाः ॥ ६८ ॥ मौद्गलस्य सुतो ज्येष्ठो ब्रह्मर्षिः सुमहायशाः ॥ इन्द्रसेनो यतो गर्भं वध्र्यश्वं प्रत्यपद्यत ॥६९॥ वध्र्यश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामिति श्रुतिः ॥ दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी ॥७०॥ शरद्वतस्य दायादमहल्या समसूयत ॥ शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहायशाः ॥७१॥ पुत्रः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः ॥ तस्य सत्यधृते रेतो दृष्ट्वाऽप्सरसमग्रतः ॥ ७२ ॥ अवस्कन्नं शरस्तम्बे मिथुनं समपद्यत ॥ कृपया तच्च जग्राह शन्तनुर्मृगयां गतः ॥ ७३ ॥

यशस्वी महर्षि ज्येष्ठ पुत्र हुआ, जिससे इन्द्रसेनने वध्र्यश्व नाम पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ६९ ॥ वध्र्यश्वके मेनका रानीमें दिवोदास राजा और अहल्या कन्या दो उत्पन्न हुईं ॥ ७० ॥ अहल्या भार्यामें शरद्वान् गौतमसे ऋषियोंमें श्रेष्ठ शतानंद पुत्र हुआ ॥ ७१ ॥ शतानंदके धनुर्वेदका ज्ञाता सत्यधृति पुत्र हुआ; इन्हीं सत्यधृतिका वीर्य एक समय अप्सराको देखके ॥७२॥ शरोंके वनमें स्खलित हो गया तब उस वीर्यसे एक कन्या और एक पुत्र उत्पन्न हुआ;

पीछे शंतनु राजा वनमें अहेरको गये थे, तहां उन दोनोंको देख कृपासे ग्रहण कर लिया ॥ ७३ ॥ इसी कारण बालकका नाम कृप और कन्याका नाम कृपी हुआ. इस प्रकार यह गौतमोंका वंश प्रकाशित किया गया है ॥ ७४ ॥ अब दिवोदासके वंशको वर्णन करते हैं; दिवोदासके ब्रह्मर्षिरूप मित्रयु पुत्र हुआ ॥ ७५ ॥ मित्रयुके सोम पुत्र हुआ, इस प्रकार मैत्रेय नामवालोंका वंश कहा, यह क्षत्री भार्गववंशी हुए ॥ ७६ ॥ महात्मारूप सृञ्जयके पंचजन पुत्र हुआ, पंचजनके सोमदत्त पुत्र हुआ ॥ ७७ ॥ सोमदत्तके यशस्वी सहदेव पुत्र हुआ; पीछे सहदेवके सोमक पुत्र हुआ ॥७८॥ वंशके क्षीण होनेपर

कृपः स्मृतः स वै तस्माद्गौतमी च कृपी तथा ॥ एते शारद्वताः प्रोक्ता एते ते गौतमाः स्मृताः ॥ ७४ ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य सन्ततिम् ॥ दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित्रयुर्नृपः ॥७५॥ मैत्रायणस्ततः सोमो मैत्रेयास्तु ततः स्मृताः ॥ एते हि संश्रिताः पक्षं क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः॥७६॥ आसीत्पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः ॥ सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः ॥ ७७ ॥ सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः ॥ सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम पार्थिवः ॥ ७८ ॥ अजमीढात्पुनर्जातः क्षीणवंशे तु सोमकः ॥ सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्य पुत्रशतं बभौ ॥ ७९ ॥ तेषां यवीयान्पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः ॥ धृष्टद्युम्नस्तु द्रुपदाद्धृष्टकेतुश्च तत्सुतः ॥ ८० ॥ अजमीढाः स्मृता ह्येते महात्मानस्तु सोमकाः ॥ पुत्राणामजमीढस्य सोमकत्वं महात्मनः ॥ ८१ ॥ महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रगृद्धिनी ॥ तृतीया तव पूर्वेषां जननी पृथिवीपते ॥ ८२ ॥ सा तु पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्यासमन्विता ॥ ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥ ८३ ॥

अजमीढके सोमक हुआ; सोमकके जंतु, जंतुके सौ पुत्र हुए ॥ ७९ ॥ तिनमें युवा पुत्र पृषत नाम द्रुपदका पिता हुआ; पीछेपृषतके द्रुपद और द्रुपदके धृष्टद्युम्न धृष्टद्युम्नके धृष्टकेतु पुत्र हुआ ॥८०॥ इसप्रकारसोमक नाम अजमीढका वंश वर्णन किया; इस प्रकार अजमीढके पुत्र महात्मा सोमकहुए॥८१॥ अजमीढकी धूमिनी रानी जो आपके पूर्वजोंकी तीसरी जननी थी ॥८२॥ व्रतचर्या करने लगी और दश सहस्र वर्षतक महातप किया ॥ ८३ ॥

और अग्निमें हवन करके पवित्र और परिमित आहार करने लगी; हे जन्मेजय! एक समयमें वह अग्निहोत्रकी कुशाओंपर सो गई; तब उस धूमिनी रानीके संग अजमीढ राजाने विषय किया ॥ ८४ ॥ तब उससे धूम्रवर्णवाला और सुन्दर दर्शन ऋक्ष नाम पुत्र उत्पन्न हुआ; ऋक्षके संवरण, संवरणके कुरु पुत्र हुआ; इसी कुरुने प्रयागको त्यागकर कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध किया॥८५॥इस महाभागने बहुत वर्षोंतक तप किया, तब इन्द्रने इसे वर दिया ॥८६॥ इसीने यह पुण्य पवित्र महाशोभित महात्माओंसे सेवित देश किया है;इसके वंशकाभी बड़ा विस्तार हुआ है; जिसके कुलके मनुष्य कौरव नामसे विख्यात

हुत्वाऽग्निं विधिवत्सा तु पवित्रमितभोजना ॥ अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुष्वाप जनमेजय ॥ धूमिन्या स तया देव्या त्वजमीढः समेयिवान् ॥ ८४ ॥ ऋक्षं संजनयामास धूमवर्णं सुदर्शनम् ॥ ऋक्षात्संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात्तथा ॥ यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ॥ ८५ ॥ तद्वै तत्स महाभागो वर्षाणि स बहून्यथ ॥ तप्यमाने तदा शक्रो यत्रास्य वरदो बभौ ॥ ८६ ॥ पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ॥ तस्यान्ववायः सुमहान् तस्य नाम्नास्थ कौरवाः ॥ ८७ ॥ कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा ॥ परीक्षिच्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः ॥ ८८ ॥ सुधन्वनस्तु दायादः सुहोत्रो मतिमांस्ततः ॥ च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थकोविदः ॥ ८९ ॥ च्यवनात्कृतयज्ञस्तु इष्ट्वा यज्ञैः स धर्मवित् ॥ विश्रुतं जनयामास पुत्रमिन्द्रसमं नृपः ॥ ९० ॥ चैद्योपरिचरं वीरं वसुं नामान्तरिक्षगम् ॥ चद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त मानवान् ॥ ९१ ॥ महारथो मगधराट् विश्रुतो यो बृहद्रथः ॥ प्रत्यग्रहः कुशश्चैव यमाहुर्मणिवाहनम् ॥ ९२ ॥

॥ ९३ ॥

हुए ॥८७॥ कुरुके सुधन्वा, सुधनु, परीक्षित,अरिमेजय चार पुत्र हुए ॥८८॥ सुधन्वाके बुद्धिमान् सुहोत्र पुत्र हुआ,सुहोत्रके धर्मार्थका ज्ञाता च्यवन पुत्र हुआ ॥८९॥ च्यवनके कृतयज्ञ पुत्र हुआ; यही कृतयज्ञ यज्ञोंके द्वारा धर्मका ज्ञाता हुआ;इसी कृतयज्ञकी चैद्या रानीने इन्द्रके तुल्य पुत्र उत्पन्न किया ॥ ९० ॥ वह आकाशगामी वीरवसु नामसे प्रसिद्ध हुआ; इस चैद्यकुलोत्पन्न आकाशचारीसे सात पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ९१ ॥ महारथ, मगधराट्,

बृहद्रथ, प्रत्यग्रह, कुश जिसको मणिवाहनभी कहते हैं ॥ ९२ ॥ मारुत, यदु और एक कन्या मत्स्य नामवाली हुई; बृहद्रथके कुशाग्र पुत्र हुआ ॥ ९३ ॥ कुशाग्रके महाबली वृषभ पुत्र हुआ ॥ ९४ ॥ वृषभके पुष्पवान् नाम धर्मात्मा पुत्र हुआ; पुष्पवान्के बली सत्यहित पुत्र हुआ ॥ ९५ ॥ सत्यहितके धर्मका ज्ञाता ऊर्ज पुत्र हुआ, ऊर्जका जो पुत्र हुआ वह महाबली हुआ ॥९६॥ उसके रानीके शरीरसे दो भाग पृथक् २ उत्पन्न हुए; तब जरा राक्षसीने दोनों भाग जोड दिये; इसकारण उसका जरासंध नाम हुआ ॥ ९७ ॥ यह जरासंध अब क्षत्रियोंका जीतनेवाला

मारुतश्च यदुश्चैव मत्स्यः काली च सत्तमः ॥ बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः ॥ ९३ ॥ कुशाग्रस्यात्मजो विद्वान्वृषभो नाम वीर्यवान् ॥ ९४ ॥ वृषभस्य तु दायादः पुष्पवान्नाम धार्मिकः ॥ दायादस्तस्य विक्रान्तो राजा सत्यहितः स्मृतः ॥ ९५ ॥ तस्य पुत्रः स धर्मात्मा नाम्ना ऊर्जस्तु जज्ञिवान् ॥ ऊर्जस्य संभवः पुत्रो यस्य जज्ञे स वीर्यवान् ॥ ९६ ॥ शकले द्वे स वै जातो जरया सन्धितः स तु ॥ जरया सन्धितो यस्माज्जरासन्धस्ततः स्मृतः ॥ ९७ ॥ सर्वक्षत्रस्य जेताऽसौ जरासन्धो महाबलः ॥ जरासन्धस्य पुत्रो वै सहदेवः प्रतापवान् ॥ ९८ ॥ सहदेवात्मजः श्रीमानुदायुः स महायशाः ॥ उदायुर्जनयामास पुत्रं परमधार्मिकम् ॥ ९९ ॥ श्रुतधर्मेति नामानं मगधान् योऽवसद्विभुः ॥ परीक्षितस्तु दायादो धार्मिको जनमेजयः ॥ १०० ॥ जनमेजयस्य दायादास्त्रय एव महारथाः ॥ श्रुतसेनोग्रसेनौ च भीमसेनश्च नामतः ॥ १ ॥ एते सर्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः ॥ जनमेजयस्य पुत्रौ तु सुरथो मतिमांस्तथा ॥ २ ॥

महाबली हुआ; और जरासंधके प्रतापी सहदेव पुत्र हुआ ॥९८॥ सहदेवके श्रीमान् उदायु पुत्र हुआ; उदायुके परम धार्मिक ॥ ९९ ॥ श्रुतधर्मा पुत्र हुआ, इसने यह मगधदेशमें निवास किया और पूर्वोक्त परीक्षित्के परम धार्मिक जन्मेजय हुआ ॥१००॥ जनमेजयके श्रुतसेन, उग्रसेन, भीमसेन, महारथी तीन पुत्र हुए॥१०१॥ यह सब महाभाग और महाबलशाली हुए; और जनमेजयके सुरथ और मतिमान् दो पुत्र औरभी हुए ॥ १०२ ॥

सुरथके बली विदूरथ पुत्र हुआ; विदूरथके महारथी ऋक्ष पुत्र हुआ॥१०३॥दूसरा राजाभी इसी नामका हुआ; हे राजन् ! आपके वंशमें दो ऋक्ष हैं, और दो परीक्षित् नामवाले हुए हैं ॥१०४॥ तीन भीमसेन और दो जनमेजय हुए हैं; दूसरे ऋक्षके भीमसेन पुत्र हुआ ॥१०५॥ भीमसेनके प्रतीप पुत्र, प्रतीपके महारथी शंतनु, देवापि, बाह्लीक नामवाले तीन पुत्र हुए॥१०६॥ शंतनुका वंश यही है, जिसमें आप उत्पन्न हुए हैं और बाह्लीकका सप्तरत्नोंका वहनेवाला राज्य हुआ ॥१०७॥ पीछे बाह्लीकक महायशस्वी सोमदत्त हुआ; सोमदत्तके भूरि, भूरिश्रवा, शल तीन पुत्र हुए ॥ १०८ ॥

सुरथस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जज्ञे विदूरथः ॥ विदूरथस्य दायादो ऋक्ष एव महारथः ॥ ३ ॥ द्वितीयः स बभौ राजा नाम्ना तेनैव संज्ञितः ॥ द्वावृक्षौ तव वंशेऽस्मिन्द्वावेव तु परीक्षितौ ॥ ४ ॥ भीमसेनास्त्रयो राजन्द्वावेव जनमेजयौ ॥ ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः ॥ ५ ॥ प्रतीपो भीमसेनस्य प्रतीपस्य तु शन्तनुः ॥ देवापिर्बाह्लिकश्चैव त्रय एव महारथाः ॥ ६ ॥ शन्तनोः प्रसवस्त्वेष यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥ बाह्लिकस्य तु राज्यं वै सप्तबाह्यं नरेश्वर ॥७॥ बाह्लिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः ॥ जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥ ८ ॥ उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः ॥ च्यवनस्य कृतः पुत्रः इष्टश्चासीन्महात्मनः ॥ ९ ॥ शन्तनुस्त्वभवद्राजा कौरवाणां धुरन्धरः ॥ शन्तनोः संप्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥११०॥ गाङ्गं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत्प्रभुः ॥ स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः ॥ ११ ॥ काली विचित्रवीर्यं तु जनयामास भारत ॥ शन्तनोर्दयितं पुत्रं धर्मात्मानमकल्मषम् ॥ १२ ॥

पूर्वोक्त देवापि राजा देवताओंका उपाध्याय हुआ; च्यवनके कृत नामवाले पुत्रके संग इसकी मित्रता थी ॥ १०९ ॥ यह शंतनु राजा कौरवोंमें धुरंधर हुआ; अब शंतनुके वंशको कहतेहैं; हे राजन् ! जिसमें आप उत्पन्न हुए हो ॥ ११० ॥ शंतनुके गंगा रानीमें देवव्रत नाम पुत्र हुआ, यही देवव्रत कौरवोंके पितामह भीष्मनामसे प्रसिद्ध हुए॥१११॥शंतनु राजासे काली रानीमें विचित्रवीर्य धर्मात्मा और पापरहित हुआ॥ ११२ ॥

वेदव्यासजीने विचित्रवीर्यकी रानियोंमें धृतराष्ट्र, पांडु, विदुरको उत्पन्न किया॥११३॥ धृतराष्ट्रनेगांधारी रानीमें सौ (१००)पुत्रोंको उत्पन्न किया; तिनमें ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन राजा हुआ ॥११४॥ पांडुके अर्जुन, अर्जुनके अभिमन्यु, अभिमन्युके परीक्षित, परीक्षितके हे राजन्! जनमेजय आप पुत्र हुए हैं॥११५॥ यह कौरव वंश प्रकाशित किया; जिसमें तुम हुए हो; अब तुर्वसु, द्रुह्यु, अणु; यदुका वंश कहते हैं ॥ ११६ ॥ तुर्वसुके वह्नि पुत्र हुआ, वह्निके गोभानु, गोभानुके त्रैशानु हुआ ॥११७॥त्रैशानुके करंधम पुत्र हुआ, करंधमके मरुत्त जिस मरुत्तका वृत्तान्त तुमसे कह चुके हैं, वह

कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ॥ धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥ १३ ॥ धृतराष्ट्रश्च गान्धार्यां पुत्रानुत्पादयच्छतम् ॥ तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वेषामेव स प्रभुः ॥ १४ ॥ पाण्डोर्धनंजयः पुत्रः सौभद्रस्तस्य चात्मजः ॥ अभिमन्योः परीक्षित्तु पिता तव जनेश्वर ॥ १५ ॥ एष ते पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥ तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुह्योश्चानोर्यदोस्तथा ॥ १६ ॥ सुतस्तु तुर्वसोर्वह्निर्वह्नेर्गोभानुरात्मजः ॥ गोभानोस्तु सुतो राजा त्रैसानुरपराजितः ॥ १७ ॥ करन्धमस्तु त्रैसानोर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः ॥ अन्यस्त्वावीक्षितो राजा मरुत्तः कथितस्तव ॥ १८ ॥ अनपत्योऽभवद्राजा यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ दुहिता सम्मता नाम तस्यासीत्पृथिवीपते ॥ १९ ॥ दक्षिणार्थं स्म वै दत्ता संवर्त्ताय महात्मने ॥ दुष्यन्तं पौरवं चापि लेभे पुत्रमकल्मषम् ॥ १२० ॥ एवं ययातेः शापेन जरासंक्रमणे तदा ॥ पौरवं तुर्वसोर्वंशः प्रविवेश नृपोत्तम ॥ २१ ॥ दुष्यन्तस्य तु दायादः करुत्थामः प्रजेश्वरः ॥ करुत्थामात्तथाक्रीडश्चत्वारस्तस्य चात्मजाः ॥ २२ ॥

और है ॥११८॥ इस राजाने यज्ञ बहुत किये, परन्तु सन्तान नहीं हुई; इस राजाके सम्मता नामएक कन्या हुई ॥११९॥ वह यज्ञकी दक्षिणामें इसने महात्मा संवर्तको दे दी; तिस पुत्रीमें पुरुवंशीय पापरहित दुष्यन्त पुत्र उत्पन्न हुआ॥१२०॥इसप्रकार ययाति राजाके शाप होनेसे जब जरा प्राप्त हुई;तब हे राजन्! तुर्वसुका वंश पौरव वंशमें मिल गया॥ १२१ ॥ दुष्यंतके करुत्थाम राजा पुत्र हुआ, करुत्थामके आक्रीड पुत्र हुआ, और आक्रीडके चार पुत्र॥ १२२ ॥

पांड्य, केरल, कोल, चौल, हुए. जिनके नामसे पांड्य, चोल, केरल, कोल देश विख्यात हुए हैं ॥१२३॥ हे राजन् ! द्रुह्युके बभ्रुऔर सेतु दो पुत्र हुए; सेतुके अंगार पुत्र हुआ; यह मरुतोंका पति हुआ ॥ १२४ ॥ इसके संग यौवनाश्व राजाका चौदह महीनेतक महायुद्ध रहा; तब अतिकष्टसे यह यौवनाश्वसे मारा गया ॥ १२५ ॥ अंगारके गांधार पुत्र हुआ, जिसके नामसे गांधार महादेश प्रसिद्ध है ॥ १२६ ॥ और गांधार देशमें अतिउत्तम अश्व उत्पन्न होते हैं, अणुके धर्म पुत्र हुआ; उसका घृत हुआ॥१२७॥घृतके दुदुह, दुदुहके प्रचेता, प्रचेताके सुचेता पुत्र हुआ; इसप्रकार अणुका वंशभी

पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कोलश्चोलश्च पार्थिवः ॥ तेषां जनपदाः स्फीताः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः ॥ २३ ॥ द्रुह्योश्च तनयो राजन् बभ्रुः सेतुश्च पार्थिवः ॥ अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुतां पतिरुच्यते ॥ २४ ॥ यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली ॥ युद्धं सुमहदस्यासीन्मासान्परिचतुर्दश ॥ २५ ॥ अङ्गारस्य तु दायादो गान्धारो नाम भारत ॥ ख्यायते तस्य नाम्ना वै गान्धारविषयो-महान् ॥ २६ ॥ गान्धारदेशजाश्चैव तुरगा वाजिनां वराः ॥ अनोस्तु पुत्रो धर्मोऽभूत् घृतस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ २७॥ घृतात्तु दुदुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः॥प्रचेतस सुचेतास्तुकीर्तिता ह्यानवो मया ॥२८॥ यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः॥विस्तरेणानुपूर्व्यात्तु गदतो मे निशामय ॥ १२९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पुरुवंशानुकीर्तने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बभूवुस्तु यदोः पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः ॥ सहस्रदः पयोदश्च क्रोष्टा नीलोऽञ्जिकस्तथा ॥ १ ॥ सहस्रदस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥ हैहयश्च हयश्चैव राजन् वेणुहयस्तथा ॥ २ ॥ हैहयस्याभवत्पुत्रो धर्मनेत्र इति स्मृतः धर्मनेत्रस्य कार्तस्तु साहञ्जस्तस्य चात्मजः ॥ ३ ॥

॥ ९६ ॥

प्रकाशित किया ॥ १२८ ॥ अब मैं ज्येष्ठ और उत्तम तेजस्वी यदुका वंश विस्तारसे कहता हूं, आप श्रवण कीजिये ॥ १२९ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां पुरुवंशानुकीर्तने द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥वैशंपायनजी बोले; यदुके देवपुत्रोंके समान पांच पुत्र सहस्रद, पयोद, क्रोष्टा, नील, अंजिक हुए ॥१॥ सहस्रदके परमधार्मिक हय, वेणुहय, हैहय, नामोंवाले तीन पुत्र हुए ॥ २ ॥ हैहयके धर्मनेत्र पुत्र हुआ, धर्मनेत्रके कार्त, कार्तके साहंज पुत्र हुआ ॥ ३ ॥

जिसने साहंजनी नाम पुरी रची;साहंजके महिष्मान् पुत्र उपजा॥४॥जिस राजाने माहिष्मती नाम पुरी रची;महिष्मानके पुत्र भद्रश्रेण्य हुआ ॥५॥ यह काशीका राजा हुआ,जो पहले कह चुके हैं, भद्रश्रेण्यके दुर्दम नाम पुत्र हुआ ॥६॥ दुर्दमके कनक, कनकके लोकमें प्रसिद्ध चार पुत्र हुए ॥ ७ ॥ कृतवीर्यके अर्जुन पुत्र हुआ;जिसने सहस्रबाहुओंके॥८॥प्रतापसे सात द्वीपोंमें राज्य किया;उसने सूर्यके समान तेजयुक्त रथसे इकलेही पृथ्वी जीत ली थी ॥ ९ ॥ और इसीने दश सहस्र वर्षोंतक महा उग्र तप करते अत्रिके पुत्र दत्तात्रेयजीकी पूजा की थी ॥१०॥ तब दत्तात्रेयजीने चार वर दिये;

सहञ्जनी नाम पुरी येन राज्ञा निवेशिता ॥ साहञ्जस्य तु दायादो माहिष्मान्नाम पार्थिवः ॥ ४ ॥ माहिष्मती नाम पुरी येन राज्ञा निवेशिता ॥ आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ॥ ५ ॥ वाराणस्यधिपो राजा कथितः पूर्वमेव तु ॥ भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः ॥६॥ दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम वीर्यवान् ॥ कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः॥७॥ कृतवीर्यः कृतौजाश्च कृतवर्मा तथैव च ॥ कृताग्निस्तु चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्तथार्जुनः ॥ ८ ॥ यस्तु बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ॥ जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्चसा ॥९॥ स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥ दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसंभवम् ॥१०॥ तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः ॥ पूर्वं बाहुसहस्रं तु प्रार्थितं सुमहद्वरम् ॥ ११ ॥ अधर्मे वर्तमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम् ॥ उग्रेण पृथिवीं जित्वा स्वधर्मेणानुरञ्जनम्॥१२॥ संग्रामान् सुबहून् कृत्वा हत्वा चारीन्सहस्रशः ॥ संग्रामे वर्तमानस्य वधं चाप्यधिकाद्रणे ॥१३॥ तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यतः किल भारत ॥ योगाद्योगेश्वरस्यैव प्रादुर्भवति मायया ॥१४॥

तिसमें प्रथम अर्जुनने यह वर मांगा कि मेरे सहस्र भुजा हो जांय ॥११॥ दूसरा वर मांगा कि अधर्ममें प्राप्त होनेसे मुझे सत्पुरुष निवारण करें; और उग्र कर्तव्यसे पृथ्वीको जीत स्वधर्मसे प्रसन्न करूं, यह तीसरा वर मांगा ॥१२॥ बहुतसे संग्रामोंको जीत सहस्रों शत्रुओंको मार उग्र संग्राममें मुझसे अधिक बली पुरुषके हाथ मेरी मृत्यु हो यह चौथा वर मांगा ॥ १३ ॥ हे राजन् ! योगेश्वररूप इस अर्जुन राजाके युद्धके समय मायासे सहस्र बाहु प्रगट हो जाती थी ॥ १४ ॥

तब इस राजाने उग्र तेजसे सात द्वीप, पर्वत,समुद्र, नगरसहित सम्पूर्ण पृथ्वी जीत ली ॥ १५ ॥ हे जनमेजय ! ऐसा सुना है कि इसीने सात द्वीपोंमें विधिपूर्वक सात सौ यज्ञ किये ॥१६॥ और सब यज्ञोंमें जहां एक दक्षिणा थी, उस स्थानमें लक्ष दक्षिणा दी, और सब यज्ञोंमें सुवर्णके यज्ञस्तंभ और सुवर्णकी वेदी बनाई ॥ १७ ॥ और सब यज्ञोंमें विमानोंमें स्थित और भूषणोंसे भूषित देवते, गंधर्व, अप्सरा नित्यप्रति समीपमें प्राप्त रहें ॥ १८ ॥ और जिसके यज्ञमें उसकी महिमासे विस्मित हो महात्मा वरीदासके पुत्र विद्वान् नारद गंधर्वने गाथा गाई है ॥ १९ ॥ वह गाथा कहते हैं; नारद बोले

तेनेयं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना॥ससमुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता ॥१५॥ तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै ॥ प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते जनमेजय ॥ १६ ॥ सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन् भूरिदक्षिणाः ॥ सर्वे काञ्चनयूपाश्च सर्वे काञ्चनवेदयः ॥१७॥ सर्वैर्देवैर्महाराज विमानस्थैरलंकृताः ॥ गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥ १८ ॥ यस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्वो नारदस्तथा ॥ वरीदासात्मजो विद्वान्महिम्ना तस्य विस्मितः ॥ १९ ॥ नारद उवाच ॥ न नूनं कार्त्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ॥ यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा विक्रमेण श्रुतेन च ॥ २० ॥ स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चर्मी शरासनी ॥ रथी द्वीपाननुचरन्योगी संदृश्यते नृभिः ॥२१॥ अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः ॥ प्रभावेन महाराज्ञः प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥२२॥ पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां वै नराधिपः॥स सर्वरत्नभाक् सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह ॥२३॥ स एव यज्ञपालोऽभूत्क्षेत्रपालः स एव च ॥ स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत् ॥ २४ ॥

यज्ञ, दान, तप, पराक्रम श्रुतमें इस सहस्रबाहु अर्जुन राजाकी गतिको दूसरे राजा नहीं प्राप्त होवेंगे ॥ २० ॥ ढाल, तलवार, धनुष बाण धारण कर रथमें स्थित हो सातों द्वीपोंमें विचरता हुआ यह योगी मनुष्योंकी दृष्टिमें आता है ॥२१॥ अपने प्रभावसे प्रजाकी रक्षा करनेमें कभी द्रव्यनाश नहीं होता, और न शोक और न विभ्रमकी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥ पचास सहस्र वर्षों तक इस चक्रवर्ती राजाने सब रत्न भोगकर राज्य किया ॥२३॥ और इसीने यहां यज्ञकी रक्षा की,और इसीने क्षेत्रोंकी रक्षा करी;और यही योगके प्रतापसे मेघरूपहोकर जल वर्षाता था ॥ २४ ॥

ज्याकी चिह्नवाली अपनी सहस्र भुजाओंसे यह राजा शरदृतुमें सूर्यकी किरणोंके समान शोभित होता था ॥ २५ ॥ और इसी राजाने कर्कोटक सर्पोंको जीतकर माहिष्मती पुरीमें मनुष्योंके बीचमें सर्पोंको बसाया ॥ २६ ॥ इसी राजाने वर्षाकालमें समुद्रके वेगके निमित्त क्रीडा करके अपनी भुजाओंसे समुद्रके बहुतसे पृथक् पृथक् स्रोत कर दिये ॥ २७ ॥ इसी राजाके क्रीडाके समय शंकित हुई नर्मदा नदी सहस्रधार हो मालाकी समान सन्मुख आई थी ॥ २८ ॥ इसी राजाकी सहस्रबाहुओंसे सागरके क्षुभित होनेसे चेष्टारहित हो, पातालवासी महाराक्षसभी भयभीत हो

स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा ॥ भाति रश्मिसहस्रेण शरदीव दिवाकरः ॥ २५ ॥ स हि नागान्मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः ॥ कर्कोटकसुतान् जित्वा पुर्यां तस्यां न्यवेशयत् ॥ २६ ॥ स वै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षणः ॥ क्रीडन्निव भुजोद्भिन्नं प्रतिस्रोतश्चकार ह ॥ २७ ॥ लुण्ठिता क्रीडिता तेन फेनस्रग्दाममालिनी ॥ चलदूर्मिसहस्रेण शङ्किताभ्येति नर्मदा ॥ २८ ॥ तस्य बाहुसहस्रेण क्षुभ्यमाणे महोदधौ ॥ भयान्निलीना निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः ॥ २९ ॥ चूर्णीकृतमहावीचिं चलन्मीनमहातिमिम् ॥ मारुताविद्धफेनौघमावर्त्तक्षोभदुःसहम् ॥ ३० ॥ प्रावर्त्तयत्तदा राजा सहस्रेण च बाहुना ॥ देवासुरसमाक्षिप्तः क्षीरोदमिव मन्दरः ॥ ३१ ॥ मन्दरक्षोभचकिता अमृतोद्भवशङ्किताः ॥ सहसोत्पतिता भीता भीमं दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ॥ ३२ ॥ नता निश्चलमूर्द्धानो बभूवुस्ते महोरगाः ॥ सायाह्ने कदलीखण्डे कम्पितास्तस्य वायुना ॥ ३३ ॥ स वै बद्ध्वा धनुर्ज्याभिरुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः ॥ लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् ॥ निर्जित्यैव समानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम् ॥ ३४ ॥

गये थे ॥ २९ ॥ लहरोंके चूर्ण होनेपर मच्छ महामच्छके चलायमान होने और तीव्र पवनके वेगसे सागरमें झाग उठनेसे महाक्षोभ हुआ ॥ ३० ॥ इस राजा सहस्रबाहुसे क्षुभित हो सागर ऐसा विदित होता था, मानो मंदराचलसे सागर मथन हो रहा हो. मंदरके मथनेकी समान अमृत निकलनेकी शंकासे ॥ राजाको उग्ररूप देख भयके मारे निकल आये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ वे सर्प शिर झुकाकर निश्चिन्त हो गये, और जैसे संध्यासमय वायुसे केला कंपित होता है, ऐसे वेभी समयसे कंपित हो गये ॥ ३३ ॥ और यही पांच शरोंका प्रहार कर बलसे सेनासहित रावणको जीत और अपने बलसे परास्त करके

माहिष्मती पुरीमें बांध लाया था॥३४॥पीछे अर्जुनके स्थानमें रावणको बंधादे सुनकर पुलस्त्य ऋषि अर्जुनके समीप गये; और प्रार्थना कर जाकर रावणको छुटाया ॥ ३५॥ और इसी राजाके सहस्र भुजाओंका शब्द धनुषकी ज्याके आघातसे प्रलयमें उठे मेघमेंसे निकले हुए वज्रके समान हुआ करता था ॥ ३६ ॥ अतिआश्चर्य है कि, परशुरामजीने इस राजाकी सहस्रों भुजा तालवनके समान काट डाली थीं ॥ ३७ ॥ एक समय इस राजाके निकट आकर अग्निने भिक्षा मांगी थी;तब इसने सात द्वीप पर्यन्त भिक्षा देदी॥३८॥तब पुर; ग्राम, घोष, देश सब स्थानोंको

श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वर्जुनेन तु ॥ ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्जुनं ददृशे स्वयम् ॥ मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनानु-याचितः ॥३५॥ यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः ॥ युगान्ते त्वम्बुदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव ॥३६॥ अहो बत मृधे वीर्यं भार्गवस्य यदच्छिनत् ॥ राज्ञो बाहुसहस्रं तु हेमं तालवनं यथा ॥३७॥ तृषितेन कदाचित्स भिक्षितश्चित्रभानुना ॥ स भिक्षामद-दाद्वीरः सप्त द्वीपान्विभावसोः ॥३८॥ पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्वशः ॥ जज्वाल तस्य सर्वाणि चित्रभानुर्दिधक्षया॥३९॥ स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेन महात्मनः ॥ ददाह कार्त्तवीर्यस्य शैलांश्चैव वनानि च ॥ ४० ॥ स शून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्म-जस्य वै ॥ ददाह वनवद्दीप्तश्चित्रभानुः सहैहयः ॥ ४१ ॥ यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ॥ वसिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ॥४२॥ यत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्जुनं विभुः ॥ यस्मान्मे वर्जितमिदं वनं ते मम हैहय ॥ ॥४३॥ तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ॥ रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥

अग्नि भस्म करने लगी॥३९॥ इसी इंद्रके समान प्रतापी राजा कार्तवीर्यके प्रभावसे पर्वत और सब वन अग्निने जला दिये ॥४०॥ वरुणके पुत्रका शून्य और रमणीय आश्रमभी अर्जुनकी सहायतासे अग्निने जला दिया॥४१॥ यह वरुणका पुत्र अग्निके समान तेजस्वी वासिष्ठ कहलाता था; और यही मुनि आपवनामसे प्रसिद्ध थे॥४२॥इन वरुणके पुत्र आपव नाम मुनिने क्रोधसे अर्जुनको शाप दिया कि; हे राजन्! तैंने मेरे आश्रमकी जिस कारणसे रक्षा नहीं करी॥४३॥ इसीसे जमदग्निका पुत्र महाबाहु प्रतापी परशुराम तेरी सहस्र बाहुओंको महावेगसे छेदन कर वह तपस्वी भार्गव तेरा

वध करेगा ॥४४॥ वैशंपायन बोले; हे शत्रुहन्ता ! यह राजा प्रजाको ऐसे धर्मसे ॥४५॥ पालन करता था, कि इसके राज्यमें किसी प्रजाका द्रव्य नष्ट नहीं हुआ॥४६॥और यही वर पहले इस राजाने दत्तात्रेयजीसेभी मागा था;इसी कारण मुनिके शापसे परशुरामजीसे यह राजा मृतक हुआ॥४७॥ इस राजाके सौ पुत्रोंमेंसे युद्धमें पांच पुत्र शेष बचे; यह सब अस्त्रविद्यामें निपुण, बली, शूर, धर्मात्मा, यशस्वी थे ॥४८॥ जो पुत्र बचे उनके शूर-सेन,शूर,धृष्टोक्त,कृष्ण,जयध्वज, नाम थे;इनमें जयध्वजका राज्य अवंती पुरीमें हुआ॥४९॥इस प्रकार कार्तवीर्यके पुत्र वीर्य औरबलयुक्त हुए। जयध्व-

छित्त्वा बाहुसहस्रं ते प्रमथ्य तरसा बली ॥ तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वां वधिष्यति स भार्गवः ॥ ४५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अनष्ट-द्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्शन ॥ प्रभावेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥ ४६ ॥ रामात्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्मुनेर्नृप ॥ वरश्चैष हि कौरव्य स्वयमेव वृतः पुरा ॥ ४७ ॥ तस्य पुत्रशतस्यासन् पञ्च शेषा महात्मनः ॥ कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः ॥ ४८ ॥ शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टोक्तः कृष्ण एव च ॥ जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ॥ ४९ ॥ कार्त्तवीर्यस्य तनया वीर्यवन्तो महारथाः ॥ जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः ॥ ५० ॥ तस्य पुत्रा शतं ख्यातास्तालजङ्घ इति श्रुताः ॥ तेषां कुले महाराज हैहयानां महात्मनाम् ॥ ५१ ॥ वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजाश्चावन्तयः स्मृताः ॥ तौण्डिकेरा इति ख्यातास्तालजघास्तथैव च ॥ ५२ ॥ भरताश्च सुता जाता बहुत्वान्नानुकीर्तिताः ॥ वृषप्रभृतयो राजन् यादवाः पूर्णकर्मिणः ॥ ५३ ॥ वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ॥ मधोः पुत्रशतं त्वासीत् वृषणस्तस्य वंशभाक् ॥ ५४ ॥ वृषणात् वृष्णयः सर्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः ॥ यादवा यदुना चाग्रे निरुच्यन्ते च हैहयाः ॥ ५५ ॥

जके महाबली तालजंघ पुत्र हुआ॥५०॥ तालजंघके सौ (१००)पुत्र हुए, और तालजंघ कहाये; हे महाराज ! उन महात्मा हैहयोंके कुलमें ॥५१॥ वीतिहोत्र,सुजात,भोज, आवंति, तौंडिकेर, तालजंघ॥५२॥भरत नामोंसे विख्यात हुए; बहुतसे होनेसे वर्णन नहीं करते; केवल वृष आदि पुण्यकर्मा यादवोंको कहते हैं ॥ ५३ ॥ वृषके मधु, मधुके सौ (१००) पुत्र हुए. तिनमेंसे वृषणका वंश चला ॥५४॥ इसी कारण वृषणके सब वृष्णी कहाये,

और सब मधुके माधव कहाये, और यदुके सब यादव कहाये, आगे हैहयोंको कहेंगे ॥ ५५ ॥ शूर, शूरवीर, शूरसेन इन महात्माओंका देश शूरसेन कहलाया ॥५६॥ जो मनुष्य नित्यप्रति इस कार्तवीर्यार्जुनके जन्मको कहेगा, तिसके द्रव्यका नाश नहीं होगा; और नष्ट हुआ द्रव्य फिर मिल जायगा॥५७॥ इस प्रकार ययाति राजाके पांचों पुत्रोंका कुल वर्णन किया. यह संसारको इस प्रकार धारण कर रहे हैं; जैसे पंच महाभूत स्थावर जंगमको धारण करते हैं ॥ ५८ ॥ इन पांचों वंशोंके श्रवण करनेसे धर्मको जाननेवाला राजा आत्मजपंचकको अपने वशमें करता है ॥ ५९ ॥ और संसारमें दुर्लभ पांच वरोंको

शूराश्च शूरवीराश्च शूरसेनास्तथानघ ॥ शूरसेन इति ख्यातस्तस्य देशो महात्मनः ॥ ५६ ॥ न तस्य वित्तनाशोऽस्ति नष्टं प्रतिलभेच्च सः ॥ कार्त्तवीर्यस्य यो जन्म कीर्तयेदिह नित्यशः ॥ ५७ ॥ एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा विशांपते ॥ कीर्तिता लोकवीराणां ये लोकान्धारयन्ति वै ॥ भूतानीव महाराज पञ्च स्थावरजङ्गमान् ॥ ५८ ॥ श्रुत्वा पञ्चविसर्गं तु राजा धर्मार्थकोविदः ॥ वशीभवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ॥ ५९ ॥ लभेत्पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान् ॥ आयुः कीर्तिं तथा पुत्रानैश्वर्यं भूमिमेव च ॥ धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भारत ॥ ६० ॥ क्रोष्टोस्तु शृणु राजेन्द्र वंशमुत्तमपौरुषम् ॥ यदोर्वंशधरस्याथ यज्वनः पुण्यकर्मणः ॥ ६१ ॥ क्रोष्टुर्हि वंशं श्रुत्वेमं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्ये बभूवतुः ॥ गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥ १ ॥

पाता है; आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य, पृथ्वीकी प्राप्ति इनके श्रवणसे होती है और पांच वर्गका धारण होता है ॥ ६० ॥ हे राजेन्द्र ! अब यदुके पुत्र पुण्यकर्मा यज्ञशील क्रोष्टाके वंशको श्रवण करो ॥ ६१ ॥ जिस क्रोष्टावंशके श्रवण करनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है, और जिस वंशमें साक्षात् विष्णु भगवान्ने जन्म लिया था ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ वैशंपायनजी बोले; क्रोष्टुके गांधारी और माद्री दो भार्या थीं, गांधारीके महाबलवाला अनमित्र पुत्र हुआ ॥ १ ॥

माद्री रानीके युधाजित् और देवमीढुष पुत्र हुए. इस प्रकार उन महात्मा ऋषियोंका वंश तीन प्रकारसे चला ॥ २ ॥ युधाजित्के वृष्णी, अंधक दो पुत्र हुए; वृष्णीके श्वफल्क और चित्रक दो पुत्र हुए ॥ ३ ॥ हे महाराज! वह धर्मात्मा श्वफल्क जिस देशमें रहते थे उस देशमें व्याधिका भय और अनावृष्टि भय नहीं होता था ॥ ४ ॥ किसी समयमें काशिराजके राज्यमें तीन वर्षतक इन्द्रने वर्षा नहीं की ॥ ५ ॥ तब उस राज्यमें सत्कारसे परम श्वफल्कको वसाया था, तब इन्द्रने वर्षा करी थी ॥ ६ ॥ तब काशीके राजाने श्वफल्कको गांदिनी नाम अपनी पुत्री दे दी, यह गांदिनी रानी ब्राह्मणोंको नित्यप्रति

माद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीढुषम् ॥ तेषां वंशस्त्रिधा भूतो वृष्णीनां कुलवर्धनः ॥ २ ॥ माद्र्याः पुत्रस्य जज्ञाते सुतौ वृष्ण्यन्धकावुभौ ॥ जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ॥ ३ ॥ श्वफलकस्तु महाराज धर्मात्मा यत्र वर्तते ॥ नास्ति व्याधिभयं तत्र नावर्षभयमप्युत ॥ ४ ॥ कदाचित्काशिराजस्य विभोर्भरतसत्तम ॥ त्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत्पाकशासनः ॥ ५ ॥ स तत्र वासयामास श्वफल्कं परमार्चितम् ॥ श्वफल्कपरिवर्ते च ववर्ष हरिवाहनः ॥ ६ ॥ श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत ॥ गान्दिनी नाम सा गां तु ददौ विप्रेषु नित्यशः ॥ ७ ॥ सा मातुरुदरस्था तु बहून्वर्षगणान् किल ॥ निवसन्ती न वै जज्ञे गर्भस्थां तां पिताब्रवीत् ॥ ८ ॥ जायस्व शीघ्रं भद्रं ते किमर्थमिह तिष्ठसि ॥ प्रोवाच चैवं गर्भस्था कन्या गां च दिने दिने ॥ ९ ॥ यदि दद्यां ततोऽद्याहं जाययिष्यामि तां पिता ॥ तथेत्युवाच तं चास्याः पिता काममपूरयत् ॥ १० ॥ दाता यज्वा च धीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः ॥ अक्रूरः सुषुवे तस्माच्छ्वफल्काद्भूरिदक्षिणः ॥ ११ ॥

गोदान करती थी ॥ ७ ॥ कारण कि यह जब अपनी माताके उदरमें बहुतसे वर्षोंतक स्थित रही और जन्म नहीं लिया, तब इसके पिताने कहा ॥ ८ ॥ हे गर्भ! तेरा कल्याण हो तू शीघ्र जन्म ले; तुझे सुख होगा, तू क्यों उदरमें स्थित है ॥ ९ ॥ तब गर्भस्थित कन्या बोली; कि नित्यप्रति मैं गायोंका दान करा करूंगी; जो आप इस कहनेको मानो तो मैं जन्म लूं; यह वचनको सुन पिताने स्वीकार किया ॥ १० ॥ तब यह जन्मी; उससे श्वफल्कके दाता

यज्ञ करनेवाला वीर, बहुत दक्षिणाका दाता, वेदोंके अर्थका ज्ञाता, अतिथियोंका मित्र अक्रूर पुत्र हुआ॥११॥उपासंग १ मदगु २ मृदुर ३ अरिमेजय ४ अविक्षिप ५ उपेक्ष ६ शत्रुघ्न ७अरिमर्दन ८॥१२॥ धर्मधृक् ९यतिधर्मा १० गृध्रम ११ अज १२ अंतक १३ आवाह १४ प्रतिवाह १५ यह पन्द्रह पुत्र और सुन्दरी नाम एक कन्या ॥ १३ ॥ ये सब श्वफल्ककी रानीमें उपजे अक्रूरके उग्रसेना रानीमें देवताके तेजको धारण किये प्रसेन और उपदेव दो पुत्र हुए॥१४॥ और पूर्वोक्त चित्रकके पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण॥१५॥अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत्,

उपासङ्गस्तथा मद्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः ॥ अविक्षिपस्तथोपेक्षः शत्रुघ्नोऽथारिमर्दनः ॥ १२ ॥ धर्मधृग्यतिधर्मा च गृध्रमोजान्तकस्तथा ॥ आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना ॥ १३ ॥ अक्रूरेणोग्रसेनायां सुगात्र्यां कुरुनन्दन ॥ प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ ॥ १४ ॥ चित्रकस्याभवन्पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च ॥ अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥ १५ ॥ अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्मभृत्तथा ॥ सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥ १६ ॥ अश्मक्यां जनयामास शूरं वै देवमीढुषः ॥ महिष्यां जज्ञिरे शूराद्भोज्यायां पुरुषा दश ॥ १७ ॥ वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः ॥ जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्यः प्राणदन्दिवि ॥१८॥ आनकानां च संह्रादःसुमहानभवद्दिवि ॥ पपात पुष्पवर्षं च शूरस्य भवने महत् ॥१९॥ मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ॥ यस्यासीत्पुरुषाग्र्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा ॥२०॥ देवभागस्ततो यज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः अनाधृष्टिः कनवको वत्सवानथ गृञ्जिमः ॥२१॥ श्यामःशमीको गण्डूषःपञ्च चास्य वराङ्गनाः ॥पृथुकीतःपृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवा ॥२२॥

सुबाहु, बहुबाहु पुत्र और श्रविष्ठा और श्रवणा नामोंवाली दो कन्या हुई ॥१६॥ पूर्वोक्त देवमीढुषके अश्मकी रानीमें शूर पुत्र हुआ, शूरके भोज्या रानीमें दश पुत्र हुए॥१७॥जिनके यहां महाबाहु वसुदेवजीके हुए; जिनके जन्मसमय देवताओंने आकाशसे नगाडे बजाये, इसीसे उनका नाम आनकदुन्दुभि हुआ॥१८॥और शूरके स्थानमें फूलोंकी वर्षा हुई॥१९॥ इन वसुदेवके समान रूपमें मनुष्यलोकमें कोई नहीं था, जिनकी चंद्रमाके समान कांति थी॥२०॥वसुदेवके जन्मके उपरान्त देवभाग,देवश्रवा, अनाधृष्टि, कनवक, वत्सवान, गृञ्जिम ॥२१॥ श्याम, शमीक, गंडूष नाम नौ पुत्र शूरके

हुए, और पांच कन्या पृथुकीर्ति,पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा॥२२॥राजाधिदेवी यह पांच पुत्री वीरमाता हुई,पीछे पृथाको मातामह कुंतिभोजराजाने मांग लिया॥२३॥तब शूर राजाने कुंतिभोजको पृथाको दिया; इस कारण कुंतिभोजकी पुत्री पृथाका नाम कुंती हुआ॥२४॥और अंत्य राजाके श्रुतदेवामें जगृहु पुत्र हुआ,और चैद्यके श्रुतश्रवा रानीमें महाबली शिशुपाल हुआ ॥२५॥ पूर्वजन्ममें हिरण्यकशिपु नामसे विख्यात दैत्यराज महाबली था;और वृद्धशर्माके पृथुकीर्ति रानीमें ॥२६॥ करुष देशका पति वीर अतिबली दंतवक्र पुत्र हुआ,और कुंतिभोजकी पुत्री कुंतीको पांडु राजाने विवाह॥२७॥

राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः ॥ पृथा दुहितरं वव्रे कुन्तिस्तां कुरुनन्दन ॥२३॥ शूरः पूज्याय वृद्धाय कुन्तिभोजाय तां ददौ ॥ तस्मात्कुन्तीति विख्याता कुन्तिभोजात्मजा पृथा ॥२४॥ अन्त्यस्य श्रुतदेवायां जगृहुः सुषुवे सुतः ॥ श्रुतश्रवायां चैद्यस्य शिशुपालो महाबलः ॥ २५ ॥ हिरण्यकशिपुर्योऽसौ दैत्यराजोऽभवत्पुरा ॥ पृथुकीर्त्यां तु तनयः संजज्ञे वृद्धशर्मणः ॥ २६ ॥ करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः ॥ पृथा दुहितरं चक्र कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत् ॥ २७ ॥ यस्यां स धर्मविद्राजा धर्माज्जज्ञे युधिष्ठिरः ॥ भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनंजयः ॥ २८ ॥ लोकेऽप्रतिरथो वीरः शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् ॥२९॥ शैनेयः सत्यकस्तस्माद्युयुधानश्च सात्यकिः॥असङ्गो युयुधानस्य भूमिस्तस्याभवत्सुतः ॥ ३० ॥ भूमेर्युगन्धरः पुत्र इति वंशः समाप्यते ॥ उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत् ॥ पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्रवसमुद्भवम् ॥ ३१ ॥ अश्मक्यां प्राप्तवान् पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम् ॥ निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं देवश्रवा व्यजायत ॥ ३२ ॥

जिसमें धर्मराजसे धर्मोंके वेत्ता युधिष्ठिरजी उत्पन्न हुए. वायुसे भीमसेन, इन्द्रसे अर्जुन हुआ ॥२८॥ मनुष्यलोकमें जिसके समान कोईभी वीर नहीं था. वृष्णिवंशमें हुए यादवोंके प्रिय अनमित्र राजाके शिनि पुत्र हुआ ॥ २९ ॥ शिनिके सत्यक, सत्यकके सात्यकी, सात्यकीके भूमि पुत्र हुआ॥३०॥भूमिके युगंधर हुआ, इसपर यह वंश समाप्त हो गया. देवताओंके समान कीर्तिमान वसुदेवके भ्राता देवभागके महाभाग्यशाली पंडितोंमें श्रेष्ठ उद्धव पुत्र हुआ ॥ ३१ ॥ और अनाधृष्टिके अश्मकी रानीमें अतियशस्वी निवृत्तशत्रु पुत्र हुआ,और वसुदेवके तीसरे भ्राता देवश्रवाके शत्रुघ्न पुत्र

हुआ ॥ ३२ ॥ इसके जन्मतेही निषादोंने रक्षा करी थी यह उन्हींमें रहा इस कारण एकलव्य नामसे विख्यात भील कहाया. यह श्रुतदेवाका पुत्र है ॥ ३३ ॥ और वत्सावानके संतान नहीं हुई, तब प्रतापी वसुदेवने कौशिक नाम पुत्रको उसे दिया ॥ ३४ ॥ जब गंडूषके संतान नहीं हुई तब श्रीकृष्ण चारुदेष्ण, सुचारु, पंचाल, कृतलक्षण इन चार पुत्रोंको उसे दे दिया ॥ ३५ ॥ जो वीर संग्रामसे कभीभी निवृत्त नहीं हुआ था; वह रुक्मिणीसे उत्पन्न हुआ छोटा पुत्र ॥ ३६ ॥ कि जिसके चलनेके समय उसके पीछे सहस्रों काग चलते, और चारुदेष्णके दिये हुए मिष्ट पदार्थोंको भोजन किया

देवश्रवाः प्रजातस्तु नैषादिर्यः प्रतिश्रुतः ॥ एकलव्यो महाराज निषादैः परिवर्द्धितः ॥ ३३ ॥ वत्सावते त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान् ॥ अद्भिर्ददौ सुतं वीरं शौरिः कौशिकमौरसम् ॥ ३४ ॥ गण्डूषाय त्वपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान् ॥ चारुदेष्णं सुचारुं च पञ्चालं कृतलक्षणम् ॥ ३५ ॥ असंग्रामेण यो वीरो नावर्त्तत कदाचन ॥ रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान्पुरुषर्षभ ॥ ३६ ॥ वायसानां सहस्राणि यं यान्तं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ चारुमांसानि भोक्ष्यामश्चारुदेष्णहतानि तु ॥ ३७ ॥ तन्द्रिजस्तन्द्रिपालश्च सुतौ कनवकस्य तु ॥ वीरश्चाश्वहनश्चैव वीरौ तावावगृञ्जिमौ ॥ ३८ ॥ श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत् ॥ जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप सः ॥ ३९ ॥ अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः ॥ वसुदेवसुतान्वीरान् कीर्त्तयिष्यामि तान् शृणु ॥ ४० ॥ वृष्णेस्त्रिविधमेतत्तु बहुशाखं महौजसम् ॥ धारयन्विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि वृष्णिवंशकीर्त्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ छ ॥

करते थे; इसीसे उसका नाम चारुदेष्ण हुआ ॥ ३७ ॥ पूर्वोक्त कनवकके तंद्रिज और तंद्रिपाल दो पुत्र हुए. गृञ्जिमके वीर और अश्वहन दो पुत्र हुए ॥ ३८ ॥ श्यामके शमीक पुत्र हुआ, यही राजा हुआ और भोज संज्ञावाला होनेसे अपनेको निन्दित मान सामराज्यको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ शमीकके शत्रुनाशी अजातशत्रु पुत्र हुआ, अब वसुदेवके वीर पुत्रोंका वंश कहता हूं, उसे सुनो ॥ ४० ॥ बहुत प्रकारसे भेदको प्राप्त हुए तीन प्रकारसे संयुक्त वृष्णीके वंशको धारण करनेसे मनुष्यका वंश अनाथभागी नहीं होता है ॥ ४१ ॥ इति श्रीहरिवंशे हरिवंशपर्वभाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

वैशंपायनजी बोले; कि वसुदेवजीके १४ भार्या थीं, उनके नाम कहते हैं सुनो. पौरवी १ रोहिणी २ इंदिरा ३ वरा ४ ॥ १ ॥ वैशाखी ५ भद्रा ६ सुनाम्नी ७ सहदेवा ८ शांतिदेवा ९ श्रीदेवा १० देवरक्षिता ११ ॥ २ ॥ वृकदेवी १२ उपदेवी १३ देवकी १४ सुतनु और वडवा यह दो भोगपत्नी थीं ॥ ३ ॥ पौरवी और रोहिणी यह दोनों बाह्लीककी पुत्री थीं. और वसुदेवजीकी यह दोनों बडी पटरानी थीं ॥ ४ ॥ इस रोहिणीमें वसुदेवजीके राम, सारण, शठ, दुर्द्दम, दमन, श्वभ्र, पिंडारक, उशीनर नाम आठ पुत्र ॥ ५ ॥ चित्रा और सुभद्रा नाम दो कन्या, इस प्रकार रोहिणीके दश संतान

वैशम्पायन उवाच ॥ याः पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वराङ्गनाः ॥ पौरवी रोहिणी नाम इन्दिरा च तथा वरा ॥ १ ॥ वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी ॥ सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवा देवरक्षिता ॥ २ ॥ वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी ॥ सुतनुर्वडवा चैव द्वे एते परिचारिके ॥ ३ ॥ पौरवी रोहिणी नाम बाह्लिकस्यात्मजाभवत् ॥ ज्येष्ठा पत्नी महाराज दयिताऽऽनकदुन्दुभेः ॥ ४ ॥ लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं शठमेव च ॥ दुर्दमं दमनं श्वभ्रं पिण्डारकमुशीनरम् ॥ ५ ॥ चित्रां नाम कुमारीं च रोहिणीतनया दश ॥ चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता कुरुनन्दन ॥ ६ ॥ वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशाः ॥ रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्यां दयितः सुतः ॥ ७ ॥ सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत ॥ अक्रूरात्काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत ॥ ८ ॥ वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु ॥ ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान्निबोध मे ॥ ९ ॥ भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ ॥ वृकदेवः सुनामायां गदश्चास्तां सुतावुभौ ॥ १० ॥

हुईं ॥ ६ ॥ और वसुदेवजीसे देवकी रानीमें महायशस्वी श्रीकृष्णजी जन्मे. रामसे रेवतीमें निशठ पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ सुभद्रामें अर्जुनसे महारथी अभिमन्यु उत्पन्न हुआ; और अक्रूरसे काशिकन्यामें सत्यकेतु उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥ और वसुदेवकी सात रानियोंमें जो महाप्रतापी पुत्र उपजे हैं, श्रवण करो ॥ ९ ॥ शांतिदेवा रानीके भोज और विजय दो पुत्र हुए सुनामाके वृक्षदेव और गद दो पुत्र हुए ॥ १० ॥

---

१ चित्रातक नौ सन्तान होती हैं और ग्रंथकारने दश लिखी हैं यह चित्राही फिर सुभद्रा हुई ऐसा अर्थ है. चित्रा नाम किसी अप्सराने मुनिके शापसे रोहिणीके गर्भमें वास किया. वह जन्म लेतेही मरती हुई बोली धिक्कार है मुझे, जो मैंने श्रीकृष्णभगवान्‌की यादवोंमें लीला न देखी, इसी वासनासे वह फिर सुभद्रा होकर जन्मी.

देवरक्षित वराकेभी एक पुत्र हुआ;और वृकदेवी रानीमें अवगाह पुत्र हुआ॥११॥एक समय देवराजाके पुरोहित गार्ग्यमुनिकी परीक्षाके निमित्त यादवपक्षमें रहनेवाले किसी एक पुरोहितनेमुनिके पौरुषकी परीक्षाके निमित्त अपने हाथसे मुनिके लिंगको स्पर्श किया;परन्तुगार्ग्यमुनिका वीर्य्य स्खलित न हुआ, और न लिंगका उत्थान हुआ ॥ १२ ॥ तब इन पुरोहितने यादवोंकी सभामें गार्ग्यमुनिको नपुंसक कहा;जिससे इनकी सब यादवोंने हँसी की,तब इस आख्यानको सुनकर मुनिको क्रोध हुआ; और बारह वर्षतक क्रोध धारण करनेके कारण काले लोहेके समान हो गया ॥१३॥ बारह वर्षमें कोपकी शांति होनेसे गोपकी स्त्रीके वेष धारण किये गोपाली नाम अप्सराके साथ भोग किया॥१४॥तब गार्ग्यसे महादेवजीकी कृपासे उस मनुष्यरूप गार्ग्यकी

उपासङ्गवरं लेभे तनयं देवरक्षिता ॥ अगावहं महात्मानं वृकदेवी व्यजायत ॥११॥ कन्या त्रिगर्त्तराजस्य भर्ता वै शैशिरायणः ॥ जिज्ञासां पौरुषे चक्रे न चस्कन्देथ पौरुषम् ॥१२॥ कृष्णायाससमप्रख्यो वर्षे द्वादशमे तथा ॥ मिथ्याभिशप्तो गार्ग्यस्तु मन्युनाभिसमीरितः ॥ १३ ॥ गोपकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे ॥ गोपाली त्वप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेषधारिणी ॥ १४ ॥ धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्धरमच्युतम् ॥ मानुष्यां गार्ग्यभार्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः ॥१५॥ स कालयवनो नाम जज्ञे राजा महाबलः॥ वृषपूर्वार्धकायास्तमवहन्वाजिनो रणे ॥ १६॥ अपुत्रस्य स राज्ञस्तु ववृधेऽन्तःपुरे शिशुः ॥ यवनस्य महाराज स कालयवनोऽभवत् ॥१७॥ स युद्धकामी नृपतिः पर्यपृच्छद्द्विजोत्तमान् ॥ वृष्ण्यन्धककुलं तस्य नारदोऽकथयद्विभुः ॥ १८ ॥ अक्षौहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात्तदा ॥ दूतं संप्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ॥ १९ ॥

भार्यामें गर्भ स्थिर हो गया॥१५॥उससे अतिबली कालयवन नाम विख्यात बालक उत्पन्न हुआ.युद्ध करनेके समय इसे वृषभके पूर्वार्द्ध शरीरके समान आकारवाले अश्व वहन करते थे ॥ १६ ॥ उत्पन्न कर वह कन्या इसे छोडकर चली गई, तब यह संतानरहित यवन राजाके स्थानमें बुद्धिको प्राप्त हुआ; इसी कारण इसको कालयवन कहते हैं ॥१७॥ तब इसने युद्धकी इच्छासे ब्राह्मणोंसे पूछा, तब नारद मुनिने इसको वृष्णियोंका कुल युद्ध करनेको बताया ॥ १८ ॥ तब यह एक अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरापुरीके समीपमें आया, और वृष्णिकुलमें अपने दूतको भेजा ॥ १९ ॥

तब वृष्णिवंशके सब मनुष्य श्रीकृष्णके आश्रय होकर कालयवनके भयसे एकत्र हो विचार करने लगे ॥ २० ॥ तब सबने बुद्धिसे यहीं निश्चय किया कि यहांसे भागनाही भला है; तब मनोहर मथुरापुरीको त्यागकर उस कालयवनको शिवरूप मान द्वारकापुरीमें ॥ २१ ॥ प्रवेश करनेकी इच्छा करने लगे, इस प्रकार जो मनुष्य पवित्र और जितेन्द्रिय हो कृष्णके जन्मको पर्वमें सुनाता है; वह सब प्रकारके ऋणोंसे छूटकर सुखको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ वैशंपायनजी बोले; क्रोष्टुके अतियशस्वी वृजिनीवान् पुत्र हुआ; वृजिनी-

ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरस्कृत्य महामातिम् ॥ समेता मन्त्रयामासुर्यवनस्य भयात्तदा ॥ २० ॥ कृत्वा च निश्चयं सर्वे पलायनपरायणाः ॥ विहाय मथुरां रम्यां मानयन्तः पिनाकिनम् ॥ २१ ॥ कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितुमीप्सवः ॥ इति कृष्णस्य जन्मेदं यः शुचिर्नियतेन्द्रियः ॥ पर्वसु श्रावयेद्विद्वाननृणः स सुखी भवेत् ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि श्रीकृष्णजन्मानुकीर्तनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ क्रोष्टोरेवाभवत्पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः ॥ वृजिनीवत्सुतश्चापि स्वाहिः स्वाहाकृतां वरः ॥ १ ॥ स्वाहिपुत्रोऽभवद्राजा रुषद्गुर्वदतां वरः ॥ महाक्रतुभिरीजेयो विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥ सुतप्रसूतिमन्विच्छन्रुषद्गुः सोऽग्र्यमात्मजम् ॥ जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः ॥ ३ ॥ आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ शशबिंदुः परं वृत्तं राजर्षीणामनुष्ठितः ॥ ४ ॥ पृथुश्रवा पृथुयशा राजासीच्छशबिन्दुजः ॥ शंसन्ति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमुत्तरम् ॥ ५ ॥ अनन्तरं सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत् ॥ उशतो यज्ञमखिलं स्वधर्ममुशतां वरः ॥ ६ ॥

वान्के स्वाहि पुत्र हुआ ॥ १ ॥ स्वाहिके बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ रुषद्गु पुत्र हुआ; इसने बहुत दक्षिणाओंसे संयुक्त अनेक प्रकारके यज्ञ किये ॥ २ ॥ इस रुषद्गुने पुत्रकी इच्छासे पुत्रेष्टी यज्ञ किया; तब उसके चित्ररथ पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ चित्ररथके वीर यज्ञकर्ता, विपुल दक्षिणा देनेवाला राजर्षि शशबिंदु पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ शशबिंदुके अतियशस्वी पृथुश्रवा पुत्र हुआ, जिसकी पुराणवेत्ता प्रशंसा करते हैं; इसके उपरान्त ॥ ५ ॥ पृथुश्रवाका पुत्र सुयज्ञ हुआ; जिसने

अनेक यज्ञ किये; यह स्वधर्मानुसार यज्ञकी कामना करनेवालोंमें श्रेष्ठ था ॥ ६ ॥ यज्ञके दो पुत्र हुए, सुयज्ञके उशत् पुत्र हुआ, पीछे उशत्के शिनेयु पुत्र हुआ शिनेयुके राजर्षि मरुत्त पुत्र हुआ, ॥ ७ ॥ मरुत्तके कंबलबर्हिष पुत्र हुआ, इस कंबलबर्हिषने महाधर्म किया ॥ ८ ॥ इसके सत्प्रसूति; सत्प्रसूतिके रुक्मकवच पुत्र हुआ ॥ ९ ॥ इस रुक्मकवचने अच्छे धनुषवाले और अच्छे कवच १०० राजाओंको तीक्ष्ण बाणोंसे मारके उत्तम कांति प्राप्त की ॥ १० ॥ रुक्मकवचके वीरोंको मारनेवाले पराजित् सुत हुआ, पराजित्के महापराक्रमी पांच पुत्र हुए ॥ ११ ॥ रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पलित, हरि, पराजि-

शिनेयुरभवत्सूनुरुशतः शत्रुतापनः ॥ मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृप ॥ ७ ॥ मरुत्तोऽलभत ज्येष्ठं सुतं कम्बलबर्हिषम् ॥
चचार विपुलं धर्ममर्मर्षात्प्रेत्यभागपि ॥ ८ ॥ सुतप्रसूतिमिच्छन्वै सुतं कम्बलबर्हिषः ॥ बभूव रुक्मकवचः शतप्रसवतः सुतः ॥ ९ ॥
निहत्य रुक्मकवचः शतं कवचिनां रणे ॥ धन्विनां निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् ॥ १० ॥ जज्ञेऽथ रुक्मकवचात् पराजि-
त्परवीरहा ॥ जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्या पराजितः ॥ ११ ॥ रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः पलितो हरिः ॥ पालितं च हरिं चैव
विदेहेभ्यः पिता ददौ ॥ १२ ॥ रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्य संश्रितः ॥ ताभ्यां प्रव्राजितो राज्याज्ज्यामघोऽवसदाश्रमे ॥ १३ ॥
प्रशान्तः स वनस्थस्तु ब्राह्मणैश्चावबोधितः ॥ जिगाय रथमास्थाय देशमन्यं ध्वजी रथी ॥ १४ ॥ नर्मदाकूलमेकाकी नगरीं
मृत्तिकावतीम् ॥ ऋक्षवन्तं गिरिं जित्वा शुक्तिमत्यामुवास सः ॥ १५ ॥ ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्या बलवती सती ॥ अपुत्रोऽपि
च राजा स नान्यां भार्यामविन्दत ॥ १६ ॥ तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप सः ॥ भार्यामुवाच संत्रस्तः स्नुषेति स नरेश्वरः ॥ १७ ॥

तने पालित और हरि इन दो पुत्रोंको विदेहोंको दिया ॥ १२ ॥ पृथुरुक्मके आश्रयसे रुक्मेषु राजा हुआ; इन दोनोंने ज्यामघको निकाल दिया, तब वह आश्रममें रहने लगा ॥ १३ ॥ प्रशांत ज्यामघको ब्राह्मणोंने समझाया; तब वह धनुषको धारण कर रथमें चढा ॥ १४ ॥ नर्मदाके किनारेपै विचरता हुआ इकला मृत्तिकावती और ऋक्षवान् पर्वतको जीत शुक्तिमती पुरीमें रहने लगा ॥ १५ ॥ ज्यामघ राजाके शैब्या नाम बलिष्ठ सती रानी थी; इस राजाके संतानभी नहीं थी; तथापि इसने दूसरी भार्याकी इच्छा नहीं की ॥ १६ ॥ एक समय युद्धमें इस राजाने विजय पाई, वहां एक कन्याभी मिली,

उस कन्याको लेकर इसने अपनी रानीके भयसे कहा कि यह तेरे पुत्रकी वधू है ॥ १७ ॥ यह सुन रानी बोली मेरे तो पुत्रही नहीं, तुमने इस वधूको कैसे माना ॥१८॥ तब ज्यामघराजाने कहा कि तेरे जो पुत्र होगा उसीकी यह वधू होगी; पीछे उस कन्याके कठिन तपसे वृद्धरूपवाली महाभाग्यशाली शैब्यामें विदर्भ पुत्र हुआ ॥ १९ ॥ विदर्भके इसी वधूमें शूर वीर युद्धविशारद क्रथ और कौशिक दो पुत्र हुए ॥ २० ॥ तीसरा पुत्र परमश्रेष्ठ लोमपाद हुआ; लोमपादका पुत्र बभ्रु, उसका आहृति ॥ ॥ २१ ॥ आहृतिका परमधार्मिक और विद्वान् कौशिक हुआ कौशिकके चेदि पुत्र हुआ. उससे यह चेदिवंश

एतच्छ्रुत्वाब्रवींदेवी कस्य चेयं स्नुषेति वै ॥ अब्रवीत्तदपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तमः ॥ १८ ॥ यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्योपदानवी ॥ उग्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः स व्यजायत ॥ पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती ॥ १९ ॥ राजपुत्र्यां तु वीद्वांसौ स्नुषायां क्रथकौशिकौ ॥ पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ॥ २० ॥ लोमपादं तृतीयं तु पुत्रं परमधार्मिकम् ॥ लोमपादात्मजो बभ्रुराहृतिस्तस्य चात्मजः ॥ २१ ॥ आहृतेः कौशिकश्चैव विद्वान्परमधार्मिकः ॥ चेदिः पुत्रः कौशिकस्य तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः ॥ २२ ॥ भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान् ॥ धृष्टस्य जज्ञिरे शूरास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥ २३ ॥ आवन्तश्च दशार्हश्च बली विषहरश्च यः ॥ दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योम्नो जीमूत उच्यते ॥ २४ ॥ जीमूतपुत्रो बृहतिस्तस्य भीमरथः सुतः ॥ अथ भीमरथस्यासीत्पुत्रो नवरथस्तथा ॥ २५ ॥ तस्य चासीद्दशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः ॥ तस्मात्करम्भः कारम्भिर्देवरातोऽभवन्नृपः ॥ २६ ॥ देवक्षत्रोऽभवत्तस्य दैवक्षत्रिर्महायशाः ॥ देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः ॥ २७ ॥

कहाया ॥२२॥ और विदर्भके भीम नाम पुत्र हुआ, भीमके कुंति पुत्र हुआ; कुंतिके धृष्ट, धृष्टके परमधार्मिक प्रतापी शूर तीन पुत्र हुए ॥ २३ ॥ दशार्हके व्योम और व्योमके जीमूत पुत्र हुआ ॥ २४ ॥ जीमूतके बृहति पुत्र हुआ; उसके भीमरथ, भीमरथके नवरथ पुत्र हुआ ॥२५ ॥ नवरथके दशरथ, दशरथके शकुनि पुत्र हुआ, शकुनिके करम्भ, करंभके देवरात पुत्र हुआ ॥ २६ ॥ देवरातके देवक्षत्र, देवक्षत्रके देवताओंकी समान अति यशस्वी देव-

क्षत्री पुत्र हुआ ॥ २७ ॥ पीछे दवक्षत्रीक मधुभाषी मधुवंशको करनेवाला मधु पुत्र हुआ, मधुक वैदभा रानीमें मरुवसा पुत्र हुआ॥२८॥मरुवसाके पुरुद्वान पुत्र हुआ, पीछे पुरुद्वानक वैदभा भद्रवती रानीमें मधु हुआ॥२९॥उसक ऐक्ष्वाकी भार्यामें सब गुणोंसे युक्त सात्वतोंके यशको बढानेवाला सत्वान् पुत्र हुआ ॥ ३० ॥ इस प्रकार ज्यामघ राजाके वंशको जाननेसे परमप्रीतिको प्राप्त हो, यह प्राणी संतानयुक्त होता है ॥ ३१ ॥इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ वैशंपायनजी बोले; सत्वसे बलसंयुक्त पुत्र कौशल्याने उत्पन्न किये,

मधूनां वंशकृद्राजा मधुर्मधुरवागपि ॥ मधोर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां पुत्रो मरुवसास्तथा ॥२८॥ आसीन्मरुवसः पुत्रः पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः॥ मधुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां भद्रवत्यां कुरूद्वह ॥२९॥ ऐक्ष्वाकी चाभवद्भार्या सत्त्वांस्तस्यामजायत ॥ सत्वान्सर्वगुणोपेतः सात्वतां कीर्तिवर्द्धनः ॥३०॥ इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः ॥ युज्यते परया कीर्त्या प्रजावांश्च भवेन्नरः ॥३१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ सत्त्वतात्सत्त्वसंपन्नान्कौशल्या सुषुवे सुतान् ॥ भजिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम् ॥ १ ॥ अन्धकं च महाबाहुं वृष्णिं च यदुनन्दनम् ॥ तेषां विसर्गाश्चत्वारो विस्तरेणेह ताञ्छृणु ॥ २ ॥ भजमानस्य संजय्यौ बाह्यकाथोपबाह्यका: ॥ आस्तां भार्ये तयोस्तस्माज्जज्ञिरे बहवः सुताः ॥ ३ ॥ कृमिश्च क्रमणश्चैव धृष्टः शूरः पुरंजयः ॥ एते बाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे ॥ ४ ॥ अयुताजित्सहस्राजिच्छताजिच्चाथ दाशकः ॥ उपबाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे ॥ ५ ॥

वे भजिन, भजमान, दिव्य, देवावृध, महाबाहु ॥ १ ॥ अंधक, यदुनदन, वृष्णि कहाये. इन चारोंक वंशका विस्तार मुझसे सुनो ॥ २ ॥ भजमानके बाह्यक, और उपबाह्यक दोभार्या हुई, इनके बहुत पुत्र हुए ॥ ३ ॥ भजमानके बाह्यक भार्यामें कृमि, क्रमण, धृष्ट, शूर, पुरंजय नाम पांच पुत्र हुए ॥ ४ ॥ और इसी भजमानक उपबाह्यक रानीमें अयुताजित्, सहस्राजित्,

शताजित्, दाशक नाम चार पुत्र हुए ॥ ५ ॥ पूर्वोक्त देवावृधराजाने श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिके निमित्त उग्र तप किया ॥ ६ ॥ आत्माका ध्यान कर पर्णाशा नदीके जलको स्पर्श करते समय पर्णाशा नदीने इस राजाका प्रिय किया ॥ ७ ॥ और चिन्तायुक्त होकर नदी विचारने लगी कि राजाका मंगल कैसे होगा ॥ ८ ॥ परन्तु यही निश्चय हुआ कि जसे पुत्रकी राजाकी इच्छा है वैसी इस रानीमें नहीं होगी, इससे मही इसकी सहधामणी हूं ॥ ९ ॥ तब पर्णाशा नदीने परम मनोहर कुमारी कन्याका रूप धारण कर राजाको वरण किया, और राजानेभी उसे अंगीकर लिया ॥ १० ॥ तब उस बुद्धिमा-

यज्वा देवावृधो राजा चचार विपुलं तपः ॥ पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितः ॥६॥ संयुज्यात्मानमेवं तु पर्णाशाया जलं स्पृशन् ॥ सदोपस्पृशतस्तस्य चकार प्रियमापगा ॥७॥ चिन्तयाभिपरीता सा जगामैकाभिनिश्चयम् ॥ कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा ॥८॥ नाध्यगच्छत तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः ॥ जायेत्तस्मात्स्वयं हन्त भवाम्यस्य सहव्रता ॥ ९ ॥ अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः ॥ वरयामास नृपतिं तामियेष च स प्रभुः ॥१०॥ तस्यामाधत्त गर्भं च तेजस्विनमुदारधीः ॥ अथ सा दशमे मासि सुषुवे सरितां वरा ॥११॥ पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधान्नृपात् ॥ अत्र वंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥१२॥ गुणान्देवावृधस्याथ कीर्त्तयन्तो महात्मनः ॥ यथैवाग्रे समं दूरात्पश्याम च तथान्तिके ॥१३॥ बभ्रुश्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ षष्टिश्च षट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च ॥१४॥ एतेऽमृतत्वं संप्राप्ता बभ्रुर्देवावृधावपि ॥ यज्वा दानपतिर्विद्वान् ब्रह्मण्यः सुदृढायुधः ॥१५॥कीर्तिमांश्च महातेजाः सात्त्वतानां महावरः॥तस्यान्ववायः सुमहान् भोजा ये मार्तिकावताः॥१६॥

न्ने उस रानीमें अतितेजस्वी गभधारण कराया, पीछे उस नदीरूप रानीने दसवें महीनेमें॥११॥सब गुणोंसे संयुक्त और बभ्रु नामसे विख्यात पुत्रको देवावृधसे उत्पन्न किया, इस वंशमें पुराणक ज्ञाता जिसके गुण गाते हैं ॥१२॥ ऐसा सुना है कि देवावृधक गुणोंको जैसे सन्मुख कहा करते हैं, तैसेही दूसरेभी कहते रहते हैं, सन्मुख दूर निकट एकसी बडाई होती है ॥ १३ ॥ मनुष्योंमें श्रेष्ठ बभ्रु और देवताओंके समान देवावृध हुआ, और सात सहस्र छासठ पुरुष ॥ १४ ॥ बभ्रु, देवावृधके साथ अमृतको प्राप्त हुए; और यज्ञका कर्त्ता, दाता, विद्वान् और ब्रह्मण्य, दृढायुध ॥१५॥ कीर्तिमान, महाते-

जस्वी सात्वतोंमें श्रेष्ठ बभ्रुका वंश हुआ. जिसमें मार्तिवत् आदि भोज हुए ॥ १६ ॥ अंधकके कश्यपकी पुत्रीमें कुकुर, भजमान, शमि, कम्बलबर्हिष नामक चार पुत्र हुए ॥ १७ ॥ कुकुरके धृष्णु पुत्र हुआ. धृष्णुके कपोतरोमा, कपोतरोमाके तैत्तिरि पुत्र हुआ ॥ १८ ॥ तैत्तिरिके पुनर्वसु पुनर्वसुके अभिजित् अभिजित्‌के एक कन्या और एक पुत्र उत्पन्न हुआ; जिनमें ॥ १९ ॥ आहुक पुत्र और आहुकी पुत्री विख्यात हुई; आहुकके विषयमें यह गाथा गाई जाती है ॥ २० ॥ शुद्धपरिवारयुक्त किशोरके समान यह आहुक अभेद्य कवचसे रक्षित हो गमन करता था, अथवा (अशीति चर्मणा) असी पुरुष इस

अन्धकात्काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान् ॥ कुकुरं भजमानं च शमिं कम्बलबर्हिषम् ॥ १७ ॥ कुकुरस्य सुतो धृष्णुर्धृष्णोस्तु तनयस्तथा ॥ कपोतरोमा तस्याथो तैत्तिरिस्तनयोऽभवत् ॥ १८ ॥ जज्ञे पुनर्वसुस्तस्मादभिजित्तु पुनर्वसोः ॥ तस्य वै पुत्रमिथुनं बभूवाभिजितः किल ॥ १९ ॥ आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ ख्यातिमतां वरौ ॥ इमां चोदाहरन्त्यत्र गाथां प्रतितमाहुकम् ॥ २० ॥ श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमो महान् ॥ अशीतिचर्मणा युक्तः स नृपः प्रथमं व्रजेत् ॥ २१ ॥ नापुत्रवान्नाशतदो नासहस्रशतायुषः ॥ नाशुद्धकर्मा नायज्वा यो भोजमभितो व्रजेत् ॥ २२ ॥ पूर्वस्यां दिशि नागानां भोजस्येत्यनुमोदनम् ॥ सोपासङ्गानुकर्षाणां ध्वजिनां सवरूथिनाम् ॥ २३ ॥ रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु ॥ रूप्यकाञ्चनकक्षाणां सहस्राणि दशापि च ॥ २४ ॥ तावन्त्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि ॥ आभूमिपालान् भोजान्स्वानुत्तिष्ठन् किङ्किणीकिणः ॥ २५ ॥

राजाके बैठनेके आसनको लेकर आगे चलते थे ॥ २१ ॥ इनके संग पुत्रहीन सौ दक्षिणा देनेवाला; सहस्र शत आयुध रखनेवाला, अशुद्ध कर्म करनेवाला; यज्ञरहित कोई नहीं चलने पाता था. शुद्ध कर्म यज्ञ करनेवाले जन इस राजाके चारों ओर गमन किया करते थे ॥ २२ ॥ और पूर्व दिशामें ध्वजावाले चांदीकी शृंखलायुक्त सोपानसहित दश हाथी चला करते थे ॥ २३ ॥ और मेघकी समान दश सहस्र रथभी चला करते थे, वह रथ चांदी और सोनेके बने थे ॥ २४ ॥ और इतनेही सहस्र हाथी और रथ उत्तर दिशामें चलते थे, इनकी किंकिणीजालका शब्द सम्पूर्ण भूमिपालक राजाओंको

भोजोंसहित श्रवण होता था ॥२५॥ और अंधकने फिर आहुकी नामअपनी बहिनको अवंतियोंको दिया,आहुकके काश्यारानीमें दो पुत्र हुए ॥२६॥ वे देवगर्भोंके समान देवक और उग्रसेन कहाये, देवकके देवताओंके समान चार पुत्र हुए ॥२७॥ देववान, उपदेव, सुदेव, देवरक्षित उनके नाम थे, और सात कन्या थीं,वे वसुदेवको व्याही गई ॥ २८ ॥ देवकी, शांतिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सातवी सुनाम्नी ॥ २९ ॥ उग्रसेनके नौ पुत्र हुए, उनमें कंस बडा था.शेष न्यग्रोध, सुनामा, कंक, शंकु, सुभूमिप ॥ ३० ॥ राष्ट्रपाल, सुतनु, पुष्टिमान, अनाधृष्टि कहाये.

आहुकीं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं दधुरन्धकाः ॥ आहुकस्य तु काश्यायां द्वौ पुत्रौ संबभूवतुः ॥ २६ ॥ देवकश्चोग्रसेनश्च देव पुत्रसमावुभौ ॥ देवकस्याभवन्पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमः ॥ २७ ॥ देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः ॥ कुमार्यः सप्त चाप्यासन्व-सुदेवाय ता ददौ ॥२८॥ देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता ॥ वृकदेव्युपदेवी च सुनाम्नी चैव सप्तमी ॥२९॥ नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्वजः ॥ न्यग्रोधश्च सुनामा च शङ्कः कंकुः सुभूमिपः ॥३०॥ राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनाधृष्टिश्च पुष्टिमान् ॥ तेषां स्वसारः पञ्चासन् कंसा कंसवती तथा ॥ ३१ ॥ सुतनू राष्टपाली च कङ्का चैव वराङ्गना ॥ उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः ॥३२॥ कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम् ॥ आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुयान्नरः ॥ ३३ ॥ ७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः ॥ राजाधिदेवः शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत् ॥ १ ॥

उनकी पांच बहन थीं; कंसा, कंसवती ॥ ३१ ॥ सतनु, राष्ट्रपाली, श्रेष्ठ कंका हुई, इस प्रकार संतानोंसे युक्त कुकुरके वंशमें होनेवाले उग्रसेनका वंश कहा ॥ ३२ ॥ अमितबली तेजस्वी इस कुकुरोंके वंशको धारण करनेसे मनुष्य उत्तम वंश और श्रेष्ठ संतानको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ वैशंपायनजी बोले; भजमानके विदूरथ और विदूरथके राजाधिदेव महाबली ॥ १ ॥

राजाधिदेवके अतिबली दत्त, अतिदत्त,शोणाश्व,श्वतवाहन॥२॥शमी, दंडशर्मा, दण्डशत्रु, शत्रुजित् नामवाले पुत्र और श्रवणा. श्रविष्ठा नाम दो कन्या हुई ॥ ३ ॥ शमीके प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रके स्वयम्भोज, स्वयम्भोजके हृदीक पुत्र हुआ ॥४॥ हृदीकके महापराक्रमी पुत्र कृतनर्मा बडा, शतधन्वा छोटा हुआ ॥ ५ ॥ भिषग, वैतरण, सुदांत,विदांत नामोंवाले पुत्र और कामदा, कामदन्तिका कन्या नारदजीके वचनसे हुई ॥ ६ ॥ कम्बलबर्हिषके देववान, असमौजा और नासमौजा नाम दो पुत्र हुए ॥७॥ जब असमौजाके संतान नहीं हुई, तब सुदंष्ट्र चाररूप कृष्ण नाम तीन पुत्र अंधकने असमौजाको

राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे वीर्यवत्तराः ॥ दत्ताऽतिदत्तबलिनौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः ॥ २ ॥ शमी च दण्डशर्मा च दण्डशत्रुश्च शत्रुजित् ॥ श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारौ संबभूवतुः ॥ ३ ॥ शमीपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः ॥ स्वयंभोजः स्वयंभोजाद्धृदीकः संबभूव ह ॥ ४ ॥ तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्वे भीमपराक्रमाः ॥ कृतनर्माग्रजस्तेषां शतधन्वाथ मध्यमः ॥ ५ ॥ देवर्षेर्वचनात्तस्य भिषक् वैतरणश्च यः ॥ सुदान्तश्च विदान्तश्च कामदा कामदन्तिका ॥६॥ देववांश्चाभवत्पुत्रो विद्वान् कम्बलबर्हिषः ॥ असमौजास्तथा वीरो नासमौजाश्च तावुभौ ॥ ७ ॥ अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमौजसे ॥ सुदंष्ट्रं चारुरूपं च कृष्णमित्यन्धकास्त्रयः ॥ ८ ॥ एते चान्ये च बहवो अन्धकाः कथितास्तव ॥ अन्धकानामिमं वंशं धारयेद्यस्तु नित्यशः ॥ ९ ॥ आत्मनो विपुलं वंशं लभते नात्र संशयः ॥ गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुभार्ये बभूवतुः ॥ १० ॥ गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥ माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम् ॥ ११ ॥ अनमित्रममित्राणां जेतारमपराजितम् ॥ अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः ॥ १२ ॥

दे दिये ॥ ८ ॥ यह और भी अंधकका वंश हमने तुमसे वर्णन किया है; जो यह अंधकोंका वंश धारण करता है ॥९॥ निःसंदेह उसका वंश बहुत वृद्धिको प्राप्त होता है. गांधारी और माद्री कोष्टुकी दो भार्या हुई ॥ १० ॥ गांधारीके अनमित्र पुत्र हुआ; और माद्रिके युधाजित्, इसके उपरान्त देवमीढ हुआ ॥ ११ ॥ यह अनमित्र अमित्रोंको जीतनेवाला और आप किसीसे हारनेवाला न था, अनमित्रके निघ्न और निघ्नके दो पुत्र

हुए॥ १२॥ प्रसेन और सत्राजित् उनके नाम थे; यह दोनों शत्रुकी सेनाके जीतनेवाले थे. द्वारका पुरीमें निवास करते हुए प्रसेनको महामणि॥ १३ ॥स्यमंतक नाम समुद्रसे मिली थी; और यही सत्राजित् सूर्यका प्राणप्रिय मित्र हुआ ॥॥ १४ ॥ एक समय प्रातःकाल रथमें बैठ समुद्रमें स्नान करने और सूर्यके ध्यानके निमित्त गया ॥ १५॥ जब सूर्यका उपस्थान करने लगा तब स्पष्ट मूर्तिमान तेजसंयुक्त मंडलवान् ॥ १६ ॥ सूर्य भगवान् सामने स्थित प्रतीत हुए, तब सत्राजितने कहा; हे देव ! जैसे तेजसे संयुक्त तुमको आकाशमार्गमें देखता हूं, वैसेही ॥ १७ ॥ मेरे सन्मुख

प्रसेनश्चाथ सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ ॥ प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन्त्यां महामणिम् ॥१३॥ दिव्यं स्यमन्तकं नाम समुद्रादुपलब्धवान् ॥ तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत् ॥ १४ ॥ स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनां वरः ॥ अब्धिकूलमुपप्रष्टु मुपस्थातुं ययौ रविम् ॥१५॥ तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्वानग्रतः स्थितः ॥ अस्पष्टमूर्तिर्भगवान् तेजोमण्डलवान्प्रभुः ॥ १६ ॥ अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः ॥ यथैवं व्योम्नि पश्यामि सदा त्वां ज्योतिषां पते ॥ १७ ॥ तेजोमण्डलिनं देवं तथैव पुरतः स्थितम् ॥ को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः सख्येनोपागतस्य वै ॥१८॥ एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥ स्वकण्ठादवमुच्यैव एकान्ते न्यस्तवान्विभुः ॥ १९ ॥ ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा ॥ प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्त्तं कृतवान्कथाम् ॥ २० ॥ तमपि प्रस्थितं भूयो विवस्वन्तं स सत्रजित् ॥ लोकानुद्भासयस्येतान् येन त्वं सततं प्रभो ॥ तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन् दातुमर्हसि ॥ २१ ॥ ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवान् तस्य भास्करः ॥ स तमाबध्य नगरीं प्रविवेश महीपतिः ॥२२॥

तेजसे संयुक्त प्रतीत होते हो; इसलिये आपके संग मेरी मित्रतामें क्या विशेष हुआ;धीरे २ और दूर आपका मंडलही प्रतीत होता है ॥ १८ ॥ यह वचन सुन सूर्य भगवानने स्यमंतक नाम मणिरत्नको अपने कंठसे उतार एकांतमें स्थापित कर दिया ॥ ॥१९॥ तब अतितेजरहित शरीरयुक्त सूर्यको राजाने देखा और प्रीतिसंयुक्त हो दो घडीतक वार्ता करता रहा ॥ २० ॥ जब सूर्यनारायण चलने लगे, तब सत्राजितने कहा; हे भगवन् ! जिस मणिसे तुम लोकोंको प्रकाशित करते हो, वह मणिरत्न आप मुझे दे दीजिये ॥ २१ ॥ तब उस स्यमंतक मणिको

सूर्यने सत्राजित्को दिया; उस मणिको कंठमें बांध सत्राजित् द्वारकामें प्रवेश करने लगा ॥ २२ ॥ तब चारों ओरसे द्वारकावासी मनुष्य धावमान होने लगे कि यह सूर्य आता है. ऐसे द्वारकामें आश्चर्य दिखाके राजा अपने स्थानमें चला गया ॥ २३ ॥ उस दिव्यरूप स्यमंतक मणिको प्रेमसे प्रसेनजित् भाईको सत्राजित्ने दिया ॥ २४ ॥ वह माणि नित्यप्रति सुवर्णको दिया करती और जहां वह मणि रहती वहां समयमें वर्षा होती, आधिव्याधिका भय नहीं होता था ॥ २५ ॥ इतने गुण मणिमें विख्यात होने लगे. तब श्रीकृष्णने प्रसेनसे वह मणि मांगी; परन्तु प्रसेनने न दी, समर्थ होकरभी श्रीकृष्णने उस मणिको हरण नहीं किया ॥ २६ ॥ एक समय उस मणिको बांधे प्रसेन आखेटको वनमें गया. तब स्यमं-

तं जनाः पर्यधावन्त सूर्योऽयं गच्छतीति ह ॥ पुरीं विस्मापयित्वा च राजा त्वन्तःपुरं ययौ ॥ २३ ॥ तत्प्रसेनाजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥ ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम् ॥ २४ ॥ स माणिः स्यन्दते रुक्मं वृष्ण्यन्धकनिवेशने ॥ कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत् ॥ २५ ॥ लिप्सां चक्रे प्रसेनात्तु मणिरत्ने स्यमन्तके ॥ गोविन्दो न च तल्लेभे शक्तोऽपि न जहार सः ॥ २६ ॥ कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः ॥ स्यमन्तककृते सिंहाद्वधं प्राप वनेचरात् ॥ २७ ॥ अथ सिंहं प्रधावन्त-मृक्षराजो महाबलः ॥ निहत्य मणिरत्नं तदादाय बिलमाविशत् ॥ २८ ॥ ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं प्रसेनवधकारणात् ॥ प्रार्थनां तां मणेर्बुद्धा सर्व एव शशङ्किरे ॥ २९ ॥ स शङ्क्यमानो धर्मात्मा नकारी तस्य कर्मणः ॥ आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययौ ॥ ३० ॥ यत्र प्रसेनो मृगयामाचरत्तत्र चाप्यथ ॥ प्रसेनस्य पदं गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ ३१ ॥

तक मणिके निमित्त उस प्रसेनको वनमें विचरनेवाले सिंहने मार डाला ॥ २७ ॥ जब उस मणिको लेकर सिंह धावमान हुआ, तब अतिबली जाम्बवान् ऋक्षराजने सिंहको मार मणिरत्नको ले अपने बिलरूप स्थानमें प्रवेश किया ॥ २८ ॥ तब सब द्वारकावासी प्रसेनके मर जानेसे और इस स्यमंतक मणिमें कृष्णकी इच्छा थी, इस वृत्तान्तको जानकर शंकित होने लगे; कि प्रसेनके मारनेमें श्रीकृष्णकी सम्मति है ॥ २९ ॥ तब मिथ्या दोषसे संयुक्त होनेके कारण धर्मात्मा कुत्सित कर्मके न करनेवाले श्रीकृष्ण बोले, कि मैं मणिको लाऊंगा; इस प्रकार प्रतिज्ञा कर वनको गये ॥ ३० ॥ वनमें जाकर जहां प्रसेन

॥१०६॥

आखेटको गया था वहांसे घोडेके पैरोंके चिह्नोंके द्वारा खोजी पुरुषोंसे दिखाते हुए ॥ ३१ ॥ ऋक्षवानर और विंध्यपर्वतोंमें खोजते, परिश्रमसे संयुक्त होकर देखा कि ॥ ३२ ॥ अश्वसहित प्रसेन प्राणोंसे रहित हो पृथ्वीमें गिरा पडा है, परन्तु मणि नहीं है; फिर थोडी दूर अगाडी जाकर ॥ ३३ ॥ ऋक्षराजका मारा हुआ सिंह देखा; ऋक्षराजके पैरोंके चिह्नोंके अनुसार जांबवान् ऋक्षकी गुहाके समीपमें प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ उस ऋक्षराजके बडे बिलमें धायकी कही हुई वाणीको सुना; उस समय जाम्बवान्‌की पुत्रीको मणिसे धाय खिलाय रही थी और यह कहती थी कि बालक ! तू मत रोवे ॥ ३५ ॥

ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यं च गिरिमुत्तमम् ॥ अन्वेषयन्परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ॥ ३२ ॥ साश्वं हतं प्रसेनं वै नाविन्दच्चेच्छितं मणिम् ॥ अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः ॥ ३३ ॥ ऋक्षेण निहतो दृष्टः पादैर्ऋक्षश्च सूचितः ॥ पादैरन्वेषयामास गुहामृक्षस्य माधवः ॥ ३४ ॥ महत्यृक्षबिले वाणीं शुश्राव प्रमदेरिताम् ॥ धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो नृप ॥ क्रीडापयन्त्या मणिना मा रोदीरित्यथेरिताम् ॥ ३५ ॥ धात्र्युवाच ॥ सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः ॥ सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥ ३६ ॥ सुव्यक्तीकृतशब्दस्तु तूर्ष्णीं बिलमथाविशत् ॥ प्रविश्य चापि भगवान् तमृक्षबिलमञ्जसा ॥ ३७ ॥ स्थापयित्वा बिलद्वारि यदून् लाङ्गलिना सह ॥ शार्ङ्गधन्वा बिलस्थं तु जाम्बवन्तं ददर्श ह ॥ ३८ ॥ युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह ॥ बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥ ३९ ॥ प्रविष्टे तु बिलं कृष्णे बलदेवपुरःसराः ॥ पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥ ४० ॥

धाय यह कहती थी कि प्रसेनको सिंहने मारा, और सिंहको जाम्बवान् ऋक्षराजने मारा, तब यह स्यमंतक मणि मिली है; इस कारण हे बालक ! तू मत रोवे, यह मणि तेरी है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार प्रगट शब्दको सुन श्रीकृष्ण भगवान् बिलके द्वारमें प्रवेश करने लगे ॥ ३७ ॥ तब बलदेवजीसहित बहुतसे यादवोंको बाहरही ठहराकर वेगसे उस ऋक्षराजके बिलमें प्रवेश किया; वहां जायकर भगवान्‌ने जाम्बवान्‌को देखा ॥ ३८ ॥ जाम्बवान्‌के संग श्रीकृष्णका मल्लयुद्ध इक्कीस दिनतक होता रहा ॥ ३९ ॥ जब श्रीकृष्ण बिलमें चले गये और बहुत दिनोंतक न आये; तब बलदेवजी आदि द्वारकामें

आकर कहने लगे कि श्रीकृष्ण मर गये ॥ ४० ॥ वहां श्रीकृष्णने महाबली ऋक्षराज जाम्बवानको जीतकर जाम्बवानकी जाम्बवन्ती कन्याके संग विवाह कर अपने कलंकको मेटनेके निमित्त स्यमंतक मणिकोभी ग्रहण किया ॥ ४१ ॥ तब ऋक्षराजसे आज्ञा ले बिलसे निकल परम लक्ष्मीसे युक्त हो श्रीकृष्ण भार्यासहित द्वारकापुरीम आये ॥ ४२ ॥ इस प्रकार मणि ले अपना कलंक दूर कर श्रीकृष्णने सब यादवोंकी सभामें यह स्यमंतक मणि सत्राजितको दे दी ॥ ४३ ॥ इस प्रकार मिथ्या दोषसे कलंकित हो शत्रुघाती श्रीकृष्णने स्यमंतक जीतकर

वासुदेवस्तु निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम् ॥ भेजे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य संमताम् ॥ मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहात्मविशुद्धये ॥ ४१ ॥ अनुनीयर्क्षराजानं निर्ययौ च तदा बिलात् ॥ द्वारकामगमत्कृष्णः श्रिया परमया युतः ॥ ४२ ॥ एवं स मणिमाहृत्य विशोध्यात्मानमच्युतः ॥ ददौ सत्राजिते तं वै सर्वसात्वतसंसदि ॥ ४३ ॥ एवं मिथ्याभिशप्तेन कृष्णेनामित्रघातिना ॥ आत्मा विशोधितः पापाद्विनिर्जित्य स्यमन्तकम् ॥ ४४ ॥ सत्राजितो दश त्वासन् भार्यास्तासां शतं सुताः ॥ ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां भङ्गकारस्तु पूर्वजः ॥ ४५ ॥ वीरो वातपतिश्चैव उपस्वावांश्च ते त्रयः ॥ कुमार्यश्चापि तिस्रो वै दिक्षु ख्याता नराधिप ॥ ४६ ॥ सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता ॥ तथा प्रस्वापिनी चैव भार्यां कृष्णाय तां ददौ ॥ ४७ ॥ सभाक्षो भङ्गकारिस्तु नारेयश्च नरोत्तमौ ॥ जज्ञाते गुणसम्पन्नौ विश्रुतौ रूपसम्पदा ॥ ४८ ॥ माद्रीपुत्रस्य जज्ञेऽथ पृश्निः पुत्रो युधाजितः ॥ जज्ञाते तनयौ पृश्नेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ॥ ४९ ॥

अपनेको विशुद्ध किया ॥ ४४ ॥ सत्राजितके दश भार्या थीं, तिनमें सौ पुत्र हुए; उनमें तीन प्रसिद्ध हुए और भंगकार उनमें बडा था ॥ ४५ ॥ वातपति, उपस्वावान यह छोटे थे. इस प्रकारसे यह तीन पुत्र हुए; यह तीनों कुमार दिशाओंमें प्रसिद्ध थे ॥ ४६ ॥ स्त्रियोंमें श्रेष्ठ सत्यभामा, दृढव्रता और प्रस्वापिनी यह तीन कन्या हुईं, इन तीनोंको सत्राजितने श्रीकृष्णको विवाह दिया ॥ ४७ ॥ और भंगकारके गुणसम्पन्न रूप और संपदासे विख्यात सभाक्ष और भंगकार नाम प्रसिद्ध दो पुत्र हुए ॥ ४८ ॥ माद्रीमें युधाजितसे पृश्नि पुत्र हुआ, पृश्निक श्वफल्क और

चित्रक पुत्र हुए॥४९॥श्वफल्कने काशीराजकी गांदिनी नाम कन्यासे विवाह किया, जिसका पिता सदा गौ देता था ॥५०॥ उसमें बाहुश्रुतिसम्पन्न महाभाग्यवान् यज्ञका कर्ता अक्रूर उत्पन्न हुआ ॥ ५१ ॥ उपासंग, मंगु, मृदुर, अरिमेजय, गिरिक्षिप, उपेक्ष, शत्रुहा, अरिमर्दन ॥ ५२ ॥ धर्मभृत, यतिधर्मा, गृध्रम, अज, अंधक, सुबाहु, वरांगता सुन्दरी कन्या जिससे उत्पन्न हुई॥५३॥इसकी वसुन्धरा कन्या सात्वकी स्त्री हुई; जो रूपयौवनसम्पन्न सब प्रकारसे मनोहर थी ॥५४॥ हे राजन् ! अक्रूरसे उग्रसेनकी कन्यामें दो पुत्र हुए, सुदेव उपदेव देवताओंके समान हुए॥५५॥चित्रकके पुत्र पृथु

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत ॥ गान्दिनीं नाम तस्याश्च सदा गाः प्रददौ पिता ॥ ५० ॥ तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानिति विश्रुतः ॥ अक्रूरोऽथ महाभागो यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ ५१ ॥ उपासङ्गस्तथा मंगुर्मृदुरश्चारिमेजयः ॥ गिरिक्षिपस्तथोपेक्षः शत्रुहा चारिमर्दनः ॥ ५२॥ धर्मभृद्यतिधर्मा च गृध्रमोजोऽन्धकस्तथा ॥ सुबाहुःप्रतिबाहुश्च सुन्दरी च वराङ्गना ॥५३॥ विश्रुता साम्बमहिषी कन्या चास्य वसुंधरा ॥ रूपयौवनसम्पन्ना सर्वसत्त्वमनोहरा ॥ ५४ ॥ अक्रूरेणोग्रसेन्यां तु सुतौ द्वौ कुरुनन्दन ॥ सुदेवश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ ॥ ५५ ॥ चित्रकस्याभवन्पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च ॥ अश्वग्रीवोश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥५६॥ अरिष्टनेमेरश्वश्च सुधर्मा धर्मभृत्तथा ॥ सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥५७॥ इमां मिथ्याऽभिशस्तिं यः कृष्णस्य समुदाहृताम् ॥ वेद मिथ्याभिशापास्तं न स्पृशन्ति कदाचन॥५८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ यत्तत्सत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥ अदात्तद्धारयामास बभ्रुर्वै शतधन्वना ॥१॥

और विपृथु,अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण हुए ॥ ५६ ॥ अरिष्टनेमिके अश्व, सुधर्मा,धर्मभृत्, सुबाहु, बहुबाहु, श्रविष्ठा और श्रवणा स्त्रीमें हुए ॥५७॥ इस प्रकार श्रीकृष्णके इस मिथ्याभिशापको जो श्रवण करता है; उस मनुष्यको मिथ्याकलंक कभी नहीं लगता ॥५८॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ वैशंपायनजी बोले; जिस स्यमंतक मणिरत्नको श्रीकृष्णने सत्राजितको दिया था उसकी प्राप्तिके

निमित्त जो अनर्थ हुआ है वह श्रवण करो; जिस प्रकारसे शतधन्वासे अक्रूरने वह मणि मांगी थी ॥ १ ॥ सत्यभामाके और स्यमंतक मणिके ग्रहण करनेकी इच्छा अक्रूरको सदा लगी रहती थी, और अवकाश देखता रहता था ॥ २ ॥ एक समयमें जब द्वारकामें कृष्ण नहीं थे, तब महाबली शतधन्वाने सत्राजितको रात्रिमें मार स्यमंतक मणि ले अक्रूरको दे दी॥३॥उसमणिरत्नको अक्रूरने ग्रहण कर शतधन्वासे प्रतिज्ञा की कि यह भेद किसीसे नहीं कहेंगे, और अक्रूरके पास मणि है,तुमभी यह बात न कहना ॥४॥ यदि श्रीकृष्ण तुझसे कुछ कहेंगे तब हम तेरी सहायता करेंगे,कारण कि इस

यदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम् ॥ अक्रूरोऽन्तरमन्विच्छन्मणिं चैव स्यमन्तकम् ॥ २ ॥ सत्राजितं ततो हत्वा शतधन्वा महाबलः ॥ रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान् ॥ ३॥ अक्रूरस्तु ततो रत्नमादाय भरतर्षभ ॥ समयं कारयांचक्रे नावेद्योऽहं त्वयेत्युत ॥ ४ ॥ वयमभ्युपयास्यामः कृष्णेन त्वामभिद्रुतम् ॥ ममाद्य द्वारका सर्वा वशे तिष्ठत्यसंशयम् ॥ ५ ॥ हते पितरि दुःखार्ता सत्यभामा यशस्विनी ॥ प्रययौ रथमारुह्य नगरं वारणावतम् ॥ ६ ॥ सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वनः ॥ भर्तुर्निवेद्य दुःखार्त्ता पार्श्वस्था श्रूण्यवतर्यत् ॥ ७ ॥ पाण्डवानां तु दग्धानां हरिः कृत्वोदकक्रियाम् ॥ कुल्यार्थे चापि पाण्डूनां न्ययोजयत सात्यकिम् ॥ ८ ॥ ततस्त्वरितमागत्य द्वारकां मधुसूदनः ॥ पूर्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ हतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना ॥ स्यमन्तकः स मद्गामी तस्य प्रभुरहं विभो ॥ १० ॥

समय यह सब द्वारका मेरे वशमें है इसमें संदेह नहीं॥५॥जब सत्राजित् मारा गया तब दुःखसे पीडित हो सत्यभामाने रथमें बैठ वारणावत नगरको गमन किया ॥६॥ वारणावतमें श्रीकृष्णके समीपमें जाय शतधन्वाके हाथसे सत्राजित्की मृत्युको प्रकट कर पार्श्वमें स्थित हो अश्रुपात करने लगी ॥ ७ ॥ तब दग्ध हुए पांडवोंके अर्थ श्रीकृष्ण जलक्रिया कर और पांडवोंके दूसरे कर्मके निमित्त सात्यकिको नियुक्त कर ॥८॥ श्रीकृष्ण बहुत शीघ्र द्वारकामें आय बलदेवजीसे कहने लगे ॥९॥प्रसेनको सिंहने मारा,शतधन्वाने सत्राजितको मारा; हे प्रभो ! अब उस स्यमंतक मणिका स्वामी मैं हूं,

इनसे वह मणि लेकर मैं अपने पास रक्खूंगा ॥ ११ ॥ सो रथमें स्थित हो शीघ्र शतधन्वाको मारनेसे स्यमंतक मणि हमारी हो सक्ती है ॥ ११ ॥ तब शतधन्वा और श्रीकृष्णका परस्पर घोर युद्ध प्रारंभ हुआ, शतधन्वा अक्रूरको सब दिशाओंमें सहायताके निमित्त देखने लगा ॥ १२ ॥ परन्तु जब युद्धमें प्रवृत्त हुए शतधन्वा और श्रीकृष्णको देखकर सामर्थ्यवान् अक्रूर उस समय शठतासे शतधन्वाकी सहायताको नहीं आया ॥ १३ ॥ तब भयसे पीडित हो शतधन्वाने भागनेकी इच्छा की और ४०० कोससेभी अधिक चलनेवाली ॥ १४ ॥ हृदया नाम प्रसिद्ध घोडी शतधन्वाके पास थी,

तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महाबलम् ॥ स्यमन्तको महाबाहो ह्यस्माकं स भविष्यति ॥ ११ ॥ ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं भोजकृष्णयोः ॥ शतधन्वा ततोऽक्रूरमवैक्षत्सर्वतोदिशम् ॥ १२ ॥ संरब्धौ तावुभौ दृष्ट्वा तत्र भोजजनार्दनौ ॥ शक्तोऽपि शाठ्याद्धार्दिक्यमक्रूरो नाभ्यपद्यत ॥ १३ ॥ अपयाने ततो बुद्धिं भोजश्चक्रे भयार्दितः ॥ योजनानां शतं साग्रं हयया प्रत्यपद्यत ॥ १४ ॥ विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी ॥ भोजस्य वडवा राजन्यया कृष्णमयोधयत् ॥ १५ ॥ क्षीणां जवेन च हयामध्वनः शतयोजने ॥ दृष्ट्वा रथस्य तां वृद्धिं शतधन्वानमार्दयत् ॥ १६ ॥ ततस्तस्या हयायास्तु श्रमात्खेदाच्च भारत ॥ खमुत्पेतुरथ प्राणाः कृष्णो राममथाब्रवीत् ॥ १७ ॥ तिष्ठस्वेह महाबाहो दृष्टदोषा हया मया ॥ पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥ १८ ॥ पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युतः ॥ मिथिलामभितो राजन् जघान परमास्त्रवित् ॥ १९ ॥ स्यमन्तकं च नापश्यद्धत्वा भोजं महाबलम् ॥ निवृत्तं चाब्रवीत्कृष्णं रत्नं देहीति लाङ्गली ॥ २० ॥

उसपै चढ शतधन्वा श्रीकृष्णसे युद्ध करता था ॥ १५ ॥ तब शतधन्वाने अपनी घोडीको भगाया; तब रथमें स्थित हो बलदेव और श्रीकृष्णभी उसके पीछे गये और शतधन्वाके मारनेकी इच्छा करने लगे ॥ १६ ॥ जब ४०० कोसपै जाकर शतधन्वाकी घोडीका परिश्रमसे प्राणांत होने लगा, तब श्रीकृष्ण बलदेवजीसे बोले ॥ १७ ॥ हे महाबाहो ! आप यहां ठहरो, कारण इसकी घोडी मरने योग्य हो रही है; इस कारण मैं पैरोंसे गमन कर मणिरत्नको ग्रहण करूंगा ॥ १८ ॥ तब श्रीकृष्णने पैरोंसे गमन कर परमास्त्रके प्रतापसे मिथिलापुरीके समीपमें शतधन्वाको मार डाला ॥ १९ ॥ परन्तु शतध-

न्वाके पास स्यमंतक मणि नहीं मिली,जब शतधन्वाको मार श्रीकृष्ण बलदेवजीके निकट गये,तब बलदेवजी उनसे बोलेकि मणिरत्न मुझे सौंप दो॥२०॥ तब श्रीकृष्ण बोले कि शतधन्वाके पास मणि नहीं मिली, यह वचन सुन क्रोधित हो बलदेवजी श्रीकृष्णसे वारंवार धिक् धिक् कहकर बोले ॥२१॥हे कृष्ण ! भ्रातापनेसे मैंने तुम्हारा यह कर्तव्य सहा है, तुम्हारा कल्याण हो मैं जाता हूं,न द्वारकामें मेरा काम है,न वृष्णियोंके संग और न कुछ तुमसे प्रयोजन है ॥२२॥ ऐसा कहकर बलदेवजी मिथिला पुरीमें चले गये, तब सब कामनाओंसे मिथिला पुरीके राजाने बलदेवजीकी पूजा की॥२३॥ इसी

नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषान्वितः ॥ धिक्शब्दमसकृत्कृत्वा प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥ २१ ॥ भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥ कृत्यं न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभिः ॥२२॥ प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दनः ॥ सर्वकामै-रुपचितैर्मैथिलनोभिपूजितः ॥२३॥ एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः ॥ नानारूपान् क्रतून्सर्वानाजहार निरर्गलान् ॥२४॥ दीक्षामयं सकवचं रक्षार्थं प्रविवेश ह ॥ स्यमन्तककृते प्राज्ञो गान्दीपुत्रो महायशाः ॥ २५ ॥ अथ रत्नानि चाग्र्याणि द्रव्याणि विविधानि च ॥ षष्टि वर्षाणि धर्मात्मा यज्ञेषु विनियोजयत् ॥२६॥ अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः ॥ बह्वन्नदक्षिणाः सर्वे सर्वकामप्रदायिनः ॥२७॥ अथ दुर्योधनो राजा गत्वा तु मिथिलां प्रभुः ॥ गदाशिक्षां ततो दिव्यां बलभद्रादवाप्तवान् ॥२८॥ प्रसाद्य तु ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः ॥ आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥ २९ ॥

समयमें बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ अक्रूरजी नाना प्रकारके यज्ञोंको करने लगे॥२४॥और यह महायशस्वी बुद्धिमान् गांदीके पुत्र स्यमंतककी रक्षाके निमित्त दीक्षामय कवचभी धारण करने लगे॥२५॥पीछे अनेक प्रकारके रत्न और अनेक प्रकारके धनोंको यज्ञोंमें साठ साठ वर्षोंतक नियुक्त करने लगे॥२६॥ तब बहुत अन्न और दक्षिणावाले और सब कामोंको देनेवाल अक्रूरके यज्ञ विख्यात हुए ॥२७॥जब मिथिला पुरीमें बलदेवजी रहने लगे, तब दुर्यो-धन राजाने मिथिलापुरीमें जाकर दिव्यरूप गदाशिक्षा बलदेवजीसे सीखी॥२८॥पीछे वृष्ण्यन्धकवंशके महारथी और महात्मा श्रीकृष्ण प्रसन्न करके

बलदेवजीको द्वारकामें लाये ॥ २९ ॥ हे जनमेजय ! अंधकवंशके पुरुषोंके संग अक्रूर युद्धमें बंधुसहित बली सत्राजितको मरवाय द्वारकासे निकल गये ॥३०॥ तब ज्ञातिभेदके भयसे श्रीकृष्णने अक्रूरको जाने दिया; जब अक्रूर चले गये, तब द्वारकामें इन्द्रने वर्षा नहीं की ॥३१॥ तब अनावृष्टिके भयसे देश दुःखित होने लगा, तब कुकुर अंधक आदि वंशोंमें होनेवाले द्वारकावासी अक्रूरको प्रसन्न कर ॥ ३२ ॥ द्वारकापुरीमें ले आये; जब अक्रूर द्वारकामें आये उसी समय इन्द्रने वर्षा करी ॥३३॥ तब शीलसंयुक्त स्वसारा नाम कन्याको अक्रूरने श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेको दिया ॥३४॥

अक्रूरस्त्वन्धकैः सार्द्धमथायाद्भरतर्षभ ॥ हत्वा सत्राजितं युद्धे सहबन्धुं महाबलम् ॥३०॥ ज्ञातिभेदभयात्कृष्णस्तमुपेक्षितवानथ ॥ अपयाते तथाक्रूरे नावर्षत्पाकशासनः ॥ ३१ ॥ अनावृष्ट्या यदा राज्यमभवद्बहुधा कृशम् ॥ ततः प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः ॥ ३२ ॥ पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तस्मिन् दानपतौ ततः ॥ प्रववर्ष सहस्राक्षः कच्छे जलनिधेस्तदा ॥ ३३ ॥ कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसंमताम् ॥ अक्रूरः प्रददौ धीमान् प्रीत्यर्थं कुरुनन्दन ॥ ३४ ॥ अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम् ॥ सभामध्यगतं प्राह तमक्रूरं जनार्दनः ॥ ३५ ॥ यत्तद्रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं विभो ॥ तत्प्रयच्छस्व मानार्ह मयि मानार्यकं कृथाः ॥ ३६ ॥ षष्टिवर्षे गते काले यद्रोषोऽभून्ममानघ ॥ स संरूढोऽसकृत्प्राप्तस्ततः कालात्ययो महान् ॥ ३७ ॥ ततः कृष्णस्य वचनात्सर्वसात्वतसंसदि ॥ प्रददौ तं मणिं बभ्रुरक्लेशेन महामतिः ॥ ३८ ॥ ततस्तमार्ज्जवप्राप्तं बभ्रोर्हस्तादरिंदमः ॥ ददौ हृष्टमनाः कृष्णस्तं मणिं बभ्रवे पुनः ॥ ३९ ॥

फिर योगबलसे श्रीकृष्णने अक्रूरके पास मणि जान सभामें स्थित अक्रूरसे कहा॥३५॥हे प्रिय ! जो स्यमंतक मणि आपके पास है वह हमको दीजिये, कारण कि वह हमारी है; तुमभी हमारे मानने योग्य हो॥३६॥और जो मेरे ऊपर मणिसंबंधी क्रोध था वहभी शांत हुआ है, क्योंकि उस समयको साठ वर्ष व्यतीत हो गये ॥३७॥ इसप्रकार श्रीकृष्णके वचनकों महाबुद्धिमान् अक्रूरने सुनकर क्लेशरहित उस मणिको श्रीकृष्णको दे दिया ॥३८॥ पीछे कोमलतासे अक्रूरके हाथसे प्राप्त हुई उस मणिको प्रसन्न हो श्रीकृष्णने फिर अक्रूरहीको दे दी ॥ ३९ ॥

तब कृष्णके हाथसे स्यमंतक मणिको ग्रहण कर अक्रूर कंठमें बांध सूर्यके समान दीप्तिमान् होने लगे ॥ ४० ॥ जो नित्य सावधान हो इस चरित्रको पढते हैं, वह सब सुखोंके फलभागी होते हैं ॥ ४१ ॥ ब्रह्मलोकतक सब भुवनोंमें उसकी कीर्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं है; हे नृपश्रेष्ठ ! यह मैं तुमसे सत्य कहता हूं ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषाटीकायां एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ जनमेजय बोले; अमित तेजस्वी विष्णुका प्रादुर्भावभी पुराणोंमें वाराहअवतारसे विख्यात कथन करते हुए श्रेष्ठ पुरुषोंके मुखसे हमने सुना है ॥ १ ॥ परन्तु तिनका चरित्र, विधि, विस्तार, कर्मगुणक

स कृष्णहस्तात्संप्राप्तं मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥ आवध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव ॥ ४० ॥ यस्त्वेवं शृणुयान्नित्यं शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ सुखानां सकलानां च फलभागिह जायते ॥ ४१ ॥ आब्रह्मभुवनाच्चापि यशः ख्यातिर्न संशयः ॥ भविष्याति नृपश्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९॥ जनमेजय उवाच ॥ प्रादुर्भावान्पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ॥ सतां कथयतामेव वाराह इति नः श्रुतम् ॥१॥ न जाने तस्य चरितं न विधिं नैव विस्तरम्॥ न कर्मगुणसंतानं न हेतुं न मनीषितम् ॥ २ ॥ किमात्मको वराहः स का मूर्त्तिः का च देवता ॥ किमाचारः प्रभावो वा किं वा तेन पुरा कृतम् ॥ ३ ॥ यज्ञार्थं समवेतानां मिषतां च द्विजन्मनाम् ॥ महावराहचरितं कृष्णद्वैपायनेरितम् ॥ ४ ॥ यथा नारायणो ब्रह्मन् वाराहं रूपमास्थितः ॥ दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिसूदनः॥ ५ ॥ विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुघातिनः ॥ श्रोतुमिच्छाम्यशेषेण हरेः कृष्णस्य धीमतः ॥ ६ ॥

वृद्धि कारण और इच्छाको नहीं जानता हूं ॥२॥ वाराहजीका शरीर कैसा था उनकी मूर्ति कैसी थी; और कौन उनके अधिष्ठाता देवता हुए; आचार और प्रभावसे संयुक्त हुए उस समय उन्होंने क्या चरित्र किया ॥ ३ ॥ यज्ञके निमित्त इकट्ठे हुए द्विजोंके प्रति वेदव्यासजीने जो महावाराहका चरित्र वर्णन किया है ॥ ४ ॥ जिस प्रकार वाराहरूपमें स्थित हो नारायणने समुद्रमें स्थित पृथ्वीको अपनी दंष्ट्रापै धर निकाला था ॥ ५ ॥ उन शत्रुके मारनेवाले

वाराहजीने औरभी श्रीकृष्णजीके कर्मोंको विस्तारपूर्वक श्रवण करनेकी मेरी इच्छा है ॥ ६ ॥ कर्मोंके अनुसार ईश्वरने जो जो अवतार लिये हैं और जो ईश्वरकी ब्राह्मी प्रकृति है आप उसे वर्णन कीजिये ॥ ७ ॥ देवताओंके स्वामी शत्रुओंके मारनेवाले विष्णु भगवान् वसुदेवके कुलमें वासुदेव नामसे किस प्रकार प्रसिद्ध हुए ॥ ८ ॥ देवताओंसे आवृत, पवित्र और पुण्य करनेवालोंसे अलंकृत देवलोकको त्यागकर साक्षात् ईश्वर किस प्रकार मृत्युलोकमें आये ॥ ९ ॥ देव और मनुष्योंके स्वामी, भूर्भुवः लोकोंके आदिकारण ईश्वरने दिव्य आत्माको किस कारण मनुष्योंमें युक्त किया ॥ १० ॥ जिनका आरोग्यरूप चक्र मनुष्योंके मंगलके निमित्त वर्तता है; उन्होंने मनुष्यदेहमें अवतार लेनेकी इच्छा क्यों की॥ ११ ॥ जो सब जगत्की रक्षा करनेवाले हैं उन

कर्मणामानुपूर्व्याच्च प्रादुर्भावाश्च ये विभोः ॥ या चास्य प्रकृतिर्ब्रह्मंस्तां मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ७ ॥ कथं च भगवान्विष्णुः सुरशत्रुनिषूदनः ॥ वसुदेवकुले धीमान् वासुदेवत्वमागतः ॥ ८ ॥ अमरैरावृतं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ॥ देवलोकं समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहागतः ॥ ९ ॥ देवमानुषयोर्नेता यो भुवः प्रभवो विभुः ॥ किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुष्ये संन्ययोजयत् ॥ १० ॥ यश्चक्रं वर्त्तयत्येको मानुषाणामनामयम् ॥ मानुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृतां वरः ॥ ११ ॥ गोपायनं यः कुरुते जगत सार्वलौकिकम् ॥ स कथं गां गतो देवो विष्णुर्गोपत्वमागतः ॥ १२ ॥ महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार च ॥ श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृतः ॥ १३ ॥ येन लोकान् क्रमैर्जित्वा त्रिभिस्त्रींस्त्रिदशेप्सया ॥ स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गप्रभवास्त्रयः ॥ १४ ॥ योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः ॥ लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन वर्त्मना ॥ १५ ॥ यः पुराणे पुराणात्मा वाराहं रूपमास्थितः ॥ विषाणाग्रेण वसुधामुज्जहारारिसूदनः ॥ १६ ॥

विष्णुने कैसे पृथ्वीमें प्राप्त हो गोपजाति स्वीकार की॥ १२ ॥ जो ईश्वर पंचमहाभूतोंके धारण करनेवाले, लक्ष्मीको गर्भमें स्थापन करनेवाले हैं, उनको पृथ्वीमें विचरनेवाले स्त्रीने कैसे गर्भमें धारण किया ॥ १३ ॥ जिसने तीन पादक्रमोंसे देवताओंकी इष्ट सिद्धिके निमित्त लोकोंको जीत तीन प्रकारके जगत्के मार्ग स्थापित किये. धर्मसे स्वर्ग, अर्थसे यह लोक कामसे अधोलोक होता है ॥ १४ ॥ जिसने अंतसमयमें जगत्का पानकर पीछे जलस्वरूप शरीर बनाकर दृश्य अदृश्य मार्गसे एकार्णवरूप लोकको किया ॥ १५ ॥ जो पुराणोंमें पुराने शरीरवाले वाराहरूपको धारण कर अपनी दंष्ट्राके ऊपर पृथ्वीको धर समुद्रसे

बाहर निकाल लाये॥१६॥जिन्होंने पहले इन्द्रके निमित्त इस पृथ्वीको दैत्योंसे जीत त्रिलोकीके राज्यके निमित्त इन्द्रको दे दी॥१७॥जिन्होंने नरसिंह-रूपधारण कर महावीर्यवान् आदिदैत्य हिरण्यकश्यपको मार दिया ॥१८॥ जिन्होंने प्रथम अग्निरूप होकर पातालमें स्थित हो समुद्रके जलको पान कर लिया॥१९॥और सहस्रशिर और सहस्र अनन्त हस्तयुक्त और अनन्त चरणोंवाले देव युगयुगमें कहाते हैं ॥ २० ॥ सम्पूर्ण स्थावर जंगम सृष्टिके नष्ट होनेसे एकार्णव जलमय जगत् होनेपर जिनकी नाभिसे ब्रह्माजीकी उत्पत्तिके अर्थ कमल उत्पन्न हुआ है ॥२१॥ जिन्होंने सर्व देवमय शरीर और सब शास्त्रोंको

य पुरा पुरुहूतार्थे त्रैलोक्यमिदमव्ययः ॥ ददौ जित्वा सुरगणान् सुराणां सुरसत्तमः ॥ १७ ॥ येन सैंहं वपुं कृत्वा द्विधा कृत्वा च तत्पुनः ॥ पूर्वं दैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ १८ ॥ यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः संवर्तको विभुः ॥ पातालस्थोऽर्ण-वगत पपौ तोयमयं हविः ॥ १९ ॥ सहस्रशिरसं ब्रह्मन् सहस्रारं सहस्रदम् ॥ सहस्रचरणं देवं यमाहुर्वै युगे युगे ॥ २० ॥ नाभ्या-रण्यां समुत्पन्न यस्य पैतामहं गृहम् ॥ एकार्णवजलस्थस्य नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ २१ ॥ येन ते निहता दैत्याः संग्रामे तारकामये ॥ सर्वदेवमयं कृत्वा सर्वायुधधरं वपुः ॥ २२ ॥ गरुडस्थेन चोत्सिक्तः कालनेमिर्निपातितः ॥ निर्जितश्च मयो दैत्यस्तारकश्च महासुरः ॥ २३ ॥ उत्तरान्ते समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधेः यः शेते शाश्वत योगमास्थाय तिमिरं महत् ॥ २४ ॥ सुरारणिर्ग-र्भमधत्त दिव्यं तपःप्रकर्षाददितिः पुराणम् ॥ शक्रं च यो दैत्यगणावरुद्धं गर्भावसाने निभृतं चकार ॥ २५ ॥ पदानि यो लोक-मयानि कृत्वा चकार दैत्यान् सलिलेशयांस्तान् ॥ कृत्वा च देवां स्त्रिदिवस्य देवांश्चक्रे सुरेशं त्रिदशाधिपत्ये ॥ २६ ॥

धारण कर तारकामय युद्धमें दैत्योंका विनाश किया है ॥२२॥ और जिन्होंने गरुडपर चढ़कर कालनेमि, तारक और मय आदि महादैत्य जीत लिये हैं ॥ २३ ॥ जो क्षीरसागरके उत्तरखंडमें शाश्वत योगको प्राप्त हो महायोगमायामें निरंतर शयन करते हैं ॥ २४ ॥ महातपके करनेसे अदितिने जिनको गर्भमें धारण किया, जिन्होंने जन्म लेतेही दैत्यगणोंसे घिरे हुए इन्द्रको दुःखसे छुडाया ॥ २५ ॥ जिन्होंने लोकमय चरण स्थापन कर दैत्योंको पाता-

लमें और देवताओंको स्वर्गमें बसाया; तथा इन्द्रको देवताओंका राजा किया॥२६॥दक्षिणा, पात्र, दीक्षा,चमसा, उलूखल,गार्हपत्यकर्मकी विधिसे अन्वाहार्य्य कर्म ॥२७॥ हवनके योग्य अग्नि, वेदी, कुशा, स्रुव, प्रोक्षणीपात्र, ध्रुव, आवभृथ्य ॥ २८ ॥ इन यज्ञकर्मोंको रचकर, सुधाको आदि ले ऊर्ध्व, मध्य, अधो संज्ञावाले हव्य कव्य देनेवाले ब्राह्मणोंको बनाया और हव्यके बनानेवाले देवता और कव्यके ग्रहण करनेवाले पितर बनाये ॥ २९ ॥ जिसने यज्ञकर्ममें मंत्रविधिसे भागके निमित्त यज्ञस्तंभ, समिध अर्थात् ढाककी लकडी, स्रुव, पवित्र, परिधि ॥३०॥ यज्ञके योग्य द्रव्य अग्निसहित

पात्राणि दक्षिणा दीक्षा चमसोलूखलानि च ॥ गार्हपत्येन विधिना अन्वाहार्येण कर्मणा ॥ २७ ॥ अग्निमाहवनीयं च वेदीं चैव कुशं स्रुवम् ॥ प्रोक्षणीयं ध्रुवां चैव आवभृथ्यं तथैव च ॥ २८ ॥ सुधात्रीणि च यश्चक्रे हव्यकव्यप्रदान् द्विजान् ॥ हव्यादांश्च सुरान्यज्ञे कव्यादांस्तु पितॄनपि ॥ २९ ॥ भागार्थ मन्त्रविधिना यश्चक्रे यज्ञकर्मणि ॥ यूपान् समित्स्रुचं सोमं पवित्रान् परिधीनपि ॥ ३० ॥ यज्ञियानि च द्रव्याणि यज्ञांश्च सचयानलान् ॥ सदस्यान्यजमानांश्च मेध्यादींश्च क्रतूत्तमान् ॥ ३१ ॥ विबभाज पुरा सर्वं पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥ यागानुरूपान्यः कृत्वा लोकाननुपराक्रमत् ॥ ३२ ॥ क्षणा लवाश्च काष्ठाश्च कलास्त्रैकाल्यमेव च ॥ मुहूर्तास्तिथयो मासाः पक्षाः संवत्सरास्तथा ॥ ३३ ॥ ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं त्रिषु ॥ आयुः क्षेत्राण्युपचयो लक्षणं रूपसौष्ठवम् ॥ ३४ ॥ त्रयो वर्णास्त्रयोलोकास्त्रैविद्यं पावकास्त्रयः ॥ त्रैकाल्यं त्रीणि कर्माणि त्रयोऽपायास्त्रयो गुणाः ॥ ३५ ॥ त्रयो लोकाः पुरा सृष्टा येनानन्त्येन कर्मणा ॥ सर्वभूतगणस्रष्टा सर्वभूतगुणात्मकः ॥ ३६ ॥

यज्ञ, सदस्य, यजमान, मेध आदि यज्ञ ॥३१॥ इन सब पदार्थोंका परमेष्ठीके प्रवृत्त किये कर्मसे विभाग किया, और युग युगके प्रति युगोंके अनुसार रूपोंको धारणकर लोकोंके कार्य किये ॥ ३२ ॥ क्षण, लव, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त, तिथि, मास, पक्ष, संवत्सर ॥ ३३ ॥ ऋतु, काल, योग, तीन प्रकारके प्रमाण, आयु क्षेत्र, उपचय, लक्षण, रूपकी सुन्दरता ॥३४॥ तीन वर्ण, तीन लोक, तीन विद्या, तीन अग्नि, तीन काल, तीन कर्म, तीन अपाय, तीन गुण॥३५॥इन सबोंकी रचनाभी इसीने करी है; और इसीने अंतसे रहित थे तीन लोकभी रचे हैं. और सब भूतगण बनाये हैं, तथा

सब भूतोंके गुणांसे युक्त ॥ ३६ ॥ सब प्राणीगणभी इसीने रचे हैं और मनुष्योंके इन्द्रियपूर्वक योगसे यही रमण करता है, सब स्थानमें गमन और स्थितिसे सब प्राणियोंका नेता है ॥ ३७ ॥ और धर्मयुक्त मनुष्योंकी यही गति है, और पाप करनेवालोंको यही अगतिरूप है, और चारों वर्णोंका उत्पत्तिस्थान और चातुरहोत्रका रक्षा करनेवाला यही है ॥ ३८ ॥ और चार विद्याका जाननेवाला, और चार आश्रमोंका संश्रयरूपभी यही है और दिशाओंका अंतर, आकाश, पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, ॥ ३९ ॥ चंद्रमा, सूर्य, तारागणके रूपकोभी यही धारण करनेवाला है; और उत्तमसे उत्तम ज्योतिभी यही है, और उत्तमसे उत्तम तपभी यही है ॥ ४० ॥ और परेसेभी परे यही है; और परेसे परे परमात्मा यही है, और सब वेदभी नारायणमें तत्पर हैं, और

नृणामिन्द्रियपूर्वेण योगेन रमते च यः ॥ गतागताभ्यां यो नेता सर्वत्र जगदीश्वरः ॥ ३७ ॥ या गतिर्धर्मयुक्तानामगतिः पापकर्मणाम् ॥ चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्होत्रस्य रक्षिता ॥ ३८ ॥ चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चातुराश्रम्यसंश्रयः ॥ दिगन्तरो नभोभूतो वायुरापो विभावसुः ॥ ३९ ॥ चन्द्रसूर्यमयं ज्योतिर्योगीशः क्षणदान्तकः ॥ यत्परं श्रूयते ज्योतिर्यत्परं श्रूयते तपः ॥ ४० ॥ यं परं प्राहुरपरं यः परः परमात्मवान् ॥ नारायणपरा वेदा नारायणपराः क्रियाः ॥ ४१ ॥ नारायणपरो धर्मो नारायणपरा गतिः ॥ नारायणपरं सत्यं नारायणपरं तपः ॥ ४२ ॥ नारायणपरो मोक्षो नारायणपरायणम् ॥ आदित्यादिस्तु यो दिव्यो यश्च दैत्यान्तको विभुः ॥ ४३ ॥ युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तकः ॥ सेतुर्यो लोकसेतूनां मेध्यो यो मेध्यकर्मणाम् ॥ ४४ ॥ वेद्यो यो वेदविदुषां प्रभुर्यः प्रभवात्मनाम् ॥ सोमभूतस्तु सौम्यानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् ॥ ४५ ॥

सब क्रियाभी नारायणमें तत्पर हैं ॥ ४१ ॥ और गतिभी नारायणमें तत्पर है, सत्यभी नारायणमें तत्पर है, और तपभी नारायणमें तत्पर है ॥ ४२ ॥ और मोक्षभी नारायणमें तत्पर है; परमगतिभी नारायणमें तत्पर है, आदित्य आदि दिव्य और दैत्योंका अंतकभी यही विभु है ॥ ४३ ॥ और युगांतमें अंतकरूप यही है, और लोकोंके अंतकका भी अंतक यही है; और लोकके सेतुओंका सेतुभी यही है, और मेध्यकर्ममेंभी मेध्य कर्म यही है ॥ ४४ ॥ और वेदके जाननेवालोंमेंभी वेद्यरूप यही है; और प्रभवात्मावालोंमें प्रभुरूपभी यही है; और सौम्योंमें सौम्यरूपभी यही है और अग्निकी पदवीवालोंमें अग्निरूपभी

यही है ॥ ४५ ॥ और मनुष्योंमें मनरूप, तपस्वियोंमें तपरूप, नयवालोंमें विनयरूप, तेजवालोंमें तेजरूप, सृष्टिवालोंमें सृष्टिका कर्ताभी यही है ॥ ४६ ॥ गतिवालोंमें गतिरूप, आकाशमें उपजनेवाला वायु और प्राणवायु आहुतिको भोजन करनेवाला अग्निभी यही है ॥ ४७ ॥ अग्निरूप प्राणोंवाला देव यही साक्षात् विष्णु है. रससे लोहू उपजता है, रुधिरसे मांस उत्पन्न होता है ॥ ४८ ॥ मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा, मज्जासे वीर्य उत्पन्न होता है ॥ ४९ ॥ वीर्यसे गर्भ होता है. गर्भका मूल रस कहा है; उसमें प्रथम भाग जल है; यह सौम्यराशि कहाता है, और गर्भकी उष्णतासे उपजी अग्नि दूसरी

मनुष्याणां मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् ॥ विनयो नयवृत्तीनां तेजस्तेजस्विनामपि ॥ सर्गाणां सर्गकारश्च लोकहेतुरनुत्तमः ॥ ४६ ॥ विग्रहो विग्रहार्हाणां गतिर्गतिमतामपि ॥ आकाशप्रभवो वायुर्वायुप्राणो हुताशनः ॥ ४७ ॥ देवा हुताशनप्राणाः प्राणोऽग्नेर्मधुसूदनः॥ रसाद्वै शोणितं जातं शोणितान्मांसमुच्यते ॥४८॥ मांसात्तु मेदसो जन्म मेदसोऽस्थीनि चैव हि ॥ अस्थ्नो मज्जा समभवन्मज्जातः शुक्रमेव च॥४९॥शुक्राद्गर्भः समभवद्रसमूलेन कर्मणा ॥ तत्रापां प्रथमो भागः स सौम्यो राशिरुच्यते ॥ गर्भोष्मसंभवोऽग्निर्यो द्वितीयो राशिरुच्यते ॥ ५० ॥ शुक्रं सोमात्मकं विद्यादार्त्तवं विद्धि पावकम् ॥ भागौ रसात्मकौ ह्येषां वीर्यं च शशिपावकौ ॥ ५१ ॥ कफवर्गे भवेच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम् ॥ कफस्य हृदयं स्थानं नाभ्यां पित्तं प्रतिष्ठितम् ॥ ५२ ॥ देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तन्मनसः स्मृतम् ॥ नाभिकोष्ठान्तरं यत्तु तत्र देवो हुताशनः ॥ ५३ ॥ मनः प्रजापतिर्ज्ञेयः कफः सोमो विभाव्यते ॥ पित्तमग्निः स्मृतं ह्येतद-ग्नीषोमात्मकं जगत् ॥ ५४ ॥

राशि कहाती है ॥ ५० ॥ इस कारण चंद्रमाके अंशसे वीर्य और अग्निके अंशसे आर्तव उत्पन्न होता है, यह शुक्र और शोणित इसके भाग हैं ॥ ५१ ॥ कफके समूहमें शुक्र है, और पित्तके समूहमें रुधिर उत्पन्न होता है और कफका हृदय स्थान है; और पित्तका नाभि स्थान है ॥ ५२ ॥ और देहके मध्यमें हृदय मनका स्थान है; और नाभि और कोष्ठके बीचमें अग्निका स्थान है ॥ ५३ ॥ मन ब्रह्मरूप है, कफ चंद्रमारूप है, और पित्त अग्निरूप है, इस

प्रकार अग्निसोमके तेजसे यह सब जगत्‌रूप उपजताहै ॥५४॥ऐसे ग्रन्थिके समान बढते हुए गर्भमें परमात्मासे संगत हो वायु उसमें प्रवेश करता है॥५५॥ पुनः पांच प्रकारसे शरीरमें स्थित हुआ वायु अंगोंको रचता है, और शरीरको पुष्ट करे है ॥५६॥ तिन पांचों वायुओंके प्राण, अपान, समान, उदान; व्यान नाम हैं;इनमें प्राण प्रथम स्थान है.यह अन्यस्थानोंको बढाता हुआ आप बढे है॥५७॥गुदामें अपान वायु है; और शरीरके कंठ आदि ऊर्ध्वस्थानमें उदानवायुहै, और सब शरीरमें विचरनेवाला व्यान वायुहै,और यही व्यान वायु जब विस्तृत होताहै,तब नाभिमें स्थितसमान वायु शरीरके पदार्थको

एवं प्रवर्तिते गर्भे वर्द्धितेऽम्बुदसन्निभे ॥ वायुः प्रवेशं संचक्रे सङ्गतः परमात्मना ॥ ५५ ॥ ततोऽङ्गानि विसृजति बिभर्ति परिवर्द्धयन् ॥ स पञ्चधा शरीरस्थो भिद्यते वर्द्धते पुनः ॥ ५६ ॥ प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥ प्राणः स प्रथमं स्थानं वर्द्धयन् परिवर्त्तते ॥ ५७ ॥ अपानः पश्चिमं कायमुदानोर्ध्वं शरीरिणः ॥ व्यानो व्यायच्छते येन समानः सन्निवर्त्तयेत् ॥ भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरात् ॥ ५८ ॥ पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥ तस्येन्द्रियाणि विष्टानि स्वं स्वं योगं प्रचक्रिरे ॥ ५९ ॥ पार्थिवं देहमाहुस्तं प्राणात्मानं च मारुतम् ॥ छिद्राण्याकाशयोनीनि जलात्स्रावः प्रवर्त्तते ॥ ६० ॥ ज्योतिश्चक्षुश्च तेजात्मा तेषां यन्ता मनः स्मृतः ॥ ग्रामाश्च विषयाश्चैव यस्य वीर्यात्प्रवर्तिताः ॥ ॥ ६१ ॥ इत्येवं पुरुषः सर्वान् सृजँल्लोकान् सनातनान् ॥ कथं लोके नैधनेऽस्मिन्नरत्वं विष्णुरागतः ॥ ६२ ॥

निवृत्त करता है.इस प्रकार प्राणकर्मके विभागेक अन्तर जीवको पृथिव्यादिका साक्षात्कार होता है;तब वह इंद्रियोंके आश्रयकोग्रहण करताहै।॥५८॥ फिर पांच महाभूतोंकी प्राप्ति अर्थात् पृथ्वी,वायु,आकाश,जल, अग्नि ये सब इंद्रियोंमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ ५९ ॥ इसी कारण पृथ्वीतत्वसे देह हुआ है, और वायु तत्वसे प्राण हुए हैं, और आकाशतत्वसे सब छिद्र हुए हैं,और जलतत्वसे स्राव होता है ॥६०॥ और नेत्रोंका तेज अग्नितत्वसे हुआ है,और इन सबोंका नियंता मन कहा है, और जिसके वीर्यसे ग्राम और देश प्रकाशित होते हैं।॥६१॥इस प्रकारसे सनातन लोकोंको रचनेहारे

परमेश्वर, विनाशी इस लोकमें मनुष्यके देहमें कैसे प्राप्त हुए ॥ ६२ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मुझे संदेह है, और अति आश्चर्य है कि गतिवालोंके गतिरूप परमेश्वर मनुष्यके शरीरमें कैसे प्राप्त हुए ॥ ६३ ॥ और अपने वंशके सब पुरुषोंकी मैंने उत्पत्ति सुनी. अब मैं विष्णु और वृष्णिकुलवालोंकी यथाक्रमसे उत्पत्ति श्रवण करनेकी इच्छा करता हूं ॥ ६४ ॥ और देव दैत्यने विष्णु भगवान्का परम आश्चर्यरूप माना है; इस कारण हे महामुने ! सुख देनेवाले विष्णुके उत्पत्तिरूप आश्चर्यको मुझसे कहिये ॥ ६५ ॥ प्रसिद्ध बल, वीर्यमान्, अमिततेजस्वी, आश्चर्यकर्मवाले विष्णुका तत्व आप वर्णन

एष मे संशयो ब्रह्मन्नेवं मे विस्मयो महान् ॥ कथं गतिर्गतिमतामापन्नो मानुषीं तनुम् ॥ ६३ ॥ श्रुतो मे स्वस्य वंशस्य पूर्वेषां चैव संभवः ॥ श्रोतुमिच्छामि विष्णोस्तु वृष्णीनां च यथाक्रमम् ॥ ६४ ॥ आश्चर्यं परमं विष्णुर्देवैर्दैत्यैश्च कथ्यते ॥ विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं ममाचक्ष्व महामुने ॥ ६५ ॥ एतदाश्चर्यमाख्यानं कथयस्व सुखावहम् ॥ प्रख्यातबलवीर्यस्य विष्णोरमिततेजसः ॥ कर्म चाश्चर्यभूतस्य विष्णोस्तत्त्वमिहोच्यताम् ॥६६॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे हरिवंशप० चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रश्नभारो महांस्तात त्वयोक्तः शार्ङ्गधन्वनि ॥ यथाशक्त्या तु वक्ष्यामि श्रूयतां वैष्णवं यशः ॥ १ ॥ विष्णोः प्रभावश्रवणे दिष्ट्या ते मतिरुत्थिता ॥ हन्ति विष्णोः प्रवृत्तिं च शृणु दिव्यां मयेरिताम् ॥ २ ॥ सहस्राक्षं सहस्रास्यं सहस्रभुजमव्ययम् ॥ सहस्रशिरसं देवं सहस्रकरमव्ययम् ॥ ३ ॥ सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम् ॥ सहस्रदं सहस्रादिं सहस्रभुजमव्ययम् ॥ ४ ॥

कीजिये ॥ ६६ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥ वैशंपायनजी बोले; हे तात ! विष्णु भगवान्संबंधी जो महाप्रश्न तुमने किया है; उसे शक्तिके अनुसार कहता हूं. विष्णुके यशको सुनियें ॥ १ ॥ विष्णुके प्रभाव सुननेमें जो आपकी मति उत्पन्न हुई है, यह अति कल्याणकारी है, इस कारण दिव्यरूप मुझसे वर्णन हुई विष्णुकी प्रवृत्तिको श्रवण करो ॥ २ ॥ सहस्र मुख सहस्र नेत्र, सहस्र चरण, शिर और सहस्र भुजावाले अविनाशी ॥ ३ ॥ और सहस्रों जिह्वा और सहस्रों मुकुटोंवाले, सहस्रों पदार्थोंके दाता

और सहस्रों आदिभूत संख्यारहित ॥ ४ ॥ सवन, हवन, हव्य, होता, पात्र, पवित्रा, वेदी, दीक्षा, चरु, स्रुव, स्रुक्, ॥ ५ ॥ सोम, सूर्य, मुसल, प्रोक्षणी, दक्षिणायन, अध्वर्यु, सामग, ब्रह्मा, सदस्य, सदन ॥ ६ ॥ यज्ञस्तंभ, समिध: कुश, दर्वी, चमसा, उलूखल, प्राग्वंश, यज्ञभूमी, होता, चयन॥ ७ ॥ प्रमाणभूत रहस्य, चर और स्थावर, प्रायश्चित्त, अर्घ्य, स्थण्डिल, कुशा ॥ ८ ॥ यज्ञमें कहने योग्य मंत्र, यज्ञके योग्य अग्नि, यज्ञभागको ग्रहण करनेवाले सबोंसे प्रथम अमृतभोजी, अतितेजस्वी उग्र शस्त्रोंवाले ॥ ९ ॥ रूपोंको धारण किये जिनको वेदके जाननेवाले ब्राह्मण यज्ञमें शाश्वतरूप मानते हैं ॥१०॥

सवनं हवनं चैव हव्यं होतारमेव च ॥ पात्राणि च पवित्राणि वेदीं दीक्षां चरुं स्रुवम् ॥५॥ स्रुक्सोमं शूर्पमुसलं प्रोक्षणं दक्षिणायनम् ॥ अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं सदः ॥ ६ ॥ यूपं समित्कुशं दर्वीं चमसोलूखलानि च ॥ प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं चयनं च यत् ॥ ७ ॥ ह्रस्वान्यातिप्रमाणानि चराणि स्थावराणि च ॥ प्रायश्चित्तानि चार्थं च स्थण्डिलानि कुशांस्तथा ॥ ८ ॥ मन्त्रं यज्ञवहं वह्निं भागं भागवहं च यत् ॥ अग्रेभुजं सोमभुजं घृतार्चिषमुदायुधम् ॥ ९ ॥ आहुर्वेदविदो विप्रा यं यज्ञे शाश्वतं विभुम् ॥ तस्य विष्णोः सुरेशस्य श्रीवत्साङ्कस्य धीमतः ॥ १० ॥ प्रादुर्भावसहस्राणि अतीतानि न संशयः ॥ भूयश्चैव भविष्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः ॥ ११ ॥ यत्पृच्छसि महाराज पुण्यां दिव्यां कथां शुभाम् ॥ यदर्थं भगवान्विष्णुः सुरेशो रिपुसूदनः ॥ देवलोकं समुत्सृज्य वसुदेवकुलेऽभवत् ॥ १२ ॥ तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि शृणु सर्वमशेषतः ॥ वासुदेवस्य माहात्म्यं चरितं च महाद्युतेः ॥ १३ ॥ हितार्थं सुरमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च ॥ बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति कार्यतः ॥ १४ ॥

उन देवताओंके पति श्रीवत्सचिह्नधारी भगवान्के सहस्रों अवतार हो चुके ओर होंगे. यह प्रजापतिने कहा है॥ ११ ॥हे महाराज ! जो आप दिव्य कथाको पूछते हैं कि जिस प्रयोजनके निमित्त वसुदेवके कुलमें देवताओंके ईश्वर शत्रु मारनेहारे विष्णु भगवान्ने देवलोक छोडकर जन्म लिया है ॥ १२ ॥ वह विस्तारपूर्वक मैं कहता हूं आप श्रवण कीजिये. महाकीर्तिमान् वासुदेवके चारित्र सुनो ॥ १३ ॥ देवता और मनुष्योंके कल्याणके निमित्त वारंवार

परमात्मा प्रगट हुए हैं ॥ १४ ॥ तिन्होंमेंसे पवित्र दिव्य और गुणोंसे संयुक्त अवतारोंको कहता हूं, जो उदार वेदमंत्रोंसे भूषित हैं ॥१५॥ हे जन्मेजय ! शुद्ध और यत्नवान् होकर श्रवण करो. यह वेदके समान और पवित्ररूप है ॥ १६ ॥ इस पुराणमें विष्णुकी दिव्य कथा हम तुम्हें सुनाते हैं, हे भारत ! जब जब धर्मकी ग्लानि होती है, तब तब धर्मको स्थापन करनेके निमित्त विष्णु भगवान् अवतार लेते हैं ॥ १७ ॥ हे राजन् ! उस ईश्वरकी अति उत्तम रूप एकमूर्ति आकाशमें स्थित हुई उग्र तप करती है ॥ १८ ॥ और दूसरी मूर्ति प्रजाके संहार और रचनेके निमित्त शेषशय्यापै सविकल्प समाधियोगमें

प्रादुर्भावांश्च वक्ष्यामि पुण्यान् दिव्यगुणैर्युतान् ॥ छान्दसीभिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलंकृतान्॥ १५ ॥ शुचिः प्रयतवाक् भूत्वा निबोध जनमेजय ॥ इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ॥ १६ ॥ हन्त ते कथयिष्यामि विष्णोर्दिव्यां कथां शृणु ॥ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ॥ धर्मसंस्थापनार्थाय तदा संभवति प्रभुः ॥ १७ ॥ तस्य ह्येका महाराज मूर्तिर्भवति सत्तमा ॥ नित्यं दिविष्ठा या राजंस्तपश्चरति दुश्चरम् ॥ १८ ॥ द्वितीया चास्य शयने निद्रायोगमुपाययौ ॥ प्रजासंहारसर्गार्थं किमध्यात्मविचिन्तकम् ॥ १९ ॥ सुप्त्वा युगसहस्रं स प्रादुर्भवति कार्यतः ॥ पूर्णे युगसहस्रे तु देवदेवो जगत्पतिः ॥ २० ॥ पितामहो लोकपालाश्चन्द्रादित्यौ हुताशनः ॥ ब्रह्मा च कपिलश्चैव परमेष्ठी तथैव च ॥ २१ ॥ देवाः सप्तर्षयश्चैव त्र्यम्बकश्च महायशाः ॥ वायुः समुद्राः शैलाश्च तस्य देहं समाश्रिताः ॥ २२ ॥ सनत्कुमारश्च महानुभावो मनुर्महात्मा भगवान्प्रजाकरः ॥ पुराणदेवोऽथ पुराणि चक्रे प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥ २३ ॥

निद्रायोगको प्राप्त हुई ॥ १९ ॥ सहस्रों युगोंतक शयन कर कार्यके अर्थ प्रगट होती है, सहस्रयुगके पूर्ण होनेपर देवताओंके देवता ब्रह्माजी ॥ २० ॥ लोकपाल, चंद्रमा, सूर्य, अग्नि, ब्रह्माजी, लोकपाल, सूर्य, अग्नि, ब्रह्मा, कपिलमुनि, परमेष्ठी ॥२१॥ सातों ऋषि, देवता, महावायु, पर्वत, सागर ये सब उस शयन-करनेवाले ईश्वरकी देहमें निवास करते हैं ॥ २२ ॥ महानुभाववाले सनत्कुमार और प्रजाको उत्पन्न करनेहारे मनुजी और प्रजाको रचनेवाले

ब्रह्माजी ये सब ईश्वरके देहमें निवास करते रहते हैं॥२३॥ और जब स्थावर, जंगम नष्ट हुआ; देव, दैत्य नष्ट हुए; और सर्व, राक्षस नष्ट हुए. जिसने॥२४॥ समुद्रके मध्यमें स्थित युद्धकी इच्छावाले अतिबली मधुकैटभ नाम दैत्य प्रलयके अंतमें मारे ॥ २५ ॥ जिनके सागरमें शयन करते हुए, कमलरूप नाभिसे देवते और ऋषिगण उत्पन्न हुए हैं ॥ २६ ॥ यही पौष्कर नामसे विख्यात ईश्वरका अवतार है; जो मंत्र ब्राह्मणात्मक वेद और पुराणोंमें वर्णित है॥ २७॥ पुनः उन्हीं महात्माका वेदसुखवाला वाराहरूप प्रगट हुआ है. जिसमें देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णुजी वाराहरूप हुए, जिनसे सागरपर्यन्त कानन वनसहित पृथ्वी व्याप्त

येन चार्णवमध्यस्थौ नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ नष्टे देवासुरगणे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥ २४ ॥ योद्धुकामौ सुदुर्धर्षौ दानवौ मधुकैटभौ ॥ हतौ प्रभवता तेन तयोर्दत्त्वामितं वरम् ॥ २५ ॥ पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि ॥ पुष्करे यत्र संभूता देवाः सर्षिगणाः पुरा ॥ २६ ॥ एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ पुराणे कथ्यते यत्र वेदः श्रुतिसमाहितः ॥२७॥ वाराहस्तु श्रुतिमुखः प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ यत्र विष्णुः सुरश्रेष्ठो वाराहं रूपमास्थितः ॥ महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् ॥ २८ ॥ वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः ॥ अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ॥ २९ ॥ अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥ आज्यनासः स्रुवातुण्डः सामघोषस्वनो महान् ॥ ३० ॥ धर्मसत्यमयः श्रीमान् क्रमविक्रमसत्कृतः ॥ प्रायश्चित्तनखो धीरः पशुजानुर्महाभुजः ॥ ३१ ॥ उद्गात्रन्तो होमलिङ्गः फलबीजमहौषधिः ॥ वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फिक् विकृतः सोमशोणितः ॥ ३२ ॥ वेदीस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् ॥ प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिराचितः ॥ ३३ ॥

हुई॥२८॥ तब वेदरूप चरण, यज्ञस्तंभरूप डाढ, यज्ञरूप हाथ और चित्ति सुखयुक्त, अग्निरूप जीभ, दाभरूप रोम और ब्रह्मरूप शिर॥ २९॥ दिनरात्रिरूप नेत्र, दिव्य वेदांग श्रुतिरूप भूषण, घृतरूप नासिका, स्रुवारूप तुंड और सामवेदरूप महाशब्दवाला ॥ ३०॥ धर्मसत्यसे संयुक्त शोभायमान और क्रमविक्रम, सत्यक्रिया, प्रायश्चित्तरूप नख, धीरपशुरूप जानु और महाभुजावाला ॥ ३१ ॥ उद्गात्र, होमरूप लिंग और फल बीज, महौषधिरूप वीर्य, वायुसे युक्त अंतरात्मा और वेद स्फिचोंसे विकृत हुआ; सोमरूप रुधिरवाला ॥ ३२ ॥ वेदीरूप स्कंद, हविरूप गंध और हव्यकव्यरूप अतिवेगवाला, प्राग्वंशरूप शरीर

कान्तिमान् और नाना प्रकारकी दीक्षाओंसे पूजित ॥ ३३ ॥ दक्षिणारूप हृदययुक्त, योगी और महायज्ञमय और उपाकर्म ओष्ठ और प्रवर्ग्यावर्तरूप भूषणवाला ॥ ३४ ॥ नाना प्रकारके वेदरूप गमन और गुप्त उपनिषद्रूप आसनवाला, छायापत्नी सहाययुक्त और मेरुके शृंगके समान ऊंचे ॥ ३५ ॥ वाराहजीने एकार्णव जलमें मग्न हुई पर्वत वन आदिसे संयुक्त पृथ्वीको ॥ ३६ ॥ लोकोंके कल्याणके निमित्त अपनी दंष्ट्रापर धरकर निकाला और उन सहस्रशीर्ष देवने पृथ्वीको स्थिर किया ॥ ३७ ॥ इस प्रकार यज्ञवाराहजीका जन्म जगत्के निमित्त हुआ है; और सागरपर्यन्त सब पृथ्वीका उद्धार किया

दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्त्तभूषणः ॥ ३४ ॥ नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ॥ छायापत्नीसहायो वै मेरुशृङ्ग इवोच्छ्रितः ॥ ३५ ॥ महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् ॥ एकार्णवजले भ्रष्टामेकार्णवगतां प्रभुः ॥ ३६ ॥ दंष्ट्रया यः समुद्धृत्य लोकानां हितकाम्यया ॥ सहस्रशीर्षो देवादिश्चकार पृथिवीं पुनः ॥ ३७ ॥ एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ॥ उद्धृता पृथिवी सर्वा सागराम्बुधरा पुरा ॥ ३८ ॥ वाराह एष कथितो नारसिंहमतः शृणु ॥ यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ ३९ ॥ पुरा कृतयुगे राजन्सुरारिर्बलदर्पितः ॥ दैत्यानामादिपुरुषश्चचार तप उत्तमम् ॥ ४० ॥ दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ॥ जलोपवासनिरतः स्थानमौनदृढव्रतः ॥ ४१ ॥ ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चानघ ॥ ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥ ४२ ॥ तं वै स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागत्य भूपते ॥ विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥ ४३ ॥ आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैः सह ॥ रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥ ४४ ॥

है ॥ ३८ ॥ यह वाराहचरित्र वर्णन किया; अब नृसिंहजीके जन्मको श्रवण करो. जिन नृसिंहजीने पहले देवताओंको शत्रुबलसे गर्वित हिरण्यकशिपुको मारा है ॥ ३९ ॥ पहले सतयुगमें यह महाबली, बलाभिमानी, दैत्य हिण्यकश्यपने बडा उग्र तप किया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ इस प्रकार शम दम ब्रह्मचर्यसे दृढ व्रत होनेपर ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये ॥ ४२ ॥ और स्वयं आकर हंसयुक्त और सूर्यके समान प्रकाशवान् विमानपर बैठे ॥ ४३ ॥ आदित्य, वसु,

साध्य, मरुत, रुद्र, विश्वमें सहाय करनेवाले यक्ष, राक्षस, किन्नर, ॥४४॥ दिशा, विदिशा, नदी, समुद्र, नक्षत्र, मुहूर्त्त, आकाशचारी महाग्रह॥४५॥ तपस्वी, देव, ऋषि, सिद्धि, सप्त ऋषि, पवित्र राजर्षि, गंधर्व, अप्सराओंके गण॥४६॥ सब देवताओंके साथ चराचरके गुरु ब्रह्माजी आप आकर दैत्यसे बोले ॥ ४७ ॥ हे सुव्रत ! तेरे तप करनेसे मैं प्रसन्न हुआ हूं, तेरा मंगल हो. मनोवांछित वरको मांगो, मैं दूंगा ॥ ४८ ॥ हिरण्यकशिपु बोले; हे देवसत्तम ! देवता, राक्षस, गंधर्व, यक्ष, दिव्य सर्प, दैत्य, मनुष्य, पिशाच इनमेंसे कोईभी मुझे न मार सके ॥४९॥ हे पितामह ! क्रोधको प्राप्त हुए तप

दिशाभिर्विदिशाभिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ॥ नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ॥ ४५ ॥ देवर्षिभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैः सप्तर्षिभि स्तथा ॥ राजर्षिभिः पुण्यतमैर्गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः ॥४६॥ चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैः सुरैस्तथा ॥ ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसानेन सुव्रत ॥ वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥ ४८ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ न मानुषाः पिशाचाश्च निहन्युर्मां कथंचन ॥ ४९ ॥ ऋषयो वा न मां शापैः क्रुद्धा लोकपितामह ॥ शपेयुस्तपसा युक्तं वरमेतं वृणोम्यहम् ॥५०॥ न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण स्यान्न चान्येन मे वधः ॥ ५१ ॥ पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम् ॥ यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति ॥ ५२ ॥ भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः ॥ सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश ॥ ५३ ॥ अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ॥ धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ॥ ५४ ॥

करनेवाले ऋषिभी मुझे शाप न दे सकें, यही वर मांगता ॥ ५० ॥ शस्त्र, अस्त्र, पत्थर, वृक्ष, सूखा पदार्थ, व गीला पदार्थ और अन्य प्रकारके पदार्थोंसे मेरी मृत्यु न हो ॥ ५१ ॥ किंतु जो एक हाथकी चपेटके प्रहारसे बलवाहन सहित मुझे मारनेको समर्थ हो, उसी पुरुषसे मेरी मृत्यु होवे ॥५२॥ और मैं ही सूर्य, मैं ही चंद्रमा, मैं ही पवन, मैं ही अग्नि, मैं ही जल, मैं ही आकाश, मैं ही नक्षत्र, और मैं ही दश दिशा हो जाऊं ॥ ५३ ॥ मैंही क्रोध, काम, वरुण, यम, इन्द्र, कुबेर, यक्ष, किंपुरुषोंका अधिप हो जाऊं ॥ ५४ ॥

॥११६॥

जब इस प्रकारसे उसने वर मांगे; तब हे राजन्! हंसकर उस दैत्यसे ब्रह्माजी बोले ॥ ५५ ॥ हे पुत्र ! यह सब दिव्य और अद्भुत वर मैंने तुझे दिये, तू इन कामोंको प्राप्त होवेगा, इसमें संशय नहीं ॥५६॥ यह कह आकाशमार्गके द्वारा प्रकाशरूप और ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चले गये ॥५७॥ तब ब्रह्माजीसे दिये हुए दैत्यके वरोंको सुनकर इन्द्रादि देवता, नाग, गन्धर्व, मुनि, ब्रह्माजीके पास जाकर जनाने लगे; ॥ ५८ ॥ और इन्द्रादि देवता ब्रह्माजीसे कहने लगे ॥ ५९ ॥ देवता बोले; हे भगवन् ! इन वरोंके देनेसे यह दैत्य हमको मारेगा; इसकारण आप प्रसन्न

एवमुक्तस्तु दैत्येन स्वयंभूर्भगवांस्तदा ॥ उवाच दैत्यराजं तं प्रहसन्नृपसत्तम ॥ ५५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः ॥ सर्वान् कामानिमांस्तात प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥ ५६ ॥ एवमुक्त्वा तु भगवान् जगामाकाशमेव हि ॥ वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ ५७ ॥ ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा ॥ वरप्रदानं श्रुत्वा ते पितामहमुपस्थिता ॥ ५८ ॥ विभुं विज्ञापयामासुर्देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ५९ ॥ देवा ऊचुः ॥ वरेणानेन भगवन्बाधयिष्यति नोऽसुरः ॥ ततः प्रसीद भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥ ६० ॥ भगवान् सर्वभूतानां स्वयंभूरादिकृद्विभुः ॥ स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तः प्रकृतिर्ध्रुवः ॥६१॥ सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः ॥ प्रोवाच भगवान् वाक्यं सर्वान् देवगणांस्तदा ॥ ६२ ॥ अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ॥ तपसोऽन्तेऽस्य भगवान् वधं विष्णुः करिष्यति ॥ ६३ ॥ एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पङ्कजसंभवात् ॥ स्वानि स्थानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विताः ॥ ६४ ॥

होके इसकी मृत्युका विचार करो॥६०॥तब सब लोकोंको सुख देनेवाले,सृष्टिके रचनेवाले,हव्यकव्यके प्रवर्तक,अव्यक्त प्रकृति ब्रह्माजी॥६१॥ सब लोकके कल्याणके दायक वाक्यको श्रवण कर सब देवगणोंसे कहने लगे॥६२॥हे देवताओ ! यह किये हुए अपने तपके फलको अवश्य प्राप्त होगा;परन्तु तपके फलके अंतमें विष्णु भगवान् इसका वध करेंगे ॥६३॥ इसप्रकार ब्रह्माजीके वचन सुनकर प्रसन्न हो सब देवता दिव्यरूप अपने २ स्थानोंको

गये॥६४॥तब वरदानसे गर्वित हुआ हिरण्यकशिपु दैत्य सब प्रजाको दुःख देने लगा ॥६५॥ प्रथम उसने आश्रममें स्थित व्रतधारी, सत्यधर्ममें रत, शांतिशील,मुनिजनोंकोही दुःखित करना प्रारंभ किया॥६६॥पुनः त्रिलोकीके देवताओंको जीतके और त्रिलोकीको वशमें रख स्वर्गमेंवसने लगा॥६७॥ पुनः वरदानसे उन्मत्त हुआ स्वर्गमें वसके दैत्योंको भूमिके यज्ञभाग दिवाने लगा;और देवताओंके यज्ञभाग दूरकर दिये॥६८॥तब सब आदित्य, रुद्र, विश्वेदेवा,वसु,सब देवता,महाबली विष्णु भगवान्‌की शरणमें गये॥६९॥वेदयज्ञमय,ब्रह्म,ब्रह्मदेव,सनातन,भूत,भव्य,भविष्यके ज्ञाता प्रभुलोकोंसे नमस्कृत

लब्धमात्रे वरे चापि सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ॥ ६५ ॥ आश्रमेषु महाभागान् मुनीन्वै शंसितव्रतान् ॥ सत्यधर्मरतान् दान्तान् पुरा धर्षितवांस्तु सः ॥ ६६ ॥ देवांस्त्रिभुवनस्थांस्तु पराजित्य महासुरः ॥ त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः॥६७॥यदा वरमदोन्मत्तो न्यवसद्दानवो भुवि॥यज्ञियान्कृतवान्दैत्यान् देवांश्चैवाप्ययज्ञियान्॥६८॥ आदित्याश्च ततो रुद्रा विश्वे च मरुतस्तथा ॥ शरण्यं शरणं विष्णुमुपाजग्मुर्महाबलम् ॥६९॥ वेदयज्ञमयं ब्रह्म ब्रह्मदेवं सनातनम् ॥ भूतं भव्यं भविष्यं च प्रभुं लोकनमस्कृतम् ॥ नारायणं विभुं देवाः शरण्यं शरणागताः ॥ ७० ॥ देवा ऊचुः ॥ त्रायस्व नोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात् ॥ त्वं हि नः परमो धाता ब्रह्मादीनां सुरोत्तम ॥ ७१ ॥ त्वं हि नः परमो देवस्त्वं हि नः परमो गुरुः ॥ उत्फुल्लाम्बुजपत्राक्षः शत्रुपक्षभयंकरः ॥ क्षयाय दितिवंशस्य शरण्यस्त्वं भवस्व नः ॥ ७२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ भयं त्यजध्वममरा ह्यभय वो ददाम्यहम् ॥ तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपत्स्यथ मा चिरम् ॥ ७३ ॥

नारायण विभु शरणके योग्य देवके शरणमें प्राप्त होकर॥७०॥देवता बोले;हे देवेश ! हिरण्यकशिपुके भयसे हमारी रक्षा करो;तुमहीं हमारे परम देव हो; हे सुरोत्तम ! तुमही हमारे परम गुरु हो॥७१॥हे फूले हुए कमलके समान नेत्रवाले,हे शत्रुके पक्षको जीतनेवाले देव ! दितिके वंशको नाशनेके निमित्त हमारे मनोरथको पूरण करो; हम आपकी शरण हैं;आप शरणदाता हूजिये॥७२॥ तब विष्णुजी बोले; हे देवताओ ! भयको त्यागो, मैं तुम्हें अभय

देता हूं हे देवताओ ! तुम शीघ्रही फिर स्वर्गमें प्राप्त होगे ॥ ७३ ॥ देवेन्द्रोंसे अवध्य वरदानसे गर्वित इस दैत्यको मैं गणोंसहित संहार करूंगा ॥ ७४ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार कह भगवान्‌ने देवताओंको विदा कर स्वयं हिरण्यकश्यपकी सभामें गये ॥ ७५ ॥ और आधा शरीर सिंहका बना और आधा शरीर मनुष्यका बनाये इस प्रकार नृसिंहरूप किये हाथसे हाथ मलते ॥ ७६ ॥ मेघोंके घनके तुल्य प्रकाश और मेघोंके शब्दतुल्य ध्वनिवाले तथा मेघोंके सदृश तेज और मेघोंके समान वेगवान् ॥ ७७ ॥ नृसिंहजीने अतिबली और गर्वितरूप सिंहके सदृश पराक्रमी अतिबलिष्ठ दैत्योंके समूहसे रक्षित दैत्यके

एष तं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ॥ अवध्यममरेन्द्राणां दानवं तं निहन्म्यहम् ॥ ७४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा स भगवान्विसृज्य त्रिदशेश्वरान् ॥ हिरण्यकशिपो राजन्नाजगाम हरिः सभाम् ॥ ७५ ॥ नरस्य कृत्वाधतनुं सिंहस्यार्धतनुं प्रभुः ॥ नारसिंहेण वपुषा पाणिं संस्पृस्य पाणिना ॥ ७६ ॥ जीमूतघनसंकाशो जीमूतघनानिःस्वनः ॥ जीमूतघनदीप्तौजा जीमूत इव वेगवान् ॥ ७७ ॥ दैत्यं सोऽतिबलं दीप्तं दृप्तशार्दूलविक्रमम् ॥ दृप्तैर्दैत्यगणैर्गुप्तं हतवानेकपाणिना ॥ ७८ ॥ नृसिंह एष कथितो भूयोऽयं वामनोऽपरः ॥ यत्र वामनमाश्रित्य रूपं दैत्यविनाशकृत् ॥ ७९ ॥ बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा ॥ विक्रमै-स्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः ॥ ८० ॥ विप्रचित्तिः शिबिः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च ॥ अयःशिराः शङ्कुशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥ ८१ ॥ वेगवान् केतुमानुग्रः सोमव्यग्रो महासुरः ॥ पुष्करः पुष्कलश्चैव वेपनश्च महारथः ॥ ८२ ॥ बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः साश्वोऽश्वपतिरेव च ॥ प्रह्लादोऽश्वशिराः कुम्भः संह्लादो गगनप्रियः ॥ अनुह्लादो हरिहरौ वराहः शंकरो रुजः ॥ ८३ ॥

ऊपर एक हाथसे प्रहार किया ॥ ७८ ॥ इस प्रकार नृसिंहजीका अवतार हुआ है. अब वामनअवातारके चरित्र श्रवण करो, जो कि दैत्योंके मारनेको वामनरूप धारण कर ॥ ७९ ॥ बलिराजाके यज्ञमें वामनजीने अपने शरीरको बढा पृथ्वीको क्रमण करते समय महाअसुरोंको क्षुभित किया ॥ ८० ॥ विप्रचित्ति, शिबि, शंकु, रयःशकु, अयःशिरा, हयग्रीव ॥ ८१ ॥ वेगवान्, केतुमान्, उग्र, सोम, व्यग्र, महासुर, पुष्कर, पुष्कल, महारथ, वेपन ॥ ८२ ॥ बृहत्कीर्ति, महाजिह्व, अश्व, अश्वपति, प्रह्लाद, अश्वशिरा, कुंभ, संह्लाद, गगनप्रिय, अनुह्लाद, हरि, हर, वराह, शंकर, रुज ॥ ८३ ॥

शरभ, शलभ, कुपन, कोपन, क्रथ, बृहत्कीर्ति, महाजिह्व, शंकुकर्ण, महास्वन॥८४॥दीर्घजिह्व, अर्कनयन, मृदुचाप,मृदुप्रिय,वायु,यविष्ठ, नमुचि, शंबर, विज्वर, महान ॥८५॥ चंद्रहंता, क्रोधहंता, क्रोधवर्द्धन, कालक; कालकेय; वृत्र,क्रोध,विरोचन ॥ ८६ ॥ गरिष्ठ,वरिष्ठ, प्रलम्ब, नरक, इन्द्रतापन, वातापी, केतुमान्, बलदर्पित ॥ ८७ ॥ असिलोमा, पुलोमा, बाक्कल, प्रमद, मद, खसृम, कालवदन, कराल, कैशिक, शर ॥ ८८ ॥ एकाक्ष, चंद्रहा, राहु, संह्लाद, सृमर, स्वन नामवाले शतघ्नी चक्र हाथमें लिये॥८९॥महाशिला और शूल धारे अश्मयंत्ररूप शस्त्र और भिन्दिपाल शस्त्रके धारण करने-

शरभः शलभश्चैव कुपनः कोपनः क्रथः ॥ बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः शङ्कुकर्णो महास्वनः ॥ ८४ ॥ दीर्घजिह्वोऽर्कनयनो मृदुचापो मृदुप्रियः ॥ वायुर्यविष्ठो नमुचिः शम्बरो विज्वरो महान् ॥ ८५॥ चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च ॥ कालकः कालकेयश्च वृत्रः क्रोधो विरोचनः ॥ ८६ ॥ गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभौ ॥ इन्द्रतापनवातापी केतुमान् बलदर्पितः ॥८७॥ असिलोमा पुलोमा च वाक्कलः प्रमदो मदः ॥ खसृमः कालवदनः करालः कैशिकः शरः ॥८८॥ एकाक्षश्चन्द्रहा राहुः संह्लादः सृमरः स्वनः ॥ शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा परिघपाणयः ॥ ८९ ॥ महाशिलाप्रहरणाः शूलहस्ताश्च दानवाः ॥ अश्मयन्त्रायुधोपेता भिन्दिपालायुधास्तथा ॥ ९० ॥ शूलोलूखलहस्ताश्च परश्वधधरास्तथा ॥ पाशमुद्गरहस्ता वै तथा मुशलपाणयः ॥ ९१ ॥ नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा महाजवाः ॥ कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥ ९२ ॥ खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ॥ भीमा मकरवक्त्राश्च क्रोष्टुवक्त्राश्च दानवाः ॥ आखुदर्दुरवक्त्राश्च घोरा वृकमुखास्तथा ॥ ९३ ॥ मार्जारगजवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथापरे ॥ नक्रमेषाननाः शूरा गोजातिमहिषाननाः ॥ ९४ ॥

वाले ॥९०॥ शूल, उलूखल हाथोंमें लिये, परशा धारण किये; मुद्गर, मूशल हाथमें लिये ॥ ९१ ॥ नाना प्रकारके प्रहार करनेवाले, नाना प्रकारके वेषको धारे महावेगवान् कछुए और मुरगेके समान तथा खरगोश, उल्लूके समान मुखवाले ॥९२॥ गधे ऊंटके समान मुख धारे, शूकरमुख और भयानक रूप मच्छके समान मुखवाले, गीदडके मुखके समान मुख तथा मूषा मेढकके समान घोररूप धारे, भेडियोंके मुखवाले ॥९३॥ बिलाव और

हाथी शशाके समान बडे बडे मुखोंवाले,नाके और मेढकोंके समान मुखोंवाले और कितनेक गाय, बकरी, भैंड, भैंसके समान मुखवाले॥९४॥ कितनेक गोधासेहके मुखके समान मुखवाले, कोई क्रौंच, गरुड, गैंडा, मोरके समान मुखवाले ॥ ९५ ॥ और कोई हाथियोंकी चर्मके वस्त्रोंको धारे, कोई काले मृगके चर्मको धारे, और कोई फटे हुए चीरोंको धारे, कोई कोई वृक्षोंके बकलोंको धारे,कोई पगडी, मुकुट, कुंडल धारे ॥ ९६ ॥ कवच धारे, कोई लंबी चोटी और शंखके समान गर्दन,सुन्दर तेजसे युक्त नाना प्रकारके वेष और फूलोंकी माला, चंदन आदि धारे॥९७॥ तेजसे प्रकाशित अपने शस्त्रोंको ग्रहण करे पृथ्वीको आक्रमणकरते हुए वे दैत्य विष्णुके चारों तर्फसे युद्ध करनेको प्राप्त हुए॥९८॥तब पैर और हाथोंके तलवोंसे सब दैत्योंको

गोधाशल्यकवक्राश्च क्रौञ्चवक्राश्च दानवाः ॥ गरुडाननाः खड्गमुखा मयूरवदनास्तथा ॥९५॥ गजेंद्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ॥ चीरसंवृतदेहाश्च तथा वल्कलवाससः ॥ उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः ॥९६॥ किरीटिनो लम्बशिखाः कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः ॥ नानावेषधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः ॥९७॥ स्वान्यायुधानि संगृह्य प्रदीप्तान्यतितेजसा ॥ क्रममाणं हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वशः ॥९८॥ प्रमथ्य सर्वान्दैतेयान्पादहस्ततलैः प्रभुः ॥ रूपं कृत्वा महाभीमं जहाराशु स मेदिनीम् ॥९९॥ तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ॥ नभः प्रक्रममाणस्य नाभ्यां किल समास्थितौ ॥ १०० ॥ परं प्रक्रममाणस्य जानुदेशे स्थितावुभौ विष्णोरतुलवीर्यस्य वदन्त्येवं द्विजातयः ॥१॥ हृत्वा स पृथिवीं कृत्स्नां जित्वा चासुरपुङ्गवान् ॥ ददौ शक्राय त्रिदिवं विष्णुर्बलवतां वरः ॥ २ ॥ एष ते वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ वेदविद्भिर्द्विजैरेवं कथ्यते वैष्णवं यशः ॥ ३ ॥

मथके भयानक रूपको धारण कर भगवानने पृथ्वीको तत्काल हरण किया ॥ ९९ ॥ और भूमिके आक्रमण करनेके समय उनके स्तनोंके बीचमें चंद्रमा और सूर्य स्थित थे,वे आकाशमें शरीरको फैलानेके समय वह उनकी नाभिमें स्थित हुआ॥१००॥अतिशरीरको फैलानेके समय चंद्रमा सूर्य घुटओंमेंस्थित हुए, इस प्रकार विष्णुके पराक्रम जाननेवाले ऋषियोंने कहा है ॥ १०१ ॥ इस प्रकार दैत्योंको जीत और सब पृथ्वी जीत भगवान विष्णुने इन्द्रके प्रति प्रदान कर दी ॥ १०२ ॥ इस प्रकार वामनजीका अवतार हुआ. वेदके जाननेवाले ब्राह्मण इस प्रकार विष्णु भगवानके

यशको कहते हैं ॥ ३ ॥ विष्णु भगवान्ने दत्तात्रेय नाम विख्यात अतिदयायुक्त अवतार लिया है ॥ ४ ॥ उन्होंने देखा कि वेद क्रिया यज्ञोंका नाश होने लगा है; और चारों वर्ण परस्पर संकीर्ण होने लगे, धर्म शिथिलताको प्राप्त होने लगा ॥ ५ ॥ पापकी वृद्धि और सत्यका नाश होने लगा, झूंठकी स्थिति और प्रजाका नाश होने लगा, धर्म नष्ट हुआ ॥ ६ ॥ तब इन महात्मा दत्तात्रेयजीने यज्ञ-क्रिया; वेद संकीर्णतासे रहित चारों वर्ण फिरसे स्थापित किये ॥ ७ ॥ और कृतवीर्यके पुत्र अर्जुनको इन्ही महात्मा दत्तात्रेयजीने वरदान

भूयो भूतात्मको विष्णोः प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ दत्तात्रेय इति ख्यातः क्षमया परया युतः ॥ ४ ॥ तेन नष्टेषु वेदेषु प्रक्रियासु मखेषु च ॥ चातुर्वर्ण्ये तु संकीर्णे धर्मे शिथिलतां गते ॥ ५ ॥ अभिवर्द्धति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते ॥ प्रजासु शीर्यमाणासु धर्मे चाकुलतां गते ॥ ६ ॥ सहयज्ञक्रिया वेदाः प्रत्यानीता हि तेन वै ॥ चातुर्वर्ण्यमसंकीर्णं कृतं तेन महात्मना ॥ ७ ॥ तेन हैहयराजस्य कार्त्तवीर्यस्य धीमतः ॥ वरदेन वरो दत्तो दत्तात्रेयेण धीमता ॥ ८ ॥ एतद्बाहुद्वयं यत्ते मृधे मम कृतेऽनघ ॥ शतानि दश बाहूनां भविष्यन्ति न संशयः ॥ ९ ॥ पालयिष्यासि कृत्स्नां च वसुधां वसुधाधिप ॥ दुर्निरीक्ष्योऽरिवृन्दानां धर्मज्ञश्च भविष्यासि ॥ ११० ॥ एष ते वैष्णवः श्रीमान् प्रादुर्भावोद्भुतः शुभः ॥ कथितो वै महाराज यथाश्रुतमरिन्दम ॥ भूयश्च जामदग्न्योऽयं प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ ११ ॥ यत्र बाहुसहस्रेण विस्मितं दुर्जयं रणे ॥ रामोऽर्जुनमनीकस्थं जघान नृपतिं प्रभुः ॥ १२ ॥ रथस्थं पार्थिवं रामः पातयित्वार्जुनं युधि ॥ धर्षयित्वा यथाकामं क्रोशमानं च मेघवत् ॥ १३ ॥ कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः ॥ परश्वधेन दीप्तेन ज्ञातिभिः सहितस्य वै ॥ १४ ॥

दिया ॥ ८ ॥ कि हे राजन् ! जो तेरी दो बाहु हैं सो मेरे प्रतापसे सहस्र बाहु हो जांयगी इसमें संदेह नहीं ॥ ९ ॥ हे राजन् ! सम्पूर्ण पृथ्वीको पालन करोगे और शत्रुओंके समूह तुम्हें जीत नहीं सकेंगे ॥ ११० ॥ यह सब कार्य युद्धमें हुआ करेंगे इस प्रकार यह श्रीमान् विष्णुका अवतार दत्तात्रेय जैसा सुना था प्रकाशित किया. अब परशुरामजीके अवतारको कहते हैं ॥ ११ ॥ युद्धमें सेनाके बीचमें स्थित सहस्रबाहु अर्जुनकी सब बाहु छेदन कर दीं ॥ १२ ॥ अहेर रथमें स्थित अर्जुनको पृथ्वीमें गिराकर मेघवत् महाशब्द करते हुए ॥ १३ ॥ उसकी सहस्र भुजाओंको परशुरामजीने फर-

सेसे काट डाला, और उसी दीप्तिमान फरसेसे उसकी जातिके जनोंको मारा॥११४॥ पीछे करोडहों क्षत्रियोंसे सयुक्त मेरु मंदराचल तक पृथ्वीको इक्कीस वार क्षत्रियोंसे रहित बना दिया॥११५॥ इस प्रकार महातपस्वी बली परशुरामजीने इक्कीसवार निःक्षत्रिय पृथ्वी कर पापोंको दूर करनेवाला अश्वमेध यज्ञ किया ॥११६॥ उसमें मरीचिके पुत्र कश्यपजीको महादानकी दक्षिणामें यह पृथ्वी दान कर दी ॥११७॥ और वरुणजीके सफेद रंगवाले घोडे,रथ,बहुतसा सुवर्ण, गाय हाथी भी अश्वमेध यज्ञमें महात्मा परशुरामजीने दान किये ॥११८॥ अबभी संसारके कल्याणके निमित्त तपका

कीर्णा क्षत्रियकोटीभिर्मेरुमन्दरभूषणा ॥ त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता ॥ १५ ॥ कृत्वानिःक्षत्रियां चैव भार्गवः सुमहातपाः ॥ सर्वपापविनाशाय वाजिमेधेन चेष्टवान् ॥१६॥ तस्मिन्यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः ॥ मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुंधराम् ॥ १७ ॥ वरुणांस्तुरगाञ्छीघ्रान् रथं च रथिनां वरः ॥ हिरण्यमक्षयं धेनूर्गजेन्द्रांश्च महामनाः ॥ ददौ तस्मिन्महायज्ञे वाजिमेधे महायशाः ॥ १८ ॥ अद्यापि च हितार्थाय लोकानां भृगुनन्दनः ॥ चरमाणस्तपो दीप्तं जामदग्न्यः पुनः पुनः ॥ तिष्ठते देववद्धीमान्महेन्द्रे पर्वतोत्तमे ॥ १९ ॥ एष विष्णोः सुरेशस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च जामदग्न्य इति ख्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ १२० ॥ चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुरःसरः ॥ राज्ञो दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः ॥ २१ ॥ कृत्वात्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः ॥ लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः ॥ २२ ॥

आचरण करते हुए महात्मा परशुरामजी देवके समान होके पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्र पर्वतमें स्थित हो रहे हैं ॥११९॥ इस प्रकार देवताओंके पति शाश्वत सनातन विष्णु भगवानका यह परशुरामजीका अवतार हुआ है ॥ १२० ॥ और चौवीसवें युगमें विश्वामित्रसे सत्कृत हो राजा दशरथके कमलके फूलके समान नेत्रोंवाले पुत्र ॥१२१॥ साक्षात् ईश्वर महाबाहु आत्माको चार प्रकारसे विभाग कर विख्यात हुए, और संसारमें रामनामसे विख्यात

तेजमें सूर्यके समान हुए ॥ १२२ ॥ संसारके प्रसन्न करने और राक्षसोंके नाशके और धर्मके वृद्धिके अर्थ उन्होंने जन्म लिया॥ १२३॥ उनको मनुष्येन्द्र और सब भूतपतिका शरीर कहते हैं. और इन्ही रामचंद्रको राक्षसोंके नाशनेको विश्वामित्रजीने शस्त्र दिये हैं॥१२४॥ वे शस्त्र देवताओं-केभी दुर्धर्ष थे. जिनके द्वारा रामचंद्रने मुनिके यज्ञमें विघ्न करनेवाले ॥ १२५ ॥ मारीच और सुबाहु महाबली राक्षसोंको उन महात्माने मार डाला॥१२६॥और इन्ही रामचंद्रने जनकराजाके यज्ञमें लीलासेही माहेश्वर धनुष तोड दिया ॥ १२७ ॥ जो सब धर्मोंके जाननेवाले लक्ष्मणरूप

प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसां निधनाय च ॥ धर्मस्य च विवृद्धयर्थं जज्ञे तत्र महायशाः ॥ २३ ॥ तमप्याहुर्मनुष्येन्द्रं सर्वभूतपते-स्तनुम् ॥ यस्मै दत्तानि चास्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता ॥ २४ ॥ वधार्थं देवशत्रूणां दुर्धराणि सुरैरपि ॥ यज्ञविघ्नकरो येन मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ २५ ॥ मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिनां वरौ ॥ निहतौ च निराशौ च कृतौ तेन महात्मना ॥ २६ ॥ वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मनः ॥ भग्नं माहेश्वरं चापं क्रीडता लीलया पुरा ॥ २७ ॥ यः समाः सर्वधर्मज्ञश्चतुर्दश वनेऽ-वसत् ॥ लक्ष्मणानुचरो रामः सर्वभूतहिते रतः ॥ २८ ॥ रूपिणी यस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता जनैः ॥ पूर्वोचिता तस्य लक्ष्मीर्भर्त्तारमनुगच्छति ॥ २९ ॥ चतुर्दश तपस्तप्त्वा वने वर्षाणि राघवः ॥ जनस्थाने वसन्कार्यं त्रिदशानां चकार ह ॥ सीतायाः पदमन्विच्छन् लक्ष्मणाऽनुचरो विभुः ॥ १३० ॥ विराधं च कबन्धं च राक्षसौ भीमविक्रमौ ॥ जघान पुरुषव्याघ्रौ गन्धर्वौ शापवीक्षितौ ॥ ३१ ॥

॥१२०॥

अनुचरसे संयुक्त और सब प्राणियोंके हितकारी रामचंद्र चौदह वर्षतक वनमें वसे हैं ॥ १२८ ॥ जिनकी महारूपवती सीता भार्या उनके साथ गई, जिस प्रकार लक्ष्मी विष्णुके संग जाती है ॥१२९॥ चौदह वर्षतक राम वनमें तप करते रहे, और जनस्थानमें रहकर देवताओंका कार्य किया; उस रावणने जानकीका हरण किया,तब लक्ष्मणसहित जानकीको ढूंढते राम चंद्रने ॥१३०॥ भीमपराक्रमी विराध और कवंध राक्षसोंको मारा, यह दोनों गंधर्व थे

शापसे राक्षस हो गये थे ॥ ३१ ॥ अग्नि, सूर्य, चंद्रमा, बिजली, घनकी समान तपाये सुवर्णोंके पंखवाले इन्द्रके वज्रकी समान सारवाले बाणोंसे रामचं-
द्रने उन राक्षसोंको मारा ॥ ३२ ॥ पीछे सुग्रीवकी प्रीतिके अर्थ एक बाणसे महाबली वालीको मारकर सुग्रीवको राज्यतिलक दे दिया ॥ ३३ ॥ पीछे
देवते, दैत्य, राक्षस, यक्ष, सर्पोंसे अवध्य युद्धमें दुर्मद और राक्षसोंके इन्द्र रावणको ॥ ३४ ॥ करोडों राक्षसोंसे युक्त, नीले पर्वतके समान और त्रिलो-
कीको दुःखित करनेवाले; क्रूर राक्षसपति, दुष्टआचारी, महाबली ॥ ३५ ॥ दुर्धर, दुर्धर्ष, गर्वित और शार्दूलके समान पराक्रमी और देवताओंके भय-

हुताशनार्केन्दुतडिद्घनाभैः प्रतप्तजाम्बूनदचित्रपुङ्खैः ॥ महेन्द्रवज्राशनितुल्यसारैः शरैः शरीरेण वियोजितौ बलात् ॥ ३२ ॥ सुग्री-
वस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबलः ॥ वाली विनिहतो युद्धे सुग्रीवश्चाभिषेचितः ॥ ३३ ॥ देवासुरगणानां हि यक्षगन्धर्वभोगिनाम् ॥
अवध्यं राक्षसेन्द्रं तं रावणं युधि दुर्जयम् ॥ ३४ ॥ युक्तं राक्षसकोटीभिर्नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ त्रैलोक्यरावणं घोरं रावणं राक्षसेश्व-
रम् ॥ ३५ ॥ दुर्जयं दुर्धरं दृप्तं शार्दूलसमविक्रमम् ॥ दुर्निरीक्ष्यं सुरगणैर्वरदानेन दर्पितम् ॥ ३६ ॥ जघान सचिवैः सार्द्धं ससैन्यं
रावणं युधि ॥ महाभ्रघनसंकाशं महाकायं महाबलम् ॥ ३७ ॥ तमागस्कारिणं घोरं पौलस्त्यं युधि दुर्जयम् ॥ सभ्रातृपुत्रसचिवं
ससैन्यं क्रूरनिश्चयम् ॥ ३८ ॥ रावणं निजघानाशु रामो भूतपतिः पुरा ॥ मधोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानवः ॥ ३९ ॥ हतो
मधुवने वीरो वरदृप्तो महासुरः ॥ समरे युद्धशौण्डेन तथा चान्येऽपि राक्षसाः॥ १४० ॥ एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृतां वरः ॥
दशाश्वमेधान् जारूथ्यानाजहार निरर्गलान् ॥ ४१ ॥

दाता, वरदानसे गर्वित ॥ ३६ ॥ और अति बडे मेघके समान कांतिमान्, महाशरीरवाले अपराधी रावणको मंत्रियों सहित ॥ ३७ ॥ जो कि अपराध
करनेवाला पुलस्त्यके वंशमें उत्पन्न युद्धमें दुर्जय था. उस भ्राता, पुत्र, मंत्री, सेनासहित उग्र निश्चयवाले ॥ ३८ ॥ रावणको मनुष्योंके पति रामचंद्रजीने
मार डाला. जो बडा वीर और वरदानसे दृप्त था, और मधुके पुत्र गर्वित लवणराक्षसको ॥ ३९ ॥ मधुवनमें शत्रुघ्नजीने मारा, तथा अन्यभी बहुतसे
राक्षस युद्धोंमें मारे ॥ १४० ॥ इस प्रकार धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजीने इन कर्मोंको करके उत्तमरूप दश अश्वमेधोंका अनुष्ठान किया ॥ ४१ ॥

रामचंद्रके राज्यसमयमें अशुभवाणी श्रवण नहीं होती थी। और दुष्ट पवन नहीं चलती थी, कोई किसीका धन हरण नहीं कर सकता था ॥१४२॥ विधवा स्त्री और अनाथ मनुष्य विलाप नहीं करते थे; अर्थात् विधवा नहीं होती थीं. और सब जगत् शांतस्वरूप था ॥ १४३ ॥ प्राणियोंको जलपवनके उपद्रवका भय नहीं होता था; और वृद्ध मनुष्य बालकोंकी प्रेतक्रिया नहीं करते थे; अर्थात् वृद्धोंके सन्मुख कोईभी बालक नहीं मरता था ॥ १४४ ॥ और क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी,वैश्य क्षत्रियोंकी सेवा करते थे; और अहंकारसे रहित शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तीनों वर्णोंकी सेवा करते

नाश्रूयन्ताशुभा वाचो नाकुलं मारुतो ववौ ॥ न वित्तहरणं त्वासीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥ ४२ ॥ पर्यदेवन्न विधवा नानाथाश्चा भवंस्तदा ॥ सर्वमासीज्जगद्दान्तं रामे राज्यं प्रशासति ॥ ४३ ॥ न प्राणिनां भयं चापि जलानिलनिघातजम् ॥ न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥ ४४ ॥ ब्रह्म पर्यचरत्क्षत्रं विशः क्षत्रमनुव्रताः ॥ शूद्राश्चैव हि वर्णांस्त्रीन् शुश्रूषन्त्यनहंकृताः ॥ नार्यो नात्यचरन् भर्तॄन् भार्या नात्यचरत्पतिः ॥ ४५ ॥ सर्वमासीज्जगद्दान्तं निर्दस्युरभवन्मही ॥ राम एकोऽभवद्भर्त्ता राम पालयिताऽभवत् ॥ ४६ ॥ आयुर्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः ॥ अरोगाः प्राणिनश्चासन् रामे राज्यं प्रशासति ॥ ४७ ॥ देवतानामृषीणां च मनुष्याणां च सर्वशः ॥ पृथिव्यां समवायोऽभूद्रामे राज्यं प्रशासति ॥ ४८ ॥ गाथा अप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥ रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः ॥ ४९ ॥

थे; और भार्याको पति नहीं त्यागता था और भार्या पतिको नहीं त्यागती थी ॥१४५॥ और सम्पूर्ण जगत् शांतस्वरूप था, पृथ्वी चोरोंसे रहित थी, सब प्रजाके अकेले एक रामही स्वामी थे और रामहीको प्रजा स्वामी मानती थी ॥ १४६ ॥ रामके राज्यमें एक एक मनुष्यके सहस्र २ पुत्र होते और सहस्रों वर्षोंकी आयु होती, और सब प्राणी रोगरहित होते थे॥१४७॥रामके राज्यमें देवता, ऋषि, मनुष्य, सब पृथ्वीमें इकट्ठे होकर विचरते थे. ये सब वृत्तान्त रामचंद्रजीके राज्यमें भुगते हैं ॥१४८॥ और पुराणके जाननेवाले मनुष्य रामचंद्रजीके माहात्म्यकी गाथा गाते हैं; उसमें महात्मा रामचंद्रका

॥१२१॥

माहात्म्य है ॥ ४९॥ कि श्यामस्वरूप, युवा अवस्था, लाल नेत्र, प्रकाशित मुख, सहास्य, प्रामाणिक बोल, जानुपर्यन्त बाहु, सांवला और सुन्दर मुख, सिंह सरीखे कंधे, और महाभुजावाले ॥ १५० ॥ रामचंद्रने ग्यारह सहस्रों वर्षोंतक अयोध्यापुरीमें राज्य किया ॥ ५१ ॥ और रामचंद्रजीके राज्यमें ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेदका घोष और धनुष्यका घोष तथा दान करो, और भोजन करो; यही निरंतर सुना जाता था ॥ ५२ ॥ सतोगुणयुक्त, सब गुणोंसे सम्पन्न, अपने तेजसे प्रकाशित, रामचंद्रजी सूर्यचंद्रमासेभी अधिक प्रकाशित हुए ॥ ५३ ॥ उत्तम

श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः॥आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥१५०॥ दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ॥ अयोध्याधिपतिर्भूत्वा रामो राज्यमकारयत् ॥५१॥ ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः ॥ अव्युच्छिन्नोऽभवद्राज्ये दीयतां भुज्यतामिति ॥५२॥ सत्त्ववान् गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ अतिचन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरथिर्बभौ ॥ ५३ ॥ ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ हित्वायोध्यां दिवं यातो राघवः स महाबलः ॥५४॥ एवमेष महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥ रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे प्रभुः ॥ ५५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अपरः केशवस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ विख्यातो माथुरे कल्पे सर्वलोकहिताय वै ॥ ५६ ॥ यत्र शाल्वं च मैन्दं च द्विविदं कंसमेव च ॥ अरिष्टमृषभं केशिं पूतनां दैत्यदारिकाम् ॥५७॥ नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा ॥ दैत्यान्मानुषदेहस्थान्सूदयामास वीर्यवान् ॥५८॥ छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्भुत-कर्मणः ॥ नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः ॥ ५९ ॥

दक्षिणाओंसे सयुंक्त सैकडों यज्ञोंको अयोध्यापुरीमें समाप्त कर रामचंजी स्वर्गमें प्राप्त हुए ॥ ५४ ॥ इस प्रकार इन महाबाहु इक्ष्वाकुनंदन रामचंद्रने रावणके कुलसहित संहार करके स्वर्गमें गमन किया ॥ ५५ ॥ वैशंपायनजी बोले; कि मैं अब सब लोकोंके कल्याणके निमित्त माथुरकल्पमें विख्यात श्रीकृष्णजीका अवतार वर्णन करता हूं ॥ ५६ ॥ जिसमें शाल्व, मैंद, कंस, द्विविद, अरिष्ट, वृषभ, केशी, पूतना ॥ ५७ ॥ कुवलयापीड हाथी, चाणूर, मुष्टिक और मनुष्यदेहमें स्थित दैत्यको वीर्यवान् कृष्णजीने मारा ॥ ५८ ॥ और अद्भुत कर्मवाले बाणासुरकी सहस्र भुजा-

ओंको छेदन किया; तथा नरकासुर और महाबली कालयवनको युद्धमें मारा ॥ ५९ ॥ और राजाओंके सम्पूर्ण रत्न अपने तेजसे हरके दुष्ट आचरण वाले राजाओंको श्रीकृष्णने मार डाला ॥ १६० ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णका नौवां अवतार हुआ. अट्ठाईसवें द्वापरमें हुआ है। जातुकर्ण्य मुनिको प्रथम जन्मके पीछे वेदव्यासजीका अवतार हुआ है ॥ ६१ ॥ इन महात्मा वेदव्यासजीने एक वेदके चार विभाग किये हैं, और इन्ही सत्यवतीके पुत्रने भारतवंशकी उत्पत्ति करी है ॥ ६२ ॥ और हे राजन् ! संसारके कल्याणके अर्थ बीते हुए विष्णुके अवतार प्रकाशित किये ॥ ६३ ॥ संभल ग्राममें विष्णुयशा नामसे विख्यात ब्राह्मणके घर संसारके कल्याणके निमित्त कल्की नाम अवतार आगे होगा ॥ ६४ ॥ यह याज्ञवल्क्यादि सहित बौद्ध मतवा-

ह्रतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा ॥ दुराचाराश्च निहताः पार्थिवाश्च महीतले ॥ १६० ॥ नवमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पुराभवत् ॥ वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरस्सरः ॥ ६१ ॥ एको वेदश्चतुर्धा तु कृतस्तेन महात्मना ॥ जनितो भारतो वंशः सत्यवत्याः सुतेन च ॥ ६२ ॥ एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः ॥ अतीता कथिता राजन्कथ्यन्ते चाप्यनागताः ॥ ६३ ॥ कल्की विष्णुयशा नाम शम्भलग्रामको द्विजः ॥ सर्वलोकहितार्थाय भूयश्चोत्पत्स्यते प्रभुः ॥६४॥ दशमो भाव्यसंपन्नो याज्ञवल्क्यपुरःसरः ॥ क्षपयित्वा च तान्सर्वान् भाविनार्थेन चोदितान् ॥ ६५ ॥ गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्याति सानुगः ॥ ततः कुले व्यतीते तु सामात्ये सहसैनिके ॥ ६६ ॥ नृपेष्वथ प्रणष्टेषु तदा त्वप्रग्रहाः प्रजाः ॥ रक्षणे विनिवृत्ते च हत्वा चान्योऽन्यमाहवे ॥ ६७ ॥ परस्परहृतस्वाश्च निराक्रन्दाः सुदुःखिताः ॥ एवं कष्टमनुप्राताः कलिसंध्यांशके तदा ॥ प्रजाः क्षयं प्रयास्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन ह ॥ ६८ ॥ क्षीणे कलियुगे तस्मिन्ततः कृतयुगं पुनः ॥ प्रपत्स्यते यथान्यायं स्वभावादेव नान्यथा ॥ ६९ ॥

दियोंको जय कर, होनेवाले बुद्धोंको जो अधर्ममें प्रवृत्त हैं जीतकर ॥ ६५ ॥ सब दुष्टोंको मार गंगायमुनाके मध्यदेशमें मित्रोंसहित निष्ठाको प्राप्त होवेंगे, पीछे मंत्री सेना सहित कुलकी निवृत्ति होनेके उपरान्त ॥ ६६ ॥ और राजाओंके नाशके उपरान्त रक्षा न रहनेसे परस्पर युद्ध करके मरते हुए ॥ ६७ ॥ और परस्पर द्रव्यकी चोरी करते और दुःखित हुए उस कलिकी संध्यासमय सब कष्टको प्राप्त होंगे, तब कलियुगके साथ हो प्रजाकाभी नाश होगा॥ ६८ ॥ इस प्रकार जब कलियुग क्षीण हो जायगा, तब फिर स्वभावसे कृतयुग वर्तने लगेगा और सब युगकी वार्ता हो जायगी; इसमें अन्यथा नहीं ॥ ६९ ॥

इस प्रकार दिव्यगुणोंसे संयुक्त दिव्य अवतार ब्रह्मवादियोंने पुराणोंमें गाये हैं ॥ १७० ॥ इन अवतारोंके कीर्तन करनेमें देवतेभी मोहित हो जाते हैं, यह श्रुतिसम्मत चरित्र वर्णन किये हैं ॥ ७१ ॥ परन्तु संक्षेप मात्रसे अवतारोंको कीर्तन किया; हे राजन् ! इस प्रकार सब लोकके गुरुके चरित्रका कीर्तन किया ॥ ७२ ॥ अमित वीर्यवाले और सर्व लोकके गुरु और कीर्तन करने योग्य विष्णुके अवतारोंका कीर्तन करनेसे और हाथ जोडकर सुननेसे सब पितर प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ७३ ॥ ऐसा मुनिजनोंने कहा है; कि योगेश्वररूप विष्णुके इन मायारूप अवतारोंको श्रवण करनेसे भगवत्के प्रतापसे मनुष्य

एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगुणैर्युताः ॥ प्रादुर्भावाः पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ १७० ॥ यत्र देवापि मुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्त्तने ॥ पुराणं वर्तते यत्र वेदश्रुतिसमाहितम् ॥ ७१ ॥ एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्त्तनम् ॥ कीर्तितं कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरोः प्रभोः ॥ ७२ ॥ प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्त्तनात् ॥ विष्णोरतुलवीर्यस्य यः शृणोति कृताञ्जलिः ॥ ७३ ॥ एतास्तु योगेश्वरयोगमायाः श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः ॥ ऋद्धिं समृद्धिं विपुलांश्च भोगान् प्राप्नोति सर्वं भगवत्प्रसादात् ॥ १७४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ विश्वत्वं शृणु मे विष्णोर्हरित्वं च कृते युगे ॥ वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च ॥ १ ॥ ईश्वरत्वं च तस्येदं गहनां कर्मणां गतिम् ॥ संप्रत्यतीतां भाव्यां च शृणु राजन्यथातथम् ॥ २ ॥

सब पापोंसे रहित हो जाता है, और ऋद्धि, सिद्धि तथा अनेक प्रकारके भोगोंकी प्राप्ति नारायणकी कृपासे होती है ॥ १७४ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ वैशंपायनजी बोले; विष्णुके विश्वरूपको कृतयुगमें हरि और देवताओंमें वैकुंठरूपको और मानुष युगमें कृष्णरूपको मुझसे सुनिये ॥ १ ॥ हे राजन् ! विष्णुके ईश्वरत्व और कर्मोंकी वर्तमान, भूत, भविष्य गहनगतिको मुझसे श्रवण करो ॥ २ ॥

१ अवतार प्रकरणमें श्रुति–यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्स इति मंत्रः । अर्थ–हे इन्द्ररूपी परमेश्वर ! तुम (यत् तन्वा) मत्स्यकूर्मादि शरीरसे (अचरः) विचरते हो, (वावृधानः) दैत्यादिकोंको मारकर महत्त्वको प्राप्त होते हो और (बलानि) भूमि उद्धारादि (जनेषु प्रब्रुवाणः) लोकमें विख्यात करते हो, (सा ते माया) यह सब आपकी मायाही है (यानि युद्धान्याहुः) जिनको देवासुरसंग्राम कहते हैं, यह सब माया है जिससे तुमको (अद्य) वर्तमान कालमें (ननु) निश्चय करके पुरा या आगे (शत्रुं) वैरी (न) नहीं (विवित्से) प्राप्त होता है. सबके अन्तरात्मा होनेसे तीन कालमेंभी तुम्हारा शत्रु नहीं हैं. इस कारणसे स्वाप्रार्थ अनुवादकी समान यह पुराण भगवान्की लीलाको कहते हैं.

अव्यक्त और व्यक्त चिह्नवाले, अनंतात्मा, सबके आदिकारण, अविनाशी॥३॥ सामर्थ्यवान यह नारायण कृतयुगमें हरिरूपको धारण कर ब्रह्मा, इन्द्र, चंद्रमा, धर्म, शुक्र, बृहस्पति हुए॥४॥ और यही यादवनन्दन देवता हुए, और यही विष्णु इन्द्रके छोटे भ्राता बने ॥५॥ अर्थात् दैत्य; दानव, राक्षसोंके नाशके अर्थ अदितिके पुत्र होके जन्मे॥६॥इन्ही विष्णुने आदिमें ब्रह्माजीको रचा, और पूर्वपुरुषरूप ब्रह्माजीने सृष्टिकल्पमें प्रजापतियोंकी रचना की॥७॥और वे प्रजापति कश्यपादिरूपसे शरीरोंको फैलाते हुए ब्रह्मवंशके गोत्रोंको रचने लगे, तिन ब्रह्मवंशोंमें शाश्वतरूप वेद शाखाकी प्रक-

अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो यत्रैष भगवान् प्रभुः॥ नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्यय एव च ॥ ३ ॥ एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत्कृते युगे ॥ ब्रह्मा शक्रश्च सोमश्च धर्मः शुक्रो बृहस्पतिः ॥ ४ ॥ अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दनः ॥ एष विष्णुरिति ख्यात इन्द्रादवरजोऽभवत् ॥ ५ ॥ प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्याः पुत्रजन्म तत् ॥ वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ ६ ॥ प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः ॥ सोऽसृजत्पूर्वपुरुषः पुरा कल्पे प्रजापतीन् ॥ ७ ॥ ते तन्वानास्तनूस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान् ॥ तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधा ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ८ ॥ एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोर्नामानुकीर्त्तनम् ॥ कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे ॥ ९ ॥ वृत्ते वृत्रवधे तात वर्त्तमाने कृते युगे ॥ आसीत्त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः ॥ १० ॥ तत्रासन् दानवा घोराः सर्वे संग्रामदर्पिताः ॥ घ्नन्ति देवगणान्सर्वान्सयक्षोरगराक्षसान् ॥ ११ ॥ ते वध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणा रणे ॥ त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं हरिम् ॥ १२ ॥

टता हुई ॥ ८ ॥ ऐसे आश्चर्यरूप विष्णुके अवतार हुए. विष्णुका नाम कीर्तन मंगलदायक है, सो आप सुनो ॥९॥ कृतयुगमें वृत्रासुरको मारनेके निमित्त त्रिलोकीमें तारकामय नाम विख्यात संग्राम हुआ है॥१०॥तिस संग्राममें गर्वितरूप दैत्य, देव, यक्ष, नाग, राक्षसोंको मारने लगे ॥११॥ तब मरनेके भयसे युद्धमें विमुख हुए आयुधक्षीण देवता आदि मनसे रक्षा करनेके योग्य नारायणकी शरणमें गये ॥ १२ ॥

इसी समय अतितेजस्वी तपे अंगारे वर्षानेवाले मेघोंने सूर्य चंद्रमा ग्रहोंसे संयुक्त आकाशको आच्छादित कर लिया॥ १३॥और चलायमान विजलीके समूहोंसे वेधित किये परस्पर वेगसे हत हुए महाशब्दयुक्त सात पवन वेगसे चलने लगे॥ १४॥प्रकाशमान जल, वज्रपात और पवन अग्निके घोर उत्पातोंसे दग्ध हुआ आकाश शब्दायमान होने लगा॥ १५॥सहस्रों उल्का गिरने लगीं. आकाशमें स्थित विमान उलटे होकर पृथ्वीमें गिरने लगे; और कितने एक ऊपरको जाने लगे॥ १६॥चारों युगकी समाप्तिमें संसारको भय होता है, तैसे उस समयमें अनेक प्रकारके भय होने लगे॥ १७॥और अंधकारसेप्रभारहित

एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्षिणः ॥ सार्कचन्द्रग्रहणं छादयन्तो नभस्तलम् ॥ १३ ॥ चञ्चद्विद्युद्गणाविद्धा घोरा निर्ह्रादकारिणः ॥ अन्योऽन्यवेगाभिहताः प्रववुः सप्त मारुताः॥ १४ ॥ दीप्ततोयाशनीपातैर्वज्रवेगानिलाकुलैः ॥ ररास घोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम् ॥ १५ ॥ पेतुरुल्कासहस्राणि मुहुराकाशगान्यपि ॥ न्युब्जानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ १६ ॥ चतुर्युगान्तपर्याये लोकानां यद्भयं भवेत् ॥ तादृशान्येव रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ॥ १७ ॥ तमसा निष्प्रभं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन ॥ तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशो दश ॥ १८ ॥ निशेव रूपिणी काली कालमेघावगुण्ठिता ॥ द्यौर्न भात्यभिभूतार्का घोरेण तमसावृता ॥ १९ ॥ तान्घनौघान् सतिमिरान्दोर्भ्यामुत्क्षिप्य स प्रभुः ॥ वपुः संदर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः ॥२०॥ बलाहकाञ्जननिभं बलाहकतनूरुहम् ॥ तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम् ॥ २१ ॥

सम्पूर्ण होनेसे कुछभी नहीं जाना जाता था; और अंधेरेके समूहसे परिक्षिप्त हो दशों दिशा प्रकाशित नहीं होती थी॥ १८॥और घोररूप अंधेरेसे आवृत अमावसकी रातके समान तारागणोंकेभी छिप जानेसे आकाशभी नहीं दीखता था॥ १९॥तब उन मेघोंके समूह और अंधेरेको अपनी भुजाओंसे दूरकर श्रीकृष्णने अपना दिव्यरूप दिखाया ॥ २० ॥ मेघरूप पर्वतके समान कांतिमान् और मेघोंके समान रोमवाला, तेज और शरीरसे

कृष्णरूप, कृष्णपर्वतके समान ॥ २१ ॥ प्रकाशित, पीले वस्त्रोंको धारण किये हुए, तपाये हुए सुवर्णके गहने धारण किये, धूमाके अंधकारके समान शरीरको धारण किये युगांतकी अग्निके समान प्रकाशमान॥२२॥आठ गुने पुष्ट कंधोंवाले मुकुटसे शिर और सुवर्णके अतिप्रकाशमान शस्त्रोंसे शोभित ॥ २३ ॥ चंद्रमासूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान, पर्वतके शिखरके समान ऊंचे, सबको आनंदित करनेवाले और शरसर्पको धारण करनेवाले ॥ २४ ॥ शक्ति, हल; शंख, चक्र, गदाको धारण करे; क्षमाके मूल, श्रीवृक्ष और सारंग धारे ॥ २५ ॥ हरित घोडोंसे संयुक्त,

दीप्तपीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम् ॥ धूमान्धकारवपुषा युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ २२ ॥ चतुर्द्विगुणपीनांसं बलाकापंक्तिभूषणम् ॥ चामीकरकराकारैरायुधैरुपशोभितम् ॥ २३ ॥ चन्द्रार्ककिरणोद्योतं गिरिकूटं शिलोच्चयम् ॥ नन्दकानन्दितकरं शराशीविषधारिणम् ॥ २४ ॥ शक्तिचित्रं हलोदग्रं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं शार्ङ्गधन्विनम् ॥ २५ ॥ हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजशोभिते ॥ चन्द्रार्कचक्ररुचिरे मन्दराक्षवृतान्तरे ॥ २६ ॥ अनन्तरश्मिसंयुक्ते दुदृशे मेरुकूबरे ॥ तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे ॥ २७ ॥ भयेष्वभयदं व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः ॥ ददृशुस्ते स्थितं देवं दिव्यलोकमये रथे ॥ २८ ॥ ते कृताञ्जलयः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणं गताः ॥ २९ ॥ स तेषां ता गिरः श्रुत्वा विष्णुर्दैवतदेवतः ॥ मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे ॥ ३० ॥ आकाशे तु स्थितो विष्णुः सोतमे पुरुषोत्तमः ॥ उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः ॥ ३१ ॥

रथमें गरुड़ध्वजासे शोभित, चंद्रमासूर्यरूप, चक्रसे संयुक्त, मंदराचलरूप पीनसे बंधे ॥ ॥ २६ ॥ अनंत रस्सियोंसे संयुक्त, मेरुरूप कूबर ॥१२४॥
और ग्रह नक्षत्र तारारूपी पुष्पोंसे चित्रित, दिव्यलोकमें रथमें स्थित ॥ २७ ॥ भयभीतोंको अभय देनेवाले ईश्वरको दैत्योंसे पराजित हुए देवते देखने लगे; ॥ २८ ॥ तब इन्द्र आदि देवते हाथ जोड जय शब्दका उच्चारण कर शरणरूप देवके शरणमें गये ॥ २९ ॥ तब उन देवताओंकी वाणी श्रवण कर विष्णु भगवानने उस युद्धमें दैत्योंके नाश करनेकी इच्छा की ॥ ३० ॥ और आकाशमें स्थित पुरुषोत्तम विष्णुने सब देवतोंसे

प्रतिज्ञासहित वचन कहे ॥ ३१ ॥ हे देवताओ ! शांतिको प्राप्त हो भय मत करो, सब दैत्योंको जीतता हूं; इस त्रिलोकीके राज्यको फिर ग्रहण करोगे ॥३२॥ तब सत्यसंधरूप विष्णुके वाक्यसे प्रसन्न हुए, देवता उत्तम प्रीतिको प्राप्त हो अमृतसा लाभ मानने लगे ॥३३॥ तब अंधकारका नाश हो गया,मेघ दूर हुए, सुन्दर पवन चलने लगी, दशों दिशा निर्मल होगई॥३४॥सब तारागण प्रकाशित होकर चंद्रमाकी परिक्रमा करने लगे,और सब प्रकारके तेज प्रकाशित होकर सूर्यकी परिक्रमा करने लगे॥३५॥सब ग्रहोंने विग्रह त्याग दिया,सब सागर शुद्ध हो गये,और सब मार्ग धूलसे रहित

शान्तिं भजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुतां गणाः ॥ जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ ३२ ॥ ते तस्य सत्यसंधस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः ॥ देवाः प्रीतिं परां जग्मुः प्राप्येवामृतमुत्थितम् ॥ ३३ ॥ ततस्तमः संह्रियते विनेशुश्च बलाहकाः ॥ प्रववुश्च शिवा वाताः प्रसन्नाश्च दिशो दश ॥ ३४ ॥ सुप्रभाणि च ज्योतींषि चन्द्रं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ दीप्तिमन्ति च तेजांसि चक्रुरर्कं प्रदक्षिणम् ॥३५॥ न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रसन्नाश्चापि सिन्धवः ॥ नीरजस्का बभुर्मार्गा नाकमार्गादयस्त्रयः ॥ ३६ ॥ यथार्थमूहुः सरितो नापि चुक्षुभिरेऽर्णवाः ॥ आसञ्छुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु ॥३७॥ महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयत ॥ यज्ञेषु च हविः स्वादु शिवमश्नाति पावकः ॥ ३८ ॥ प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः ॥ प्रीत्या परमया युक्ता देवदेवस्य भूपते ॥ विष्णोः सत्यप्रतिज्ञस्य श्रुत्वाऽरिनिधने गिरम् ॥३९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आश्चर्यतारकामये द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

हो गये;और स्वर्गादिके मार्गभी शुद्ध होगये॥३६॥और नदी समुद्रनेभी अपने क्षोभको छोड दिया;और मनुष्योंके अंतरात्मामें पंच महाभूत और इन्द्रियोंके गण सुन्दरताको प्राप्त होने लगे॥३७॥महर्षि शोकरहित हो ऊंचे स्वरसे वेदोंका अध्ययन करने लगे;और यज्ञोंमें स्वादसे संयुक्तद्रव्य सम्यक् प्रकारसे अग्निदेवता भक्षण करनेलगे॥३८॥सब धर्मोंकी प्रवृत्ति होती हुई,और सब प्राणी प्रसन्नमन और प्रीतिसे युक्त हो गये, और सब देवता परम प्रसन्न हुए.इस प्रकार सत्यप्रतिज्ञ विष्णुकी वाणी सुन सर्वत्र मंगल हो गया॥३९॥इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

वैशंपायनजी बोले; तब दैत्य दानव विष्णुके दिये अभयको सुनकर युद्धका अधिक उद्योग करने लगे ॥ १ ॥ उस समय दानवनें सुवर्णसे बना हुआ अविनाशी चार चक्रोंसे युक्त और शस्त्रोंसे कल्पित ॥ २ ॥ अनेक प्रकारके किंकिणीके शब्दोंसे शब्दायमान गैंडेके चर्मसे मढा हुआ रत्नोंके समूह और सोनेके समूहोंसे भूषित सुन्दर धुरी, सुन्दर नीड,पर्वतके तुल्य ॥३॥ ईहामृगोंके गणोंसे आकीर्ण और पक्षियोंसे विराजित, दिव्य अस्त्र और तूणीर धारे,मेघोंके समान शब्दायमान॥४॥गदा परिघसे पूरित मूर्तिमान् सागरके समान सुवर्णके गहनोंसे संयुक्त और सुवर्णसे शोभित सुवर्णके

॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततोऽभयं विष्णुमयं श्रुत्वा दैतेयदानवाः ॥ उद्योगं विपुलं चक्रुर्युद्धाय युधि दुर्जयाः ॥१॥ मयस्तु काञ्चनमयं त्रिनल्वान्तरमव्ययम् ॥ चतुश्चक्रं विक्रमन्तं सुकल्पितमहायुधम्॥२॥ किङ्किणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम् ॥ खचितं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च भूषितम् ॥ ३ ॥ स्वक्षं रथवरोदग्रं सूपस्थानमगोपमम् ॥ ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिभिश्च विराजितम्॥दिव्यास्त्रतूणीधरं पयोधरनिनादितम् ॥४॥ गदापरिघसंपूर्णं मूर्त्तिमन्तमिवार्णवम् ॥ हेमकेयूरवलयं स्वर्णमण्डलकूबरम् ॥५॥ सपताकध्वजोदग्रं सादित्यमिव मन्दरम् ॥ गजेन्द्राम्भोदसदृशं लम्बकेसरवर्चसम्॥६॥युक्तमृक्षसहस्रेण सहस्राम्बुदनादितम् ॥ दीप्तमाकाशगं दिव्यं रथं पररथारुजम् ॥ ७ ॥ अध्यतिष्ठद्रणाकांक्षी मेरुं दीप्तमिवांशुमान् ॥ तारस्तु क्रोशविस्तारमायसं वायसध्वजम् ॥८॥ शैलोत्करसमाकीर्णं नालाञ्जनचयोपमम् ॥ काललोहाष्टचरणं लोहेषायुगकूबरम् ॥ तिमिराङ्गारकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम् ॥ ९ ॥

मंडल कूबरसे युक्त॥५॥ बहुतसी ध्वजाओंसे शोभित और सूर्यसहित मंदराचल पर्वतके समान हाथीरूप मेघोंके सदृश लंबे,केशरके समान ॥६॥ अतितेजमान सहस्रों तारागणोंसे युक्त और हजारों मेघोंके समान शब्द करते हुए दीप्तिमान आकाशमार्गमें चलनेवाले दिव्य और दूसरोंके रथको पीडा देनेवाले ॥७॥ रथमें युद्ध करनेके अर्थ मय नामा दैत्य स्थित हुआ, जैसे मेरु पर्वतपै प्रकाशमान सूर्य, और एक कोशतक विस्तारवाला काकरूप ध्वजासे युक्त॥८॥अनेक प्रकारके पर्वतोंके समूहसे युक्त नीले पर्वतके समान कालरूप लोहेके चरणोंसे संयुक्त और लोहेके दोनों कूबरातथा अंधेरेको

दूर करनेवाली किरणोंसे संयुक्त, और गर्जते हुए मेघके समान शब्दायमान ॥ ९ ॥ लोहेके जालरूप झरोखेंसे दंशित और लोहके शस्त्र, परिघ, शूल, बर्छी ॥ १० ॥ प्रास, पाश, मुद्गर, भाला, तोमर, फरसे आदिसे शोभित ॥ ११ ॥ वैरियोंके अर्थ मानो दूसरा मंदराचल पर्वत है. ऐसे सहस्रों गधोंसे संयुक्त रथमें तार नाम दैत्य चढा ॥ १२ ॥ गदाको हाथमें ग्रहण कर सेनाको सन्मुख क्रोधको प्राप्त हुआ. विरोचन दैत्य दीप्त सींगवाले पर्वतकी समान स्थित हुआ ॥ १३ ॥ और शत्रुओंकी सेनाको मर्दन करनेवाला और सहस्र घोडोंसे संयुक्त रथमें हयग्रीव दैत्य स्थित हुआ ॥ १४ ॥ और अतिबडे धनुषकी

लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम् ॥ आयसैः परिघैः कीर्णं क्षेपणीयैस्तथाश्मभिः ॥ १० ॥ प्रासैः पाशैश्च विततैरवसक्तैश्च मुद्गरैः ॥ शोभितं त्रासनीयैश्च तोमरैः सपरश्वधैः ॥ ११ ॥ उद्यन्तं द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम् ॥ युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम् ॥ १२ ॥ विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः ॥ प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तशृङ्ग इवाचलः ॥ १३ ॥ युक्तं हयसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः ॥ स्यन्दनं वाहयामास सपत्नानीकमर्दनः ॥ १४ ॥ व्यायतं बाहुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन् महत् ॥ वराहः प्रमुखे तस्थौ सावरोह इवाचलः ॥ १५ ॥ खरस्तु विक्षरन् दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम् ॥ स्फुरद्दन्तोष्ठवदनः संग्रामं सोऽभ्यकांक्षत ॥ १६ ॥ त्वष्टा त्वष्टादशहयं यानमास्थाय दानवः ॥ व्यूहितो दानवैर्व्यूहः परिचक्राम वीर्यवान् ॥ १७ ॥ विप्रचित्तिसुतः श्वेतः श्वेतकुण्डलभूषणः ॥ श्वेतशैलप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखः स्थितः ॥ १८ ॥

टंकार सहस्र भुजाओंसे करता हुआ वाराह दैत्य पर्वतकी समान स्थित हुआ ॥ १५ ॥ अभिमानसे नेत्रोंके द्वारा क्रोधसे उपजे जलको बहाता और दंत, ओष्ठ, मुखको फरकाता हुआ युद्ध करनेकी इच्छासे खर स्थित हुआ ॥ १६ ॥ और अठारह घोडोंसे संयुक्त रथमें बहुतसे दैत्योंके गणोंसे संयुक्त महाबली त्वष्टा दैत्य स्थित होकर व्यूहमें परिक्रमण करने लगा ॥ १७ ॥ और श्वेतकुंडलोंको धारण किये विप्रचित्तिका पुत्र कैलासपर्वतके समान कांतिमान श्वेत नाम दैत्य युद्ध करनेको सन्मुख स्थित हुआ ॥ १८ ॥

और पर्वतके पत्थररूप शस्त्रोंको ग्रहण कर बलिका पुत्र अरिष्ट नाम दैत्य पृथ्वीको धारण करनेवाले पर्वतकेसमान युद्ध करनेको सन्मुख स्थित हुआ ॥१९॥ किशोर अवस्थाके मनुष्यके समान प्रेरित हुआ किशोर नाम दैत्य दैत्योंकी सेनाके बीचमें सूर्यके समान प्रकाशित होकर स्थित हुआ॥२०॥और लंबे मेघके समान कांतिमान लंबे लंबे वस्त्र और गहनोंसे शोभित लंब नाम दैत्य दैत्योंके समूहमें नीहारसे युक्त सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा ॥२१॥ और टेढे प्रकारसे युद्ध करनेवाला, दांत, ओष्ठ, नेत्ररूप शस्त्रोंवाला महाग्रह राहु दैत्य घोडोंपर स्थित हो, प्रकाशित होने लगा

अरिष्टो बलिपुत्रस्तु वरिष्ठोऽद्रिशिलायुधैः ॥ युद्धायातिष्ठदायस्तो धराधर इवापरः ॥ १९ ॥ किशोरस्त्वतिसंहर्षात्किशोर इव चेदितः ॥ अभवद्दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदितः ॥ २० ॥ लम्बस्तु लम्बमेघाभः प्रलम्बाम्बरभूषणः ॥ दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान् ॥ २१ ॥ स्वर्भानुर्वक्रयोधी तु दशनौष्ठेक्षणायुधः ॥ हसंस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रहः ॥ २२ ॥ अन्ये हयगता भान्ति नागस्कंधगताः परे ॥ सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षगताः परे ॥ २३ ॥ केचित् खरोष्ट्रयातारः केचित्तोयदवाहनाः ॥ नानापक्षिगताश्चान्ये केचित्पवनवाहनाः ॥ २४ ॥ पत्तयश्चापरे दैत्या भीषणा विकृताननाः ॥ एकपादा द्विपादाश्च नर्दन्तो युद्धकांक्षिणः ॥ २५ ॥ प्रक्ष्वेडमाना बहवः स्फोटयन्तश्च ते भुजान् ॥ हृष्टशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः ॥ २६ ॥ ते गदापरिघैरुग्रैर्धनुर्व्यायामशालिनः ॥ बाहुभिः परिघाकारैस्तर्जयन्ति स्म देवताः ॥ २७ ॥ प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च तोमरांकुशपट्टिशैः ॥ चिक्रीडुस्ते शतघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः ॥ २८ ॥

॥२२॥ कोई हाथी, सिंह, बघेरा, शूकर, रीछोंपै चढ प्रकाशित होने लगे ॥ २३ ॥ कोई गधे, ऊंट, मेघ, पक्षी पवनपर स्थित हो प्रकाशित होने लगे॥२४॥ कोई पियादे और कोई भयानक मुखवाले, कोई एक पैरवाले, कोई दो पैरवाले नाचते हुए युद्धकी इच्छा करने लगे ॥ २५ ॥ कोई भुजाओंको बजा, कोई शार्दूलके समान शब्द करते दैत्य गर्जने लगे ॥ २६ ॥ गदा, परिघ, धनुष और परिघके समान बाहुओंसे युक्त बहुतसे दैत्य देवतोंको झिडकने लगे ॥२७॥ प्रास, फांसी, तलवार, भाला, अंकुश, पट्टिश, शतघ्नी, शतधार, मुद्गर ॥ २८ ॥

गंडशैल, शैल, परिघ, चक्र आदि शस्त्रोंसे क्रीडा करते हुए दैत्य अपनी सेनाको प्रसन्न करने लगे ॥२९॥इस प्रकार युद्धके निमित्त देवताओंके सन्मुख देवताओंकी सेना मेघोंके समान स्थित हुई ॥३०॥ इस प्रकार वायु, अग्नि, जल, मेघ पर्वतके समान सहस्रों दैत्योंसे समाकीर्ण वह सेना युद्धके अर्थ उन्मत्तके समान प्रकाशित होने लगी ॥३१॥इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ वैशंपायनजी बोले;हे जनमेजय! दैत्योंकी सेनाका विस्तार तो सुना, अब देवोंकी सर्व सेनाके वैष्णवविस्तारको श्रवण करो ॥१॥ आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, दोनों अश्विनीकुमार

गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोत्तमायुधैः ॥ चक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम् ॥२९॥ एवं तद्दानवं सैन्यं सर्वं युद्धबलोत्कटम् ॥ देवताभिमुखं तस्थौ मेघानीकमिवोत्थितम् ॥ ३० ॥ तदद्भुतं दैत्यसहस्रगाढ वाय्वग्नितोयाम्बुदशैलकल्पम् ॥ बलं रणौघाभ्युद-यावकीर्णं युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे ॥ ३१ ॥ इति महाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्या विस्तरस्तात विग्रहे॥सुराणां सर्वसैन्यस्य विस्तरं वैष्णवं शृणु॥१॥आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महाबलौ ॥ सबलाः सानुगाश्चैव सनह्यन्त यथाबलम् ॥२॥ पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालः सहस्रदृक् ॥ ग्रामणीः सर्वदेवानामारुरोह सुरद्विपम् ॥ ३ ॥ सव्ये चास्य रथः पार्श्वे पक्षिप्रवरवेगवान् ॥ सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः ॥ ४ ॥ देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः ॥ दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ॥५॥ वज्रविस्फूर्जितोद्धूतैर्विद्युदिन्द्रायु-धान्वितैः ॥ गुप्तो बलाहकगणैः कामगैरिव पर्वतैः ॥ ६ ॥

ये बहुतसी सेनाके संग यथाक्रमसे युद्धके अर्थ कवचोंको धारण करने लगे ॥२॥ पीछे लोकोंके रक्षक सहस्र नेत्रोंवाले सब देवताओंका स्वामी इन्द्र ऐरावत हाथीपै चढे ॥३॥ इसी हाथीके वांई ओरको गरुडजीके वेगके समान वेगवान सुन्दर चक्ररूप पैरोंसे संयुक्त सुवर्ण और हीरेजटित ॥ ४ ॥ सहस्रों देव, गंधर्व, यक्षोंसे रक्षित प्रकाशवान सभापति और महर्षियोंसे स्तुतिको प्राप्त हो ॥ ५ ॥ वज्र विद्युतादि शस्त्रोंसे संयुक्त और इच्छाचारी पर्वतरूप मेघोंके गणोंसहित ॥ ६ ॥

अपने हाथीपर युद्ध करनेको जब इन्द्र स्थित हुआ,तब सन्मुख उत्तम यज्ञमें स्थित हुए ब्राह्मण साम गान करने लगे॥७॥और जब इन्द्र गमन करने लगा; तब उसके सन्मुख सब देवते बाजे बजाने लगे. और सैकड़ों अप्सरा नृत्य करने लगीं ॥८॥ सूर्यके समान ऊंची ध्वजा और मन तथा पवनके समान वेगवान् घोडे॥९॥और मातलि सारथीसे युक्त इन्द्रका रथ शोभायमान होने लगा,जैसे सूर्यके तेजसे सुमेरु पर्वत शोभित होता है॥१०॥उसी प्रकार दंड और कालयुक्त मुद्गरको ग्रहण कर अपने शब्दोंसे दैत्योंको भय देते हुए ॥११॥ और चार समुद्रोंसे युक्त ओष्ठप्रांतोंको चाटते हुए,सर्पोंसे रक्षित, शंख-

समारूढः स भगवान् पर्येति मघवा गजम् ॥ हविर्धानेषु गायन्ति विप्राः सोममखे स्थिताः ॥७॥ स्वर्गे शक्रानुयानेषु देवतूर्यनिनादिषु ॥ इन्द्रं समुपनृत्यन्ति शतशो ह्यप्सरोगणाः ॥ ८ ॥ केतुना वंशजातेन राजमानो यथा रविः ॥ युक्तो हरिसहस्रेण मनोमारुतरंहसा ॥९॥ स स्यन्दनवरो भाति युक्तो मातलिना तदा ॥ कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा ॥ १० ॥ यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तं च मुद्गरम् ॥ तस्थौ सुरगणानीके दैत्यान्नादेन भीषयन् ॥११॥ चतुर्भिः सागरैर्गुप्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः ॥ शंखमुक्ताङ्गदधरो बिभ्रत्तोयमयं वपुः ॥१२॥ कालपाशं समाविध्य हयैः शशिकरोपमैः ॥ वाय्वीरितजलोद्गारैः कुर्वन्लीलाः सहस्रशः॥१३॥ पाण्डुरोद्धूतवसनः प्रवालरुचिराङ्गदः॥ मणिश्यामोत्तमवपुर्हारभारार्पितोदरः ॥१४॥ वरुणः पाशभृन्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान् ॥ युद्धवेलामभिलषन् भिन्नवेल इवार्णवः ॥१५॥ यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि ॥ मणिश्यामोत्तमवपुः कुबेरो नरवाहनः ॥१६॥

मोतिसे जटित बाजूबंधको धारे, जलमय शरीरको धारण किये हुए ॥१२॥और कालपाशको धारे, चंद्रमाकी किरणोंके समान घोड़ोंपै चढे, वायुके वेगसे सहस्रों प्रकारकी लीला करते॥१३॥ श्वेतरंगके शुद्ध वस्त्रोंको पहिने,अनेक प्रकारकी मूंगोंकी मालाको धारे और श्यामरंगकी मणियोंके हारसे शोभित॥१४॥फांसियोंको धारे,भिन्न वेलावाले सागरके समान क्षोभको प्राप्त हुए वरुण युद्ध करनेके अर्थ देवताओंकी सेनाके मध्यमें स्थित हुए॥१५॥ उसी प्रकार यक्ष राक्षसोंकी सेनासे संयुक्त,गुह्यकोंके समूहसे संयुक्त, मणियोंके प्रकाशसे श्यामशरीरको धारण करनेवाले, पालकीमें स्थित हुए

कुबेरजी ॥१६॥ शंख पद्मरूप कोश और सिद्धिसे युक्त, द्रव्यके स्वामी राजराजेश्वर कुबेर गदाको हाथमें ले स्थित हुए ॥१७॥ पीछे पुष्पकविमानमें स्थित हो युद्धके निमित्त यही कुबेर शोभायमान हो दैत्योंके सन्मुख युद्ध करनेके अर्थ स्थित हुए, उस समय यह शिवजीके मित्र कुबेर शिवके समान दृष्टिगोचर होते थे ॥१८॥ सेनासे पूर्व दिशाको इन्द्र, दक्षिण दिशाको धर्मराज, पश्चिम दिशाको वरुण और उत्तर दिशाको कुबेर स्थित हुए ॥ १९ ॥ इस प्रकार चारों बली लोकपाल उस देवसेनाकी अपनी २ दिशामें रक्षा करने लगे ॥ २० ॥ और दीप्तिमान रश्मियोंसे संयुक्त प्रकाशमान आकाशमें

युक्तश्च शङ्खपद्माभ्यां निधीनामधिपः प्रभुः ॥ राजराजेश्वरः श्रीमान् गदापाणिरदृश्यत ॥ १७ ॥ विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थितः ॥ स राजराजः शुशुभे युद्धार्थी नरवाहनः ॥ प्रेक्ष्यमाणः शिवसखः साक्षादिव शिवः स्वयम् ॥ १८ ॥ पूर्वं पक्षं सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणम् ॥ वरुणः पश्चिमं पक्षमुत्तरं नरवाहनः ॥ १९ ॥ चतुर्षु युक्ताश्चत्वारो लोकपाला बलोत्कटाः ॥ स्वासु दिक्ष्वभ्य-रक्षन्वै तस्य देवबलस्य ह ॥ २० ॥ सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनाम्बरगामिना ॥ श्रिया जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः ॥२१॥ उदयास्तमयं चक्रे मेरुपर्यन्तगामिना ॥ त्रिदिवद्वारचक्रेण तपता लोकमव्ययम् ॥ २२ ॥ सहस्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानः स्वतेजसा ॥ चचार मध्ये देवानां द्वादशात्मा दिनेश्वरः ॥ २३ ॥ सोमः श्वेतहयैर्भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान् ॥ हिमतोयप्रपूर्णाभिर्भाभिराह्लाद-यन् जगत् ॥ २४ ॥ तमृक्षयोगानुगतं शिशिरांशुं द्विजेश्वरम् ॥ जगच्छायाङ्किततनुं नैशस्य तमसः क्षयम् ॥२५॥ ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि रसानां रसनं प्रभुम् ॥ औषधीनां परित्राणं निधानममृतस्य च ॥ २६ ॥

चलनेवाले सात घोडोंसे संयुक्त ॥ २१ ॥ उदय पर्वत और अस्त पर्वत तथा सुमेरुपर चलनेवाले स्वर्गके द्वारपर अलातचक्रके समान भ्रमण करनेवाले प्रकाशमान अविनाशी ॥ २२ ॥ रथमें अपनी बारह मूर्तियोंसे संयुक्त सूर्य स्थित हो देवताओंके बीचमें प्रकाशित होने लगे ॥ २३ ॥ और श्वेतरंगके घोडोंसे संयुक्त रथमें शीतल किरणोंवाले शीतल जलसे पूरित कांतिसे जगत्को तृप्त करते ॥२४॥ बहुतसे ताराओंसे युक्त, ब्राह्मणोंके स्वामी, रात्रिके अंधकारके नाश करता, जगत्की छायासे अंकित शरीरवाले ॥२५॥ आकाशमें सब तारागणोंके पति, रसोंके रसको देनेवाले, औषधियोंकी रक्षा कर-

नेसे अमृतके स्थान, जगत्के अग्नीषोमात्मक अन्नरूप होनेसे॥ २६॥ प्रथम भाग सौम्य और शीतल किरणोंसे युक्त, हिमके प्रहार करनेमें स्थित चंद्रमाको सब दैत्य देखने लगे ॥ २७ ॥ जो सब प्राणियोंके प्राण और जो मनुष्योंमें प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान इन पांच भेदोंसे विख्यात हैं, और चराचररूप तीन लोकोंको आवह, प्रवह आदि भेदसे धारण करनेवाले ॥२८॥ अग्निके सारथी सबके उत्पत्तिकारण, शब्दके आदिकारण और सात स्वरोंमें गान करानेवाले ॥ २९ ॥ जिसको उत्तम तत्त्वशरीरसे रहित आकाशमें चलनेवाला और शीघ्रगामी शब्दकी योनि कहते हैं ॥ ३० ॥

जगतः प्रथमं भागं सौम्यं शीतमयं रसम् ॥ ददृशुर्दानवाः सोमं हिमप्रहरणस्थितम् ॥ २७॥ यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा भिद्यते नृषु ॥ सप्तस्कन्धगतो लोकांस्त्रीन्दधार चराचरान् ॥ २८ ॥ यमाहुरग्नेर्यन्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम् ॥ सप्तस्वरगता यस्य योनिर्गीतिरुदीर्यते ॥ २९ ॥ यं वदंत्युत्तमं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम् ॥ यमाहुराकाशगमं शीघ्रगं शब्दयोनिजम्॥ ३० ॥ स वायुः सर्वभूतायुरुद्धूतः स्वेन तेजसा ॥ ववौ प्रव्यथयन् दैत्यान् प्रतिलोमः सतोयदः ॥ ३१ ॥ मरुतो देवगन्धर्वा विद्याधरगणैः सह ॥ चिक्रीडुरसिभिः शुभ्रैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ॥ ३२ ॥ सृजन्तः सर्पपतयस्तीव्रं रोषमयं विषम् ॥ शरभूताः सुरेन्द्राणां चेरुर्व्यात्तमुखा दिवि ॥ ३३ ॥ पर्वतास्तु शिलाशृङ्गैः शतशाखैश्च पादपैः ॥ उपतस्थुः सुरगणान् प्रहर्त्तुं दानवं बलम् ॥ ३४ ॥ यः स देवो हृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः ॥ कृष्णवर्त्मा युगान्ताभो विश्वस्य जगतः प्रभुः ॥ ३५ ॥

वह सम्पूर्ण प्राणियोंके आयुरूप वायु दैत्योंको पीडा देते हुए बादलसहित अच्छी तरह चलने लगे ॥ ३१ ॥ देव, गंधर्व, विद्याधरोंसे संयुक्त, मरुत देवते शुभ्र तलवारोंसे क्रीडा करने लगे. वे कैंचलोंसे निकले सर्पोंके समान शोभित होती थीं ॥ ३२ ॥ और सर्प क्रोधसे उपजे तीव्र विषको उगलने लगे, देवताओंके शररूप होकर मुखको फाडे आकाशमें विचरने लगे ॥ ३३ ॥ और पर्वत, शिला, शृंग शतशाखावाले वृक्षोंसे संयुक्त देवताओंके अर्थ दैत्योंकी सैनापै प्रहार करनेको उद्यत हुए ॥ ३४ ॥ और पद्मनाभ त्रिविक्रम नामक युगांतकी अग्निके समान और

जगत्के स्वामी ॥ ३५ ॥ और समुद्रके आदिकारण मधुदैत्यको मारनेवाले, यज्ञसे पूजित और पृथ्वी जल आकाशके रूपवाले भूतात्मा और शांतिस्वरूप शांति करनेवाले शत्रुओंके नाशक ॥ ३६ ॥ और जगत्की योनि, जगत्के बीज और जगत्के गुरु सूर्य अग्निके समान तेजमान ॥ ३७ ॥ और शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाले, परिवेशसहित सूर्यके मंडलके समान शत्रुओंके मारनेवाले, देवताओंकी सेवामें ॥ ३८ ॥ बायें हाथमें सब राक्षसोंके नाश करनेवाली, शत्रुओंकी मृत्युकारक बडी गदाको धारण किये और वह स्वामी गरुडध्वज प्रभु शेष हाथोंमें ॥३९॥ शार्ङ्गादि अनेक आयुधोंको

समुद्रयोनिर्मधुहा हव्यभुक् क्रतुसत्कृतः ॥ भूरापो व्योम भूतात्मा समः शान्तिकरोऽरिहा ॥ ३६ ॥ जगद्योनिर्जगद्बीजो जगद्गुरुरुदारधीः ॥ सार्कमग्निमिवोद्यन्तमुद्यम्योत्तमतेजसम् ॥ ३७ ॥ अरिघ्नममरानीके चक्रं चक्रगदाधरः ॥ सपरीवेषमुद्यन्तं सवितुर्मण्डलं यथा ॥ ३८ ॥ सव्येनालम्ब्य महतीं सर्वासुरविनाशिनीम् ॥ करेण कालीं वपुषा शत्रुकालप्रदां गदाम् ॥ शेषैर्भुजैः प्रदीप्तानि भुजगारिध्वजः प्रभुः ॥ ३९ ॥ दधारायुधजालानि शार्ङ्गादीनि महायशाः ॥ स कश्यपः स्वात्मभवं द्विजं भुजगभोजनम् ॥ ४० ॥ पवनाधिकसंपातं गगनक्षोभणं खगम् ॥ भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजितम् ॥ ४१ ॥ अमृतारम्भनिर्मुक्तं मंदराद्रिमिवोच्छ्रितम् ॥ देवासुरविमर्देषु शतशो दृष्टविक्रमम् ॥ ४२ ॥ महेन्द्रेणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम् ॥ शिखिनं चूडिनंचैव तप्तकुण्डलभूषणम् ॥ विचित्रपक्षवसन धातुमन्तमिवाचलम् ॥ ४३ ॥ स्फीतक्रोडावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा ॥ भोगिभोगावसक्तेन मणिरत्नेन भास्वता ॥ ४४ ॥

धारण किये विष्णु भगवान् कश्यपके पुत्र सर्पोंको खानेवाले ॥ ४० ॥ पवनसे अधिकवेगवान आकाशमें क्षोभ करनेवाले, आकाशगामी सर्पराजको मुखमें धारण करनेसे शोभित ॥ ४१ ॥ मंदराचल पर्वतके समान ऊंचे; देवासुरयुद्धमें सहस्रोंवार महापराक्रम करनेवाले ॥ ४२ ॥ अमृतके निमित्त युद्धमें इन्द्रके हाथसे फेंके हुए वज्रसे चिन्हित हुआ शिखा चूलव और तपायमान सोनेके कुंडलोंको पहरनेवाले, विचित्र पक्षोंके वस्त्र और धातुओंसे संयुक्त, पर्वतके समान ॥४३॥ और चंद्रमाके समान तेजस्वी आधे निगले सर्पके शिरोरत्नसे जो वक्षस्थलमें प्राप्तशोभायमान ॥ ४४ ॥

सुन्दररूपवाले पंखोंसे आकाशको युगांतमें जलके देनेवाले इन्द्रधनुषके समान आकाशको आच्छादन करते हुए॥४५॥नीली, लाल, पीली पताकाओंसे अलंकृत, ध्वजारूप वेषसे आच्छादित, बडे शरीरसे संयुक्त ॥ ४६ ॥ और अरुणसे पीछे उत्पन्न होनेवाले, आकाशमें उडनेवालोंमें श्रेष्ठ, सुन्दर पंखोंवाले गरुडजीपै श्रीमान् विष्णुजी चढ युद्धमें प्राप्त हुए ॥४७॥ तपोधन मुनिजन और देवता सावधान हो मंत्ररूप वाणीसे विष्णुकी स्तुति करने लगे ॥४८॥ कुबेरजीसे संयुक्त धर्मराजको आगे किये और वरुणजीसे परीक्षित और इन्द्रसे प्रकाशित ॥४९॥ चंद्रभाकी किरणोंके समान शुद्ध,युद्धके

पक्ष्याभ्यां चारुपत्राभ्यामावृत्य दिवि लीलया ॥ युगान्ते सेन्द्रचापाभ्यां तोयदाभ्यामिवाम्बरम् ॥ ४५ ॥ नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलंकृतम् ॥ केतुवेषप्रतिच्छन्नं महाकायनिकेतनम् ॥ ४६ ॥ अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे हरिः ॥ स देवः स्वेन वपुषा सुपर्णं खेचरोत्तमम् ॥ ४७ ॥ तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च तपोधनाः ॥ गीर्भिः परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च गदाधरम् ॥ ४८ ॥ तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरस्सरम् ॥ वारिराजपरिक्षिप्तं देवराजविराजितम् ॥ ४९ ॥ चन्द्रप्रभाभिर्विमलं युद्धाय समुपस्थितम् ॥ पवनाविद्धनिर्घोषं संप्रदीप्तहुताशनम् ॥ ५० ॥ विष्णोर्जिष्णोः सहिष्णोश्च भ्राजिष्णोस्तेजसा वृतम् ॥ बलं बलवदुद्धूतं युद्धाय समवर्त्तत ॥ ५१ ॥ स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति स्तुत्वा तत्राङ्गिराब्रवीत् ॥ स्वस्त्यस्तु दैत्येभ्य इति उशना वाक्यमाददे ॥ ५२ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्चर्यतारकामये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ताभ्यां बलाभ्यां संजज्ञे तुमुलो विग्रहस्तदा ॥ सुराणामसुराणां च परस्परजयैषिणाम् ॥ १ ॥

निमित्त उद्यत पवनकेसमान शब्दायमान,प्रकाशितअग्निके तुल्य ॥ ५० ॥ विष्णु भगवान्‌के जयशील, सहनशील, प्रकाशमान तेजसे युक्त देवताओंकी सेना युद्धके निमित्त तैय्यार भई॥५१॥देवताओंका मंगल मनोवांछित प्राप्त हो, ऐसे बृहस्पतिजीने कहा, और दैत्योंका कल्याण और मनोरथ सिद्ध हो इस प्रकार शुक्राचार्य कहने लगे ॥ ५२ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार पूर्वोक्त

दोनों सैनामें जयकी इच्छासे परस्पर देवता और दैत्योंका घोर युद्ध होने लगा ॥१॥ अनेक प्रकारके प्रहार करनेवाले दैत्य देवताओंके संग इस प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे पर्वतोंसे पर्वत युद्ध करने लगे ॥२॥ तब धर्म, पाप, अहंकार, विनयसे संयुक्त देवता और राक्षसोंका घोररूप संग्राम होने लगा ॥ ३ ॥ तब वेगवाले रथोंमें स्थित और हाथमें तलवार लेकर आकाशमें कहने लगे ॥ ४ ॥ मूशलोंके प्रहार और बाणोंके निक्षेप, धनुषकी टंकार और मुद्गरोंकी मारोंसे॥५॥ देवता और दानवोंका सब जगत्‌को त्रास देनेवाला युग परिवर्तनके समान घोर संग्राम

दानवा दैवतैः सार्द्धं नानाप्रहरणोद्यताः ॥ समीयुर्युध्यमाना वै पर्वताः पर्वतैरिव ॥ २ ॥ तत्सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ ॥ धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च ॥ ३ ॥ ततो रथैः प्रजविभिर्वाहनैश्चप्रचोदितैः ॥ उत्पतद्भिश्च गगनं सासिहस्तैः समन्ततः ॥ ४ ॥ विक्षिप्यमाणैर्मुशलैः संप्रेष्यद्भिश्च सायकैः ॥ चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरैः ॥ ५ ॥ तद्युद्धमभवद्धोरं देवदानव-संकुलम् ॥ जगतस्त्रासजननं युगसंवर्त्तकोपमम् ॥ ६ ॥ स्वहस्तमुक्तैः परिघैः क्षिप्यमाणैश्च पर्वतैः ॥ दानवाः समरे जघ्नुर्देवा-निन्द्रपुरोगमान् ॥७॥ ते वध्यमाना बलिभिर्दानवैर्जितकाशिभिः ॥ विषण्णमनसो देवा जग्मुरार्तिं परां मृधे ॥ ८ ॥ तेऽस्त्रजालैः प्रमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः ॥ भिन्नोरस्का दितिसुतैर्वेमू रक्तं व्रणैर्बहु ॥ ९ ॥ स्पन्दिताः पाशजालैश्च निर्यत्नाश्च शरैः कृताः ॥ प्रविष्टा दानवीं मायां न शेकुस्ते विचेष्टितुम् ॥ १० ॥ संस्तम्भितमिवाभाति निःप्राणसदृशाकृति ॥ बलं सुराणामसुरैर्निःप्रय-त्नायुधं कृतम् ॥ ११ ॥

हुआ॥६॥ अपने हाथोंसे फेंके हुए परिघ आदि शस्त्रों और पर्वतोंसे दैत्य, इन्द्र आदि देवतोंको युद्धमें मारने लगे ॥७॥ तब अतिबली दैत्योंके हाथसे दुःखितमनसे देवते युद्धमें परम ग्लानिको प्राप्त हुए॥८॥पीछे अस्त्रजालोंसे दुःखित और परिघशस्त्रसे खंडित शिर और भग्न हृदय देवताओंके शरीरमें घावोंसे बहुत रुधिर वहने लगा ॥९॥ फांसियोंके जालोंसे दैत्योंने देवताओंको यत्नरहित कर दिया; और दैत्योंकी मायासे मोहित हुए देवता चेष्टाकीभी सामर्थ नहीं कर सके॥१०॥ स्तंभित और प्राणरहितके समान आकृतिमान, उद्योग और शस्त्रआदिसे रहित देवताओंकी सेनाको

राक्षसोंने कर दिया॥११॥तब वज्रसे और बाणोंसे मायाकी फांसियोंको काटते हुए बहुलोचन इन्द्रने घोररूप दैत्यसेनामें प्रवेश किया॥१२॥ और बहुतसे दैत्योंको मार तामसरूप अस्त्रजालसे युक्त दैत्योंकी सैनामें महाअंधकार कर दिया॥१३॥तब इन्द्रके तेजरूप अंधेरेसे व्याप्त हुए देवता और दैत्योंने परस्परको एक दूसरे न जाना ॥ १४ ॥ और मायाकी फांसीसे छुटे हुए देवता दैत्योंके तमोभूत शरीरोंको खंडकर पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ १५ ॥ तब संज्ञासे रहित नीले तेजके समान दुःखित दैत्योंके गण छिन्नपक्षवाले पर्वतके समान पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ १६ ॥ इस प्रकार अंधकाररूपी समुद्रमें प्रविष्ट

मायापाशात्विकर्षंश्च भिन्दन्वज्रेण ताञ्शरान् ॥ शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः ॥१२॥ स दैत्यान् प्रमुखे हत्वा तद्दानवबलं महत् ॥ तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत् ॥ १३ ॥ तेऽन्योऽन्यं नावबुध्यन्त देवान्व दानवानपि ॥ घोरेण तमसाविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा ॥१४॥ मायापाशैर्विमुक्ताश्च यत्नवन्तः सुरोत्तमा ॥ वपूंषि दैत्यसंघानां तमोभूतान्यपातयन् ॥ १५ ॥ अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसः ॥ पेतुस्ते दानवगणाश्छिन्नपक्षा इवाचलाः ॥१६॥ तद्घनीभूतदैत्यानामन्धकारमहार्णवम् ॥ प्रविष्टं बलमुत्रस्तं तमोभूतमिवाबभौ ॥ १७ ॥ तदासृजन्महामायां मयस्तां तामसीं दहन् ॥ युगान्ताग्निमिवात्युग्रां सृष्टामौर्वेण वह्निना ॥१८॥ सा ददाह तमः सर्वं माया मयविकल्पिता ॥ दैत्याश्च दीप्तवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे ॥१९॥ मायामौर्वीं समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः ॥ भेजिरे चन्द्रविषयं शीतांशुसलिले शयात् ॥२०॥ ये दह्यमाना ह्यौर्वेण तेजसा भ्रष्टतेजसः ॥ शशंसुर्वज्रिणे देवाः संतप्ताः शरणैषिणः ॥ २१ ॥ संतप्ते मायया सैन्ये दह्यमाने च दानवैः॥चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥२२॥

हुई दैत्योंकी सैना दुःखितरूप दीखने लगी॥१७॥ तब इस तामसी मायाको नाश करनेवाले मयदैत्यने प्रलयमें लोकको दग्ध करनेवाली ऊर्वके पुत्र अमीकी रची हुई महामायाको रचकर॥१८॥ उस मायाके प्रतापसे सब अंधेरा दग्ध कर दिया,और सूर्यके समान तेजवाले दैत्य तत्काल युद्ध करनेको तैयार हुए॥१९॥ तब और्वकी मायाके प्रतापसे दग्ध हुए देवता चंद्रमाके देशमें शीतल जलके सरोवरमें स्नान करनेकी इच्छा करने लगे ॥ २० ॥ तब उस मायासे दग्ध हो तेजसे भ्रष्ट और अतितप्त देवता इन्द्रकी शरणमें गये और समाचार कहा ॥२१॥ तब मायासे दानवोंके द्वारा अपनी सैनाको

दग्ध देखकर इन्द्रसे प्रेरित हो वरुणजी बोले ॥ २२ ॥ हे इन्द्र ! पहले ब्रह्मर्षिसे-उत्पन्न हुए ब्रह्माके गुणोंके सदृश गुणवान् अतितेजस्वी ऊर्व दारुण तप करते थे ॥ २३ ॥ तब आदित्यके समान अपने तेजसे जगत्को तपायमान करते देख देवता, देवर्षि, मुनि सब समीपमें आकर स्तुति करने लगे ॥२४॥ और दैत्योंका स्वामी हिरण्यकशिपु दैत्यभी परमतेजस्वी इन ऋषिको जानता था ॥ २५ ॥ तब सब मुनि ऊर्वतपस्वीसे कहने लगे; हे भगवन् ! ऋषिवंशमें यह विप्र कुलवंशसे रहित है ॥ २६ ॥ तिसमें संतानरहित आप अकेले हैं और तुम्हारा गोत्रभी नहीं है, और आप

वरुण उवाच ॥ पुरा ब्रह्मर्षिजः शक्रः तपस्तेपेऽतिदारुणम् ॥ उर्वो मुनिः स तेजस्वी सदृशो ब्रह्मणो गुणैः ॥२३॥ तं तपन्तमिवादित्यं तपसा जगदव्ययम् ॥ उपतस्थुर्मुनिगणा देवा ब्रह्मर्षिभिः सह ॥२४॥ हिरण्यकशिपुश्चैव दानवो दानवेश्वरः ॥ ऋषिं विज्ञपयामास पुरा परमतेजसम् ॥ २५ ॥ तमूचुर्ब्रह्मऋषयो वचनं ब्रह्मसंमितम् ॥ ऋषिवंशेषु भगवन् छिन्नमूलमिदं कुलम् ॥ २६ ॥ एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रं यन्नानुवर्त्तसे ॥ कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्त्तसे ॥ २७ ॥ बहूनि विप्रगोत्राणि मुनिनां भावितात्मनाम् ॥ एकदेहानि तिष्ठन्ति विभक्तानि विना प्रजाः ॥२८॥ कुलेषु च्छिन्नमूलेषु तेषु नो नास्ति कारणम् ॥ भवांस्तु तपसा श्रेष्ठः प्रजापतिसमद्युतिः ॥ २९ ॥ तत्प्रवर्त्तस्व वंशाय वर्द्धयात्मानमात्मना ॥ त्वमाधत्स्वोर्चितं तेजो द्वितीयां वै तनुं कुरु ॥ ३० ॥ स एवमुक्तो मुनिभिर्मुनिर्मनसि ताडितः ॥ जगर्हे तानृषिगणान् वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ यथायं शाश्वतो धर्मो मुनीनां विहितः पुरा ॥ सदार्षं सेवतां कर्म वन्यमूलफलाशिनाम् ॥ ३२ ॥

कौमारव्रतको प्राप्त हो क्लेश करते हैं ॥ २७ ॥ बहुतसे ज्ञानी मुनि ब्राह्मणोंके गोत्रविना संतानके एकही देहमें स्थित रहते हैं ॥ २८ ॥ छिन्नमूल कुलोंका तुममें कारण नहीं है कारण कि तुम तप करनेसे ब्रह्माजीके समान कीर्तिवाले हो ॥ २९ ॥ इस कारण वंश चलानेको अपनी आत्मासे आत्माको बढाके बढे हुए तेजसे दूसरा शरीर रचो ॥ ३० ॥ इस प्रकार मुनियोंके वचन सुनकर मनमें ताडित हो ऊर्व मुनि सब मुनियोंकी निंदा कर यह वचन कहने लगे ॥ ३१ ॥ कि मुनिजनोंका यही निरंतर धर्म है; कि वनके मूल फल आदिका भोजन करके समय व्यतीत करें ॥ ३२ ॥

ब्रह्मयोनिमें उत्पन्न हुए आत्मवर्ति ब्राह्मणसे अच्छी प्रकार सेवित ब्रह्मचर्य ब्रह्माजीको भी चलायमान कर देता है ॥३३॥ और ब्राह्मणोंकी तीन वृत्ति हैं एक ब्रह्मचर्य, दूसरे गृहस्थाश्रममें बसना, तीसरे वनमें वसना, तिन्होंमें हम वनवासी हैं, हमारी वनकी वृत्ति है ॥ ३४ ॥ और जलभोजी, वायुभोजी दांतरूप उलूखलको माननेवाले अर्थात् दांतसेही तोडके खानेवाले पत्थरपर कूटके वनफलको भोजन करनेवाले, निरशनव्रत करनेवाले और पंचाग्नितापकरनेवाले ॥३५॥ और दुष्कर वृत्तिसे संयुक्त तपाराधन करके तपस्वी ब्रह्मचर्यको करके उत्तम गतिकी इच्छा करते हैं ॥३६॥ ब्राह्मणके ब्रह्मचर्यही

ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यानुवर्त्तिनः॥ ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत्॥३३॥ द्विजानां वृत्तयस्तिस्रो ये गृहाश्रमवासिनः॥ अस्माकं तु वनं वृत्तिर्वनाश्रमनिवासिनाम् ॥३४॥ अम्बुभक्षा वायुभक्षा दन्तोलूखलिकास्तथा ॥ अश्मकुट्टा दशनपाः पञ्चातपतपाश्च ये ॥ ३५ ॥ एते तपसि तिष्ठन्तो व्रतैरपि सुदुष्करैः ॥ ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ते परां गतिम् ॥ ३६ ॥ ब्रह्मचर्याद्ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते ॥ एवमाहुः परे लोके ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥३७॥ ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः ॥ ये स्थिता ब्रह्मचर्येषु ब्राह्मणास्ते दिवि स्थिताः ॥३८॥ नास्ति योगं विना सिद्धिर्नास्ति सिद्धिं विना यशः ॥ नास्ति लोके यशोमूलं ब्रह्मचर्यात्परं तपः ॥३९॥ तन्निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चमम् ॥ ब्रह्मचर्येण वर्तेत किमतः परमं तपः ॥ ४० ॥ अयोगे केशहरणमसंकल्पे व्रतक्रिया ॥ अब्रह्मचर्ये चर्या च त्रयं स्याद्दम्भसंज्ञितम् ॥ ४१ ॥

ब्राह्मणपना है, यह बात परलोकमें ब्रह्मवादी महात्माओंने कही है ॥३७॥ और ब्रह्मचर्यमें धीरता स्थित है, ब्रह्मचर्यमें तप स्थित है, और जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्यमें स्थित है वे ब्राह्मण स्वर्गमें स्थित हैं ॥ ३८ ॥ और योगके विना सिद्धि नहीं, और सिद्धिके विना यश नहीं, और ब्रह्मचर्यसे परे तपके समान यशकी जड नहीं है ॥ ३९ ॥ जो इन्द्रियोंके समूहको और पंच महाभूतोंको आधीन करके ब्रह्मचर्यको धारण करता है; इसके समान वा अधिक कोई भी तप नहीं है॥४०॥योगके विना शिरपै जटा धारण करना, नियमके विना व्रतका आरंभ करना, और ब्रह्मचर्य विना पूजा करनी यह तीनो

पाखंड कहाते हैं ॥४१॥ कहां भार्या, कहां संयोग, कहां भावका बदल जाना, जैसे ब्रह्माजीने मनसे यह प्रजा रची है ॥४२॥ यदि तुम्हारे तपमें तपका बल है, तौ प्राजापत्य कर्म करके मनसे पुत्रोंको रचो ॥ ४३ ॥ कारण कि मनसे रची हुई योनिमें पुत्रकी उत्पत्ति करनी तपस्वियोंके निमित्त कही है; साक्षात् भार्याका संयोग तपस्वियोंको नहीं करना चाहिये ॥४४॥ और निर्भयरूप होकर तुमने जो असत् पुरुषोंके समान मुझसे यह वचन कहे सो अयुक्त है॥४५॥ अब मैं भार्याके संयोग विना मनोमय संकल्प सिद्ध शरीरको करके एकान्तयुक्त अपने शरीरसे उत्पन्न हुए पुत्रको रचता हूं॥४६॥

क्व दाराः क्व च संयोगः क्व च भावविपर्ययः ॥ यदेयं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा॥ ४२ ॥ यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकममितात्मनाम् ॥ सृजध्वं मानसान् पुत्रान् प्राजापत्येन कर्मणा ॥ ४३ ॥ मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विना ॥ न दारयोगं बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम् ॥ ४४ ॥ यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः ॥ व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव मे मतिः ॥४५॥ वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेष कृत्वा मनोमयम् ॥ दारयोगं विना स्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम् ॥ ४६ ॥ एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति ॥ वन्येनानेन विधिना दिधक्षन्तमिव प्रजाः ॥ ४७ ॥ ऊर्वस्तु तपसाविष्टो निवेश्योरुं हुताशने ॥ ममन्थैकेन दर्भेण पुत्रस्य प्रभवारणिम् ॥ ४८ ॥ तस्योरुं सहसा भित्त्वा ज्वालामाली निरिन्धनः ॥ जगतो निधनाकांक्षी पुत्रोऽग्निः समपद्यत ॥ ४९ ॥ ऊर्वस्योरुं विनिर्भिद्य और्वो नामान्तकोऽनलः ॥ दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीन् जज्ञे परमकोपनः ॥ ५० ॥ उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं दीनया गिरा ॥ क्षुधा मे बाधते तात जगद्भक्षे त्यजस्व माम् ॥ ५१ ॥

इस प्रकार मेरी आत्मासे दूसरा आत्मारूप पुत्र वनकी विधिसे प्रजाको दग्ध करनेवाला उत्पन्न होगा ॥ ४७ ॥ तब तपस्वी ऊर्व अपनी जंघाको अग्निमें प्राप्त कर एक कुशसे पुत्रके उत्पन्न करनेवाली अरणीको मथने लगे ॥ ४८ ॥ तब तिसकी जांघको भेदन करके मानो ईंधनसेरहित और अतिप्रकाशरूप जगत्को दग्ध करनेकी इच्छावाला अग्निरूप पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ४९ ॥ ऊर्वकी ऊरु भेदकर उत्पन्न होनेसे उसका नाम और्व हुआ; और कालान्तक अग्निके समान त्रिलोकीको जलानेकी इच्छासे महाकोप किया॥५०॥और उत्पन्न होतेही ऊंचे स्वरसे बोला; हे पिता ! मुझे भूख लग रही है, सो इस

जगत्को दग्ध करूंगा, इस कारण मुझको त्यागो ॥५१॥ इस प्रकार स्वर्गपर्यन्त फैली हुई ज्वालासे युक्त अग्नि दश दिशाओंको दग्ध करता हुआ प्रलय-समयके अग्निके समान बढने लगा ॥ ५२ ॥ तब सब संसारके कल्याणकी इच्छावाले ब्रह्माजी ऊर्वमुनिके समीपमें आये, जहां उन्होंने उसे त्यागा था ॥ ५३ ॥ आकर उन्होंने पुत्ररूप अग्निसे और्वकी ऊरु प्रकाशमान देखी,और यह देखा कि और्वकी कोपाग्निसे सब लोक तप्त हैं,तब ऋषियों-सहित ॥५४॥ ब्रह्माजीने "हे मनु !" ऐसा संबोधन देकर ऊर्वसे कहा हे पुत्र ! लोकके हितकी इच्छासे इस तेजको धारण करो॥५५॥और तुम्हारे

त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश ॥ निर्दहन्निव भूतानि ववृधे सोऽन्तकोऽनलः ॥६२॥ एतस्मिन्नतरे ब्रह्मा सर्वलोकपतिः प्रभुः ॥ आजगाम मुनिर्यत्र व्यसृजत्पुत्रमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ स ददर्शोरुमूर्वस्य दीप्यमानं सुताग्निना ॥ और्वकोपाग्निसंतप्तान् लोकांश्च ऋषिभिः सह ॥ ६४ ॥ तमुवाच ततो ब्रह्मा मुनिमूर्वं सभाजयन् ॥ धार्यतां पुत्रजं तेजो लोकानां हितकाम्यया ॥६५॥ अस्यापत्यस्य ते विप्र करिष्ये साह्यमुत्तमम् ॥ वासं चास्य प्रदास्यामि प्राशनं चामृतोपमम् ॥ तथ्यमेतन्मम वचः शृणु त्वं वदतां वर ॥ ६६ ॥ ऊर्व उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मेऽद्य भगवान् शिशोः ॥ मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहाय वै ॥ ६७ ॥ प्रभावकाले संप्राप्ते कांक्षितव्ये समागमे ॥ भगवंस्तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम ॥ ६८ ॥ कुत्र चास्य निवासो वै भोजनं च किमात्मकम् ॥ विधास्यति भवानस्य वीर्यतुल्यं महौजसः ॥ ६९ ॥

पुत्ररूप अग्निकी मैं सहायता करूंगा, वसनेको स्थान और अमृतके समान भोजन दूंगा; हे श्रेष्ठतपस्वी ! यह मेरा वचन सत्य है, तुम श्रवण करो ॥५६॥ तब ऊर्व मुनि बोले; जो आप मेरे पुत्रके अनुग्रहके अर्थ ऐसी दया करते हो, तौ मैं धन्य और अनुगृहीत हूं ॥ ५७ ॥ हे भगवन् ! परन्तु जन्मकालमें मेरी आज्ञासे तृप्त होनेवाला पुत्र किन पदार्थोंसे तृप्त किया जायगा और सुखी होगा ॥ ५८ ॥ किस स्थानपर इसका निवास होगा और पराक्रमके समान क्या भोजन करेगा आप इसके बलानुसार विधान करेंगे ॥ ५९ ॥

तब ब्रह्माजी बोले कि समुद्रके मुखमें जहां वडवाअग्नि वसती है तहां जलमें वास करेगा; हे ब्राह्मण! मेरी योनि जल है, वही मेरा शरीर है ॥ ६० ॥ वही स्थान मैंने इसके निमित्त दिया. वहांपर यह जलरूप हविका पान करेगा ॥ ६१ ॥ पीछे प्राणियोंके युगांतमें मेरे संग यह अग्नि वारंवार विचरेगा ॥ ६२ ॥ यह अग्नि युगांतमें जलको भक्षण करनेवाला सब प्राणी, देव, दैत्य राक्षसोंको दग्ध करनेवाला होवेगा ॥ ६३ ॥ ऐसाही होय. यह कहकर आच्छादित प्रकाश अग्नि पिताके निमित्त अपने तेजको देकर समुद्रके मुखमें प्रवेश कर गया ॥ ६४ ॥ पीछे ऊर्वके पुत्ररूप अग्निके

ब्रह्मोवाच ॥ वडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रास्ये भविष्यति ॥ मम योनिर्जलं विप्र तच्च तोयमयं वपुः ॥ ६० ॥ तद्ददामि तव पुत्रस्य विसृजाम्यालयं तु तत् ॥ तत्रायमास्तां नियतः पिबन्वारिमयं हविः ॥ ६१ ॥ ततो युगान्ते भूतानामेष चाहं च सुव्रत ॥ सहितौ विचरिष्यावो लोकानिति पुनः पुनः ॥ ६२ ॥ एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशी मया कृतः ॥ दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम् ॥ ६३ ॥ एवमस्त्विति सोऽप्यग्निः संवृतज्वालमण्डलः ॥ प्रविवेशार्णवमुखं निक्षिप्य पितरि प्रभाम् ॥ ६४ ॥ प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ते च सर्वे महर्षयः ॥ और्वस्याग्नेः प्रभावज्ञाः स्वां स्वां गतिमुपाश्रिताः॥६५॥हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदद्भुतमपूजयत् ॥ ऊर्वं प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ६६ ॥ भगवन्नद्भुतमिदं निवृत्तं लोकसाक्षिकम् ॥ तपसा ते मुनिश्रेष्ठ परितुष्टः पितामहः ॥ ६७ ॥ अहं तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत ॥ भृत्य इत्यवगन्तव्यः श्लाघ्योऽस्मि यदि कर्मणा ॥ ६८ ॥ तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाराधने रतम् ॥ यदि सीदे मुनिश्रेष्ठ तवैव स्यात्पराजयः ॥ ६९ ॥

प्रभावको जाननेवाले सब महर्षि ब्रह्माजी सहित अपने स्थानोंको चले गये ॥ ६५ ॥ तब इस अद्भुतरूप ऊर्वमुनिको देख हिरण्यकशिपु राक्षस मुनिको पूजकर नम्ररूप हो यह कहने लगा ॥ ६६ ॥ हे भगवन्! जो आपके तपसे ब्रह्माजी प्रसन्न हुए, यह बहुत कार्य हुआ है ॥ ६७॥ हे महाव्रत! आपका और आपके पुत्रका मैं अनुचर हूं. इस कारण उत्तम कर्मके द्वारा मेरी श्लाघा करानी चाहिये ॥ ६८ ॥ मैं तुम्हारेही वशमें स्थित हूं और तुम्हारेही

आराधनमें तत्पर हूं. परन्तु हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं शिथिल हो रहा हूं सो इसमें आपहीकी पराजय है ॥ ६९ ॥ तब ऊर्वमुनि कहने लगे कि, जो तैंने मुझे गुरु माना तौ मैं धन्य हुआ और अनुगृहीत हुआ, इस कारण हे सुव्रत ! मेरे प्रतापसे अब तुझे भय न होगा ॥ ७० ॥मेरे पुत्रकी रची हुई इस मायाको ग्रहण कर. यह ईंधनसे रहित और अग्निस्वरूप अग्निसेभी स्पर्श करनेके अयोग्य है ॥ ७१ ॥ यह तेरे वंशमें सबके वशीभूत रहेगी, और अपने पक्षकी रक्षा कर शत्रुपक्षका प्रहार करेगी ॥७२॥ तब ऐसेही हो, इस प्रकार कह दानवेश्वर उस मायाको ग्रहण कर मुनिको प्रणाम कर प्रसन्न

ऊर्व उवाच ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य तेऽहं गुरुर्मतः ॥ नास्ति ते तपसानेन भयमद्येह सुव्रत ॥ ७० ॥ इमां च मायां गृह्णीष्व मम पुत्रेण निर्मिताम् ॥ निरिन्धनामग्निमयीं दुस्पर्शां पावकैरपि ॥७१॥ एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगारिविनिग्रहे ॥ रक्षिष्यत्यात्मपक्षं स परांश्च प्रहरिष्यति ॥७२॥ एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ॥ जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः ॥७३॥ वरुण उवाच ॥ सैषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा ॥ और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना ॥७४॥ तस्मिंस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीर्यैषा न संशयः ॥ शापो ह्यस्याः पुरा दत्तः सृष्टा येनैव तेजसा ॥७५॥ यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्त्तव्यो भगवान् सुखी ॥ दीयतां मे सखा शक्र तोययोनिर्निशाकरः ॥७६॥ तेनाहं सह संगम्य यादोभिश्च समावृतः ॥ मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न संशयः ॥७७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि और्वाग्निसंभवो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

हो सिद्धि पाय स्वर्गको चला गया ॥७३॥ वरुणजी बोले; सो यह देवताओंसेभी दुःसह कठिन माया ऊर्वमुनिके पुत्ररूप अग्निने रची है ॥ ७४ ॥ ॥१३२॥
पीछे जब दैत्यराजके मरनेपर इस मायाको ऊर्वमुनिने शापभी दिया कि अब यह ऐसे पराक्रममें न रहेगी ॥७५ ॥ आप यदि इस मायाको दूर करना चाहते हो व सुखकी इच्छा करते हो तौ जलकी योनिरूप मेरे मित्र चंद्रमाको मुझे दो ॥७६॥ तिसके सहित जलके समूहसे मैं आपकी कृपासे इस मायाका नाश कर दूंगा, इसमें संदेह नहीं ॥ ७७ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

वैशंपायन बोले; कि देवताओंकी वृद्धिकी इच्छा करनेवाले इन्द्रने प्रसन्न हो कहा कि, हे वरुण! ऐसेही होगा, पीछे अतिशीतलरूप शस्त्रोंवाले चंद्रमाके युद्धके अर्थ आज्ञा दी ॥१॥ इन्द्र बोले; हे चन्द्र! तुम जाओ और वरुणकी सहायता कर दैत्योंके नाश और देवताओंकी जयके निमित्त युद्ध करो ॥२॥ तुम अतिवीर्यवान् तारागणोंके पति सब संसारको रसके देनेवाले हो. ऐसा रसके ज्ञाता कहते हैं, तुम ज्योतिपतियोंकेभी पति हो॥३॥ समुद्रके समान क्षयवृद्धिसे युक्त दिन रात्रिरूप कालको जगत्‌में योजना करनेवाले॥४॥ लोकछायारूप चिन्हसे चिन्हित तुम्हारी गोदी है; और शशिरूप चिन्हसे लक्षित हो; हे सोमदेव! आपको सम्पूर्णतासे नक्षत्रवेत्ताभी नहीं जान सक्ते॥५॥ तुम सूर्यके मार्गसेभी ऊंचे स्थानमेंस्थित तारागणोंके ऊपर स्थित होनेवाले

वैशम्पायन उवाच ॥ एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः ॥ संदिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम् ॥१॥ शक्र उवाच ॥ गच्छ सोम सहायत्वं कुरु पाशधरस्य वै ॥ असुराणां विनाशाय जयाय च दिवौकसाम् ॥ २ ॥ त्वमप्रतिमवीर्यश्च ज्योतिषां चेश्वरेश्वरः ॥ त्वन्मयं सर्वलोकानां रसं रसविदो विदुः ॥३॥ क्षयवृद्धा तवाव्यक्ता सागरस्येव मण्डले ॥ परिवर्त्तस्यहोरात्रं कालं जगति योजयन् ॥ ४ ॥ लोकच्छायामयं लक्ष्म तवाङ्क शशसंज्ञितम् ॥ न विदुः सोम देवास्त्वां ये च नक्षत्रयोगिनः ॥ ५ ॥ त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरिस्थितः ॥ तमश्चोत्सार्य वपुषा भासयस्यखिलं जगत् ॥६॥ श्वेतभानुर्हिमतनुर्ज्योतिषामधिपः शशी ॥ अब्दकृत्कालयोगात्मा इज्यो यज्ञरसोऽव्ययः ॥७॥ ओषधीशः क्रियायोनिरम्भोयोनिरनुष्णभाक् ॥ शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः ॥८॥ त्वं कान्तिः कान्तवपुषां त्वं सोमः सोमवृत्तिनाम् ॥ सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट् ॥९॥

अंधकारको नाश कर सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करते हो॥६॥ और श्वेत किरणोंसे संयुक्त और शीतलरूप प्रकाश कर्ताओंके स्वामी शशी काल योगात्मा संवत्सरके करनेवाले पूजनेके योग्य और यज्ञरस और अविनाशी॥७॥ औषधियोंके पति, क्रियाओंके आदिकारण, जलकीयोनि, छंदोंकी उत्पत्तिस्थान, शीतलाको भजनेवाले; शीतल किरणोंवाले, अमृतके आधार और चपल और श्वेत वाहनोंसे संयुक्त ॥८॥ तुम कांत शरीरवालोंको कांति और अमृत पीनेवालोंको अमृत, और सब प्राणियोंको सोमरूप, और सबसंसारके अंधेरेको दूर करनेवाले और नक्षत्रोंके राजा हो ॥ ९ ॥

सो तुम वरुणके संग सेनासहित जाकर जिस मायासे हम दग्ध होते हैं तिस आसुरी मायाको शांत करो ॥ १० ॥ तब चंद्रमा बोले; हे देवराज! जो मुझे युद्धके अर्थ कहते हो, सो मैं दैत्यकी मायाको नाशनेवाली अतिशीतलताको वरसाता हूं ॥ ११ ॥ और मेरी शीतलतासे दग्ध हुए और जाडेसे वेष्टित माया और मदसे रहित दैत्योंको इस युद्धमें तुम अभी देखो ॥ १२ ॥ वैशंपायन बोले; कि चंद्रमासे छोडी हुई शीतरूप वृष्टि मेघके समान सब दैत्योंको आच्छादित करने लगी ॥ १३ ॥ पीछे पाश और श्वेत जलको धारण करनेवाले वरुण और चंद्रमा उस युद्धमें हिमपातसे और पाशपातसे दैत्योंको मारने

यन्मां वदसि युद्धार्थं देवराज जगत्पते ॥ एष वर्षामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम् ॥ ११ ॥ एतान्मच्छीतनिर्दग्धान् पश्य त्वं हिमवेष्टितान् ॥ विमायान्विमदांश्चैव दानवांस्त्वं महामृधे ॥ १२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो हिमकरोत्सृष्टाः सबाष्पा हिमवृष्टयः ॥ वेष्टयन्ति स्म तान्घोरान् दैत्यान्मेघगणा इव ॥ १३ ॥ तौ पाशशुक्लांशुधरौ वरुणेन्दू महारणे ॥ जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशपातैश्च दानवान् ॥ १४ ॥ द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ ॥ मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ ॥ १५ ॥ ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद्दानवमदृश्यत ॥ जगत्संवर्त्तकाम्भोदैः प्रवृष्टैरिव संवृतम् ॥ १६ ॥ तावुद्यतांशुपाशौ द्वौ शशाङ्कवरुणौ रणे ॥ शमयामासतुर्मायां देवौ दैतेयनिर्मिताम् ॥ १७ ॥ शीतांशुजलनिर्दग्धाः पाशैश्च प्रसिता रणे ॥ न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः ॥ १८ ॥ शीतांशुनिहतास्ते तु पेतुर्दैत्या हिमार्दिताः ॥ हिमप्रावृतसर्वाङ्गा निरूष्माण इवाग्नयः ॥ १९ ॥

तद्गच्छ त्वं सहानेन वरुणेन वरूथिना ॥ शमयस्वासुरीं मायां यया दह्याम संगरे ॥ १० ॥ सोम उवाच ॥

लगे ॥ १४ ॥ वे दो समुद्रकी समान पाश और हिमसे युद्ध करते हुए मेघोंके समान क्षोभित हुए युद्धमें विचरने लगे ॥ १५ ॥ तब चंद्रमा और वरुणके कर्तव्यसे डूबती हुई दैत्योंकी सेना दीखने लगी, मानो जगतके नाश करनेकी अग्नि सागरमें व्याप्त हो रही है ॥ १६ ॥ इस प्रकार किरण और पाश धारण करे चंद्रमा ओर वरुणने दैत्यकी रची हुई मायाको शांत कर दिया ॥ १७ ॥ चंद्रमाके किरणजालसे दग्ध हुए और वरुणकी फांसीसे बंधे हुए सब दैत्य शिररहित पर्वतकी समान चलनेको समर्थ नहीं हुए ॥ १८ ॥ चंद्रमासे मारे हुए जाडेसे पीडित गरमीरहित अग्निके समान सब दैत्य हो गये ॥ १९ ॥

तब उन दैत्योंके विचित्र विमान कांतिसे रहित हो पृथ्वीमें गिरने लगे, और आकाशमें बुरी तरहसे जाने लगे ॥ २० ॥ इस प्रकार चन्द्रमासे आच्छादित और वरुणकी फांसियोंमें बंधे हुए सब दैत्योंको आकाशमें देख मायावी मयनामा दैत्य ॥ २१ ॥ शिलाके समूहसे विस्तृत और वृक्ष आदिसे युक्त और कंदरा वन आदिसे युक्त ॥ २२ ॥ और सिंह व्याघ्र हाथी आदिसे आकर्णि यूथप दैत्योंके गणोंसे शब्दायमान, ईहामृगोंके समूहसे आकीर्ण और पवनसे हलते हुए वृक्षोंसे समाकीर्ण ॥ २३ ॥ क्रौञ्च नाम मयके पुत्रकी रची हुई पार्वती मायाको चारों ओरसे आकाशमें रचने लगा ॥ २४ ॥

तेषां तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि च ॥ विमानानि विचित्राणि निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ २० ॥ तान्पाशहस्तग्रथितांश्छादितान् हिमरश्मिना ॥ मयो ददर्श मायावी दानवान्दिवि दानवः ॥ २१ ॥ स शिलाजालविततां गण्डशैलाट्टहासिनीम् ॥ पादपोत्कटकूटाग्रां कन्दराकीर्णकाननाम् ॥ २२ ॥ सिंहव्याघ्रगजाकीर्णां नदन्तीमिव यूथपैः ॥ ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम् ॥ २३ ॥ निर्मितां स्वेन पुत्रेण क्रौञ्चेन दिवि कामगाम् ॥ प्रसृतां पार्वतीं मायां ससृजे दानवोत्तमः ॥ २४ ॥ साश्मशब्दैः शिलावर्षैः संपतद्भिश्च पादपैः ॥ निजघ्ने देवसङ्घांस्तान् दानवांश्चाप्यजीवयत् ॥ २५ ॥ नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दधतस्ततः ॥ अश्मभिश्चायसघनैः किरन्देवगणान् रणे ॥ २६ ॥ साश्मसंघातविषमा द्रुमपर्वतसंकटा ॥ अभवद्घोरसंचारा पृथिवी पर्वतैरिव ॥ २७ ॥ नानाहतोऽश्मभिः कश्चिच्छिलाभिश्चाथ ताडितः ॥ नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत संयुगे ॥ २८ ॥ तदपभ्रष्टधनुषं भग्नप्रहरणाविलम् ॥ निष्प्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम् ॥ २९ ॥

शब्दयुक्त पत्थरोंकी वर्षा और वृक्षोंके गिरनेके प्रहारसे देवताओंके समूहको मारने लगा, और दैत्योंको जिलाने लगा ॥ २५ ॥ तब चन्द्रमा और वरुणकी माया नाश हो गई, और पत्थर और शस्त्रोंसे दुःखित हुए युद्धमें देवगण हाहाकर करने लगे ॥ २६ ॥ पत्थरों और वृक्ष पर्वतोंकी वर्षासे वह पृथ्वी पर्वतोंकी समान घोर संचारवाली हो गई ॥ २७ ॥ कोई देवता पत्थर और कोई शिलाओंसे ताडित हुए; और वृक्षोंसे रोककर सर्वथा देवताओंकी सेना उद्योगरहित कर दी ॥ २८ ॥ धनुष और आयुधोंके टूटनेसे भगवान्‌के सिवाय वह सब सेना व्याकुल हो

गई ॥२९॥ वह श्रीमान् युद्धमें प्राप्त होकरभी न कांपे; और अति क्षमा करनेवाले जगत्पति विष्णुजीको क्रोधभी नहीं हुआ ॥ ३० ॥ कालको जाननेवाला और कालरूप मेघके समानकांतिवाले विष्णु भगवान देवतें और दैत्योंके युद्धके समयको देखने लगे ॥ ३१ ॥ पीछे विष्णुकी आज्ञासे प्रेरित हो अग्नि और पवन देवता मयकी रची मायाको शांत करनेको उद्यत हुए ॥ ३२ ॥ तब यह दोनों ज्वालासहित बढे और यह दोनों विष्णुके वाक्यसे उस मायाको नष्ट करने लगे ॥ ३३ ॥ जब उन दोनोंका संग्राममें महावेग हुआ तब इन दोनों देवताओंने मयकी सब माया दग्ध कर दी, और

स हि युद्धगतः श्रीमान् ईशो न स्म व्यकम्पत ॥ सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोध गदाधरः ॥ ३० ॥ कालज्ञः कालमेघाभः समैक्षत्कालमाहवे ॥ देवासुरविमर्दं स द्रष्टुकामो जनार्दनः ॥३१॥ ततो भगवतादिष्टौ रणे पावकमारुतौ ॥ शमनार्थं प्रवृद्धाया मायाया मयसृष्टया ॥३२॥ ततः प्रवृद्धावन्योऽन्यं प्रवृद्धौ ज्वालवाहिनौ ॥ चोदितौ विष्णुवाक्येन तां मायां व्यपकर्षताम् ॥३३॥ ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे ॥ दग्धा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह ॥ ३४ ॥ सोऽनिलोऽनलसंयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः ॥ दैत्यसेनां ददहतुर्युगान्तेष्विव मूर्च्छितौ ॥ ३५ ॥ वायुः प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निश्च मारुतात् ॥ चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनलानिलौ ॥ ३६ ॥ भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च ॥ दानवेषु विनष्टेषु कृतकर्मणि पावके ॥ ३७ ॥ वातस्कन्धापविद्धेषु विमानेषु समन्ततः ॥ मायाबन्धे विनिर्वृत्ते स्तूयमाने गदाधरे ॥ ३८ ॥ निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने ॥ संप्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति सर्वशः ॥ ३९ ॥

भस्मरूप बनाकर नाशमानभी कर दी ॥ ३४ ॥ इस प्रकार अग्नि पवन परस्पर मिलकर युगांतके समान दैत्योंकी सैनाको दग्ध करने लगे ॥ ३५ ॥ और अगाड़ी चलता हुआ पवन और तिसके पीछे चलती हुई अग्नि ये दोनों क्रीड़ा करते हुए दैत्योंकी सैनामें विचरने लगे ॥३६॥ और जब आकाशसे दैत्योंके विमान भस्म होकर गिरने लगे तब दैत्योंकी मायाका नाश हो गया. इस प्रकार जब अग्नि अपने कर्मको कर चुके ॥३७॥ वायु आदिसे विद्ध हुए विमान चारों ओरसे भ्रष्ट होने लगे, और मायाके दूर होनेसे विष्णुभगवानकी स्तुति होने लगी ॥३८॥ और दैत्योंके उद्योगसे रहित

॥१३८॥

होने पर और त्रिलोकी बंधनरहित हुई "साधु! साधु!" कहनेवाले सब देवता प्रसन्न होने लगे ॥३९॥ इन्द्रकी जय और मयकी पराजय होने लगी; सब दिशाओंकी शुद्धि होने लगी, और धर्मका विस्तार होने लगा ॥४०॥ चंद्रमा और सूर्य शुद्ध होकर प्रकाशित होने लगे; और त्रिलोकी प्रकृतिमें स्थित होने लगी ॥४१॥ मृत्युका बंधन; और अग्निमें हवन होने लगा; और यज्ञभागोंको देवता प्रसन्न हो ग्रहण करने लगे; और स्वर्ग देखनेकी इच्छा करने लगे॥ ४२ ॥ लोकपाल सब दिशाओंमें गमन करनेकी इच्छा करने लगे, और देवपक्ष आनंदितरूप होने लगा, और दैत्यपक्ष

जये दशशताक्षस्य मयस्य च पराजये दिक्षु सर्वासु शुद्धासु प्रवृत्ते धर्मसंस्तरे ॥ ४० ॥ अपावृत्ते चन्द्रपथे अयनस्थे दिवाकरे ॥ प्रकृतिस्थेषु लोकेषु नृषु चारित्रबन्धुषु ॥ ४१ ॥ अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने ॥ यज्ञभागिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च ॥ ४२ ॥ लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्तिषु ॥ भावे तपसि शुद्धानामभावे दुष्टकर्मिणाम् ॥ ४३ ॥ देवपक्षे प्रमुदिते ॥ दैत्यपक्षे विषीदति ॥ त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे ॥ ४४ ॥ अपावृते महाद्वारे वर्त्तमाने च सत्पथे ॥ स्वधर्मस्थेषु वर्णेषु लोकेऽस्मिन्नाश्रमेषु च ॥ ४५ ॥ प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ॥ गीयमानासु गाथासु देवसंस्तवनादिषु ॥ ४६ ॥ प्रशान्तकलुषे लोके शान्ते तपसि दारुणे ॥ अग्निमारुतयोस्तस्मिन् वृत्ते संग्रामकर्मणि ॥ तन्मया विमला लोकास्ताभ्यां जयकृतप्रियाः ॥ ४७ ॥ पूर्वदेवभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतं महत् ॥ कालनेमिरिति ख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत ॥ ४८ ॥

पराजित होने लगा ॥४३॥ और तीन चरणवाला धर्म प्रकाशित होने लगा, और एक चरणसे पाप प्रगट होने लगा ॥ ४४ ॥ धर्मका द्वार खुलने और सत्का मार्ग वर्तमान होने लगा; और सब वर्ण अपने २ धर्मोंमें और आश्रमोंमें स्थित होने लगे ॥४५॥ और प्रजाकी रक्षासे संयुक्त प्रकाश करनेवाले राजा होने लगे, और कथाओंके कहनेमें देवताओंकी स्तुति होने लगी॥४६॥लोक दुःखोंसे रहित होने लगे, दारुणरूप अंधकारकी शांति होने लगी; ऐसे वायु और पवनके संग्रामके अंतमें सब लोक उसके प्रसादसे तन्मय होकर उनकी जयसे प्रसन्न हुए॥४७॥ पवन औरअग्निसे दैत्योंको

भय देख यह विख्यात कालनेमि दानव सन्मुख हुआ ॥ ४८ ॥ यह सूर्यके आकारके समान मुकुट और अतिप्रकाशित बाजूबंधसे भूषित और मंदराचल पर्वतके समान महारजतसे संयुक्त ॥४९॥ सैंकड़ों प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ १०० मुख और १०० बाहुओंवाला १०० शिरवाला और शोभासे युक्त १०० सींगोंवाले पर्वतके समान ॥ ५० ॥ और ग्रीष्मऋतुमें तृण आदिमें लगे हुए अग्निके समान बढा हुआ ॥ ५१ ॥ धूम्ररूप केश, हरी डाढी और अनेक प्रकारकी डाढ़ और मुखादिसे संयुक्त त्रिलोकीमें शरीरके विस्तारको फैलाये और अपने शरसे पृथ्वीको कंपित

भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गदः ॥ मन्दराचलसंकाशो महारजतसंवृतः ॥४९॥ शतप्रहरणोदग्रः शतबाहुः शताननः ॥
शतशीर्षा स्थितः श्रीमाञ्छतशृङ्ग इवाचलः ॥ ५० ॥ कक्षे महति संवृद्धो हिमांत इव पावकः ॥ ५१ ॥ धूम्रकेशो हरितश्मश्रु-
र्दंष्ट्रालोष्ठपुटाननः ॥ त्रैलोक्यान्तरविस्तारी धारयन् विपुलं वपुः ॥ ५२ ॥ बाहुभिस्तुलयन् व्योम क्षिपन् पद्भ्यां महीधरान् ॥
ईरयन्मुखनिश्वासैर्वृष्टिमन्तो बलाहकाः ॥५३॥ तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम् ॥ दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान्देवगणान्मृधे
॥ ५४ ॥ तर्जयन्तं सुरगणान् छादयन्तं दिशो दश ॥ संवर्तकाले क्षुधितं दृप्तं मृत्युमिवोत्थितम् ॥ ५५ ॥ सुतलेनोच्छ्रितवता
विपुलांगुलिपर्वणा ॥ माल्याभरणपूर्णेन किञ्चिच्चलितवर्मणा ॥ ५६ ॥ उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता ॥ दानवान्देवनिह-
तानुतिष्ठध्वमिति ब्रुवन् ॥ ५७ ॥

करता ॥५२॥ भुजाओंसे आकाशको तोलता और पैरोंसे पर्वतोंको फोड़ता और मुखके श्वासोंसे वर्षा करनेवाले बादलोंको शब्द करानेवाला ॥५३॥ तिरछी विस्तृत और लालनेत्रोंवाले मंदराचलसेभी अधिक तेजस्वी युद्धमें सब देवताओंको दग्ध करनेको धावमान ॥५४॥ सब देवताओंको घुड़कता, दश दिशाओंको आच्छादित करता, प्रलयकालमें गर्वितरूप मृत्युके समान उत्थित हुआ ॥ ५५ ॥ सुन्दर ऊंचा तलुआ, मोटी अंगुली, और फूलोंकी माला और आभूषणोंसे युक्त और प्रकाशित ॥५६॥ और दाहिने हाथसे देवता और मृतक हुए दैत्योंसे खडे हो जाओ; इस प्रकार युद्धमें कहता

हुआ ॥ ५७ ॥ युद्धमें कालकी समान शत्रु कालनेमि दैत्यको सम्पूर्ण देवता भयसे व्याकुल हो देखने लगे ॥ ५८ ॥ उस आते हुए कालनेमिको सब इस प्रकार देखने लगे मानो दूसरे त्रिविक्रम नारायणही चले आते हों ॥ ५९ ॥ एक पैरको उठाये, पवनसे वस्त्रोंको कंपित करता, सम्पूर्ण देवताओंको दुःख देता हुआ वह असुर युद्धमें सन्मुख हुआ ॥ ६० ॥ और असुरेन्द्रसे मिलकर युद्ध करनेको तैयार हो वह कालनेमि दैत्य विष्णुसहित मंदराचलकी समान शोभित हुआ ॥ ६१ ॥ तब इन्द्रआदि सब देवता भय देनेवाले कालके समान आते हुए कालनेमिको देख महादुःखी होने लगे ॥ ६२ ॥ इति

तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालसन्निभम् ॥ वीक्षन्ति स्म सुराः सर्वे भयविक्लवमानसाः ॥ ५८ ॥ तं स्म वीक्षन्ति भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम् ॥ त्रिविक्रमं विक्रमन्तं नारायणमिवापरम् ॥ ५९ ॥ सोऽच्छ्रयन् प्रथमं पादं मारुताघूर्णिताम्बरः ॥ प्राक्रामदसुरो युद्धे त्रासयन् सर्वदेवताः ॥ ६० ॥ स मयेनासुरेन्द्रेण परिष्वक्तः क्रमन् रणे ॥ कालनेमिर्बभौ दैत्यः सविष्णुरिव मन्दरः ॥ ६१ ॥ अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ॥ दृष्ट्वा कालमिवायान्तं कालनेमिं भयावहम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ दानवांश्चापि पिप्रीषुः कालनेमिर्महासुरः ॥ व्यवर्धत महातेजास्तपान्ते जलदो यथा ॥ १ ॥ त्रैलोक्यान्तर्गतं तं तु दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः ॥ उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः प्राप्येवामृतमुत्तमम् ॥ २ ॥ ते भीता भयसंत्रस्ता मयतारपुरोगमाः ॥ तारकामयसंग्रामे सततं जयकांक्षिणः ॥ रेजुरायोधनगता दानवा युद्धकांक्षिणः ॥ ३ ॥ अस्त्रमभ्यस्यतां तेषां व्यूहं च परिधावताम् ॥ प्रेक्षतां चाभवत्प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम् ॥ ४ ॥

श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ वैशंपायनजी बोले कि; दैत्योंका प्रिय करनेवाला महातेजस्वी कालनेमि दैत्य वर्षाऋतुके मेघकी समान बढने लगा ॥ १ ॥ त्रिलोकीमें फैले हुए शरीरवाले कालनेमिको देख सम्पूर्ण दैत्यराज परिश्रमको दूर कर अमृतपान कर देवतोंकी समान स्थित हुए ॥ २ ॥ वे मय तार आदि दैत्य प्रथम भयभीत हुए और पीछे भय त्यागे हुए उस तारकामय संग्राममें निरन्तर जय पानेकी इच्छा करनेवाले संग्राममें जाकर शोभित होने लगे ॥ ३ ॥ शस्त्रविद्यामें और युद्धकर्ममें प्रीतिवाले व्यूहोंकी रचनामें कुशल कालनेमिको देख प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥

और जो युद्धमें कुशल मय दैत्यके मुख्य मित्र थे, वे कालनेमिको देख प्रसन्न हो भय त्याग युद्धके निमित्त उद्यत होने लगे॥५॥ मय, तार, वराह, हयग्रीव, वीर्यवान, विप्रचित्तिका पुत्र श्वेत, खर; लम्ब॥६॥ अरिष्ट बलिका पुत्र, किशोर, उष्ट्र, विक्रम युद्ध करनेवाला देवताओंके समान राहु॥७॥ इत्यादि अस्त्रोंके ज्ञाता, तप किये हुए वे चतुर कालनेमिके समीप गये ॥८॥ और बडी गदा, चक्र, परशा पर्वतके समान पत्थर॥९॥पट्टिश, भिन्दिपाल, उत्तम परिघ और घात करनेहारी महाशतघ्नी ॥१०॥ कालके समान मुशल, क्षेपणीय अस्त्र, मुद्गर दो यंत्रोंसे विमुक्त, अर्गलोंके अग्रभागसे

ये तु तत्र मयस्यासन् मुख्या युद्धपुरःसराः ॥ तेऽपि सर्वे भयं त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ॥५॥ मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥ विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि ॥ ६ ॥ अरिष्टो बलिपुत्रस्तु किशोरोष्ट्रौ तथैव च ॥ स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्रयोधी महासुरः ॥७॥ एतेऽस्त्रविदुषः सर्वे सर्वे तपसि सुव्रताः ॥ दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमिनमुत्तमम् ॥८॥ ते गदाभिश्च गुर्वीभिश्चक्रैश्च सपरश्वधैः ॥ अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गण्डशैलैश्च दंशितैः ॥ ९ ॥ पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायुधैः ॥ घातनीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च॥१०॥ कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ॥ युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैरर्गलैश्चाग्रताडितैः ॥ ११ ॥ दोर्भिश्चायतपीनांसैः पाशैः प्रासैश्च मूर्च्छितैः ॥ सर्पैर्लेलिह्यमानैश्च विसर्पद्भिश्च सायकैः ॥ १२ ॥ वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्चतोमरैः ॥ विकोशैश्चासिभिस्तीक्ष्णै शूलैश्च शितनिर्मलैः ॥१३॥ ते वै संदीप्तमनसः प्रगृहीतोत्तमायुधाः ॥ कालनेमिं पुरस्कृत्य तस्थुः संग्राममूर्धनि ॥ १४ ॥ सा दीप्तशस्त्रप्रवरा दैत्यानां शुशुभे चमूः ॥ द्यौर्निमीलितनक्षत्रा सघने वाम्बुदागमे ॥१५॥ ॥१३७॥

ताडित ॥ ११ ॥ बडे पीन कंधे और भुजा , फांसी, प्रास और सर्पोंके समान लहलहाते ॥ १२ ॥ बाण प्रहारयोग्य वज्र, दीप्तमान्, तोमर, भाले तीक्ष्ण धारवाली म्यानहीन तलवार, पैने शूल ॥ १३ ॥ आदि उत्तम शस्त्रोंको ग्रहण कर प्रसन्न मन सब दैत्य संग्राममें कालनेमिके पीछे स्थित हुए ॥ १४ ॥ तब प्रकाशमान शस्त्रोंसे वह दैत्योंकी सैना प्रकाशित होने लगी; जिस वर्षाकालमें नक्षत्रोंसे निमीलित आकाश शोभित

होता है ॥ १५ ॥ इधर इन्द्रसे रक्षित देवतोंकी सेनाभी शोभित होने लगी. शीतोष्णरूप चंद्रमा सूर्यके तेजसे प्रकाशित हुई ॥ १६ ॥ वायुके समान वेगवाली सौम्यरूप तारांगणोंकी पताकासे संयुक्त मेघरूप वस्त्र और ग्रह, नक्षत्र आदिसे शोभित ॥ १७ ॥ यम, इन्द्र और बुद्धिमान् वरुण कुबेरसे रक्षित, प्रकाशमान अग्नि और पवनसे संयुक्त, नारायणमें तत्पर ॥ १८ ॥ समुद्रके ओघके तुल्य, दिव्य यक्ष गंधर्वसे युक्त, भयंकर देवताओंकी सेना शोभित होने लगी ॥ १९ ॥ तब वहां उन दोनों सेनाओंका समागम इस प्रकारसे हुआ, जैसे द्यावापृथ्वीका संयोग होता है ॥ २० ॥ वह देवता दानवोंका

देवतानामपि चमू रुरुचे शक्रपालिता ॥ दीप्ता शीतोष्णतेजोभ्यां चन्द्रभास्करवर्चसा ॥ १६ ॥ वायुवेगवती सौम्या तारांगणपताकिनी ॥ तोयदाविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी ॥ १७ ॥ यमेन्द्रधनदैर्गुप्ता वरुणेन च धीमता ॥ संप्रदीप्ताग्निपवना नारायणपरायणा ॥ १८ ॥ सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमूः ॥ रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी ॥ १९ ॥ तयोश्चम्वोस्तदा तत्र बभूव स समागमः ॥ द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद्युगपर्यये ॥ २० ॥ तद्युद्धमभवद्घोरं देवदानवसंकुलम् ॥ क्षमापराक्रममयं दर्पस्य विनयस्य च ॥ २१ ॥ निश्चक्रमुर्वेलाभ्यां तु ताभ्यां भीमाः सुरासुराः ॥ पूर्वापराभ्यां संरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः ॥२२॥ ताभ्यां बलाभ्यां संहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवाः ॥ वनाभ्यां पार्वतीयाभ्या पुष्पिताभ्यां यथा गजाः ॥ २३ ॥ समाजघ्नुस्ततो भेरीः शंखान्दध्मुश्च नैकशः ॥ स शब्दो द्यां भुवं चैव दिशश्च समपूरयत् ॥ २४ ॥ ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च ॥ दुन्दुभीनां निनदतां दैत्यानां निर्दधुः स्वनान् ॥ २५ ॥

महासंग्राम हुआ. जो दर्प, क्षमा, पराक्रम, घोर विनयसे युक्त था ॥ २१ ॥ तब भयकर राक्षस और देवता उन दोनों सेनाओंमेंसे ऐसे निकले जैसे पूर्व अपरसे क्षुभित हो समुद्रमेंसे वादल निकलते हैं ॥ २२ ॥ तब दोनों सेनाओंमें प्रसन्न हुए देवता और दैत्य विचरने लगे; जैसे फूले हुए पर्वतके दो वनोंमें हस्ती फिरते हों ॥ २३ ॥ तब भेरी, शंख आदिका महाशब्द होने लगा; जिससे पृथ्वी, आकाश, दिशा पूर्ण हो गई ॥ २४ ॥ तब प्रत्यंचाकी फट-

कार और धनुषोंके शब्द होने लगे, और नगाडोंके शब्दोंसे दैत्य शब्द करने लगे॥ २५॥देवता और दैत्य परस्पर युद्ध करने लगे और परस्पर एक दूसरेको गिराने लगे. कितनेक बाहुओंसे बाहुओंको तोडने लगे ॥ २६ ॥ देवता उत्तम लोहेके घोररूप परिघ शस्त्रोंको युद्धमें दैत्योंके मारनेको छोडने लगे; और दैत्यभी भारी २ गदासे देवतोंको मारने लगे ॥ २७ ॥ तब गदाकी चोटसे टूटे हुए शरीर और बाणोंसे खंडित हुए कितने एक खण्ड २ हो पृथ्वीमें गिरने लगे, और कोई ऊपर बैठे हुए परस्पर युद्ध करने लगे ॥ २८ ॥ तब घोडों, रथों और शीघ्रगामी विमानोंसे महाक्रोध कर परस्पर संग्राम करने

तेन्योऽन्यमभिसंपेतुः पातयन्तः परस्परम् ॥ बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून्द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः ॥ २६ ॥ देवतास्त्वशनीर्घोराः परिघांश्चोत्तमाय-
सान् ॥ ससर्जुराजौ निस्त्रिंशान् गदा गुर्वीश्च दानवाः ॥ २७ ॥ गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च शकलीकृताः ॥ परिपेतुर्भृशं केचिन्न्युब्जाः
केचित्ससर्जिरे ॥ २८ ॥ ततो रथैः सतुरगैर्विमानैश्चाशुगामिभिः ॥ समीयुस्ते तु संरब्धा रोषादन्योऽन्यमाहवे ॥ २९ ॥
संवर्त्तमानाः समरे विवर्तन्तस्तथापरे ॥ रथा रथैर्निरुध्यन्ते पदाताश्च पदातिभिः ॥ ३० ॥ तेषां रथानां तुमुलः स शब्दः
शब्दवाहिनाम् ॥ बभूवाथ प्रसक्तानां नभसीव पयोमुचाम् ॥ ३१ ॥ बभञ्जिरे रथान् केचित् केचित्संमृदिता रथैः ॥ संबाधमेके
संप्राप्य न शेकुश्चलितुं रथाः ॥ ३२ ॥ अन्योऽन्यस्याभिसमरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दर्पिताः ॥ संह्रादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रासिच-
र्मिणः ॥ ३३ ॥ अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना रक्तं वेमुर्हता युधि ॥ क्षरज्जलानां सदृशा जलदानां समागमे ॥ ३४ ॥ तदस्त्रशस्त्रग्रथितं
क्षिप्तोत्क्षिप्तगदाविलम् ॥ देवदानवसंक्षुब्धं संकुलं युद्धमावभौ ॥ ३५ ॥

लगे ॥ २९ ॥ इस प्रकार सन्मुख जानेसे और लौटनेसे युद्धमें रथियोंसे रथी और प्यादोंसे प्यादे लडने लगे ॥ ३० ॥ तब उन रथोंका अतिघोर शब्द होने लगा; जिस प्रकार बादल गरजते हैं, जलमें उनका शब्द होता है ॥ ३१ ॥ किन्हीने रथको तोड डाला, कोई रथोंमेंसे पीडित हो स्वयं मर गये, कोई पीडित हो चलनेकोभी समर्थ न हुए ॥ ३२ ॥ कोई परस्पर गर्वसे आपसमें हाथोंसे पकड मारने लगे, और ढाल तलवारकी झपेटसे किन्हींके आभरण टूट गये ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार कि मेघोंसे वर्षाकालमें जल गिरता है, इस प्रकार अस्त्रोंके प्रहारसे योधा रुधिर वहाने लगे ॥ ३४ ॥ वह अस्त्रशस्त्रोंके

प्रहारसे संक्षुभित हो देवता और दैत्योंका युद्ध प्रकाशमान हुआ ॥ ३५ ॥ दैत्यरूप महामेघवाला और देवताओंके शस्त्ररूप बिजलीवाला परस्पर बाणरूप वर्षावाला वह युद्धरूप दुर्दिनकी समान प्रकाशित हुआ ॥ ३६ ॥ तब इसी समय क्रोधको प्राप्त हो कालनेमि दैत्य समुद्रोंके ओघसे पूरित मेघकी समान वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥ तब तिस कालनेमिके शरीरसे प्रकाशमान, वज्रोंकी वर्षासे संयुक्त, पर्वतोंके शिखरके तुल्य, बिजलीरूप प्रकाशसे संयुक्त मेघ पिचने लगे ॥ ३८ ॥ और क्रोधसे श्वास लेने और भ्रू टेढी होनेमें पसीनेकी वर्षा होने लगी, और मुखसे अग्निके समान प्रकाश निकलने लगा ॥ ३९ ॥

तद्दानवमहामेघं देवायुधतडित्प्रभम् ॥ अन्योऽन्यबाणवर्षं तद्युद्धं दुर्दिनमाबभौ ॥ ३६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिर्महासुरः ॥ व्यवर्द्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः ॥ ३७ ॥ तस्य विद्युच्चलापीडाः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः ॥ गात्रे नगशिरःप्रख्या विनिष्पेतुर्बलाहकाः ॥ ३८ ॥ क्रोधान्निःश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः ॥ साग्निनिष्पेषपवना मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥ ३९ ॥ तिर्यगूर्ध्वं च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः ॥ पञ्चास्याः कृष्णवपुषो लेलिहाना इवोरगाः ॥ ४० ॥ सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि ॥ दिव्यैराकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव ॥ ४१ ॥ सोऽनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ संग्राममूर्द्धनि ॥ संध्यातपग्रस्तशिखः सार्चिर्मेरुरिवापरः ॥ ४२ ॥ ऊरुवेगप्रतिक्षिप्तैः शैलशृङ्गाग्रपादपैः ॥ अपातयद्देवगणान् वज्रेणेव महागिरीन् ॥ ४३ ॥ बाहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरसः ॥ न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि ॥ ४४ ॥ मुष्टिभिर्निहताः केचित् केचिच्च विदलीकृताः ॥ यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः ॥ ४५ ॥

और तिरछी और ऊपरको उसकी भुजा बढने लगी; जैसे पांच मुखोंवाले काले सर्प लहलहाते हों ॥ ४० ॥ और अस्त्रोंके समूहोंसे और धनुष, परिघ आदि शस्त्रोंसे उठे पर्वतोंकी समान आकाश आच्छादित हो गया ॥ ४१ ॥ और पवनके समान कालनेमि साक्षात् मेरुपर्वतके समान संग्राममें स्थित हुआ ॥ ४२ ॥ जांघके वेगसे फेंके हुए पर्वतके शिखर और वृक्षोंसे देवताओंके समूहोंको पृथ्वीमें गिराने लगा; जैसे वज्रसे महापर्वत कटकर गरजते हैं ॥ ४३ ॥ शस्त्रोंकी समान बाहुओंसे छिन्नभिन्न हृदय और शिर होनेसे कालनेमिसे हत हो देवता चलनेको समर्थ नहीं हुए ॥ ४४ ॥ और कितनेक देवता मुक्कोंसे मार दिये, और कित-

नेक देवताओंके शरीर खंड २ कर दिये. यक्ष, गंधर्व दिव्यसर्पों सहित सब देवता रणमें गिरे ॥४५॥ कालनेमि दैत्यने इस प्रकार सब देवता दुःखित कर दिये कि यत्न करनेपर भी उन्हें यत्न करनेकी सामर्थ्य नहीं रही ॥ ४६ ॥ और बहुतसे बाणोंसे संयुक्त और शरबंधनसे उसने इन्द्रको ऐसा व्यथित किया कि, ऐरावतसहित इन्द्र एक पग चलनेकोभी समर्थ न हुआ ॥ ४७ ॥ जलरहित मेघके समान और जलरहित समुद्रके समानकांति वाले वरुणकोभी कालनेमिने युद्धमें व्यापारहीन कर दिया ॥४८॥ और कालरूपवाले परिघशस्त्रोंसे विलाप करते हुए लोकपाल कुबेरनभी कर्मको त्याग दिगा ॥४९॥ कालनेमिने सबके हरनेवाले धर्मराज भी मृतवत् बनाकरदक्षिण दिशामें भगा दिया॥५०॥ इस प्रकार सब लोकपालोंको जीत-

तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना ॥ न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि प्रतिकर्तुं विचेतसः ॥ ४६ ॥ तेन शक्रः सहस्राक्षः स्तम्भितः शरबन्धनैः ॥ ऐरावतगतः संख्ये चलितुं न शशाक ह ॥४७॥ निर्ज्जलाम्भोदसदृशो निर्ज्जलार्णवसप्रभः ॥ निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणो मृधे ॥४८॥ रणे वैश्रवणस्तेन परिघैः कालरूपिभिः ॥ व्यलपल्लोकपालेशस्त्याजितो धनदक्रियाम् ॥ ४९ ॥ यमः सर्वहरस्तेन दण्डप्रहरणो रणे ॥ याम्यामवस्थां समरे नीतः स्वां दिशमाविशत्॥५०॥ स लोकपालानुत्साद्य कृत्वा तेषां च कर्म तत् ॥ दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्द्धा विदधे तदा॥५१॥स नक्षत्रपथं गत्वा दिव्यं स्वर्भानुदर्शितम् ॥ जहार लक्ष्मीं सोमस्य तं चास्य विषयं महत् ॥५२॥ चालयामास शीतांशुं स्वर्गद्वाराच्च भास्करम् ॥ सायनं चास्य विषयं जहार दिनकर्म च ॥५३॥ सोऽग्निं देवमुखे दृष्ट्वा चकारात्ममुखे स्वयम् ॥ वायुं च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम् ॥ ५४ ॥

कर सबोंके कमाको करनेवाले कालनेमि दैत्यने चारोंदिशाओंमें चार प्रकारसेअपने शरीरको फैलाकर इन्द्र,यम,वरुण,कुबेररूप स्वयंही कर लिया॥५१॥ और राहुसे दिखाये हुए नक्षत्रोंके दिव्य मार्गको जाकर इसने चन्द्रमाकी शोभाको हरण किया, यह इसका महाकार्य हुआ ॥ ५२ ॥ इस प्रकार चंद्रमाको चलायगान करके स्वर्गद्वारसे प्रकाशमान किरणोंवाले सूर्यकोभी चलायमान कर दिया, और उसके रूप विषय, दिनकर्मको हर लिया ॥५३॥ और देवताओंके मुखमें अग्निको देख उसने अपने मुखमें अग्नि प्रगट की. पीछे वायुदेवताओंको वेगसे जीतकर अपने वेगसे वशीभूत कर लिया॥५४॥

पीछे समुद्रसे सब नदियोंको ग्रहण कर अपने वशमें किया, और सब समुद्रोंको अपने वशमें कर लिया॥५५॥और सब जलोंको अपने वशमें करके और आकाशके पदार्थोंको और पृथ्वीके पदार्थोंको अपने वशमें करके पर्वतोंसे रक्षित पृथ्वीको स्थापित किया॥५६॥इस प्रकार महाभूतोंके पति होकर सब लोकमय और सब लोकका भयदायक वह दैत्य स्वयं स्वयंभूके समान शोभित हुआ ॥५७॥ और सब लोकोंका साक्षी संसारमें एकही लोकपाल और चंद्रमा सूर्य ग्रह आदिसे संयुक्त शरीरवाला, अग्निपवनसे युक्त युद्धमें वह कालनेमि दैत्य विराजमान होने लगा॥५८॥और उस समयमें सब

स समुद्रात्समानीय सर्वाश्च सरितो बलात् ॥ चकारात्मवशे वीर्याद्देहभूताश्च सिन्धवः॥५५॥अपः स्ववशगाः कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः ॥ स्थापयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः ॥ ५६ ॥ स स्वयं भूरिवाभाति महाभूतपतिर्महान् ॥ सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वलोकभयावहः ॥५७॥ स लोकपालैकवपुश्चन्द्रसूर्यग्रहात्मवान् ॥ पावकानिलसंघातो रराज युधि दानवः ॥ ५८ ॥ पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थाने लोकानां प्रभवात्यये ॥ तुष्टुवुस्तं दैत्यगणा देवा इव पितामहम् ॥ ५९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आश्चर्यतारकामये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ पञ्च तं नाभ्यवर्त्तन्त विपरीतेन कर्मणा ॥ वेदो धर्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया ॥१॥ स तेषामनुपस्थानात्सक्रोधो दानवेश्वरः ॥ वैष्णवं पदमन्विच्छन्ययौ नारायणान्तिकम् ॥ २ ॥ स ददर्श सुपर्णस्थं शंखचक्रगदाधरम् ॥ दानवानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम् ॥ ३ ॥

दैत्यगण इसकी स्तुति करने लगे, जैसे देवते प्रलयके अंतमें पारमेष्ठ्यके स्थानमें ब्रह्माजीकी स्तुति करते हैं॥५९॥इति श्रीम०हरिवंशपर्वभाषायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ वैशंपायनजी बोले; विपरीत कर्मके करनेसे वेद, धर्म,सत्य, क्षमा नारायणकी आश्रय लक्ष्मी यह पांच वस्तु कालनेमिको न प्राप्त हुईं ॥१॥ तब इनके नहीं होनेसे दैत्यराज कालनेमि क्रोधित हो वैष्णवपदकी इच्छासे युद्धमें नारायणके समीप प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ उसने गरुडजीपर स्थित शंख, चक्र, गदाधारी और सुन्दर गदाको दैत्योंके नाशके निमित्त घुमाते विष्णुको देखा ॥ ३ ॥

पीछे जलसहित मेघके समान और बिजलीके समान वस्त्र और स्वर्णपंखोंसे युक्त शिखावाले कश्यपजीके पुत्र आकाशगामी ॥ ४ ॥ दैत्योंके नाशको युद्धमें स्वस्थ होकर स्थित हुए गरुडजीको देख लोभित मनसे कालनेमि दैत्यने क्षोभसहित विष्णुसे क्षुभित हो कहा ॥ ५ ॥ कि पूर्व दैत्यराजोंका और हमारा शत्रु यही है; और इसीने सागरमें निवास करनेवाले कैटभके संग कपट किया है ॥ ६ ॥ यह वही है, जिससे हमारा वैर कभी शान्त नहीं होगा; इसीने हमारे युद्धमें बहुतसे दैत्य भी मारे हैं॥७॥ यही दयाहीन युद्धमें अस्त्र धारण करनेवाला, बालकवत् निर्लज्ज है; इसीने दैत्योंकी

सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम् ॥ स्वारूढं स्वर्णपत्राढ्यं शिखिनं काश्यपं खगम्॥४॥दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे सुस्थमवस्थितम् ॥ दानवो विष्णुमक्षोभ्यं बभाषे क्षुब्धमानसः ॥ ५ ॥ अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां दानवर्षिणाम् ॥ अर्णवोऽवासिनश्चैव मधोर्वै कैटभस्य च ॥ ६ ॥ अयं सविग्रहोऽस्माकमशाम्यः किल कथ्यते ॥ येन नः संयुगेष्वाद्या बहवो दानवा हताः ॥ ७ ॥ अयं स निर्घृणो युद्धेऽस्त्री बालनिरपत्रपः ॥ येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरणं कृतम् ॥ ८ ॥ अयं स विष्णुर्देवानां वैकुण्ठश्च दिवौकसाम् ॥ अनन्तो भोगिनामप्सु स्वयंभूश्च स्वयंभुवः ॥ ९ ॥ अयं स नाथो देवानामस्माकं विप्रिये स्थितः ॥ अस्य क्रोधेन महता हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ १० ॥ अस्य च्छायां समासाद्य देवा मखमुखे स्थिताः ॥ आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम् ॥ ११ ॥ अयं स निधने हेतुः सर्वेषां देवविद्विषाम् ॥ यस्य तेजः प्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ॥ १२ ॥ अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवितः ॥ सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपति शत्रुषु ॥ १३ ॥

नारियोंके केशभी पकडे हैं ॥ ८ ॥ देवताओंका हितकारी यही विष्णु वैकुंठमें रहता, यही सर्पोंमें शेषनागपर और यही ब्रह्माकाभी ब्रह्मा है ॥९॥
देवताओंका रक्षक यही है, हमारे अहितमें स्थित है; और इसीके क्रोधसे हिरण्यकशिपु मारा गया है ॥१०॥ इसीकी छायाको प्राप्त हो सब देवता यज्ञोंमें ऋषियोंके अर्पित किये घृत आदि अंगप्रधान प्रायश्चित्त आदि तीन प्रकारके द्रव्योंको खाते हैं ॥ ११ ॥ युद्धमें सब राक्षसोंको मारनेका कारण यही है; इसीके तेजसे संग्राममें हमारे कुल नष्ट हो गये हैं ॥ १२ ॥ युद्धमें देवतोंके निमित्त इसने अपना जीवनतक त्यागन कर दिया है; और सूर्यके

तेजसे संयुक्त चक्रकोभी शत्रुओंमें यही फेंकता है ॥१३॥ सब दैत्योंका कालरूप यही है; परन्तु मुझ कालरूपके सन्मुख बहुत दिनोंके बीते हुए कालके फलको यह दुर्मति पावेगा ॥१४॥ भाग्यसेही आज मेरे सन्मुख यह विष्णु प्राप्त हुआ है; यह अभी मेरे बाणसे दुःखित हो मुझे प्रणाम करेगा ॥१५॥ भाग्यसेही आज मैं पूर्व दैत्योंका बदला लूंगा; आज इस दैत्योंके भय देनेवाले विष्णुको मार डालूंगा ॥१६॥ नारायणके आश्रयवाले सब प्राणियोंको शीघ्र मार डालूंगा, कारण कि दूसरे जन्म लेकर भी इसने दैत्योंको युद्धमें पीडाही दी है ॥ १७ ॥ इसी अनन्तने पहले पद्मनाभ नामसे विख्यात हो

अयं स कालो दैत्यानां कालभूते मयि स्थिते ॥ अतिक्रान्तस्य कालस्य फलं प्राप्स्यति दुर्मतिः ॥ १४ ॥ दिष्ट्येदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः ॥ अद्य मद्बाणनिष्पिष्टो मामेव प्रणमिष्यति॥१५॥यास्माम्यपचितिं दिष्ट्या पूर्वेषामथ संयुगे ॥ इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम् ॥१६॥क्षिप्रमेव वधिष्यामि रणे नारायणाश्रितान् ॥ जात्यन्तरगतोऽप्येष मृगे बाधति दानवान् ॥१७॥ एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति स्मृतः ॥ जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ ॥ विनिवेश्य स्वके ऊरौ निहतौ दानवेश्वरौ ॥१८॥द्विधाभूतं वपुः कृत्वा सिंहार्द्धं नरसंस्थितम् ॥ पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुं पुरा ॥१९॥ शुभं गर्भमधत्तेममदितिर्देवतारणिः॥ यज्ञकाले बलेर्यो वै कृत्वा वामनरूपताम् ॥ त्रीँल्लोकानाजहारैकः क्रममाणस्त्रिभिः क्रमैः॥२०॥भूयस्त्विदानीं समरे संप्राप्ते तारकामये ॥ मया सह समागम्य सह देवैर्विनंक्ष्यति ॥२१॥ स एवमुक्त्वा बहुधा क्षिपन्नारायणं रणे ॥ वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत् ॥ २२ ॥ क्षिप्यमाणोऽसुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः ॥ क्षमाबलेन महता सस्मितं वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥

एकार्णव घोर समयमें मधुकैटभ दैत्योंको मारा था ॥ १८ ॥ इसीने मनुष्य और सिंहके इन दो शरीरोंको धारण कर मेरे बडे हिरण्यकशिपुको मारा था ॥ १९ ॥ इसीने अदितिके गर्भसे देवताओंकी अरणीके समान प्राप्त हो वामनरूप धारणकर बलिराजाके यज्ञमें तीन पैर पृथ्वीके मिससे उसके तीन लोकोंको हरण कर लिया ॥ २० ॥ अब यही तारकामय संग्राममें मेरे संग युद्ध करनेको उद्यत है; परन्तु अब देवताओंके सहित यह मृत्युको प्राप्त होगा ॥२१॥ इस प्रकार कालनेमि युद्धमें विष्णुको दुर्वचन कह आक्षेप करके युद्ध करनेकी इच्छा करने लगा ॥ २२ ॥ कालनेमिके बहुत आक्षेपके

वचन सुनकरभी क्षमाबलसे संयुक्त गदाधर विष्णुको क्रोध नहीं हुआ; और हंसते २ उससे बोले॥२३॥हे दैत्य ! अभिमानका बल थोडा होता है, और क्षमाका बल स्थिर होता है, इस कारण जो तू बहुत बोलता है, सो अपने अभिमानसे उपजे दोषोंसेही तू मृतक हो गया है ॥२४॥ और मैंने तो तुझे अधम जान लिया; तेरी वाणीके बलको धिक्कार है; और जहां पुरुष नहीं होते हैं तहां स्त्रियां गर्जा करती हैं॥२५॥हे दैत्य ! जिस मार्गको तेरे बडे गये हैं उसी मार्गको तू प्राप्त होगा; कारण कि ब्रह्माजीके स्थापन किये सेतु मर्यादाको भेदन करके कौन मंगल पा सकता है ॥२६॥ देवताओंके दुःख देनेवाले तुझे मैं अभी मारूंगा और अपने २ स्थानोंपै देवताओंको स्थापित करूंगा ॥ २७ ॥ वैशंपायन बोले; कि युद्धमें विष्णु भगवानके

अल्पदर्पबलो दैत्य स्थितः क्रोधादसद्वदन् ॥ हतस्त्वमात्मनो दोषैः क्षमां योऽतीत्य भाषसे ॥२४॥ अधमस्त्वं मम मतो धिगेतत्तव वाग्बलम् ॥ न तत्र पुरुषाः सन्ति यत्र गर्ज्जन्ति योषितः ॥ २५ ॥ अहं त्वां दैत्य पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनाम् ॥ प्रजापतिकृतं सेतुं को भित्वा स्वस्तिमान्भवेत् ॥ २६ ॥ अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारकारकम् ॥ स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः ॥ २७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं ब्रुवति तद्वाक्यं मृधे श्रीवत्सधारिणि ॥ जहास दानवः क्रोधात् हस्तांश्चके च सायुधान् ॥ २८ ॥ स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे ॥ क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुं वक्षस्यताडयत् ॥ २९ ॥ दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः ॥ उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दृष्ट्वा विष्णुमथाद्रवन् ॥ ३० ॥ स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वायुधोद्यतैः ॥ न चचाल हरिर्युद्धेऽकम्प्यमान इवाचलः ॥ ३१ ॥ संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः ॥ सर्वप्राणेन महतीं गदामुद्यम्य बाहुभिः ॥ ३२ ॥

ऐसे वचन सुन वह कालनेमि दैत्य क्रोधसे हंसकर अपने हाथोंमें शस्त्रोंको ग्रहण करने लगा ॥ २८ ॥ और सब प्रकारके अस्त्रोंको ग्रहण कर क्रोधसे दुगुने लाल नेत्र कर कालनेमि दैत्य अपनी सौ बाहुओंको उठाकर विष्णु भगवानके हृदयमें शस्त्रप्रहार करने लगा ॥ २९ ॥ और मय तार आदि सब दैत्यभी अनेक प्रकारके शस्त्रोंको ग्रहण कर विष्णुके सन्मुख युद्धको प्राप्त हो शस्त्रप्रहार करने लगे ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण आयुध उठाये अतिबली दैत्योंसे ताडित होकरभी विष्णु भगवान् पर्वतके समान चलायमान नहीं हुए ॥ ३१ ॥ तब सुवर्णसंयुक्त कालनेमि

दैत्यने बडी गदाको भुजासे उठाकर जो बहुत भारी थी ॥३२॥ और अंगारेके समान प्रज्वलित थी, घोर थी, बडे क्रोधसे गरुडजीके मारी, उस दैत्यके इस कर्मसे भगवान विष्णुकोभी आश्चर्य हुआ॥३३॥ जिस समय वह गदा गरूडजीके ऊपर गिरी; तब वह पक्षिराज व्यथित हो चरणोंसे पृथ्वीमें स्थित हुए ॥३४॥ ("लोष्ठ, रिष्ट; शिल्प, वज्रप्रहार वे उस महायुद्धमें गोपाल विष्णुको प्रहार करने लगे ॥१॥ तब भ्रमण करते और घूमते हुए उनकी देवता स्तुति करने लगे; हे देव मधुकैटभनाशक ! हे महाबाहो ! आपकी जय हो॥२॥हे नखोंसे हिरण्यकश्यपकी छाती विदीर्ण करनेवाले!

मुमोच ज्वलितां घोरां संरब्धो गरुडोपरि ॥ कर्मणा तेन दैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमागतः ॥३३॥ यदा तस्य सुपर्णस्य पतिता मूर्ध्नि सा गदा ॥ तदाऽऽगमत्पदा भूमिं पक्षी व्यथितविग्रहः ॥ ३४ ॥ "लोष्टैरिष्टैः शिलाभिश्च वज्रप्रहरणैस्ततः ॥ जघ्नुस्ते समरे विष्णुं गोपालं च महारणे ॥१॥ भ्रमन्तं घूर्णमानं च स्तुतिं देवाः प्रचक्रिरे ॥ जय देव महाबाहो मधुकैटभनाशन ॥२॥ हिरण्यकशिपोर्वक्षे नखलाङ्गलदारण ॥ उत्तस्थौ च रणाद्विष्णुरमरैः संस्तुतः पुरा ॥३॥ हतं विष्णुं समाज्ञाय शङ्खं दध्मौ स दानवः ॥ मृदङ्गाश्च त्रिधा तत्र वादयन्तो महासुराः ॥ तालाश्रयाश्च ननृतुर्महोत्सव इवाबभौ ॥४॥" सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा क्षतं च वपुरात्मनः ॥ क्रोधात्संरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे ॥३५॥ व्यवर्द्धत च वेगेन सुपर्णेन समं प्रभुः ॥ भुजाश्चास्य व्यवर्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश ॥३६॥ स दिशः प्रदिशश्चैव खं च गां चैव पूरयन् ॥ ववृधे स पुनर्लोकान् क्रान्तुकाम इवौजसा ॥ ३७ ॥

आपकी जय हो देवतोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर विष्णु चरणोंसे स्थित हुए ॥३॥ इधर दानवोंने विष्णुको मृतक समझकर शंख बजाये; और मृदंगादि तीन प्रकारके बाजे महासुर बजाने लगे और लयतालके आश्रयसे नृत्य करने लगे;जिससे वह महामहोत्सव हुआ ॥४॥) गरुड़जीको दुःखी और अपने शरीरको क्षत देखके क्रोधसे लाल नेत्र कर विष्णुने चक्रको धारण किया॥३५॥ पीछे गरुडके सहितही प्रभुके वेगसे बढ़े और इनकी भुजा बढ़कर दशों दिशामें व्याप्त हो गई ॥३६॥ दिशा, विदिशा, आकाश पृथ्वीको शब्दसे पूर्ण करते हुए, बलसे लोकोंके उल्लंघनकी इच्छासे विष्णु

भगवान वृद्धिको प्राप्त हुए ॥३७॥ तब देवताओंको जयके निमित्त आकाशमें बढ़ते हुए विष्णुकी ऋषि गंधर्व स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ तब विष्णु अपने मुकुटसे आकाशको आक्रमण करते अपने वस्त्रोंसे मेघोंसहित आकाशको क्रमण करते और पैरोंसे पृथ्वीको आक्रमण करते और बाहुओंसे दिशाओंको आच्छादित करते हुए ॥ ३९ ॥ सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी सहस्रों कर्णिकासे युक्त, शत्रुओंका नाशक, दीप्तअग्निके समान घोर और सुन्दर सुदर्शन नाम चक्र ॥४०॥ सुवर्णकी नेमियोंसे संयुक्त वज्रकी नाभिवाला भयानक दैत्योंके मेद, अस्थि, मज्जा, लोहूसे पूरित ॥४१॥और

तं जयाय सुरेन्द्राणां वर्द्धमानं नभस्तले ॥ ऋषयः सह गन्धर्वैस्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ ३८ ॥ स द्यां किरीटेन लिखन् साभ्रमम्बरमम्बरैः ॥ पद्भ्यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः ॥ ३९ ॥ सूर्यस्य रश्मितुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम् ॥ दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनीयं सुदर्शनम् ॥४०॥ सुवर्णनेमिपर्यन्तं वज्रनाभं भयावहम् ॥ मेदोमज्जास्थिरुधिरैर्दिग्धं दानवसंभवैः ॥४१॥ अद्वितीयं प्रहारेषु क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ॥ स्रग्दाममालाविततं कामगं कामरूपिणम् ॥ ४२ ॥ स्वयं स्वयंभुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम् ॥ महर्षिरोषैराविष्टं नित्यमाहवदर्पितम् ॥ ४३ ॥ क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ॥ क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महाहवे ॥ ४४ ॥ तमप्रतिमकर्माणं समानं सूर्यवर्चसा ॥ चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः ॥ ४५ ॥ संमुष्णन् दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा ॥ चिच्छेद बाहुं चक्रेण श्रीधरः कालनेमिनः ॥ ४६ ॥

प्रहार करनेमें अद्वितीय छुरेसेभी तीक्ष्ण अनेक प्रकारकी मालाओंसे विस्तृत इच्छानुसार गमन करनेवाला कामरूप ॥ ४२ ॥ साक्षात् ब्रह्माजीका रचा हुआ; और सब शत्रुओंको भय देनेवाला, महर्षियोंके क्रोधसे व्याप्त, और निरंतर युद्धमें गर्वित ॥ ४३ ॥ जिसके फेंकनेसे स्थावरजंगमरूप संसार मोहित हो जाता. मांसके भक्षण करनेवाले प्राणी संग्रामसे तृप्त हो जाते ॥४४॥ उस उग्र कर्म करनेवाले सूर्यके तेजके सदृश चक्रको युद्धमें उठाकर क्रोधसे दीप्त हुए भगवान ॥४५॥ अपने तेजसे दैत्योंके तेजके नाशक विष्णुने कालनेमि दैत्यके बाहुओंको उस श्रीमान् चक्रसे छेदन कर

डाला ॥४६॥ और उसके सौ मुख जो अग्निवत् औषधियोंके चूर्णसे लाल और अट्टहासवाले थे, वहभी भगवानने चक्रसे छेदन कर डाले ॥ ४७ ॥ बाहुशिरसे रहित कालनेमि दैत्य कंपायमान न हुआ, कबंधरूप होकर युद्धमें शाखाओंसे रहित वृक्षके समान स्थित हुआ ॥ ४८ ॥ तब गरुड़ने अपने पंखोंको बढ़ाकर वायुके समान वेगकर कालनेमिकी छातीमें प्रहार किया॥४९॥तब विमुख शाखाओंसे रहित वृक्षके समान कालनेमिका देह आकाशमें भ्रमता हुआ आकाशको त्याग पृथ्वीको शोभित करता हुआगिरा॥५०॥ कालनेमिके गिरनेसे देवता और ऋषियोंके गण धन्य

तच्च वक्त्रशतं घोरं साग्निचूर्णाट्टहासिनम् ॥ तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः ॥ ४७ ॥ स च्छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पत दानवः ॥ कबन्धोऽवस्थितः संख्ये विशाख इव पादपः ॥ ४८ ॥ तं वितत्य महापक्षौ वायोः कृत्वा समं जवम् ॥ उरसा पातयामास गरुडः कालनेमिनम् ॥ ४९ ॥ स तस्य देहो विमुखो विशाखः खात्परिभ्रमन् ॥ निपपात दिवं त्यक्त्वा क्षोभयन्धरणीतलम् ॥ ५० ॥ तस्मिन्निपतिते दैत्ये देवाः सर्षिगणास्तदा ॥ साधु साध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन् ॥ ५१ ॥ अपरे ये तु दैत्या वै युद्धे दृष्टपराक्रमाः ॥ ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितुं रणे ॥ ५२ ॥ कांश्चित्केशेषु जग्राह कांश्चित्कण्ठेऽभ्यपीडयत् ॥ पाटयत्कस्यचिद्वक्त्रं मध्ये कांश्चिदथाग्रहीत् ॥ ५३ ॥ ते गदाचक्रनिर्दग्धा गतसत्त्वा गतासवः ॥ गगनाद् भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले ॥ ५४ ॥ तेषु सर्वेषु दैत्येषु हतेषु पुरुषोत्तमः ॥ तस्थौ शक्रप्रियं कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः ॥५५॥ तस्मिन् विमर्दे निर्वृत्ते संग्रामे तारकामये ॥ तं देशमाजगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ५६ ॥

धन्य कहते हुए विष्णुकी प्रशंसा करने लगे ॥५१॥ और शेष रहे सब दैत्य विष्णुकी बाहुओंसे व्याप्त हो चलनेको भी समर्थ न हुए॥५२॥ किन्ही दैत्योंको केशोंसे पकड़ मार दिया; और किन्हीं को कंठ पकड़ मार दिया, और कितनेक दैत्योंका मुख फाड़कर मार दिया और कोई दैत्य मध्यभाग पकड़ कर मारे गये ॥५३॥ इस प्रकार विष्णुकी गदा और चक्रसे दग्ध हुए प्राणोंसे रहित दैत्य आकाशमार्गसे पृथ्वीपर गिरे॥५४॥इस प्रकार सब दैत्योंको मारकर इन्द्रका प्रियकर पुरुषोत्तम गदाधर विष्णु स्थित हुए॥५५॥जब यह तारकामय युद्ध शांत हो गया; तब उस स्थानमें बहुत शीघ्र ब्रह्माजी

आये ॥५६॥ और उनके साथ ब्रह्मर्षि गंधर्व अप्सराओंके गणभी आये; यह सब देव विष्णुकी पूजाकर कहने लगे ॥ ५७ ॥ ब्रह्माजी बोले; कि हे देव ! आपने बडा कार्य किया, देवताओंके शल्य दूर किये; इन दैत्योंके मारनेसे हम सबकोभी संतुष्ट किया ॥५८॥ हे भगवन् ! जो आपने यह कालनेमि दैत्य मारा, इसके युद्धमें वध करनेको एक आपही समर्थ थे, अन्य कोई नहीं ॥ ५९ ॥ यह कालनेमि दैत्य चराचर लोकोंको तिरस्कार कर ऋषियोंको पीड़ा देता हुआ मेरे प्रतिभी गर्जता था ॥६०॥ जो तुमने यह काल तुल्य कालनेमि मारा, मैं इस तुम्हारे कर्मसे बडा प्रसन्न हुआ हूं ॥६१॥

सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्धं गन्धर्वैः साप्सरोगणैः ॥ देवदेवो हरिं देवं पूजयन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम् ॥ वधेनानेन दैत्यानां वयं हि परितोषिताः ॥ ५८ ॥ योऽय हतस्त्वया विष्णो कालनेमी महासुरः ॥ त्वमेकोऽस्य मृधे हन्ता नान्यः कश्चन विद्यते ॥ ५९ ॥ एष देवान् परिभवँल्लोकांश्च सचराचरान् ॥ ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रतिगर्ज्जति ॥ ६० ॥ तदनेन तवोग्रेण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा ॥ यदयं कालतुल्याभः कालनेमी निपातितः ॥ ६१ ॥ तदागच्छस्व भद्रं ते गच्छाम दिवमुत्तमम् ॥ ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः ॥ ६२ ॥ अहं महर्षयश्चैव तत्र त्वां वदतां वर ॥ विधिवच्चार्चयिष्यामो गीर्भिर्दिव्याभिरच्युत ॥ ६३ ॥ किं चाहं तव दास्यामि वरं वरभृतां वर ॥ सुरेष्वपि सदैत्येषु वराणां वरदो भवान् ॥ ६४ ॥ निर्यातयैतत्त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम् ॥ अस्मिन्नेव मृधे विष्णो शक्राय सुमहात्मने ॥ ६५ ॥ एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः ॥ देवान् शक्रमुखान्सर्वानुवाच शुभया गिरा ॥ ६६ ॥

सो आपका कल्याण हो, आप ब्रह्मलोकको गमन करो, जहां सभामें प्राप्त हुए ब्रह्मर्षि तुम्हारी प्रतीक्षा करते हैं ॥६२॥ और हम ब्रह्मलोकमें दिव्य वाणियोंसे तुम्हारी पूजा करेंगे॥६३॥ और तुम्हें हम क्या वर दें आप तो देवता और दैत्योंकोभी वर देनेवाले हो॥६४॥जो कि आपने त्रिलोकी और यह सब देश कंटकरहित करदिया और हे विष्णुजी ! इन्द्रकी इस महासंग्राममें महासहायता की,इससे हम कृतार्थ हुए ॥ ६५ ॥ ब्रह्माजीके इस

प्रकार कहनेसे विष्णु भगवान इन्द्रादि देवताओंके प्रति शुभवाणीसे बोले ॥६६॥ विष्णुजी बोले कि; हे देवताओ ! तुम सब श्रवण करो, जितने तुम यहां हो, इन्द्रसहित श्रवण करो ॥६७॥ वे इन्द्रसेभी अतिबली थे. जो कालनेमि आदि दैत्य इस युद्धमें मारे गये हैं ॥ ६८ ॥ केवल विरोचनका पुत्र बली और राहु ग्रहही दोनों इस युद्धमें निकल गये हैं ॥६९॥ सो कुछ संदेह नहीं; अब अपनी वांछित पूर्वदिशाको इन्द्र भोगे; और पश्चिम दिशाको वरुण पालन करें और दक्षिण दिशाको धर्मराज, और उत्तर दिशाको कुबेर पालें ॥७०॥और नक्षत्रोंके संग समयमें चंद्रमा विचरें, अयनोंके

विष्णुरुवाच ॥ श्रूयतां त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ॥ श्रवणावहितैर्देहैः पुरस्कृत्य पुरंदरम् ॥ ६७ ॥ अस्मिन्नः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः ॥ दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः ॥ ६८ ॥ तस्मिन् महति संक्रन्दे द्वावेव तु विनिःसृतौ ॥ वैरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः ॥ ६९ ॥ तदिष्टां भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च ॥ याम्यां यमः पालयतामुत्तरां च धनाधिपः ॥ ७० ॥ ऋक्षैःसह यथायोगं काले चरतु चन्द्रमाः ॥ अब्दं ऋतुमुखं सूर्यो भजतामयनैः सह ॥ ७१ ॥ आज्यभागाः प्रवर्त्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः ॥ हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा ॥७२॥ देवाश्च बलिहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः ॥ श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथा पुरा ॥ ७३ ॥ वायुश्चरतु मार्गस्थस्त्रिधा दीप्यतु पावकः ॥ त्रयो वर्णाश्च लोकांस्त्रीन् वर्द्धयन्त्वात्मजैर्गुणैः ॥ ७४ ॥ क्रतवः संप्रवर्त्तन्तां दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः ॥ दक्षिणाश्चोपवर्त्तन्तां यथार्हं सर्वसत्रिणाम् ॥ ७५ ॥ गाश्च सूर्यो रसान्सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु ॥ तर्पयन्तः प्रवर्त्तन्तां शिवैः सौम्यैश्च कर्मभिः ॥ ७६ ॥

सहित ऋतुओंसे संयुक्त वर्षको सूर्य भजें ॥ ७१ ॥ घृतके भाग प्रवर्तन करो और सभापतियोंसे पूजे हुए अग्नियोंमें वेदविधिसे ब्राह्मण हवन करें ॥७२॥ और बलिहोम करके देवता और स्वाध्यायसे महर्षि और श्राद्धसे पितर ये तीनों तृप्त हों ॥ ७३ ॥ सुन्दरमार्गमें स्थित पवन विचरे; तीन प्रकारसे अग्नि देव प्रकाशित हों; और ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण तीन लोकोंको अपने गुणोंसे तृप्त करें ॥ ७४ ॥ और दीक्षावाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यज्ञोंको करें; यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंको दक्षिणाओंका दान करें ॥७५॥ और गायोंको सूर्य, और रसोंको चंद्रमा

और प्राणियोंके प्राणोंको वायु तृप्त करते हुए प्रवृत्त हों॥७६॥और यथायोग्य महेन्द्र पर्वतसे निकली हुई त्रिलोकमाता नदी सागरमें प्राप्त हो ॥७७॥ अब दैत्योंका भय त्यागो,देवता शांतिको प्राप्त हों; हे देवताओ ! तुम्हारा कल्याण हो,मैं अब सना तन ब्रह्मलोकको गमन करूंगा ॥ ७८ ॥ अपने स्थानमें व स्वर्गलोकमें व युद्धमें संशय न करना; क्योंकि दैत्य तौ सदाही शिथिलरूप हैं ॥ ७९ ॥ छिद्रको देखकर बल करते हैं; दैत्योंकी स्थिति निरंतर नहीं है,कोमल भावयुक्त तुम्हारी कोमल बुद्धि है॥८०॥ मैं उन दुष्ट भाववाले दैत्योंको जब वह तुमसे दौरात्म्य करते हैं और असम्यक् वर्तते

यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रसलिलोद्भवाः ॥ त्रैलोक्यमातरः सर्वाः सागरं यान्तु निम्नगाः ॥ ७७ ॥ दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीश्च शान्तिं व्रजत देवताः॥स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम्॥७८॥स्वगृहे सर्वलोके वा संग्रामे वा विशेषतः॥विश्रम्भो हि न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः ॥ ७९ ॥ छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न चैषां संस्थितिर्ध्रुवा ॥ सौम्यानामृजुभावानां भवतां चार्जवे मतिः ॥ ८० ॥ अहं तु दुष्टभावानां युष्मासु सुदुरात्मनाम् ॥ असम्यग्वर्त्तमानानां मोहं दास्यामि देवताः ॥ ८१ ॥ यदा च सुदुराधर्षं दानवेभ्यो भयं भवेत् ॥ ॥ तदा समुपगम्याशु विधास्ये वस्ततोऽभयम् ॥ ८२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा सुरगणान् विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥ जगाम ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं महायशाः ॥ ८३ ॥ एतदाश्चर्यमभवत्संग्रामे तारकामये ॥ दानवानां च विष्णोश्च यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥८४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि कालनेमिवधो नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥ जनमेजय उवाच॥ ब्रह्मणा देवदेवेन सार्द्धं सलिलयोनिना॥ ब्रह्मलोकगतो ब्रह्मन्वैकुण्ठः किं चकार ह ॥१॥

हैं तब मैं उन्हें मोहित करता हूं ॥८१॥ और जब दैत्योंसे तुम्हें महाभय होगा तभी मैं समीपमें प्राप्त हो अभय दूंगा ॥८२॥ वैशंपायनजी बोले; कि अतियशस्वी और अति पराक्रमी विष्णु इस प्रकार देवतोंसे कह ब्रह्माजीके साथ ब्रह्म लोकको गये ॥ ८३ ॥ तारकामय युद्धमें दैत्योंका और विष्णुका इस प्रकार आश्चर्ययुक्त युद्ध हुआ है. आपने मुझसे पूछा सो कहा ॥ ८४ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां अष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥ जनमेजय बोले;देवताओंके देवरूप ब्रह्माजीके साथ विष्णु भगवान ब्रह्मलोकमें प्राप्त हो क्या कर्म करने लगे ॥१॥

और दैत्योंके मारनेके पीछे देवताओंसे पूजन कराय विष्णुको ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजी क्यों ले गये ॥ २ ॥ और ब्रह्मलोकमें जाकर किस स्थानपर किस योगको प्राप्त हो उस भूतभावन विभुने किस नेमको धारण किया ॥ ३ ॥ और विष्णुके ब्रह्मलोकमें निवास करनेसे सुर असुर नरोंसे पूजित हो यह जगत् किस शोभाको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ ग्रीष्म ऋतुके अंतमें भगवान् कैसे शयन करते हैं; और वर्षा ऋतुके अंतमें किस प्रकार जागते हैं, और ब्रह्मलोकमें प्राप्त होकर विष्णु इस लौकिक धुरको किस प्रकार धारण करते हैं ॥ ५ ॥ हे विप्रेन्द्र ! इस भगवान्‌के दिव्य चरित्रको विस्तारपूर्वक जाननेकी

किमर्थं चादिदेवेन नीतः कमलयोनिना ॥ विष्णुर्दैत्यवधे वृत्ते देवैश्च कृतसत्क्रियः ॥ २ ॥ ब्रह्मलोके च किं स्थानं कं वा योगमुपास्त सः ॥ कं वा दधार नियमं स विभुर्भूतभावनः ॥ ३ ॥ कथं तस्यासतस्तत्र विश्वं जगदिदं महत् ॥ श्रियमाप्नोति विपुलां सुरासुरनरार्चिताम् ॥ ४ ॥ कथं स्वपिति घर्मान्ते बुध्यते चाम्बुदप्लवे ॥ कथं च ब्रह्मकोकस्थो धुरं वहति लौकिकीम् ॥ ५ ॥ चरितं तस्य विप्रेन्द्र दिव्यं भगवतो दिवि ॥ विस्तरेण यथातत्त्वं सर्वमिच्छामि वेदितुम् ॥ ६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु नारायणस्यादौ विस्तरेण प्रवृत्तयः ॥ ब्रह्मलोकं यथारूढो ब्रह्मणा सह मोदते ॥ ७ ॥ कामं तस्य गतिः सूक्ष्मा देवैरपि दुरासदा ॥ यत्तु वक्ष्याम्यहं राजंस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ८ ॥ एष लोकमयो देवो लोकाश्चैतन्मयास्त्रयः ॥ एष देवमयश्चैव देवाश्चैतन्मया दिवि ॥ ९ ॥ तस्य पारं न पश्यन्ति बहवः पारचिन्तकाः ॥ एष पारंपरं चैव लोकानां वेद माधवः ॥ १० ॥ अस्य देवान्धकारस्य मार्गितव्यस्य दैवतैः ॥ शृणु वै यत्तदा वृत्तं ब्रह्मलोके पुरातनम् ॥ ११ ॥

इच्छा करता हूं ॥ ६ ॥ वैशंपायन बोले, जिस प्रकार ब्रह्मलोकमें जाकर विष्णु ब्रह्माके संग आनंदित होते हैं, तिस आख्यानको विस्तारपूर्वक श्रवण करो ॥ ७ ॥ यद्यपि विष्णुकी गति सूक्ष्म है, देवताभी उसको नहीं जानते तथापि मैं कहता हूं, तुम सावधान हो श्रवण करो ॥ ८ ॥ यह विष्णु लोकमय देव है और तीनों लोक इसीमें रहते हैं; देवता इनमें निवास करते हैं ॥ ९ ॥ इनके पारको कोईभी नहीं जान सकता. लोकोंके पारोंको यह विष्णुही जानते हैं ॥ १० ॥ यह इन्द्रिय अगोचर देवताओंसे सदा खोजे जाते हैं. जो ब्रह्मलोकमें कथा हुई है वह सुनो ॥ ११ ॥

इनविष्णुने ब्रह्माजीके वसने योग्य ब्रह्मलोकमें जाकर सब ऋषिजनोंको श्रेष्ठविधिसे प्रणाम किया॥१२॥और महर्षियोंसे यज्ञमें हूयमान अग्निको देखकर पूर्वाह्णकी क्रिया कर इस महातेजस्वीने प्रणाम किया॥१३॥और यज्ञमें महर्षियोंसे पूजित और यज्ञके भागको भोजन करते अपने दूसरे देहको स्थित हुए तहां देखा ॥ १४ ॥ पीछे सब ऋषिजनोंसे मिलके और अभिवादन करने योग्योंको अभिवादन कर सनातन ब्रह्मलोकमें विचरने लगे ॥ १५ ॥ तहां चषालाग्रोंसे विभूषित और ब्रह्मऋषियोंके सैंकडों लक्षणोंसे लक्षित ऊंचे २ यज्ञस्तंभोंको देखने लगे ॥ १६ ॥ और घृतके धुवोंको सूंघते और

स गत्वा ब्रह्मणो लोकं दृष्ट्वा पैतामहं पदम् ॥ ववन्दे तानृषीन्सर्वान्विष्णुरार्षेण कर्मणा ॥१२॥ सोऽग्निं प्राक्सवने दृष्ट्वा हूयमानं महर्षिभिः ॥ अवन्दत महातेजाः कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ॥ १३ ॥ स ददर्श मखेष्वाज्यैरिज्यमानं महर्षिभिः ॥ भागं यज्ञियमश्नानं स्वदेहमपरं स्थितम् ॥ १४ ॥ अभिवाद्याभिवाद्यानामृषीणां ब्रह्मवर्चसाम् ॥ परिचक्राम सोऽचिन्त्यो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ १५ ॥ स ददर्शोच्छ्रितान्यूपांश्चषालाग्रविभूषितान् ॥ मखेषु च ब्रह्मर्षिभिः शतशः कृतलक्षणान् ॥ १६ ॥ आज्यधूमं समाघ्राय शृण्वन्वेदान् द्विजेरितान् ॥ यज्ञैरिज्यन्तमात्मानं पश्यंस्तत्र चचार ह ॥१७॥ ऊचुस्तमृषयो देवाः सदस्याः सदसि स्थिताः ॥ अर्घोद्यतभुजाः सर्वे पवित्रान्तरपाणयः ॥ १८ ॥ देवेषु वर्त्तते यद्वै तद्धि सर्वं जनार्दनात् ॥ यत्प्रवृत्तं च देवेभ्यस्तद्विद्धि मधुसूदनात् ॥१९॥ अग्नीषोममयं लोकं यं विदुर्विदुषो जनाः ॥ तं सोममग्निं लोकं च वेद विष्णुं सनातनम् ॥ २० ॥ क्षीराद्यथा दधि भवेद्दध्नः सर्पिर्भवेद्यथा ॥ मथ्यमानेषु भूतेषु यथा लोको जनार्दनात् ॥ २१ ॥

॥१४९॥

ऋषियोंके मुखसे कहे हुए वेदोंको सुनते और यज्ञोंसे अपनी आत्माकी पूजा देखते विष्णुजी ब्रह्मलोकमें विचरने लगे ॥१७॥ तब सब ऋषि और सभामें प्राप्त देवता अर्घआदिको ग्रहण कर कहने लगे॥१८॥कि जो देवताओंमें ऐश्वर्य है;वह सब इन्ही विष्णुके प्रतापसे है;और देवताओंसे जो प्रवृत्त हुआ है सो इन्ही विष्णुके प्रतापसे हुआ है ॥१९॥ वेदके जाननेवाले मनुष्य अग्निसोमरूप इस जगत्‌को वर्णन करते हैं;उस अग्निसोम लोक विष्णुको यह ब्रह्माजी जानते हैं ॥ २० ॥ और जैसे दूधसे दही उत्पन्न होता है,और दहीके मथनेसे घृत होता है, तैसे पंच महाभूतोंके द्वारा इन विष्णुसे जगत्

उत्पन्न होता है ॥ २१ ॥ जैसे इन्द्रिय और पंच महाभूतोंसे परमात्मा कहे जाते हैं;तैसे देव वेद और लोकोंने विष्णुको जाना है ॥२२॥ जैसे पृथ्वीमें देहधारियोंको पंचभूत और इन्द्रियोंकी प्राप्ति होती है; तैसे देवताओंको वैकुंठमें प्राणेश्वररूप वैष्णवी प्राप्ति होती है ॥२३॥ और यज्ञ करनेवालोंको यज्ञफलका देनेवाला पवित्र परमात्मा लोकको तंत्ररूप करनेवाले यह विष्णु मंत्रोंसे मंत्ररूप पूजित होते हैं ॥२४॥ ऋषि बोले; हे देवश्रेष्ठ ! हे पद्मनाभ ! ! हे महाकीर्तिवाले ! ! ! आपका शुभ आगमन हो, यह यज्ञसंबंधि आतिथ्यमंत्रमें प्रतिग्रहण करो ॥ २५ ॥ इस यज्ञपूत पाद्यके आपही पवित्र पात्र

यथेन्द्रियैश्च भूतैश्च परमात्माविधीयते ॥ तथा देवैश्च वेदैश्च लोकैश्च विहितो हरिः ॥ २२ ॥ यथा भूतेन्द्रियावाप्तिर्विहिता भुवि देहिनाम्॥यथा प्राणेश्वरावाप्तिर्देवानां दिवि वैष्णवी॥२३॥ सत्रिणां सत्रफलदः पवित्रं परमात्मवान्॥लोकतन्त्रधरो ह्येषमन्त्रै मन्त्र इवोच्यते ॥ २४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ स्वागतं ते सुरश्रेष्ठ पद्मनाभ महाद्युते ॥ इदं यज्ञियमातिथ्यं मन्त्रतः प्रतिगृह्यताम् ॥ २५ ॥ त्वमस्य यज्ञपूतस्य पात्रं पाद्यस्य पावनः ॥ अतिथिस्त्वं हि मन्त्रोक्तः संदृष्टः संततं मतः ॥ २६ ॥ त्वयि योद्धुं गते विष्णो न प्रावर्त्तन्त नः क्रियाः ॥ अवैष्णवस्य यज्ञस्य नहि कर्म विधीयते ।२७। सदक्षिणस्य यज्ञस्य त्वत्प्रसूतिः फलं भवेत् ॥ अद्यात्मानमिहास्माभिरिज्यमानं निरीक्ष्यसे ॥ २८ ॥ एवमस्त्विति तान्सर्वान् भगवान्प्रत्यपूजयत् ॥ मुमुदे ब्रह्मलोकस्थो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥२९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि लोकवर्णनं नाम एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ४९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ऋषिभिः पूजितस्तैस्तु विवेश हरिरीश्वरः ॥ पौराणं ब्रह्मसदनं दिव्यं नारायणाश्रमम् ॥ १ ॥

हैं और मंत्रोक्त अतिथिभी आपही हैं ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! जब आप युद्धके निमित्त गमन करते हैं, तब हमारी क्रिया प्रवर्त्त नहीं होती. क्योंकि विष्णुरहित यज्ञमें कर्म नहीं किया जाता है॥२७॥और दक्षिणासहित यज्ञके आदिकारण फल आपही हैं; अब हमसे पूजित किये अपने आत्माको आप देखेंगे॥२८॥ ऐसाही हो यह वचन कहकर तिन मुनियोंका भगवानने पूजन किया और ब्रह्मासहित ब्रह्मलोकमें स्थित हो प्रसन्न हुए ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषाटीकायां एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार उन ऋषियोंसे पूजित हो भगवान् पुरातन

और गुप्त दिव्य नारायण आश्रममें प्रविष्ट हुए ॥ १ ॥ प्रसन्न मन हो सभामें आये हुए देवताओंको बुलाकर पर पद्मयोनि आदिदेव ब्रह्माको प्रणाम करके ॥ २ ॥ अपने नामसे प्रसिद्ध उस नारायण आश्रममें प्रवेश कर भगवान्‌ने आयुधोंको त्याग दिया ॥ ३ ॥ वहां उन्होंने देवता और ऋषियोंसे सेवित सागरकी समान अपने स्थानको देखा ॥ ४ ॥ जो कि प्रलयके जल तथा नक्षत्र तारागणोंके ज्योतिचक्रसे युक्त अंधकारसेभी आकुल देवता और राक्षसोंको अगम्य ॥ ५ ॥ वहां वायुकाभी विषय नहीं, चंद्रमा, सूर्यकाभी प्रकाश नहीं; वह स्थान भगवान् पद्मनाभकेही तेजसे प्रकाशमान है ॥ ६ ॥

स तद्विवेश हृष्टात्मा तानामन्त्र्य सदोगतान् ॥ प्रणम्य चादिदेवाय ब्रह्मणे पद्मयोनये ॥ २ ॥ स्वेन नाम्ना परिज्ञातं स तं नारायणाश्रमम् ॥ प्रविशन्नेव भगवान् आयुधानि व्यसर्ज्जयत् ॥ ३ ॥ स तत्राम्बुप्रतिप्रख्यं ददर्शालयमात्मनः ॥ स्वधिष्ठितं देवगणैः शाश्वतैश्च महर्षिभिः ॥४॥ संवर्त्तकाम्बुदोपेतं नक्षत्रस्थानसंकुलम् ॥ तिमिरौघपरिक्षिप्तमप्रधृष्यं सुरासुरैः॥५॥ न तत्र विषयो वायोर्नेन्दोर्न च विवस्वतः ॥ वपुषः पद्मनाभस्य स देशस्तेजसावृतः ॥ ६ ॥ स तत्र प्रविशन्नेव जटाभारं समुद्वहन् ॥ सहस्रशीर्षा भूत्वा तु शयनायोपचक्रमे ॥ ७ ॥ लोकानामन्तकालज्ञा काली नयनशालिनी ॥ उपतस्थे महात्मानं निद्रा तं कालरूपिणी ॥ ८ ॥ स शिश्ये शयने दिव्ये समुद्राम्भोदशीतले ॥ हरिरेकार्णवोक्तेन व्रतेन व्रतिनां वरः ॥ ९ ॥ तं शयानं महात्मानं भवाय जगतः प्रभुम् ॥ उपासांचक्रिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तथा ॥ १० ॥

उस स्थानमें प्राप्त हो जटाओंका भार बढाते हुए सहस्राशिर धारण करके वहां शयन करनेकी इच्छा की ॥ ७ ॥ लोकोंके अंतसमयको जाननेवाली, नेत्रोंमें निवास करनेवाली, कालरूप निद्रा महात्मा भगवान्‌को प्राप्त हुई ॥ ८ ॥ भगवान्‌ने वहां समुद्रके शीतल सलिलमें दिव्य शय्याके ऊपर एकार्णवमें निर्विकल्प समाधिसे संयमपूर्वक शयन किया ॥९॥ उस समय सोते हुए महाप्रभुकी आराधना जगत्‌के कल्याणके निमित्त देवता और ऋषि करने लगे ॥१०॥

तहां शयन करते हुए भगवान्‌की नाभिसे उत्पन्न हुआ आद्यन्त युक्त आद्य, पद्म, सूर्यके समान कांतिवाला सहस्र पत्तोंसे युक्त कोमल पुष्पोंसहित सुन्दर ॥ ११ ॥ ब्रह्मसूत्र यज्ञोपवीतके आकारकी कलियोंसे युक्त ब्रह्मका आसन शोभित हुआ; और सोते हुए भगवान् सब लोकोंको कालपर्यन्त पालते हैं ॥ १२ ॥ तिस समय भगवान्‌के श्वाससे अनेक प्रकारके प्रजाओंके समूह उत्पन्न होते हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे रचे हुए प्राणियोंके समूहके कमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजीने चार विभाग किये, फिर सब प्राणी सतयुगके अंतमें कहे हुए कर्मसे अपनी २ गतिको प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ ईश्वरका अविद्याशबल रूपभी

तस्य सुप्तस्य शुशुभे नाभिमध्यात्समुत्थितम् ॥ आद्यं तस्यासनं पद्मं ब्रह्मणः सूर्यवर्चसम् ॥ सहस्रपत्रं वर्णाढ्यं सुकुमारं विभूषितम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मसूत्रोद्यतकरः स्वपन्नेव महामुनिः ॥ आवर्त्तयति लोकानां सर्वेषां कालपर्ययम् ॥ १२ ॥ विवृत्तात्तस्य वदनान्निःश्वासपवनेरिताः ॥ प्रजानां पङ्क्त्यो ह्युच्चैर्निष्पतन्त्युत्पतान्ति च ॥ १३ ॥ ते सृष्टाः प्राणिनो मेध्या विभक्ता ब्रह्मणा स्वयम् ॥ चतुर्द्धा स्वां गतिं जग्मुः कृतान्तोक्तेन कर्मणा ॥ १४ ॥ न तं वेद स्वयं ब्रह्मा नापि ब्रह्मर्षयोऽव्ययाः ॥ विष्णोर्निद्रामयं योगं प्रविष्टं तमसावृतम् ॥ १५ ॥ ते तु ब्रह्मर्षयः सर्वे पितामहपुरोगमाः ॥ न विदुस्तं क्वचित्सुप्तं क्वचिदासीनमासने ॥ १६ ॥ जागर्ति कोऽत्र कः शेते कश्च शक्तश्च नेङ्गते ॥ को भोगवान् को द्युतिमान् कृष्णात् कृष्णतरश्च कः ॥ १७ ॥

दुर्ज्ञेय है शुद्धरूपकी तो कौन कहे. योगमें प्रविष्ट, तमसे आवृत विष्णुको स्वयं ब्रह्मा और अविनाशी ब्रह्मऋषिभी नहीं जानते ॥ १५ ॥ जब उन विष्णुको उन ब्रह्मा आदि ऋषियोंने नहीं जाना कि वे कहां सोते हैं अथवा कहीं आसनपर बैठे हैं ॥ १६ ॥ कौन यहां जागता है, कौन सोता है, सोता हुआ क्या चेष्टा करता है; इस प्रकार वे सब ब्रह्मा आदि ऋषि नहीं जान सके और कौन यहां भोगवाला है, कौन तेजस्वी है, और कृष्णसेभी कृष्ण कौन है ॥ १७ ॥

---

१ जिस प्रकार माताके नाभिदशका नाल पुष्पभूत रजसे युक्त होता है और वह पुष्प वीर्यके संसर्गसे गर्भरूप होता है और माताके भोजन किये अन्नरससे नालद्वारा वह गर्भ पुष्ट होता है, फिर पके फलकी समान वह गर्भ च्युत हो जाता है. इसी प्रकार विष्णुसे उत्पन्न हो ब्रह्मा वैष्णवी मायासे पुष्ट हो उससे पृथक् हो अपनेको भिन्न मानता है. यह पद्मही पद्मकोशाकार ब्रह्माण्ड है, जो कथारूपसे वर्णन किया है. इसी नालसे सबकी सृष्टि है.

इस प्रकार सब देवता दिव्य युक्तियोंसे विचार करने लगे; परन्तु इन भगवान्‌को कर्मसे और जन्मसे जाननेको समर्थ न हुए॥१८॥जो दिव्यभगवान्‌की कथाओंसे विष्णुके चरित्रोंको जानते हैं, तिनको ऋषिजन पुराण और पुरातन कहते हैं ॥१९॥ औरवेदोंमेंभी भगवान्‌के पुरातन चरित्र सुने जाते हैं; परन्तु महापुराण आदिसेभी उसके चरित्रका पार नहीं पाया जाता॥२०॥ कारण कि जो भगवान्‌के स्वभावसे उपजाहै, तिसको लौकिक और वेदोंकी श्रुतिभी नहीं जानती॥२१॥यही जीवोंके उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर मधुसूदन जगत्‌की उत्पत्ति और दैत्योंके नाशके समय जागते हैं ॥२२॥ शयन

विमृशन्ति स्म तं देवा दिव्याभिरुपपत्तिभिः ॥ न चैनं शेकुरन्वेष्टुं कर्मतो जन्मतोऽपि वा ॥ १८ ॥ गाथाभिस्तत्प्रदिष्टाभिर्ये तस्य चरितं विदुः ॥ पुराणास्तं पुराणेषु ऋषयः संप्रचक्षते ॥ १९ ॥ श्रूयते चास्य चरितं देवेष्वपि पुरातनम् ॥ महापुराणात्प्रभृति परं तस्य न विद्यते ॥ २० ॥ यच्चास्य देवदेवस्य चरितं स्वप्रभावजम् ॥ तेनेमा श्रुतयो व्याप्ता वैदिक्यो लौकिकाश्च याः ॥ २१ ॥ भवकाले भवत्येष लोकानां लोकभावनः ॥ दानवानामभावाय जागर्ति मधुसूदनः ॥२२॥ यत्रैनं वीक्षितुं देवा न शेकुः सुप्तमव्ययम् ॥ ततः स्वपिति धर्मान्ते जागर्ति जलदक्षये ॥२३॥ स हि वेदाश्च यज्ञाश्च यज्ञाङ्गानि च सर्वशः ॥ या तु यज्ञगतिः प्रोक्ता स एष पुरुषोत्तमः ॥ २४ ॥ तस्मिन् सुप्ते न वर्त्तन्ते मन्त्रपूताः क्रतुक्रियाः ॥ शरत्प्रवृत्तयज्ञोऽयं जागर्ति मधुसूदनः ॥ २५ ॥ तदिदं वार्षिकं चक्रं कारयत्यम्बुदेश्वरः ॥ वैष्णवं कर्म कुर्वाणः सुप्ते विष्णौ पुरंदरः ॥ २६ ॥ या ह्येषा गह्वरा माया निद्रेति जगति स्थिता ॥ साऽकस्माद्द्वेषिणी घोरा कालरात्रिर्महीक्षिताम् ॥ २७ ॥

करनेके समय अविनाशी भगवान्‌के देखनेको देवतेभी समर्थ नहीं हैं;ग्रीष्म ऋतुके पश्चात् भगवान् सोते और वर्षाके पीछे जागते हैं॥२३॥ और जब भगवान् सोते हैं तब यज्ञ नहीं होते, कारण कि भगवान्‌ही यज्ञरूप हैं; और वेद यज्ञके अंग हैं; और यज्ञकी गतिभी पुरुषोत्तम भगवान्‌ही है ॥२४॥ भगवान्‌के सोनेपर मंत्रोंसे पवित्र यज्ञक्रिया नहीं होती;शरदृतुके आदिमें भगवान् जागते हैं॥२५॥विष्णु भगवान्‌के शयन करनेपर वैष्णवकर्मको करते हुए इन्द्र वार्षिक चक्रको धारण करते हैं॥२६॥जो गूढ भगवत्‌की माया संसारमें निद्रारूपसे प्रसिद्धहै वह अकस्मात् प्राणियोंसे द्वेषकरनेवाली राजोंको

घोर कालरात्रिके समान है॥२७॥उस निद्राहीका अंग तमरूप रात्रि है,जो दिनका नाश करती है,और यही निद्रा पृथ्वीमें प्राणियोंका आधा जीवन हरण करती है॥२८॥इससे युक्त होकर वारंवार जंभाई लेता हुआ इसके वेगको कोईभी पुरुष सागरमें डूबनेके समान सहनेकोसमर्थ नहीं है ॥२९॥ संसारमें मनुष्योंके अन्नसे तथा श्रमसे उपजी निद्रा सबको प्राप्त होती है॥३०॥और विशेषकर देहधारियोंके स्वप्नके अंतमें निद्राका नाश होता है और यही विशेष करके मृत्यु कालके समय जीवोंके प्राण नाश करती है ॥३१॥ इसको नारायण देवतोंके शरीरमें धारण करते हैं, यह निद्रा कालकी प्यारी

तस्यास्तनुस्तमोद्वारा निशां दिवसनाशिनी ॥ जीवितार्द्धहरा घोरा सर्वप्राणभृतां भुवि ॥ २८ ॥ नैतया कश्चिदाविष्टो जृम्भमाणो मुहुर्मुहुः ॥ शक्तः प्रसहितुं वेगं मज्जन्निव महार्णवे ॥ २९ ॥ अन्नजा भुवि मर्त्यानां श्रमजा वा कथंचन ॥ सैषा भवति लोकस्य निद्रा सर्वस्य लौकिकी ॥ ३० ॥ स्वप्नान्ते क्षीयते ह्येषा प्रायशो भुवि देहिनाम् ॥ मृत्युकाले च भूतानां प्राणान्नाशयते भृशम् ॥३१॥ देवेष्वपि दधारैनां नान्यो नारायणादृते ॥ सखी सर्वहरस्यैषा माया विष्णुशरीरजा ॥ ३२ ॥ सैषा नारायणमुखे दृष्टा कमललोचना ॥ लोकानल्पेन कालेन ग्रसते लोकमोहिनी ॥ ३३ ॥ एवमेषा हितार्थाय लोकानां कृष्णवर्त्मना ॥ ध्रियते सेवनीया हि पत्येव च पतिव्रता ॥ ३४ ॥ स तया निद्रया च्छन्नस्तस्मिन्नारायणाश्रमे ॥ स्वपिति स्म तदा विष्णुर्मोहयन् जगदव्ययम् ॥ ३५ ॥ तस्य वर्षसहस्राणि शयानस्य महात्मनः ॥ जग्मुः कृतयुगं चैव त्रेता चैव युगोत्तमम् ॥ ३६ ॥

सखी है; और विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुई है ॥३२॥ यह कालनेत्रवाली निद्रा नारायणके मुखमें देखी गई है; और लोकमोहिनी यह थोड़े ही कालमें सब लोकोंको ग्रस लेती है ॥३३॥ यही संसारके निमित्त भोजन किये अन्नका सम्यक् परिपाक श्रमका दूर होना इत्यादि हितके करनेवाली है, इसे सूक्ष्मरूपसे परमेश्वर धारण करते हैं;मेरी निद्रासे मेरे उदरस्थ सब लोक विश्राम करें;इस आशयसे वह पतिव्रता पतिसे धारण सेवन की जाती है॥३४॥ यह अविनाशी भगवान् उस निद्रासे आच्छादित हुए नारायण आश्रममें प्राप्त हो जगत्को मोहते हुए शयन करते हैं॥३५॥इस प्रकार उन महात्माको

शयन करते हुए सहस्रों वर्ष बीत गये; और सतयुग त्रेतायुगभी व्यतीत हुए ॥ ३६ ॥ तब द्वापर युगके अंतमें महातेजस्वी भगवान् ऋषियोंके स्तुति करनेपर संसारको दुःखित देख जागे॥३७॥ऋषि बोले; हे भगवन् ! स्वभावसे उत्पन्न हुई निद्राको त्यागो;जिसप्रकार मनुष्य भोगी मालाको त्याग देते हैं ॥३८॥ यह ब्रह्माजी सहित सब देवता आपके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥ ३९ ॥ हे भगवन् ! आत्मासे उत्पन्न हुए पृथ्वी, आकाश अग्नि, वायु जलतत्त्वोंसे उपजे जीवोंकी श्रेष्ठ वाणीको सुनो॥४०॥हे देव!यह सप्तऋषि मुनिमंडलसहित दिव्य वाणियोंसे आपकी स्तुति करते हैं ॥४१॥

स तु द्वापरपर्यन्ते ज्ञात्वा लोकान्सुदुःखितान् ॥ प्राबुध्यत महातेजाः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥३७॥ ऋषय ऊचुः ॥ जहीहि निद्रां सहजां भुक्तपूर्वामिव स्रजम् ॥ इमे ते ब्रह्मणा सार्द्धं देवा दर्शनकांक्षिणः ॥३८॥ इमे त्वां ब्रह्मविद्वांसो ब्रह्मसंस्तववादिनः॥ वर्द्धयन्ति हृषीकेश ऋषयः संशितव्रताः ॥ ३९ ॥ एतेषामात्मभूतानां भूतानामात्मभावनः ॥ शृणु विष्णो शुभा वाचो भूव्योमाग्न्यनिलाम्भसाम् ॥ ४० ॥ इमे त्वां सप्त मुनयः सहिता मुनिमण्डलैः ॥ स्तुवन्ति देव दिव्याभिर्गेयाभिर्गीर्भिरञ्जसा ॥४१॥ उत्तिष्ठ शतपत्राक्ष पद्मनाभ महाद्युते ॥ कारणं किञ्चिदुत्पन्नं देवानां कार्यगौरवात् ॥ ४२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स संक्षिप्य जलं सर्वं तिमिरौघं विदारयन् ॥ उदतिष्ठद्धृषीकेशः श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ४३ ॥ स ददर्श सुरान्सर्वान्समेतान्सपितामहान् ॥ विवक्षतः प्रक्षुभितान् जगदर्थे समागतान् ॥ ४४ ॥ तानुवाच हरिर्देवो निद्राविश्रान्तलोचनः ॥ तत्त्वदृष्टार्थया वाचा धर्महेत्वर्थयुक्तया ॥४५॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कुतो वो विग्रहो देवाः कुतो वो भयमागतम् ॥ कस्य वा केन वा कार्यं किं वा मयि न वर्त्तते ॥ ४६ ॥

हे कमलनेत्र, कमलनाभि, महातेजस्वी भगवन् ! उठिये. देवताओंके कार्यगौरवसे आपका कुछ कारण उत्पन्न हुआ है॥४२॥वैशंपायन बोले; इस प्रकार इनके वचन सुन भगवान् सब जगत्को संक्षिप्त कर और अंधकारके समूहोंको दूरकर अत्यन्त प्रकाश करती हुई शोभाके सहित उठे ॥४३॥ तब भगवान्‌ने उठकर जगत्के निमित्त क्षुभित हुए कुछ कहनेकी इच्छासे इकट्ठे होकर आये हुए ब्रह्मादि देवताओंको देख॥४४॥निद्रासे विश्रान्त किये भगवान्‌ने उन देवताओंकी ओर तत्वार्थ दृष्टिसे देख प्रयोजनयुक्त वाणीसे धर्मयुक्तिसम्मत वचन कहे॥४५॥श्रीभगवान् बोले;हे देवताओ!तुम्हें

कहांसे विग्रह तथा कहांसे भय हुआ किस देवताका किस प्रयोजनसे क्या कार्य है, अथवा वह कार्य मुझमें नहीं है ॥ ४६ ॥ अथवा दानवोंसे उत्पन्न हुई क्या संसारमें अकुशल है, मनुष्योंके दुःख जाननेकी मैं शीघ्र इच्छा करता हूं ॥ ४७ ॥ मैं आप ब्रह्मके ज्ञानियोंके आगे शयन त्यागे खडा हूं; और आपके कल्याणके निमित्त स्थित हूं. तुम्हारा क्या कार्य करूं ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ॥ छ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार भगवान्के वचन सुन लोकपितामह ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओंके परमहित वाक्य बोले ॥ १ ॥ हे विष्णु ! हे असुरोंके नाश

किं खल्वकुशलं लोके वर्त्तते दानवोत्थितम् ॥ नृणामायासजननं शीघ्रमिच्छामि वेदितुम् ॥ ४७ ॥ एष ब्रह्मविदां मध्ये विहाय शयनोत्तमम् ॥ शिवाय भवतामर्थे स्थितः किं करवाणि वः ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि विष्णोर्योगशयनोत्थानं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा विष्णुगदितं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ उवाच परमं वाक्यं हितं सर्वदिवौकसाम् ॥ १ ॥ नास्ति किंचिद्भयं विष्णो सुराणामसुरान्तक ॥ येषां भवानभयदः कर्णधारो रणे रणे ॥ २ ॥ शक्रे जयति देवेशे त्वयि चासुरसूदने ॥ धर्मे प्रयतमानानां मानवानां कुतो भयम् ॥ ३ ॥ सत्ये धर्मे च निरतान् मानवान्विगतज्वरान् ॥ नाकाले धर्मिणो मृत्युः शक्नोति प्रसमीक्षितुम् ॥ ४ ॥ मानवानां च पतयः पार्थिवाश्च परस्परम् ॥ षड्भागमुपभुञ्जाना न भयं कुर्वते मिथः ॥ ५ ॥ ते प्रजानां शुभकराः करदैरवगर्हिताः ॥ सुकरैर्विप्रयुक्तार्थाः कोशमापूरयन्त्युत ॥ ६ ॥ स्फीतान् जलपदान्सर्वान्पालयन्तः क्षमापराः ॥ अतीक्ष्णदण्डाश्चतुरो वर्णान् जुगुपुरञ्जसा ॥ ७ ॥

करनेवाले ! देवताओंको कुछभी भय नहीं है; कारण कि देवताओंको युद्धमें आप अभय देनेहारे मलाहरूप हो ॥ २ ॥ हे भगवन् ! देवताओंके स्वामी इन्द्रके जय प्राप्त करने तथा आपके जागनेपर धर्ममें प्रवृत्त मनुष्योंको कुछभी भय नहीं है ॥ ३ ॥ सत्यधर्ममें युक्त मनुष्य खेदसे रहित हो जाते हैं, धर्मात्माओंके अकालमें मृत्यु देखनकोभी समर्थ नहीं है ॥ ४ ॥ मनुष्योंके पति राजा अपने छह भागोंको भोगते हुए परस्पर भेदको प्राप्त नहीं होते; और भय नहीं करते ॥ ५ ॥ प्रजाओंको सुखके देनेवाले उनसे बहुत कर ग्रहण नहीं करते, उचित कर लेते हैं और ब्राह्मणोंसे युक्तार्थ हो खानोंके द्रव्योंसे अपने कोशको पूर्ण करते हैं ॥ ६ ॥ बढे हुए अपने देशोंकी पालना करते हुए और क्षमासे युक्त स्वल्प दंडदाता

चतुर राजा सब वर्णोंकी रक्षा करते हैं ॥ ७ ॥ भय न देनेवाले राजे अपने मंत्रियोंसे सम्यक् पूजित हो चतुरंगिनी सेनायुक्त छह गुणोंको भोगते हैं ॥ ८ ॥ धनुर्वेदविद्यामें तत्पर वेदोंमें निष्ठावाले सब राजा यथार्थ विधिसे और अत्यंत दक्षिणावाले यज्ञोंसे जय पाते हैं ॥ ९ ॥ वेदोंको पढ दीक्षा ले और ब्रह्मचर्या करके महर्षियोंका पूजन करते हैं; और पवित्र श्राद्धसे सैंकडों पितरोंका पूजन करते हैं ॥१०॥ ऐसे नृपतियोंका तीनलोकमें वेदोक्त कर्म लौकिक और धर्मशास्त्रोक्त कर्म अविदित नहीं, वे सब कर्म कर चुके ॥ ११ ॥ इस प्रकार ब्रह्मके जाननेवाले वे राजा महर्षियोंके समान तेजस्वी

नोद्वेजनीया भूतानां सचिवैः साधु पूजिताः ॥ चतुरङ्गबलैर्गुप्ता षड्गुणानुपभुञ्जते ॥ ८ ॥ धनुर्वेदपरा सर्वे सर्वे वेदेषु निष्ठिताः ॥ यजन्ते च यथाकालं यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः ॥ ९ ॥ वेदानधीत्य दीक्षाभिर्महर्षीन् ब्रह्मचर्यया ॥ श्राद्धैश्च मेध्यैः शतशस्तर्प्पयन्ति पितामहान् ॥ १० ॥ नैषामविदितं किञ्चित्त्रिविधं भुवि दृश्यते ॥ वैदिकं लौकिकं चैव धर्मशास्त्रोक्तमेव च ॥ ११ ॥ ते परावरवष्टार्था महर्षिसमतेजसः ॥ भूयः कृतयुगं कर्त्तुमुत्सहन्ते नराधिपाः ॥ १२ ॥ तेषामेव प्रभावेण शिवं वर्षति वासवः ॥ यथार्थं च ववुर्वाता विरजस्का दिशो दश ॥ १३ ॥ निरुत्पाता च वसुधा सुप्रचाराश्च खे ग्रहाः ॥ चन्द्रमाश्च सनक्षत्रः सौम्यं चरति योगतः ॥ १४ ॥ अनुलोमकरः सूर्यस्त्वयने द्वे चचार ह ॥ हव्यैश्च विविधैस्तृप्तः शुभगन्धो हुताशनः ॥१५॥ एवं सम्यक् प्रवृत्तेषु विवृद्धेषु मखादिषु॥तर्पयस्तु महीं कृत्स्नां नृणां कालभयं कुतः ॥ १६ ॥ तेषां ज्वलितकीर्तिनामन्योन्यवशवर्तिनाम् ॥ राज्ञां बलैर्बलवतां पीडयते वसुधातलम् ॥ १७ ॥

होकर फिर सतयुग करनेका उत्साह परस्पर करते हैं ॥ १२ ॥ तिन्हींके प्रभावसे इन्द्र श्रेष्ठ वर्षा करते हैं. और वायु यथार्थ गमन करता है; दशों दिशा धूलिरहित हो रही हैं ॥ १३ ॥ पृथ्वी उत्पातोंसे रहित है और श्रेष्ठ प्रचारसे युक्त है; आकाश, ग्रह, चंद्रमा, नक्षत्र सब सौम्य योगसे विचरते हैं ॥१४॥ सूर्य, भगवान् अनुकूल हुए दोनों अयनोंमें विचरते हैं और अनेक विधिकी आहुतियोंसे तृप्त हुए अग्निदेवता वर्तते हैं ॥१५॥ इस प्रकार सब यज्ञ आदिक निमित्त प्रवृत्त होने और सम्पूर्ण पृथ्वीके तृप्त होनेसे फिर मनुष्योंको कालका भय कहां है ॥१६॥ अब उन राजोंके परस्पर विलोम

हो जाने और परस्पर वशवर्ती हो ईर्षायुक्त वर्तनेसे उन महाकीर्तिमान् राजाओंकी सेनासे पृथ्वी पीडित हुई ॥ १७ ॥ हे भगवन् ! सो यह पृथ्वी उन राजोंके भारसे दुःखित हुई; विधर्मी राजाओंसे पीडित हो नौकामें बैठे हुए मनुष्योंके भारसे डूबती हुई नौकाकी समान व्याकुलतासे तुम्हारी शरण आई है ॥ १८ ॥ जिस प्रकार पर्वतमें लोहस्तंभसे बँधी नौका वायुसे चलायमान नहीं होती, इसी प्रकार पृथ्वी पर्वतोंद्वारा जलके मध्यमें धारण की गई है. इस समय इसका शैलरूप बंधन छूट गया है, इससे प्रलयकालमें जलपीडासे व्याकुल हो आर्द्रताको वारंवार धारण करती है ॥ १९ ॥ क्षत्रियोंके शरीर तेज, बल सेना आर मनुष्योंके विस्तीर्ण राष्ट्रोंसे पीडित हो शांत होती है ॥ २० ॥ और नगर २ में एक २ राजाके कोटि संख्या सेना है, और अपने २

सेयं भारपरिश्रान्ता पीड्यमाना नराधिपैः ॥ पृथिवी समनुप्राप्ता नौरिवासन्नविप्लवा ॥ १८ ॥ युगान्तसदृशै रूपैः शैलोच्चालितबन्धना ॥ जलोत्पीडाकुला स्वेदं धारयन्ती मुहुर्मुहुः ॥ १९ ॥ क्षत्रियाणां वपुर्भिश्च तेजसा च बलेन च ॥ नृणां च राष्ट्रैर्विस्तीर्णैः श्राम्यतीव वसुंधरा ॥ २० ॥ पुरे पुरे नरपतिः कोटिसंख्यैर्बलैर्वृतः ॥ राष्ट्रे राष्ट्रे च बहवो ग्रामाः शतसहस्रशः ॥ २१ ॥ भूमिपानां सहस्रैश्च तेषां च बलिनां बलैः ॥ ग्रामायुताद्यै राष्ट्रैश्च भूमिर्निर्विवरा कृता ॥ २२ ॥ सेयं निरामयं कृत्वा निश्चेष्टा कालमग्रतः ॥ प्राप्ता ममालयं विष्णो भवांश्चास्याः परा गतिः ॥ २३ ॥ कर्मभूमिर्मनुष्याणां भूमिरेषा व्यथां गता ॥ यथा न सीदेत्तत्कार्यं जगत्येषा हि शाश्वती ॥ २४ ॥ अस्या हि पीडने दोषो महान्स्यान्मधुसूदन ॥ क्रियालोपश्च लोकानां पीडितं च जगद्भवे ॥ २५ ॥

राष्ट्रमें सैकडों सहस्रों ग्रामोंके समूह हैं ॥ २१ ॥ उन सब ग्रामोंके मनुष्य और राजाओंकी सेनाके बल तथा राष्ट्रसे यह पृथ्वी पीडित हो, अवकाशरहित हो गई है ॥ २२ ॥ सो हे भगवन् ! यह पृथ्वी निरामय और कालकी चेष्टासे रहित होकर आपके आश्रममें आई है; आप इसकी परगति हो ॥ २३ ॥ यही भूमि इस पृथ्वीके ऊपर स्थित जीवोंकी कर्मभूमि है; सोही दुःखको प्राप्त हो रही है, सो जिस विधिसे यह पृथ्वी पीडित न हो सोई आपको करना उचित हो. यही शाश्वत जगत् धारण करती है ॥ २४ ॥ हे भगवन् ! पृथ्वीके पीडित होनेमें महान् दोष है; इसके दूषित होनेसे प्राणियोंकी क्रियाका

लोप और संसार दूषित होता है ॥ २५ ॥ और यही पृथ्वी राजाओंके समूहसे पीडित हो अपनी स्वाभाविक क्षमाका त्याग करके अचला नाम होकरभी चलायमान हो रही है ॥ २६ ॥ इस पृथ्वीका भार आपसेही उतरता है, ऐसा सुना और देखा है; इस कारण इस भारके दूर करनेमें हम तुमसे सम्मति करनेको आये हैं ॥ २७ ॥ सत्यमार्गमें वर्त्तमान सम्पूर्ण राजे राज्यको बढा रहे हैं. और मनुष्योंमें तीन वर्ण ब्राह्मणके अनुयायी हैं ॥ २८ ॥ सब वाक्योंमें सत्य वचन उत्तम है; सब वर्ण अपने २ धर्ममें युक्त हैं; सब ब्राह्मण वेदनिष्ठ, और सब मनुष्य ब्राह्मणोंके भक्त हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार धर्मके कारणसे जगत्में मनुष्य

भ्राम्यते व्यक्तमेवेयं पार्थिवौघप्रपीडिता ॥ सहजां या क्षमां त्यक्त्वा चलत्वमचला गता ॥ २६ ॥ तदस्याः श्रुतवन्तः स्म तच्चापि भवता श्रुतम् ॥ भारावतरणार्थं हि मन्त्रयाम सह त्वया ॥ २७ ॥ सत्पथे हि स्थिताः सर्वे राजानो राष्ट्रवर्द्धनाः ॥ नराणां च त्रयो वर्णा ब्राह्मणाननुयायिनः ॥ २८ ॥ सर्वं सत्यपरं वाक्यं वर्णा धर्मपरास्तथा ॥ सर्वे वेदपरा विप्राः सर्वे विप्रपरा नराः ॥ २९ ॥ एवं जगति वर्त्तन्ते मनुष्या धर्मकारणात् ॥ यथा धर्मवधो न स्यात्तथा मन्त्रः प्रवर्त्यताम् ॥ ३० ॥ सतां गतिरियं नान्या धर्मश्चास्याः सुसाधनम् ॥ राज्ञां चैव वधः कार्यो धरण्या भारनिर्णये ॥ ३१ ॥ तदागच्छ महाभाग सह वै मन्त्रकारणात् ॥ व्रजामो मेरुशिखरं पुरस्कृत्य वसुंधराम् ॥ ३२ ॥ एतावदुक्त्वा राजेन्द्र ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ पृथिव्या सह विश्वात्मा विरराम महाद्युतिः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि भारावतरणे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

वर्तते हैं, हे भगवन् ! जिस प्रकार धर्म नष्ट न हो, वह मंत्र आप कीजिये ॥ ३० ॥ धर्मका साधन करनाही उत्तम पुरुषोंकी श्रेष्ठ गति है; और पृथ्वीका भार दूर करनेको दुष्ट राजोंकाभी वध करना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे महाभाग ! इस कारण आप हमारे संग सम्मति करनेको आइये. हम पृथ्वीको आगे कर सुमेरु पर्वतको जाते हैं ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! ऐसा कहकर महाद्युतिमान लोकपितामह महात्मा ब्रह्मा पृथ्वीके सहित मौन हुए ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

वैशंपायन बोले; इस प्रकार तिनसे दृढ सम्मति कर श्रीभगवान् मेघके समान शब्द करके अचलकी समान, दुर्दिन मेघके आकारकी समान स्थित हुए ॥ १ ॥ उनके मोती और मणि बिजलीके समान चमकती थीं; और चंद्रमायुक्त मेघकी समान कांतिमान् जटामंडल धारण किये लक्ष्मी धारे ॥ २ ॥ चौंडी छातीमें रोमावली संयुक्त, श्रीवत्स चिह्नसे शोभायमान, और दोनों स्तनोंके मुखोंसे शोभित ॥ ३ ॥ पीले वस्त्रोंसे युक्त, अपने रूपको धारे, लोकोंके स्वामी, अविनाशी, भगवान् संध्याकालके मेघकी समान दर्शनीय हुए ॥ ४ ॥ गरुडपर चढ ब्रह्माजीको

वैशम्पायन उवाच ॥ बाढमित्येव सह तैर्दुर्दिनाम्भोदनिःस्वनः ॥ प्रतस्थे दुर्दिनाकारः सदुर्दिन इवाचलः ॥ १ ॥ समुक्तामणिवि-
द्योतं सचन्द्राम्भोदवर्चसम् ॥ सजटामण्डलं कृत्स्नं स बिभ्रच्छ्रीधरो हरिः ॥ २ ॥ स चास्योरसि विस्तीर्णे रोमाश्चोद्गतराजिमान् ॥
श्रीवत्सो राजते श्रीमांस्तनद्वयमुखाश्वितः ॥ ३ ॥ पीते वसानो वसने लोकानां गुरुरव्ययः ॥ हरिः सोऽभवदालक्ष्यः ससंध्याभ्र
इवाचलः ॥ ४ ॥ तं व्रजन्तं सुपर्णेन पद्मयोनिगतानुगम् ॥ अनुजग्मुः सुराः सर्वे तद्गतासक्तचक्षुषः ॥ ५ ॥ नातिदीर्घेण कालेन
संप्राप्ता रत्नपर्वतम् ॥ ददृशुर्देवतास्तत्र तां सभां कामरूपिणीम् ॥ ६ ॥ मेरोः शिखरविन्यस्तां संयुक्तां सूर्यवर्चसा ॥ काञ्चनस्त-
म्भरचितां वज्रसंधानतोरणाम् ॥ ७ ॥ मनोनिर्माणचित्राढ्यां विमानशतमालिनीम् ॥ रत्नजालान्तरवतीं कामगां रत्नभूषिताम् ॥ ८ ॥
कल्पतरुसमाकीर्णां सर्वर्तुकुसुमोत्कटाम् ॥ देवमायाधरां दिव्यां विहितां विश्वकर्मणा ॥ ९ ॥ तां हृष्टमनसः सर्वे यथास्थानं यथा-
विधि ॥ यथानिदेशं त्रिदशा विविशुस्ते सभां शुभाम् ॥ १० ॥

अगाडी कर चले, तब सब देवता भगवान्को देखते उनके पीछे २ चले ॥ ५ ॥ और थोडेही समयमें उन सब देवताओंने सुमेरु पर्वतपर कामरूप अपनी सभा देखी ॥ ६ ॥ सुमेरु पर्वतके शिखरपै सूर्यकी किरणोंसे चमकती हुई सुवर्णके स्तंभोंसे रची, हीरा, मणि तोरणोंसे युक्त ॥ ७ ॥ मनोमयी चित्रोंसे युक्त, सैकडों विमानोंकी समूहवाली, और रत्नोंके झरोखोंसे युक्त, कामरूपिणी रत्नोंसे भूषित ॥ ८ ॥ रत्नोंकी कूपियोंयुक्त, सब ऋतुओंके पुष्पोंसे उत्कट देवमायासे युक्त, दिव्य विश्वकर्मासे रची अपनी सभाको सब देवतोंने देखा ॥ ९ ॥ तिस सभाको देख देवता

प्रसन्नमनसे अपने २ स्थानमें यथाविधिसे उसमें प्रविष्टहुए ॥ १० ॥ वहां पहुंच अपने २ विमानोंपर और श्रेष्ठ आसनोंपर सब बैठे ॥ ११ ॥ इसके पीछे ब्रह्माजीसे प्रेरित हो प्रभंजन वायु "शब्द मत करो" ऐसा कहता हुआ; उसके ऐसा कहनेपर देवताओंके समाजमें मौनता छा गई तब ॥ १२ ॥ उन देवताओंके मध्यमें करुणा और खेदसे पृथ्वी कहने लगी ॥१३॥ पृथ्वी बोली; हे देव ! तुम मुझे और जगत्को धारण करते हो, और भुवनोंको पालते हो ॥१४॥ हे भगवन् ! जो कुछ आपने बल और तेजसे धारण किया है वही तुम्हारे प्रसादके पश्चात् यत्नपूर्वक मैं धारण करती हूँ ॥१५॥

ते निषेदुर्यथोक्तेषु विमानेष्वासनेषु च ॥ भद्रासनेषु पीठेषु कुथास्वास्तरणेषु च ॥ ११ ॥ ततः प्रभञ्जनो वायुर्ब्रह्मणा साधु चोदितः ॥ मा शब्दमिति सर्वत्र प्रचक्रामाथ तां सभाम् ॥ १२ ॥ निःशब्दस्तिमिते तस्मिन् समाजे त्रिदिवौकसाम् ॥ बभाषे धरणी वाक्यं खेदात्करुणभाषिणी ॥ १३ ॥ धरण्युवाच ॥ त्वया धार्या त्वहं देव त्वया वै धार्यते जगत् ॥ त्वं धारयसि भूतानि भुवनानि बिभर्षि च ॥ १४ ॥ यत्त्वया धार्यते किञ्चित् तेजसा च बलेन च ॥ ततस्तव प्रसादेन मया यत्नाच्च धार्यते ॥ १५ ॥ त्वया धृतं धारयामि नाधृतं धारयाम्यहम् ॥ नहि तद्विद्यते भूतं यत्त्वया नानुधार्यते ॥१६॥ त्वमेव कुरुषे देव नारायण युगे युगे ॥ मम भारावतरणं जगतो हितकाम्यया ॥ १७ ॥ तवैव तेजसा क्रान्तां रसातलतलं गताम् ॥ त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम् ॥ १८ ॥ दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः ॥ त्वामेव शरणं नित्यमुपयास्ये सनातनम् ॥ १९ ॥ तावन्मेऽस्ति भयं भूयो यावन्न त्वां ककुद्मिनम् ॥ शरणं यामि मनसा शतशो ह्युपलक्षये ॥ २० ॥

और तुमसे धारण की हुई मैं वस्तुको धारण करती हूं; और विना धारी वस्तुको नहीं धारण करती; हे देव ! ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे तुम धारण न करते हो ॥१६॥ हे वीर ! हे नारायण !! आपही युग २ में जगत्के हितके निमित्त मेरा महाभार वारंवार उतारते हो ॥ १७ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारेही तेजसे आच्छादित हुई मैं रसातलको प्राप्त हूं; हे देवतोंमें श्रेष्ठ भगवान् ! मेरी रक्षा करो, मैं आपके शरण आई हूं ॥१८॥ मैं दानवों और दुष्ट आत्मावाले राक्षसोंसे पीडित हूं; और नित्य तुम सनातनहीकी शरणको प्राप्त हूं॥१९॥हे भगवन् ! मुझे उसी समयतक भय है जबतक मैं धुरंधर आपकी शरणको

नहीं प्राप्त होती हूं;जो अनेक विघ्ननाशकहैं॥२०॥मुझे प्रथम सनातन नारायणने देखा था; और मुझको ग्रहण कर उन्होंने मृन्मय दोराक्षस किये॥२१॥ यह दोनों महात्मा विष्णुके कानसे उत्पन्न हुए थे, जिस समय वह महार्णवमें शयन करते थे, उस समय वह उत्पन्न हो काठकी कुडचकी समान अचेतन रहे ॥२२॥ तब वे दोनों राक्षस ब्रह्माके प्रेरे हुए स्वर्गको आच्छादन कर बढे ॥२३॥ वायु और प्राणवाले उन दोनों राक्षसोंको ब्रह्माने हाथसे छूकर, एकको कोमल और एकको कठिन जाना ॥२४॥ पीछे जलसे उत्पन्न ब्रह्माजीने कोमल रूपका नाम मधु और कठिनका कैटभ नाम रक्खा ॥२५॥

अहमादौ पुराणस्य संक्षिप्ता पद्मयोनिना ॥ मावरुन्धां कृतौ पूर्वं मृन्मयौ द्वौ महासुरौ ॥२१॥ कर्णस्रोतोद्भवौ तौ हि विष्णोरस्य महात्मनः ॥ महार्णवे प्रस्वपतः काष्ठकुडयसमौ स्थितौ ॥२२॥ तौ विवेश स्वयं वायुर्ब्रह्मणा साधु चोदितः ॥ दिवं प्रच्छादयन्तौ तु ववृधाते महासुरौ ॥ २३ ॥ वायुप्राणौ तु तौ गृह्य ब्रह्मा पर्यमृशच्छनैः ॥ एकं मृदुतरं मेने कठिनं वेद चापरम् ॥ २४ ॥ नामनी तु तयोश्चक्रे स विभुः सलिलोद्भवः ॥ मृदुस्त्वयं मधुर्नाम कठिनः कैटभोऽभवत् ॥२५॥ तौ दैत्यौ कृतनामानौ चेरतुर्बलदर्पितौ ॥ सर्वमेकार्णवं लोकं योद्धुकामौ सुदुर्जयौ ॥ २६ ॥ तावागतौ समालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ एकार्णवाम्बुनिचये तत्रैवान्तरधीयत ॥ २७ ॥ स पद्मे पद्मनाभस्य नाभिमध्यात्समुत्थिते ॥ रोचयामास वसतिं गुह्यां ब्रह्मा चतुर्मुखः ॥ २८ ॥ तावुभौ जलगर्भस्थौ नारायणपितामहौ ॥ बहून्वर्षगणानप्सु शयानौ न चकम्पतुः ॥ २९ ॥ अथ दीर्घस्य कालस्य तावुभौ मधुकैटभौ ॥ आजग्मतुस्तमुद्देशं यत्र ब्रह्मा व्यवस्थितः ॥ ३० ॥

जब नामकरण हो गया तब वे दैत्य मन्दोन्मत्त हुए. एकार्णव समुद्रमें युद्धकी इच्छा करते विचरने लगे ॥२६॥ लोकपितामह ब्रह्माजीने उनको आता देख तिस एकार्णव समुद्रमेंही अंतर्ध्यान हो गये ॥२७॥ जो पद्म भगवान्की नाभिसे निकला था, उसीमें ब्रह्माजीने छिपनेकी इच्छा की ॥२८॥ तहां जलमें नारायण और ब्रह्माजीको बहुत दिन सोते बीत गये ॥२९॥ जब बहुत समय बीत गया, तब वे दोनों दैत्य ब्रह्माजीके स्थानको जान

उनके समीप फिर आये ॥ ३० ॥ और महाकायवाले घोर दुरासद राक्षसोंको देखकर ब्रह्माजी कमलकी डंडीमें कंपित हुए. उनके कंपित होनेसे महाते-
जस्वी विष्णु भगवान् जानकर शयनसे उठे ॥ ३१ ॥ और उनके संग युद्ध करने लगे; तिस एकार्णव समुद्रमें जब कि त्रिलोकीमें जलही जल हो गया
था ॥ ३२ ॥ भगवान्का युद्ध तिनके संग सहस्रों वर्षतक हुआ; परन्तु असुरोंको युद्धमें श्रम न हुआ ॥ ३३ ॥ तब बहुतकाल व्यतीत हो चुकनेपर
मदवाले वे दैत्य प्रसन्नमनसे प्रभु नारायणसे बोले ॥ ३४ ॥ कि हम तुमसे युद्ध कर प्रसन्न हुए; सो आप हमको मारो; परन्तु जहां पृथ्वीपर जल नहीं

दृष्ट्वा तावसुरौ घोरौ महाकायौ दुरासदौ ॥ ब्रह्मणा ताडितो विष्णुः पद्मनालेन वै तदा ॥ उत्पपाताथ शयनात्पद्मनाभो महा-
द्युतिः ॥ ३१ ॥ तद्युद्धमभवद्घोरं तयोस्तस्य च वै तदा ॥ एकार्णवे तदा लोके त्रैलोक्ये जलतां गते ॥ ३२ ॥ तदाभूत्तुमुलं युद्धं
वर्षसंख्यासहस्रशः ॥ न च तावसुरौ युद्धे तदा श्रममवापतुः ॥ ३३ ॥ अथातो दीर्घकालस्य तौ दैत्यौ युद्धदुर्मदौ ॥ ऊचतुः
प्रीतमनसौ देवं नारायणं हरिम् ॥ ३४ ॥ प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः ॥ आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन
परिप्लुता ॥ ३५ ॥ हतौ च तव पुत्रत्वं प्राप्नुयावः सुरोत्तम ॥ यो ह्यावां युधि निर्जेता तस्यावां विहितौ सुतौ ॥ ३६ ॥ स तु गृह्य
मृधे दोर्भ्यां दैत्यौ तावभ्यपीडयत् ॥ जग्मतुर्निधनं चापि तावुभौ मधुकैटभौ ॥ ३७ ॥ तौ हतौ चाप्लुतौ तोये वपुर्भ्यामेकतां गतौ ॥
मेदो मुमुचतुर्दैत्यौ मथ्यमानौ जलोर्मिभिः ॥ ३८ ॥ मेदसा तज्जलं व्याप्तं ताभ्यामन्तर्दधेऽनघः ॥ नारायणश्च भगवानसृजत्स
पुनः प्रजाः ॥ ३९ ॥ दैत्ययोर्मेदसाच्छन्ना मेदिनीति ततः स्मृता ॥ प्रभावात्पद्मनाभस्य शाश्वती जगती कृता ॥ ४० ॥

हो वहां मारो ॥ ३५ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ भगवन् ! हम मरकर आपके पुत्र होंगे; कारण कि जो कोई हमको युद्धमें जीतनेवाला है तिसके हम पुत्र
हैं ॥ ३६ ॥ यह वचन सुनकर भगवान्ने तिनको अपनी जांघोंपै धरकर पीडित किया, तब वे दोनों मधु कैटभ मृतक हो गये ॥ ३७ ॥ और मरे हुए
उन दोनोंका शरीर एक हो गया; तथा मथे हुए तिन दैत्योंके शरीरसे मेद धातु निकलकर फैलने लगी ॥ ३८ ॥ फिर तिन दैत्योंके मेदधातुसे पापरहित
नारायण भगवान्ने इस पृथ्वीको ढक दिया, इस प्रकार भगवान्ने वारंवार प्रजा उत्पन्न की है ॥ ३९ ॥ नारायणने अपने प्रभावसे यह पृथ्वी स्थिर

करी; दैत्यके मेदसे आच्छादन होनेसे यह पृथ्वी मेदिनी कहलाती है ॥४०॥ पहले वाराह अवतार धारकर मार्कंडेयजी ऋषिके देखते२ मुखसे खोद-
कर मुझे एकही दांतसे निकाला था॥४१॥ और फिर मुझे देवताओंके सामने बलिराजाके निकट नामके विष्णु भगवान्‌ने ग्रहण किया ॥ ४२ ॥
अब मैं दुःखसे दुःखित हुई अनाथाकी समान, गदाके धारण करनेवाले जगत्‌के स्वामी भगवान्‌की शरण आई हूं॥ ४३ ॥ अग्नि सुवर्णका गुरु है,
सूर्य गौओंका गुरु है, नक्षत्रोंका गुरु चंद्रमा, और नारायण मेरे गुरु हैं॥४४॥ कारण कि मैं एक मात्र इस स्थावर और जंगम जगत्‌को धारण कर
रही हूं; और मेरे धारण किये हुएको गदाधर भगवान् धारण करते हैं॥४५॥परशुराम महाराजने भार उतारनेकी इच्छासे क्रोधसे इक्कीसवार क्षत्रि-

वाराहेण पुरा भूत्वा मार्कण्डेयस्य पश्यतः ॥ विषाणेनाहमेकेन तोयमध्यात्समुद्धृता॥४१॥हृताहं क्रमता भूयस्तदा युस्माकमग्रतः॥
बलेः सकाशाद्दैत्यस्य विष्णुना प्रभविष्णुना ॥४२॥ साम्प्रतं खिद्यमानाहमेनमेव गदाधरम् ॥ अनाथा जगतो नाथं शरण्यं शरणं
गता ॥ ४३ ॥ अग्निः सुवर्णस्य गुरुर्गवां सूर्यो गुरुः स्मृतः ॥ नक्षत्राणां गुरुः सोमो मम नारायणो गुरुः ॥ ४४ ॥ यदहं
धारयाम्येका जगत्स्थावरजङ्गमम्॥मया धृतं धारयते सर्वमेतद्गदाधरः ॥४५॥ जामदग्न्येन रामेण भारावतरणेप्सया ॥ रोषात्त्रिः-
सप्तकृत्वोऽहं क्षत्रियैर्विप्रयोजिता ॥ ४६ ॥ सास्मि वेद्यां समारोप्य तर्पिता नृपशोणितैः ॥ भार्गवेण पितुः श्राद्धे कश्यपाय निवे-
दिता ॥ ४७ ॥ मांसमेदोस्थिदुर्गन्धा दिग्धा क्षत्रियशोणितैः ॥ रजस्वलेव युवतिः कश्यपं समुपस्थिता ॥ ४८ ॥ स मां ब्रह्मर्षि-
रप्याह किमुर्वि त्वामवाङ्मुखी ॥ वीरपत्नीव्रतमिदं धारयन्ती विषीदसि ॥ ४९ ॥ साहं विज्ञापितवती कश्यपं लोकभावनम् ॥
पतयो मे हता ब्रह्मन् भार्गवेण महात्मना ॥ ५० ॥

योंको मारकर मुझे जीता॥ ४६ ॥ मुझे वेदीमें समारोपित कर क्षत्रियोंके रुधिरसे तृप्त कर अपने पिताके श्राद्धके दिन उन्होंने कश्यपऋषिको दे
दी॥४७॥ मांस, मेद, अस्थिसे दुर्गंधयुक्त, क्षत्रियोंके रुधिरसे लिपी हुई, रजस्वला स्त्रीके समान मैं नीचेको मुख किये कश्यपऋषिको प्राप्त हुई ॥ ४८॥
तब उन ब्रह्मर्षिने मुझसे कहा; कि हे उर्वी ! तू नीचा मुख क्यों किये है ! हे शूरवीरोंकी पत्नी ! तू इस व्रतको धारण किये क्या दुःख पाती है॥४९॥
तब मैंने कश्यपऋषिसे कहा; हे ब्रह्मन् ! मेरे पति भृगुजी महाराजने मार दिये ॥ ५० ॥

इस कारण उन शस्त्रवृत्तियोंवाले क्षत्रियोंसे हीन होकर मैं विधवा हुई,मेरे नगर शून्य हो रहे हैं. इस कारण मैं उन्हें धारण नहीं कर सक्ती ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे निमित्त आप ऐसा पति दो कि, राजा मुझे ग्राम नगरों समुद्रों सहित रक्षित करे ॥ ५२ ॥ यह वचन सुन बहुत अच्छा, यह वचन कहकर कश्यपजीने मुझे मनुष्योंके इन्द्र मनुके अर्थ दिया ॥ ५३ ॥ तब मैं मनुजीके पुण्यको प्राप्त हो इक्ष्वाकु राजाके कुलमें रही और बहुत समयमें पृथुसे पार्थिवताको प्राप्त हुई ॥ ५४ ॥ इस प्रकार मनुजी महाराजके अर्थ दी हुई मुझको सहस्रों राजाने भोगा है; और महर्षियोंके कुलने मुझे भोगा है॥५५॥ बहुतसे शूर वीर क्षत्री मुझको जीतकर स्वर्गमें प्राप्त हुए, तथा वे सब कालके वशसे मुझमेंही प्रलयको प्राप्त

साहं विहीना विक्रान्तैः क्षत्रियैः शस्त्रवृत्तिभिः ॥ विधवा शून्यनगरा न धारयितुमुत्सहे॥५१॥तन्मह्यं दीयतां भर्ता भगवंस्त्वत्समो नृपः ॥ रक्षेत्सग्रामनगरां यो मां सागरमालिनीम् ॥ ५२ ॥ स श्रुत्वा भगवान् वाक्यं बाढमित्यब्रवीत्प्रभुः ॥ ततो मां मानवेन्द्राय मनवे स प्रदत्तवान् ॥ ५३ ॥ सा मनुप्रभवं दिव्यं प्राप्येक्ष्वाकुकुलं नृपम् ॥ विपुलेनास्मि कालेन पार्थिवात्पार्थिवं गता ॥ ५४ ॥ एवं दत्तास्मि मनवे मानवेन्द्राय धीमते ॥ भुक्ता राजसहस्रैश्च महर्षिकुलसंमितैः ॥५५॥ बहवः क्षत्रियाः शूरा मां जित्वा दिवमाश्रिताः ॥ ते च कालवशं प्राप्य मय्येव प्रलयं गताः ॥ ५६ ॥ मत्कृते विग्रहा लोके वृत्ता वर्तन्त एव च ॥ क्षत्रियाणां बलवतां संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ५७ ॥ एतद्युष्मत्प्रवृत्तेन दैवेन परिपाल्यते ॥ जगद्धितार्थं कुरुत राज्ञां हेतुं रणं क्षये ॥ ५८ ॥ यद्यस्ति मयि कारुण्यं भारशैथिल्यकारणात् ॥ एकश्चक्रधरः श्रीमानभयं मे प्रयच्छतु ॥ ५९ ॥ यमहं भारसंतप्त संप्राप्त शरणार्थिनी ॥ भारो यद्यवरोप्तव्यो विष्णुरेष ब्रवीतु माम् ॥ ६० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

हो गये ॥५६॥ मेरेही निमित्त इस संसारमें युद्धसे न लौटनेवाले बलवान् क्षत्रियोंके संग्राम होते हैं ॥५७॥ हे भगवन् ! यह सब आपहीसे प्रवृत्त होता है; हे भगवन् ! जगत्का मंगल करो; जो मेरे ऊपर दया करते हो तो रसाके क्षयमें राजाओंके प्रयोजन करो ॥ ५८ ॥ जो मेरे ऊपर कृपा है तो मेरे भार और दुःखके कारणसे एक चक्रके धारण करनेवाले शोभायमान भगवान् मुझे अभय दो ॥५९॥ जो कि मैं भारसे संतप्त हो शरणमें आई हूं,वह मेरा भार विष्णु भगवान् उतारे और मुझसे कहें॥६०॥इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषाटीकायां धरणीवाक्ये द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

वैशम्पायनजी बोले; इस प्रकार वे सब देवता पृथ्वीके वचन सुन इसी प्रयोजनको विचारते ब्रह्माजीसे बोले॥१॥हे भगवन् ! पृथ्वीके भार इस उतरनेकी युक्ति करनी चाहिये कारण कि संसारके शरीरकर्ता और लोकोंको उत्पन्न करनेवाले आपही हो॥२॥और जो यथार्थ महेन्द्र,धर्मराज, वरुण, कुबेर तथा आप नारायणको ॥३॥तथा चंद्रमा, सूर्य, वायु, बारह आदित्य; आठ वसु,संसारको उपजानेवाले ग्यारह रुद्र ॥४॥ देवताओंके अग्रणी, अश्विनीकुमार बारह साध्यसंज्ञक देवता, बृहस्पति, शुक्र, कालप्रभु, तथा कलियुग ॥५॥ हे भगवन् ! शिवजी, स्वामिकार्तिक,राक्षस,गंधर्व, चारण,

वैशम्पायन उवाच ॥ ते श्रुत्वा पृथिवीवाक्यं सर्व एव दिवौकसः ॥ तदर्थकृत्यं संचिन्त्य पितामहमथाब्रुवन् ॥ १ ॥ भगवन् ह्रियतामस्या धरण्या भारसंततिः ॥ शरीरकर्ता लोकानां त्वं हि लोकस्य चेश्वरः ॥ २ ॥ तत्कर्तव्यं महेन्द्रेण यमेन वरुणेन च ॥ यद्वा काय धनेशेन स्वयं नारायणेन वा ॥ ३ ॥ यद्वा चन्द्रमसा कार्यं भास्करेणानिलेन वा ॥ आदित्यैर्वसुभिर्वापि रुद्रैर्वा लोकभावनैः ॥४॥ अश्विभ्यां देववैद्याभ्यां साध्यैर्वा त्रिदशालयैः ॥ बृहस्पत्युशनोभ्यां वा कालेन कलिनापि वा ॥ ५ ॥ महेश्वरेण वा ब्रह्मन् विशाखेन गुहेन वा ॥ यक्षराक्षसगन्धर्वैश्चारणैर्वा महोरगैः ॥ ६ ॥ पतगैः पर्वतैश्चापि सागरैर्वा महोर्मिभिः ॥ गङ्गामुखाभिर्दिव्याभिः सरिद्भिर्वा सुरेश्वर ॥ ७ ॥ क्षिप्रमाज्ञापय विभो कथमंशः प्रयुज्यताम् ॥ यदि ते पार्थिवं कार्यं कार्यं पार्थिवविग्रहे ॥ ८ ॥ कथमंशावतरणं कुर्मः सर्वे पितामह ॥ अन्तरिक्षगता ये च पृथिव्यां पार्थिवाश्च ये ॥ ९ ॥ सदस्यानां च विप्राणां पार्थिवानां कुलेषु च ॥ अयोनिजाश्चैव तनूः सृजामो जगतीतले ॥ १० ॥

महा सर्पादिक॥६॥इन सबोंको तथा शैल आदि पर्वतोंको तथा महान् तरंगोंवाले समुद्र गंगा आदि दिव्य नदी ॥७॥ इन सबोंको जो कुछ कर्त्तव्य है; हे स्वामिन् ! आप शीघ्र कहो कि किस प्रकार अपने२ अंशोंसे अवतार लें, यदि राजाओंके विग्रहमें पृथ्वीका कार्य करें॥८॥तौ हे पितामह! कहिये हम किस प्रकारसे अंशोंसे अवतार लें,जो आकाशमें विचरनेवाले देवता तथापृथ्वीमें विचरनेवाले राजाओंको जो कर्तव्यहै सो कहो॥९॥हे ब्रह्मन् !विधिके करनेवाले ब्राह्मणोंके कुलमें अथवा क्षत्रियोंके कुलमें हमको जन्म लेना योग्य है;अथवा पृथ्वीके बीचमें विना योनिसे उत्पन्न हुए शरीरको हम धारण

करें ॥१०॥ इस प्रकार एक कार्यके करने वाले देवताओंके वचनको सुन ब्रह्माजी यह वचन बोले॥११॥हे देवताओ ! जो तुमने निश्चय किया है सो ठीक है.आप तेजसे अपने समान शरीरोंको पृथ्वीमें रचो ॥ १२ ॥ हे श्रेष्ठ देवताओ ! तुम सब अपने २ तेजसे पृथ्वीपर त्रिभुवनकी शोभाको धारण किये जन्म लो ॥१३॥ कि पृथ्वीमें भारत वंशके राजा होनेपर पृथ्वीको भयभीत जानकर जो मैंने किया सो सुनो ॥ १४ ॥ पूर्वकालमें कश्यपके पुत्रके सहित पश्चिमसागरके किनारे कथा प्रसंगसे स्थित हुआ ॥१५॥ संसारके वृत्तान्त और बहुतसे वेदानुगामी पुराणोंकी विचारवाली

सुराणामेककार्याणां श्रुत्वैतन्निश्चितं मतम् ॥ देवैः परिवृतः प्राह वाक्यं लोकपितामहः ॥ ११ ॥ रोचते मे सुरश्रेष्ठा युष्माकमपि निश्चयः ॥ सृजध्वं स्वशरीरांशांस्तेजसात्मसमान्भुवि ॥ १२ ॥ सर्व एव सुरश्रेष्ठास्तेजोभिरवरोहत ॥ भावयन्तो भुवं देवीं लब्ध्वा त्रिभुवनश्रियम् ॥ १३ ॥ पार्थिवे भारते वंशे पूर्वमेव विजानता ॥ पृथिव्यां संभ्रममिमं श्रूयतां यन्मया कृतम् ॥१४॥ समुद्रेऽहं पुरा पूर्वं वेलामासाद्य पश्चिमाम् ॥ आसे सार्द्धं तनूजेन कश्यपेन महात्मना ॥ १५ ॥ कथाभिः पूर्ववृत्ताभिर्लोकवेदानुगामिभिः ॥ इतिवृत्तैश्च बहुभिः पुराणप्रभवैर्गुणैः ॥ १६ ॥ कुर्वतस्तु कथास्तास्ताः समुद्रः सह गङ्गया ॥ समीपमाजगामाशु युक्तस्तोयदमारुतैः ॥ १७ ॥ स वीचिविषमां कुर्वन् गतिं वेगतरङ्गिणीम् ॥ यादोगणविचित्रेण संछन्नस्तोयवाससा ॥ १८ ॥ शङ्खमुक्तामलतनुः प्रवालद्रुमभूषणः ॥ युक्तश्चन्द्रमसा पूर्णः साभ्रगम्भीरनिःस्वनः ॥ १९ ॥ स मां परिभवन्नेव स्वां वेलां समतिक्रमन् ॥ क्लेदयामास चपलैर्लावणैरम्बुविस्रवैः ॥ २० ॥

कथा तथा और भी पुराणवार्ता विचार करते हुए ॥१६॥ मेरे समीप शीघ्रही गंगानदीसहित मेघ और वायुके संग सागर आया॥१७॥ तीक्ष्ण तरंग करता, नदियोंके वेगसे युक्त, विचित्र जल जन्तुओंसे युक्त, जलरूपी वस्त्रसे ढका हुआ॥१८॥शंख,मोतीसे सुन्दर शरीरवाला, मूंगामणीके आभूषण पहिने,पूर्णचंद्रमासे युक्त, गंभीर मेघके समान शब्द करता हुआ ॥ १९ ॥ इस प्रकार सागर मेरा तिरस्कार कर अपनी वेलाको उल्लंघता हुआ जलकी चंचल लावण्यतासे मुझे क्लेदित करने लगा ॥ २० ॥

इस प्रकार उस स्थानमें जब मुझे समुद्र पीडा देने लगा, तब मैंने कहने योग्य वाणीसे कहा; हे सागर ! शान्त हो ॥२१॥ तब शांत होनेका वचन सुन समुद्र अपना स्वल्परूप कर तरंगोंके समूहको अंगमें धारण किये राजलक्ष्मीसे प्रकाशित हो स्थित हुआ ॥ २२ ॥ तब मैंने तुम्हारे हितकी इच्छासे भार दूर करनेकी इच्छासे गंगासहित समुद्रको शाप दिया ॥ २३ ॥ कि हे समुद्र ! जिस कारणसे तू राजाके समान रूप धारण किये खडा है, इससे तू पृथ्वीको पालनेवाला राजाही होगा ॥२४॥ और तहांभी अपने स्वभावसे उत्पन्न लीलाको धारण करता हुआ भरत राजाके कुलमें उत्पन्न हो मनुष्योंका

तं च देशं व्यवसितः समुद्रोऽद्रिर्विमर्दितुम् ॥ उक्तः संरब्धया वाचा शान्तोऽसीति मया तदा ॥ २१ ॥ शान्तोऽसीत्युक्तमात्रस्तु तनुत्वं सागरो गतः ॥ संहतोर्मितरङ्गौघः स्थितो राजश्रिया ज्वलन् ॥ २२ ॥ भूयश्चैव मया शप्तः समुद्रः सह गङ्गया ॥ सकारणां मतिं कृत्वा युष्माकं हितकाम्यया ॥ २३ ॥ यस्मात्त्वं राजतुल्येन वपुषा समुपस्थितः ॥ गच्छार्णव महीपालो राजैव त्वं भविष्यसि ॥ २४ ॥ तत्रापि सहजां लीलां धारयन् स्वेन तेजसा ॥ भविष्यसि नृणां भर्त्ता भारतानां कुलोद्वहः ॥ २५ ॥ शान्तोऽसीति मयोक्तस्त्वं यच्चासि तनुतां गतः ॥ सुतनुर्यशसा लोके शन्तनुस्त्वं भविष्यसि ॥ २६ ॥ इयमप्यायतापाङ्गी गङ्गा सर्वाङ्गशोभना ॥ रूपिणी च सरिच्छ्रेष्ठा तत्र त्वामुपयास्यति ॥ २७ ॥ एवमुक्तस्तु मां क्षुब्धः सोऽभिवीक्ष्यार्णवोऽब्रवीत् ॥ मां प्रभो देवदेवानां किमर्थं शप्तवानसि ॥ २८ ॥ अहं तव विधेयात्मा त्वत्कृतस्त्वत्परायणः ॥ अशपोऽसदृशैर्वाक्यैरात्मजं मां किमात्मना ॥ २९ ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन वेगात्पर्वणि वर्द्धितः ॥ यद्यहं चलितो ब्रह्मन्कोऽत्र दोषो ममात्मनः ॥ ३० ॥

स्वामी होगा ॥ २५ ॥ और जो तू शांत हो ऐसे मेरे वचन सुन सूक्ष्मरूप हो गया; इस कारण तू महायशस्वी शंतनु नाम होगा ॥२६॥ और यह नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाभी सम्पूर्ण अंगोंसे शोभित और रूपयुक्त तुझको प्राप्त होगी ॥ २७ ॥ इस प्रकार मेरे वचन सुन मेरी ओर देख क्षुभित हो समुद्र मुझसे बोला; हे देवताओंके देव ! आप मुझे किस कारण शाप देते हो ॥ २८ ॥ तुम्हारा रचा हुआ तुम्हारेही कृत्यमें तत्पर रहता हूं; शाप देने योग्य नहीं हूं; सो आपने मुझ पुत्रको किस कारण शाप दिया ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! आपहीकी प्रसन्नतासे मैं वेगसे पूर्णमासीके दिन बढता हूं सो यदि मैं

चलायमान हुआ तो इससे क्या दोष है ॥ ३० ॥ यदि पवनसे प्रेरित जलसे पर्वमें आप स्पर्श हो गये तो हे भगवन् ! इसमें शाप देनेका कौन कारण है ॥३१॥ और हे भगवन् ! उठे हुए महापवन, बढे हुए मेघ और पूर्णमासीके चंद्रमा इन तीन कारणोंसे मैं क्षोभको प्राप्त हुआ था ॥३२॥ सो हे भगवन् ! यदि आपके किये हुए इन तीन कारणोंसेही मैं अपराधके योग्य हूं तो आप क्षमा करो; मेरे इस शापको दूर करो ॥३३॥ हे देवेश ! इस प्रकार निरालंब और शापसे शिथिल अंगवाले मुझमें जो शरणागत आयेका प्रमाण देखो तो आप मुझपर कृपा करो ॥ ३४ ॥ हे देव !

क्षिप्ताभिः पवनैरद्भिः स्पृष्टो यद्यसि पर्वणि ॥ अत्र मे किन्तु भगवन् विद्यते शापकारणम् ॥ ३१ ॥ उद्धूतैश्च महावातैः प्रवृद्धैश्च बलाहकैः ॥ पर्वणा चेन्दुयुक्तेन त्रिभिः क्षुब्धोऽस्मि कारणैः ॥ ३२ ॥ एवं यद्यपराद्धोऽहं कारणैस्त्वत्प्रकल्पितैः ॥ क्षन्तुमर्हसि मे ब्रह्मन् शापोऽयं विनिवर्त्यताम् ॥ ३३ ॥ एवं मयि निरालम्बे शापाच्छिथिलतां गते ॥ कारुण्यं कुरु देवेश प्रमाणं यद्यवेक्षसे ॥ ३४ ॥ अस्यास्तु देव गङ्गया गां गतायास्त्वदाज्ञया ॥ मम दोषात्सदोषायाः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ३५ ॥ तमहं श्लक्ष्णया वाचा महार्णवमथाब्रुवम् ॥ अकारणज्ञं देवानां त्रस्तं शापानलेन तम् ॥ ३६ ॥ शांतिं व्रज न भेतव्यं प्रसन्नोऽस्मि महोदधे ॥ शापेऽस्मिन्सरितां नाथ भविष्यं शृणु कारणम् ॥ ३७ ॥ त्वं गच्छ भारते वंशे स्वं देहं स्वेन तेजसा ॥ आधत्स्व सरितां नाथ त्यक्त्वेमां सागरीं तनुम् ॥ ३८ ॥ महोदधे महीपालस्तत्र राजश्रिया वृतः ॥ पालयंश्चतुरो वर्णान् रंस्यसे सलिलेश्वर ॥ ३९ ॥

स्वर्गमें प्राप्त हुई मेरे दोषसे समान दोषवाली इस गंगापरभी आप प्रसन्न हूजिये ॥ ३५ ॥ तब मैं देवताओंके कार्यको जाननेवाले शापसे त्रस्त हुए समुद्रसे सुंदर वाणीसे बोला ॥ ३६ ॥ हे समुद्र ! मैं प्रसन्न हुआ; तू शांतिको प्राप्त हो भय मत कर; हे नदी-पति ! इस शापके होनेवाले कार्यको सुन ॥ ३७ ॥ हे नदियोंके स्वामी ! तू भारतवंशमें जाकर अपने तेजसे देहको धारण कर; और इस सागरके शरीरको त्याग ॥ ३८ ॥ हे समुद्र ! महीपाल वहां तू राजा हो, राजलक्ष्मीसे युक्त होकर चारों वर्णोंकी पालना करता हुआ क्रीडा कर ॥ ३९ ॥

और वह नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा मनुष्यशरीर धारण कर उसी कालमें रमण करनेके योग्य तुम्हारी सेवा करेगी ॥ ४० ॥ हे समुद्र! इस गंगाके संग प्रसन्न हुआ मेरी आज्ञासे इस जलके संकटसे उत्पन्न हुए अपराधके शापको तू भूल जायगा ॥ ४१ ॥ यह मेरी आज्ञा तुझको शीघ्रही करनी योग्य है; हे सागर! प्राजापत्य विधिसे गंगाके संग इस मेरी आज्ञाको तू कर॥ ४२॥ और स्वर्गसे च्युत हुए आठ वसु रसातलमें प्राप्त हुए हैं, उनके उत्पन्न करनेको मैंने तुमकोही नियुक्त किया है ॥ ४३ ॥ यह गंगा सूर्यके समान तेजस्वी देवताओंकी प्रीतिके बढानेवाले आठ वसुओंको संतानके निमित्त

इयं च ते सरिच्छ्रेष्ठा बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ तत्कालं रमणीयाङ्गी गङ्गा परिचरिष्यति ॥ ४० ॥ अनया सह जाह्नव्या मोदमानो ममाज्ञया ॥ इमं सलिलसंक्लेदं विस्मरिष्यसि सागर ॥ ४१ ॥ त्वरता चैव कर्त्तव्यं त्वयेदं मम शासनम् ॥ प्राजापत्येन विधिना गङ्गया सह सागर ॥ ४२ ॥ वसवः प्रच्युताः स्वर्गात् प्रविष्टाश्च रसातलम् ॥ तेषामुत्पादनार्थाय त्वं मया विनियोजितः ॥ ४३ ॥ अष्टौ तान् जाह्नवी गर्भानपत्यार्थं दधात्वियम् ॥ विभावसोस्तुल्यगुणान् सुराणां प्रीतिवर्द्धनान् ॥ ४४ ॥ उत्पाद्य त्वं वसून शीघ्रं कृत्वा कुरुकुलं महत् ॥ प्रवेष्टासि तनुं त्यक्त्वा पुनः सागर सागरीम् ॥ ४५ ॥ एवमेतन्मया पूर्वं हितार्थं वः सुरोत्तमाः ॥ भविष्यं पश्यता भारं पृथिव्याः पार्थिवात्मकम् ॥ ४६ ॥ तदेष शन्तनोर्वंशः पृथिव्यां रोपितो मया॥ वसवो ये च गङ्गायामुत्पन्नास्त्रिदिवौकसः ॥ ४७ ॥ अद्यापि भुवि गाङ्गेयस्तत्रैव वसुरष्टमः ॥ सप्तेमे वसवः प्राप्ताः स एकः परिलम्बते ॥४८॥ द्वितीयायां स सृष्टायां द्वितीया शन्तनोस्तनुः ॥ विचित्रवीर्यो द्युतिमानासीद्राजा प्रतापवान् ॥ ४९ ॥

धारण करेगी ॥ ४४ ॥ हे समुद्र! तुम तिन वसुओंको शीघ्र उत्पन्न कर कुरुकुलको बढाकर पीछे इस सागरके शरीरको प्राप्त हो जाओगे ॥ ४५॥ हे देवताओ! इस प्रकार मैंने पूर्ववृत्त होनहार जानकर तुम्हारे हितके निमित्त पृथ्वीके भार उतारनेको यह वर दिया है ॥ ४६ ॥ सो मैंने पृथ्वीपर शंतनु वंश स्थापन किया है; तहां आठ वसु गंगामें उत्पन्न हो रहे हैं॥ ४७ ॥ सो अबभी पृथ्वीमें गांगेय नाम आठवां वसु है; और ये सात यहां प्राप्त हो गये; तब एक वसु शेष है ॥४८॥ और शंतनु राजाकी दूसरी सत्यवती स्त्रीमें विचित्रवीर्य नाम कांतिमान राजा हुआ था ॥ ४९ ॥

और विचित्रवीर्य राजाके पांडु,धृतराष्ट्र यह दो श्रेष्ठ पुत्र हुए,सो अबभी पृथ्वीमें विख्यात हैं॥५०॥ पांडुराजाके दो भार्या कुंती और माद्री देवताओंकी स्त्रियोंके समान रूपवाली हैं ॥५१॥ और धृतराष्ट्र राजाके एकही गांधारी नाम भार्या पृथ्वीमें विख्यात पतिपरायण है ॥ ५२ ॥ वहां जन्म ले शत्रु और मित्र पक्षका विभाग करो. सो वहां उन राजाओंके पुत्रोंका महान् युद्ध होगा ॥५३॥ और उन राजाओंके पुत्रादिकोंमें क्लेश होनेसे मनुष्योंका क्षय होगा और यह युगान्तकी तुल्य महान् भय होगा ॥ ५४ ॥ सेनावाले राजाओंका परस्पर नाश होनेसे और पुर राष्ट्रोंके पृथक् २ भाग होनेसे

वैचित्र्यवीर्यौ द्वावेव पार्थिवौ भुवि साम्प्रतम् ॥ धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विख्यातौ पुरुषर्षभौ ॥ ५० ॥ तत्र पाण्डोः श्रिया जुष्टे द्वे भार्ये संबभूवतुः ॥ शुभे कुन्ती च माद्री च देवयोषोपमे तु ते॥५१॥धृतराष्ट्रस्य राज्ञस्तु भार्यैका तुल्यचारिणी ॥ गान्धारी भुवि विख्याता भर्त्तुर्नित्यं व्रते स्थिता ॥ ५२ ॥ तत्र वंशा विभज्यन्तां विपक्षाः पक्ष एव च ॥ पुत्रणां हि तयो राज्ञोर्भविता विग्रहो महान् ॥ ५३ ॥ तेषां विमर्दे दायाद्ये नृपाणां भविता क्षयः ॥ युगान्तप्रतिमं चैव भविष्यति महद्भयम् ॥ ५४ ॥ सबलेषु नरेन्द्रेषु शान्तयत्स्वितरेतरम् ॥ विविक्तपुरराष्ट्रौघा क्षितिः शैथिल्यमेष्यति ॥ ५५ ॥ द्वापरस्य युगस्यांते मया दृष्टं पुरातनम् ॥ क्षयं यास्यन्ति शस्त्रेण मानवैः सह पार्थिवाः ॥ ५६ ॥ तत्रावशिष्टान्मनुजान्सुप्तान्निशि विचेतसः ॥ धक्ष्यते शंकरस्यांशः पावकेनास्त्रतेजसा ॥ ५७ ॥ अन्तकप्रतिमे तस्मिन्निवृत्ते क्रूरकर्मणि ॥ समाप्तमिदमाख्यास्ये तृतीयं द्वापरं युगम् ॥ ५८ ॥ महेश्वरांशेऽपसृते ततो माहेश्वरं युगम् ॥ शिष्यं प्रवर्त्तते पश्चाद्युगं दारुणदर्शनम् ॥ ५९ ॥

पृथ्वी शिथिल हो जायगी ॥५५॥ और द्वापर युगके अंतमें पहलेभी मैंने शस्त्र और वाहनादिकोंसे राजाओंका और मनुष्योंका क्षय देखा है ॥५६॥ वहां शेष रहे मनुष्योंकी रात्रिमें विचेत सोते हुए शिवजीका अंश अश्वत्थामा शस्त्र और अपने तेजसे भस्म करेगा ॥ ५७ ॥ कल्पान्तके समान इस क्रूर कर्मके निवृत्त होनेपर इस आख्यानवाला तीसरा द्वापर युग समाप्त हो जायगा ॥ ५८ ॥ और माहेश्वर अंश श्रीकृष्णके वैकुंठ पधारनेपर तीक्ष्ण और दारुण दर्शन कलियुग प्रवर्त होगा ॥ ५९ ॥

जिसमें अधर्म करनेवाले पुरुष होंगे,स्वल्प धर्म रहेगा, सत्यका सयोग दूर होकर असत्यकी वृद्धि होगी॥६०॥तिस समय महेश्वर और स्वामिकार्तिक इन दो देवोंके आश्रय हुए मनुष्य वृद्धअवस्थाको प्राप्त होजावेंगे॥६१॥इस प्रकार यह पृथ्वीके राजाओंके नाशका निर्णय कहा है;हे देवताओ ! अब अंशसे अवतार लेनेमें विलम्ब मत करो॥ ६२॥ धर्मका अंश कुंती और माद्री रानीमें धारण करो;और विग्रहका मूल कलियुग गांधारीमें धारण करो ॥६३॥ और यह दो पक्ष पृथ्वीके राजाओंके होंगे, यह राजा कालसे प्रेरे हुए प्रेमयुक्त हो पृथ्वीके निमित्त संग्रामकी इच्छा करेंगे॥६४॥ हे पृथ्वी ! तू जा,

अधर्मप्रायपुरुषं स्वल्पधर्मप्रतिग्रहम् ॥ उत्सन्नसत्यसंयोगं वर्द्धितानृतसंचयम् ॥ ६० ॥ महेश्वरं कुमारं च द्वौ च देवौ समाश्रिताः ॥ भविष्यन्ति नराःसर्वे लोके न स्थविरायुषः॥ ६१ ॥ तदेष निर्णयःश्रेष्ठः पृथिव्यां पार्थिवान्तकः॥ अंशावतरणं सर्वे सुराः कुरुत माचिरम् ॥६२॥ धर्मस्यांशस्तु कुन्त्यां वै माद्र्यां च विनियुज्यताम् ॥ विग्रहस्य कलिर्मूलं गान्धार्यां विनियुज्यताम् ॥६३॥ एतौ पक्षौ भविष्यन्ति राजानः कालचोदिताः ॥ जातरागाः पृथिव्यर्थे सर्वे संग्रामलालसाः ॥ ६४ ॥ गच्छत्वियं वसुमती स्वां योनिं लोकधारिणी ॥ सृष्टोऽयं नैष्ठिको राज्ञामुपायो लोकविश्रुतः ॥ ६५ ॥ श्रुत्वा पितामहवचःसा जगाम यथागतम् ॥ पृथिवी सह कालेन वधाय पृथिवीक्षिताम् ॥६६॥ देवानचोदयद्ब्रह्मा निग्रहा सुरद्विषाम्॥ नरं चैव पुराणर्षिं शेषं च धरणीधरम्॥ ६७ ॥ सनत्कुमारं साध्यांश्च सुरांश्चाग्निपुरोगमान् ॥ वरुणं च यमं चैव सूर्याचन्द्रमसौ तदा ॥६८॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव रुद्रादित्यांस्तथाश्विनौ ॥ ततोंऽशानवनिं देवाःसर्व एवावतारयन्॥६९॥यथा ते कथितं पूर्वमंशावतरणं मया॥अयोनिजा योनिजाश्च ते देवाःपृथिवीतले॥७०॥

हे लोकधारिणी ! अपनी योनिको प्राप्त हो. यह राजनिधनका नैष्ठिक उपाय संसारमें प्रसिद्ध तुझसे कहा है॥६५॥ इस प्रकार ब्रह्माजीके वचन सुन पृथ्वी कालके संग राजाओंके वधकी इच्छासे अपने स्थानमें गई॥६६॥ब्रह्माजीने राक्षसोंके मारनेके निमित्त देवताओंकी प्रेरणा की;औरआपनारायण पर पृथ्वीको धारण करनेवाले शेष॥६७॥ सनत्कुमार, स्वाध्यसंज्ञक देवता, अग्नि, वरुण, यम, वसु, सूर्य, चंद्रमा ॥ ६८ ॥ गंधर्व, अप्सरा; रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार इन सब देवताओंके अंशसे ब्रह्माजीने पृथ्वीसे अवतार कराया॥ ६९ ॥ जैसा हमने पहले अंश अवतार कहा है कि, कोई

योनिसे उत्पन्न हुए, कोई विना योनिसे उपजे देवता पृथ्वीमें ॥ ७० ॥ दैत्य और दानवोंके संहार करनेको पुरुषोंके अधिपति हो इकट्ठे हुए वे राज्ञीवृक्षकी समान पुष्टअंग और वज्रप्रहार सहनेवाले॥७१॥कोई दश सहस्र हाथियोंके समान बलवाले कोई हाथियोंक समान बलवाले, कोई गदा, परिघ, शस्त्र, बरछीके सहनेवाले मूसलके समान भुजावाले ॥७२॥ कोई पर्वतके शिखरके नाश करनेवाले और सब मूशलसे युद्ध करनेवाले, सैंकडों सहस्रों देवता वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुए ॥ ७३ ॥ और कुरुवंशमें जो देवता थे, पांचालदेशमें जो राजा थे, और यज्ञ करनेवाले समृद्धियुक्त ब्राह्मणोंकी योनिमें जो थे॥७४॥ सम्पूर्ण शस्त्रविद्याके जाननेवाले, और धनुषधारी वेदके नियमसे युक्त सम्पूर्ण ऋषिगणोंसे युक्त पूजन यजन और युद्ध करनेवाले हुए ॥७५॥

दैत्यदानवहन्तारः संभूताः पुरुषेश्वराः ॥ क्षीरिकावृक्षसंकाशा वज्रसंहननास्तथा ॥७१॥ नागायुतबलाः केचि केचित्दोघबलान्विताः॥ गदापरिघशक्तीनां सहाः परिघबाहवः ॥७२॥ गिरिशृङ्गप्रहर्त्तारः सर्वे परिघयोधिनः॥ वृष्णिवंशसमुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः॥७३॥ कुरुवंशे च ते देवाः पञ्चालेषु च पार्थिवाः ॥ याज्ञिकानां समृद्धानां ब्राह्मणानां च योनिषु ॥७४॥ सर्वास्त्रज्ञा महेष्वासा वेदव्रतपरायणाः ॥ सर्वर्द्धि गुणसंपन्नायज्वानः पुण्यकर्मिणः ॥७५॥ आचालयेयुर्ये शैलान् क्रुद्धा भिन्द्युर्महीतलम् ॥ उत्पतेयुरथाकाशं क्षोभयेयुर्महोदधिम् ॥७६॥ एवमादिश्य तान् ब्रह्मा भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ नारायणे समावेश्य लोकान् शान्तिमुपागमत् ॥ ७७ ॥ भूयः शृणु यथा विष्णुरवतीर्णो महीतले ॥ प्रजानां वै हितार्थाय प्रभुः प्राणिहितेश्वरः ॥ ७८ ॥ यातिवंशजस्याथ वसुदेवस्य धीमतः ॥ कुले पूज्ये यशस्कर्मा जज्ञे नारायणः प्रभुः ॥७९॥ इतिश्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥

और वे सब क्रोधसे पर्वतोंको और पृथ्वीको चलायमान करनेमें समर्थ तथा आकाशमें गमन करने और समुद्रको क्षोभ करानेमें समर्थ हुए ॥ ७६ ॥ इस प्रकार भूतोंके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा तिनको आज्ञा दे लोंकोंको नारायणमें स्थित कर शांतिको प्राप्त हुए ॥७७॥ हे जन्मेजय ! जिस प्रकार प्रजाके हित करनेवाले प्राणियोंके हितमें समर्थ विष्णु भगवान्‌ने पृथ्वीमें अवतार लिया वह तुम सुनो ॥७८॥ ययाति वंशोत्पन्न बुद्धिमान् वासुदेव यशस्वी नारायणने पूज्यकुलमें जन्म लिया सो सुनो ॥७९॥ इति श्रीहरिवंशपर्वभाषायां देवानामंशावतरणे त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

वैशंपायन बोले; जब यह कार्य हो चुका और जब पृथ्वी अपने स्थानपर गई तब भारत कुलमें अंशसे देवताओंने अवतार लिया ॥१॥धर्म, इंद्र, वायु, अश्विनीकुमार,सूर्यके अंशोंका अवतार जब पृथ्वीमें हो गया॥२॥तथा देवगुरु बृहस्पतिके अवतार होनेके पीछे आठवें वसुका अवतार जब पृथ्वीमें हो लिया ॥३॥ मृत्युकाल, चंद्रमा, शुक्र,वरुणका अवतार पृथ्वीमें हो गया॥४॥ और शिवजी, मित्रदेवता, कुबेर, गंधर्व, उरग, यक्षोंका अवतार जब हो गया;तब इस प्रकार अंशावतार हो चुकनेपर॥५॥नारदमुनिने नारायणके अंशको अवतारके विना स्थित देखा॥६॥जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी,

वैशम्पायन उवाच ॥ कृतकार्ये गते काले जगत्यां च यथानयम् ॥ अंशावतरणे वृत्ते सुराणां भारते कुले ॥ १ ॥ भागेऽवतीर्णे धर्मस्य शक्रस्य पवनस्य च ॥ अश्विनोर्देवभिषजोर्भागे वै भास्करस्य च ॥२॥ पूर्वमेवावनिगते भागे देवपुरोधसः ॥ वसूनामष्टमे भागे प्रागेव धरणीं गते ॥ ३ ॥ मृत्योर्भागे क्षितिगते कलेर्भागे तथैव च ॥ भागे शुक्रस्य सोमस्य वरुणस्य च गां गते ॥ ४ ॥ शंकरस्य गते भागे मित्रस्य धनदस्य च ॥ गन्धर्वोरगयक्षाणां भागांशेषु गतेषु च ॥५॥ भागेष्वेतेषु गगनादवतीर्णेषु मेदिनीम् ॥ तिष्ठन्नारायणस्यांशे नारदः समदृश्यत ॥ ६ ॥ ज्वलिताग्निप्रतीकाशो बालार्कसदृशेक्षणः ॥ सन्यापवृत्तं विपुलं जटामण्डलमुद्वहन् ॥७॥ चन्द्रांशुशुक्ले वसने वसानो रुक्मभूषितः ॥ वीणां गृहीत्वा महतीं कक्षासक्तां सखीमिव ॥ ८ ॥ कृष्णाजिनोत्तरासङ्गो हेमयज्ञोपवीतवान् ॥ दण्डी कमण्डलुधरः साक्षाच्छक्र इवापरः ॥९॥ भेत्ता जगति गुह्यानां विग्रहाणां ग्रहोपमः ॥ गाता चतुर्णां वेदानामुद्गाता प्रथमर्त्विजाम् ॥ महर्षिर्विग्रहरुचिर्विद्वान् गान्धर्वकोविदः ॥ १० ॥

उदय होते हुए सूर्यके समान नेत्र और प्रदक्षिणरहित वेष्टन बडी जटामंडलको धारण किये॥७॥चंद्रमाके समान श्वेत वस्त्र धारे और सुवर्णके आभूषण पहिने,कांखमें सखीके समान वीणाको ग्रहण किये ॥८॥ काले मृगचर्म, सुवर्णके यज्ञोपवीत, दंडकमंडलुको धारण किये साक्षात् इन्द्रके समान ॥ ९ ॥ गुप्त विग्रहोंके नाश करनेवाले सूर्यके समान चारों वेदोंके गानेवाले ऋत्विजोंमें प्रथम उद्गाता महर्षि शरीरको धारे विद्वान् गंधर्ववेदके जाननेवाले ॥१०॥

वैररूपी क्रीडामें निश्चय किये ब्रह्माके पुत्र, दूसरे कलिरूप,देव गंधर्व मनुष्योंके आदिकारणोंको जाननेवाले महामुनि ॥११॥ विप्रोंके ऋषि नारदमुनि ब्रह्मलोकमें विचरनेवाले अविनाशी देवताओंकी सभामें स्थित वेगसे विष्णुके प्रति बोले ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! यह जो पृथ्वीमें अंशावतार हुआ है और इससे राजोंका क्षय विचारा है यह सब तुम्हारे विना निष्फल है ॥१३॥ यह राजोंका युद्ध तुम्हारेही आधीन है; इस कार्यकी सिद्धि नरनारायणके विना होती नहीं दीखती ॥१४॥ हे तत्व जाननेवाले भगवन् ! सब कुछ जाननेवाले आपको यह युक्त नहीं. हे देवदेव ! पृथ्वीके निमित्त

वैरिकेलिकिलो विप्रो ब्राह्मः कलिरिवापरः ॥ देवगन्धर्वलोकानामादिवक्ता महामुनिः ॥११॥ स नारदोऽथ ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः ॥ स्थितो देवसभामध्ये संरब्धो विष्णुमब्रवीत् ॥१२॥ अंशावतरणं विष्णोर्यदिदं त्रिदशैः कृतम् ॥ क्षयार्थं पृथिवीन्द्राणां सर्वमेतदकारणम् ॥ १३ ॥ यदेतत्पार्थिवं क्षत्रं स्थितं त्वयि यदीश्वर ॥ नृनारायणयुक्तोऽयं कार्यार्थः प्रतिभाति मे ॥ १४ ॥ न युक्तं जानता देव त्वया तत्वार्थदर्शिना ॥ देवदेव पृथिव्यर्थे प्रयोक्तुं कार्यमीदृशम् ॥१५॥ त्वं हि चक्षुष्मतां चक्षुः श्लाघ्यः प्रभवतां प्रभुः ॥ श्रेष्ठो योगवतां योगी गतिर्गतिमतामपि ॥१६॥ देवभागान् गतान् दृष्ट्वा किं त्वं सर्वाश्रयो विभुः ॥ वसुंधरायाः साह्यार्थमंशं स्वं नाऽनुयुञ्जसे ॥१७॥ त्वया सनाथा देवांशास्त्वन्मयास्त्वत्परायणाः ॥ जगत्यां संचरिष्यन्ति कार्यात्कार्यान्तरं गताः ॥ १८ ॥ तदहं त्वरया विष्णो प्राप्तः सुरसभामिमाम् ॥ तव संचोदनार्थं वै शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥ १९ ॥ ये त्वया निहता दैत्याः संग्रामे तारकामये ॥ तेषां शृणु गतिं विष्णो ये गताः पृथिवीतलम् ॥ २० ॥

नरनारायणके विना कार्यका योग मत करो ॥१५॥ कारण कि आप नेत्रवालोंके नेत्र सराहने योग्य हो; और ईश्वरोंके ईश्वर श्रेष्ठ योगवालोंके योगी और गतिवालोंकी गति हो ॥१६॥ हे विभो ! पृथ्वीमें गये हुए देवतोंके अग्रणी क्या तुम पृथ्वीकी सहायको अपने अंशको नहीं युक्त करोगे ॥१७॥ क्यों कि; तुमसे सनाथ और प्रेरे हुए देवता तुममें मन लगाये तुम्हारेही भक्त हैं; वे कार्यसे कार्यान्तरको प्राप्त हो पृथ्वीमें विचरेंगे ॥१८॥ हे विष्णो ! इस कारण मैं इस देवसभामें तुम्हारे प्रेरणोंको आया हूं; और इसमें जो कारण है सो सुनो ॥१९॥ तारकामय संग्राममें जो दैत्य आपने मारे हैं; हे

भगवन् ! उन सबने पृथ्वीमें अवतार लिया है. आप उनकी गति सुनो ॥ २० ॥ कि, पृथ्वीके ऊपर महाप्रसन्न मथुरा नाम एक पुरी यमुनाके किनारे विख्यात है, वहांके देश सब भरे पुरे हैं ॥ २१ ॥ वहां एक मधु नाम दैत्य युद्धमें दुर्जय रहता था; वह महाबली सबको त्रास देता था ॥ २२ ॥ इस दानवके रहनेका स्थान वहां मधुवनमें था, जो महावृक्षोंसे संकीर्ण और घोर था ॥ २३ ॥ इसका पुत्र महाबली सब जीवोंको त्रास देनेवाला लवण नाम असुर हुआ ॥ २४ ॥ वहां सहस्रों वर्षतक इसने क्रीडा की, और इस राक्षसने अभिमानसे देवतासहित संसारको नष्ट करना प्रारंभ किया ॥ २५ ॥

पुरी पृथिव्यां मुदिता मथुरा नामतः श्रुता ॥ निविष्टा यमुनातीरे स्फीता जनपदायुता ॥ २१ ॥ मधुर्नाम महानासीद्दानवो युधि दुर्ज्जयः ॥ त्रासनः सर्वभूतानां बलेन महतान्वितः ॥ २२ ॥ तस्य तत्र महच्चासीन्महापादपसंकुलम् घोरं ॥ मधुवनं नाम यत्रासौ न्यवसत्पुरा ॥ २३ ॥ तस्य पुत्रो महानासील्लवणो नाम दानवः ॥ त्रासनः सर्वभूतानां महाबलपराक्रमः ॥ २४ ॥ स तत्र दानवः क्रीडन्वर्षपूगाननेकशः ॥ स दैवतगणाँल्लोकानुद्वासयति दर्प्पितः ॥ २५ ॥ अयोध्यायामयोध्यायां रामे दाशरथौ स्थिते ॥ राज्यं शासति धर्मज्ञे राक्षसानां भयावहे ॥ २६ स दानवो बलश्लाघी घोरं वनमुपाश्रितः ॥ प्रेषयामास रामाय दूतं परुषवादिनम् ॥ २७ ॥ विषयासन्नभूतोऽस्मि तव राम रिपुश्च ह ॥ न च सामन्तमिच्छन्ति राजानो बलदर्पितम् ॥ २८ ॥ राज्ञा राज्यव्रतस्थेन प्रजानां हितकाम्यया ॥ जेतव्या रिपवः सर्वे स्फीतं विषयमिच्छता ॥ २९ ॥ अभिषेकार्द्रकेशेन राज्ञा रञ्जनकाम्यया ॥ जेतव्यानीन्द्रियण्यादौ तज्जये हि ध्रुवो जयः ॥ ३० ॥

जिस समय वह राक्षस था उस समय युद्धमें जीतनेके अयोग्य अयोध्यापुरीमें दशरथके पुत्र रामचंद्र धर्मराज्य करते थे, यह राम धर्मके ज्ञाता और राक्षसोंको भय देनेवाले थे ॥ २६ ॥ घोर वनके निवासी इस बली राक्षसने रामके प्रति कठोर वचन कहनेवाला अपना दूत भेजा ॥ २७ ॥ दूतने रामके निकट जाकर कहा; हे राम ! मैं तुम्हारा शत्रु तुम्हारे समीपही हूं अपने निकट स्थित बडे अभिमानी शत्रुको राजा नहीं रहने देते ॥ २८ ॥ श्रेष्ठ राजव्रतमें स्थित हुए राजाको प्रजाके शुभकी इच्छासे बढे हुए देशकी इच्छा करके इस प्रकार शत्रु मारनाही उचित है ॥ २९ ॥ व्यसनद्यूतादिमें फसे हुए

राज्याभिषेकसे गीले केशवाले राजाको प्रजाके हितकी इच्छासे पहले अपनी इन्द्रिय जीतनी चाहिये; कारण कि इनके जीतनेसे जय अवश्य होती है ॥ ३० ॥ जो राजा विशेष करके कामनामें वर्तता है उसको नीतिमें उपदेश करनेको लोकके समान गुरु नहीं है ॥ ३१ ॥ व्यसनद्यूतादिमें न फसे हुए बुद्धिमान अधिक बली राजाको सामंतका भय नहीं है ॥ ३२ ॥ स्वभावसे बढ़ी हुई इंद्रियरूपी शत्रुके विषयोंसे सब बाधित हो जाते हैं; मोहका कारण शत्रुओंको आनंद देनेवाला है और अधीरताका करनेवाला है ॥३३॥ जो आपने मोहसे स्त्रीके निमित्त बलवान् रावणको सकुटुम्ब मार दिया, यह कोई अच्छा कार्य नहीं. किन्तु बड़ा कुत्सित कार्य किया ॥ ३४ ॥ और जो तुमने वनमें विचरते हुए व्रतमें संयुक्त हो राक्षसोंको मारा, यह

सम्यग्वर्तितुकामस्य विशेषेण महीपतेः ॥ नयानामुपदेशेन नास्ति लोकसमो गुरुः ॥ ३१ ॥ व्यसनेषु जघन्यस्य धर्ममध्यस्य धीमतः ॥ बलज्येष्ठस्य नृपतेर्नास्ति सामन्तजं भयम् ॥३२॥ सहजैर्बाध्यते सर्वः प्रवृद्धैरिन्द्रियारिभिः ॥ अमित्राणां प्रियकरैर्मोहैर धृतिरीश्वरः ॥ ३३ ॥ यत्त्वया स्त्रीकृते मोहात्सगणो रावणो हतः ॥ नैतदौपयिकं मन्ये महद्वै कर्मः कुत्सितम्॥३४॥ वनवासप्रवृत्तेन यत्त्वया व्रतशालिना ॥ प्रहृतं राक्षसानीकं नैष दृष्टः सतां विधिः ॥३५॥ सतामक्रोधजो धर्मः शुभां नयति सद्गतिम् ॥ यत्त्वया निहता मोहादूषिताश्चाश्रमौकसः ॥ ३६ ॥ स एष रावणो धन्यो यस्त्वया व्रतचारिणा ॥ स्त्रीनिमित्ते हतो युद्धे ग्राम्यान्धर्मानवेक्षता ॥ ३७ ॥ यदि ते निहतः संख्ये दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥ युध्यस्वाद्य मया सार्धं मृधे यद्यसि वीर्यवान् ॥ ३८ ॥ तस्य दूतस्य तच्छ्रुत्वा भाषितं तत्त्ववादिनः ॥ धैर्यादसंभ्रान्तवपुः सस्मितं राघवोऽब्रवीत् ॥ ३९ ॥

सत्पुरुषोंका धर्म नहीं है ॥ ३५ ॥ श्रेष्ठ पुरुषोंमें क्रोधरहित धर्म रहता है; वही धर्म शुभ गतिकी प्राप्ति करता है, व्रतमें रहनेवाले तुमने मोहसे रावण मारके आश्रमोंको दोष लगाया है ॥ ३६ ॥ उस रावणकोही धन्य है, कि जिसे व्रतचारी तुमने ग्राम्यधर्मकोभी न जानकर स्त्रीके निमित्त युद्धमें मारा ॥ ३७ ॥ जो नीच धर्मसे तुमने रावणको मारा वह तुम्हारी दुर्बुद्धि है. तुम अजितेन्द्रिय हो, जो तुम बलवान् हो तो मेरे संग युद्ध करो ॥ ३८ ॥ इस प्रकार उस दूतके क्रूर वचन सुनकर धीरतासे हँसते हुए भगवान् रामचंद्रने उस दूतसे यह कहा ॥ ३९ ॥

हे दूत! यह तुमने अपने स्वामीके गौरवसे असत्य कहा है जो मेरे ऊपर आक्षेप करता और अपनेको सुस्थिर जानता है॥ ४०॥ हे मूढ! जो मैं श्रेष्ठ मार्गमें वर्तमान हूं, और रावणको मारा उसने मेरी भार्या हर ली तो इसके मारनेमें क्या दोष है॥ ४१॥ श्रेष्ठ मार्गमें स्थित हुए महात्मा वचनसे दूषित नहीं होते हैं. कारण कि, देवता तो सदा श्रेष्ठ और इतर पुरुषोंमेंभी विचरते हैं ॥४२॥ सो हे दूत! जो दूतका कार्य होता है; सो तैंने कर दिया. अब तू शीघ्र चला जा, देर मत कर, आत्माश्लाघी और नीच पुरुषोंपर मुझ सरीखे प्रहार नही करते ॥४३॥ यह शत्रुघ्न मेरा छोटा भ्राता उस दुष्टबुद्धि दैत्यके

अमदेतत्त्वया दूत भाषितं तस्य गौरवात् ॥ यन्मां क्षिपसि दोषेण वेदात्मानं च सुस्थिरम् ॥ ४० ॥ यद्यहं सत्पथे मूढो यदि वा रावणो हतः ॥ यदि वा मे हता भार्या का तत्र परिदेवना ॥ ४१ ॥ न वाङ्मात्रेण दुष्यन्ति साधवः सत्पथे स्थिताः ॥ जागर्ति च यथा देवः सदा वसत्स्वितरेषु च ॥ ४२ ॥ कृतं दूतेन यत्काय गच्छ त्वं दूत माचिरम् ॥ नात्मश्लाघिषु नीचेषु प्रहरन्तीह मद्विधाः ॥ ४३ ॥ अयं ममानुजो भ्राता शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ॥ तस्य दत्यस्य दुर्बुद्धेर्मृधे प्रतिकरिष्यति ॥ ४४ ॥ एवमुक्तः स दूतस्तु ययौ सौमित्रिणा सह ॥ अनुज्ञातो नरेन्द्रेण राघवेण महात्मना ॥ ४५ ॥ स शीघ्रयानः संप्राप्तस्तद्दानवपुरं महत् ॥ चक्रे निवेशं सौमित्रिर्वनान्ते युद्धलालसः ॥ ४६ ॥ ततो दूतस्य वचनात्स दैत्यः क्रोधमूर्च्छितः ॥ पृष्ठतस्तद्वनं कृत्वा युद्धायाभिमुखः स्थितः ॥ ४७ ॥ तद्युद्धमभवद्घोरं सौमित्रेर्दानवस्य च ॥ उभयोरेव बलिनोः शूरयो रणमूर्द्धनि ॥ ४८ ॥ तौ शरैः साधु निशितैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं वाप्युपजग्मतुः ॥ ४९ ॥

संग युद्ध करेगा॥ ४४ ॥ इस प्रकार रामचंद्रराजाकी आज्ञासे वह दूत शत्रुघ्नके साथ गया ॥ ४५ ॥ तब उस बडे मधुवनमें वेगवान वाहनपर वह आया; और शत्रुघ्नभी युद्धकी इच्छासे वनमें प्रविष्ट हुए॥४६॥ तदनंतर तिस अपने दूतके वचन सुन क्रोधसे मूर्छित हो वह दैत्य उस वनको पीठ पीछे कर युद्धको सन्मुख आया ॥४७॥ फिर वहां शत्रुघ्नका और तिस दैत्यका महान् युद्ध होने लगा; यह वे दोनों शूर वीर रणभूमिमें बली थे ॥४८॥ धनुषको धारणकर दोनों तीक्ष्ण बाणोंसे परस्पर प्रहार करने लगे, परन्तु न तो कोई युद्धसे विमुख हुआ; और न श्रमित हुआ ॥ ४९ ॥

तब शत्रुघ्नके बाणोंसे संग्राममें पीडित हो वह दैत्य शूलरहित होनेके कारण हीन दशाको प्राप्त हुआ॥५०॥तब वह दैत्य लवण देवतोंके वरसे दिये हुए सब जीवोंके मारनेवाले अंकुशको ग्रहण करके शब्द करने लगा ॥५१॥ तब उस राक्षसने रामके छोटे भ्राताका शिर अंकुशसे खैंच पृथ्वीमें नवाय काटनेकी इच्छा की ॥५२॥ कि उसी समय रामचंद्रजीके भ्राताने रुक्मत नाम उत्तम खड्ग ग्रहण कर संग्राममें उस अंकुश और दैत्यके शिरकोभी छेदन कर दिया॥५३॥इस प्रकार मित्रप्रिय शत्रुघ्न उस दैत्यको मार तिसके वनकोभी उन बुद्धिमानने शस्त्रसे छेदन कर दिया॥५४॥वहां परम धर्मके ज्ञाता शत्रुघ्नने

अथ सौमित्रिणा बाणैः पीडितो दानवो युधि ॥ ततः स शूलरहितः पर्यहीयत दानवः ॥ ५० ॥ स गृहीत्वांकुशं चैव देवैर्दत्तवरं रणे ॥ कर्षणं सर्वभूतानां लवणो विररास ह ॥ ५१ ॥ शिरोधरायां जग्राह सोऽङ्कुशेन चकर्ष ह ॥ प्रवेशयितुमारब्धो लवणो राघवानुजम् ॥ ५२ ॥ स रुक्मत्सरुमुद्यम्य शत्रुघ्नः खड्गमुत्तमम् ॥ शिरश्चिच्छेद खड्गेन लवणस्य महामृधे ॥ ५३ ॥ स हत्वा दानवं संख्ये सौमित्रिर्मित्रवत्सलः ॥ तद्वनं तस्य दैत्यस्य चिच्छेदास्त्रेण बुद्धिमान् ॥ ५४ ॥ छित्त्वा वनं तत्सौमित्रिर्निवेशं सोऽभ्यरोचयत् ॥ भवाय तस्य देशस्य पुर्याः परमधर्मवित् ॥ ५५ ॥ तस्मिन्मधुवनस्थाने मथुरा नाम सा पुरी ॥ शत्रुघ्नेन पुरा सृष्टा हत्वा तं दानवं रणे ॥ ५६ ॥ सा पुरी परमोदारा साट्टप्राकारतोरणा ॥ स्फीता राष्ट्रसमाकीर्णा समृद्धबलवाहना ॥ ५७ ॥ उद्यानवनसंपन्ना सुसीमासु प्रतिष्ठिता ॥ प्रांशुप्राकारवसना परिखाकुलमेखला ॥५८॥ चयाट्टालककेयूरा प्रासादवरकुण्डला ॥ सुसंवृतद्वारपती चत्वरोद्गारहासिनी ॥ ५९ ॥ अरोगवीरपुरुषा हस्त्यश्वरथसंकुला ॥ अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता ॥ ६० ॥

॥ १६० ॥

तिस वनको छेद कर प्रजाके हितके निमित्त वहां स्थान बनानेकी रुचि की॥५५॥इस प्रकार उस दानवको संग्राममें मार शत्रुघ्नजीने मधुवनस्थानमें मथुरा नाम पुरी वसाई ॥ ५६ ॥ इस प्रकार वह परम उदार पुरी दुर्ग द्वार तोरणोंसे शोभित शत्रुघ्नसे रची हुई है; बढे हुए देशोंसे बलवाहनसेयुक्त ॥ ५७॥ बगीचियोंसे युक्त श्रेष्ठ सीमावाली चारों ओर कोट और खाई रूप मेखलासे शोभित॥५८॥अटारीरूपी केयूर और महलरूपी कुंडल खुले हुए दरवाजे और राजमार्ग चौहाटसे शोभायमान हास्ययुक्त ॥ ५९ ॥ जिस मथुरा पुरीमें शूर वीर बहुतसे हाथी घोडे और रथोंके समूह रोग रहित हैं, इस

प्रकार वह अर्द्धचंद्राकार बनी हुई यमुनाके तीरपर शोभित है॥६०॥ बहुत सुन्दर व्यवहारी पुरुषोंकी दुकानोंसे युक्त रत्नोंके कोशसे गर्वित जहां श्रेष्ठ खेतीवाले खेत हैं, और समयपर वर्षा होती है ॥६१॥ वह पुरी प्रकाशित होती है; समयपर तहांका राजा शूरसेन हुआ ॥ ६२ ॥ तिस पुरीमें भोज-कुलको बढानेवाला कार्तिकेयके समान पराक्रमी उग्रसेन हुए ॥६३॥ हे विष्णु ! जिस कालनेमि दैत्यको आपने तारकामय संग्राममें मारा था, वही उग्रसेनका पुत्र हुआ है ॥६४॥ वह दीर्घलोचन कंस नाम दैत्य भोजवंशको बढानेवाला है; और पृथ्वीके विख्यात राजा सिंहके समान पराक्रमी

पुण्यापणवती दुर्गा रत्नसंचयगर्विता ॥ क्षेत्राणि सस्यवन्त्यस्याः काले देवश्च वर्षति ॥ ६१ ॥ नरनारीप्रमुदिता सा पुरी स्म प्रकाशते ॥ निविष्टविषयश्चैव शूरसेनस्ततोऽभवत् ॥ ६२ ॥ तस्यां पुर्यां महावीर्यो राजा भोजकुलोद्वहः ॥ उग्रसेन इति ख्यातो महासेनपराक्रमः ॥ ६३ ॥ तस्य पुत्रत्वमापन्नो योऽसौ विष्णो त्वया हतः ॥ कालनेमिर्महादैत्यः संग्रामे तारकामये ॥ ६४ ॥ कंसो नाम विशालाक्षो भोजवंशविवर्द्धनः ॥ राजा पृथिव्यां विख्यातः सिंहविस्पष्टविक्रमः ॥ ६५ ॥ राज्ञां भयंकरो घोरः शङ्कनीयो महीक्षिताम् ॥ भयदः सर्वभूतानां सत्पथाद्बाह्यतां गतः ॥ ६६ ॥ दारुणाभिनिवेशेन दारुणेनान्तरात्मना ॥ युक्तस्तेनैव दर्प्पेण प्रजानां रोमहर्षणः ॥ ६७ ॥ न राजधर्माभिरतो नात्मपक्षसुखावहः ॥ नात्मराज्ये प्रियकरश्चण्डः कररुचिः सदा ॥६८॥ स कंसस्तत्र संभूतस्त्वया युद्धे पराजितः ॥ क्रव्यादो बाधते लोकानासुरेणान्तरात्मना ॥ ६९ ॥ योऽप्यसौ हयविक्रान्तो हय-ग्रीव इति स्मृतः ॥ केशी नाम हयो जातः स तस्यैव जघन्यजः ॥ ७० ॥

है ॥६५॥ उन राजाओंको घोरभयदायक है; उससे सब राजा भय मानते हैं;सब जीवोंको भयदायक श्रेष्ठमार्गसे बहिष्कृत है ॥ ६६ ॥ दारुणप्रकृति तथा दारुण शरीरके अभिमानसे युक्त वह अहंकारसे प्रजाके रोम खडे कर देता है ॥६७॥ न राजधर्ममें युक्त है न अपने पक्षवाले पुरुषोंको सुख देता है,न अपने राज्यमें प्रिय करता है,सदा तीक्ष्ण कर लेनेमें रुचि रखता है॥६८॥हे भगवन् ! जो कि आपने युद्धमें मारा था वही कंस इस प्रकार उत्पन्न होकर वह दैत्य आसुरी आत्मासे सब जीवोंको दुःख देता है ॥६९॥ जो कि पहले हयविक्रांत नाम दैत्य आपने मारा था, वह हयग्रीव नामसे

उत्पन्न हुआ है;केशी नाम कंसके पीछे जन्मा हुआ उसके भ्राताक समान है ॥७०॥ वह दुष्ट हिंसनेमें बडा चतुर है सिंहरूप किसीसे नहीं डरता है;
अकेला वृन्दावनमें मनुष्योंके मांसको भक्षण करता हुआ वसता है ॥७१॥ और जो कि, बलिराजाका पुत्र अरिष्ट था वह ऊंचे कंधेवाले बैलरूपको
धारण किये है;वह कामरूपी महादैत्य गौओंसे शत्रुता रखता है ॥७२॥ जो दितिका पुत्र दानवोंमें श्रेष्ठ रिष्ट था;वह दत्य हाथीका रूप धारण किये
कंसका वाहन है ॥७३॥ जो कि, पहले लंब नाम दैत्य था वह अब दैत्योंमें दारुणरूप प्रलंब नामसे भांडीर वनमें रहता है ॥ ७४ ॥ और खर

स दुष्टो हेषितपटुः केसरी निरवग्रहः ॥ वृन्दावने वसत्येको नृणां मांसानि भक्षयन् ॥७१॥ अरिष्टो बलिपुत्रश्च ककुद्मी वृषरूप-
धृक् ॥ गवामरित्वमापन्नः कामरूपी महासुरः ॥ ७२ ॥ रिष्टो नाम दितेः पुत्रो वरिष्ठो दानवेषु यः ॥ स कुञ्जरत्वमापन्नो दैत्यः
कंसस्य वाहनः ॥७३॥ लम्बो नामेति विख्यातो योऽसौ दैत्येषु दर्पितः ॥ प्रलम्बो नाम दैत्योऽसौ वनं भाण्डीरमाश्रितः ॥७४॥
खर इत्युच्यते दैत्यो धेनुकः सोऽसुरोत्तमः ॥ घोरं तालवनं दैत्यश्चरत्युद्वासयन्प्रजाः ॥ ७५ ॥ वाराहश्च किशोरश्च दानवौ यौ
महाबलौ ॥ मल्लौ रङ्गगतौ तौ तु जातौ चाणूरमुष्टिकौ ॥ ७६ ॥ यौ तौ मयश्च तारश्च दानवौ दानवान्तक ॥ प्राग्ज्योतिषे तौ
भौमस्य नरकस्य पुरे रतौ ॥ ७७ ॥ एते दैत्या विनिहतास्त्वया विष्णो निराकृताः ॥ मानुषं वपुरास्थाय बाधन्ते भुवि मानु-
षान् ॥ ७८ ॥ त्वत्कथाद्वेषिणः सर्वे त्वद्भक्तान् घ्नन्ति मानुषान् ॥ तव प्रसादात्तेषां वै दानवानां क्षयो भवेत् ॥ ७९ ॥

नाम दैत्य धेनुक नामसे प्रसिद्ध है, यह दैत्य घोर तालवनमें जाकर प्रजाको दुःख देता हुआ विचरता है ॥७५॥ जो पहले दानवोंमें श्रेष्ठ वाराह
और किशोर नाम दैत्य थे; वे दोनों रंगभूमिमें युद्ध करनेवाले चाणूर और मुष्टिक दैत्य हैं॥७६॥हे दानवान्तक ! जो कि, मय और तारक नाम
दैत्य थे वे भौमासुर और नरकासुरके रूपसे प्राग्ज्योतिष पुरमें रहते हैं॥७७॥हे विष्णो ! इस प्रकार दैत्य पहले तुमने मारे थे; वे सब मानुषी शरी
रको धारण कर पृथ्वीके मनुष्योंको बाधा दे रहे हैं ॥७८॥ वे सब तुम्हारी कथाके वैरी और तुम्हारे भक्त मनुष्योंको मारते हैं, हे भगवन्! तुम्हारी

रूपसे अब दानवोंका क्षय होगा ॥ ७९ ॥ वे स्वर्गमेंभी तुमसे डरते हैं, सागरमेंभी तुमहीसे भय मानते हैं; पृथ्वीमें तुमहीसे डरते हैं, किसीसे कदाचित् नहीं डरते ॥ ८० ॥ हे श्रीधर! वह दुश्चरित्र तुम्हारे हाथसे मृतक हो जाय, स्वर्गसे पतित हुए दैत्यकी पृथ्वीही गति है ॥ ८१ ॥ पृथ्वीमें मनुष्य शरीरधारीको मरनेसे दुर्लभ स्वर्गगमन होता है; परन्तु हे भगवन् ! यह तुह्मारे जागतेमेंही हो सकता है अन्यथा नहीं ॥८२॥ इस कारण हे विष्णो! पृथ्वीतलमें जाओ और हमभी जाते हैं; दानवोंके विनाशके निमित्त अपनी आत्माको निर्माण करो ॥ ८३ ॥ हे विष्णो! आपकी अव्यक्त मूर्तिको

त्वत्तस्ते बिभ्यति दिवि त्वत्तो बिभ्यति सागरे ॥ पृथिव्यां तव बिभ्यन्ति नान्यतस्तु कदाचन ॥८०॥ दुर्वृत्तस्य हतस्यापि त्वया नान्येन श्रीधर ॥ दिवश्च्युतस्य दैत्यस्य गतिर्भवति मेदिनी ॥ ८१ ॥ व्युत्थितस्य च मेदिन्यां हतस्य नृशरीरिणः ॥ दुर्लभं स्वर्गगमनं त्वयि जाग्रति केशव ॥८२॥ तदागच्छ स्वयं विष्णो गच्छामः पृथिवीतलम् ॥ दानवानां विनाशाय विसृजात्मानमात्मना ॥ ८३ ॥ मूर्तयो हि तवाव्यक्ता दृश्याऽदृश्याः सुरोत्तमैः ॥ तासु सृष्टास्त्वया देवाः संभविष्यन्ति भूतले॥८४॥तवावतरणे विष्णो कंसःस विनशिष्यति॥ सेत्स्यते च स कार्यार्थो यस्यार्थे भूमिरागता ॥८५॥ त्वं भारते कार्यगुरुस्त्वं चक्षुस्त्वं परायणम् ॥ तदा गच्छ हृषीकेश क्षितौ तान् जहि दानवान् ॥८६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि नारदवाक्यं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा सस्मितं मधुसूदनः ॥ प्रत्युवाच शुभं वाक्यं वरेण्यःप्रभुरीश्वरः ॥१॥

कोई नहीं देख सकता; देवताओंकोभी परब्रह्मभावसे अदृश्य हो विष्णुरूपसे दीखते हो, उन तुम्हारी मूर्तिमें देवता पृथ्वीतलमें उत्पन्न होंगे ॥८४॥ हे भगवन् ! आपके अवतार लेनेमें वह कंस नष्ट हो जायगा, जो सत्कार्यको निषेध करता है, जिसके निमित्त यह पृथ्वी आपके पास आई थी ॥ ८५ ॥ हे भगवन् ! तुम भारतकुलमें कार्यके गुरु हो;और आपही भारतखंडके नेत्र हो,आपही रक्षक हो इस कारण आप पृथ्वीमें अवतार ले उन दानवोंका वध करो ॥८६॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशपर्वभाषायां चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार नारदमुनिके वचन

सुन हँसते हुए, देवताओंके स्वामी ईश्वर भगवान् कहने लगे ॥ १ ॥ हे नारद ! त्रिलोकीके हितके निमित्त जो कुछ मुझसे तुमने कहा है; उस सम्यक् वृत्तान्तका उत्तर श्रवण करो ॥२॥ जो दानव पृथ्वीमें मनुष्यशरीर धारण किये हैं; मैं उन सबको जानता हूं; और जिन दैत्योंके आश्रित हो कंस दृढ वैर करता है; वह भी जानता हूं ॥ ३ ॥ उग्रसेनके पुत्र कंस और घोडेके रूपमें केशीकोभी मैं जानता हूं ॥ ४ ॥ कुवलयापीड हाथी, चाणूर, मुष्टिक दोनों मल्ल, और बलके रूपवाले अरिष्ट दैत्यकोभी मैं जानता हूं ॥ ५ ॥ खर प्रलंब महाअसुरोंकोभी मैं जानता हूं; हे विप्र ! बलीकी पुत्री उस पूतना-

त्रैलोक्यस्य हितार्थाय यन्मां वदसि नारद ॥ तस्य सम्यक् प्रवृत्तस्य श्रूयतामुत्तरं वचः ॥ २ ॥ विदिता देहिनो जाता मयैते भुवि दानवाः ॥ यां च यस्तनुमादाय दैत्यः पुष्यति विग्रहम् ॥ ३ ॥ जानामि कंसं संभूतमुग्रसेनसुतं भुवि ॥ केशिनं चापि जनामि दैत्यं तुरग- विग्रहम् ॥ ४ ॥ नागं कुवलयापीडं मल्लौ चाणुरमुष्टिकौ ॥ अरिष्टं चापि जानामि दैत्यं वृषभरूपिणम् ॥ ५ ॥ विदितो मे खरश्चैव प्रलम्बश्च महासुरः ॥ सा च मे विदिता विप्र पूतना दुहिता बलेः ॥ ६ ॥ कालियं चापि जानामि यमुनाह्रदगोचरम् ॥ वैनतेयभयाद्यस्तु यमुनाह्रदमाविशत् ॥७॥ विदितो मे जरासन्धः स्थितो मूर्ध्नि महीक्षिताम् ॥ प्राग्ज्योतिषपुरे वापि नरकं साधु तर्कये ॥ ८ ॥ मानुषे पार्थिवे लोके मानुषत्वमुपागतम् ॥ बाणं च शोणितपुरे गुहप्रतिमतेजसम् ॥ ९ ॥ दृप्तं बाहुसहस्रेण देवैरपि सुदुर्जयम् ॥ मय्यासक्तां च जानामि भारतीं महतीं धुरम् ॥१०॥ सर्वं तच्च विजानामि यथा यास्यन्ति ते नृपाः॥ क्षयो भुवि मया दृष्टः शक्रलोके च सत्क्रिया ॥ एषां पुरुषदेहानामपरावृत्तदेहिनाम् ॥ १ ॥

कोभी जानता हूं ॥ ६ ॥ और गरुडके भयसे यमुनाके ह्रदमें रहनेवाले कालीनागको भी मैं जानता हूं; वह गरुडके भयसे भागकर यमुनामें आया है ॥७॥ सब राजाओंके चूडामणि जरासंधकोभी मैं जानता हूं, और प्राग्ज्योतिष पुरके नरकासुरको ॥८॥ जो अब मनुष्यलोकमें शरीर धारण किये हैं; उनको मैं भलीभांति जानता हूं; शोणितपुरके सहस्र बाहुओंवाले स्कंदके समान पराक्रमी ॥ ९ ॥ सहस्र भुजाओंसे मत्त देवताओंकोभी अजेय बाणासुरको जानता हूं;और राजोंके भारसे व्याकुल, मुझमें मन लगानेवाली पृथ्वीकोभी मैं जानता हूं॥१०॥और जिस प्रकार इन राजाओंका क्षय

होवे सोभी मैं सब जानता हूं. और पृथ्वीलोकका क्षय, और स्वर्ग लोककी सत्क्रियाभी मैने देख ली है॥ ११॥ उन कठोरदेहवाले तथा संसारमें फिर न आनेवाले अपने शत्रु और भक्तोंको उद्यम देखूंगा और मनुष्यअवतारसे मनुष्यलोकमें प्राप्त हो ॥ १२ ॥ उन सब कंस आदि महाअसुरोंको वध करूंगा; और जिस दो विधानसे जो शांतिको प्राप्त होगा वही२विधान मैं करूंगा॥ १३॥ योगमें प्राप्त होकर उन उन गतियोंके अनुसार इन देवताओंके शत्रुओंको युद्धमें मारूंगा ॥ १४॥ और जगत्के निमित्त सुर, देवता, ऋषि, गंधर्वोंने अंशावतार लियाहै; यह मेरी सम्मितिसेही हुवा है ॥ १५॥ यह सब

संप्रवेश्याम्यहं योगमात्मनश्च परस्य च ॥ संप्राप्य पार्थिवं लोकं मानुषत्वमुपागतः ॥ १२ ॥ कंसादींश्चापि तान् सर्वान् वधिष्यामि महासुरान् ॥ तेन तेन विधानेन येन यः शान्तिमेष्यति ॥ १३ ॥ अनुप्रविश्य योगेन तास्ता हि गतयो मया ॥ अमीषां हि सुरेंद्राणां हन्तव्या रिपवो युधि ॥ १४ ॥ जगत्यर्थे कृतो योऽयमंशोत्सर्गो दिवौकसैः ॥ सुरदेवर्षिगन्धर्वैरितश्चानुमते मम ॥ ॥१५ ॥ विनिश्चयो हि प्रागेव नारदाय कृतो मया ॥ वासं ननु मे ब्रह्मन्विदधातु पितामहः ॥ १६ ॥ यत्र देशे यथा जातो येन वेषेण वा वसन् ॥ तानहं समरे हन्यां तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १७॥ ब्रह्मोवाच ॥ नारायणेमं सिद्धार्थमुपायं शृणु मे विभो ॥ भुवि यस्ते जनयिताजननी च भविष्यति ॥ १८॥ यत्र त्वं च महबाहो जातः कुलकरो भुवि ॥ यादवानां महद्वंशमखिलं धारयिष्यति ॥ १९ ॥ तांश्चासुरान्समुत्पाट्य वंशं कृत्वात्मनो महत् ॥ स्थापयिष्यसि मर्यादां नृणां तन्मे निशामय ॥ २० ॥ पुरा हि कश्यपो विष्णो वरुणस्य महात्मनः ॥ जहार यज्ञिया गा वै पयोदास्तु महामखे ॥ २१ ॥

मैंने पहिलेही निश्चय कर लिया है; इस प्रकार नारदजीसे कहकर भगवान् ब्रह्माजीसे बोले; हे पितामह ! हमारे योग्य निवास स्थान बताओ॥ १६॥ हे भगवन् ! जिस देशमें भलीभांति उत्पन्न हुआ मैं अपने वेषसे सबोंको मारूं सो आप कहिये ॥ १७॥ ब्रह्माजी बोले; हे नारायण ! यह सिद्ध पाय सुनिये. पृथ्वीमें जो तुम्हारे पिता और माता होंगे ॥ १८॥ हे महाबाहो ! जहां उत्पन्न हो तुम यादवोंके संपूर्ण महावंशको धारण करोगे ॥ १९ ॥ और तीन दानवोंको मार अपने वंशकी महावृद्धि कर मर्यादाको स्थापित करोगे, सो मुझसे सुनो ॥ २० ॥ हे भगवन् ! पहले कश्यपजीने

वरुण देवताके महान् यज्ञमें दूध देनेवाली गौको हरण किया ॥२१॥ अदिति और सुरभी यह दो कश्यपकी स्त्री थीं; कश्यपके देनेकी इच्छा रहने परभी उन्होंने वरुणको गौ न देने दी॥२२॥तब वरुणदेव ने मेरे निकट आकर शिरसे नमस्कार कर यह कहा; हे भगवन्! मेरी गौ गुरु कश्यपजीने हर ली॥२३॥मेरे गुरु कश्यपजीने अपना कार्य करकेभी उन गौओंको नहीं दिया;कारण कि अदिति और सुरभी इन दोनों स्त्रियोंका वचन मानते हैं ॥२४॥ हे प्रभो! वे मेरी गौ अक्षय दिव्य है और इच्छापूर्वक दूध देती है;अपने तेजसे रक्षित हुई सागरपर्यन्त विचरती है ॥२५॥ हे भगवन्!

अदितिः सुरभिश्चैते द्वे भार्ये कश्यपस्य तु ॥ प्रदीयमाना गास्तास्तु नैच्छतां वरुणस्य वै ॥ २२ ॥ ततो मां वरुणोऽभ्येत्य प्रणम्य शिरसा तत ॥ उवाच भगवन् गावो गुरुणा मे हृता इति ॥ २३ ॥ कृतकार्यो हि गास्तास्तु नानुजानाति मे गुरुः ॥ अन्ववर्तत भार्ये द्वे अदितिं सुरभिं तथा ॥ २४ ॥ मम ता ह्यक्षया गावो दिव्याः कामदुहः प्रभो ॥ चरन्ति सागरान् सर्वान् रक्षिता स्वेन तेजसा ॥ २५ ॥ कस्ता धर्षयितुं शक्तो मम गाः कश्यपादृते ॥ अक्षयं याः क्षरन्त्यग्र्यं पयो देवामृतोपमम् ॥ २६ ॥ प्रभुर्वा व्युत्थितो ब्रह्मन् गुरुर्वा यदि वेतरः ॥ त्वया नियम्याः सर्वे वै त्वं हि नः परमा गतिः ॥ २७ ॥ यदि प्रभवतां दण्डो लोके कार्यमजानताम् न विद्यते लोकगुरो न स्युर्वै लोकसेतवः ॥ २८ ॥ यथा वास्तु तथा वास्तु कर्तव्ये भगवान् प्रभुः ॥ मम गावः प्रदीयन्तां ततो गन्तास्मि सागरम् ॥ २९ ॥ या आत्मदेवता गावो या गावः सत्त्वमव्ययम् ॥ लोकानां त्वत्प्रवृत्तानामेकं गोब्राह्मणं स्मृतम् ॥ ३० ॥

कश्यपके विना उन गायोंको हरण करनेको दूसरा कौन समर्थ हो सक्ता है;वे गौयें अक्षय और देवताओंके अमृतके समान दूध देती हैं॥२६॥ हे ब्रह्मन्! समर्थ अथवा गुरु अथवा इतर जन इनके तुम दंड देनेवाले हो; और तुमही हमारी परम गति हो॥२७॥हे ब्रह्मन्! यदि कार्यको नहीं जानने-वाले समर्थोंको तुम दंड नहीं दोगे तौ संसारके धर्मरूप सेतु टूट जायंगे ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन्! आप करने योग्य जो चाहो सो करो; परन्तु मेरीं गायें दिवा दो. फिर मैं सागरको चला जाऊं ॥२९॥ अविनाशी तत्वरूप वे गौ मेरी आत्मा है;और तुममें प्रवृत्त लोकोंने गौ और ब्राह्मणको एकही माना

है ॥३०॥ कारण कि पहले गौओंकी रक्षा करनीयोग्य है; पीछे रक्षित हुई गौ ब्राह्मणोंकी रक्षा होनेसे सब जगत्के रक्षा हो जातीहै॥३१॥जब इस प्रकार वरुणने मुझसे कहा, तब गौओंके कारणको जानकर मैंने कश्यपको शाप दिया ॥ ३२ ॥ कि जिस अंशसे महर्षि कश्यपने गौ हर ली है, उसी अंशसे पृथ्वीमें जाकर गोप होगा॥३३॥और जो सुरभी और अदिति कश्यपकी स्त्री हैं वेभी दोनों तिसीके साथ जाकर उनकी स्त्री होंगी॥३४॥ तिनके संग गोपभावको प्राप्त हो पृथ्वीमें रमण करेगा; सो तिन कश्यपका अंश तेजसे कश्यपके समान॥३५॥वसुदेव नामसे पृथ्वीमें गौओंके बीचमें

त्रातव्याः प्रथमं गावस्त्रातास्त्रायन्ति ता द्विजान् ॥ गोब्राह्मणपरित्राणे परित्रातं जगद्भवेत्॥३१॥इत्यम्बुपतिना प्रोक्तो वरुणेनाह मच्युत ॥ गवां कारणतत्त्वज्ञः कश्यपे शापमुत्सृजम् ॥ ३२ ॥ येनांशेन हृता गावः कश्यपेन महर्षिणा ॥ स तेनांशेन जगति गत्वा गोपत्वमेष्यति ॥ ३३ ॥ या च सा सुरभिर्नाम अदितिश्च सुरारणिः ॥ तेऽप्युभे तस्य भार्ये वै तेनैव सह यास्यतः ॥३४॥ ताभ्यां च सह गोपत्वे कश्यपो भुवि रंस्यते ॥ स तस्य कश्यपस्यांशस्तेजसा कश्यपोपमः ॥ ३५ ॥ वसुदेव इति ख्यातो गोषु तिष्ठति भूतले ॥ गिरिर्गोवर्धनो नाम मथुरायास्त्वदूरतः ॥ ३६ ॥ तत्रासौ गोषु निरतः कंसस्य करदायकः ॥ तस्य भार्याद्वयं जातमदितिः सुरभिश्च ते ॥ ३७ ॥ देवकी रोहिणी चेमे वसुदेवस्य धीमतः ॥ सुरभी रोहिणी देवी चादितिर्देवकी त्वभूत् ॥३८॥ तत्र त्वं शिशुरेवादौ गोपालकृतलक्षणः ॥ वर्द्धयस्व महाबाहो पुरा त्रैविक्रमे यथा ॥ ३९ ॥ छादयित्वात्मनात्मानं मायया योगरूपया ॥ तत्रावतर लोकानां भवाय मधुसूदन ॥ ४० ॥

स्थित है; और वहां मथुराके निकट जो गोवर्धन पर्वत है॥३६॥वहां यह कंसको कर देनेवाला गौओंमें रहता है और वे दोनों अदिति और सुरभी नाम उसकी स्त्री ॥ ३७ ॥ सो देवकी और रोहिणी उन वसुदेवकी स्त्रीहैं; सुरभी, रोहिणी और अदिति देवकी है॥३८॥हे भगवन् ! उनके घरमें तुम प्रथम गोपालके लक्षणयुक्त वृद्धिको प्राप्त हो; जैसे वामनअवतारमें बढ़े थे॥३९॥और योगरूपी मायासे अपनेको छिपाय हे मधुसूदन! लोकोंके

मंगल करनेको वहां अवतार लो ॥ ४० ॥ देवता आपको जय और आशीर्वादके वचनोंसे बढ़ावेंगे; तुम आत्मासेही अपने आत्माको पृथ्वीमें उतारो ॥४१॥ देवकी और रोहिणीको अपने गर्भवाससे प्रसन्न करो; व्रजमें सहस्र गोपकन्याओंसे रमण करते पृथ्वीमें विचरो ॥ ४२ ॥ हे विष्णु ! वनमें विचरते गयोंकी रक्षा करते, वनमाला पहिरे हुए जो तुम्हारा दर्शन करेंगे वे धन्य हैं ॥४३॥ हे कमलनेत्र भगवन् ! आपके गोपाल वस्तीमें प्राप्त होने पर और आपके बालक होनेपर संसारभी बालभावको प्राप्त हो जांयगा ॥४४॥ हे कमललोचन ! आपमें मन लगानेवाले आपके भक्त गौओंमें तुम्हारी

जयाशीर्वचनैस्त्वैते वर्द्धयन्ति दिवौकसः ॥४१॥ आत्मानमात्मना हि त्वमवतार्य महीतले ॥ देवकीं रोहिणीं चैव गर्भाभ्यां परितोषय ॥ गोपकन्यासहस्राणि रमयंश्चर मेदिनीम् ॥४२॥गाश्च ते रक्षतो विष्णो वनानि परिधावतः ॥ वनमालापरिक्षिप्तं धन्याद्रक्षन्ति ते वपुः ॥ ४३ ॥ विष्णो पद्मपलाशाक्ष गोपालवसतिं गते ॥ बाले त्वयि महाबाहो लोको बालत्वमेष्यति ॥ ४४ ॥ त्वद्भक्ताः पुण्डरीकाक्ष तव चित्तवशानुगाः ॥ गोषु गोपा भविष्यंति सहायाः सततं तव ॥ वने चारयतो गाश्च गोष्ठेषु परिधावतः॥४५॥ मज्जतो यमुनायां च रतिं प्राप्स्यन्ति ते त्वयि ॥ जीवितं वसुदेवस्य भविष्यति सुजीवितम् ॥ ४६ ॥ यस्त्वया तात इत्युक्तः स पुत्र इति वक्ष्यति ॥ अथवा कस्य पुत्रत्वं गच्छेथाः कश्यपादृते ॥ ४७ ॥ का च धारयितुं शक्ता त्वां विष्णो अदितिं विना ॥ योगेनात्मसमुत्थेन गच्छ त्वं विजयाय वै ॥ वयमप्यालयान्स्वान्स्वान् गच्छामो मधुसूदन ॥ ४८ ॥

सहायके निमित्त गोपरूप होंगे; वनमें गाय चराय और गोठमें आते हुए ॥ ४५ ॥ और यमुनामें स्नान करनेसे वे तुमसे महाप्रेम करेंगे; वसुदेवजीकाही जीवन सुजीवन होगा ॥ ४६ ॥ जब तुमसे पुत्र उन्हें तात कहेंगे; तब वे सुपुत्रवान होंगे; अथवा कश्यपके विना आप किसके पुत्र होनेकी इच्छा करते हो ॥ ४७ ॥ हे विष्णो ! अदिति विना तुमको धारण करनेमें और कौन समर्थ है; हे भगवन् ! अपने योगसे विजयके निमित्त तुम जाओ, हमभी अपने २ स्थानोंको जाते हैं ॥ ४८ ॥

वैशंपायनजी बोले; इस प्रकार भगवान् विष्णु देवतोंको एकान्त स्वर्गमें प्रसन्न कर आज्ञा दे क्षीरसमुद्रके उत्तर दिशामें अपने देशको गये ॥ ४९ ॥ वहां एक पार्वती सुमेरुपर्वतकी दुर्गम गुफा है; वह पर्वमें देवताओंसे नित्य पूजित होती है ॥ ५० ॥ उदारबुद्धि भगवान्ने उस स्थानमें अपने

वैशम्पायन उवाच ॥ स देवानभ्यनुज्ञाय विविक्ते त्रिदिवालये ॥ जगाम विष्णुः स्वं देशं क्षीरोदस्योत्तरां दिशम् ॥ ४९ ॥ तत्र वै पार्वती नाम गुहा मेरोः सुदुर्गमा ॥ त्रिभिस्तस्यच विक्रान्तैर्नित्यं पर्वसु पूजिता ॥५०॥ पुराणं तत्र विन्यस्य देहं हरिरुदारधीः ॥ आत्मानं योजयामास वसुदेवगृहे प्रभुः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितामहवाक्यं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

पुरातन देहको स्थापित कर वसुदेवके घर आय जन्म लेनेकी इच्छा की ॥ ५१ ॥ ॥ ७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां पितामहवाक्यं नाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

दोहा–पूर्णपुरुष अव्यक्त अज, कृपासिंधु सुखधाम । उमारमण अशरण शरण, सुखदायक अभिराम ॥
तिनके पदयुग ध्यान धर, द्विज ज्वालाप्रसाद । शुभभाषाटीका कियो, जन्मेजय संवाद ॥
करुणामय सन्तन सुखद, कृपासिंधु भगवान । श्रीयुत गंगाविष्णुको, सम्पत् पुत्र महान ॥
देहि कृपा कर कृपानिधि, वंशप्रवर्तक राम । नितप्रति आशीर्वाद यह, सिद्ध करहिं सुखधाम ॥

इदं पुस्तकं मुम्बईनगर्यां खेमराजश्रीकृष्णदासश्रेष्ठिनास्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये
मुद्रापितं प्रकाशितं च । शकाब्दाः १९०९, संवत् २०४४

॥ इति हरिवंशे भाषाटीकायुतं प्रथमं हरिवंशपर्व समाप्तम् ॥

॥ अथ हरिवंशे भाषाटीकायुतं द्वितीयं विष्णुपर्व प्रारभ्यते ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ दोहा ॥ कृष्णचरणपंकज विमल, स्वच्छ ज्ञानदातार ॥ प्रेमसहित हिय लायकर; जो दायक फल चार ॥ १ ॥ राधा माधव गुण विमल, कहत सुनत सुखदान ॥ विष्णुपर्व भाषा करत, ताते सब गुणखान ॥ २ ॥ कथा रम्य गोविन्दकी, काटत भवके फंद ॥ यासे भाषामें लिखत, मिश्र सदा निर्द्वंद्व ॥ ३ ॥ गणपति गौरि गिरीश हरि, विधि शचिपति प्रहलाद ॥ सुमरि चरित भाषा करत; द्विज ज्वालाप्रसाद ॥४॥ वैशंपायनजी बोले; विष्णु भगवान्‌को पृथ्वीमें अवतीर्ण हुआ जान और अपनेभागोंसहित देवताओंके जन्म लेनेपर कंसके विनाशकी इच्छा करनेवाले नारदजी मथुरामें आये ॥ १ ॥ स्वर्गसे आकर मथुराके उपवनमें स्थित हुए, और उग्रसेनके पुत्र कंसके निमित्त एक दूत भेजा ॥ २ ॥ उस दूतने कंससे जाकर मुनिका

श्रीगणेशाय नमः ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ज्ञात्वा विष्णुं क्षितिगतं भागांश्च त्रिदिवौकसाम् ॥ विनाशशंसी कंसस्य नारदो मथुरां ययौ ॥१॥ त्रिविष्टपादापतितो मथुरोपवने स्थितः ॥ प्रेषयामास कंसस्य उग्रसेनसुतस्य वै ॥२॥ स दूतः कथयामास मुनेरागमनं वने ॥ स नारदस्यागमनं श्रुत्वा त्वरितविक्रमः ॥ ३ ॥ निर्जगामासुरः कंसः स्वपुर्याः पद्मलोचनः ॥ स ददर्शातिथिं श्लाघ्यं देवर्षिं वीतकल्मषम् ॥ ४ ॥ तेजसा ज्वलनाकारं वपुषा सूर्यवर्चसम् ॥ सोऽभिवाद्यर्षये तस्मै पूजां चक्रे यथाविधि ॥५॥ आसनं चाग्निवर्णाभं विसृज्योपजहार सः ॥ निषसादासने तस्मिन्स वै शक्रसखो मुनिः ॥६॥ उवाच चोग्रसेनस्य सुतं परमकोपनम् ॥ पूजितोऽहं त्वया वीर विधिदृष्टेन कर्मणा ॥७॥ गते त्वेवं मम वचः श्रूयतां गृह्यतां त्वया ॥ अनुसृत्य दिवो लोकानहं ब्रह्मपुरोगमान् ॥८॥

आगमन सुनाया. उस लघुविक्रम कंसने नारदका आगमन सुनतेही॥३॥कमललोचन कंस अपनी पुरीसे निकला. जाकर उसने पापरहित श्लाघनीय अतिथि नारदजीको देखा ॥ ४ ॥तेजसे जाज्वल्यमान, सूर्यके समान प्रकाशमान शरीरवाले ऋषिको देखतेही अभिवादन कर उनकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ ५ ॥ और उसने नारदजीके निमित्त अग्निके समान प्रकाशित आसन दिया. तब वे इन्द्रके सखा नारदजी उस आसनपर बैठे ॥६॥ और परमक्रोधी उग्रसेनके पुत्रसे बोले; हे वीर ! तुमने शास्त्रविधिके कर्मसे मेरी पूजा की है ॥७॥ अब आपको मेरा वचन सुनना चाहिये. मैं ब्रह्मा आदिके

लोकोंमें होता हुआ॥८॥सूर्यके सखा सुमेरु पर्वतपर गया था. वहां नन्दन और चैत्ररथ वन देखा ॥९॥ देवतोंसहित नदी और तीर्थोंमें स्नान कर वहां मैंने दिव्य तीन धारावाली पवित्र गंगा नदी देखी॥१०॥जो स्मरण करतेही सब प्राणियोंके सब पाप दूर करती है. इस प्रकार मैं दिव्य तीर्थोंका स्पर्श करके ११ ॥ब्रह्मर्षियोंसे सेवित ब्रह्माका स्थान देखने गया. जो देवता; गंधर्व, अप्सराओंके शब्दोंसे पूर्ण था ॥ १२ ॥ सो एक समय सुमेरु-पर्वतपर देवताओंके समाजमें मैं वीणा लेकर ब्रह्माकी सभामें गया॥१३॥वहां मैं श्वेत पगडी पहरे, अनेक रत्नोंसे विभूषित, दिव्य आसनपर बैठे हुए

गतः सूर्यसखं तात विपुलं मेरुपर्वतम् ॥ स नन्दनवनं चैव दृष्ट्वा चैत्ररथं वनम् ॥ ९ ॥ आप्लुतं सर्वतीर्थेषु सरित्सु सह दैवतैः ॥ दिव्या त्रिधारा दृष्टा मे पुण्या त्रिपथगा नदी ॥ १० ॥ स्मरणादेव सर्वेषामंहसां या विभेदिनी ॥ उपस्पृष्टं च तीर्थेषु दिव्येषु च यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ दृष्टं मे ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ देवगन्धर्वनिर्घोषैरप्सरोभिश्च नादितम् ॥ १२ ॥ सोऽहं कदाचिद्देवानां समाजे मेरुमूर्द्धनि ॥ संगृह्य वीणां संसक्तामगच्छं ब्रह्मणः सभाम् ॥ १३ ॥ सोऽहं तत्र सितोष्णीषान्नानारत्नविभूषितान् ॥ दिव्यासनगतान्देवानपश्यं सपितामहान् ॥ १४ ॥ तत्र मन्त्रयतामेवं देवतानां मया श्रुतः ॥ भवतः सानुगस्यैव वधोपायः सुदारुणः ॥ १५ ॥ तत्रैषा देवकी या ते मथुरायां लघुस्वसा ॥ योऽस्या गर्भोऽष्टमः कंस स ते मृत्युर्भविष्यति ॥ १६ ॥ देवानां स तु सर्वस्वं त्रिदिवस्य गतिश्च सः ॥ परं रहस्यं वेदानां स ते मृत्युर्भविष्यति ॥१७॥ परश्चैवापरस्तेषां स्वयंभूश्च दिवौकसाम् ॥ ततस्ते तन्महद्भूतं दिव्यं च कथयाम्यहम् ॥ १८ ॥

पितामहको देवताओंसहित देखता हुआ ॥१४॥वहां मैंने देवताओंको यह सम्मति करते हुए देखा कि सहायसहित कंसका वध हो, कोई ऐसा उपाय विचारा जाय ॥ १५ ॥सो हे कंस ! यह जो मथुरामें देवकी तुह्मारी छोटी बहन है, इसके जो आठवे गर्भमें उत्पन्न होगा, उसीसे तुह्मारी मृत्यु होगी॥१६॥वही देवताओंका सर्वस्व होगा, वही स्वर्गकी गति होगा, वही वेदोंका परम रहस्य होगा, उसीसे तुह्मारी मृत्यु होगी॥ १७ ॥ वही ब्रह्मा

और देवतोंकोभी स्वर्ग और मोक्षका देनेहारा है, सो मैं उस दिव्य महाद्भुतको तुमसे वर्णन करता हूं ॥१८॥ यही तुह्मारी श्लाघनीय मृत्यु निर्णीत हुई है, इसको तुम स्मरण करो; सो हे कंस ! देवकीके गर्भ नष्ट करनेका यत्न करो ॥ १९ ॥ तुममें मेरी प्रीति है इसी कारण मैं तुह्मारे निमित्त यहां आया हूं. तुम सब काम और अर्थ भोगो, तुह्मारा मङ्गल हो, अब मैं जाता हूं ॥ २० ॥ यह कहकर नारदजीके चले जानेपर कंस उस वाक्यको विचारता हुआ, बहुत देरतक दांत निकाले, ऊंचे स्वरसे हंसता रहा ॥ २१ ॥ और हंसता हुआ अपने सेवकोंके आगे बोला, नारदजीकी बुद्धि ओछी है. यह

श्लाघ्यश्च स हि ते मृत्युर्भूतपूर्वश्च तं स्मर ॥ यत्नश्च क्रियतां कंस देवक्या गर्भकृन्तने ॥ १९ ॥ एषा मे त्वद्गता प्रीतिर्यदर्थं चाहमागतः ॥ भुज्यन्तां सर्वकामार्थाः स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा नारदे याते तस्य वाक्यं विचिन्तयन् ॥ जहासोच्चैस्ततः कंसः प्रकाशदशनश्चिरम् ॥२१॥ सस्मितं चैव प्रोवाच भृत्यानामग्रतः स्थितः ॥ हास्यः खलु स सर्वेषु नारदो न विशारदः ॥२२॥ नाहं भीषयितुं शक्यो देवैरपि सवासवैः ॥ आसनस्थः शयानो वा प्रमत्तो मत्त एव च ॥ २३ ॥ योऽहं दोर्भ्यामुदाराभ्यां क्षोभयेयं धरामिमाम् ॥ कोऽस्ति मां मानुषे लोके यः क्षोभयितुमुत्सहेत् ॥ २४ ॥ अद्यप्रभृति देवानामेष देवानुवर्तिनाम् ॥ नृपक्षिपशुसंघानां करोमि कदनं महत् ॥२५॥ आज्ञाप्यतां हयः केशी प्रलम्बो धेनुकस्तथा ॥ अरिष्टो वृषभश्चैव पूतना कालियस्तथा ॥२६॥ अटध्वं पृथिवीं कृत्स्नां यथेष्टं कामरूपिणः ॥ प्रहरध्वं च सर्वेषु येऽस्माकं पक्षदूषकाः ॥ २७ ॥

इन्होंने सबके हास्यके योग्य वार्ता कही ॥२२॥ मुझे देवतोंसहित इन्द्र भी तो नहीं डरा सक्के आसनमें स्थित, सोते हुए, प्रमत्त अथवा मत्त ॥२३॥ जो कि मैं अपनी बडी भुजाओंसे पृथ्वीको क्षुभित कर सक्ता हूं. फिर लोकमें ऐसा कौन मनुष्य है ? जो मुझे क्षुभित कर सके॥२४॥सो आजहीसे देवता और देवताओंके अनुवर्ती मनुष्य, पक्षी और पशुओंका मैं महानाश करूंगा ॥ २५ ॥ हयरूप केशी, प्रलम्बासुर, धेनुक, अरिष्ट, वृषभ, पूतना और कालीयको आज्ञा दो ॥ २६ ॥ कि तुम सब कामरूप धारण किये पृथ्वीमें भ्रमण करते रहो, जो हमारे विरोधी हैं उन सबका नाश करो ॥ २७ ॥

देहियोंके गर्भस्थापनकी गतिभी जानना, कारण कि नारदने गर्भसेही हमको भय कहा है ॥२८॥ तुम सब भयरहित हो इच्छापूर्वक विचरो, जब मैं तुम्हारा स्वामी हूं तौ देवताओंसेभी तुमको भय नहीं है॥२९॥नारदजी तो युद्धमें उत्सुक रहते हैं. विग्रहक्लेश कराना उनका स्वभावही है. वह शान्त हुए इस लोकमें विग्रह कराकरही प्रसन्न होते हैं॥३०॥वह इस लोकमें सदा विग्रह करानेकी इच्छासे चंचलतापूर्वक फिरते हैं और अपने उपायोंसे वह राजोंमें वैर उत्पन्न कराते हैं ॥३१॥ इस प्रकार वाणीमात्रसे बहुत बकवाद करता हुआ अपने तेजसे दह्यमान हो कंस घरमें प्रवेश कर गया॥३२॥

गर्भस्थानामपि गतिर्विज्ञेया चैव देहिनाम् ॥ नारदेन हि गर्भेभ्यो भयं नः समुदाहृतम् ॥२८॥ भवन्तो हि यथाकामं मोदन्तां विगतज्वराः ॥ मां च वो नाथमाश्रित्य नास्ति देवकृतं भयम् ॥२९॥ स तु केलिकिलो विप्रो भेदशीलश्च नारदः ॥ सुश्लिष्टानपि लोकेऽस्मिन्भेदयँल्लभते रतिम् ॥ ३० ॥ कण्डूयमानः सततं लोकानटति चञ्चलः ॥ घटमानो नरेन्द्राणां तन्त्रैर्वैराणि चैव हि ॥ ३१ ॥ एवं स विलपन्नेव वाङ्मात्रेणैव केवलम् ॥ विवेश कंसो भवनं दह्यमानेन चेतसा ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदगमने कंसवाक्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ वैशम्पायन उवाच॥सोऽज्ञापयत संरब्धः सचिवानात्मनो हितान् ॥ यत्ता भवत सर्वे वै देवक्या गर्भकृन्तने ॥ १ ॥ प्रथमादेव हन्तव्या गर्भास्ते सप्त एव हि ॥ मूलादेव तु हन्तव्यः सोऽनर्थो यत्र संशयः ॥ २ ॥ देवकी च गृहे गुप्ता प्रच्छन्नैरभिरक्षिता ॥ स्वैरं चरतु विश्रब्धा गर्भकाले तु रक्ष्यताम् ॥ ३ ॥ मासान्व पुष्पमासादीन् गणयन्तु मम स्त्रियः ॥ परिणामे तु गर्भस्य शेषं ज्ञास्यामहे वयम् ॥ ४ ॥

इति श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदागमने पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां कंसवाक्यं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥वैशम्पायन बोले; इस प्रकार कंसने अपने सब सचिवोंसे कहा,तुम देवकीके गर्भनाश करनेमें सावधान हो॥ १ ॥ और प्रथमकेभी उसके सातों गर्भ नष्ट करना, कारण कि जिसमें अनर्थकी शंका हो, उसे जडसेही नष्ट कर देना उचित है॥२॥ देवकी घरमें गुप्त रखी जाय और समयमें स्वच्छन्द रहे. केवल गर्भके समय उसकी रक्षा की जाय ॥३॥ हमारे यहांकी स्त्री रजोदर्शनसे उसके महीने गिनती रहें और गर्भके पूर्ण होनेपर शेष कृत्य हम कर लेंगे॥ ४ ॥

और स्त्रियोंसे वसुदेवकीभी रक्षा कराई जाय.वे स्त्री मेरे निमित्त रातदिन सावधान रहें.स्त्री और वौने रक्षा तो करें,परन्तु इस बातका भेद न कहें॥५॥ इस प्रकार मानुषी यत्न तो मनुष्योंसेही सिद्ध होता है.अब जिस प्रकार हमसरीखे दैविक यत्नको शिथिल करते हैं सो तुम सुनो॥६॥अनेक प्रकारके मंत्र और औषधि और अनेक प्रकारकी प्रार्थनासे तथा यत्नसे दैवभी अनुकूल हो जाता है॥७॥वैशंपायन बोले;इस प्रकारसे कंसने देवकीकेगर्भ नष्ट करनेका प्रयत्न किया.पीछे भयसे नारदके कहे वचनमें संमति करने लगा॥८॥इस प्रकार कंसके उत्पातरूप प्रयत्नको श्रवण कर अन्तर्ध्यान होकर

वसुदेवस्तु संरक्ष्यः स्त्रीसनाथासु भूमिषु ॥ अप्रमत्तैर्मम हिते रात्रावाहनि चैव हि ॥ स्त्रीभिर्वर्षवरैश्चैव वक्तव्यं न तु कारणम् ॥५॥
एष मानुष्यको यत्नो मानुषैरेव साध्यते ॥ श्रूयतां येन दैवं हि मद्विधैः प्रतिहन्यते ॥६॥ मन्त्रग्रामैः सुविहितैरौषधैश्च सुयोजितैः ॥
यत्नेन चानुकूलेन दैवमप्यनुलोम्यते ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं स यत्नवान्कंसो देवकीगर्भकृन्तने ॥ भयेन मन्त्रयामास
श्रुतार्थो नारदात्स वै ॥ ८ ॥ एवं श्रुत्वा प्रयत्नं वै कंसस्यारिष्टसंज्ञितम् ॥ अन्तर्द्धानं गतो विष्णुश्चिन्तयामास वीर्यवान् ॥९॥
सप्तेमान्देवकीगर्भान्भोजपुत्रो वधिष्यति ॥ अष्टमे च मया गर्भे कार्यमाधानमात्मनः ॥ १० ॥ तस्य चिन्तयतस्त्वेवं पाताल-
मगमन्मनः ॥ यत्र ते गर्भशयना षड्गर्भा नाम दानवाः ॥ ११ ॥ विक्रान्तवपुषो दीप्तास्तेऽमृतप्राशनोपमाः ॥ अमरप्रतिमा युद्धे
पुत्रा वै कालनेमिनः ॥ १२ ॥ ते तातताते संत्यज्य हिरण्यकशिपुं पुरा ॥ उपासांचक्रिरे दैत्याः पुरा लोकपितामहम् ॥ १३ ॥
तप्यमानास्तपस्तीव्रं जटामण्डलधारिणः ॥ तेषां प्रीतोऽभवद्ब्रह्मा षड्गर्भाणां वरं ददौ ॥ १४ ॥

महावीर्यवान् विष्णुजी विचार करने लगे ॥ ९ ॥कि सात देवकीके पुत्रोंको कंस अवश्य वध करेगा, आठवे गर्भमें मुझे स्वयं प्राप्त होना है ॥१०॥ ऐसा विचार कर पातालमें भगवान्ने मन लगाया. जहां गर्भमें शयन करनेवाले छः गर्भा नाम दानव थे॥११॥ उनका विक्रान्त शरीर साक्षात् अमृतपान किये देवतोंके समान था.युद्धमें चतुर कालनेमिके पुत्र ॥१२॥ प्रथम यह दैत्य अपने पिता हिरण्यकशिपु दैत्यको छोड लोकपितामह ब्रह्माकी उपासना करने लगे और ॥ १३ ॥ जटामण्डल धारण कर कठिन तप करने लगे, तब ब्रह्माने प्रसन्न हो उन षड्गर्भा दानवोंको वर दिया ॥ १४ ॥

ब्रह्माजी बोले;हे दानवश्रेष्ठो ! मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हूं,तुम इच्छानुसार वर मांगो, यथाकाम वरदान दूंगा॥१५॥वे सब दैत्य ब्रह्मासे एकहीबात बोले, यदि आप हमसे प्रसन्नहैं तो यही वर दीजिये॥१६॥हम महोरग और देवतोंसे अवध्यहों,शाप और प्रहार करनेपरभी महर्षियोंसे हमारा मंगल हो॥१७॥ दक्ष, गन्धर्वपति, सिद्ध, चारण, मनुष्योंसे हमारा वध न हो. जो आपको देनेकी इच्छा है तो यहीं वर दीजिये ॥ १८ ॥ तब ब्रह्माजी प्रसन्नमन हो उनसे बोले, जो कुछ तुमने कहा है यह सब यौंही होगा ॥१९॥ इस प्रकार उन षड्गर्भ दैत्योंको वर दे ब्रह्माजी अपने स्थानको गये. तब हिरण्य-

ब्रह्मोवाच ॥ भो भो दानवशार्दूलास्तपसाहं सुतोषितः ॥ ब्रूत वो यस्य यः कामस्तस्य तं तं करोम्यहम् ॥ १५ ॥ ते तु सर्वे समानार्था दैत्या ब्रह्माणमब्रुवन् ॥ यदि नो भगवान्प्रीतो दीयतां नो वरो वरः ॥ १६ ॥ अवध्याः स्याम भगवन्देवतैस्समहोरगैः ॥ शापप्रहरणैश्चैव स्वस्ति नोऽस्तु महर्षिभिः ॥ १७ ॥ यक्षगन्धर्वपतिभिस्सिद्धचारणमानवैः ॥ मा भूद्वधो नो भगवन्ददासि यदि नो वरम् ॥ १८ ॥ तानुवाच ततो ब्रह्मा सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥ भवद्भिर्यदिदं प्रोक्तं सर्वमेतद्भविष्यति ॥१९॥ षड्गर्भाणांवरं दत्त्वा स्वयंभूस्त्रिदिवं गतः ॥ ततो हिरण्यकशिपुः सरोषो वाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥ मामुत्सृज्य वरो यस्माद्वृतो वः पद्मसंभवात् ॥ तस्माद्वस्त्याजितः स्नेहः शत्रुभूतांस्त्यजाम्यहम् ॥ २१ ॥ षड्गर्भा इति योऽयं वः शब्दः पित्राभिवर्द्धितः ॥ स एव वो गर्भगतान्पिता सर्वान्वधिष्यति ॥ २२ ॥ षडेव देवकीगर्भाः षड्गर्भा वै महासुराः ॥ भविष्यथ ततः कंसो गर्भस्थान्वो वधिष्यति ॥२३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ जगामाथ ततो विष्णुः पातालं यत्र तेऽसुराः ॥ षड्गर्भास्संयतास्सन्ति जले गर्भगृहेशयाः ॥ २४ ॥

कशिपु क्रोध कर बोला॥२०॥जिस कारणसे कि तुमने मुझे छोडकर ब्रह्मासे वर मांगा,इस कारण मैंने तुम्हारी प्रीति त्याग दी, तुम मेरे शत्रुरूप हो इस कारण मैं तुमको त्यागन करता हूं॥२१॥ षड्गर्भा इस प्रकारका जो शब्द पिताने तुम्हारे निमित्त दिया था,इस कारण गर्भसे जन्म लोगे. उत्पन्न होतेही पिता तुम सबको वध करेगा॥२२॥ तुम छहों देवकीके गर्भमें उत्पन्न होगे, होतेही तुम छहोंको कंस वध करेगा ॥ २३ ॥ वैशम्पायन बोले; सा विचार कर विष्णु भगवान् पातालको गये, जहां वे षड्गर्भ हिरण्यकशिपुके शापसे रुद्ध हुए जलके गर्भगृहमें शयन करते थे ॥ २४ ॥

उन्होंने उन छहोंको जलके गर्भमें स्थित देखा और कालरूपी निद्रासे अन्तर्हित हो रहे थे ॥ २५ ॥ विष्णु भगवान् स्वप्नरूपसे उनकी देहोंमें प्रवेश कर गये और उनके जीवोंको खैंचकर निद्राके निमित्त दिये ॥ २६ ॥ और निद्रासे सत्यपराक्रमी विष्णु भगवान्‌ने कहा; हे देवी ! मेरी आज्ञासे देवकीके भवनमें जा ॥ २७ ॥ और इन षड्गर्भा नामक दानवोंके प्राणोंको ग्रहण कर. यह षड्गर्भा नाम देहधारियोंके सर्वके प्राणेश्वर हैं, इनको यथाक्रम देवकीके गर्भमें निमित्त कर ॥ २८ ॥ इन गर्भोंके उत्पन्न होने और परमलोकमें जानेपर कंसका यत्न विफल और देवकीका सफल श्रम होनेपर ॥ २९ ॥ तेरा प्रभाव

संददर्श जले गुप्तान्षड्गर्भान्गर्भसंस्थितान् ॥ निद्रया कालरूपिण्या सर्वानन्तर्हितान्स वै ॥ २५ ॥ स्वप्नरूपेण तेषां वै विष्णुर्देहानथाविशत् ॥ प्राणेश्वरांश्च निष्कृष्य निद्रायै प्रददौ तदा ॥ २६ ॥ तां चोवाच ततो निद्रां विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥ गच्छ निद्रे मयोत्सृष्टा देवकीभवनान्तिकम् ॥ २७ ॥ इमान्प्राणेश्वरान्गृह्य षड्गर्भान्दानवोत्तमान् ॥ सर्वप्राणेश्वरांश्चैव षड्गर्भान्नाम देहिनः ॥ षड्गर्भान्देवकीगर्भे योजयस्व यथाक्रमम् ॥ २८ ॥ जातेष्वेतेषु गर्भेषु नीतेषु च यमक्षयम् ॥ कंसस्य विफले यत्ने देवक्याः सफले श्रमे ॥ २९ ॥ प्रसादं ते करिष्यामि मत्प्रभावसमं भुवि ॥ येन सर्वस्य लोकस्य देवि देवी भविष्यसि ॥ ३० ॥ सप्तमो देवकीगर्भो योंऽशस्सौम्यो ममाग्रजः ॥ स संक्रमयितव्यस्ते सप्तमे मासि रोहिणीम् ॥ ३१ ॥ संकर्षणात्तु गर्भस्य स तु संकर्षणो युवा ॥ भविष्यत्यग्रजो भ्राता मम शीतांशुदर्शनः ॥ ३२ ॥ पतितो देवकीगर्भस्सप्तमोऽयं भयादिति ॥ अष्टमे मयि गर्भस्थे कंसो यत्नं करिष्यति ॥ ३३ ॥

मैं ऐसा करूंगा कि तू पृथ्वीमें मेरी समानताको प्राप्त होगी और हे देवी ! इसी कारण तुम सब लोककी देवी होगी ॥ ३० ॥ और जो सातवां गर्भ मेरे अग्रजाका होगा, उसे तुम सातवें महीने निकालकर रोहिणीके उदरमें स्थापन करना ॥ ३१ ॥ गर्भके संकर्षण (खैंचने) से उनका नाम संकर्षणही होगा. वह चंद्रमाकी समान दर्शनीय मेरे बडे भ्राता होंगे ॥ ३२ ॥ और सातवां देवकीके गर्भसे पतित हो गया, यह विख्यात करा देनेसे तब गर्भमें मुझ

आठवेंके प्राप्त होनेसे कंस यत्न करेगा॥३३॥वहांसे तू नंदगोपकी स्त्री गोपकुलकीधारनेहारी यशोदाके निकट जाना॥३४॥हमारे कुलमें उसी यशोदामें तेरा नवमां गर्भ होगा. तू कृष्णपक्षकी तिथि नवमीमें प्रगट होगी॥३५॥मैं अष्टमीके दिन अर्द्धरात्रिके समय अभिजित् नक्षत्रमें सुखपूर्वक गर्भमोक्ष अर्थात् जन्म लूंगा॥३६॥ हम कंसके नाश करनेके निमित्त आठवें महीनेके साथही गर्भमें प्राप्त होंगे ॥३७॥ हे देवी ! मैं तो यशोदाके निकट जाऊंगा और तुम देवकीके निकट रहना. हम दोनोंके गर्भ संयोगमें कंस मूढताको प्राप्त हो जायगा ॥ ३८ ॥ तब तेरा चरण पकडकर शिलामें पटकेगा, तब

या तु सा नन्दगोपस्य दयिता भुवि विश्रुता ॥ यशोदा नाम भद्रं ते भार्या गोपकुलोद्वहा ॥ ३४ ॥ तस्यास्त्वं नवमो गर्भः कुलेऽस्माकं भविष्यसि ॥ नवम्यामेव संजाता कृष्णपक्षस्य वै तिथौ ॥३५॥ अहं त्वभिजितो योगे निशायां यौवने स्थिते ॥ अर्धरात्रे करिष्यामि गर्भमोक्षं यथासुखम् ॥३६॥ अष्टमस्य तु मासस्य जातावावां ततः समम् ॥ प्राप्स्यावो गर्भव्यत्यासं प्राप्ते कंसस्य नाशने ॥३७॥ अहं यशोदां यास्यामि त्वं देवि भज देवकीम् ॥आवयोर्गर्भसंयोगे कंसो गच्छतु मूढताम् ॥३८॥ ततस्त्वां गृह्य चरणे शिलायां पातयिष्यति ॥ निरस्यमाना गगने स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥३९॥ मच्छवीसदृशी कृष्णा संकर्षणसमानना ॥ बिभ्रती विपुलौ बाहू मम बाहूपमौ दिवि ॥ ४० ॥ त्रिशिखं शूलमुद्यम्य खड्गं च कनकत्सरुम् ॥ पात्रीं च पूर्णां मधुना पङ्कजं च सुनिर्मलम् ॥ ४१ ॥ नीलकौशेयसंवीता पीतेनोत्तरवाससा ॥ शशिरश्मिप्रकाशेन हारेणोरसि राजता ॥ ४२ ॥

उसके हाथसे छूटकर तू आकाशमें शाश्वतस्थान पावेगी ॥३९॥ मेरी छबीकी समान श्याम और बलरामकी समान मुखवाली, स्वर्गमें मेरी भुजाकी समान भुजा धारण किये ॥४० ॥ तीन शिखाका शूल उठाये,खड्ग और कवच धारण किये, सुवर्ण मुष्टि लगा खड्ग मधुसे पूर्ण पात्र और निर्मल कमल धारण किये ॥४१॥ नीले रेसमकी साडी और पीले डुपट्टेसे युक्त चंद्रमाकी किरणोंके समान महाहारसे शोभित हृदयवाली ॥४२॥

कानोंमें दिव्य कुंडल पहरे, चन्द्रमाको लजानेवाले मुखसे शोभित ॥४३॥ विचित्र मुकुट और केशबंधसे शोभित, भुजंगकी समान बडी भुजाओंसे दशों दिशाओंको शोभित करतीं ॥४४॥ ऊंचे मोरध्वज करके विराजमान, मोरपुच्छ और प्रकाशमान बाजूबंदसे शोभित ॥ ४५ ॥ घोर प्राणियोंसे युक्त, मेरी आज्ञाको माननेहारी, कौमारव्रतमें स्थित हो तू स्वर्गको पधारेगी ॥४६॥ वह इन्द्र मेरे कहे हुए विधानसे देवताओंसहित तेरा दिव्य अभिषेक करेंगे ॥ ४७ ॥ और इन्द्र तुझे भगिनीकी समान ग्रहण करेगा और कुशिकगोत्रमें होनेके कारण तू कौशिकी होगी ॥४८॥ वह तुझे पर्वतश्रेष्ठ विंध्या-

दिव्यकुण्डलपूर्णाभ्यां श्रवणाभ्यां विभूषिता ॥ चन्द्रसापत्नभूतेन मुखेन त्वं विराजिता ॥ ४३ ॥ मुकुटेन विचित्रेण केशबन्धेन शोभिना ॥ भुजङ्गाभैर्भुजैर्भीमैर्भूषयन्ती दिशो दश ॥ ४४ ॥ ध्वजेन शिखिबर्हेण उच्छ्रितेन विराजता ॥ अङ्गजेन मयूराणामङ्गदेन च भास्वता ॥ ४५ ॥ कीर्णा भूतगणैर्घोरैर्मन्नियोगानुवर्तिनी ॥ कौमारं व्रतमास्थाय त्रिदिवं त्वं गमिष्यसि ॥ ४६ ॥ तत्र त्वां शतदृक् शक्रो मत्प्रदिष्टेन कर्मणा ॥ अभिषेकेण दिव्येन दैवतैस्सह योक्ष्यसे ॥ ४७ ॥ तत्रैव त्वां भगिन्यर्थ ग्रहीष्यति स वासवः ॥ कुशिकस्य तु गोत्रेण कौशिकी त्वं भविष्यसि ॥४८॥ स ते विन्ध्ये नगश्रेष्ठे स्थानं दास्यति शाश्वतम् ॥ ततः स्थानसहस्रैस्त्वं पृथिवीं शोभयिष्यसि ॥ ४९ ॥ त्रैलोक्यचारिणी स त्वं भुवि सत्योपयाचना ॥ चरिष्यसि महाभागे वरदा कामरूपिणी ॥ ५० ॥ तत्र शुम्भनिशुम्भौ द्वौ दानवौ नगचारिणौ ॥ तौ च कृत्वा मनसि मां सानुगौ नाशयिष्यसि ॥ ५१ ॥ कृत्वानुयात्रां भूतैस्त्वं सुरामांसबलिप्रिया ॥ तिथौ नवम्यां पूजां त्वं प्राप्स्यसे सपशुक्रियाम् ॥ ५२ ॥

चलमें स्थान देंगे. पीछे सहस्रों स्थानोंमें स्थित हो तू पृथ्वीको शोभित करेगी ॥४९॥ और त्रिलोकीमें विचरनेके कारण पृथ्वीमें तू सत्यफलकी देनेहारी होगी; हे महाभागे ! तुम वर देनेको कामरूप होकर विचरण करोगी ॥५०॥ वहां उस पर्वतपर फिरनेहारे शुंभ निशुंभ दो दानवोंको मनकी इच्छासे अनुचरोंसहित नाश करोगी ॥५१॥ सुरा मांस और बलिप्रिय होनेके कारण प्राणियोंसे अनुगमनको प्राप्त हो पशुक्रियासहित नवमीके दिन पूजाको

पावोगी ॥ ५२ ॥ मेरे प्रभावके जाननेवाले जो मनुष्य तुझको प्रणाम करेंगे. उन्हें धन और पुत्रमें कुछभी दुर्लभ नहीं रहेगा ॥ ५३ ॥ वनोंमें दुख पाते, सागरमें डूबते; चोरोंसे घिरे मनुष्योंकी रक्षा करनेवाली तूही होगी ॥ ५४ ॥ हे देवी ! जो भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रसे तेरी स्तुति करेंगे मैं उनको नहीं मारूंगा और वह मुझमें प्रहार न करेगा अर्थात् मेरा भक्त हो जायगा ॥५५॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ वैशंपायनजी बोले; जो पहले ऋषियोंने कहा है, तुम्हारे प्रति मैं उस आर्यास्तोत्रको कहता हूं. त्रिभुवनकी ईश्वरी नारायणी देवीको नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

ये च त्वां मत्प्रभावज्ञाः प्रणमिष्यन्ति मानवाः ॥ तेषां न दुर्लभं किञ्चित्पुत्रतो धनतोऽपि वा ॥ ५३ ॥ कान्तारेष्ववसन्नानां मग्नानां च महार्णवे ॥ दस्युभिर्वा निरुद्धानां त्वं गतिः परमा नृणाम् ॥ ५४ ॥ त्वां तु स्तोष्यन्ति ये भक्त्या स्तवेनानेन वै शुभे ॥ तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भारावतरणे निद्रासंविज्ञानो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ आर्यास्तव प्रवक्ष्यामि यथोक्तमृषिभिः पुरा ॥ नारायणीं नमस्यामि देवीं त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ १ ॥ त्वं हि सिद्धिर्धृतिः कीर्तिः श्रीर्विद्या सन्नतिर्मतिः ॥ संध्या रात्रिः प्रभा निद्रा कालरात्रिस्तथैव च ॥ २ ॥ आर्या कात्यायनी देवी कौशिकी ब्रह्मचारिणी ॥ जननी सिद्धसेनस्य उग्रचारी महाबला ॥ ३ ॥ जया च विजया चैव पुष्टिस्तुष्टिः क्षमा दया ॥ ज्येष्ठा यमस्य भगिनी नीलकौशेयवासिनी ॥ ४ ॥ बहुरूपा विरूपा च अनेकविधिचारिणी ॥ विरूपाक्षी विशालाक्षी भक्तानां परिरक्षिणी ॥ ५ ॥

तूही सिद्धिस्वरूप धैर्य, कीर्ति, लक्ष्मी, विद्या, सन्तति और बुद्धि है. संध्या, रात्री, प्रभा, निद्रा, कालरात्री ॥ २ ॥ आर्या, कात्यायनी, देवी, कौशिकी, ब्रह्मचारिणी, सिद्धसैन स्कंदकी माता, उग्रकर्मसे विचरनेहारी, महाबला ॥ ३ ॥ जया, विजया, पुष्टि, तुष्टि, क्षमा, दया, ज्येष्ठा, यमराजकी भगिनी (मृत्यु), नील वस्त्र धारनेहारी तूही है ॥ ४ ॥ बहुत प्रकारके रूप धारनेहारी, विरूप, अनेक विधिसे विचरनेहारी; विषमनेत्रवाली, विशालनेत्रा,

भक्तोंकी रक्षा करनेहारी ॥ ५ ॥ घोर पर्वतोंके अग्रभाग, नदी, गुहा, वन उपवनोंमें हे देवी ! तुम्हारा वास है ॥ ६ ॥ हे देवी भगवति ! शबर, बर्बर और पुलिंद जातिभी तुम्हारी पूजा करते हैं. तुम मयूरपुच्छकी ध्वजायुक्त हो सब लोकोंमें विचरती हो ॥ ७ ॥ कुक्कुट, छाग (बकरा), मेष, सिंह, व्याघ्रोंसे युक्त और घंटेके शब्दसे संकुल विंध्याचलपर्वतमें तुम्हारा वास है, यह बात विख्यात है ॥ ८ ॥ त्रिशूल पट्टिश धारे, चन्द्रसूर्यकी ध्वजासे युक्त; कृष्णपक्षकी नौमी और शुक्लपक्षकी एकादशी ॥ ९ ॥ बलदेवकी भगिनी, रजनीरूप, कलहप्रिया, संपूर्ण प्राणियोंके निवासरूप, मरणमें परम गति देने-

पर्वताग्रेषु घोरेषु नदीषु च गुहासु च ॥ वासस्तव महादेवि वनेषूपवनेषु च ॥ ६ ॥ शबरैर्बर्बरैश्चैव पुलिन्दैश्च सुपूजिता ॥ मयूरपिच्छ-ध्वजिनी लोकान् क्रमसि सर्वशः ॥ ७ ॥ कुक्कुटैश्छागलैर्मेषैस्सिंहैर्व्याघ्रैस्समाकुला ॥ घण्टानिनादबहुला विन्ध्यवासिन्यभि-श्रुता ॥ ८ ॥ त्रिशूली पट्टिशधरा सूर्यचन्द्रपताकिनी ॥ नवमी कृष्णपक्षस्य शुक्लस्यैकादशी तथा ॥ ९ ॥ भगिनी बलदेवस्य रजनी कलहप्रिया ॥ आवासः सर्वभूतानां निष्ठा च परमा गतिः ॥ १० ॥ नन्दगोपसुता चैव देवानां विजयावहा ॥ चीरवासास्सुवा-साश्च रौद्री संध्याचरी निशा ॥ ११ ॥ प्रकीर्णकेशी मृत्युश्च सुरामांसबलिप्रिया ॥ लक्ष्मीरलक्ष्मीरूपेण दानवानां वधाय च ॥ १२ ॥ सावित्री चापि देवानां माता मन्त्रगणस्य च ॥ कन्यानां ब्रह्मचर्यत्वं सौभाग्यं प्रमदासु च ॥ १३ ॥ अन्तर्वेदी च यज्ञानामृत्विजां चैव दक्षिणा ॥ कर्षुकाणां च सीतेति भूतानां धरणीति च ॥ १४ ॥ सिद्धिः सांयात्रिकाणां तु वेला त्वं सागरस्य च ॥ यक्षाणां प्रथमा यक्षी नागानां सुरसेति च ॥ १५ ॥

हारी ॥ १० ॥ नंदगोपकी सुता, देवताओंको विजय देनेहारी, चीरवसनयुक्त श्रेष्ठ वस्त्र, क्रोधयुक्त संध्यामें विचरनेहारी, रात्रीस्वरूप ॥ ११ ॥ प्रकीर्ण केश, मृत्युस्वरूप, सुरा मांस और बलिकी इच्छा करनेहारी, लक्ष्मी और अलक्ष्मीरूपसे दानवोंका वध करनेहारी ॥ १२ ॥ सावित्रीस्वरूप, देवता-ओंकी और सब मंत्रोंकी माता, कन्याओंमें ब्रह्मचर्य और स्त्रियोंमें सौभाग्यरूप स्त्री तुमही हो ॥ १३ ॥ यज्ञोंकी अन्तर्वेदी और ऋत्विजोंकी दक्षिणा-स्वरूप; हे देवी ! तुमही हो. किसानोंके हलके अग्रभाग (पैंड) रूप और प्राणियोंकी धरणीरूप हो ॥ १४ ॥ जहाजके व्यापारियोंकी सिद्धि और

सागरकी बेला,पक्षोंमें पहली पक्षिणी, नागोंमें सुरसा ॥१५॥ ब्रह्मवादियोंमें दीक्षा सोभा और परमास्वरूप;हे देवी ! तुम ज्योतियोंमें प्रभा और नक्षत्रोंमें रोहिणी हो ॥ १६ ॥ राजद्वार तीर्थ नदियोंके संगममें लक्ष्मीरूप तुम ही हो,पूर्णा और पूर्ण चंद्रमें कृत्तिवास तुमही हो ॥ १७ ॥ वाल्मीकिमें सरस्वती, व्यासमें स्मृति, ऋषियोंमें धर्मबुद्धि, देवताओंमें सत्यसंकल्पात्मिका चित्तवृत्ति, प्राणियोंमें सुरा,देवीरूप तुम अपने कर्मोंसे स्तुतिको प्राप्त होती हो ॥ १८ ॥ इन्द्रकी सुन्दर दृष्टि सहस्रनयना तुमही हो, तपस्वियोंमें देवी और अग्निहोत्रमें अरणी तुमही हो ॥ १९ ॥ सब प्राणियोंमें क्षुधा और

ब्रह्मवादिन्यथो दीक्षा शोभा च परमा तथा ॥ ज्योतिषां त्वं प्रभा देवि नक्षत्राणां च रोहिणी ॥ १६ ॥ राजद्वारेषु तीर्थेषु नदीनां सङ्गमेषु च ॥ पूर्णा च पूणमा चन्द्रे कृत्तिवासा इति स्मृता ॥ १७ ॥ सरस्वती च वाल्मीके स्मृतिर्द्वैपायने तथा ॥ ऋषीणां धर्मबुद्धिस्तु देवानां मानसी तथा ॥ सुरा देवी तु भूतेषु स्तूयसे त्वं स्वकर्मभिः ॥ १८ ॥ इन्द्रस्य चारुदृष्टिस्त्वं सहस्रनयनेति च ॥ तापसानां च देवी त्वमरणी चाग्निहोत्रिणाम् ॥ १९ ॥ क्षुधा च सर्वभूतानां तृप्तिस्त्वं दैवतेषु च ॥ स्वाहा तृप्तिर्धृतिर्मेधा वसूनां त्वं वसूमती ॥ २० ॥ आशा त्वं मानुषाणां च पुष्टिश्च कृतकर्मणाम् ॥ दिशश्च विदिशश्चैव तथा ह्यग्निशिखा प्रभा ॥ २१ ॥ शकुनी पूतना त्वं च रेवती च सुदारुणा ॥ निद्रापि सर्वभूतानां मोहिनी क्षत्रिया तथा ॥ २२ ॥ विद्यानां ब्रह्मविद्या त्वमोङ्कारोऽथ वषट् तथा ॥ नारीणां पार्वतीं च त्वां पौराणीमृषयो विदुः ॥ २३ ॥ अरुन्धती च साध्वीनां प्रजापतिवचो यथा ॥ यथार्थनामभिर्दिव्यैरिन्द्राणी चेति विश्रुता ॥ २४ ॥

संपूर्ण देवताओंमें तृप्ति, स्वाहा, तृप्ति, धृति, बुद्धि और वसुओंमें तुम वसुमती हो ॥ २० ॥ मनुष्योंकी आशा, कृतकामियोंकी पुष्टि, दिशा विदिशा और अग्निकी शिखा तथा प्रभारूप तुमही हो॥२१॥तुमही शकुनी, पूतना, दारुण रेवती,सब प्राणियोंकी निद्रा, मोहिनी और क्षत्रियरूप हो॥२२॥ विद्याओंमें ब्रह्मविद्या, ओंकार, वषट्कार तुमही हो. स्त्रियोंमें ऋषिजन, पौराणी पार्वती तुमहीको जानते हैं ॥ २३ ॥ पतिव्रताओंमें अरुन्धती हो, यह

प्रजापतिका वचन है. दिव्य यथार्थ नामोंसे तुम्हारी स्तुति की जाती है. इन्द्राणीस्वरूपभी तुम हो ॥२४॥ यह स्थावर जंगम जगत् तुमहीसे व्याप्त हो रहा है. सम्पूर्ण संग्राम और अग्निप्रज्वलितस्थान, नदीके किनारे, चौरस्थान, जंगम और भयके स्थानमें ॥ २५ ॥ परदेश, राजबन्धन, शत्रुओंके मर्दनमें, प्राणसंकट आदि भयमें एक तूही रक्षा करनेहारी है; इसमें संदेह नहीं ॥२६॥ हे देवी ! मेरा हृदय और चित्त तुममेंही लगा है. तुम मुझे सब पापोंसे रक्षा करके मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥२७॥ यह सुन्दर स्तोत्र व्यासजीका निर्माण किया हुआ है. जो प्रातःकाल उठकर पवित्र हो इसे पढते

त्वया व्याप्तमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥संग्रामेषु च सर्वेषु अग्निप्रज्वलितेषु च॥नदीतीरेषु चौरेषु कान्तारेषु भयेषु च॥२६॥ प्रवासे राजबन्धे च शत्रूणां च प्रमर्दने ॥ प्राणात्ययेषु सर्वेषु त्वं हि रक्षा न संशयः ॥२६॥ त्वयि मे हृदयं देवि त्वयि चित्तं मनस्त्वयि ॥ रक्ष मां सर्वपापेभ्यः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २७ ॥ इमं यस्सुस्तवं दिव्यमिति व्यासप्रकल्पितम् ॥ यः पठेत्प्रातरुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः ॥ २८ ॥ त्रिभिर्मासैः कांक्षितं च फलं वै संप्रयच्छसि ॥ षड्भिर्मासैर्वरिष्ठं तु वरमेकं प्रयच्छसि ॥२९॥ अर्चिता तु त्रिभिर्मासैर्दिव्यं चक्षुः प्रयच्छसि ॥ संवत्सरेण सिद्धिं तु यथाकामं प्रयच्छसि ॥३०॥ सत्यं ब्रह्म च दिव्यं च द्वैपायनवचो यथा ॥ नृणां बन्धं वधं घोरं पुत्रनाशं धनक्षयम् ॥ ३१ ॥ व्याधिमृत्युभयं चैव पूजिता शमयिष्यसि ॥ भविष्यसि महाभागे वरदा कामरूपिणी ॥ मोहयित्वा च तं कंसमेका त्वं भोक्ष्यसे जगत् ॥ ३२ ॥ अहमप्यात्मनो वृत्तिं विधास्ये गोषु गोपवत् ॥ स्ववृद्ध्यर्थमहं चैव करिष्ये कंसगोपताम् ॥ ३३ ॥

हैं॥२८॥उनको तीन महीनेमें मनइच्छित फलकी प्राप्ति हो जाती है और छः महीनेमें देवी वरदान देती है॥२९॥और जो तीन महीने पूजन करते हैं उनको दिव्य चक्षु प्रदान करतीहै और एक वर्ष पूजा करनेसे सिद्धि हो जाती है. सब इच्छा पूर्ण हो जाती है॥३०॥यह सत्यब्रह्म और दिव्यरूप है, यही वेदव्यासजीका वचन है, पुरुषोंको वध, घोर बन्धन, पुत्रनाश, धनका क्षय॥३१॥व्याधि और मृत्युभय पूजन करतेही शान्त कर देगी. हेमहाभागे! तू वर देनेहारी कामरूपिणी होगी, उस कंसको मोहित कर एकही तू इस जगत्को भोगेगी॥३२॥और मैंभी अपनी वृद्धिको गौओंमें गोपके समान

धारण करूंगा और अपनी वृद्धिके निमित्त कंससे छिपाव करूंगा॥ ३ ३॥इस प्रकार उसे समाधान कर भगवान् अन्तर्ध्यान हुए और देवीभी उनको नमस्कार कर उस कृत्यमें ऐसाही करूंगी यह निश्चय करती हुई॥ ३ ४॥जो इस स्तोत्रको पढते वा निरन्तर श्रवण करते हैं,वह मनुष्य सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त होते हैं.इसमें संदेह नहीं ॥ ३ ५ ॥ इति श्रीखिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां स्वप्नगर्भविधाने आर्यास्तुतिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ वैशंपायन बोले;जिस समय देवसमान देवकीके गर्भाधान हुआ, जैसे योगमायाके प्रति विष्णुने कहा था, इसी प्रकार उसने सात

एवं तां स समादिश्य गतोऽन्तर्द्धानमीश्वरः ॥ सा चापि तं नमस्कृत्य तथास्त्विति च निश्चिता ॥३४॥ यश्चैतत्पठते स्तोत्रं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ॥ सर्वार्थसिद्धिं लभते नरो नास्त्यत्र संशयः॥३५॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि स्वप्नगर्भविधाने आर्यास्तुतिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ कृते गर्भविधाने तु देवकी देवतोपमा ॥ जग्राह सप्त तान्गर्भान्यथावत्समुदाहृतान् ॥१॥ षड्गर्भान्निस्सृतान् कंसस्तान् जघान शिलातले ॥ आपन्नं सप्तमं गर्भं सा निनायाथ रोहिणीम् ॥ २ ॥ अर्द्धरात्रे स्थितं गर्भं पातयन्ती रजस्वला ॥ निद्रया सहसाविष्टा पपात धरणीतले ॥३॥ सा स्वप्नमिव तं दृष्ट्वा स्वे गर्भे गर्भमादधत् ॥ अपश्यन्ती च तं गर्भं मुहूर्तं व्याथिताभवत् ॥४॥ तामाह निद्रा संविग्ना नैशे तमसि रोहिणीम् ॥ रोहिणीमिव सोमस्य वसुदेवस्य धीमतः ॥ ५ ॥ कर्षणेनास्य गर्भस्य स्वगर्भे चाहितस्य वै ॥ संकर्षणो नाम सुतश्शुभे तव भविष्यति ॥ ६ ॥

गर्भोंको ग्रहण किया॥ १ ॥उनमें छः गर्भोंको तो उत्पन्न होतेही कंसने शिलातलमें पटक कर मार डाला और जब सातवां गर्भ हुआ,उसे योगमायाने रोहिणीके रख दिया॥ २॥देवकीने अर्द्धरात्रीके समय रजस्वला होकर उस गर्भको निपातित कर दिया और निद्रासे आक्रान्त हो स्वयंभी पृथ्वीतलमें गिर गई॥ ३॥ और रोहिणीने उस गर्भको स्वप्नके समान देखकर अपने गर्भमें धारण किया और वह गर्भको न देखकर दो घडी पर्यन्त महादुःखी रही॥४॥उस समय चन्द्रमाकी रोहिणीके समान वसुदेवकी प्रिया रोहिणीसे वह निद्रा रात्रीके अंधकारमें बोली॥५॥हे रोहिणी ! गर्भके आकर्षण होने और स्वयं पतित

होनेसे तुम्हारे पुत्रका नाम संकर्षण होगा ॥ ६ ॥ इस प्रकार वह पुत्रके प्राप्त होनेसे कुछेक मुख नीचे कर मन्दिरमें प्रवेश कर गई और ऐसी प्रसन्न हुई जैसे रोहिणी चन्द्रमाकी स्त्री बुधको गोदीमें ले प्रसन्न हुई थी ॥ ७ ॥ उसके गर्भके मार्गसेही देवकीने गर्भ धारण किया. जिसके निमित्त सात गर्भोंको कंसने निपातन किया था ॥ ८ ॥ तब कंसके मंत्री इस गर्भकी यत्नपूर्वक रक्षा करने लगे और सत्य आत्मा हरिने अपनी इच्छासेही गर्भमें निवास किया ॥ ९ ॥ उसी दिन यशोदाकेभी गर्भाधान हुआ. विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुई निद्रा उनकी आज्ञाकारिणीने यशोदाके उदरमें निवास किया ॥ १० ॥

सा तं पुत्रमवाप्यैवं हृष्टा किञ्चिदवाङ्मुखी ॥ विवेश रोहिणी वेश्म सुप्रभा रोहिणी यथा ॥ ७ ॥ तस्य गर्भस्य मार्गेण गर्भमाधत्त देवकी ॥ यदर्थं सप्त ते गर्भाः कंसेन विनिपातिताः ॥ ८ ॥ तं तु गर्भं प्रयत्नेन ररक्षुस्तस्य मन्त्रिणः ॥ सोऽप्यत्र गर्भवसतौ वसत्यात्मेच्छया हरिः ॥ ९ ॥ यशोदापि समाधत्त गर्भं तदहरेव तु ॥ विष्णोश्शरीरजां निद्रां विष्णुनिर्देशकारिणीम् ॥ १० ॥ गर्भकाले त्वसंपूर्णे अष्टमे मासि ते स्त्रियौ ॥ देवकी च यशोदा च सुषुवाते समं तदा ॥ ११ ॥ यामेव रजनीं कृष्णो यज्ञे वृष्णिकुलोद्वहः ॥ तामेव रजनीं कन्यां यशोदापि व्यजायत ॥ १२ ॥ नन्दगोपस्य भार्यैका वसुदेवस्य चापरा ॥ तुल्यकालं च गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा ॥ १३ ॥ देवक्यजनयद्विष्णुं यशोदा तां तु दारिकाम् ॥ मुहूर्तेऽभिजिति प्राप्ते सार्द्धरात्रे विभूषिते ॥ १४ ॥ सागरास्समकम्पन्त चेलुश्च धरणीधराः ॥ जज्वलुश्चाग्नयश्शान्ता जायमाने जनार्दने ॥ १५ ॥

गर्भकालकी असंपूर्णतामेंही आठवें महीनेमेंही देवकी और यशोदाने संतानकी उत्पत्ति की ॥ ११ ॥ जिस रात्रिमें यदुकुलके बढानेहारे श्रीकृष्णने जन्म लिया उसी रात्रिमें यशोदाके कन्या उत्पन्न हुई ॥ १२ ॥ नंदगोपकी एक भार्या यशोदा और वसुदेवकी स्त्री देवकी यह दोनों एकही कालमें गर्भवती हुई थीं ॥ १३ ॥ देवकीने साक्षात् विष्णुको और यशोदाने उस कन्याको उत्पन्न किया, उस समय आधी रातका समय और अभिजित् मुहूर्त था ॥ १४ ॥ जिस समय जनार्दन भगवान्‌का जन्म हुआ, उस समय समुद्र कांपने और पर्वत चलायमान होने लगे और शान्त हुई अग्नियें प्रज्वलित हो उठीं ॥ १५ ॥

सुन्दर सुगन्ध सनी पवन चलने लगी, रज शान्त हो गई और तारागणोंने अधिक प्रकाश किया॥ १६॥उस समय अभिजित् नाम नक्षत्र और जयन्ती नाम रात्रि थी और विजय मुहूर्त था. जिस समय जनार्दनने जन्म लिया था, हरि नारायण प्रभु अव्यक्त शाश्वत और सूक्ष्म है॥ १७॥ नेत्रोंसे मोहित करते हुए जिस समय भगवानने जन्म लिया, उस समय स्वर्गमें विना बजायेही देवताओंकी दुंदुभि बजने लगी ॥ १८॥ इन्द्रने आकाशसे फूलोंकी वर्षा की और मंगलयुक्त वाणीसे देवता मधुसूदनकी स्तुति करने लगे ॥ १९॥ महर्षि, गन्धर्व, अप्सराओंसहित आकाशमें स्थित हुए. इस प्रकार

शिवाश्च प्रववुर्वाताः प्रशान्तमभवद्रजः ॥ ज्योतींष्यतिव्यकाशन्त जयमाने जानार्दने॥ १६ ॥ अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी ॥ मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः ॥ अव्यक्तश्शाश्वतस्सूक्ष्मो हरिर्नारायणः प्रभुः ॥१७॥ जायमानो हि भगवान्नयनैर्मोहयन्प्रभुः ॥ अनाहता दुन्दुभयो देवानां प्राणदन्दिवि ॥१८॥ आकाशात्पुष्पवृष्टिं च ववर्ष त्रिदशेश्वर ॥ गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम् ॥ १९ ॥ महर्षयस्सगन्धर्वा उपतस्थुस्सहाप्सराः ॥ जायमाने हृषीकेशे प्रहृष्टमभवज्जगत ॥ २० ॥ इन्द्रश्च त्रिदशैस्सार्द्धं तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ वसुदेवश्च तं रात्रौ जातं पुत्रमधोक्षजम् ॥ २१ ॥ श्रीवत्सलक्षणं दृष्ट्वा युतं दिव्यैश्च लक्षणैः ॥ उवाच वसुदेवस्तु रूपं संहर वै प्रभोः ॥ २२ ॥ भीतोऽहं देव कंसस्य तस्मादेवं ब्रवीम्यहम् ॥ मम पुत्रा हतास्तेन तव ज्येष्ठाम्बुजेक्षण ॥२३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं चाहरदच्युतः ॥ अनुज्ञाप्य पितृत्वेन नन्दगोपगृहं नय ॥२४॥ वसुदेवस्तु संगृह्य दारकं क्षिप्रमेव च ॥ यशोदा या गृहं रात्रौ विवेश सुतवत्सलः ॥ २५ ॥

॥ ८ ॥

भगवान्‌के प्रगट होनेमें सब जगत् प्रसन्न हो गया॥२०॥और देवताओंके सहित इन्द्र मधुसूदनकी प्रार्थना करने लगे और वसुदेवने उस रात्रिमें अपने पुत्र जनार्दनको ॥२१॥ श्रीवत्स और भी दिव्य लक्षणयुक्त देखकर यह वचन कहे; हे प्रभो! अपने इस रूपको छिपाइये ॥ २२ ॥ हे देव! मैं कंससे भीत हूं, इस कारण ऐसा कहता हूं; हे कमलनेत्र! तुमसे पूर्व उत्पन्न हुए मेरे कई पुत्र उस दुष्टने मार डाले ॥ २३ ॥ वैशंपायन बोले; वसुदेवके यह वचन सुन भगवानने वह अपना रूप छिपा लिया और पितासे कहा तुम हमको नंदगोपके घर ले जाओ॥२४॥वसुदेव तत्काल उनको लेकर रात्रिमेंही

पुत्रके प्रेमी यशोदाके घरमें गये ॥ २५ ॥ वहांभी योगमायासे मोहित हो सब सोये पडे थे. कपाट खुले थे, सो विना किसीसे कहे सुने वहां गये और भगवान्‌को यशोदाके निकट सुवा दिया और उसी समय उत्पन्न हुई यशोदाकी कन्याको उठाकर ले चले, उसे देवकीको दिया ॥ २६ ॥ जब इस प्रकार गर्भका बदल हो गया तब कृतार्थ हो, कुछ भयसे व्याकुल हो, वसुदवजी घरसे वाहर निकले॥२७॥और वसुदेवने जाकर उग्रसेनके पुत्र कंससे कन्याका होना निवेदन किया ॥२८॥ यह वचन सुनतेही तत्काल कंस रक्षा करने-

यशोदायास्त्वविज्ञातस्तत्र निक्षिप्य दारकम् ॥ प्रगृह्य दारिकां चैव देवकीशयने न्यसत् ॥ २६ ॥ परिवर्ते कृते ताभ्यां गर्भाभ्यां भयविक्लवः ॥ वसुदेवः कृतार्थो वै निर्जगाम निवेशनात् ॥ २७ ॥ उग्रसेनसुतायाथ कंसायानकदुन्दुभिः ॥ निवेदयामास तदा तां कन्यां वरवर्णिनीम् ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वा त्वरितः कंसो रक्षिभिस्सह वेगिभिः ॥ आजगाम गृहद्वारं वसुदेवस्य वीर्यवान् ॥२९॥ स तत्र त्वरितं द्वारि किं जातमिति चाब्रवीत् ॥ दीयतां शीघ्रमित्येवं वाग्भिस्समभितर्जयत् ॥३०॥ ततो हाहाकृतास्सर्वा देवकी-भवने स्त्रियः ॥ उवाच देवकी दीना बाष्पगद्गदया गिरा ॥ ३१ ॥ दारिका तु प्रजातेति कंसं समभियाचती ॥ श्रीमन्तो मे हतास्सप्त पुत्रगर्भास्त्वया विभो ॥३२॥ दारिकेय हतैवैषा पश्यस्व यदि मन्यसे ॥ दृष्ट्वा कंसस्तु तां कन्यामाकृष्यत मुदा युतः ॥ ३३ ॥ हतैवैषा यदा कन्या जातेत्युक्त्वा वृथामतिः ॥ सा गर्भशयने क्लिष्टा गर्भाम्बुक्लिन्नमूर्द्धजा ॥ ३४ ॥

वालोंके सहित वीर्यवान् वसुदेवके गृहद्वारपर आया ॥ २९ ॥ और द्वारेपरही उसने पूछा क्या उत्पन्न हुआ है लाओ, शीघ्र उसे लाओ, यौं कह वाणीसे तर्जित करने लगा ॥ ३० ॥ तब देवकीके भवनकी सब स्त्री हाहाकार करने लगीं और आसूं भरे रुद्धकंठ हो दीनतासे देवकी कहने लगी ॥३१॥ यह कन्या हुईहै इसको तो मेरे निमित्त प्रदान कर; हे प्रभो ! आप मेरे सात बालक मार चुके हो, इसे तो छोड दो ॥ ३२ ॥ हतही है, यदि इच्छा हो तो छोड दो देखतेही कंसने उसको हाथसे खेंच लिया॥३३॥और वृथामतियुक्त वह कंस बोला, यहतो मृतक ही हो रही है. इस

प्रकार वह गर्भ शयनके कारण क्लिष्ट हुई और गर्भके जलसे भीजे बालोंवाली ॥ ३४ ॥ पृथ्वीकी समान कंसके आगे रक्खी गई. उसे ग्रहण कर क्षुद्र समझकर घुमाने लगा ॥ ३५ ॥ और तत्कालही उसे मारनेकी इच्छासे शिलापर पटका, वह शिलातलमें पटकी हुई पिचकर स्वर्गमें प्रवेश कर गई ॥ ३६ ॥ तत्काल वह गर्भका शरीर त्याग बाल खोले हुए, दिव्य माला धारे, कंसका तिरस्कार कर आकाशको गई ॥ ३७ ॥ सर्वाङ्ग हारसे शोभायमान उज्ज्वल मुकुटसे भूषित इस प्रकार देवतोंसे युक्त वह दिव्य कन्या हो गई ॥ ३८ ॥ नील पीताम्बर धारे, हाथीके गंडस्थलकी समान स्तनवाली, रथके

कंसस्य पुरतो न्यस्ता पृथिव्यां पृथिवीसमा ॥ स चैनां गृह्य पुरुषस्समाविध्यावधूय च ॥ ३५ ॥ उद्यच्छन्नेव सहसा शिलायां समपोथयत् ॥ सावधूता शिलापृष्ठेऽनिष्पिष्टा दिवमुत्पतत् ॥ ३६ ॥ हित्वा गर्भतनुं सा तु सहसा मुक्तमूर्द्धजा ॥ जगाम कंसमादिश्य दिव्यस्रगनुलेपना ॥ ३७ ॥ हारशोभितसर्वाङ्गी मुकुटोज्ज्वलभूषिता ॥ कन्येव साभवन्नित्यं दिव्या देवैरभिष्टुता ॥ ३८ ॥ नीलपीताम्बरधरा गजकुम्भोपमस्तना ॥ रथविस्तीर्णजघना चन्द्रवक्त्रा चतुर्भुजा ॥ ३९ ॥ विद्युद्विस्पष्टवर्णाभा बालार्कसदृशेक्षणा ॥ पयोधरस्वनवती संध्येव सपयोधरा ॥ ४० ॥ सा वै निशि तमोग्रस्ते बभौ भूतगणाकुले ॥ नृत्यन्ती हसती चैव विपरीतेन भास्वती ॥ ४१ ॥ विहायसि गता रौद्रा पपौ पानमनुत्तमम् ॥ जहास च महाहासं कंसं च रुषिताब्रवीत् ॥ ४२ ॥ कंस कंसात्मनाशाय यदहं घातिता त्वया ॥ सहसा च समुत्क्षिप्य शिलायामभिपोथिता ॥ ४३ ॥ तस्मात्तवान्तकालेऽहं कृष्यमाणस्य शत्रुणा ॥ पाटयित्वा करैर्देहमुष्णं पास्यामि शोणितम् ॥ ४४ ॥

विस्तारके समान जंघावाली, चन्द्रमाकी समान मुख, चार भुजा ॥ ३९ ॥ बिजलीकी समान वर्ण और प्रातःकालके सूर्यके समान नेत्रवाली, संध्याकालके मेघके समान पयोधर (स्तन) वाली ॥ ४० ॥ उस रात्रीके अंधकारमें भूतसमूह प्राणियोंसे युक्त विपरीत हास्य और नृत्य करती हुई प्रकाशित हुई ॥ ४१ ॥ इस प्रकार वह तीक्ष्ण प्रकृतिवाली आकाशमें प्राप्त हो सुरापान करने लगी और महाहास्य कर क्रोधित हो कंससे बोली ॥ ४२ ॥ हे कंस ! जो कि तैंने अपने निमित्त मेरा घात किया है और शीघ्रही मुझे खैंचकर शिलातलमें पटका है ॥ ४३ ॥ इस कारण तेरेभी अन्तकालमें जब

कि तू अपने शत्रुसे खैंचा जायगा, तब मैं अपने हाथोंसे तेरी देहको विदीर्ण कर तेरा गरम २ रुधिर पान कर जाऊंगी ॥ ४४ ॥ इस प्रकार वह देवी कंससे घोर वचन कहकर यथेच्छ विचरनेवाली वह आकाशमें और देवालयोंमें गणोंसहित विचरने लगी ॥४५॥ और वृष्णियोंसे पूजित हो वह कन्या वृद्धिको प्राप्त होने लगी और वसुदेवकी आज्ञासे पुत्रवत् पालना होने लगी ॥ ४६ ॥ इस देवीको प्रजापतिके अंशसेही उत्पन्न हुई जानना चाहिये और इस योगकन्याको भगवान्की रक्षाके निमित्त अनेक अंशोंसे उपजी हुई जानो ॥४७॥ सम्पूर्ण यादव मनसे उसका पूजन करने लगे. देव-

एवमुक्त्वा वचो घोरं सा यथेष्टेन वर्त्मना ॥ खं सा देवालयं देवी सगणा विचचार ह ॥४५॥ सा कन्या ववृधे तत्र वृष्णिसंघसुपूजिता ॥ पुत्रवत्पाल्यमाना सा वसुदेवाज्ञया तदा ॥४६॥ विद्धि चैनामथोत्पन्नामंशाद्देवीं प्रजापतेः ॥ एकानंशां योगकन्यां रक्षार्थं केशवस्य तु ॥ ४७ ॥ तां वै सर्वे सुमनसः पूजयन्ति स्म यादवाः ॥ देववद्दिव्यवपुषा कृष्णस्संरक्षितो यया ॥ ४८ ॥ तस्यां गतायां कंसस्तु तां मेने मृत्युमात्मनः ॥ विविक्ते देवकीं चैव व्रीडितः समभाषत ॥४९॥ कंस उवाच ॥ मृत्योः स्वसः कृतो यत्नस्तव गर्भा मया हताः ॥ अन्य एवान्यतो देवि मम मृत्युरुपस्थितः ॥ ५० ॥ नैराश्येन कृतो यत्नस्स्वजने प्रहृतं मया ॥ दैवं पुरुषकारेण नचातिक्रान्तवानहम् ॥ ५१ ॥ त्यज गर्भकृतां चिन्तां संतापं पुत्रजं त्यज ॥ हेतुभूतस्त्वहं तेषां सति कालविपर्यये ॥ ५२ ॥ काल एव नृणां शत्रुः कालश्च परिणामकः ॥ कालो नयति सर्वं वै हेतुभूतस्तु मद्विधः ॥ ५३ ॥

ताकी समान दिव्य शरीरयुक्त इस देवीने कृष्णकी रक्षा की है ॥ ४८ ॥ उसके जानेपर कंसने उसे अपनी मृत्युही माना और एकान्तमें लज्जित हो देवकीसे कहने लगा ॥४९॥ कस बोला; हे भगिनि! मैंने तेरे गर्भ अपनी मृत्यु दूर होनेके निमित्त मारे, सो हे देवी! मेरी मृत्यु तो कहीं अन्यस्थानमेंही उपस्थित है ॥५०॥ मुझे नीचतासे पतन किया जो कि मैंने अपने बन्धुओंको प्रहार किया. दैवको अपने पुरुषार्थसे मैं अतिक्रमण न कर सका ॥५१॥ अब तुम गर्भोंका दुःख और पुत्रमरणकी चिन्ताको त्याग दो. कालकी विपरीततासे मैंही इसका निमित्तभूत हूं ॥५२॥ कालही

मनुष्यका शत्रु और कालही अन्त करनेवाला है, कालही सबको अलग करता है, उसमें मुझसरीखे हेतुभूत होते हैं ॥ ५३ ॥ हे देवी ! भाग्यके अनुसा-
रही मनुष्योंको आनकर कष्ट प्राप्त होता है. यही कष्टकी बात है, जो यह प्राणी अपनेको कर्ता मानता है ॥ ५४ ॥ तुम पुत्रकी चिन्ता मत करो
विलाप और शोकको त्यागो. इसी प्रकार मनुष्योंकी स्थिति होती है और कालकी कोई स्थिति नहीं है ॥ ५५ ॥ हे देवकी ! मैं तेरे चरणोंमें पुत्रकी
समान शिर रखता हूं. यद्यपि मैंने अपकार किया है, तथापि आप मेरे ऊपरके क्रोधको क्षमा करो ॥ ५६ ॥ कंसके ऐसा करनेपर देवकी बोली और
आंसुओंसे पूर्ण मुख किये दीन हो स्वामीको देखने लगी और माताकी समान कंससे बोली हे पुत्र ! उठो ॥ ५७ ॥ देवकी बोली; तुम कालरूपने जो

आगमिष्यन्ति वै देवि यथाभागमुपद्रवाः ॥ इदं तु कष्टं यज्जन्तुः कर्त्ताहमिति मन्यते ॥ ५४ ॥ मा कार्षीः पुत्रजां चिन्तां विलापं
शोकजं त्यज ॥ एवंप्रायो नृणां योनिर्नास्ति कालस्य संस्थितिः ॥ ५५ ॥ एष ते पादयोर्मूर्ध्ना पुत्रवत्तव देवकि ॥ मद्गतस्त्यज्यतां
रोषो जानाम्यपकृतं त्वयि ॥ ५६ ॥ इत्युक्तवन्तं कंसं सा देवकी वाक्यमब्रवीत् ॥ साश्रुपूर्णमुखा दीना भर्तारमुपवीक्षती ॥ उत्तिष्ठो-
त्तिष्ठ वत्सेति कंसं मातेव जल्पती ॥ ५७ ॥ देवक्युवाच ॥ ममाग्रतो हता गर्भा ये त्वया कामरूपिणा ॥ कारणं त्वं न वै पुत्र
कृतान्तोऽप्यत्र कारणम् ॥ ५८ ॥ गर्भकृन्तनमेतन्मे सहनीयं त्वया कृतम् ॥ पादयोः पतता मूर्ध्ना स्वं च कर्म जुगुप्सता ॥ ५९ ॥
गर्भे तु नियतो मृत्युर्बाल्येऽपि न निवर्तते ॥ युवापि मृत्योर्वशगः स्थविरो मृत एव तु ॥ ६० ॥ कालभूतमिदं सर्वं हेतुभूतस्तु
त्वद्विधः ॥ अजाते दर्शनं नास्ति यथा वायुस्तथैव च ॥ ६१ ॥

मेरे गर्भजात बालकोंको मेरे सन्मुख मारा, इसमें हे पुत्र ! तुम कारण नहीं हो. कालही इसमें कारण है ॥ ५८ ॥ इस कारण तुम्हारा किया गर्भवध
मुझे सहनेके योग्य है, जो कि तुमने मेरे चरणोंमें अपना शिर धरा है और अपने कर्मकी निन्दा की है ॥ ५९ ॥ इससे तुम्हारा दोष नहीं है. गर्भमें,
बाल अवस्थामें अथवा युवा अवस्थामें जिस समय मृत्यु नियत है, वह निवृत्त नहीं होती. वृद्धावस्थामेंभी मृत्यु नियत है ॥ ६० ॥ यह सब काल-
काही किया हुआ है तुम सरीखे इसमें निमित्त हैं. जैसे विना उत्पन्न हुएका दर्शन नहीं है, इसी प्रकार आयुकाभी दर्शन नहीं है ॥ ६१ ॥

और जन्मा हुआभी अजातताको प्राप्त विधाताके वशसे होता है; हे पुत्र! तू जा, मेरे शोकका कारण तुझमें नहीं है ॥ ६२ ॥ मृत्युके हरण होनेमें पहला शेष हेतु वर्तता है कारण कि ब्रह्माने पूर्वजन्मके अनुसारही प्रजाकी सृष्टि की है ॥६३॥ माता-पिताके कार्यके निमित्त जन्म लेकर उत्पन्न होता है. इस प्रकार देवकीके वाक्य सुन कंस अपने मंदिरमें॥६४॥दुःखित चित्तसे प्रवेश कर गया और अपने कर्मके निष्फल होनेसे बहुत दीन और विमन हुआ॥६५॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि ज्वा०प्र०भाषायां चतुर्थोऽध्यायः॥४॥वैशंपायनजी बोले; वसुदेवजीने पहलेही व्रजमें रोहिणीके

जातोऽप्यजाततां याति विधात्रा यत्र नीयते ॥ तद्गच्छ पुत्र मा ते भून्मद्गतं मृत्युकारणम् ॥ ६२ ॥ मृत्युनापहृते पूर्वं शेषो हेतुः प्रवर्त्तते ॥ विधिना पूर्वदृष्टेन प्रजासर्गेण तत्त्वतः ॥ ६३ ॥ मातापित्रोस्तु कार्येण जन्मतस्तूपपद्यते ॥ निशम्य देवकीवाक्यं स कंसस्स्वं निवेशनम् ॥ ६४ ॥ प्रविवेश स संरब्धो दह्यमानेन चेतसा ॥ कृत्ये प्रतिहतो दीनो जगाम विमना भृशम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रागेव वसुदेवस्तु व्रजे शुश्राव रोहिणीम् ॥ प्रजातां पुत्रमेत्राग्रे चन्द्रात्कान्ततराननम् ॥ १ ॥ स नन्दगोपं त्वरितः प्रोवाच शुभया गिरा ॥ गच्छानया सहैवत्वं व्रजमेव यशोदया ॥ २ ॥ तत्र तौ दारकौ गत्वा जातकर्मादिभिर्गुणैः ॥ योजयित्वा व्रजे तात संवर्द्धय यथासुखम् ॥ ३ ॥ रौहिणेयं च पुत्रं मे परिरक्ष शिशुं व्रजे ॥ अहं वाच्यो भविष्यामि पितृपक्षेषु पुत्रिणाम् ॥४॥ योऽहमेकस्य पुत्रस्य न पश्यामि शिशोर्मुखम् ॥ ह्रियते हि बलात्प्रज्ञा प्राज्ञस्यापि सतो मम ॥ ५ ॥

चन्द्रसमान कान्तिवाले पुत्रका जन्म सुन लिया था ॥१॥ उन्होंने नन्दगोपको शीघ्रही मधुर वाणीसे कहा कि तुम यशोदाको लेकर व्रजको जाओ ॥२॥ और व्रजमें जाकर इन दोनों बालकोंके जातकर्मादि संस्कार कर यथा सुख बढाओ॥३॥ रोहिणी जात इस मेरे बालक पुत्रकी व्रजमें रक्षा करनी. मैं पितृपक्षमें पुत्रवालोंको वाच्य हो जाऊंगा॥४॥जो कि मैं बालक एक पुत्रकाभी मुख नहीं देख सका, इस कारण बुद्धिसम्पन्नभी मेरी बुद्धि हरण हो गई

है॥५॥इस बालक मारनेवाले दयाहीन कंससेही मुझको भय है, इस कारण तुम रोहिणी और इस मेरे पुत्रको॥६॥जैसे रक्षा कर सको, हे तात ! उसी कारण रक्षा करो. इस लोकमें बालकोंक विघ्नदाता बडे २ विघ्न विचरते हैं॥७॥उस बडे मेरे पुत्र और छोटे अपने पुत्र इन दोनोंको तुम समान दृष्टिसेही अवलोकन करना ॥८॥ समान अवस्थावाले इन दोनोंको अच्छी प्रकारसे पालो. जिस प्रकार यह दोनोंव्रजको शोभित करें, तुम वैसाही करो ॥ ९ ॥ बाल अवस्थामें सबही बालक आनन्द करते हैं. उनकी बाललीला देखकर मनुष्य मोहित हो जाते हैं. बाल्कपनमेंही मनुष्य अत्यन्त मूर्खके समान रहता

अस्माद्धि मे भयं कंसान्निर्घृणाद्वै शिशोर्वधे ॥ तद्यथा रौहिणेयं वं नन्दगोप ममात्मजम् ६ ॥ गोपायसि यथा तात तत्त्वान्वेषी तथा कुरु ॥ विघ्ना हि बहवो लोके बालानुत्रासयन्ति हि ॥ ७ ॥ सच पुत्रो मम ज्यायान्कनीयांश्च तवाप्ययम् ॥ उभावपि समं नाम्ना निरीक्षस्व यथा सुखम् ॥८॥ वर्द्धमानावुभावेतौ समानवयसौ यथा ॥ शोभेतां गोव्रजे तस्मिन्नन्दगोप तथा कुरु ॥ ९ ॥ बाल्ये केलिकिलस्सर्वो बाल्ये मुह्यति मानवः ॥ बाल्ये चण्डतमस्सर्वस्तत्र यत्नपरो भव ॥ १० ॥ नच वृन्दावने कार्यो गवां घोषः कथंचन ॥ भेतव्यं तत्र वसता शिनः पापदर्शि ः ॥ ११ ॥ सरीसृपेभ्यः कीटेभ्यश्शकुनिभ्यस्तथैव च ॥ गोष्ठेषु गोभ्यो वत्से-भ्यो रक्ष्यौ ते द्वाविमौ शिशू ॥ १२ ॥ नन्दगोप गता रात्रिश्शीघ्रयानो व्रजाशुगः ॥ इमे त्वां व्याहरन्तीव पक्षिणस्सव्यदक्षि-णम् ॥ १३ ॥ रहस्यं वसुदेवेन सोऽनुज्ञातो महात्मना ॥ यानं यशोदया सार्द्धमारुरोह मुदान्वितः ॥ १४ ॥ कुमारस्स्कन्धवाह्यायां शिबिकायां समाहितः ॥ संवेशयामास शिशुं शयनीयं महामतिः ॥ १५ ॥

है. इस कारण सब प्रकार उनके पालनेमें यत्न करो॥१०॥वृन्दावनमें तो गायोंका गोठ किसी प्रकार मत करना, वहां पापी केशी रहता है. उससे डरते रहना॥११॥सरीसृप, कीडे, पक्षी आदिसे तथा गौओं बछडोंसे गोठमें इन दोनोंकी रक्षा करनी ॥१२॥ हे नन्दगोप ! रात्री बीत गई, अब शीघ्र सवारीपर बैठ व्रजको जाओ. यह पक्षी दहिनी ओर स्थित हो तुमको शुभकी सूचना देते हैं॥१३॥इस प्रकार महात्मा वसुदेवसे गुप्त बातको जान नन्दजी यशोदासहित प्रसन्न हो सवारीमें बैठे ॥१४॥ कहारोंके कंधोंपर धरीं हुई पालकीमें उन महाबुद्धि मानते दोनों बालकोंको पौढाया॥१५॥

और एकान्त शीतल पवनसे सेवित यमुनातीरगामी बहुत जलके मार्गसे चले॥१६॥उन्होंने गोवर्धनके निकट सुन्दर देशमें यमुनातटसे युक्त शीतल पवनसे सेवित स्थान देखा॥१७॥ जहां पक्षीजनोंके शब्द लता वेलोंसे युक्त महावृक्ष दुधारी गौतृणसे परिपूर्ण ॥ १८ ॥ समान गायोंके फिरनेके योग्य सम, तीर्थ और सरोवर युक्त बेलोंके स्कंधोंकी रगडसे और सींगोंसे चिन्हित वृक्षोंसे पूर्ण॥१९॥ गृध्र, बिडाल, श्येन और मांसभक्षी आदि गीदड, सिंह वसा और मेदोंसे युक्त ॥ २० ॥ शार्दूलके शब्दसे पूर्ण, अनेक प्रकारके पक्षियोंसे भरा, स्वादु वृक्ष, मनोहर फल, तृण और छोटे गुल्मोंसे

जगाम च विविक्तेन शीतलानिलसर्पिणा ॥ बहूदकेन मार्गेण यमुनातीरगामिना ॥ १६ ॥ स ददर्श शुभे देशे गोवर्द्धनसमीपगे यमुनातीरसंबद्धशीतमारुतसेवितम् ॥ १७ ॥ विरुतश्वापदै रम्यं लतावल्लीमहाद्रुमम् ॥ गोभिस्तृणविलग्नाभिस्स्यन्दतीभिरलंकृतम् ॥ १८ ॥ समप्रचारं च गवां समतीर्थजलाशयम् ॥ वृषाणां स्कन्धघातैश्च विषाणोद्घृष्टपादपम् ॥ १९ ॥ भासामिषादानुसृतैश्श्येनैश्चामिषगृध्नुभिः ॥ सृगालमृगसिंहैश्च वसामेदाशिभिर्वृतम् ॥२०॥ शार्दूलशब्दाभिरुतं नानापक्षिसमाकुलम् ॥ स्वादुवृक्षफलं रम्यं पर्याप्ततृणवीरुधम् ॥ २१ ॥ गोव्रजं गोरुतं रम्यं गोपनारीभिरावृतम् ॥ हम्भारवैश्च वत्सानां सर्वतः कृतनिस्वनम् ॥ २२ ॥ शकटावर्त्तविपुलं कण्टकीवाटसंकुलम् ॥ पर्यन्तेष्वावृतं वन्यैर्बृहद्भिःपतितैर्द्रुमैः ॥ २३ ॥ वत्सानां रोपितैः कीलैर्दामभिश्च विभूषितम् ॥ करीषाकीर्णवसुधं कटच्छन्नकुटीमठम् ॥ २४ ॥ क्षेम्यप्रचारबहुलं हृष्टपुष्टजनावृतम् ॥ दामनीपाशबहुलं गर्गरोद्गारनिस्वनम् ॥ २५ ॥

युक्त ॥२१॥ इस प्रकार गौओंका व्रज गौओंके शब्दसे मनोहर, गोपनारियोंसे पूर्ण, चारों ओरसे बछडोंके हंमा शब्दसे व्याप्त ॥२२॥ चारों ओर गाडियोंके संघातसे गोल आवर्त बना, कांटों कीवाडसे रक्षित कर चारों ओर बडे बडे टूटे वृक्षोंसे आकीर्ण॥ २३॥ बछडे बांध नेके खूंटोंमें रस्सी बंधी हुई, तिससे शोभित उनके आरनोंसे युक्त पृथ्वीकी शोभा और बासोंसे छाये घरोंसे आकीर्ण है ॥२४॥ अनेक प्रकारकी क्षेमदायक वस्तुओंसे

पूर्ण,हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे व्याप्त,रस्सी और पाशकी अधिकाई मथनके घडोंके शब्दोंसे व्याप्त है॥२५॥मट्ठेके निकालनेसे मलीन दही और मंडके गिर-
नेसे गीली मृत्तिकासे युक्त जहां तहां दूध विलोती हुई गोपियोंके कंकणके शब्दोंसे व्याप्त है॥२६॥छोटे२ बाल धारे गोपके बालकोंके क्रीडा खेलसे
शोभित घरके द्वार मूशलेसहित उनके बीचमें गोस्थान बन रहे हैं ॥२७॥ जहांकी वायु घृतकी सुगंधिसे युक्त चल रही है. नीले पीले वस्त्र धारे,
युवा-स्त्रियोंसे व्याप्त है॥२८॥वनके फूलोंके कर्ण भूषण धारण करनेवाली गोपकन्याओंसे व्याप्त, शिरपर जलका कलश धरे, छातीपर वस्त्रकी गाती

तक्रनिस्स्रावमलिनं दधिमण्डार्द्रमृत्तिकम् ॥ मन्थानवलयोद्गारैर्गोपीनां जनितस्वनम् ॥ २६ ॥ काकपक्षधरैर्बालैर्गोपालक्रीडना-
कुलम् ॥ सार्गलद्वारगोवाटमध्ये गोस्थानसंकुलम् ॥ २७ ॥ सर्पिषा पच्यमानेन सुरभीकृतमारुतम् ॥ नीलपीताम्बराभिश्च
तरुणीभिरलंकृतम् ॥ २८ ॥ वन्यपुष्पावतंसाभिर्गोपकन्याभिरावृतम् ॥ शिरोभिर्धृतकुम्भाभिर्बद्धैरग्रस्तनाम्बरैः ॥ २९ ॥ यमु-
नातीरमार्गेण जलहारीभिरावृतम् ॥ स तत्र प्रविशन् हृष्टो गोव्रजं गोपनादितम् ॥ ३० ॥ प्रत्युद्गतो गोपवृद्धैस्स्त्रीभिर्वृद्धाभिरेव
च निवेशं रोचयामास परिवर्ते सुखाश्रये ॥ ३१ ॥ सा यत्र रोहिणी देवी वसुदेवसुखावहा ॥ तत्र तं बालसूर्याभं कृष्णं गूढं न्यवे-
शयत् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोव्रजगमनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥
तत्र तस्यासतः कालः सुमहानत्यवर्त्तत ॥ गोव्रजे नन्दगोपस्य बल्लवत्व प्रकुर्वतः ॥ १ ॥

बांधे ॥२९॥ यमुनाके किनारे जल लानेसे पूर्ण इस प्रकार गौओंसे नादित उस देशमें प्रसन्न हो नन्दगोपने प्रवेश किया॥३०॥ वृद्ध गोप और
वृद्धा स्त्रियोंसे अनुगम्यमान हो नन्दगोपने उस सुखदायक स्थानमें रहना स्वीकार किया॥३१॥जहां वसुदेवकी सुखदायक रोहिणी देवी थी. वहां
सूर्यसमान कान्तिवाले उस बालकको छिपाकर रक्खा ॥३२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोव्रजगमनं नाम पंचमोऽध्यायः॥५॥
वैशंपायन बोले; वहां नन्दको रहते बहुत दिन बीत गये और गोव्रजमें गोपकार्य करते रहे ॥ १ ॥

और नामकरण होनेके पश्चात् वे बालकभी बढने लगे. ज्येष्ठका संकर्षण और छोटेका नाम कृष्ण था ॥२॥ देहान्तरको प्राप्त हो नारायण मेघके समान कृष्ण हुए, सागरके मध्यमें चन्द्रमाके समान वे गायोंके मध्यमें बढने लगे ॥ ३ ॥ एक समय शकटके नीचे कृष्णको सोता छोडकर स्नान करनेको यशोदा यमुनाको गई. "पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः । कृष्णादुदस्थादर्या ३ विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयायै तेन" इति । इस ऋक्में यही कथा गर्भित है॥४॥उस समय श्रीकृष्ण बाललीलासे हाथ पैर ऊपरको चलाते मधुर स्वरसे रुदनकरने लगे और पैर ऊपरको फेंकने

दारकौ कृतनामानौ ववृधाते सुखं च तौ ॥ ज्येष्ठस्संकर्षणो नाम कनीयान् कृष्ण एव तु ॥२॥ मेघकृष्णस्तु कृष्णोभूद्देहान्तरगतो हरिः ॥ व्यवर्धत गवां मध्ये सागरस्य इवाम्बुदः ॥ ३ ॥ शकटस्य त्वधः सुप्तं कदाचित्पुत्रगृद्धिनी ॥ यशोदा तं समुत्सृज्य जगाम यमुनां नदीम् ॥४॥ शिशुलीलां ततः कुर्वन्सहस्तचरणौ क्षिपन् ॥ रुरोद मधुरं कृष्णः पादावूर्ध्वं प्रसारयन् ॥ ५ ॥ स तत्रैकेन पादेन शकटं पर्यवर्तयत् ॥ न्युब्जं पयोधराकांक्षी चकार च रुरोद च ॥६॥ एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता यशोदा भयविक्लवा ॥ स्नाता प्रस्नवदिग्धाङ्गी बद्धवत्सेव सौरभी ॥ ७ ॥ सा ददर्श विपर्यस्तं शकटं वायुना विना ॥ हाहेति कृत्वा त्वरिता दारकं जगृहे तदा ॥८॥ न सा बुबोध तत्त्वेनशकटं परिवर्तितम् ॥ स्वस्ति मे दारकायेति प्रीता भीता च साभवत् ॥९॥ किंतु वक्ष्यति ते पुत्र पिता परमकोपनः ॥ त्वय्यधश्शकटे सुप्ते अकस्माच्च विलोडिते ॥ १० ॥

लगे ॥ ५ ॥ उनका एक चरण शकट तक पहुंचा और उसे गिरा दिया और फिर दूध पीनेकी इच्छासे रुदन करने लगे ॥६॥ इसी समय भयभीत होती हुई यशोदा आ गई. स्नान किये स्तनोंसे दूध चुवाती बंधे बछडेके निकट गौकी समान आई ॥ ७ ॥ उसने विना वायुके चले शकटको गिरा हुआ देखा तब तुरंतही हाहाकार कर बालकको उठा लिया ॥ ८ ॥ और शकट कैसे गिर गया, यह उसने तत्वसे न जाना. मेरे पुत्रका मंगल हो ऐसा कह वह भीत और प्रसन्न हुई ॥९॥ परम कोपन स्वभावकाले तुम्हारे पिता न जाने क्या कहेंगे; तुमको शकटके नीचे छोडकर चली गई और

यह अकस्मात् गिर पडा ॥१०॥ मेरे स्नानसे क्या हुआ, यह स्नानही न हुआ, नदीके जानेसे क्या है जो कि यह गाडा नीचे गिर गया ॥ ११ ॥
इसी समय मौओंको साथ लिये कसैले वस्त्रोंको पहरे वनचारी नन्दजी व्रजमें आये ॥ १२ ॥ उन्होंने बर्तन फूटे और उलटे गिरे धुरे पहिये और जुए
टूटे हुए छकड़ेको देखा ॥१३॥ देखतेही नेत्रोंमें जल भर शीघ्रतासे आये और एकबार यही बोले पुत्रकी तो कुशल है ? ॥१४॥ फिर श्रीकृष्णको
दूध पीता देखा स्वस्थ होकर बोले कि बैलोंके युद्ध विना किसने हमारे छकडेको तोड गिराया ॥१५॥ तब यशोदा डरकर गदगद हो उनसे बोली,

किं मे स्नानेन दुस्स्नानं किंच मे गमने नदीम् ॥ पर्यस्ते शकटे पुत्र या त्वां पश्याम्यपावृतम् ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरे गोभिराजगाम वनेचरः ॥ काषायवाससी बिभ्रन्नन्दगोपो व्रजान्तिकम् ॥१२॥ स ददर्श विपर्यस्तं भिन्नभाण्डघटीघटम् ॥ अपास्तधूर्विभिन्नाक्षं शकटं चक्रमौलिनम् ॥ १३ ॥ भीतस्त्वरितमागम्य सहसा साश्रुलोचनः अपि मे स्वस्ति पुत्रायेत्यसकृद्वचनं वदन् ॥ १४ ॥ पिबन्तं स्तनमालक्ष्य पुत्रं स्वस्थोऽब्रवीत्पुनः ॥ वृषयुद्धं विना केन पर्यस्तं शकटं मम ॥१५॥ प्रत्युवाच यशोदा तं भीता गद्गदभाषिणी ॥ न विजानाम्यहं केन शकटं परिवर्तितम् ॥ १६ ॥ अहं नदीं गता सौम्य चैलप्रक्षालनार्थिनी ॥ आगता च विपर्यस्तमपश्यं शकटं भुवि ॥ १७ ॥ तयोः कथयतोरेवमब्रुवंस्तत्र दारकाः ॥ अनेन शिशुना यानमेतत्पादेन लोडितम् ॥ १८ ॥ अस्माभिस्संपतद्भिश्च दृष्टमेतद्यदृच्छया ॥ नन्दगोपस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं ययौ ॥ १९ ॥ प्रहृष्टश्चैव भीतश्च किमेतदिति चिन्तयन् ॥ नच ते श्रद्दधुर्गोपास्सर्वे मानुषबुद्धयः ॥ २० ॥

॥ १३ ॥

किसने शकट गिराथा यह मैं नहीं जानती॥१६॥हे सौम्य ! मैं मैले वस्त्र धोनेको नदिके तटपर गई थी, वहांसे लौटकर मैंने शकटको पृथ्वीपर टूटकर
गिरा देखा ॥१७॥ उन दोनोंके ऐसा कहनेपर जो बालक वहां खेलते थे वे बोले कि इस बालकनेही यह शकट गिरा दिया है ॥ १८ ॥ हमने स्वयं
अपने नेत्रोंसे यह गिरताहुआ देखा है. नन्दगोप यह सुनकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥१९॥ प्रसन्न और भयभीत होकर कहने लगे कि यह क्या

है और मनुष्यबुद्धिसे उन गोपोंने बालकोंकी बातका विश्वास नहीं किया ॥२०॥ और विस्मययुक्त होकर वे सब कहने लगे, बडे आश्चर्यकी बात है और अपने स्थानमें शकटको स्थापन कर चक्रबंधन कर दिया। ॥२१॥ वैशम्पायन बोले; इसके उपरान्त एक समय पक्षिणी जाती, मनुष्यका वेश धारण करनेहारी, कंसकी धाय, पूतना नामसे विख्यात ॥२२॥ महाघोर पक्षिणी, प्राणोंकी भय देनेहारी, क्रोधसे पंखोंको फटकारती आधी रातके समय आई ॥ २३ ॥ जब आधी रातके समय पूतना दिखाई दी और व्याघ्रके समान घोर गंभीर शब्द करने लगी ॥ २४ ॥ और शकटके नीचे

आश्चर्यमिति ते सर्वे विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ स्वे स्थाने शकटं स्थाप्य चक्रबन्धमकारयन् ॥ २१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ कस्य-चित्त्वथ कालस्य शकुनी वेषधारिणी ॥ धात्री कंसस्य भोजस्य पूतनेति परिश्रुता ॥ २२ ॥ पूतना नाम शकुनी घोरा प्राणभ-यंकरी ॥ आजगामार्द्धरात्रे वै पक्षौ क्रोधाद्विधुन्वती ॥ २३ ॥ ततोऽर्द्धरात्रसमये पूतना प्रत्यदृश्यत ॥ व्याघ्रगम्भीरनिर्घोषं व्याहरन्ती पुनः पुनः ॥ २४ ॥ निलिल्ये शकटस्याक्षे प्रस्रवोत्पीडवर्षिणी ॥ ददौ स्तनं च कृष्णाय तस्मिन्सुप्ते जने निशि ॥२५॥ तस्या स्तनं पपौ कृष्णः प्राणैस्सह विनद्य च ॥ छिन्नस्तनी तु सहसा पपात शकुनी भुवि॥२६॥ तेन शब्देन वित्रस्ता ततो बुबुधिरे भयात् ॥ स नन्दगोपो गोपा वै यशोदा च सुविक्लवा ॥ २७ ॥ ते तामपश्यन्पतितां विसंज्ञां विपयोधराम् ॥ पूतनां पतितः भूमौ वज्रेणेव विदारिताम् ॥ २८ ॥ इदं किंत्विति संत्रस्ताः कस्येदं कर्म चेत्यपि ॥ नन्दगोपं पुरस्कृत्य गोपास्ते पर्यवारयन् ॥ २९ ॥

आकर दूध टपकानेवाले अपने स्तनोंको सबके सोतेमें कृष्णके मुखमें दिया ॥२५॥ तब श्रीकृष्ण प्राणोंके सहित उसके स्तनपान करने लगे, तब वह महाशब्द कर छिन्नशरीर हो पृथ्वीमें गिर पडी॥२६॥उस शब्दके भयसे व्याकुल हो गोप जाग उठे.नंद गोप और यशोदाभी व्याकुल हो गई॥ २७ ॥ तब उन्होंने चेतनारहित स्तनहीन वज्रसे विदीर्ण हुईकी समान पृथ्वीमें पडे पूतनाको देखा ॥२८॥ यह क्या है, किसका कर्म है, यह कह व्याकुल हो नंद गोपादि उसे घेरकर स्थित हुए ॥२९॥

और किसीनेभी उसके हेतुको नहीं जाना और आश्चर्य २ करते अपने२गृहोंको गये ॥३०॥ जिस समय गोप विस्मित हो अपने २ गृहोंको गये, तब नंदजी संभ्रमरहित हो यशोदासे बोले ॥ ३१ ॥ यह क्या बात है ! इसका भेद हमने नहीं जाना. इसीसे महाआश्चर्य है. मेरे पुत्रको महाभय और भीरुपन प्राप्त हुआ है॥३२॥तब यशोदा भीत हो बोली; हे आर्य ! मैं इसका कुछभी कारण नहीं जानती. मैं तो सोती थी. इसके और बालकके शब्दके साथही जाग पडी ॥ ३३ ॥ यशोदाकेभी यह भेद न जाननेपर बांधवसहित नंदगोप कंसका महा भय मान विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥

नाध्यगच्छन्त च तदा हेतुं तत्र कदाचन ॥ आश्चर्यमाश्चर्यमिति ब्रुवन्तोनुययुर्गृहान् ॥ ३० ॥ गतेषु तेषु गोपेषु विस्मितेषु यथागृहम् ॥ यशोदां नन्दगोपस्तु पप्रच्छ गतसंभ्रमः ॥ ३१ ॥ कोऽयं विधिर्न जानामि विस्मयो मे महानयम् ॥ पुत्रस्य मे भयं तीव्रं भीरुत्वं समुपागतम् ॥ ३२ ॥ यशोदा त्वब्रवीद्भीता नार्य जानामि किंत्विदम् ॥ दारकेण सहानेन सुप्ता शब्देन बोधिता ॥ ३३ ॥ यशोदायामजानन्त्यां नन्दगोपः सबान्धवः ॥ कंसाद्भयं चकारोग्रं विस्मयं च जगाम ह ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां शकटभङ्गपूतनावधो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ वैशम्पायन उवाच ॥ काले गच्छति तौ सौम्यौ दारकौ कृतनामकौ ॥ कृष्णसंकर्षणौ चोभौ रिङ्गिणौ समपद्यताम् ॥ १ ॥ तावन्योन्यगतौ बालौ बाल्यादेवैकतां गतौ ॥ एकमूर्तिधरौ कान्तौ बालचन्द्रार्कवर्चसौ ॥ २ ॥ एकनिर्माणनिर्मुक्तावेकशय्यासनाशनौ ॥ एकवेषधरावेकं पुष्यमाणौ शिशुव्रतम् ॥ ३ ॥ एककार्यान्तरगतावेकदेहौ द्विधाकृतौ ॥ एकचर्यौ महावीर्यावेकस्य शिशुतां गतौ ॥ ४ ॥

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ वैशंपायन बोले;कुछ समय बीतनेपर नामकरण होनेपर कृष्ण और संकर्षण दोनों पृथ्वीपर विचरने लगे ॥ १ ॥ वे दोनों बालक बालकपनसेही एकताको प्राप्त हुए. एकमूर्तिधारी मनोहर बालक चंद्रसूर्यके समान शोभित हुए ॥ २ ॥ एकरूप, जन्मसे रहित, एक सेज और आसनपर बैठनेहारे, एक वेषधारी, एक शिशुवृत्तको धारण किये ॥ ३ ॥ एकही कार्यान्तरको प्राप्त हो, एकदेहको दो

प्रकारसे धारण किये, एकही कार्यमें तत्पर, महावीर्य एकही समय शिशुताको प्राप्त हुए ॥४॥ लोकोंको एकही प्रमाण, देवताओंके कार्यके निमित्त मनुष्य अवतार धारे, सम्पूर्ण जगत्‌के रक्षक, गोप बालकोंको साथ लिये ॥५॥ परस्पर मिली क्रीडासे शोभित, आकाशमें एक दूसरेकी किरणसे मिश्रित, सूर्यचंद्रमाके समान॥६॥सर्पके शरीरके समान भुजावाले सर्वत्र विचरने लगे.और मत्त हाथीके बच्चेके समान धूरिधूसरित अंगसे शोभित हुए ॥७॥ कहीं शरीरमें रजलपेटे चलते और कहीं क्षुभित हुए वे दोनों अग्निपुत्र कार्तकेयके समान शोभित हुए॥ ८ ॥ कहीं घुटनोंसे चलते हुए

एकप्रमाणौ लोकानां देववृत्तान्तमानुषौ ॥ कृत्स्नस्य जगतो गोपौ संवृतौ गोपदारकौ ॥ ५ ॥ अन्योन्यव्यतिषक्ताभिः क्रीडाभिरभिशोभितौ ॥ अन्योन्यकिरणग्रस्तौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥ ६ ॥ विसर्पन्तौ तु सर्वत्र सर्पभोगभुजावुभौ ॥ रेजतुः पांसुदिग्धांगौ दृप्तौ कलभकाविव ॥ ७ ॥ क्वचिद्भस्मप्रदीप्तांग करीषप्रोक्षितौ क्वचित् ॥ तौ तत्र पर्यधावेतां कुमाराविव पावकी ॥ ८ ॥ क्वचिज्जानुभिरुद्धृष्टैः सर्पमाणौ विरेजतुः ॥ क्रीडन्तौ वत्सशालासु शकृद्दिग्धांगमूर्द्धजौ ॥ ९ ॥ शुशुभाते श्रिया जुष्टावानन्दजननौ पितुः ॥ जनं च विप्रकुर्वाणौ विहसन्तौ क्वचित्क्वचित् ॥ १० ॥ तौ तत्र कौतूहलिनौ मूर्द्धजव्याकुलेक्षणौ ॥ रेजतुश्चन्द्रवदनौ दारकौ सुकुमारकौ ॥ ११ ॥ अतिप्रसक्तौ तौ दृष्ट्वा सर्वव्रजविचारिणौ ॥ नाशकत्तौ वारयितुं नन्दगोपः सुदुर्दमौ ॥ १२ ॥ ततो यशोदा संक्रुद्धा कृष्णं कमललोचनम् ॥ आनाय्य शकटीमूले भर्त्सयन्ती पुनः पुनः ॥ १३ ॥ दाम्ना चैवोदरे बद्ध्वा प्रत्यबन्धदुलूखले ॥ यदि शक्तोसि गच्छेति तमुक्त्वा कर्म साकरोत् ॥ १४ ॥

शोभित होते थे.कहीं धूरी बाल मैले किये गोशालामें क्रीडा करते थे॥९॥इस प्रकार लक्ष्मीसे युक्त, पिता--माताको आनन्द देते शोभित हुए.दूसरे मनुष्योंके अनेक उपद्रवोंसे उपकार करते, हंसाते हुए विचरते थे ॥१०॥ एक समय वे दोनों खेलमें तत्पर, केशोंसे व्याकुल नेत्रवाले, चंद्रमाके समान मुखवाले बालक विहार करते थे कि ॥ ११ ॥ उनको खेलमें अतिमग्न देखकर सब और ब्रजमें फिरनेहारे उन दोनोंको निवारण करनेमें नन्दगोपभी समर्थ न हुए॥१२॥तब यशोदा क्रोधकर कमललोचन कृष्णको शकटके नीचे लाकर और वारम्वार घुडक कर ॥ १३ ॥ उनके पेटमें रस्सी बांधकर

उलूखलमें बांध दी और बोली जो बडा बल है तौ अब भाग.यह कह घरका कृत्य करने लगी॥१४॥ तब यशोदाको घरके काममें लगी देख बाललीला करते और व्रजवासियोंको विस्मित करते कृष्ण वहांसे चले॥१५॥वह कृष्ण उलूखलको खैंचते आंगनमें चले और जहां यमलार्जुन वृक्ष पुराने युगानयुगके थे,उन दोनोंके बीचसे श्रीकृष्ण उलूखलको खैंचते हुए चले॥१६॥जिस समय यमलार्जुन उद्धार करनेको तिरछे उलूखलको खैंचते हुए चले और उसमें उलूखल अडाकर जडसे वृक्षोंको झटका दिया और खचा ॥ १७ ॥तब उस बालकसे खैंचे हुए वे यमलार्जुनके दोनों वृक्ष जडसे उखड पडे और वह बीचमें हंसने लगे. "यत्र मंथां विबध्नते रश्मीन् यमित वा इव । उलूखलसुतानामवे न्द्रजलूगुलः । तानों अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः

व्यग्रायां तु यशोदायां निर्जगाम ततोऽङ्गणात् ॥ शिशुलीलां ततः कुर्वन्कृष्णो विस्मापयन्व्रजम् ॥ १५ ॥ सोऽङ्गणान्निस्सृतः कृष्णः कर्षमाण उलूखलम् ॥ यमलाभ्यां प्रवृद्धाभ्यामर्जुनाभ्यां चरन्वने ॥ मध्यान्निश्चक्राम तयोः कर्षमाण उलूखलम् ॥१६॥ तत्तस्य कर्षतो बद्धं तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ लग्नं ताभ्यां समूलाभ्यामर्जुनाभ्यां चकर्ष च ॥ १७ ॥ तावर्जुनौ कृष्यमाणौ तेन बालेन रंहसा ॥ समूलपिटपौ भग्नौ स तु मध्ये जहास वै ॥ १८॥ निदर्शनाथ गोपानां दिव्यं स्वबलमास्थितः ॥ तद्दाम तस्य बालस्य प्रभावादभवद्दृढम् ॥ १९ ॥ यमुनातीरमार्गस्था गोप्यस्तं ददृशुश्शिशुम् ॥ क्रन्दन्त्यो विस्मयन्त्यश्च यशोदां ययुरङ्गनाः ॥ २० ॥ तास्तु संभ्रान्तवदना यशोदामूचुरङ्गनाः ॥ एह्यागच्छ यशोदे त्वं संभ्रमात्किं विलम्बसे ॥ २१ ॥ यौ तावदर्जुनवृक्षौ तु व्रजे सत्योपयाचनौ ॥ पुत्रस्योपरि तावेतौ पतितौ ते महीरुहौ ॥ २२ ॥

सोतृभिः इन्द्राय मधुमत्सुतमिति श्रुतेः" इसका यह मंत्र प्रमाण है॥१८॥गोपोंको दिखानेके निमित्त दिव्य अपने बलमें स्थित हो यह कार्य किया. उस बालकरूपके प्रभावसे वह रस्सीभी दृढ हो गई ॥१९॥ यमुनातीर्थके मार्गमें स्थित गोपियोंने यह कौतुक देखा. वे व्याकुल हो विलाप करती यशोदाके निकट गई ॥२०॥ और संभ्रान्तचित्त हो यशोदासे बोलीं; हे यशोदे ! आओ, अब संभ्रमसे तुम देर क्यों करती हो ॥ २१ ॥ जो अर्जुनके वृक्ष बहुत कालसे व्रजमें थे, वे दोनों वृक्ष तुम्हारे पुत्रके ऊपर गिरपडे ॥ २२ ॥

उस तुम्हारे पुत्रके पेटमें दृढ रस्सी बंधी है, परन्तु वह बालक तुम्हारा पुत्र दोनों वृक्षोंके मध्यमें स्थित हो हंसता है ॥ २३॥ हे दुर्बुद्धिनी ! वृथा अपनेको पंडितमानने वाली, उठ और चल. मृत्युके मुखसे बचे जीवत पुत्रको ला ॥ २४ ॥ सुनतेही यशोदा भीत हो हाहाकार करती सहसा उठ दौडी और जहां वे दोनों वृक्ष पडे थे उस स्थानमें आई ॥ २५ ॥ उन दोनों वृक्षोंके बीचमें यशोदाने अपने पुत्रको देखा कि उदरमें रस्सी बंधी है और उलूखलको खैंच रहे हैं ॥ २६ ॥ वह गोपी और वृक्ष गोप चारों तरफ घिर आये और आश्चर्य कर बोले ॥ २७ ॥ वे वनवासी गोप जो जिसके मनमें आया

दृढेन दाम्ना तत्रैव बद्धो वत्स इवोदरे ॥ जहास वृक्षयोर्मध्ये तव पुत्रः सबालकः ॥ २३ ॥ उत्तिष्ठ गच्छ दुर्मेधे मूढे पण्डितमानिनि ॥ पुत्रमानय जीवन्तं मुक्तं मृत्युमुखादिव ॥ २४ ॥ सा भीता सहसोत्थाय हाहाकारं प्रकुर्वती ॥ तं देशमगमद्यत्र पातितौ ताबुभौ द्रुमौ ॥ २५ ॥ सा ददर्श तयोर्मध्ये द्रुमयोरात्मजं शिशुम् ॥ दाम्ना निबद्धमुदरे कर्षमाणमुलूखलम् ॥ २६ ॥ सा गोपी गोपवृद्धश्च समुवाच व्रजस्तदा ॥ पर्यागच्छन्त ते द्रष्टुं गोपेषु महदद्भुतम् ॥ २७ ॥ जजल्पुस्ते यथायामं गोपा वनविचारिणः ॥ केनेमौ पातितौ वृक्षौ घोषस्यायतनोपमौ ॥ २८ ॥ विना वातं विना वर्षं विद्युत्प्रपतनं विना ॥ विना हस्तिकृतं दोषं केनेमौ पातितौ द्रुमौ ॥ २९ ॥ अहो बत न शोभेतां विमूलावर्जुनाविमौ ॥ भूमौ निपतितौ वृक्षौ वितोयौ जलदाविव ॥ यदीमौ घोषरचितौ घोषकल्याणकारिणौ ॥ ३० ॥ नन्दगोपप्रसन्नौ ते द्रुमावेवं गतावपि ॥ यच्च ते दारको मुक्तो विपुलाभ्यामपि क्षितौ ॥ ३१ ॥ औत्पातिकमिदं घोषे तृतीयं वर्त्तते त्विह ॥ पूतनाया विनाशश्च द्रुमयोश्शकटस्य च ॥ ३२ ॥

सो कहने लगे. घोषोंके स्थानकी समान पूजनीय यह बडे वृक्ष किसने गिरा दिये ॥ २८ ॥ न हवा चली, न वर्षा हुई, न बिजली गिरी, न हाथी कहींते आये, फिर यह वृक्ष किसने गिरा दिये ॥ २९ ॥ अहो ! अब यह मूलहीन वृक्ष शोभित नहीं होते, यह दोनों वृक्ष जलरहित बादलकी समान पृथ्वीपर गिर पडे, जो कि यह दोनों वृक्ष घोषके कल्याण करनेहारे थे सो गिर गये ॥ ३० ॥ उखडने परभी यह दोनों वृक्ष नन्द गोपपर प्रसन्न हुए हैं, जो कि इन दोनोंके नीचे प्राप्त होकरभी बालक बच गया ॥ ३१ ॥ यह हमारे स्थानपै तीसरा उत्पात हुआ. पूतनाविनाश, वृक्षपतन और शकटका

गिरना॥३२॥ अब इस स्थानमें घोषका निवास करना योग्य नहीं है. यहां जो उत्पात दीखते हैं उनका कहना भला नहीं ॥ ३३ ॥ नन्दगोपने तत्काल कृष्णको उलूखलसे खोलकर बहुत काल तक गोदीमें बैठाया और पुत्रका नया जन्म होना माना ॥३४॥ और नन्दराय कमलदललोचन कृष्णको देखते हुए तृप्त न हुए और यशोदाकी निन्दा करते गोपनन्द स्थानपर आये और दूसरे सब गोपभी व्रजको गये॥३५॥जिस दिनसे श्रीकृष्णके उदरमें दाम (रस्सी) बांधी गई, गोष्ठमें गोपियें उनको'दामोदर'नामसे पुकारती थीं ॥३६॥ इस प्रकार घोषमें रहते कृष्णने चरित किये. तृणावर्तकी

अस्मिन् स्थाने च वासोयं घोषस्यास्य न युज्यते ॥ उत्पाता ह्यत्र दृश्यन्ते कथयन्तो न शोभनम् ॥ ॥३३॥ नन्दगोपस्तु सहसा मुक्त्वा कृष्णमुलूखलात् ॥ निवेश्य चाङ्के सुचिरं मृतं पुनरिवागतम् ॥ ३४ ॥ नातृप्यत्प्रेक्षमाणो वै कृष्णं कमललोचनम्॥ ततो यशोदां गर्दन्वै नन्दगोपो विवेश ह ॥ स च गोपजनस्सर्वो व्रजमेव जगाम ह॥३५॥ स च तेनैव नाम्ना तु कृष्णो वै दामबन्धनात्॥ गोष्ठे दामोदर इति गोपीभिः परिगीयते ॥ ३६ ॥ एतदाश्चर्यभूतं हि बालस्यासीद्विचेष्टितम् ॥ कृष्णस्य भरतश्रेष्ठ घोषे निवसतस्तदा ॥ ३७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां यमलार्जुनभङ्गो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं तौ बाल्यमुत्तीर्णौ कृष्णसंकर्षणावुभौ ॥ तस्मिन्नेव व्रजस्थाने सप्तवर्षौ बभूवतुः ॥१॥ नीलपीताम्बरधरौ पीतश्वेतानुलेपनौ ॥ बभूवतुर्वत्सपालौ काकपक्षधरावुभौ ॥ २ ॥

कथाभी पुराणान्तरसे यहां जाननी.कारण कि वेदमंत्र उस चरित्रकोभी कहता है. "साकं यक्ष्म प्रपत चाषेण किकिदीविना साकं वा तस्य ध्राज्या साकं नश्य निहा कया" राक्षस श्रीकृष्णको वायुरूपसे मारने आया था परन्तु जब आकाशको कृष्णको ले गया,तब श्रीकृष्णने उसको शिलापर दे पटका जिससे यह स्वयं नाशको प्राप्त होगया ॥३७॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥७॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार जब श्रीकृष्ण और संकर्षण बडे हुए तब सात वर्षकी अवस्थामें व्रजमें डोलने लगे ॥१॥ नील और पीताम्बर धारे,पीत और श्वेत चन्दन लगाये, पट्टोंसे

शोभित दोनों वत्सपाल हुए ॥ २ ॥ सुन्दर मुखवाले दोनों तुम्बीफल बनिके मनोहर बाजे बजाते, तीन सिरके सर्पकी समान वनमें जाते शोभित हुए ॥ ३॥ मोरके चन्दे आदि कानोंमें धरे, पत्तोंके मुकुट धारे, अनेक पुष्पोंकी वनमालासे युक्त हृदयवाले, वृक्षोंकी दो कौंपलकी समान शोभित हुए ॥ ४ ॥ कमल फूलोंके मुकुट बनाये रज्जूके यज्ञोपवीत धारे, हाथोंमें छींका और तूंबी धारे, गोपोंकी वीणा बजाते ॥ ५ ॥ कहीं परस्पर हंसते क्रीडा करते, कहीं पर्ण-शय्या पर शयन करते, कभी नींदकी इच्छा करते ॥ ६ ॥ बछडोंको पालते वनको शोभित करते हुए दो चंचल बालकोंकी समान अत्यन्त खेल करते

पणवाद्यं श्रुतिसुखं वादयन्तौ वराननौ ॥ शुशुभाते वनगतौ त्रिशीर्षाविव पन्नगौ ॥ ३ ॥ मयूरांगदकर्णौ तु पल्लवापीडधारिणौ ॥ वनमालाकुलोरस्कौ द्रुमपोताविवोद्गतौ ॥ ४ ॥ अरविन्दकृतापीडौ रज्जुयज्ञोपवीतिनौ ॥ सशिक्यतुम्बकरकौ गोपवेणुप्रवादकौ ॥ ५ ॥ क्वचिद्धसन्तावन्योन्यं क्रीडमानौ क्वचित्क्वचित् ॥ पर्णशय्यासु संसुप्तौ क्वचिन्निद्रान्तरेक्षणौ ॥ ६ ॥ एवं वत्सान्पालयन्तौ शोभयन्तौ महावनम् ॥ चंचूर्यन्तौ रमन्तौ स्म किशोराविव चञ्चलौ ॥ ७ ॥ अथ दामोदरः श्रीमान्संकर्षणमुवाच ह ॥ आयनास्मिन्वने शक्यं गोपालैस्सह क्रीडितुम् ॥ ८ ॥ अवगीतमिदं सर्वमावाभ्यां भुक्तकाननम् ॥ प्रक्षीणतृणकाष्ठं च गोपैर्मथितपादपम् ॥ ९ ॥ घनीभूतानि यान्यासन् काननानि वनानि च ॥ तान्याकाशनिकाशानि दृश्यन्तेऽद्य यथासुखम् ॥ १० ॥ गोवाटेष्वपि ये वृक्षाः परिवृत्तार्गलेषु च ॥ सर्वे गोष्ठाग्निषु गताः क्षयमक्षयवर्चसः ॥ ११ ॥ संनिकृष्टानि यान्यासन्काष्ठानि च तृणानि च ॥ तानि दूरावकृष्टासु मार्गितव्यानि भूमिषु ॥ १२ ॥

वनमें फिरते थे ॥ ७ ॥ एक समय श्रीमान् श्रीकृष्णजी बलरामजीसे बोले; हे आर्य ! इस वनमें तो गोपालोंके साथ हम क्रीडा नहीं कर सक्ते ॥ ८ ॥ हमने अनेक भोग भोगकर इस वनको नाश कर दिया. इसमें तृण काष्ठभी नहीं रहा, कारण कि गोपोंने इस वनके वृक्षभी नष्ट कर दिये हैं ॥ ९ ॥ जो वनमें घनीभूत और श्रेष्ठ उद्यान थे वे सब पत्रादिसे शून्य हो गये हैं, वे यथा सुख दीखते हैं ॥ १० ॥ जो गौओंके मार्गके वृक्ष थे, उनका मार्गभी रुक रहा है, अक्षय काष्ठभी गोष्ठकी अग्निसे क्षय हो गये है ॥ ११ ॥ जो काष्ठ तृण धेरेही मिलते थे वह अब दूर मिलते हैं और ढूंढनेसे पाये जाते

हैं ॥ १२ ॥ यह वन थोडे जल और तृणसे युक्त होनेके कारण निराश्रय है, आश्रयहीन दारुण और थोडे वृक्षोंसे युक्त होनेके कारण इसमें विश्राम लेनेको ढूंढना पडता है ॥१३॥ विना प्रयोजन इन वृक्षोंमें वास करनाभी उचित नहीं है और बहुत दिन वास करनेसे मनुष्योंद्वारा यहांकी शोभा हीन हो गई है ॥ १४ ॥ यह आनन्दरहित, स्वादहीन, प्रयोजनरहित, पवनसे युक्त है. यह पक्षीरहित होनेसे शून्य शाकादिरहित भोजनके समान है ॥१५॥ काष्ठ और वनके शाक वेचनेसे और तृणसमूहके संचयसे यह गोपालोंका ग्राम नगरके समानसा हो गया है ॥ १६ ॥ पर्वतोंका भूषण घोष है और

अरण्यमिदमल्पोदमल्पकक्षं निराश्रयम् ॥ अन्वेषितव्यविश्राम दारुणं विरलद्रुमम् ॥ १३ ॥ अकर्मण्येषु वृक्षेषु स्थितविप्रं स्थित द्विजम् ॥ संवासस्यास्य महतो जनेनोत्सादितद्रुमम् ॥ १४ ॥ निरानन्दं निरास्वादं निष्प्रयोजनमारुतम् ॥ निर्विहङ्गमिदं शून्यं निर्व्यञ्जनमिवाशनम् ॥ १५ ॥ विक्रीयमाणैः काष्ठैश्च शाकैश्च वनसंभवैः ॥ उच्छन्नसंचयतृणो घोषोऽयं नगरायते ॥ १६ ॥ शैलानां भूषणं घोषो घोषाणां भूषणंवनम् वनानां भूषणं गावस्ताश्चास्माकं परा गतिः ॥ १७ ॥ तस्मादन्यद्वनं यामः प्रत्यग्रयवसेन्धनम् ॥ इच्छान्त्यनुपभुक्तानि गावो भोक्तुं तृणानि च ॥ १८ ॥ तस्माद्वनं नवतृण गच्छन्तु धनिनो व्रजाः ॥ न द्वारबन्धावरणा न ग्रहक्षेत्रिणस्तथा ॥ प्रशस्ता वै व्रजा लोके यथा वै चक्रचारिणः ॥ १९ ॥ शकृन्मूत्रेषु तेष्वेव जातक्षाररसायनम् ॥ न तृणं भुञ्जते गावो नापि तत्पयसेहितम् ॥ २० ॥

घोषोंका भूषण वन है. वनोंका भूषण गौ और वे गऊ हमारी परागति है॥१७॥इस कारण इस गौआदिको आगे कर हम दूसरे वनको चलेंगे. गौ विना खाये हुए तृणोंकी इच्छा करती हैं॥१८॥इस कारण व्रजके धनी नवीन तृणयुक्त वनमें चलें और वर्णोंको अपने द्वारके आगे रहना उचित नहीं है और घरमें श्रेष्ठ खेतीभी नहीं होती, चक्रचारी हंस सारसोंक समान लोकमें व्रजवासी विचरनेमें विख्यात हैं अर्थात् हम वर्णोंका कोई घर नहीं, न क्षेत्रवालोंका कोई घर है ॥ १९ ॥ गौओंके गोवर और वारंवार मूत्र करनेके कारण इस वनके तृण खारी हो रहे हैं,इस कारण गौ तृण नहीं चरती

॥ १७ ॥

और उनसे अच्छा दूध नहीं होता है ॥ २० ॥ जहां रमणीयस्थल और नवीन वनकी पंक्ति हो, वहांही हम गायोंसहित रहेंगे. वहांही गोठ करेंगे ॥ २१ ॥ सुना जाता है कि निकटही तृणोंसे युक्त, परमरम्य स्वादु वृक्ष और जलोंसे युक्त वृंदावन है ॥ २२ ॥ जल भंभीरी कंटकोंसे युक्त, संपूर्ण वनके गुणोंसे भरा पुरा, कदंबके वृक्षोंसे समाकुल यमुनाके किनारे है ॥ २३ ॥ जहां स्निग्ध और ठंडी पवन चलती है, सब ऋतु वनी रहती है, गोपियोंको सुख संचार करने योग्य सुंदर चित्र उपवनोंसे युक्त ॥ २४ ॥ उसके निकटही गोवर्धन नाम महापर्वत है, तिसके शिखर नन्दनवनकी समान

स्थलीप्रायासु रथ्यासु नवासु वनराजिषु ॥ चरावस्सहितौ गोभिः क्षिप्रं संवाह्यतां व्रजः ॥ २१ ॥ श्रूयते हि वनं रम्यं पर्याप्तं तृणसंस्तरम् ॥ नाम्ना वृन्दावनं नाम स्वादुवृक्षफलोदकम् ॥ २२ ॥ अझिल्लिकण्टकवनं सर्वैर्वनगुणैर्युतम् ॥ कदम्बपादपप्रायं यमुनातीरसंश्रितम् ॥ २३ ॥ स्निग्धशीतानिलवनं सर्वर्तुनिलयं शुभम् ॥ गोपीनां सुखसंचारं चारुचित्रवनान्तरम् ॥ २४ ॥ तत्र गोवर्द्धनो नाम नातिदूरे गिरिर्महान् ॥ भ्राजते दीर्घशिखरो नन्दनस्येव मन्दरः ॥ २५ ॥ मध्ये चास्य महाशाखो न्यग्रोधो योजनोच्छ्रितः ॥ भाण्डीरो नाम शुशुभे नीलमेघ इवाम्बरे ॥ २६ ॥ मध्येन चास्य कालिन्दी सीमन्तमिव कुर्वती ॥ प्रयाता नन्दनस्येव नलिनी सरिताम्वरा ॥ २७ ॥ तत्र गोवर्द्धनं चैव भाण्डीरं च वनस्पतिम् ॥ कालिन्दीं च नदीं रम्यां द्रक्ष्यावश्चरतस्सुखम् ॥ २८ ॥ तत्रायं कल्प्यतां घोषस्त्यज्यतां निर्गुणं वनम् ॥ संत्रासयावो भद्रं ते किञ्चिदुत्पाद्य कारणम् ॥२९॥ एवं कथयतस्तस्य वासुदेवस्य धीमतः ॥ प्रादुर्बभूवुश्शतशो रक्तमांसवसाशनाः ॥ ३० ॥

शोभित होते हैं ॥ २५ ॥ इसके बीचमें महाशाखाओंसे युक्त एक योजन ऊंचा वटका वृक्ष है और भांडीर नामक वह वृक्ष आकाशमें नील मेघकी समान शोभित होता है ॥ २६ ॥ इसके बीचमें यमुना सीमाको पृथक् करती हुई इन्द्रके वन नलिनी श्रेष्ठ नदीके समान शोभित है ॥ २७ ॥ वहां गोवर्द्धन पर्वत और भांडीर वनस्पति और मनोहर यमुनाको देख बहुत प्रसन्न रहेंगे ॥ २८॥ वहीं गांव बनाना चाहिये. यह निर्गुण वन त्यागनेके योग्य है, सो हम कोई कारण उत्पन्न कर इन गोपोंको त्रास देंगे; आपका मंगल हो ॥ २९ ॥ जिस समय वासुदेवने ऐसा

कहा तब सैकडों रक्त और मांसके खानेवाले॥३०॥घोररूप चिन्ता करतेही उनके शरीरके रोमोंसे चारों ओरसे सैंकडों भेडिये उत्पन्न हो गये॥३१॥ वे अनेक व्रजके नष्ट करनेको उत्पन्न हुए भेडियोंको आता देख गौ बछडे और मनुष्योंमें॥३२॥तथा गोपियोंके मनमेंभी महान् भयउत्पन्न हुआ व भेडिये पांच पांच दश २ ॥३३॥ तीस वीस अथवा सौ २ श्रीवत्सलक्षणसे युक्त श्रीकृष्णके शरीरसे निकलकर विचरने लगे॥३४॥ कृष्णके वे काले मुखके भेडिये गोपोंको भय देते बछडोंको खाने और गौ व्रजको त्रास देने लगे ॥ ३५ ॥ तथा बालकोंको हरण करके व्रजको दुःख देने लगे.

घोराश्चिन्तयतस्तस्य स्वतनूरुहजास्तदा ॥ विनिष्पेतुर्भयकरास्सर्वशश्शतशो वृकाः ॥ ३१ ॥ निष्पतन्ति स्म बहवो व्रजस्यो-त्सादनाय वै ॥ वृकान्निष्पतितान्दृष्ट्वा गोषु वत्सेष्वथो नृषु ॥ ३२ ॥ गोपीषु च यथाकामं व्रजे त्रासोऽभवन्महान् ॥ ते वृकाः पञ्चबद्धाश्च दशबद्धास्तथा परे ॥ ३३ ॥ त्रिंशद्विंशतिबद्धाश्च शतबद्धास्तथा परे ॥ निश्चेरुस्तस्य गात्रेभ्यः श्रीवत्सकृतलक्षणाः ॥ ३४ ॥ कृष्णस्य कृष्णवदना गोपानां भयवर्धनाः ॥ भक्षयद्भिश्च तैर्वत्सान् त्रासयद्भिश्च गोव्रजान् ॥ ३५ ॥ निशि बालान्हरद्भिश्च वृकैरुत्साद्यते व्रजः ॥ न वने शक्यते गन्तुं न गाश्च परिरक्षितुम् ॥३६॥ न वनात्किंचिदाहर्तुं नच वा तरितुं नदीम् ॥ त्रस्ता ह्युद्विग्नमनसोऽगतास्तस्मिन्वनेऽवसन् ॥ ३७ ॥ एवं वृकैरुदीर्णैस्तु व्याघ्रतुल्यपराक्रमैः ॥ व्रजो निष्पन्दचेष्टस्स एकस्थानचरः कृतः ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां वृकदर्शनो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं वृकांश्च तान्दृष्ट्वा वर्धमानान्दुरासदान् ॥ सस्त्रीपुमान्स घोषो वै समस्तोऽमन्त्रयत्तदा ॥ १ ॥

न कोई वन जानेको,न गौओंकी रक्षा करनेको समर्थ हुआ॥३६॥न कोई कुछ वनसे ला सका,न नदिको तर सका और उद्विग्न मनसे उस वनमें वसते हुए रहे॥३७॥इस प्रकार व्याघ्रके तुल्य पराक्रमवाले भेडियोंने जब उपद्रव किया,तब वह व्रजवासी चेष्टारहित हो एक स्थानमें रहने लगे॥३८॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां अष्टमोऽध्यायः ॥८॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार निवारण करनेके अयोग्य उन भेडियोंको बढा हुआ देखकर

श्रीकृष्णके सहित वह व्रजवासी परस्पर सम्मति करने लगे ॥१॥ अब इस स्थानमें रहना ठीक नहीं, दूसरे वनमें जाना चाहिये. जो कल्याणकारक सुखसे रहने योग्य और गायोंकोभी सुखदायक हो ॥ २ ॥ देर करनेका काम नहीं है, शीघ्रही गोधन सहित दूसरे वनमें चलें. जबतक की भेडिये इस व्रजका वध न कर डालें ॥३॥ यह धूम्र लाल अंगवाले डाढों और नखोंसे युक्त कालेमुखके भेडिये जो रात्रीमें गर्जते हैं, उनसे हमको महाभय लगता है ॥४॥ मेरा पुत्र, मेरा भ्राता, मेरा बछडा, मेरी गौ भेडियोंने मार दी हैं ऐसा घर २ क्रंदन होता है ॥५॥ उनके रोने और गौओंके हम्भा शब्दसे

स्थानेनेह न नः कार्यं व्रजामोऽन्यन्महद्वनम् ॥ यच्छिवं च सुखास्यं च गवां चैव सुखावहम् ॥ २ ॥ अद्यैव किं चिरेण स्म व्रजामस्सह गोधनैः ॥ यावद्वृकैर्वधं घोरे न नस्सर्वो व्रजो व्रजेत् ॥ ३ ॥ एषां धूम्रारुणाङ्गानां दंष्ट्रिणां नखकार्षिणाम् ॥ वृकाणां कृष्णवक्त्राणां बिभीमो निशि गर्जताम् ॥ ४ ॥ मम पुत्रो मम भ्राता मम वत्सोऽथ गौर्मम ॥ वृकैर्व्यापादिता ह्येवं क्रन्दति स्म गृहे गृहे ॥५॥ तासां रुदितशब्देन गवां हंभारवेण च ॥ व्रजस्योत्थापनं चक्रुर्घोषवृद्धास्समागताः ॥६॥ तेषां मतमथाज्ञाय गन्तुं वृन्दावनं प्रति ॥ व्रजस्य विनिवेशाय गवां चैव हिताय च ॥७॥ वृन्दावननिवासाय तान् ज्ञात्वा कृतनिश्चयान् ॥ नन्दगोपो बृहद्वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे ॥८॥ अद्यैव निश्चयप्राप्तिर्यदि गन्तव्यमेव नः ॥ शीघ्रमाज्ञाप्यतां घोषः सज्जीभवत मा चिरम् ॥९॥ ततोऽवघुष्यत तदा घोषे तत्प्राकृतैर्जनैः ॥ शीघ्रं गावः प्रकल्पन्तां भाण्डं समभिरोप्यताम् ॥ १० ॥ वत्सयूथानि कल्पन्तां युज्यतां शकटानि च ॥ वृन्दावनमितस्स्थानान्निवेशाय च गम्यताम् ॥ ११ ॥

वे गोपवृद्ध मिलकर व्रजके उठानेकी चेष्टा करने लगे ॥ ६ ॥ उनका यह मत जानकर कि वृन्दावनको जांयगे. वहां व्रज स्थापित होगा तथा गायोंका हित होगा ॥ ७ ॥ वृन्दावनमें रहनेके निमित्त उनका निश्चय किया जान नंदगोप बृहस्पतिके समान वचन बोले ॥ ८ ॥ यदि चलते हो तो मेरे मनमें आता है कि आजही चलें. घोषोंको शीघ्र आज्ञा दी जावे कि सावधान हो जांय ॥ ९ ॥ तब प्राकृत जनोंमें ढंढोरा दे दिया कि गायोंको ठीक करो और भांडे बर्तन छकडोंमें भरो ॥१०॥ वत्सोंके यूथोंको हारको शकट जोतो. वृन्दावनमें रहनेके निमित्त चलो ॥११॥

यह नंदगोपका कहा सुन्दर वचन सुनकर शीघ्र गमनकी इच्छासे सब व्रजवासी उठे॥१२॥चलो शीघ्र चलो उठो क्या चलनेमें देर है चलो उठो;इस प्रकार उनमें कोलाहल होनेलगा॥१३॥गाडी गाडे चलते हुए शोभा पाने लगे.गोपी गोपाल चलनेमें व्यग्र हो गये.सागरके समान शब्द होने लगा॥१४॥ गोपियें गागर लिये और मस्तक पर आभूषणोंके समान कलश धरे, आकाशसे तारापंक्तिके समान व्रजसे समूहके समूह चलीं॥१५॥नीले और पीले वस्त्रोंको धारण किये मार्गमें चलती हुई वे गोपी इन्द्रधनुषकी पंक्तिके समान शोभित हुईं॥१६॥रससे और जुए आदिके भारसे युक्त बडे शरीरवाले

तच्छ्रुत्वा नन्दगोपस्य वचनं साधु भाषितम् ॥ उदतिष्ठद्व्रजस्सर्वश्शीघ्रं गमनलालसः ॥ १२ ॥ प्रयान्तुत्तिष्ठ गच्छामः किं शेषे साधु योजय ॥ उत्तिष्ठेति व्रजे तस्मिन्गोपकोलाहलो ह्यभूत् ॥ १३ ॥ उत्तिष्ठमानश्शुशुभे शकटीशकटस्तु सः ॥ व्याघ्रघोषमहाघोषो घोषस्सागरघोषवान् ॥ १४ ॥ गोपीनां गर्गरीभिश्च मूर्ध्नि चोत्तम्भितैर्घटैः ॥ निष्पपात व्रजात्पङ्क्तिस्तारापंक्तिरिवाम्बरात् ॥ १५ ॥ नीलपीतारुणैस्तासां वस्त्रैरग्रस्तनोच्छ्रितैः ॥ शक्रचापायते पंक्तिर्गोपीनां मार्गगामिनी ॥१६॥ दामनीदामभारैश्चकैश्चित्कायावलम्बिभिः॥गोपा मार्गता भान्ति सावरोहा इव द्रुमाः॥१७॥स व्रजो व्रजता भाति शकटौघनभास्वता॥पोतैः पवननिक्षिप्तैर्निष्पतद्भिरिवार्णवाः ॥ १८ ॥ क्षणेन तद्व्रजस्थानमीरणं समपद्यत ॥ द्रव्यावयवनिर्धूतकीर्णं वायसमण्डलैः ॥ १९ ॥ ततः क्रमेण घोषस्स प्राप्तो वृन्दावनं वनम् ॥ निवेशं विपुलं चक्रे गवां चैव हिताय च ॥ २० ॥ शकटावर्त्तपर्यन्तं चन्द्रार्द्धाकारसंस्थितम् ॥ मध्ये योजनविस्तीर्णं तावद्द्विगुणमायतम् ॥ २१ ॥

गोप वृक्षोंपर लटके रस्सोंके समान शोभित हुए ॥१७॥ वह व्रज शकटसमूहोंसे चलते हुए व्रजके समान शोभित हुआ.जैसे पवनकी प्रेरी नावोंसे समुद्र शोभित होता है॥१८॥क्षणमात्रमें वह व्रजस्थान शून्य हो गया.अनेक द्रव्य विखरे हुएऔर काकसमूह उडने लगे॥१९॥इस प्रकार चलते चलते घोषसमूह वृंदावनमें पहुंचा और गायोंके हितके निमित्त वहां स्थान बनाया॥२०॥चारोंओर छकडोंकोखडा कर अर्द्धचन्द्राकार करते हुए.

मध्यमें एक योजनका विस्तार करके आठ कोसतक लम्बा किया ॥२१॥ बढे हुए कांटे और कांटोंके वृक्षोंसे वाड लगाकर खाईसे उसको रक्षित किया॥२२॥मध्यमें दही विलोनेकी रई दंड और जलसे धोई हुई गागर इधर उधर स्थापन की॥२३॥कीले गडे रस्से बंधे और स्तंभोंपर चारों ओरसे गाडे स्थापित किये हुए ॥२४॥दही विलोनेके पात्रमें रस्सी बंधी और उस हांडीके मुखको चटाई वा तृण आदिसे ढककर ॥२५॥ बहुतसी शाखोंवाले वृक्षोंके नीचे शुद्ध स्थानमें गौओंके स्थान बनाये और अपने २ उलूखल स्थापित किये॥२६॥पूर्वकी ओरको अपने छींके बांधे,

कण्टकीभिः प्रवृद्धाभिस्तथा कण्टकितद्रुमैः ॥ निखातोच्छ्रितशाखाग्रैरभिगुप्तं समन्ततः ॥२२॥ मन्थरारोप्यमाणैश्च मन्थबन्धानुकर्षणैः ॥ अद्भिः प्रक्षाल्यमानाभिर्गर्गरीभिरितस्ततः ॥ २३ ॥ कीलैरारोप्यमाणैश्च दामनीपाशपाशितैः ॥ स्तम्भनीभिर्धृताभिश्च शकटैः परिवर्तितैः ॥ २४ ॥ नियोगपाशैरासक्तैर्गर्गरीस्तम्भमूर्द्धसु ॥ छादनार्थं प्रकीर्णैश्च कंटकैस्तृणसंकटैः ॥२५॥ शाखाविटङ्कैर्वृक्षाणां क्रियमाणैरितस्ततः ॥शोध्यमानैर्गवां स्थानैस्स्थाप्यमानैरुलूखलैः ॥ २६ ॥ प्राङ्मुखैस्सिच्यमानैश्च संदीप्यद्भिश्च पावकैः॥ सवत्सचर्मास्तरणैः पर्यङ्कैश्चावरोपितैः॥२७॥ तोयमुत्तारयन्तीभिः प्रेक्षन्तीभिश्च तद्वनम् ॥ शाखाश्चाकर्षमाणाभिर्गोपीभिश्च समन्ततः ॥ २८ ॥ युवभिस्स्थविरैश्चैव गोपैर्व्यग्रकरैर्भृशम् ॥ विशसद्भिः कुठारैश्च काष्ठान्यपि तरूनपि ॥ २९ ॥ तद्व्रजस्थानमधिकं शुशुभे काननावृतम् ॥ रम्यं वननिवेशं वै [illegible] द्रुमूलफलोदकम् ॥ ३० ॥ तास्तु कामदुघा गावस्सर्वपक्षिरुतं वनम् ॥ वृन्दावनमनुप्राप्ता नन्दनोपमकाननम् ॥ ३१ ॥ पूर्वमेव तु कृष्णेन गवां वै हितकारिणा ॥ शिवेन मनसा दृष्टं तद्वनं वनचारिणा ॥३२॥

घर घर अग्नि प्रज्वलित की गई. पक्षियोंके बैठनेके स्थान बनाये. चर्मादि अपने अपने पलंग पर बिछाये ॥२७॥ जहां तहां अपनेघरोंमें जलके घडे उतारती हुई वनको देखती और शाखा पकडकर खैंचती हुई गोपी॥२८॥जवान बूढे सबके हाथ घिरे हुए कुहाडियोंसे वृक्षों और कांटोंको काटते हुए ॥ २९ ॥ उनसे और वनसे व्याप्त हो वह व्रजस्थान बहुत शोभित हुआ. वह मनोहर वनका निवास वनका मूल फल और जल ॥३०॥ वहां वे कामधेनुके समान गऊ और सब पक्षियोंके शब्दोंसे व्याप्त वनमें नन्दनवनके समान गोप वृंदावनमें प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ इससे पहलेही गौओंके हित कर-

नेवाले श्रीकृष्ण विपिनविहारीने कृपादृष्टिकी वृष्टि उस वनपर की थी ॥३२॥ उस वनमें पिछले गरमीके ज्येष्ठ महीनेमें भी तृण ऐसे बढाता था जैसे कि इन्द्र अमृत बढाता है ॥३३॥ वहां बछडे गाय अथवा और कोई भी मनुष्य दुःख नहीं पाते. जहां लोकोंके कल्याणकर्ता श्रीकृष्ण स्थित हैं ॥३४॥ वह गौ घोष और वह किशोर संकर्षण कृष्णके संग प्रसन्न हो निवास करने लगे. भेडियोंके सताये वत्सादिक पूर्ववत् हो गये॥३५॥इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ वैशम्पायन बोले; इस प्रकार जब दोनों वसुदेवपुत्र वृन्दावनमें प्राप्त हुए तब वत्सयूथोंको चराते विचरने

पश्चिमे तु ततो रूक्षे घर्मे मासे निरामये ॥ वर्षतीवामृतं देवे तृणं तत्र व्यवर्द्धत ॥ ३३ ॥ न तत्र वत्सास्सीदन्ति न गावो नेतरे जनाः ॥ यत्र तिष्ठति लोकानां भवाय मधुसूदनः ॥ ३४ ॥ ताश्च गावस्स घोषस्तु स च संकर्षणो युवा ॥ कृष्णेन विहितं वास तमध्यासत निर्वृताः ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृन्दावनप्रवेशो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ वैश-म्पायन उवाच ॥ तौ तु वृन्दावनं प्राप्तौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ चेरतुर्वत्सयूथानि चारयन्तौ सुरूपिणौ ॥ १ ॥ पूर्णस्तु घर्मसमयस्त-योस्तत्र वने सुखम् ॥ क्रीडतोस्सह गोपालैर्यमुनां चावगाहतोः ॥ २ ॥ ततः प्रावृडनुप्राप्ता मनसः कामदीपिनी ॥ प्रववर्षुर्महामे-घाश्शक्रचापाङ्कितोदराः ॥ ३ ॥ बभूवादर्शनस्सूर्यो भूमिश्चादर्शना तृणैः ॥ पतता मेघवातेन नवतोयानुकर्षिणा ॥ ४ ॥ संमार्जित-तला भूमिर्यौवनस्थेव लक्ष्यते ॥ नाशितं जलदैरुष्णं तोषिता वसुधा जलैः ॥ ५ ॥ नववर्षावसिक्तानि शक्रगोपकुलानि च ॥ नष्टदावाग्निधूमानि वनानि प्रचकाशिरे ॥ ६ ॥

लगे ॥१॥ पूर्ण ग्रीष्मकाल था परन्तु उन्हें वनमें बडा सुख था. वे यमुनामें स्नान कर गोपोंके साथ क्रीडा करते करते विचरते थे ॥ २ ॥ तब मनसे कामकी प्रगट करनेवाली वर्षा ऋतु आई. महामेघ वर्षा और इन्द्रधनुष निकला ॥ ३ ॥ सूर्यका अदर्शन हुआ, पृथ्वी तृणोंसे आच्छादित हुई, मेघोंसे नवीन जल गिरता और पवन चलती थी ॥४॥ धुई हुई पृथ्वी युवा हुईसी दीखती थी. मेघोंने उष्णता नाश करदी और जलोंने पृथ्वीको संतुष्ट कर दिया ॥५॥ नवीन वर्षाके कारण वीरवहूटीके समूह दीखने लगे. दावाग्निका धूम नष्ट होकर वन प्रकाशित हुए ॥ ६ ॥

शब्द करनेवाले मोरोंका समय नृत्यमेंही बीतता था,मदसे रक्त उनकी मनोहर वाणी लगती थी ॥ ७ ॥ नवीन वर्षाके समय कान्तिवाले और भौरोंको आहार देनेवाले, यौवनमें स्थित कदम्बोंका शरीर मेघोंसे शोभित हुआ ॥ ८ ॥ कुटज (नीप) के वृक्षोंसे हासित और कदम्बोंसे वह वन सुगन्धित हो गया. (मेघोंने उष्णता नाश कर दी और जलसे पृथ्वीको संतुष्ट कर दिया.) जो कि सूर्यकी किरणसे संतप्त और दवाग्निसे व्याकुल थी ॥ ९ ॥ मेघोंके छोडे हुए जलोंसे पर्वत स्वास लेने लगे. महापवनसे उठे महामेघ गणोंसे अर्पित हुए जलके कारण

नृत्यव्यापारकालश्च मयूराणां कलापिनाम् ॥ मदरक्ताः प्रवृत्ताश्च केकाः पटुरवास्तथा ॥७॥ नवप्रावृषि कान्तानां षट्पदाहारदायिनाम् ॥ यौवनस्थकम्बानां नवाभ्रैर्भ्राजते वपुः ॥८॥ हासितं कुटजैर्वृक्षैः कदम्बैर्वासितं वनम् ॥ (नाशितं जलदैरुष्णं तोषिता वसुधा जलैः) संतप्ता भास्करकरैरभितप्ता दवाग्निभि ॥९॥ जलैर्बलाहकोत्सृष्टैरुच्छ्वसन्तीव पर्वताः ॥ महावातसमुद्धूतं महामेघगणार्पितम् ॥ महीमहाराजपुरैस्तुल्यमापद्यते नभः ॥१०॥ क्वचित्कदम्बहासाढ्य शिलीन्ध्राभरणं क्वचित् ॥ संप्रदीप्तमिवाभाति फुल्लनीपद्रुमं वनम् ॥११॥ ऐन्द्रेण पयसा तिक्तं मारुतेन च विस्तृतम् ॥ पार्थिवं गन्धमाघ्राय लोकः क्षुभितमानसः ॥ १२ ॥ दृप्तसारङ्गनादेन दर्दुरव्याहतेन च ॥ नवैश्च शिखिविक्रुष्टैरवकीर्णा वसुन्धरा ॥१३॥ भ्रमत्तूर्णमहावर्त्ता वर्षप्राप्तमहारयाः ॥ हरन्त्यस्ती रजान्वृक्षान्विस्तारं यान्ति निम्नगाः॥ १४॥संततासारनिर्यत्नः क्लिन्नयत्नोत्तरच्छदाः॥न त्यजन्ति नगाग्राणि श्रान्ता इव पतत्रिणः॥१५

आकाश पृथ्वीके राजपुरोंके समान दीखने लगा ॥ १०॥ कहीं फूला हुआ कदम्बोंका वन, कहीं कदम्बोंसे भरा, कहीं छत्राक (सांपकी छत्री नामक एक छोटासा पेड) से भूषित होकर शोभित होने लगा ॥ ११ ॥ इन्द्र संबन्धि पयसे सींचा पवनसे विस्तृत पार्थिव गन्ध ग्रहण कर लोकोंके मन क्षुभित हो गये ॥१२॥ मत्त भ्रमरकी गन्धिसे और पवन मैंडकोंके शब्दसे और नवीन मोरोंके शब्दसे पृथ्वी व्याप्त हो गई ॥ १३ ॥ भ्रमते हुए वेगसे महाआवर्त्त और महावेगसे किनारेके वृक्षोंको हरण करती विस्तारसे नदी बहने लगी ॥ १४ ॥ निरन्तर वर्षासे वृक्षोंकी शाखासे जडीभूत हो जानेसे

पक्षीभी वृक्षकी शाखाके स्थानोंको त्यागन नहीं करते हैं ॥१५॥ जलपातसे गंभीर, वर्षते और गर्जते हुए मेघोंके बीचमें सूर्य मग्न होता हुआ सा दृष्टिगोचर होता है ॥१६॥ वृक्षोंके मेघोंसे गिर जानेके कारण पृथ्वी ढक गई है. ढूंढनेसे मार्ग मिलता है, कहीं हरी घासकी मालासी प्रतीत होती है॥ १७ ॥ पर्वतके वृक्ष बिजलीसे टूटे हुए स्रोतोंमें आकर नीचे गिरते हैं ॥१८॥ मेघके वर्षनेसे गढोंमें स्थित जलकी शोभा तथा छोटे सरोवरोंके उफने जलसे वनपंक्तियोंकी शोभा हो रही है॥१९॥हाथरूपी सूंडको ऊपर किये, मेघके समान शब्द करनेवाल वनके हाथीं शोभायमान हो रहे हैं. वृष्टिसे

तोयगम्भीरलम्बेषु स्रवत्सु च नदत्सु च ॥ उदरेषु नवाभ्राणां मज्जतीव दिवाकरः ॥ १६ ॥ महीरुहैरुत्पतितैः सलीलोत्पीडसंकुला॥ अन्विष्यमार्गा वसुधा भाति शाड्वलमालिनी ॥१७॥ वज्रेणेवावरुग्णानां नगानां नगशालिनाम् ॥ स्रोतोभिः परिकृत्तानि पतन्ति शिखराण्यधः॥ १८ ॥ पतता मेघवर्षेण यथा निम्नानुसारिणा ॥ पल्वलोत्कीर्णमुक्तेन पूर्यन्ते वनराजयः ॥१९॥ हस्तोच्छ्रितमुखा वन्या मेघनादानुसारिणः ॥ भ्रान्तातिवृष्ट्या मातङ्गा गां गता इव तोयदाः २०॥ प्रावृट्प्रवृत्तिं संदृश्य दृष्ट्वा चाम्बुधरान्घनान् ॥ रौहिणेयो मिथः काले कृष्णं वचनमब्रवीत् ॥२१॥ पश्य कृष्ण घनान् कृष्णान्बलाकोज्ज्वलभूषणान् ॥ गगने तव गात्रस्य वर्णचोरान्त्समुच्छ्रितान् ॥२२॥ तव निद्राकरः कालस्तव गात्रोपमं नभः ॥ त्वमिवाज्ञातवसतिं चन्द्रो वसति वार्षिकीम् ॥ २३ ॥ एतन्नीलाम्बुदश्यामं नीलोत्पलदलप्रभम् ॥ संप्राप्ते दुर्दिने काले दुर्दिनं भाति व नभः ॥ २४ ॥

भ्रान्त होकर आकाशमें स्थित बादलोंकेही समान शोभित होते हैं ॥२०॥ इस प्रकार वर्षाका आगमन और आकाशमें मेघोंको देखकर बलरामजी समयानुसार कृष्णचन्द्रसे बोले ॥ २१ ॥ हे कृष्ण ! बलाकारूपी उज्ज्वल भूषण धारण किये तुम इन काले मेघोंको देखो,यह ऐसे विदित होते हैं मानों इन्होंने तुम्हारा वर्ण चुरा लिया है॥२२॥यह समय आपके शयन करनेका है, यह आकाश आपके शरीरके समान शोभित है, तुम्हारी समान वर्षाके मेघोंमें चन्द्रमा गुप्त हो रहा है ॥२३॥ यह नीलकमलके समान श्याम, नीलकमलके समान कान्तिवान् वर्षासमय आनेसे आकाश मेघसे

॥ २१ ॥

आच्छन्न हो शोभित होता है ॥ २४ ॥ हे कृष्ण! देखो, यह काले मेघोंसे इस गोवर्धन पर्वतकी कैसी शोभा है ॥ २५ ॥ और निरन्तर जलके बरसनेसे सब प्रकार मत्त हुए यह काले भौंरे वनमें प्रसन्न हो विराजमान होते हैं ॥२६॥ यह जलसे प्रसन्न हुए और कोमल तृण तथा कमलके पत्ते पृथ्वीको शोभित कर रहे हैं ॥२७॥ पर्वतके जल मेघोंसे गिरे हुए वनके जल और मनोहर घासादिसे ऐसी शोभा हो रही है कि वनकी सीमा विदित नहीं होती महाशोभा है॥२८॥हे दामोदर!शीघ्रतासे पवनके चलनेसे प्रवासियोंको उत्कंठा करनेवाले मेघ बिजलीके मिलनेसे महाशब्द करते

पश्य कृष्ण जलोदग्रैः कृष्णैरुद्ग्रथितैर्घनैः ॥ गोवर्द्धनो यथा रम्यो भाति गोवर्द्धनो गिरिः ॥ २५ ॥ पतितेनाम्भसा ह्येते समन्तान्मददर्पिताः ॥ भ्राजन्ते कृष्णसारङ्गाः काननेषु मुदान्विताः ॥२६॥ एतान्यम्बुप्रहृष्टानि हरितानि मृदूनि च ॥ तृणानि शतपत्राक्षपत्रगूहन्ति मेदिनीम् ॥२७॥ क्षरज्जलानां शैलानां वनानां जलदागमे ॥ ससस्यानां च सीमानां न लक्ष्मीर्व्यातिरिच्यते ॥ २८ ॥ शीघ्रवातसमुद्धूताः प्रोषितौत्सुक्यकारिणः ॥ दामोदरोद्दामरवाः प्रागल्भ्यं यान्ति तोयदाः ॥ २९ ॥ हरे हर्यश्वचापेन त्रिवर्णेन त्रिविक्रम ॥ विबाणज्येन रचितं तवेदं मध्यम पदम् ॥३०॥ नभस्येष नभश्चक्षुर्न भात्येव चरन्नभः ॥ मेघैश्शातातपकरो विरश्मिरिव रश्मिवान् ॥ ३१ ॥ द्यावापृथिव्योस्संसर्गस्सततं विततैः कृतः ॥ अव्यवच्छिन्नधारौघैस्समुद्रौघसमैर्घनैः ॥ ३२ ॥ नीपार्जुनकदम्बानां पृथिव्यां चातिवृष्टिभि ॥ गन्धैः कोलाहला वान्ति वाता मदनदीपनाः ॥३३॥ संप्रवृत्तमहावर्षं लम्बमानमहाम्बुदम् ॥ भात्यगाधमपर्यन्तं ससागरमिवाम्बरम् ॥ ३४ ॥

हैं ॥ २९ ॥ हे त्रिविक्रम! तीन रंगसे युक्त, विना बाणके ज्यासे रहित, इन्द्रधनुषसे रचित यह आकाश शोभित है ॥ ३० ॥ श्रावणके महीनेमें आकाशका चक्षु सूर्य आकाशमें फिरता हुआ शोभित होता है और किरणोंवाला यह सूर्य मेघोंसे विना किरणोंवाला दीखता है ॥३१॥ और समुद्रके समूहोंके समान मेघोंके निरन्तर वर्षनेसे पृथ्वीका और आकाशका सम्बन्ध विस्तृत हुवा सम्बन्ध युक्त दीखता है॥३२॥बहुत वर्षाके होनेसे नीप अर्जुन कदम्बोंकी गन्धिसे मिलकर कामदेवकी उत्पन्न करनेहारी पवन चल रही है ॥ ३३ ॥ बडे २ लम्बे बादलोंसे महावर्षा प्रवृत्त होती है. सागरके

समान महाआकाश अगाध होकर शोभित हो रहा है ॥ ३४ ॥ धारारूप निर्मल बाण, बिजलीरूप कवच और इन्द्रधनुषरूप आयुध धारे मानो आकाश युद्ध करनेको उद्यत हुआ है ॥ ३५ ॥ पर्वत वन और वृक्षोंके श्रेष्ठ मुख मालूम होते हैं और अतिसघनरूप मेघोंसे पर्वतके शिखर ढके हुए दीखते हैं ॥ ३६ ॥ जल वर्षनेवाले मेघोंने जलरूप हाथियोंका रूप धारण कर शोभा प्रकाश की है, इससे आकाश सागरकी समान हो गया है ॥ ३७ ॥ समुद्रसे उठकर चंचल हुए तृणादिके कंपित करनेवाले शीतल और नन्ही फुहारोंसे युक्त कर्कश पवन चलती है ॥ ३८ ॥ रात्रीमें चन्द्रमाके बादलोंमें छिपने और मेघोंके पानी वर्षने और सूर्यकेभी छिपनेके कारण दशों दिशा नहीं लक्षित होतीं ॥ ३९ ॥ वायुसे पूरित हुए चर्मकोशकी समान मेघोंके

धारानिर्मलनाराचं विद्युत्कवचवर्मिणम् ॥ शक्रचापायुधधरं युद्धसज्जमिवाम्बरम् ॥३५॥ शैलानां च वनानां च द्रुमाणां च वराननम् ॥ प्रतिच्छन्नानि भासन्ते शिखराणि घनैर्घनैः ॥ ३६ ॥ गजानीकैरिवाकीर्णं सलिलोद्गारिभिर्घनैः ॥ वर्णसारूप्यतां याति गगनं सागरस्य च ॥ ३७ ॥ समुद्रोद्भूतजनिता लोलाश्शाद्वलकम्पिनः ॥ शीतास्सपृषतोद्दामाः कर्कशा वान्ति मारुताः ॥ ३८ ॥ निशासु सुप्तचन्द्रासु मुक्ततोयासु तोयदैः ॥ मग्नसूर्यस्य नभसो न विभान्ति दिशो दश ॥ ३९ ॥ चेतनं पुष्करं कोशैः क्षुधाध्मातैः समन्ततः ॥ घृष्णीनां न रम्याणां विवेकं यान्ति कृष्टयः ॥४०॥ घर्मदोषपरित्यक्तं मेघतोयविभूषितम् ॥ पश्य वृन्दावनं कृष्ण वनं चैत्ररथं यथा ॥४१॥ एवं प्रावृड्गुणान्सर्वान् श्रीमान्कृष्णस्य पूर्वजः ॥ कथयन्नेव बलवान्व्रजमेव जगाम ह ॥ ४२ ॥ अन्योऽन्यं रममाणौ तु कृष्णसंकर्षणावुभौ ॥ तत्कालज्ञातिभिस्सार्द्धं चेरतुस्तद्वनं महत् ॥ ४३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रावृड्वर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

चारों ओर विचरनेसे आकाश चेतनकी समान लक्षित होता है. प्रजाको दिनरातका भेद विदित नहीं होता, किन्तु अनुमानसे जानते हैं ॥ ४० ॥ हे कृष्ण! देखो, यह वृन्दावन चैत्ररथ वनकी समान शोभित होता है ॥ ४१ ॥ इस ग्रीष्मके दोषसे हीन, मेघके जलसे युक्त और शोभित प्रकारसे बलरामजी वर्षाकालके गुण श्रीकृष्णसे कहते हुए अपने घरको पधारे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण और संकर्षण विहार करते हुए उस समयके जात भाइयोंके सहित वनमें विचरने लगे ॥ ४३ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वैशंपायन बोले; एक समय कामरूप श्रेष्ठ मुखवाले श्रीकृष्ण बलरामके विना उस वनमें विचरते थे ॥ १ ॥ काकपक्षधारी, श्रीमान्, श्यामकमलकी समान नेत्र, हृदय श्रीवत्ससे शोभित चन्द्रमाकी समान मुखसे शोभित ॥ २ ॥ बाजूबंदयुक्त कमलकी कांतिवाले हाथ तथा सुकुमारतासे लाल चरणपंकजसे विचरते ॥ ३ ॥ पीले तथा मनुष्योंको प्रसन्न करनेवाले कमलपरागकान्तिसंयुक्त, महान् वस्त्र पहरे, संध्याकालके मेघकी समान प्रकाशमान ॥ ४ ॥ बछडोंके बन्धनादिमें युक्त दंड और रज्जूसे व्यग्र, देवताओंसे पूजित, मनोहर पीन भुजाओंसे लक्षित ॥ ५ ॥ पुंडरीक कमलकी समान और कमलकी सुगन्धिकी समान बालकअवस्थाके सुन्दर होठोंसहित श्रीकृष्णका मुख अत्यन्त शोभित हुआ ॥ ६ ॥ बालोंके मुखपर बिखरनेसे अधिक शोभा हुई. जिस प्रकार भ्रमरों-

वैशम्पायन उवाच ॥ कदाचित्तु तदा कृष्णो विना संकर्षणेन वै ॥ चचार तद्वनं रम्यं कामरूपी वराननः ॥ १ ॥ काकपक्षधरः श्रीमान् श्यामः पद्मदलेक्षणः ॥ श्रीवत्सेनोरसा युक्तश्शशाङ्क इव लक्ष्मणा ॥ २ ॥ साङ्गदेनाग्रहस्तेन पङ्कजोद्भिन्नवर्चसा ॥ सुकुमाराभिताम्रेण क्रान्तविक्रान्तगामिना ॥ ३ ॥ पीते प्रीतिकरे नृणां पद्मकिञ्जल्कसप्रभे ॥ सूक्ष्मे वसानो वसने ससंध्य इव तोयदः ॥ ४ ॥ वत्सव्यापारयुक्ताभ्यां व्यग्राभ्यां दण्डरज्जुभिः ॥ भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पूजिताभ्यां दिवौकसैः ॥ ५ ॥ सदृशं पुण्डरीकस्य गन्धेन कमलस्य च ॥ रराज चास्य तद्बाल्ये रुचिरौष्टपुटं मुखम् ॥ ६ ॥ शिखाभिस्तस्य मुक्ताभी रराज मुखपङ्कजम् ॥ वृतं षट्पदपङ्क्ताभिर्यथा स्यात्पद्ममण्डलम् ॥ ७ ॥ तस्यार्जुनकदम्बाढ्या नीपकन्दलमालिनी ॥ रराज माला शिरसि नक्षत्राणां यथा दिवि ॥ ८ ॥ स तया मालया वीरश्शुशुभे कण्ठसक्तया ॥ मेघमालाम्बुदश्यामो नभस्य इव मूर्त्तिमान् ॥ ९ ॥ एकेनामलपत्रेण कण्ठसूत्रावलम्बिना ॥ रराज बर्हिपत्रेण मन्दमारुतकम्पिना ॥ १० ॥ क्वचिद्गायन्क्वचित्क्रीडंश्चञ्चुर्यंश्च क्वचित्क्वचित् ॥ पर्णवाद्यं श्रुतिसुखं वादयंश्च क्वचिद्वने ॥ ११ ॥

से व्याप्त कमल होता है ॥ ७ ॥ उनके शिरपर अर्जुन, कदम्ब, नीपके अंकुर और फूलोंकी माला स्वर्गमें तारागणोंके समान शोभित हुई ॥ ८ ॥ कंठमें पहरी हुई मालासे वह वीर अधिक शोभित हुए. मानों मेघमालासे युक्त भादोंका महीना शोभित है ॥ ९ ॥ गलेमें सूत्रके हार पडे हुए निर्मल मोर पंखसे जो पवनसे चलायमान होता है वह अधिक शोभित हुए ॥ १० ॥ कहीं गाते, कहीं क्रीडा करते, कहीं कूदते, कहीं कानोंको मनोहर पत्तोंके पपइये बनाकर बजाते ॥ ११ ॥

कभी मधुर गोपवेणुको इच्छासे बजाते, कहीं गौओंकी प्रसन्नताके निमित्त वनमें युवारूपसे बांसुरी बजाते ॥ १२ ॥ गोकुलमें मेघकी समान कांतिमान् प्रभु विचरने लगे और बडी मनोहर वनपंक्तियोंमें विहार करने लगे ॥ १३ ॥ मोरोंके शब्दोंसे पूर्ण, कामके उद्दीपन करनेहारी, मेघोंके नादकी समान चारों ओर शब्दायमान ॥ १४ ॥ हरित तृणोंसे छिन्नमार्ग मोरोंके आभरणयुक्त, नवीन अंकुर नवीन दलोंमें नवीन जल वहानेवाली ॥ १५ ॥ केशरोंकी नवीन गंध मदके निश्वासकी उपमासे मानो स्त्रियें निरन्तर श्वास ले रही हैं ॥ १६ ॥ नई पवनसे सेव्यमान जो कि वृक्षोंसे प्रादुर्भूत हुई ऐसी वनरा-

गोपवेणुं सुमधुरं कामात्तमपि वादयन् ॥ प्रह्लादनार्थं च गवां क्वचिद्वनगतो युवा ॥ १२ ॥ गोकुलेऽम्बुधरश्यामश्चचार द्युतिमान्प्रभुः ॥
रेमे च तत्र रम्यासु चित्रासु वनराजिषु ॥ १३ ॥ मयूररवघुष्टासु मदनोद्दीपनीषु च ॥ मेघनादप्रतिव्यूहैर्नादितासु समन्ततः ॥१४॥
शाद्वलच्छन्नमार्गासु शिलीन्ध्राभरणासु च ॥ कन्दलामलपत्रासु स्रवन्तीषु नवं जलम् ॥१५ ॥ केसराणां नवैर्गन्धैर्मदानिःश्वसितोपमैः ॥
आभीक्ष्णं निश्श्वसन्तीषु कामिनीष्विव नित्यशः ॥ १६ ॥ सेव्यमानो नवैर्वातैर्द्रुमसंघातनिस्सृतैः ॥ तासु कृष्णो मुदं लेभे सौम्यासु
वनराजिषु ॥ १७ ॥ स कदाचिद्वने तस्मिन्गोभिस्सह परिभ्रमन् ॥ ददर्श विपुलोदग्रं शाखिनं शाखिनां वरम् ॥१८ ॥ स्थितं धरण्यां
मेघाभं निबिडं दलसंचयैः ॥ गगनार्धोच्छ्रिताकारं पर्वताभोगधारिणम् ॥ १९ ॥ नीलचित्राङ्गवर्णैश्च सेवितं बहुभिः खगैः ॥ फलैः
बालैश्च घनैस्सेन्द्रचापघनोपमम् ॥ २० ॥ भवनाकारविटपं लतापुष्पसुमंडितम् ॥ विशालमूलावनतं पवनाम्भोदधारिणम् ॥ २१ ॥
आधिपत्यमिवान्येषां तस्य देशस्य शाखिनाम् ॥ कुर्वाणं शुभकर्माणं निरावर्षमनातपम् ॥ २२ ॥

जियोंमें विचरते कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ किसी समय वह उस वनमें गौओंके सहित भ्रमण करते हुए एक बडे आकाशतक शाखावाले वृक्षको देखने लगे ॥ १८ ॥ जो घने पत्तोंके समूहसे पृथ्वीमें मेघोंके समान स्थित था, आधे भागमें आकाशमें ऊंचा, पवनसे हिलता हुआ पर्वतकी समान शरीर धारे ॥ १९ ॥ नील चित्र अंगवाले अनेक प्रकारके पक्षियोंसे सेवित और घने फल और अंकुरोंसे इन्द्रधनुष और मेघकी समान ॥ २० ॥ घरकेसे आकारवाले उस वृक्षको जो लता और फूलोंसे मंडित तथा विशाल मूलसे अवनत, पवन और मेघके धारण करनेवाले ॥ २१ ॥ उस देशके और

॥ २३ ॥

वृक्षोंका मानों राजा अच्छे कर्मका कर्ता,वर्षा और धूपसे रहित ॥२२॥ पर्वतके अग्रभागसमान भांडीर नाम न्यग्रोध (वट) को देखकर श्रीकृष्णने उसके नीचे जानेकी इच्छा की। ॥२३॥ हे पापरहित! वह श्रीकृष्ण अपने साथी ग्वालोंके साथ स्वर्गमें प्राप्त हुएके समान उसके नीचे क्रीडा करने लगे॥२४॥भांडीर वृक्षके नीचे क्रीडा करते हुए कृष्णको गोपाल अनेक प्रकारकी वन क्रीडासे प्रसन्न करने लगे ॥ २५ ॥ कोई गोप प्रसन्न होकर गाने लगे,कोई रतिप्रिय कृष्णकी प्रशंसा करने लगे॥२६॥उनके गानको सुनकर महावीर्यवान् कृष्णने अपने पपये बजानेके उपरान्त बासुरीबजाई और

न्यग्रोधं पर्वताग्राभं भाण्डीरं नाम नामतः ॥ दृष्ट्वा तत्र मतिं चक्रे निवासाय ततः प्रभुः ॥ २३ ॥ स तत्र वयसा तुल्यैर्वत्सपालैस्सहानघ ॥ रेमे वै वासरं कृष्णः पुरा स्वर्गगतो यथा ॥२४॥ तं क्रीडमानं गोपालाः कृष्णं भाण्डरीरवासिनम् ॥ रमयन्ति स्म बहवो वन्यैः क्रीडनकैस्तदा ॥ २५ ॥ अन्ये स्म परिगायन्ति गोपा मुदितमानसाः ॥ गोपालाः कृष्णमेवान्ये गायन्ति स्म रतिप्रियाः ॥२६॥ तेषां स गायतामेव वादयामास वीर्यवान् ॥ पणवाद्यान्तरे वेणुं तुम्बीवीणां च तत्र ह ॥ २७ ॥ कदाचिच्चारयन्नेव गास्स गोवृषभेक्षणः ॥ जगाम यमुनातीरं लतालंकृतपादपम् ॥ २८ ॥ तरङ्गापाङ्गकुटिलां वारिस्पर्शसुखानिलाम् ॥ तां च पद्मोत्पलवतीं ददर्श यमुनां नदीम्॥२९॥सुतीर्थां स्वादुसलिलां ह्रादिनीं वेगगामिनीम् ॥ तोयवातोद्धतैर्वेगैरवनामितपादपाम्॥३०॥ हंसकारण्डवोद्घुष्टां सारसैश्च निनादिताम् ॥ अन्यैर्मिथुनैश्चैव सेवितां मिथुनेचरैः ॥ ३१ ॥ जलजैः प्राणिभिः कीर्णां जलजभूषितां गुणैः ॥ जलजैः कुसुमैश्चित्रां जलजैर्हरितोदकाम् ॥ ३२ ॥

तुंबी वीणा बजाई॥२७॥पीछे किसी समय गौओं और बैलोंको चराते, ताल और वृक्षोंसे संकुल यमुनाके किनारे गये॥२८॥जो यमुना तरंगरूपी कटाक्षोंसे कुटिल वारिक स्पर्शसे सुखदायक पवन वहानेहारी है;जिसमें कमल खिल रहे हैं.ऐसी यमुना नदीको श्रीकृष्णने देखा॥२९॥तीर्थरूप स्वादिष्ठ जलवाली, ह्रदसंयुक्त, वेगसे गमन करनेहारी,जंल और पवनके वेगसे किनारेके वृक्षोंको झुलानेवाली ॥३०॥ हंस कारंडवसे संयुक्त,सारसोंसे शब्दायमान, परस्पर मिथुनीभावको प्राप्त हुए प्राणियोंसे सेवित ॥३१॥ जलके प्राणियोंसे सयुंक्त; जलके उत्पन्न हुए शीतलादि गुणोंसे भूषित तथा

जलके फूलों (कमलों) से चित्रित और शैवालसे हरे जलवाली ॥३२॥ स्रोतरूपी चरण, तटरूप श्रोणीमंडल, आवर्तरूप नाभिसे गंभीर, कमलरूपी रोमसे शोभित ॥३३॥ तटके छेद अर्थात् प्रवाहके मध्य कृश, कटिरूप मनोहर तरंगरूपी त्रिवलि धारण करनेहारी, फेनरूपी प्रसन्न मुख और प्रसन्न हंसरूप हास्यवाली ॥३४॥ रुचिर लाल कमलकी समान लाल होठवाली, कमलरूपी टेढी भृकुटी और दृष्टिवाली, ह्रदरूपी दीर्घमस्तकवाली, मनोहर सेवालरूपी बालोंवाली ॥ ३५ ॥ चक्रवाकरूपी स्तनवाली, तीरके विस्ताररूप पार्श्वभागवाली, दीर्घ स्रोतरूपी भुजा, आभोगरूपी श्रवण ॥३६॥

प्रसृतस्रोतचरणां पुलिनश्रोणिमण्डलाम् ॥ आवर्त्तनाभिगम्भीरां पद्मरोमानुरञ्जिताम् ॥३३॥ तटच्छेदोदरां कान्तां त्रितरङ्गवलीधराम् ॥ फेनप्रहृष्टवदनां प्रसन्नां हंसहासिनीम् ॥३४॥ रुचिरोत्पलरक्तोष्ठीं नतभ्रूं जलजेक्षणाम् ॥ ह्रददीर्घललाटान्तां कान्तां शैवलमूर्द्धजाम् ॥ ३५ ॥ चक्रवाकस्तनतटीं तीरपार्श्वायताननाम् ॥ दीर्घस्रोतायतभुजामाभोगश्रवणायताम् ॥ ३६ ॥ कारण्डवाकुण्डलिनीं श्रीमत्पङ्कजलोचनाम् ॥ तटजाभरणोपेतां मीननिर्मलमेखलाम् ॥३७॥ वारिप्लवप्लवक्षौमां सारसारावनूपुराम् ॥काशचामीकरं वासो वासानां हंसलक्षणाम् ॥३८॥ भीमनक्रानुलिप्ताङ्गीं कूर्मलक्षणभूषिताम् ॥ निपानश्वापदापीडां नृभिः पीनपयोधराम् ॥३९॥ श्वापदोच्छिष्टसलिलामाश्रमस्थानसंकुलाम् ॥ तां समुद्रस्य महिषीमीक्षमाणस्समन्ततः ॥ ४० ॥ चचार रुचिरं कृष्णो यमुनामुपशोभयन् ॥ तां चरन्स नदीं श्रेष्ठां ददर्श ह्रदमुत्तमम् ॥ ४१ ॥

॥ २४ ॥

कारंडवरूपी कुंडल, कमलरूपी नेत्र, तटके वृक्षादिरूप गहने और मीनरूप निर्मल मेखला (कौंधनी) ॥३७॥ जलके कमल पत्र वा शैवालरूप अतसी सूत्रके वस्त्र धारे, सारसोंके शब्दरूपी नूपुर धारण किये, प्रकाशरूपी सुनहरी वस्त्र और हसोंके लक्षणवाली ॥ ३८ ॥ भयंकर नाकोंसे अनुलिप्त अंगवाली, कूर्म लक्षणसे शोभित, श्वापद आदि जन्तुओंके जल पीनेके स्थान और मनुष्योंसे जलपानके द्वारा पीन पयोधरवाली ॥३९॥ श्वापद जीवोंके उच्छिष्ट जलवाली, आश्रमके स्थानसे संकुल उस समुद्रकी महिषी यमुनाको सब ओरसे देखते हुए॥४०॥ यमुनाको शोभित करते श्रीकृष्ण विचरनेलगे. वहां

फिरते हुए उन्होंने एक श्रेष्ठ ह्रद देखा॥४१॥दीर्घ योजनपर्यन्त विस्तारवाली देवताओंकोभी दुस्तर गंभीर और क्षोभरहित जल निष्कंप सागरके समान पूर्ण ॥ ४२ ॥ जलमें रहनेहारे जीव और जलपक्षियोंसे त्यागी हुई, मेघ पूण आकाशके समान अगाध जलसे पूर्ण ॥४३॥ कठिनतासे जिसके तट-पर पहुंचा जाय,सर्पोंके बिलोंसे पूर्ण और विषाग्निके धूमसे व्याप्त ॥ ४४ ॥ इसी कारण पशुओंको अभोग्य और जल पीने वालाको अपेय, स्नानकी इच्छावाले देवताओंने भी जिसका उपभोग त्याग दिया है॥४५॥आकाशगामी खगभी जिसके ऊपर होकर नहीं उडते,तृणोंपरभी उसका जल गिर

दीर्घं योजनविस्तारं दुस्तरं त्रिदशैरपि ॥ गम्भीरमक्षोभ्यजलं निष्कम्पमिव सागरम्॥ ४२ ॥ तोयजैः श्वापदैस्त्यक्तं शून्यं तोयचरैः खगः ॥ अगाधेनाम्भसा पूर्णं मेघपूर्णमिवाम्बरम् ॥ ४३ ॥ दुःखोपसर्प्यं तीरेषु ससर्पैर्विपुलैर्बिलैः ॥ विषारणिभवस्याग्नेर्धूमेन परिवेष्टितम् ॥ ४४ ॥ अभोग्य तत्पशूनां हि अपेयं च जलार्थिनाम् ॥ उपभोगैः परित्यक्तं सुरैस्त्रिषवणार्थिभिः ॥ ४५ ॥ आकाशादप्यसंचार्यं खगैराकाशगोचरैः ॥ तृणेष्वपि पतत्स्वप्सु ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ ४६ ॥ समन्ताद्योजनं साग्रं देवैरपि दुरासदम् ॥ विषानलेन घोरेण ज्वालाप्रज्वलितद्रुमम् ॥ ४७ ॥ व्रजस्योत्तरतस्तस्य क्रोशमात्रे निरामये ॥ तं दृष्ट्वा चिन्तयामास कृष्णो वै विपुलं ह्रदम् ॥ ४८ ॥ अगाध द्योतमानं च कस्यायं महतो ह्रदः ॥ अस्मिन्स कालियो नाम कालाञ्जनचयोपमः ॥ ४९ ॥ उरगाधिपतिस्साक्षाद्ध्रदे वसति दारुणः ॥ उत्सृज्य सागरावासं यो मया विदितः पुरा ॥ ५० ॥ भयात्पतगराजस्य सुपर्णस्योरगाशिनः ॥ तेनेयं दूषिता सर्वा यमुना सागरंगमा ॥ ५१ ॥

जानेसे वे जल जाते हैं ॥ ४६ ॥ चारों तरफ एक योजन पर्यन्त देवताओंको भी अगम्य, उसकी घोर विषाग्निसे उसके तटके वृक्षभी भस्म हो गये थे ॥४७॥ व्रजके उत्तरकी ओर एक कोशतक तो श्रेष्ठ जल है. आगे वह स्थान प्रारम्भ होता है, इस प्रकार उस महाह्रदको देखकर श्रीकृष्ण विचार करने लगे॥४८॥कि यह महागम्भीर और प्रकाशमान किसका ह्रद है; कदाचित् काले पर्वतके समान काली नाग ॥४९॥ साक्षात् सर्पोंका राजा इसमें निवास करता है. सागरका रहना उसने छोड दिया है. मैं इसे पहलेसे जानता हूं॥ ५० ॥ सर्पके भक्षण करनेवाले गरुडके भयसे यहां आकर

सागरगामिनी इस यमुनाको इसने सब प्रकारसे दूषित कर दिया है ॥५१॥ गरुडके डरसे यहां रहता है कारण कि गरुडको यह स्थान अगम्य है सो इस दारुण आकारवाले वन और तृणोंसे युक्त ॥५२॥ वृक्ष और लतासे पूर्ण, सर्पराजके श्रेष्ठ मंत्रियोंसे व्याप्त ॥ ५३ ॥ निर्विषयके आकार यह वन विष मिले अन्नके समान स्पर्शके अयोग्य हो रहा है और उसके मंत्री सर्पादि इसकी रक्षा करते हैं ॥ ५४ ॥ शैवाल नलिनीसे युक्त छोटी लताओंसे कीर्ण वृक्षोंसे इसके दोनों किनारे प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ५५ ॥ सो सर्पराजको यहांसे निकालना चाहिये; जिससे यमुना निर्मल जलसे युक्त हो

भयात्तस्योरगपतेर्नायं देशो निषेव्यते ॥ तदिदं दारुणाकारमरण्यं रूढशाड्वलम् ॥५२॥ सावरोहद्रुमं घोरं कीर्णं नानालताद्रुमैः ॥ रक्षितं सर्प्पराजस्य सचिवैराप्तकारिभिः ॥ ५३ ॥ वनं निर्विषयाकारं विषान्नमिव दुस्स्पृशम् ॥ तैराप्तकारिभिर्न्नित्यं सर्वतः परिरक्षितम् ॥ ५४ ॥ शैवालनलिनैश्चापि वृक्षः क्षुद्रलताकुलैः ॥ कर्त्तव्यमार्गौ भ्राजेते ह्रदस्यास्य तदावुभौ ॥ ५५ ॥ तदस्य सर्पराजस्य कर्त्तव्यो निग्रहो मया ॥ यथेयं सरिदम्भोदा भवेच्छिवजलाशया ॥ ५६ ॥ व्रजोपभोग्या च यथा नागे च दमिते मया ॥ सर्वत्र सुखसंचारा सर्वतीर्थसुखाश्रया ॥ ५७ ॥ एतदर्थं च वासोऽयं व्रजेऽस्मिन्गोपजन्म च ॥ अमीषामुत्पथस्थानां निग्रहार्थं दुरात्मनाम् ॥५८॥ एनं कदम्बमारुह्य तदेव शिशुलीलया ॥ विनिपत्य ह्रदे घोरे दमयिष्यामि कालियम् ॥५९॥ (एवं कृते बाहुवीर्यं लोके ख्यातिं गमिष्यति)॥६०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बालचरिते यमुनावर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

जाय॥५६॥मेरे द्वारा इस नागका दमन होनेसे व्रजके भोगके योग्य सब तीर्थके सुखकी आश्रयवाली और सर्वत्र संचारवाली यमुना हो जायगी॥५७॥ इसीके निमित्त मेरा यहां वसना और इस व्रजमें गोपजन्म लेना है कि मैं ऐसे दुरात्मा कुमार्ग करनेवालेका दमन करूं ॥५८॥ सो बाललीलाहीसे इस कदम्बके वृक्षपर चढकर घोर ह्रदमें कूदकर कालीको दमन करूं ॥ ५९ ॥ ऐसा करनेसे लोकमें बाहुवीर्यकी विख्यातता होगी ॥ ६० ॥ इति श्रीमत्पद० पडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतौ हरिवंशार्थप्रकाशे विष्णुपर्वणि भाषायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

वैशंपायन बोले; ऐसा विचार श्रीकृष्ण नदीके किनारे जाय दृढ कमर बांध प्रसन्नतापूर्वक चपलतासे कदम्बपर चढे ॥१॥ तब कदम्बके ऊपरसे मेघकी समान लम्बमान हो वह कमलनेत्र ह्रदमें कूद पडे और कूदनेका बडा शब्द हुआ ॥ २ ॥ जिस समय कृष्णने कूदकर यमुनाका जल क्षुभित किया, तब वह चंचल वेगसे बादलके समान फटन लगा ॥ ३ ॥ इसी शब्दसे सर्पका भवनभी क्षुभित हुआ, तब क्रोधसे लाल नेत्र कर वह सप ह्रदसे उठा ॥ ४ ॥ मेघसमूहकी समान कान्तिवाला वह सर्पराज क्रोधकर लालनेत्र किये काली दीखा ॥ ५ ॥ पांच मुख अग्निकी समान श्वास अग्निरूपसे मुखमें चलाय-

वैशम्पायन उवाच ॥ सोपसृत्य नदीतीरं बद्ध्वा परिकरं दृढम् ॥ आरोहच्चपलः कृष्णः कदम्बशिखरं मुदा॥१॥ कृष्णः कदम्ब-शिखराल्लम्बमानो घनाकृतिः ह्रदमध्येऽकरोच्छब्दं निपतन्नम्बुजेक्षणः ॥ २ ॥ कृष्णेन तत्र पतता क्षुभितो यमुनाह्रदः ॥ संप्राषिच्यत वेगेन भिद्यमान इवाम्बुदः ॥३॥ तेन शब्देन संक्षुब्धं सर्पस्य भवनं महत् ॥ उदतिष्ठज्जलात्सर्पो रोषपर्याकुलेक्षणः ॥ ४ ॥ स चोरगपतिः क्रुद्धो मेघराशिसमप्रभः ॥ ततो रक्तान्तनयनः कालियस्समदृश्यत॥५॥ पञ्चास्यः पावकोच्छ्वासश्चलज्जिह्वोऽनलाननः ॥ पृथुभिः पञ्चभिर्घोरैः शिरोभिः परिवारितः ॥ ६ ॥ पूरयित्वा ह्रदं सव भोगेनानलवर्चसा स्फुरन्निव च रोषेण ज्वलन्निव च तेजसा ॥ ७ ॥ क्रोधेन ज्वलतस्तस्य जलं शृतमिवाभवत् ॥ प्रतिस्रोताश्च भीतेव जगाम यमुना नदी ॥८॥ तस्य क्रोधाग्निपूर्णेभ्यो वक्त्रेभ्योऽभूच्च मारुतः ॥ दृष्ट्वा कृष्णं ह्रदगतं क्रीडन्तं शिशुलीलया ॥ ९ ॥ सधूमाः पन्नगेन्द्रस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥ सृजता तेन रोषाग्निं समीपे तीरजा द्रुमाः ॥ १० ॥

मान जिह्वा और बडे२ अपने पांच शिरोंसे युक्त ॥ ६ ॥ अग्निकी समान तेजवाले शरीरसे सम्पूर्ण ह्रदको पूर्ण करके क्रोधसे स्फुरायमान तेजसे प्रज्व-लित ॥ ७ ॥ और उसकी क्रोधकी ज्वालासे वह जल औटने लगा. यमुना नदी अपने प्रत्येक स्रोतसे डरती हुईसी विदित होने लगी ॥ ८ ॥ उसके क्रोधाग्निसे पूर्ण मुखोंसे पवन करन लगी और ह्रदमें कूदे बाललीलासे क्रीडा करते कृष्णको देख ॥ ९ ॥ धूमसहित उस सर्पराजके मुखसे अग्निकी ज्वाला

निकलने लगी और इसी क्रोधसे उत्पन्न हुई अग्निसे ह्रदके किनारेके वृक्ष ॥ १० ॥ युगांत अग्निकी समान क्षणमात्रमें भस्म हो गये. उसके पुत्र, स्त्री और दूसरे सेवक सर्प ॥११॥ मुखोंसे विषकी अग्नि उगलने लगे और वे महातेजस्वी सर्प धूमसहित अग्निवाले श्रीकृष्णके चारों ओर टूट पडे॥१२॥ इस प्रकार इन सर्पोंसे श्रीकृष्ण भोग बन्धनमें प्रवेशित किये परन्तु श्रीकृष्ण अचल भावसे उनके मध्यमें स्थित रहे, जैसे पर्वत अचल रहता है॥१३॥ तब वह कालिया अपने दांतोंसे श्रीकृष्णको काटने लगा और विषके जलसे पीडा देने लगा, परन्तु वे सर्पपति वीर्यवान् श्रीकृष्णको मारनेमें न समर्थ

क्षणेन भस्मसान्नीता युगान्तप्रतिमेन वै ॥ तस्य पुत्राश्च दाराश्च भृत्याश्चान्ये महोरगाः ॥११॥ वमन्तः पावकं घोरं वक्त्रेभ्यो विषसंभवम् ॥ सधूमं पन्नगेन्द्रास्ते निपेतुरमितौजसः॥१२॥प्रवेशितश्च तैस्सर्पैस्स कृष्णो भोगबन्धनम्॥निर्यत्नचरणाकारस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १३ ॥ आदशन्दशनैस्तीक्ष्णैर्विषोत्पीडजलाविलैः ॥ ते कृष्णं सर्पपतयो न ममार च वीर्यवान् ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे भीता गोपालास्सर्व एव ते ॥ क्रन्दमाना व्रजं जग्मुर्बाष्पगद्गदया गिरा ॥१५॥ गोपा ऊचुः ॥ एष मोहं गतः कृष्णो मग्नो वै कालिये ह्रदे ॥ भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छत माचिरम् ॥ १६ ॥ नन्दगोपाय वै क्षिप्रं सबलाय निवेद्यताम् ॥ एष ते कृष्यते कृष्यः सर्पेणेति महाह्रदे ॥१७॥ नन्दगोपस्तु तच्छ्रुत्वा वज्रपातोपमं वचः ॥ आर्त्तः स्खलितविक्रान्तस्तं जगाम ह्रदोत्तमम् ॥१८॥ सबालयुवतीवृद्धस्स च संकर्षणो युवा ॥ आक्रीडं पन्नगेन्द्रस्य जलस्थं समुपागमत् ॥ १९ ॥ नन्दगोपमुखा गोपास्ते सर्वे साश्रुलोचनाः ॥ हाहाकारं प्रकुर्वन्तस्तस्थुस्तीरे ह्रदस्य वै ॥ २० ॥

॥ २६ ॥

हुए॥ १४॥इसी समयमें सब गोपाल भीत होकर रोते गदगद कंठसे व्रजमें गये ॥ १५ ॥ गोप बोले; यह श्रीकृष्ण कालीय ह्रदमें प्राप्त होकर काली ह्रदमें डूबते हैं और सर्पराज उनको भक्षण जबतक न कर ले तबतक शीघ्र जाओ ॥ १६ ॥इसप्रकार बलसहित जब नन्द गोपको कहा कि यह श्रीकृष्णको काला नाग ह्रदमें आकर्षित करता है ॥ १७ ॥ गोपगण यह वज्रपातकी समान वचन श्रवण कर आर्त और व्याकुल होकर उस ह्रदके तट-पर गये॥ १८॥बाल युवती वृद्ध और वह कुमार संकर्षण पन्नगेन्द्रके क्रीडाके स्थान उस ह्रदपर आनकर प्राप्त हुए ॥१९॥ नन्दगोपादि सबके नेत्रोंमें

जल भर आये और उस ह्रदके किनारे हाहा करते स्थित हुए ॥ २० ॥ लज्जित विस्मित और वारंवार शोकार्त होकर कोई पुत्र, हाहा, कोई धिक् ऐसा कहने लगे ॥ २१ ॥ कोई हाय हम मरे, ऐसा कहकर रुदन करने लगे और यशोदासहित सब स्त्री हाहाकार कर रुदन करने लगीं ॥ २२ ॥ कारण कि वह सर्पराजके वश हुए उस अपने प्रिय पुत्रको देखने लगीं कि पुत्र कुछ धैर्यसे चलायमान है ॥ २३ ॥ हे यशोदे ! हमें तुम्हारा ह्रदय पत्थरसेभी कठिन दीखता है. तू ऐसी अवस्थामें पुत्रको देख क्यों नहीं विदीर्ण होती ॥ २४ ॥ हम ह्रदके समीप नन्दगोपको महादुःखी देखती हैं, कारण

व्रीडिता विस्मिताश्चैव शोकार्ताश्च पुनः पुनः ॥ केचित्तु पुत्र हाहेति हा धिगित्यपरे पुनः ॥ २१ ॥ अपरे हा हतास्स्मेति रुरुदुर्भृशदुःखिताः ॥ स्त्रियश्चैव यशोदां तां हा हतासीति चुक्रुशुः ॥ २२ ॥ या पश्यसि प्रियं पुत्रं सर्पराजवशंगतम् ॥ स्पन्दितं सर्पभोगेन कृष्यमाण यथा मृतम् ॥ २३ ॥ अश्मसारमयं नूनं ह्रदयं ते विलक्ष्यते ॥ पुत्रं कथमिमं दृष्ट्वा यशोदे नावदीर्यसे ॥ २४ ॥ दुःखितं वत पश्यामो नन्दगोपं ह्रदान्तिके ॥ न्यस्य पुत्रमुखे दृष्टिं निश्चेतनमवस्थितम् ॥ २५ ॥ यशोदामनुगच्छन्त्यस्सर्पावासमिमं ह्रदम् ॥ प्रविशामो न यास्यामो विना दामोदरं व्रजम् ॥ २६ ॥ दिवसः को विना सूर्यं विना चन्द्रेण का निशा ॥ विना वृषेण का गावो विना कृष्णेन को व्रजः ॥ २७ ॥ विना कृष्णं न यास्यामो विवत्सा इव धेनवः ॥ तासां विलपितं श्रुत्वा तेषां च व्रजवासिनाम् ॥ विलापं नन्दगोपस्य यशोदारुदितं तथा ॥ २८ ॥

कि वे पुत्रमुखमें दृष्टि लगाय अचेतनकी समान स्थित हो रहे हैं ॥ २५ ॥ इस प्रकार वे गोपी कहती यशोदाके पीछे ह्रदके समीप गमन करने लगीं और कहने लगीं हम इस दहमें प्रवेश कर जायँगी और विना कृष्णके व्रजमें नहीं जायँगी ॥ २६ ॥ सूर्यके विना दिन क्या और चंद्रमाके विना रात्री क्या, बैलके विना गौ और कृष्णके विना व्रज किस कामका है ॥ २७ ॥ बछडे रहित गौकी समान विना कृष्णके हम व्रजमें नहीं जायँगी. उन व्रजवनिताओंके इस प्रकार विलाप सुनकर और व्रजवासियोंको दुःखी देखकर नन्दगोपका विलाप और यशोदाका रुदन सुन ॥ २८ ॥

एकभाव और शरीरके जाननेवाले एकही देहके दो भाग किये हुए बलरामजी क्रुद्ध हो अविनाशी कृष्णसे बोले ॥२९॥ हे महाबाहो कृष्ण ! गोपोंके आनंदके बढानेहारे, विषआयुधवाले,इस सर्पराजको शीघ्र दमन करो ॥३०॥ हे तात ! यह हमारे बंधु तुमको मनुष्य मानकर मनुष्य बुद्धिसे महाविलाप करते हैं ॥ ३१ ॥ इस प्रकार संज्ञासे बलरामजीके वाक्य सुनकर श्रीकृष्णने पराक्रम कर उस नागका बंधन भुजाओंसे नष्ट कर ॥ ३२ ॥ जलमें उसके सब शरीरको अपने चरणोंसे इकठा करके अपने हाथसे श्रीकृष्णने उसका सिर पकडकर झुका लिया ॥३३॥ और तत्काल उसके बीचके सिरपर

एकभावशरीरज्ञ एकदेहो द्विधा कृतः ॥ संकर्षणस्तु संक्रुद्धो बभाषे कृष्णमव्ययम् ॥ २९ ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो गोपानां नन्दवर्द्धन ॥ दम्यतामेष वै क्षिप्रं सर्पराजो विषायुधः ॥ ३० ॥ इमे नो बान्धवास्तात त्वां मत्वा मानुषं विभो ॥ परिदेवन्ति करुणं सर्वे मानुषबुद्धयः ॥ ३१ ॥ तच्छ्रुत्वा रोहिणेयस्य वाक्यं संज्ञासमीरितम् ॥ विक्रम्यास्फोटयद्बाहू भित्त्वा तन्नागबन्धनम् ॥ ३२ ॥ तस्य पद्भ्यामथाक्रम्य भोगराशिं जलोत्थितम् ॥ शिरस्तु कृष्णो जग्राह स्वहस्तेनावनाम्य च ॥ ३३ ॥ तस्यारुरोह सहसा मध्यमं तन्महच्छिरः ॥ सोऽस्य मूर्ध्नि स्थितः कृष्णो ननर्त्त रुचिराङ्गदः ॥ ३४ ॥ मृद्यमानस्स कृष्णेन शान्तमूर्द्धा भुजङ्गमः ॥ आस्यैस्सरुधिरोद्गारैः कातरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ अविज्ञानान्मया कृष्ण रोषोऽयं संप्रदर्शितः ॥ दमितोऽहं हतविषो वशगस्ते वरानन ॥ ३६ ॥ तदाज्ञापय किं कुर्यां सदा सापत्यबान्धवः ॥ कस्य वा वशतां यामि जीवितं मे प्रदीयताम् ॥ ३७ ॥ पञ्चमूर्द्धानतं दृष्ट्वा सर्पं सर्पारिकेतनः ॥ अक्रुद्ध एव भगवान्प्रत्युवाचोरगेश्वरम् ॥ ३८ ॥

कूदकर आप चढ गये और रुचिर बाजू धारी श्रीकृष्ण उसके सिरपर स्थित हो नृत्य करने लगे ॥३४॥ और उनके शरीरके महाभारसे सर्पराजके सिर मथित हो गये, तब शान्त शिरवाला सर्प मुखोंसे रुधिर उगलता हुआ कातर हो वचन बोला ॥३५॥ हे कृष्ण ! मैंने विना जाने तुमको क्रोध दिखलाया,अब मैं विषरहित हो दमन हुआ और तुम्हारे वशीभूत हो गया हूं; हे श्रेष्ठमुख ! ॥३६॥ आप आज्ञा दीजिये मैं क्या करूं ! पुत्र बांधवोंसहित किसके वशमें रहूं सो कहिये और मेरा जीवन प्रदान कीजिये ॥ ३७ ॥ गरुडध्वज भगवान् उसके पांचों शिर झुके देख प्रसन्न हो सर्पराजसे

बोले ॥ ३८ ॥ तुमको यमुनाजलमें तौ स्थान नहीं दूंगा, इस कारण हे सर्प ! भार्या बन्धुसहित आप सागरको जाइये ॥ ३९ ॥ यदि जो तुम इस स्थान अथवा जलमें फिर दिखाई दोगे तो अथवा तुम्हारा भृत्य वा पुत्र कोई यहां दीखेगा वह मेरे हाथसे मृत्युको प्राप्त होगा ॥ ४० ॥ यह जल कल्याणदायक हो,तुम सागरको जाओ. इस स्थानमें रहनेसे तुम्हारे अन्तःकरणमें महादोष होगा ॥ ४१ ॥ हे सर्प ! सागरमें तेरे शिरपर मेरे चरणोंके चिन्ह देखकर सर्पशत्रु गरुड तुझपर प्रहार न करेगा ॥ ४२ ॥ यह वचन सुन सर्पराज कृष्णके चरणोंमें शिर धर सब गोपोंके देखते२ह्रदसे लोप हो

तवास्मिन्यमुनातोये नैव स्थानं ददाम्यहम् ॥ गच्छार्णवजलं सर्प सभार्यस्सहबान्धवः ॥३९॥ यश्चेह भूयो दृश्येत स्थाने वा यदि वा जले ॥ तव भृत्यस्तनूजो वा क्षिप्रं वध्यस्स मे भवेत् ॥ ४० ॥ शिवं चास्य जलस्यास्तु त्वं च गच्छ महार्णवम् ॥ स्थाने त्विह भवेद्दोषस्तवान्तः करणे महान् ॥४१॥ मत्पदानि च ते सर्प दृष्ट्वा मूर्धसु सागरे ॥ गरुडः पन्नगरिपुस्त्वयि न प्रहरिष्यति ॥ ४२ ॥ गृह्य मूर्ध्ना तु चरणौ कृष्णस्योरगपुङ्गवः ॥ पश्यतामेव गोपानां जगामादर्शनं ह्रदात् ॥ ४३ ॥ निर्जिते तु गते सर्पे कृष्णमुत्तीर्य धिष्ठितम् ॥ विस्मितास्तुष्टुवुर्गोपाश्चक्रुश्चैव प्रदक्षिणम्॥४४॥ऊचुस्सर्वे च संप्रीता नन्दगोपं वनेचराः ॥ धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि यस्य ते पुत्र ईदृशः ॥ ४५ ॥ अद्यप्रभृति गोपानां गवां गोष्ठस्य चानघ ॥ आपत्सु शरणं कृष्णः प्रभुश्चायतलोचनः ॥ ४६ ॥ जाता शिवजला सर्वा यमुना मुनिसेविता ॥ तीरे चास्यास्सुखं गावो विचरिष्यन्ति नस्सदा ॥ ४७ ॥ व्यक्तमेव वयं गोपा वने यत्कृष्णमीदृशम् ॥ महद्भूतं न जानीमश्छन्नमग्निमिव व्रजे ॥ ४८ ॥

गया ॥४३॥ इस प्रकार हारकर सर्पके चले जानेपर किनारे पर कृष्णके आनेपर सब गोप विस्मित होकर उनकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥४४॥ और प्रसन्न हो वनवासी नन्दगोपसे कहने लगे.तुम धन्य और ईश्वरकी कृपाके पात्र हो. जिनके श्रीकृष्णसे पुत्र हैं ॥४५॥ हे पापरहित! आजसे गाय और गोठकी आपत्तियोंमें कृष्णही शरणदाता होंगे.यह दीर्घ लोचन हमारे स्वामी हैं ॥ ४६ ॥ मुनिसेवित यमुनाका सबही जल निर्मल हो गया है. इसके किनारे हमारी गौ सुखसे विचरेंगी ॥ ४७ ॥ हम इस वनमें प्रगट हो गये. जिनके साथी ऐसे कृष्ण हैं,गुप्त हुई अग्निके समान व्रजमें स्थित कृष्णका

माहात्म्य हमने नहीं जाना ॥ ४८ ॥ इस प्रकार वे सब स्थित हुए अविनाशी कृष्णकी स्तुति करते गोपगण अपने गोठको गये. जैसे देवता चैत्ररथ वनमें जाते हैं ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ वैशम्पायन बोले; यमुना नदीसे जब सर्पराज निकल गया, तब रामकृष्ण उस देशमें विचरने लगे ॥ १ ॥ और वे दोनों वसुदेवकुमार गौओंके साथ विचरते हुए पर्वतश्रेष्ठ गोवर्द्धनपर आये ॥ २ ॥ गोवर्द्धनके उत्तरकी ओर यमुनाके किनारेपर उन दोनों वीरोंने श्रेष्ठ तालका वन देखा ॥ ३ ॥ वहां वे दोनों

एवं ते विस्मितास्सर्वे स्तुवन्तः कृष्णमव्ययम् ॥ जग्मुर्गोपगणा घोषं देवाश्चैत्ररथं यथा ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ दमिते सर्पराजे तु कृष्णेन यमुनाह्रदे ॥ तमेव चेरतुर्देशं सहितौ रामकेशवौ ॥१॥ आजग्मतुस्तौ सहितौ गोधनैस्सह गामिनौ ॥ गिरिं गोवर्द्धनं रम्यं वसुदेवसुतावुभौ ॥ २ ॥ गोवर्द्धनस्योत्तरतो यमुनातीरमाश्रितम् ॥ ददृशाते च तौ वीरौ रम्यं तालवनं महत् ॥ ३ ॥ तौ तालपर्णप्रतते रम्ये तालवने रतौ ॥ चेरतुः परमप्रीतौ वृषपोताविवोद्धतौ ॥ ४ ॥ स तु देशस्सदा स्निग्धो लोष्ठपाषाणवर्जितः ॥ दर्भप्रायस्थलीभूतः सुमहान्कृष्णमृत्तिकः ॥ ५ ॥ तालैस्तैर्विपुलस्कन्धैरुच्छ्रितैश्श्यामपर्वभिः ॥ फलाग्रशाखिभिर्भाति नागहस्तैरिवोच्छ्रितैः ॥ ६ ॥ तत्र दामोदरो वाक्यमुवाच वदतां वरः ॥ अहो तालफलैः पक्वैर्वासितेयं वनस्तली ॥ ७ ॥ स्वादून्यार्य सुगन्धीनि श्यामानि रसवन्ति च ॥ पक्वतालानि सहितौ पातयावो लघुक्रमौ ॥ ८ ॥

उद्धत हुए. दो बछडोंकी समान तालके पत्तोंके शब्दोंसे मनोहर उस वनमें परमप्रीतिसे विचरने लगे ॥ ४ ॥ वह देश सदा मनोहर लोष्ठ और पाषाणसे वर्जित है. प्रायः जहां कुश उत्पन्न होते और जहांकी काली मट्टी थी ॥ ५ ॥ वहांके तालवृक्ष बहुत ऊंचे स्कंदवाले श्याम पर्वोंसे युक्त, फलसे अग्रभागमें झुके हुए हाथीके समान ऊंचे शोभित होते थे॥६॥वहां बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी वचन बोले; अहो ! पक्के ताल फलोंसे यह वनस्थली सुगन्धित हो रही है ॥ ७ ॥ इसकी सुगन्धि स्वादिष्ट है. यह श्यामवरणके रस भरे पक्के तालफल हैं. चलो, इन्हें तोडकर

खेलसेही गिरा देंगे॥८॥ जसी इनकी नासिका तृप्त करनेहारी श्रेष्ठ गंधि है,इसी प्रकार इनमें स्वादभी होगा यह मुझे निश्चय है॥९॥ श्रीकृष्णके वचन सुन हंसते हुए बलरामजी ताडके वृक्ष हिलाकर पक्के फल गिराने लगे॥१०॥वह तालवन मनुष्योंके सेवन करनेके योग्य नहीं था. मनुष्य वहां नहीं जा सक्ते थे. वह केवल ऊषरके समान मनुष्योंसे रहित राक्षसोंके रहनेका स्थान था॥११॥वहां गधेका रूप धारे धेनुक नाम महाअसुर रहता था,उसके साथमें औरभी बहुतसे राक्षस गधेके रूपसे रहते थे ॥१२॥ वहां घोर तालवन गधहोंसे रक्षित था. वह दुर्मति मनुष्य पक्षी तथा दूसरे

यद्येषामीदृशो गन्धो माधुर्यघ्राणतर्पणः॥ रसेनामृतकल्पेन भवितव्यं च मे मतिः ॥९॥ दामोदरवचः श्रुत्वा रौहिणेयो हसन्निव ॥ पातयन्पक्वतालानि चालयामास तांस्तरून् ॥ १० ॥ तत्तु तालवनं नृणामसेव्यं दुरतिक्रमम् ॥ निर्माणभूतमिरिणं पुरुषादालयोपमम् ॥ ११ ॥ दारुणो धेनुको नाम दैत्यो गर्दभरूपधृक् ॥ खरयूथेन महता वृतस्समनुसेवते ॥१२॥ स तु तालवनं घोरं गर्द्दभः परिरक्षति नृपक्षिश्वापदगणांस्त्रासयानस्सुदुर्मतिः ॥ १३ ॥ तालशब्दं स तं श्रुत्वा संघुष्टं फलपातनात् ॥ नामर्षयत्स संक्रुद्धस्तालस्वनमिव द्विपः ॥१४॥ शब्दानुकारी संक्रुद्धो दर्पाविद्धसटाननः ॥ स्तब्धाक्षो हेषितपटुः ॥ खुरैर्निर्दारयन्महीम् ॥१५॥ आविद्धपुच्छो हृषितो व्यात्तानन इवान्तकः ॥ आपतन्नेव ददृशे रौहिणेयमुपस्थितम् ॥ १६ ॥ तालानां तमधोदृष्ट्वा स ध्वजाकारमव्ययम्॥रौहिणेयं खरो दुष्टस्सोदशद्दशनायुधः ॥ १७ ॥ पद्भ्यामुभाभ्यां च पुनः पश्चिमाभ्यां पराङ्मुखः ॥ जघानोरसि दैत्येन्द्रो रौहिणेय निरायुधम् ॥ १८ ॥

जीवोंको दुःख देता था॥१३॥फल गिरनेसे वह तालके वृक्षोंका शब्द सुनकर क्रोधके मारे सहन न कर सका.जैसे हाथीकी चिंघाडको सिंह नहीं सहन कर सकता॥१४॥वह क्रोध कर शब्दकी ओरकोही केसर खडे करके बडी आंखें किये रेंकता हुआ और खुरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण कर॥१५॥ पूंछ खडी किये, कालके समान मुख फाडे, दौडता हुआ बलरामजी ऊपर धावता आ ॥१६॥ तालके वृक्ष जो अविनाशी ध्वजाके समान थे, उनको नीचे गिरा देख आनकर बलरामजीको दांतोंसे काटनेको दौडा॥१७॥और फिर मुख फेर पिछले दो पैरोंसे आयुधरहित बलरामकी छातीमें

उसने लात मारी ॥ १८ ॥ बलरामजीने उस गधेरूपी असुरके पिछले दोनों चरण पकड लिये और घुमाकर उसको एक बडे तालके वृक्षमें देकर मारा ॥१९॥ उसको पटकनेसे जंघा, गरदन, कमर, पीठ टूट गई और उस तालके वृक्षसहित वह गधा पृथ्वीमें गिर पडा॥२०॥ उस प्राणरहित, शोभा-हीन गधेको मरकर पृथ्वीमें गिरा देख उसके जातिकेभी आये, उन्हें बलरामजीने तृणके समान नष्ट कर दिया॥२१॥वह पृथ्वी गधोंकी मृतक देह और गिरे हुए तालफलोंसे शरदऋतुके छिन्न मेघोंसे आकाशके समान शोभित हुई ॥ २२ ॥ जिस समय वह गर्दभ दैत्यसेनासहित मृतक हो गया,

ताभ्यामेव स जग्राह पद्भ्यां तं दैत्यगर्दभम्॥अवार्जितमुखस्कन्धं प्रेरयंस्तालमूर्धनि ॥१९॥ संभग्नोरुकटिग्रीवो भग्नपृष्ठोदराकृतिः ॥ खरस्तालफलैस्सार्द्धं पपात धरणीतले ॥ २० ॥ तं गतासुं गतश्रीकं पतितं वीक्ष्य गर्दभम् ॥ ज्ञातींस्तथापरांस्तस्य तृणराजनि सोऽक्षिपत् ॥ २१ ॥ सा भूर्गर्दभदेहैश्च तालैः पक्वैश्च पातितैः ॥ बभासे छन्नजलदा द्यौरिवाव्यक्तशारदी ॥ २२ ॥ तस्मिन्गर्द्दभदैत्ये तु सानुगे विनिपातिते ॥ रम्यं तालवनं तद्धि भूयो रम्यतरं बभौ ॥ २३ ॥ विप्रमुक्तभयं शुभ्रं विविक्ताकरदर्शनम् ॥ चरन्ति स्म सुखं गावस्तत्तालवनमुत्तमम् ॥ २४ ततः प्रविष्टास्ते सर्वे गोपा वनविचारिणः ॥ वीतशोकभयायासाश्चञ्चूर्यन्ते समन्ततः॥२५॥ ततः सुखं प्रकीर्णासु गोषु नागेन्द्रविक्रमौ ॥ द्रुमपर्णासने कृत्वा तौ यथार्हं निषीदतुः ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि धेनुकवधो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

तबसे वह सुन्दर तालवन अधिक मनोहर हो गया ॥ २३ ॥ उसका सब भय दूर जाता रहा. प्रगट आकार दीखने लगा और उस मनोहर तालवनमें गौ सुखसे ही विचरण करने लगीं ॥ २४ ॥ तब वे वनचारी गोप सब उसमें प्रविष्ट हुए और शोकभय रहित हो चारों ओर उसमें विचरण करने लगे ॥ २५ ॥ जब उसमें सुखपूर्वक गौ प्रवेश कर गईं, तब हाथीके समान बलिष्ठ कृष्ण और बलराम उन वृक्षके पत्तोंके आसन बनाकर उसपर सुखपूर्वक स्थित हुए ॥ २६ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

वैशंपायन बोले; अनन्तर वे दोनों वसुदेवकुमार प्रसन्न हो उस तालवनको छोडकर फिर भांडीर वनमें आये ॥१॥ वृद्धिको प्राप्त हुए, गोधनको चराते, अनेक प्रकार तृण धान्यके बडे वनको देखने लगे ॥२॥ कूदते,गाते,वृक्षोंके नाम लेते, बछडे गाय लिये, वृक्षोंको देखते, परम तपस्वी वे दोनों ॥३॥ सुन्दर लक्षणवाले, एक दूसरेके कंधेपर हाथ धरे, वनमाला पहरे, सींग निकलते बालक बछडोंके समान शोभित ॥ ४ ॥ सुवर्ण और अंजनके चूर्णके समान रंगीन पीताम्बर और नीलाम्बर पहरे, महेन्द्रके धनुषसे युक्त कृष्ण और शुक्लमेघके समान ॥ ५॥ तीक्ष्ण पुष्पोंको धारे उनके कर्णपूर बनाये;

वैशम्पायन उवाच ॥ अथ तौ जातहर्षौ तु वसुदेवसुतावुभौ ॥ तत्तालवनमुत्सृज्य भूयो भाण्डीरमागतौ ॥१॥ चारयन्तौ विवृद्धानि गोधनानि शुभानि च ॥ स्फीतसस्यप्ररूढानि वीक्षमाणौ वनानि च ॥ २॥ क्ष्वेडयन्तौ प्रगायन्तौ प्रचिन्वन्तौ च पादपान् ॥ नामभिर्व्याहरन्तौ च सवत्सा गाः परंतपौ ॥३॥ नियोगपाशैरासक्तैस्स्कन्धाभ्यां शुभलक्षणौ ॥ वनमालाकुलोरस्कौ बालशृङ्गाविवर्षभौ ॥४॥ सुवर्णाञ्जनचूर्णाभावन्योन्यसदृशाम्बरौ ॥ महेन्द्रायुधसंसक्तौ शुक्लकृष्णविवाम्बुदौ ॥५॥कुशाग्रकुसुमानां च कर्णपूरौ मनोरमौ ॥ वनमार्गेषु कुर्वाणावन्यवेषधरावुभौ ॥६ ॥ गोवर्द्धनस्यानुचरौ वने सानुचरौ तु तौ ॥ चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरपराजितौ ॥७॥ तावेवं मानुषीं दीक्षां वहन्तौ सुरपूजितौ ॥ तज्जातिगुणयुक्ताभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वनम् ॥ ८ ॥ तौ तु भाण्डीरमाश्रित्य बालक्रीडानुवर्तिनौ ॥ प्राप्तौ परमशाखाढ्यं न्यग्रोधं शाखिनां वरम् ॥९॥ तत्र स्पन्दोलिकाभिश्च युद्धमार्गविशारदौ ॥ अश्मभिःक्षेपणीयैश्च तौ व्यायाममकुर्वताम् ॥ १० ॥ युद्धमार्गैश्च विविधैर्गोपालैः सहितावुभौ ॥ मुदितौ सिंहविक्रान्तौ यथाकामं विचेरतुः ॥ ११ ॥

इस प्रकार वनमें दोनों वनकी वस्तुओंसे अपना वेष बनाये॥६॥ गोपालोंसहित गोवर्द्धनमें प्रसिद्ध होनेवाली लीलाको करने लगे ॥७॥ इस प्रकार देवतोंसे पूजित वे दोनों मनुष्य वेश धारे हुए उसही जातिके गुणोंसे युक्त वनमें क्रीडा करने लगे॥८॥इस प्रकार बाललीला करते भांडीरके आश्रय हो उस बडे वनवृक्षकी शाखाके नीचे आये ॥९॥ वहां परस्पर एक दूसरेको गोदी ले युद्धमार्गमें चतुर पत्थरके टुकडे फैंकने और परस्पर कसरत करने लगे॥१०॥अनेक प्रकारसे युद्धमार्गसे युक्त गोपालोंसहित वे दोनों सिंहके समान बलवाले प्रसन्न हो इच्छानुसार विचरने लगे ॥ ११ ॥

इस प्रकार उनको विहार करता देख उनके मारनेकी इच्छासे प्रलम्ब नामक असुर उस स्थानमें आया, जो समय देख रहा था॥ १२॥ वनके फूलोंसे विभूषित गोपालके वेश किये अनेक प्रकारकी हास्यक्रीडासे उन दोनों वीरोंको लुभाता हुआ ॥ १३ ॥ शंकारहित मनुष्यशरीर धारण किये उनके मध्यमें स्थित हुआ. इस प्रकार दानवश्रेष्ठ प्रलम्ब मनुष्यशरीर धारे आया ॥ १४॥ गोप उस देवशत्रुके साथ क्रीडा करने लगे और उन्होंने उसे गोपाल वेष देख अपनी जातिकाही जाना॥ १५॥ और वह प्रलम्ब गोपरूप धारे अवकाश देखने लगा तथा कृष्णबलरामको घोर दृष्टिसे देखने लगा ॥ १६ ॥

तयो रमयतोरेवं तल्लिप्सुरसुरोत्तमः ॥ प्रलम्बोऽभ्यागमत्तत्र च्छिद्रान्वेषी तयोस्तदा ॥ १२ ॥ गोपालवेषमास्थाय वन्यपुष्पविभूषितः ॥ लोभयानस्य तौ वीरौ हास्यैः क्रीडनकैस्तथा ॥ १३ ॥ सोऽवगाहत निश्शङ्कस्तेषां मध्यममानुषः ॥ मानुषं वपुरास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥ १४ ॥ प्रक्रीडिताश्च ते सर्वे सह तेनामरारिणा ॥ गोपालवपुषं गोपा मन्यमानास्स्वबान्धवम् ॥ १५ ॥ स तु च्छिद्रान्तरप्रेप्सुः प्रलम्बो गोपतां गतः ॥ दृष्टिं प्रणिदधे कृष्णे रौहिणेये च दारुणाम् ॥ १६ ॥ अविषह्यं ततो मत्वा कृष्णमद्भुतविक्रमम् ॥ रौहिणेयवधे यत्नमकरोद्दानवोत्तमः ॥ १७ ॥ हरिणाक्रीडनं नाम बालक्रीडनकं ततः ॥ प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन् ॥ १८ ॥ कृष्णश्श्रीदामसहितः पुप्लुवे गोपसूनुना ॥ संकर्षणस्तु प्लुतवान्प्रलम्बेन सहानघ ॥ १९ ॥ गोपालास्त्वपरे द्वन्द्वं गोपालैरपरैस्सह ॥ प्रद्रुता लङ्घयन्तो वै तेऽन्योन्यं लघुविक्रमाः ॥ २० ॥ श्रीदाममजयत् कृष्णः प्रलम्बं रोहिणीसुतः ॥ गोपालैः कृष्णपक्षीयैर्गोपालास्त्वपरे जिताः ॥ २१ ॥

परन्तु कृष्णका पराक्रम असह्य जानकर वह दानव बलरामजीके अनिष्टका यत्न करने लगा॥ १७॥ और श्रीकृष्णने बालकोंको क्रीडा करनेकी आज्ञा दी; तब वे सब बालक दो दो इकट्ठे होकर कूदने लगे॥ १८॥ श्रीकृष्ण श्रीदामाके साथ क्रीडा करने लगे और बलरामजी प्रलम्बके साथ कूदने लगे॥ १९ ॥ दूसरे गोपालोंके बाल अपनी २ जोडीके साथ कूदने लगे. बडे पराक्रम कर भागकर एक दूसरेको उल्लंघन करने लगे ॥ २० ॥ कृष्णने श्रीदामाको,

बलरामने प्रलम्बको जीतलिया. पीछे कृष्णके पक्षके बालकोंने दूसरी टोलीके ग्वालोंको जीत लिया ॥ २१ ॥ तब वह हारे हुए शीघ्रतासे जीतनेवालोंको चढ़ा चडाकर ले चले. वह शीघ्रतासे भांडीरकी शाखा छूकर अपने फिर स्थानको आते थे॥ २२ ॥ इधर वह दानव बलरामजीको कंधेपर चढाकर शीघ्रतासे ले चला और वह महाशीघ्रतासे चला. मानो चन्द्रमासहित मेघ जाता हो॥२३॥परन्तु जब वह बलरामजीका महाभार न सम्हार सका, तब वह अपनी कायासे वढने लगा. जिस प्रकार इन्द्रसे आक्रान्त हो मेघ वढने लगता है ॥२४॥ वह भांडीरवटके समीप जाकर जले हुए काले पहाडकी समान प्रलम्ब नाम दानवने अपना शरीर दिखाया ॥२५॥ पांच गुच्छोंसे युक्त, सूर्यकी समान प्रकाशमान, मुकुटसे दीप्तिमान वह दैत्य सूर्यसे आक्रान्त हुए

ते वाहयन्तस्त्वन्योन्यं संहर्षात्सहसा द्रुताः ॥ भाण्डीरस्कन्धमुद्दिश्य मर्यादां पुनरागमन् ॥ २२ ॥ संकर्षणं तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानवः ॥ द्रुतं जगाम विमुखस्सचन्द्र इव तोयदः ॥ २३ ॥ स भारमसहंस्तस्य रौहिणेयस्य धीमतः ॥ ववृधे सुमहाकायश्शक्राक्रान्त इवाम्बुदः ॥२४॥ स भाण्डीरवटप्रख्यं दग्धाञ्जनगिरिप्रभम् ॥ स्वं वपुर्दर्शयामास प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥ २५ ॥ पञ्चस्तबकलम्बेन मुकुटेनार्कवर्चसा ॥ दीप्यमानाननो दैत्यः सूर्याक्रान्त इवाम्बुदः ॥ २६ ॥ महाननो महाग्रीवस्सुमहानन्तकोपमः ॥ रौद्रश्शकटचक्राक्षो नमयं श्चरणैर्महीम् ॥ २७ ॥ स्रग्दामलम्बाभरणः प्रलम्बाम्बरभूषणः ॥ वीरः प्रलम्बः प्रययौ लम्बतोय इवाम्बुदः ॥ २८ ॥ स जहाराथ वेगेन रौहिणेयं महासुरः ॥ सागरोपप्लुवगतं कृत्स्नं लोकमिवान्तकः ॥ २९ ॥ ह्रियमाणः प्रलम्बेन स तु संकर्षणो बभौ ॥ उह्यमान इवाकाशे कालमेघेन चन्द्रमाः ॥ ३० ॥ स संदिग्धमिवात्मानं मेने संकर्षणस्तदा ॥ दैत्यस्कन्धगतश्श्रीमान्कृष्णं चेदमुवाच ह ॥ ३१ ॥

मेघकी समान शोभित हुआ ॥ २६ ॥ बडा मुख, बडी गर्दनसे युक्त, कालान्तककी समान भयंकर, गाडीके चक्रोंकी समान नेत्रवाला, चरणोंसे पृथ्वीको नमाता हुआ ॥ २७ ॥ माला तगडी आदि लम्बायमान गहनोंसे शोभित, लम्बे वस्त्र धारे, जल भरे लंबे मेघकी समान वीर प्रलम्बासुर गमन करने लगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार उस महाराक्षसने वेगसे बलरामजीको हरण किया. जिस प्रकार प्रलयमें सागर सब लोकोंको अपनेमें हरण कर लेता है ॥२९॥ प्रलम्बसे हरे जाते हुए बलरामजी शोभित हुए. जैसे काले मेघसे ले जाता हुआ चन्द्रमा शोभित होता है ॥३०॥ तब बलरामजी शंकित होने लगे

और दैत्यके कंधेपर स्थित हुए श्रीकृष्णसे बोले ॥३१॥ हे कृष्ण ! पर्वतकी समान यह राक्षस मुझको हरण करता है. इसने बडी भारी मनुष्यरूपिणी माया की है ॥३२॥ अब इस दुष्टचित्तवाले,महाअभिमानी और अभिमानसेही दूने तेजवाले इस राक्षसका दमन किस प्रकार करना चाहिये ॥३३॥ तब श्रीकृष्ण उनके यह वचन सुन प्रसन्नता और सामपूर्वक बलरामजीको वृत्तान्त और बलको बताते हुए बोले॥३४॥अहो बलरामजी तो प्रगटही मनुष्यभावकी पालना करते हैं. कारण कि जगत्में तुम गुप्तसेभी गुप्त हो ॥३५॥ लोकके विपर्ययमें जो तुम नारायण रूप होते हो, उस अपनी

ह्रियेऽहं कृष्ण दैत्येन पर्वतोदग्रवर्ष्मणा ॥ प्रदर्शयित्वा महतीं मायां मानुषरूपिणीम् ॥ ३२ ॥ कथमस्य मया कार्यं शासनं दुष्टचेतसः ॥ प्रलम्बस्य प्रवृद्धस्य दर्पाद्द्विगुणवर्चसः ॥ ३३ ॥ तमाह सस्मितं कृष्णस्साम्ना हर्षाकुलेन वै॥अभिज्ञो गैहिणेयस्य वृत्तस्य च बलस्य च॥ ३४ ॥ अहोऽहं मानुषो भावो व्यक्तमेवानुपाल्यते ॥ यस्त्वं जगन्मयं देवं गुह्याद्गुह्यतरं गतः ॥ ३६ ॥ स्मर नारायणात्मानं लोकानां त्वं विपर्यये ॥ अवगच्छात्मनात्मानं समुद्राणां समागमे ॥ ३६ ॥ पुरातनानां देवानां ब्रह्मणः सलिलस्य च ॥ आत्मवृत्तप्रभावाणां संस्मराद्यं च वै वपुः ॥ ३७ ॥ शिरः खं ते जलं मूर्त्तिः क्षमा भूर्दहनो मुखम् ॥ वायुर्लो-कायुरुच्छ्वासो मनस्स्रष्टा ह्यभूत्तव ॥ ३८ ॥ सहस्रास्यस्सहस्राङ्गस्सहस्रचरणेक्षणः ॥ सहस्रपद्मनाभस्त्वं सहस्रांशुधरोऽरिहा ॥ ३९ ॥ यत्त्वया दर्शितं लोके तत्पश्यन्ति दिवौकसः ॥ यत्त्वया नोक्तपूर्वं हि कस्तदन्वेष्टुमर्हति ॥ ४० ॥

आत्माका स्मरण करो और समुद्रके समागममें अपने आत्माको जानों अर्थात् प्रलयमें जो रूप होता है उसे स्मरण करो ॥ ३६ ॥ पुरातन देवतोंका, ब्रह्माका, जलका और अपनी आत्माके प्रवृत्त करनेवाले अपने शरीरको स्मरण करो ॥३७॥ तुम्हारा शिर आकाश है, जल मूर्ति है, पृथ्वी क्षमा, अग्नि मुख, लोकोंकी वायु श्वास और ब्रह्मा तुम्हारा मन है॥३८॥आपके सहस्र मुख, सहस्र हाथ और सहस्रों चरण हैं आपही सहस्रों पद्म नाभिवाले तथा सहस्रों किरणोंके धारण करनेवाले शत्रुओंके मारनेहारे हो ॥३९॥ जो कुछ आपका यह रूप है उसको देवता देखते हैं और जो कुछ आपने नहीं

कहा है वा प्रगट नहीं किया है उसे कौन देख सकता है॥४०॥जो कुछ इस लोकमें जानने योग्य है वह आपने कथन कर दिया है और जो आपको विदित है उसे देवताभी नहीं जानते ॥ ४१ ॥ आत्मासे उत्पन्न हुए तुम्हारे शरीरको आत्मामें नहीं देखते हैं,परन्तु जो आपका कृत्रिम रूप है, देवता उसकी पूजा करते हैं ॥४२॥ देवता आपका अंत नहीं जानते इससे तुम अनन्त हो,तुमही सूक्ष्म और महान् तथा एक हो और दूसरे सूक्ष्मभी आपको प्राप्त नहीं हो सक्के॥४३॥तुम जगत्का सनातन स्तंभ हो, सारा जगत् तुमसेही स्थित है,आपहीके द्वारा सब प्राणियोंकीयोनि पृथ्वी अचल हो जगत्को धारण करती है ॥ ४४ ॥ आपही चार सागरके भोगनेवाले और चार सागरके विभागके जाननेवाले हो. चारों युगोंमें लोकोंके चातुर्होत्र

यद्वेदितव्यं लोकेऽस्मिन्तत्त्वया समुदाहृतम् ॥ विदितं यत्तवैकस्य देवा अपि न तद्विदुः ॥४१॥ आत्मजः ते वपुर्व्योम्नि न पश्यन्त्यात्मसंभवम् ॥ यत्तु ते कृत्रिमं रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः ॥ ४२ ॥ देवैर्न दृष्टश्चान्तस्ते तेनानन्त इति स्मृतः ॥ त्वं हि सूक्ष्मो महानेकस्सूक्ष्मैरपि दुरासदः ॥ ४३ ॥ त्वय्येव जगतः स्तम्भे शाश्वती जगती स्थिता ॥ अचला प्राणिनां योनिर्धारयत्यखिलं जगत् ॥ ४४ ॥ चतुस्सागरभोगस्त्वं चातुर्वर्ण्यविभागवित् ॥ चतुर्युगेषु लोकानां चातुर्होत्रफलाशनः ॥ ४५ ॥ यथाहमपि लोकानां तथा त्वं तच्च मे मतम् ॥ उभावेकशरीरौ स्वौ जगदर्थे द्विधा कृतौ ॥ ४६ ॥ अहं वा शाश्वतः कृष्णस्त्वं वा शेषः पुरातनः ॥ लोकानां शाश्वतो देवस्त्वं हि शेषस्सनातनः ॥ आवयोर्देहमात्रेण द्विधेदं धार्यते जगत् ॥ ४७ ॥ अहं यस्स भवानेव यस्त्वं सोऽहं सनातनः ॥ द्वावेव विहितौ ह्यावामेकदेहौ महाबलौ ॥४८॥ तदास्से मूढवत्त्वं किं प्राणेन जहि दानवम् ॥ मूर्ध्नि देवरिपुं देवं वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ ४९ ॥

फलके भोगनेवाले तुमही हो ॥ ४५ ॥ जैसे मैं लोकोंका पूज्य हुएसेही तुम हो, हम दोनोंही एकशरीर हैं. जगत्के हितके निमित्त दो शरीर धारण कर लिये हैं ॥४६॥ मैं तो निरंतर कृष्ण हूं और तुम सनातन शेष हो, हम दोनोंके दो प्रकारके देहसे यह जगत् धारण किया जाता है ॥ ४७ ॥ जो मैं सो तुम, जो तुम सो मैं हूं. दोनों महाबली वास्तवमें एक देहवाले हैं ॥ ४८ ॥ सो तुम मूढकी समान किस कारण स्थित हो इस दानवके प्राण हरण कर लो. हे बलराम ! इस दानवके शिरमें वज्रकी समान अपना घूसा मारो ॥ ४९ ॥

वैशंपायन बोले; जब इस प्रकार श्रीकृष्णजीने बलरामजीको स्मरण कराया तब त्रिलोकीके अन्तरमें व्याप्त बलराम बलसे पूर्ण हो गये ॥ ५० ॥ तब इन्होंने वज्रकी समान घूंसा बनाकर बडे वेगसे उस राक्षसके सिरमें मारा ॥५१॥ वह घूंसा जब लगा तब उसकी खोपडी टूट गई और शिरमें प्रविष्ट हो गई और जंघाओंसे दाबकर उसे पृथ्वीमें गिरा दिया, तब उस दानवके प्राण निकल गये ॥ ५२ ॥ तब उस प्रलम्बासुरका पृथ्वीमें पतित होकर रूप इस प्रकार शोभित हुआ, जिस प्रकार आकाशमें मेघ विदीर्ण होता है॥५३॥ उसका सिर टूट जानेसे उसकी देहसे रुधिर निकलने लगा. वह ऐसे

वैशम्पायन उवाच ॥ संस्मारितस्तु कृष्णेन रौहिणेयः पुरातनम् ॥ बलेनापूर्यत तदा त्रैलोक्यान्तरचारिणा ॥ ५० ॥ ततः प्रलम्बं दुर्वृत्तं स बद्धेन महाभुजः ॥ मुष्टिना वज्रकल्पेन मूर्ध्नि चैनं समाहनत् ॥ ५१ ॥ तस्योत्तमाङ्गं स्वे काये विकपालं विवेश ह ॥ जानुभ्यां चाहतश्शेते गदासुर्दानवोत्तमः ॥ ५२ ॥ जगत्यां विप्रकीर्णस्य तस्य रूपमभूत्तदा ॥ प्रलम्बस्याम्बरस्थस्य मेघस्येव विदीर्यतः ॥ ५३ ॥ तस्य भग्नोत्तमाङ्गस्य देहात्प्रसुस्राव शोणितम् ॥ बहुगैरिकसंयुक्तं शैलशृङ्गादिवोदकम् ॥ ५४ ॥ तं निहत्य प्रलम्बं तु संहृत्य बलमात्मनः ॥ पर्यष्वजत वै कृष्णं रौहिणेयः प्रतापवान् ॥ ५५ ॥ तं तु कृष्णश्च गोपाश्च दिविस्थाश्च दिवौकसः ॥ तुष्टुवुर्निहते दैत्ये जयाशीर्भिर्महाबलम् ॥ ५६ ॥ बलेनायं हतो दैत्यो बालेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ विवदन्त्यशरीरिण्यो वाचः सुरसमीरिताः ॥ ५७ ॥ बलदेवेति नामास्य देवैरुक्तं दिवि स्थितैः ॥ बलं तु बलदेवस्य तदा भुवि जना विदुः ॥ ५८ ॥

शोभित हुआ जैसे कि पर्वतसे गेरू मिला हुआ जल निकलता है ॥५४॥ इस प्रकार प्रलम्बको मार और अपना बल अपनेमें धारण कर प्रतापी बलरामजी आकर श्रीकृष्णसे हृदय लगाकर मिले ॥५५॥ तब बलरामजीको श्रीकृष्ण और गोप तथा स्वर्गमें स्थित देवता उस दैत्यके मरनेपर प्रसन्न हो आशीर्वाद देने लगे॥५६॥ कि बालक अवस्थाहीमें महाबली बलरामजीने उस दैत्यको मार डाला, इस प्रकार देवताओंकी अशरीरिणी वाणी आकाशसे होने लगी॥५७॥ उसी दिनसे देवताओंने इनका बलदेव नाम उच्चारण किया; उसी दिनसे व्रजवासी बलदेवका बल जानने लगे॥५८॥

देवताओंकोभी दुरासद दैत्यको बलदेवजीने अपने पराक्रमसे मार डाला॥५९॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां शिशुचर्यायां प्रलम्बवधो नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥वैशंपायन बोले;इस प्रकारसे उन दोनों बलराम और श्रीकृष्णको उस वनमें विचरते हुए दो वार्षिक महीने व्यतीत हुए ॥१॥ अग्नावभिरहन्त्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमाजिघर्ति मायिनि शतं वा यस्य प्रचरन् स्वेदमे संवर्तयंतो विचवर्तयन्नहेति " इसही वेदमंत्रका आशय वर्णन किया है. जब वे दोनों व्रजमें आये, तब उन्होंने गोपोंको इन्द्रके उत्सवमें व्यग्र हुए देखा और सुना॥ २ ॥ तब श्रीकृष्णने कौतूहलाक्रान्त

प्रलम्बे निहते दैत्ये देवैरपि दुरासदे ॥ ५९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां प्रलम्बवधो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तयोः प्रवृत्तयोरेवं कृष्णस्य च बलस्य च ॥ वने विचरतोर्मासौ व्यतियातौ स्म वार्षिकौ ॥ १ ॥ व्रजमाजग्मतुस्तौ तु व्रजे शुश्रुवतुस्तदा ॥ प्राप्तं शक्रमहं वीरौ गोपांश्चोत्सवलालसान् ॥ २ ॥ कौतूहलादिदं वाक्यं कृष्णः प्रोवाच तत्र तान् ॥ कोऽयं शक्रमहो नाम येन वो हर्ष आगतः ॥ ३ ॥ तत्र वृद्धतमस्त्वेको गोपो वाक्यमुवाच ह ॥ श्रूयतां तात शक्रस्य यदर्थं ध्वज इज्यते ॥ ४ ॥ देवानामीश्वरश्शक्रो मेघानां चारिसूदन ॥ तस्य चायं मखः कृष्ण लोकनाथस्य शाश्वतः ॥ ५ ॥ तेन संचोदिता मेघास्तस्य चायुधभूषिताः ॥ तस्यैवाज्ञाकरास्सस्यं जनयन्ति नवाम्बुभिः ॥ ६ ॥ मेघस्य पयसो दाता पुरुहूतः पुरंदरः ॥ संप्रहृष्टस्स भगवान्प्रीणयत्यखिलं जगत् ॥ ७ ॥ तेन संपादितं सस्यं वयमन्ये च मानवाः ॥ वर्तयामोपयुञ्जानास्तर्पयामश्च देवताः ॥ ८ ॥

होकर उन गोपोंसे कहा, यह कौनसा यज्ञ इन्द्रके निमित्त किया जाता है. जिसके कारण तुम सब प्रसन्न हो रहे हो॥३॥तब उनमेंसे एक बूढा गोप बोला; हे तात ! सुनो.जिस कारण यह इन्द्रका यज्ञ किया जाता है ॥४॥ हे कृष्ण ! इन्द्र देवता और मेघोंका राजा है, यह उसी लोकनाथका सनातन यज्ञ है ॥ ५ ॥ उसीसे मेघ प्रेरित होते हैं, उसीके आयुधसे भूषित होते हैं, उसींकी आज्ञासे मेघद्वारा अनेक प्रकारके धान्य उत्पन्न होते हैं ॥ ६ ॥ मेघोंको जलके देनेहारे इन्द्रही हैं. वह भगवान् यज्ञसे प्रसन्न हो सब जगत्को प्रसन्न करते हैं ॥७॥ हम अन्नको उन्हींके द्वारा प्राप्त करते हैं, उन्हींके

निमित्त हम महोत्सव करके देवताओंको तृप्त करते हैं॥८॥जब देव वर्षता है, तभी खेतींकी वृद्धि होती है और पृथ्वीके तृप्त होनेसे जगत् अमृत-
रूप दीखने लगता है ॥९॥ गौ दुग्धवाली, बछडेवाली और शांत होती हैं. उसके बढाये तृणोंसे वृषभ पुष्ट होते हैं॥१०॥जहां मेघ वर्षा करते हैं,
वहां खेती तृणका अभाव और मनुष्य भूखसे व्याकुल नहीं होते॥११॥इन्द्र सूर्यकी जलवाली किरणोंको दुहता है, पीछे वही किरणें मेघोंके धारण
किये जलको वर्षाती हैं ॥१२॥ इन्द्र वायुसे प्रेरित हुए मेघोंको ताडन करता है. उस वायुके ताडनेसे जो शब्द होता है उसेही प्राणी गर्जना कहते

देवे वर्षति लोकेऽस्मिंस्ततस्सस्यं प्रवर्धते ॥ पृथिव्यां तर्पितायां तु सामृतं लक्ष्यते जगत् ॥ ९ क्षीरवत्यस्त्विमा गावो वत्स-
वत्यश्च निर्वृताः ॥ तेन संवर्द्धितास्तात तृणैः पुष्टाः सपुङ्गवाः ॥ १० ॥ नासस्या नातृणा भूमिर्न बुभुक्षार्दितो जनः ॥ दृश्यते
यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो बलाहकाः ॥ ११ ॥ दुदोह सवितुर्गा वै शक्रो दिव्याः पयस्विनीः ॥ ताः क्षरन्ति नवं क्षीरं मेध्यं मेघौघ-
धारितम् ॥ १२ ॥ वाय्वीरिते तु मेघेषु करोति निनदं महत् ॥ जवेनावर्तितं चैव गर्ज्जतीति जना विदुः ॥ १३ ॥ तस्य चैवोह्य-
मानस्य वायुयुक्तैर्बलाहकैः ॥ वज्राशनिसमाश्शब्दाश्श्रूयन्ते नगभेदिनः ॥ १४ ॥ तज्जलं वज्रनिष्पेषैर्विमुञ्चति नभोगतैः ॥ बहुभिः
कामगैर्मेघैश्शक्रो भृत्यैरिवेश्वरः ॥ १५ ॥ क्वचिद्दुर्दिनसंकाशैः क्वचिच्छिन्नाभ्रसंनिभैः ॥ क्वचिद्भिन्नाञ्जनाकारैः क्वचिच्छीकरव-
र्षिभिः ॥ १६ ॥ मण्डयन्तीव देवेन्द्रो विश्वमेव नभो घनैः ॥ क्वचिच्छीकरमुक्ताभं कुरुते गगनं घनः ॥ १७ ॥ एवमेतत्पयो दुग्धं
गाभिस्सूर्यस्य वारिदः ॥ पर्जन्यस्सर्वभूतानां भवाय भुवि वर्षति ॥ १८ ॥

हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार वायुसे युक्त मेघोंको इन्द्र बढाता है. जब उन मेघोंके शब्द वृक्षोंको तोडने लायक वज्रके गिरनेके सुने जाते हैं ॥१४॥
तब इन्द्रके वज्रसे ताडित हो वह मेघ जलको त्यागन करते हैं. इन्द्र मेघोंसे अपने भृत्यों द्वारा जलकी वर्षा कराता है॥१५॥कहीं तो मेघ घटाटोप कर
आकाशको ढग लेते हैं, कहीं अंजनकी समान काले हो जाते हैं, कहीं छोटे२कणोंकी वर्षा करते हैं ॥१६॥ इस प्रकार आकाशमें प्राप्त हुए मेघोंसे
मानो इन्द्र आकाशको शोभित करता है और कभी यह बादल शीकरके मोतियों अर्थात् फुहारसे आकाशको शोभित करते हैं ॥१७॥ इस प्रकार

सूर्यकी किरणों द्वारा जलकी वर्षा कराता है और वह सब जीवोंके सुखके निमित्त जल वर्षता है ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! जिस कारण कि, यह वर्षा इन्द्रसे होती है, इसी कारण वर्षामें प्रसन्न हुए सब राजा और हम प्रसन्न हो उत्सवसे इन्द्रकी पूजा करते हैं ॥ १९ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार इन्द्रके पूजनमें वृद्ध गोपोंका वचन सुन इन्द्रके प्रभावको जानते थे, तथापि श्रीकृष्ण यह वचन बोले ॥ १ ॥ हम वनवासी गोप सदा गोधनसे जीते हैं. गौ, पर्वत और वनही हमारे देवता हैं ॥ २ ॥ किसानोंकी खेती, वैश्योंका व्यापार जैसे आजी-

यस्मात्प्रावृडियं कृष्ण शक्रस्य भुवि भाविनी ॥ तस्मात्प्रावृषि राजानस्सर्वे शक्रं मुदा युताः ॥ महैस्सुरेशमर्चन्ति वयमन्ये च मानवाः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां गोपवाक्यं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ गोपवृद्धस्य वचनं श्रुत्वा शक्रपरिग्रहे ॥ प्रभावज्ञोऽपि शक्रस्य वाक्यं दामोदरोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ वयं वनचरा गोपास्सदा गोधनजीविनः ॥ गावोऽस्मद्दैवतं विद्धि गिरयश्च वनानि च ॥ २॥ कर्षुकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम् ॥ गावोऽस्माकं परा वृत्तिरेतत्त्रैविद्यमुच्यते ॥ ३ ॥ विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं परम् ॥ सैव पूज्यार्चनीया च सैव तस्योपकारिणी ॥ योऽन्यस्य फलमश्नानः करोत्यन्यस्य सत्क्रियाम् ॥ ४ ॥ द्वावनर्थौ स लभते प्रेत्य चेह च मानवः ॥ कृष्यन्ता प्रथिता सीमा सीमान्तं श्रूयते वनम् ॥ ५ ॥ वनान्ता गिरयस्सर्वे सा चाऽस्माकं गतिर्ध्रुवा ॥ श्रूयन्ते गिरयश्चापि वनेऽस्मिन्कामरूपिणः ॥ प्रविश्य तास्तास्तनवो रमन्ते स्वेषु सानुषु ॥ ६ ॥

विका है, इसी प्रकार हमारी गौ हैं. इस प्रकार यह तीन विद्या हैं ॥ ३ ॥ जो जिस विद्यासे युक्त है, वही उसकी देवता है. उसीकी पूजा अर्चा करनी चाहिये, उसीसे उसका उपकार होता है, जो दूसरेके फलकी इच्छा करके दूसरेकी सत्क्रिया करता है ॥ ४ ॥ वह मनुष्य मृतक होकर परलोकमें यहां और वहांभी दोनों अनर्थोंको भोगता है. खेतियोंका अन्त सीमा और सीमाका अन्त वन है ॥ ५ ॥ वनका अन्त पर्वत है, वह पर्वतही हमारे पूजनीय है और सुनाभी है कि इस वनके कामरूपी पर्वत हैं. वे अपनी गुफाओंमें अपने शरीरसे उपजे जीवोंद्वारा उनमें प्रवेश कर रमण करते हैं ॥ ६ ॥

वह केशरी सिंह और नखोंवाले व्याघ्र होकर अपने वनकी रक्षा करते हैं और वनके छेदन करनेवालोंको दुःखी करते हैं ॥७॥ जब वनवासी इनका विप्रिय करतेहैं, तो यह अपने पुरुषार्थसे उन दुःखदाइयोंको मारते हैं॥८॥ ब्राह्मण मंत्रयज्ञमें तत्पर हैं.खेती करनेवाले हलके यज्ञमें तत्पर हैं.गोप इसी प्रकार पर्वतके यज्ञमें तत्पर हैं इस कारण हमकोइस वनके गोवर्द्धन पर्वतका यजन करना चाहिये॥९॥ यही मुझे अच्छा लगता है इस कारण;हे गोपो! गिरियज्ञ प्रवृत्त किया जाय,कर्म करके सुखस्थान वृक्ष अथवा पर्वतका पूजन करे ॥१०॥ वहां कुंड मंडपादिका विस्तार करके पवित्र यज्ञीय पशु

भूत्वा केसरिणस्सिंहा व्याघ्राश्च नखिनां वराः ॥ वनानि स्वानि रक्षन्ति त्रासयन्तो वनच्छिदः ॥ ७ ॥ यदा चैषां विकुर्वन्ति ते वनालयजीविनः ॥ घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तान्पौरुषादेन कर्मणा ॥ ८ ॥ मन्त्रयज्ञपरा विप्रास्सीतायज्ञाश्च कर्षुकाः ॥ गिरियज्ञास्तथा गोपा इज्योस्माभिर्गिरिर्वने ॥९॥ तन्मह्यं रोचते गोपा गिरियज्ञः प्रवर्त्तताम्॥ कर्म कृत्वा सुखस्थाने पादपेष्वथ वा गिरौ॥१०॥ तत्र हत्वा पशून्मेध्यान्वितत्यायतने शुभे ॥ सर्वघोषस्य संदोहः क्रियतां किं विचार्यते ॥ ११ ॥ तं शरत्कुसुमापीडाः परिवार्य प्रदक्षिणम् ॥ गावो गिरिवरं सर्वास्ततो यान्तु पुनर्व्रजम् ॥ १२ ॥ प्राप्ता किलेयं हि गवां स्वादुतोयतृणा गणैः ॥ शरत्प्रमुदिता रम्या गतमेघजलाशया ॥ १३ ॥ प्रियकैः पुष्पितैर्गौरं श्यामं बाणासनैः क्वचित् ॥ कठोरतृणमाभाति निर्मयूररुतं वनम् ॥१४॥ विजला विमला व्योम्नि विबलाका विविद्युतः ॥ विवर्द्धन्ते जलधरा विदन्ता इव कुञ्जराः ॥ १५ ॥

हनन करो, विचार क्या करते हो, सब घोषोंको अपनी गौओंका दुग्ध एकत्र करना उचित है ॥ ११ ॥ उस पर्वतको शरदऋतुके पुष्पोंसे पूजित कर प्रदक्षिणा करो. सब गौओंको गोवर्द्धनपर ले चलो,फिर व्रजमें आओ॥१२॥ यह गौओंको श्रेष्ठ तृणादि देनेहारी शरत् प्राप्त हुई है, इसमें सब स्थान रम्य हैं.मेघोंमें जलभी नहीं रहा है॥१३॥कहीं सुन्दर फूलोंसे गौर वर्ण, कहीं झिंटिके फूलोंसे काली, कहीं तृणकी भूमि दीखती है, मोरोंके शब्दसे रहित वन है ॥१४॥ आकाश निर्मल हो गया, मेघ नहीं रहे, बकपंक्ति नहीं,बिजली नहीं, अब दांतहीन हाथीके समान मेघ विलसते हैं ॥१५॥

पत्तोंके समूह सुन्दर मेघकी वायुसे नवीन जलसे नीचे जो झुके सुन्दर विदित होते हैं ॥ १६ ॥ श्वेत वर्णके जलरूप मेघ पगडी, हंसरूपी चामर और चन्द्रमारूपी छत्र आकाशके अभिषेकके समान विदित होता है ॥ १७ ॥ हंसोंसे हंसती हुई, सारसोंसे शब्दायमान यह ऋतु शोभित है और वर्षा बीतनेसे मेघ सूक्ष्म हो रहे हैं ॥ १८ ॥ चकवाचकवीसे युक्त तटवाली, मंडलरूप नितम्बवाली, हंसोंके लक्षणसे हंसती हुई नदी सागररूप पतिको प्राप्त होती है ॥ १९ ॥ फूले कमलोंसे प्रसन्न हुआ जल,ताराओंसे विचित्र आकाशकी रात और दिन होनेसे एकसी शोभा

पटुना मेघनादेन नवतोयानुकर्षिणा ॥ पर्णोत्करघनास्सर्वे प्रसादं यान्ति पादपाः ॥ १६ ॥ सितवर्णाम्बुदोष्णीषं हंसचामरवीजितम् ॥ पूर्णचन्द्रामलच्छत्रं साभिषेकमिवाम्बरम् ॥ १७ ॥ हंसैः प्रहसितानीव समुत्क्रुष्टानि सारसैः ॥ सर्वाणि तनुतां यान्ति जलानि जलदक्षये ॥ १८ ॥ चक्रवाकस्तनतटाः पुलिनश्रोणिमण्डलाः ॥ हंसलक्षणहासिन्यः पतिं यान्ति समुद्रगाः ॥ १९ ॥ कुमुदोत्फुल्लमुदकं ताराभिश्चित्रमम्बरम् ॥ सममभ्युत्स्मयन्तीव शर्वरीष्वितरेतरम् ॥२०॥ मत्तक्रौञ्चावघुष्टेषु कलमापक्वपाण्डुषु ॥ निर्विष्टरमणीयेषु वनेषु रमते मनः ॥ २१ ॥ पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यश्च विकचोत्पलाः ॥ केदारास्सरितश्चैव सरांसि च श्रियाज्वलन् ॥ २२॥ पङ्कजानि च ताम्राणि तथान्यानि सितान्यपि ॥ उत्पलानि च नीलानि भेजिरे वारिजां श्रियम् ॥ २३ ॥ मदं जहुः सितापाङ्गा मन्दं ववृधिरेऽनिलाः ॥ अभवद्व्यभ्रमाकाशमभूच्च निभृतोऽर्णवः ॥ २४ ॥ ऋतुपर्यायशिथिलैर्वृत्तनृत्यसमुज्झितैः ॥ मयूराङ्गरुहैर्भूमिर्बहुनेत्रेव लक्ष्यते ॥ २५ ॥

हो रही है ॥ २० ॥ मतवाले चकवोंके समूहोंके मधुर शब्द, कुछेक पके पीले वर्णवाले वर्षासे निवृत्त हुए वनोंमें मन रमता है ॥ २१ ॥ खोदी हुई झील, तलाव और बावडीमें कमल खिल रहे हैं. केदार सरित सरोवर शोभित हो रहे हैं ॥ २२ ॥ श्वेत, लाल, नीले कमल जलकी शोभाको और अपनी शोभाको प्राप्त हो रहे हैं ॥ २३ ॥ मोर मदको त्यागते हैं और पवन मंद मंद चलती है, आकाश मेघों से हीन और सागर निभृत हो रहा है ॥२४॥ विशेषकर ऋतु के पर्यायसे शिथिल हुए मोरों के नृत्य करनेसे गिरे पंखरोंसे विदित होते हैं कि मानों पृथ्वीके अनेक नेत्र हैं॥२५॥

अपने पंकसे मलीन हुए किनारे तथा काशपुष्प लताओंसे आकुल हंससारसोंके सेवन करनेसे यमुना अतिशोभित हो रही है॥२६॥ समयपर पके हुए खेतोंमें तथा वनमें उत्पन्न हुई खेतीके और जलजन्तुओंके खानेवाले पक्षी मतवाले होकर विशेष कर शब्द कर रहे हैं ॥२७॥ जलवर्षा मेघोंने जिस खेतीको सींचा था;वह सब छोटी घास आदि कठिन पड गई है ॥ २८ ॥ और मेघमय वासको त्यागशरद ऋतुके गुण प्रकाशित हो रहे हैं. इस निर्मल आकाशमें चन्द्रमा निर्मल निवास करता है॥२९॥दूधवाली गौ दूना दूध देती हैं और बैल दूने प्रमत्त हो रहे हैं.वनकी लक्ष्मीकी दूनी शोभा

स्वपङ्कमलिनैस्तीरैः काशपुष्पलताकुलैः ॥ हंससारसविन्यासैर्यमुना भाति शोभना ॥२६॥ कलमापाकरम्येषु केदारेषु वनेषु च ॥ सस्यादा जलजादाश्च मत्ता विरुरुवुः खगाः ॥२७॥ सिषिचुर्यानि जलदा जलेन जलदागमे ॥ तानि सस्यान्यबालानि कठिनत्वं गतानि वै ॥२८॥ त्यक्त्वा मेघमयं वासश्शरद्गुणविदीपितः ॥ एष वै विमले व्योम्नि हृष्टो वसति चन्द्रमाः ॥२९॥ क्षीरिण्यो द्विगुणं गावः प्रमत्ता द्विगुणं वृषाः ॥ वनानां द्विगुणा लक्ष्मीस्सस्यैर्गुणवती मही ॥३०॥ ज्योतींषि घनमुक्तानि पद्मवन्ति जलानि च ॥ मनांसि च मनुष्याणां प्रसादमुपयान्ति वै ॥३१॥ असृजत्सविता व्योम्नि निर्मुक्तो जलदैर्भृशम् ॥ शरत्प्रज्वलितं तेजस्तीक्ष्णरश्मिर्विशोषयन् ॥३२॥ नीराजयित्वा सैन्यानि प्रयान्ति विजिगीषवः ॥ अन्योन्यराष्ट्राभिमुखाः पार्थिवाः पृथिवीक्षितः ॥३३॥ बन्धुजीवाभिताम्रासु बद्धपङ्कवतीषु च ॥ मनस्तिष्ठति कान्तासु चित्रासु वनराजिषु ॥३४॥ वनेषु च विराजन्ते पादपा वनशोभिनः ॥ असनाः सप्तपर्णाश्च कोविदाराश्च पुष्पिताः ॥ ३५ ॥

हो रही है॥३०॥ बादलोंके रहित होनेसे तारे कमलवाले सरोवर ऐस प्रसन्न हैं. जैसे कि मनुष्योंके मन प्रसन्न होते हैं ॥३१॥ आकाशमें सूर्य भी मेघोंसे रहित होनेके कारण अपनी किरणोंसे जलको शोषते हुए शरद ऋतुमें तेजको विस्तार करते हैं॥३२॥जीतनेकी इच्छा करनेवाले राजा सेनाको तैयार करके गमन करते हैं और वे राजा एक दूसरेके राज्यकी इच्छा करते हैं ॥३३॥ कंदूरी(जियापोता)के समान लाल वर्णवाली तथा विचित्र कान्तिसे युक्त बंधी हुई वनकी पंक्तियोंमें मन लगता है ॥३४॥ वनके शोभा देनेवाले वृक्ष वनमें विराजमान होते हैं.असना, सप्तपर्ण और कचनार

फूल रहे हैं ॥ ३५ ॥ शरपुंखा, दंति, प्रियंगु वृक्ष और सुवर्णपर्ण वृक्ष पुष्पित हो रहे हैं; सृमर एक प्रकार मृग और घूंक फिरते तथा चारों ओरसे केतकीकी शोभा हो रही है ॥ ३६ ॥ विशेष करके व्रजमें गागरोंके जल निकलनेके हास्यवाली यह शरद् व्रजमें प्रकाशवाली स्त्रीकी समान विचरती है ॥ ३७ ॥ निश्चयही देवताओंसे बढ़ा हुआ मेघ समयके सुखका स्थान तथा पक्षियोंका स्थान इस देवको देवताओंका बोध करता है॥ ३८॥ मेघके नष्ट होनेमें शरदमें श्रेष्ठ खेती होती है, नील चन्द्रमा और सूर्यके वर्णोंसे शोभित तथा विविध पक्षियोंसे रंजित ॥ ३९ ॥ फल

इषुसाह्वा निकुम्भाश्च प्रियकास्स्वर्णकास्तथा ॥ सृमराः पेचुकाश्चैव केतक्यश्च समन्ततः ॥ ३६ ॥ व्रजेषु च विशेषेण गर्गरोद्गारहासिषु ॥ शरत्प्रकाशयोषेव गोष्ठेष्वटति रूपिणी ॥ ३७ ॥ नूनं त्रिदशभूयिष्ठं मेघकालसुखोषितम् ॥ पतत्रिकेतनं देवं बोधयन्ति दिवौकसः ॥ ३८ ॥ शरद्येवं सुसस्यायां प्राप्तायां प्रावृषः क्षये ॥ नीलचन्द्रार्कवर्णैश्च रचितं बहुभिर्द्विजैः ॥ ३९ ॥ फलैः प्रवालैश्च घनमिन्द्रचापघनोपमम् ॥ भवनाकारविटपं लतापरममण्डितम् ॥ ४० ॥ विशालमूलावनतं पवनाभोगमण्डितम् ॥ अर्चयामो गिरिं देवं गाश्चैव च विशेषतः ॥४१॥ सावतंसैर्विषाणैश्च बर्हापीडैश्च दंशितैः ॥ घण्टाभिश्च प्रलम्बाभिः पुष्पैश्शारदिकैस्तथा ॥४२॥ शिवाय गावः पूज्यन्तां गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम् ॥ पूज्यतां त्रिदशैश्शक्रो गिरिरस्माभिरिज्यताम् ॥ ४३ ॥ कारयिष्यामि गोयज्ञं बलादपि न संशयः ॥ यद्यस्ति मयि वः प्रीतिर्यदि वा सुहृदो वयम् ॥ ४४ ॥

और प्रवालोंसे सघन, इन्द्रचापके घनकी समान भवनके आकारवाले विटप लता वेलोंसे मंडित ॥ ४० ॥ विशाल मूलोंसे झुके, पवनके आभोगसे मंडित पर्वतकी हम पूजा करें और विशेष कर गौओंकीभी पूजा करें ॥ ४१ ॥ गहनोंसे युक्त सींगोंवाली, मोरके चंदोंसे गुथे मुकुटवाली, लम्बी २ घटा और शरद् ऋतुके फूलोंसे रमणीय ॥ ४२ ॥ मंगलके निमित्त गौओंका पूजन किया जाय. पर्वतके निमित्त यज्ञ प्रवर्त किया जाय. देवता इन्द्रकी पूजा करें और हम पर्वतकी पूजा करें ॥ ४३ ॥ मैं इस गौओंकी वृद्धिके यज्ञको अवश्य कराऊंगा इसमें संदेह नहीं. जो

तुम्हारी मुझमें प्रीति हो और मुझे अपना सुहृद समझते हो तो ॥ ४४ ॥ सबको निरन्तर गौओंकाही पूजन करना चाहिये, इसमें संदेह नहीं. इसमें साम उपायसे और आपकी मुझमें प्रीति हो तो सबके मंगलके निमित्त यह मेरा वचन विना विचारे तथा युक्त सत्य जानकर करो ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ श्रीकृष्णके वचन सुन वे सब गोपाल बहुत प्रसन्न हुए और उनकी अमृतरूप वाणीको शंकारहित हो करनेके निमित्त बोले ॥१॥ हे कृष्ण ! यह आपकी बडी श्रेष्ठ बुद्धि गौओंके हित करनेहारी है. यह गोपोंकी हित

गावो हि पूज्यास्सततं सर्वेषां नात्र संशयः ॥ यदि साम्ना भवेत्प्रीतिर्भवतां वैभवाय च ॥ एतन्मम वचस्तथ्यं क्रियतामविचारितम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ दामोदरवचः श्रुत्वा हृष्टास्ते गोषु जीविनः ॥ तद्वागमृतमासाद्य प्रत्यूचुरविशङ्कया ॥ १ ॥ तवैषा बाल महती गोपानां हितवर्द्धिनी ॥ प्रीणयत्येव नस्सर्वान्बुद्धिर्वृद्धिकरी गवाम् ॥ २ ॥ त्वं गतिस्त्वं रतिश्चैव त्वं वेत्ता त्वं परायणम् ॥ भयेष्वभयदस्त्वं नस्त्वमेव सुहृदां सुहृत् ॥३॥ त्वत्कृते कृष्ण घोषोऽय क्षेमी मुदितगोकुलः ॥ कृत्स्नो वसति शान्तारिर्यथा स्वर्गं गतस्तथा॥४॥ जन्मप्रभृति कर्मैतद्दैवैरसुकरं भुवि ॥ बोद्धव्याच्चाभिमानाच्च विस्मितानि मनांसि नः ॥ ५ ॥ बलेन च पराध्र्येन यशसा विक्रमेण च ॥ उत्तमस्त्वं मनुष्येषु देवेष्विव पुरंदरः ॥ ६ ॥ प्रतापेन च तीक्ष्णेन दीप्त्या पूर्णतयाऽपि च ॥ उत्तमस्त्वं च मर्त्येषु देवेष्विव दिवाकरः ॥ ७ ॥

करनेहारी हमको बहुत अच्छी लगती है ॥ २ ॥ तुमही हमारी गति रीति प्रीति और परायण हो. तुमही भयमें अभय देनेहारे तुमही मित्रोंके मित्र हो ॥३॥ हे कृष्ण ! आपहीके करनेसे यह गोकुल प्रसन्न और मंगलमय होता है; और शांत शत्रु हो जानेसे स्वर्गमें गये हुओंके समान निश्चिंत वास करता है ॥ ४ ॥ जो तुमने जन्म लेकर पृथ्वीमें कर्म किये हैं, वह देवताओंकोभी असुकर हैं, उन सब चरित्रोंको जानकर अभिमानसे हमारे मन विस्मित हो रहे हैं ॥ ५ ॥ महान बल यश और विक्रममें तुम सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ हो. जैसे देवताओंमें इन्द्र श्रेष्ठहैं ॥ ६ ॥ आपके पूर्ण प्रताप और

॥ ३६ ॥

दीप्तिसे तुम सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ हो. जैसे देवताओंमें सूर्य ॥ ७ ॥ कान्ति लक्ष्मी प्रसाद और मुखकी स्मितता करके तुम मनुष्योंमें सबसे उत्तम हो. जैसे देवताओंमें चन्द्रमा वनशरीर और बालचरित्रमें आपके समान मनुष्योंमें कोईभी नहीं है॥८॥हे प्रभो!जो आपने गिरियज्ञके प्रति हमसे वाक्य कहे हैं, वह सागरकी वेलाक समान कौन उल्लंघन करनेको समर्थ है ॥९॥१०॥ हे पुत्र ! इन्द्रके यज्ञ स्थित रहो,परमश्रीमान् पर्वतका यजन करेंगे,आपके और गायोंके प्रीतिके अर्थ यह हमारा यज्ञ पर्वत हो ॥११॥दुग्धके अनेक मनोहर पदार्थ कल्पना किये जांय और जलपानके शोभित घडे स्थित

कान्त्या लक्ष्म्या प्रसादेन वदनेन स्मितेन च ॥ उत्तमस्त्वं च मर्त्येषु देवेष्विव निशाकरः ॥ ८ ॥ बलेन वपुषा चैव बाल्येन चरितेन च ॥ स्यात्ते शक्तिधरस्तुल्यो नतु कश्चन मानुषः ॥ ९ ॥ यत्त्वयाऽभिहितं वाक्यं गिरियज्ञं प्रति प्रभो ॥ कस्तल्लंघयितुं शक्तो वेलामिव महोदधिः ॥ १० ॥ स्थितश्शक्रमहस्तात श्रीमान्गिरिमहस्त्वयम् ॥ त्वत्प्रणीतोऽद्य गोपानां गवां हेतोः प्रवर्त्यताम् ॥ ११ ॥ भोजनान्युपकल्प्यन्तां पयसः पेशलानि च ॥ कुम्भाश्च विनवेश्यन्तामुदपानेषु शोभनाः ॥१२॥ पूर्यन्तां पयसा नद्यो द्रोण्यश्च विपुलायताः ॥ भक्ष्यं भोज्यं च पेयं तत्सर्वमुपनीयताम् ॥ १३ ॥ भाजनानि च मांसस्य न्यस्यन्तामोदनस्य च ॥ त्रिरात्रं चैव संदोहस्सर्वघोषस्य गृह्यताम् ॥ १४ ॥ विशस्यन्तां च पशवो भोज्या ये महिषादयः ॥ प्रवर्त्यतां च यज्ञोऽयं सर्वगोपससंकुलः ॥ १५ ॥ आनन्दजननो घोषो महान्मुदितगोकुलः ॥ तूर्यप्रणादघोषैश्च वृषभाणां च गर्जितैः ॥ १६ ॥ हम्भारवैश्च वत्सानां गोपानां हर्षवर्द्धनः ॥ दध्नो ह्रदो घृतावर्त्तः पयः कुल्यासमाकुलः ॥ १७ ॥

किये जांय ॥ १२ ॥ दूधकी नदी और कुल्या पूर्ण कर दी जांय. भक्ष्य, भोज्य और पीनेके सब पदार्थ प्रस्तुत करो ॥ १३ ॥ मांस और भातके भोजन तैयार किये जांय, तीन रातका सब गोपोंको यहांका दूध ग्रहण किया जाय ॥ १४ ॥ जो मेष महिषादि यज्ञकी बलिके योग्य हैं उन्हे ले चलो; इस प्रकार सब गोपोंसहित यह यज्ञ प्रवृत्त करो ॥१५॥ तब गोकुल सम्पूर्ण आनन्दमें भर गया. तूर्य और घोषके शब्दसे तथा बैलोंके गर्जनेसे॥१६॥गौओंके हम्भा शब्द और बछडोंके गोपोंको आनन्ददायक शब्द तथा घृतके ह्रद,घृतके आवर्त और दुग्धकी कुल्यासे समाकुल॥१७॥

मांस और चावलके ढेरसे जो कि श्रेष्ठ भात बनाया गया था और जिन चावलोंका ढेर एक दूसरे पर्वतकेसमान हो गया था.इसप्रकार इस गोवर्द्धनमें गौ आदिके सहित ब्रजवासियोंने यज्ञका आरम्भ किया॥१८॥गोप और गोपी प्रसन्नहो आनन्दसेभरगई औरभोजन करनेकेपदार्थोंके ढेरके ढेर कल्पित किये गये,अनेक प्रकारकी गध मालासे युक्त वस्तु लाई गई॥१९॥वह्निके निकट घृत और चरु लाया गया,इसप्रकार यज्ञकी विधि प्राप्त होनेसे गोप ब्राह्मणोंके साथमें शुभ लग्न और मुहूर्तमें यज्ञ करनेलगे ॥२०॥यज्ञके अन्तमें वह अन्न श्रेष्ठ दूध दही आदि मांसका स्वयं मायारूप कृष्ण उस पर्वतमें उत्पन्न हो भोग

मांसराशिः प्रभूताढ्यः प्रकाशौदनपर्वतः ॥ संप्रावर्त्तत यज्ञोऽस्य गिरेर्गोभिस्समाकुलः ॥ १८ ॥ तुष्टगोपजनाकीर्णो गोपनारीमनोहरः ॥ भक्ष्याणां राशयस्तत्र शतशश्चोपकल्पिताः ॥ गन्धमाल्यैश्च विविधैर्धूपैरुच्चावचैस्तथा ॥ १९ ॥ अथाधिश्रृतपर्यन्ते संप्राप्ते यज्ञसंविधौ ॥ यज्ञं गिरेस्स्थितौ सौम्ये चक्रुर्गोपा द्विजैस्सह ॥ २० ॥ यजनान्ते तदन्नं तु तत्पयो दधि चोत्तमम् ॥ मांसं च मायया कृष्णो गिरिर्भूत्वा समश्नुते ॥ २१ ॥ तर्पिताश्चापि विप्राग्र्यास्तुष्टास्संपूर्णमानसाः ॥ उत्तस्थुः प्रीतमनसस्स्वस्ति वाच्य यथासुखम् ॥ २२ ॥ भुक्त्वा चावभृथे कृष्णः पयः पीत्वा च कामतः ॥ संतृप्तोऽस्मीति दिव्येन रूपेण प्रजहास वै ॥ २३ ॥ तं गोपाः पर्वताकारं दिव्यस्रगनुलेपनम् ॥ गिरिमूर्ध्नि स्थितं दृष्ट्वा कृष्णं जग्मुः प्रधानतः ॥ २४ ॥ भगवानपि तेनैव रूपेणाच्छादितः प्रभुः ॥ सहितैः प्रणतो गोपैर्ववन्दात्मानमात्मना ॥ २५ ॥ तमूचुर्विस्मिता गोपा देवं गिरिवरे स्थितम् ॥ भगवंस्त्वद्वशे युक्ता दासाः किं कुर्मः किंकराः ॥ २६ ॥

लगाने लगे॥२१॥ब्राह्मणोंको तृप्तकिया सबके मनोरथ पूर्ण हुए तब वह ब्राह्मण प्रसन्नमन हो स्वच्छमनसे स्वस्तिवाचनकरके उठे ॥२२॥अवभृथ स्नानमें श्रीकृष्ण भोग लगाकर और यथेच्छ दुग्धपान करके मैं तृप्त होगया ऐसा कहकर अपने दिव्यरूपसे हंसने लगे ॥२३॥ उनको गोप पर्वतके समान आकार दिव्य माला और अनुलेपनसे युक्त गिरीके ऊपर कृष्णको स्थित देखकर उस पर्वतको सबसे श्रेष्ठ जानते हुए॥२४॥और भगवाननेभी उसी रूपसे गोपोंके सहित अपनेउस आच्छादित हुए रूपकी वन्दना की. जैसे कोई अपनी आत्माकी आत्मासेही वन्दना करताहो ॥२५॥ तब पर्वतश्रेष्ठपर स्थित हुए देवसे

गोप विस्मित होकर करने लगे हे भगवन् ! हम तुम्हारे दास तुम्हारे वशमें हैं, कहिये क्या करें ॥२६॥ तब वह गिरी प्रभावयुक्त वाणीसे उन गोपोंसे बोले; यदि तुम्हारी गौओंमें दया है तो आजसे मेरा यजन प्रतिवर्ष करते रहना ॥२७॥ मैंही तुम्हारा प्रथम देव सब श्रेष्ठकाम करनेहारा हूं. मेरे प्रतापसे अनन्त गौ तुम्हारे होगीं ॥ २८ ॥ इस प्रकार मेरी भक्ति करनेहारे तुम्हारा सब वन वनमें कल्याण होगा और मैं तुम्हारे साथ इस प्रकार रमण करूंगा. जसे इन्द्र स्वर्गमें रमण करता है ॥२९॥ और जो हमारे नन्दगोपादि प्रिय हैं इन गोपोंको प्रसन्न होकर मैं महाधन प्रदान करूंगा ॥३०॥

स उवाच ततो गोपान् गिरिप्रभवया गिरा ॥ अद्यप्रभृति चेज्योऽहं गोषु यद्यस्ति वो दया ॥ २७ ॥ अहं वः प्रथमो देवस्सर्वकाम करश्शुभः ॥ मत्प्रभावाच्च गवामयुतान्येव भोक्ष्यथ ॥ २८ ॥ शिवश्च वो भविष्यामि मद्भक्तानां वने वने ॥ रंस्ये च सह युष्माभिर्यथाः दिविगतस्तथा ॥ २९ ॥ ये चेम प्रथिता गोपा नन्दगोपपुरोगमाः ॥ एषां प्रीतः प्रयच्छामि गोपानां विपुलं धनम् ॥ ३० ॥ पर्याप्नुवन्तु क्षिप्रं मां गावो वत्ससमाकुलाः ॥ एवं मम परा प्रीतिर्भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥ ततो नीराजनार्थं हि वृन्दशो गोकुलानि तम् ॥ परिवव्रुर्गिरिवरं सवृषाणि समन्ततः ॥ ३२ ॥ ता गावः प्रद्रुता हृष्टास्सापीडस्तबकाङ्गदाः ॥ सस्रजापीडश‍ृङ्गाग्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥३३॥ अनुजग्मुश्च गोपालाः कालयन्तो धनानि च ॥ भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गा रक्तपीत सिताम्बराः ॥ ३४ ॥ मयूरचित्राङ्गदिनो भुजैः प्रहरणावृतैः ॥ मयूरपत्रवृन्तानां केशबन्धै सुयोजितैः ॥ ३५ ॥

तुम शीघ्रही सब गौओंको चारों ओर सदा चराया करो, इसमे मेरी परम प्रीति होगी, इसमें संदेह नहीं॥३१॥तब नीराजन करनेको गोपोंके समूह बैलों और गायोंको साथ ले पर्वतके चारों ओर स्थित हुए ॥ ३२ ॥ वे सैंकडों सहस्रों गौ प्रसन्न हो और पुष्पोंके गुच्छोंके समान शिरोभूषण धारे, श‍ृंगारके भूषणोंसहित माला आदि अंगमें धारे थे ॥३३॥ उनके पीछे माला धारे सहस्रों गोप हुए और द्रव्योंको गिनने लगे भक्तिसे उनके शरीर डूब रहे थे. लाल, पील,श्वेत, वस्त्र धारण किये थे ॥३४॥ मोरके चन्दोका गहना बनाकर हाथोंमें पहरे हुए तथा मोरोंकेही चन्दे बालोंमें लगाय॥३५॥

उस संघट्टमें प्राप्त हो वे गोप अधिक प्रकाशमान होने लगे और कोई वृषभोंपर चढकर प्रसन्नतासे नृत्य करने लगे॥३६॥और कोई शीघ्रतासे गमनकर गायोंको घेरने लगे. इस प्रकार जब गायोंकी आरति हो चुकी॥३७॥तब वह पर्वत शीघ्र अपनी देहसे अन्तर्ध्यान हो गये और कृष्णभी गोपोंसहित व्रजमें आये॥३८॥और गिरियज्ञके होनेसे आश्चर्यसे विस्मित हो गये और सब बाल वृद्ध गोप मधुसूदनकी स्तुति करने लगे॥३९॥इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥" तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचतं मारुतस्य वेधसः दाधार दक्षमुत्तम महर्विदं व्रजं च विष्णुः

बभ्राजुरधिकं गोपास्समवाये तदाद्भुते ॥ अन्ये वृषानारुरुहुर्नृत्यन्ति स्म परे मुदा ॥ ३६ ॥ गोपालास्त्वपरे गाश्च जगृहुर्वेगगामिनः ॥ तस्मिन्पर्यायनिवृत्ते गवां नीराजनोत्सवे ॥ ३७ ॥ अन्तर्द्धानं जगामाशु तेन देहेन सोऽचलः कृष्णोऽपि गोपसहितो विवेश व्रजमेव ह ॥ ३८ ॥ गिरियज्ञप्रवृत्तेन तेनाश्चर्येण विस्मिताः ॥ गोपास्सबालवृद्धा वै तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गिरियज्ञप्रवर्त्तनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ महे प्रतिहते शक्रस्स-क्रोधस्त्रिदशेश्वरः ॥ सांवर्त्तकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत् ॥ १ ॥ भो बलाहकमातङ्गाः श्रूयतां मम भाषितम् ॥ यदि वो मत्प्रियं कार्यं राजभक्तिपुरस्कृतम् ॥ २ ॥ एते वृन्दावनगता दामोदरपरायणाः ॥ नन्दगोपादयो गोपा विद्विषन्ति ममोत्सवम् ॥ ३ ॥ आजीवो यः परस्तेषां गोपत्वं च यतस्स्मृतम् ॥ ता गावस्सप्तरात्रेण पीडयन्तां वर्षमारुतैः ॥ ४ ॥ ऐरावतगतश्चाहं स्वयमेवाम्बु दारुणम् ॥ स्रक्ष्यामि वृष्टिं वातं च वज्राशनिसमप्रभम् ॥ ५ ॥

सखि वां अपोर्णुते " इस मंत्रका आशय इसमें वर्णन किया है. वैशंपायन बोले; पूजाके नष्ट होनेसे स्वर्गपति इन्द्र क्रोधकर सांवर्तक नाम मेघाके गणोंसे कहने लगा॥१॥हे मेघश्रेष्ठो ! मेरा वचन सुनो.जो तुममें मुझे राजाकी भक्ति है तो मेरा प्रिय कार्य करो॥२॥ये जितने दामोदरके परायण वृंदावननिवासी हैं, इन नन्दगोपादिकोंने मेरा उत्सव नष्ट कर दिया है॥३॥जो उनकी परम आजीविका है, जो उनका गोपत्व है, उनका धन आदि सात रातमें नष्ट कर दो और पवन वर्षासे पीडा दो॥४॥और ऐरावतके ऊपर स्वयंभी आरूढ होकर वर्षा करूंगा और महाभयंकर वज्रभी उनपर त्यागन करूंगा॥५॥

तुम तीव्र वर्षा और पवनसे उन्हे पीडित करो. हय पीडित होकर पृथ्वीमें जीवन त्यागन करेंगे॥६॥इस प्रकार प्रभु इन्द्रने आज्ञा दी तब वे इन्द्रके शासनमें स्थित हो इन्द्रके प्रति बोले ॥ ७ ॥ तब घोरनाद बोले; भयानक वे जलधर पर्वतके समान बडे रूपको धारण कर पर्वतको आच्छादन कर ॥ ८ ॥ वारंवार बिजलीके चमकनेसे और इंद्रधनुषके निकलनेसे क्षणमात्रमें उन मेघोंने अंधकारमय आकाशको कर दिया ॥ ९ ॥ १० ॥ वे परस्पर पर्वतक समान एक दूसरेसे मिलकर आकाशको आच्छादन कर दुर्दिन करने लगे ॥ ११ ॥ मनुष्योंके हाथके समान हाथीकी सूंडके

भवद्भिश्चण्डवर्षेण चरता मारुतेन च ॥ हतास्तास्सव्रजा गावस्त्यक्ष्यन्ति भुवि जीवितम् ॥ ६ ॥ एवमाज्ञापयामास सर्वान् जलधरान्प्रभुः ॥ प्रत्याहते वै कृष्णेन शासने पाकशासनः ॥ ७ ॥ ततस्ते जलदाः कृष्णा घोरनादा भयावहाः ॥ आकाशं छादयामासुस्सर्वतः पर्वतोपमाः ॥ ८ ॥ विद्युत्संपातजननाश्शक्रचापविभूषिताः ॥ तिमिरावृतमाकाशं चक्रुस्ते जलदास्तदा ॥ ९ ॥ गजा इवान्यसंयुक्ताः केचिन्मकरवर्चसः ॥ नागा इवान्ये गगने चेरुर्जलदपुङ्गवाः ॥१०॥ तेऽन्योन्यं वपुषा बद्धा नागयूथायुतोपमाः ॥ दुर्दिनं विपुलं चक्रुश्च्छादयन्तो नभस्तलम् ॥११॥ नृहस्तनागहस्ताभ्यां वेणूनां चैव सर्वतः ॥ धाराभिस्तुल्यरूपाभिर्ववृषुस्ते बलाहकाः ॥ १२ ॥ समुद्रं मेनिरे तं हि खमारूढं नृचक्षुषः ॥ दुर्विगाह्यमपर्यन्तमगाधं दुर्दिनं महत् ॥ १३ ॥ न वापतन्वै खगमा दुद्रुवुर्मृगजातयः ॥ पर्वताभेषु मेघेषु खे नदत्सु समन्ततः ॥ १४ ॥ नष्टसूर्येन्दुसदृशैर्मेघैर्नभसि दारुणैः ॥ अतिवृष्टेन लोकस्य विरूपमभवद्वपुः ॥ १५ ॥

समान तथा वांसके समान बूंदोंसे बडे जोरसे जल बरसाने लगे॥१२॥तब वे गोपादि वहांके मनुष्य आकाशमें स्थित समुद्र मानने लगे और चमत्कृत हो बोले बडा भारी दुर्दिन हो गया ॥१३॥ न पक्षी उड सके थे, न मृगादि चलनेको समर्थ हुए, पर्वतके समान मेघ चारों ओरसे शब्द करने लगे॥१४॥प्रलय कालमें जैसे सूर्यचन्द्रमाके नष्ट करनेहारे मेघ हों ऐसे दारुण मेघ आकाशमें आच्छादित हो गये. बहुत वर्षा होनेसे जगत् विरूप

हो गये ॥१५॥ मेघोंके समूहसे तारादिकोंकी कान्ति नष्ट हो गई; इस प्रकार चंद्रमा सूर्यसे रहित कान्तिहीन आकाश हो गया ॥ १६ ॥ जिस समय मेघ एकही वार जल त्यागन करने लगे तब चारों ओरसे पृथ्वी जलमय हो गई॥१७॥मोर शब्द करने लगे तथा पक्षीभी भयभीत हो थोडा शब्द करने लगे. नदी वृद्धिको प्राप्त हो एक दूसरे जलस्थानसे मिल गई ॥ १८ ॥ मेघोंके गर्जनाशब्दसे वृक्षोंसहित तृण कम्पित होकर कांपने लगे॥१९॥लोकोंका अन्तकालही मानों आ गया, पृथ्वी अवश्यही एकार्णव हो जायगी.इस प्रकार भयभीत होकर गोपगण कहने लगे ॥ २० ॥

मेघौघनिष्प्रभाकारमदृश्यद्रुहतारकम् ॥ चन्द्रसूर्यांशुरहितं खं बभूवातिनिष्प्रभम्॥१६॥वारिणा मेघमुक्तेन मुच्यमानेन चासकृत् ॥ आबभौ सर्वतस्तत्र भूमिस्तोयमयी यथा ॥ १७ ॥ विनेदुर्बर्हिणस्तत्र तोककलपरुताः खगाः ॥ विवृद्धिं निम्नगा याताः प्लवगास्संप्लुवं गताः ॥१८॥ गर्जितेन च मेघानां पर्जन्यनिनदेन च ॥ तर्जितानीव कम्पन्ते तृणानि तरुभिस्सह ॥१९॥ प्राप्तोऽन्तकालो लोकानां व्यक्तमेकार्णवा मही ॥ इति गोपगणा वाक्यं व्याहरन्ति भयार्दिताः ॥२०॥ तेनोत्पाताम्बुवर्षेण गावो विप्रहता भृशम् ॥ हम्भारवैः क्रन्दमाना न चेलुः स्तम्भितोपमाः ॥ २१ ॥ निष्कम्पसक्थिचरणा निष्प्रयत्नखुराननाः ॥ हृष्टरोमार्द्रतनवः क्षामकुक्षिपयोधराः ॥२२॥ काश्चित्प्राणान् जहुः श्रान्ता निपेतुः काश्चिदातुराः ॥ काश्चित्सवत्साः पतिता गावश्शीकरवेजिताः ॥२३॥ काश्चिदाक्रम्य क्रोडेन वत्सांस्तिष्ठन्ति मातरः ॥ विमुखाः श्रान्तसक्थ्यश्च निराहारा कृशोदराः ॥ २४ ॥ पेतुरार्त्ता वेपमाना गावो वर्षपराजिताः ॥ वत्साश्चोन्मुखका बाला दामोदरमुखाः स्थिताः ॥ त्राहीति वदनैर्दीनैः कृष्णमुचुरिवार्दिताः ॥ २५ ॥

उस उत्पातके जल वर्षनेसे गौं बडी पीडित हुई और हंभा शब्दसे चिल्लाती हुई एक स्थानमें स्थित हो चलनेको समर्थ न हुई ॥२१॥ जांघे चरणोंसे निस्तब्ध, खुर और मुखसे निश्चल रुये खडे, शरीर गीले,कोख और दूध सुखे हुए ॥२२॥ कोई व्याकुल हो प्राण छोडने लगी, कोई व्याकुल हो गिर पडी, कोई जाडेसे कम्पित हो बछडेसहित गिर पडी ॥२३॥ कोई माता अपने छोटे बच्चोंको लेकर स्थित हो गई, कोई नीचेको विमुख और श्रान्त हुई स्थित थी और भोजन न करनेसे दुबले पेट हो रहे थे॥२४॥इस प्रकार वर्षासे व्याकुल गौ कांपती हुई गिरने लगीं और बछडे मुख

उठा उठाकर श्रीकृष्णकी ओर देखने लगे. मानो व्याकुल हो कृष्णचन्द्रसे कहते हैं कि हमारी रक्षा करो॥२५॥इस प्रकार दुर्दिनसे गायोंको नष्ट होता देखकर और गोपोंकोभी मरणके सन्मुख देखकर कृष्णको क्रोध आया॥२६॥ वह तत्काल आत्माद्वारा आपको विचार कर बोले कि मैंने इसका उपाय सोच लिया है ॥ २७ ॥ सो अब मैं वनसहित इस पर्वतको उखाडकर वर्षासे रक्षा होने योग्य गौओंके निमित्त दुर्धर स्थान निर्माण करूं ॥२८॥ मुझे. पृथ्वीके घरके समान इस पर्वतको धारण करना चाहिये. यह जो व्रजगायोंको दुःख है सो जाता रहेगा और यह सब मेरे वंशमें

गवां तत्कदनं दृष्ट्वा दुर्दिनागमजं महत् ॥ गोपांश्चासन्ननिधनान्कृष्णः कोपं समादधे ॥ २६ ॥ स चिन्तयित्वा संरब्धो दृष्टो योगो मयेति च ॥ आत्मानमात्मना वाक्यमिदमूचे प्रियंवदः ॥ २७ ॥ अद्याहमिममुत्पाट्य सकाननवनं गिरिम् ॥ कल्पयेयं गवां स्थानं वर्षत्राणाय दुर्द्धरम् ॥ २८ ॥ अयं धृतो मया शैलः पृथ्वीगृहनिभोपमः ॥ त्रास्यते सव्रजा गा वै मद्वश्यश्च भविष्यति ॥२९॥ एवं स चिन्तयित्वा तु कृष्णस्सत्यपराक्रमः ॥ बाह्वोर्बलं दर्शयिष्यन्समीपं तं महीधरम् ॥३०॥ दोर्भ्यामुत्पाटयामास कृष्णो गिरिरिवाचलः ॥ स धृतस्सङ्गतो मेघैर्गिरिस्सव्येन पाणिना ॥ गृहभावं गतस्तत्र गृहाकारेण वर्चसा॥३१॥ भूमेरुत्पाट्यमानस्य तस्य शैलस्य सानुषु ॥ शिलाः प्रशिथिलाश्चेलुर्विनिष्पेतुश्च पादपाः ॥ ३२ ॥ शिखरैर्घूर्णमानैश्च सीदमानैश्च पादपैः ॥ विधूतैश्चोच्छ्रितः शृङ्गैरगमः खगमोऽभवत् ॥ ३३ ॥

हो जायगी॥ २९ ॥ इस प्रकार सत्यपराक्रमी श्रीकृष्ण चार कर अपनी बाहोंका बल दिखाते हुए पर्वतके समीप गये ॥ ३० ॥ और उस अचल पर्वतको अपनी बाहोंसे मेघोंके साथही उस पर्वतको उखाड लिया. मेघोंके साथही उस पर्वतको श्रीकृष्णने अपने दहने हाथपर धारणकर लिया. चारों ओर घरकेसा आकार होने वह महाघरके समान शोभित हुआ ॥ ३१ ॥ पर्वतके उखाडनेके समय उसके शिखर शिला और वृक्ष चलायमान हो गये और गिर गये ॥३२॥ शिखरोंके घूमने और पर्वतोंके चूर्ण होनेसे और ऊंचे शृङ्गोंके टूटनेसे वह

अचल आकाशमें चलतासा दीखने लगा॥३३॥मेघोंके समूह एक हो उसके चारों ओर फिरने लगे और पत्थरसमूहोंके भग्न होनेसे पर्वत चलायमान हो गया ॥ ३४ ॥ उस समय उन व्रजवासियोंको मेघोंका शब्द, पत्थरोंका शब्द, वायुका शब्द और गर्जनेका शब्द कुछ भी सुनाई नहीं देता था ॥३५॥ पर्वतसे मिली मेघोंकी धारा और पर्वतका जल दोनों एकसे विदित होते थे और पर्वत उन सबको धारण करता था ॥ ३६ ॥ क्या यह पर्वत अपने पंखोंसे उड रहा है. इस प्रकार विद्याधर, गंधर्व, उरग, अप्सरा चारों ओरसे कह रही थीं ॥ ३७ ॥ हाथके ऊपर धारण किये और

चलत्प्रस्रवणैः पार्श्वैर्मेघौघैरेकतां गतैः ॥ भिद्यमानाश्मनिचयश्चचाल धरणीधरः ॥ ३४ ॥ न मेघानां प्रवृष्टानां न शैलस्याश्मवर्षिणः ॥ विविदुस्ते जना रूपं वायोस्तस्य च गर्जतः ॥३५॥ मेघैस्सशैलसंस्थानैर्नीलैः प्रस्रवणार्पितैः ॥ मिश्रीकृत इवाभाति गिरिरुद्दामबर्हवान् ॥३६॥ आप्लुतोऽयं गिरिः पक्षैरिति विद्याधरोरगाः ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव वाचो मुञ्चन्ति सर्वशः ॥ ३७ ॥ स हस्ततलविन्यस्तो मुक्तमूलः क्षितेस्तलात् ॥ रीतोर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः ॥ ३८ ॥ कानिचिच्छिथिलानीव संच्छिन्नार्द्धानि कानिचित् ॥ गिरेर्मेघप्रवृष्टानि तस्य शृङ्गाणि चाभवन् ॥ ३९ ॥ गिरिणा कम्पमानेन कम्पितानां तु शाखिनाम्॥पुष्पमुच्चावचं भूमौ व्यशीर्यत समन्ततः ॥ ४० ॥ निस्सृताः पृथुमूर्द्धानस्स्वस्तिकोद्ध्वविभूषिताः ॥ द्विजिह्वपतयः क्रुद्धाः खेचराः खे समन्ततः ॥ ४१ ॥ आर्तिं जग्मुः खगगणा वर्षेण च भयेन च ॥ उत्पत्योत्पत्य गगनात्पुनः पेतुरवाङ्मुखाः ॥४२॥ रेसुरारोषितास्सिंहास्सजला इव तोयदाः ॥ गर्गरा इव मथ्यन्तो नेदुश्शार्दूलपुङ्गवाः ॥ ४३ ॥

पृथ्वीसे बलसे उखाडे हुए इस पर्वतकी कांसी पीतलकी खान चांदी सोनेसी दीखती हैं।।३८।। कोई शिखर सम्पूर्ण टूट गया,कोई शिखर आधा टूट गया, इस प्रकार मेघके वर्षनेसे पर्वतके शिखरोंकी दशा हुई।।३९।।पर्वतके कांपनेसे वृक्षोंके भी कांपनेके कारण उनके फूल चारों ओर पृथ्वीमें विखर गये ॥ ४० ॥ और उस पर्वतके भारी २ शृङ्ग ऊपरके घरोंसे विभूषित गिर गये और सर्पोंके स्वामी भी क्रोधकर निकले तथा पक्षीभी चारों ओरसे ॥४१॥ वर्षाके भयसे महादुःखी हुए आकाशमें उडते और फिर मेघसे हत हो नीचेको मुखकर पृथ्वीमें गिरते थे ॥४२॥ क्रोधको प्राप्त हो

॥ ४० ॥

मेघके समान शब्दवाले सिंहभी दहाडने लगे और दही मथनेके समान शब्द शार्दूल करने लगे॥४३॥विषम स्थान जलसे समान हो गये और समान गंभीरहो गये. इस प्रकार विदीर्ण देहका वह पर्वत दूसरेही आकारमें दीखने लगा ॥ ४४ ॥ बहुत वर्षा होनेसे मेघोंका ऐसा रूप हो गया जैसा कि त्रिपुरासुरके युद्धके समय शिवजीने पुर आकाशमें थाम दिया हो॥४५॥वह महान् पर्वत श्रीकृष्णकी भुजाके ऊपर धरा हुआ ऐसा शोभित हुआ जैसे कोई मेघसे ढका हुआ नील पर्वतरूपी छत्र शोभित होता हो॥४६॥मेघोंसे सोया हुआसा गुहारूपी नेत्र मूंद पर्वत कृष्णकी भुजाओंपर आकाशमें सोता

विषमैश्च समीभूतैस्समैश्चात्यन्तदुर्गमैः ॥ व्यावृत्तदेहस्स गिरिरन्य एवोपलक्ष्यते ॥४४॥ अतिवृष्टस्य तैर्मेघैस्तस्य रूपं बभूव ह ॥ स्तम्भितस्येव रुद्रेण त्रिपुरस्य विहायसि ॥४५॥ बाहुदण्डेन कृष्णस्य विधृतं सुमहत्तदा ॥ नीलाभ्रपटलच्छन्नं तद्गिरिच्छत्रमा- बभौ ॥४६॥ स्वप्नायमानो जलदैर्निमीलितगुहामुखः ॥ बाहूपधाने कृष्णस्य प्रसुप्त इव खे गिरिः ॥४७॥ निर्विहङ्गरुतैर्वृक्षैर्निर्म- यूररुतैर्वनैः ॥ निरालम्ब इवाभाति गिरिस्स्वशिखरैर्वृतः ॥४८॥ पर्यस्तैर्घूर्णमानैश्च प्रचलद्भिश्च सानुभिः ॥ सज्वराणीव शैलस्य वनानि शिखराणि च ॥ ४९ ॥ उत्तमाङ्गगतास्तस्य मेघाः पवनवाहनाः ॥ त्वर्यमाणा महेन्द्रेण तोयं मुमुचुरक्षयम् ॥ ५० ॥ स लम्बमानः कृष्णस्य भुजाग्रे सघनो गिरिः ॥ चक्रारूढ इवाभाति देशो नृपतिपीडितः ॥ ५१ ॥ स मेघनिचयस्तस्थौ गिरिं तं परिवार्य ह ॥ पुरं पुरस्कृत्य यथा स्फीतो जनपदो महान् ॥ ५२ ॥

हुआसा दीखने लगा॥४७॥विना पक्षियोंके शब्दके वृक्ष और विना मोरोंके शब्दके वन हो गया.वह पर्वत अपने शिखरोंसहित निरालम्ब होनेसे शोभित होने लगा ॥४८॥ चारों तरफसे घूमते शृगोंको घेरे पर्वतके बन और शिखर मेघोंसे ज्वरके समान दुःखी हो गये॥४९॥ पवनवाहन मेघ उस पर्वतके शिखरपर प्राप्त हो इन्द्रकी प्रेरणासे अक्षय जल वर्षाने लगे॥५०॥परन्तु वह पर्वत श्रीकृष्णकी भुजाओंमें धरा हुआ,राजासे पीडित हुए देशके समान, चक्रमें आरूढ हुएके समान शोभित हुआ॥५१॥इस प्रकार उस पर्वतको घेरकर मेघस्थित हुए.जैसे बडे देशको आगे कर बढे हुए देश रहते हैं॥५२॥

इसपर उस पर्वतको हाथपर धरे मंद मुस्काते गोपोंके रक्षक श्रीकृष्ण प्रजापतिके समान बोले ॥५३॥ यह देवतोंकोभी दुष्प्राप्य अलौकिक प्रभावसे मेरा द्वार घररूप पर्वत किया गया है. वहां पवनका भी विकार नहीं और गौओंकोभी आनंददायक है ॥५४॥गायोंके समूह शान्तिके निमित्त शीघ्रही इसमें प्रवेश करो.निर्वात देशमें यथासुख वसो॥५५॥और अपने२निवासका स्थानविभाग कर लो.मैंने वहां वर्षा आनी रोक दी है. पर्वत उखाडनेसे यह बडी पृथ्वी मैंने निर्माणकी है. ॥५६॥पांच कोशके घेरे और एक कोशके लम्बे चौडे प्रमाणमें स्थान कल्पना किया.कृष्ण तो त्रिलोकीकी रक्षा

निवेश्य तं करैश्शैलं तोलयित्वा च सस्मितम् ॥ प्रोवाच गोप्ता गोपानां प्रजापतिरिव स्थितः ॥ ५३ ॥ एतद्देवैरसंभाव्यं दिव्येन विधिना मया ॥ कृतं गिरिगृहं गोपा निर्वातं शरणं गवाम् ॥५४॥ क्षिप्रं विशन्तु यूथानि गवामिह हि शान्तये ॥ निर्वातेषु च देशेषु निवसन्तु यथासुखम् ॥ यथाश्रेष्ठं यथायूथं यथासारं यथासुखम् ॥ ५५ ॥ विभज्यतामयं देशः कृतं वर्षनिवारणम् ॥ शैलोत्पाटनभूरेषा महती निर्मिता मया ॥५६॥ पञ्चक्रोशप्रमाणेन क्रोशैकविस्तरो महान् ॥ त्रैलोक्यमप्युत्सहते रक्षितुं किं पुनर्व्रजम् ॥५७॥ ततः किलकिलाशब्दो गवां हम्भारवैस्सह ॥ गोपानां तुमुलो जज्ञे मेघनादश्च बाह्यतः ॥ ५८ ॥ प्राविशन्त ततो गावो गोपैर्यूथप्रकल्पिताः ॥ तस्य शैलस्य विपुलं प्रदरं गह्वरोदरम् ॥ ५९ ॥ कृष्णोऽपि मूले शैलस्य शैलस्तम्भ इवोच्छ्रितः॥ दधारैकेन हस्तेन शैलं प्रियमिवातिथिम् ॥ ६० ॥ ततो व्रजस्य भाण्डानि युक्तानि शकटानि च ॥ विविशुर्वर्षभीतानि तद्गृहं गिरिनिर्मितम् ॥६१॥ अतिदैवं तु कृष्णस्य दृष्ट्वा तत्कर्म वज्रभृत् ॥ मिथ्याप्रतिज्ञो जलदान्वारयामास वै विभुः ॥ ६२ ॥

करसकतेहैंव्रजकी बात तो क्याहै ॥५७॥ तब गायोंके हंभा शब्दके साथही किलकिला शब्द मेघके शब्दके समान गोपोंका होने लगा ॥ ५८ ॥ तब गोपोंसे यूथोंकी कल्पना की हुई गौ उस पर्वतके बडे भारी पेटमें समाने लगीं ॥ ५९ ॥ और कृष्ण उस पर्वतके बीचमें स्तम्भके समान शोभित होते थे और प्रिय अतिथिका सन्मान करनेको मानो इसको धारण किये हैं ॥६०॥ तब व्रजके सब भाण्ड छकडे उस पर्वतगृहके नीचेही लाकर वर्षाके भयसे रखे गये ॥६१॥ इन्द्रने श्रीकृष्णके यह देवताओंकोभी दुस्तर कर्म देखकर मिथ्या प्रतिज्ञा होकर मेघोंको निवारण किया ॥६२॥

सात राततक बराबर जल वर्षता रहा. व्रजभूमिपर कोईभी उत्सव नहीं हुआ. तब इन्द्र मेघोंसहित स्वर्गको गये॥ ६३॥ इस प्रकार सात रातके बीतने और इन्द्रके निवृत्त होनेपर मेघ दूर हुआ. बादल निर्मल होनेसे सूर्यका प्रकाश हुआ ॥ ६४॥ गौ उसी मार्गसे फिर अपने २ मार्गको चली गईं और फिर गोपभी अपने अपने स्थानोंमें आये॥ ६५॥ कृष्णने भी पर्वतको जहांसे उठाया था उसी स्थानमें स्थापन कर दिया इस प्रकार वरदायक प्रभुने मनुष्योंके कल्याणके निमित्त यह लीला की ॥ ६६ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ छ ॥ वैशंपायन बोले; जब

सप्तरात्रे तु निर्वृत्ते धरण्यां विगतोत्सवः ॥ जगाम संवृतो मेघैर्वृत्रहा स्वर्गमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ निर्वृत्ते सप्तरात्रे तु निष्प्रयत्ने शतक्रतौ ॥ गताभ्रे विमले व्योम्नि दिवसे दीप्तभास्करे ॥६४॥ गावस्तेनैव मार्गेण परिजग्मुर्यथागतम् ॥ स्वं च स्थानं ततो घोषः प्रत्ययात्पुनरेव सः ॥ ६५ ॥ कृष्णोऽपि तं गिरिश्रेष्ठं स्वस्थाने स्थावरात्मवान् ॥ प्रीतो निवेशयामास शिवाय वरदो विभुः ॥ ६६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोवर्द्धनोद्धरणं नामअष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ धृतं गोवर्द्धनं दृष्ट्वा परित्रातं च गोकुलम् ॥ कृष्णस्य दर्शनं शक्रो रोचयामास विस्मितः ॥ १ ॥ स निर्जलाम्बुदाकारं मत्तं मदजलोक्षितम् ॥ आरुह्यैरावतं नागमाजगाम महीतलम् ॥ २ ॥ स ददर्शोपविष्टं वै गोवर्द्धनशिलातले ॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणं पुरुहूतः पुरंदरः ॥ ३ ॥ तं वीक्ष्य बालं महता तेजसा दीप्तमव्ययम् ॥ गोपवेषधरं विष्णुं प्रीतिं लेभे पुरंदरः ॥ ४ ॥ तं सोऽम्बुजदलश्यामं कृष्णं श्रीवत्सलक्षणम् ॥ पर्याप्तनयनश्शक्रस्सर्वैर्नेत्रैरुदैक्षत ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णने गोवर्द्धन हाथसे धर दिया, गोकुलकी रक्षा की, तब इन्द्रने इनके दर्शनकी इच्छा की ॥ १॥ तब वह निर्जल मेघके आकारसे मतवाले मदके जलसे भीजे ऐरावत हाथीपर चढकर पृथ्वीमें आया ॥ २ ॥ इन्द्रने अद्भुत कर्म करनेहारे श्रीकृष्णको गोवर्द्धनकी शिलाके ऊपर बैठे हुए देखा ॥ ३ ॥ इस प्रकार बडे तेजसेदीप्तिमान् अविनाशी बालक गोपवेषधारी विष्णुको देख इन्द्र प्रसन्न हुआ ॥ ४ ॥ कमलदलके समान श्याम कृष्ण

शरीर श्रीवत्ससे लक्षित बडे नेत्रोंवाले, श्रीकृष्णको इन्द्र सहस्त्रों नेत्रोंसे देखने लगा ॥ ५ ॥ मृत्युलोकमें इनको देवताओके समान महालक्ष्मीसे सेवित देखा.इस प्रकार शिलातलपर बैठे श्रीकृष्णको देख इन्द्र महालज्जित हुआ॥६॥उन बैठे हुए श्रीकृष्णके दोनों ओर अन्तर्ध्यान हुए गरुडजी अपने दोनों पंखोंसे उनकी छाया करते थे॥७॥इस प्रकार उनको वनमें अकेले लोकके वृत्तान्त जाननेमें तत्पर श्रीकृष्णको बैठा देखा, हाथीपैसे उतरकर इन्द्र श्रीकृष्णके निकट उपस्थित हुआ॥८॥जब वह दिव्य माला चंदन रागादि लगाये वज्र पूर्ण करनेहारे इन्द्रभी श्रीकृष्णके निकट जाकर शोभित हुए॥९॥

दृष्ट्वा चैनं श्रिया जुष्टं मर्त्यलोकेऽमरोपमम् ॥ सूपविष्टं शिलापृष्ठे शक्रस्स व्रीडितोऽभवत् ॥ ६ ॥ तस्योपविष्टस्य मुखं पक्षाभ्यां पक्षिपुङ्गवः ॥ अन्तर्द्धानं गतश्छायां चकारोरगभोजनः ॥ ७ ॥ तं विविक्ते वनगतं लोकवृत्तान्ततत्परम् ॥ उपतस्थे गजं हित्वा कृष्णं बलनिषूदनः ॥ ८ ॥स समीपगतस्तस्य दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ रराज देवराजो वै वज्रपूर्णकरः प्रभुः ॥ ९ ॥ किरीटेनार्कतुल्येन विद्युदुद्योतकारिणा ॥ कुण्डलाभ्यां स दीप्याभ्यां सततं शोभिताननः ॥ १० ॥ पञ्चस्तबकलम्बेन हारेणोरसि भूषितः ॥ सहस्रपत्रकान्तेन देहभूषणकारिणा ॥ ईक्षमाणः सहस्रेण नेत्राणां कामरूपिणाम् ॥ ११ ॥ त्रिदशाज्ञापनार्थेन मेघनिर्घोषकारिणा ॥ अथ दिव्येन मधुरं व्याजहार स्वरेण तम् ॥ १२ ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धन ॥ अतिदिव्यं कृतं कर्म त्वया प्रीतिमता गवाम् ॥ १३ ॥ मयोत्सृष्टेषु मेघेषु युगान्तावर्तकारिषु ॥ यत्त्वया रक्षिता गावस्तेनास्मि परितोषितः ॥ १४ ॥

बिजलीके समान प्रकाशमान किरीट धारे दिव्य कुण्डलोंसे शोभित मुख॥१०॥पांच गुच्छोंसे लम्बायमान हार हृदयमें पडा हुआ सहस्रदलके कमलकी कान्तिवाले देहसे भूषण धारे और कामरूपी सहस्र नेत्रोंसे देखते हुए ॥११॥देवताओंको आज्ञा देनेमें मेघके समान गंभीर ध्वनिसे युक्त वह इन्द्र दिव्य मधुर वाणीसे श्रीकृष्णसे बोला ॥१२॥ हे कृष्ण हे महाबाहो! हे ज्ञातियोंके आनन्द बढानेवाले ! आपने गायोंकी प्रीति बढानेवाले दिव्य कर्म किये हैं॥ १३ ॥ मेरे भेजे हुए प्रलय करनेवाले मेघोंसे जो आपने गायोंकी रक्षा की, इससे मैं सन्तुष्ट हूं ॥ १४ ॥

जो यह उत्तम पर्वत स्वायंभुव योग (जिससे भारी हलका और हलका भारी हो जाता है) से तुमने धारण किया है,इसे आकाशके घरकी समय देख कर कौन विस्मय नहीं हो॥१५॥ आपने मेरा यज्ञ बिगाडा इस कारण जो मैंने क्रोध करके सात राततक वर्षा की ॥१६॥ सो आपने यह दुरासद मेघकी वृष्टि निवारण की. मेरे होनेपर इसको देवता दानवभी निवारण नहीं कर सक्के ॥ १७ ॥ अहो हे कृष्ण ! आपने बडा प्रिय किया जो आप मनुष्यशरीर धारे रोषकरकेभी सम्पूर्ण वैष्णव तेज छिपाये हो ॥ १८ ॥ मैं जानता हूं कि आपने देवतोंका कार्य सिद्ध किया है जो आप मनुष्य हो,

स्वायंभुवेन योगेन यश्चायं पर्वतोत्तमः ॥ धृतो वेश्मवदाकाशे को ह्येतेन न विस्मयेत् ॥ १५ ॥ प्रतिषिद्धे मम महे मयेयं रुषितेन वै ॥ अतिवृष्टिः कृता कृष्ण गवां वै साप्तरात्रिकी ॥१६॥ सा त्वया प्रतिषिद्धेयं मेघवृष्टिर्दुरासदा ॥ देवैस्सदानवगणैर्दुर्निवार्या स्थिते ॥१७॥ अहो मे सुप्रियं कृष्ण यत्त्वं मानुषदेहवान् ॥ समग्रं वैष्णवं तेजो विनिर्गूहसि रोषितः ॥१८॥ साधितं देवतानां हि मन्येऽहं कार्यमव्ययम् ॥ त्वयि मनुष्यमापन्ने युक्ते चैव स्वतेजसा ॥ १९ ॥ सेत्स्यते सर्वकार्यार्थो न किंचित्परिहास्यते ॥ देवानां यद्भवान्नेता सर्वकार्यपुरोगमः ॥२०॥ एकस्त्वमसि देवानां लोकानां च सनातनः ॥ द्वितीयं नात्र पश्यामि यस्तेषां च धुरं वहेत् ॥२१॥ यथा हि पुङ्गवश्रेष्ठो ह्यग्रे धुरि नियोज्यते ॥ एवं त्वमसि देवानां मग्नानां द्विजवाहन ॥ २२ ॥ त्वच्छरीरगतं कृष्ण जगत्प्रकरणं त्विदम् ॥ ब्रह्मणा साधु निर्दिष्टं धातुभ्य इव काञ्चनम् ॥ २३ ॥ स्वयं स्वयंभूर्भगवान् बुद्ध्याथ वयसापि वा ॥ न त्वानुगन्तुं शक्नोति पङ्गुर्द्रुतगतिं तथा ॥ २४ ॥

आपके तेजसे युक्त हुए हो ॥ १९ ॥ आप सब कायको पूर्ण करेंगे कुछ शेष नहीं रहेगा जो आप देवताओंके नेता और सब कामके अगुआ हैं ॥ २० ॥ एकही आप देवता और लोकोंके सनातन देव हो दूसरा कोई नहीं है जो इनकी धुर धारण करे ॥२१॥ जिस प्रकार श्रेष्ठ वृष आगे धुरीमें नियुक्त किया जाता है.हे भगवन् ! गरुडपर चढनेहारे इसी प्रकार आप देवताओंको आपत्तिसे उबारनेहारे हैं ॥ २२ ॥ हे कृष्ण ! यह जगत्का प्रकरण आपहीके शरीरसे होता है,अर्थात् जैसे और धातुओंसे सुवर्ण इस प्रकार ब्रह्माजी तुमसे होकर जगत् बनाते हैं ॥२३॥ स्वयं ब्रह्माजी अपनी

बुद्धि अथवा बयसे आपको प्राप्त नहीं हो सक्ते जैसे लंगडा पर्वतपर नहीं चढ सक्ता ॥ २४ ॥ जैसे पर्वतोंमें हिमालय, ह्रदोंमें सागर, पक्षियोंमें गरुड श्रेष्ठ है ऐसे देवताओंमें आप हैं ॥२५॥ जलके नीचे लोक, तिस जलके ऊपर पर्वत है. पर्वतोंपर पृथ्वी और पृथ्वीपर मनुष्य है. पर्वत जलमें तरते हैं, वे नीचेसे पृथ्वीको धारे ऊपरतक निकले हुए हैं ॥२६॥ मनुष्य लोकसे ऊपर पक्षियोंकी गति है. आकाशके ऊपर सूर्य और वह स्वर्गका द्वार है ॥२७॥ उससे आगे विमानसे जानेलायक देवलोक है; हे कृष्ण ! जहां देवताओंने मुझे देवेन्द्र पदमें स्थापन किया है ॥२८॥ स्वर्गसे ऊपर ब्रह्म-

स्याणुभ्यो हिमवान् श्रेष्ठो ह्रदानां वरुणालयः ॥ गरुत्मान्पक्षिणां श्रेष्ठो देवानां च भवान् वरः ॥ २५ ॥ अपामधस्ताल्लोको वै तस्योपरि महीधराः ॥ नगानामुपरिष्टाद्भूः पृथिव्युपरि मानुषाः ॥२६॥ मनुष्यलोकादूर्ध्वं तु खगानां गतिरुच्यते ॥ आकाशस्योपरि रविर्द्वारं स्वर्गस्य भानुमान् ॥ २७ ॥ देवलोकः परस्तस्माद्विमानगमनो महान् ॥ यत्राहं कृष्ण देवानामैन्द्रे विनिहितः पदे ॥२८॥ स्वर्गादूर्ध्वं ब्रह्मलोको ब्रह्मर्षिगणसेवितः ॥ तत्र सोमगतिश्चैव ज्योतिषां च महात्मनाम् ॥२९॥ तस्योपरि गवां लोकस्साध्यास्तं पालयन्ति हि ॥ स हि सर्वगतः कृष्ण महाकाशगतो महान् ॥३०॥ उपर्युपरि तत्रापि गतिस्तव तपोमयी ॥ यां न विद्मो वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि पितामहम् ॥ ३१ ॥ लोकस्त्वधो दुष्कृतिनां नागलोकस्तु दारुणः ॥ पृथिवी कर्मशीलानां क्षेत्रं सर्वस्य कर्मणः ॥३२॥ खमस्थिराणां विषयो वायुना तुल्यवृत्तिनाम् ॥ गतिश्शमदमाढ्यानां स्वर्गस्सुकृतकर्मणाम् ॥३३॥ ब्राह्मे तपसि युक्तानां ब्रह्मलोकः परा गतिः ॥ गवामेव तु गोलोको दुरारोहा हि सा गतिः ॥ ३४ ॥

र्षियोंसे सेवित ब्रह्मलोक है वहां चन्द्रमा, नक्षत्र और महात्माओंकी गति है ॥२९॥ उसके ऊपर गोलोक है, उसकी साध्य नाम देवता पालना करते हैं.
हे कृष्ण ! वह महा आकाशके समान सर्वगत है अर्थात् महा आकाशमें है ॥ ३० ॥ उससे ऊपरभी आपकी तपोमयी गति है जिसको हम ब्रह्माजीसे पूछ करभी न जान पाये ॥३१॥ नीचे पापात्माओंके लोक हैं, नागलोक बडा दारुण है, यह पृथिवी कर्मशील पुरुषोंके सब कर्मोंका क्षेत्र है ॥ ३२ ॥ आकाश वायुवृत्तिवाले पक्षियोंका आश्रय है; स्वर्गमें शम-दमयुक्त पुण्यात्माओंकी गति होती है ॥ ३३ ॥ और ब्रह्मतप करनेवालोंकी ब्रह्मलोकही

परम गति है, गौओंका लोक है, वहां पहुँचना महाकठिन है ॥३४॥ हे कृष्ण ! वह गोलोक तुम्हारे साथ पृथ्वीमें आकर प्राप्त हुआ और दुःखी अवस्थामें पडा हुआ आपसेही रक्षित हुआ है ॥ ३५ ॥ सो मैं गौओंके वाक्यसेही प्रेरित हो और ब्रह्माकेभी वाक्य गौरवसे हे महाभाग ! आपके समीप आया हूं ॥३६॥ हे कृष्ण ! मैं भूतपति और देवताओंका राजा इन्द्र हूं. मैं अदितिके गर्भपर्यायसे तुम्हारा बडा भ्राता हूं ॥३७॥ तेजस्वी आपको जो मैंने मेघरूप तेज दिखाया; हे प्रभो ! वह आप सब क्षमा कीजिये ॥ ३८ ॥ उस प्रकार अपने सौम्यरूप तेजसे शान्त हुए हे कृष्ण !

स तु लोकस्त्वया कृष्ण सीदमानः कृतात्मना ॥ धृतो धृतिमता वीर निघ्नतोपद्रवान्गवाम् ॥ ३५ ॥ तदहं समनुप्राप्तो गवां वाक्येन चोदितः ॥ ब्रह्मणश्च महाभाग गौरवात्तव चागतः ॥ ३६ ॥ अहं भूतपतिः कृष्ण देवराजः पुरंदरः ॥ अदितेर्गर्भपर्याये पूर्वजस्ते पुरा कृतः ॥ ३७ ॥ स्वतेजस्तेजसा चैव यत्ते दर्शितवानहम् ॥ देवरूपेण तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि मे विभो ॥ ३८ ॥ एवं शान्तमनाः कृष्ण स्स्वेन सौम्येन तेजसा ॥ ब्रह्मणः शृणु मे वाक्यं गवां च गजविक्रम ॥ ३९ ॥ आह त्वां भगवान्ब्रह्मा गाव-श्चाकाशगा दिवि ॥ कर्मभिस्तोषिता दिव्यैस्तव संरक्षणादिभिः ॥ ४० ॥ भवता रक्षिता गावो गोलोकश्च महानयम् ॥ यद्वयं पुङ्गवैस्सार्द्धं वर्द्धामः प्रसवैस्तथा ॥ ४१ ॥ कर्षुकान्पुङ्गवैर्बाह्यैर्मेध्येन हविषा सुरान् ॥ श्रियं शकृत्प्रवृत्तेन तर्पयिष्याम कामगाः ॥ ४२ ॥ तदस्माकं गुरुस्त्वं हि प्राणदश्च महाबलः ॥ अद्यप्रभृति नो राजा त्वमिन्द्रो वै भव प्रभो ॥ ४३ ॥ तस्मात्त्वं काञ्चनैः पूर्णैर्दिव्यस्य पयसो घटैः ॥ एभिरद्याभिषिञ्चस्व मया हस्तावनामितैः ॥ ४४ ॥

हे गजविक्रम ! गौओंके और ब्रह्माके वचन सुनिये ॥३९॥ हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माजीने आपसे कहा है तथा गौओंने जो स्वर्गमें कह दिया है कि आपने दिव्य कर्मोंको करके रक्षापूर्वक हमको सन्तोष दिया है ॥ ४० ॥ जो कि आपने गौओंकी रक्षा की है. यही महान् गोलोक है जिससे कि हम श्रेष्ठोंके साथ वत्स उत्पन्न करती हुई बढती हैं ॥ ४१ ॥ खेती करनेवाले मनुष्योंको वहनसे, देवताओंको घृतसे, लक्ष्मीको गोबरकी प्रवृत्तिसे हमें यथेष्ट तृप्त करती हैं ॥ ४२ ॥ सो आप प्राणदाता महाबली हमारे गुरु हैं, आजसे आप हमारे इन्द्र हुए ॥ ४३ ॥ इस कारण सुवर्णके बने हुए दिव्य घडोंसे

॥ ४४ ॥ अपने हाथसे आपको अभिषेक कर गायोंका राजा करता हूं॥४४॥मैं देवताओंका इन्द्र हूं,आप गौओंके इन्द्र हो. इस पृथ्वीमें लोक निरन्तर आपको गोविन्द नामसे संतुष्ट करेंगे॥४५॥और मेरे ऊपर जैसे तुम गौओंके इन्द्र स्थापित हुए हो इसी कारण स्वर्गमें देवता आपको उपेन्द्र नामसे स्तुति करेंगे॥४६॥और ये जो चार महीने वर्षाके हैं, इनमेंसे आधे शरदूकालके मैं आपको दूंगा ॥४७॥ आजसे पहले दो महीनेमें मनुष्य मेरा उत्सव कर पूजन करेंगे और इसके उपरान्त आपकी पूजा होगी,उस समय वर्षासे उत्पन्न हुए अभिमानको मोर त्याग देंगे, मेरी ध्वजाकी पूजा होगी ॥ ४८ ॥

अहं किलेन्द्रो देवानां त्वं गवामिन्द्रतां गतः ॥ गोविन्द इति लोकास्त्वां स्तोष्यन्ति भुवि शाश्वतम् ॥ ४५ ॥ ममोपरि यथेन्द्रस्त्वं स्थापितो गोभिरीश्वरः ॥ उपेन्द्र इति कृष्ण त्वां गास्यन्ति दिवि देवताः ॥ ४६ ॥ येचेमे वार्षिका मासाश्चत्वारो विहिता मम ॥ एषामर्द्धं प्रयच्छामि शरत्कालं तु पश्चिमम् ॥ ४७ ॥ अद्यप्रभृति मासौ द्वौ ज्ञास्यन्ति मम मानवाः ॥ वर्षार्द्धं च ध्वजो मह्यं ततः पूजामवाप्स्यसि ॥ ममाम्बुप्रभवं दर्पं तदा त्यक्ष्यन्ति बर्हिणः ॥ ४८ ॥ अल्पवाचो गतमदा ये चान्ये मेघनादिनः ॥ शान्तिं सर्वे गमिष्यन्ति मम कालविचारिणः ॥ ४९ ॥ त्रिशंकुरगस्त्यचरितामाशां च प्रचरिष्यति ॥ सहस्ररश्मिरादित्यस्तापयन्स्वेन तेजसा ॥ ५० ॥ ततश्शरदि युक्तायां मौनकामेषु बर्हिषु ॥ याचमाने खगे तोयं विप्लुतेषु प्लवेषु च ॥ ५१ ॥ हंससारसपूर्णेषु नदीनां पुलिनेषु च ॥ मत्तक्रौञ्चप्रणादेषु प्रमत्तवृषभेषु च ॥ ५२ ॥ गोषु चैव प्रहृष्टासु क्षरन्तीषु पयो बहु ॥ निवृत्तेषु च मेघेषु निर्यात्य जगतो जलम् ॥ ५३ ॥

अल्पशब्दवाले, थोडे मदवाले औरभी जो कोई गंभीर शब्दवाले हैं वे मेरे समयको विचारनेवाले हैं, वे मेरे समयको विचारनेवाले सब शान्त हो जायंगे ॥४९॥त्रिशंकु अगस्त्यकी दक्षिण दिशामें प्राप्त होगा,सहस्रकिरण सूर्य अपने तेजसे तपेगा ॥ ५० ॥ तब शरत् आनेसे मोरोंके मौन होनेपर आकाशसे जलकी याचना करनेवाले पपीहे शब्द करेंगे, नदी तरणके योग्य हो जायगी ॥५१॥ नदियोंके किनारे हंस सारसोंसे पूर्ण हो जांयगे.मतवाले चकवोंके शब्द मतवाले वृषभोंके नाद होनेपर॥५२॥प्रसन्न होकर गौओंके अधिक दूध देने तथा मेघोंके निवृत्त होनेपर,मलरहित जलके होनेपर॥५३॥ ॥ ४४ ॥

शत्रकी समान निर्मल आकाशमें हंसोंके विचरनेपर,वापी सरोवरोंके जलमें ॥५४॥ कमलोंके उत्पन्न होनेपर, काले केदारोंके समूहमें धानोंके झुकने-पर॥५५॥नदियोंमें जलके मध्यस्थ हो गमन करनेसे और सीमा अच्छी खेतीवाली होनेपर, मुनियोंके मनहरणकीभी खेती होनेपर ॥५६॥ तथा वर्षाके अन्तमें राज्य देश मनोरम होनेपर,पंक्ति बांधे हुए शोभायमान वृक्षोंमें फल लगनेपर, अन्नोंसे पूर्ण खेत होने तथा यज्ञके प्रारम्भ होने पर॥५७॥ पवित्र शरदृतुका आरम्भ होगा.उस समय आप सोकर उठेंगे.हे कृष्ण ! उस समय यह लोक स्वर्गके समान हो जाँयगे॥ ५८॥मनुष्य तुम्हें और मुझे

आकाशे शत्रसंकाशे हंसेषु च चरत्सु च ॥ जातपद्मेषु तोयेषु वापीषु च सरस्सु च ॥ ५४ ॥ तडागेषु च कान्तेषु तोयेषु विमलेषु च ॥ कलमावनताग्रासु कृष्णकेदारपङ्क्तिषु ॥५५॥ मध्यस्थं सलिलारम्भं कुर्वन्तीषु नदीषु च ॥ सुसस्यायां च सीमायां मनोहर्यां मुनेरपि ।५६॥ पृथिव्यां पृथुराष्ट्रायां रम्यायां वर्षसंक्षये ॥ श्रीमत्सु पंक्तिमार्गेषु फलवत्सु तृणेषु च ॥ इक्षुमत्सु च देशेषु प्रवृत्तेषु मखेषु च ॥५७॥ ततः प्रवर्त्स्यते पुण्या शरत्सुप्तोत्थिते त्वयि ॥ लोकेऽस्मिन्कृष्ण निखिले यथैव त्रिदिवे तथा ॥ ५८ ॥ नरास्त्वां चैव मां चैव ध्वजाकारासु यष्टिषु ॥ महेन्द्रं चाप्युपेन्द्रं च महयन्ति महीतले ॥५९॥ ये चावयोः स्थिरे वृत्ते महेन्द्रोपेन्द्रसंज्ञिते ॥ मानवाः प्रणमिष्यन्ति तेषां नास्त्यनयागमः ॥६०॥ ततश्शक्रस्तु तान्गृह्य घटान्दिव्यपयोधरान् ॥ अभिषेकेण गोविन्दं योजयामास योगवित् ॥ ६१ ॥ दृष्ट्वा तमभिषिक्तं तु गावस्तास्सह यूथपैः ॥ स्तनैः प्रस्रवयुक्तैश्च सिषिचुः कृष्णमव्ययम् ॥ ६२ ॥ मेघाश्च दिवि युक्ताभिस्सामृताभिः समन्ततः ॥ सिषिचुस्तोयधाराभिरभिषिच्य तमव्ययम् ॥ ६३ ॥

ध्वजाकार यष्टि (डंडे)से पूजेंगे.महेन्द्र और उपेन्द्र नामसे लोक हमें और तुम्हें पृथ्वीमें पूजेंगे॥५९॥जो इन्द्र उपेन्द्र हम दोनोंको पूजन करेंगेऔर जो मनुष्य प्रणाम करेंगे उन्हें अनीतिकी प्राप्ति न होगी॥६०॥यह कहकर इन्द्रने उन नवीन जल भरे दिव्य घडोंसे योग जानकर अभिषेक किया॥६१॥इस प्रकार कृष्णका अभिषेक होते देख वह गौ अपने यूथोंसहित दुग्धसे कृष्णचन्द्रके ऊपर वर्षा करने लगी॥६२॥उससमय आकाशमें आकर मेघभी अवि-

नाशी गोविन्दके ऊपर अमृतजलकी वर्षा करने लगे ॥ ६३ ॥ सब वनस्पतियोंमेंसे चन्द्रमाकी समान जल चूने लगा. पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और आकाशसे बाजे बजने लगे ॥ ६४ ॥ सब मुनि मंत्रपरायण वाणीसे कृष्णचन्द्रकी स्तुति करने लगे. उस जलको सुखाकर पृथ्वीनेभी सुन्दर शरीर धारण किया ॥ ६५ ॥ सब समुद्र प्रसन्न और निर्मल पवन चलने लगी. मार्गमें स्थितभी सूर्य शोभित हुआ और चन्द्रमा नक्षत्रोंके सहित शोभित हुआ ॥ ६६ ॥ अतिवृष्टि आदि उपद्रव शान्त हो गये. राजा वैररहित हुए, प्रवाल पत्तोंरहित फूलोंसे युक्त वृक्ष हो गये ॥ ६७ ॥ हाथी मद चुआने

वनस्पतीनां सर्वेषां सुस्रावेन्दुनिभं पयः ॥ ववर्षुः पुष्पवर्षं च नेदुस्तूर्याणि चाम्बरे ॥ ६४ ॥ अस्तुवन्मुनयस्सर्वे वाग्भिर्मन्त्रपरायणाः ॥ एकार्णवे विविक्तं च दधार वसुधा वपुः ॥ ६५ ॥ प्रसादं सागरा जग्मुर्ववुर्वाता जगद्धिताः ॥ मार्गस्थोऽपि बभौ भानुश्चन्द्रो नक्षत्रसंयुतः ॥ ६६ ॥ ईतयः प्रशमं जग्मुर्निर्वैररचना नृपाः ॥ प्रवालपत्रशबलाः पुष्पवन्तश्च पादपाः ॥ ६७ ॥ मदं प्रसुस्रुवुर्नागा यातास्तोषं वने मृगाः ॥ अलंकृता गात्ररुहैर्धातुभिर्भान्ति पर्वताः ॥ ६८ ॥ देवलोकोपमो लोकस्तृप्तोऽमृतरसैरिव ॥ आसीत्कृष्णाभिषेको हि दिव्यस्वर्गरसोक्षितः ॥ ६९ ॥ अभिषिक्तं तु तं गोभिश्शक्रो गोविन्दमव्ययम् ॥ दिव्यमाल्यांबरधरं देवदेवोऽब्रवीदिदम् ॥ ७० ॥ एष ते प्रथमः कृष्ण नियोगो गोषु यः कृतः ॥ श्रूयतामपरं कृष्ण ममागमनकारणम् ॥ ७१ ॥ क्षिप्रं प्रसाध्यतां कंसः केशी च तुरगाधमः ॥ अरिष्टश्च मदाविष्टो राजराज्यं ततः कुरु ॥ ७२ ॥

लगे, वनके मृग संतुष्ट हुए और अपनेमें उत्पन्न हुए वृक्ष और धातुओंसे पर्वत प्रकाशित होने लगे ॥ ६८ ॥ अमृतरससे तृप्त हो लोक देवलोककी समान शोभित हुआ. यह कृष्णका अभिषेक दिव्य स्वर्गके रससे हुआ ॥ ६९ ॥ जिस समय श्रीकृष्ण गौओंसे अभिषिक्त हुए, उस समय इन्द्र दिव्यमालाधारी देवदेव गोविन्दसे इस प्रकार बोले ॥ ७० ॥ हे कृष्ण! एक तौ यह जो कि गौओंकी वार्ता थी सो पूर्ण हुई. अब दूसराभी आप मेरे आनेका कारण सुनिये ॥ ७१ ॥ अब आप कंस घोर घोडेरूपधारी केशीको शीघ्रही मारिये और महा अभिमानी अरिष्टको नष्ट कीजिये, पीछे राज्य कीजिये ॥ ७२ ॥

आपकी बुआके मैं अंशसे उत्पन्न हुआ हूं. उसकी तुम रक्षा और मान करना तथा सख्यताभी स्थापन करना ॥ ७३ ॥ उसके ऊपर तुम अनुग्रह करना और वह सदा तुम्हारा अनुवर्ती होगा और आपके अधीन होनेसे उसका बडा यश होगा ॥ ७४ ॥ भारतवंशमें यह श्रेष्ठ धनुधारी राजा होगा. वह तुम्हारे अनुरूपही होगा और विना तुम्हारे कहीं कुछ न करेगा ॥ ७५ ॥ उसमें और तुम पुरुषोत्तममें भारतकी अधीनता है. दोनोंके संयोगसे राजोंका संहार होगा ॥ ७६ ॥ हे कृष्ण ! मैंने ऋषि और देवताओंके बीचमें प्रतिज्ञा की है. मेरे पुत्र अर्जुन कुलका धारण करनेहारा है, कुन्तीमें

पितृष्वसरि जातस्ते ममांशोऽहमिव स्थितः ॥ स ते रक्ष्यश्च मान्यश्च सख्ये च विनियुज्यताम् ॥ ७३ ॥ त्वया ह्यनुगृहीतस्स तव वृत्तानुवर्तकः ॥ त्वद्वशे वर्त्तमानश्च प्राप्स्यते विपुलं यशः ॥ ७४ ॥ भारतस्य च वंशस्य स वरिष्ठो धनुर्धरः ॥ भविष्यत्यनुरूपश्च त्वदृते न च रंस्यते ॥ ७५ ॥ भारतं त्वयि चायत्तं तस्मिंश्च पुरुषोत्तमे ॥ उभाभ्यामपि संयोगे यास्यन्ति निधनं नृपाः ॥ ७६ ॥ प्रतिज्ञातं मया कृष्ण ऋषिमध्ये सुरेषु च ॥ मया पुत्रोऽर्जुनो नाम सृष्टः कुन्त्यां कुलोद्वहः ॥ ७७ ॥ सोऽस्त्राणां पारतत्त्वज्ञश्श्रेष्ठश्चापविकर्षणे ॥ तं प्रवेक्ष्यन्ति वै सर्वे राजानश्शस्त्रयोधिनः ॥ ७८ ॥ अक्षौहिणीस्तु शूराणां राज्ञां संग्रामशालिनाम् ॥ स एकः क्षत्रधर्मेण योजयिष्यति मृत्युना ॥ ७९ ॥ तस्यास्त्रचरितं मार्गं धनुषो लाघवेन च ॥ नानुयास्यन्ति राजानो देवा वा त्वां विना प्रभो ॥ ८० ॥ स ते बन्धुस्सहायश्च संग्रामेषु भविष्यति ॥ तस्य योगो विधातव्यस्त्वया गोविन्द मत्कृते ॥ ८१ ॥ द्रष्टव्यश्च यथाहं वै त्वया मान्यश्च नित्यशः ॥ ज्ञाता त्वमेव लोकानामर्जुनस्य च नित्यशः ॥ ८२ ॥

उत्पन्न है ॥ ७७ ॥ वह अस्त्रोंका पारंगत धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ है; उसको शस्त्रसे युद्ध करनेवाले राजा प्राप्त होंगे ॥ ७८ ॥ संग्रामकी इच्छा करनेवाले राजाकी अक्षौहिणी सेनाओंको वह एकही क्षत्री संहार कर डालेगा ॥ ७९ ॥ उसके अस्त्रचरित्रके मार्गको और धनुषकी लाघवताको हे प्रभो ! आपके विना देवता वा मनुष्य कोई भी प्राप्त नहीं होंगे ॥ ८० ॥ वह आपका बन्धु और सहायकारी संग्राममें होगा. हे गोविन्द ! मेरे ऊपर अनुग्रह कर आप उसको अध्यात्मविद्याका उपदेश करना ॥ ८१ ॥ जिस प्रकार आप मुझपर अनुग्रह कर दर्शन देते मानते हो, तैसे मानना और लोकोंमें सदा अर्जुनकी

जानकी रक्षा करना ॥ ८२ ॥ बडे बडे संग्रामोंमें आप सदा उसकी रक्षा करना. आपके रक्षा करनेपर उसकी मृत्यु न होगी ॥ ८३ ॥ हे कृष्ण ! अर्जुनको मुझेही जानना और मुझे अपनी आत्मा जानना जैसे मैं तुम्हारी आत्मा हूं इस प्रकार अर्जुन है ॥ ८४ ॥ पहले आपने बलिके हाथसे जीतकर यह त्रिलोकी मुझे दी और मुझे ज्येष्ठ मानकर देवताओंका राजा किया ॥ ८५ ॥ तुमको सत्यमय सत्यइष्ट सत्यविक्रम जानकर सत्यसे युक्त होकर देवता शत्रुओंके क्षय करनेको तुम्हें युक्त करते हैं ॥ ८६ ॥ सो तुम्हारी बुआका पुत्र मेरा बेटा अर्जुन है. यह तुम्हारा सहचर मित्र हो ॥ ८७ ॥ हे कृष्ण !

त्वया च नित्यं संरक्ष्य आहवेषु महत्सु सः ॥ रक्षितस्य त्वया तस्य न मृत्युः प्रभविष्याति ॥ ८३ ॥ अर्जुनं विद्धि मां कृष्ण मां चैवात्मानमात्मना ॥ आत्मा तेऽहं यया शश्वत्तथैव तव सोऽर्जुन ॥ ८४ ॥ त्वया लोकानिमाञ्जित्वा बलेर्हस्तात्त्रिभिः क्रमैः ॥ देवतानां कृतो राजा पुरा ज्येष्ठक्रमादहम् ॥ ८५ ॥ त्वां च सत्यमयं ज्ञात्वा सत्येष्टं सत्यविक्रमम् ॥ सत्येनोपेत्य देवा वै योजयन्ति रिपुक्षये ॥ ८६ ॥ सोऽर्जुनो नाम मे पुत्रः पितुस्ते भगिनीसुतः ॥ इह सौहार्दमायातु भूत्वा सहचरः पुरा ॥ ८७ ॥ तस्य ते युध्यतः कृष्ण स्वस्थानेऽपि गृहेपि वा ॥ वोढव्या पुङ्गवेनेव धूस्सदा रणमूर्द्धनि ॥ ८८ ॥ कंसे विनिहते कृष्ण त्वया भाव्यर्थदर्शिना ॥ अभितस्तन्महद्युद्धं भविष्याति महीक्षिताम् ॥ ८९ ॥ तत्र तेषां नृवीराणामतिमानुषकर्मणाम् ॥ विजयस्यार्जुनो भोक्ता यशसा त्वं च योक्ष्यसे ॥ ९० ॥ एतन्मे कृष्ण कार्त्स्न्येन कर्तुमर्हसि भाषितम् ॥ यद्यहं ते सुराश्चैव सत्यं च प्रियमच्युत ॥ ९१ ॥ शक्रस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णो गोविन्दतां गतः ॥ प्रीतेन मनसा युक्तः प्रतिवाक्यं जगाद ह ॥ ९२ ॥

वह युद्ध करते समय घरमें वा अपने स्थानमें वह श्रेष्ठ सदा भार (धुर) को धारण करनेमें समर्थ होगा ॥ ८८ ॥ हे कृष्ण ! आप जानिये कि कंसके मरजानेपर राजोंका महासंग्राम होगा ॥ ८९ ॥ उस युद्धमें जहां कि बडे बडे वीर होंगे और मनुष्योंसे न होने योग्य कर्म करेंगे. अर्जुन उनसे विजय पावेगा. आपसेही उसका यशविस्तार होगा ॥ ९० ॥ हे कृष्ण ! यह सम्पूर्ण मेरा कथन आप कीजिये. जो हम और देवता आपको प्यारे हैं तो ॥ ९१ ॥ इन्द्रके वचन सुन गोविन्दताको प्राप्त हुए श्रीकृष्ण प्रसन्न मन हो कहने लगे ॥ ९२ ॥

हे शचीपति इन्द्र! मैं तुम्हारे देखनेसे बहुत प्रसन्न हुआ हूं; जो कुछ आपने कहा है इसमें कुछभी हानि न होगी, सब होगा ॥ ९३ ॥ मैं तुम्हारे भाव और अर्जुनकी उत्पत्तिको जानता हूं और फूफीकोभी जानता हूं. जो पाण्डुको व्याही गई है ॥ ९४ ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिर और पवनतनय भीमसेनकोभी जानता हूं ॥ ९५ ॥ और अश्विनीकुमारसे उत्पन्न हुए माद्रीसे प्रादुर्भूत नकुल सहदेवकोभी जानता हूं ॥ ९६ ॥ सूर्यपुत्र कर्ण जो कन्यावस्थामें उत्पन्न हुए हैं और जिस प्रकार त्यागनेसे वह सूतपुत्र हुए हैं. वे सब जानता हूं ॥ ९७ ॥ युद्धाकांक्षी सब धृतराष्ट्रके पुत्रोंको जानता हूं तथा पांडुकी शापरूपी

प्रीतोऽस्मि दर्शनादेव तव शक्र शचीपते ॥ यत्त्वयाभिहितं चेदं न किंचित्परिहास्यते॥९३॥जानामि भवतो भावं जानाम्यर्जुनसंभवम् ॥ जाने पितृष्वसारं च पाण्डोर्दत्तां महात्मनः ॥९४॥ युधिष्ठिरं च जानामि कुमारं धर्मनिर्मितम् ॥ भीमसेनं च जानामि वायोः संतानजं सुतम् ॥९५॥ अश्विभ्यां साधु जानामि सृष्टं पुत्रद्वयं शुभम् ॥ नकुलं सहदेवं च माद्रीकुक्षिगतावुभौ ॥९६॥ कानीनं चापि जानामि सवितुः प्रथमं सुतम् ॥ पितृष्वसरि कर्णं वै प्रसूतं सूततां गतम् ॥ ९७ ॥ धार्तराष्ट्राश्च मे सर्वे विदिता युद्धकांक्षिणः ॥ पाण्डोरुपरमं चैव शापाशनिनिपातजम् ॥९८॥ तद्गच्छ त्रिदिवं शक्र सुखाय त्रिदिवौकसाम् ॥ नार्जुनस्य रिपुः कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥९९॥ अर्जुनार्थे च तान्सर्वान् पाण्डवानक्षतान् युधि ॥ कुन्त्या निर्यातयिष्यामि निवृत्ते भारते मृधे ॥१००॥ यच्च वक्ष्यति मां शक्र तनूजस्तव सोऽर्जुनः ॥ भृत्यवत्तत्करिष्यामि तव स्नेहेन यन्त्रितः॥१०१॥सत्यसंधस्य तच्छ्रुत्वा प्रियं प्रीतस्य भाषितम् ॥ कृष्णस्य साक्षात्रिदिवं जगाम त्रिदशेश्वरः ॥१०२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोविन्दाभिषेको नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

वज्रसे उत्पन्न हुई मृत्युकोभी मैं जानता हूं ॥ ९८ ॥ सो हे इन्द्र! आप देवताओंके सुखके निमित्त स्वर्गको जाइये मेरे आगे अर्जुनका कोई शत्रु कुछ नहीं कर सक्ता ॥ ९९ ॥ अर्जुनहीके निमित्त अक्षयरूप पाण्डवोंको निवृत्तरूप भारत संग्रामसे कुन्तीके दिखानेको उबारूंगा ॥ १०० ॥ हे इन्द्र! तुम्हारा पुत्र अर्जुन जो कुछ मुझसे कहेगा तुम्हारे स्नेहसे मैं भृत्यकी समान वह सब कुछ करूंगा ॥१०१॥ इस प्रकार सत्यसन्ध प्रिय कृष्णका वचन सुनकर इन्द्र स्वर्गको गया ॥ १०२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां गोविन्दाभिषेको नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

वैशम्पायन बोले, इन्द्रके चले जानेपर कृष्णचन्द्र व्रजवासियोंसे पूजित हो गोवर्द्धनधारी व्रजमें आये ॥ १ ॥ तब वृद्ध और ज्ञातिके लोग उनकी बडाई करने लगे कि हम आपकी वृत्ति और नीतिसे धन्य धन्य और कृतार्थ हो गये ॥ २ ॥ गायें वर्षाके भयसे और हमभी महा-भयसे उत्तीर्ण हुए हे देवताओंकी तुल्य महापरक्रमी गोविन्द ! यह सब आपहीका प्रताप है ॥ ३ ॥ हे गोपति ! हम आपके कर्म मनुष्योंसे दुर्लभ देखते हैं, इस पर्वतके धारनेसे हम तुमको देवता मानते हैं ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! आप रुद्र और मरुतोंमें कौन हो अथवा वसु हो और तुम्हारा पिता वसु

वैशम्पायन उवाच ॥ गते शक्रे ततः कृष्णः पूज्यमानो व्रजालयैः ॥ गोवर्द्धनधरः श्रीमान् विविशे व्रजमेव ह ॥ १ ॥ तस्य वृद्धाभिनन्दन्ति ज्ञातयश्च सहोषिताः॥धन्यास्स्मोऽनुगृहीतास्स्मस्त्वद्वृत्तेन नयेन च॥२॥गावो वर्षभयात्तीर्णा वयं तीर्णा महाभयात् ॥ तव प्रसादाद्गोविन्द देवतुल्यपराक्रम ॥ ३ ॥ अमानुषाणि कर्माणि तव पश्याम गोपते ॥ धारणेनास्य शैलस्य विद्मस्त्वां कृष्ण दैवतम्॥४॥ कस्त्वं भवासि रुद्राणां मरुतां च महाबलः ॥ वसूनां वा किमर्थं च वसुदेवः पिता तव ॥ ५ ॥ बलं च बाल्ये क्रीडा च जन्म चास्मासु गर्हितम् ॥ कृष्ण दिव्या च ते चेष्टा शङ्कितानि मनांसि नः ॥ ६ ॥ किमर्थं गोपवेषेण रमसेऽस्मासु गर्हितम् ॥ लोकपालोपमश्चैव गास्त्वं किं परिरक्षासि ॥ ७ ॥ देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा ॥ अस्माकं बान्धवो जातो योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥ केनचिद्यदि कार्येण वससीह यदृच्छया ॥ वयं तवानुगास्सर्वे भवन्तं शरणं गताः ॥ ९ ॥

देव कैसे हैं ॥ ५ ॥ इतना बल बालकपनकी क्रीडा और हमारी जातिमें जन्म लेना तुच्छता है. हे कृष्ण ! आपकी चेष्टा दिव्य है. इससे हमारे मन चकित हो रहे हैं ॥ ६ ॥ सो आप गोपवेश धारे हम नीचोंमें कैसे रमण करते हो. तुम लोकपालकी समान होकर कैसे गोपाल हुए हो ॥ ७ ॥ तुम देवता, दानव, यक्ष, गंधर्व, किन्नर कौन हो. जो हमारे बांधव हुए हो. अच्छा जो कुछभी हो आपको नमस्कार है ॥ ८ ॥ यदि किसी कार्यसे आप अपनी

इच्छासे हमारे निकट वास करते हो तौभी हम तुम्हारे अनुगामी होकर तुम्हारी शरणमें आये हैं ॥ ९ ॥ वैशंपायन बोले गोपोंके वचन सुन कमलनेत्र श्रीकृष्णजी सब जातिको आये देख हँसके बोले ॥ १० ॥ जिस प्रकार तुम सब मुझे महापराक्रमी कहते हो यह बात ठीक नहीं मैं तौ तुम्हारा जातिका बांधव हूं ॥ ११ ॥ और जो इस बातको जानना चाहते हो तौ कुछ समयतक प्रतीक्षा करो तुम मुझे तत्त्वसे सुन लोगे ॥ १२ ॥ और यदि देवकान्तिकी समान प्रतापादिसे मैं तुम्हारा श्लाघनीय हूं तौ पूछनेसे क्या है, यही मेरा अनुग्रह है ॥ १३ ॥ जब श्रीकृष्णने उन सब गोपोंसे कहा तब वे सब

वैशम्पायन उवाच ॥ गोपानां वचनं श्रुत्वा कृष्णः पद्मदलेक्षणः ॥ प्रत्युवाच स्मितं कृत्वा ज्ञातीन् सर्वान्त्समागतान् ॥ १० ॥ मन्यन्ते मां यथा सर्वे भवन्तो भीमविक्रमम् ॥ तथाहं नावमन्तव्यस्स्वजातीयोऽस्मि बान्धवः ॥ ११ ॥ यदि त्ववश्यं श्रोतव्यं कालः संप्रति पाल्यताम् ॥ ततो भवन्तः श्रोष्यन्ति मां च द्रक्ष्यन्ति तत्त्वतः ॥ १२ ॥ यद्ययं भवतां श्लाघ्यो बान्धवो देवसप्रभः ॥ परिज्ञानेन किं कार्यं यद्येषोऽनुग्रहो मम ॥ १३ ॥ एवमुक्तास्तु ते गोपी वसुदेवसुतेन वै ॥ बद्धमौना दिशस्सर्वे भेजिरे पिहिताननाः ॥ १४ ॥ कृष्णस्तु यौवनं दृष्ट्वा निशि चन्द्रमसो वनम् ॥ शारदीं च निशां रम्यां मनश्चक्रे रतिं प्रति ॥ १५ ॥ सकरीषाङ्गरागासु व्रजरथ्यासु वीर्यवान् ॥ वृषाणां जातदर्पाणां युद्धानि समयोजयत् ॥ १६ ॥ गोपालांश्च बलोदग्रान्योधयामास वीर्यवान् ॥ वने स वीरो गाश्चैव जग्राह ग्राहवद्विभुः ॥ १७ ॥ युवतीर्गोपकन्याश्च रात्रौ संकाल्य कालवित् ॥ कैशोरकं मानयन्वै सह ताभिर्मुमोद ह ॥ १८ ॥ तास्तस्य वदनं कान्तं कान्ता गोपस्त्रियो निशि ॥ पिबन्ति नयनाक्षेपैर्गां गतं शशिनं यथा ॥ १९ ॥

चुप हो स्थानोंमें चले गये ॥ १४ ॥ और कृष्णने रात्रिके समय वनको चन्द्रमाकी किरणोंसे पूर्ण देख और शरदृतुकी मनोहर रात्री विचार विहारकी इच्छा करने लगे ॥ १५ ॥ कभी आप गोबरकी कीचवाली व्रजकी गलियोंमें बैलोंका युद्ध करो देते थे. जो बैल कि मत्त हो गये थे ॥ १६ ॥ कभी बली गोपालोंको लडाते और कभी वनमें ग्राहकी समान गौओंको धारण करते ॥ १७ ॥ और कभी समयके जाननेवाले श्रीकृष्ण रात्रीके समय गोपयुवतियोंको अपने वशमें कर किशोर अवस्था (दशसे ऊपर) को प्राप्त हो उनके साथ प्रसन्न होते ॥ १८ ॥ वह मनोहर गोपोंकी स्त्री उन श्रीकृ-

ष्णका मनोहर मुख रात्रिमें नयनोंके द्वारा पान करती,मानो चन्द्रमाही पृथ्वीमें आ गया है ॥ १९ ॥ हरितालके समान पीले और रेशमीन कुसुंभी वस्त्र धारे वह श्रीकृष्ण अत्यन्त मनोहर दीखते थे ॥२०॥ वह श्रेष्ठ बाजू बांधे वनमालासे चित्रविचित्र शोभासे शोभित हो व्रजको शोभित करने लगे॥२१॥घोषमें उनके अनेक प्रकारके विचित्र चरित्र देखकर गोपकन्या उनको दामोदर नामसे पुकारती थीं ॥२२॥ वे गोपी ऊंचे पयोधर और पृथु जंघाओंसे श्रीकृष्णको पीडित करती हुई और नेत्रोंके कटाक्षोंवाले मुखसे उन्हें निहारती थीं॥२३॥यद्यपि उनको पति,भ्राता,माता,पितानिवारण

हरितालार्द्रपीतेन स कौशेयेन वाससा ॥ वसानो भद्रवसनं कृष्णः कान्ततरोऽभवत् ॥२०॥ स बद्धाङ्गदनिर्व्यूहश्चित्रया वनमालया ॥ शोभमानो हि गोविन्दश्शोभयामास तद्व्रजम् ॥२१॥ नाम दामोदरेत्येवं गोपकन्यास्तदाब्रुवम् ॥ विचित्रं चरितं घोषे दृष्ट्वा तत्तस्य भास्वतः ॥ २२ ॥ तास्तं पयोधरोत्तुङ्गैरुरोभिस्समपीडयन् ॥ भ्रामिताक्षैश्च वदनैर्निरीक्षन्ते वराङ्गनाः ॥ २३ ॥ ता वार्यमाणा पतिभिर्भ्रातृभिर्मातृभिस्तथा ॥ कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ मृगयन्ते रतिप्रियाः ॥ २४ ॥ तास्तु पंक्तीकृतास्सर्वा रमयन्ति मनोरमम् ॥ गायन्त्यः कृष्णचरितं द्वन्द्वशो गोपकन्यकाः ॥ २५ ॥ कृष्णलीलानुकारिण्यः कृष्णप्रणिहितेक्षणाः ॥ कृष्णस्य गतिगामिन्यस्तरुण्यस्ता वराङ्गनाः ॥२६॥ वनेषु तालहस्ताग्रैः कूजयन्त्यस्तथापराः ॥ चेरुर्वै चरितं तस्य कृष्णस्य व्रजयोषितः ॥२७॥ तास्तस्य नृत्यं गीतं च विलासस्मितवीक्षितम् ॥ मुदिताश्चानुकुर्वन्त्यः क्रीडन्ति व्रजयोषितः ॥२८॥ भावनिस्पन्दमधुरं गायन्त्यास्ता वराङ्गनाः ॥ व्रजं गताः सुखं चेरुर्दामोदरपरायणाः ॥ २९ ॥

॥ ४८ ॥

करते थे परन्तु वे रतिप्रिय अंगना रात्रिमें कृष्णको खोजती थीं॥२४॥और वे कन्या पंक्ति मंडल बांधकर कृष्णके चरित्र गाती हुई परस्पर दो दो मिलकर मध्यमें श्रीकृष्णको कर विहार करने लगीं॥२५॥कृष्णकीही लीला करनेहारी वे वरांगना तरुणी कृष्णकीही गतिकी इच्छा करतीथीं॥२६॥ वनोंमें ताली बजाकर कूदती हुई वे गोपी वनमें श्रीकृष्णके चरित्र गान करती विचरने लगीं ॥२७॥ वह उनका नृत्य, गीत और विलास मनोहर मुसकान युक्त देखना मनोहर था वे प्रसन्न हो कृष्णकी लीलाका अनुकरण करती क्रीडा करती थीं ॥ २८ ॥ भावसे गंभीर और मधुर वे व्रजवनिता

गाता थीं और व्रजमें जाकरभी दामोदरमें मन लगाये सुखसे विचारती थीं ॥ २९ ॥ करसीकी धूरीसे युक्त अंगवाली वे चारों ओरसे कृष्णकोही घेरने लगीं और हाथिनियें जैसे मत्त हाथीसे रमण करती हैं इस प्रकार रमण करती थीं ॥ ३० ॥ कोई दूसरी गोपी रात्रीके भावोंसे प्रफुल्ल हुए नेत्रोंसे हंस मुख और कमलनेत्रवाली वे अंगना कृष्णके मुखको अतृप्त हो पान करने लगीं ॥ ३१ ॥ कमलकी समान कान्तिमान् श्रीकृष्णके मुखको वे गोपी रात्रीमें भोगके अन्तर्गत रसकी लालसासे पान करने लगीं ॥ ३२ ॥ जिस समय वह श्रीकृष्ण हो प्रिये ! हे राधे !! हे चन्द्रमुखी !!! ऐसे कहते थे उस समय वह अंगना बडी प्रसन्न होती थीं और इन्हीं दामोदरकी उच्चारण की हुई वे वाणीको वह ग्रहण करती

करीषपांसुदिग्धाङ्ग्यस्ताः कृष्णमनुवव्रिरे ॥ रमयन्त्यो यथा नागं संप्रमत्तं करेणवः ॥ ३० ॥ तमन्या भावविकचैर्नेत्रैः प्रहसिताननाः॥ पिबन्त्यतृप्तवनिताः कृष्णं कृष्णमृगेक्षणाः ॥ ३१ ॥ मुखमस्याब्जसंकाशं तृषिता गोपकन्यकाः ॥ रत्यन्तरगता रात्रौ पिबन्ति रसलालसाः ॥ ३२ ॥ हाहेति कुर्वतस्तस्य प्रहृष्टास्ता वराङ्गनाः ॥ जगृहुर्निस्सृतां वाणीं नाम्ना दामोदरेरिताम् ॥ ३३ ॥ तासां ग्रथितसीमन्ताः रतिं नीत्वाऽकुलीकृताः ॥ चारु विस्रंसिरे केशाः कुचाग्रे गोपयोषिताम् ॥ ३४ ॥ एवं स कृष्णो गोपीनां चक्रवालैरलंकृतः ॥ शारदीषु सचन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखी ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि हल्लीसकक्रीडनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रदोषार्द्धे कदाचित्तु कृष्णे रतिपरायणे ॥ त्रासयन्त्समदो गोष्ठमरिष्टः प्रत्यदृश्यत ॥ १ ॥ निर्वाणाङ्गारमेघाभस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचनः ॥ क्षुरतीक्ष्णाग्रचरणः कालः काल इवापरः ॥ २ ॥

थीं ॥ ३३ ॥ उनके गुथे हुए केश रतिके कारण खुलकर सुन्दरतापूर्वक स्तनोंपर बिखरके शोभित होने लगे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार वह श्रीकृष्ण चक्रवालसे शोभित उन शरद् ऋतुकी रात्रियोंमें गोपियोंके संग क्रीडा करते बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३५ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ वैशंपायन बोले; एक समय आधीरातके समय रमण करतेथे कि उस समय मदसे त्रास देता हुआ अरिष्ट नाम दानव गोठमें आया ॥ १ ॥ बुझे हुए अग्निके कोयले और मेघकी समान काला, तीक्ष्ण शृंग, सूर्यकी समान चमकते नेत्र, क्षुरके समान तीक्ष्ण आगेके चरण किये, कालरूप दूसरे

कालकी समान दीखा ॥ २ ॥ वह वारंवार जिह्वासे होठको चावता, दात पीसता, गर्वसे पूंछ उठाये दृढ कंधेसे युक्त ॥ ३ ॥ अपने कंधेके घातसे महल गिरानेवाला, प्रमाणसे दुस्तर, वारंवार गोबर और मूत्र करता गायोंको डराता ॥ ४ ॥ बडी कमर, स्थूल मुख, दृढ जंघा, बडे पेटवाला, लंबे सींग, लंबी लटकती हुई कंठकी खालसे युक्त ॥ ५ ॥ गौओंपर चढनेमें चपल; वृक्षोंके गिरानेके चिह्नयुक्त मुखवाला, युद्ध करनेको सींग तयार किये, बैलोंको मारनेवाला ॥ ६ ॥ दारुण आकारवाला गौओंको दुःखरूप वह अरिष्ट दैत्य वृषभरूप धारे गोठमें; दौडता फिरता था ॥ ७ ॥ वह मत्त हो गौओंके

लेलिहानस्य निष्पेषं जिह्वयौष्ठौ पुनः पुनः ॥ गर्विताविद्धलांगूलः कठिनस्कन्धबन्धनः ॥ ३ ॥ ककुदोदग्रनिर्माणः प्रमाणादु-रतिक्रमः ॥ शकृन्मूत्रोपलिप्तांगो गवामुद्वेजनो भृशम् ॥ ४ ॥ महाकटिः स्थूलमुखो दृढजानुर्महोदरः ॥ विषाणावलिगतगतिर्लम्बता कण्ठचर्मणा ॥ ५ ॥ गवारोहेषु चपलस्तरुघाताङ्किताननः ॥ युद्धसज्जविषाणाग्रो द्विषद्वृषभसूदनः ॥ ६ ॥ अरिष्टो नाम हि गवामरिष्टो दारुणाकृतिः ॥ दैत्यो वृषभरूपेण गोष्ठान्विपरिधावति ॥ ७ ॥ पातयानो गवां गर्भान्दृप्तो गच्छत्यनार्तवम् ॥ जृम्भमाणश्च चपलो गृष्टीस्संप्रचचार ह ॥ ८ ॥ शृंगप्रहरणो रौद्रः प्रहरन्गोषु दुर्मतः ॥ गोष्ठेषु न रतिं लेभे विना युद्धेन गोवृषः ॥ ९ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य स वृषः कशवाग्रतः ॥ आजगाम बलोदग्रो वैवस्वतवशे स्थितः ॥ १० ॥ स तत्र गास्तु प्रसभं बाधमानो मदोत्कटः ॥ चकार निर्वृषं गोष्ठं निर्वत्साशिशुपुंगवम् ॥ ११ ॥ एवस्मिन्नेव काले तु गावः कृष्णसमीपगाः ॥ त्रासयामास दुष्टात्मा वैवस्वतवशे स्थितः ॥ १२ ॥ सेन्द्राशनिरिवाम्भोदो नर्दमानो महासुरः ॥ तालशब्देन तं कृष्णस्सिंहनादैश्च मोहयन् ॥ १३ ॥

गर्भ गिराता और बेसमयमेंभी उनका संग करनेमें प्रवृत्त होता, जंभाई लेता वह चपल गोठमें विचरने लगा ॥ ८ ॥ वह महाभयंकर गौओंपर शृंगोंका प्रहार करता युद्धके विना गोठमेंभी प्रसन्न न हुआ ॥ ९ ॥ कुछ समयमें वह वृष श्रीकृष्णके आगे कालके वश हो बलके अभिमानसे आगया ॥ १० ॥ वह बडे वेगसे मत्त गौओंको बाधा देने लगा और स्थानोंको वृषभ और बछडे हीन करने लगा ॥ ११ ॥ उसी समय वह कालके वशमें श्रीकृष्णके समीप आई हुई गायोंको पीडा देने लगा ॥ १२ ॥ वज्र और मेघकी समान गर्जता हुआ महाअसुर सामने आने लगा, तब श्रीकृष्ण तालीके शब्द

और अपने सिंहनादसे उसको मोहित करते हुए ॥ १३ ॥ उस वृषभरूपधारी दैत्यके पीछे धाये. वह श्रीकृष्णको देख नेत्र फुलाये पूंछ उठाये ॥ १४ ॥ तालीके शब्दसे क्रोधित हो युद्धकी इच्छा कर शब्द करने लगा. उस बैलरूपधारी दुष्टको आता देख पर्वतकी समान कृष्ण उस स्थानसे चलायमान न हुए ॥ १५ ॥ तब वह बैल श्रीकृष्णकी कोखमें दृष्टि लगाये मुख फैलाये श्रीकृष्णके मारनेकी इच्छासे बहुत शीघ्र दौडा ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णने उस आते हुएको सामनेही ग्रहण किया, काले पहाडकी समान राक्षसके प्रति कृष्ण जैसे वृषसे वृष युद्ध करे ऐसे करने लगे ॥ १७ ॥ जिस समय महावृषकी

अभ्यधावत गोविन्दो दैत्यं वृषभरूपिणम् ॥ स कृष्णं गोवृषो दृष्ट्वा हृष्टलांगूललोचनः ॥ १४ ॥ रोषितस्तालशब्देन युद्धाकांक्षी ननर्द ह ॥ तमापतन्तं दुर्वृत्तं दृष्ट्वा वृषभरूपिणम् ॥ तस्मात्स्थानान्न व्यचलत्कृष्णो गिरिरिवाचलः ॥ १५ ॥ स कुक्षौ वृषभो दृष्टिं प्रणिधाय धृताननः ॥ कृष्णस्य निधनाकांक्षी तूर्णमभ्युत्पपात ह ॥ १६ ॥ तमापतन्तं प्रमुखे प्रतिजग्राह दुर्द्धरम् ॥ कृष्णः कृष्णाञ्जननिभो वृषं प्रतिवृषोपमः ॥ १७ ॥ स संसक्तस्तु कृष्णो वै वृषेणेव महावृषः ॥ मुमोच वक्रजं फेनं नस्तश्चाथ स शब्दवत् ॥१८॥ तावन्योन्यावरुद्धांगौ युद्धे कृष्णवृषावुभौ ॥ रेजतुर्मेघसमये संसक्ताविव तोयदौ ॥ १९ ॥ तस्य दर्पं बलं हत्वा कृत्वा शृंगान्तरे पदम् ॥ आपीडयदरिष्टस्य कण्ठं क्लिन्नमिवाम्बरम् ॥ २० ॥ शृंगं चास्य पुनस्सव्यमुत्पाट्य यमदण्डवत् ॥ तेनैव प्राहरद्वक्त्रे स ममार भृशं हतः ॥ २१ ॥ स भिन्नशृंगो भग्नास्यो भग्नस्कन्धश्च दानवः ॥ पपात रुधिरोद्गारी साम्बुधार इवाम्बुदः ॥ २२ ॥

समान श्रीकृष्णने उस छली वृषभको ग्रहण किया तब वह मुखसे फेन उगलने लगा और नाकसे शब्द करने लगा ॥ १८ ॥ इस प्रकार युद्धमें कृष्ण और वह वृषभ युद्ध करते ऐसे शोभित हुए जैसे वर्षाऋतुमें दो मेघ युद्ध करते हों ॥ १९ ॥ तब कृष्ण उसके बल और दर्पको नाशकर उसके पैरोंको सींगोंके बीचमें कर उस वृषभके कंठको पीडित करने लगे ॥ २० ॥ पीछे इसके दक्षिण शृंगको यमदण्डकी समान उखाडकर वही उसके मुखमें मारा. इस प्रकार उसका प्रहार लगनेसे वह मृतक हो गया ॥ २१ ॥ भग्नशिर, टूटे मुखसे युक्त

भग्नस्कंधवाला वह दैत्य जल वर्षानेहारे मेघके समान रुधिर उगलता पृथ्वीमें गिरा॥२२॥इस प्रकार उस वृषभासुर दानवको गोविन्दसे मरा हुआ देख सब प्राणी धन्य कहकर उनके सत्य कर्मकी बडाई करने लगे॥२३॥इस प्रकार उसको उपेन्द्रने मार डाला और मनोहर चन्द्रमावाली रात्रिमें वह कमलनयन फिर रमने लगे॥२४॥और गोवृत्तिवाले वे सब गोप प्रसन्न हो कमललोचन कृष्णकी उपासना करने लगे.जैसे सब देवता इन्द्रकी उपासना करते हैं ॥२५॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः॥२१॥कृष्णको व्रजमें गया हुआ और अग्निके समान बढा हुआ सुन-

गोविन्देन हतं दृष्ट्वा दृप्तं वृषभदानवम् ॥ साधु साध्विति भूतानि तत्कर्मास्याभितुष्टुवुः ॥२३॥ स चोपेन्द्रो वृषं हत्वा कान्तचन्द्रे निशामुखे ॥ अरविन्दाभनयनः पुनरेव रराम ह ॥ २४ ॥ तेऽपि गोवृत्तयस्सर्वे कृष्णं कमललोचनम् ॥ उपासांचक्रिरे हृष्टास्सर्वे शक्रमिवामराः ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृषभासुरवधो नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ छ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ कृष्णं व्रजगतं श्रुत्वा वर्धमानमिवानलम् ॥ उद्वेगमगमत्कंसश्शङ्कमानस्ततो भयम् ॥ १ ॥ पूतनायां हतायां च कालिये च पराजिते ॥ धेनुके प्रलयं नीते प्रलम्बे च निपातिते ॥ २ ॥ धृते गोवर्धने शैले विफले शक्रशासने ॥ गोषु त्रातासु च तथा स्पृहणीयेन कर्मणा ॥ ३ ॥ ककुद्मिनि हतेऽरिष्टे गोपेषु मुदितेषु च ॥ दृश्यमाने विनाशे च संनिकृष्टे महाभये ॥ ४ ॥ कर्षणे वृक्षयोश्चैव शकटस्य तथैव च ॥ अचिन्त्यं कर्म तच्छ्रुत्वा वर्धमानेषु शत्रुषु ॥५॥ प्राप्तारिष्टमिवात्मानं मेने स मथुरेश्वरः॥ विसंज्ञेन्द्रियभूतात्मा गतासुप्रतिमो बभौ ॥६॥ततो ज्ञातीन्समानाय्य पितरं चोग्रशासनः॥निशि स्तिमितमूकायां मथुरायां जनाधिपः॥७॥

कर कंस उद्वेगसे शंका करने लगा॥१॥पूतनाका मरण, कालीनागका पराजय, धेनुक और प्रलम्बासुरका मरण ॥ २ ॥ गोवर्द्धन धारण, इन्द्रका निष्फल प्रयास,गौओंकी रक्षा,स्पृहाके योग्य कर्म॥३॥वृषभरूपधारी अरिष्टका मरण,गोपोंकी प्रसन्नता विचार कर अपना विनाश निकट आया जान भयभीत हुआ॥४॥खैंचकरही वृक्षोंका गिरा देना, शकट चूर्ण करना इत्यादि शत्रुओंके अचिन्त्य कर्म सुनकर उस मथुरापतिने अपनेको अरिष्ट प्राप्त हुआ जाना.इन्द्रियसंज्ञाहीन, प्राणरहितके समान दृष्टिगोचर हुआ ॥ ५ ॥ ६ ॥ तब उस कठिन सासनवालेने आधी रातके समय जब कि चारों ओर

मूकता छा रही थी. पिता और जातिवालोंको बुलाया ॥ ७ ॥ देवताके समान वसुदेव, कंकयादवको बुलाकर तथा सत्यक, दारुक, कंकावरज ॥ ८ ॥ भोज, वैतरण, महाबली विकद्रु, धर्मात्मा भयशंख, विपृथु, पृथुश्रिय॥९॥दानपति बभ्रु, कृतवर्मा, अक्षोभ्य महातेजस्वी भूरिश्रवा ॥१०॥ इन सब यादवोंको बुलाकर वह उग्रसेन पुत्र मथुरापति बोला ॥११॥ आप सब कार्य जाननेवाले तथा वेदमें निष्ठित हो. न्यायवृत्तान्तमें कुशल और त्रिवर्गके प्रवर्तक हो ॥१२॥ कर्तव्य कर्मोंके करनेवाले लोकमें देवताओंके समान महान् वृत्तिसे स्थित, पर्वतोंके समान अचल ॥ १३ ॥ पाखण्डरहित और सब

वसुदेवं च देवाभं कङ्कं चाहूय यादवम् ॥ सत्यकं दारुकं चैव कङ्कावरजमेव च ॥ ८ ॥ भोजं वैतरणं चैव विकद्रुं च महाबलम् ॥ भयशङ्खं च धर्मज्ञं विपृथुं च पृथुश्रियम् ॥९॥ बभ्रुं दानपतिं चैव कृतवर्माणमेव च ॥ भूरितेजसमक्षोभ्यं भूरिश्रवसमेव च ॥१०॥ एतान्स यादवान्सर्वानाभाष्य शृणुतेति च ॥ उग्रसेनसुतो राजा प्रोवाच मथुरेश्वरः ॥ ११ ॥ भवन्तस्सर्वकार्यज्ञा वेदेषु परिनिष्ठिताः ॥ न्यायवृत्तान्तकुशलास्त्रिवर्गस्य प्रवर्तकाः ॥१२॥ कर्तव्यानः च कर्तारो लोकस्य विबुधोपमाः ॥ तस्थिवांसो महावृत्ते निष्कम्पा इव पर्वताः ॥ १३ ॥ अदम्भवृत्तयस्सर्वे सर्वे गुरुकुलोषिताः ॥ राजमन्त्रधरास्सर्वे सर्वे धनुषि पारगाः ॥१४॥ यशःप्रदीपा लोकानां वेदार्थानां विवक्षवः ॥ आश्रमाणां निसर्गज्ञा वर्णानां क्रमपारगाः॥१५॥प्रवक्तारस्सुनियतां नेतारो नयदर्शिनाम् ॥ भेत्तारः परराष्ट्राणां त्रातारश्शरणार्थिनाम् ॥१६॥ एवमक्षतचारित्रैः श्रीमद्भिरुदितोदितैः ॥ द्यौरप्यनुगृहीता स्याद्भवद्भिः किं पुनर्मही ॥ १७ ॥ ऋषीणामिव वो वृत्तं प्रभावो मरुतामिव ॥ रुद्राणामिव वः क्रोधो दीप्तिरङ्गिरसामिव ॥ १८ ॥

गुरुकुलसेवी हो. सब राजमंत्र और धनुर्विद्याके पारगामी हो ॥१४ ॥लोकोंके यशके प्रदीप, वेदार्थोंको कहनेवाले, सब आश्रय और वर्णोंके धर्मरक्षक तथा पारगामी ॥१५॥ शुभ बातोंके कहनेवाले, नयदर्शकोंके नेता, पराये राजाके भेदक, शरणार्थियोंके रक्षक ॥ १६ ॥ इस प्रकार आपसरीखे शुद्ध चरित्रवालोंके कहे हुए वाक्योंसे स्वर्गभी अनुगृहीत होता है, पृथ्वीकी तो बातही क्या है ॥ १७ ॥ ऋषियोंके समान तुम्हारी वृत्ती, मरुतोंके समान

प्रभाव, रुद्रोंके समान क्रोध, अंगिरसके समान दीप्ति ॥१८॥ विख्यात कीर्तिवाले तुमहीसे यह यदुकुल धारण किया जाता है. जैसे पृथ्वीसे पर्वत धारण किये जाते हैं ॥१९॥इस प्रकार आपसरीखे समानचित्तवालोंने जानकर भी मेरे बढ़े हुए उत्पातकी कैसे उपेक्षा की ॥२०॥ यह जो नन्दगोपका पुत्र कृष्ण व्रजमें विख्यात है और सागरके समान बढ़ता है, यह हमारे मूलकोही नष्ट करता है ॥२१॥ अमात्यशून्य चाररहित मेरे अपना पुत्र वसुदेवने नंदके घर छिपा रक्खा है॥२२॥व्याधीकी उपेक्षा करनेसे जैसे बढ़ती है, जैसे पर्वमें समुद्र बढ़ता है, जैसे गरमीके अन्तमें मेघ शब्द करते हैं,

व्यावर्तमानं सुमहद्भवद्भिः ख्यातकीर्तिभिः ॥ धृतं यदुकुलं वीरैर्भूतलं पर्वतैरिव॥१९॥एवं भवत्सु युक्तेषु मम चित्तानुवर्तिषु ॥ वर्द्धमानो ममानर्थो भवद्भिः किमुपेक्षितः ॥ २० ॥ एष कृष्ण इति ख्यातो नन्दगोपसुतो व्रजे ॥ वर्द्धमान इवाम्भोधिर्मूलं नः परिकृन्तति ॥२१॥ अनमात्यस्य शून्यस्य चारान्धस्य ममैव तु ॥ कारणान्नन्दगोपस्य स सुतो गोपितो गृहे ॥ २२ ॥ उपेक्षित इव व्याधिः पूर्यमाण इवाम्बुदः ॥ नदन्मेघ इवोष्णान्ते स दुरात्मा विवर्द्धते ॥२३॥ तस्य नाहं गतिं जाने न योगं न पराक्रमम् ॥ नन्दगोपस्य भवने जातस्याद्भुतकर्मणः ॥२४॥ किं तद्भूतं समुद्भूतं देवापत्य न विद्महे ॥ अतिदेवैरमानुष्यैः कर्मभिस्सोऽनुमीयते ॥२५॥ पूतना शकुनी बाल्ये शिशुनोत्तानशायिना ॥ स्तनपानेप्सुना पीता प्राणैस्सह दुरासदा ॥ २६ ॥ यमुनाया ह्रदे नागः कालियो दमितस्तथा ॥ रसातलचरो नीतः क्षणेनादर्शनं ह्रदात् ॥ २७ ॥

इसी प्रकार वह दुरात्मा वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ मैं उसकी गति और पराक्रमको नहीं जानता, वह अद्भुतकर्मा नन्दगोपके भवनमें उत्पन्न हुए हैं ॥ २४ ॥ वह क्या उत्पन्न हुआ है, अथवा देवता है यह हम नहीं जानते, परन्तु वह जो कर्म करता है उसको देवता और मनुष्य नहीं कर सक्के, इसीसे वह कोई अद्भुत जाना जाता है ॥ २५ ॥ जब कि वह बालकही था तब लेटा हुआथा, तब उसने दुग्धके साथही पूतनाके प्राण खैंच लिये ॥ २६ ॥ फिर यमुनाके हृदसे काली नागको दमन किया और क्षणमात्रमें रसातलसागरको भेज दिया ॥ २७ ॥

वह नन्दगोप कुमार योगसे उत्पन्न हुआ है. जिसने धेनुक दत्यको तालके वृक्षसे पटककर मार दिया॥२८॥ प्रलम्बासुरसे देवताभी नहीं लड सक्ते थे, परन्तु इन्होंने उसको साधारण मनुष्योंके समान खेलमें एक घूंसेसेही मार डाला ॥२९॥ इन्द्रकी पूजा मेटकर इन्द्रकी करी हुई वर्षाकोभी दूरकर गौरक्षाके निमित्त गोवर्धन धारण किया ॥ ३० ॥ फिर अरिष्ट असुर बडा बली मार डाला और व्रजमें सींगरहित कर दिया, यह बाललीलासे अबालक होकर लीलासे बालक होकरभी बालकोंमें खेलता है॥३१॥व्रजमें रहनेहारे कृष्णके यह कर्महैं उनसे मुझे और केशीको महाभय है॥३२॥

नन्दगोपसुतो योगं कृत्वा स पुनरुत्थितः ॥ धेनुकस्तालशिखरात्पतितो जीवितं विना ॥ २८ ॥ प्रलम्बं यं मृधे देवा न शेकुरतिवर्तितुम् ॥ बालेन मुष्टिनैकेन स हतः प्राकृतो यथा ॥ २९ ॥ वासवस्योत्सवं भङ्क्त्वा वर्षं वासवरोषजम् ॥ निर्जित्य गोगृहार्थाय धृतो गोवर्द्धनो गिरिः ॥ ३० ॥ हतस्त्वरिष्टो बलवान्निःशृङ्गश्च कृतो व्रजे ॥ अबालो बाल्यमास्थाय रमते शिशुलीलया ॥ ३१ ॥ प्रबन्धः कर्मणामेवं तस्य गोव्रजवासिनः ॥ सन्निकृष्टं भयं चैव केशिनो मम च ध्रुवम् ॥ ३२ ॥ भूतपूर्वश्च मे मृत्युस्सततं पूर्वदैहिकः ॥ युद्धकांक्षी च स यथा तिष्ठतीह ममाग्रतः ॥ ३३ ॥ क्व च गोपत्वमशुभं मानुष्यं मृत्युदुर्बलम् ॥ क्व च देवप्रभावेण क्रीडितव्यं व्रजे मम ॥ ३४ ॥ अहो नीचेन वपुषा च्छादयित्वात्मनो वपुः ॥ कोऽप्येष रमते देवश्श्मशानस्थ इवानलः ॥ ३५ ॥ श्रूयते हि पुरा विष्णुस्सुराणां कारणान्तरे ॥ वामनेन तु रूपेण जहार पृथिवीमिमाम् ॥ ३६ ॥ कृत्वा केसरिणो रूपं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ हतो हिरण्यकशिपुर्दानवानां पितामहः ॥ ३७ ॥

बोध होता है कि, पूर्व जन्ममें मेरी मृत्यु इसीसे हुई थी और अबभी मेरे आगे युद्ध करनेको स्थित है ॥ ३३ ॥ कहां तो अशुभ गोपपन जो कि साधारण मनुष्य और मृत्यु दुर्बल है अर्थात् सहजमें मारनेयोग्य और कहां यह बालक देवताके समान प्रभावसे मेरे व्रजमें स्थित है॥३४॥ अहो! यह अपना शरीर नीच शरीरमें छिपाये श्मशान अग्निके समान यह कोई बडाही देवता रमण करता है ॥ ३५ ॥ हमने सुना है कि, पूर्व कालमें विष्णुजीने किसी कार्यके निमित्त देवताओंका पक्ष ले पृथ्वीको हरण किया था ॥३६॥ और इन्हीं विष्णुने नृसिंहका रूप बनाकर दानवोंके

पितामह हिरण्यकश्यपको मारा ॥ ३७ ॥ इन्हींने श्वेत पर्वतपर आचिन्त्य रूपमें स्थित होकर शिवरूपसे त्रिपुरादि दैत्योंका संहार किया था ॥ ३८ ॥ जब दैत्य नीचे गिराये गये और बृहस्पतिके पुत्र कचको जब वे विद्या पढने गये तब दैत्योंके उपद्रव करनेसे और मारकर मद चुवा देनेसे गुरुके पान करनेपर वह गुरुके उदरमें प्रविष्ट हो जीवित रहे और अनावृष्टि की ॥ ३९ ॥ अनन्त शाश्वत देव अविनाशी सहस्रकिरणयुक्त अविनाशीने वाराहरूप धारण कर सागरसे पृथ्वीको हरण किया ॥ ४० ॥ यह विष्णुही अमृतमथनके समय स्त्रीरूप हो गये, इसीने देवता असुरोंका कठिन युद्ध कराया ॥ ४१ ॥

अचिन्त्यरूपमास्थाय श्वेतशैलस्य मूर्द्धनि ॥ भवेन च्याविता दैत्याः पुरा तत्त्रिपुरं घ्नता ॥ ३८ ॥ चालितो गुरुपुत्रेण भार्गवोऽङ्गिरसेन वै ॥ प्रविश्य दार्दुरीं मायामनावृष्टिं चकार ह ॥ ३९ ॥ अनन्तश्शाश्वतो देवस्सहस्रशिरसोऽव्ययः ॥ वाराहं रूपमास्थाय प्रोज्जहारार्णवान्महीम् ॥ ४० ॥ अमृते निर्मिते पूर्वं विष्णुः स्त्रीरूपमास्थितः ॥ सुराणामसुराणां च युद्धं चक्रे सुदारुणम् ॥ ४१ ॥ अमृतार्थे पुरा चापि देवदैत्यसमागमे ॥ दधार मन्दरं विष्णुरकूपार इति श्रुतिः ॥ ४२ ॥ वपुर्वामनमास्थाय निन्दनीयं पुरा बलेः ॥ त्रिभिः क्रमैस्तु त्रींल्लोकान् जहार त्रिदिवालयम् ॥ ४३ ॥ चतुर्धा तेजसो भागं कृत्वा दाशरथे गृहे ॥ स एव रामसंज्ञो वै रावणं व्यनशत्तदा ॥ ४४ ॥ एवमेष निकृत्या वै तत्तद्रूपमुपागतः ॥ साधयित्वात्मनः कार्यं सुराणामर्थसिद्धये ॥ ४५ ॥ तदेष नूनं विष्णुर्वा शक्रो वा मरुतां पतिः ॥ मत्साधनेच्छया प्राप्तो नारदो मां प्रयुक्तवान् ॥ ४६ ॥

जिस समय पहले अमृतके निमित्त देवता दैत्य जुडे थे, इसमें कच्छप रूप धारण करके विष्णुने मंदराचल पर्वतको पीठपर धारण किया ॥ ४२ ॥ और निन्दनीय वामन रूप धारण कर यही राजा बलिके यहां तीन चरण पृथ्वीके मिससे त्रिलोकीको ग्रहण करता हुआ ॥ ४३ ॥ फिर दशरथके यहां अपने तेजके चार भाग करके रामनामसे इसने रावणको मारा ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार यह देवताओंकी कार्यसिद्धिके निमित्त प्रयोजनानुसार अनेक रूप धारण करता है और देवताओंकी समृद्धि कर अपना कार्य सिद्ध करता है ॥ ४५ ॥ सो अवश्यही यह या तो विष्णु या मरुत्पति

इन्द्र है. मेरे मारनेकी इच्छासे प्राप्त हुआ है यह बात नारदजीने मुझसे पहलेही कह दी है ॥ ४६ ॥ इसमें मेरा वसुदेवपर संदेह है, इस वसुदेवकी बुद्धिसेही हम कातर हुए हैं ॥ ४७ ॥ मुझे खट्वांग वनमें नारद मिले थे उन्होंने मुझसे यह कहा ॥ ४८ ॥ हे कंस ! जो कि; आपने गर्भके निमित्त बडाही यत्न किया सो रातमें वसुदेवने वह सब तुम्हारा कार्य नष्ट कर दिया ॥ ४९ ॥ हे कंस ! जो रात्रीमें तुमने शिलापर कन्या दे मारी थी वह यशोदाकी कन्या और कृष्ण वसुदेवका पुत्र है ॥ ५० ॥ तुम्हारे मारनेकेही निमित्त रात्रीमें बालकोंका बदला

अत्र मे शङ्कते बुद्धिर्वसुदेवं प्रति ध्रुवा ॥ अस्य बुद्धिविशेषेण वयं कातरतां गताः ॥ ४७ ॥ अहं हि खट्वाङ्गवने नारदेन समागतः ॥ द्वितीयं स हि मां विप्रः पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥ ४८ ॥ यस्त्वया हि कृतो यत्नः कंस गर्भकृते महान् ॥ वसुदेवेन ते रात्रौ तत्कर्म विफलीकृतम् ॥ ४९ ॥ दारिका या त्वया रात्रौ शिलायां कंस पातिता ॥ तां यशोदासुतां विद्धि कृष्णं च वसुदेवजम् ॥ ५० ॥ रात्रौ व्यावर्तितावेतौ गर्भौ तव वधाय वै ॥ वसुदेवेन संधाय मित्ररूपेण शत्रुणा ॥ ५१ ॥ सा तु कन्या यशोदाया विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ॥ हत्वा शुम्भनिशुम्भौ द्वौ दानवौ नगचारिणौ ॥ ५२ ॥ कृताभिषेका वरदा भूतसंघानिषेविता ॥ अर्च्यते दस्युभिर्घोरैर्महाबालिपशुप्रिया ॥ ५३ ॥ सुरापिशितपूर्णाभ्यां कुम्भाभ्यामुपशोभिता ॥ मयूराङ्गदचित्रैश्च बर्हभारैर्विभूषिता ॥ ५४ ॥ हृष्टकुक्कुटसंनादं वनं वायसनादितम् ॥ मृगसंघैश्च संपूर्णमविरुद्धैश्च पक्षिभिः ॥ ५५ ॥ सिंहव्याघ्रवराहाणां नादेन प्रतिनादितम् ॥ वृक्षगम्भीरनिबिडं कान्तारैस्सर्वतो वृतम् ॥ ५६ ॥ दिव्यभृङ्गारुचमरैरादर्शैरुपशोभितम् ॥ देवतूर्यनिनादैश्च शतशः प्रतिनादितम् ॥ ५७ ॥

हुआ, यह वसुदेव मित्ररूप शत्रु है ॥ ५१ ॥ वह यशोदाकी कन्या श्रेष्ठ विंध्यपर्वतमें वनचारी शुंभ निशुंभ दो दानवोंको मारकर ॥ ५२ ॥ अभिषेकित हो वर देनेवाली प्राणियोंके संगसे सेवित दस्युओंसेभी सेवित होगी और महाबला पशुप्रिय होगी ॥ ५३ ॥ मद्य मांसके कुंडोंसे शोभित, मयूर अंगद चित्र विचित्र मणि हीरोंसे शोभित ॥ ५४ ॥ प्रसन्न हुए कुक्कुट और कागोंके शब्दसे शब्दायमान वनमृग और पक्षियोंसे पूर्ण ॥ ५५ ॥ सिंहव्याघ्रवराहोंके नादसे शब्दायमान वृक्षोंकी गंभीरतासे घनी चारों ओरसे घोर ॥ ५६ ॥ दिव्य जलकी झारी और दर्पणोंसे शोभित देवताओंके सैकडों बाजोंके

शब्दसे नादित ॥५७॥ उस भगवतीका अपने तेजससे बना हुआ विंध्याचलमें स्थान हो वह मनोरमा नित्य शत्रुओंके दुःख देनेहारी है ॥ ५८ ॥ परम प्रसन्न हो देवताओंसे पूजित हो परम प्रसन्न होती है और यह जो नन्दगोपका कृष्ण पुत्र है॥५९॥इसको नारदजीने बड़े कर्मका करनेवाला कहा है, यह वसुदेवसे दूसरा वासुदेव होगा॥६०॥उससे बांधवसहित तेरी मृत्यु होगी. वही यह वसुदेव और बली वह इन्हीका पुत्र है, यह धर्मसे बन्धु और मनसे काल है ॥ ६१ ॥ जैसे किसीके सिरपै काग पैरोंसे बैठकर उसके मांस खानेकी इच्छासे चोंचसे नेत्रोंको कुरेदता है॥६२॥ इसी प्रकार यह

स्थान तस्या नगे विंध्ये निर्मितं स्वेन तेजसा॥ रिपूणां त्रासजननी नित्यं तत्र मनोरमे ॥५८॥ वसते परमप्रीता दैवतैरपि पूजिता॥ यस्त्वयं नन्दगोपस्य कृष्ण इत्युच्यते सुतः ॥ ५९ ॥ अत्र मे नारदः प्राह सुमहत्कर्मकारणम् ॥ द्वितीयो वसुदेवाद्वै वासुदेवो भविष्यति ॥ ६० ॥ स हिते सहजो मृत्युर्बान्धवश्च भविष्यति ॥ स एव वासुदेवो वै वसुदेवसुतो बली ॥ बान्धवो धर्मतो मह्यं हृदयेनान्तको रिपुः ॥ ६१ ॥ यथा हि वायसो मूर्ध्नि पद्भ्यां यस्यावतिष्ठति ॥ नेत्रे तुदति तस्यैव वक्त्रेणामिषगृद्धिना ॥ ६२ ॥ वसुदेवस्तथैवायं सपुत्रज्ञातिबान्धवः॥ छिनत्ति मम मूलानि भुंक्ते च मम पार्श्वतः ॥६३॥ भ्रूणहत्यापि संतार्या गोवधः स्त्रीवधोऽपि व ॥ न कृतघ्नस्य लोकोऽस्ति बान्धवस्य विशेषतः ॥६४॥ पतितानुगतं मार्गं निषेवत्यचिरेण सः ॥ यः कृतघ्नोऽनुबन्धेन प्रीतिं वहति दारुणाम् ॥६५॥ नरकाध्युषितः पन्था गन्तव्यस्तेन दारुणः ॥ अपापे पापहृदयो यः पापमनुतिष्ठति ॥ ६६ ॥ अहं वा स्वजनश्लाघ्यस्स वा श्लाघ्यतरः सुतः ॥ नियमैर्गुणवृत्तेन त्वया बान्धवकाम्यया ॥ ६७ ॥

॥ ९३ ॥

वसुदेव ज्ञाति-बांधवोंसहित मेरे पास भोजनादि करता हुआ मेरीही जड काटता है॥६३॥ भ्रूणहत्या, गोवध, स्त्रीवधका दोष जाता रहता है, परन्तु कृतघ्नी अपने बन्धुका तो दोष उतरताही नहीं ॥६४॥ वह शीघ्रही पतित मार्गको प्राप्त हो जाता है, जो जो कृतघ्नके अनुरोधसे बडी प्रीति करता है ॥६५॥ नरकादिकेभी दारुण मार्गसे उसको जानाहै वह नरकमें पडेगा.जो पापरहित मुझसे पाप करता और अन्तरमें कुटिलता धारे है ॥ ६६ ॥ या तो मैं स्वजनश्लाघनीय हूं, अथवा वो पुत्र श्लाघनीय है. हे वसुदेव!इन दोनोंमें नियम और गुण नियम वृत्ति और बांधवोंके प्यारकी इच्छासे

इसमेंसे एक करे ॥ ६७ ॥ देखो हाथियोंके युद्धमें वृक्ष चूर्ण हो जाते हैं और युद्ध बीतने पर वे उन्हींको भक्षण करते हैं॥६८॥इसी प्रकार तुमने हमारा नाश कराया है,इस प्रकार बन्धुओंके भेदकालमें जो बीचमें प्राप्त हो वह स्वजन हो अथवा अन्य,मार डालनेके योग्य है ॥६९॥ हे वसुदेव ! विनाश करनेके समान तुम मुझे कालरूप प्रतीत होते हो.मैंने तुमको कालरूपको विना जाने पालन किया. हे वसुदेव! जो आपने इस कुलसे विरोध किया ॥७०॥ इस कारण तुम असहनशील वैरस्वभाव पापमति और मूर्ख हो. हे मूढ! यदुकुलके स्थानमें यह कर्तव्य तुमने शोचनीय किया ॥७१॥

हस्तिनां कलहे घोरे वधमृच्छन्ति वीरुधः ॥ युद्धव्युपरमे ते तु सहाश्नन्ति महावने ॥ ६८ ॥ बान्धवानामपि तथा भेदकाले समुत्थिते ॥ बध्यते योऽन्तरप्रेप्सुस्स्वजनो यदि वेतरः ॥ ६९ ॥ कालस्त्वं हि विनाशाय मया पुष्टो विजानता ॥ वसुदेव कुलस्यास्य यद्विरोधयसे भृशम् ॥ ७० ॥ अमर्षी वैरशीलश्च सदा पापमतिश्शठः ॥ स्थाने यदुकुलं मूढ शोचनीयं त्वया कृतम् ॥ ७१ ॥ वसुदेव वृथा वृद्ध यन्मया त्वं पुरस्कृतः ॥ श्वेतेन शिरसा वृद्धो नैव वर्षशती भवेत् ॥ ७२ ॥ यस्य बुद्धिः परिणता स वै वृद्धतरो नृणाम् ॥ न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ॥ ७३ ॥ त्वं च कर्कशशीलश्च बुद्ध्या च न बहुश्रुतः ॥ केवल वयसा वृद्धो यथा शरदि तोयदः ॥७४॥ किं च त्वं साधु जानीषे वसुदेव वृथामते ॥ हते कंसे मम सुतो मथुरां पालयिष्यति ॥ ७५ ॥ छिन्नाशस्त्वं वृथावृद्धो मिथ्या त्वेवं विचारितम् ॥ जिजीविषुर्न सोऽप्यस्ति यो वै तिष्ठेन्ममाग्रतः ॥७६॥

हे वसुदेव ! वृद्ध ! वृथाही मैंने सब कार्यमें तुमको अगुआ किया है.श्वेतशिर अथवा सौ वर्षका होनेसे वृद्ध नहीं होता॥७२॥जिसकी बुद्धि परिपक्व है वही मनुष्योंमें वृद्ध है, केवल पलितशिरवाला बूढा नहीं होता॥७३॥तुम कर्कशील (कठिन स्वभाव) बुद्धिहीन थोडे शास्त्र जाननेवाले हो वृद्धता केवल तुममें अवस्था की है. जैसे शरद्का मेघ बडा होता है ॥७४॥ हे वृथामति वसुदेव ! आपने यह बात जानी है कि, कंसके मरनेपर मेरा पुत्र मथुराकी पालना करेगा ॥७५॥ सो यह तुम वृथा वृद्धकी आशा छिन्न है. यह तुमने विचार वृथा कियाहै. जो मेरे आगे स्थित हो सो जानो,

कि अब यह न बचेगा॥७६॥जो तुमने प्रहार करनेकी इच्छासे विश्वास कर यह काम किया है सो मैं तेरे पुत्रोंके देखते देखते इसका प्रतीकार करता हूं ॥ ७७ ॥ परन्तु मैंने कभी वृद्ध और स्त्रीका वध नहीं किया है और विशेष करके बन्धुका तो किया ही नहीं ॥ ७८ ॥ तुम यहीं बढे और पितासे बढाये हुए हो, विशेष कर तुम मेरी पितृष्वसाके भर्ता हो और यदुवंशियोंके प्रथम गुरु हो ॥७९॥ विशेष कर तुम चक्रवर्तियोंके कुलमें बडे विख्यात हो, तुमको गुरु जानकर बडे पुरुषोंने धर्मबुद्धिसे पूजन किया है ॥८०॥ हम क्या करें तुम सत्पुरुषोंमें अपने चरित्रसे स्वयं निंदित होगे,

प्रहर्तुकामो विश्वस्ते यस्त्वं दुष्टेन चेतसा ॥ तत्ते प्रतिकरिष्येऽहं पुत्रयोस्तव पश्यतः ॥७७॥ न मे वृद्धवधः कश्चिद्द्विजस्त्रीवध एव च ॥ कृतपूर्वः करिष्ये वा विशेषेण तु बान्धवे ॥ ७८ ॥ इह त्वं जातसंवृद्धो मम पित्रो विवार्धितः ॥ पितृष्वसुश्च मे भर्त्ता यदूनां प्रथमो गुरुः ॥ ७९ ॥ कुले महति विख्यातः प्रथिते चक्रवर्तिनाम् ॥ गुर्वर्थं पूजितस्सद्भिर्महद्भिर्धर्मबुद्धिभिः ॥८०॥ किं करिष्यामहे सर्वे सत्सु वक्तव्यतां गताः ॥ यदूनां यूथमुख्यस्य यस्य ते वृत्तमीदृशम् ॥ ८१ ॥ मद्वधो वा जयो वाथ वसुदेवस्य दुर्नये ॥ सत्सु यास्यन्ति पुरुषा यदूनामवगुण्ठिताः ॥ ८२ ॥ त्वया हि मद्वधोपायस्तर्कमाणेन वै मृधे ॥ अविश्वास्यं कृतं कर्म वाच्याश्च यादवाः कृताः ॥ ८३ ॥ अशाम्यं वैरमुत्पन्नं मम कृष्णस्य चोभयोः ॥ शान्तिमेकतरे शान्ति गते यास्यन्ति यादवः ॥ ८४ ॥ गच्छ दानपते क्षिप्रं ताविहानयितुं व्रजात् ॥ नन्दगोपं च गोपांश्च करदान्मम शासनात् ॥ ८५ ॥

कारण यह कि, यदुओंके यूथमें मुख्य आपका चरित्र ऐसा है तो ॥ ८१ ॥ मेरे जय हो अथवा पराजय हो;परन्तु वसुदेवकी खोटी नीतिसे श्रेष्ठ पुरुषोंमें सब यदुओंकी निंदा होगी ॥ ८२ ॥ तुमने युद्धमें मेरे वधका उपाय किया, सो यह अविश्वासका कार्य किया इससे यादवोंमें तुम्हारी निंदा होगी ॥ ८३ ॥ मेरा और कृष्णका नहीं शान्त होनेवाला वैर उत्पन्न हुआ है;इन दोनोंमें एकके मर जानेसे यदुवंशी शान्त हो जांयगे ॥ ८४ ॥ हे अक्रूर ! शीघ्र जाओ और कल उन्हें यहां बुलाकर लाओ. नंदगोप और दूसरे गोपोंको जो कर देनेवाले हैं हमारी आज्ञासे कहना ॥ ८५ ॥

कि, वार्षिक कर लेकर गोपोंके साथ बहुत शीघ्र आवे॥८६॥और कृष्ण और संकर्षण जो वसुदेवके दोनों पुत्र हैं, उनको कंस भृत्य और पुरोहित सहित देखनेकी इच्छा करता है॥८७॥ यह दोनों युद्धके जाननेवाले रंगभूमिमें युद्ध करने लायक दृढशरीर और अनेक दाव पेच जाननेवाले॥८८॥ हमारे यहांभी दो मल्ल सज्जीभूत और उत्सवसे युक्त हैं, उनके साथ हम उन दोनों युद्धकुशलको देखा चाहते हैं॥८९॥ देवताओंके समान उन बालकोंको मैं देखा चाहता हूं, विशेषकर वह मेरी बुआके पुत्र मुख्य और व्रजवास कर वनमें फिरते हैं॥९०॥ व्रजवासियोंके समीप व्रजमें जाकर कहना कि,

वाच्यश्च नन्दगोपो वै करमादाय वार्षिकम्॥ शीघ्रमागच्छ नगरं गोपैस्सह समन्वितः॥८६॥ कृष्णसंकर्षणौ चैव वसुदेवसुतावुभौ॥ द्रष्टुमिच्छति वै कंसस्सभृत्यस्सपुरोहितः॥८७॥ एतौ युद्धविदौ रङ्गे कालनिर्माणयोधिनौ॥ दृढौ च कृतिनौ चैव शृणोमि व्यायतोद्यमौ॥८८॥ अस्माकमपि मल्लौ द्वौ सज्जौ युद्धकृतोत्सवौ॥ ताभ्यां सह नियोत्स्येते तौ युद्धकुशलावुभौ॥८९॥ द्रष्टव्यौ च मयावश्यं बालौ तावमरोपमौ॥पितृष्वसुस्सुतौ मुख्यौ व्रजवासौ वनेचरौ॥९०॥ वक्तव्यं च व्रजे तस्मिन्समीपे व्रजवासिनाम्॥ राजा धनुर्मखं नाम कारयिष्यति वै सुखी॥९१॥ सन्निकृष्टे वने ते तु निवसन्तु यथासुखम्॥ जनस्यामंत्रितस्यार्थे यथा स्यात्सर्वमव्ययम्॥९२॥ पयसस्सर्पिषश्चैव दध्नो दध्युत्तरस्य च॥ यथाकामप्रदानाय भोज्याधिश्रयणाय च॥९३॥ अक्रूर गच्छ शीघ्रं त्वं तावानय ममाज्ञया॥ संकर्षणं च कृष्णं च प्रष्टुं कौतूहलं हि मे॥९४॥ तयोरागमने प्रीतिः परमा मत्कृता भवेत्॥ दृष्ट्वा तु तौ महावीर्यौ तद्विधास्यामि यद्धितम्॥९५॥

राजा धनुषयज्ञ करता है॥९१॥ सब व्रजवासी सुखपूर्वक समीपमें बसेंगे और निमंत्रित मनुष्योंको राजा सब प्रकारसे सुख देगा॥९२॥ दूध, घी, दही, मट्ठा यह यथायोग्य देनेको और भोजनमें स्वादिष्ट दूध पहुंचानेको व्रजवासी आवें॥९३॥ हे अक्रूर! तुम शीघ्र जाकर उन्हें आज्ञासे ले आना संकर्षण और कृष्णके देखनेकी मुझे बडी इच्छा है॥९४॥उनके आनेसेही मुझे प्रीति होगी,उन दोनों महावीरोंको देखकर फिर मैं जैसे हित

देखूंगा वैसा करूंगा ॥ ९५ ॥ अथवा जो वे मेरे वचन सुनकर दोनों न आवें तो वे पकडनेके योग्य हैं ॥ ९६ ॥ परन्तु बालकोंको प्रथम समझाना ही नीति है, इस कारण मीठे वचनोंसे ही उन दोनों मंद बालकोंको बुला लाओ ॥९७॥ हे अक्रूर ! यह मेरी परम दुर्लभ प्रीति करो, जो आपने वसुदेवसे सलाह नहीं की हो तो जाओ ॥ ९८ ॥ हे तात ! जिस कारण वे आजांय सोही काम आपको करना उचित है, जब इस प्रकार आक्षेप किया तो वसुके समान वसुदेवजीने कम्परहित सागरके समान अपना आकार धारण किया अर्थात् कुछ न कहा ॥ ९९ ॥

शासनं यदि वा श्रुत्वा मम तौ परिभाषितम् ॥ नागच्छेतां यथाकालं निग्राह्यावपि तौ मम ॥९६॥ सान्त्वमेव तु बालेषु प्रधानं प्रथमो नयः ॥ मधुरेणैव तौ मन्दौ स्वयमेवानयाशु वै ॥९७॥ अक्रूर कुरु मे प्रीतिमेतां परमदुर्लभाम् ॥ यदि वा नोपजप्तोऽसि वसुदेवेन सुव्रत ॥९८॥ तथा कर्त्तव्यमेतद्धि तथा तातागमिष्यतः ॥ एवमाक्षिप्यमाणोऽपि वसुदेवो वसूपमः ॥ सागराकारमात्मानं निष्प्रकम्पमधारयत ॥९९॥ वाक्शल्यैस्ताडयमानस्तु कंसेनादीर्घदर्शिना ॥ क्षमां मनसि संधाय नोत्तरं प्रत्यभाषत ॥ १०० ॥ ये तु तं ददृशुस्तत्र क्षिप्यमाणमनेकधा ॥ धिग्धिगित्यसकृत्ते वै शनैरूचुरवाङ्मुखाः ॥१०१॥ अक्रूरस्तु महातेजा जानन्दिव्येन चक्षुषा ॥ जलं दृष्ट्वेव तृषितः प्रेषितः प्रीतिमानभूत् ॥१०२॥ तस्मिन्नेव निशीथे तु मथुरायास्स निर्ययौ ॥ प्रीतिमान्पुण्डरीकाक्षं द्रष्टुं दानपतिस्स्वयम् ॥१०३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरप्रस्थानमुहूर्तो नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

यद्यपि दीर्घदर्शी कंसने उनको वाक्यशल्यसे ताडन किया, परन्तु इन्होंने मनमें क्षमा धारण कर कुछभी उत्तर नहीं दिया॥१००॥ और जिन्होंने वहां उनको अनेक प्रकारसे आक्षेप करते देखा वे शनैः२धिक् धिक् करते नीचा मुख किये रहे ॥१०१॥ महातेजस्वी अक्रूरजी यह सब दिव्य चक्षुसे जानते हुए, और जैसे प्यासा जलके निकट जानेकी इच्छा करता है इस प्रकार आप व्रजमेंजानेको तैयार हुए॥१०२॥उसी आधी रातके समय वह मथुरासे निकले और अक्रूरजीने बडी प्रसन्नतासे कृष्णके देखनेकी इच्छा की ॥ १०३ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

वैशंपायन बोले; उस समय सब यादवोंने कंसको वसुदेवजीके प्रति झिझकारता देख कानोंमें उंगली देली और उसको गतासु माना ॥ १ ॥
उस समय अंधक (उग्रसेनके दादा) अनुद्विग्न मनसे धैर्य धारण कर उस समाजमें कंसके सामने विकाररहित वचन बोले ॥ २ ॥
हे पुत्र ! जो कि, तुमने यह वाक्य बोले यह श्लाघनीय नहीं है, यह आपका वृथा वाक्परिश्रम है, यह अयुक्त सत्पुरुषोंमें निन्दनीय है, विशेषकर बांधवोंको तो ऐसा कहना उचित नहीं है ॥ ३ ॥ जो तुमने कहा कि मैं यादव नहीं हूं तो सुनो हे वीर ! यह यादव तुमको बलसे यादव नहीं

वैशम्पायन उवाच ॥ क्षिप्रं यदुवृषं दृष्ट्वा सर्वे ते यदुपुङ्गवाः ॥ निपीड्य श्रवणान्हस्तैर्मेनिरे तं गतायुषम् ॥ १ ॥ अन्धकोऽनुद्विग्नमना धैर्यादविकृतं वचः ॥ प्रोवाच वदतां श्रेष्ठस्समाजे कंसमोजसा ॥ २ ॥ अश्लाघ्यो मे मतः पुत्र तवायं वाक्परिश्रमः ॥ अयुक्तो गर्हितस्सद्भिर्बान्धवेषु विशेषतः ॥३॥ अयादवो यदि भवान् शृणु तावद्यदुच्यते ॥ नहि त्वां यादवं वीर बलात्कुर्वन्ति यादवः ॥४॥ अश्लाघ्या वृष्णयः पुत्र येषां त्वमनुशाशिता ॥ इक्ष्वाकुवंशजो राजा विनिवृत्तः स्वयं सकृत् ॥ ५ ॥ भोजो वा यादवो वासि कंसो वासि यथा तथा ॥ सहजं ते शिरस्तात जटी मुण्डोऽपि वा भव ॥ ६ ॥ उग्रसेनस्त्वयं शोच्यो योऽस्माकं कुलपांसनः ॥ दुर्जातो येन येन त्वमीदृशो जनितः सुतः ॥७॥ न चात्मनो गुणांस्तात प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ परेणोक्ता गुणा गौण्यं यान्ति वेदार्थसंमिताः ॥८॥ पृथिव्यां यदुवंशोऽयं निन्दनीयो महीक्षिताम् ॥ बालः कुलान्तकृन्मूढो येषां त्वमनुशासिता ॥ ९ ॥

बनाते ॥४॥ हे पुत्र ! जिनकी आप पालना करते हो वे वृष्णि क्या श्लाघनीय नहीं हैं, प्रजाकी पीडा देनेवाला इक्ष्वाकुवंशसंभूत असमंजस राजा एकवारही नष्ट हो निकाला गया ॥ ५ ॥ भोज, यादव वा कंस तुम जो कुछ हो जो तेराही यह सिर है तो चाहें जटा रख मुंड मुंडाले ॥ ६ ॥ हमारा कुलकलंकी तो यह उग्रसेन शोचनीय है. जिसने तुमसे कुजात पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ७ ॥ हे तात ! बुद्धिमान् अपने गुण नहीं कहा करते, दूसरोंके कहे हुएही गुण गौरवताको प्राप्तहोते हैं यह बात वेदार्थ सम्मत है ॥८॥ पृथ्वीमें मैं यह यदुवंश राजोंमें निन्दनीय हुआ, जिसके पालनेहारे बालक कुलां-

गार तुम मूढ उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥ असाधु वचनोंको तुम साधु मानते हो, काम तो कुछ बनाया नहीं और अपनेको निन्दित किया ॥ १० ॥ जो गुरुका अवमान करते हैं अथवा जो मानके योग्य हैं उनपर जो आक्षेप करता है उसे कौन अच्छा कहेगा, वह पाप गौघातके बराबर है ॥ ११ ॥ हे तात ! वृद्ध और भगिनी इनका क्रोध अग्निके समान है, लोकान्तर प्राप्त हुओंकोभी इनका क्रोध भस्म कर देता है॥ १२ ॥ हे तात ! चतुर उन्नतिकी इच्छा करने-वाले बुद्धिमान्‌को धर्मकी गति खोजनी चाहिये, जिस प्रकार जलमें मछलीकी गति देखते हैं॥ १३ ॥ और तुम केवल अहंकारसे अग्निके समान वृद्धोंको

असाधुमद्भिर्वाक्यैश्च त्वया साध्विति भाषितैः ॥ न चाप्यासादितं कार्यमात्मा च विवृतः कृतः ॥ १० ॥ गुरोरनवलिप्तस्य मान्यस्य महतामपि ॥ क्षेपणं कः शुभं मन्ये द्विजस्येव वधे कृते ॥ ११ ॥ मान्याश्चैवाभिगम्याश्च वृद्धास्तात यथाग्नयः क्रोधो॥ हि तेषां प्रदहल्लोकानन्तर्गतानपि ॥ १२ ॥ बुधेन तात दान्तेन नित्यमभ्युच्छ्रितात्मना ॥ धर्मस्य गतिरन्वेष्या मत्स्यस्य गतिरप्स्विव ॥ १३ ॥ केवलं त्वंतु दर्पेण वृद्धानग्निसमानिह ॥ वाचा तुदसि मर्मघ्न्या अमन्त्रोक्ता यथाहुतिः ॥ १४ ॥ वसुदेवं च पुत्रार्थं यदिमं परिगर्हसि ॥ तत्र मिथ्या प्रलापन्ते निन्दामि कृपणं वचः ॥ १५ ॥ दारुणे च पिता पुत्रे नैव दारुणतां व्रजेत् ॥ पुत्रार्थं ह्यापदः कष्टाः पितरः प्राप्नुवन्ति हि ॥ १६ ॥ छादितो वसुदेवेन यदि पुत्रश्शिशुस्तदा ॥ मन्यसे यद्यकर्तव्यं तत्पृच्छ पितरं स्वकम् ॥ १७ ॥ गर्हता वसुदेवं च यदुवंशं च निन्दिता ॥ त्वया यादवपुत्राणां वैरजं विषमर्जितम् ॥ १८ ॥

मर्ममें पीडा देनेहारी वाणीसे दुःखी करते हो, जैसे विना मंत्रकी दी हुई आहुति दुःखके निमित्त होती है॥ १४ ॥ जो तुम वसुदेवकीपुत्रके निमित्त निन्दा करते हो तोभी तुम्हारा मिथ्या प्रलाप कृपणके वचनके समान है ॥ १५ ॥ पिता तो दुष्ट पुत्रके साथभी दुष्टता नहीं करता और पिता पुत्रके कारणसे अनेक आपत्ति और कष्ट पाते हैं ॥ १६ ॥ यदि वसुदेवने बालक पुत्र छिपाभी लिया यदि तू इस कर्तव्यको मानता है तो अपने पिता उग्रसेनसे पूछ॥ १७ ॥ तेरा त्याग बालकपनमें दुष्टतासे क्यों न किया. तुमने वसुदेव और यादवोंकी निन्दा करके यादव पुत्रोंका वैररूपी विष संग्रह किया॥ १८ ॥

और यदि वसुदेवने पुत्र छिपानेमें अकर्तव्य कर्म किया तो तुम्हारी दुष्टता देख बालकपनमें उग्रसेननेही तुम्हे क्यों न मार डाला ॥ १९ ॥ जिस कारण कि,पुत्र पिताकी नरकसे रक्षा करता है,इस कारण धर्मात्मा उसे पुत्र कहकर पुकारते हैं ॥ २० ॥ कृष्ण और युवा संकर्षणसे यादव हैं ऐसा जान तैंने उनके जन्मतेही वैर किया है ॥२१॥ इससे वसुदेवके झिडकनेसे और वासुदेवके कोपसे सब यदुवंशियोंके मन बिगड गये हैं॥२२॥ तुम्हारा कृष्णसे द्वेष और वसुदेवको दुर्वाक्य कहना यह कुशकुन जो इस समय होते हैं सो भय होना सूचित करते हैं ॥ २३ ॥ सर्पोंका तीव्र दर्शन, रात्रीके बीतनेपर दुःस्वप्न देखना यह हम पुरीके विधवा होनेके कारण हैं॥२४॥यह घोर ग्रह स्वाति नामक नक्षत्रको आकाशमें किरणोंसे पीडित करता

अकर्तव्यं यदि कृतं वसुदेवेन पुत्रजम् ॥ किमर्थमुग्रसेनेन शिशुस्त्वं न विनाशितः ॥ १९ ॥ पुन्नाम्नो नरकात्पुत्रो यस्मात्त्राता पितॄंस्तदा ॥ तस्माद् ब्रुवन्ति पुत्रेति पुत्र धर्मविदो जनाः ॥ २० ॥ जात्यः हि यादवः कृष्णस्स च संकर्षणो युवा ॥ त्वं चापि विधृतस्ताभ्यां जातवैरेण चेतसा ॥ २१ ॥ उद्धूतानीह सर्वेषां यदूनां हृदयानि वै ॥ वसुदेवे त्वयाक्षिप्ते वासुदेवे च कोपिते ॥२२॥ कृष्णे च भवतो द्वेष्ये वसुदेवविगर्हणात ॥ शंसन्ति चेमानि भयं निमित्तान्यशुभानि ते ॥ २३ ॥ सर्पाणां दर्शनं तीव्र दुःस्वप्नानां निशाक्षये ॥ पुर्यां वैधव्यशंसीनि कारणैरनुमीमहे ॥ २४ ॥ एष घोरो ग्रहः स्वातिमुल्लिखन्खे गभस्तिभिः ॥ चक्रमङ्गारकश्चक्रे चित्रायां घोरदर्शनः ॥ २५ ॥ बुधेन पश्चिमा संध्या व्याप्ता घोरेण तेजसा ॥ वैश्वानरपथे शुक्रो ह्यतिचारं चचार ह ॥ २६ ॥ केतुना धूमकेतोस्तु नक्षत्राणि त्रयोदश ॥ भरण्यादीनि भिन्नानि नानुयान्ति निशाकरम् ॥ २७ ॥

हुआ और मंगल ग्रह चित्रापर वक्री हो गया है ॥२५॥ इधर बुधने घोर तेजसे पश्चिम दिशा व्याप्त कर ली है और शुक्र कृत्तिका नक्षत्र मार्गपर अतिचार कर गया है(कंसका जन्मनक्षत्र मृगशिर था) उससे दशमें नक्षत्रपर घोर ग्रह राहु क्रूर हो गया, और मंगलभी वक्री हो वहांही आया, उन दोनोंने तुम्हारे जन्मनक्षत्रपर स्थित हो वेध किया,इससे तुम्हारे जीवनका यत्न निष्फल होगा. अतिचारका अर्थ सूर्यके उल्लंघन करनेका है, बुध, सूर्य, शुक्रका अत्यन्त पृथक् दर्शनभी बडे पुरुषकी मृत्यु सूचित करता है ॥२६॥ धूमकेतुवाले केतुने भरणी आदि तेरह नक्षत्र भेद कर दिये हैं वे चन्द्र-

माको अनुगमन नहीं करते ॥२७॥ अर्थात् कंसके जन्मकर्मके नक्षत्र केतु तीसरे उपग्रहसे विद्ध हुए, इससे चित्रामें स्थित राहु चित्रासे उत्तर तेरह नक्षत्रोंमें जो जीवके पक्षमें नहीं जाता और मृत्युपक्षके उत्तरमें प्राप्त है,इस कारण चन्द्रमा उनको उत्तमफलयुक्त करनेके लिये प्रवृत्त नहीं कर सक्ता और परिघग्रस्त हुई प्राक् (पहली) संध्या सूर्यको ग्रहण करती है, मृग पक्षि शब्द करते हुए उलटे चलते हैं॥२८॥निश्वासरूपी अंगारे वर्षानेहारी गीदडनी स्मशान स्थानसे निकलकर दोनों संध्याओंमें पुरीके सन्मुख शब्द करती फिरती हैं ॥२९॥ बडे शब्दसे पृथ्वीसे उल्कापात होते हैं.अकस्मात् पृथ्वी कांपती और पर्वतशिखर चलायमान होते हैं॥३०॥राहु सूर्यको वारंवार ग्रसता है दिनकी रात हो जाती है,शुष्क अशनिसे ताडित हुई

प्राक्संध्या परिघग्रस्ता भाभिर्बाधति भास्करम् ॥ प्रतिलोमं च यान्त्येव व्याहरन्तो मृगद्विजाः ॥ २८ ॥ शिवा श्मशानान्निःक्रम्य निश्श्वासाङ्गारवर्षिणी ॥ उभे संध्ये पुरीं घोरा पर्येति बहुवाशति ॥ २९ ॥ उल्कानिर्घातनादेन पपात धरणीतले ॥ चलत्यपर्वणि मही गिरीणां शिखराणि च ॥ ३० ॥ ग्रस्तः स्वर्भानुना सूर्यो दिवा नक्तमजायत ॥ धूमोत्पातैर्दिशो व्याप्ताः शुष्काशनिसमाहताः ॥ ३१ ॥ प्रस्रवन्ति घना रक्तं साशनिस्तनयित्नवः ॥ चलिता देवताः स्थानात्त्यजन्ति विहगा नगान् ॥ ३२ ॥ यानि राजविनाशाय दैवज्ञाः कथयन्ति ह ॥ तानि सर्वाणि पश्यामो निमित्तान्यशुभानि वै ॥ ३३ ॥ त्वं चापि स्वजनद्वेषी राजधर्मपराङ्मुखः ॥ अनिमित्तागतक्रोधस्सन्निकृष्टभयो ह्यसि ॥ ३४ ॥ यस्त्वं देवोपमं वृद्धं वसुदेवं वसूपमम् ॥ मोहात्क्षिपसि दुर्बुद्धे कुतस्ते शान्तिरात्मनः ॥३५॥ त्वद्गतो यो हि नस्स्नेहस्तं त्यजामोऽद्य वै वयम् ॥अहितं स्वस्य वंशस्य न त्वां क्षणमुपास्महे॥३६॥

दिशा धूमसे व्याप्त है॥३१॥सूखे वज्रसे हत हो बिजलीसहित बादल रुधिर वर्षाते हैं,देवताओंकी प्रतिमा स्थानसे चलती और पक्षी वृक्षोंको त्यागते हैं, जो चिन्ह ज्योतिषियोंने राज्यनाशके कहे हैं वह सब अशकुन हम देखते हैं ॥३२॥३३ ॥ तुमभी स्वजनोंसे द्वेष करते राजधर्मसे पराङ्मुख हो जो विनाही निमित्त क्रोध करते हो,इस समय तुम्हारे निकटही भय है॥३४॥जो कि,तुमने देवताके समान वसुतुल्य वसुदेवजीको मोहसे दुर्वचन कहे हैं. हे दुर्बुद्धे ! इससे तेरी फिर शान्ति कहां है ॥३५॥ हमाराजो तुझमें स्नेह है, हम आजही त्यागन करते हैं. तुम हमारे वंशके अहित हो,

इससे हम क्षणमात्रभी तुम्हारी उपासना नहीं करेंगे, तुम्हारे निकट रहेंगे नहीं॥३६॥ वह अक्रूर धन्य है जो वनमें प्राप्त हुए कमलके समान विशाल-लोचन अक्लिष्टकर्मा कृष्णका दर्शन करेंगे॥३७॥तुम्हारे कारण यह यदुवंश छिन्नमूल वृक्षके समान हो गया है, वह कृष्ण आदि जातिके पुरुषोंको लाकर समाधान करेगा ॥३८॥ इस समय बुद्धिमान वसुदेवजीने सब सह लिया है, तुम्हारा कालसे ज्ञान नष्ट हो गया है,इससे जो इच्छा हो सो करो ॥ ३९ ॥ हे कंस ! हमारी तो यह इच्छा है कि, तू वसुदेवकी सहायवाला होकर जहां कृष्ण हैं उस स्थानमें जा और उनसे संधि कर

स हि दानपतिर्धन्यो यो द्रक्ष्यति वने गतम् ॥ पुण्डरीकविशालाक्षं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥३७॥ छिन्नमूलो ह्ययं वंशो यदूनां त्वत्कृते कृतः ॥ कृष्णो ज्ञातीन्त्समानाय्य स सन्धानं करिष्यति ॥३८॥ क्षान्तमेव तवानेन वसुदेवेन धीमता ॥ कालस्सम्यक् परिज्ञातो ब्रूहि त्वं यद्यदिच्छसि ॥३९॥ मह्यं तु रोचते कंस वसुदेवसहायवान् ॥ गच्छ कृष्णस्य निलयं संधिस्तेन च रोचताम् ॥ ४० ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्वणि अन्धकवचनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अन्धकस्य वचश्श्रुत्वा कंसस्संरक्तलोचनः ॥ न किञ्चिदब्रवीत्क्रोधाद्विवेश स्वं निकेतनम् ॥ १ ॥ ते च सर्वे यथावेश्म यादवाश्श्रुतविस्तराः ॥ जग्मुर्विगतसंकल्पाः कंसवैकृतशंसिनः ॥२॥ अक्रूरोऽपि यथाज्ञप्तः कृष्णदर्शनलालसः ॥ जगाम रथमुख्येन मनसा तुल्यगामिना ॥३॥ कृष्णस्यापि निमित्तानि शुभान्यङ्गगतानि वै ॥ पितृतुल्येन शंसन्ति बान्धवेन समागमम् ॥४॥ प्रागेव च नरेन्द्रेण माथुरेणौग्रसेनिना ॥ केशिनः प्रेषितो दूतो वधायोपेन्द्रकारणात् ॥ ५ ॥

ले ॥ ४० ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्वणि अंधकवचन नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ वैशम्पायन बोले; इस प्रकार अंधकके वचन सुन क्रोधकरके कंस कुछ भी नहीं बोला, किन्तु अपने स्थानमें प्रवेश कर गया ॥ १ ॥ वे सब पण्डित यादव संकल्परहित हो कंसका अनिष्ट चिन्तन करते हुए अपने स्थानको गये ॥ २ ॥ इधर अक्रूरभी उनकी आज्ञा पाय कर मनके समान वेगवाले रथपर बैठकर चले ॥ ३ ॥ इधर कृष्णकेभी अंगमें शुभ शकुन इस प्रकार होने लगे, जिस प्रकार कि, पिता और बांधवोंका समागम है ॥ ४ ॥ इससे पहले-

लेही कृष्णके मारनेको कंसने केशी नाम दूतको भेजा ॥ ५ ॥ इस प्रकार दूतके वचन सुनकर मनुष्योंको क्लेश करनेहारा वृन्दावनमें जाकर गोपोंको बाधा देने लगा ॥ ६ ॥ मानुषका मांस खानेहारा क्रुद्ध दुष्ट पराक्रमी दुर्दान्त घोडेका रूप बनाये महाकदन करने लगा ॥ ७ ॥ वह गोपालोंके साथ गौओंको दुःख देता हुआ मांसभोजन करता दुर्मद कामचारी उच्छृंखल वह केशी दुखदाई फिरने लगा ॥ ८ ॥ वह वन स्मशानरूप मनुष्योंकी अस्थियोंसे व्याप्त हो गया, जहां वह केशी स्थित होता था वहांही ॥ ९ ॥ खुरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण करता और वेगसे वृक्षोंको उखाडता, हीसनेसे वायुकी

स च दूतवचश्श्रुत्वा केशी क्लेशकरो नृणाम् ॥ वृन्दावनगतो गोपान्बाधते स्म दुरासदः ॥ ६ ॥ मानुषं मांसमश्नानः क्रुद्धो दुष्टपराक्रमः ॥ दुर्दान्तो वाजिदैत्योऽसावकरोत्कदनं महत् ॥ ७ ॥ निघ्नन्गा वै सगोपाला गवां पिशितभोजनः ॥ दुर्मदः कामचारी च स केशी निरवग्रहः ॥ ८ ॥ तदरण्यं श्मशानाभं नृणां मांसास्थिभिर्वृतम् ॥ यत्रास्ते स हि दुष्टात्मा केशी तुरगदानवः ॥ ९ ॥ खुरैर्दारयते भूमिं वेगेनारुजते द्रुमान् ॥ हेषितैः स्पर्द्धते वायुं प्लुतैर्लङ्घयते नभः ॥ १० ॥ अतिप्रवृद्धो मत्तश्च दुष्टोऽश्वो वनगोचरः ॥ आकम्पितसटो रौद्रः कंसस्य चरितानुगः ॥ ११ ॥ ईरिणं तद्वनं सर्वं तेनासीत्पापकर्मणा ॥ कृतं तुरगदैत्येन सर्वान्गोपान् जिघांसता ॥ १२ ॥ तेन दुष्टप्रचारेण दूषितं तद्वनं महत् ॥ न नृभिर्गोधनैर्वापि सेव्यते वनवृत्तिभिः ॥ १३ ॥ निःसंपातः कृतः पन्थास्तेन तद्विषयाश्रयः ॥ मदाच्चलितवृत्तेन नृमांसान्यश्नता भृशम् ॥ १४ ॥

स्पर्द्धा करता और कूदकर आकाशकोभी लंघन करता ॥ १० ॥ बढे हुए मदसे वह दुष्ट अश्व वनमें फिरता हुआ बडे अपनी गर्दनके बालोंको कंपाता कंसका तीक्ष्ण दूत था ॥ ११ ॥ उस पापीने वह वन शीघ्रही नष्ट कर दिया, और वह घोडेरूपी दुष्ट दैत्य सब गोपोंकी मारनेकी इच्छा करने लगा ॥ १२ ॥ इस प्रकार उस दुष्टने अपने विचारनेसे उस वनको नष्ट कर दिया, मनुष्य गोधनादि सबको उसने उस वनसे रहित किया, अर्थात् उस वनमें उसके डरसे कोई वहां नहीं जाता ॥ १३ ॥ और उसने उस वनके स्थान सब मनुष्योंके जानेके अयोग्य अगम्य कर दिये, मदसे उसकी वृत्ति चलायमान होती थी

और मनुष्यमांसके खानेकी अत्यन्त इच्छा थी ॥ १४ ॥ मनुष्यका शब्द सुनतेही वह उधरही चलता, एक समय वह वनसे चलकर कालधर्मसे प्रेरित हो घोषमें आया ॥ १५ ॥ उसके देखतेही गोपस्त्री और बालक भयसे भागने लगे और चिल्लाते हुए जगन्नाथ कृष्णके शरणागत हुए ॥ १६ ॥ उनके रोनेके शब्दसे और गोपोंको चिल्लानेसे श्रीकृष्ण उन्हें अभय देकर उसके ऊपरको आये ॥ १७ ॥ इधर केशीभी गरदन ऊपरको उठाये दांतोंको प्रकाश करता हुआ और बडे शब्दसे हींसता हुआ श्रीकृष्णके सन्मुख गया ॥ १८ ॥ हयदानव उस केशीको आता देखकर उसके सामने गया, जैसे

नृशब्दानुसरः क्रुद्धस्स कदाचिद्वनागमे ॥ जगाम घोषसंवासं चोदितः कालधर्मणा ॥ १५ ॥ तं दृष्ट्वा दुद्रुवुर्गोपाः स्त्रियश्च शिशुभिस्सह ॥ क्रन्दमाना जगन्नाथं कृष्णं नाथमुपाश्रिताः ॥ १६ ॥ तासां रुदितशब्देन गोपानां क्रन्दितेन च ॥ दत्त्वाऽभयं तु कृष्णो वै केशिनं सोऽभिदुद्रुवे ॥ १७ ॥ केशी चाप्युन्नतग्रीवः प्रकाशदशनेक्षणः ॥ हेषमाणो जवोदग्रो गोविन्दाभिमुखो ययौ ॥ १८ ॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य केशिनं हयदानवम् ॥ प्रत्युज्जगाम गोविन्दस्तोयदश्शशिनं यथा ॥ १९ ॥ केशिनस्तु तमभ्याशे दृष्ट्वा कृष्णमवस्थितम् ॥ मनुष्यबुद्धयो गोपाः कृष्णमूचुर्हितैषिणः ॥ २० ॥ कृष्ण तात न खल्वेष सहसा ते हयाधमः ॥ उपसर्प्यो भवान्बालः पापश्चैष दुरासदः ॥ २१ ॥ एष कंसस्य सहजः प्राणस्तात बहिश्चरः ॥ उत्तमश्च हयेन्द्राणां दानवोऽप्रतिमो युधि ॥ २२ ॥ त्रासनस्सर्वभूतानां तुरगाणां महाबलः ॥ अवध्यस्सर्वभूतानां प्रथमः पापकर्मणाम् ॥ २३ ॥ गोपानां तद्वचश्श्रुत्वा वदतां मधुसूदनः ॥ केशिना सह युद्धाय मतिं चक्रेऽरिसूदनः ॥ २४ ॥

मेघ चन्द्रके सन्मुख जाता है ॥ १९ ॥ इधर केशी श्रीकृष्णको निकट स्थित देखकर गोप मनुष्यबुद्धिसे उनके हितकारी वचन बोले ॥ २० ॥ हे कृष्ण ! हे तात ! इसके निकट मत जाओ. आप बालक हो यह पापात्मा दुरासद और अधम है ॥ २१ ॥ यह कंसका साक्षात् बाहरी प्राण है, यह घोडोंमें उत्तम दानवोंकी समान युद्धमें है ॥ २२ ॥ यह सब प्राणियोंको दुःख देनेहारा महाबली है, यह सब भूतोंका अवध्य और पाप करनेहारोंमें प्रथम है ॥ २३ ॥ गोपोंके यह वचन सुनकर श्रीकृष्णने केशीके साथ युद्ध करनेकी इच्छा की ॥ २४ ॥

उसके दहने वांये मंडलसे घूमते हुए और वह घोडाभी घूमता हुआ परोंसे वृक्षोंको उखाडने लगा ॥ २५ ॥ इसके मुखके ऊपर लम्बे बाल थे और कंधोंपरभी घने बाल थे, ललाटमें वली पडती थीं. जैसे मेघकी तरंग होती हैं और क्रोधसे शरीरसे जल चूता था ॥ २६ ॥ रज व मैले झाग मुखसे उगलने लगा. जसे हिमके समय कुहरयुक्त आकाशमें चन्द्रमा होता है॥२७॥वह कमलनेत्र गोविंदके प्रति गर्जना करता फेन चुवानेहारे मुखसे श्रीकृष्णकी ओर देखने लगा ॥२८॥ खुरके रखनेसे उठे और मधुयष्टिके चूर्णके समान पाण्डुवर्णकी रजसे उस घोडेने श्रीकृष्णके

ततस्सव्यं दक्षिणं च मण्डलं स परिभ्रमन् ॥ पद्भ्यामुभाभ्यां स हयः क्रोधेनारुजते द्रुमान् ॥ २५ ॥ मुखे लम्बसटे चास्य स्कन्धे केशघनावृते ॥ वलयोऽभ्रतरङ्गाभाः सुस्रुवुः क्रोधजं जलम् ॥ २६ ॥ सफेनं वक्त्रजं चैव ववर्ष रजसावृतम् ॥ हिमकाले यथा व्योम्नि नीहारमिव चन्द्रमाः ॥२७॥ गोविन्दमरविन्दाक्षं हेषितोद्गारशीकरैः ॥ सफेनैर्वक्त्रनिर्गीर्णैः प्रोक्षयामास भारत ॥२८॥ खुरोद्धूतावसिक्तेन मधुकक्षोदपाण्डुना ॥ रजसा स हयः कृष्णं चकारारुणमूर्धजम् ॥ २९ ॥ प्लुतवल्गितपादस्तु तक्षमाणो धरां खुरैः ॥ दन्तान्निर्दशमानस्तु केशी कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ३० ॥ स संसक्तस्तु कृष्णेन केशी तुरगसत्तमः ॥ पूर्वाभ्यां चरणाभ्यां वै कृष्णं वक्षस्यताडयत् ॥ ३१ ॥ पुनः पुनस्स च बली प्राहिणोत्पार्श्वतः खुरान् ॥ कृष्णस्य दानवो घोरे प्रहारममितौजसः ॥ ३२ ॥ वक्त्रेण चास्य घोरेण तीक्ष्णदंष्ट्रायुधेन वै ॥ अदशद्बाहुशिखरं कृष्णस्य रुषितो हयः ॥३३॥ स लम्बकेसरसटः कृष्णेन सह संगतः ॥ रराज केशी मेघेन संसक्तः ख इवांशुमान् ॥ ३४ ॥

बाल धूसरित किये ॥ २९ ॥ कूदकर अपने खुरोंसे पृथ्वीको खोदता तथा दांत पीसता हुआ केशी कृष्णपर झपटा ॥ ३० ॥ जिस समय महाबली कृष्णके निकट हुआ,आतेही उसने पिछली टांगें कृष्णकी छातीमें मारीं ॥ ३१ ॥ और उस बलीने वारम्वार खुर चलाये, इस प्रकार वह महापराक्रमी कृष्णपर ॥३२॥ प्रहार करने लगा और क्रोधकर कृष्णकी भुजामें काटने लगा ॥३३॥ वह लम्बे बालोंवाला केशी जब कि, श्रीकृष्णसे मिला तब

ऐसा शोभित हुआ जसे कि, आकाशमें मेघोंसहित सूर्य होता है ॥ ३४ ॥ तब इस बलवान् घोडेने अपने हृदयसे श्रीकृष्णके हृदयमें प्रहार करनेकी इच्छा की और क्रोधसे दूना विक्रम कर श्रीकृष्णपर टूटा ॥ ३५ ॥ बलवान् महापराक्रमी कृष्णने उसे आया देख अपनी भुजा बडी करकेउसके मुखमें डाल दी ॥ ३६ ॥ वह उस भुजाको खाने और भेदन करनेको असमर्थ हुआ और दांत जडसे टूट गये; जिससे रुधिर निकलने लगा ॥ ३७ ॥ इसके होठ फट गये और कपोल कट गये, आंखें फट गईं मुखके बन्धन शिथिल हो गये ॥ ३८ ॥ ठोडी फट जानेसे रुधिरसे नेत्र भर गये, तब वह नष्टचित्त

उरस्तस्योरसा हन्तुमियेष बलवान्हयः ॥ वेगेन वासुदेवस्य क्रोधाद्द्विगुणविक्रमः ॥ ३५ ॥ तस्योत्सिक्तस्य बलवान्कृष्णोऽप्यमितविक्रमः ॥ बाहुमाभोगिनं कृत्वा मुखे क्रुद्धस्समादधत् ॥ ३६ ॥ स तं बाहुमशक्तो वै खादितुं भेत्तुमेव च ॥ दशनैर्मूलनिर्मुक्तैस्सफेनं रुधिरं वमन् ॥ ३७ ॥ विपाटिताभ्यामोष्ठाभ्यां कटाभ्यां विदलीकृतः ॥ अक्षिणी विकृते चक्रे विसृते मुक्तबन्धने ॥ ३८ ॥ निरस्तहनुराविष्टश्शोणिताक्तविलोचनः ॥ उत्कर्णो नष्टचेतास्तु स केशी बह्वचेष्टत ॥ ३९ ॥ उत्पतन्नसकृत्पादैश्शकृन्मूत्रं समुत्सृजन् ॥ खिन्नाङ्गरोमा श्रान्तस्तु निर्यत्नचरणोऽभवत् ॥ ४० ॥ केशी वक्त्रविलग्नस्तु कृष्णबाहुरशोभत ॥ व्यासुग्न इव घर्मान्ते चन्द्रार्धकिरणैर्घनः ॥ ४१ ॥ केशी च कृष्णसंसक्तश्शान्तगात्रो व्यरोचत ॥ प्रभातावनतश्चन्द्रश्श्रान्तो मेरुमिवाश्रितः ॥ ४२ ॥ तस्य कृष्णभुजोद्भूताः केशिनो दशना मुखात् ॥ पेतुश्शरदि निस्तोयास्सिताभ्रावयवा इव ॥ ४३ ॥ स तु केशी भृशं श्रान्तः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ स्वभुजं स्वायतं कृत्वा पाटितो बलवत्तदा ॥ ४४ ॥

दैत्य कानोंको उठा वारंवार चेष्टा करने लगा ॥ ३९ ॥ वारंवार पैरोंको पटकने और मूत्र करने लगा. खिन्नशरीर रोम स्थित होनेसे शान्त होकर हाथ पैर हिलाने छोड दिये ॥ ४० ॥ केश और मुखमें लगी हुई वह कृष्णकी बाहु शोभित हुई; जिस प्रकार वर्षामें चन्द्रमाकी किरणोंसे फटे हुए मेघकी शोभा होती है ॥ ४१ ॥ और केशी कृष्णके संगसे शान्त हो शोभित हुआ. जिस प्रकार प्रातःकालका चन्द्रमा मेरुको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार शरदऋतुमें जलहीन श्वेत मेघ फिरते हैं, इस प्रकार कृष्णके हाथसे केशीके दांत टूटकर गिर पडे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार हारा

हुआ केशी दैत्य श्रीकृष्णके जोरसे अपनी भुजासे फाड डाला और युद्धमें कृष्णके हाथसे फाटा ॥ ४४ ॥ संग्राममें श्रीकृष्णकी भुजासे मुख फटनेसे पृथ्वीमें गिर पडा और बडा शब्द करके चिंघाडने लगा॥४५॥ फिर वह घूमने लगा, अंग शिथिल हो गये, मुखसे रुधिर निकलने लगा, उसके शरीर महादुःखी हो ऐसे चूर्ण हो गये, जसे पहाड चूर्ण हो जाता है ॥ ४६ ॥ महा बडी कृष्णकी भुजासे वह दैत्य मुख फैला कर दो खण्ड किये नागके समान छिन्न हो पृथ्वीपर गिरा॥४७॥ बाहुसे छेदित हो केशीका रूप अद्भुत हो गया, जैसे शिवके घोर पशुके वध कियेका रूप हो जाता है ॥४८॥

स पाटितो भुजेनाजौ कृष्णेन विकृताननः ॥ केशी नदन्महानादं दानवो व्यथितस्तदा ॥ ४५ ॥ विघूर्णमानस्त्रस्ताङ्गो मुखाद्रु-
धिरमुद्वमन् ॥ भृशं व्यङ्गीकृतवपुर्निकृत्तार्द्ध इवाचलः ॥ ४६ ॥ व्याधितास्यो महारौद्रस्सोऽसुरः कृष्णबाहुना ॥ निपपात यथा
कृत्तो नागो हि द्विदलीकृतः ॥४७॥ बाहुना कृत्तदेहस्य केशिनो रूपमाबभौ ॥ पशोरिव महाघोरं निहतस्य पिनाकिना ॥४८॥
द्विपादपृष्ठपुच्छार्द्धं श्रवणैकाक्षिनासिके ॥ केशिनस्तद्द्विधाभूते द्वे चार्द्धे रेजतुः क्षितौ॥४९॥केशिदन्तक्षतस्यापि कृष्णस्य शुशुभे
भुजः ॥ वृद्धस्साल इवारण्ये गजेन्द्रदशनाङ्कितः ॥ ५० ॥ तं हत्वा केशिनं युद्धे कल्पयित्वा च भागशः ॥ कृष्णः पद्मपलाशाक्षो
हसंस्तत्रैव तस्थिवान् ॥५१॥ तं हतं केशिनं दृष्ट्वा गोपा गोपस्त्रियस्तथा ॥ बभूवुर्मुदितास्सर्वे हतविघ्ना गतक्लमाः ॥५२॥ दामो-
दरं तु श्रीमन्तं यथास्थानं यथावयः ॥ अभ्यनन्दन्प्रियैर्वाक्यैः पूजयन्तः पुनः पुनः ॥ ५३ ॥

दो पैर आधी पीठ पूछ श्रवण नासिका यह सब केशीके दो भागोंमें होकर पृथ्वीमें गिरे ॥४९॥ और केशीके दांतोंसे काटी हुई कृष्णकी भुजा ऐसे शोभित होने लगी जैसे वनमें हाथीके दांतसे अंकित हो बडा शाल शोभित होता है॥५०॥इस प्रकार केशीको युद्धमें मार और इसके भाग कल्पित कर कमललोचन श्रीकृष्ण वनमेंही स्थित रहे और हंसने लगे ॥ ५१ ॥ इधर गोप और उनकी स्त्री केशीको मृतक देख विघ्न और दुख दूर होनेसे सब प्रसन्न हो गये ॥ ५२ ॥ और दामोदरको इनकी अवस्थाके अनुसार यथास्थानमें प्रिय वाक्योंसे पूजा करते बडाई करने

लगे, गोप बोले ॥५३॥ हे तात ! यह बडा कर्म किया जो तुमनें इस लोककंटकको मारा. हे कृष्ण ! यह दैत्य घोडेका रूप धारे पृथ्वीमें विचरता था॥५४॥तुमने मृग पक्षियोंके सेवनीय वृन्दावनको कर दिया जो कि,इस पापिष्ठ केशीदानवको मारा॥५५॥और अनेक देशभी इस दुरात्माने नष्ट कर दिये ॥५६॥ अब यह पापी यही इच्छा करता था कि, जो कोई मनुष्य रहे, तो मैं स्वच्छन्द वनमें विहार करूं ॥५७॥ इसके सामने जीवनकी इच्छा करनेवाला कोई ठहरनेको समर्थ नहीं हो सकता;देवताभी इसका सामना नहीं कर सकते, पृथ्वीके मनुष्योंकी कौन कहे ॥ ५८ ॥ इसी अव-

गोपा ऊचुः ॥ अहो तात कृतं कर्म हतोऽयं लोककण्टकः ॥ दैत्यः क्षितिचरः कृष्ण हयरूपं समास्थितः ॥ ५४ ॥ कृतं वृन्दावनं क्षेमं सेव्यं नृमृगपक्षिणाम् ॥ घ्नता पापमिमं तात केशिनं हयदानवम् ॥५५॥ हता नो बहवो गोपा गावो वत्सेषु वत्सलाः ॥ नैके चान्ये जनपदा हतानेन दुरात्मना ॥ ५६ ॥ एष संवर्त्तकं कर्त्तुमुद्यतः खलु पापकृत् ॥ नृलोकं निर्नरं कृत्वा चर्तुकामो यथासुखम् ॥५७॥ नैतस्य प्रमुखे स्थातुं कश्चिच्छक्तो जिजीविषुः ॥ अपि देवसमूहेषु किं पुनः पृथिवीतले ॥ ५८ ॥ अथाहान्तर्हितो विप्रो नारदः खगमो मुनिः ॥ प्रीतोऽस्मि विष्णो देवेश कृष्ण कृष्णेति चाब्रवीत् ॥ ५९ ॥ नारद उवाच ॥ यदिदं दुष्करं कर्म कृतं केशि जिघांसया ॥ त्वय्येव केवलं युक्तं त्रिदिवं त्र्यम्बकस्य वा ॥ ६० ॥ अहं युद्धोत्सुकस्तात त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥ इदं नरहयं युद्धं द्रष्टुं स्वर्गादिहागतः ॥ ६१ ॥ पूतनानिधनादीनि कर्माणि तव दृष्टवान् ॥ अहं त्वनेन गोविन्द कर्मणा परितोषितः ॥ ६२ ॥ हयादस्मान्महेन्द्रोऽपि बिभेति बलसूदनः ॥ कुर्वाणाच्च वपुर्घोरं केशिनो दुष्टचेतसः ॥ ६३ ॥

सरमें अन्तर्ध्यान हो आकाशमें स्थित हुए नारद मुनि बोले; हे देवेश विष्णो ! हे कृष्ण ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं ऐसा कहने लगे ॥ ५९ ॥ नारदजी बोले; केशीके मारनेका जो दुष्कार कर्म किया है, इस कामसे तुम या शिव दोही समर्थ थे॥६०॥हे तात ! इसके संग तुम्हारा युद्ध देखनेकी मुझे बडी इच्छा थी,इसी कारण मैं यहां स्वर्गमें युद्ध देखने को आया था.कारण कि,यह मनुष्य और घोडेका युद्ध है॥६१॥ पूतनानिधनादि आपके सब कर्म देखे हैं. हे गोविन्द ! परन्तु मैं इस कर्मसे बहुत सन्तुष्ट हुआ हूं॥६२॥हे कृष्ण ! इस घोडेसे बलघातक इन्द्रभी डरता था, यह दुष्ट केशीदानवघोर शरीर

किये फिरता था ॥६३॥ जो कि, आपने तीक्ष्ण वज्रके समान अपनी भुजासे इसका देह फाड डाला है. ब्रह्माने इसी प्रकार इसकी मृत्युका विधान किया था ॥ ६४ ॥ जो कि, आपने केशीको मारा है, इससे हमारे वचन सुनो, आपका लोकमें एक केशव नाम विख्यात होगा ॥ ६५ ॥ आपका कल्याण लोकमें हो, मैं शीघ्र जाता हूं. शेष कृत्यभी शीघ्र करो, देर मत करो, कारण कि, तुम सामर्थ्यवान हो ॥ ६६ ॥ तुम्हारे कार्यान्तर करनेको जानेमें मनुष्योंके समान क्रीडा करते देवता तुम्हारे आश्रय हो आनन्द करते हैं ॥६७॥ भारतरूपी संग्रामसागरका समय शीघ्र आया चाहता है, स्वर्ग

यत्त्वया पातितो देहो भुजेनायतपर्वणा ॥ एषोऽस्य मृत्युरन्ताय विहितो विश्वयोनिना ॥६४॥ यस्मात्त्वया हतः केशी तस्मान्मच्छासनं शृणु ॥ केशवो नाम नाम्ना त्वं ख्यातो लोके भविष्यसि ॥६५॥ स्वस्त्यस्तु भवतो लोके साधु याम्यहमाशुगः ॥ कृत्यशेषं च ते कार्यं शक्तस्त्वमसि मा चिरम् ॥६६॥ त्वयि कार्यान्तरगते नरा इव दिवौकसः ॥ विडम्बयन्तः क्रीडन्ति लीलां त्वद्बलमाश्रिताः ॥ ६७ ॥ अभ्याशे वर्तते कालो भारतस्याहवोदधेः ॥ हस्तप्राप्तानि युद्धानि राज्ञां त्रिदिवगामिनाम् ॥ ६८ ॥ पन्थानश्शोधिता व्योम्नि विमानारोहणोर्ध्वगाः ॥ अवकाशा विभज्यन्ते शक्रलोके महीक्षिताम् ॥६९॥ उग्रसेनसुते शान्ते पदस्थे त्वयि केशव ॥ अभितस्तन्महद्युद्धं भविष्यति महीक्षिताम् ॥७०॥ त्वां चाप्रतिमकर्माणं सश्रयिष्यन्ति पाण्डवाः ॥ भेदकाले नरेन्द्राणां पक्षग्राहो भविष्यसि ॥७१॥ त्वयि राजासनस्थे हि राजश्रियमनुत्तमाम् ॥ शुभां त्यक्ष्यन्ति राजानस्त्वत्प्रभावान्न संशयः॥७२॥ एष मे कृष्ण संदेशः श्रुतिभिः ख्यातिमेष्यति ॥ देवतानां दिविस्थानां जगतश्च जगत्पते ॥ ७३ ॥

॥ ६१ ॥

जानेवाले राजाओंके युद्ध हाथमें आ रहे हैं॥६८॥ आकाशके मार्ग शोधे हुए हैं, रोहण मार्गके जानेवाले विमानोंके माग शोधे हुए हैं, और इन्द्रलोकमें जानेवाले राजोंके अवकाश (स्थान) विभक्त हो रहे हैं ॥ ६९ ॥ हे केशव ! कंसके मरने और आपके पद प्राप्त होनेपर राजोंका महान संग्राम होगा ॥ ७० ॥ तुमको महाबली पाण्डव आश्रय करेंगे, राजाके भेदके समय परस्पर पक्षकी स्वीकारता होगी ॥७१॥ आपके राजासन पर स्थित होनेसे मनोहर राजलक्ष्मी अन्य राजोंको आपके प्रभावसे त्याग दगी इसमें सन्देह नहीं॥७२॥ हे कृष्ण ! यह मेरा सन्देशा श्रुतियोंसे विख्यात होगा;

" अहश्च कृष्णमहरर्जुन च विवर्तेते रजसीवेद्याभिःवैश्वानरो जायमानो न राजा वातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसीति" देवताओंके स्वर्ग और जगत्‌में भी अवश्य विदित होगा; हे जगतपति ! ॥७३॥ आपका यह कर्म देखा और तुमकोभी देखा, कंसके मारनेपर आपका दर्शन करूंगा अब तुम्हारा मंगल हो, मैं जाता हूं ॥७४॥ ऐसा कह नारद आकाशमें प्रवेश कर गये, दिव्य संगीतवाले नारदजीका यह वचन सुन॥७५॥यही होगा, यह कहकर कृष्ण गोपोंसे जा मिले और गोप कृष्णके सहित व्रजमें आये ॥ ७६ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां केशीवधो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

दृष्टं मे भवतः कर्म दृष्टश्चासि मया प्रभो ॥ कंसे भूयस्समेष्यामि साधिते साधु याम्यहम् ॥ ७४ ॥ एवमुक्त्वा तु स तदा नारदः खं जगाम ह ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा देवसंगीतयोनिनः ॥ ७५ ॥ तथेति स समाभाष्य पुनर्गोपान्तसमासदत् ॥ गोपाः कृष्णं समासाद्य विविशुर्व्रजमेव ह ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि केशिवधे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथास्तं गच्छति तदा मन्दरश्मौ दिवाकरे ॥ संध्यारक्ततले व्योम्नि शशाङ्के पाण्डुमण्डले ॥ १ ॥ नीडस्थेषु विहङ्गेषु सत्सु प्रादुष्कृताग्निषु ॥ ईषत्तमस्संवृतासु दिक्षु सर्वासु सर्वशः ॥ २ ॥ घोषवासिषु सुप्तेषु वाशन्तीषु शिवासु च ॥ नक्तंचरेषु हृष्टेषु पिशिताशनकांक्षिषु ॥ ३ ॥ शक्रगोपाह्वयामोदे प्रदोषेऽभ्यासतस्करे ॥ संध्यामयीमिव गुहां संप्रतिष्ठे दिवाकरे ॥४॥ अधिश्रयणवेलायां प्राप्तायां गृहमेधिनाम् ॥ वन्यैर्वैखानसैर्मन्त्रैर्हूयमाने हुताशने ॥ ५ ॥

वैशंपायन बोले; तदनंतर सूर्यके अस्ताचलमें प्राप्त होनेपर जब कि; सध्यासे लाल हुए बादलोंमें चन्द्रमाका श्वेत मण्डल हो रहा था ॥ १ ॥ पक्षियोंके घोंसलेमें प्राप्त होने यज्ञ करनेवालोंके अग्नि दीप्त करनेमें और सम्पूर्ण दिशाओंमें किंचित् अंधकार फैलनेसे ॥ २ ॥ घोषवासियोंके सोने और गीदडोंके अत्यन्त शब्द करनेपर और मांसपक्षी रात्रीमें फिरनेवाले जीवोंके फिरनेपर ॥ ३ ॥ आतपसे तप्त इन्द्रगोपोंके सुखपूर्वक विश्राम करनेपर, स्वाध्यायके निवृत्त होनेमें और संध्यारूपी गुहामें सूर्यके स्थित होनेसे ॥४॥ गृहस्थियोंके शयनकी वेला प्राप्त होनेपर तथा वानप्रस्थोंके वनोंमें अग्निहोत्र प्रारम्भ

करनेपर ॥५॥ वनसे लौटी गौओंके दुहे जानेपर तथा बंधे बच्चोंके पुकारनेपर ॥६॥ बडी रस्सी युक्त खूंटे गायोंके बुलानेपर शब्दपूर्वक गोपोंके बुलानेपर ॥७॥ अन्य उपलोंकी आगके चारों ओर दीप्तमान होनेपर, और काठ उठानेके भारसे झुके कंधेवाले गोपोंके आनेपर ॥ ८ ॥ चन्द्रमाके कुछ एक उदय होने और मंद किरणें बिराजनेपर दिन जानेपर रातको कुछेक अवगाहन करनेमें ॥९॥ दिन जाने और रात्रीके आनेपर सूर्यके तेज जाने और चन्द्रमाका तेज बढनेसे ॥ १० ॥ समय अग्निहोत्रसे युक्तहो सौम्य चन्द्रमाके उदय होने तथा अग्निसे और सोमसे जगत्की सन्धियुक्त होनेसे

उपावृत्तासु वै गोषु दुह्यमानासु च व्रजे ॥ असकृद्व्याहरन्तीषु बद्धवत्सासु धेनषु ॥ ६ ॥ प्रकीर्णदामनीकेषु गास्तथैवाह्वयत्सु च ॥
सनिनादेषु गोपेषु काल्यमाने च गोधने ॥ ७ ॥ करीषेषु प्रक्लृप्तेषु दीप्यमानेषु सर्वशः ॥ काष्ठभारानतस्कन्धैर्गोपैरभ्यागते-
स्तथा ॥ ८ ॥ किंचिदभ्युद्यते सोमे मन्दरश्मौ विराजति ॥ ईषद्विगाहमानायां रजन्यां दिवसे गते ॥ ९ ॥ प्राप्ते दिनव्युपरमे
प्रवृत्ते क्षणदामुखे ॥ भास्करे तेजसि गते सौम्ये तेजस्युपस्थिते ॥ १० ॥ अग्निहोत्राकुले काले सौम्येन्दौ समुपस्थिते ॥ अग्नी-
षोमात्मके संधौ वर्तमाने जगन्मये ॥ ११ ॥ पश्चिमेनाग्निदीप्तेन पूर्वेणोत्पलवर्चसा ॥ दग्धाद्रिसदृशे व्योम्नि किंचित्तारागणाकुले
॥ १२ ॥ वयोभिर्वासमुशतां बन्धुभिश्च समागमम् ॥ शंसद्भिस्स्यन्दनेनाशु प्राप्तो दानपतिर्व्रजम् ॥ १३ ॥ प्रविशन्नेव पप्रच्छ
सान्निध्यं केशवस्य सः ॥ रौहिणेयस्य चाक्रूरो नन्दगोपस्य चासकृत् ॥ १४ ॥ स नन्दगोपस्य गृहं वासाय विबुधोपमः ॥
अवतीर्य ततो यानात्प्रविवेश महाबलः ॥१५॥ हर्षपूर्णेन वक्त्रेण साश्रुनेत्रेण चैव हि ॥ प्रविशन्नेव च द्वारि ददर्शादोहने गवाम् ॥१६॥

और इन्हीमें जगतके लय ॥ ११ ॥ पूर्वकी ओर उत्पलके समान कान्तिवाले चन्द्रमाके उदय होनेपर और दग्ध पहाडरूपी आकाश कुछेक तारागण चमकनेपर ॥१२॥ वासगृहकी इच्छा करनेवाले पथिकोंके बन्धुसहित समागमको कहते हुए पक्षियोंके साथही रथमें बैठे अक्रूरजी प्राप्त हुए ॥१३॥ और व्रजमें प्रवेश करतेही श्रीकृष्ण बलराम और नन्दगोपका स्थान अक्रूरजी पूछने लगे ॥ १४ ॥ इस प्रकार देवताओंके समान अक्रूरजी रथसे उतर वास करनेके निमित्त नन्दरायके घरमें प्रविष्ट हुए ॥ १५ ॥ मुखमें प्रसन्न नेत्रोंमें जल भरे प्रवेश करतेही द्वारेपर इन्होंने ॥ १६ ॥

बछडोंके बीचमें श्रीकृष्णको देखा, जैसा कि, वृषभके निकट बच्छ होता है, देखतेही महाप्रसन्न और गद्गद कंठ होकर॥१७॥हे कृष्ण तात ! आओ. इस प्रकार कहने लगे, इस प्रकार श्रीकृष्णको सीधे शयन करते लक्ष्मीसे युक्त देख॥१८॥तथा अव्यक्त (अप्रगट) यौवन देखकर अक्रूर प्रशंसा करने लगा,यह वही सिंहशार्दूलके समान पराक्रमी पुण्डरीकाक्ष है॥१९॥जलपूर्ण मेघके समान कान्तिवाले श्रेष्ठ पर्वतके समान आकार युद्धमें अजेय हृदयमें श्रीवत्स और शत्रुओंके नष्ट करनेवाली चतुर्भुजाओंसे भूषित॥२०॥मूर्तिमान् रहस्यात्मा अर्थात् उपनिषदोंसे जानने योग्य प्रथम पूजाके पात्र गोपवेश

वत्समध्ये स्थितं कृष्णं सवत्समिव गोवृषम् ॥ स तं हर्षपरीतेन वचसा गद्गदेन वै ॥१७॥ एहि केशव तातेति प्रत्याहरत धर्मवित् ॥ उत्तानशायिनं दृष्ट्वा पुनर्दृष्ट्वा श्रियावृतम् ॥ १८ ॥ अव्यक्तयौवनं कृष्णमक्रूरः प्रशशंस ह ॥ अयं स पुण्डरीकाक्षस्सिंहशार्दूल-विक्रमः ॥१९॥ संपूर्णजलमेघाभः पर्वतप्रवराकृतिः ॥ मृधेष्वधर्षणीयेन सश्रीवत्सेन वक्षसा ॥द्विषन्निधनदक्षाभ्यां भुजाभ्यां साधु भूषितः ॥ २० ॥ मूर्तिमान्सरहस्यात्मा जगतोऽग्र्यस्य भाजनम् ॥ गोपवेषधरो विष्णुरुदग्राग्र्यतनूरुहः ॥२१॥ किरीटलाञ्छनेनापि शिरसा छत्रवर्चसा ॥ कुण्डलोत्तमयोग्याभ्यां श्रवणाभ्यां विभूषितः ॥ २२ ॥ हारार्हेण च पीनेन सुविस्तीर्णेन वक्षसा ॥ द्वाभ्यां भुजाभ्यां वृत्ताभ्यां दीर्घाभ्यामुपशोभितः ॥२३॥ स्त्रीसहस्रोपचर्येण वपुषा मन्मथाधिना ॥ पीते वसानो वसने सोऽयं विष्णुस्स-नातनः ॥२४॥ धरण्याश्रयभूताभ्यां चरणाभ्यामरिंदमः ॥ त्रैलोक्याक्रान्तिभूताभ्यां भुवि पद्भ्यां व्यवस्थितः ॥२५॥ रुचिरा-ग्रकरश्चास्य चक्राङ्कित इवेक्षते ॥ द्वितीय उद्यतश्चापि गदासंयोगमिच्छति ॥ २६ ॥

धारे श्रेष्ठ केशोंसे युक्त ॥ २१ ॥ किरीटके चिह्नवाले छत्रकी कान्तियुक्त, शिर और श्रेष्ठ कुण्डलयोग्य कानोंसे विभूषित ॥ २२ ॥ हारके योग्य महापीन चौडी छातीसे युक्त दोनों भुजाओंकी गोलाई और लम्बाईसे शोभित ॥२३॥ सहस्र स्त्रियोंके सेवा योग्य कामके मानभंग करनेहारे शरीरसे शोभित पीत वस्त्र धारे यह साक्षात् विष्णु भगवान् सनातन हैं ॥२४॥ धरणीके आश्रयभूत चरणोंसे यह शत्रुओंके नाशक मानो त्रिलोकीकी कान्ति इनसे पृथ्वीमें हो रही है,अथवा इन चरणोंसे त्रिलोकीकी कान्ति युक्त पृथ्वीमें व्यवस्थित हो रही है ॥२५॥इनका श्रेष्ठ हाथ चक्रके धारण करनेके

योग्य दीखता है, और दूसरा हाथ उद्यत हुआ मानो गदा धारणकी इच्छा करता है ॥ २६ ॥ देवताओंके भारको धारण करनेवाले पृथ्वीमें अवतार लेकर कृष्णने महाशोभा पाई है, यह देवताओंकी धुर धारण करनेवाले हैं ॥ २७ ॥ ज्योतिषियोंने यह बात पहिलेही कह रक्खी थी कि यह गोपाल क्षीण हुए यादववंशको पृथ्वीमें विस्तार करेंगे ॥ २८ ॥ यह अपने तेजसे सैकडों सहस्रों यादववंशको पूर्ण करेंगे. जैसे नदी समुद्रको पूर्ण करती है ॥ २९ ॥ इनके शासनमें सारा जगत् रहेगा शत्रु मरेंगे सतयुगसा समय हो जायगा ॥ ३० ॥ यह पृथ्वीको आश्रित कर सब जगत् अपने वशमें करेंगे, यह राजोंके

अवतीर्णो भवायेह प्रथमं पदमात्मनः ॥ शोभतेऽद्य भुवि श्रेष्ठस्त्रिदशानां धुरंधरः ॥ २७ ॥ अयं भविष्ये कथितो भाविष्यकुशलैर्नरैः ॥ गोपालो यादवं वंशं क्षीणं विस्तारयिष्यति ॥ २८ ॥ तेजसा यादवाश्चास्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥ वंशमापूरयिष्यन्ति ह्योघा इव महार्णवम् ॥ २९ ॥ अस्येदं शासने सर्वं जगत्स्थास्यति शाश्वतम् ॥ निहतामित्रसामन्तस्फीतं कृतयुगे तथा ॥ ३० ॥ अयमास्थाय वसुधां स्थापयित्वा जगद्वशे ॥ राज्ञां भविष्यत्युपरि न च राजा भविष्यति ॥ ३१ ॥ नूनं त्रिभिः क्रमैर्जित्वा यथानेन प्रभुः कृतः ॥ पुरा पुरंदरो राजा देवतानां त्रिविष्टपे ॥ ३२ ॥ तथैव वसुधां जित्वा जितपूर्वां त्रिभिः क्रमैः ॥ स्थापयिष्यति राजानमुग्रसेनं न संशयः ॥ ३३ ॥ प्रसृष्टवैरगाधोऽयं प्रश्नैश्च बहुभिश्श्रुतः ॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादैश्च पुराणोऽयं हि गीयते ॥ ३४ ॥ स्पृहणीयो हि लोकस्य भविष्यति च केशवः ॥ तथा ह्यस्योत्थिता बुद्धिर्मानुष्यमुपजीवितुम् ॥ ३५ ॥

ऊपर होंगे परन्तु स्वयं राजा नहीं होंगे ॥ ३१ ॥ जिस प्रकारसे इन्होंने पूर्व समय त्रिविक्रमावतारमें पृथ्वीको जीतकर इन्द्रके प्रति दिया था और देवता स्वर्गमें स्थित हुए थे ॥ ३२ ॥ इसी प्रकारसे पूर्व कालमें जीती हुईकी समान इस समयभी यह पृथ्वी जीत उग्रसेन राजाके वंशमें करेंगे सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥ यह वैरियोंके नाशक अनेक प्रश्नोंसे हमने सुने हैं. ब्राह्मण और ब्रह्मवादियोंसे पुराणोंमें यही गाये जाते हैं ॥ ३४ ॥ यह केशव लोकोंके प्रार्थनीय होंगे और इनकी बुद्धि मनुष्योंके उपकारके निमित्त होगी ॥ ३५ ॥

मैं आज इनके स्थानको विधिपूर्वक पूजा करूंगा, और मंत्रयुक्त मैं इनकी विष्णुभावसे पूजा करूंगा ॥ ३६ ॥ और जो मनुष्योंमें प्रगट होकर इनकी ज्ञातिका परिज्ञान और प्रभाव हैं, सो उसमें मैं इनको साक्षात् देवता जानता हूं औरभी दिव्य चक्षुवाले इनको इसी प्रकार जानते हैं ॥३७॥ सो आज म ज्ञानवान श्रीकृष्णसे रात्रीमें सम्मति करके इनके साथ व्रजवासियोंको साथ लेकर चलूंगा जो यह मानेंगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णको देख बहुतसी हेतु युक्त बातें विचारते कृष्णके निकट नन्दगोपक घरमें प्रविष्ट हुए ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि

अहं त्वस्याद्य वसतिं पूजयिष्ये यथाविधि ॥ विष्णुत्वं मनसा चैव पूजयिष्यामि मन्त्रवत् ॥३६॥ यच्च ज्ञातिपरिज्ञानं प्रादुर्भावश्च वै नृषु ॥ अमानुषं वेद्मि चैनं ये चान्ये दिव्यचक्षुषः ॥३७॥ सोऽहं कृष्णेन वै रात्रौ संमन्त्र्य विदितात्मना ॥ सहानेन गमिष्यामि सव्रजो यदि मंस्यते ॥ ३८ ॥ एवं बहुविधं कृष्णं दृष्ट्वा हेत्वर्थकारणैः ॥ विवेश नन्दगोपस्य कृष्णेन सह संसदम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरागमनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स नन्दगोपस्य गृहं प्रविष्टस्सहकेशवः ॥ गोपवृद्धान्समानीय प्रोवाचामितदक्षिणः ॥१॥ कृष्णं चैवाब्रवीत्प्रीत्या रौहिणेयेन संगतम् ॥ श्वः पुरीं मथुरां तात गमिष्याम सुखाय वै ॥२॥ यास्यन्ति च व्रजाः सर्वे गोपालास्सपरिग्रहाः॥कंसाज्ञया समुचितं करमादाय वार्षिकम् ॥३॥ समृद्धस्तत्र कंसस्य भविष्यति धनुर्महः ॥ तं द्रक्ष्यथ समृद्धं च स्वजनैश्च समेष्यथ ॥ ४ ॥

भाषायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार अक्रूरजी कृष्णके सहित नंदगोपके घरमें प्रविष्ट हो गोप वृद्धोंको बुलाकर कहने लगे ॥१॥ प्रीतिसे कृष्ण और बलरामसे बोले; हे तात ! कल मथुरापुरीमें सुखपूर्वक चलना ॥ २ ॥ और सामग्रीसहित कुलको ले गोपभी चलेंगे, कारण कि, कंसकी आज्ञा है कि, हमारा वार्षिक कर दो ॥३॥ वहां कंसके यहां बडा धनुष यज्ञ होगा, उस समृद्ध यज्ञको आप स्वजनोंके सहित

देखिये ॥ ४ ॥ तुम्हारे पिता सदा दुःख पाते हैं वह पुत्रवधसे दीन और श्रान्त हैं, तुम युवा हुए अब उनको प्राप्त हो ॥ ५ ॥ दुर्बुद्धि कंससे वह निरन्तर पीडित हो वह दशान्तमें रक्तमांससे सूखे वृद्ध दुःखसे शिथिलताको प्राप्त हो ॥ ६ ॥ कंसके भयसे व्याकुल तुम्हारे विना अन्तरात्माको उत्कंठतासे रात दिन दह्यमान ॥ ७ ॥ अपने उन पिताको देखना. हे गोविन्द ! और पुत्रोंसे जिसका दूध नहीं पिया गया ऐसी देवताकी समान देवकीभी दुःख पाती है उसकी कान्ति नष्ट है ॥ ८ ॥ पुत्रशोकसे क्लेश पाती केवल आपके दर्शनमें परायण वियोगशोकसे सन्तत बछडे रहित गौकी

पितरं वसुदेवं च सततं दुःखभाजनम् ॥ दीनं पुत्रवधश्रान्तं युवामद्य समेष्यथ ॥ ५ ॥ सततं पीड्यमानं च कंसेनाशुभबुद्धिना ॥ दशान्ते शोषितं वृद्धं दुःखैश्शिथिलतां गतम् ॥ ६ ॥ कंसस्य भयसंत्रस्तं भवद्भ्यां च विनाकृतम् ॥ दह्यमानं दिवा रात्रौ सोत्कण्ठेनान्तरात्मना ॥ ७ ॥ तां च द्रक्ष्यसि गोविन्द पुत्रैरमृदितस्तनीम् ॥ देवकीं देवसंकाशां सीदन्तीं विहतप्रभाम् ॥ ८ ॥ पुत्रशोकेन शुष्यतीं त्वद्दर्शनपरायणाम् ॥ वियोगशोकसंतप्तां विवत्सामिव सौरभीम् ॥ ९ ॥ उपप्लुतेक्षणां दीनां नित्यं मलिनवाससम् ॥ स्वर्भानुवदनग्रस्तां शशाङ्कस्य प्रभामिव ॥ १० ॥ त्वद्दर्शनपरां नित्यं तवागमनकाङ्क्षिणीम् ॥ त्वत्प्रवृत्तेन शोकेन सीदन्तीं वै तपस्विनीम् ॥ ११ ॥ त्वत्प्रलापेष्वकुशलां त्वया बाल्ये वियोजिताम् ॥ अरूपज्ञां तव विभो वक्रस्यास्येन्दुवर्चसः ॥ १२ ॥ यदि त्वां जनयित्वा सा देवकी तात तप्यते ॥ अपत्यार्थो नु कस्तस्या वरं ह्येवानपत्यता ॥ १३ ॥ अपुत्राणां हि नारीणामेकश्शोको विधीयते ॥ सपुत्रा त्वफले पुत्रे धिक् प्रजातेन तप्यते ॥ १४ ॥

समान ॥ ९ ॥ नेत्रोंमें जल भरनेसे दुःखी, दीन, मलीन वस्त्र धारे, राहुसे ग्रसी हुई चन्द्रमाकी प्रभाकी समान ॥ १० ॥ नित्य तुम्हारे दर्शनकी इच्छा किये तुम्हारी वाट देखती तुम्हारे शोकसे वह तपस्वी रात दिन दुःख पाती ॥ ११ ॥ तुम्हारे बालवचनकी न सुननेहारी बालकपनसेही तुमसे वियुक्त चन्द्रमाकी कान्तिकी समान आपके रूपको न जाननेवाली है ॥ १२ ॥ हे तात ! यदि आपकोभी उत्पन्न कर वह देवकी दुःखी होती है तौ पुत्र होनेसे क्या लाभ ? इससे तौ न पुत्र होना भला है ॥ १३ ॥ अपुत्रा स्त्रियोंको एकही शोक

है कि पुत्र नहीं है और पुत्रवाली हो पुत्रका शोक पावे तौ उसकी प्रजाको धिक् है ॥ १४ ॥ हे कृष्ण ! आप तौ उसके पुत्र इन्द्रकी समान हो आपके गुणोंकी समान दूसरा नहीं, आप दूसरोंकोभी अभय देनेहारे हो, इस कारण तुम्हारी माता शोक करनेको योग्य नहीं है ॥ १५ ॥ बूढे तुम्हारे माता पिता दूसरेकी सेवा करते हैं, और तुम्हारे कारण उन्हें कंस नित्य फटकारता है ॥ १६ ॥ यदि पृथ्वीकी समान आत्माकी धारण करनेवाली देवकी तुमको मान्य है तौ शोकसागरसे उसका उद्धार करना तुमको बहुत उचित है ॥ १७ ॥ और पुत्रको प्यार करनेहारे सुखके

त्वं तु शक्रसमः पुत्रो यस्यास्त्वसदृशो गुणैः ॥ परेषामप्यभयदो न सा शोचितुमर्हति ॥ १५ ॥ वृद्धौ तवाम्बापितरौ परभृत्यत्वमागतौ ॥ भर्त्सितो त्वत्कृते नित्यं कंसेनाशुभबुद्धिना ॥ १६ ॥ यदि ते देवकी मान्या पृथिवीवात्मधारिणी ॥ तां शोकसलिले मग्नामुत्तारयितुमर्हसि ॥ १७ ॥ तं च वृद्धं प्रियसुतं वसुदेवं सुखोचितम् ॥ पुत्रयोगेन संयोज्य कृष्ण धर्ममवाप्स्यसि ॥ १८ ॥ यथा नागस्सुदुर्वृत्तो दमितो यमुनाह्रदे ॥ विमूलस्स कृतश्शैलो यथा वै भूधरस्त्वया ॥ १९ ॥ दर्पोत्सिक्तश्च बलवानरिष्टो विनिपातितः ॥ परप्राणहरः केशी दुष्टात्मा च हयो हतः ॥ २० ॥ एतेनैव प्रयत्नेन वृद्धावुद्धृत्य दुःखितौ ॥ यथा धर्ममवाप्नोसि तत्कृष्ण परिचिन्त्यताम् ॥ २१ ॥ निर्भर्त्स्यमानो यैर्दृष्टः पिता ते कंससंसदि ॥ ते सर्वे चक्रुरश्रूणि नेत्रैर्दुःखान्विता भृशम् ॥ २२ ॥ गर्भावकर्तनादीनि दुःखानि सुबहून्यपि ॥ माता ते देवकी कृष्ण कंसस्य सहतेऽवशा ॥ २३ ॥

उचित उस वृद्ध पिताको पुत्रयोगसे प्राप्त होकर; हे कृष्ण ! धर्म लेनेके योग्य हो ॥ १८ ॥ जिस प्रकारसे यमुनाजलमें आपने दुर्वृत्त नाग दमन किया और विमल जल किया और जैसे तुमने गोवर्धन धारण किया ॥ १९ ॥ और जिस प्रकार महाअभिमानी अरिष्टको मारा और दूसरेके प्राणोंका हरनेवाला केशी घोडा आपने मारा ॥ २० ॥ इसी प्रकार हे कृष्ण ! वह तुम्हारे माता पिता वृद्ध अत्यन्त दुःखी हैं उनकाभी उद्धार कर धर्म प्राप्त करो ॥ २१ ॥ कंसकी सभामें जिन्होंने तुम्हारे पिताको घुडका जाता देखा है वे सब दुःखी हो नेत्रोंसे जल बहाने लगे थे ॥ २२ ॥ गर्भ नष्ट होने

आदिके अनेक दुःख तुम्हारी माता देवकीने अवश हो कससे पाये ॥ २३ ॥ सबपुत्रोंको उचित है समर्थ होकर मातापितासे उऋण हो जैसे बन पडे ॥ २४ ॥ हे कृष्ण ! इसी प्रकार आप मातापितापर अनुग्रह कीजिये तब उनका शोक दूर होगा, और तुम्हें धर्मकी प्राप्ति होगी. हे पापरहित ! यही करो ॥२५॥ वैशंपायन बोले यद्यपि तेजस्वी कृष्ण सब जानते थे परन्तु महापराक्रमी अक्रूरके वचन सुन क्रोध करके बोले बहुत अच्छा यही होगा ॥२६॥ और नन्दगोपादि आकर अक्रूरके वचन सुनकर प्रस्थान करने लगे ॥ २७ ॥ इस प्रकार वे सब व्रजवासी चलनेको तैयार हुए और

मातापितृभ्यां सर्वेण जातेन तनयेन वै ॥ ऋणं वै प्रतिकर्तव्यं यथायोगमुदाहृतम् ॥ २४ ॥ एवं ते कुर्वतः कृष्ण मातापित्रोरनुग्रहम् ॥ परित्यजेतां तौ शोकं स्याच्च धर्मस्तवानघ ॥२५॥ वैशम्पायन उवाच ॥ कृष्णस्सुविदितार्थो वै तमाहामितविक्रमम् ॥ बाढमित्येव तेजस्वी न च क्रोधवशं गतः ॥ २६ ॥ ते च गोपास्समागम्य नन्दगोपपुरःसराः ॥ अक्रूरवचनं श्रुत्वा चेलुः कंसस्य शासनात् ॥ २७ ॥ गमनाय च ते सज्जा बभूवुर्व्रजवासिनः ॥ सज्जं चोपायनं कृत्वा गोपवृद्धाः प्रतस्थिरे ॥ २८ ॥ करं चानडुहस्सर्पिर्महिषांश्चोपनायिकान् ॥ यथासारं यथायूथमुपानीय पयो दधि ॥ २९ ॥ तं सज्जयित्वा कंसस्य करं चोपायनानि च ॥ ते सर्वे गोपपतयो गमनायोपतस्थिरे ॥ ३० ॥ अक्रूरस्य कथाभिश्च सह कृष्णेन जाग्रतः ॥ रौहिणेयतृतीयस्य सा निशा व्यत्यवर्तत ॥ ३१ ॥ ततः प्रभाते विमले पक्षिव्याहारसंकुले ॥ नैशाकरे रश्मिजाले क्षणदाक्षयसंहृते ॥३२॥ नभस्यारुणसंस्तीर्णे पर्यस्ते ज्योतिषां गणे ॥ प्रत्यूषपवनासारैः क्लेदिते धरणीतले ॥ ३३ ॥

अपनी अपनी भेंट ले व्रजवासी चले ॥२८॥ बैल घृत और उपहार (भेंट) को भैंसे और भी दूसरी वस्तु लेकर सब यथायोग्य चले दूध दही ॥२९॥ यह सब ठीक कर कसको भेंट देनेके निमित्त वे सब गोपपति चलनेकी इच्छा करने लगे ॥३०॥ और अक्रूरकोभी अनेक कथा कहते कृष्ण बलरामके सहित वह रात्री जागतेही बीत गई ॥ ३१ ॥ जब निर्मल प्रभात हुआ और पक्षी शब्द करने लगे और रात्री पूर्ण होनेपर चन्द्रमाके किरणजाल सकोडनेपर ॥३२॥ आकाशमें अरुणोदय होने और तारांगणोंके छिपनेपर तथा प्रातःकालकी ओससे पृथ्वीके गीली होनेपर ॥३३॥

॥ ६९ ॥

तारोंके क्षीण और कान्तिरहित होनेपर सूर्यके उदय होनेके कारण रात्रीके अपना रूप छिपाने पर ॥ ३४ ॥ चन्द्रमाकीकिरणें शान्त और प्रभारहित हो गई, एकका शरीर ह्रास होता और एकका रूप बढता है ॥ ३५ ॥ और व्रजके निकलनेकी भूमिमें गायोंके फैलनेपर और मथानीमें दहीविलोनेके घर्घर शब्द होनेपर ॥ ३६ ॥ तरुण वत्सोंके रस्सीसे बांधनेपर घोषकी गलियोंमें गोपोंके पूर्ण होनेपर ॥ ३७ ॥ उस समय शकटोंपर बहुतसे बर्तन रक्खे गये पीछे करके रथादि वाहन शीघ्रतासे चले ॥ ३८ ॥ कृष्ण बलराम और अक्रूरजी यह तीनों रथपर बैठकर त्रिलोकपतिके समान चले ॥ ३९ ॥

क्षीणाकारासु तारासु सुप्तनिष्प्रतिभासु च ॥ नैशमन्तर्दधे रूपमुद्गच्छति दिवाकरे ॥ ३४ ॥ शीतांशुश्शान्तकिरणो निष्प्रभस्समपद्यत ॥ एको नाशयते रूपमेको वर्द्धयते वपुः ॥ ३५ ॥ गोभिश्च समकीर्णासु व्रजनिर्याणभूमिषु ॥ मन्थनावर्तपूर्णेषु गर्गरेषु नदत्सु च ॥ ३६ ॥ दामभिर्दम्यमानेषु वत्सेषु तरुणेषु च ॥ गोपैरापूर्यमाणासु घोषरथ्यासु सर्वशः ॥ ३७ ॥ तत्रैव गुरुकं भाण्डं शकटारोपितं बहु ॥ त्वरिताः पृष्ठतः कृत्वा जग्मुस्स्यन्दनवाहनाः ॥ ३८ ॥ कृष्णोऽथ रौहिणेयश्च स चैवामितदक्षिणः ॥ त्रयो रथगता जग्मुस्त्रिलोकपतयो यथा ॥ ३९ ॥ अथाह कृष्णमक्रूरो यमुनातीरमाश्रितः ॥ स्यन्दनं चात्र रक्षस्व यत्नं च कुरु वाजिषु ॥ ४० ॥ हयेभ्यो यवसं दत्त्वा हयभाण्डे रथे तथा ॥ प्रगाढं यत्नमास्थाय क्षणं तात प्रतीक्ष्यताम् ॥ ४१ ॥ यमुनाया ह्रदे ह्यस्मिन्स्तोष्यामि भुजगेश्वरम् ॥ दिव्यैर्भागवतैर्मंत्रैस्सर्वलोकप्रभुं यतः ॥ ४२ ॥ गुह्यं भागवतं देवं सर्वलोकस्य भावनम् ॥ श्रीमत्स्वस्तिकमूर्द्धानं प्रणमिष्यामि भोगिनम् ॥ सहस्रशिरसं देवमनन्तं नीलवाससम् ॥ ४३ ॥

तब यमुनाके किनारे पहुँचकरकृष्णसे अक्रूरने कहा हे कृष्ण ! यहीं रथ रोको खडा रहने दो ॥ ४० ॥ घोडोंको तोवडेमें रखकर दाना देकर सावधानीसे स्थित हो कुछ देर प्रतीक्षा करो ॥ ४१ ॥ मैं इसयमुनाके ह्रदमें शेषनागकी दिव्य भागवतके मंत्रोंसे स्तुति करूंगा कारण कि वह सब जगत्के प्रभु हैं ॥ ४२ ॥ गुप्त ऐश्वर्यवान हैं, सब लोकके भावना देनेहारे हैं; श्रीमान् कल्याणकर्ता नीलवसनधारी सहस्रमुखको देखकर मैं प्रणाम करूंगा ॥ ४३ ॥

उन धर्मदेवका जो कुछ विष होगा वह सब अमृतरूप हो जायगा उसमें पान कर अमर हूंगा ॥ ४४ ॥ लक्ष्मीसे विभूषित श्रीकल्याणकारीके स्थानका दर्शन करतेही सर्पोंका समाज शान्त हो जायगा ॥४५॥ इस कारण तुम दोनों मेरी ओर बैठे यहां देखते रहो, जबतक मैं भुजगेन्द्र की ह्रदसे लौटकर चला आऊं ॥ ४६ ॥ तब प्रसन्न हो श्रीकृष्णबोले; हे धर्मिष्ठ ! शीघ्र जाओ, हम दोनों तुम्हारे विना जानेको समर्थ नहीं हैं ॥४७॥ तब अक्रूरने जाकर यमुनाह्रदमें स्नान किया, तब उन्होंने रसातलमें नागलोकका इस लोकके समान दर्शन किया ॥४८॥ उसके मध्यमें सहस्र शिरयुक्त

धर्मदेवस्य तस्याथ यद्विषं प्रभविष्यति ॥ सर्वं तदमृतप्रख्यमशिष्याम्यमरो यथा ॥ ४४ ॥ स्वस्तिकायतनं दृष्ट्वा द्विजिह्व श्रीविभूषितम् ॥ समाजस्तत्र सर्पाणां शान्त्यर्थं वै भविष्यति ॥४५॥ आस्तां मां समुदीक्षन्तौ भवन्तौ संगतावुभौ ॥ निवृत्तो भुजगेन्द्रस्य यावदस्मि ह्रदोत्तमात् ॥४६॥ तमाह कृष्णस्संहृष्टो गच्छ धर्मिष्ठ मा चिरम् ॥ आवां खलु न शक्तौ स्वस्त्वया हीनावुपासितुम् ॥४७॥ स ह्रदे यमुनायास्तु ममज्जामितदक्षिणः ॥ रसातले स ददृशे नागलोकमिमं यथा ॥ ४८ ॥ तस्य मध्ये सहस्रास्यं हेमतालोच्छ्रितध्वजम् ॥ लाङ्गलासक्तहस्ताग्रं मुसलोपाश्रितोदरम् ॥४९॥ असिताम्बरसंवीतं पाण्डुरं पाण्डुरासनम् ॥ कुण्डलैकधरं मत्तं सुप्तमम्बुरुहेक्षणम् ॥५०॥ भोगोत्करासने शुभ्रे स्वेन देहेन कल्पिते ॥ स्वासीनं स्वस्तिकाभ्यां च वराहाभ्यां महीधरम् ॥५१॥ किंचित्सव्यापवृत्तेन मौलिना हेमचूलिना ॥ जातरूपमयैः पद्मैर्मालयाच्छन्नवक्षसम् ॥५२॥ रक्तचन्दनदिग्धाङ्गं दीर्घबाहुमरिंदमम् ॥ पद्मनाभसिताभ्राभं भाभिर्ज्वलिततेजसम् ॥ ५३ ॥

सुवर्णके स्तम्भके समान ध्वजाकार हलसे युक्त हाथ और मूसलके समान उदरवाले ॥ ४९ ॥ नील वस्त्रधारे पाण्डु वर्ण और पाण्डुर आसन पर स्थित एक कुण्डलधारी मत्त और सोते कमलके समान नेत्र ॥ ५० ॥ अपने देहसे अच्छी प्रकार बैठे हुए और स्वस्तिक आसनसेस्थित पृथ्वीको धारे ॥५१॥ श्रेष्ठ कुण्डल पहरे सुवर्णके समान कमलोंकी मालासेहृदयको आच्छादित किये सुवर्णका मुकुट पहरे ॥५२॥ शरीरमें लाल चंदन

लगाये बडी भुजावाले शत्रुओंके हन्ता कमलकी कान्तिवाले कान्तिसे तेजयुक्त ॥५३॥ एकार्णवमें शेषजीका दर्शन किया जिनकी वासुकी आदि बडे सर्प पूजा करते थे ॥५४॥ कंबल और अश्वतर नाग उनपर चंवर करते थे, इस प्रकार धर्मासनपर बैठे हुए उन प्रभुका वीजना हो रहा था॥५५॥ उनके निकटमें स्थित सर्पराज वासुकी शोभा पाते थे, और कर्कोटक आदि सर्पोंसे युक्त थे ॥ ५६ ॥ और सुवर्ण भरे घडोंसे वे सब सागरके जलसे अपने राजाको स्नान करा रहे हैं उन घडोंसे उनके मस्तकपर पंक्ति हो रही है ॥ ५७ ॥ उन्हीको गोदीमें श्रीवत्ससे शोभित हृदय घनश्याम

ददर्श भोगिनां नाथं स्थितमेकार्णवेश्वरम् ॥ पूज्यमानं द्विजिह्वेन्द्रैर्वासुकिप्रमुखैः प्रभुम् ॥ ५४ ॥ कम्बलाश्वतरौ नागौ तौ चामर-करावुभौ ॥ अवीजयेतां तं देवं धर्मासनगतं प्रभुम् ॥५५॥ तस्याभ्याशगतो भाति वासुकिः पन्नगेश्वरः ॥ वृत्तोऽन्यैस्सचिवैस्सर्पैः कर्कोटकपुरस्सरैः ॥ ५६ ॥ तं घटैः काञ्चनैर्दिव्यैः पङ्कजच्छन्नमस्तकैः ॥ राजानं स्नापयामासुस्स्नातमेकार्णवाम्बुभिः ॥ ५७ ॥ तस्योत्सङ्गे घनश्यामं श्रीवत्साच्छादितोरसम् ॥ पीताम्बरधरं विष्णुं सूपविष्टं ददर्श ह ॥ ५८ ॥ अपरं चैव सोमेन तुल्यसंहननं प्रभुम् ॥ संकर्षणमिवासीनं तं दिव्यं विष्टरं विना ॥५९॥ स कृष्णं तत्र सहसा व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ तस्य संस्तम्भयामास वाक्यं-कृष्णस्वतेजसा ॥ ६० ॥ सोऽनुभूय भुजंगानां तं भागवतमव्ययम् ॥ उदतिष्ठत्पुनस्तोयाद्विस्मितोऽमितदक्षिणः ॥ ६१ ॥ स तौ रथस्थावासीनौ तत्रैव बलकेशवौ ॥ निरीक्ष्यमाणावन्योन्यं ददर्शाद्भुतरूपिणौ ॥ ६२ ॥

स्वरूप पीताम्बरधारी विष्णुका दर्शन किया ॥५८॥ और दूसरे प्रभु संकर्षणको चन्द्रमाक समान शोभित आसनके विना स्थित देखा ॥५९॥ उस समय कुछ संकर्षण कहने लगे तब श्रीकृष्णने अपने तेजसे उनके वाक्यको स्तंभित कर दिया॥ ६० ॥ इसपर शेषपर शयन किये कृष्ण और बलरामको देख अक्रूरजी महाविस्मित हुए और जलसे निकल उन दोनोंको देखा ॥ ६१ ॥ वे दोनों बलराम और कृष्ण रथमें स्थित थे जो कि परस्पर एक दूसरेको देखते थे और उनका रूप अद्भुत था ॥ ६२ ॥

 तब कुतूहलसे अक्रूरने फिर गोता मारा, जहां यह देव नीलवस्त्र श्वेतमुखवाले भगवान्‌को॥६३॥उसी प्रकार शेषकी गोदमें देखा, जब इस प्रकार
अक्रूरने पूज्यमान प्रभुको देखा ॥६४॥ तब मनमें मंत्र जपते हुए एकाएकी ऊपरको फिर उठे, और तत्काल रथके निकट चले आये ॥ ६५ ॥
 तब प्रसन्न हो श्रीकृष्ण अक्रूरजीसे बोले; कि इस ऐश्वर्यरूप ह्रदमें नागलोकका क्या वृत्तान्त है॥६६॥जो आप बहुत देरतक देखते रहे तुम्हारा
हृदय चलायमान है, इससे विदित होता है कि आपने कोई आश्चर्य देखा है॥६७॥तब अक्रूरजी बोले; आपके विना स्थावर जंगम लोकोंमें क्या

अथामज्जत्पुनस्तत्र तदाक्रूरः कुतूहलात् ॥ इज्यते यत्र देवोऽसौ नीलवासाः सितराननः ॥ ६३ ॥ तथैवासीनमुत्सङ्गे सहस्रास्य-
धरस्य वै ॥ ददर्श कृष्णमक्रूरः पूज्यमानं तदा प्रभुम् ॥ ६४ ॥ भूयश्च सहसोत्थाय तं यन्त्रं मनसा जपन् ॥ रथं तेनैव मार्गेण
जगामामितदक्षिणः ॥ ६५ ॥ तमाह केशवो हृष्टः स्थितमक्रूरमागतम् ॥ कीदृशं नागलोकस्य वृत्तं भागवते ह्रदे ॥ ६६ ॥ चिरं
च भवता कालो व्याक्षेपेण विलम्बितः ॥ मन्ये दृष्टं त्वयाश्चर्यं हृदयं ते यथा चलम् ॥ ६७ ॥ प्रत्युवाच स तं कृष्णमाश्चर्यं
भवता विना ॥ किं भविष्यति लोकेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥ ६८ ॥ तत्राश्चर्यं मया दृष्टं कृष्ण यद्भुवि दुर्लभम् ॥ तदिहापि
यथा तत्र पश्यामि च रमामि च ॥ ६९ ॥ संगतश्चापि लोकानामाश्चर्येणेह रूपिणा ॥ अतः परतरं कृष्ण नाश्चर्यं द्रष्टुमुत्सहे
॥ ७० ॥ तदागच्छ गमिष्यामः कंसराजपुरीं प्रभो ॥ यावन्नास्तं व्रजत्येष दिवसान्ते दिवाकरः ॥ ७१ ॥ इति श्रीमहाभारते
खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरकृतनागलोककथनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ ६७ ॥

आश्चर्य होगा ॥६८॥ हे कृष्ण ! वहां तो मैंने वह आश्चर्य देखा जो पृथ्वीमें दुर्लभ है, जैसा वहां देखा सो यहांभी है ॥६९॥ मैं लोकोंके आश्चर्य
देनेवाले तुम्हारे शरीरसे युक्त हूं.हे कृष्ण!इससे अधिक किसी आश्चर्यके देखनेकी इच्छा नहीं है॥७०॥सो अब चलिये कंसराजकी पुरीको चलें,ऐसा
न हो कि,कहीं मार्गमें सूर्य छिप जाय॥७१॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरनागलोककथनं नाम षड्विंशोध्यायः ॥ २६ ॥

वैशंपायन बोले; इस प्रकारसे वेही महातेजस्वी रथमें बैठ कृष्ण और बलरामके सहित ॥ १ ॥ कंसकी पालना की हुई मथुरापुरीमें पहुँचे. उस समय सूर्य छिपनेको लालवर्ण हो रहे थे ॥ २ ॥ उन दोनों वीर कृष्ण और संकर्षणको बुद्धिमान् अक्रूर अपने घर ले गये, दोनोंकी सूर्यकी समान कान्ति थी ॥ ३ ॥ तब अक्रूरजी डरकर उन श्रेष्ठ वर्णवाले दोनोंसे कहने लगे, हे तात ! वसुदेवके घर जानेकी तौ इच्छा त्याग दीजिये ॥ ४ ॥ कारण कि, तुम्हारेही निमित्त वसुदेवको कंससे प्रति दिन झिडकी सहनी पडती है, और कहता है यहां मत रहो ॥ ५ ॥ और पिताके सुख पानेका विचार कीजिये

वैशम्पायन उवाच ॥ ते तु युङ्क्त्वा रथवरं सर्वं एवामितौजसः ॥ कृष्णेन सहिता प्रायंस्तथा संकर्षणेन च ॥ १ ॥ आसेदुस्ते पुरीं रम्यां मथुरां कंसपालिताम् ॥ विविशुस्ते पुरीं रम्यां काले रक्तदिवाकरे ॥ २ ॥ तौ तु स्वभवनं वीरौ कृष्णसंकर्षणावुभौ ॥ प्रवेशितौ बुद्धिमता ह्यक्रूरेणार्कवर्चसौ ॥ ३ ॥ तावाह वरवर्णाभौ भीतो दानपतिस्तदा ॥ त्यक्तव्या तात गमने वसुदेवगृहे स्पृहा ॥ ४ ॥ युवयोर्हि कृते वृद्धः कंसेन स निरस्यते ॥ भर्त्स्यते च दिवा रात्रौ नेह स्थातव्यमित्यपि ॥ ५ ॥ तद्युवाभ्यां हि कर्तव्यं पित्रर्थं सुखमुत्तमम् ॥ यथा सुखमवाप्नोति तद्वै कार्यं हितान्वितम् ॥ ६ ॥ तमुवाच ततः कृष्णो यास्यावावामतर्कितौ ॥ प्रेक्षन्तौ मथुरां वार राजमार्गं च धार्मिक ॥ तस्यैव तु गृहं साधो गच्छावो यदि मन्यसे ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अक्रूरोऽपि नमस्कृत्य मनसा कृष्णमव्ययम् ॥ जगाम कंसपार्श्वं तु प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ८ ॥ अनुशिष्टौ च तौ वीरौ प्रस्थितौ प्रेक्षकावुभौ ॥ आलानाभ्यामिवोन्मुक्तौ कुञ्जरौ युद्धकांक्षिणौ ॥९॥ तौ तु मार्गगतं दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम् ॥ अयाचेतां ततस्तौ तु वासांसि रुचिराणि वै ॥ १० ॥

जैसे यह सुख पावें वही कार्य करो ॥ ६ ॥ यह सुन कृष्ण बोले; हम अतर्कित हो मथुरापुरी देखते, तथा हे धार्मिक ! राजमार्गमें होते हुए उनके घरको जांयगे इसमें आपकी क्या सम्मति है ॥ ७ ॥ वैशंपायन बोले यह सुन अक्रूर मनसे अविनाशी कृष्णको नमस्कार कर प्रसन्न हो कंसके पास गया ॥ ८ ॥ और इस ओर वे दोनों वीर अक्रूरकी सीख माने हुए नगरके देखनेकी इच्छासे चले, ऐसे विदित होते थे मानो सांकल खुल जानेसे युद्धोन्मत्त दो हाथी फिरते हों ॥ ९ ॥ मार्गमें जाते हुए इन दोनोंने वस्त्रपे रंग आदि लगानेवाले धोबीको देखा, तब उससे उन्होंने श्रेष्ठ वस्त्र मांगे ॥ १० ॥

तब धोबीने कहा तुम दोनों वनचर किसके पुत्र हो जो मूर्खतासे निर्भय हो राजोंके वस्त्र मांगते हो ॥ ११ ॥ मैं अनेक देशके बने हुए कंसके वस्त्र सैकडों रंगोंमें रंगता हूं, जैसी उनकी इच्छा होती है॥१२॥ तुम वनमें मृगोंके साथ बढे हुए किस जातीके हो जो इन कपडोंको देख कर लुभा गये, और मांगने लगे तुमने लाल वस्त्र पहरे हैं॥१३॥अहो ! जो तुम यहां आ गये तो अपना जीव नष्ट हुआ जानो, तुम मूख हो जो बालकके समान वस्त्र मांगते हो॥१४॥यह सुनकर उस मूर्ख धोबीके ऊपर कृष्णको क्रोध आ गया, और बोले; जब मूर्खकी मृत्यु आती है तब वह वाणीमय विष

रजकः स तु तौ प्राह युवां कस्य वनेचरौ ॥ राजवासांसि यो मौढयाद्याचेतां निर्भयावुभौ ॥११॥ अहं कंसस्य वासांसि नानादेशोद्भवानि वै ॥ कामरागाणि शतशो रञ्जयामि विशेषतः ॥१२॥युवां कस्य वने जातौ मृगैः सह विवर्द्धितौ ॥ जातरागाविदं दृष्ट्वा रक्तमाच्छादनं बहु ॥१३॥ अहो वां जीवितं त्यक्तं यौ भवन्ताविहागतौ ॥ मूर्खौ प्राकृतविज्ञानौ वासो याचितुमिच्छथः ॥१४॥ तस्मै चुकोप वै कृष्णो रजकायाल्पमेधसे ॥ प्राप्तारिष्टाय मूर्खाय सृजते वाङ्मयं विषम् ॥ १५ ॥ तलेनाशनिकल्पेन स तं मूर्द्धन्यताडयत् ॥ स गतासुः पपातोर्व्यां रजको व्यस्तमस्तकः ॥१६॥ तं हतं परिदेवन्त्यो भार्यास्तस्य विचुक्रुशुः ॥ त्वरितं मुक्तकेश्यश्च जग्मुः कंसनिवेशनम् ॥ १७ ॥ तावप्युभौ सुवसनौ जग्मतुर्माल्यकारणात् ॥ वीथीं माल्यापणानां वै गन्धाघ्रातौ द्विपाविव ॥ १८ ॥ गुणको नाम तत्रासीन्माल्यवृत्तिः प्रियंवदः ॥ प्रभूतमाल्यापणवाँल्लक्ष्मीवान्प्रियदर्शनः ॥ १९ ॥

उगलता है ॥ १५ ॥ यह विचार उसके शिरपर अपना वज्र समान घूंसा मारा, लगतेही उसका शिर फट गया, और वह प्राणरहित हो पृथ्वीमें गिरा ॥ १६ ॥ उसके मरतेही चिल्लाती हुई उसकी स्त्री विलाप करने लगी, और बाल खोले हुए तत्काल कंसके मंदिरमें गई ॥ १७ ॥ वहभी दोनों अच्छे वस्त्र पहर माला लेनेकी इच्छासे आगे चले और जैसे गंध सूंघकर हाथी चलता है, इस प्रकार वे फूल माला जहां विकती थी उस ओरको चले ॥१८॥ वहां एक प्रियभाषी माला बेचनेहारा गुणक रहता था उसके यहां बहुत माला थीं वह

लक्ष्मीवान् और प्रियदर्शन था॥१९॥माला लेनेकी इच्छासे श्रीकृष्ण बडी मीठी वाणीसे उसे भयरहित बोले कि, हमको माला दो ॥ २० ॥ उस मालाजीवीने उसको प्रसन्न हो बहुत माला दीं और इन दोनों प्रियदर्शनोंसे बोला कि,यह सब आपहीका है॥२१॥तब श्रीकृष्णने प्रसन्न हो गुणकको वर दिया. हे सौम्य ! मेरे प्रभावसे तुम्हारे यहां बहुतसी लक्ष्मी होगी ॥ २२ ॥ वह माल्यवृत्तिवाला इस वरको स्वीकार कर नीचे मुख किये कृष्णके चरणोंमें गिरा, और उस वरको शिरसे ग्रहण किया ॥२३॥ और यह समझा कि; यह दोनों कोई यक्ष हैं, और डरके मारे उसने कोई उत्तर नहीं

तं कृष्णश्श्लक्ष्णया वाचा माल्यार्थमभिसृष्टया ॥ देहीत्युवाच तत्काले मालाकारमकातरम्॥२०॥ताभ्यां प्रीतो ददौ माल्यं प्रभूतं माल्यजीवनः ॥ भवतोः स्वमिदं चेति प्रोवाच प्रियदर्शनौ ॥२१॥ प्रीतः सुमनसा कृष्णो गुणकाय वरं ददौ ॥ श्रीस्त्वां मत्संभवा सौम्य धनौघैरभिपत्स्यते ॥ २२ ॥ स लब्ध्वा वरमव्यग्रो माल्यवृत्तिरधोमुखः ॥ कृष्णस्य पतितो मूर्ध्ना प्रतिजग्राह तं वरम्॥२३॥ यक्षाविमाविति तदा स मेने माल्यजीवकः ॥ स भृशं भयसंविग्नो नोत्तरं प्रत्यपद्यत॥ २४ ॥ वसुदेवसुतौ तौ च राजमार्गगतावुभौ ॥ कुब्जां ददृशतुर्भूयस्सानुलेपनभाजनाम् ॥२५॥तामाह कृष्णः कुब्जेति कस्येदमनुलेपनम् ॥ नयस्यम्बुजपत्राक्षि क्षिप्रमाख्यातुमर्हसि ॥ २६ ॥ सस्मिता संमुखीभूत्वा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षणम् ॥ कृष्णं जलदगम्भीरं विद्युत्कुटिलगामिनी ॥२७॥ राज्ञस्स्नानगृहं यामि तद्गृहाणानुलेपनम् ॥ दृष्ट्वैव त्वारविन्दाक्ष विस्मितास्मि वरानन॥२८॥यत्त्वमिच्छसि मे वीर त्वं गृहाणानुलेपनम् ॥ स्थितास्म्यागच्छ भद्रं ते हृदयस्यासि मे प्रियः ॥ २९ ॥

दिया ॥२४॥और वह दोनों नन्दकुमारने राजमार्गमें जाते हुए चन्दन पात्र हाथमें लिये कुब्जाको देखा ॥२५॥ तब श्रीकृष्णने कुब्जासे कहा यह चन्दन किसको लिये जाती है, हे कमलनेत्रोंवाली ! कहां जाती है॥२६॥तब वह हंसकर कृष्णकी ओर मुख कर बोली; कृष्ण गंभीर मेघके समान और वह बिजलीके समान कुटिल गामिनी थी ॥२७॥हे कृष्ण ! म राजाके स्नानगृहको जाती हूं,परन्तु आपही यह अनुलेपन स्वीकार कीजिये हे अरविन्दाक्ष ! मैं तो आपको देखतेही विस्मित हूं ॥ २८ ॥ हे सुन्दरमुख वीर ! जो आपकी इच्छा हो तो यह अनुलेप लो, मैं खडी हूं आप आइये

लगादूं, तुम तौ मेरे प्रियहृदय हो ॥ २९ ॥ हे सौम्य ! तुम कहांसे आये हो जो मुझे नहीं जानते, मैं महाराजकी प्यारी नित्य उनके अनुलेपन लगाती हूं ॥ ३० ॥ तब हँसकर खडी हुई उस कुब्जासे श्रीकृष्ण बोले, कि हमारे शरीरके सदृशही अनुलेपन लगाओ ॥ ३१ ॥ हे वरानने ! हम इस देशमें अतिथि आये हैं, और पहलवानी करते हैं हम इस राज्यमें ऋद्धिमान् धनुषयज्ञ देखनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३२ ॥ तब वह श्रीकृष्णसे बोली; कि तुम मेरे प्रिय हो मैं तुम्हारे दर्शनसे प्रसन्न हूं आप राजोंके योग्य इस चंदनको ग्रहण करो ॥ ३३ ॥ चन्दन लगाकर वे दोनों शोभित हुए, जैसे यमुनाके

कुतश्चागम्यते सौम्य यन्मां त्वं नावबुध्यसे ॥ महाराजस्य दयितां नियुक्तामनुलेपने ॥ ३० ॥ तामुवाच हसन्तीं तु कृष्णः कुब्जामवस्थिताम् ॥ आवयोर्गात्रसदृशं दीयतामनुलेपनम् ॥ ३१ ॥ वयं हि देशातिथयो मल्लाः प्राप्ता वरानने ॥ द्रुष्टुं धनुर्महद्दिव्यं राष्ट्रे चैव महर्धिमत् ॥ ३२ ॥ प्रत्युवाचाथ सा कृष्णं प्रियोऽसि मम दर्शने ॥ राजार्हमिदमव्यग्रं तद्गृहाणानुलेपनम् ॥ ३३ ॥ तावुभावनुलिप्ताङ्गौ चारुगात्रौ विरेजतुः ॥ तीर्थगौ पङ्कदिग्धाङ्गौ यमुनायां यथा वृषौ ॥३४॥ तां च कुब्जां स्थगोर्मध्ये द्व्यङ्गुलेनाग्रपाणिना॥ शनैस्संपीडयामास कृष्णो लीलाविधानवित् ॥ ३५ ॥ सा च मग्नं स्थगुं मत्वा स्वायताङ्गी शुचिस्मिता ॥ जहासोच्चैः स्तनतटा ऋजुयाष्टिर्लता यथा ॥ ३६॥ प्रणयाच्चापि कृष्णं सा बभाषे मत्तकाशिनी ॥ क्व यास्यसि मया रुद्धः कान्त तिष्ठ गृहाण माम्॥३७॥ तौ जातहासावन्योन्यं सतलाक्षेपमव्ययौ ॥ वीक्षमाणौ प्रहसितौ कुब्जायाः श्रुतिविस्तरौ ॥ ३८ ॥

किनारेकी पंकसे लिप्त दो वृष हों ॥ ३४ पीछे श्रीकृष्णने कुब्जाको ठोडीको पकड दो अंगुलियोंसे सहज २ ऊपरको उठाया, कारण कि, वह सब विधान जानते हैं परन्तु यहभी एक लीला की ॥ ३५ ॥ उसने समझा कि, मेरी पीठ भग्न हुई परन्तु पीछे उसका शरीर फैल गया कूबड जाता रहा तब वह मुस्कराकर ऊंचे स्तनवाली ऊंचे स्वरसे हंसी; और सीधी वेलकी छडीसी हो गई ॥ ३६ ॥ तब वह अपना मद जनाती हुई श्रीकृष्णसे बोली; हे स्वामिन् ! अब मुझसे रोके हुए कहां जाते हो, ठहरो और मुझे ग्रहण करो ॥ ३७ ॥ तब वे श्रीकृष्ण परस्पर ताली बजाकर हँसने लगे,

और कुब्जाके वचन सुन उसकी ओर देखकर उन्हें हंसी आ गई ॥३८॥ तब कृष्णने कामार्त कुब्जाको विदा किया, तब वे कुब्जाको विदाकर राजस्थानमें प्रविष्ट हुए ॥३९॥ इस प्रकार व्रजमें बढे हुए वे दोनों गोपवेषधारी गूढ चेष्टा और मुखवाले हो करके राजमंदिरमें प्रविष्ट हुए ॥४०॥ और वे दोनों अतार्कित बालक धनुशालामें प्रविष्ट हुए, जैसे कोई दो हिमालयमें उत्पन्न हुए मदोत्कट सिंह हों ॥४१॥ वहां आकर उन्होंने उस धनुषके स्थानको देखा तब उन दोनों वीरोंने आयुध धारण करनेवालोंसे कहा ॥ ४२ ॥ हे कंसके धनुपालो ! तुम मेरे वचन सुनो,

कृष्णस्तु कुब्जां कामार्त्तां सस्मितं विससर्ज ह ॥ ततस्तौ कुब्जया मुक्तौ प्रविष्टौ राजसंसदम् ॥ ३९ ॥ तावुभौ व्रजसंवृद्धौ गोपवेषविभूषितौ ॥ गूढचेष्टाननौ भूत्वा प्रविष्टो नृपवेश्म तत् ॥ ४० ॥ धनुःशालां गतौ तत्र बालावपरितर्कितौ ॥ हिमवद्वनसंभूतौ सिंहाविव मदोत्कटौ ॥ ४१ ॥ दिदृक्षन्तौ महत्तत्र धनुरायोगभूषितम् ॥ पप्रच्छतुश्च तौ वीरावायुधागारिकं तदा ॥ ४२ ॥ भोः कंसधनुषां पाल श्रूयतामावयोर्वचः ॥ कतरत्तद्धनुस्सौम्य महोऽयं यस्य वर्तते ॥ ४३ ॥ आयोगभूतं कंसस्य दर्शयस्व यदीच्छसि ॥ स तयोर्दर्शयामास तद्धनुः स्तम्भसन्निभम् ॥ ४४ ॥ अनारोप्यमसंभेद्यं देवैरपि सवासवैः ॥ तद्गृहीत्वा तदा कृष्णस्तोलयामास वीर्यवान् ॥ ४५ ॥ दोर्भ्यां कमलपत्राक्षः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ तोलयित्वा यथा कामं तद्धनुर्दैत्यपूजितम् ॥४६॥ आरोपयामास बला नामयामास चासकृत् ॥ अनाम्यमानं कृष्णेन प्रकर्षादुरगोपमम् ॥ ४७ ॥ द्विधाभूतमभून्मध्ये धनुरायोगभूषितम् ॥ भङ्क्त्वा तु तद्धनुश्श्रेष्ठं कृष्णस्त्वरितविक्रमः ॥ निश्चक्राम महावेगस्स च संकर्षणो युवा ॥ ४८ ॥

जिस धनुषका यह उत्सव हो रहा है वह कौनसा है ॥ ४३ ॥ जो कंसका विख्यात धनुष है, यदि इच्छा हो तो हमें दिखाइये, तब उन्होंने स्तम्भके समान उस श्रेष्ठ धनुषको दिखाया ॥ ४४ ॥ उसको इन्द्रसहित देवताभी आरोपण अथवा संभेदन नहीं कर सक्ते थे, उसे लेकर वीर्यवान् कंसने उठा लिया ॥४५॥ वह कमलनेत्र प्रसन्न हो उसे भुजाओंसे ग्रहण कर यथेच्छ उस दैत्यपूजित धनुषको उठाने लगे ॥ ४६ ॥ उसको वह कृष्ण बली प्रत्यञ्चायुक्त कर चढाने लगे, और फिर उसको झुकाया, जब श्रीकृष्णने बडे वेगसे सर्पके समान उस धनुषको झुकाया ॥ ४७ ॥ तब यह धनुषश्रेष्ठ जो पूजा

किया हुआ था मध्यमेंसे टूट गया; जो महाबली कृष्णने उस धनुष श्रेष्ठको तोड डाला तब वेगसे बलरामजीके सहित वहांसे चल दिये ॥ ४८ ॥ जिस समय वह धनुष टूटा बडा शब्द हुआ, वायु गुंज गई उसके शब्दसे सब रणवास चलायमान हो गया और दिशा पूर्ण हो गई ॥ ४९ ॥ इधर कृष्ण आयुधागारसे निकलकर गोपोंके निकट गये और आयुधपालभी भ्रान्त हो गये. वेगसे वह चले ॥ ५० ॥ कंसके निकट जाय गरम श्वास लेते हुए बोले; हे महाराज ! जो धनुषागारमें आश्चर्य हुआ सो सुनिये ॥ ५१ ॥ इस समय जगत्का भ्रम करनेवाला बडा आश्चर्य हुआ है. कोई दो मनुष्यके बालक

धनुषो भङ्गनादेन वायुनिर्घोषकारिणा ॥ चचालान्तःपुरं सर्वं दिशश्चैव पुपूरिरे ॥ ४९ ॥ निर्गम्य त्वायुधागाराज्जग्मतुर्गोपसन्निधौ ॥ वेगेनायुधपालस्तु गच्छन्संभ्रान्तमानसः ॥ ५० ॥ समीपं नृपतेर्गत्वा काकोच्छ्वासोऽभ्यभाषत ॥ श्रूयतां मम विज्ञाप्यमाश्चर्यं धनुषो गृहे ॥ ५१ ॥ निर्वृत्तमस्मिन्काले यज्जगतस्संभ्रमोपमम् ॥ नरौ कस्याप्यसदृशौ शिखाविततमूर्द्धजौ ॥ ५२ ॥ नीलपीताम्बरधरौ पीतश्वेतानुलेपनौ ॥ तावन्तःपुरमज्ञातौ प्रविष्टौ कामवेषिणौ ॥ देवपुत्रोपमौ वीरौ बालाविव हुताशनौ ॥ ५३ ॥ स्थितौ धनुर्गृहे सौम्यौ सहसा खादिवागतौ ॥ मया दृष्टौ परिव्यक्तं रुचिराच्छादनस्रजौ ॥ ५४ ॥ तयोरेकस्तु पद्माक्षश्श्यामपीताम्बरस्रजः ॥ जग्राह तद्धनूरत्नं दुर्ग्राह्यं दैवतैरपि ॥ ५५ ॥ तत्स बालो महच्चापं बलाद्यन्त्रमिवायसम् ॥ आरोपयित्वा वेगेन नामयामास लीलया ॥ ५६ ॥

जिन्हें हम नहीं जानते शिखासे शोभित शिर किये ॥ ५२ ॥ नील और पीत वस्त्र धारे, पीला और श्वेत चन्दन लगाये, कामवेषधारी अज्ञात अन्तःपुरमें आये हैं वे दोनों वीर देवतोंके पुत्रकी समान बालक और अग्निकी समान हैं ॥ ५३ ॥ वह धनुषगृहमें ऐसे अचानक आ गये. जैसे आकाशसे दो चन्द्रमा उतर आये हों. मैंने उनको बहुत मनोहर माला पहरे देखा है ॥ ५४ ॥ उनमें एक कमलनेत्र श्याम शरीर है, पीताम्बर पहरे, माला धारण किये हैं. उसने देवतासेभी दुर्गाह्य श्रेष्ठ धनुषको ग्रहण किया ॥ ५५ ॥ उस बालकने लोहयंत्रकी समान उस बडे धनुषको लीलासे वेगपूर्वक चढा लिया और

॥ ७० ॥

नमाया ॥ ५६ ॥ उस महाभुजावालेने विनाही बाणके उस धनुषको चढा लिया और अधिक खैंचनेसे वह बीचमेंसे टूट गया ॥ ५७ ॥ उस समय पृथ्वी चलायमान हुई.भास्कर प्रभाहीन हुए, बहुत क्या धनुषके भंगमात्रसे आकाश भ्रमता हुआसा दीखता है ॥५८॥ इस अद्भुतको देखकर मुझे बडा विस्मय हुआ सो शत्रुके भयसे व्याकुल हो मैं आपसे कहनेको यहां आया हूं. हे महाराज ! मैं नहीं जानता कि वे दोनों कौन हैं ॥५९॥ एक कैलासके समान गौर शरीर और एक अंजन पर्वतके समान श्याम शरीर है.स्तम्भके समान चापरूपी रत्न उन्होंने ऐसे तोड डाला जैसे हाथी स्तंभको

आकृष्यमाणं तत्तेन विबाणं बाहुशालिना ॥ मुष्टिदेशे विकूचित्वा द्विधाभूतमभज्यत ॥५७ ॥ ततः प्रचलिता भूमिर्नैव भाति च भास्करः ॥ धनुषो भङ्गनादेन भ्रमतीव नभस्तलम् ॥ ५८ ॥ तदद्भुतं महद्दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः ॥ भयाद्भयदशत्रुभ्यस्तदि- हाख्यातुमागतः ॥ न जानामि महाराज कौ तावमितिविक्रमौ ॥५९॥ एकः कैलाससंकाश एकोऽञ्जनगिरिप्रभः ॥ स तु तच्चापरत्नं वै भङ्क्त्वा स्तम्भमिव द्विपः ॥ ६० ॥ निष्पपातानिलगतिस्सानुगोऽमितविक्रमः ॥ अगमत्तं द्विधा कृत्वा न जाने कोऽप्यसौ नृप ॥ ६१ ॥ श्रुत्वैव धनुषो भङ्गं कंसो विदितविस्तरः ॥ विसृज्यायुधपालं वै प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसधनुर्भङ्गो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स चिन्तयित्वा धनुषो भङ्गं भोजविवर्द्धनः ॥ बभूव विमना राजा चिन्तयन्भृशदुःखितः ॥ १ ॥ कथं बालो विगतभीरवमत्य महाबलम् ॥ प्रेक्षमाणस्तु पुरुषैर्धनुर्भङ्क्त्वा विनिर्गत ॥२॥ यस्यार्थे दारुणं कर्म कृतं लोकविगर्हितम् ॥ पितृष्वस्रात्मजान्वीरान्षडेवाहं न्यपोथयम् ॥३॥

तोड डालते हैं ॥ ६० ॥ उस धनुषके दो खण्ड कर वह पवनगतिके समान बडे वेगसे दूसरेके साथ चला गया. इस प्रकार दोभाग कर चला गया नहीं विदित कि वह कौन था ॥६१॥ इस प्रकार विस्तारपूर्वक कंसने धनुर्भंग श्रवण कर आयुधपालको विदा कर अपने घरमें प्रवेश किया ॥६२॥ इति महाभारते श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ वैशम्पायन बोले; कंस धनुषर्भगको विचार कर बडा विमन हुआ और चिन्तासे व्याकुल हो गया॥१॥ किस प्रकार वे भयरहित बालक सब सेनाका तिरस्कार कर सब मनुष्योंके देखते धनुषभंग कर चले गये ॥ २ ॥ जिसके निमित्त मैंने लोकमें बालकवधरूप घोर कर्म किया कि मैंने अपनी पितृस्वसा (भगिनी) के छः बालक मार डाले ॥ ३ ॥

तौभी पुरुषकारसे मैं देवको जीतनेको समर्थ न हुआ. अवश्यही नारदकेकहे वचन सब उपस्थित हुए ॥४॥ इस प्रकार चिन्ता कर राजा अपने घरसे निकले और मंचान देखनेको रंगभूमिमें शीघ्र गया ॥५॥ राजाने सब वस्तुओंसे पूर्ण रंगभूमिको देखा कि दृढतासे बने हुए मंचानोंकी श्रेणीसे युक्त है ॥ ६ ॥ वह अनेक प्रकारके सुन्दर घडोंसे युक्त सब सामग्रीसे पूर्ण छः स्तम्भकी कुटियोंसे शोभित ॥ ७ ॥ सब प्रकारसे श्रेष्ठ विस्तारयुक्त,नागदन्त(खुंटी) वाले स्थानोंमेंसे शोभित,बडी ऊंची बराबर मिली हुई श्रेष्ठ बिछौनोंसे युक्त कुर्सियोंसे शोभित ॥ ८ ॥ राजोंके आसनोंसे युक्त आने

देवं पुरुषकारेण न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ नारदोक्तं च वचनं नूनं मह्यमुपस्थितम् ॥४॥ एवं राजा विचिन्त्याथ निष्क्रम्य स्वगृहोत्तमात् ॥ प्रेक्षागारं जगामाशु मञ्चानामवलोककः ॥ ५ ॥ स दृष्ट्वा सर्वनिर्मुक्तं प्रेक्षागारं नृपोत्तमः ॥ श्रेणीनां दृढनिर्युक्तैर्मञ्चवाटैर्निरन्तरम् ॥ ६ ॥ सोत्तमागारयुक्ताभिर्वलभीभिर्विभूषितम् ॥ छदीभिः संपृद्धाभिरेकस्तम्भैर्विभूषितम् ॥७॥ सर्वतः सारनिर्व्यूहं स्वायतं सुप्रतिष्ठितम् ॥ उदग्राक्लिष्टसुक्लिष्टं मञ्चारोहणमुत्तमम् ॥ ८ ॥ नृपासनपरिक्षिप्तं संचारपथसंकुलम् ॥ छन्नं तद्वेदिकाभिश्च मानुषौघभरक्षमम् ॥ ९ ॥ स दृष्ट्वा भूषितं रङ्गमाज्ञापयत बुद्धिमान् ॥ श्वस्सचित्रास्समाल्याश्च सपताकास्तथैव च ॥ १० ॥ सुवासिता वपुष्मन्त उपनीतोत्तरच्छदाः ॥ क्रियन्तां मञ्चवाटाश्च वलभ्यो वीथयस्तथा ॥ ११ ॥ रङ्गवाटे करीषस्य कल्प्यन्तां राशयोऽव्ययाः ॥ पटास्तरणशोभाश्च बलयश्चानुरूपतः ॥ १२ ॥ स्थाप्यन्तां सुनिखाताश्च पानकुम्भा यथाक्रमम् ॥ उदभारसहास्सर्वे सकाञ्चनघटोत्तमाः ॥ १३ ॥

जानेके मार्गसे व्याप्त, वेदिकाओंसे युक्त, मनुष्योंके समूहके भारमें समर्थ ॥ ९ ॥ रंगभूमिको देखकर इस बुद्धिमानूने आज्ञा दी कि प्रातःकालही चित्रविचित्र माला और पताका॥१०॥सुन्दर सुगन्धयुक्त वस्त्रोंसे शोभित मल्लागार बनाओ और पलंग चौकी आदिके ऊपर अच्छे २ वस्त्रादि बिछा दो ॥११॥ अखाडेमें सूखा गौका गोबर डलवा दो. वस्त्रोंके बिछानेकी शोभा करो और यथायोग्य बलि करो ॥१२॥ अच्छे खाईके समान खोदे

हुए स्थानोंमें जलके घडे स्थापन करो वे जलभरे सुवर्णके घट स्थापन करो ॥ १३ ॥ तथा बली संग्रह करो ओर शरीरमें लगानेके चन्दनादि इकठे करो और प्रश्न करनेवाले पुरुषोंके समूहको बुलाओ ॥ १४ ॥ रंगभूमिके देखनेवालोंको और पहलवानोंको आनेकी आज्ञा दो, समाजमें मंचसमूह सबके निमित्त सम्यक् प्रकारसे कल्पित करो ॥ १५ ॥ इस प्रकार वह राजा विधिपूर्वक समाज बनानेकी आज्ञा दे समाजस्थलसे निकलकर अपने मंदिरमें आया ॥ १६ ॥ वहां जाकर उन दो मल्लोंको बुलाया. जिनका नाम चाणूर और मुष्टिक था. यह दोनों बडे बली थे ॥ १७ ॥ इस प्रकार वह महाबली

बलयश्चोपकल्प्यन्तां कषायाश्चैव कुम्भशः ॥ प्राश्निकाश्च निमन्त्र्यन्तां श्रेण्यश्च सपुरोगमाः ॥ १४ ॥ आज्ञा च देया मल्लानां प्रेक्षकाणां तथैव च ॥ समाजे मञ्चवाटाश्च कल्प्यन्तां सूपकल्पिताः ॥ १५ ॥ एवमाज्ञाप्य राजा स समाजविधिमुत्तमम् ॥ समाजवाटान्निष्क्रम्य विवेश स्वं निवेशनम् ॥ १६ ॥ आह्वानं तत्र स चक्रे तस्य मल्लद्वयस्य वै ॥ चाणूरस्याप्रमेयस्य मुष्टिकस्य तथैव च ॥ १७ ॥ तौ तु मल्लौ महावीर्यौ बलिनौ बाहुशालिनौ ॥ कंसस्याज्ञां पुरस्कृत्य हृष्टौ विविशतुस्तदा ॥ १८ ॥ तौ समीपगतौ दृष्ट्वा मल्लौ जगति विश्रुतौ ॥ उवाच कंसो नृपतिस्सोपन्यासमिदं वचः ॥ १९ ॥ भवन्तौ मम विख्यातौ मल्लौ वीरध्वजोच्छ्रितौ ॥ पूजितौ च यथान्यायं सत्कारार्हौ विशेषतः ॥ २० ॥ तन्मत्तो यदि सत्कारस्स्मर्यते सुकृतानि च ॥ कर्तव्यं मे महत्कर्म भवद्भ्यां स्वेन तेजसा ॥ २१ ॥ यावेतौ मम संवृद्धौ व्रजे गोपालकावुभौ ॥ संकर्षणश्च कृष्णश्च बालावपि जितश्रमौ ॥ २२ ॥ एतौ रङ्गगतौ युद्धे युद्ध्यमानौ वनेचरौ ॥ निपातानन्तरं शीघ्रं हन्तव्यौ नात्र संशयः ॥ २३ ॥

दोनों मल्लोंको बुलाता हुआ तब वह कंसकी आज्ञासे मंदिरमें प्रविष्ट हुए ॥ १८ ॥ उन जगत् विख्यात मल्लोंको समीपमें आया देख कंस राजाने सारगर्भित वचन इस प्रकारसे कहे ॥ १९ ॥ तुम दोनों बडे वीर मेरे विख्यात मल्ल हो, तुम सत्कारके योग्य हो और मैंने तुम्हारा सत्कारभी विशेष किया है ॥ २० ॥ यदि तुम मेरा किया हुआ सत्कार कुछ स्मरण करते हो तो अपने तेजसे यह मेरा महत् कार्य साधन करो ॥ २१ ॥ जो मेरे व्रजमें दो गोपालके बालक बढे हुए हैं, जिनको कृष्ण बलराम कहते हैं वे बली बालक हैं ॥ २२ ॥ रंगभूमिमें उन वनचरोंके साथ युद्ध कर एकही पटकमें उनको मार डालना उचित

है,इसमें सन्देह नहीं॥२३॥वे दोनों बालक चपल हैं और शिक्षा उन्होंने कहीं नहीं पाई है ऐसा जानकर उनकी अवज्ञा नहीं करना,किन्तु उनके सब प्रकारसे मारनेकाही पन करना ॥२४॥ जिस समय तुम रंगभूमिमें उनको जीत लोगे तो वर्तमान और उत्तर कालमें मेरा मंगल है॥२५॥ इस प्रकार कंसके वचन सुन प्रसन्नमन हो वे चाणूर और मुष्टिक मल्ल बोले॥२६॥जो वे दोनों बालक हमारे सामने आये तो तुम उनको मृतक हुआही मानों वह दोनों तपस्वी प्रेतरूपी हैं ॥ २७ ॥ अरिष्ट प्राप्त होनेसे वनवासी यह गोप यदि क्रोधयुक्त हमसे युद्ध करेंगे तो वे मर चुके ॥२८॥ इस प्रकार वे दोनों

बालाविमौ सुचपलावक्रियाविति सर्वथा ॥ नावज्ञा तत्र कर्तव्या कर्त्तव्यो यत्न एव हि ॥२४॥ ताभ्यां युधि निरस्ताभ्यां गोपाभ्यां रङ्गसंनिधौ ॥ आयत्यां च तदात्वे च श्रेयो मम भविष्यति ॥२५॥ नृपतेस्स्नेहसंयुक्तैर्वचोभिर्हृष्टमानसौ ॥ ऊचतुर्युद्धसंमत्तौ मल्लौ चाणूरमुष्टिकौ ॥२६॥ यद्यावयोस्तौ प्रमुखे स्थास्येते गोपकिल्बिषौ ॥ हतावित्येव मन्तव्यौ प्रेतरूपौ तपस्विनौ ॥२७॥ यद्यावां प्रतियोत्स्येते तावरिष्ट परिप्लुतौ ॥ आवाभ्यां रोषयुक्ताभ्यां प्रमुखे तौ वनेचरौ ॥२८॥ एवं वाग्विषमुत्सृज्य तावुभौ मल्लपुङ्गवौ॥ अनुज्ञातौ नरेन्द्रेण स्वे गृहे तौ प्रजग्मतुः ॥ २९ ॥ महामात्रं ततः कंसो बभाषे हस्तिजीविनम् ॥ हस्ती कुवलापीडस्समाजद्वारि तिष्ठतु ॥ ३० ॥ बलवान्मदलोलाक्षश्चपलः क्रोधनो नृषु ॥ दानोत्कटकटश्चण्डः प्रतिवारणरोषणः ॥ ३१ ॥ स संनोदयितव्यस्ते तावुद्दिश्य वनौकसौ ॥ वसुदेवसुतौ वीरौ यथा स्यातां गतायुषौ ॥ ३२ ॥ त्वया चैव गजेन्द्रेण यदि तौ गोष्ठजीविनौ ॥ भवेतां पतितौ रङ्गे पश्येयमहमुत्कटौ ॥ ३३ ॥

मल्ल वाणीरूपी विष उगल कर राजाकी आज्ञा पाय अपने घर गये॥२९॥तब कंसने महामात्र नाम हाथीवानसे कहा कि कुवलयापीड हाथी समाजके द्वारेपर स्थित रहे ॥ ३० ॥ यह महाबली लोल चंचल नेत्र चपल मनुष्योंमें क्रोधी मदमें महा उत्कट तीव्र और शत्रुके हाथीके रोकनेवालेको खडा करो ॥ ३१ ॥ जिस समय वनवासी वसुदेवके पुत्र वे दोनों यहां आवें तो ऐसी चेष्टा करना जिससे यह उन्हें मार डाले॥३२॥यदि मैं तेरे हाथीसे उन

वचनरोंको नष्ट हुआ देखूंगा तो बडा प्रसन्न हूंगा॥३३॥उनको मृतक हुआ देख वसुदेवका कुल छिन्नमूल वृक्षके समान भार्यासहित नष्ट हो जायगा॥३४॥ और यह सब मूर्ख यादव कृष्णकी भक्ति करते हैं कृष्णको मृतक देख आशारहित होनेसे नष्ट हो जांयगे॥३५॥इन दोनोंको हाथीसे वा मल्लसे मारकर पुरीको यादवोंसे रहित करके मैं खुसीसे विचरूंगा ॥३६॥ मैंने यदुवंशियोंके पक्ष करनेवाले पिताको त्यागन कर दिया और शेष यादवभी कृष्णके पक्षके त्याग दिये ॥ ३७॥ कुछ मैं पुत्रकी इच्छा करनेवाले उग्रसेनसे नहीं उत्पन्न हुआ हू. जैसा कि मुझे अल्पवीर्यवाले मनुष्योंसे उत्पन्न हुआ,नारदने कहा

ततस्तौ पतितौ दृष्ट्वा वसुदेवस्सबान्धवः ॥ छिन्नमूलो निरालम्बस्सभार्यो विनशिष्यति॥३४॥ये चेमे यादवा मूर्खांस्सर्वे कृष्णपरायणाः ॥ विनशिष्यन्ति छिन्नाशा दृष्ट्वा कृष्णं निपातितम् ॥३५॥ एतौ हत्वा गजेन्द्रेण मल्लैर्वा स्वयमेव वा ॥ पुरी निर्यादवीं कृत्वा विचरिष्याम्यहं सुखी ॥३६॥ पिता हि मे परित्यक्तो यादवानां कुलोद्वहः ॥ शेषाश्च मे परित्यक्ता यादवाः कृष्णपक्षिणः ॥३७॥ न चाहमुग्रसेनेन जातः किल सुतार्थिना ॥ मानुषेणाल्पवीर्येण यथा मामाह नारदः ॥३८॥ महामात्र उवाच ॥ कथमुक्तं नारदेन राजन्देवर्षिणा पुरा ॥ आश्चर्यमेतत्कथितं त्वत्तः श्रुतमरिंदम ॥ ३९ ॥ कथमन्येन जातस्त्वमुग्रसेनात्पितुर्विना ॥ तव मात्रा कथं राजन्कृतं कर्मेदमीदृशम् ॥४०॥ अन्यापि प्राकृता नारी न कुर्याच्च जुगुप्सितम् ॥ विस्तरं श्रोतुमिच्छामि ह्येतत्कौतूहलं हि मे ॥४१॥ कंस उवाच ॥ यथा कथितवान्विप्रो महर्षिर्नारदः प्रभुः ॥ तथाहं संप्रवक्ष्यामि यदि ते श्रवणे मतिः ॥४२॥ आगतश्शक्रसदनात्स वै शक्रसखो मुनिः ॥ चन्द्रांशुशुक्लवसनो जटामण्डलमुद्वहन् ॥ ४३ ॥

है॥३८॥महामात्र बोला; हे राजन् ! देवर्षि नारदजीने क्या कहा है. हे श्रेष्ठ ! यह आपने आश्चर्यकी बात मुझे सुनाइये ॥३९॥ उग्रसेनके विना आप दूसरेसे कैसे उत्पन्न हुए हो तुम्हारी माताने हे राजन् ! ऐसा कर्म कैसे किया॥४०॥कोई दूसरीभी साधारण स्त्री निन्दित कर्म नहीं कर सक्ती, परन्तु इसमें तो मुझे बडा कुतूहल है इससे विस्तारपूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं ॥४१॥ कंस बोला;जो तेरे सुननेकी इच्छा है तो जो कुछ नारदजीने कहा है सो मैं तुम्हें सुनाता हूं॥४२॥एक समय वोह इन्द्रके सखा मुनि इन्द्रके भवनमें अतिथि थे उस समय जटामंडल धारण किये चन्द्रमाके समान शुक्ल

वस्त्र पहरे ॥४३॥ काली मृगछाला धारे सुवर्णका यज्ञोपवीत पहरे दंड कमंडल धारे, दूसरे प्रजापतिके समान ॥४४॥ चारों वेदोंके गानेहारे विद्वान् धर्मके ज्ञाता वह ब्रह्मलोकको जानेहारे अविनाशी ऋषि नारदजी ॥४५॥ जिस समय आये तब मैंने उनका यथोक्त पूजन करके पाद्य अर्घ आसन देकर बैठाया और पीछेसे मैं बैठा ॥ ४६ ॥ तब सुखपूर्वक बैठकर उन मुनिने मुझसे कुशल पूछी. वह महाज्ञानी प्रसन्न हो मुझसे बोले ॥ ४७ ॥ नारदजी बोले; हे वीर! तैंने मेरी विधिपूर्वक पूजा की है. मैं एक वचन तुमसे कहता हूं तुम सुनो ॥ ४८ ॥ मैं सुमेरु पर्वतमें देवताओंके स्थानमें गया

कृष्णाजिनोत्तरीयेण रुक्मयज्ञोपवीतवान् ॥ दण्डी कमण्डलुधरः प्रजापतिरिवापरः ॥४४॥ गाता चतुर्णां वेदानां विद्वान् गान्धर्ववेदवित् ॥ स नारदोऽथ देवर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः ॥ ४५ ॥ तमागतमृषिं दृष्ट्वा पूजयित्वा यथाविधि ॥ पाद्यार्घमासनं दत्त्वा संप्रवेश्योपविश्य ह ॥ ४६ ॥ सुखोपविष्टोऽथ मुनिः पृष्ट्वा च कुशलं मम ॥ उवाच च प्रीतमना देवर्षिर्भावितात्मवान् ॥ ४७ ॥ नारद उवाच ॥ पूजितोऽहं त्वया वीर विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ इदमेकं मम वचश्श्रूयतां प्रतिगृह्यताम् ॥ ४८ ॥ गतोऽहं देवसदनं सौवर्णं मेरुपर्वतम् ॥ सोऽहं कदाचिद्देवानां समाजे मेरुमूर्द्धनि ॥ ४९ ॥ तत्र मन्त्रयतामेवं देवतानां मयाश्रुतः ॥ भवतस्सानुगस्यैव वधोपायस्सुदारुणः ॥ ५० ॥ तत्र यो देवकीगर्भो विष्णुर्लोकनमस्कृतः ॥ योऽस्या गर्भोऽष्टमः कंस स ते मृत्युर्भविष्यति ॥ ५१ ॥ देवानां स तु सर्वस्वं त्रिदिवस्य गतिश्च सः ॥ परं रहस्यं देवानां स ते मृत्युर्भविष्यति ॥ ५२ ॥ यत्नश्च क्रियतां कंस गर्भाणां पातनं प्रति ॥ नावज्ञा रिपवे कार्या दुर्बले स्वजनेऽपि वा ॥ ५३ ॥

था, सो एक समय उस देवताओंक समाजमें सुमेरु पर्वतपर ॥ ४९ ॥ देवताओंको सम्मति करते मैंने सुना वे आपका अनुचरों सहित वधका उपाय विचारते थे ॥५०॥ उसमें लोक नमस्कृत विष्णु देवकीके गर्भमें आवेंगे. हे कंस ! जो देवकीका आठवां गर्भ होगा उससे तेरी मृत्यु होगी ॥५१॥ हे कंस ! यही देवताओंका सर्वस्व है यही स्वर्गकी गति है और यही देवताओंका परम रहस्यहै, कि वह तुझे मारेगा ॥५२॥ इससे देवकीके गर्भ नष्ट करनेका

यत्न करना शत्रु दुर्लभ हो या स्वजन परन्तु उसकी अवज्ञा नहीं करनी ॥ ५३ ॥ हे कंस ! यहभी जान कि उग्रसेन तेरा पिता नहीं है तेरा पिता तौ द्रुमलिक नामवाला महातेजस्वी सौभपति दानवपति है ॥ ५४ ॥ मैं यह नारदका वचन सुनकर क्रोधित हुआ और बोला, हे भगवन् ! किस प्रकार द्रुमलिक नाम दानवसे ॥ ५५ ॥ मेरी माताका संभोग हुआ वह आप कहिये. हे तपोधन ! यह मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूं ॥ ५६ ॥ नारदजी बोले; हे राजन् ! सुनो मैं तत्त्वसे कहता हूँ. जिस प्रकार तुम्हारी माताका द्रुमलिकसे समागम हुआ है और वार्ता हुई है ॥ ५७ ॥ रजस्वला

न चायमुग्रसेनस्स पिता तव महाबलः ॥ द्रुमिलो नाम तेजस्वी सौभस्य पतिरूर्जितः ॥ ५४ ॥ श्रुत्वाहं तद्वचस्तस्य किंचिद्दोषसमन्वितः ॥ भूयोऽपृच्छं कथं ब्रह्मन्द्रुमिलो नाम दानवः ॥ ५५ ॥ मम मात्रा कथं तस्य ब्रूहि विप्र समागमः ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन ॥ ५६ ॥ नारद उवाच ॥ हन्त ते कथयिष्यामि शृणु राजन्यथार्थतः ॥ द्रुमिलस्य च मात्रा ते संवादं च समागमम् ॥ ५७ ॥ सुयामुनं नाम नगं तव माता रजस्वला ॥ प्रेक्षितुं सहिता स्त्रीभिर्गता वै सा कुतूहलात् ॥ ५८ ॥ सा तत्र रमणीयेषु रुचिरद्रुमसानुषु ॥ चचार नगशृङ्गेषु कन्दरेषु नदीषु च ॥ ५९ ॥ किन्नरोद्गीतमधुराः प्रतिश्रुत्याभिनादिताः ॥ शृण्वन्ती कामजननीर्वाचश्श्रोत्रसुखावहाः ॥ ६० ॥ बर्हिणां चैव विरुतं खगानां च विकूजितम् ॥ अभीक्ष्णमभिशृण्वन्ती स्त्रीधर्ममभिरोचयत् ॥ ६१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वायुर्वनराजिविनिस्सृतः ॥ हृद्यः कुसुमगन्धाढ्यो ववौ मन्मथबोधनः ॥ ६२ ॥ द्विरेफाभरणाश्चैव कदम्बा वायुघट्टिताः ॥ मुमुचुर्गन्धमधिकं संततासारमूर्च्छिताः ॥ ६३ ॥

तुम्हारी माता सखियोंके साथ सुयासुन नाम पर्वतके देखनेको गई ॥ ५८ ॥ वहां मनोहर वृक्षखण्ड और पर्वतोंके तटोंमें पर्वतके शृंग कंदरा नदी स्थानमें ॥ ५९ ॥ जहां किन्नरी मनोहर गान करती थीं और कानोंको सुखदायक गीत श्रवण करती हुई जिससे कि कामका वेग बढता था ॥ ६० ॥ मोरोंके शब्द, पक्षियोंके गुंजार निरन्तर श्रवण करनेसे उसे भोगकी इच्छा हुई ॥ ६१ ॥ उसी समय वन पक्षियोंसे निकली हुई वायु हृदयको सुखदायक कामकी बढानेहारी चलने लगी ॥ ६२ ॥ इधर कदम्बकी सुगंध वायुसे अधिक फैलने लगी उस पर भौरे गुंजारने लगे और गंध सूंघ मूर्च्छितसे हो

गये॥६३॥और कामकी बढानेहारी केशर और फूलोंके गिरनेसे कामकी वृद्धि होने लगी. पुष्प और कंटकधारी नीपके वृक्ष दीपकके समान शोभित होने लगे॥६४॥ पृथ्वी नये तृण और वीरबहूटीसें युक्त हुई मानो नवीन यौवनवतीने ऋतुधर्म धारण किया है॥६५॥उसी समय श्रीमान् सौभपति दानव द्रुमलिक भविष्यज्ञ दैवयोगसे विधाताके वश वहां लाया गया॥६६॥वह इच्छाचारी रथपर चढासूर्यके समान कान्तिमान् अपनी इच्छासेही सुयामुन पर्वतको देखने आया ॥६७॥वह इच्छाचारी आकाशमें मनसेभी अधिक चलता था वह उस पर्वतश्रेष्ठको प्राप्त हो उस रथश्रेष्ठसे उतर

केसराः पुष्पवर्षैश्च ववृषुर्मदबोधनाः ॥ नीपादीप इवाभान्ति पुष्पकण्टकधारिणः॥६४॥ मही नवतृणच्छन्ना शक्रगोपविभूषिता ॥ यौवनस्थेव वनिता स्वं दधारार्तवं वपुः ॥ ६५ ॥ अथ सौभपतिः श्रीमान्द्रुमिलो नाम दानवः ॥ भविष्यद्दैवयोगेन विधात्रा तत्र नीयते ॥ ६६ ॥ कामगेन रथेनाशु तरुणादित्यवर्चसा ॥ यदृच्छया गतस्तत्र सुयामुनदिदृक्षया ॥ ६७ ॥ विहायसा कामगमो मनसोऽप्याशुगामिना ॥ स तं प्राप्य पर्वतेन्द्रमवतीर्व रथोत्तमात् ॥६८॥ पर्वतोपवने न्यस्य रथं पररथारुजम् ॥ अथासौ सूत-सहितश्चचार नगमूर्द्धनि ॥ ६९ ॥ ततो बहून्यपश्येतां काननानि वनानि च ॥ सर्वर्तुगुणसंपन्नं नन्दनस्येव काननम् ॥ ७० ॥ चेरतुर्नगशृङ्गेषु कन्दरेषु नदीषु च ॥ नानाधातुपिनद्धैश्च शृङ्गैर्बहुभिरुच्छ्रितैः ॥७१॥ नानारत्नविचित्रेषु काञ्चनाञ्जनराजतान् ॥ नानाकुसुमगन्धाढ्यान्नानासत्त्वगणैर्युतान् ॥ ७२ ॥ नानाद्विजगणैस्तुष्टान्नानापुष्पफलद्रुमान् ॥ नानौषधिसमायुक्तानृषिसिद्धानु-सेवितान् ॥ ७३ ॥

कर॥६८॥दूसरे शत्रुओंके मारनेहारे उस रथको पृथक् स्थापन करके सूतके सहित यह पर्वतके शिखरमें विचरने लगा ॥६९॥ इस प्रकार उसने बहुत कानन और वन देखे. जो कि सब ऋतुओंसे सम्पन्न नंदनवनके समान था॥७०॥वहपर्वत शृंग नदी कंदरामें विचरने लगा, जिसके बहुत ऊंचे शृंग अनेक धातुओंसे युक्त थे॥७१॥सुवर्ण अंजन और चांदीके शृंग अनेक रत्नोंसेशोभित थे और अनेक सुगन्धी युक्त तथा अनेक जीवोंसे युक्त ॥ ७२ ॥ अनेक पक्षियोंसे पुष्प सुगन्धीवाले वृक्ष शोभित हो रहे. अनेक प्रकारकी औषधियोंसे सेवित ऋषि सिद्धोंसे अधिष्ठित ॥७३॥

विद्याधर, किंपुरुष, ऋक्ष, राक्षस, वानर, सिंह, व्याघ्र, वराह, महिष, शरभ, खरगोश ॥ ७४ ॥ चमरवाली गौ, मृग, हाथी, यक्ष, राक्षस, अनेक प्रकारके जीवोंको देखता हुआ पर्वतपर विचरता था ॥ ७५ ॥ इस प्रकार नृपतिने दूरसे विचरती हुई देवीको देवताकी समान देखा कि सखियोंके बीचमें क्रीडा करती थी और फूल बीनती थी ॥ ७६ ॥ इस प्रकार सुन्दर नितम्बवालीको सखियोंके साथ विचरता देख सौभपति दूरसेही विस्मयको प्राप्त हो अपने सारथीसे बोला ॥ ७७ ॥ यह मृगनयनी इस वनमें फिरती किसकी स्त्री है वह रूप उदार गुणमें साक्षात् कामकी स्त्री रति है ॥ ७८ ॥ अथवा यह

विद्याधरान्किंपुरुषानृक्षवानरराक्षसान् ॥ सिंहान्व्याघ्रान्वराहांश्च महिषाञ्छरभाञ्छशान् ॥ ७४ ॥ सृमरांश्चमरान्यंकून्मातङ्गान्यक्षराक्षसान् ॥ एवं बहुविधान्पश्यन् चरमाणो नगोत्तमम् ॥ ७५ ॥ दूराद्ददर्श नृपतिर्देवीं देवसुतोपमाम् ॥ क्रीडमानां सखीभिश्च पुष्पं चैव विचिन्वतीम् ॥ ७६ ॥ ततश्चरन्तीं सुश्रोणीं सखीभिस्सह संवृताम् ॥ दृष्ट्वा सौभपतिर्दूराद्विस्मयन्सूतमब्रवीत् ॥ ७७ ॥ यस्येयं मृगशावाक्षी वनान्तरविचारिणी ॥ रूपौदार्यगुणोपेता मन्मथस्य रतिर्यथा ॥ ७८ ॥ शचीव पुरुहूतस्य उताहो वा तिलोत्तमा ॥ नारायणोरुं निर्भिद्य संभूता वरवर्णिनी ॥ ऐलस्य दयिता देवी योषिद्रत्नं किमुर्वशी ॥ ७९ ॥ क्षीरार्णवे मथ्यमाने सुरासुरगणैस्सह ॥ मन्थानं मन्दरं कृत्वामृतार्थमिति नश्श्रुतम् ॥ ८० ॥ ततोऽमृतात्समुत्तस्थौ देवी श्रीर्लोकभाविनी ॥ नारायणाङ्कलुलिता किं श्रीरेषा वराङ्गना ॥ ८१॥ नीलमेघान्तरगता द्योतयन्त्यचिरप्रभा ॥ तथा योषिद्गणान्मध्ये रूपं प्रद्योतयद्वनम् ॥ ८२ ॥

इन्द्रकी शची रानी अथवा तिलोत्तमा है जो यह शोभना नारायणकी ऊरु निर्भेद कर उत्पन्न हुई है अथवा ऐलकी प्रिया स्त्रियोंमें रत्न क्या यह उर्वशी है ॥ ७९ ॥ क्षीरसागरको जब देवताओंने दैत्योंके साथ मथा था और अमृत निकालनेमें मथानी मंदराचल बनाया था ऐसा हमने सुना है ॥ ८० ॥ तब उस सागरसे लोकमोहिनी लक्ष्मी निकली थी वह नारायणके शरीरमें लीन हो गई थी क्या यह तो नहीं है ॥ ८१ ॥ जो नीलमेघके अन्तर हो अपनी कान्तिसे प्रकाश करती है अथवा जो स्त्रियोंके मध्यमें हो अपने रूपसे वनको प्रकाश कर रही है ॥ ८२ ॥

अत्यन्त सुकुमार अंगवाली चन्द्रमुखीका रूप देख मेरा मन व्याकुल और भ्रांत हुआ जाता है यह अनिन्द्य अंगवाली है ॥ ८३ ॥ मैं इसे देख कामके वश हो गया अब यह मेरा मन विह्वल किये देती है निश्चयही बाण मारकर कामदेव मेरे अंगोंको काटता है ॥ ८४ ॥ कामदेव निर्दयी हो पांच बाणोंसे मेरा मन व्याकुल करता है. हृदयकी अग्नि घृत पडी हुई अग्निकी समान बढती है. इस कामाग्निका शान्त करनेहारा कार्य कैसे हो ॥ ८५ ॥ क्या उपाय करें जिससे यह मत्तगामिनी मुझे भजे. इस प्रकार बहुत विचारसेभी कोई

अतीव सुकुमाराङ्गी सुप्रभेन्दुनिभानना ॥ दृष्ट्वा रूपमनिन्द्याङ्ग्या विभ्रान्तो व्याकुलेन्द्रियः ॥ ८३ ॥ कामस्य वशमापन्नो मनो विह्वलतीव मे ॥ भृशं कृन्तति मेऽङ्गानि सायकैः कुसुमायुधः ॥ ८४ ॥ भित्त्वा हृदि शरान्पञ्च निर्दयं हन्ति मे मनः ॥ हृदयाग्निं वर्द्धयति आज्यसिक्त इवानलः ॥ कथमद्य भवेत्कार्यं शमार्थं मन्मथाग्निना ॥ ८५ ॥ केनोपायेन किं कुर्मो भजेन्मां मत्तगामिनी ॥ एवं बहु चिन्तयानो नोपलभ्य च दानवः ॥ ८६ ॥ सूतमाह मुहूर्तं तु तिष्ठस्व त्वमिहानघ ॥ अहं यास्यामि तां द्रष्टुं कस्येयमिति योषितम् ॥ ८७ ॥ प्रतीक्षमाणस्तिष्ठस्व यावदागमनं मम ॥ श्रुत्वा तु वचनं तस्य तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् ॥ ८८ ॥ एवमुक्त्वा दानवेन्द्रो गमनाय मनो दधे ॥ वार्युपस्पृश्य बलवान्ध्यानमेवान्वचिन्तयत् ॥ ८९ ॥ मुहूर्तं ध्यानमात्रेण दृष्टं ज्ञानबलात्ततः ॥ उग्रसेनस्य पत्नीति ज्ञात्वा हर्षमुपागतः ॥ ९० ॥ उग्रसेनस्य रूपं वै कृत्वा स्वं परिवर्त्य सः ॥ उपासर्पन्महाबाहुः प्रहसन्दानवेश्वरः ॥ ९१ ॥

युक्ति स्थिर न हुई ॥ ८६ ॥ तब सूतसे कहा तू एक मुहूर्ततके यहांही खडा रहो मैं इसे देखने जाता हूं कि यह किसकी स्त्री है ॥ ८७ ॥ जबतक मैं लौटकर आऊं तू यहीं स्थित रह सारथीने यह वचन सुन बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ८८ ॥ यह कह दानवेन्द्रने जानेकी इच्छा कि और जलस्पर्श कर उसने ध्यान विचारा ॥ ८९ ॥ एक मुहूर्ततक ध्यानसे उसने जान लिया कि यह उग्रसेनकी पत्नी है तब बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ९० ॥ तब यह तत्काल

उग्रसेनका स्वरूप बनाकर हँसता हुआ महाबाहु दानेश्वर उसके निकट गया ॥ ९१ ॥ हे दैत्यपति ! उसने इस प्रकार उग्रसेनका रूप धारण कर तुम्हारी माताको ग्रहण किया ॥ ९२ ॥ और वह बडे प्यारसे भावपूर्वक उससे मिली. परन्तु रतिमें विलम्ब दर्शनसे उसे शंका हुई कि कदाचित् यह मेरा पति नहीं है तब उसे शंका हुई ॥ ९३ ॥ तब वह भीत होकर बोली निश्चयही तू मेरा पति नहीं है. कोई तू दुराचारी है जिसने आकर मुझे कलंकित किया ॥ ९४ ॥ मेरा एक पतिधर्म तैंने नष्ट किया. हे नीच ! तैंने मेरे पतिका रूप धर बडा नीच कर्म किया ॥ ९५ ॥ कुलकलंकिनी

स्मयमानश्च शनकैर्जग्राहानितवीर्यवान् ॥ उग्रसेनस्य रूपेण मातरं ते व्यधर्षयत् ॥ ९२ ॥ सा पतिस्निग्धहृदया तं भावेनोपसर्पती ॥ शङ्किता चाभवत्पश्चात्तस्य गौरवदर्शनात् ॥ ९३ ॥ सा तमाहोत्थिता भीता न त्वं मम पतिर्ध्रुवम् ॥ कश्च त्वं विकृताचारो येनास्मि मलिनीकृता ॥ ९४ ॥ एकभर्तृव्रतमिदं मम संदूषितं त्वया ॥ पत्युर्मे रूपमास्थाय नीचनीचेन कर्मणा ॥ ९५ ॥ किं मां वक्ष्यन्ति रुषिता बान्धवाः कुलपांसनीम् ॥ जुगुप्सिता च वत्स्यामि पतिपक्षैर्निराकृता ॥ ९६ ॥ धिक् त्वामीदृशमक्षान्तं दुष्कुलं व्युत्थितेन्द्रियम् ॥ अविश्वास्यमनायुष्यं परदाराभिमर्शनम् ॥ ९७ ॥ स तामाह प्रसज्जन्तीं क्षिप्तः क्रोधेन दानवः ॥ अहं वै द्रुमिलो नाम सौभस्य पतिरूर्जितः ॥ ९८ ॥ किं मां क्षिपसि रोषेण मूढे पण्डितमानिनि ॥ मानुषं पतिमाश्रित्य नीचं मृत्युवशे स्थितम् ॥ ९९ ॥ व्याभिचारान्न दुष्यन्ति स्त्रियः स्त्रीमानगर्विते ॥ न ह्यासां नियता बुद्धिर्मानुषीणां विशेषतः ॥ १०० ॥

मुझको देखकर मेरे बन्धु क्या कहेंगे. पतिपक्षसे तिरस्कृत हो मैं पृथक् रहूंगी ॥ ९६ ॥ अशान्त आत्मा, खोटे कुल, कुत्सित, अविश्वासी, आयुहीन पराई स्त्रीकी धर्षणा करनेवाले तुझे धिक्कार है ॥ ९७ ॥ तब इस प्रकार क्लेश करके धिक्कारती हुई तुम्हारी मातासे वह दानव क्रोधकर बोला; हे मूढे ! मैं सौभपति द्रुमलिक नाम दानव हूं बडा बली हूं ॥ ९८ ॥ वृथापंडिताईका अभिमान करनेवाली रोषसे मेरे ऊपर क्यों आक्षेप करती है; मृत्युके वशीभूत नीच मनुष्य पतिको प्राप्त होकर स्त्री व्यभिचारसे दूषित नहीं होती हैं अर्थात् अमानुषव्यभिचारसे स्त्री दूषित नहीं होती है ॥ ९९ ॥ स्त्रियोंकी बुद्धि स्थिर

नहीं है और विशेष करके मानुषी स्त्रियोंकी बुद्धि स्थिर हैही नहीं ॥ १०० ॥ हमने सुना है, बहुतसी स्त्रियोंने व्यभिचार करनेसे देवताओंकी समान बडे पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न किया है. एक तूही मनुष्योंमें बडी पतिव्रता है ॥ १ ॥ जो शुद्ध केशोंको कम्पित करती हुई जो मनमें आता है सो कह रही है (पापवालोंमें स्थित रहते हैं) ॥ २॥ हे मत्तगमने ! तू किसका है यह जो तैंने मुझसे कहा है. इसी कारण (कस्य) इसी शब्दपर शत्रुहंता तेरा पुत्र कंस उत्पन्न होगा ॥ ३ ॥ तब वह फिर क्रोधकर उसके इस वरकी निन्दा करती व्यथित हो धृष्टवादी उस दानवसे बोली ॥ ४ ॥ ओ दुराचारी ! तेरे इस

श्रूयन्ते हि स्त्रियो बह्व्यो व्यभिचारव्यतिक्रमैः ॥ प्रसूता देवसंकाशान्पुत्रान्निश्चलविक्रमान् ॥ १ ॥ अतीव हि त्वं स्त्रीलोके पति-
धर्मवती सती ॥ शुद्धकेशान्विधुन्वन्ती भाषसे यद्यदिच्छसि ॥ २ ॥ कस्य त्वमिति यच्चाहं त्वयोक्तो मत्तकाशिनि ॥ कंसस्तस्माद्रि-
पुध्वंसी तव पुत्रो भविष्यति ॥ ३ ॥ सा सरोषा पुनर्भूत्वा निन्दती तस्य तं वरम् ॥ उवाच व्यथिता देवी दानवं धृष्टवादिनम् ॥४॥
धिक्ते वृत्तं सुदुर्वृत्त यः सर्वा निन्दसि स्त्रियः ॥ सन्ति स्त्रियो नीचवृत्तास्सन्ति चैव पतिव्रताः ॥ ५ ॥ यास्त्वेकपत्न्यश्श्रूयन्तेऽ-
रुन्धतीप्रमुखाः स्त्रियः ॥ धृता याभिः प्रजास्सर्वा लोकाश्चैव कुलाधम ॥ ६ ॥ यस्त्वया मम पुत्रो वै दत्तो वृत्तविनाशनः ॥ न मे
बहुमतस्त्वेष शृणु चापि यदुच्यते ॥ ७ ॥ उत्पत्स्यति पुमान्नीचः पतिवंशे ममाऽद्य यः ॥ भविष्यति स ते मृत्युर्यश्च दत्तस्त्वया
सुतः ॥ ८ ॥ द्रुमिलस्त्वेवमुक्तस्तु जगामाकाशमेव तु ॥ तेनैव रथमुख्येन दिव्येनाप्रतिगामिना ॥ ९ ॥

ज्ञानको धिक्कार है, जो तू सब स्त्रियोंकी निन्दा करता है, स्त्री नीच चरित्रवालीभी होती है, और पतिव्रताभी होती है ॥ ५ ॥ जो कि अरुन्धती आदि एक पतिव्रता स्त्रियें सुनी जाती हैं. हे कुलांगार ! उन्होंने सब लोक और प्रजा धारण कर रक्खी है ॥ ६ ॥ जो तैंने मुझको नष्ट आचारवाला पुत्र दिया है सो यह मुझे इष्ट नहीं है जो मैं कहती हूं सो तू सुन ॥ ७ ॥ अब मेरे पतिके वंशके नीच पुरुष उत्पन्न होगा, परन्तु यह तेरा दिया हुआ पुत्रही तेरी मृत्युका कारण होगा ॥ ८ ॥ ऐसा कहनेपर द्रुमलिक आकाशमार्गसे उसी दिव्य रथपर बैठकर चला गया ॥ ९ ॥

और दुःखी हो तुम्हारी माता उसी दिन पुरीमें आई. इस प्रकार भगवान् नारदजी मुझसे कहकर ॥ ११० ॥ तपके पराक्रमसे दीप्तिमान् साक्षात् अग्निकी समान प्रज्वलित सात स्वरोंकी लययुक्त वीणा बजाते हुए ॥ ११ ॥ और गाते ब्रह्मलोकके मार्गके समीप गये. हे महामात्र ! इस कारणसे तू यह मेरे वचन सुन ॥ १२ ॥ त्रिलोकीका ज्ञान जाननेवाले नारदजीने सत्य कहा है. मैं बल वीर्य नय विनयसे ॥ १३ ॥ वीर्यके प्रमाणसे, तेजके विक्रमसे, सत्य और दानसे जानता हूं कि मैं पुरुषके सदृश नहीं हूं ॥ १४ ॥ यह सब मैं जानकर नारदके वचनमें श्रद्धा करता हूं हे हाथीवान ! मैं इस

जगाम च पुरीं दीनां माता तदहरेव ते ॥ मामेवमुक्त्वा भगवान्नारदो मुनिसत्तमः ॥ ११० ॥ दीप्यमानस्तपोवीर्यात्साक्षादग्निरिव ज्वलन् ॥ वल्लकीं वादयमानो हि सप्तस्वरविमूर्च्छिताम् ॥ ११ ॥ गायनो लक्ष्यवीथीं स जगाम ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥ शृणुष्वेदं महामात्र निबोध वचनं मम ॥ १२ ॥ तथ्यं चोक्तं नारदेन त्रैलोक्यज्ञेन धीमता ॥ अलं बलेन वीर्येण नयेन विनयेन च ॥ १३ ॥ प्रमाणैर्वापि वीर्येण तेजसा विक्रमेण च ॥ सत्येन चैव दानेन नान्योऽस्ति सदृशः पुमान् ॥ १४ ॥ विदित्वा सर्वमात्मानं वचनं श्रद्दधाम्यहम् ॥ क्षेत्रजोऽहं सुतस्तस्य उग्रसेनस्य हस्तिप ॥ १५ ॥ मातापितृभ्यां संत्यक्तः स्थापितस्वेन तेजसा ॥ उभाभ्यामपि विद्विष्टो बान्धवैश्च विशेषतः ॥ १६ ॥ एतानपि हनिष्यामि यादवान्कृष्णपक्षिणः ॥ तदिमौ घातयित्वा तु हस्तिना गोपकिल्बिषौ ॥ १७ ॥ तद्गच्छ गजमारुह्य साङ्कुशप्रासतोमरः ॥ स्थिरो भव महामात्र समाजद्वारि माचिरम् ॥ ११८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसवाक्यं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते द्वितीये समुपस्थिते ॥ आपूर्यंत महारङ्गः पौरैर्युद्धदिदृक्षुभिः ॥ १ ॥

उग्रसेनका क्षेत्रज पुत्र हूं ॥ १५ ॥ माता पितासे त्यागा हुआ अपने तेजसे स्थित हूं तथा माता पिता और बन्धुओंका वैरी हूं ॥ १६ ॥ इस कारण कृष्णके पक्षी सब यादवोंकोभी मारूंगा इस कारण हाथीसे इन गोप नीचोंको मरवा डाल ॥ १७ ॥ सो जा हाथीपर चढ अंकुश प्रास तोमर लेकर शीघ्रही समाजके द्वारेपर स्थित हो ॥ ११८ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ वैशंपायन बोले; वह दिन बीतनेपर

जब दूसरा दिन हुआ, तब युद्ध देखनेवाले पुरवासियोंसे रंगभूमि भर गई ॥ १ ॥ विचित्र आठ पहले और तीन पहलेसे युक्त अर्गलासहित द्वार बन रहा था, वेदी बन रही, झरोखे अर्द्ध चन्द्रमाके आकारके बन रहे. अच्छे बिछौने बिछे हुए ॥ २ ॥ पूर्वकी ओर अच्छे फूलोंसे युक्त द्वार खुल रंहे और शरदृऋतुके मेघोंके समान उनकी शोभा थी ॥ ३ ॥ अखाडेके चारों ओर मंचानोंकी शोभा हो रही, मेघोंके समूहसे सागरकी समान वह यज्ञस्थान शोभित हुआ ॥ ४ ॥ यथार्थ द्रव्योंसे युक्त पताकाओंसे निरन्तर शोभित श्रेणी बांधे मञ्चानोंके समूह पहाडकी समान शोभित होते थे ॥ ५ ॥ अन्तः-

सचित्राष्टास्त्रिचरणास्सार्गलद्वारवेदिकाः ॥ सगवाक्षार्द्धचन्द्राश्च सुतल्पोत्तमभूषिताः ॥ २ ॥ प्राङ्मुखैश्चारुनिर्मुक्तैर्माल्यदामावतंसितैः ॥
अलंकृतैर्विराजद्भिः शारदैरिव तोयदैः ॥ ३ ॥ मञ्चागारैः सुनिर्युक्तैर्युद्धाय सुविभूषितैः ॥ समाजवाटः शुशुभे समेघौघ इवार्णवः ॥४॥
स्वकर्मद्रव्ययुक्ताभिः पताकाभिर्निरन्तरम् ॥ श्रेणीनां च गणानां च मञ्चा भान्त्यचलोपमाः ॥ ५ ॥ अन्तःपुरचराणां च प्रेक्षा-
गाराण्यनेकशः ॥ रेजुः काञ्चनचित्राणि रत्नज्वालाकुलानि च ॥ ६ ॥ तानि रत्नौघक्लृप्तानि ससानुप्रग्रहाणि च ॥ रेजुर्जवनिकेक्षिपे-
स्सपक्षा इव खे नगाः ॥ ७ ॥ तत्र चामरहारैश्च भूषणानां च सिञ्जितैः ॥ वाणीनां च विचित्राणां विचित्राश्चेरुरर्चिषः ॥ ८ ॥
गणिकानां पृथङ्मञ्चाश्शुभैरास्तरणाम्बरैः ॥ शोभिता वारमुख्याभिर्विमानप्रतिमौजसः ॥ ९ ॥ तत्रासनानि ख्यातानि पर्यङ्काश्च
हिरण्मयाः ॥ प्रकीर्णाश्च कुथाश्चित्रास्सपुष्पस्तबकैर्वृताः ॥ १० ॥

पुरके भीतर कंचनके बनें हुए चित्र विचित्र रत्न जडे उस कौतुक देखनेके स्थान बने थे. जिनकी कान्ति अग्निकी समान प्रकाश करती थी ॥ ६ ॥ वह प्रेक्षागर (देखनेके घर) रत्नोंके समूहोंसे मनोहर पलंग और आगे परदा पडनेसे ऐसे विदित होते थे जैसे आकाशमें पंखोंके सहित पर्वत हों ॥ ७ ॥ वहां चँवर हार गहनोंके मनोहर शब्द तथा वाणीकी विचित्रताईसे विचित्र कांति फैल रही थी ॥ ८ ॥ वेश्याओंके मञ्चान अलग थे, उनपरभी मनोहर आसन बिछे हुए वह वेश्याओंसे तेजस्वी विमानोंकी समान शोभित हुए ॥ ९ ॥ वहां श्रेष्ठ आसन सोनेकी कुर्सियोंपर बिछे थे, और उनके ऊपर

महामोलके वस्त्रोंपर फूलोंके गुलदस्ते रक्खे थे ॥ १० ॥ सुवर्णके कलशोंमें जल भरा हुआ इस प्रकार वह जलपानकी भूमि शोभित हुई अच्छे २ फल जंबीरी आदि और खट्टे जल और फल धरे थे ॥ ११ ॥ और अनेक काष्ठ बन्धनसे युक्त सहस्रों स्थान जिनपर बडे मोलके बिछौने थे, उस स्थानमें शोभित हो रहे थे ॥ १२ ॥ बडी श्रेष्ठ छोटी कोठरी जिनके झरोखोंमेंसे सब कुछ दीखता था वे स्त्रियोंके देखनेके घर आकाशमें राजहंसकी समान शोभित होते हैं ॥ १३ ॥ पूर्वकी तरफ मुखवाले सुमेरु पर्वतकी शिखरकी समान कान्तिमान् बहुत बडा सुशोभित सुवर्णका स्तंभ शोभित हो रहा था ॥ १४ ॥

सौवर्णाः पानकुम्भाश्च पानभूम्यश्च शोभिताः ॥ फलावदंशपूर्णाश्च चाङ्गेयः पानयोजिताः ॥ ११ ॥ अन्ये च मञ्चा बहवः काष्ठसंचयबन्धनाः ॥ रेजुः प्रस्तरणास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १२ ॥ उत्तमागारिकाश्चैव सूक्ष्मजालावलोकिनः ॥ स्त्रीणां प्रेक्षागृहा भान्ति राजहंसा इवाम्बरे ॥ १३ ॥ प्राङ्मुखश्चारुनिर्युक्तो मेरुशृङ्गसमप्रभः ॥ रुक्मपत्रानिभस्तम्भश्चित्रनिर्योगशोभितः ॥ १४ ॥ प्रेक्षागारस्स कंसस्य प्रचकाशेऽधिकं श्रिया ॥ शोभितो माल्यदामैश्च निवासकृतलक्षणः ॥ १५ ॥ तस्मिन्नानाजनाकीर्णे जनौघप्रतिनादिते ॥ समाजवाटे संस्तब्धे कम्पमानार्णवप्रभे ॥ १६ ॥ राजा कुवलयापीडस्समाजद्वारि कुञ्जरः ॥ तिष्ठत्विति समाज्ञाप्य प्रेक्षागारमुपाययौ ॥ १७ ॥ स शुक्ले वाससी बिभ्रच्छ्वेतव्यजनचामरः ॥ शुशुभे श्वेतमुकुटश्श्वेताभ्र इव चन्द्रमाः ॥ १८ ॥ तस्य सिंहासनस्थस्य सुखासीनस्य धीमतः ॥ रूपमप्रतिमं दृष्ट्वा पौराः प्रोचुर्जयाशिषः ॥ १९ ॥ ततः प्रविविशुर्मल्ला रङ्गमावलिताम्बराः ॥ तिस्रश्च भागशः कक्षाः प्राविशन्बलशालिनः ॥ २० ॥

वह कंसका प्रेक्षागार लक्ष्मीसे अधिक शोभित हुआ और अनेक प्रकारके मालासमूहोंसे शोभित हो रहा था ॥ १५ ॥ जिस समय अनेक मनुष्योंके समूहके शब्द होनेपर समाज स्थानके स्तब्ध होनेमें और सागरकी समान कम्पित होनेमें ॥ १६ ॥ और समाजके द्वारे कुवलयापीडके स्थित होनेपर राजा कंस दर्शनके स्थानमें गया ॥ १७ ॥ श्वेत वस्त्र पहरे, चंवरसे शोभायमान, श्वेत मुकुटसे श्वेत बादलमें चन्द्रमाकी समान शोभित हुआ ॥ १८ ॥ जिस समय वह बुद्धिमान् सिंहासनमें स्थित हुआ उस समय उसका श्रेष्ठ रूप देख पुरवासी जनोंने जयके आशीर्वाद दिये ॥ १९ ॥ तब वस्त्र धारण

किये पहलवान रंगभूमिमें आये. वे बलशाली आडबंध और कछनी पहने थे और वे बली तीन कक्षामें प्रवेश कर गये ॥२०॥ तब बाजेके शब्द आस्फालन खंभ ठोकनेके शब्द होने लगे, उसी समय प्रसन्न हुए दोनों वसुदेवके पुत्र रंगभूमिक द्वारपर आये ॥२१॥ बल्लव (गोप) वेश, वस्त्रसे संयुक्त देवताओंकी वन्दनासे भूषित, ऊर्ध्व पीडमाला धारे शस्त्ररूपी बाहु दोनों चटकाते हुए जो कि अर्गलाके समान थीं॥२२॥जिस समय वे दोनों शीघ्रतासे आ रहे थे उसी समय उनका निषेध किया गया और हाथीवानने उस नाग (हाथी) को वारंवार उनपर हूल दिया ॥ २३ ॥ तब उस दुष्टात्मा हाथीने अपनी सूंडको गोलाकार करके बलराम और केशवके मारनेका यत्न किया ॥ २४ ॥ तब हाथीके डरानेसे हंसकर श्रीकृष्णने कंसके इस

ततस्तूर्यनिनादेन क्ष्वेडितास्फोटितेन च ॥ वसुदेवसुतौ हृष्टौ रङ्गद्वारमुपस्थितौ ॥२१॥ (बल्लवौ वस्त्रसंवीतौ सुरवन्दनभूषितौ ॥ ऊर्ध्वपीडौ स्रगापीडौ बाहुशस्त्रकृतौ यमौ ॥ आस्फोटयन्तावन्योन्यं बाहू चैवार्गलोपमौ)॥२२॥ तावापतन्तौ त्वरितौ प्रतिषिद्धौ वराननौ ॥ तेन मत्तेन नागेन चोद्यमानेन वै भृशम् ॥ २३ ॥ स मत्तहस्ती दुष्टात्मा कृत्वा कुण्डलिनं करम् ॥ चकार चोदितो यत्नं निहन्तुं बलकेशवौ ॥२४॥ ततः प्रहसितः कृष्णस्त्रास्यमानो गजेन वै ॥ कंसस्य तन्मतं चैव जगर्हे स दुरात्मनः ॥२५॥ त्वरते खलु कंसोऽयं गन्तुं वैवस्वतक्षयम् ॥ यो मामनेन नागेन प्रधर्षयितुमिच्छति ॥२६॥ सन्निकृष्टे ततो नागे गर्जमाने तथा घने ॥ सहसोत्पत्य गोविन्दश्चक्रे तालस्वनं प्रभुः ॥ २७ ॥ क्ष्वेडितास्फोटितरवं कृत्वा नागस्य चाग्रतः ॥ करं स सीकरं तस्य प्रतिजग्राह वक्षसा ॥ २८ ॥ विषाणान्तरगो भूत्वा पुनश्चरणमध्यगः ॥ बबाधे तं गजं कृष्णः पवनस्तोयदं यथा ॥ २९ ॥ सहस्ताग्राद्विनिष्क्रान्तो विषाणाग्राच्च दन्तिनः ॥ विमुक्तः पदमध्याच्च कृष्णो द्विपमपोथयत् ॥ ३० ॥

कार्यकी निन्दा की ॥२५॥ कि यह कंस अब शीघ्रही नष्ट होनेकी इच्छा करता है जो हम इस हाथीसे प्रधर्षणा करानेकी इच्छा करता है॥२६॥ हाथीके निकट होकर सिंहनाद कर गर्जसे शीघ्र कूदके श्रीकृष्णने तालका शब्द किया ॥२७॥ और हाथीके आगे खंभ ठोककर शब्दकर उसकी सूंडको पकडकर उसके मस्तकपर अपने हृदयका बल लगाय ॥ २८ ॥ दांतों और चरणोंमें होकर श्रीकृष्ण हाथीको बाधा करने लगे. जैसे पवन बादलोंको बाधा देता है ॥ २९ ॥ वह उसकी सूंड और दांतोंसे निकलकर तथा कभी पैरोंसे निकलकर हाथीको पृथ्वीमें खैंचने लगे॥ ३० ॥

वह महाकायावान् मूढ कृष्णके मारनेको समथ न हुआ, और अपने शरीरके उन्मथित होनेसे शब्द करने लगा॥ ३१॥ वह जानुओंसे गिरपडा और दांतोंसे पीडा देने लगा, और क्रोधसे उसका मद चूने लगा जैसे वर्षामें मेघ जल वर्षाता है॥ ३२॥ कृष्णचन्द्र उस नागके साथ बाललीलासे खेल करके कंसके चित्तकी दुष्टता जान उसके मारनेकी इच्छा करते हुए॥ ३३॥ उसके मुखमें पैर रखकर हाथोंसे उसके दांतोंको उखाड फिर उसीके ऊपर प्रहार किया॥ ३४॥ वह हाथी वज्रके समान अपने दांतकी चोटसे ताडित हो विष्ठा मूत्र वारंवार करके चिंघाडने लगा॥ ३५॥ कृष्णसे पीडित हुए अंगवाले हाथीकेकपोलोंसेबहुतसा

सोऽतिकायस्तु संमूढो हन्तुं कृष्णमशक्नुवन् ॥ गजस्स्वेष्वेव गात्रेषु मथ्यमानो ररास ह ॥३१॥ पपात भूमौ जानुभ्यां दशनाभ्यां तुतोद च मदं सुस्राव रोषाच्च घर्मापाये यथा घनः ॥ ३२ ॥ कृष्णस्तु तेन नागेन क्रीडित्वा शिशुलीलया ॥ निधनाय मतिं चक्रे कंसद्विष्टेन चेतसा ॥ ३३ ॥ स तस्य प्रमुखे पादं कृत्वा कुम्भादनन्तरम् ॥ दोर्भ्यां विषाणमुत्पाट्य तेनैव प्राहरत्तदा॥३४॥ स तेन वज्रकल्पेन स्वेन दन्तेन कुञ्जरः ॥ हन्यमानश्शकृन्मूत्रं मुमोचार्तो ररास ह ॥ ३५ ॥ कृष्णजर्जरिताङ्गस्य कुञ्जरस्यार्तचेतसः ॥ कटाभ्यामतिसुस्राव वेगवद्वारि शोणितम् ॥ ३६ ॥ लांगूलं चास्य वेगेन निश्चकर्ष हलायुधः ॥ शैलपृष्ठार्द्धसंलीनं वैनतेय इवोरगम् ॥ ३७ ॥ तेनैव गजदन्तेन कृष्णो हत्वा तु दन्तिनम् ॥ जघानैकप्रहारेण गजारोहणमुल्बणम् ॥३८॥ सार्तनादं महत्कृत्वा विन्दतो दन्तिनां वरः ॥ पपात स महामात्रो वज्रभिन्न इवाचलः । ३९ ॥ ततस्तौ तोरणाङ्गानि प्रगृह्य रणकर्कशौ ॥ गजस्य पादरक्षांश्च जघ्नतुः पुरुषर्षभौ ॥ ४० ॥

रुधिर निकलने लगा॥ ३६॥ इधर बलरामजीने बडे वेगसे इसकी पूंछ खैंचना प्रारंभ किया जिस प्रकार गरुडजी पर्वतकी पीठमें आधे लीन हुए सर्पको खैंचते हैं ॥३७॥ कृष्णने उसी हाथीके दांतसे उसको मार कर एकही प्रहारसे उसके महावतको मार गिराया॥ ३८॥ वह हाथीभी बडा भारी शब्द करके मृतक हुआ और वज्रसे भिन्न हुए पर्वतके समान गिर पडा॥ ३९॥ तब इसके उपरान्त रणमें कठोर वह कृष्ण और बलराम उसे मार और

उसके दोनों दांत ग्रहण किये गजके पादरक्षकोंको मार ॥ ४० ॥ सभाके बीचमें दोनों प्रविष्ट हुए ऐसे विदित हुए मानो अश्विनीकुमार अपनी इच्छासे स्वर्गसे उतर आये हैं ॥ ४१ ॥ वृष्णि अंधक भोजने उन वनमालाधारियोंको देखा, जो कि, बाहोंसे खंभ ठोकते बडा शब्द करते और सिंहनाद तथा तालोंसे प्राणियोंको प्रसन्न करते थे ॥ ४२ ॥ उनको देखतेही कंसको बडा दुःख हुआ और पुरवासियोंका श्रीकृष्णमें अनुरागभी देखा ॥ ४३ ॥ इस प्रकार पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण शब्द करते हुए उस हाथीको मार उस सागरके आकारसे समाजमें बलदेवके साथ आये ॥ ४४ ॥ इति श्रीहरिवंशे

तांश्च हत्वा विविशतुर्मध्यं रङ्गस्य तावुभौ ॥ नासत्यावश्विनौ स्वर्गादवतीर्णाविवेच्छया ॥ ४१ ॥ वृष्ण्यन्धकाश्च भोजाश्च ददृशुर्वनमालिनौ ॥ क्ष्वेडितोत्कृष्टनादेन बाह्वोरास्फोटितेन च ॥ सिंहनादैश्च तालैश्च हर्षयामासतुर्जनम् ॥ ४२ ॥ तौ दृष्ट्वा भोजराजस्तु विषसाद वृथामातिः ॥ पौराणामनुरागं च हर्षं चालक्ष्य भारत ॥ ४३ ॥ तं हत्वा पुण्डरीकाक्षो नदन्तं दन्तिनां वरम् ॥ अवतीर्णोऽर्णवाकारं समाजं सहपूर्वजः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते विष्णुपर्वणि कुवलयापीडवधो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ प्रविशन्तं तु वेगेन मारुता वल्गिनां वरम् ॥ पूर्वजं पुरतः कृत्वा कृष्णं कमललोचनम् ॥ १ ॥ गजदन्तकृतोल्लेखं सुभुजं देवकीसुतम् ॥ लीलाकृताङ्गदं वीरं मदेन रुधिरेण च ॥ २ ॥ वल्गमानं यथा सिंहं व्यूहमानं यथा घनम् ॥ बाहुशब्दप्रहारेण चालयन्तं वसुंधराम् ॥ ३ ॥ औग्रसेनिः समालोक्य दन्तिदन्तोद्यतायुधम् ॥ कृष्णं भृशायस्तमुखस्सरोषं समुदैक्षत ॥ ४ ॥ भुजासक्तेन शुशुभे गजदन्तेन केशवः ॥ चन्द्रार्द्धबिम्बसंसक्तो यथैकशिखरो गिरिः ॥ ५ ॥

विष्णुपर्वणि भाषायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ वैशंपायन बोले; कमलनेत्र वायुसे फहराते हुए वस्त्रोंवाले बलरामजीको आगे कर श्रीकृष्णजी सभामें आये ॥ १ ॥ हाथीका दांत लिये सुन्दर भुजावाले देवकीपुत्रको जो कि अपनी लीलासे विचरते रुधिरकणसे शोभित भुजावाले ॥ २ ॥ सिंहकी समान पराक्रमी कंसको मारनेको मेघकी समान विचरते हुए और भुजामात्रके शब्दप्रहारसे पृथ्वीको चलायमान करते हुए ॥ ३ ॥ कृष्णको कंस देख दांतोंसे दांत पीसता हुआ शस्त्र संभाले दीन मुखसे देखने लगा ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णकी भुजा हाथी दांतसे शोभित हो रही थी, जैसे एक शिखरका पर्वत

चन्द्रमाके आधे बिम्बसे शोभित होता है ॥ ५ ॥ तब वह समाज कृष्णके प्राप्त होनेपर सागरकी समान मनुष्योंके कोलाहलसे पूर्ण हो गया ॥ ६ ॥ तब महाक्रोधी कंसने लाल लाल आखें कर कृष्णके साथ युद्ध करनेको चाणूरसे कहा ॥ ७ ॥ अन्ध्र और निकृति मल्ल महाबली मुष्टिकको बलराम-जीके साथ युद्ध करनेको आज्ञा दी यह मल्ल पर्वतकी समान थे ॥ ८॥ कंसकी आज्ञाको प्राप्त हो पहलेही चाणूर कंससे सुन चुका था कि, तुमको यत्न-पूर्वक कृष्णके साथ युद्ध करना चाहिये ॥ ९ ॥ तब लाल नेत्र कर चाणूर क्रोधमें भरकर जलसे पूर्ण मेघकी समान युद्ध करनेको तैयार हुआ ॥ १० ॥

वल्गमाने तु गोविन्दे सक्रुत्स्त्रोरगसागरः ॥ जनौघप्रतिनादेन पूर्यमाण इवाबभौ ॥ ६ ॥ ततः क्रोधाभिताम्राक्षः कंसः परमकोपनः ॥ चाणूरमादिशद्युद्धे कृष्णस्य सुमहाबलम् ॥ ७ ॥ अन्ध्रं मल्लं च निकृतिं मुष्टिकं च महाबलम् ॥ बलदेवाय सक्रोधो दिदेशाद्रिचयोपमम् ॥ ८ ॥ कंसेनापि समाज्ञप्तश्चाणूरः पूर्वमेव तु ॥ योद्धव्यं सह कृष्णेन त्वया यत्नवतेति वै ॥ ९ ॥ स रोषेण तु चाणूरः कषायीकृतलोचनः ॥ अभ्यावर्तत युद्धार्थमपां पूर्णो यथा घनः ॥ १० ॥ अवघुष्टे समाजे तु निश्शब्दास्तिमिते जने ॥ यादवास्सहितास्तत्र इदं वचनमब्रुवन् ॥ ११ ॥ बाहुयुद्धमिदं रङ्गे सप्राश्निकमकातरम् ॥ क्रियाबलसमाज्ञातमशस्त्रं निर्मितं पुरा ॥ १२ ॥ अद्भिश्चातिश्रमो नित्यं विनेयः कालदर्शिभिः ॥ करीषेण च मल्लस्य सततं सत्क्रिया स्मृता ॥ १३ ॥ स्थितो भूमिगतश्चैव यो यथा मार्गतः स्थितः ॥ संयुज्यतश्च पर्यायः प्राश्निकैः समुदाहृतः ॥ १४ ॥ बालो वा यदि वा वृद्धो मध्यो वापि कृशोऽपि वा ॥ बलस्थो वा स्थितो रङ्गे ज्ञेयः कक्षान्तरेण वै ॥ १५ ॥

उस समय वह मिला समाज निश्शब्द हो रहा था, तब यादवादि उस समय कहने लगे ॥ ११ ॥ इस रंगभूमिमें वह बाहुयुद्ध होना चाहिये. इसी कारण क्रिया बल जानकर यह अशस्त्र युद्ध रचा है और यह परीक्षाके निमित्त भयरहित हो करना चाहिये ॥ १२ ॥ कालके देखनेवालेको जलसे श्रम दूर करना चाहिये. गोबरके चूरेपर जो अखाडेमें पडा होता है वहां मल्लकी सत्क्रिया होती है ॥ १३ ॥ जो पृथ्वीपर यथार्थ खडा हो तब उसके साथ युद्ध करे. ऐसा प्रश्नके जाननेवालोंने कहा है ॥ १४ ॥ बाल, वृद्ध, मध्य वा कृश बली हो जो समाजमें आवे कांखतक पकडके उसके साथ युद्ध

करना चाहिये ॥ १५ ॥ बल और क्रियासे युद्धमें बाहुयुद्धकी विधि करनी चाहिये और गिरानेके पीछे फिर कुछभी न करना चाहिये ॥ १६ ॥ सो अब यहां कृष्ण और अन्ध्र-मल्लका युद्ध प्रारंभ होता है कृष्ण बालक और अंध्र बडा है इसमें विचार कैसे हो ॥ १७ ॥ तब कलकल-शब्द समाजमें होने लगा, उस समय श्रीकृष्ण इस प्रकार कहने लगे ॥ १८ ॥ मैं तो बालक हूं और पहाडके समान यह अंध्र है इस बली भुजावालेके साथ मेरा युद्ध कैसे हो सकता है ॥ १९ ॥ फिर मेरा किया हुआ तो कोई युद्धका व्यतिक्रम नहीं हो सकता, मैं बाहुयुद्ध करनेहारेको

बलतश्च क्रियातश्च बाहुयुद्धविशारदैः ॥ निपातानन्तरं किंचिन्न कर्त्तव्यं विजानता ॥ १६ ॥ तदिदं प्रस्तुतं रङ्गे युद्धं कृष्णान्ध्र-मल्लयोः ॥ बालः कृष्णो महानन्ध्रः कथं नः स्याद्विचारणा॥१७॥ततः किलकिलाशब्दस्समाजे समवर्तत ॥ प्रावलगत च गोविन्दो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १८ ॥ अहं बालो महानन्ध्रो वपुषा पर्वतोपमः ॥ युद्धं ममानेन सह रोचते बाहुशालिना ॥१९॥ युद्ध-व्यतिक्रमः कश्चिन्न भविष्यति मत्कृतः ॥ नह्यहं बाहुयोधानां दूषयिष्यामि यन्मतम् ॥ २० ॥ योऽयं करीषधर्मश्च तोयधर्मश्च रङ्गजः ॥ कषायस्य च संसर्गः समयो ह्येष कल्पितः॥२१॥ संयमः स्थिरता शौर्यं व्यायामः सत्क्रिया बलम् ॥ रङ्गे च नियता सिद्धिरेतद्युद्धविदां मतम् ॥ २२ ॥ अवैरमेवं यदयं सवैरं कर्तुमुद्यतः ॥ अत्र वै निग्रहः कार्यस्तोषयिष्याम्यहं जगत् ॥ २३ ॥ करूषेषु प्रसूतोऽयं चाणूरो नाम नामतः ॥ बाहुयोधी शरीरेण कर्मभिश्चारु चिन्त्यताम् ॥२४॥ एतेन बहवो मल्ला निपातानन्तरं हताः ॥ रङ्गप्रतापकामेन मल्लमार्गश्च दूषितः ॥ २५ ॥

दूषित नहीं करूंगा ॥२०॥ सो गोबरकी करसीका चूरा तथा श्रमितके ऊपर अखाडेमें जल छिडकना और कषायसंसर्ग ये सभी वार्ता रंगभूमिमें होनेवाली हैं ॥ २१ ॥ संयम स्थिरता, शूरता, व्यायाम, सत्क्रियाका फल, पेच, बल इन्हीं बातोंसे रंगमें सिद्धि होती है यह बुद्धिमानोंका सम्मत है ॥२२॥ और यह तो बाहुयुद्ध वैरके निमित्त है सो मैं इसको मारकर जगत्को प्रसन्न करूंगा ॥ २३ ॥ यह चाणूर करूषवंशमें उत्पन्न हुआहै सो इस बाहुयुद्ध करनेवालेका कर्म देखना ॥ २४ ॥ इसने नीचे पटकतेही बहुतसे मल्ल कुस्तीमें मारे हैं इस कारण प्रतापी होकरभी इसने अखाडेमें रंगभूमिका

भाग दूषित कर दिया है॥२५॥संग्राममें शस्त्रसे लडनेवाले योधाओंको शस्त्रकी सिद्धि है, और पहलवानोंको अखाडेमें पछाडनाही सिद्धि है ॥२६॥ रणमें विजय पानेवालेकी कीर्ति सदा रहती है, और शस्त्रोंसे मृतक हुएका निवास स्वर्गमें होता है॥२७॥इस प्रकार रणमें दोनों प्रकारकी सिद्धि है मारनेवालेकी और मरनेवालेकी वह प्राणान्तकी यात्रा बडे पुरुष और साधुओंसे पूजित है ॥२८॥ और यह रंगसमाजका मार्ग क्रिया और बलसे निषिद्ध है अखाडेमें मरनेसे क्या स्वर्ग मिलता है अथवा जयमें कुछ प्रीति है॥२९॥ और जो कोई पंडितमानी मल्ल राजाको अपना प्रताप दिखाने

शस्त्रसिद्धिस्तु योधानां संग्रामे शस्त्रयोधिनाम् ॥ रङ्गसिद्धिस्तु मल्लानां प्रतिमल्लनिपातजा ॥ २६ ॥ रणे विजयमानस्य कीर्तिर्भवति शाश्वती ॥ हतस्यापि रणे शस्त्रैर्नाकपृष्ठं विधीयते ॥२७॥ रणे ह्युभयतस्सिद्धिर्हतस्येह घ्नतोऽपि वा ॥ सा हि प्राणान्तिकी यात्रा महद्भिस्साधुपूजिता ॥ २८ ॥ अयं तु मार्गो बलतः क्रियातश्च विनिःसृतः ॥ मृतस्य रङ्गे क्व स्वर्गो जयतो वा कुतो रतिः ॥ २९ ॥ ये तु केचित्स्वदोषेण राज्ञः पण्डितमानिनः ॥ प्रतापार्थे हता मल्ला मल्लहन्तुर्वधो हि सः ॥ ३० ॥ एवं संजल्पतामेव ताभ्यां युद्धं सुदारुणम् ॥ उभाभ्यामभवद्घोरं वारणाभ्यां यथा वने ॥ ३१ ॥ कृतप्रतिकृतैश्चित्रैर्बाहुभिश्च ससङ्कटैः ॥ सान्निपातावधूतैश्च प्रमाथोन्मथनैस्तथा ॥ ३२ ॥ तावुभावपि संश्लिष्टौ यथा शैलमयौ तथा ॥ क्षेपणैर्मुष्टिभिश्चैव वराहोद्धूतनिस्स्वनैः ॥३३॥ कीलवज्रनिपातैश्च प्रसृष्टाभिस्तथैव च ॥ शलाकानखपातैश्च पादोद्धूतैश्च दारुणः ॥ ३४ ॥ जानुभिश्चाश्मनिर्घोषैश्शिरोभ्यां चावघट्टितैः ॥ तद्युद्धमभवद्घोरमशस्त्रं बहुतेजसा ॥ ३५ ॥

आते हैं यहां उनके मारनेको यह उपाय कर रक्खा है ॥ ३० ॥ इस प्रकार कहते हुए उन दोनोंका घोर युद्ध होने लगा जैसे वनमें दो हाथी लडते हों ॥ ३१ ॥ विविध प्रकारके पेचोंसे युक्त तथा कष्टसे युक्त हो अपनी २ भुजाओंसे पीडित करने लगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार वे दोनों परस्पर मिले पर्वतके समानदीखने लगे घूंसे चलाना, वाराहके समान करना ॥३३॥ वज्रके समान कीलप्रहार, शलाका नखका गाडना, कठिनतासे पैरोंका पकडना ॥३४॥ वज्रके समान शब्दायमान होना, जंघाओंका मिलना शिरोंके रगडनेसे वह युद्ध बिना शस्त्रकेभी महाघोर हुआ ॥ ३५ ॥

उस समाज उत्सवके निकटही बाहुयुद्धसे सब कोई प्रसन्न हुए, और उनकी प्रसन्नताका शब्द उठने लगा॥३६॥मंचानोंपर स्थित हुए पुरुष धन्य २कहने लगे, तब पसीनेमें तर कृष्णमें मन लगाये कंसने बायें हाथसे बाजा बंद कर दिया॥३७॥जब नगाडे मृदंग आदिका शब्द निवृत्त हो गया तबआकाशसे देवताओंके अनेक बाजे बजने लगे ॥ ३८ ॥ कमलनेत्र श्रीकृष्णसे युद्धके समय चारों ओरसे दूसरे बाजे बजने लगे ॥ ३९ ॥ कामरूपी विमानोंपर बैठे हुए देव कृष्णके जयकी इच्छासे विद्याधरोंके साथ विचरने लगे ॥ ४० ॥ और बोले; हे कृष्ण ! दानवरूपी इस मल्लको

बाहुप्राणेन शूराणां समाजोत्सवसन्निधौ ॥ अरज्यत जनस्सर्वस्सोत्कृष्टनिनदोत्थितः ॥ ३६ ॥ साधुवादांश्च मञ्चेषु घोषयन्त्यपरे जनाः ॥ ततः प्रस्विन्नवदनः कृष्णप्रणिहितेक्षणः ॥ न्यवारयत तूर्याणि कंसस्सव्येन पाणिना ॥३७॥ प्रतिषिद्धेषु तूर्येषु मृदङ्गादिषु तेषु वै॥ खे संगतान्यवाद्यन्त देवतूर्याण्यनेकशः॥३८॥युद्ध्यमाने हृषीकेशे पुण्डरीकनिभेक्षणे॥ स्वयमेव प्रवाद्यन्त तूर्यघोषास्तु सर्वशः ॥ ३९ ॥ अन्तर्धानगता देवा विमानैः कामरूपिभिः ॥ चेरुर्विद्याधरैस्सार्द्धं कृष्णस्य जयकांक्षिणः ॥ ४० ॥ जयस्व कृष्ण चाणूरं दानवं मल्लरूपिणम् ॥ इति सप्तर्षयस्सर्वे ऊचुश्चैव नभोगताः ॥४१॥ चाणूरेण चिरं कालं क्रीडित्वा देवकीसुतः ॥ बलमाहारयामास कंसस्याभाव दर्शिवान् ॥४२॥ ततश्चचाल वसुधा मञ्चाश्चैव जुघूर्णिरे ॥ मुकुटाच्चापि कंसस्य पपातमणिरुत्तमः ॥४३॥ दोर्भ्यामानम्य कृष्णस्तु चाणूरं शीर्णजीवितम् ॥ प्राहरन्मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहत्य जानुना ॥ ४४ ॥

जीतो, इस प्रकार आकाशमें स्थित हो सप्तऋषि कहने लगे ॥ ४१ ॥ बहुत समयतक कृष्ण चाणूरके साथ क्रीडा करते रहे, और कंसको अपना प्रभाव दिखाकर उन्होंने उसका बल क्षीण कर दिया ॥ ४२ ॥ उस समय पृथ्वी चलायमान होने लगी, और मंच घूमने और कंसका मणिजटित मुकुट उस समय गिर पडा ॥ ४३ ॥ तब श्रीकृष्णने भुजाओंसे हीनबल चाणूरको धारण कर उसके सिरमें

घूंसा मारा, और छातीमें जंघाओंका आघात किया ॥ ४४ ॥ उसके नेत्र और मुखनासिकासे रुधिर रूप आंसू निकलने लगा, जिस प्रकारसे कि, कांखके ऊपर घंटा लम्बायमान हो ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार श्रीकृष्णने उसे उठाकर रंगभूमिमें पटक दिया, तब उसकी आंखें निकल पडीं जिस समय चाणूर प्राणहीन हो पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ४६ ॥ तब उस दैत्यसे वह रंगभूमि पर्वतके समान रुद्ध हो गई, और विदित नहीं होती थी ॥ ४७ ॥ जिस समय चाणूर मरा उसी समयमें बलरामजीने मुष्टिकको और श्रीकृष्णने तोसलको ग्रहण किया ॥ ४८ ॥ वे दोनों दैत्य महाबली कृष्ण बलरामको प्राप्त हो

निस्सृते साश्रुरुधिरे तस्य नेत्रे सबन्धने ॥ तापनीये यथा घण्टे कक्षोपरि विलम्बिते ॥ ४५ ॥ पपात स तु रङ्गस्य मध्ये निःसृतलोचनः ॥ चाणूरो विगतप्राणो जीवितान्ते महीतले ॥ ४६ ॥ देहेन तस्य मल्लस्य चाणूरस्य गतायुषः ॥ सन्निरुद्धो महारङ्गस्स शैलेनेव लक्ष्यते ॥ ४७ ॥ रोहिणेयो हते तस्मिन् चाणूरे बलदर्पिते ॥ जग्राह मुष्टिकं रङ्गे कृष्णस्तोसलकं पुनः ॥ ४८ ॥ सन्निपाते तु तौ मल्लौ प्रथमे क्रोधमूर्च्छितौ ॥ समेयातां रामकृष्णौ कालस्य वशवर्तिनौ ॥ ४९ ॥ निर्घातावनतौ भूत्वा रङ्गमध्ये ववल्गतुः॥ कृष्णस्तोसलमुद्यम्य गिरिशृंगोपमं बली ॥ भ्रामयित्वा शतगुणं निष्पिपेष महीतले ॥ ५० ॥ तस्य कृष्णाभिपन्नस्य पीडितस्य बलीयसः ॥ मुखाद्रुधिरमत्यर्थमुज्जगाम मुमूर्षतः ॥ ५१॥ संकर्षणस्तु सुचिरं योधयित्वा महाबलः ॥ अन्ध्रमल्लं महामल्लो मण्डलानि व्यदर्शयत् ॥ ५२ ॥ मुष्टिनैकेन तेजस्वी साशनिस्तनयित्नुना ॥ शिरस्यभ्यहनद्वीरो वज्रेणेव महागिरिम् ॥ ५३ ॥

क्रोधसे मूर्च्छित हो गये; और कालके वशीभूत हो इन दोनोंसे भिडे ॥ ४९ ॥ उस समय महाबली दैत्य कंसके वशवर्ती होनेसे धावमान हुए, तब कृष्णने उस बली तोसलको पर्वतके शृंगकी समान उठाकर सौ वार घुमाकर पृथ्वीमें पीस डाला ॥ ५० ॥ जब वह महाबली कृष्णसे पीडित हुआ तब उसके मुखसे बहुतसा रुधिर निकलने लगा और वह मृतककी तुल्य हो गया ॥ ५१ ॥ इधर महाबली बलरामसे बहुत समयतक युद्ध करके अंध्र मल्ल महामल्ल अनेक प्रकारके मण्डल दिखलाने लगे ॥ ५२ ॥ तब वज्रकी समान वेगवाले एकही घूंसेसे वज्रकी तुल्य वेगसे महावीर बलरामने उसके ऊपर प्रहार

किया जैसे वज्रका प्रहार महापर्वतपर लगता है ॥ ५३ ॥ इससे उसका मस्तक टूट गया, आंखें निकल पडीं और वह महाशब्द करता पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ५४ ॥ इसी प्रकार अंध्र और तोसलको कृष्णने मारकर पृथ्वीमें डाल दिया, तब वह दोनों वीर महाक्रोध कर रंगभूमिमें विचरने लगे ॥ ५५ ॥ और पहलवानोंके विना रंगभूमि भयंकर दर्शन हो गई. जिस समय महामल्ल अंध्र और मुष्टिक मारा गया ॥ ५६ ॥ तब नन्दगोपादि जो यह दृश्य देख रहे थे भयसे सर्वांगमें क्षुभित हो वहां स्थित हो गये ॥ ५७ ॥ झरोखोंमें बैठी हुई देवकी नेत्रोंसे प्रसन्नताका जल त्यागन करती हुई; कांपती और छाती-

स निष्पतितमस्तिष्को विस्रस्तनयनो भुवि ॥ पपात निहतस्तेन ततो नादो महानभूत् ॥ ५४ ॥ अन्ध्रतोशलकौ हत्वा कृष्णसंकर्षणावुभौ ॥ क्रोधसंरक्तनयनौ रङ्गमध्ये ववल्गतुः ॥ ५५ ॥ समाजवाटो निर्मल्लस्सोऽभवद्भीमदर्शनः ॥ अन्ध्रे तदा महामल्ले मुष्टिके च निपातिते ॥ ५६ ॥ ये च संप्रेक्षका गोप नन्दगोपपुरोगमाः ॥ भयक्षोभितसर्वाङ्गास्सर्वे तत्रावतस्थिरे ॥ ५७ ॥ हर्षजं वारि नेत्राभ्यां वर्षमाणा प्रवेपती ॥ प्रस्रवोत्पीडिता कृष्णं देवकी समुदैक्षत ॥ ५८ ॥ कृष्णदर्शनजातेन बाष्पेणाकुलितेक्षणा ॥ वसुदेवो जरां त्यक्त्वा स्नेहेन तरुणायते ॥ ५९ ॥ वारमुख्याश्च तास्सर्वाः कृष्णस्य मुखपङ्कजम् ॥ पपुर्हि नेत्रभ्रमरैर्निमेषान्तरगामिभिः॥६०॥ कंसस्याथ मुखे स्वेदो भ्रूभेदान्तरगोचरः ॥ अभवद्रोषनिर्यासः कृष्णसंदर्शनेरितः ॥ ६१ ॥ केशवायसधूमेन रोषनिश्वासवायुना ॥ दीप्तमन्तर्गतं तस्य हृदयं मानसाग्निना ॥ ६२ ॥ तस्य प्रस्फुरितोष्ठस्य स्विन्नालिकतलस्य वै ॥ कंसवक्रस्य रोषेण रक्तसूर्यायते वपुः ॥ ६३ ॥

में दूधके उतर आनेसे श्रीकृष्णको देखने लगी ॥ ५८ ॥ कृष्णके दर्शनसेही उसके नेत्रोंमें जल भर आया था और वसुदेवभी तब जराको त्याग स्नेहसे तरुण हो गये ॥ ५९ ॥ सब वे वारमुखी कृष्णका मुखकमल पलक बिसारे नेत्ररूपी भमरों द्वारा पान करने लगीं ॥ ६० ॥ कंसकीभी भौं टेढी हो गई और उसे पसीना हो आया और कृष्णके देखनेसे उसे क्रोध आ गया ॥ ६१ ॥ तब क्रोधाग्निके धूमसे दीर्घश्वास लेनेसे उसका हृदय अन्तर्गत अग्निसे भस्म हो गया ॥ ६२ ॥ जिस समय उसके होठ फडकने लगे, माथेपर पसीना आ गया उस समय कंसके मुखपर क्रोधकी लाली आ गई उससे वह लाल-

सूर्यके समान शोभित हुआ ॥ ६३ ॥ तब क्रोधसे लाल हुए उसके मुखसे पसीनेके बिन्दु निकलने लगे जैसे सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे वृक्षोंकी ओसकी बूंदें टपकती हैं ॥ ६४ ॥ तब कंसने क्रोध कर अति घोर पुरुषोंको आज्ञा दी इन दोनों गोपोंको समाजसे निकाल दो ॥ ६५ ॥ इन विकृत और पापदर्शियोंके देखनेकी मैं इच्छा नहीं करता हूं और मेरे राज्यमें कोईभी गोप रहने न पावे ॥ ६६ ॥ यह दुर्बुद्धि नंद गोपभी मेरा बुरा चाहता है उसके पैरों हाथोंमें लोहेकी भारी बेडी डाल दो ॥ ६७ ॥ और दुर्बुद्धि वसुदेव नित्यही मुझसे द्वेष करता है इसकोभी तस्कर पुरुषोंकी समान दण्ड देना चाहिये ॥ ६८ ॥

क्रोधरक्तान्मुखात्तस्य निःसृताः स्वेदबिन्दवः ॥ यथा रविकरस्पृष्टा वृक्षावश्यायबिन्दवः ॥ ६४ ॥ सोऽज्ञापयत संक्रुद्धः पुरुषान्व्यायताबन्हून् ॥ गोपावेतौ समाजौघान्निष्क्राम्येतां वनेचरौ ॥ ६५ ॥ न चैतौ द्रष्टुमिच्छामि विकृतौ पापदर्शनौ ॥ गोपानामपि मे राज्ये न काश्चित्स्थातुमर्हति ॥ ६६ ॥ नन्दगोपश्च दुर्मेधाः पापेष्वभिरतो मम ॥ आयसैर्निगडाकारैर्लोहपाशैर्निगृह्यताम् ॥ ६७ ॥ वसुदेवश्च दुर्वृत्तो नित्यं द्वेषकरो मम ॥ अवृद्धार्हेण दण्डेन क्षिप्रमद्यैव शास्यताम् ॥ ६८ ॥ ये चेमे प्राकृता गोपा दामोदरपरायणाः ॥ ह्रियन्तां गाव एतेषां यच्चास्ति वसु किंचन ॥ ६९ ॥ एवमाज्ञापयानं तं कंसं परुषभाषिणम् ॥ ददर्शायस्तनयनः कृष्णस्सत्यपराक्रमः ॥ ७० ॥ क्षिप्ते पितारि चुक्रोध नन्दगोपे च केशवः ॥ ज्ञातीनां च व्यथां दृष्ट्वा विसंज्ञां चैव देवकीम् ॥ ७१ ॥ स सिंह इव वेगेन केशवो जातविक्रमः ॥ आरुरुक्षुर्महाबाहुः कंसनाशार्थमच्युतः ॥ ७२ ॥ रङ्गमध्यादुत्पपात कृष्णः कंसासनान्तिकम् ॥ असज्जद्वायुनाक्षिप्तो यथा खस्थो घनाघनः ॥ ७३ ॥

और यह जो दूसरे गोप श्रीकृष्णके भक्त हैं इनके पास जो गौ और धन है वह सब हरण कर लो ॥ ६९ ॥ जब इस प्रकार परुषभाषी कंसने आज्ञा दी, तब क्रोधके नेत्रोंसे कृष्णने कंसकी ओर देखा ॥ ७० ॥ पिताको और नंदगोपको ज्योंही उसने दुर्वचन कहे त्योंही श्रीकृष्ण क्रुद्ध हुए और जान लिया कि इस समय जातियोंको दुःख है और देवकी मूर्च्छित है ॥ ७१ ॥ तब सिंहकी समान वेगवान् श्रीकृष्ण उसके मारनेको मंचानके ऊपर कूद गये ॥ ७२ ॥ जब कृष्ण रंगभूमिसे कंसके निकट कूदे तो ऐसे विदित हुए जैसे वायुवेगसे चलता मेघ शोभित हो ॥ ७३ ॥

रंगभूमिसे कूदे हुए श्रीकृष्णको पुरवासियोंने केवल कंसके पास खडा हुआ देखा, परन्तु श्रीकृष्णके प्रति शंकित हुए ॥ ७४ ॥ और उस कंसनेभी कालधर्मको प्राप्त होकर श्रीकृष्णको आकाशसेही आता हुआ जाना ॥ ७५ ॥ तब श्रीकृष्णने मूसलकी समान अपनी पुष्ट भुजाओंसे रंगभूमिमेंही उसके बाल पकड लिये ॥ ७६ ॥ उस समय इसके सुवर्ण और हीरे जडा मुकुट, श्रीकृष्णने उसके शिरपर हाथ मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ७७ ॥ तब वह कंस ग्रहग्रस्तकी समान बालोंके पकडे जानेसे यत्नरहित हो गया तब वह मूढताको प्राप्त हो व्याकुल हो गया ॥ ७८ ॥ बालोंके पकडतेही

ददृशुर्न हि तं सर्वे रङ्गमध्यादवप्लुतम् ॥ केवलं कंसपार्श्वस्थं ददृशुः पुरवासिनः ॥ ७४ ॥ सोऽपि कंसस्तथायस्तः परीतः कालधर्मणा ॥ आकाशादिव गोविन्दं मेने तत्रागतं प्रभुम् ॥ ७५ ॥ स कृष्णेनायतं कृत्वा बाहुं परिघसन्निभम् ॥ मूर्द्धजेषु परामृष्टः कंसो वै रङ्गसंसदि ॥ ७६ ॥ मुकुटश्चापतत्तस्य काञ्चनो वज्रभूषितः ॥ शिरसस्तस्य कृष्णेन परामृष्टस्य पाणिना ॥ ७७ ॥ स ग्रहग्रस्तकेशश्च कंसो निर्यत्नतां गतः ॥ तथैव च विसंमूढो वैकल्यं समपद्यत ॥ ७८ ॥ निगृहीतश्च केशेषु गतासुरिव निश्वसन् ॥ न शशाक मुखं द्रष्टुं कंसः कृष्णस्य वै तदा ॥ ७९ ॥ विकुण्डलाभ्यां कर्णाभ्यां छिन्नहारेण वक्षसा ॥ प्रलम्बाभ्यां च बाहुभ्यां गात्रैर्विसृतभूषणैः ॥ ८० ॥ भ्रंशितेनोत्तरीयेण सहसावलिताननः ॥ चेष्टमानस्समाक्षिप्तः कंसः कार्ष्णेन तेजसा ॥ ८१ ॥ चकर्ष च महारङ्गे मञ्चान्निष्क्रम्य केशवः ॥ केशेषु तं बलादूगृह्य कंसं क्लेशार्हतां गतम् ॥ ८२ ॥ कृष्यमाणस्स कृष्णेन भोजराजो महाद्युतिः ॥ समाजवाटे परिखां देहकृष्टां चकार ह ॥ ८३ ॥

प्राणहीन हो श्वास लेने लगा और उस समय कंस श्रीकृष्णका मुख देखनेकोभी समर्थ न हुआ ॥ ७९ ॥ तब कुण्डलरहित कर्ण और हारहीन छातीके होनेसे तथा लम्बी भुजाओंसे गहने टूट जानेके कारण ॥ ८० ॥ डुपट्टेके स्खलित होनेसे एकाकी कंठहीन हो जानेसे वह चंचल मुखवाला हो गया और श्रीकृष्णके फेंकनेसे उनके तेजसे प्रेरित हो लोटने लगा ॥ ८१ ॥ तब श्रीकृष्ण मंचानसे उतर उसे महारंगमें खैंचने लगे और क्लेशके योग्य उस कंसको बलपूर्वक बालोंसे खैंचा ॥ ८२ ॥ तब वह महाद्युतिमान् भोजराजने कृष्णसे आकर्षित हो उस अपनी देहसे रंगभूमिके स्थानको खाई बना दिया ॥ ८३ ॥

उस प्रकार उस आयुहीनके साथ समाजमें क्रीडा करके कृष्णने कंसके देहको दूर फेंक दिया ॥ ८४ ॥ सुखके उचित उसका देह पृथ्वीमें मिलगया हुआ शोभित हुआ और शूरोंके अयोग्य सम्पूर्णतासे वह धूरीसे आच्छादित होगया ॥८५॥ उसका वह श्याम मुख आंखें मींचे मुकुटके विना पत्तेके विना कमलके समान शोभित नहीं होता था ॥८६॥ कंसको संग्रामके विना मार डाला वह बाणोंके विनाही ही मरकर शूर वीरोंके मार्गसे पतित हो गया ॥८७॥ श्रीकृष्णके नखोंसे किये हुए जीवके नाशक उसके शरीरमें घाव प्रकाशित होने लगे ॥ ८८ ॥ श्रीकृष्णकी उसे मारकर

समाजवाटे क्रीडित्वा विकृष्य च गतायुषम् ॥ कृष्णो विसर्जयामास कंसदेहमदूरतः॥८४॥धरण्यां मृदितः शिश्ये तस्य देहस्सुखोचितः॥ क्रमेण विपरीतेन पांसुभिः परुषीकृतः॥८५॥तस्य तद्वदनं श्यामं सुप्ताक्षं मुकुटं विना॥न विभाति विपर्यस्तं विपलाशं यथाम्बुजम् ॥ ८६ ॥ असंग्रामहतः कंसस्स बाणैरपरिक्षतः ॥ केशग्राहान्निरस्तासुर्वीरमार्गान्निराकृतः ॥ ८७ ॥ तस्य देहे प्रकाशन्ते सहसा केशवार्पिताः ॥ मांसच्छेदघनास्सर्वे नखाग्रा जीवितच्छिदः॥८८॥ तं हत्वा पुण्डरीकाक्षः प्रहर्षाद्द्विगुणप्रभः ॥ ववन्दे वसुदेवस्य पादौ निहतकण्टकः ॥८९॥ मातुश्च शिरसा पादौ निपीड्य यदुनन्दनः ॥ सासिञ्चत्प्रस्रवोत्पीडैः कृष्णमानन्दनिःसृतैः ॥९०॥ यादवांश्चैव तान्सर्वान्यथास्थानं यथावयः पप्रच्छ कुशलं कृष्णो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥९१॥ बलदेवोऽपि धमात्मा कंसभ्रातरमूर्च्छितम् ॥ बाहुभ्यामेव तरसा सुनामानमपोथयत् ॥ ९२ ॥

दूनी कांति हुई तब कंटकहीन हो इन्होंने जाकर अपने पिताको प्रणाम किया ॥८९॥ और फिर अपना शिर माताके चरणोंमें वारंवार धरा और आनन्द माना और उसके स्तनोंमेंसे कृष्णके स्नेहके कारण दुग्ध निकलने लगा और उससें श्रीकृष्णको भिजोंने लगी॥९०॥तब सब यादवोंकोभी यथास्थान यथा अवस्थामें अपने तेजसे दीप्यमान हो श्रीकृष्ण सबसे कुशल पूछने लगे॥९१॥इधरधर्मात्मा बलदेवनेभी महाक्रोध कर आये हुए द्रुमलिकसे

उत्पन्न कंसके भाईको जो लडनेको आया था मार डाला ॥९२॥ इस प्रकार वह बहुत दिनतक व्रजमें रहे शत्रु और क्रोध जीते हुए प्रसन्न हो दोनों वीर अपने पिताके भवनमें गये ॥९३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु विष्णुपर्वणि पण्डित-ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायांकंसवधो नाम त्रिंशोऽध्यायः॥३०॥ वैशंपायन बोले; क्षीणपुण्य ग्रहके समान अपने स्वामीको पृथ्वीपर पडा देख कंसकीरानी उसे चारों तरफसे घेरके बैठ गईं॥१॥ पृथ्वीपर उसे धरानाथको प्राणरहित देख उसकी सब भार्या ऐसे शोच करने लगीं जैसे हरिणी हरिणको शोच करती है॥२॥हे महाबाहो ! हम हताश और हतबांधव

तौ जितारी जितक्रोधौ चिरविप्रोषितौ व्रजे ॥ स्वपितुर्भवनं वीरौ जग्मतुर्हृष्टमानसौ ॥९३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसवधो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ भर्तारं पतितं दृष्ट्वा क्षीणपुण्यमिव ग्रहम् ॥ कंसपत्न्यो हतं कंसं समन्तात्पर्यवारयन् ॥१॥ तं महीशयने सुप्तं क्षितिनाथं गतायुषम् ॥ भार्यास्स्म दृष्ट्वा शोचन्ति मृग्यो मृगपतिं यथा ॥ २ ॥ हा हतास्स्म महाबाहो हताशा हतबान्धवाः ॥ वीरपत्न्यो हते वीरे त्वयि वीरव्रतप्रिये ॥ ३ ॥ इमामवस्थां पश्यन्त्यः पश्चिमां तव नैष्ठिकीम् ॥ कृपणं राजशार्दूल विलपामस्सबान्धवाः ॥ ४ ॥ छिन्नमूलास्स्म संवृत्ताः परित्यक्तास्त्वया विभो ॥ त्वयि पञ्चत्वमापन्ने नाथेऽस्माकं महाबले ॥ ५ ॥ को नः कोपपरीताङ्गी रतिसंसर्गलालसाः ॥ लता इव विचेष्टन्तीश्शयनीयानि नेष्यति ॥ ६ ॥ इदं ते सदृशं सौम्य हृद्यनिश्वाससमारुतम् ॥ दहत्यर्को मुखं कान्तं निस्तोयमिव पङ्कजम् ॥ ७ ॥

हो गई हैं; हे वीरव्रतप्रिय वीर ! तुम्हारे मरनेसे हम अनाथ हो गईं॥३॥यह हम तुम्हारी पिछली इस अवस्थाको देखती हुई;हे राजशार्दूल ! हम दीनोंके समान विलाप करती हैं ॥ ४ ॥ हे प्रभो ! हम आपके त्यागनेसे छिन्नमूल वृक्षके समान हैं. जो कि आप हमारे स्वामी पंचतत्वको प्राप्त हो गये॥५॥ऐसा कौन है जो कोपसे युक्त रतिसंगमकी लालसावाली हम स्त्रीजनोंको लताके समान चेष्टा करनेवालियोंको शयन स्थानमें ले जायगा॥६॥ हे सौम्य! यह तुम्हारे हृदयकी निश्वास पवन जो सुन्दर और कान्तिमान है.जहांसे निकलती थी उस तुम्हारे मुखको सूर्य जलरहित कमलके समान

दग्ध करता है॥७॥यह तुम्हारे कुण्डलोंसे शून्य कान शोभित नहीं होते.हे सदा कुण्डल धारण करनेहारे! आज तुम्हारा शिर धरणीमें लीन हो रहा है॥८॥हे वीर ! सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित वह तुम्हारा मुकुट कहां है. जिससे आप सूर्यके समान लक्ष्मीको धारण करते थे ॥ ९ ॥ इन्हीं स्त्रियोंसे तुम्हारा अन्तःपुर शोभित था अब तुम्हारे लोकान्तर जाने पर यह दीन क्या करेंगी॥१०॥निश्चय यह साध्वी स्त्रियें प्रिय भोगोंसे वंचितहुई, श्रेष्ठ स्त्रियोंका पति नहीं त्याग करते सो तुम हमको त्याग करे जाते हो ॥११॥अहो काल बडा बली है. जिसने अपने कर्मसे शत्रुओंके काल स्वरूप

इमे ते श्रवणे शून्ये न शोभेते विकुण्डले ॥ शिरोधरायां संलीने सततं कुण्डलप्रिये ॥८॥ क्व ते स मुकुटो वीर सर्वरत्नविभूषितः ॥ अत्यर्थं शिरसो लक्ष्मीं यो दधारार्कसप्रभाम् ॥ ९ ॥ अनेन हि कलत्रेण तवान्तःपुरशोभिना ॥ कथं दीनेन कर्त्तव्यं त्वयि लोकान्तरं गते ॥१०॥ ननु नाम स्त्रियास्साध्व्यः प्रियभोगेष्ववञ्चिताः ॥ पतीनामपरित्याज्यास्स त्वं नस्त्यज्य गच्छसि ॥११॥ अहो कालो महावीर्यो येन पर्यायकर्मणा ॥ कालतुल्यस्सपत्नानां त्वं क्षिप्रमपनीयसे ॥ १२ ॥ वयं दुःखेष्वनुचितास्सुखेष्वेव त्वयैधिताः ॥ कथं वत्स्याम विधवा नाथ कार्पण्यमाश्रिताः ॥१३॥ स्त्रीणां चारित्रलुब्धानां पतिरेकः परा गतिः ॥ त्वं हि नस्सा गतिश्छिन्ना कृतान्तेन बलीयसा ॥१४॥ वैधव्येनाभिभूतास्स्मः शोकसंतप्तमानसाः ॥ रोदितव्यह्रदे मग्नाः क्व गच्छामस्त्वया विना ॥ १५ ॥ सह त्वया गतः कालस्त्वदङ्के क्रीडितं कृतम् ॥ क्षणेन त्वद्विहीनास्स्म अनित्या हि नृणां गतिः ॥ १६ ॥

तुमको ग्रहण कर लिया ॥१२॥ तुमने हमको सुख देकर बढाया था; इससे हम दुःखके योग्य नहीं हैं.हे नाथ ! सुखको प्राप्त होकर फिर हम दुःखी हो किस प्रकार विधवा होकर रहेंगी ॥ १३ ॥ श्रेष्ठाचारवाली स्त्रियोंकी एक पतिही परमगति है सो तुम हमारे गति थे. सो बली कृतान्तने छेदन कर दिया॥१४॥हम विधवापनसे तिरस्कृत हो शोकसे संताप मनयुक्त हो गई हैं, दुःखरूपी ह्रदमें पडी रोती हैं तुम्हारे विना कहाँ जांय ॥१५॥ काल तुम्हारे साथ गया जो तुम्हारे अंकमें क्रीडा करता था.हम क्षण मात्रमें तुमसे विहीन हो गई,इससे विदित होता है कि मनुष्योंकी गति अनित्य है॥१६॥

हे मान देनेहारे! तुम्हार मृतक होनेसे हम महाकष्टमें पतित हैं. हम सब पापकारिणी हैं जो विधवापनको प्राप्त हो गई ॥ १७ ॥ तुमने स्वर्गके सुखोंसे रतिकी इच्छासे हमारा आदर किया. हम सब कामसे तुम्होरही वशीभूत हैं. तुम हमें छोडकर कहां जाते हो ॥१८॥ हे देवताओंके समान! तुम हम अनाथोंके नाथ हो. हे जगन्नाथ! हे स्वामी! हमको उत्तर दो ॥ १९ ॥ इस प्रकार विलाप करते और बांधवोंके समझानेसे तुम्हारा गमन हमको दारुण दीखता है ॥ २० ॥ हे स्वामिन्! हम जानती हैं तुमको परलोककी स्त्री भली लगीं जो तुम इस घरको त्याग वहांको चले

अहो बलविहीनास्स्म विपन्ने त्वयि मानद ॥ एकदुष्कृतकारिण्यस्सर्वा वैधव्यलक्षणाः ॥ १७ ॥ त्वया स्वर्गप्रतिच्छन्दैर्लालितास्स्म रतिप्रियाः ॥ त्वयि कामवशास्सर्वाः स नस्त्यज्य क्व गच्छसि ॥ १८ ॥ अस्माकं त्वमनाथानां नाथो ह्यसि सुरोपम ॥ आसां विलपमानानां कुररीणामिव प्रभो ॥ प्रतिवाक्यं जगन्नाथ दातुमर्हसि मानद ॥ १९ ॥ एवमार्तकलत्रस्य शाम्यमानेषु बन्धुषु ॥ गमनं ते महाभाग दारुणं प्रतिभाति नः ॥ २० ॥ नूनं कान्ततरा कान्त परलोके वरस्त्रियः ॥ यतस्त्वं प्रस्थितो वीर विहायेमं गृहे जनम् ॥ २१ ॥ किं नु ते कारणं वीर भार्यास्वेतासु भूरिद ॥ आर्तनादं रुदन्तीषु यन्मोहान्नावबुध्यसे ॥ २२ ॥ अहो निष्करुणा यात्रा नराणामौर्ध्वदेहिकी ॥ यत्परित्यज्य दारान्स्वान्निरपेक्षा व्रजन्ति हि ॥ २३ ॥ अपतित्वं स्त्रियाश्श्रेयो न तु शूरः पतिः स्त्रियाः ॥ स्वर्गस्त्रीणां प्रियाश्शूरास्तेषामपि च ताः प्रियाः ॥ २४ ॥ अहो क्षिप्रमदृश्येन नयता त्वां रणप्रियम् ॥ प्रहृतं नः कृतान्तेन सर्वासामन्तरात्मसु ॥ २५ ॥

गये ॥२१॥ हे दान देनेहारे वीर! हम तुम्हारी अनेक स्त्री हैं इनपर तुमको दया नहीं आती.जो हम दुःखी हो रुदन करती हैं और तुम मोहसे नहीं जानते ॥२२॥ अहो! मनुष्योंकी परलोकयात्रा महाकठोर है.जो अपनी स्त्रियोंतकको छोड निरपेक्ष हो जाते हैं ॥ २३ ॥ अवश्यही स्त्रियोंके पतिका शूर वीर होना श्रेष्ठ नहीं इससे पति न होना अच्छा है स्वर्गकी स्त्रियोंको शूर प्यारे हैं और शूरोंको वह स्त्री प्यारी हैं॥२४॥दैवने तुमको शीघ्रही रणमें प्राप्त कर दिया है और बडे सामन्त आदिकोंके सन्मुख कृतान्तने हरण किया ॥ २५ ॥

बली जरासंधका बल नष्ट कर यक्षको संग्राममें जीतकर तुम पृथ्वीतलमें मनुष्यसे कैसे मृतक हो गये ॥ २६ ॥ बाणोंके द्वारा तुमने इन्द्रको संग्राममें जीत लिया. जब देवताओंको युद्धमें जीता तौ मनुष्योंसे किस प्रकार हत हुए ॥ २७ ॥ तुम्हारे वा अपने अक्षोभ्य बाणवर्षासे वरुणके सम्पूर्ण रत्न हरण कर लिये ॥२८॥ और जिस समय कि मेघोंसे जल थोडा वर्षता था. आपने उस समय अपने बाणोंके प्रहारसे मेघोंको जीतकर वर्षा प्रवृत्त करी ॥२९॥ सम्पूर्ण राजा आपके प्रतापसे अवनत हैं और अनेक प्रकारके रत्न और वस्त्र तुमको भेजते हैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार देवताओंकी समान आप कि जिसका

हत्वा जरासन्धबलं जित्वा यक्षांश्च संयुगे ॥ कथं मानुषमात्रेण हतस्त्वं जगतीतले ॥२६॥ इन्द्रेण सह संग्रामं कृत्वा सायकविग्रहम् ॥ अमर्त्यैरजितो युद्धे मर्त्येनासि कथं हतः ॥ २७॥ त्वया सागरमक्षोभ्यं विक्षोभ्यं शरवृष्टिभिः ॥ रत्नसर्वस्वहरणं जित्वा पाशधरं कृतम् ॥ २८ ॥ त्वया पौरजनस्यार्थे मन्दं वर्षति वासवे ॥ सायकैर्जलदान् जित्वा बलाद्वर्षं प्रवर्तितम् ॥ २९ ॥ प्रतापावनतास्सर्वे तव तिष्ठन्ति पार्थिवाः ॥ प्रेषयन्तो वरार्हाणि रत्नान्याच्छादनानि च ॥ ३० ॥ तवैवं देवकल्पस्य दृष्टवीर्यस्य शत्रुभिः ॥ कथं प्राणान्तकं घोरमीदृशं भयमागतम् ॥ ३१ ॥ प्राप्तास्स्मो विधवाशब्दं त्वयि नाथे निपातिते ॥ अप्रमत्ताः प्रमत्तेन कृतान्तेन निराकृताः ॥ ३२ ॥ यद्येवं नाथ गन्तव्यं यदि वा विस्मृता वयम् ॥ वाङ्मात्रेणापि यामीति वक्तव्ये कः परिश्रमः ॥ ३३ ॥ प्रसीद नाथ भीतास्स्म पादौ ते याम मूर्द्धभिः ॥ अलं दूरप्रवासेन निवर्तस्व नराधिप ॥ ३४ ॥ अहो वीर कथं शेषे निषण्णस्तृणपांसुषु ॥ शयानस्य हि ते भूमौ कस्मान्नोद्विजते वपुः ॥ ३५ ॥

बल पूर्णतासे शत्रुओंने देखा है. इस प्रकार घोर प्राणान्तक भय आपको कहांसे आकर प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ हे नाथ ! आपके मरनेपर हमको विधवा शब्द आकर प्राप्त हुआ है हम अप्रमत्तोंका पापी कालने निराकरण कर दिया ॥ ३२ ॥ हे नाथ ! जो आप इस प्रकार चले गये और हमको निराकरण कर दिया आप सम्पूर्णही हमको भूल गये यदि आप वाणीमात्रसेभी कह देते कि मैं जाता हूं, तौ इसमें क्या परिश्रम होता ॥ ३३ ॥ हे नाथ ! प्रसन्न हो. हम भीत होकर आपके चरणोंमें पडती हैं. हे राजन् ! दूर मत जाइये आप लौट आइये ॥ ३४ ॥ हे वीर ! तृण धूरिमें पडे हुए आप कैसे

शयन करते हो. पृथ्वीमें पडनेसे तुम्हारा शरीर क्यों नहीं उद्वेजित होता॥३५॥यह किसने तर्करहित हमको सोनेका प्रहार दिया, यह नारियोंको महा-कष्ट किसने किया ॥ ३६ ॥ जीती हुई स्त्रियोंको यह रोनेका दुःख है और जो हम तुम्हारे साथ चली जातीं तो क्यों रोतीं ॥ ३७ ॥ इसी समय महादीन हो कांपती हुई कंसकी माता कहां है मेरा लाल, कहां है मेरा पुत्र; इस प्रकार अत्यन्त रोने लगी ॥ ३८ ॥ उसने मरे हुए अपने पुत्रको कान्तिरहित चन्द्रमाके समान देखा तब वह विदीर्ण हृदय हो वारंवार भ्रमण करती हुई॥३९॥ पुत्रको देखकर हाय मैं मरी, ऐसा शब्द करती हुई

केन सुप्तप्रहारोऽयं दत्तोऽस्माकमतर्कितः ॥ प्रदत्तं केन सर्वासु नारीष्वेवं सुदारुणम् ॥३६॥ रुदितानुद्धशयो नार्या जीवन्त्याः परिदेवनम् ॥ किं वयं सति गन्तव्ये सह भर्त्रा रुदामहे ॥ ३७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे दीना कंसमाता प्रवेपती ॥ क्व मे वत्स क्व मे पुत्र इति रोरूयती भृशम् ॥ ३८ ॥ सापश्यन्निहतं पुत्रं निष्प्रभं शशिनं यथा ॥ हृदयेन विदीर्णेन भ्राम्यमाण पुनः पुनः ॥३९॥ पुत्रं समभिवक्षिन्ती हा हतास्मीति वाशती ॥ स्नुषाणामार्तनादेन विललाप रुरोद च ॥ ४० ॥ सा तस्य वदनं दीनमुत्सङ्गे पुत्र-गृद्धिनी ॥ कृत्वा पुत्रेति कारुण्यं विललापार्तया गिरा ॥ ४१ ॥ पुत्र शूरव्रते युक्त ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धन ॥ किमिदं त्वरितं वत्स प्रस्थानं कृतवानसि ॥ ४२ ॥ प्रसुप्तश्चातिविवृते किं पुत्र नियमं विना ॥ वत्स मैवंविधा भूमौ शेरते कृतलक्षणाः ॥ ४३ ॥ राव-णेन पुरा गीतश्लोकोऽयं साधुसंमत ॥ बलज्येष्ठेन लोकेषु राक्षसाना समागमे ॥ ४४ ॥ एवमूर्जितवीर्यस्य मम देवनिघातिनः ॥ बान्धवेभ्यो भयं घोरं दुर्निवार्यं भविष्यति ॥ ४५ ॥

और बहुओंका शब्द सुन विलाप कर रुदन करने लगी॥४०॥और वह पुत्रवत्सला अपने उस पुत्रके शिरको गोदीमें धर पुत्र पुत्र कह आर्त वाणीसे विलाप करने लगी॥४१॥ हे पुत्र ! तुम बडे शूर और ज्ञातिके लोगोंके आनन्द बढानेहारे थे. हे वत्स ! किस प्रकार आपने इतना शीघ्र प्रस्थान किया ॥४२॥ हे लाल ! क्या नियमके विना तुम इस प्रकार पृथ्वीमें शयन कर गये. हे पुत्र! लक्षणवान् पुरुष कभी इस प्रकार पृथ्वीमें शयन नहीं करते ॥४३॥ रावणने पूर्वकालमें साधुसम्मत अच्छा श्लोक कहा है.बलमें अधिक राक्षसोंके समाजमें यह वार्ता कही थी कि॥४४॥देवताओंकोभी

परास्त करनेहारे महाबली भुजकोभी यदि भय होगा तो वह दुर्निवार भय बांधवोंसेही होगा ॥ ४५ ॥ इसी प्रकारसे जातीमें लुब्ध बुद्धिमान् मेरे पुत्रको जातीवालोंसेही शरीरान्त करनेवाला भय प्राप्त हुआ है ॥ ४६ ॥ इस प्रकारसे वह चेतरहित मूर्छित अपने पति उग्रसेनसे वत्सरहित हरणीके समान रोती हुई वचन कहने लगी ॥ ४७ ॥ हे जनेश्वर ! शुद्धात्मा राजन् ! आओ और अपने पुत्रको देखो. यह वज्रसे हत हुए पर्वतके समान पृथ्वीमें पडा है ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! अब इसकी और्ध्वदेहिक क्रिया कीजिये. क्यों कि

तथैव ज्ञातिलुब्धस्य मम पुत्रस्य धीमतः ॥ ज्ञातिभ्यो भयमुत्पन्नं शरीरान्तकरं महत् ॥४६॥ सा पतिं भूपतिं वृद्धमुग्रसेनं विचेतसम् ॥ उवाच रुदती वाक्यं विवत्सा हरिणी यथा ॥ ४७ ॥ एह्येहि राजञ्छुद्धात्मन्पश्य पुत्रं जनेश्वरम् ॥ शयानं वीरशयने वज्राहतमिवाचलम् ॥ ४८ ॥ अस्य कुर्मो महाराज निर्याणसदृशीं क्रियाम् ॥ प्रेतत्वमुपपन्नस्य गतस्य यमसादनम् ॥ ४९ ॥ वीरभोग्यानि राज्यानि वयं चापि पराजिताः ॥ गच्छ विज्ञाप्यतां कृष्ण कंस सत्कारकारणात् ॥५०॥ मरणान्तानि वैराणि शान्ते शान्तिर्भविष्यति ॥ प्रेतकार्याणि कार्याणि मृतः किमपराध्यते ॥ ५१ ॥ एवमुक्त्वा पतिं भोजं केशानारुज्य दुःखिता ॥ पुत्रस्य मुखमीक्षन्ती विललापैव सा भृशम्॥५२॥ इमास्ते किं करिष्यन्ति भार्या राजन्सुखोषिताः ॥ त्वां पतिं सुपतिं प्राप्य या विपन्नमनोरथाः ॥ ५३ ॥ इमं ते पितरं वृद्धं कृष्णस्य वशवर्तिनम् ॥ कथं द्रक्ष्यामि शुष्यन्तं कासारसलिलं यथा ॥ ५४ ॥

यमके स्थानमें गये हुए इस राजाको प्रेतत्व प्राप्त हुआ है॥४९॥शूरके भोगने योग्य राज्य और हम सब पराजित हो गये.सो तुम शीघ्र जाय कंसके सत्कारके निमित्त कृष्णसे कहो ॥५०॥ महात्माओंके वैर मरणतक होते हैं,पीछे शान्त हो जातेहैं. प्रेतकार्य करने चाहिये कारण कि मृतकने क्या अपराध किया है ॥५१॥ इस प्रकार अपने पतिसे कह दुःखी हो वह बाल नोचने लगी और पुत्रका मुख देख महाविलाप करने लगी ॥५२॥ और बोली; हे राजन् ! यह तुम्हारी सुखयोग्य भार्या क्या करेंगी जो तुमसे श्रेष्ठ पतिको प्राप्त हो मनोरथहीन हो गईं ॥५३॥ और मैं तुम्हारे बूढे पिताको

कृष्णके वशवर्ती किस प्रकार देखूंगी. यह हड़के जलके समान सूख जायगा ॥५४॥ हे पुत्र ! मैं तेरी माता हूं, तू मुझसे क्यों नहीं बोलता है; तू अपने प्रियजनोंको छोडकर दूर चला गया ॥५५॥ हे वीर ! मुझ मंदभाग्यवालीके पुत्रको कालने उठा लिया. हे पुत्र ! तुम नीतिवान् होकर कालके वशीभूत हो गये ॥५६॥ दानमानके ग्रहण करनेहारे तुम्हारे गुणोंसे तृप्त हुए तुम्हारे भृत्योंके कुलके कुल रुदन करते हैं ॥५७॥हे महाबली दीर्घभुज नरश्रेष्ठ ! उठो दीन जन और अन्तःपुरकी पालना कीजिये ॥५८॥ इस प्रकार महाविलाप करती हुई. कंसकी स्त्रियोंको महाविलाप करते करते संध्या हो गई सूर्यमें

अहं ते जननी पुत्र किमर्थं नाभिभाषसे ॥ प्रस्थितो दीर्घमध्वानं परित्यज्य प्रियं जनम् ॥५५॥ अहो. वीराल्पभाग्यायाः कृतान्तेनाभिवर्तिना ॥ आच्छिद्य मम संदायो नीयसे नयकोविदः ॥५६॥ दानमानगृहीतानि तृप्तान्येतानि तैर्गुणैः॥ रुदन्ति तव भृत्यानां कुलानि कुलयूथप ॥५७॥ उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो महाबल॥त्राहि दीनं जनं सर्वं पुरमन्तःपुरं यथा ॥५८॥ रुदतीनां भृशार्तानां कंसस्त्रीणां सुविस्तरम् ॥ जगामास्तं दिनकरः संध्यारागेण रञ्जितः ॥५९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु ह० कंसस्त्रीविलापो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ उग्रसेनस्तु कृष्णस्य समीपं दुःखितो ययौ ॥ पुत्रशोकाभिसंतप्तो विषपीत इव श्वसन् ॥१॥ स ददर्श गृहे कृष्णं यादवैः परिवारितम् ॥ पश्चानुतापाद्ध्यायन्तं कंसस्य निधनाविलम् ॥ २ ॥ कंसनारीविलापांश्च श्रुत्वा स करुणान्बहून् ॥ गर्हमाणं तथात्मानं तस्मिन्यादवसंसदि ॥ ३ ॥ अहो मयातिबाल्येन रोषाद्दोषानुवर्तिना ॥ वैधव्यं स्त्रीसहस्राणां कंसस्यास्य वधे कृतम् ॥ ४ ॥

ललाई छा गई ॥५९॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णु पर्वणि भाषायां एकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥ वैशंपायन बोले; यह वचन सुन महादुःखी हो उग्रसेन श्रीकृष्णके निकट गये और पुत्रशोकसे संतप्त और महाभयभीत हो, विष पियेके समान दुःखके स्वास लेते हुए यादवोंसे घिरे हुए श्रीकृष्णको कंसको मारकर पछताते हुए ॥१॥२॥ कंसकी स्त्रियोंके करुणा भरे अनेक विलाप सुनकर यादवोंकी सभामें अपनी निन्दा करते हुए॥३॥कि अहोमैंने बालअवस्थाकी

चपलतासे रोष और द्वेष करनेवाले कंसको मारकर सहस्रों स्त्रियोंको विधवा किया ॥४॥ स्त्रियोंमें करुणा स्वाभाविकही होती है, इसी प्रकार स्वामीके मरनेसे इन स्त्रियोंने मुझेभी शोकित किया है,स्त्रियोंपर तो प्राकृत पुरुषकोभी दया आ जाती है॥५॥इस कारण इनके वचन सुनकर मुझेभी शोक है. कालकी गति नहीं जाननेहारी स्त्रियां रुदन करती हैं अथवा स्त्रियोंके विलापको काल नहीं जानता ॥ ६ ॥ पहले तो मैंने कंसका मारना अच्छा जाना था कारण कि वह सत्पुरुषोंको उद्वेजित करनेहारा और उनकी पापमें प्रीति थी॥७॥लोकमें निन्दित आचरण करनेवाले हीनवीर्य कठोर बुद्धिहीनका मरनाही श्रेष्ठ है और द्वेषीका जीवन जाना श्रेष्ठ नहीं॥८॥यह कंस पापी और महात्माओंको भी अनिष्टरूप था और धिक्कार शब्दसे पतितहुए उस कंसपर

कारुण्यं खलु नारीषु प्राकृतस्यापि जायते ॥ एवमार्तं रुदन्तीषु मया भर्तरि पातिते ॥ ५ ॥ परिदेवितमात्रेण शोकः खलु विधीयते ॥ कृतान्तस्यानभिज्ञानां स्त्रीणां कारुण्यसंभवः ॥ ६ ॥ कंसस्य हि वधश्श्रेयान्प्रागेवाभिमतो मम ॥ सतामुद्वेजनीयस्य पापेष्वभिरतस्य च ॥ ७ ॥ लोके पतितवृत्तस्य परुषस्याल्पमेधसः ॥ अक्लिष्टं मरणं श्रेयो न विद्विष्टस्य जीवितम् ॥ ८ ॥ कंसः पापपरश्चैव साधूनामप्यसंमतः ॥ धिक्शब्दपतितश्चैव जीविते चास्य का दया ॥९॥ स्वर्गे तपोभृतां वासः फलं पुण्यस्य कर्मणः ॥ इहापि यशसा युक्तस्स्वर्गस्थैरवधार्यते ॥ १० ॥ यदि स्युर्निर्वृता लोकास्स्युश्च धर्मपराः प्रजाः ॥ नरा धर्मप्रवृत्ताश्च न राज्ञामनयस्स्पृशेत् ॥ ११ ॥ निग्रहे दुष्टवृत्तीनां कृतान्तः कुरुते फलम् ॥ इष्टधर्मेषु लोकेषु कर्तव्यं पारलौकिकम् ॥ १२ ॥ अतीव देवा रक्षन्ति नरं धर्मपरायणम् ॥ कर्तारस्सुलभा लोके दुष्कृतस्य हि कर्मणः ॥ १३ ॥

अब क्या दया करना॥ ९ ॥ पुण्यकर्मोंके फलसे तपस्वियोंको स्वर्गमें वास मिलता है, यहांभी यश और उसकी धारणा स्वर्गके समान गिनी जाती है ॥१०॥ और जो निवृत्त मनुष्य अपने धर्ममें तत्पर हो और श्रेष्ठ कर्म करता है. उस राजाको अनीति स्पर्श नहीं कर सकती॥ ११ ॥ युद्धमें क्रूर वृत्तिवाले पुरुषोंको काल मार देता है, इस कारण अपने इष्ट धर्ममें प्रवृत्त हुए पुरुषोंको पारलौकिक कर्म करना चाहिये ॥ १२ ॥ धर्मात्मा मनुष्यकी रक्षा देवता करते हैं संसारमें खोटे कर्म करनेवाले सुलभ हैं ॥ १३ ॥

इससे जो मैंने कंसको मारा यह अच्छाही किया है, यह मैंने विपरीत कर्मका मूल छेदन किया है ॥ १४ ॥ इस कारण इन सब शोकित स्त्रियोंको समझाओ, इस पुरीके मनुष्य और श्रेणीभी सब शान्त करनी चाहिये ॥ १५ ॥ श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर नीचेको मुख किये कंसके पापसे शंकित हो उग्रसेन यदुवंशियोंको लेकर आये ॥ १६ ॥ और सभाके बीचमें कमलनयन श्रीकृष्णसे संदिग्ध भरी वाणीसे बोला ॥ १७ ॥ आपने क्रोधकर यह मेरा पुत्र यमलोकमें पहुँचा दिया, इससे तुम्हारी पृथ्वीमें बडी विख्यात कीर्ति होगी ॥ १८ ॥ आपने श्रेष्ठ पुरुषोंमें अपना माहात्म्य स्थापित कर शत्रु-

हतस्सोऽयं मया कंसस्साध्वेतदवगम्यताम् ॥ मूलच्छेदकृतस्तस्य विपरीतस्य कर्मणः ॥ १४ ॥ तदेष सान्त्व्यतां सर्वश्शोकार्तः प्रमदाजनः ॥ पौराश्च पुर्यां श्रेण्यश्च सान्त्व्यन्तां सर्व एव हि ॥ १५ ॥ एवं ब्रुवति गोविन्दे विवेशावनताननः ॥ उग्रसेनो यदून्गृह्य पुत्रकिल्बिषशङ्कितः ॥ १६ ॥ स कृष्णं पुण्डरीकाक्षमुवाच यदुसंसदि ॥ बाष्पसंदिग्धया वाचा दीनया सज्जमानया ॥ १७ ॥ पुत्रो निर्यापितः क्रोधान्नीतो याम्यां दिशं रिपुः ॥ स्वधर्माधिगता कीर्तिर्नाम विश्रावितं भुवि ॥ १८ ॥ स्थापितं सत्सु माहात्म्यं शङ्कितः रिपवः कृताः ॥ स्थापितो यादवो वंशो गर्वितास्सुहृदः कृताः ॥ १९ ॥ सामन्तेषु नरेन्द्रेषु प्रतापस्ते प्रकाशितः ॥ मित्राणि त्वां भजिष्यन्ति संश्रयिष्यन्ति पार्थिवाः ॥ २० ॥ प्रकृतयोऽनुयास्यन्ति स्तोष्यन्ति त्वां द्विजातयः ॥ संधिविग्रहमुख्यास्त्वां प्रणमिष्यन्ति मन्त्रिणः ॥२१॥ हस्त्यश्वरथसंपूर्णं पदातिगणसंकुलम् ॥ प्रतिगृहाण कृष्णेदं कंसस्य बलमव्ययम् ॥ २२ ॥ धनं धान्यं च यत्किंचिद्रत्नान्याच्छादनानि च ॥ प्रतीच्छन्तु नियुक्ता वै त्वदीयाः कृष्ण पूरुषाः ॥ २३ ॥

ओंको शंकित किया यादववंश स्थापित कर सुहृदोंको गर्वित किया ॥ १९ ॥ सामन्त और नरेन्द्रोंमें आपका प्रताप फैल गया. मित्रमण्डली तुम्हारा आश्रय करेगी, राजा अनुकूल होंगे ॥ २० ॥ प्रजा तुम्हारी अनुगामिनी और ब्राह्मण तुमको संतुष्ट करेंगे. संधि विग्रहके जाननेवाले श्रेष्ठ मंत्री तुमको प्रणाम करेंगे ॥ २१ ॥ हाथी घोडे रथ पैदलोंसे युक्त इस कंसकी सेनाको हे कृष्ण ! आप ग्रहण कीजिये ॥ २२ ॥ जो धन धान्य रत्न वस्त्रादिक हैं हे

कृष्ण ! यह पुरुषभी तुम्हारे हैं, इनको ग्रहण कीजिये. कारण कि वह सब तुम्हारेही हैं ॥ २३ ॥ स्त्री हिरण्य (सुवर्ण) वस्त्र जो कुछ औरभी वस्तु है, सो आपका है हे कृष्ण ! इस प्रकार करनेसे यह सब विरोध समाप्त हो जायगा ॥ २४ ॥ हे शत्रुसूदन ! पृथ्वीमें यादवोंकी प्रतिष्ठासे हे यदुनन्दन ! यदुवंशियोंकी गतागति आपही हैं ॥ २५ ॥ हे बहुतभाषी चतुर कृष्ण ! सुनिये, इस अशुभकर्मा कंसके तुम्हारे क्रोधसे दग्ध होनेपर ॥ २६ ॥ हे गोविन्द ! तुम्हारी कृपा और आज्ञासे हम स्थानमें प्रेतकार्य करेंगे, हे गोविन्द ! इस मृतक राजाका और्ध्वदेहिक कर्म करेंगे ॥ २७ ॥ तब मैं यह कार्य कर रानी

स्त्रियो हिरण्यं यानानि यदन्यद्वसु किंचन ॥ एवं हि विहिते योगे पर्याप्ते कृष्ण विग्रहे ॥ २४ ॥ प्रतिष्ठितायां मेदिन्यां यदूनां शत्रुसूदन ॥ त्वं गतिश्चागतिश्चैव यदूनां यदुनन्दन ॥ २५ ॥ शृणुष्व वदतां वीर कृपणानामिदं वचः ॥ अस्य त्वत्कोपदग्धस्य कंसस्याशुभकर्मणः ॥ २६ ॥ तव प्रसादाद्गोविन्द प्रेतकार्यं क्रियेत ह ॥ तस्य कृत्वा नरेन्द्रस्य विपन्नस्यौर्ध्वदेहिकम् ॥ २७ ॥ सस्नुषोऽहं सभार्यश्च चरिष्यामि मृगैस्सह ॥ प्रेतसत्कारमात्रेण कृते बान्धवकर्मणि ॥ २८ ॥ आनृण्यं लौकिकं कृष्ण गताः किल भवन्ति हि ॥ तस्याग्निं पश्चिमं कृत्वा चितिस्थाने विधानतः ॥ तोयप्रदानमात्रेण कंसस्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥ २९ ॥ एतत्ते कृष्ण विज्ञाप्य स्नेहोऽत्र मयि युज्यताम् ॥ प्राप्नोति सुगतिं तत्र कृपणः पश्चिमां क्रियाम् ॥ ३० ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णः परमविस्मितः ॥ प्रत्युवाचोग्रसेनं वै सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥ ३१ ॥ कालयुक्तमिदं तात तवैतद्यत्प्रभाषितम् ॥ सदृशं राजशार्दूल वृत्तस्य च कुलस्य च ॥ ३२ ॥

और अपनी पुत्रवधूके साथ वनमें वास करूंगा, मृगोंके साथ रहूंगा, प्रेतके सत्कारमात्र बांधव कृत्य करके ॥ २८ ॥ हे कृष्ण ! लौकिक पुरुष उऋण हो जाते हैं. श्मशानमें विधिपूर्वक उसका अग्निसंस्कार करके जलमात्रके प्रदानसे मैं उऋण हो जाऊंगा ॥ २९ ॥ हे कृष्ण ! यही मेरी विज्ञप्ति है, इसमें तुझको स्नेह करना चाहिये. इस क्रियाके करनेसे वह कृपण कंस श्रेष्ठगतिको प्राप्त होगा ॥ ३० ॥ उग्रसेनके यह वचन सुन कृष्ण बडे विस्मित हुए और समझाते हुए उग्रसेनसे बोले ॥ ३१ ॥ हे तात ! जो यह तुमने कहा है यह समयके योग्यही है. हे राजश्रेष्ठ ! यह तुम्हारे चरित्र और कुलके योग्यही है ॥ ३२ ॥

जो कि तुम क्रूर काल बीचनेपर ऐसा कहते हो, इससे प्रेत होनेपरभी कंस सत्कारके योग्य है ॥ ३३ ॥ तुम्हारा जन्म बडे कुलमें है और तुमने वेदोंकोभी जान लिया है. फिर आप क्या जानते न होंगे कि होनहार नहीं मिट सकती ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! स्थावर जंगम प्राणियोंका पूर्वजन्मका किया कर्म समयपर पकता है ॥ ३५ ॥ वेद पढे अर्थवान् दाता प्रियदर्शन ब्राह्मणोंके माननेवाले नीतिसम्पन्न दीनोंपर कृपा करनेहारे ॥ ३६ ॥ हे तात ! लोकपालकी समान बली, महेन्द्रकी समान विक्रम करनेवाले राजोंकोभी धर्मराज अपने स्थानमें ले जाते हैं ॥ ३७ ॥ धर्मात्मा, सब भावके

यत्त्वमेवंविधो ब्रूषे गतेऽर्थे दुरतिक्रमे ॥ प्राप्स्यते नृप सत्कारं कंसः प्रेतगतोऽपि सन् ॥ ३३ ॥ कुले महति ते जन्म वेदान्विदितवानसि ॥ कथं न ज्ञायते तात नियतिर्दुरतिक्रमा ॥ ३४ ॥ स्थावराणां च भूतानां जङ्गमानां च पार्थिव ॥ पूर्वजन्मकृतं कर्म कालेन परिपच्यते ॥ ३५ ॥ श्रुतवन्तोऽर्थवन्तश्च दातारः प्रियदर्शनाः ॥ ब्रह्मण्या नयसंपन्ना दीनानुग्रहकारिणः ॥ ३६ ॥ लोकपालसमास्तात महेन्द्रसमविक्रमाः ॥ क्षितिपालाः कृतान्तेन नयिन्ते नृपसत्तम ॥ ३७ ॥ धार्मिकास्सर्वभावज्ञाः प्रजापालनतत्पराः ॥ क्षत्रधर्मपरा दान्ताः कालेन निधनं गताः ॥ ३८ ॥ स्वयमात्मकृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ प्राप्ते काले तु तत्कर्म दृश्यते सर्वदेहिनाम् ॥ ३९ ॥ एषा ह्यन्तर्हिता माया दुर्विज्ञेया सुरैरपि ॥ यथायं मुह्यते लोको ह्यत्र कर्मैव कारणम् ॥ ४० ॥ कालेनाभिहतः कंसः पूर्वकर्मप्रचोदितः ॥ नह्यहं कारणं तत्र कालः कर्म च कारणम् ॥ ४१ ॥ सूर्यसोममयं तात कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम् ॥ कालेन निधनं गत्वा कालेनैव च जायते ॥ ४२ ॥

जाननेवाले, प्रजा पालनेमें तत्पर, क्षत्रधर्मपरायण, चतुर महात्माभी कालके वशीभूत हुए हैं ॥ ३८ ॥ जो कुछ शुभ या अशुभ कर्म किया है समयपर वह सब कर्म देहधारियोंको दीखता है ॥ ३९ ॥ यह देवताओंकोभी जाननेमें दुरूह भगवान्की माया अन्तर्हित है, जो कि इसमें प्राणी मोहित होते हैं. इसमें कर्महीं कारण है ॥ ४० ॥ पूर्वकर्मानुसार कालसेही कंस मारा गया है, इसमें मैं कारण नहीं कालही कारण है ॥ ४१ ॥ हे तात ! यह सब स्थावर, जंगम चन्द्र सूर्यमय है, समयसेही नष्ट होकर फिर समयसेही उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ४२ ॥

यह कालही सब प्राणियोंपर विग्रह और अनुग्रह करता है, इस कारण सब प्राणी कालके वश हैं ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र कंस तो अपने दोषसेही नष्ट हो गया, मैं कारण नहीं, इसमें कालही कारण है॥४४॥अथवा मैंही कारण हूंगा इसमें संदेह नहीं दूसरेके कर्मके अधीन है अकारण क्या कर सकता है॥४५॥ हे राजन् ! काल महाबली है. इसकी गति दुर्ज्ञेय है, जिस कालकी गतिको पर अवर और विशेषके जाननेवाले समदर्शी प्राप्त होते हैं ॥४६॥ वही कालकी गति है. जिसके द्वारा सब कालकाकृत्य जान लिया जाता है. हे तात ! जो मैं कहूं सो मानो ॥४७॥

स कालस्सर्वभूतानां निग्रहानुग्रहे रतः ॥ तस्मात्सर्वाणि भूतानि कालस्य वशगानि वै ॥ ४३ ॥ स्वदोषेणैव दग्धस्य सूनोस्तव नराधिप ॥ नाहं वै कारणं तत्र कालस्तत्र च कारणम् ॥४४॥ अथ वाहं भविष्यामि कारणं नात्र संशयः ॥ परायणपरः कालः किं करिष्यत्यकारणः ॥ ४५ ॥ कालस्तु बलवन्राजन्दुर्विज्ञेया हि सा गतिः ॥ परावरविशेषज्ञा यां यान्ति समदर्शिनः ॥ ४६ ॥ गतिः कालस्य सा येन सर्वं कालस्य गोचरम् ॥ ब्रवीमि यदहं तात तदनुष्ठीयतां वचः ॥४७॥ नहि राज्येन मे कार्यं नाप्यहं नृप काङ्क्षितः ॥ न चापि राज्यलुब्धेन मया कंसो निपातितः ॥४८॥ किंतु लोकहितार्थाय कीर्त्यर्थं च सुतस्तव ॥ व्यङ्गभूतः कुलस्यास्य सानुजो विनिपातितः ॥ ४९ ॥ अहं स एव गोमध्ये गोपैः सह वनेचरः ॥ प्रीतिमान्विचरिष्यामि कामचारी यथा गजः ॥ ५० ॥ एतावच्छतशोऽप्येवं सत्येनैतद्ब्रवीमि ते ॥ न मे कार्यं नृपत्वेन विज्ञाप्यं क्रियतामिदम् ॥ ५१ ॥ भवान्राजास्तु मान्यो मे यदूनामग्रणीः प्रभुः ॥ विजयायाभिषीच्यस्व स्वराज्ये नृपसत्तम ॥५२॥ यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि वा नास्ति ते व्यथा ॥ मया निसृष्टं राज्यं स्वं चिराय प्रतिगृह्यताम् ॥ ५३ ॥

मैं राज्य और नृपतिपदकी इच्छा नहीं करता,न मैंने राज्यके लोभसे कंसको मारा है॥४८॥किन्तु लोकके कल्याणको और कीर्तिके निमित्त कुलके कुत्सित अंगके समान कंसको मैंने अनुजसहित मार डाला ॥४९॥ मैं तो वही गौओंके मध्यमें गोपोंका साथी वनचर हूं, सो प्रसन्न हो कामचारी हाथीके समान विचरूंगा ॥५०॥ यह बात मैं सैकडों वार कहता हूं.कि, मुझे राजा होनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है,सो यह मेरा कहा मानो ॥५१॥ तुमही मेरे मान्य यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ राजा हो, हे नृपश्रेष्ठ ! अपने राज्यमें विजयके निमित्त अभिषिक्त हूजिये ॥५२॥ जो तुम्हें मेरा प्रिय करना है,

जो मुझे व्यथा नहीं दिया चाहते तो यह मेरा दिया राज्य तुम चिरकाल तक भोगो ॥५३॥ वैशंपायन बोले, यह वचन सुन राजा उग्रसेनने यदुवंशियोंकी सभामें मुख नीचा कर लिया; और कुछ उत्तर न दिया॥५४॥ तब श्रीकृष्णने उनका अभिषेक किया मुकुट धारण करनेसे श्रीमान् उग्रसेनकी महाकान्ति हुई और कृष्णके साथही जाकर कंसका और्ध्वदेहिक कर्म सब किया ॥ ५५ ॥ तब सम्पूर्ण यादव श्रीकृष्णकी आज्ञासे उग्रसेनके अनुगामी हुए जैसे देवता इन्द्रके अनुगामी होते हैं ॥५६॥ जब रात बीतने पर सूर्योदय हुआ तब यदुवंशियोंने कंसका अंत संस्कार किया ॥५७॥

वैशम्पायन उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नोत्तरं प्रत्यभाषत ॥ व्रीडिताधोमुखं तं तु राजानं यदुसंसदि ॥ ५४ ॥ अभिषेकेण गोविन्दो योजयामास धर्मवित् ॥ स बद्धमुकुटश्श्रीमानुग्रसेनो महाद्युतिः ॥ चकार सह कृष्णेन कंसस्य निधनक्रियाम् ॥५५॥ तं सर्वे यादवा मुख्या राजानं कृष्णशासनात् ॥ अनुजग्मुः पुरीमार्गे देवा इव शतक्रतुम् ॥५६॥ रजन्यां तु निवृत्तायां ततस्सूर्ये विराजिते ॥ पश्चिमं कंससंस्कारं चक्रुस्ते यदुपुङ्गवाः ॥५७॥ शिबिकायामथारोप्य कंसदेहं यथाक्रमम् ॥ नैष्ठिकेन विधानेन चक्रुस्ते कंससत्क्रियाम् ॥ ५८ ॥ स नीतो यमुनातीरमुत्तमं नृपतेः सुतः ॥ सत्कृतश्च यथान्यायं नैधनेन चिताग्निना ॥ ५९ ॥ तथैव भ्रातरं चास्य सुनामानं महाभुजम् ॥ संस्कारं लम्भयामासुः सह कृष्णेन यादवाः ॥६०॥ ताभ्यां ते सलिलं चक्रुर्वृष्ण्यन्धकपुरोगमाः ॥ अक्षयं चास्तु प्रेतेभ्यो भाषमाणाः पुनः पुनः ॥६१॥ हिरण्यस्य सुवर्णस्य दश कोटीस्तथा हरिः ॥ गावो रत्नानि वासासि ग्रामान्नगरसंमतान् ॥६२॥ ददौ कंसं समुद्दिश्य ब्राह्मणेभ्यो नृपोत्तमः ॥ अक्षयं चापि विप्रेभ्यो भाषमाणाः पुनः पुनः ॥६३॥

कंसके देहको शिबिकामें आरोपण कर नैष्ठिक विधानसे उन्होंने सब संस्कार यथाक्रमसे किया ॥५८॥ वह श्रेष्ठ नरपतिपुत्र यमुनाके तीर लाया गया और यथान्यायसे चिताग्निसे संस्कार किया ॥ ५९ ॥ इसी प्रकार सुनामा महाभुजावाले इसके भाईको यादवोंमें कृष्णके सहित मिलकर संस्कृत किया ॥६०॥ और वृष्णि, अंधकवंशी मिलकर उनकी जलक्रिया करने लगे. प्रेतोंको यह जल तिल अक्षय हो ऐसा वारंवार कहने लगे ॥ ६१ ॥ तब भगवान्‌ने दश करोड सुवर्ण, गौ, रत्न, वस्त्र, ग्राम, नगर युक्त ॥ ६२ ॥ कंसके उद्देश्यसे उसके मंगलके निमित्त ब्राह्मणोंको दिया ब्राह्मणोंको

यह अक्षय हो ऐसा वारंवार कहा ॥ ६३ ॥ इस प्रकार दीन मनसे वे कुटुंबी उनको जल देकर उग्रसेनको आगे कर मथुरामें प्रविष्ट हुए ॥ ६४ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार बलवान श्रीकृष्ण बलरामके साथ यादवोंसे युक्त उस मथुरा पुरीमें रहने लगे ॥१॥ जब युवा हुए तब राजलक्ष्मीसे दीप्यमान होने लगे और वह वीर सब जगत्‌की भूषणरूप मथुरामें विचरने लगे ॥२॥ किसी समय श्रीकृष्ण और बलराम अवन्तिपुरनिवासी काशी देशमें उत्पन्न हुए सांदीपन गुरुके निकट ॥३॥ धनुर्वेद सीखनेकी इच्छासे दोनों उनके

तयोस्ते सलिलं दत्त्वा यादवा दीनमानसाः ॥ पुरस्कृत्योग्रसेनं वै विविशुर्मथुरां पुरीम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि उग्रसेनाभिषेककंससंस्कारकथनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स कृष्णतत्र बलवान्रौहिणेयेन संगतः ॥ मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत् ॥ १ ॥ प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया ज्वलन् ॥ चचार मथुरां वीरस्स रत्नाकरभूषणाम् ॥ २ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य सहितौ रामकेशवौ ॥ गुरुं सान्दीपनिं काश्यमवन्तिपुरवासिनम् ॥ ३ ॥ धनुर्वेदचिकीर्षार्थमुभौ तावभिजग्मतुः ॥ निवेद्य गोत्रं स्वाध्यायमाचारेणाभ्यलंकृतौ ॥४॥ शुश्रूषू निरहंकारावुभौ रामजनार्दनौ॥ प्रतिजग्राह तौ काश्यो विद्याः प्रादाच्च केवलाः ॥ ५ ॥ तौ च श्रुतिधरौ वीर यथावत्प्रतिपद्यताम् ॥ अहोरात्रैश्चतुष्षष्ट्या साङ्गवेदमधीयताम् ॥ ६ ॥ चतुष्पादं धनुर्वेदं शास्त्रग्रामं ससंग्रहम् ॥ अचिरेणैव कालेन गुरुस्तावभ्यशिक्षयत् ॥ ७ ॥

पास गये अपना गोत्र और वेद निवेदन कर आचार्यसे अलंकृत हो ॥४॥ सुश्रूषा करनेवाले अहंकारहीन कृष्ण बलरामको उन पण्डितने शिष्यत्वमें स्वीकार किया और उनको विद्या पढाई॥५॥वे दोनों वीर श्रवणमात्रहीसे विद्याको ग्रहण कर लेते थे,चौसठ दिनमेंही वह सम्पूर्ण वेदके पारगामी हुए॥६॥चार पादयुक्त धनुर्वेद (दीक्षा संग्रह सिद्धि प्रयोग यह चार पाद हैं) और रहस्य सहित सब शस्त्रविद्या थोडेही दिनोंमें गुरुने सिखा दी ॥७॥

तब गुरुने उनकी मनुष्योंकेसी बुद्धि न देखकर विचार किया कि, यह दोनों वीर कदाचित् देवता वा चन्द्र और सूर्य हैं ॥ ८ ॥ उन दोनों महात्माओंको पर्वोंमें महादेवकी पूजा करते हुए उन्होंने विष्णु अविनाशी रूपसे देखा ॥९॥ तब राम और कृष्णने सांदीपन गुरुसे कृतकृत्य होकर कहा कि, गुरुदक्षिणा क्या देनी चाहिये ॥१०॥ तब उनके प्रभावको जानकर गुरुने प्रसन्नतासे कहा कि, जो मेरा पुत्र क्षारसमुद्रमें गिरकर मृतक होगया है मैं उसके मिलनेकी इच्छा करता हूं ॥११॥ एकही मेरे पुत्र था सो मगरमच्छने सागरमें खा लिया.मैं तीर्थयात्रा करनेको प्रभासमें गया था वहां

अतीवामानुषीं मेधां चिन्तयित्वा तयोर्गुरुः ॥ मेने तावागतौ वीरौ देवौ चन्द्रदिवाकरौ ॥ ८ ॥ ददर्श च महात्मानावुभौ तावपि पर्वसु ॥ पूजयन्तौ महादेवं साक्षाद्विष्णुं व्यवस्थितम् ॥ ९ ॥ गुरुं सान्दीपनिं कृष्णः कृतकृत्योऽभ्यभाषत ॥ गुर्वर्थं किं ददानीति रामेण सह भारत ॥ १० ॥ तयोः प्रभावं स ज्ञात्वा गुरुः प्रोवाच हृष्टवान् ॥ पुत्रमिच्छाम्यहं दत्तं यो मृतो लवणाम्भसि॥११॥ पुत्र एकोऽपि मे जातस्स चापि तिमिना हृतः ॥ प्रभासे तीर्थयात्रायां तं मे त्वं पुनरानय ॥ १२ ॥ तथेत्येवाब्रवीत्कृष्णो रामस्यानुमते स्थितः ॥ गत्वा समुद्रं तेजस्वी विवेशान्तर्जलं हरिः ॥१३॥ समुद्रः प्राञ्जलिर्भूत्वा दर्शयामास स्वं तदा ॥ तमाह कृष्णः क्वासौ भो पुत्रस्सांदीपनेरिति ॥ १४ ॥ समुद्रः प्रत्युवाचेदं दैत्यः पञ्चजनो महान् ॥ तिमिरूपेण तं बालं ग्रस्तवानिति माधव ॥ १५ ॥ उन्मथ्य सलिलादस्माद् ग्रस्तवानिति भारत ॥ स पञ्चजनमासाद्य जघान पुरुषोत्तमः ॥ न चाससाद तं बालं गुरुपुत्रं तदाच्युतः ॥ १६ ॥

यह सब वार्ता हुई ॥१२॥ तब रामकी अनुमतिसे कृष्णने कहा यही करते हैं यह कह वह तेजस्वी सागरके तटपर जाकर उसके जलमें प्रवेश कर गये॥१३॥तब समुद्रने हाथ जोडकर अपना रूप दिखाया,और आगमन कारण पूछा तब कृष्णने कहा, सांदीपनका पुत्र कहां है ॥१४॥ समुद्रने कहा मेरे स्थानमें एक पंचजन्य नाम महादैत्य रहता है वह मच्छरूपसे रहता है उसीने बालकको भक्षण कर लिया होगा॥१५॥इस जलसे उठकर

उसीने ग्रहण कर लिया,सुनतेही पुरुषोत्तमने पंचजन्य दत्यको जाकर मारा, परन्तु उसके पेटमें गुरुपुत्रको नहीं पाया॥१६॥इस प्रकार पंचजन्यको मारकर जनार्दनने शंख धारण कर लिया जिसको देवता और मनुष्योंमें पांचजन्य कहते हैं॥१७॥ तब भगवान् यमराजके नगरकोगये,उस समय यमराजने आकर उनके चरणोंको नमस्कार किया॥१८॥उससे श्रीकृष्णने कहा गुरुपुत्र दीजिये यह सुनकर धर्मराजने उत्तर नहीं दिया,तब श्रीकृष्णका यमराजके संग घोर संग्राम हुआ॥१९॥तब भगवान्ने युद्धमें यमराजको जीत लिया और उससे गुरुपुत्रको पाकर॥२०॥ उस बहुत कालसे नष्ट हुए

स तु पञ्चजनं हत्वा शङ्खं लेभे जनार्दनः ॥ यस्तु देवमनुष्येषु पाञ्चजन्य इति श्रुतः ॥ १७ ॥ ततो वैवस्वतपुरं जगाम पुरुषोत्तमः ॥ ततो यमोऽभ्युपागम्य ववन्दे तं गदाधरम् ॥१८॥ तमुवाचाथ वै कृष्णो गुरुपुत्रः प्रदीयताम् ॥ तयोस्तत्र तदा युद्धमासीद्घोरतरं महत् ॥१९॥ ततो वैवस्वतं घोरं निर्जित्य पुरुषोत्तमः ॥ आससाद च तं बालं गुरुपुत्रं तदाच्युतः ॥२०॥ आनिनाय गुरोः पुत्रं चिरं नष्टं यमक्षयात् ॥ ततस्सान्दीपने पुत्रः प्रभावादमितौजसः ॥ २१ ॥ दीर्घकालगतः प्रेतः पुनरासीच्छरीरवान् ॥ तदशक्यमचिन्त्यं च दृष्ट्वा सुमहदद्भुतम् ॥ २२ ॥ सर्वेषामेव भूतानां विस्मयस्समजायत ॥ स गुरोः पुत्रमादाय पाञ्चजन्यं च माधवः ॥ रत्नानि च महार्हाणि पुनरायाज्जगत्प्रभुः ॥२३॥ राक्षसैस्तस्य रत्नानि महार्हाणि बहूनि च ॥ आनाय्यावेदयामास गुरवे वासवानुजः ॥२४॥ गदापरिघयुद्धेषु सर्वास्त्रेषु च तावुभौ ॥ अचिरान्मुख्यतां प्राप्तौ सर्वलोके धनुर्भृताम् ॥२५॥ ततस्सान्दीपनेः पुत्रं तद्रूपवयसं तदा ॥ प्रादात्कृष्णः प्रतीतात्मा सह रत्नैरुदारधीः ॥ २६ ॥

गुरुपुत्रको ले आये और भगवान्के प्रभावसे सांदीपनका पुत्र बहुत दिनोंका॥२१॥मृतक हुआभी फिर शरीरवाला हो गया,इस महाअद्भुत वार्ताको अशक्य और अचिन्त्य देखकर॥२२॥सब प्राणियोंके मनमें बडा विस्मय हो गया,इस प्रकार श्रीकृष्ण पांचजन्य और गुरुपुत्र लाकर बहुतसे रत्नभी उस त्रिलोकीनाथने लाये ॥२३॥ उन यमराजके अनुचरों द्वारा अनेक रत्न लेते आये,और वह सब गुरुको अर्पण कर दिये॥२४॥ ये दोनों गदा परिघ और सम्पूर्ण अस्त्रोंमें सब लोकके धनुषधारियोंमें विख्यात हो गये ॥ २५ ॥जब उसी अवस्थाका सांदीपनका पुत्र श्रीकृष्णने प्रसन्न हो रत्नोंस-

हित गुरुको दिया ॥ २६ ॥ तब सांदीपनने बहुत कालसे नष्ट हुए पुत्रको प्राप्त होकर महाआनन्द माना, और रामकृष्णकी बड़ाई की ॥ २७ ॥ तब सब अस्त्रविद्या जान वे दोनों वीर अस्त्रविद्यामें निपुण और व्रती हुए तब गुरुकी आज्ञा पाय वसुदेवकुमार फिर मथुरामें आये ॥ २८ ॥ तब सब यादव यदुनन्दनको आगे लेने आये, वह उग्रसेनादि सब कोई प्रसन्न हुए और युवा वृद्ध महाप्रसन्न हुए ॥ २९ ॥ अनेक प्रजाके लोग मंत्री वा पुरोहित बालवृद्धोंके सहित सब पुरी लेनेको आई ॥ ३० ॥ नन्दि तूर्यादि बाजोंसे

चिरनष्टेन पुत्रेण काश्यस्सान्दीपनिस्तदा ॥ समेत्य मुमुदे राजन्पूजयन्रामकेशवौ ॥ २७ ॥ कृतास्त्रौ तावुभौ वीरौ गुरुमामन्त्र्य सुव्रतौ ॥ आयातौ मथुरां भूयो वसुदेवसुतावुभौ ॥२८॥ ततः प्रत्युद्ययुस्सर्वे यादवा यदुनन्दनौ ॥ सबाला हृष्टमनस उग्रसेनपुरोगमाः ॥२९॥ श्रेण्यः प्रकृतयश्चैव मन्त्रिणस्सपुरोहिताः ॥ सबालवृद्धा सा चैव पुरी समभिवर्तते ॥ ३० ॥ नन्दितूर्याण्यवाद्यन्त तुष्टुवुश्च जनार्दनम् ॥ रथ्याः पताकामालिन्यो भ्राजन्ते स्म समन्ततः ॥३१॥ प्रहृष्टमुदितं सर्वमन्तःपुरमशोभत ॥ गोविन्दागमनेऽत्यर्थं यथैवेन्द्रमहे तथा ॥ ३२ ॥ मुदिताश्चाथ गायन्ति राजमार्गेषु गायकाः ॥ तत्रासीत्प्रथिता गाथा यादवानां प्रियंकरा ॥३३॥ गोविन्दरामौ संप्राप्तौ भ्रातरौ लोकविश्रुतौ ॥ स्वे पुरे निर्भयास्सर्वे क्रीडध्वं सह बान्धवैः ॥ ३४ ॥ न तत्र कश्चिद्दीनो वा मलिनो वा विचेतनः ॥ मथुरायामभूद्राजन्गोविन्दे समुपस्थिते ॥३५॥ वयांसि साधुवाक्यानि प्रहृष्टा गोहयद्विपाः ॥ नरनारीगणास्सर्वे भेजिरे मनसस्सुखम् ॥ ३६ ॥

जनार्दनकी स्तुति करने लगे, गली चौहटोंमें पताका छा गई, और सब अपने तेजसे विराजित होने लगीं॥३१॥सब अंतःपुर प्रसन्न हो गया,यह कृष्णके आनेकी शोभा हुई जैसे इन्द्रके उत्सवमें होती है॥३२॥प्रसन्न हो गायकजन राजमार्गोंमें गाने लगे और यादवोंकी प्रियकरनेहारी गाथा गाने लगे॥३३॥ लोकविख्यात कृष्ण और बलराम आ गये अब सब कोई बांधवोंके साथ अपने पुरमें क्रीडा करो ॥ ३४ ॥ उस समय मथुरामें कोई दीन मलीन वा विचेत नहीं था,जिस समय गोविन्द मथुरामें स्थित हुए सब मंगल हो गये ॥३५॥ सबकी अवस्था श्रेष्ठ वाक्यों युक्त हो गई.गो,

घोडे, हाथी सब प्रसन्न रहने लगे, सब नरनारी मनमें महाखुसी हुए ॥ ३६ ॥ मनोहर पवन चलती दशों दिशानिर्मल रहतीं, सब मन्दिरोंमें देवता प्रसन्न हुए ॥३७॥ सतयुगमें जो लोगोंके चिन्ह थे वह सब उस पुरीमें श्रीकृष्णके होनेसे विद्यमान हो गये ॥३८॥ तब अच्छे मुहूर्तमें सुन्दर घोडे जुते रथमें बैठकर गोविन्द उस पुरीमें प्रविष्ट हुए ॥३९॥ उस समय यादव उनकेप्रति इस प्रकार आगे लेने गये जैसे इन्द्रको लेनेको देवता जाते हैं ॥४०॥ तब वे दोनों यदुनन्दन वसुदेवके मंदिरमें प्रसन्न हो प्रवेश करने लगे, जैसे चन्द्र सूर्य लोकालोक पर्वतमें प्रवेश करते हैं ॥ ४१ ॥ वह सुरेन्द्रके समान

शिवाश्च वाताः प्रववुर्विरजस्का दिशो दश ॥ दैवतानि च हृष्टानि सर्वेष्वायतनेषु च ॥ ३७ ॥ यानि लिङ्गानि लोकस्य चासन्कृतयुगे पुरा ॥ तानि सर्वाण्यदृश्यन्त पुरीं प्राप्ते जनार्दने ॥ ३८ ॥ ततः काले शिवे पुण्ये स्यन्दनेनारिमर्दनः ॥ हरियुक्तेन गोविन्दो विवेश मथुरां पुरीम् ॥३९॥ विशन्तं मथुरां रम्यां तमुपेन्द्रमरिंदमम् ॥ अनुजग्मुर्यदुगणाश्शक्रं देवगणा इव ॥ ४० ॥ वसुदेवस्य भवनं ततस्तौ यदुनन्दनौ ॥ प्रविष्टौ हृष्टवदनौ चन्द्रादित्याविवाचलम् ॥ ४१ ॥ परेण तेजसोपेतौ सुरेन्द्राविव रूपिणौ तावायुधानि विन्यस्य गृहे स्वे स्वैरचारिणौ ॥ ४२ ॥ सुमुदाते यदुवरौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ उद्यानेषु विचित्रेषु फलपुष्पावनामिषु ॥४३॥ चेरतुस्सुमहात्मानौ यादवैः परिवारितौ ॥ रैवतस्य समीपेषु सरित्सु विमलासु च ॥ ४४ ॥ पद्मपत्रविवृद्धासु कारण्डवयुतासु च ॥ एवं तावेकनिर्माणौ मथुरायां शुभाननौ ॥ उग्रसेनानुगौ भूत्वा कंचित्कालं सुमोदतुः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामकृष्णप्रत्यागमनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

रूप सम्पन्न परम तेजसे सयुक्त हुए और अपने आयुध घरमें रखकर वे दोनों स्वच्छन्द गमन करने लगे ॥ ४२ ॥ और वेदोनों वसुदेव कुमार बडे प्रसन्न हुए, विचित्र बगीचे जिनमें अनेक प्रकारके फल फूल लगे थे॥४३॥ वहां वे दोनों महात्मा यादवोंसे युक्त हो विचरने लगे, रैवतक पर्वतके समीपमें उज्ज्वल नदियोंमें॥४४॥जिनमें, कि कमलके फूल फूल रहे हंस कारण्डव बोल रहे थे, इस प्रकार एकहीसी रचनायुक्त वह सुन्दर मुखवाले मथुरामें प्राप्त होकर उग्रसेनके अनुगामी हुए कुछ कालतक सुखसे रहे ॥ ४५ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

वैशंपायन बोले, इस प्रकार श्रीकृष्ण बलरामके सहित बहुत समय तक मथुरामें सुखी रहे॥ १॥और युवा हो राजलक्ष्मीसे शोभित हुए और वन तथा खानोंकी भूषण रूप मथुरामें विचरने लगे॥२॥कुछ समयके उपरान्त कंसकी अस्ति और आप्ति भार्या जो जरासंधकी पुत्री थीं उनसे कंसके मरनेका समाचार पाकर॥ ३ ॥ प्रतापी जरासंधने थोडेही समयमें हाथी घोडे रथ पैदल पुण्य धान्य आपण इस छः प्रकारके बलके सहित ॥ ४ ॥ कंसके वैरसे यदुवंशियोंके मारनेकी इच्छा कर चला, वह अस्ति और प्राप्ति दोनों जरासंधकी कन्या थीं॥५॥यह पीनस्तन और नितम्बवती दोनों कन्या

वैशम्पायन उवाच ॥ सकृष्णस्तत्र सहितो रौहिणेयेन संगतः ॥ मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत् ॥१॥ प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया विभुः ॥ चचार मथुरां प्रीतः सवनाकरभूषणाम् ॥२॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा राजगृहेश्वरः ॥ शुश्राव निहतं कंसं दुहितृभ्यां महीपतिः ॥ ३ ॥ ततो नातिचिरात्कालाज्जरासंधः प्रतापवान् ॥ आजगाम षडङ्गेन बलेन महतावृतः ॥ ४ ॥ जिघांसुर्हि यदून्क्रुद्धः कंसस्यापचितिं स्मरन् ॥ अस्तिः प्राप्तिश्च नाम्ना ते मागधस्य सुते नृप ॥५॥ जरासंधस्य कल्याण्यौ पीनश्रोणिपयोधरे ॥ उभे कंसस्य ते भार्ये प्रादाद्बार्हद्रथो नृपः ॥६॥ स ताभ्यां मुमुदे राजा बध्वा पितरमाहुकम् ॥ समाश्रित्य जरासंधमनादृत्य च यादवान् ॥ शूरसेनेश्वरो राजा यथा ते बहुशः श्रुतः ॥ ७ ॥ ज्ञातिकार्यार्थसिद्ध्यर्थमुग्रसेनहिते रतः ॥ वसुदेवोऽभवन्नित्यं कंसो न ममृषे च तम् ॥ ८ ॥ रामकृष्णौ समाश्रित्य हते कंसे दुरात्मनि ॥ उग्रसेनोऽभवद्राजा भोजवृष्ण्यन्धकैर्वृतः ॥९॥ दुहितृभ्यां जरासंधः प्रियाभ्यां बलवान्नृपः ॥ नोदितो वीरपत्नीभ्यामुपायान्मथुरां ततः ॥ १० ॥

राजाने कंसकी भार्या बनानेको दी थीं ॥ ६ ॥ उनके सहित राजा कंस महाप्रसन्न हुआ था, और आहुक (उग्रसेन) को बांधकर तथा यादवोंको तिरस्कार कर ॥ ७ ॥ शूरसेन देशका अधिपति राजा विख्यात हो गया, जातीके कार्य सिद्ध करनेपर उग्रसेनको निरन्तर हितकारी वसुदेवजी रहे; यह बात कसको अच्छी नहीं लगती थी ॥ ८ ॥ जब राम कृष्णके बलसे वह दुरात्मा कंस मृतक हुआ, और उग्रसेन राजा हुआ भोज, अंधक, वृष्णि उनके साथी हुए ॥९॥ बलवान् जरासंध कन्याओंके प्रियकी इच्छासे और उन्हीं वीरपत्नीयोंकी प्रेर-

णासे मथुरामें चढ आया ॥ १० ॥ सब युद्धका उद्योगकर क्रोधमें अग्निके समान जलता हुआ, जो कुछ जरासंधके वशीभूत राजा थे ॥ ११ ॥ मित्र जातीके सुहृद बांधव सबको साथ ले चला और वे सब सेना ले इसके पीछे हुए॥१२॥बडे धनुषधारी महावीर जरासंधके प्रिय कर्ता कारूष दन्तवक्र चंदेलीके महाबली राजा शिशुपाल ॥१३॥ कलिंगाधिपति, पौंड्र, महाबली सांकृति, केषिक, भीष्मक ॥१४॥ और भीमका पुत्र विख्यात धनुषधारी रुक्मी, जो कि, वासुदेव और अर्जुनसे युद्धमें सदा स्पर्द्धा करता था॥१५॥वेणुदारी, श्रुतर्वा,क्रथ,अंशुमान्, बलवान् अंगराज,और बलवान

कृत्वा सर्वं समुद्योगं क्रोधादग्निसमो ज्वलन् ॥ प्रतापावनता ये च जरासंधस्य पार्थिवाः ॥ ११ ॥ मित्राणि ज्ञातयश्चैव संयुक्ताः सुहृदस्तथा ॥ तमेवानुययुः सर्वे सैन्यैः समुदितैर्वृताः ॥ १२ ॥ महेष्वासा महावीर्या जरासंधप्रियैषिणः ॥ कारूषो दन्तवक्रश्च चेदिराजश्च वीर्यवान् ॥१३॥ कलिङ्गाधिपतिश्चैव पौण्ड्रश्च बलिनां वरः ॥ सांकृतिः केशिकश्चैव भीष्मकश्च नराधिपः ॥ १४ ॥ पुत्रश्च भीमकस्यापि रुक्मी मुख्यो धनुर्भृताम् ॥ वासुदेवार्जुनाभ्यां यः स्पर्द्धते स महाहवे ॥ १५ ॥ वेणुदारिश्श्रुतर्वा च क्रथश्चै-वांशुमानपि ॥ अङ्गराजश्च बलवान्वङ्गानामधिपस्तथा ॥ १६ ॥ कौशल्यः काशिराजश्च दशार्णाधिपतिस्तथा ॥ सुखेश्वरश्च विक्रान्तो विदेहाधिपतिस्तथा ॥ १७ ॥ मद्रराजश्च बलवान् त्रिगर्तानामथेश्वरः ॥ शाल्वराजश्च विक्रान्तो दरदश्च महाबलः ॥ १८ ॥ यवनाधिपतिश्चैव भगदत्तश्च वीर्यवान् ॥ सौवीरराजश्शैब्यश्च पाण्ड्यश्च बलिनां वरः ॥ १९ ॥ गान्धारराजस्सुबलो नग्नजिच्च महाबलः ॥ काश्मीरराजो गोनर्दो दरदाधिपतिर्नृपः ॥ दुर्योधनादयश्चैव धार्तराष्ट्रा महाबलाः ॥ २० ॥ एते चान्ये च राजानो बलवन्तो महारथाः ॥ तमन्वयुर्जरासंधं विद्विषन्तो जनार्दनम् ॥ २१ ॥

वंगेश्वर ॥१६॥ कौशल्य, काशीपति दशार्ण बली सुखेश्वर और महाबली मिथिलाधिपति ॥१७॥ बली मद्रराजा त्रिगर्तेश्वर बली शाल्वराज और दरदराजा ॥१८॥ यवनोंका राजा महाबली भगदत्त सौवीर देशका शैब्य, और पांड्यदेशका महाबली राजा ॥१९॥ गांधार देशका राजा सुबल और महाबली नग्नजित् काश्मीरका राजा गोनर्द और दरददेशका राजा तथा धृतराष्ट्रके दुर्योधनादि महाबली पुत्र॥२०॥ इनसे आदिले औरभी महाबली

बलवान् राजा महारथी श्रीकृष्णसे वैर बांधे जरासंधके साथ आये ॥२१॥ इस प्रकार महाधान्य और काष्ठादिसे पूर्ण शूरसेन देशमें आकर अपनी सेना आगे कर मथुरामें आया॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते विष्णुपर्वणि भाषायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥ वैशंपायन बोले; मथुराके उपवनोंमें उन सब राजोंको डेरा डाले सब यदुवंशियोंनेकृष्णके सहित देखा॥१॥जब प्रसन्न हो श्रीकृष्णने बलरामजीसे कहा देवताओंका कार्य स्वयंही शीघ्र हुआ जाता है, इसमें संदेह नहीं ॥२॥ जो कि राजा जरासंध निकट है इससे उसके रथोंके अग्रभागकी ध्वजा दृष्टिगोचर होती है ॥३॥ और यह देखो,

ते शूरसेनानाविश्य प्रभूतयवसेन्धनान् ॥ऊषुस्संरुध्य मथुरां पुरस्कृत्य बलं तदा ॥ २२ ॥ इति श्रीम० खिलेषु ह० विष्णुपर्वणि मथुरोपरोधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ मथुरोपवने गत्वा निविष्टांस्तान्नराधिपान् ॥ अपश्यन्वृष्णयस्सर्वे पुरस्कृत्य जनार्दनम् ॥१॥ ततो हृष्टमनाः कृष्णो रामं वचनमब्रवीत् ॥ त्वरते खलु कार्यार्थो देवतानां न संशयः ॥ २ ॥ यथायं संनिकृष्टो हि जरासंधो नराधिपः ॥ लक्ष्यन्ते हि ध्वजाग्राणि रथानां वातरंहसाम् ॥ ३ ॥ एतानि शशिकल्पानि नृपाणां विजिगीषताम् ॥ छत्राण्यार्य विराजन्ते प्रोच्छ्रितानि सितानि च ॥४॥ अहो नृपरथोदग्रा विमलाश्छत्रपंक्तयः॥ अभिवर्तन्ति नश्शुभ्रा यथा खे हंसपंक्तयः ॥५॥ काले खलु नृपः प्राप्तो जरासंधो महीपतिः ॥ आवयोर्युद्धनिकषः प्रथमस्समरातिथिः ॥६॥ आर्य तिष्ठाव सहितावनुप्राप्ते महीपतौ ॥ युद्धारम्भः प्रयोक्तव्यो बलं तावद्विमृश्यताम् ॥७॥ एवमुक्त्वा ततः कृष्णस्स्वस्थस्संग्रामलालसः ॥ जरासंधबलं प्रेप्सुश्चकार बलदर्शनम् ॥ ८ ॥

यह चन्द्रमाके समान जयशील राजाओंके श्वेत छत्र ऊंचे ऊंचे विराज रहे हैं.हे आर्य ! ॥ ४ ॥ अहो इन राजाओंके रथोंके छत्रकी पंक्ति ऐसी लक्षित होती है जैसे आकाशमें हंसोंकी पंक्ति॥५॥जरासंध राजा समयपरही प्राप्त हुआ है यह हमारे युद्धकी कसौटीमें प्रथमही संग्रामका अतिथि हुआ ॥६॥ हे आर्य ! यह राजा प्राप्त हुआ है इस कारण यहीं स्थित होकर पहले इसकी सेनाका विचार करो, पीछे युद्धारम्भ होगा ॥ ७ ॥ इस प्रकार कृष्ण

कहकर स्वस्थ मनसे संग्रामकी लालसासे जरासंधके बलकी इच्छासे बल दिखानेकी इच्छा की ॥ ८ ॥ तब श्रीकृष्ण यदुश्रेष्ठने उन सबको देखकर अपने मनसेही सम्पूर्ण विचार किया, कारण कि; सब मंत्रके जान नेवाले थे ॥ ९ ॥ यह पृथ्वीपाल राजमार्गमें स्थित हो शास्त्रविधि-कर्मसे पहलेही नाशको प्राप्त हो ॥ १० ॥ इन श्रेष्ठ राजोंको मृत्युके वशमें प्राप्त हुआ मानता हूं और यह अवश्य स्वर्गमें जांयगे.कारण कि, इनके शरीर चमकते हैं॥ ११॥यह सत्यही हैकि, इनके भारसे परिश्रान्त हो यह पृथ्वी स्वर्गको गई थी. इन राजोंकी महासेना है वह महापीडित हो रही

वीक्षमाणश्च तान्सर्वान्नृपान्यदुवरोऽव्ययः ॥ आत्मानैवात्मनो वाक्यमुवाच हृदि मन्त्रवित् ॥ ९ ॥ इमे ते पृथिवीपालाः पार्थिवे वर्त्मनि स्थिताः ॥ ये विनाशं गमिष्यन्ति शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ १० ॥ प्रोक्षितान्खल्विमान्मन्ये मृत्युना नृपपुङ्गवान् ॥ स्वर्गगामीनि चाप्येषां वपूंषि प्रचकाशिरे ॥ ११ ॥ स्थाने भारपरिश्रान्ता वसुधेयं दिवं गता ॥ एषां नृपाणां मुख्यानां बलौघैरभिपीडिता ॥ १२ ॥ मही निरन्तरा चेयं बलराष्ट्राभिसंवृता ॥ स्वल्पेन खलु कालेन विविक्तं पृथिवीतलम् ॥ १३ ॥ भविष्यति नरेन्द्रौघैश्शतशो विनिपातितैः ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ जरासंधस्ततः क्रुद्धः प्रभुस्सर्वमहीक्षिताम् ॥ १४ ॥ नराधिपसहस्रौघैरनुयातो महाद्युतिः ॥ व्यायतोदग्रतुरगैस्सुयानैस्सुसमाहितैः॥१५॥रथैस्सांग्रामिकैर्युक्तैरसङ्गगतिभिः क्वचित्॥हेमकक्षैर्महाघण्टैर्वारणैर्वारिदोपमैः ॥ १६ ॥ महामात्रोत्तमारूढैः कल्पितै रणकोविदैः ॥ स्वारूढैः सादिभिर्युक्तैः प्रेंखमाणैः प्रवल्गितैः १७ ॥ वाजिभिर्मेघसंकाशैः प्लवद्भिरिव पत्तिभिः ॥ खड्गचर्मधरोदग्रैः पत्तिभिर्बलिनां रवैः ॥ १८ ॥

है ॥१२॥ जिनके बलसे वह सब पृथ्वी भाराक्रान्त हो रही है थोडेही समयमें इनके मृतक हो जानेसे भूमिका भार जाता रहेगा ॥ १३ ॥ युद्धमें सैकडों राजाओंका मरण हो जायगा.वैशंपायन बोले;तब सब राजोंका स्वामी जरासंध क्रोध कर ॥ १४ ॥ सहस्रों राजोंके संग वह महाबुद्धिमान् प्राप्त हुआ बडे उग्र घोडोंसे संयुक्त ॥१५॥ तथा संग्रामके घोडोंसहित रथ और सुवर्णके घंटोंके टके हुए मेघके समान हाथी॥१६॥ महाश्रेष्ठ महावतोंसे युक्त युद्धके सामानसे सज्जित कूदते और शब्द करते॥१७॥मेघके समान शब्द करते घोडे कूदते हुए प्यादे और महाबली प्यादे खड्ग चर्मके धारणकरने-

वाले ॥१८॥ सहस्रों सर्पोंके समान धावमान होते हुए. इस प्रकार चार प्रकारकी सेनासे मेघोंसे कम्पित होता हुआ ॥ १९ ॥ जरासंध महाबली राजा चला, मेघके शब्दके समान रथ और मद चुआनेवाले हाथी ॥२०॥घोडोंके हींसनेसे और प्यादोंके पुकारनेसे सम्पूर्ण दिशा और मथुराके वन उपवन शब्दायमान होने लगे ॥२१॥इस प्रकार वह राजा सागराकार सेनासहित दिखाई दिया, पृथ्वीपतियोंकी सेना प्रसन्न योधाओंसे युक्त थी ॥२२॥ उनके शब्द और गर्जनेसे वह सेना मेघके समान शोभित हुई.रथ पवनके समान वेगवान और हाथी मेघोंके समान वेगवान्, घोडे और पत्तियोंके

सहस्रसंख्यासंयुक्तैरुत्पतद्भिरिवोरगैः ॥ एवं चतुर्विधैस्सैन्यैः कम्पमानैरिवाम्बुदैः ॥१९॥ नृपः प्रयातो बलवान् जरासंधो धृतव्रतः ॥ स रथैर्मेघनिर्घोषैर्गजैश्च मदसंयुतैः ॥ २० ॥ हेषमाणैश्च तुरगैः क्ष्वेडमानैश्च पत्तिभिः ॥ नादयानो दिशस्सर्वास्तस्याः पुर्या वनानि च ॥२१॥ स राजा सागराकारस्ससैन्यः प्रत्यदृश्यत ॥ तद्बलं पृथिवीशानां हृष्टयोधजनाकुलम् ॥ २२ ॥ क्ष्वेडितास्फोटितरवं मेघसैन्यमिवाबभौ ॥ रथैः पवनसंपातैर्गजैश्च जलदोपमैः ॥ तुरगैश्च जवोपेतैः पत्तिभिः खगमोपमैः ॥ २३॥ विमिश्रं सर्वतो भाति मत्तद्विपसमाकुलम् ॥ घर्मान्ते सागरगतं यथाभ्रपटलं तथा ॥२४॥ सबलास्ते महीपाला जरासंधपुरोगमाः ॥ परिवार्य पुरीं सर्वे निवेशायोपचक्रिरे ॥ २५ ॥ बभौ तस्य निविष्टस्य बलश्रीश्शिबिरस्य वै ॥ शुक्लपर्यन्तपूर्णस्य यथा रूपं महोदधेः ॥२६॥ वीतरात्रे ततः काले समुत्तस्थुर्महीक्षितः ॥ आरोहणार्थं पुर्यास्ते समीयुर्युद्धलालसाः ॥ २७ ॥ समवायीकृतास्सर्वे यमुनामनु ते नृपाः ॥ निविष्टा मन्त्रयामासुर्युद्धकालकुतूहलाः॥२८॥ तेषां सुतुमुलः शब्दश्शुश्रुवे पृथिवीक्षिताम् ॥ युगान्ते भिद्यमानानां सागराणामिव स्वनः॥२९॥

समान शीघ्रगामी प्यादे ॥२३॥ यह सब मिलनेसे मतवाले हाथियोंसे युक्त होनेके कारण यह सेना प्रकाशित हुई जैसे वर्षामें सागरके निकट मेघ आनकर शोभित होते हैं ॥२४॥ जरासंधादि वे बली राजा सब उस पुरीको घेरकर स्थित हुए ॥२५॥शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको जैसे सागरका रूप होता है इस प्रकार सेनाके डेरोंकी शोभा हुई ॥२६॥ उस रात्रीके बीतने पर वे स्थित सब राजा पुरीमें प्रवेश करनेको युद्धकी लालसासे सन्नद्ध हुए॥२७॥ वे सब राजा एकत्र हो यमुनाके किनारे स्थित हो युद्धकी इच्छासे मंत्र करने लगे,और उन्हें बडा कुतूहल है ॥२८॥ उन राजोंका महाशब्द सुनाई

आने लगा जैसे युगान्तमें भेदको प्राप्त हुए सागरोंका शब्द सुनाई देताहै ॥ २९ ॥ उनके शब्द शान्त करनेको कंचुक (झगा) पगडी पहरे वृद्ध वेत्रपाणी (चोबदार) हाथमें वेंत लिये शब्द मत करो, यह कहते विचरते थे॥३०॥उन राजाओंके सब बल आज्ञा सुनतेही सब कोई वृत्तिके निरोधसे सोए हुए मीनवाले सागरके समान मौन हो गये ॥३१॥ उस सागरके समान सेनाके मौन होने पर जरासंधने बृहस्पतिके समान वाक्यउच्चारण किये ॥३२॥ शीघ्रही राजोंकी सेना चारों ओरको धावमान हो और इस पुरीको चारों ओरसे घेर लें ॥३३॥ पत्थर छोडनेके यंत्र तथा मुद्गरकी मार करनी होगी,

तेषां सकञ्चुकोष्णीषास्स्थविरा वेत्रपाणयः ॥ चेरुर्मा शब्द इत्येवं वदन्तो राजशासनात् ॥ ३० ॥ तस्य रूपं बलस्यासीन्निश्श-ब्दस्तिमितस्य वै ॥ लीनमीनग्रहस्येव निश्शब्दस्य यथोदधेः ॥ ३१ ॥ निश्शब्दस्तिमिते तस्मिन्योगादिव महार्णवे ॥ जरासंधो बृहद्वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे ॥ ३२ ॥ शीघ्रं समभिवर्तन्तां बलानि पृथिवीक्षिताम् ॥ सर्वतो नगरी चेयं जनौघैः परिवार्यताम् ॥ ३३ ॥ अश्मयन्त्राणि युज्यन्तां क्षेपणीयाश्च मुद्गराः ॥ कार्या भूमिसमा सर्वा जलौघैश्च परिप्लुता ॥ ऊर्ध्वं चापा निवाह्यन्तां प्रासा वै तोमरास्तथा ॥ ३४ ॥ दार्यतां चैव टङ्काद्यैः खनित्रैश्च पुरी द्रुतम् ॥ नृपाश्च युद्धमार्गज्ञा विन्यस्यन्तामदूरतः ॥ ३५ ॥ अद्यप्रभृति सैन्यैर्मे पुरीरोधः प्रवर्त्यताम् ॥ यावदेतौ रणे गोपौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ ३६ ॥ संकर्षणं च कृष्णं च घातयामि शितैश्शरैः ॥ आकाशमपि बाणौघैर्निस्संपातं यथा भवेत् ॥३७॥ मयानुशिष्टास्तिष्ठन्तु पुरीभूमिषु भूमिपाः ॥ तेषु तेष्ववकाशेषु शीघ्रमारुह्यतां पुरीम् ॥ ३८ ॥

और सब भूमिको समान करो और जलसे युक्त सब भूमि मनोहर करो॥३४॥भाल ऊपरको फको और प्रास और तोमरसे तथा फरसी और कुदालसे पृथ्वीको खोद डालो और युद्धके मार्ग जाननेवाले राजा समीपमें स्थित हों ॥३५॥ अभीसे मेरी सेनासे पुरीको रोक लो जबतक यह वसुदेवपुत्रगोप॥३६॥ सर्कर्षण और श्रीकृष्णको मैं अपने बाणोंसे नष्ट करता हूं, जिस प्रकार कि, बाणसमूहोंसे आकाशमेंभी अवकाश न रहे॥३७॥तबतक मेरी आज्ञासे राजा

इस पुरीके चारों ओर स्थानोंमें स्थिर रहें, और उन उन समयोंमें पुरीमें शीघ्र प्रवेश करनेकी चेष्टा करो ॥३८॥ मद्रदेशका राजा, कलिंगाधिपति, चेकितान, बाह्लीक, काश्मीरका राजा, गोनर्द, करूषाधिपति॥३९॥द्रुम और किम्पुरुषोंके राजा पर्वतदेशके राजा, अनामय यह सब शीघ्रतासे नगरीके पश्चिम द्वारेको शीघ्र जाकर घेर लें॥४०॥ पौरव, वेणुदार, वैदर्भ, सोमक, रुक्मी, भोजाधिपति, और मालवके साथ सूर्याक्ष ॥४१॥ विन्द, अनुविन्द, महाबली उज्जयनीके राजा, महाबली वह दन्तवक्र छागली,पुरमित्रराजा, विराट ॥४२॥ कौरव, मालव, शतधन्वा, विदूरथ, भूरिश्रवा, त्रिगर्त, बाण,

मद्रः कलिङ्गाधिपतिश्चेकितानस्सबाह्लिकः ॥ काश्मीरराजो गोनर्दः करूषाधिपतिस्तथा ॥ ३९ ॥ द्रुमः किंपुरुषश्चैव पार्वतीयो ह्यनामयः ॥ नगर्याः पश्चिमं द्वारं शीघ्रमारोधयन्त्विति ॥ ४० ॥ पौरवो वेणुदारिश्च वैदर्भस्सोमकस्तथा ॥ रुक्मी च भोजाधिपतिस्सूर्याक्षश्च समालवः ॥४१॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दन्तवक्त्रश्च वीर्यवान् ॥ छागलिःपुरमित्रश्च विराटश्च महीपतिः ॥४२॥ कौरव्यौ मालवश्चैव शतधन्वा विदूरथः ॥ भूरिश्रवस्त्रिगर्तश्च बाणः पञ्चनदस्तथा ॥ ४३ ॥ उत्तरं नगरद्वारमेते दुर्गसहा नृपाः ॥ आरुह्य चाभिमर्दन्तां वज्रपतिमगौरवाः ॥ ४४ ॥ उलूकः कैतवश्चैव वीरश्चांशुमतस्सुतः ॥ एकलव्यो बृहत्क्षत्रः क्षत्रधर्मा जयद्रथः ॥ ४५ ॥ उत्तमौजाश्च शल्यश्च कौरवाः कैकयास्तथा ॥ वैदिशो वामदेवश्च सांकृतिश्च सिनीपतिः ॥४६॥ पूर्वं नगरनिर्व्यूहमेतेष्वायत्तमस्तु नः ॥ दारयन्तो विधावन्तु वाता इव बलाहकान् ॥४७॥ अहं च दरदश्चैव चेदिराजश्च वीर्यवान् ॥ दक्षिणं नगरद्वारं पालयामस्सुदंशिताः ॥ ४८ ॥ एवमेषा पुरी क्षिप्रं समन्ताद्वेष्टिता बलैः ॥ वज्रावपातविषमं प्राप्नोतु तुमुलं भयम् ॥४९॥

पंचनद ॥४३॥ यह युद्धके योग्य राजा इस नगरीके उत्तर द्वार आरोहण करें, जो कि,वज्रके समान दृढ है उसे विध्वंस कर डालो॥४४॥उलूक, केतव, वीर अंशुमानका पुत्र एकलव्य, बृहत्क्षत्र, क्षत्रधर्म, जयद्रथ॥४५॥उत्तमौजा, शल्य, कौरव, कैकय, वैदिश, वामदेव, सांकृति, सिनीपति॥४६॥ यह सब नगरके पूर्वद्वारको घेर लें,और जैसे पवन मेघोंको विदीर्ण करता है इस प्रकार विदीर्ण कर दें ॥ ४७ ॥ मैं, दरद, वीर्यवान शिशुपाल दक्षिण द्वारको रोकता हूं ॥ ४८ ॥ इस प्रकार यह पुरी चारों ओरसे घिर जानेके कारण वज्रपातके समान महासंकटको प्राप्त होगी॥ ४९ ॥

गदावाले गदासे, परिघवाले परिघसे, और दूसरे अनेक शस्त्रोंसे इस पुरीको छिन्न भिन्न कर दो॥५०॥इसी समय यह पुरी महाविषम संकटसे युक्त हो जाय, इस प्रकार तुम सब राजोंको करना उचित है, और सब भूमि समान कर दो॥५१॥इस प्रकार चतुरंग सेनासे युक्त हो जरासंध स्थित हुआ, और सब राजोंसहित क्रुद्ध हो यदुवंशियोंपर चढाई की॥५२॥उधर यादवोंनेभी व्यूहमें स्थित हो उनके प्रहारोंको ग्रहण किया, वह उनका युद्ध देवासुरके संग्रामके समान हुआ, जिसमें सहस्रों रथ और हाथियोंका नाश हो गया ॥५३॥ उस समय श्रीकृष्ण और बलदेवजी नगरसे बाहर निकले, जिनके देखतेही

गदिनो ये गदाभिस्ते परिघैः परिघायुधाः ॥ अपरे विविधैश्शस्त्रैर्दारयन्तु पुरीमिमाम् ॥ ५० ॥ अद्यैव नगरी ह्येषा विषमांच्चय-संकटा ॥ कार्या भूमिसमा सर्वा भवद्भिर्वसुधाधिपैः ॥ ५१ ॥ चतुरङ्गबलैर्व्यूह्य जरासंधो व्यवस्थितः ॥ अथाभ्ययाद्यदून् क्रुद्ध-स्सह सर्वैर्नराधिपैः ॥ ५२ ॥ प्रतिजग्मुर्दशार्हास्तं व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥ तद्युद्धमभवद्घोरं तेषां देवासुरोपमम् ॥ अल्पानां बहुभिस्सार्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥ ५३ ॥ नगरान्निस्सृतौ दृष्ट्वा वसुदेवसुतावुभौ ॥ क्षुभितं नृवरानीकं त्रस्तसंमूढवाहनम् ॥५४॥ रथस्थौ दंशितौ चैव चेरतुस्तत्र यादवौ ॥ मकराविव संरब्धौ समुद्रक्षोभणावुभौ ॥ ५५ ॥ तयोः प्रयुद्ध्यतोस्संख्ये मतिरासीन्म-हात्मनोः ॥ आयुधानां पुराणानामादानकृतलक्षणा ॥ ५६ ॥ ततः खान्निपतन्ति स्म दिव्यान्याहवसंप्लवे ॥ लेलिहानानि दीप्तानि महान्ति सुदृढानि च ॥ ५७ ॥ क्रव्यादैरनुयातानि मूर्तिमन्ति बृहन्ति च ॥ तृषितान्याहवे भोक्तुं नृपमांसानि वै भृशम् ॥ ५८ ॥ दिव्यस्रग्दामधारीणि त्रासयन्ति च खेचरान् ॥ प्रभया भासमानानि पतमानानि चाम्बरात् ॥ ५९ ॥

राजोंकी सेना क्षुभित और मूढ वाहनवाली हो गई ॥५४॥ तब रथमें स्थित हो वे दोनों भाई सेनामें विचरने लगे, और दो क्रोधित मकरके समान उन दोनोंने सेनारूपी सागरको क्षुभित कर दिया ॥५५॥ तब युद्ध करनेके समय उन दोनोंकी यह बुद्धि हुई कि, अपने दिव्यरूपीप्राचीन अस्त्रोंको ग्रहण करें ॥५६॥ तब उसी समय उस संग्राममें आकाशसे महादीप्तिमान महादृढ ॥ ५७ ॥ मांसभक्षी जीवोंसे युक्त मूर्तिमान् महान् स्वरूप संग्राममें राजोंके मांस भक्षण करनेकी अभिलाषा किये ॥ ५८ ॥ दिव्य फूलोंकी माला धारे पक्षियोंको त्रास देते हुए प्रभासे प्रकाशमान आकाशसे पतित

हुए॥५९॥संवर्तक नाम हल और सौनन्द नाम मूसल श्रेष्ठ शार्ङ्ग धनुष,कौमोदकीगदा॥६०॥ यह चार हमातेजवान् विष्णुके अस्त्र यादवोंके महा-
संग्राममें उनके निकट आनकर स्थित हुए॥६१॥प्रथम रामने श्रेष्ठ हल ग्रहण किया,जो दिव्य माला धारे युद्धमें सर्पके समान भ्रमण करता था॥६२॥
पुनः श्रीमान् सौनन्द नामक मूसल शत्रुओंका नष्ट करनेवालाभी बलरामजीने दक्षिण हाथसे ग्रहण किया॥६३॥ और जो मेघके समान शब्दायमान
लोकमें दर्शनीय था वह शार्ङ्गधनुष्य श्रीकृष्णने ग्रहण किया॥६४॥और देवताओंसे जिसका प्रयोजन वर्णन कर दिया गया है ऐसी कौमोदकी गदाभी

हलं संवर्तकं नाम सौनन्दं मुसलं तथा ॥ धनुषां प्रवरं शार्ङ्गं गदां कौमोदकीं तथा ॥ ६० ॥ चत्वार्येतानि तेजांसि विष्णुप्रह-
रणानि च । ताभ्यां समवतीर्णानि यादवाभ्यां महामृधे ॥ ६१ ॥ जग्राह प्रथमं रामो ललामप्रतिमं हलम् ॥ सर्पन्तमिव सर्पेन्द्रं
दिव्यमालाकुलं मृधे ॥ ६२ ॥ सौनन्दं च ततश्श्रीमान्निरानन्दकरं द्विषाम् ॥ सव्येन सात्वतां श्रेष्ठो जग्राह मुशलोत्तमम् ॥ ६३॥
दर्शनीयं च लोकेषु धनुर्जलदनिःस्वनम् ॥ नाम्ना शार्ङ्गमितिख्यातं कृष्णो जग्राह वीर्यवान् ॥ ६४ ॥ देवैर्निगदितार्थस्य गदा
तस्यापरे करे ॥ निक्षिप्ता कुमुदाक्षस्य नाम्ना कौमोदकीति सा ॥ ६५ ॥ तौ सप्रहरणौ वीरौ साक्षाद्विष्णुतनूपमौ ॥ समरे राम-
गोविन्दौ रिपूंस्तान्प्रत्ययुद्ध्यताम् ॥ ६६ ॥ सायुधप्रग्रहौ वीरौ तावन्योन्याश्रयावुभौ ॥ पूर्वजानुजसंज्ञौ तौ रामगोविन्दलक्षणौ
॥ ६७ ॥ द्विषत्सु प्रतिकुर्वाणौ पराक्रान्तौ यथेश्वरौ ॥ विचेरतुर्यथा देवौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ ६८ ॥ हलमुद्यम्य रामस्तु सर्पेन्द्रमिव
कोपितः ॥ चचार समरे वीरो विद्विषामन्तको यथा ॥ ६९ ॥ ॥ ९७ ॥

कमलनेत्र श्रीकृष्णके हाथमें शोभित हुई॥६५॥अब प्रहार करनेमें यह दोनों वीर साक्षात् विष्णुके शरीरक समान समरमें राम कृष्ण इन्हीं आयुधोंसे
शत्रुसंहार करने लगे॥६६॥उस प्रकार एक दूसरेके आश्रयसे आयुध प्रहार करनेवाले वे दोनों वीर राम कृष्ण पूर्वमेंभी अनुजरूप॥६७॥ईश्वरके समान
शत्रुओंमें पराक्रम करने लगे, और वे दोनों वसुदेवपुत्र देवताके समान विचरने लगे॥६८॥शेषनागके समान क्रोधकर बलरामजीने हल उठाकर शत्रु

ओंको कालके समान समरमें विचरना प्रारंभ किया॥६९॥श्रेष्ठ क्षत्रियोंके समूहके समूह हलसे खचते हुए हाथी घोडोंकोभी मारकर अपना क्रोध सफल करते हुए ॥७०॥ हाथियोंको हलसे खच और उनके ऊपर मूशलका प्रहार करते बलरामजी युद्धमें पहाडोंको मथन करते शोभित होने लगे ॥७१॥ इस प्रकार वे श्रेष्ठ क्षत्रिय युद्धमें बलरामजीसे ताडित हो समरसे डरकर जरासंधके निकट गये॥७२॥ क्षत्रियधर्ममें स्थित हो जरासंधने उनसे कहा तुम्हारे क्षत्रियपनको धिक्कार है जो युद्धमें कातरता दिखाते हो ॥ ७३ ॥ बुद्धिमानोंने युद्धमें भागना और विरथ होकर भागनेमें गर्भहत्याके समान

विकर्षन्रथवृन्दानि क्षत्रियाणां महात्मनाम् ॥ चकार रोषं सफलं नागेषु च हयेषु च ॥ ७० ॥ कुञ्जराँल्लाङ्गलक्षिप्तान्मुशलाक्षेपताडितान् ॥ रामो विराजन्समरे निर्ममन्थ यथाचलान् ॥७१॥ ते वध्यमाना रामेण रणे क्षत्रियपुङ्गवाः॥ जरासंधान्तिकं भीताः समरात् प्रतिजग्मिरे ॥ ७२ ॥ तानुवाच जरासंधः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः ॥ धिगेतां क्षत्रवृत्तिं वः समरे कातरात्मनाम् ॥ ७३ ॥ परावृत्तस्य समरे विरथस्य पलायतः ॥ भ्रूणहत्यामिवासह्यां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ७४ ॥ भीताः कस्मान्निवर्तध्वं धिगेतां क्षत्रवृत्तिताम् ॥ क्षिप्रं सर्वे निवर्तध्वं मम वाक्येन चोदिताः ॥ ७५ ॥ अथवा तिष्ठत रथैः प्रेक्षकास्समवस्थितः ॥' यावदेतौ रणे गोपौ प्रेषयामि यमक्षयम्॥७६॥ ततस्ते क्षत्रियास्सर्वे जरासंधेन नोदिताः ॥ सृजन्तश्शरजालानि हृष्टा योद्धुं व्यवस्थिताः॥७७॥ ते हयैः काञ्चनापीडै रथैश्चाम्बुदनादिभिः ॥ नागैश्चाम्बुदसंकाशैर्महामात्रप्रचोदितैः॥७८॥सतनुत्रास्सनिस्त्रिंशास्सपताकायुधध्वजाः॥ स्वारोपितधनुष्मन्तस्सतूणीरास्सतोमराः ॥ ७९ ॥

दोष कहा है ॥७४॥ तुम डरकर कैसे निवृत्त हुए, तुम्हारी इस क्षत्रियताको धिक्कार है, शीघ्र तुम मेरी आज्ञा मानकर भागनेसे निवृत्त हो ॥ ७५ ॥ अथवा तुम रथमें बैठकर देखो कि, जबतक मैं इन दोनों गोपोंको युद्ध कर यमके स्थानमें भजता हूं ॥७६॥ इस प्रकार वे सब क्षत्रिय जरासंधसे प्रेरित हो प्रसन्न हो युद्ध करनेको शरजाल त्यागने लगे ॥ ७७ ॥ सोनेके मुकुटवाले घोडे और मेघके समान शब्द करनेवाले रथ मेघके समान शब्द करनेवाले महावतोंके प्रेरे ॥ ७८ ॥ कवच पताका अस्त्र ध्वजा धनुष तूणीर तोमर ॥ ७९ ॥

छत्र धारण किये सुन्दर चामरोंसे वीज्यमान वे राजा जरासंधके धिक्कारे युद्धमें रथमें बैठेशोभित हुए ॥ ८० ॥ वे युद्धके रंगमें रंगे रथी आयुध और बडी भारी गदा धारे सुन्दरप्रहार करने लगे ॥ ८१ ॥ इसी समय श्रीकृष्ण देवताओंके आनन्द बढानेहारे गरुडध्वजावाले रथमें स्थित हो ॥ ८२ ॥ जरासंधके सन्मुख आये, और उसे आठ बाणोंसे विद्ध किया, और पांच तीक्ष्ण बाणोंसे इसके सारथीको विद्ध किया ॥ ८३ ॥ और महाबलीने संग्राममें बडे यत्नसे इसके घोडोंपरभी प्रहार किया उसे संकटमें जानकर महारथी चित्रसेन ॥ ८४ ॥ सेनापति कैशिकने तीन बाणोंसे कृष्णको

सच्छत्रासादिनश्चैव चारुचामरवीजिताः ॥ रणे तेऽधिगता रेजुस्स्यन्दनस्था महीक्षितः ॥ ८० ॥ ते युद्धरागा रथिनो व्यमाहन्त युधांवराः गदाभिश्चैव गुर्वीभिः क्षेपणायैश्च मुद्गरैः ॥८१॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवानां नन्दिवर्द्धनः ॥ सुपर्णध्वजमास्थाय कृष्णस्तु रथमुत्तमम् ॥ ८२ ॥ समभ्ययाज्जरासंधं शरैर्विव्याध चाष्टभिः ॥ सारथिं चास्य विव्याध पञ्चभिर्निशितैश्शरैः ॥ ८३ ॥ जघान तुरगांश्चाजौ यतमानस्य वीर्यवान् ॥ तं कृच्छ्रगतमाज्ञाय चित्रसेनो महारथाः ॥ ८४ ॥ सेनानीः कैशिकश्चैव कृष्णं विविधतुः शरैः ॥ त्रिभिर्विव्याध संसक्तं बलदेवं च कैशिकः ॥ ८५ ॥ बलदेवो धनुश्चास्य भल्लेनाजौ द्विधाकरोत् ॥ जवेनाभ्यर्दयच्चापि तानरीञ्छरवृष्टिभिः ॥ ८६ ॥ बाहुभिर्बहुधा वीरान्समन्तात्स्वर्णभूषणैः ॥ तं चित्रसेनस्संरब्धो विव्याध नवभिश्शरैः ॥ ८७ ॥ कैशिकः पञ्चभिश्चापि जरासंधश्च सप्तभिः ॥ त्रिभिस्त्रिभिश्च नाराचैस्तान्बिभेद जनार्दनः॥८८॥पञ्चभिः पञ्चभिश्चैव बलदेवशितैश्शरैः ॥ रथं चैवास्य चिच्छेद चित्रसेनस्य वीर्यवान् ॥ ८९ ॥

और तीन बाणोंसे बलरामको विद्ध किया ॥ ८५ ॥ तब बलरामजीने भालेसे इसके धनुषके दो खण्ड कर दिये और बडी शीघ्रतासे उन शत्रुओंको बाणवृष्टिसे मर्दन करने लगे ॥ ८६ ॥ चारों ओरसे सुवर्णभूषणवाली वीरोंकी भुजा छेदन कर डाली, तब चित्रसेनने व्याकुल हो बलरामजीको नौ बाणोंसे विद्ध किया ॥ ८७ ॥ कैशिकने पांच और जरासंधने सात बाणोंसे उन्हें विद्ध किया, तब श्रीकृष्णने उन सबको तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ ८८ ॥ और बलरामजीने पांच पांच बाणके प्रहारसे इस चित्रसेन वीरका रथ चूर्ण कर दिया ॥ ८९ ॥

और भालेसे बलरामजीने इसके धनुषभी ताडित कर दिया,वह धनुष और रथ टूट जानेसे बडे वेगसे गदा ग्रहण करता हुआ ॥ ९० ॥ और बलरामजीको मारनेकी इच्छासे वह क्रोध कर दौडा तब चित्रसेनके वधकी इच्छासे उन्होंने नाराचोंसे उसको विद्ध किया,तब महाबली जरासंधने रामका धनुष छेदन कर दिया॥९१॥और क्रोधकर गदासे जरासंधने बलरामजीके घोडोंको मारा, और वह महाबली बलरामजीके ऊपरको झपटा॥९२॥ इधर बलरामजी मूसल लेकर जरासंधके ऊपर झपटे,उन परस्पर जीतनेकी इच्छा करनेवालोंको महायुद्ध हुआ ॥९३॥ चित्रसेन बलरामजीको जरासं-

बलदेवो धनुश्चास्य भल्लेनाजौ द्विधा करोत् ॥ स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामादाय वीर्यवान् ॥९०॥ अभ्यधावत्सुसंरब्धो जिघांसुर्मुशलायुधम् ॥ सिसृक्षतस्तु नाराचांश्चित्रसेनवधैषिणः ॥ धनुश्चिच्छेद रामस्य जरासंधो महाबलः ॥ ९१ ॥ गदया च जघानाश्वान्क्रोधात्समगधेश्वरः ॥ रामं चाभ्यद्रवद्वीरो जरासंधो महाबलः ॥ ९२ ॥ आदाय मुशलं रामो जरासंधमुपाद्रवत् तयोस्तद्युद्धमभवत्परस्परवधैषिणोः ॥ ९३ ॥ चित्रसेनस्तु संसक्तं दृष्ट्वा रामेण मागधम् ॥ रथमन्यं समारुह्य जरासंधमवारयत् ॥९४॥ ततो बलेन महता गजानीकेन चाप्यथ ॥ उभयोरन्तरे ताभ्यां संकुलं समपद्यत ॥ ९५ ॥ ततस्सैन्येन महता जरासंधोऽभिसंवृतः ॥ रामकृष्णाग्रगान्भोजानाससाद महाबलः ॥९६॥ तत्र प्रक्षुभितस्येव सागरस्य महास्वनः ॥ प्रादुर्बभूव तुमुलस्सेनयोरुभयोरपि ॥ ९७ ॥ वेणुभेरीमृदङ्गानां शंखानां च सहस्रशः ॥ उभयोस्सेनयो राजन्प्रादुरासीन्महास्वनः ॥ ९८ ॥ क्ष्वेडितास्फोटितोत्कुष्टैस्तुमुलस्सर्वतोऽभवत् ॥ उत्पपात रजश्चापि खुरनेमिसमुद्धतम् ॥ ९९ ॥

धसे लडता देख दूसरे रथमें चढ बैठा और जरासंधको निवारण किया ॥ ९४ ॥ तब बडी भारी हाथीकी सेना जरासंध और बलरामजीके बीचमें आ गई और महा घमसान हो गया ॥ ९५ ॥ तब जरासंध महासेनासे संयुक्त हो रामकृष्णके अग्रभागमें स्थित भोजवंशियोंको पीडित करने लगा ॥९६॥ तब क्षुभित होते हुए सागरके समान महाशब्द दोनों सेनाओंमेंसे प्रगट हुआ ॥ ९७ ॥ वेणु, भेरी, मृदंग, शंख, सहस्रों बजने लगे, दोनों सेनाओंमें महा शब्द हुआ॥९८॥चारों ओरसे आस्फालन आघात और ताडनका शब्द होने लगा, रथकी नेमी और घोडोंके रथसे बहुत धूर

उठी ॥९९॥ महाशस्त्र उठाये धनुष चढाये परस्पर गर्जते हुए शूर वहां स्थित हुए ॥१००॥ रथवाले घोडेवाले सहस्रों पैदल और महाबली हाथी सहस्रों युद्धमें स्थित हुए ॥ १ ॥ वह सब संघट्ट मिलकर प्राणपणसे युद्ध करने लगे, वृष्णि और जरासंधकी सेनामें घोर संग्राम होने लगा ॥२॥ तब सिनि,अनाधृष्टि, बभ्रु, पृथु, आहुक बलदेवको आगे कर आधी सेनाको ले ॥ ३ ॥ शत्रुसेनाके दहिनी ओरसे युद्ध करने लगे, जो सेना फिर शिशुपाल और जरासंधकी पालना की हुई थी ॥४॥ और उत्तरके राजा शल्य शाल्व आदिसे रक्षित हो सेना प्राणपणसे युद्ध कर बाणवर्षण करने

समुद्यतमहाशस्त्राः प्रगृहीतशरासनाः ॥ अन्योन्यमभिगर्जन्तश्शूरास्तत्रावतस्थिरे ॥ १०० ॥ रथिनस्सादिनश्चैव पत्तयश्च सहस्रशः ॥ गजाश्चातिबलास्तत्र समुत्पेतुस्समन्ततः ॥ १ ॥ स सन्निपातस्तुमुलस्त्यक्त्वा प्राणानवर्तत ॥ वृष्णिभिस्सह योधानां जरासंधस्य दारुणः ॥ २ ॥ ततशिनिरनाधृष्टिर्बभ्रुर्विपृथुराहुकः ॥ बलदेवं पुरुस्कृत्य सैन्यस्यार्द्धेन दंशिताः ॥ ३ ॥ दक्षिणं पक्षमासेदुश्शत्रुसैन्यस्य भारत ॥ पालितं चेदिराजेन जरासंधेन वा विभो ॥४॥ उदीच्यैश्च महावीर्यैश्शल्यशाल्वादिभिर्नृपैः ॥ सृजन्तश्शरवर्षाणि समभित्यक्तजीविताः ॥ ५ ॥ अवगाहः पृथुः कङ्कश्शतद्युम्नो विदूरथः ॥ हृषीकेशं पुरस्कृत्य सैनस्यार्धेन दंशिता ॥ ६ ॥ भीष्मकेणाभिगुप्तश्च रुक्मिणा च महात्मना ॥ देवकेनापि राजेन्द्र तथा मद्रेश्वरेण च ॥ ७ ॥ प्राच्यैश्च दाक्षिणात्यैश्च गुप्तवीर्यबलान्वितैः ॥ तेषां च युद्धमभवत्समभित्यक्तजीवितम् ॥ शक्त्यृष्टिप्रासबाणौघान्सृजतामशनिस्वनान् ॥ ८ ॥ सात्यकिश्चित्रकश्श्यामो युयुधानश्च वीर्यवान् ॥ राजाधिदेवो मृदुरश्श्वफल्कश्च महारथः ॥ ९ ॥

लगी ॥ ५ ॥ अवगाह, पृथु, कंक, शत, द्युम्न,विदूरथ, यह कृष्णको आगे कर आधी सेनासे युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥ और भीष्मकसे रक्षित होकर महात्मा रुक्मी, देवक,मद्रेश्वर,प्राच्य और दक्षिणात्यसे रक्षित पश्चिम पक्षसे करने लगे ॥ ७ ॥ जीवनकी इच्छा त्याग उनके साथ युद्ध करने लगे, शक्ति ऋष्टि प्रास बाणोंको छोडने लगे जिनके शब्द वज्रके समान होने लगे ॥ ८ ॥ सात्यकी, चित्रक, श्याम युयुधान राजाधिदेव, मृदु, महारथ

श्वफल्क॥९॥सत्राजित् और प्रसेन महासेनासे युक्त हो शत्रुके वांये पक्षको प्राप्त हुए ॥ ११० ॥ और व्यूहके आधी और मृदुर, वेणुदारिसे रक्षित हो वेणुदार आदि अनेक राजोंके सहित जरासंधके पक्षको पालन करने लगे॥१११॥इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां पंचत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥ वैशंपायन बोले; तब यदुवंशियोंका जरासंधकी सेनासे महायुद्ध होने लगा और मगधदेशकी सेनाके साथ उनके अनुयायी सहायता देते थे॥१॥ रुक्मीके संग वासुदेवका, भीष्मके साथ आहुकका, क्रथका वसुदेवके साथ, कैशिकसे बभ्रुका ॥ २ ॥ गदसे शिशुपालका; शंकुसे दंतवक्रका इसी

सत्राजिच्च प्रसेनश्च बलेन महता वृताः ॥ व्यूहस्य पक्षं ते सर्वे प्रतीयुर्द्वेषतां मृधे ॥ ११० ॥ व्यूहस्यार्द्धं समासेदुर्मृदुरेणाभिरक्षितम् ॥ राजभिश्चापि बहुभिर्वेणुदारिमुखैस्सह ॥ १११ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि मथुरोपरोधे युद्धवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो युद्धानि वृष्णीनां बभूवुः सुमहान्त्यथ ॥ मागधस्य महामात्रैर्नृपैश्चैवानुयायिभिः ॥ १ ॥ रुक्मिणा वासुदेवस्य भीष्मकेनाहुकस्य च ॥ क्रथस्य वसुदेवेन कैशिकस्य तु बभ्रुणा ॥ २ ॥ गदेन चेदिराजस्य दन्तवक्रस्य शङ्कुना ॥ तथान्यैर्वृष्णिवीराणां नृपाणां च महात्मनाम् ॥ ३ ॥ युद्धमासीद्धि सैन्यानां सैनिकैर्भरतर्षभ ॥ अहानि पञ्च चैकं च षट् सप्ताष्टौ च दारुणम् ॥ ४ ॥ गजैर्गजा हयैरश्वाः पदाताश्च पदातिभिः ॥ रथै रथा विमिश्राश्च योधा युयुधिरे नृप ॥ ५ ॥ जरासंधस्य नृपते रामेणासीत्समागमः ॥ महेन्द्रस्येव वृत्रेण दारुणो रोमहर्षणः ॥६॥ अवेक्ष्य रुक्मिणीं कृष्णो रुक्मिणं न व्यपोथयत् ॥ ज्वलनार्कांशुसंकाशानाशीविषविषोपमान् ॥ ७ ॥

प्रकार दूसरे वृष्णिवीरोंका महात्मा राजोंके साथ संग्राम होने लगा॥३॥ सेनाके मनुष्योंका सेनाके लोगोंसे युद्ध होने लगा, और सत्ताईस दिनतक महायुद्ध होता रहा ॥४॥ हाथीसे हाथी, घोडेसे घोडे, रथसे रथ और पैदलोंसे पैदलोंका युद्ध होने लगा,इस प्रकार वे योधा संग्राम करने लगे॥५॥ जरासंध और बलरामका युद्ध होने लगा जैसे महेन्द्रका वृत्रासुरके साथ रोमहर्षण संग्राम होता है ॥६॥ रुक्मिणीको देखकर कृष्णने रुक्मिको बहुत व्यथा नहीं दी थी वह युद्ध जलते हुए सूर्य और विषैले सर्पोंके समान होता था ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णने शिक्षाके निमित्त उसके बाणोंको निवारण किया,इस प्रकार राजोंकी सेनाका क्षय होने लगा॥८॥हे राजन् ! दोनों सेनाओंमें मांस और रुधिरकी कींच हो गई और सैंकडों कबंध उस समरमें उठे॥९॥उस समरमें उठे हुए कबंधोंकी संख्या कोई नहीं कर सकता उस समय रथी बलरामजीने सर्पके समान विषैले बाणोंसे ॥ १० ॥ उसे आवृत करते हुए चले और वीर जरासंध उनके निकट आया और शीघ्रगामी रथमें बडे वेगसे धावमान हुआ ॥११॥ दोनों अस्त्रोंसे एक दूसरेको विद्ध करने लगे जिस समय वह क्षीणशस्त्र घोडेहीन और सारथीहीन हो गये ॥१२॥ तब दोनों

वारयामास कृष्णो वै शरांस्तस्य तु शिक्षया ॥ इत्येषां सुमहानासीद्बलौघानां परिक्षयः ॥ ८ ॥ उभयोस्सेनयो राजन्मांसशोणितकर्दमः ॥ कबन्धानि समुत्तस्थुस्सुबहूनि समन्ततः ॥ ९ ॥ तस्मिन्विमर्दे योधानां संख्यावृत्तिकराणि च ॥ रथी रामो जरासंधं शरैराशीविषोपमैः ॥ १० ॥ आवृण्वन्नभ्ययाद्वीरस्तं च राजा स मागधः ॥ अभ्यवर्तत वेगेन स्यदनेनाशुगामिना ॥ ११ ॥ अन्योन्यं विविधैरस्त्रैर्विध्वा विध्वा विनेदतुः ॥ तौ क्षीणशस्त्रौ विरथौ हताश्वौ हतसारथी ॥ १२ ॥ गदे गृहीत्वा विक्रान्तौ अन्योन्यमभिधावताम् ॥ कम्पयन्तौ भुवं वीरौ तावुद्यतगदावुभौ ॥ १३ ॥ ददर्शाते महात्मानौ गिरीशशिखराविव ॥ व्युपारमन्त युद्धानि पश्यतां तौ महाभुजौ ॥ संरब्धावभिधावन्तौ गदायुद्धेषु विश्रुतौ ॥१४॥ उभौ तौ परमाचार्यौ लोके ख्यातौ महाबलौ ॥ मत्ताविव गजौ युद्धे तावन्योन्यमयुध्यताम् ॥ १५ ॥ ततो देवास्सगन्धर्वास्सिद्धाश्च समहर्षयः ॥ समन्ततश्चाप्सरसस्समाजग्मुस्सहस्रशः ॥ १६ ॥ तद्देवयक्षगन्धर्वमहर्षिभिरलंकृतम् ॥ शुशुभेऽभ्यधिकं राजन्दिवं ज्योतिर्गणैरिव ॥ १७ ॥

एक दूसरेको मारनेको गदा लेकर दौडे जिस समय वह दोनों वीर गदा लेकर चले, उस समय पृथ्वी कम्पित होने लगी ॥१३॥ उस समय वह दोनों हिमालयके शिखरके समान दीखने लगे उस समय उन दोनोंका युद्ध देखनेको सब योधा युद्धसे शान्त हो गये,दोनों गदायुद्धमें विशारद बडे वेगसे धावमान होते थे ॥॥१४॥दोनोंलोकमें विख्यात पुरुषार्थयुक्त गदायुद्धके आचार्य थे, और मतवाले हाथीके समान एक दूसरेके ऊपर धावमान होते थे ॥ १५ ॥ देव देवता गंधर्व महर्षि और सैकडों अप्सरा चारों ओरसे उस युद्धके देखनेको चले आये ॥ १६ ॥हे राजन् ! वह भूमि देवता यक्ष

॥१००॥

गन्धर्व महर्षियोंसे अलंकृत होकर ऐसे शोभित हुई जैसे तारागणोंसे आकाश शोभित होता है ॥ १७ ॥ तब महाबली जरासंध रामके ऊपर धावमान हुआ वह बाईं ओर और बलरामजी दहनी ओर स्थित हुए ॥ १८ ॥ तब वे दोनों गदायुद्धके पंडित एक दूसरेको प्रहार करते हुए, और जैसे हाथी दांतपर दांतकी चोट देना करते हैं इसी प्रकार उनके नादसे दशों दिशा व्याप्त हो गईं ॥१९॥ बलरामजीके गदा प्रहारसे वज्रके समान शब्द होता था और जरासंधके चरणोंसे पर्वतके विदीर्ण होनेका शब्द होता था ॥ २० ॥ जरासंधकी प्रहार की गदासे गदाधारियोंमें श्रेष्ठ बलरामजी कंपित न हुए,

अभिदुद्राव रामं तु जरासंधो महाबलः ॥ सव्यं मण्डलमाश्रित्य बलदेवस्तु दक्षिणम् ॥ १८ ॥ प्रहरन्तौ ततोऽन्योन्यं गदायुद्ध-विशारदौ ॥ दन्ताभ्यामिव मातङ्गौ नादयन्तौ दिशो दश ॥ १९ ॥ गदानिपातो रामस्य शुश्रुवेऽशनिस्वनः ॥ जरासंधस्य चरणे पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ २० ॥ न स्म कम्पते रामं जरासंधकरच्युता ॥ गदा गदाभृतां श्रेष्ठं विन्ध्यं गिरिमिवानिलः ॥ २१ ॥ रामस्य तु गदावेगं वीर्यात्स मगधेश्वरः ॥ सेहे धैर्येण महता शिक्षया च व्यपोहयत् ॥२२॥ एवं तौ तत्र संग्रामे विचरन्तौ महा-बलौ ॥ मण्डलानि विचित्राणि विचेरतुररिंदम ॥ २३ ॥ व्यायच्छन्तौ चिरं कालं परिश्रान्तौ च तस्थतुः ॥ समाश्वास्य मुहूर्तं तु पुनरन्योन्यमाहताम् ॥ २४ ॥ एवं तौ योधमुख्यौ तु समं युयुधतुश्चिरम् ॥ न च तौ युद्धवैमुख्यमुभावेव प्रजग्मतुः ॥ २५ ॥ अथापश्यद्गदायुद्धे विशेषं तस्य वीर्यवान् ॥ रामः क्रुद्धो गदां त्यक्त्वा जग्राह मुशलोत्तमम् ॥ २६ ॥

जिस प्रकार पवन विंध्याचलको कंपित नहीं कर सकता ॥ २१ ॥ परन्तु बलरामजीकी प्रहार की हुई गदाको बडे पराक्रम होनेसेभी मगधेश्वर महाशि-क्षाके अभ्याससे धैर्य धारण कर सहन करता हुआ ॥ २२ ॥ इस प्रकार उस महासंग्राममें विचरते हुए वे दोनों महाबली वीर विचित्र मंडलसे चलते थे ॥२३॥ और बहुत कालतक युद्ध करनेसे थककर विश्राम करनेको स्थित हुए और कुछ देर स्थित होके फिर युद्धकरने लगे ॥ २४ ॥ इस प्रकार वे बली बहुत समयतक युद्ध करते रहे परन्तु उनमेंसे कोईभी युद्धसे विमुख न हुआ॥२५॥ तब बलरामजीने जरासंधको गदायुद्धमें विशेष पाया तब

बलरामजीने गदाको छोडकर महाबली मूसल ग्रहण किया॥२६॥इस प्रकार घोरदर्शन मूसल उठाये हुए देखकर कि,बलदेवजीने महायुद्धमें क्रोधकर वह अमोघ अस्त्र ग्रहण किया है॥२७॥उस समय आकाशमें सबके सुननेके योग्य वाणी हुई, और हल उठाये हुए बलदेवजीसे कहने लगी॥२८॥ हे राम ! यह तुम्हारे हाथसे मरने योग्य नहीं है इसके मारनेमें श्रम मत करो इसका मारनेहारा हमने रच दिया है, इस कारण इससे युद्ध मत करो शीघ्रही जरासंधके प्राण नष्ट हो जायंगे ॥२९॥ यह वचन सुनतेही जरासंधका चित्त छिन्न हो गया, और बलरामजीने उसके ऊपर अस्त्रप्रहार नहीं

तमुद्यन्तं तदा दृष्ट्वा मुसलं घोरदर्शनम् ॥ अमोघं बलदेवेन क्रुद्धेन तु महारणे ॥ २७ ॥ ततोऽन्तरिक्षे वागासीत्सुस्वरा लोकसाक्षिणी ॥ उवाच बलदेवं तं समुद्यतहलायुधम् ॥ २८ ॥ न त्वया राम वध्योऽयमलं खेदेन मागधे ॥ विदितोऽस्य मया मृत्युस्तस्मात्साधु व्युपारम ॥ अचिरेणैव कालेन प्राणांस्त्यक्ष्यति मागधः ॥ २९ ॥ जरासंधस्तु तच्छ्रुत्वा विमनास्समपद्यत ॥ न प्रजह्रे ततस्तस्मै पुनरेव हलायुधः ॥ ३० ॥ तौ व्युपारमतां युद्धे वृष्णयस्ते च पार्थिवाः न असत्क्रमभवद्युद्धं तेषामेवं सुदारुणम् ॥ ३१ ॥ दीर्घकालं महाराज निघ्नतामितरेतरम् ॥ पराजिते त्वपक्रान्ते जरासंधे महीपतौ ॥३२॥ अस्तं याते दिनकरे नानुसस्रुस्तदा निशि ॥ समानीय स्वकं सैन्यं लब्धलक्ष्या महाबलाः ॥३३॥ पुरीं प्रविविशुर्हृष्टाः केशवेनाभिपालिताः ॥ खाच्च्युतान्यायुधान्येवं तान्येवान्तर्दधुस्तदा ॥३४॥ जरासंधोऽपि नृपतिर्विमनास्स्वपुरीं ययौ ॥ राजानश्चानुगा येऽस्य स्वराष्ट्राण्येव ते ययुः ॥३५॥

किया॥३०॥जब उन्होंने युद्ध त्याग दिया तब सब यदुवंशी और दूसरे राजोंनेभी युद्ध त्याग दिया,और उनके भयंकर युद्ध शान्त हो गये॥३१॥ हे महाराज ! इस प्रकारसे परस्पर युद्ध करनेसे बहुत काल बीता, तब हारकर जरासंध अपने देशको चला ॥ ३२ ॥ उस समय सूर्यके अस्त होनेपर अन्धकार हो जानेसे यदुवंशियोंने उसका पीछा नहीं किया वह महाबली अपनी सेनाको लेकर ॥३३॥ श्रीकृष्णपालित पुरीमें वे सब प्रसन्न होकर प्रविष्ट हुए, जो आयुध आकाशसे पतित हुए थे वह फिर अन्तर्धान हो गये॥३४॥ और राजा जरासंधभी विमन हो अपनी पुरीको गया

और जो उसके साथी राजा थे वेभी अपने अपने राज्यस्थानोंको चले गये॥३५॥परन्तु हे राजन् ! जरासंधको जीतकरभी यदुवंशियोंने उसको जीता हुआ नहीं माना कारण कि; यह राजा महाबली था ॥ ३६ ॥ इस प्रकार अठारह वार जरासंध सेना लेकर आया परन्तु कोई यदुवंशी उसको मारनेको समर्थ न हुए ॥३७॥ हे राजन् ! प्रत्येक वार उसके साथ वीस २ अक्षौहिणी सेना थी परन्तु जरासंधराजाकी सेना जिस कारण चढकर आई थी ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! यादवोंकी सेना थोडी होनेसे तिरस्कृत हुई और महाबली जरासंधने राजाके साथ ॥ ३९ ॥ फिर युद्धका

जरासंधं तु ते जित्वा मेनिरे नैव निर्जितम् ॥ वृष्णयः कुरुशार्दूल राजा ह्यतिबलस्स वै ॥ ३६ ॥ दश चाष्टौ च संग्रामान् जरासंधस्य यादवाः ॥ ददुर्न चैनं समरे हन्तुं शेकुर्महाबलाः ॥३७॥ अक्षौहिण्यश्च तस्यासन्विंशतिश्च महामते ॥ जरासंधस्य नृपतेस्तदर्थं यास्समागताः ॥ ३८ ॥ अल्पत्वादभिभूतास्तु वृष्णयो भरतर्षभ ॥ बार्हद्रथेन राजेन्द्र राजभिस्सहितेन वै ॥३९॥ भूयः कृत्वोद्यमं प्रायाद्यादवान्कृष्णपालितान् ॥ जित्वा तु मागधं संख्ये जरासंधं महीपतिम् ॥ विहरन्ति स्म सुखिनो वृष्णिसिंहा महारथाः ॥ ४० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि जरासंधापयानं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स कृष्णस्तत्र बलवान्रौहिणेयेन संगतः ॥ मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत् ॥१॥ प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया विभुः ॥ चचार मथुरां प्रीतस्सवनाकरभूषणाम् ॥२॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा राजगृहेश्वरः ॥ सस्मार निहतं कंसं जरासंधः प्रतापवान् ॥ युद्धाय योजितो भूयो दुहितृभ्यां महीपतिः ॥ ३ ॥

उद्योग किया,और कृष्णसे पालना किये यादवोंके संग फिर लडने आया परन्तु युद्धमें महाबली जरासंधको जीतकर महारथी वृष्णिवंशी सुखसे विहरने लगे ॥४०॥ इति हरिवंशपुराणे विष्णुपर्वणि भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥छ॥वैशंपायन बोले; इस प्रकार महाबली श्रीकृष्ण बलदेवजीके साथ यादवोंसे पूर्ण मथुरापुरीमें सुखसे निवास करते रहे ॥१॥ फिर युवा होनेसे प्रभु राजलक्ष्मीसे व्याप्त हुए, और प्रसन्न होकर वन और खानोंकी भूषणवाली मथुरापुरीमें विचरण करने लगे॥२॥कुछ समयके उपरान्त राजराजेश्वर जरासंधको मृतक हुए कंसका स्मरण हुआ तब अपनी

पुत्रियोंके शोकसे फिर युद्धके निमित्त सज्जित हुआ॥३॥सत्रह वार जरासंधके संग यादवोंका संग्राम हुआ न तो वे महारथी हारे और न युद्धमें जरासंधको मार सके ॥४॥ तब श्रीमान् मगधदेशका राजा चतुरंगिणी सेना ले अठारवीं वार फिर संग्राम करनेके निमित्त आया॥५॥लाजके मारे यह राजग्रहेश्वर जरासंध महाबली इन्द्रके समान पराक्रमी॥६॥ बडे साधनसे वह बली बृहद्रथका पुत्र कृष्णके मारनेकी इच्छासे फिर चढि आया॥७॥ तब जरासंधका कर्तव्य सुनकर भयसे व्याकुल हो सब यादव संमति करने लगे ॥८॥ तब महातेजस्वी राजनीतिज्ञ विकद्रुने जो कहा उसे कमललोचन

दश सप्त च संग्रामान् जरासंधस्य यादवाः॥ददुर्न चैनं समरे हन्तुं शेकुर्महारथाः॥४॥ततो मागधराट् श्रीमांश्चतुरङ्गबलान्वितः। भूयोऽप्यष्टादशं कर्तुं संग्रामं स समारभत् ॥५॥ वैलक्ष्यात्पुनरेवासौ राजराजो गृहेश्वरः॥ जरासंधो बली श्रीमान्पाकशासनविक्रमः ॥ ६ ॥ स साधनेन महता बृहद्रथसुतो बली ॥ कृष्णस्य वधमन्विच्छन्भूयो वै संन्यवर्तत ॥७॥ तं श्रुत्वा सहितास्सर्वे निवृत्तं मगधेश्वरम् ॥ यादवा मन्त्रयामासुर्जरासंधभयार्दिताः ॥८॥ ततः प्राह महातेजा विकद्रुर्नयकोविदः ॥ कृष्णं कमलपत्राक्षमुग्रसेनस्य शृण्वतः॥९॥ श्रूयतां तात गोविन्द कुलस्यास्य समुद्भवः ॥ श्रूयतामभिधास्यामि प्राप्तकालमहं ततः ॥ युक्तं चेन्मन्यसे साधो करिष्यसि वचो मम ॥१०॥ यादवस्यास्य वंशस्य समुद्भवमशेषतः ॥ यथा मे कथितः पूर्वं व्यासेन विदितात्मना ॥ ११ ॥ आसीद्राजा मनोर्वंशे श्रीमानिक्ष्वाकुसंभवः ॥ हर्यश्व इति विख्यातो महेन्द्रसमविक्रमः ॥१२॥ तस्यासीद्दयिता भार्या मधोर्दैत्यस्य वै सुता ॥ देवी मधुमती नाम यथेन्द्रस्य शची तथा ॥ १३ ॥

कृष्ण और उग्रसेनभी सुनते थे ॥९॥ हे तात गोविंद ! इस कुलकी उत्पत्ति सुनिये इसका समय होनेसे मुझे कहना पडा सो मैं कहता हूं,जो आपको मेरा वचन रुचे तो कीजिये ॥१०॥ जो कुछ इस वंशके विषयमें महात्मा व्यासने कहा है वह मैं वर्णन करता हूं सब यदुवंशी श्रवण करें ॥ ११ ॥ मनुके वंशमें इक्ष्वाकुसे उत्पन्न हुआ महेन्द्रसम पराक्रमी हर्यश्व राजा था॥१२॥उसकी प्यारी भार्या मधुदैत्यकी सुता थी, उसका नाम मधुमती देवी,

वह इन्द्रकी शचीके समान थी ॥ १३ ॥ वह महारूपवती जब युवा हुई, तब राजाकी अनुकूलगामिनी होनेसे प्राणोंसेभी अधिक प्यारी हुई ॥ १४ ॥ वह श्रेष्ठ नितम्बोंवाली कुलमें हुई, एक पतिव्रता हुई जैसे चंद्रमाकी रोहिणी ॥ १५ ॥ उस कामिनीने उस इक्ष्वाकुकुलके दीपक राजा हर्यश्वसे विहार करनेकी इच्छा की ॥ १६ ॥ हे माधव ! किसी समय उस राजाको बडे भ्राताने अलग कर दिया, तब यह अयोध्यापुरीको त्याग अपने थोडेसे कुटुम्बके सहित वनमें निवास करने लगा ॥ १७ ॥ और वहां वह विहार करने लगे;एक समय वह

सा यौवनगुणोपेता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ मनोरथकरी राज्ञः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥१४॥ दानवेन्द्रकुले जाता सुश्रोणी कामरूपिणी ॥ एकपत्नी व्रतधरा खेचरा रोहिणी यथा ॥ १५ ॥ सा तमिक्ष्वाकुशार्दूल कामयामास कामिनी ॥ स कदाचिन्नरश्रेष्ठ भ्राता ज्येष्ठेन माधव ॥१६॥ राज्यान्निरस्तो विश्वस्तः सोऽयोध्यां संपरित्यजत् ॥ स तदाल्पपरीवारः प्रियया सहितो वने ॥१७॥ रेमे समेत्य कालज्ञः प्रोवाच कमलेक्षणः ॥ भ्रात्रा विनिष्कृतं राज्यात्प्रोवाच कमलेक्षणा ॥१८॥ एह्यागच्छ नरश्रेष्ठ त्यज राज्यकृतां स्पृहाम् ॥ गच्छावस्सहितौ वीर मधोर्मम पितुर्गृहम् ॥१९॥ रम्यं मधुवनं नाम कामपुष्पफलद्रुमम् ॥ सहितौ तत्र रंस्यावो यथा दिवि गतौ तथा ॥ २० ॥ पितुर्मे दयितस्त्वं हि मातुर्मम च पार्थिव ॥ मत्प्रियार्थं प्रियतरो भ्रातुश्च लवणस्य वै ॥२१॥ रंस्यावस्तत्र सहितौ राज्यस्थाविव कामगौ ॥ तत्र गत्वा नरश्रेष्ठ ह्यमराविव नन्दने ॥ भद्रं ते विहरिष्यावो यथा देवपुरे तथा ॥२२॥ तं त्यजाव महाराज भ्रातरं तेऽभिमानिनम् ॥ आवयोर्द्वेषिणं नित्यं मत्तं राज्यमदेन वै ॥ २३ ॥

कमलनेत्र अपनी रानीसे विहार करते थे कि, उस कमलनेत्रीने राज्यसे निकाले हुए राजासे कहा ॥ १८ ॥ हे राजन्!आओ और राज्यकी इच्छा त्यागो. और हे वीर ! मधुवनको चलो;वहां हमारे पिताका घर है ॥ १९ ॥ वह बडामनोहर मधुवन है; उसमें अनेक कामनादायक फल लगे हैं. वहां हम तुम स्वर्गमें स्थित हुएके समान विहार करेंगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! तुम मेरे पिता और माताके प्यारे हो और मेरा प्यार तुमपर अधिक है; इस कारण तुमको मेरा भ्राता बहुत प्यार करेगा ॥२१॥ वहां राज्यमें स्थित स्वेच्छाचारी हो विहार करेंगे,हे राजन् ! वहां जाकर नंदनवनमें देवताओंके समान प्रसन्न होंगे,तुम्हारा मंगल हो; वहां चलकर देवपुरके समान विचरेंगे ॥ २२ ॥ हे महाराज ! तुम अभिमानी राजाको त्याग दो, वह राज्यके

मदसे मत्त हो नित्य हमारा तिरस्कार करता है ॥ २३ ॥ इस नौकरके समान पराये अधिकारमें वास करनेको धिक्कार है. इससे हे वीर ! तुमको लेकर मैं पिताके भवनमें जाऊंगी ॥ २४ ॥ इस प्रकार बडे भाईके प्रति अच्छी प्रकारसे श्वशुरपक्षकेबलमें प्रवृत्त कामार्त राजाको वह अपनी स्त्रीका वचन भला लगा ॥ २५ ॥ तब राजा हर्यश्व मधुपुरमें आया वह पुरुषश्रेष्ठ कामी अपनी भार्याके सहित स्थित हुआ ॥२६॥ दानवेन्द्र मधुने उसका बडा सन्मान किया और कहा, हे वत्स ! मैं तुझसे प्रसन्न हूं यहां आये अच्छा किया, मैं तुम्हारे दर्शनसे प्रसन्न हुआ ॥ २७ ॥ मधुवनके विना

धिगिमं गर्हितं वासं भृत्यवच्च पराश्रयम् ॥ गच्छावः सहितौ वीर पितुर्मे भवनान्तिकम् ॥ २४ ॥ तस्य सम्यक् प्रवृत्तस्य पूर्वजं भ्रातरं प्रति ॥ कामार्तस्य नरेन्द्रस्य पत्न्यास्तद्गुरुचे वचः ॥ २५ ॥ ततो मधुपुरं राजा हर्यश्वस्स जगाम च ॥ भार्यया सह कामिन्या कामी पुरुषपुङ्गवः ॥२६॥ मधुना दानवेन्द्रेण स साम्ना समुदाहृतः ॥ स्वागतं वत्स हर्यश्व प्रीतोऽस्मि तव दर्शनात् ॥ २७ ॥ यदेतन्मम राज्यं वै सर्वं मधुवनं विना ॥ ददामि तव राजेन्द्र वासश्च प्रतिगृह्यताम् ॥ २८ ॥ वनेऽस्मिल्लँवणश्चायं सहायस्ते भविष्यति ॥ अमित्रानिग्रहे चैव कर्णधारत्वमेष्यति ॥२९॥ पालयैनं शुभं राष्ट्रं समुद्रानूपभूषितम् ॥ गोसमृद्धं श्रिया जुष्टमाभीरप्रायमानुषम् ॥ ३० ॥ अत्र ते वसतस्तात दुर्गं गिरिपुरं महत् ॥ भविता पार्थिवावासस्सुराष्ट्रविषयो महान् ॥ ३१ ॥ अनूपविषयश्चैव समुद्रान्ते निरामयः ॥ आनर्त्तं नाम ते राष्ट्रं भविष्यत्यायतं महत् ॥३२॥ तद्भविष्यमहं मन्ये कालयोगेन पार्थिवं ॥ अध्यास्यतां यथा कालं पार्थिवं वृत्तमुत्तमम् ॥ ३३ ॥

शेष जितना राज्य है सो मैं तुमको देता हूं इसे तुम ग्रहण करो ॥ २८ ॥ और इस वनमें यह लवण असुर तुम्हारी सहायता करनेहारा होगा ॥१०२॥
यह शत्रुओंकेनिग्रहमें पोतकी वल्लीके समान होगा ॥ २९ ॥ समुद्रके अनूपदेश पर्यन्त इस राज्यको पालन करो जो कि, अनेक गायोंसे लक्ष्मीसे शोभित और आभीर मनुष्योंसेभी पूर्ण है ॥ ३० ॥ हे तात ! तुम्हारे यहां निवास करनेसे दुर्ग गिरि पुर बडे बडे राज्य तुम्हारे राज्यमें हो जांयगे ॥३१॥ यह जलप्राय अनूपदेश समुद्रपर्यन्त आपत्तिरहित है; यह तुम्हारा राज्य आनर्त नामसे विख्यात होगा ॥३२॥ हे राजन् ! कालयो-

गसे इस भविष्यको मानता हूं तुम राजनीतिसे यहां आनन्दपूर्वक निवास करो ॥३३॥ ययातिपुत्र यदुसे तुम्हारा वंश बन्धित होगा इस कारण सोम-वंशके पीछे तेरा वंश होगा इन एक यदुने ही लीलावशसे दो वंश किये हैं; और दो प्रकार किये हैं और दो प्रकार हुए हैं, जैसे वशिष्ठजी ब्रह्मासे और मित्रावरुणसेभी हुए हैं ॥ ३४ ॥ हे तात ! जितनी मेरी विभव और राज्य है यह सब मैं तुमको देकर तप करनेके निमित्त जाता हूं, क्षीरसमुद्रके तटपर तप करूंगा ॥ ३५ ॥ और लवणासुरके सहित इस राज्यकी अपने वंशकी वृद्धिके निमित्त पालना करो ॥ ३६ ॥ बहुत अच्छा, यह कहकर हर्यश्वने राज्यको ग्रहण किया,और वह दैत्य सागरपर तप करनेको वनमें चला गया ॥ ३७ ॥ और महातेजस्वी हर्यश्व उस सुन्दर पर्वत वनमें

यायातमपि वंशस्ते समेष्यति च यादवम् अनुवंशं च वंशस्तेसोमस्य भविता किल ॥ ३४ ॥ एष मे विभवस्तात तवेमं विषयोत्तमम् ॥ दत्त्वा यास्यामि तपसे सागरं लवणालयम् ॥ ३५ ॥ लवणेन समायुक्तस्त्वमिमं विषयोत्तमम् ॥ पालयस्वाखिलं तात स्वस्य वंशस्य वृद्धये॥३६॥ बाढमित्येव हर्यश्वः प्रतिजग्राह तत्पुरम्॥स च दैत्यस्तपोवासं जगाम वरुणालयम् ॥३७॥ हर्यश्वश्च महातेजा दिव्ये गिरिवरोत्तमे॥ निवेशयामास पुरं वासार्थममरोपमः ॥ ३८ ॥ आनर्तं नाम तत्राढ्यं सुराष्ट्रं गोधनायुतम् ॥ अचिरेणैव कालेन समृद्धं प्रत्यपद्यत ॥ ३९ ॥ अनूपविषये चैव वेलावनविभूषितम् ॥ विचित्रं क्षेत्रसस्याढ्यं प्राकारग्रामसंकुलम् ॥ ४० ॥ शशास नृपतिः स्फीतः तद्राष्ट्रं राष्ट्रवर्द्धनः ॥ राजधर्मेण यशसा प्रजानां नन्दिवर्द्धनः ॥ ४१ ॥ तस्य सम्यक्प्रचारेण हर्यश्वस्य महात्मनः ॥ व्यवर्द्धत तदक्षोभ्यं राष्ट्रं राष्ट्रगुणैर्युतम् ॥ ४२ ॥

देवताओंके समान रहनेके योग्य पुर बनाता हुआ ॥ ३८ ॥ उसका नाम आनर्त वह गौ राष्ट्र और धनसे पूर्ण हुआ और थोडेही समयमें सब प्रकार समृद्ध हो गया ॥ ३९ ॥ अनूपदेश वेलासे विभूषित, विचित्र क्षेत्र धान्य खेतीसे पूर्ण प्राकार और ग्रामसे संयुक्त ॥ ४० ॥ राष्ट्रवर्धन राजा उस भरे पुरे राज्यका पालन करने लगा राजधर्म और प्रजाके आनन्द देनेमें तत्पर हुआ ॥ ४१ ॥ उस महात्मा हर्यश्वके प्रचारसे वह राज्य अनेक गुणोंसे संयुक्त हो वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥ ४२ ॥

इस प्रकार राजव्रतसे शोभित हो राजा राजधर्म करने लगा अपनी वृत्ति और नीतिसे कुलोचित लक्ष्मीको प्राप्त हुआ ॥ ४३ ॥ उस सुन्दर आच-रणी पुत्रकामनावाले राजाके मधुमतीमें यदुनामक पुत्र हुआ ॥ ४४ ॥ वह महातेजस्वी यदु दुंदुभिके शब्दके समान वृद्धिको प्राप्त हुआ, राजलक्ष-णसे संपन्न और शत्रुओंसे नहीं अतिक्रमण करनेके योग्य ॥ ४५ ॥ राजलक्षणोंसे पूजित यदुनामक पुत्र हुआ जैसे इसके पूर्वकालीन राजा पुरु थे ॥ ४६ ॥ इसकेभी परम शोभायमान पुत्र हुआ वह बडा पराक्रमी पृथ्वीका स्वामी हर्यश्वका पुत्र ॥ ४७ ॥ दशसहस्र वर्ष तक अकंटक राज्य

स हि राजा स्थितो राज्ये राजवृत्तेन शोभितः ॥ प्राप्तः कुलोचितां लक्ष्मीं वृत्तेन च नयेन च ॥ ४३ ॥ तस्यैव च सुवृत्तस्य पुत्रकामस्य धीमतः ॥ मधुमत्यां सुतो जज्ञे यदुर्नाम महायशाः ॥ ४४ ॥ सोऽवर्द्धत महातेजा यदुर्दुन्दुभिनिस्स्वनः ॥ राजल-क्षणसंपन्नस्सपत्नैर्दुरतिक्रमः ॥ ४५ ॥ यदुर्नामाभवत्पुत्रो राजलक्षणपूजितः ॥ यथास्य पूर्वजो राजा पूरुस्स सुमहायशाः ॥४६॥ स एक एव तस्यासीत्पुत्रः परमशोभनः ॥ ऊर्जितः पृथिवीभर्ता हर्यश्वस्य महात्मनः ॥ ४७ ॥ दश वर्षसहस्राणि स कृत्वा राज्य-मव्ययम् ॥ जगाम त्रिदिवं राजा धर्मेणाप्रतिमो भुवि ॥ ४८ ॥ ततो यदुरदीनात्मा प्रजाभिस्त्वभ्यषिच्यत ॥ पितर्युपरते श्रीमान्क्र-मेणार्क इवोदितः ॥ ४९ ॥ शशास चेमां वसुधां प्रशान्तभयतस्कराम् ॥ यदुरिन्द्रप्रतीकाशो नृपो येनास्म यादवाः ॥ ५० ॥ स कदाचिन्नृपश्चक्रे जलक्रीडां महोदधौ ॥ दारैस्सह गुणोदारैस्सतार इव चन्द्रमाः ॥ ५१ ॥ स तत्र सहसा क्षिप्तस्तितीर्षुस्सा-गराम्भसि ॥ धूम्रवर्णेन नृपतिस्सर्पराजेन वीर्यवान् ॥ ५२ ॥

करके यह राजा महाधर्मिष्ठ स्वर्गको गया ॥ ४८ ॥ तब अदीनात्मा यदुको प्रजाने राज्यमें अभिषेक किया, पिताके स्वर्ग जानेपर वह श्रीमान् सूर्यके समान प्रकाश हुआ ॥ ४९ ॥ और चोरोंके भयसे रहित कर पृथ्वी पालन की यह यदु इन्द्रके समान राजा हुआ जिससे यादव हुए ॥५०॥ एक समय यह राजा समुद्रमें जलक्रीडा करता था और अपनी स्त्रियों सहित तारागणमें चन्द्रमाके समान शोभित हुआ ॥ ५१ ॥ उस समय अकस्मात

सागरके जलमें तरनेकी इच्छासे राजा कूदने लगा, तब धूम्रवर्ण सर्पराजने ॥ ५२ ॥ इसे खैंचकर बडे वेगसे अपने सर्पपुरमें प्राप्त किया, जहां जलके ऊपर पुर था, जहां घरके द्वारोंमें मणिके स्तंभ लगे थे, और मोतियोंकी झालर लटक रही थी ॥ ५३ ॥ अनेक प्रकारके शंख और श्रेष्ठ रत्नोंके समूहसे युक्त प्रवाल अंकुर पत्र और श्रेष्ठ वृक्षोंसे शोभित ॥ ५४ ॥ समुद्रमें रहनेहारे सर्पसमूहोंसे व्याप्त सुवर्णके वर्णसे प्रकाशमान सुन्दर चंद्रमाकी कान्तिकी समान ॥ ५५ ॥ राजाने उज्ज्वल समुद्रके जलमें सर्पराजके पुरको देखा, मानो स्थलमेंही वह बनाया हुआ है ॥ ५६ ॥ इस प्रकार उस स्वच्छ पुरमें

सोऽपकृष्यत वेगेन जले सर्पपुरं महत् ॥ मणिस्तम्भगृहद्वारं मुक्तादामविभूषितम् ॥ ५३ ॥ कीर्णं शङ्खकुलैश्शुभ्रै रत्नराशिविभूषितम् ॥ प्रवालांकुरपत्राढ्यैः पादपैरुपशोभितम् ॥ ५४ ॥ कीर्णं पन्नगवर्यौघैस्समुद्रोदरवासिभिः ॥ स्वर्णवर्णेन भास्वन्तं स्वस्तिकेनेन्दुवर्चसा ॥ ५५ ॥ स तं ददर्श राजेन्द्रो विमले सागराम्भसि ॥ पन्नगेन्द्रपुरं तोये जगत्यामिव निर्मितम् ॥ ५६ ॥ स्वच्छं चैव पुरं तत्र प्रविवेश नृपो यदुः ॥ अगाधं तोयदाकारं पूर्णं सर्पवधूगणैः ॥ ५७ ॥ तस्य दत्तं मणिमयं जलजं परमासनम् ॥ स्वास्तीर्णं पद्मपत्रैश्च पद्मसूत्रोत्तरच्छदम् ॥ ५८ ॥ तमासीनं नृपं तत्र परमे पन्नगासने ॥ द्विजिह्वपतिरव्यग्रो धूम्रवर्णोऽभ्यभाषत ॥ ५९ ॥ पिता ते स्वर्गतिं प्राप्तः कृत्वा वंशमिमं महत् ॥ भवन्तं तेजसा युक्तमुत्पद्य वसुधाधिपम् ॥ ६० ॥ यादवानामयं वंशस्त्वन्नाम्ना यदुपुङ्गव ॥ पित्रा ते मङ्गलार्थाय स्थापितः पार्थिवाकरः ॥ ६१ ॥ वंशे चास्मिन्तव विभो देवानां तनयाव्ययाः ॥ ऋषीणामुरगाणां च उत्पत्स्यन्ते नृयोनिजाः ॥ ६२ ॥

यदुने प्रवेश किया वहां अगाध जल और सर्पोंकी वधुओंसे वह स्थान पूर्ण था ॥ ५७ ॥ मणियोंसे जटित कमलरूप विस्तृत और अनेक प्रकारके लक्षणोंसे लक्षित सुन्दर विछौना विछा हुआ ॥ ५८ ॥ तब इस राजाको परम आसनके ऊपर बैठाकर द्विजिह्वपति धूम्र प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ ५९ ॥ कि, तुम्हारे पिता महावंशको स्थापन कर स्वर्ग चले गये और महातेजस्वी तुमसे राजाको उत्पन्न कर गये ॥ ६० ॥ हे यदुश्रेष्ठ ! यह यादवोंका वंश तुम्हारेही नामसे तुम्हारे पिताने मंगलकी कामनासे स्थापन किया है ॥ ६१ ॥ हे प्रभो ! इस तुम्हारे वंशमें देवताओंकी कन्या, ऋषि और सर्पोंकी कन्या

मनुष्योंको उत्पन्न करेंगी ॥६२॥ सो यह पांच कन्या कुमारीव्रतमें सम्पन्न हैं वह युवनाश्वकी बहनमें मुझसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ६३ ॥ सो अपने धर्म और प्राजापत्यकर्मसे इनको ग्रहण कर लो, हे राजन्! मेरे मनमें तू वर देनेके योग्य है ॥६४॥ सोम कुक्कुर अंधक भोज यादव दाशार्ह वृष्णि यह सात जाती विख्यात होंगी ॥ ६५ ॥ ऐसा कहकर धूम्रवर्णने कन्याव्रतमें स्थित वे कन्या संकल्पकर इन्द्रके समान तेजस्वी उस राजाको देदीं ॥६६॥ और प्रसन्न हो सर्पराजने इसके निमित्त वर दिया और क्रमसे सब कन्याओंके सुनते हुए दीनताहीन होकर कहा ॥६७॥ हे मानद ! यह मेरी कन्या

तन्ममेमास्सुताः पञ्च कुमार्यो वृत्तसंमताः ॥ उत्पन्ना यौवनाश्वस्य भगिन्यां नृपसत्तम ॥ ६३ ॥ प्रतीच्छेमाः स्वधर्मेण प्राजापत्येन कर्मणा ॥ वरं च ते प्रदास्यामि वरार्हस्त्वं मतो मम ॥ ६४ ॥ भौमाश्च कुक्कुराश्चैव भोजाश्चान्धकयादवाः ॥ दाशार्हा वृष्णयश्चेति ख्यातिं यास्यन्ति सप्त ते ॥६५॥ स तस्मै धूम्रवर्णो वै कन्याः कन्याव्रते स्थिताः ॥ जलपूर्णेन योगेन ददाविन्द्रसमाय वै ॥ ६६ ॥ वरं चास्मै ददौ प्रीतस्स वै पन्नगपुङ्गवः ॥ श्रावयन्कन्यकास्सर्वा यथाक्रममदीनवत् ॥६७॥ एतासु ते सुताः पञ्च सुतासु मम मानद ॥ उत्पत्स्यन्ते पितुस्तेजो मातुश्चैव समाश्रिताः ॥ ६८ ॥ अस्मत्समयबद्धाश्च सलिलाभ्यन्तरेचराः ॥ तव वंशे भविष्यन्ति पार्थिवाः कामरूपिणः ॥६९॥ स वरं कन्यकाश्चैव लब्ध्वा यदुवरस्तदा ॥ उदतिष्ठत वेगेन सलिलाच्चन्द्रमा इव॥७०॥स पञ्चकन्यामध्यस्थो ददृशे तत्र पार्थिवः ॥ पञ्चतारेण संयुक्तो नक्षत्रेणेव चन्द्रमाः ॥७१॥ स तदन्तःपुरं सर्वं ददर्श नृपसत्तमः ॥ वैवाहिकेन वेषेण दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ ७२ ॥

हैं इनसे पांच पुत्र पिता और माताके तेजसे संयुक्त उत्पन्न होंगे ॥ ६८ ॥ हमारे वरदानसे अनुगृहीत होकर जल और पृथ्वीमें विचरनेवाले पृथ्वीके पति होंगे तुम्हारे वंशमें सब राजा कामरूपी होंगे॥६९॥इस प्रकार यदुश्रेष्ठ वर और कन्या दोनोंको संग ले बडे वेगसे चंद्रमाके समान उस जलसे बाहर आया॥७०॥पांच कन्याओंके बीचमें वह राजा शोभित हुए जैसे पांच तारोंके बीचमें चन्द्रमा शोभित होता है॥७१॥ दिव्य माला धारण

किये राजाने वहांसे अपने सब अन्तःपुरको देखा, उस समय वह विवाहका वेष धारण किये थे दिव्य चंदन लगाये थे ॥७२॥ तब उन अग्निके समान तेजस्विनी अपनी पत्नियोंको जो माताके वियोगसे कातर थीं समझा कर परम प्रसन्न हो राजा अपने पुरको आये ॥७३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां सप्तत्रिंशोध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥ छ ॥ वैशंपायन बोले; अधिक समय बीत जानेपर राजाने उन कन्याओंमें वंशधर पांच पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो बडे विक्रांत थे ॥ १ ॥ महाबाहु मुचुकुन्द, पद्मवर्ण, माधव, सारस और हरित ॥२॥ पांच भूतोंके समान पृथ्वीमें

समाश्वास्य च ताः सर्वास्सपत्नीः पावकोपमाः ॥ जगाम स्वपुरं राजा प्रीत्या परमया युतः ॥ ७३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि विकद्रुवाक्यं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स तासु नागकन्यासु कालेन महता नृपः ॥ जनयामास विक्रान्तान्पञ्च पुत्रान्कुलोद्वहान् ॥ १ ॥ मुचुकुन्दं महाबाहुं पद्मवर्णं तथैव च ॥ माधवं सारसं चैव हरितं चैव पार्थिवम् ॥ २ ॥ एतान्पञ्च सुतान्राजा पञ्चभूतोपमान्भुवि ॥ ईक्षमाणो नृपः प्रीतिं जगामातुलविक्रमः ॥३॥ ते प्राप्तवयसस्सव स्थिताः पञ्च यथाद्रयः ॥ तेजिता बलदर्पाभ्यामूचुः पितरमग्रतः ॥ ४ ॥ तात युक्तास्स्म वयसा बले महति संस्थिताः ॥ क्षिप्रमाज्ञप्तुमिच्छामः किं कुर्मस्तव शासनात् ॥ ५॥ स तान्नृपतिशार्दूलश्शार्दूलानिव वेगितान् ॥ प्रीत्या परमया प्राह सुतान्वीर्यकुतूहलात् ॥ ६ ॥ विन्ध्यर्क्षवन्तावभितो द्वे पुर्यौ पर्वताश्रये ॥ निवेशयतु यत्नेन मुचुकुन्दस्सुतो मम ॥ ७ ॥ सह्यस्य चोपरिष्टात्तु दक्षिणां दिशमाश्रितः ॥ पद्मवर्णोऽपि मे पुत्रो निवेशयतु माचिरम् ॥ ८ ॥

महाबली राजा इन अपने पुत्रोंको देख महाप्रसन्न हुआ॥३॥वे अवस्थाको प्राप्त हो पांच पर्वतोंके समान शोभित होते थे, वे बल-दर्पसे उत्साहित हो अपने पितासे बोले ॥ ४ ॥ हे पिता! हम युवा हुए हैं, बलभी बहुत है, आज्ञा कीजिये कि हम आपका क्या प्रिय करें ॥ ५ ॥ सिंहके समान वेगवानोंके यह वचन सुन सिंहसमान पराक्रमी पिताने पुत्रोंके प्रति बडे प्रेमसे कहा ॥६॥ विंध्याचल और ऋक्षवंत इन दो पर्वतोंके बीचमें पुरी बनाकर हमारा पुत्र मुचुकुंद यत्नसे निवास करे॥७॥ सह्यपर्वतके ऊपरीभागमें दक्षिणदिशाके आश्रित हो पद्मवर्ण मेरा पुत्र वहां निवास करे ॥ ८ ॥

उसी स्थानमें चंपक भूषित कान्तदेशमें मनोहर पुर बनाकर मेरा पुत्र सारस निवास करे ॥ ९ ॥ और यह महाबाहु सागरके समीपमें, सर्पराजके द्वीपकी मेरा हरित पुत्र पालना करे ॥ १० ॥ महाबाहु धर्मका जाननेवाला मेरा ज्येष्ठ पुत्र माधव युवा राजपदवीको ले अपने देशको पालन करेगा ॥ ११ ॥ वे सब राजा पितासे अभिषिक्त हो लक्ष्मीको प्राप्त हुए, और पिताकी शिक्षासे वह चारों लोकपालकी समान शोभित हुए ॥ १२ ॥ वे सब राजा अपने २ श्रेष्ठ स्थानोंकी पालना करने लगे, यथाक्रमसे पुरके योग्य रम्य स्थान खोजते थे ॥ १३ ॥ राजर्षि मुचुकुन्दने विंध्यपर्वतके बीचका स्थान श्रेष्ठ

तत्रैव परतः कान्ते देशे चम्पकभूषिते ॥ सारसो मे पुरं रम्यं निवेशयतु पुत्रकः ॥ ९ ॥ हरितोऽयं महाबाहुस्सागरे हरितोदके ॥ द्वीपं पन्नगराजस्य सुतो मे पालयिष्यति ॥ १० ॥ माधवो मे महाबाहुर्ज्येष्ठपुत्रश्च धर्मवित् ॥ यौवराज्येन संयुक्तस्स्वपुरं पालयिष्यति ॥ ११ ॥ सर्वे नृपश्रियं प्राप्ता अभिषिक्तास्सचामराः ॥ पित्रानुशिष्टाश्चत्वारो लोकपालोपमा नृपाः ॥ १२ ॥ स्वं स्वं निवेशनं सर्वे भेजिरे नृपसत्तमाः ॥ पुरस्थानानि रम्याणि मृगयन्तो यथाक्रमम् ॥ १३ ॥ मुचुकुन्दश्च राजर्षिर्विन्ध्यमध्यमरोचयत् ॥ स्वस्थानं नर्मदातीरे दारुणोपलसंकटे ॥ १४ ॥ स च तं शोधयामास विविक्तं च चकार ह ॥ सेतुं चैव समं चक्रे परिखाश्चामितोदकाः ॥ १५ ॥ स्थापयामास भागेषु देवतायतनान्यपि ॥ रथ्या वीथीर्नृणां मार्गाश्चत्वराणि वनानि च ॥ १६ ॥ स तां पुरीं धनवतीं पुरुहूतपुरीप्रभाम् ॥ नातिदीर्घेण कालेन चकार नृपसत्तमः ॥ १७ ॥ नाम चास्याश्शुभं चक्रे निर्मितं स्वेन तेजसा ॥ तस्याः पुर्या नृपश्रेष्ठो देवश्रेष्ठपराक्रमः ॥ १८ ॥

माना, और बडे पर्वतवाली नर्मदा नदीके किनारे ॥ १४ ॥ उसने स्थान शोधा, और उसे एकान्त युक्त किया सेतु बांधा नगरके किलेके बाहर खाई खोदी ॥ १५ ॥ यथास्थानमें देवताओंके मंदिर स्थापन किये, गली मोहल्ले सडक चौराहे वन गौ और मनुष्योंके आनेजानेके मार्ग बनाये ॥ १६ ॥ इस प्रकार उसने इस धनयुक्त पुरीको इन्द्रपुरीके समान थोडेही समयमें निर्माण कर दिया ॥ १७ ॥ इस प्रकार अपने तेजसे निर्माण कर उस देवताओंकी समान श्रेष्ठ पराक्रमी राजाने इसका नामभी श्रेष्ठ रक्खा ॥ १८ ॥

महापर्वतोंके समूहसे युक्त अर्थात् महामूल्य पर्वतोंके घर बने हुए ऋक्षवंत पर्वतके निकट माहिष्मती पुरी प्रकाशित हुई ॥ १९ ॥ उन दोनों पर्वतोंके बीचमें परम शोभासे युक्त वन बगीचोंसे पूर्ण पुरी बनाई ॥ २० ॥ देवताओंकी पुरीकी समान शोभायमान पुरिका नाम दूसरी रची जहां सैकडों बगीचे और धन धान्य युक्त बजार शोभित थे ॥ २१ ॥ यह ऋक्षवंत पर्वतके निकट बसाई और राजाने उसका नाम पुरिका धरा ॥ २२ ॥ देवताओंके निवासके योग्य वे दो सुन्दर पुरी थीं उनको राजा मुचुकुन्द राजनीति धर्मसे पालना करते थे ॥ २३ ॥ पद्मवर्ण राजर्षिनेभी सह्य पर्वतकी पृष्ठपर वेणा

महाश्मसंघातवती ऋक्षवन्तमुपाश्रिता ॥ माहिष्मती नाम पुरी प्रकाशमुपयास्यति ॥ १९ ॥ उभयोर्विन्ध्ययोः पादे नगयोस्तां महापुरीम् ॥ मध्ये निवेशयामास श्रिया परमया वृताम् ॥ २० ॥ पुरिकां नाम धर्मात्मा पुरीं देवपुरीप्रभाम् ॥ उद्यानशतसंबाधां समृद्धापणचत्वराम् ॥ २१ ॥ ऋक्षवन्तं समभितस्तीरे तत्र निरामये ॥ निर्मिता सा पुरी राज्ञा पुरिका नाम नामतः ॥ २२ ॥ स ते द्वे विपुले पुर्यौ देवभोग्योपमे शुभे ॥ पालयामास धर्मात्मा राजा धर्मे व्यवस्थितः ॥ २३ ॥ पद्मवर्णोऽपि राजर्षिस्सह्यपृष्ठे पुरोत्तमम् ॥ चकार नद्या वेणायास्तीरे तरुलताकुले ॥ २४ ॥ विषयस्याल्पतां ज्ञात्वा संपूर्णं राष्ट्रमेव च ॥ निवेशयामास नृपस्स वप्रप्रायमुत्तमम् ॥ २५ ॥ पद्मावतं जनपदं करवीरं च तत्पुरम् ॥ निर्मितं पद्मवर्णेन प्राजापत्येन कर्मणा ॥ २६ ॥ सारसेनापि विहितं रम्यं क्रौञ्चपुरं महत् ॥ चम्पकाशोकबहुलं विपुलं ताम्रमृत्तिकम् ॥ २७ ॥ वनवासीति विख्यातः स्फीतो जनपदो महान् ॥ पुरस्य तस्य तु श्रीमान्द्रुमैस्सार्वर्तुकैर्वृतः ॥ २८ ॥ हरितोऽपि समुद्रस्य द्वीपं समभिपालयत् ॥ रत्नसंचयसंपूर्णं नारिजनमनोहरम् ॥ २९ ॥

नदीके तीर तरुलताओंके निकट पुरी बनाई ॥ २४ ॥ वहां थोडा देश जानकरभी उसको घना देखकर राजाने सब राष्ट्र वहीं स्थापन किया और उसीको प्राकारकी समान कर दिया ॥ २५ ॥ पद्मावत देश और करवीर नगरको पद्मवर्णराजाने प्रजापतिकर्मसे निर्माण किया ॥ २६ ॥ सारसनेभी बहुत रमणीय क्रौंचपुर बसाया, वहां चंपा अशोक वृक्षोंसे पूर्ण तांबेकी तुल्य मृत्तिकासे व्याप्त ॥ २७ ॥ वनवासी नामक भरापुरा देश निर्माण किया, इस राजाका यह पुर संपूर्ण ऋतुसंबन्धी फूलों फलोंसे युक्त था ॥ २८ ॥ हरितभी समुद्रके द्वीपोंकी पालना करने लगा जो कि, वोह द्वीप रत्नसंचयसे पूर्ण

और स्त्रीजनोंसे मनोहर था ॥ २९ ॥ उसके यहांके मुद्गुरा नामक धीवर जलमें मग्न हुए शंखोंको उसमें प्रवेश कर निकालते थे ॥ ३० ॥ और दूसरे धीवर प्रबलांजनसे उत्पन्न हुए सुवर्ण और मोतीको सदा निकालते थे॥३१॥उसके यहांके निषाद जलसे उत्पन्न हुए रत्नोंको नौकामें बैठकर निकालते हैं ॥ ३२ ॥ और वे मनुष्य सदा मच्छमांससे वर्तते हैं और रत्नद्वीपनिवासी वहांसे रत्न ग्रहण करते हैं ॥३३॥ रत्नोंके अर्थ व्यापारवृत्तिसे दूर गमन करनेवाले वे सब दाश राजा हरितको तृप्त करने लगे जैसे कि कुबेरको ॥ ३४ ॥ इस प्रकार इक्ष्वाकुवंशसे यदुवंश निकला है, यदुके चार पुत्रोंसे वह

तस्य दाशा जले मग्ना मद्गुरा नाम विश्रुताः ॥ ये हरन्ति सदा शंखान्समुद्रोदरचारिणः ॥ ३० ॥ तस्यापरे दाशजनाः प्रवालाञ्जनसंभवान् ॥ संचिन्वन्ति सदा युक्ता जातरूपं च मौक्तिकम् ॥ ३१ ॥ जलजानि च रत्नानि निषादास्तस्य मानवाः ॥ प्रचिन्वन्तोऽर्णवे युक्ता नौभिस्संयानगामिनः ॥ ३२ ॥ मत्स्यमांसेन ते सर्वं वर्तन्ते स्म सदा नराः ॥ गृह्णन्तस्सर्वरत्नानि रत्नद्वीपनिवासिनः ॥ ३३ ॥ तैस्संयानगतैर्द्रव्यैर्वणिजो दूरगामिनः ॥ हरितं तर्पयन्त्येकं यथैवं धनदं तथा ॥ ३४ ॥ एवमिक्ष्वाकुवंशात्तु यदुवंशो विनिस्सृतः ॥ चतुर्द्धा यदुपुत्रैस्तु चतुर्भिर्भिद्यते पुनः ॥ ३५ ॥ स यदुर्माधवे राज्यं विसृज्य यदुपुङ्गवे ॥ त्रिविष्टपं गतो राजा देहं त्यक्त्वा महीतले ॥ ३६ ॥ बभूव माधवसुतस्सत्त्वतो नाम वीर्यवान् ॥ सत्त्ववृत्तिर्गुणोपेतो राजा राजगुणे स्थितः ॥ ३७ ॥ सत्त्वतस्य सुतो राजा भीमो नाम महानभूत् ॥ येन भौमास्सुसंवृत्तास्सत्त्वतात्सात्त्वतास्स्मृताः ॥ ३८ ॥ राज्ये स्थिते नृपे तस्मिन्रामे राज्यं प्रशासति ॥ शत्रुघ्नो लवणं हत्वा चिच्छेद स मधोर्वनम् ॥ ३९ ॥

चार प्रकारका भिन्न भिन्न हो गया है ॥ ३५ ॥ वह यदु यदुओंमें श्रेष्ठ माधवको राज्यपर बैठायकर पृथ्वीमें देह त्यागन कर स्वर्गको गया ॥ ३६ ॥ माधवके महापराक्रमी सत्वनाम बली पुत्र हुआ, सत्ववृत्तिसे युक्त हो यह राजा राजपथमें स्थित हुआ ॥३७॥ उसका पुत्र महाबली भीम हुआ,जिससे भौम नामक वंश चला और सत्वतके नामसे सात्वत वंश प्रसिद्ध हुआ ॥३८॥ जिस समय वह राजा राज्य करता था उस समय अयोध्यामें रामचंद्र

राज्य करते थे उस समय शत्रुघ्नने लवणासुरको मारकर मधुवन नष्ट कर दिया॥३९॥और उस मधुवनके स्थानमें यह मथुरापुरी उस सुमित्राके आनन्द बढानेहारेने निर्माण की॥४०॥जब राम, भरत,लक्ष्मण, शत्रुघ्न चारों अपने वैष्णवधाममें प्राप्त हुए॥४१॥ तब राज्यसम्बंधके कारणसे राजा भीमने यह पुरी अपने वशमें की, और स्वयं निवास करने लगा॥४२॥फिर कुशके राजा और लवके युवराज होनेपर भीमका पुत्र अन्धक राज्य करता रहा॥४३॥अन्धकका पुत्र राजा रैवतक हुआ और रैवत पर्वतके शिखरके ऊपर ऋक्षक उत्पन्न हुआ,वह पृथ्वीपाल पृथ्वींका बडा राजा हुआ॥४४॥

तस्मिन्मधुवने स्थाने पुरीं च मथुरामिमाम् ॥ निवेशयामास विभुस्सुमित्रानन्दवर्द्धनः ॥४०॥ पर्यये चैव रामस्य भरतस्य तथैव च ॥ सुमित्रासुतयोश्चैव स्थानं प्राप्तं च वैष्णवम् ॥ ४१ ॥ भीमेनेयं पुरी तेन राज्यसंबन्धकारणात् ॥ स्ववशे स्थापिता पूर्वं ॥ स्वयमध्यासिता तथा ॥४२॥ ततः कुशे स्थिते राज्ये लवे तु युवराजनि ॥ अन्धको नाम भीमस्य सुतो राज्यमकारयत् ॥४३॥ अन्धकस्य सुतो यज्ञे रैवतो नाम पार्थिवः ॥ ऋक्षोऽपि रैवताज्जज्ञे रम्ये पर्वतमूर्द्धनि ॥ ४४ ॥ ततो रैवत उत्पन्नः पर्वतस्सागरान्तिके ॥ नाम्ना रैवतको नाम भूमौ भूमिधरस्स्मृतः ॥ ४५ ॥ रैवतस्यात्मजो राजा विश्वगर्भो महायशाः ॥ बभूव पृथिवीपालः पृथिव्यां प्रथितः प्रभुः ॥ ४६ ॥ तस्य तिसृषु भार्यासु दिव्यरूपासु केशव ॥ चत्वारो जज्ञिरे पुत्रा लोकपालोपमाश्शुभाः ॥४७॥ वसुर्बभ्रुस्सुषेणश्च सभाक्षश्चैव वीर्यवान् ॥ यदुप्रवीराः प्रख्याता लोकपाला इवापरे ॥४८॥ तैरयं यादवो वंशः पार्थिवैर्बहुलीकृतः ॥ यैस्साकं कृष्ण लोकेऽस्मिन्प्रजावन्तः प्रजेश्वराः ॥ ४९ ॥

ऋक्षके सागरके समीपमें रैवतक हुआ वहीं महायशस्वी पृथ्वीमें रैवतक कहाया॥४५॥ रैवतके विश्वगर्भ यह राजा पृथ्वीमें महायशस्वी हुआ॥४६॥ हे कृष्ण ! दिव्य रूप उसके तीन भार्या थीं उससे लोकपालके समान चार पुत्र हुए ॥४७॥ वसु, बभ्रु, सुषेण और वीर्यवान सभाक्ष यह यदुवीर लोकपालोंके समान पृथ्वीमें विख्यात हुए॥४८॥उन राजोंने यह यदुवंश बहुत बढा लिया जिनके साथ कृष्ण इस समय प्रजावंत और प्रजाके ईश्वर

हैं ॥४९॥ वसुके कुंती और वसुदेव हुए उनके कृष्ण हुए और वसुकेही सुप्रभा नामक एक कन्या हुई जो दमघोषको व्याही गई कुंति कुंतिभोजरा- जाको कन्यारूपसे देदी ॥ ५०॥ कुन्ति देवताओंके समान पाण्डुकी सहचरी थीं, सुप्रभा चेदिराजकी भार्या हुई ॥५१॥ यह तुम्हारे वंशकी कीर्ति कथन की है, हे कृष्ण ! यह मैंने पूर्वकालमें व्यासजीके मुखसे सुना था ॥ ५२ ॥ हे वीरोंमें श्रेष्ठ ! इस वंशके नष्ट होनेपर जगत्के मंगलके और सत्पुरुषोंके सुख देनेको मानो ब्रह्माके समान आपने जन्म लिया है ॥ ५३ ॥ हम साधारण मनुष्यके समान जरासंधसे आपको नहीं छिपा सक्के आप

वसोस्तु कुन्तिविषये वसुदेवस्सुतो विभुः ॥ ततस्स जनयामास सुप्रभे द्वे च दारिके ॥५०॥ कुन्तीं च पाण्डोर्महिषीं देवतामिव भूचरीम् ॥ भार्यां च दमघोषस्य चेदिराजस्य सुप्रभाम् ॥ ५१ ॥ एष ते स्वस्य वंशस्य प्रभवस्स प्रकीर्तितः ॥ श्रुतो मया पुरा कृष्ण कृष्णद्वैपायनान्तिकात् ॥५२॥ त्वं त्विदानीं प्रनष्टेस्मिन्वंशे वंशभृतांवर ॥ स्वयंभूरिव संप्राप्तो भवायास्मज्जययाच ॥५३॥ न तु त्वां पौरमात्रेण शक्ता गूहयितुं वयम् ॥ देवगुह्येष्वपि भवान्त्सर्वज्ञस्सर्वभावनः ॥५४॥ शक्तश्चापि जरासंधं नृपं योधयितुं विभो॥ तद्बुद्धिवशगास्सर्वे वयं योधव्रते स्थिताः ॥ ५५ ॥ जरासंधस्तु बलवान्नृपाणां मूर्ध्नि तिष्ठति ॥ अप्रमेयबलश्चैव वयं च कृशसा- धनाः ॥५६॥ न चेयमेकाहमपि पुरी रोधं सहिष्यति ॥ कृशभक्तेन्धनक्षामा दुर्गैरपरिवेष्टिता ॥ ५७ ॥ असंकृताम्बुपरिखा द्वार- यन्त्रविवर्जिता ॥ वप्रप्राकारनिचया कर्तव्या बहुविस्तरा ॥५८॥ संकर्तव्यायुधागारा योक्तव्या चेष्टिकाचयैः ॥ कंसस्य बलभो- ग्यत्वान्नातिगुप्ता पुरा जनैः ॥ ५९ ॥

॥१०८॥

तौ देवताओंको भी गुप्त सर्वज्ञ और सर्वभावन हो ॥ ५४ ॥ हे विभो ! आपही जरासंधसे युद्ध करनेको समर्थ हैं, हम योधाव्रतमें स्थित हुए तुम्हारे बुद्धिके वशमें स्थित हैं ॥ ५५ ॥ जरासंध बली राजोंका शिरमौर है उसका बल अप्रमेय और हमारी थोडी सामग्री है ॥५६॥अब यह पुरी एक दिनकोभी उसका रोध नहीं सह सक्की, कारण कि अन्न ईंधन और किले परिखासे हीन हैं ॥५७॥ यह पुरी परिखा और द्वारयंत्रोंसे हीन है, इस कारण, इसमें उपरोक्त सब वस्तु स्थित कर एक बहुत विस्तारसे परकोटा बनाया जाय॥५८॥आयुधोंके सौ स्थान बनाये जांय और अच्छी

ईंटोंकी स्थिति निर्माण की जाय कारण कि, कंसके राज्यकी क्रूरताके कारण पूर्वपुरुषोंने इसकी अच्छी प्रकार दृढता नहीं की थी॥५९॥अब अकस्मात् ही कंसके मरनेसे और नये राज्यके प्राप्त होनेसे वह पृथ्वी रोध न सह सकेगी॥६०॥सेनाके संमर्दसे भय होनेसे निश्चयही यह राज्य जनोंसहित नष्ट हो जायगा॥६१॥यादवोंके विरोधसे बहुतसे राज्यलोभी इस पुरीको नष्ट किया चाहते हैं इससे जिस प्रकार शान्ति हो वह कार्य किया जाय॥६२॥ राजाके कारणसेही हम राजोंके वंचनीय हो जांयगे और जरासंधके भयसे व्याकुल हुए भागनेकी इच्छासे बहुतसे मनुष्य राज्यके नष्ट होनेमें॥६३॥

सद्यो निपतिते कंसे राज्येऽस्माकं नवोदये ॥ पुरी प्रत्यग्ररोधेव न रोधं विसहिष्यति॥६०॥बलं संमर्दभग्नं च कृष्यमाणं परेण ह ॥ असंशयमिदं राष्ट्रं जनैस्सह विनङ्क्ष्यति ॥६१॥ यादवानां विरोधेन ये जिता राज्यकामुकैः॥ते सर्वे द्वैधमिच्छन्ति यत्क्षमं तद्विधीयताम् ॥६२॥ वञ्चनीया भविष्यामो नृपाणां नृपकारणात् ॥ जरासंधभयार्त्तानां द्रवतां राज्यसंभ्रमे ॥६३॥ आर्ता वक्ष्यन्ति नः सर्वे रुध्यमानाः पुरे जनाः ॥ यादवानां विरोधेन विनष्टाः स्मेति केशव ॥ ६४ ॥ एतन्मम मतं कृष्ण विस्रंभात्समुदाहृतम् ॥ त्वं तु विज्ञापितः पूर्वं न पुनस्संप्रबोधितः ॥ ६५ ॥ यदत्र वः क्षमं कृष्ण तच्च वै संविधीयताम् ॥ त्वमस्य नेता सैन्यस्य वयं त्वच्छासने स्थिताः ॥ त्वन्मूलश्च विरोधोऽयं रक्षास्मानात्मना सह ॥६६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि विकद्रुवाक्यं नाम अष्टत्रिंशोऽध्यायः॥३८॥ वैशम्पायन उवाच॥विकद्रोस्तु वचः श्रुत्वा वसुदेवो महायशाः ॥ परितुष्टेन मनसा वचनं चेदमब्रवीत्॥१॥

रोधको प्राप्त हो व्याकुलतासे कहेंगे कि, यादवोंके रोधसे नष्ट हो गये, हे केशव ! ॥६४॥यही मेरा मत है सो विश्वाससे सब तुम्हारे प्रति वर्णन किया, और आप तो सब जानतेही हैं अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता है॥६५॥हे कृष्ण ! अब जो उचित समझो सो करो तुम इस सेनाके नेता और हम सब तुम्हारी आज्ञामें स्थित हैं तुम्हारेही निमित्त यह विरोध हुआ है अपने सहित हमारी रक्षा करो ॥ ६६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि विकद्रुवाक्यं नाम अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ वैशंपायन बोले, विकद्रुके वचन सुनकर महायशस्वी वसुदेवजी परितुष्ट मन होकर

यह वचन बोले॥१॥हे कृष्ण ! राज्यके छः गुणका कहनेवाला राज्यके मंत्रार्थके तत्त्वका जाननेवाला यह उपदेश तत्व और हितका करनेवाला विकद्रुने किया है ॥ २ ॥ राज्य धर्म और सत्य, जगत्का हित वर्णन किया है जो यदुश्रेष्ठ विकर्णने कहा है वह हित है, और उसका विधान करना चाहिये ॥ ३ ॥ इस प्रकार पिता और महात्मा विकद्रुके वचन सुनकर जो कि अत्यन्त श्रेष्ठ थे सब सुनकर यदुश्रेष्ठ पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी कहने लगे ॥ ४ ॥ हेतु और क्रमयुक्त तुम्हारे वाक्य श्रवण किये न्यायसे और शास्त्रसे भाविकार्यको देखते हुए जो विचारा है ॥ ५ ॥ सो इस वाक्यका

राजा षाड्गुण्यवक्ता वै राजा मन्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ सतत्त्वं च हितं चैव कृष्णोक्तं किल धीमता ॥२॥ भाषिता राजधर्माश्च सत्याश्च जगतो हिताः ॥ विकद्रुणा यदुश्रेष्ठ यद्धितं तद्विधीयताम् ॥३॥ एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं विकद्रोश्च महात्मनः ॥ विकद्रोस्तद्वचस्तथ्यं निशम्य यदुपुङ्गवः ॥ वाक्यमुत्तममेकाग्रो बभाषे पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ ब्रुवतां वश्श्रुतं वाक्यं हेतुतः क्रमतस्तथा ॥ न्यायतश्शास्त्रतश्चैव दैवं चैवानुपश्यताम् ॥ ५ ॥ श्रूयतामुत्तरं वाक्यं श्रुत्वा च परिगृह्यताम् ॥ नयेन व्यवहर्तव्यं पार्थिवेन यथाक्रमम् ॥६॥ सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च ॥ द्वैधीभावं संश्रयं च षाड्गुण्यं चिन्तयेत्सदा ॥ ७ ॥ बलिनस्सन्निकृष्टे तु न स्थेयं पण्डितेन वै ॥ अपक्रमेद्धि कालज्ञस्समर्थो युद्धमुद्धहेत ॥८॥ अहं तावत्सहार्येण मुहूर्तेऽस्मिन्प्रकाशिते ॥ जीवितार्थं गमिष्यामि शक्तिमानप्यशक्तवत् ॥९॥ ततस्सह्याचलयुतं सहार्येणाहमक्षयम् ॥ आत्मद्वितीयश्श्रीमन्तं प्रवेक्ष्ये दक्षिणापथम् ॥१०॥ करवीरपुरं चैव रम्यं क्रौञ्चपुरं तथा । द्रक्ष्यावस्तत्र सहितौ गोमन्तं च नगोत्तमम् ॥ ११ ॥

उत्तर सुनकर ग्रहण करो राजोंको यथाक्रम राजनीतिसे वर्तना चाहिये ॥ ६ ॥ संधि, विग्रह, चढाई, आसन, द्वैधीभाव, आश्रय इस छः गुणका विचार करे ॥७॥ और चतुर पुरुषको उचित है कि बलीके निकट स्थिति न करे, कालका जाननेवाला अपनेको निर्बल देखे तो वहांसे चला जाय॥ ८ ॥ सो मैं इसी मुहूर्तसें बलरामजीके सहित शक्तिमान होकरभी अशक्तिमानके समान जीनेकी इच्छासे गमन करूंगा॥ ९ ॥ तब मैं बलरामजीके सहित सह्य पर्वतपर होकर दक्षिण मार्गको बलरामजीकेसहित चला जाऊंगा ॥ १० ॥ करवीर पुर, क्रौंच पुर, गोमंत नाम श्रेष्ठ पर्वत बलरामजी सहित

देखूंगा ॥११॥ काशीको जीतनेवाला जरासंध हमारा गमन सुनकर पुरीमें प्रवेश न कर घमंडसे हमारे पीछे चलेगा ॥१२॥ सो यह राजा अपने अनुचरों सहित सह्य वनमें जायगा और हमारे पकडनेमें बहुत बडा यत्न करेगा ॥ १३ ॥ कुलकी हित करनेहारी यह हमारी श्रेष्ठ यात्रा होगी पुरवासी पुरी और देशको सुख देनेहारी होगी ॥१४॥और जयकी इच्छा करनेहारे राजा शत्रुको संग्राममें विना मारे पराये राज्यमें प्रवेश नहीं करते ॥१५॥ इस प्रकार राम और कृष्ण दोनों वीर कहकर दोनों बडी शीघ्रतासे असंभ्रांत दक्षिण मार्गको चले॥१६॥वह दोनों कामरूपी सहस्रों राज्योंमें भ्रमण

आवयोर्गमनं श्रुत्वा जितकाशी स पार्थिवः ॥ अप्रविश्य पुरीं दर्पादनुसारं करिष्यति ॥ १२ ॥ ततस्सह्यवनेष्वेव राजा याति स सानुगः ॥ आवयोर्ग्रहणे चैव नृपतिः प्रयतिष्यति ॥ १३ ॥ एषा नश्श्रेयसी यात्रा भविष्यति कुलस्य वै ॥ पौराणामथ पुर्याश्च देशस्य च सुखावहा ॥ १४ ॥ न च शत्रोः परिभ्रष्टा राजानो विजिगीषवः ॥ परराष्ट्रेषु मृष्यन्ति मृधे शत्रोः क्षयं विना ॥१५॥ एवमुक्त्वा तु तौ वीरौ कृष्णसंकर्षणावुभौ ॥ प्रपेदतुरसंभ्रान्तौ दक्षिणौ दक्षिणापथम् ॥ १६ ॥ तौ तु राष्ट्राणि शतशश्चरन्तौ कामरूपिणौ ॥ दक्षिणां दिशमास्थाय चेरतुर्मार्गगौ सुखम् ॥ १७ ॥ सह्यपृष्ठेषु रम्येषु मोदमानावुभौ तथा ॥ दक्षिणापथगौ वीरावध्वानं संप्रपेदतुः ॥ १८ ॥ तौ च स्वल्पेन कालेन सह्याचलविभूषितम् ॥ करवीरपुरं प्राप्तौ स्ववशेन विभूषितम् ॥ १९ ॥ तौ तत्र गत्वा वेणाया नद्यास्तीरान्तमाश्रितम् ॥ आसेदतुः प्ररोहाढ्यं न्यग्रोधं तरुपुङ्गवम् ॥ २० ॥ अधस्तात्तस्य वृक्षस्य मुनिं दीप्ततपोधनम् ॥ अंसावसक्तपरशुं जटावल्कलधारिणम् ॥ २१ ॥

करते दक्षिण दिशामें प्राप्त हो सुखसे विचरने लगे॥१७॥मनोहर पर्वतके देशोंमें प्रसन्नमन हो वे वीर दक्षिणमार्गमें प्रवृत्त हुए ॥१८॥ और बहुत थोडे समयमें वे दोनों सह्य पर्वतपर विभूषित अपने वंशसे प्रतिष्ठित करवीर पुरमें प्राप्त हुए॥१९॥वह जाते हुए वेणा नदीके तटपर एक बडे न्यग्रोधके वृक्षके नीचे बैठे॥ २० ॥उस वृक्षके नीचे एक बडे तपोधन मुनि अपनी दीप्तिसे प्रकाशमान कंधेपर परशा, जटा, वल्कल धारण किये ॥ २१ ॥

और अग्निकी समान तेजमें सूर्यकी समान क्षत्रियोंके नाशक क्षोभरहित साक्षात् शरीरधारी सागरकी समान ॥ २२ ॥ त्रेता अग्निके विस्तारसे युक्त समयपर अग्निहोत्र करनेवाले सवनके जलसे क्लिन्न देवगुरु बृहस्पतिकी समान ॥ २३ ॥ बछडे सहित श्वेत रंगकी कामधेनु क्षीर (दूध) और अरणीको ग्रहण करता हुआ महेन्द्र गोचरीभूत ॥ २४ ॥ भार्गववंशावतंस परशुरामजीको मंदरमें सूर्यकी समान ॥ २५ ॥ परशुरामको देखकर इन दोनोंने न्यायसे चरणोंमें प्रणाम किया. उस समय यह वसुदेवके पुत्र शिखायुक्त अग्निकी समान प्रदीप्त हुए ॥ २६ ॥ तब बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने

गौरमग्निशिखाकारं तेजसा भास्करोपमम् ॥ क्षत्रान्तकरमक्षोभ्यं वपुष्मन्तमिवार्णवम् ॥ २२ ॥ न्यस्तसंकुचिताधानं काले हुतहुताशनम् ॥ क्लिन्नं त्रिषवणाम्भोभिराद्यं देवगुरुं यथा ॥ २३ ॥ सवत्सां धेनुकां श्वेतां होमधुक्कामदोहनाम् ॥ क्षीरारणिं कर्षमाणं महेन्द्रगिरिगोचरम् ॥ २४ ॥ ददृशतुस्तौ सहितावपरिश्रान्तमव्ययम् ॥ भार्गवं राममासीनं मन्दरस्थं यथा रविम् ॥ २५ ॥ न्यायतस्तौ तु तं दृष्ट्वा पादमूले कृतासनौ ॥ वसुदेवसुतौ वीरौ सधिष्ण्याविव पावकौ ॥ २६ ॥ कृष्णस्तमृषिशार्दूलमुवाच वदतां वरः ॥ श्लक्ष्णं मधुरया वाचा लोकवृत्तान्तकोविदः ॥ २७ ॥ भगवन् जामदग्न्यं त्वामवगच्छामि भार्गवम् ॥ रामं मुनीनामृषभं क्षत्रियाणां कुलान्तकम् ॥ २८ ॥ त्वया सायकवेगेन क्षिप्तो भार्गव सागरः ॥ इषुपातेन नगरं कृतं शूर्पारकं त्वया ॥ २९ ॥ धनुःपञ्चशतायाममिषुपञ्चशतोच्छ्रयम् ॥ सह्यस्य च निकुञ्जेषु स्फीतो जनपदो महान् ॥ ३० ॥ अतिक्रम्योदधेर्वेलामपरान्ते निवेशितः ॥ त्वया तत्कार्तवीर्यस्य सहस्रभुजकाननम् ॥ ३१ ॥

ऋषिश्रेष्ठसे कहा और वह मधुर वचन नीतिविशारद श्रीकृष्णने हाथ जोडकर कहे श्रीकृष्ण लोकवृत्तान्त जाननेमें महाचतुर थे ॥ २७ ॥ हे भगवन् जमदग्निपुत्र भार्गव ! मैं आपको जानता हूं तुम राम मुनिश्रेष्ठोंके स्थान तथा क्षत्रियकुलके संहार करनेहारे हो ॥ २८ ॥ आपने एकही बाणसे सागरको क्षुभित कर दिया, एक बाणके योगसेही शूर्पारक नगर निर्माण कर दिया था ॥ २९ ॥ तुम्हारा धनुष चार हाथका और बाण दो हाथका है, सह्य पर्वत निकुंजोंमें एक बडा महान् देश है ॥ ३० ॥ सागरकी वेलाको क्रमण कर पश्चिम समुद्रके किनारे निवास किया,

तुमनेही कार्तवीर्य राजाकी सहस्र भुजा छेदन कर दीं ॥३१॥ पिताका निधन सुन उस कार्तवीर्यकी भुजा एक परशेके प्रहारसे छेदन कर दीं, और अबतक शत्रुरूपी राजोंके मरनेसे॥३२॥उनके रुधिरसे अबतक पृथ्वी लाल हो रही है,यह रेणुका तुम्हारे राजोंपर क्रोध करनेके स्वभावको जानती है॥३३॥परशुके प्रग्रहमें जिस प्रकार युक्त हो इसी प्रकारसे हरणमें भी तुम सर्वथा समर्थ हो.हे ब्राह्मण ! इस कारण तुमसे कुछ आख्यान सुननेकी इच्छा है॥३४॥ हमारे सुने हुए अर्थका उत्तर संदेह रहित देना. हे राम ! हम दोनोंके रहनेका स्थान यमुना किनारेकी मथुरा पुरी है ॥ ३५ ॥ हे

छिन्नं परशुनैकेन स्मरता निधनं पितुः ॥ इयमद्यापि रुधिरैः क्षत्रियाणां हतद्विषाम् ॥ ३२ ॥ स्निग्धैस्त्वत्परशूत्सृष्टै रक्तपङ्का वसुंधरा ॥ रेणुकेयं विजाने त्वां क्षितौ क्षितिपरोषणम् ॥ ३३ ॥ परशुप्रग्रहे युक्तं यथैवेह रणे तथा ॥ तदिच्छावस्त्वया विप्र कंचिदर्थमुपश्रुतम् ॥ ३४ ॥ उत्तरं च श्रुतार्थेन प्रत्युक्तमविशङ्कया ॥ आवयोर्मथुरा राम यमुनातीरशोभिनी ॥ यादवौ स्वो मुनिश्रेष्ठ यदि ते श्रुतिमागतौ ॥ वसुदेवो यदुश्रेष्ठः पिता नौ हि धृतव्रतः ॥ ३६ ॥ जन्मप्रभृति चैवावां व्रजेष्वेव नियोजितौ ॥ तौ स्वः कंसभयात्तत्र शङ्कितौ परिवर्द्धितौ ॥ ३७ ॥ वयं च प्रथमं प्राप्तौ मथुरायां प्रवेशितौ ॥ तावावां च्युत्थितं हत्वा समाजे कंसमोजसा ॥ ३८ ॥ पितरं तस्य तत्रैव स्थापयित्वा जनेश्वरम् ॥ स्वमेव कर्म चारब्धौ गवां व्यापारकारकौ ॥ ३९ ॥ अथावयोः पुरं रोद्धुं जरासंधो व्यवस्थितः ॥ संग्रामान्सुबहून्कृत्वा लब्धलक्षावपि स्वयम् ॥ ४० ॥ ततस्स्वपुररक्षार्थं प्रजानां च धृतव्रत ॥ अकृतार्थावनुद्योगौ कर्तव्यबलसाधनौ ॥ ४१ ॥

मुनि ! हम दोनों यादव हैं,कदाचित् तुमने हमारा नाम सुना होगा,वसुदेव व्रतधारी हमारे दोनोंके पिता हैं॥३६॥जन्मसेही हम दोनों व्रजमें रक्खे गये थे, और कंसके भयसे शंकित हो वहीं रहकर बडे हुए हैं॥३७॥पीछे हम दोनों मथुरामें बुलाये गये,तब हमने पराक्रम प्रकाशपूर्वक कंसको सभामें मारडाला ॥३८॥ और उसीके पिताको उसके राज्यमें स्थित कर हमने अपने गायोंके व्यापारके कर्म प्रारम्भ किये ॥३९॥ तब हमारी पुरी रोकनेको जरासंधने उद्योग किया और उसने बार २ संग्राममें हमसे पराजय पाई ॥४०॥ हे धृतव्रत ! अब अपने पुरकी रक्षाके निमित्त हम दोनों पर

शस्त्र उद्योग कर्तव्य बलसाधन नहीं ॥ ४१ ॥ रथहीन प्यादे युद्धमें कवच और आयुधहीन हो जरासंधके भयसे पुरसे द्वारे निकल भागे ॥ ४२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार हम दोनों तुम्हारे निकट प्राप्त हुए हैं,केवल हम दोनोंको मंत्र बतानेका सत्कार कीजिये॥४३॥इस प्रकार परशुरामजीने उनके निन्दारहित वाक्यको सुन धर्मपूर्वक इस प्रकारके वचन कहे॥४४॥पश्चिम सागरसे शिष्योंकोभी वहीं छोड केवल तुम्हें मंत्र देनेको इस स्थानमें आया हूं॥ ४५ ॥ हे कमललोचन कृष्ण ! तुम्हारा व्रजमें रहना मुझे विदित है और दानव तथा कंसका वधभी मैंने सुना है॥४६॥ हे पुरुषोत्तम ! जरासंधसे

अरथौ पत्तिनौ युद्धे निस्तनुत्रौ निरायुधौ ॥ जरासंधोद्यमभयात्पुराद्द्वावेव निःसृतौ ॥४२॥ एवमावामनुप्राप्तौ मुनिश्रेष्ठ तवान्तिकम् ॥ आवयोर्मन्त्रमात्रेण कर्तुमर्हसि सत्क्रियाम् ॥ ४३ ॥ श्रुत्वैतद्भार्गवो रामस्तयोर्वाक्यमनिन्दितम् ॥ रैणुकेयः प्रतिवचो धर्मसंहितमब्रवीत् ॥ ३४ ॥ अपरान्तादहं कृष्ण संप्रतीहागतः प्रभो ॥ एक एव विना शिष्यैर्युवयोर्मन्त्रकारणात् ॥ ४५ ॥ विदितो मे व्रजे वासस्तव पद्मनिभेक्षण ॥ दानवानां वधश्चापि कंसस्यापि दुरात्मनः ॥ ४६ ॥ विग्रहं च जरासंधे विदित्वा पुरुषोत्तम ॥ तव सभ्रातृकस्येह संप्राप्तोऽस्मि वरानन ॥ ४७ ॥ जाने त्वां कृष्ण गोप्तारं जगतः प्रभुमव्ययम् ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमबालं बालतां गतम् ॥ ४८ ॥ न त्वयाविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ तथापि भक्तिमात्रेण शृणु वक्ष्यामि ते वचः ॥ ४९ ॥ पूर्वजैस्तव गोविन्द पूर्वं पुरमिदं कृतम् ॥ करवीरपुरं नाम राष्ट्रं चैव निवेशितम् ॥ ५० ॥

जो विग्रह हुआ है वहभी मैंने सुना है,हे श्रेष्ठमुख कृष्ण ! मैं भ्राताके समान तुम्हारे निकट प्राप्त हुआ हूं॥४७॥हे कृष्ण ! मैं जाता हूं तुम जगत्के रक्षा करनेहारे विनाशी हो, देवताओंका कार्य सिद्ध करनेको बालक न होकरभी तुम बालक हुए हो ॥४८॥ तुमको त्रिलोकीमेंभी कुछ अविदित नहीं है,तोभी मैं भक्तिसे जो आपके प्रति कहता हूं सो सुनो॥४९॥हे गोविंद ! तुम्हारे पूर्वजोंनेही यह करवीर पुर नामक राज्यस्थान कल्पना किया

था॥५०॥हे कृष्ण ! इस पुरमें वासुदेव नाम महायशस्वी शृगाल नामसे विख्यात परम क्रोधी राजा निवास करता था ॥ ५१ ॥ हे गोविंद ! उसी राजाने अपने वंशमें होनेवाले बहुतसे राजाओंका संहार कर दिया है ॥ ५२ ॥ कारण कि,यह राजा अहंकारसे द्वेष करनेहारा और अजितेन्द्रिय है, राज्यके ऐश्वर्य और मदसे आविष्ट होनेके कारण पुत्रोंसेभी दारुणतापूर्वक वर्तता है ॥ ५३ ॥ सो हे श्रीकृष्ण ! मेरी यह इच्छा है कि आपका स्थान यही हो,यह घोर करवीरपुर राजासे नित्य दूषित है ॥ ५४ ॥ और सुनो मैं कहता हूं जहां तुम दोनों महाबली जरासंधको संग्राममें लडकर

पुरेऽस्मिन्नृपतिः कृष्ण वासुदेवो महायशाः ॥ शृगाल इति विख्यातो नित्यं परमकोपनः॥५१॥ नृपेण तेन गोविन्द तव वंशभवा नृपाः ॥ दायादा निहतास्सर्वे वीरद्वेषनुशायिना ॥ ५२ ॥ अहंकारपरो नित्यमजितात्मातिमत्सरी ॥ राज्यैश्वर्यमदाविष्टः पुत्रेष्वपि च दारुणः ॥ ५३ ॥ तन्नेह भवतस्स्थानं रोचते मे नरोत्तम ॥ करवीरपुरे घोरे नित्यं पार्थिवदूषित ॥ ५४ ॥ श्रूयतां कथयिष्यामि यत्रोभौ शत्रुबाधनौ ॥ जरासंधं बलोदग्रं भवन्तौ योधयिष्यतः ॥ ५५ ॥ तीर्त्वा वेणामिमां पुण्यां नदीमद्यैव बाहुभिः विषयान्त निवासाय गिरिं गच्छाम दुर्गमम् ॥ ५६ ॥ रम्यं यज्ञगिरिं नामसह्यस्य प्ररुहं गिरिम् ॥ निवासं मांसभक्षाणां चौराणां घोरकर्मणाम् ॥५७॥ नानाद्रुमलतायुक्तं चित्रं पुष्पितपादपम् ॥ प्रोष्ये तत्र निशामेकां खट्वाङ्गां नाम निम्नगाम् ॥ ५८ ॥ भद्रं ते संतरिष्यामो निकषोपलभूषणाम् ॥ गङ्गाप्रपातप्रतिमां भ्रष्टां च महतो गिरेः ॥ ५९ ॥ तस्याः प्रपातं द्रक्ष्यामस्तापसारण्यभूषणम् ॥ उपभुज्य त्विमान्कामान्गत्वा तान्धरणीधरान् ॥ ६० ॥

बाधित कर सकोंगे ॥५५॥ अभी इस वेणानदीको भुजाओंसे पैरकर इस समय पर्वत वन दुर्गम स्थानको चलेंगे॥५६॥सह्य पर्वतको यज्ञपर्वतके पीछे जाकर जहां कि मांस भक्षण करनेहारे क्रूरकर्मा चोर निवास करते हैं॥५७॥नाना वृक्ष और लताओंसे पूर्ण चित्र विचित्र लतापुष्पोंसे समन्वित उस स्थानमें एक रात्रि निवास करके खट्वांग नाम नदीको ॥५८॥ जो कि कसौटीक पत्थरोंसे शोभित है तर जांयगे जो कि गंगाके गिरनेके समान जो बडे पर्वतसे गिरी है ॥ ५९ ॥ वहां उसका प्रताप देखेंगे जो कि तपस्वीवनसे भूषित है, इस प्रकार अनेक कामना भोगकर उन पर्वतोंके निकट

आकर ॥ ६० ॥ तपसे शान्त हुए उन ऋषियोंका दर्शन करेंगे, इस प्रकार वहांसे मनोहर क्रौंचपुरको जांयगे ॥ ६१ ॥ हे कृष्ण ! वहां एक तुम्हारे वंशका महाधर्मात्मा राजा निवास करता है, उसका नाम महाकपि है; वह वनवासियोंका अधिपति है ॥ ६२ ॥ उस राजासे विना मिलेही एक दिन वहीं निवास कर अनुडुह नामक तीर्थके वहांसे साथही साथ चलेंगे ॥ ६३ ॥ फिर वहांसे सह्य पर्वतके विवरसे गोमंत पर्वतको चलेंगे जो कि अनेक शृंगोंसे विभूषित है ॥ ६४ ॥ उसका एक शृंग ऐसा ऊंचा है वहां पक्षीभी नहीं जा सके, वहां ज्योतियोंसे पूर्ण रहता है और देवता वह विश्राम करते हैं॥ ६५॥

द्रक्ष्यामस्तत्र तान्विप्राञ्छाम्यतो वै तपोधनान् ॥ रम्यं क्रौञ्चपुरं नाम गमिष्यामः पुरोत्तमम् ॥ ६१ ॥ वंशजस्तत्र ते राजा कृष्ण धर्मरतस्सदा ॥ महाकापीरिति ख्यातो वनवास्यजनाधिपः ॥ ६२ ॥ तमदृष्ट्वैव राजानं निवासाय गतेऽहनि ॥ तीर्थमानडुहं नाम तत्रस्थाः स्याम संगताः ॥ ६३ ॥ ततश्च्युता गमिष्यामस्सह्यस्य विवरे गिरिम् ॥ गोमन्तमिति विख्यातं नैकशृङ्गविभूषितम् ॥ ६४ ॥ स्वगतैकमहाशृङ्गं दुरारोहं खगैरपि ॥ विश्राममभूतं देवानां ज्योतिर्भिराभिसंवृतम् ॥ ६५ ॥ सोपानभूतं स्वर्गस्य गगनाद्रिमिवोच्छ्रितम् ॥ तं विमानावतरणं गिरिं मेरुमिवापरम् ॥ ६६ ॥ तस्योत्तमे महाशृङ्गे भास्वन्तौ देवरूपिणौ ॥ उदयास्तमये सूर्यं सोमं च ज्योतिषां पतिम् ॥ ६७ ॥ ऊर्मिमन्तं समुद्रं च अपारद्वीपभूषणम् ॥ प्रेक्षमाणौ सुखं तत्र नगाग्रे विचरिष्यथः ॥६८॥ शृङ्गस्थौ तस्य शैलस्य गोमन्तस्य वनेचरौ ॥ दुर्गयुद्धेन धावन्तौ जरासंधं विजेष्यथः ॥ ६९ ॥ तत्र शैलगतौ दृष्ट्वा भवन्तौ युद्धदुर्मदौ ॥ अशक्तश्शैलयुद्धे वै जरासंधो भविष्यति ॥ ७० ॥

वह स्वर्गका सोपान (सीढी) है । आकाशके समान ऊंचा विमानोंका विरामस्थान दूसरे मेरु पर्वतकी समान है ॥६६॥ उनके दो शृंग प्रकाशमान देवताओंकी समान हैं, वे उदय और अस्तके समय ज्योतियोंके पति सूर्य और चन्द्रमाको ॥ ६७ ॥ तथा तरंगवान् समुद्रको अपार द्वीपकी भूषण देखते हुए उस पर्वतके अग्रभागमें तुम विचरोगे ॥ ६८ ॥ तुम उस गोमन्त पर्वतके शृंगपर वनमें विचरते हुए दुर्ग युद्धसे धावमान होते हुए जरासंधको जीत लोगे ॥ ६९ ॥ वहां तुम दोनोंको पर्वतमें देखकर वह जरासंध पर्वतपरसे तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें असमर्थ हो जायगा ॥ ७० ॥

और तुम दोनोंको युद्ध करनेके समय शस्त्रोंसहित मैंभी तत्काल प्राप्त होके देखूंगा ॥ ७१ ॥ हे कृष्ण ! देवताओंने युद्ध होना वहां पहलेही निश्चय कर लिया है, वहां यदुओंका और दूसरे राजोंकाभी मांस शोणितमय संग्राम होगा ॥ ७२ ॥ वहां चक्र हल कौमोदकी सौनंद मूसल तथा और विष्णुके आयुध ॥ ७३ ॥ युद्धमें तुमको मिलेंगे, राजोंका रुधिर कालरूप होकर पान करेंगे ॥ ७४ ॥ हे कृष्ण ! वह चक्र और मूसल नामक संग्राम देवताओंने वर्णन कर दिया है, वह कालके अनुसार होगा ॥ ७५ हे असुरोंके मारनेहारे कृष्ण ! उस समय तुम्हारे वैष्णवरूपको देवता और असुर देखेंगे ॥ ७६ ॥

भवतोरपि युद्धे तु प्रवृत्ते तत्र दारुणे ॥ आयुधैस्सह संयोगं पश्यामि न चिरादिव ॥ ७१ ॥ संग्रामश्च महान्कृष्ण निर्दिष्टस्तत्र दैवतैः ॥ यदूनां पार्थिवानां च मांसशोणितकर्दमः ॥ ७२ ॥ तत्र चक्रं हलं चैव गदां कौमोदकीं तथा ॥ सौनन्दं मुशलं चैव वैष्णवान्यायुधानि च ॥ ७३ ॥ दर्शयिष्यन्ति संग्रामे पास्यन्ति च महीक्षिताम् ॥ रुधिरं कालयुक्तानां वपुर्भिः कालसंनिभैः॥७४॥ स चक्रमुशलो नाम संग्रामः कृष्ण विश्रुतः ॥ दैवतैरिह निर्दिष्टः कालस्यादेशसंज्ञितः ॥ ७५ ॥ तत्र ते कृष्ण संग्रामे सुव्यक्तं वैष्णवं वपुः ॥ द्रक्ष्यन्ति रिपवः सर्वे सुराश्च सुरभावन ॥ ७६ ॥ तां भजस्व गदां कृष्ण चक्रं च चिरविस्मृतम् ॥ भजस्व स्वेन रूपेण सुराणां विजयाय वै ॥ ७७॥ बलश्चायं हलं घोरं मुशलं चारिमर्दनम् ॥ वधाय सुरशत्रूणां भजताल्लोकभावनः ॥ ७८ ॥ एष ते प्रथमः कृष्ण संग्रामो भुवि पार्थिवैः ॥ पृथिव्यर्थे समाख्यातो भारावतरणे सुरैः ॥ ७९ ॥ आयुधावाप्तिरत्रैव वपुषो वैष्णवस्य च ॥ लक्ष्म्याश्च तेजसश्चैव व्यूहानां च विदारणम् ॥ ८० ॥

हे कृष्ण ! इस गदा और चक्रको तुम ग्रहण कर इसको देवताओंके विजयके निमित्त अपने रूपसे ग्रहण करो ॥ ७७ ॥ और बलरामजी घोर हल और मूसलको देवताओंके शत्रुओंके मारनेके निमित्त ग्रहण कीजिये ॥ ७८ ॥ हे कृष्ण ! पृथ्वीमें राजोंसे यह तुम्हारा पहला संग्राम होगा, देवताओंने भार दूर करनेको पृथ्वीके निमित्त कह रक्खा है ॥ ७९ ॥ इसी स्थानमें आयुधोंकी प्राप्ति, वैष्णव शरीर लक्ष्मी और तेजकी प्राप्ति होगी और व्यूहोंका

विदारण हो सकेगा ॥ ८० ॥ और कुछ दिनोंके उपरान्त इस पृथ्वीमें महा अस्त्रोंके घमसान युक्त लोकविख्यात भारत नाम संग्राम होगा ॥ ८१ ॥ हे कृष्ण ! इससे गोमन्त नाम पर्वतश्रेष्ठको गमन करो. युद्धमें जरासंधसे विजय पाना तुम्हारे निमित्त निर्दिष्ट है ॥ ८२ ॥ यह अमृतकी समान होमधेनुका दूध है इसे पान कर जो मार्ग मैंने कहा है उस मार्गसे जाइये तुम्हारा मंगल हो ॥ ८३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ॥ ७ ॥ वैशंपायन बोले; तब उस गौका दूध पान कर वे दोनों बलदर्पसे समन्वित हो वे दोनों वीर

अतः प्रभृति संग्रामो धरण्यां शस्त्रमूर्च्छितः ॥ भविष्यति महान्कृष्ण भारतं नाम वैशसम् ॥ ८१ ॥ तद्गच्छ कृष्ण शैलेन्द्रं गोमन्तं च नगोत्तमम् ॥ जरासंधमृधे चापि विजयस्त्वामुपास्थितः ॥ ८२ ॥ इदं चैवामृतप्रख्यं होमधेनोः पयोमृतम् ॥ पीत्वा गच्छत भद्रं वो मयादिष्टेन कर्मणा ॥ ८३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामवाक्यं नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तत्तु धेन्वाः पयः पीत्वा बलदर्पसमान्वितौ ॥ ततस्तौ रामसहितौ प्रस्थितौ यदुपुङ्गवौ ॥ १ ॥ गोमन्तं पर्वतं द्रष्टुं मत्तनागेन्द्रगामिनौ ॥ जामदग्न्यप्रदिष्टेन मार्गेण वदतां वरौ ॥ २ ॥ जामदग्न्यस्तृतीयस्ते त्रयस्त्रय इवाग्नयः ॥ शोभयन्ति स्म पन्थानं त्रिदिवं त्रिदशा इव ॥ ३ ॥ ते चाध्वविधिना सर्वे ततो वै दिवसक्रमात् ॥ गोमन्तमचलं प्राप्ता मन्दरं त्रिदशा इव ॥ ४ ॥ लताचारुविचित्रं च नानाद्रुमविभूषितम् ॥ नानागुरुपिनद्धाङ्गं चित्रं चित्रैर्मनोहरैः ॥ ५ ॥ द्विरेफगणसंकीर्णं शिलासंकटपादपम् ॥ मत्तबर्हिणनिर्घोषैर्नादितं मेघनादिभिः ॥ ६ ॥

वहांसे चले ॥ १ ॥ मतवाले हाथीकी समान गोमन्त पर्वतके देखनेके निमित्त वह दोनों श्रेष्ठ बोलनेवाले परशुरामके दिखाये मार्गसे ॥ २ ॥ तीसरे परशुरामजीके साथ तीनों अग्निकी समान मार्गको शोभित करने लगे, जैसे देवता स्वर्गको शोभित करते हैं ॥ ३ ॥ वे सब मार्गमें जाते हुए कुछ दिनोंमें गोमन्त पर्वतको प्राप्त हुए जैसे देवता मन्दर पर्वतको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ सुन्दर लताओंसे विचित्रित अनेक वृक्षोंसे विभूषित अगर चन्दनादिसे भूषित तथा मनोहर रूप मोरोंसे विचित्र ॥ ५ ॥ भ्रमरोंके समूहोंसे संकीर्ण शिला और पर्वतके समूहोंसे पूर्ण मतवाले मोर और मेघोंके

शब्दसे अनुनादित ॥ ६ ॥ जिसके शिखर आकाशमें व्याप्त और मेघोंसे मिले वृक्षोंसे शोभित, मतवाले हाथियोंके दंतघर्षणसे चिन्हित शिलावाला ॥७॥ पक्षियोंसे कुंजित चारों ओरसे शब्दायमान गुफाओंमें गिरते हुए जलके शब्दसे व्याप्त;हरे पत्तोंसे आच्छादित॥८॥नीले पर्वतके संघातसे मेघके समान बहुतसे वर्णवाला धातुओंके विस्रावसे युक्त अंगवाला जलके गिरनेसे विभूषित ॥९॥ मनोहर देवताओंसे व्याप्त, कांतिमान् मैनाकके समान इच्छाचारी ऊंचा और सुन्दर अग्रभागसे युक्त जडसे जलका झिरानेवाला॥१०॥वनगुफाओंसे युक्त, श्वेत बादलोंसे विभूषित, पनस आमला

गगनालग्नशिखरं जलदासक्तपादपम्॥मत्तद्विपविषाणाग्रैः परिघृष्टोपलाङ्कितम् ॥७॥कूजद्भिश्चाण्डजगणैस्समन्तात्प्रतिदिनादितम्॥
दरीप्रपाताम्बुरवैश्छन्नं शार्दूलपल्लवैः॥८॥ नीलास्मचयसंघातैर्बहुवर्णं यथा घनम् ॥ धातुविस्रावदिग्धाङ्गं सानुप्रस्रवभूषितम् ॥ ९ ॥
कीर्णं सुरगणैः कान्तैर्मैनाकमिव कामगम् ॥ उच्छ्रितं सुविशालाग्रं समूलाम्बुपरिस्रवम् ॥ १० ॥ सकाननदरीप्रस्थं श्वेताभ्रगणभूषितम् ॥ पनसाम्रातकाम्रौघैर्वेत्रस्यन्दनचन्दनैः ॥ ११ ॥ तमालैलावनयुतं मरीचक्षुपसंकुलम् ॥ पिप्पलीवल्लिकलिलं चित्रमिंगुदिपादपैः ॥ १२ ॥ द्रुमैस्सर्जरसानां च सर्वतः परिशोभितम् ॥ प्रांशुशालवनैर्गुप्तं बहुचित्रवनैर्युतम् ॥ १३ ॥ सर्जनिम्बार्जुनवनं पाटलीकुलसंकुलम् ॥ हिन्तालैश्च तमालैश्च पुन्नागैश्चोपशोभितम्॥१४॥जलेषु जलजैश्छन्नं स्थलेषु स्थलजैरपि ॥पङ्कजैद्रु मखण्डैश्च सर्वतः प्रतिभूषितम् ॥ १५ ॥ जंबूजम्बूलवृक्षाढयं कद्रुकन्दलभूषितम् ॥ चम्पकाशोकबकुलं बिल्वतिन्दुकशोभितम् ॥ १६ ॥
कुब्जैश्च नागपुष्पैश्च समन्तादुपशोभितम् ॥ नागयूथसमाकीर्णं मृगसंघातशोभितम् ॥ १७ ॥

आम बेत स्यंदन चंदन ॥११॥ तमाल इलायचीके वनसे संयुक्त, मिरच पीपल बेला चित्रक ईंगुदी ॥ १२ ॥ तथा अन्य वृक्षोंसे संकुल और रालके वृक्षोंसे चारों ओरसे शोभित,ऊंचे सालके वनोंसे रक्षित विचित्र वन ॥ १३ ॥ सरल,नीम, अर्जुन, पाटलकी, हिंताल, तमाल और पुन्नाग वृक्षोंसे शोभित ॥१४॥ जलमें जलचरोंसे और स्थलमें स्थल चरोंसे युक्त कमल और वृक्षोंसे चारों ओरसे व्याप्त ॥ १५ ॥ जामन, कंदु, कंद, चमेली, चंपक,अशोक,बकुल, बेल, तैंदुसे शोभित॥ १६ ॥ कुडा और नागकेशरसे चारों ओर शोभित. हाथियोंसे पूर्ण और मृगसमूहोंसे शोभित ॥१७॥

सिद्ध चारण राक्षसोंसे सेवित शिलावाला, गन्धर्व और गुह्यक पक्षियोंसे समायुक्त ॥ १८ ॥ विद्याधरगणोंसे जिसके शिलातल व्याप्त हैं, सिंह शार्दूलके सन्नादसे निरन्तर शब्दायमान जलधारासे सेवित और चन्द्रमाकी किरणोंसे अलंकृत ॥ १९ ॥ देवता गंधर्वोंसे सराहा हुआ अप्सराओंसे अलंकृत दिव्य वनस्पतियोंके ऊंचे नीचे पुष्पोंसे शोभित ॥ २० ॥ इन्द्रके वज्रप्रहारको कभी न जाननेवाला, दावाग्नि और महापवनके भयसे हीन ॥ २१ ॥ प्रपातसे उत्पन्न हुई नदियोंसे शोभित आनन (मुख) के आकार वनकी विशेष शोभासे शोभित ॥ २२ ॥ जल शैवाल और शृंगाग्रसे मानो लक्ष्मीसहित नेत्र खोल

सिद्धचारणरक्षोभिस्सेवितप्रस्तरान्तरम् ॥ गन्धर्वैश्च समायुक्तं गुह्यकैः पक्षिभिस्तथा॥ १८ ॥विद्याधरगणैर्नित्यमनुकीर्णशिलातलम् ॥
सिंहशार्दूलसन्नादैस्सततं प्रतिनादितम् ॥ सेवितं वारिधाराभिश्चन्द्रपादैश्च शोभितम् ॥१९॥ स्तुतं त्रिदशगन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृतम् ॥
वनस्पतीनां दिव्यानां पुष्पैरुच्चावचैश्श्रितम् ॥ २० ॥ शक्रवज्रप्रहाराणामनभिज्ञं कदाचन ॥ दवाग्निभयनिर्मुक्तं महावातभयोज्झि-
तम् ॥ २१ ॥ प्रपातप्रभवाभिश्च सरिद्भिरुपशोभितम् ॥ काननैराननाकारैर्विशेषाद्भिरिव श्रियम् ॥ २२ ॥ जलशैवलशृङ्गाग्रैरुन्मि-
षन्तमिव श्रिया ॥ स्थलीभिर्मृगजुष्टाभिः कान्ताभिरुपशोभितम् ॥ २३ ॥ पार्श्वैरुपलकल्माषैर्मेघैरिव विभूषितम् ॥ पादप्रच्छन्नभूमी-
भिस्सपुष्पाभिस्समन्ततः ॥ २४ ॥ मण्डितं वनराजीभिः प्रमदाभिः पतिं यथा ॥ सुन्दरीभिर्दरीभिश्च कन्दराभिस्तथैव च ॥ २५ ॥
तेषु तेष्ववकाशेषु सदारामिव शोभितम् ॥ औषधीदीप्तशिखरं वानप्रस्थनिषेवितम् ॥ जातरूपैर्वनोद्देशैः कृत्रिमैरिव भूषितम् ॥ २६ ॥
मूलेन सुविशालेन शिरसाप्युच्छ्रितेन च ॥ पृथिवीमन्तरिक्षं च गाहयन्तामिव स्थितम् ॥ २७ ॥

॥११४॥

रहा है, मृगोंसे युक्त मनोहर स्थलियोंसे शोभित ॥ २३ ॥ पार्श्वभागमें श्याम मेघोंसे शोभित, चारों ओर फूलवाले वृक्षोंसे शोभित पृथ्वी लाल ॥ २४ ॥ स्त्रियोंसे जैसे पति शोभित होता है उस प्रकार वनराजियोंसे शोभित मनोहर कंदरा और गुहाओंसे अलंकृत ॥ २५ ॥ उन उन अवकाशोंमें स्त्रियोंकी समान शोभित औषधियोंसे दीप्त शिखरवाला और वानप्रस्थोंसे सेवित सुवर्णके वनोद्देश और कृत्रिमकी समान वनोंसे शोभित ॥ २६ ॥ बडे भारी मूल

और महाअंगसे ऊंचे मानो पृथ्वी और अन्तरिक्षको अवगाहन करते हुए उस पर्वतश्रेष्ठ ॥ २७ ॥ परम मनोहर गोमंतपर्वतपर देवताओंके समान वे तीनों पहुंचकर बडे प्रसन्न हुए ॥२८॥ जैसे पक्षी आकाशमें जाते हैं वैसे वे ऊपरको चढे और वेगसे हत न हो गरुडके समान वेगसे चले ॥ २९ ॥ वे तीनों देवताओंके समान उसके शृंगपर चढे और बहुत शीघ्र मनसे बने हुएके समान उन्होंने वह स्थान बनाया ॥ ३० ॥ जब बलरामजी और श्रीकृष्णने उसमें प्रवेश किया तब जानेकी इच्छासे परशुरामजी पूछने लगे ॥३१॥ हे कृष्ण ! तुम्हारा मंगल हो मैं शूर्पारिक पुरको जाता हूं

ते तमासाद्य गोमन्तं रम्यंभूमिधरोत्तमम् ॥ रुचिरं रुरुचुस्सर्वे वासायामरसन्निभाः ॥ २८ ॥ रुरुहस्ते गिरिवरं खमूर्ध्वमिव पक्षिणः ॥ असज्जमाना वेगेन वैनतेयपराक्रमाः ॥२९॥ ते तु तस्योत्तरं शृङ्गमारूढास्त्रिदशा इव ॥ अगारं सहसा चक्रुर्मनसा निर्मितोपमम् ॥३०॥ निविष्टौ यादवौ दृष्ट्वा जामदग्न्यो महामतिः ॥ रामोऽभिमतमक्लिष्टमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ ३१ ॥ कृष्ण यास्याम्यहं तात पुरं शूर्पारकं विभो ॥ युवयोर्नास्ति वैमुख्यं संग्रामे दैवतैरपि ॥ ३२ ॥ प्राप्तवानस्मि यां प्रीतिं मार्गानुगमनादपि ॥ सा मे कृष्णानुगृह्णाति शरीरमिदमव्ययम् ॥ ३३ ॥ इदं यत्स्थानमुद्दिष्टं यत्रायुधसमागमः ॥ युवयोर्विहितो देवैस्समयस्साम्परायिकः ॥३४॥ देवानां मुख्य वैकुण्ठ विष्णो देवैरभिष्टुतः ॥ कृष्ण सर्वस्य लोकस्य शृणु मे नैष्ठिकं वचः॥३५॥ यदिदं प्रस्तुतं कर्म त्वया गोविन्द लौकिकम् ॥ मानुषाणां हितार्थाय लोके मानुषदेहिना ॥३६॥ तस्यायं प्रथमः कल्पः कालेन तु वियोजितः ॥ जरासंधेन वै सार्द्धं संग्रामे समुपस्थिते ॥ ३७ ॥

यदि देवताओंसभी संग्राम हो तो तुम हार नहीं सक्के ॥३२॥ जैसे कि मैं तुम्हारे साथ चलनेसे बहुत प्रसन्न हुआ हूं सो हे कृष्ण ! तुम्हारी प्रीति मेरे शरीरको अनुगृहीत करेगी ॥३३॥ यह वही स्थान है जहां आयुधोंकी प्राप्ति होगी देवताओंनेपरलोकके हित करनेहारा समय निरूपण किया है ॥३४॥ हे वैकुंठनिवास ! हे देवताओंमें मुख्य विष्णु ! ! देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त कृष्ण ! ! ! सर्वलोकके हितकारी मेरे वचनसुनो ॥ ३५ ॥ हे गोविंद!जो कि आपने यह लोकका कर्म किया है सो मनुष्यदेह धारण कर लोकके हित करनेके निमित्त अवतार लेकर किया है॥३६॥अब उसका यह

पहला कालका प्रेरित किया है कारण कि अब जरसंधक साथ संग्राम उपस्थित होनेपर ॥ ३७ ॥ उसमें आयुध, बल, रूप, रणकी कठिनता हे कृष्ण!स्वयंही तुमको प्राप्त होगी ॥३८॥ संग्राममें तुम्हारे हाथमें चक्र और गदा देखकर और प्रबल आठभुजा देखकर तुमसे इन्द्रभी भयभीत हो जायगा ॥३९॥ अब तुम्हारे अस्त्र ग्रहण करनेपर आजसे पृथ्वीपर रहनेवाले राजाओंकी यात्रा प्रारम्भ हुई ॥ ४० ॥ हेगोविन्द ! बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ तुम बहुत शीघ्र ध्वजकर्मा गरुडका आह्वान करो॥४१॥यह युद्धकामना करनेवाले राजा स्वर्ग जानेको तैयार हैं. यह दुर्योधनके

तत्रायुधबलं चैव रूपं चरणकर्कशम् ॥ स्वयमेवात्मना कृष्ण त्वयात्मानं विधत्स्व ह ॥ ३८ ॥ चक्रोद्यतकरं दृष्ट्वा त्वां गदापाणिमाहवे ॥ चतुर्द्विगुणपीनांसं बिभ्येदपि शतक्रतुः ॥३९॥ अद्यप्रभृति ते यात्रा स्वर्गोक्ता समुपस्थिता ॥ पृथिव्यां पार्थिवेन्द्राणां कृतास्त्रे त्वयि मानद ॥४०॥ वैनतेयस्य चाह्वानं वाहनं ध्वजकर्मणः ॥ कुरु शीघ्रं महाबाहो गोविन्द वदतां वर ॥४१॥ युद्धकामा नृपतयस्त्रिदिवाभिमुखोद्यताः ॥ धार्तराष्ट्रस्य वशगास्तिष्ठन्ति रणवृत्तयः ॥ ४२ ॥ राज्ञां निधनदृष्टार्था वैधव्येनाधिवासिता ॥ एकवेणीधरा चेयं वसुधा त्वां प्रतीक्षते ॥४३॥ सग्रहं कृष्ण नक्षत्रं संक्षिप्यारिविमर्दन ॥ त्वयि मानुष्यमापन्ने युद्धे च समुपस्थिते ॥४४॥ त्वरस्व कृष्ण युद्धाय दानवानां वधाय च ॥ स्वर्गाय च नरेन्द्राणां देवतानां सुखाय च ॥४५॥ सत्कृतोऽहं त्वया कृष्ण लोकश्च सचराचरैः ॥ त्वया सत्कृतरूपेण येन सत्कृतवानहम् ॥ ४६ ॥

वशीभूत हो रण करनेको स्थित हैं ॥ ४२ ॥ राजाओंका निधन देखनेवाली विधवापनके श्वेत वस्त्र धारे एकवेणी केशवाली पृथ्वी तुम्हारी प्रतीक्षा करती हैं ॥४३॥ हे शत्रुनाशक कृष्ण ! तुम्हारे मनुष्य होकर प्रकट होने और युद्ध उपस्थित होनेमें मरणके भयसे राजा संकुचित नहीं किन्तु प्रफुल्ल हो रहे हैं ॥४४॥ हे कृष्ण ! अब युद्ध और दानवोंके मारनेमें शीघ्रता करो राजोंके स्वर्ग जाने और देवताओंके सुखके निमित्त कार्य करो ॥४५॥ हे कृष्ण ! चर अचर लोकोंसहित मैं तुमसे सत्कृत हो गया कारण कि जो सत्काररूप आपने मेरा सत्कार किया तो सर्वत्र सत्कृत हुआ॥ ४६ ॥

||११९||

हे महाबाहो ! आपकी कार्य सिद्धिके निमित्त अब मैं अर्थ साधन करता हूं युद्धमें और पार्थिवराजाओंके संघट्टमें वनमें मेरा स्मरण करना॥४७॥ इस प्रकार परशुरामजी अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्णजीसे कहकर जयके आशीर्वादोंसे बढाकर अभिलषित दिशाको गये॥४८॥इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥वैशंपायन बोले;परशुरामके चले जानेपर वे दोनों यदुवंशपालक कामरूप गोमंतके मनोहर शिखरोंमें विचरने लगे॥१॥वनमालासे व्याप्त हृदय नील और पीत वस्त्र धारे आकाशमें स्थित मेघके समान॥२॥पर्वत धातुओंसे रंजित अंगवाले युवा शिखरमें स्थित उन मनोहर वनोंमें रतिकी

साधयामि महाबाहो भवतः कार्यसिद्धये ॥ स्मर्तव्यश्चास्मि युद्धेषु कान्तारेषु महीक्षिताम् ॥ ४७ ॥ इत्युक्त्वा जामदग्न्यस्तु कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ जयाशिषा वर्द्धयित्वा जगामाभीप्सितां दिशम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोमन्तारोहणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ जामदग्न्ये गते रामे तौ यादवकुलोद्वहौ ॥ गोमन्तशिखरे रम्ये चेरतुः कामरूपिणौ ॥ १ ॥ वनमालाकुलोरस्कौ नीलपीताम्बरावुभौ ॥ नीलश्वेतवपुष्मन्तौ गगनस्थाविवाम्बुधौ ॥ २ ॥ तौ शैलधातुदिग्धाङ्गौ युवानौ शिखरे स्थितौ ॥ चेरतुस्तत्र कान्तेषु वनेषु रतिलालसौ ॥ ३ ॥ उदयन्तं निरीक्षिन्तौ शशिनां ज्योतिषां वरम् ॥ उदयास्तमने चैव ग्रहाणां धरणीधरे ॥ ४ ॥ अथ संकर्षणश्श्रीमान्विना कृष्णेन वीर्यवान् ॥ चचार तस्य शिखरे नगस्य नगिसन्निभः ॥ ५ ॥ प्रफुल्लस्य कदम्बस्य सुच्छाये निषसाद ह ॥ वायुनामन्दगन्धेन वीज्यमानस्सुखेन वै ॥ ६ ॥ तस्य तेनानिलौघेन सेव्यमानस्य तत्र वै ॥ मद्यसंस्पर्शजो गन्धस्संस्पृशन्घ्राणमागतः ॥ ७ ॥ तृष्णा चैनं विवेशाशु वारुणीप्रभवा तदा ॥ शुशोष च मुखं तस्य मत्तस्येवापरेऽहनि ॥ ८ ॥

इच्छा किये॥३॥तारागणोंमें श्रेष्ठ चन्द्रमाको उदय होते देखने लगे,इस पर्वतमें ग्रहोंका उदय और अस्त दीखता है ॥४॥ तब श्रीमान् बलरामजी पर्वतके समान उस पर्वतपर विना कृष्णके विचरने लगे ॥ ५ ॥ और फूले हुए कदम्बकी सुन्दर छायामें बैठे थे उस समय सुगंध सनि मंद पवन चलती थी॥६॥इस प्रकार वहां पवनसे सेवित होनेपर मद्य-पवनसे सेवित होनेपर मद्यके स्पर्शकी गांधि उनकी नासिकामें प्राप्त हुई॥७॥तब वारुणीके प्रभा-

वसे उनको तृष्णा लगी और उन्मत्तका मुख सूख गया, फिर दूसरे दिन॥८॥उसी वार्ताका स्मरण करके बलरामजी उस स्थानमें आये और प्यासे हो मदिराको ढूंढते उस वृक्षको देखने लगे॥९॥वर्षाऋतुमें फूले हुए उस कदम्बके ऊपर मेघोंसे गिरके जो पानी कोटरमें एकत्र होता था उसीकी मदिरा हो जाती थी॥ १० ॥ बलरामजी प्यासे हो आर्तके समान एकवारही उसको पान करने लगे और उसके मोहसे उनका आकार चलायमान हो गया ॥ ११ ॥ उनके मत्त होनेपर नेत्र चलायमान होने लगे और शरत्कालके चन्द्रमाके समान घूर्णित आकार होगया ॥ १२ ॥ कदम्बकोटरमें

स्मारितस्स पुरावृत्तममृतप्राशनं विभुः ॥ तृषितो मदिरान्वेषी ततस्तं तरुमैक्षत ॥ ९ ॥ तस्य प्रावृषि फुल्लस्य यदम्भोजलजोज्झितम् ॥ तत्कोटरस्थं मदिरा संजायत मनोहरा ॥ १० ॥ तां तु तृष्णाभिभूतात्मा पिबन्नार्त्त इवासकृत् ॥ मोहाच्च चलिताकारस्समजायत स प्रभुः ॥ ११ ॥ तस्य मत्तस्य वदनं किंचिच्चलितलोचनम् ॥ घूर्णिताकारमभवच्छरत्कालेन्दुसप्रभम् ॥ १२ ॥ कदम्बकोटरे जाता नाम्ना कादम्बरीति सा ॥ रूपिणी वारूणी तत्र देवानाममृतारणी ॥१३॥ कादम्बरीमदकलं विदित्वा कृष्ण पूर्वजम् ॥ तिस्रस्त्रिदशनार्यस्तमुपतस्थुः प्रियंवदाः ॥ १४ ॥ मदिरा रूपिणी भूत्वा कान्तिश्च शशिनः प्रिया श्रीश्च देवी वरिष्ठा स्त्री स्वयमेवाम्बुजध्वजा ॥ १५ ॥ साञ्जलिप्रग्रहा देवी रौहिणेयमुपस्थिता ॥ वारुण्या सहितं वाक्यमुवाच मदविक्लवम् ॥१६॥ बलं जयस्व दैत्यानां बलदेव दिवीश्वर ॥ अहं ते दयिता कान्ता वारुणी समुपस्थिता ॥ १७ ॥

होनेसे उस मदिराका कादम्बरी नाम हुआ,और वह वारुणी देवताओंकी अमृतरूप अरणीके समान उनको प्रिय लगी॥१३॥बलरामजीको कादम्बरी मदिराके मदमें चूर्ण देखकर प्रिय वचन बोलनेवाली देवताओंकी तीन स्त्रियें उनके समीप स्थित हुईं॥१४॥मदिरा अपना रूप बनाये हुए, चन्द्रमाकी प्रिया कान्ति, और स्वयं कमलध्वजावाली श्रीदेवी उपस्थित हुई ॥ १५ ॥ यह देवी हाथ जोडकर बलरामजीके समीप उपस्थित हुई, और वारुणीके सहित मदसे विह्वल बलरामजीसे बोली ॥१६॥ हे बलदेव ! स्वर्गके ईश्वर दैत्योंका बल जीतो, मैं तुम्हारी प्रिया वारुणी उपस्थित हुई हूं ॥ १७ ॥

हे उज्ज्वलमुख ! नित्यरूप तुमको वडवाकेमुखमें अन्तर्हित हुआ सुनके क्षीण पुण्य हुएके समान पृथ्वीमें विचरण करती हूं ॥१८॥ पुष्पसमूहमें लिप्त हुए केसरोंमें मैंने वास किया है; हे क्षोभरहित! फिर श्रेष्ठ फूलोंके गुच्छोंमें निवास किया ॥१९॥ मेघसमयमें मैं कदम्बमें प्रवेश करके स्थित हुई हूं सो तृषितरूप तुमको ढूंढती हुई मैंने अपने रूपसे तुमको आच्छादन किया है ॥२०॥ हे पापरहित ! मैं सर्वांगसम्पत्तिसे युक्त हो तुम्हारे समीप पिता वरुणकी भेजी हुई आई हूं ॥ २१ ॥ जैसे तुम समुद्रमें थे वैसेही वडवामुखसे मैं तुम्हारे साथ भोग करनेकी इच्छा करती हूं कारण कि, तुमही मेरे गुरु

त्वामेवान्तर्हितं श्रुत्वा शाश्वतं वडवामुखे ॥ क्षीणपुण्येव वसुधां पर्येमि विमलानन ॥ १८ ॥ पुष्पचक्रानुलिप्तेषु केसरेषूषितं मया ॥ अतिमुक्तेषु चाक्षोभ्य पुष्पस्तबकवत्सु च ॥ १९ ॥ अहं कदम्बमालीना मेघकाले मुखप्रिया ॥ तृषितं मार्गमाणा त्वां स्वेन रूपेण छादिता ॥ २० ॥ सास्मि पूर्णेन योगेन यथैवामृतमन्थने ॥ समीपं प्रेषिता पित्रा वरुणेन तवानघ ॥ २१ ॥ सा यथैवार्णवगता तथैव वडवामुखे ॥ त्वयोपभोक्तुमिच्छामि संमतस्त्वं हि मे गुरुः ॥ २२ ॥ न त्वानन्त परित्यक्ष्ये भर्त्सितापि त्वयानघ ॥ नाहं त्वया विना लोकानुत्सहे देव सेवितुम् ॥ २३ ॥ आदिपद्मं च पद्माङ्कं दिव्यं श्रवणभूषणम् ॥ कौशेयानि च नीलानि समुद्रार्हाणि बिभ्रती ॥ २४ ॥ मदिरानन्तरं कान्तिस्संकर्षणमुपस्थिता ॥ मदेनागलितश्रोणी किंचिदाघूर्णितेक्षणा ॥२५॥ प्रोवाच प्रणयात्कान्तिर्बद्धाञ्जलिपुटा सती ॥ जयपूर्वेण योगेन सस्मितं वाक्यमर्थवत् ॥ २६ ॥

हो ॥ २२ ॥ हे पापरहित यदु! तुम तिरस्कारभी करो तथापि मैं तुम्हारे त्यागनेकी इच्छा नहीं करती, बहुत क्या, तुम्हारे विना मैं किसी लोकको सेवन नहीं कर सक्तीं ॥ २३ ॥ आदि पद्म और पद्मांकके दिव्य कुण्डल कानोंमें पहरे कौशेय और नील वस्त्र समुद्रके योग धारण करती ॥ २४ ॥ मदिराके अनंतर कान्ति बलरामजीके निकट आई वह मदसे घूर्णित श्रोणीभागसे पुष्ट कुछेक मदभरे नेत्र ॥ २५ ॥ इस प्रकार हाथ जोडकर कान्ति बलरामजीसे बोली और बोलते समय जब पूर्ण योगसे अर्थवत् मुस्कराती हुई वाक्य उच्चारण करने लगी ॥ २६ ॥

मैं चन्द्रमासेभी गुरु सहस्र शिरवाले प्रभुके गुणोंसे अनुरक्त हूं, जिस प्रकारमदिरा तुममें अनुरक्त है ॥ २७ ॥ श्रीपद्मालया देवी विष्णुके हृदयमें निवास करती है, और यही महावीर बलरामजीके हृदयमें मालाकी शोभाके समान निर्मल हार है ॥ २८ ॥ तब उसने प्रकाशित रूप मालाको ग्रहण कर बलरामजीके हृदयमें पहरा दी और कमल हाथमें धारे पद्मा (लक्ष्मी) बलरामजीसे बोली ॥ २९ ॥ हे मनोहर राम ! आप वारुणीसे संमिलित हुए हो और मुझ कांतिसे ऐसे संमिलित हुए हो जैसे चन्द्रमा कांतिसे संमिलित होता है ॥ ३० ॥ यह सागरसे मुकुट लाई हूं, जो तुम्हारे सहस्र

अहं चन्द्रादपि गुरुं सहस्रशिरसं प्रभुम् ॥ स्वैर्गुणैरनुरक्ता त्वां यथैव मदिरा तथा ॥ २७ ॥ श्रीश्च पद्मालया देवी विधेया वैष्ण-वोरसि ॥ रौहिणेयोरसि शुभा मालेवामोलतां गता ॥ २८ ॥ सा मालाममलां गृह्य बलस्योरसि दंशिता ॥ पद्मास्या पद्महस्ता वै संकर्षणमथाब्रवीत् ॥ २९ ॥ राम रामाभिरामस्त्वं वारुण्या समलंकृतः ॥ कान्त्या मया च देवेश सङ्गतश्चन्द्रमा यथा ॥३०॥ इयं च सा मया मौलिः प्रोद्धता वरुणालयात् ॥ मूर्ध्नि शीर्षसहस्रस्य या ते भातुरिवाबभौ ॥ ३१ ॥ जातरूपमयं चैकं कुण्डलं वज्रभूषितम् ॥ आदिपद्मं च पद्माक्षं दिव्यश्रवणभूषणम् ॥ ३२ ॥ कोशेयानि च नीलानि समुद्रार्हाणि भावतः ॥ हारं च पीनत-रलं समुद्राभ्यन्तरोषितम् ॥ ३३ ॥ देवेमां प्रतिगृह्णीष्व पौराणी भूषणक्रियाम् ॥ समयस्ते महाबाहो भूषणानामलंक्रिया ॥ ३४ ॥ संगृह्य तमलंकारं ताश्च तिस्रस्सुरस्त्रियः ॥ शुशुभे बलदेवो हि शारदेन्दुसमप्रभः ॥ ३५ ॥ स समागम्य कृष्णेन जलजाम्भोदव-र्चसा ॥ मुदं परमिकां लेभेग्रहयुक्तश्शशी यथा ॥ ३६ ॥

शिरोंमें सूर्यके समान प्रकाशित हुआ ॥ ३१ ॥ और हीरा जडा हुआ एक सोनेका कुण्डल है. हे कमलनेत्र ! दिव्य कानोंका भूषण आदि पद्म ॥ ३२ ॥ और नीले रेशमी वस्त्र सागरसे उत्पन्न हुआ दिव्य रत्नोंका हार ॥ ३३ ॥ हे देव ! इस पुरानी भूषण क्रियाको ग्रहण करो. हे महाबाहो ! यह तुम्हारा इस प्रकार भूषण धारण करनेका समय है॥ ३४ ॥ उस अलंकार और देवताओंकी स्त्रियोंको ग्रहण कर बलरामजी शरदके चन्द्रमासे आकाशके समान शोभित हुए ॥ ३५ ॥ तब वह नील मेघके समान कृष्णको प्राप्त हो इस प्रकार महाप्रसन्न हुए. जैसे ग्रहोंसे युक्त चन्द्रमा ॥ ३६ ॥

घरके समान उन दोनोंकी वार्ता प्रारम्भ होनेपर उस स्थानमें गरुडजी बडे वेगसे आये ॥ ३७ ॥ वह तेजस्वी संग्रामसे युक्त दैत्योंके प्रहारोंसे अंकित देवताओंके जयकी इच्छा करनेहारे दिव्य माला धारे ॥ ३८ ॥ आये. एक समय क्षीरसागरमें भगवान् शयन करते थे कि विरोचनने विष्णु भगवान्का किरीट हरण किया ॥ ३९ ॥ तब गरुडने मुकुट छुडानेकी इच्छासे समुद्रके मध्य उन दैत्योंसे युद्ध किया ॥४०॥ और पक्षियोंके राजा गरुडने उनसे किरीट छीन लिया और यह कार्य कर देवताओंके आलयरूप आकाशसे बडे वेगसे बढने लगे॥४१॥तब उन्होंने कार्यान्तरको प्राप्त हुए

ताभ्यामुभाभ्यां संलापे वर्तमाने गृहे यथा वैनतेयस्ततोऽध्वानमतिचक्राम वेगतः ॥ ३७ ॥ संग्रामयुक्तस्तेजस्वी दैत्यप्रहरणाङ्कितः ॥ देवतानां जयश्लाघी दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ ३८ ॥ सुप्तस्य शयने दिव्ये क्षीरोदे वरुणालये ॥ विष्णोः किरीटं दैत्येन हृतं वैरोचनेन वै ॥ ३९ ॥ तदर्थस्तेन संग्रामः कृतो गुर्वर्थमोजसा ॥ किरीटार्थं समुद्रस्य मध्ये दैत्यगणैस्सह ॥ ४० ॥ मोक्षयित्वा किरीटं तु वैष्णवं पततां वरः ॥ व्यत्यक्रमत वेगेन गगनं देवतालयम् ॥४१॥ स ददर्श गुरुं शैले विष्णुं कार्यान्तरागतम् तेन क्रोडावलम्बेन किरीटेन विराजता ॥ ४२ ॥ स दृष्ट्वा मानुषं विष्णुं शैलराजशिरोगतम् ॥ प्रकाशचेष्टानिर्मुक्तं विमौलिमिव मानुषम् ॥ ४३ ॥ अभिज्ञस्तस्य भावानां गरुत्मान्पततां वरः ॥ चिक्षेप खं गतो मौलिं विष्णोश्शिरसि हृष्टवत् ॥ ४४ ॥ उपेन्द्रमूर्ध्नि सा मौलिरपिनद्धा इवापतत् ॥ शिरसस्स्थाननिर्मुक्ता कृष्णं चैवान्वशोभयत् ॥ यथैव मेरुशिखरे भानुर्मध्यंदिने यथा ॥ ४५ ॥ वैनतेयप्रयोगेन विदित्वा मौलिमागताम् ॥ कृष्णः प्रहृष्टवदनो रामं वचनमब्रवीत् ॥ ४६ ॥

विष्णुको मनुष्यरूपमें पर्वतपर देखा, उस समय गरुडजी स्कंधद्वारा मुकुट लिये जाते थे॥४२ ॥ उन्होंने पर्वतराजपर फिरते हुए प्रकाश चेष्टासे रहित मुकुटहीन मनुष्यरूप विष्णु भगवान्को देखा॥४३॥ देखतेही बहुत प्रसन्न हो पक्षिराजने आकाशसेही वह मुकुट श्रीकृष्णके शिरपर छोड दिया ॥४४॥ वह मुकुट श्रीकृष्णके शिरपर पची हुएकी समान शोभित हुआ, और शिरस्थानपर योजन होनेसे श्रीकृष्णकी बडी शोभा हुई, जैसे मध्याह्न समय मेरुके शिखरपर सूर्यकी शोभा होती है ॥ ४५ ॥ गरुडजीके प्रयोगसे मुकुट आया जानकर कृष्ण बहुत प्रसन्न हो बलरामजीसे

बोले ॥ ४६ ॥ अब देवताओंके कार्यके निमित्त शीघ्रता करो जैसे कि वह इस पर्वतमें हमारे संग्रामके निमित्त रचना की है ॥ ४७ ॥ सागरमें मेरे सोनेपर वैरोचनने मेरा मुकुट इन्द्रकी समान पराक्रमसे हरण किया ॥ ४८ ॥ और नाकेका रूप धर उसको ले गया, सो गरुडजी उसे ले आये हैं जब मैं शेषपर शयन कर गया तब मुकुट हरण कर उसे गरुडजी ले आये ॥ ४९ ॥ अब जरासंध राजाभी समीपमेंही हैं पवनकी समान वेगवान् रथोंके ध्वजाओंके अग्रभाग दीखते हैं ॥ ५० ॥ यह जीतनेकी इच्छा करनेवाले बडे बडे राजोंके श्वेत छत्र चन्द्रमाकी समान विराजते हैं ॥ ५१ ॥ अहो

त्वरते खलु कार्यार्थो देवतानां न संशयः ॥ यथेयमावयोश्शैले संग्रामे रचना कृता ॥४७॥ वैरोचनेन सुप्तस्य मम मौलिर्महोदधौ ॥ शक्रस्य सदृशं रूपं दिव्यमास्थाय सागरात् ॥ ४८ ॥ ग्राहरूपेण यो नीत आनीतोऽसौ गरुत्मता ॥ ममाहिशयनान्मौलिर्हृत्वा क्षिप्तो गरुत्मता ॥ ४९ ॥ सुव्यक्तं सन्निकृष्टस्स जरासंधो नराधिपः ॥ लक्ष्यन्ते हि ध्वजाग्राणि रथानां वातरंहसाम् ॥ ५० ॥ एतानि विजिगीषूणां शशिकल्पानि भूभृताम् ॥ छत्राण्यार्य विराजन्ते दंशितानि मितानि च ॥ ५१ ॥ अहो नृपरथोदग्रा विमलाश्छत्रपङ्क्तयः ॥ आभिवर्त्तन्ति नश्शुभ्रा यथा खे हंसपङ्क्तयः ॥ ५२ ॥ अहो द्यौर्विमलाभानां शस्त्राणां विमलानना ॥ प्रभा भास्करभामिश्रा चरन्तीव दिशो दश ॥५३॥ एतानि नूनं समरे पार्थिवैरायुधानि च ॥ क्षिप्तानि विनाशिष्यन्ति मयि सर्वाणि संयुगे ॥ ५४ ॥ काले खलु नृपः प्राप्तो जरासन्धो महीपतिः ॥ आवयोर्युद्धनिकषः प्रथमस्समरातिथिः ॥ ५५ ॥ आर्य तिष्ठाव सहितौ न खल्वनागते नृपे ॥ युद्धारम्भः प्रयोक्तव्यो बलं तावद्विमृश्यताम् ॥ ५६ ॥

कैसे आश्चर्यकी बात है कि सब राजोंकी निर्मल छत्रपंक्ति हमको दीखती हैं, यह ऐसी उज्ज्वल है जैसे आकाशमें हंसोंकी पंक्ति हो ॥ ५२ ॥ अहो यह अन्तरिक्ष निर्मल शस्त्रोंके मुखसे युक्त सूर्यकी कान्तिसे मिश्रित हो मानो दशों दिशामें विचरती है ॥ ५३ ॥ निश्चयही यह राजाओंके आयुध युद्धमें मुझसे हत होकर सब नष्ट हो जांयगे ॥ ५४ ॥ समयपरही जरासंध सब राजोंके सहित प्राप्त हुआ है; यह हमारी युद्धरूपी कसौटीमें पहला अतिथि है ॥ ५५ ॥ हे आर्य ! तबतक हम सहित ठहरें राजाके विना आये युद्ध करना उचित नहीं तब इसके बलका विचार करे ॥ ५६ ॥

यह कहकर शुद्ध संग्रामकी इच्छा करनेहारे श्रीकृष्णने जरासंधके वधकी इच्छासे बल दिखाया ॥५७॥ वह अविनाशी श्रीकृष्ण राजोंको दीखते हुए जो पहले स्वर्गमें सम्मति हुई थी वह अपने मनसे आप विचार करने लगे ॥ ५८ ॥ यह राजा अपने राज्य धर्ममें स्थित हुए जो इनमें शास्त्रकी विधिसे नाश हो जायंगे ॥ ५९ ॥ कारण कि मैं इन राजोंको मृत्युसे प्रोक्षित मानता हूं, इनके स्वर्ग जानेहारे शरीर प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ६० ॥ और बोझसे व्याकुल हो पृथ्वी स्वर्गमें गई थी इन नरोंमें सिंह राजोंके भारसे पृथ्वी पीडित है ॥६१॥ थोडेही समयमें पृथ्वी राजोंसे खाली और आकाश

एवमुक्त्वा ततः कृष्णस्स्वस्थस्संग्रामलालसः ॥ जरासन्धवधं प्रेप्सुश्चकार बलदर्शनम् ॥५७॥ वीक्षमाणश्च तान्त्सर्वान्नृपान्यदुवरोऽव्ययः ॥ आत्मानमात्मनोवाच यत्पूर्वं दिवि मन्त्रितम् ॥ ५८ ॥ इमे ते पृथिवीपालाः पार्थिवे वर्त्मनि स्थिताः ॥ ये विनाशं गमिष्यन्ति शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ५९ ॥ प्रोक्षितान्खल्विमान्मन्ये मृत्युना नृपसत्तमाम् ॥ स्वर्गगामीनि चाप्येषां वपूंषि प्रचकाशिरे ॥६०॥ स्थाने भारपरिश्रान्ता वसुधेयं दिवं गता ॥ एषां नृपतिसिंहानां बलौघैरभिपीडिता ॥६१॥ अल्पेन खलु कालेन विविक्तं पृथिवीतलम् ॥ भविष्यति नरेन्द्रौघैराकीर्णं च नभस्तलम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि जरासन्धाभिगमनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ जरासन्धस्ततः प्राप्तो नृपस्सर्वमहीक्षिताम् ॥ नराधिपैर्बलयुतैरनुयातो महाद्युतिः ॥ १ ॥ व्यायतोदग्रतुरगैर्विस्पष्टार्थसमाहितैः ॥ रथैस्साङ्ग्रामिकैर्युक्तैरसङ्गगतिभिः क्वचित् ॥ २ ॥ हेमकक्षैर्महाघण्टैर्वारणैर्वारिदोपमैः ॥ महामात्रोत्तमारूढैः कल्पितै रणवल्गितैः ॥ ३ ॥

राजोंसे व्याप्त हो जायगा॥६२॥इति महाभारते श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥वैशंपायन बोले;इसी अवसरमें सब राजोंका स्वामी जरासंध आनकर प्राप्त हुआ इस महाकान्तिमानके संग बडी राजोंकी सेना थी ॥१॥ वहीं बडे बडे घोडोंसे व्याप्त जिनपर घोडेके शास्त्र जाननेवाले लोग सावधानीसे उपस्थित थे संग्रामके योग्य रथोंसे पूर्ण कहीं गतिसे व्याप्त ॥ २ ॥ मेघके समान हाथी कि जिनकी सुवर्णकी सीढी, महाघंटोंसे

युक्त उत्तम महावत जिनपर चढे रण देखे हुए बडे दृढ ॥ ३ ॥ घोडे जिनपर सवार चढे हुए कूदते हुए और जल्पना करते हुए वायुकी समान शीघ्रगामी और पक्षियोंकी समान कूदते ॥ ४ ॥ तलवार ढाल ग्रहण किये प्यादे, सहस्रों सर्पोंकी समान धावमान होते थे ॥ ५ ॥ इस प्रकार चलायमान मेघकी समान चतुरंगिणी सेना लिये व्रतधारी बलवान् जरासंध प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ वह महापाहियोंके शब्दवाले रथ मद चुवानेवाले हाथी तथा घोडोंके हींसने और प्यादोंके आस्फोटन करनेसे ॥ ७ ॥ सब दिशा और गुहाके जीवोंको शब्दायमान करता हुआ वह राजा सागरके आकार सेनासहित दिखाई

सारूढैस्सादिभिर्युक्तै प्रेंखमाणः प्रवल्गितैः ॥ वाजिभिर्वायुसंकाशैः प्लुवद्भिरिव पात्रिभिः ॥ ४ ॥ खड्गचर्मबलोदग्रैः पात्रिभिर्वल्गिताम्बरैः ॥ सहस्रसंख्यैर्निर्मुक्तैरुत्पतद्भिरिवोरगैः ॥ ५ ॥ एवं चतुर्विधैस्सैन्यैः प्रचलद्भिरिवाम्बुदैः ॥ नृपोऽभियातो बलवान् जरासन्धो धृतव्रतः ॥६॥स रथैर्नेमिघोषैश्च गजैश्च मदसिञ्जितैः ॥ हेषद्भिश्चापि तुरगैः क्ष्वेडितोग्रैश्च पत्तिभिः ॥७॥ सन्नादयन्दिशस्सर्वा सर्वांश्चापि गुहाशयान् ॥ स राजा सागराकारस्ससैन्यः प्रत्यदृश्यत ॥ ८ ॥ तद्बलं पृथिवीशानां हृष्टयोधजनाकुलम् ॥ क्ष्वेडितास्फोटितरवं मेघसैन्यमिवाबभौ ॥ ९ ॥ रथैः पवनसंपातैर्गजैश्च जलदोपमैः ॥ तुरगैश्च सिताभ्राभैः पत्तिभिश्चापि दंशितैः ॥१०॥ व्यामिश्रं तद्बलं भाति पत्तिद्विपरथाकुलम् ॥ घर्मान्ते सागरगतं यथाऽभ्रपटलं तथा ॥ ११ ॥ सबलास्ते महीपाला जरासन्धपुरोगमाः ॥ परिवार्य गिरिं सर्वे निवेशायोपचक्रमुः ॥ १२ ॥ बभौ तस्य निविष्टस्य बलश्रीश्शिबिरस्य वै ॥ शुक्लपर्वाणि पूर्णस्य यथा रूपं महोदधेः ॥ १३ ॥

दिया ॥ ८ ॥ प्रसन्न योधाओंसे व्याप्त वोह राजोंकी सेना वारंवार आस्फालन ताडनके शब्दसे शब्दायमान मेघकी समान शोभित हुई ॥ ९ ॥ पवनकी समान रथ और मेघोंकी समान हाथी श्वेत मेघकी समान घोडे और कवचादिसे युक्त पैदल ॥ १० ॥ प्यादे हाथी रथोंसे पूर्ण वह वन व्याकुल हो गया जैसे चौमासेमें मेघसमूह सागरमें व्याप्त होते हैं ॥ ११ ॥ सेनासहित जरासंधके पीछे चलनेवाले वे राजा उस पर्वतको घेरकर ठहरे ॥ १२ ॥ वोह सेनाके डेरोंकी

छबिसे शोभायमान हुआ जैसा पूर्णिमाको सागरका रूप शोभित होता है ॥ १३ ॥ रात बीतनेसे वो राजा नित्य कर्म कर युद्धकी लालसासे वे राजा नित्य कर्म कर पर्वतपै चढनेको तैयार हुए ॥ १४ ॥ वे सब राजा पर्वतके चारों ओर स्थित हो मिलकर युद्धकालके समयकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ १५ ॥ इन राजोंका भयंकर शब्द सुनाई आने लगा, जैसे प्रलयमें सागरोंका महाशब्द भिन्न होते होता है ॥ १६ ॥ कंचुक और पगडी धारण किये हुए वेत्र हाथमें लिये वृद्ध जन राजाकी आज्ञासे शब्द मत करो ऐसा कहते फिरने लगे॥ १७॥जिस समय वह सब

वीतरात्रे ततः काले नृपास्ते कृतकौतुकाः ॥ आरोहणार्थं शैलस्य समेता युद्धलालसाः ॥ १४ ॥ समवायीकृतास्सर्वे गिरिप्रस्थेषु ते नृपाः ॥ निविष्टा मन्त्रयामासुर्युद्धकालकुतूहलाः ॥ १५ ॥ एषां तु तुमुलश्शब्दश्शुश्रुवे पृथिवीक्षिताम् ॥ युगान्ते भिद्यमानानां सागराणां यथा स्वनः ॥१६॥ तेषां सकञ्चुकोष्णीषास्स्थविरा वेत्रपाणयः ॥ चेरुर्मा शब्द इत्येवं ब्रुवन्तो राजशासनात् ॥१७॥ तस्य रूपं बलस्यासीन्निश्शब्दस्तिमितस्य वै ॥ लीनमीनभुजङ्गस्य निःशब्दस्य पयोदधेः ॥ १८ ॥ तस्मिन्स्तिमितनिश्शब्दे योगादिव महार्णवे ॥ जरासन्धो बृहद्वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे ॥१९॥ शीघ्रं समभिवर्तन्तां बलानीह महीक्षिताम् ॥ सर्वतः पर्वतश्चायं बलौघैः परिवार्यताम् ॥ २० ॥ अश्मयन्त्राणि युज्यन्तां क्षेपणीयाश्च मुद्गराः ॥ ऊर्ध्वं चापि प्रवाह्यन्तां प्रासा वै तोमराणि च ॥२१॥ ऊर्ध्वं प्रक्षेपणार्थाय दृढानि च लघूनि च ॥ शस्त्रपातविघातानि क्रियन्तामाशु शिल्पिभिः ॥२२॥ शूराणां युद्धमानानां प्रमत्तानां परस्परम् ॥ यथा नरपतिः प्राह तथा शीघ्रं विधीयतां ॥ २३ ॥

सेनासमुदाय मौन हो गया तो ऐसा विदित होता था मानो मीन और सर्पोंके लीन हो जानेसे सागर॥ १८॥योगसे जैसे उस सेनारूपी सागरके शान्त होनेपर जरासंध बृहस्पतिके समान वचन बोला ॥ १९ ॥ राजोंकी सेना बहुत शीघ्र अपनी छावनीसे चलकर चारों ओरसे इस पर्वतको घेर ले ॥२०॥ पत्थरके यंत्र और फेंकनेके मुद्गर लगाये जांय प्रास और तोमर ऊपरको उठाये जांय ॥२१॥ ऊपर फेंकनेके निमित्त दृढ और लघु शस्त्रोंके गिरनेकी रोक कारीगरोंसे कराओ॥२२॥जो शूर युद्ध करनेकी इच्छासे परस्पर प्रमत्त हैं वह राजाके कहेको शीघ्र विधान करो ॥२३॥

इस पर्वतको टांकी और कुल्हाडोंसे विदीर्ण कर दो और युद्धके रहस्य जाननेवाले राजा निकटही स्थित रहें॥ २४ ॥ इसी समय मेरी सेना पर्वतको रोक ले जबतक इन दोनों वसुदेवके पुत्रोंको हम गिरावें ॥ २५ ॥ यद्यपि यह पर्वत अचल है परन्तु पक्षीकी समान चलायमान कर दो और बाणोंसेभी आकाशको अवकाशरहित कर दो ॥ २६ ॥ मेरे सिखाये हुए राजा पर्वत भूमिमें स्थित हो और अपने २ समय पर शीघ्र पर्वतपर चढो ॥२७॥ मद्र, कलिंगाधिपति, चेकितान, बाह्लीक, काश्मीर राजा, गोनर्द, करूषाधिपति ॥ २८ ॥ द्रुम, किंपुरुष, मालवा पर्वत देशवासी यह शीघ्र पर्वतके दूसरे पार्श्वमें

दार्यतामेष टङ्कौघैः खनित्रैश्च नगोत्तमः ॥ नृपाश्च युद्धदुर्गज्ञा विन्यस्यन्तामदूरतः ॥ २४ ॥ अद्यप्रभृति सैन्यैर्मे गिरिरोधः प्रवर्त्यताम् ॥ यावदेतौ पातयामौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ २५ ॥ अचलोऽयं शिलायोनिः क्रियतां निश्चलाण्डजः ॥ आकाशमपि बाणौघैर्निस्संपातं विधीयताम् ॥ २६ ॥ मयानुसृष्टास्तिष्ठन्तु गिरिभूमिषु भूमिपाः ॥ तेषु तेष्ववकाशेषु शीघ्रमारुह्यतां गिरिः ॥ २७ ॥ मद्रः कलिङ्गाधिपतिश्चेकितानश्च बाह्लिकः ॥ काश्मीरराजो गोनर्दः करूषाधिपतिस्तथा ॥ २८ ॥ द्रुमः किंपुरुषश्चैव पार्वतीयाश्च मालवाः ॥ पर्वतस्यापरं पार्श्वं क्षिप्रमारोहयन्त्वमी ॥ २९ ॥ पौरवो वेणुदारिश्च वैदर्भस्सोमकस्तथा ॥ रुक्मी च भोजाधिपतिस्सूर्याक्षश्चैव मालवः ॥ ३० ॥ पाञ्चालाधिपतिश्चैव द्रुपदश्च नराधिपः ॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दन्तवक्त्रश्च वीर्यवान् ॥ ३१ ॥ छागलिः पुरमित्रश्च दरदश्च महीपतिः ॥ कौशाम्ब्यो मालवश्चैव शतधन्वा विदूरथः ॥ ३२ ॥ भूरिश्रवास्त्रिगर्तश्च बाणः पञ्चनदस्तथा ॥ उत्तरं पर्वतोद्देशमेते दुर्गसहा नृपाः ॥ आरोहन्तु विमर्दन्तो वज्रप्रतिमगौरवाः ॥ ३३ ॥ उलूकः कैतवेयश्च वीरश्चांशुमतः सुतः ॥ एकलव्यो दृढाश्वश्च क्षत्रधर्मा जयद्रथः ॥ ३४ ॥

स्थित हों ॥२९॥ पौरव, वेणुदार, वैदर्भ, सोमक, रुक्मी, भोजाधिपति, सूर्याक्ष, मालव ॥ ३० ॥ पांचालाधिपति राजा द्रुपद, विन्द, अनुविन्द, वीर्यमान् दंतवक्र ॥ ३१ ॥ छागलि, पुरुमित्र, राजा दरद कौशाम्बी तथा मालव देशके अधिपति शतधन्वा, विदूरथ ॥ ३२ ॥ भूरिश्रवा, त्रिगर्त, बाण, पंचनद, यह दुर्ग सहन करनेवाले राजा पर्वतके उत्तर देशमें आरोहण करें कारण कि यह गौरवमें वज्रकी समान है ॥ ३३ ॥ उलूक, कैतवेय और अंशुमान्का पुत्र

वीर्यवान् एकलव्य, दृढाश्व, क्षत्रधर्मा, जयद्रथ ॥ ३४ ॥ उत्तमौजा, शाल्व, केरल, केशिक देशके राजा वैदिश, वामदेव और महाबली सुकेतु ॥ ३५॥ यह पर्वतके पूर्वभागसे विदीर्ण करते हुए धावमान हो, जैसे पवन बादलोंको विदीर्ण करता है ॥३६॥ मैं दरद और महाबली शिशुपाल दक्षिणकी ओर पर्वतको भंग करूंगा ॥ ३७ ॥ इस प्रकार यह पर्वत चारों ओरसे वेष्टित हो वज्र गिरनेके समान महाभयको प्राप्त होगा ॥ ३८ ॥ गदा-वाले गदासे, परिघवाले परिघसे, दूसरे और अस्त्रोंसे पर्वतोंको विदीर्ण कर दें॥३९॥आजही यह पर्वत विषम शिलाओंसे युक्त सब राजाओंको समान

उत्तमौजास्तथा शाल्वः केरलेयश्च कैशिकः ॥ वैदिशो वामदेवश्च सुकेतुश्चापि वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ पूर्वपर्वतनिर्व्यूहमेतेष्वायतमस्तु नः ॥ विदारयन्तो धावन्तु वाता इव बलाहकान् ॥३६॥ अहं च दरदश्चैव चेदिराजश्च वीर्यवान् ॥ दक्षिणं शैलनिचयं दारयिष्याम दंशिताः ॥ ३७ ॥ एवमेष गिरिः क्षिप्रं समन्ताद्वेष्टितो बलैः ॥ वज्रप्रपातप्रतिमं प्राप्नोतु तुमुलं भयम् ॥ ३८ ॥ गदिनो वै गदा-भिश्च परिघैः परिघायुधाः ॥ अपरे विविधैश्शस्त्रैर्दारयन्तु नगोत्तमम् ॥ ३९ ॥ एष भूमिधरोऽद्यैव विषमोच्चशिलान्वितः ॥ कार्यो भूमिसमस्सर्वो भवद्भिर्वसुधाधिपैः ॥ ४० ॥ जरासंधवचश्श्रुत्वा पार्थिवा राजशासनात् ॥ गोमन्तं वेष्टयामासुस्सागरः पृथिवी-मिव ॥ ४१ ॥ उवाच राजा चेदीनां देवानां मघवानिव ॥ किं ते युद्धेन दुर्गेऽस्मिन्गोमन्ते च नगोत्तमे ॥ ४२ ॥ दुरारोहश्च शिखरे प्रांशुपादपकण्टके ॥ काष्ठैस्तृणैश्च बहुभिः परिवार्य समन्ततः ॥४३॥ अद्यैव दीप्यतां क्षिप्रमलमन्येन कर्मणा ॥ क्षत्रिया-स्सुकुमारा हि रणे सायकयोधिनः॥४४॥नियुक्ताः पर्वते दुर्गे नियोक्तुं पादयोधिनः ॥न नाम प्रतिबन्धेन न चावस्कन्दकर्मणा॥४५॥

भूमिका कर देना युक्त है ॥४०॥ राजा जरासंधके यह वचन सुन सब राजा उस पर्वतको ऐसे घेरने लगे जैसे सागर पृथ्वीको घेर लेता है ॥ ४१ ॥ और जैसे इन्द्र देवताओंसे बोलता है, इस प्रकार शिशुपाल बोला; हे राजन् ! इस पर्वत श्रेष्ठसे युद्ध करनेसे तुमको क्या लाभ होगा ॥ ४२ ॥ ऊंचे वृक्ष और कटकोंसे यह आरोहण करनेके योग्य नहीं है, इससे अनेक काष्ठ और तृण इसके चारों ओर रखकर ॥ ४३ ॥ इसमें अग्नि लगा दीजिये, और कार्यकी आवश्यकता नहीं क्षत्रिय सुकुमार और युद्धमें बाणोंसे युद्ध करनेवाले होते हैं॥४४॥पर्वत दुर्गमें पादचारी

योधा नियुक्त करनेसे इनके घेरने और आरोहणसे कार्य न होगा ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! देवताही इसको मर्दन कर सके हैं दुर्गके युद्धमें क्रम और घेरेके युद्धमें राजा ॥ ४६ ॥ अग्निद्वारा इसका जल शोषने और वृक्षादि जलानेसे इसे नष्ट कर सकते हैं अन्यथा नहीं ॥ ४७ ॥ और सुनिये हम बहुत हैं यह सत्य नीति है परन्तु हे राजाधिराज ! रणमें स्थित इन दोनों यदुवंशियोंका तिरस्कार नहीं करना चाहिये, हमने सुना है कि इन दोनोंके बलका ठिकाना नहीं; इनके देवता सहायक हैं ॥ ४८ ॥ कर्मसेभी इनको देवता जानो यह बालक अतिबली हैं इन दोनोंने बालकपनमेंही दुष्कर कर्म किये

शक्य एष गिरिस्तात देवैरप्यवमर्दितुम् ॥ दुर्गयुद्धे क्रमश्श्रेयान्रोधयुद्धेन पार्थिवाः ॥ ४६ ॥ भक्तोदकेन्धनैः क्षीणाः पात्यन्ते गिरिसंश्रिताः ॥ वयं बहव इत्येवं नाथेषु निपुणो नयः ॥ ४७ ॥ यादवौ नावमन्तव्यौ द्वावप्येतौ रणे स्थितौ ॥ अविज्ञातबलावेतौ श्रूयते देवसंमितौ ॥ ४८ ॥ कर्मभिस्त्वमरौ विद्धो बालावतिबलान्वितौ ॥ दुष्कराणीह कर्माणि कृतवन्तौ यदूत्तमौ ॥ ४९ ॥ शुष्ककाष्ठैस्तृणैर्वेष्ट्य सर्वतः पर्वतोत्तमम् ॥ अग्निना दीपयिष्यामो दह्येतां गतचेतनौ ॥ ५० ॥ यदि चेन्निष्क्रमिष्येते दह्यमानावितोऽन्तिके ॥ समेत्य पातयिष्यामस्त्यक्ष्यतो जीवितं ततः ॥ ५१ ॥ वाक्यमेतत्तु रुरुचे सबलानां महीक्षिताम् ॥ यदुक्तं चेदिराजेन नृपाणां हितशंसिना ॥ ५२ ॥ ततः काष्ठैस्तृणैर्वंशैश्शुष्कशाखैश्च पादपैः ॥ उपादीप्यत शैलेन्द्रस्सूर्यपादैरिवाम्बुदः ॥ ५३ ॥ ददुस्ते सर्वतस्तूर्णं पावकं तत्र पार्थिवाः ॥ यथोद्देशं यथावातं शैलस्य लघुविक्रमाः ॥ ५४ ॥

हैं ॥ ४९ ॥ इससे चारों ओरसे इसको सूखे काष्ठ और तृणसे वेष्ठन करके अग्नि लगा दें; बस उसमेंही यह दोनों भस्म हो जांयगे ॥५०॥ और जो वह निकलेंगे तौ इधर भस्म हो जांयगे, और फिर हम सब मिलकर मार लेंगे, तब इनका जीवन नष्ट हो जायगा ॥ ५१ ॥ यह वाक्य सेनासहित राजोंको प्रीतिकारक हुआ, जो कि नृपोंका हित चेदिराजने कहा था ॥ ५२ ॥ तब काष्ठ सूखे तृण और शुष्क वंशोंसे काष्ठसे चारों ओरसे उस पर्वतको घेरने लगे, जैसे मेघ घेर लेते हैं ॥ ५३ ॥ और शीघ्रही राजोंने उसमें अग्नि लगा दी, यथायोग्य पवनकी अनुकूलतासे बडी शीघ्रतासे पर्वतको नष्ट करने

॥१२१॥

लगे॥५४॥वह वायुसे दीपित हो अग्नि चारों ओरसे उठी धुयें और लपटसे चारों ओर शोभित हुई ॥ ५५ ॥ वह अग्नि पवनसे प्रेरित हो काष्ठस-मूहसे उत्पन्न हुआ, उस गोमान् वृक्षादिसे संकुल पर्वतको भस्म करने लगा ॥५६॥ पर्वतके जलनेसे फटकर अनेक शिला गिरने लगीं और सैंकडों टुकडे हो महाउल्कापातसी गिरने लगीं ॥५७॥ जिस प्रकारसे सूर्य अपनी किरणोंसे मेघोंको स्पर्श कर विचित्र करता है, इसी प्रकारसे अग्नि चारों ओरसे उस पर्वतको आक्रमण करती थी॥५८॥ धातुओंके गलने और वृक्षोंके जलनेसे उद्भ्रान्त हुए जीव रुदन करने लगे, मानो पर्वतराजके नष्ट

स वायुदीपितो वह्निरुत्पपात समन्ततः ॥ सधूमज्वालमालाभिर्भाभिः खमिव शोभयन् ॥५५॥ सोऽनलः पवनायस्तः काष्ठसंचय मूलवान् ॥ ददाह शैलं श्रीमन्तं गोमन्तं कान्तपादपम् ॥ ५६ ॥ स दह्यमानश्शैलेन्द्रो मुमोच विपुलाश्शिलाः ॥ शतशश्शतधा भूत्वा महोल्काकारदर्शनाः ॥५७॥ सचित्रभानुश्शैलेन्द्रो भाभिर्भानुरिवाम्बुदम् ॥ आलिम्पतीव विधिवत्समन्तादर्चिरुद्धतः ॥५८॥ धातुभिः पच्यमानैश्च ज्वलद्भिश्चैव पादपैः ॥ उद्भ्रान्तश्वापदो रौति तुद्यमान इवाद्रिराट् ॥५९॥ प्रतप्तो दह्यमानस्तु स शैलः कृष्ण-वर्त्मना ॥ रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः ॥६०॥ वह्निना चापि दीप्ताङ्गो गिरिर्नातिविराजते ॥ धूमान्धकारोर्ध्वतनुर्मज्जमान इवाम्बुदः ॥६१॥ विश्लिष्टोपलसंघातः कर्कशाङ्गारवर्षणः ॥ गिरिर्भात्यनलोद्गारैरुल्कावृष्टिरिवाम्बुदः ॥ ६२ ॥ प्रतापप्रस्रवोत्क्षिप्तो धूमसंवर्द्धितोदरः ॥ स गिरिर्भस्मतां यातो युगान्ताग्निहतोपमः ॥ ६३ ॥ विह्वलास्तस्य पार्श्वेभ्यस्सर्पा दग्धार्द्धदेहिनः ॥ श्वसन्तः पृथुमूर्द्धानो निश्चेरुरशिवेक्षणाः ॥ ६४ ॥

होनेका शोक है॥५९॥महाअग्निसे दह्यमान हो पर्वत चांदी और सोनेकी धारा बहाने लगा॥६०॥वह्निसे दीप्तिमान् अङ्ग होकर वह पर्वत अत्यन्त शोभित नहीं हुआ जैसे कि धूम और अन्धकारमें मग्न हो शोभित नहीं होता॥६१॥ पत्थरोंके विदीर्ण होनेसे और तीक्ष्ण अंगारोंकी वर्षासे पर्वत ऐसा विदित होता था मानो मेघोंसे अग्नि और उल्काकी वर्षा हो रही है॥६२॥झरनोंके सूख जानेसे और महाधूमके उठनेसे वह पर्वत युगान्तअग्निके समान भस्म हो गया ॥६३॥उसके पार्श्वसे दग्ध होकर सर्प अधजले भस्म हुए और स्वांस लेते कहीं मंगल न देखकर भस्म होने लगे ॥६४॥

आकाशमें कूद कूदकर फिर फिर नीचेको मुख किये सिंह और शार्दूल महाव्याकुल हो गर्जना करने लगे॥६५॥और वृक्षोंमेंसे जलनेसे गोंदरूपी जल निकलने लगा ॥६६॥ और भस्म अंगारसे पिंगल हो पवन चलने लगीं और आकाशमें धूमकी छाया हो गई, वह मेघके समान दृष्टिगोचर होने लगे॥६७॥वह पर्वत अग्निकी अधिकतासे व्याकुल हो अपने पर्वतोंके भागोंको छोडता हुआ पशु और पक्षियोंसे हीन हो गया॥६८॥शिला और शैल छोडने लगा वृक्ष गिर गये जैसे कि वज्रसे इन्द्रने पर्वत विदीर्ण कर दिया हो॥६९॥व्यूह रचकर उन क्षत्रियोंने पर्वतको दग्ध कर दिया, परन्तु उस

उत्पत्योत्पत्य गगनात्पुनः पुनरवाङ्मुखाः ॥ रेसुश्चोद्वेजितास्सिंहाश्शार्दूलश्चानलाविलाः ॥६५॥ मुमुचुः पादपाश्चैव दाहनिर्यासजं जलम् ॥६६॥ वहत्यूर्ध्वंगतिर्वातो भस्माङ्गाराभिपिङ्गलः ॥ धूमच्छाया च गगने दर्पिताम्भोददर्शना ॥६७॥ त्यज्यमानो महासानुर्विहगैः श्वापदैरपि ॥ गिरिर्वैकल्यमायाति प्रागल्भ्यात्कृष्णवर्त्मनः ॥ ६८ ॥ स मुमोच शिलाश्शैलश्चलोदग्रशिलोच्चयः ॥ वज्रेण पुरुहूतस्य यथा स्याद्दारितस्तथा ॥ ६९ ॥ आदीप्यतं तु शैलेन्द्रं क्षत्रिया व्यूहदंशिताः ॥ अर्धक्रोशमपक्रान्ताः पावकेनाभितापिताः ॥७०॥ दह्यमाने नगश्रेष्ठे सीदमानैर्महाद्रुमैः ॥ धूमभारैरनालक्ष्ये मूले शिथिलतां गते ॥७१॥ सरोषं हि तदा रामो वचनं केशिसूदनम् ॥ बभाषे पद्मपत्राक्षं स साक्षान्मधुसूदनम् ॥ ७२ ॥ दह्यतेऽयं गिरिस्तात ससानुशिखरद्रुमः ॥ आवयोः कृष्ण वैरेण बलिभिर्वसुधाधिपैः ॥ ७३ ॥ पश्य कृष्णानलोष्णानां सधूमानां समन्ततः ॥ वनानां विरसन्तीव नगाभ्याशे द्विपोत्तमाः ॥ ७४ ॥ अयं यद्यावयोरर्थे गोमन्तस्तात दह्यते ॥ अयशस्यमिदं लोकेऽकौलीनं च भविष्यति ॥ ७५ ॥

अग्निकी गरमीसे आध कोस पीछेको हट गये ॥७०॥ इस प्रकार पर्वतके जलने वृक्षोंके नष्ट होनेसे धूमके समूहसे उनके मूल शिथिल होनेसे ॥७१॥ बलरामजी महा क्रोध कर कमलनेत्र मधुसूदन श्रीकृष्णजीसे बोले ॥७२॥ हे तात ! शिखर सहित यह पर्वत भस्म होता है यह हमारे वैरसे राजा इसको भस्म करते हैं ॥७३॥ हे कृष्ण ! देखो तो कैसा चारों ओरसे महा धुंआधार स्थान हो रहा है,यह अग्नि वनोंको विरस किये डालता है, यह पर्वतके निकटके हाथी तीव्र शब्द करते हैं॥७४॥हे तात ! हमारेही निमित्त यह गोमन्त पर्वत जलाया जाता है,यह लोकमें हमारे कुलको बडा

अपयश लगेगा ॥ ७५ ॥ हे पर्वततुल्य भगवन् ! इस पर्वतकी अनृणताके कारण भुजाओंसे हम क्षत्रियोंको मार डालेंगे॥७६॥ यह सब क्षत्रिय पर्वतको प्रदीप्त कर दुर्मद हुए हैं,और युद्ध करनेकी इच्छासे बहुतसे रथी दीखते हैं॥७७॥ यह वचन कहकर बलरामजी जैसे मेरुशृंगसे चंद्रमा,इसी प्रकारसे वनमाला धारण करनेवाले बलरामजी कूदे ॥७८॥ कादम्बरीके मदसे व्याप्त, नील वस्त्रधारी हास्यमुख, शरदकालके चन्द्रमाके समान मुख, वनमालासे शोभित उदर ॥७९॥ मनोहर कुण्डल धारे नीचेको मुख किये राजोंके बीचमें बलरामजी कूद पडे ॥८०॥ बलरामजीके कूदने पर

तदस्यानृण्यहेतोर्हि नगस्य नगसन्निभ ॥ क्षत्रियान्निहनिष्यामो दोर्भ्यामेव युधांवर ॥ ७६ ॥ एते ते क्षत्रियाः सर्वे गिरिमादीप्य दंशिताः ॥ रथिनस्तात दृश्यन्ते यथादेशं युयुत्सवः ॥ ७७ ॥ एवमुक्त्वा गिरेश्शृङ्गान्मेरुशृङ्गादिवोडुराट् ॥ निपपात बलश्श्रीमान्वनमालाधरो युवा ॥ ७८ ॥ कादम्बरीमदक्षीबो नीलवासास्स्मिताननः ॥ स शारदेन्दुसंकाशो वनमालाचितोदरः ॥ ७९ ॥ कान्तैककुण्डलधरश्चारुमौलिरवाङ्मुखः ॥ निपपात नरेंद्राणां मध्ये केशवपूर्वजः ॥ ८० ॥ अवप्लुते ततो रामे कृष्णः कृष्णाम्बुदोपमः ॥ गोमन्तशिखराच्छ्रीमानाप्लुतोऽमितविक्रमः ॥ ८१ ॥ ततस्तं पीडयामास पद्भ्यां गिरिवरं हरिः ॥ स पीडितो गिरिस्तेन निर्ममज्ज समन्ततः ॥ ८२ ॥ जलाकुलोपलस्तत्र प्रश्रुतो द्विरदो यथा ॥ स तेन वारिणा वह्निस्तत्क्षणात्प्रशमं ययौ ॥८३॥ कल्पान्ते वारिधाराभिर्मेघजालैरिवांशुमान् ॥ सिंहारसितनिर्घोषः पीतवासा घनाकृतिः ॥ ८४ ॥

कृष्णमेघके समान श्रीकृष्णजी आपभी उस गोमन्त शिखरसे कूदे॥८१॥और श्रीकृष्णने उस पर्वतश्रेष्ठको चरणोंसे पीडित किया, उनके चरणोंसे पीडित हो चारों ओरसे वह पर्वत पृथ्वीमें प्रवेश करने लगा ॥८२॥ तब चारों ओरसे जल निकलने लगा जैसे हाथीके कपोलोंसे मद चूता है उस जलसे क्षणमात्रमें सब अग्नि शान्त हो गई ॥ ८३ ॥ जैसे कल्पांतके समय सूर्यकी प्रचण्डताको मेघोंकी जलधारा शान्त कर देती है, सिंहके समान

पीत वस्त्र मेघके समान आकार ॥८४॥ किरीटधारी चन्द्रमुख कमलनेत्र श्रीवत्ससे शोभित हृदय इन्द्रके समान कान्तिमान् ॥ ८५ ॥ महाबली श्रीकृष्ण बलरामजीके पीछेसे कूद पडे उन्ही गीले चरणोंसे वह पर्वत पीडित हो गया ॥ ८६ ॥ उस समय अग्निकी शान्तिके निमित्त चारों ओरसे जल निकलने लगा,तब जल निकलता देख राजा लोग बडे भयभीत हुए ॥ ८७ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार वे दोनों वसुदेवकुमार पर्वतसे कूदे उस समय सब राजाओंकी सेना क्षुभित और वाहन

किरीटमूर्द्धा सौम्यास्यः पुण्डरीकनिभेक्षणः ॥ श्रीवत्सवक्षास्सुमुखस्सहस्राक्षसमद्युतिः ॥ ८५ ॥ रामादनन्तरं कृष्णः प्लुतो वै वीर्यवांस्ततः ॥ ताभ्यामेव प्लुताभ्यां च चरणैः पीडितो गिरिः ॥ ८६ ॥ मुमोच सलिलोत्पीडांस्तीव्रपावकशान्तये ॥ सलिलोत्पीडनं दृष्ट्वा पार्थिवा भयमाविशन् ॥ ८७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोमन्तदाहो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तौ नगादाप्लुतौ दृष्ट्वा वसुदेवसुतावुभौ ॥ क्षुब्धं नरवरानीकं सर्वं संमूढवाहनम् ॥ १ ॥ बाहुप्रहरणौ तौ तु चेरतुस्तत्र यादवौ ॥ मकराविव संरब्धौ समुद्रक्षोभणावुभौ ॥ २ ॥ ताभ्यां मृधे प्रविष्टाभ्यां यादवाभ्यां मतिस्त्वभूत् ॥ आयुधानां पुराणानामादानकृतलक्षणा ॥३॥ ततोऽम्बरतलाद्भूयः पतन्ति स्म महात्मनोः ॥ मध्ये राजसहस्रस्य समरं प्रतिकाङ्क्षिणोः ॥ ४ ॥ यानि वै माथुरे युद्धे प्राप्तान्याहवशोभिनोः ॥ तान्यम्बरात्पतन्ति स्म दिव्यान्याहवसंप्लवे ॥ ५ ॥ लेलिहानानि दिव्यानि दीप्ताग्निसदृशानि वै ॥ निक्षिप्य यानि तत्रैव तानि प्राप्तौ स्म यादवौ ॥ ६ ॥

स्तब्ध हो गये ॥ १ ॥ वे दोनों यादव बाहुप्रहार करनेको विचरने लगे जैसे सागर क्षुभित करनेको दो मकर फिरते हों ॥ २ ॥ युद्धमें प्रविष्ट हो उन दोनोंकी इच्छा हुई कि, वह प्राचीन आयुध हमारे हस्तगत हो ॥ ३ ॥ तब उन महात्माओंके निमित्त सहस्रों राजाओंके सन्मुख वही शस्त्र आकाशसे गिरे ॥ ४ ॥ जो मथुराके युद्धमें प्राप्त हुए थे वही दिव्य आयुध आकाशसे पतित हुए ॥ ५ ॥ वे दिव्य आयुध अग्निकी दीप्तशिखाके समान वहीं गिरे जहां वे यादव थे ॥ ६ ॥

मूर्तिमान बडे बडे क्रव्यादों (भेडियों) से अनुगम्यमान जो कि प्यासे भूंखे सब ओरसे राजोंके मांस भक्षणमें प्रवृत्त हुए ॥ ७ ॥ दिव्यमाल पहरे आकाशचारियोंको दुःख देते हुए अपनी कान्तिसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करते ॥ ८ ॥ संवर्तक नाम हल सौनंद नाम मूसल सुदर्शन चक्र. कौमोदकी गदा ॥ ९ ॥ यह चारों महातेजमान विष्णुके आयुध उस महासंग्राममें यादवोंके निमित्त प्रादुर्भूत हुए ॥ १० ॥ प्रथम बलरामजीने युद्धमें अनुपम सर्पेंद्रके समान चलायमान दिव्य मालासे व्याप्त हलको ग्रहण किया ॥११॥ और बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजीने बायें हाथमें शत्रु-

क्रव्यादैरनुयातानि मूर्तिमन्ति बृहन्ति च ॥ तृषितान्याहवे भोक्तुं नृपमांसानि सर्वशः ॥ ७ ॥ दिव्यस्रग्दामधारीणि त्रासयन्ति च खेचरान् ॥ प्रभया भासमानानि दंशितानि दिशो दश ॥ ८ ॥ हलं संवर्तकं नाम सौनन्दं मुसलं तथा ॥ चक्रं सुदर्शनं नाम गदां कौमोदकीं तथा ॥ ९ ॥ चत्वार्येतानि तेजांसि विष्णुप्रहरणानि वै ॥ ताभ्यां समवतीर्णानि यादवाभ्यां महामृधे ॥ १० ॥ जग्राह प्रथमं रामो ललामप्रतिमं रणे ॥ सर्पन्तमिव सर्पेन्द्रं दिव्यमालाकुलं हलम् ॥ ११ सव्येन सात्त्वतां श्रेष्ठो जग्राह मुसलोत्तमम् ॥ सौनन्दं नाम बलवान्निरानन्दकरं द्विषाम् ॥ १२ ॥ दर्शनीयं च लोकेषु चक्रमादित्यवर्चसम् ॥ नाम्ना सुदर्शनं नाम प्रीतो जग्राह केशवः ॥ १३ ॥ दर्शनीयं च लोकेषु धनुर्जलदनिस्वनम् ॥ नाम्ना शार्ङ्गमिति ख्यातं प्रीतो जग्राह वीर्यवान् ॥ १४ ॥ देवैर्निगदितार्थस्य गदा तस्यापरे करे ॥ निषिक्ता कुमुदाक्षस्य नाम्ना कौमोदकीति सा ॥ १५ ॥ तौ सप्रहरणौ वीरौ साक्षाद्विष्णुतनूपमौ ॥ समरे रामगोविन्दौ रिपूंस्तान्प्रत्ययुद्ध्यताम् ॥ १६ ॥

ओंको हतोत्साह करनेवाला सौनन्द नाम मूसल ग्रहण किया ॥ १२ ॥ लोकमें दर्शनीय सूर्यके समान कान्तिमान् सुदर्शन चक्रको प्रसन्न हो कृष्णने ग्रहण किया ॥ १३ ॥ और मेघके ससान शब्द करनेहारा लोकमें दर्शनीय महाविख्यात शार्ंग धनुष श्रीकृष्णने ग्रहण किया ॥ १४ ॥ और देवताओंसे प्रकाशित अर्थवाली कौमोदकी गदा उन महाबली श्रीकृष्णके हाथमें सुशोभित हुई॥१५॥वह साक्षात् विष्णुकी वा ब्रह्माके समान प्रहारकर्ता

दोनों वीर युद्धमें शत्रुओंसे संग्राम करने लगे ॥ १६ ॥ राम और गोविंद वे दोनों वीर उस संग्राममें आयुध लेकर विचरने लगे ॥ १७ ॥ वे युद्धमें ऐसे विदित होते थे मानो एकही विष्णु भगवान्‌ने दो शरीर धारण कर लिये हैं और शत्रुओंके प्रति वे दोनों महाक्रोधी हो प्रहार करने लगे ॥ १८ ॥ सर्पेन्द्रकी समान क्रोध कर हल धारण कर बलरामजी शत्रुओंको कालकी समान युद्धमें विचरने लगे ॥ १९ ॥ रथसे महात्मा क्षत्रियोंके रथको खैंचते हुए घोडे हाथियोंमें अपना क्रोध सफल करने लगे ॥ २० ॥ हलके अग्रभागसे हाथियोंको खैंच शिरपर मूसल प्रहार कर पर्वत समान राम युद्धमें सेना-

आयुधप्रग्रहौ वीरौ तावन्योन्यमयावुभौ ॥ पूर्वजानुजसंज्ञौ तु रामगोविन्दलक्षणौ ॥ १७ ॥ समरेऽप्रतिरूपौ तौ विष्णुरेको द्विधा कृतः ॥ द्विषत्सु प्रतिकुर्वाणौ पराक्रान्तौ यथेश्वरौ ॥ १८ ॥ हलमुद्यम्य रामस्तु सर्पेन्द्रमिव कोपनम् ॥ चचार समरे वीरो द्विषतामन्तकोपमः ॥ १९ ॥ विकर्षन्रथवृन्दानि क्षत्रियाणां महात्मनाम् ॥ चकार रोषं सफलं नागेषु च हयेषु च ॥ २० ॥ कुञ्जराँल्लाङ्गलोक्षिप्तान् मुसलाक्षेपताडितान् ॥ रामोऽभिरामस्समरे निर्ममन्थाचलोपमः ॥ २१ ॥ ते वध्यमाना रामेण समरे क्षत्रियर्षभाः ॥ जरासन्धान्तिकं भीता विरथाः प्रतिजग्मिरे ॥ २२ ॥ तानुवाच जरासन्धः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः ॥ धिगेतां क्षत्रवृत्तिं वस्समरे कातरात्मनाम् ॥ २३ ॥ पराक्रान्तस्य समरे विरथस्य पलायतः ॥ भ्रूणहत्यामिवासह्यां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २४ ॥ पत्तिनो भुवि चैकस्य गोपस्यालपबलीयसः ॥ भीताः किं विनिवर्तध्वं धिगेतां क्षत्रवृत्तिताम् ॥ २५ ॥ क्षिप्रं समाभिवर्तन्तां मम वाक्येन नोदिताः॥ यावदेतौ रणे गोपौ प्रेषयामि यमक्षयम् ॥ २६ ॥

को मथन करने लगे ॥ २१ ॥ वे क्षत्रियश्रेष्ठ युद्धमें बलरामजीसे नष्ट हो भयभीत रथहीन हो जरासंधके समीप गये ॥ २२ ॥ क्षत्रियधर्ममें स्थित जरासंध उनके प्रति कहने लगा, इस क्षत्रियवृत्तिको धिक्कार है जिसमें कि तुम कातर हो रहे हो ॥ २३ ॥ युद्धमें शत्रुसे आक्रान्त हो रथहीन हो पलायन करनेवालोंको भ्रूणहत्याकी समान पातक लगता है ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥ २४ ॥ पैदल और इकले हीनबल इस गोपसे तुम भयभीत होते हो इस तुम्हारे क्षत्रियबलको धिक्कार है ॥ २५ ॥ मेरे वाक्यसे प्रेरित तुम यहां स्थित रहो जबतक कि मैं इन गोपालोंको यमलोकमें पहुंचाऊं ॥ २६ ॥

इस प्रकार जरासंधसे प्रेरित हो वे सब क्षत्रिय शरजाल प्रेरण करते प्रसन्न हो युद्ध करनेको स्थित हुए॥२७॥ वह घोडे और सुवर्णके रथ और मेघके समान हाथी जो महावतसे प्रेरित हुए थे ॥२८॥ बखतर पहरे गोधा अंगुलीमें बांधे खड्ग धारे और भी अनेक आयुध लिये तूणीर बाणोंसे भरे धनुष चढाये वे राजा समरभूमिमें जाकर शोभित हुए॥२९॥३०॥ इस ओर वे दोनों वीर रणभूमिमें शोभित होते थे वे वसुदेवके पुत्र युद्ध करते देखे गये ॥३१॥ उन राजोंका श्रीकृष्णसे महायुद्ध होने लगा, अनेक बाणप्रहार और गदाघातसे महादारुण हुआ ॥ ३२ ॥ रणकी इच्छा करनेवाले वे

ततस्ते क्षत्रियास्सर्वे जरासन्धेन नोदिताः ॥ क्षिपन्तश्शरजालानि हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ॥ २७ ॥ ते हयैः काञ्चनापीडैः रथैश्चेन्दुसमप्रभैः ॥ नागैश्चाम्भोदसंकाशैर्महामात्रप्रणोदितैः ॥२८॥ सतनुत्राणनिस्त्रिंशास्सायुधाभरणाम्बराः ॥ स्वारोपितधनुष्मन्तस्सतूणीरास्ससायकाः ॥ २९ ॥ सच्छत्रोत्सेधिनस्सर्वे चारुचामरवीजिताः ॥ रणावनिगता रेजुस्स्यन्दनस्था महीक्षितः ॥ ३० ॥ तौ युद्धरङ्गापतितौ विधावन्तौ महाभुजौ ॥ वसुदेवसुतौ वीरौ युयुत्सू प्रत्यदृश्यताम् ॥ ३१ ॥ तद्युद्धमभवत्तत्र तयोस्तेषां तु संयुगे ॥ सायकोत्सर्गबहुलं गदानिर्घातदारुणम् ॥३२॥ ततश्शरसहस्राणि प्रतीच्छन्तौ रणैषिणौ ॥ तस्थतुर्योधमुख्यौ तावभिवृष्टौ यथाचलौ ॥३३॥ गदाभिश्चैव गुर्वीभिः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ॥ अर्द्यमानौ महेष्वासौ यादवौ न चकम्पतुः ॥ ३४ ॥ ततः कृष्णोऽम्बुदाकारश्शङ्खचक्रगदाधरः ॥ व्यवर्द्धत महातेजा वातयुक्त इवानलः ॥ ३५ ॥ स चक्रेणार्कतुल्येन दीप्यमानेन तेजसा ॥ चिच्छेद समरे वीरो नृगजाश्वमहारथान् ॥ ३६ ॥

दोनों सहस्रों बाणोंकी इच्छा करते हुए इस प्रकार संग्राममें स्थित हुए जैसे वर्षाको दो पर्वत सहन करते हैं ॥ ३३ ॥ कठिन गदा और मुद्गरके प्रहारसे अर्दित होकर भी वह मुख्ययादव कंपित न हुए ॥ ३४ ॥ तब वह मेघाकार श्रीकृष्ण शंख गदा धारण किये महातेजस्वी पवन लगनेसे अग्निके समान वृद्धिको प्राप्त हुए ॥३५॥ वह अपने तेजसे दीप्तिमान् सूर्यके समान चक्रसे मनुष्य हाथी घोडोंको समरमें नष्ट

करने लगे ॥३६॥ गदासे हलके अग्रभागसे खींचकर मरनेसे वे राजा नष्टचेतन हो युद्धमें खडे होनेको समर्थ न हुए ॥ ३७ ॥ तीक्ष्ण चक्रसे छेदन होनेसे राजोंके समूह युद्धमें चलनेको समर्थ न हुए ॥ ३८ ॥ मूसलके एकही प्रहारसे साठ साठ वर्षके हाथी शरद्कालके मेघकेसमान भग्नदन्त होकर रोदन करने लगे ॥३९॥ चक्ररूपी अग्निकी ज्वालासे हत हो अश्वारोही और पैदल वज्रसे हत हुएके समान प्राणरहित हो गिरने लगे ॥ ४० ॥ चक्र और हलके अग्रभागसे दग्ध हो वह सम्पूर्ण सेना विदलित हो गई और प्रलयकालके समान वह सब सेना पतितसी हो गई ॥ ४१ ॥ उन आयु-

गदानिपातविहता लाङ्गलेन च कर्षिताः ॥ न शेकुस्ते रणे स्थातुं पार्थिवा नष्टचेतसः ॥ ३७ ॥ चक्रक्षुरनिकृन्तानि विचित्राणि महीक्षिताम् ॥ रथयूथानि भग्नानि न शेकुश्चालितुं रणे ॥ ३८ ॥ मुशलाक्षेपभग्नाश्च कुञ्जराष्षष्टिहायनाः ॥ घना इव घनापाये भग्नदन्ता विचुक्रुशुः ॥ ३९ ॥ चक्रानलज्वालहतास्सादिनस्सपदातयः ॥ पेतुः परासवस्तत्र यथा चक्राहतास्तथा ॥ ४० ॥ चक्रलाङ्गलनिर्दग्धं तत्सैन्यं विदलीकृतम् ॥ युगान्तोपहतप्रख्यं सर्वं पतितमाबभौ ॥ ४१ ॥ आक्रीडभूमिं दिव्यानामायुधानां वपुष्मताम् ॥ वैष्णवानां नृपास्ते तु द्रष्टुमप्यबलीयसः ॥४२ ॥ केचिद्रथास्संमृदिताः केचिन्निहतपार्थिवाः ॥ भग्नैकचक्रास्त्वपरे विकीर्णा धरणीतले ॥ ४३ ॥ तस्मिन्विशसने घोरे चक्रलाङ्गलसंप्लवे ॥ दारुणानि प्रवृत्तानि रक्षांस्यौत्पातिकानि च ॥ ४४ ॥ आर्तानां कूजमानानां पाटितानां च वेणुवत् ॥ अन्तो न शक्यतेऽन्वेष्टुं नृनागरथवाजिनाम् ॥ ४५ ॥ सा पातितनरेन्द्राणां रुधिरार्द्रा रणक्षितिः ॥ योषेव चन्दनार्द्राङ्गी भैरवा प्रतिभाति वै ॥ ४६ ॥

धोंके खेलकी भूमि वह समर हो गया, वह राजा उसके देखनेकोभी असमर्थ हो गये ॥४२॥ कोई रथहीन अर्थात् रथके संगही नष्ट हो गये, कोई राजाही नष्ट हो गये,कोई रथहीन होकर पृथ्वीपर पतित हो गये॥४३॥उस चक्र और हलके महाघोर संग्राममें दारुण राक्षसीउत्पात होने लगे ॥४४॥ प्राणियोंका आर्त नाद वांसोंके फटनेके समान होता था मनुष्य हाथी रथका अन्त देखा नहीं जाता था ॥४५॥ राजोंके गिरनेसे पृथ्वी रुधिरसे आर्द्र

हो गई चंदनसे दिग्ध अंगवाली स्त्रीके समान महाभयंकर विदित होने लगी ॥ ४६ ॥ मनुष्योंके केश अस्थि मज्जाओंसे और हाथियोंके गिरनेसे निकले हुए रुधिर समूहने पृथ्वीको ढक लिया ॥ ४७ ॥ उस महाभंयकर नरवाहनके क्षय होनेमें जब कि घोरदर्शन गीदडनीभी महाशब्द करती थीं ॥४८॥ चारों ओरसे आर्त शब्दके उठनेरुधिरके जलसे कालके क्रीडाके समान हाथियोंके देह आच्छादित होनेपर ॥४९॥ बाहुओंसे योधाको नष्ट करने और तुरंगोंसे विदीर्ण करनेपर कंक और बल गिद्धोंसे चारों ओर शब्दायमान होनेसे ॥५०॥ उस मृत्यु साधारणसे राजोंके नष्ट होनेसे कालके समान मूर्ति धारण किये श्रीकृष्णजी शत्रु वध करनेके निमित्त विचरण करने लगे ॥ ५१ ॥ प्रलयके सूर्यकी कान्तिके समान चक्र और काली

नरकेशास्थिमज्जान्त्रैश्शातितानां च दन्तिनाम् ॥ रुधिरौघप्लुवस्तत्र च्छादयामास मेदिनीम् ॥४७॥ तस्मिन्महाभीषणके नरवाहनसंक्षये ॥ शिवानामशिवैश्शब्दैर्नादिते घोरदर्शने ॥४८॥ आर्तस्तनितसंनादे रुधिराम्बुह्रदाकुले ॥ अन्तकाक्रीडसदृशे नागदेहैस्समावृत्ते ॥ ४९ ॥ अपास्तैर्बाहुभिर्योधैस्तुरगैश्च विदारितैः ॥ कङ्कैश्च बलगृध्रैश्च नादितैः प्रतिनादिते ॥ ५० ॥ निपाते पृथिवीशानां मृत्युसाधारणे रणे ॥ कृष्णश्शत्रुवधं कर्तुं चचारान्तकदर्शनः ॥ ५१ ॥ युगान्तार्कप्रभं चक्रं कालीं चैवायसीं गदाम् ॥ गृह्य सैन्यावनिगतो बभाषे केशवो नृपान् ॥ ५२ ॥ किन्न युद्धचत वै शूरा हस्त्यश्वरथसंयुताः ॥ किमिदं गम्यते शूराः कृतास्त्रा दृढनिश्चयाः ॥ अहं सपूर्वजस्संख्ये पदातिः प्रमुखे स्थितः ॥ ५३ ॥ अदृष्टदोषेण रणे भवन्तो येन पालिताः ॥ स इदानीं जरासंधः किमर्थं नाभिवर्तते ।५४॥ एवमुक्ते तु नृपतिर्दरदो नाम वीर्यवान् ॥ रामं हलाग्रोग्रभुजं प्रत्ययात्सैन्यमध्यगम् ॥ ५५ ॥ बभाषे स तु ताम्राक्षमुक्षाणमिव सेवनी ॥ एह्येहि राम युध्यस्व मया सार्द्धमरिंदम ॥ ५६ ॥

लोहेकी गदाको ग्रहणकर श्रीकृष्णजी समरमें प्राप्त हो राजोंसे बोले ॥ ५२ ॥ हे हाथी घोडोंमें बैठे योधाओ! तुम क्यों नहीं युद्ध करते ? अस्त्रोंमें कुशल शूर योधाओ ! तुम कहां जाते हो यह मैं भ्रांती सहित युद्धमें पैदल स्थित हूं ॥ ५३ ॥ जिसने दोष न विचार कर युद्धमें तुमको पालन किया है, वह जरासंध इस समय क्यों नहीं सन्मुख होता है ॥ ५४ ॥ ऐसा श्रीकृष्णके कहनेपर वीर्यवान् दरद राजा महाभुजावाला युद्धमें रामके हलके सन्मुख हुआ ॥ ५५ ॥ और लाल नेत्रवाले बलरामसे बोला जैसे किसान मतवाले बैलसे बोलता है; हे शत्रुसूदन राम ! मेरे सहित युद्ध कीजिये ॥ ५६ ॥

उस समय बलराम और दरदका महायुद्ध होने लगा वह उस युद्धमें ऐसे विदित होते थे जैसे दो बली हाथी शोभित हों।।५७।।तब रामने युद्धमें दरदको कंधेपर आरोपण कर हलमें रखकर मूसलसे प्रहार किया ।।५८।। मूसलके प्रहारसे उसका शिर उसके धडमें प्रवेश कर गया विदीर्ण हुए पर्वतके समान दरद राजा पृथ्वीमें गिर पडा ।।५९।। जिस समय रामने उस राजश्रेष्ठ दरदको मार डाला, तब राजा जरासंधका बलरामजीसे समागम हुआ ।।६०।। जैसे महेन्द्रका वृत्रासुरके साथ संग्राम हुआ था, इसी प्रकार गदा ग्रहण कर वे एक दूसरेके सन्मुख हुए ।। ६१ ।। वे महावीर दोनों पृथ्वीको कम्पित

तद्युद्धमभवत्ताभ्यां रामस्य दरदस्य च॥ मृधे लोकवरिष्ठाभ्यां कुञ्जराभ्यामिवौजसा ॥५७॥ योजयित्वा ततस्स्कन्धे रामो दरदमाहवे ॥ हलेन बलिनां श्रेष्ठो मुशलेनावपोथयन् ॥५८॥ स्वकायगतमूर्धा वै मुसलेनावपोथितः ॥ पपात दरदो भूमौ दारिताद्र्द्ध इवाचलः ॥५९॥ रामेण निहते तस्मिन्दरदे राजसत्तमे ॥ जरासंधस्य राज्ञस्तु रामेणासीत्समागमः ॥ ६० ॥ महेन्द्रस्येव वृत्रेण दारुणो लोमहर्षणः ॥ गदे गृहीत्वा विक्रान्तावन्योन्यमभिधावतः ॥६१॥ कम्पयन्तौ भुवं वीरौ तावुद्यतमहागदौ ॥ ददृशाते महात्मानौ गिरी सशिखराविव ॥६२॥ व्युपारमन्त युद्धानि प्रेक्ष्य तौ पुरुषर्षभौ ॥ संरब्धाविव धावन्तौ गदायुद्धेषु विश्रुतौ ॥६३॥ तावुभौ परमाचार्यौ लोके ख्यातौ महाबलौ ॥ मत्ताविव महानागावन्योन्यं समधावताम् ॥६४॥ ततो देवास्सगन्धर्वास्सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ यक्षाश्चाप्सरसश्चैव समाजग्मुस्सहस्रशः ॥ ६५ ॥ तद्देवयक्षगन्धर्वमहर्षिभिरलंकृतम् ॥ शुशुभेऽभ्यधिकं राजन्नभोज्योतिर्गणैरिव ॥ ६६ ॥ अभिदुद्राव रामं तु जरासंधो नराधिपः ॥ सव्यं मण्डलमाश्रित्य बलदेवस्तु दक्षिणम् ॥ ६७ ॥

करते पर्वतके शिखरके समान दोनों महात्मा दृष्टिगोचर होते थे ।।६२।। वे दोनों बडे वेगसे गदायुद्ध करनेको धावमान होते थे उनके युद्धको देखकर योधाओंने युद्ध करना छोड दिया ।।६३।। वे दोनों युद्धके परमाचार्य लोकमें विख्यात बलवाले मत्त हाथीके समान एक दूसरे पर धावमान होते थे ।। ६४ ।। तब देवता गन्धर्व परम ऋषि, यक्ष, अप्सरा यह सहस्रों देखनेको आये ।। ६५ ।। हे राजन् ! उस समय देवता गन्धर्व यक्षोंसे मिलकर वह आकाश शोभित होता था जैसे आकाश तारोंसे शोभित होता है।।६६।। राजा जरासंध बलरामजीपर बांई ओरसे धावमान हुआ और बलरामजी

दक्षिणकी ओरसे धावमान हुए ॥६७॥ गदायुद्धमें विशारद वे दोनों एक दूसरेपर प्रहार करने लगे और उनके गदाप्रहार तथा गर्जनेका ऐसा शब्द होने लगा जैसे कि हाथियोंकी चिंघाड और उनके दांतोंका शब्द होता है जब वे युद्ध करते हैं ॥ ६८ ॥ बलरामका गदाघात वज्रके समान सुनाई देता था और जरासंधके चरणका शब्द ऐसा होता कि मानो पर्वत विदीर्ण होता है ॥ ६९ ॥ जरासंधके हाथसे चलाई हुई गदा गदाधारियोंमें श्रेष्ठ बलराम-जीको चलायमान करनेको समर्थ न हुई, जैसे पवन विंध्याचल पर्वतको चलायमान नहीं कर सकती ॥७०॥ और बलरामजीके गदाघातको महाधैर्यसे राजा सहन करता था,और शिक्षासे उसे ज्यौं त्यौं सहने लगा ॥ ७१ ॥ तब आकाशसे सुन्दर स्वरयुक्त लोकसाक्षिणी वाणी हुई. हे राम ! यह तुम्हारे

तावन्योन्यं प्रजह्राते गदायुद्धविशारदौ ॥ दन्ताभ्यामिव मातङ्गौ नादयन्तौ दिशो दश ॥ ६८ ॥ गदानिपातो रामस्य शुश्रुवेऽशनिनिस्वनः ॥ जरासंधस्य च रणे पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ ६९ ॥ न स्म कम्पयते रामं जरासंधकरच्युता ॥ गदा गदाभृतां श्रेष्ठं विन्ध्यं गिरिमिवानिलः ॥ ७० ॥ रामस्य तु गदावेगं राजा स मगधेश्वरः ॥ सेहे धैर्येण महता शिक्षया च व्यपोथयत् ॥७१॥ ततोऽन्तरिक्षे वागासीत्सुस्वरा लोकसाक्षिणी ॥ न त्वया राम वध्योऽयमलं खेदेन मानद ॥ ७२ ॥ विहितोऽस्य मया मृत्युस्तस्मात्साधु व्युपारम ॥ अचिरेणैव कालेन प्राणांस्त्यक्ष्यति मागधः ॥७३॥ जरासंधस्तु तच्छ्रुत्वा विमनाः समपद्यत ॥ न प्राहरत्ततस्तस्मै पुनरेव हलायुधः ॥ तौ व्युपारमतां युद्धाद्वृष्णयस्ते च पार्थिवाः ॥७४॥ दीर्घकालं महाराज निजघ्नुरितरेतरम् ॥ पराजिते त्वपक्रान्ते जरासंधे महीपतौ ॥ विविक्तमभवत्सैन्यं परावृत्तमहारथम् ॥७५॥ ते नृपाश्चोदितैर्नागैस्स्यन्दनैस्तुरगैस्तथा॥ दुद्रुवुर्भीतमनसो व्याघ्राघाता मृगा इव ॥ ७६ ॥

मारनेका नहीं है, इसके मारनेका श्रम मत करो ॥ ७२ ॥ इसकी मृत्यु मैंने विधान कर दी है तुम इसके मारनेसे विराम करो थोडेही समयमें जरासंधकी मृत्यु होगी ॥ ७३ ॥ यह वचन सुनतेही जरासंध विमन हो गया और बलरामजीने फिर उसपर प्रहार नहीं किया इधर वृष्णिवंशीय वे राजाभी युद्धसे विरामको प्राप्त हुए ॥७४॥ इस प्रकार बहुत समय तक संग्राम होता रहा, जरासंध राजाके पराजित होनेमें वह सेना शून्य हो गई और रथको लौटाकर ॥७५॥ वे राजा प्रेरण किये हाथी घोडे रथोंपर स्थित हो पलायन करने लगे जैसे व्याघ्रोंके आघातसे मृग पलायनकरते हैं ॥ ७६ ॥

वह संग्रामभूमि राजोंसे परित्यक्त महारथियोंसे हीन हो घोररूप अनेक हिंसक जीवोंसे व्याप्त हो शोभित हुई॥७७॥जब इसप्रकार मुख्य रथी पलायन करने लगे तब महाकांतिमान् चेदिराज यदुवंशियोंका सम्बन्ध स्मरण कर कृष्णके समीप आया॥७८॥उसके साथ रूप और चेदिदेशकी सेना थी गोविंदसे सम्बन्धकी इच्छा करनेवाला चेदिराट् बोला॥७९॥हे कृष्ण ! मैं तुम्हारी फूफीका पुत्र हूं सेनासहित तुम्हारे निकट उपस्थित हुआ हूं तुमही मेरे स्वामी हो॥८०॥मैंने इस चेतनाहीन राजा जरासंधको बहुत चेताया है. हे दुर्बुद्धि ! कृष्णसे विरोध और युद्ध मत करे॥८१॥सो इसने मेरा कहा न माना

तन्नरेन्द्रैः परित्यक्तं भग्नदर्पैर्महारथैः ॥ घोरं क्रव्यादबहुलं रौद्रमायोधनं बभौ ॥७७॥ द्रवत्सु रथमुख्येषु चेदिराजो महाद्युतिः ॥ स्मृत्वा यादवसंबन्धं कृष्णमेवान्ववर्तत ॥ ७८ ॥ वृतः कारूषसैन्येन चेदिसैन्येन चानघ ॥ संबन्धकामो गोविन्दमिदमाह स चेदिराट् ॥७९॥ अहं पितृष्वसुर्भर्ता तव यादवनन्दन ॥ सबलस्त्वामुपावृत्तस्त्वं हि मे दयितः प्रभो ॥८०॥ उक्तश्चैष मया राजा जरासंधोऽल्पचेतनः ॥कृष्णाद्विरम दुर्बुद्धे विग्रहाद्रणकर्मणि ॥ ८१ ॥ तदेषोऽद्य मया त्यक्तो मम वाक्यस्य दूषकः ॥ भग्नो युद्धे जरासंधस्त्वया द्रवति सानुगः ॥८२॥ निर्वैरो नैष संयाति स्वपुरं पृथिवीपतिः ॥ त्वय्येव भूयोऽप्यपरं दर्शयिष्यति किल्बिषम् ॥८३॥ तदिमां संत्यजाशु त्वं महीं हतनराकुलाम ॥ क्रव्यादगणसकीर्णां सेवितव्याममानुषैः ॥८४॥ करवीरपुरं कृष्ण गच्छामः सबलानुगाः ॥ शृगालं वासुदेवं वै द्रक्ष्यामस्तत्र पार्थिवम् ॥ ८५ ॥ इमौ रथवरोदग्रौ युवयोः कारितौ मया ॥ योजितौ शीघ्र-तुरगैस्स्वङ्गचक्राक्षकूबरौ ॥ ८६ ॥ शीघ्रमारुह भद्रं ते बलदेवसहायवान् ॥ त्वरामः करवीरस्थं द्रष्टुं तं वसुधाधिपम् ॥ ८७॥

इस कारण मैंने इसको त्याग दिया अब जरासंध भग्न होकर सेनासहित पलायन करता है॥८२॥परंतु यह राजा वैरहीन हो अपनी पुरीको नहीं जाता है तुम्हारे साथ और भी कुछ रूप लावेगा॥८३॥सो आप मरे हुए मनुष्योंसे आकुल इस स्थानको छोड दीजिये, यह क्रव्यादसमूहोंसे युक्त हो मनुष्योंके सेवन करनेके योग्य नहीं है ॥८४॥ इससे हे कृष्ण ! हम सेनासहित करवीर पुरको जाते हैं, वहां शृगाल वसुदेव राजाका दर्शन करेंगे ॥८५॥ यह दो श्रेष्ठ रथ मैं आपके निमित्त लाया हूं, उसमें दिव्य घोडे जुते हैं, अच्छे दृढ पहियोंके रथ हैं ॥ ८६ ॥ आपका भला हो बलदेवसहित शीघ्र आप

रथोंपर चढिये,कारण कि करवीर देशके राजाके शीघ्र देखनेकी हमारी इच्छा है॥८७॥वैशंपायन बोले;इस प्रकार फूफीके पुत्र चेदिराजाके वचन सुनकर जगद्गुरु कृष्ण बहुत प्रसन्न हो वचन बोले॥८८॥अहो युद्धसे संतप्त हो तुमने देशकालके उचित बांधवोंके कहने योग्य वचनरूपी जलसे हमको सींचा है॥८९॥हे चेदिपति ! देशकालयुक्त हितकारी और मधुर वाक्योंका कहनेवाला लोकमें बडा दुर्लभ है॥९०॥हे चेदिराज ! हम तुम्हारे दर्शनसे सनाथ हुए तुमसरीखा बंधु पाकर हमको कुछभी दुर्लभ नहीं है ॥९१॥ जरासंध तथा उसके समान जो दूसरे राजा हैं, उनका नाश हम हे राजन् ! तुम्हारे

वैशम्पायन उवाच ॥ पितृष्वसृपतेर्वाक्यं श्रुत्वा चेदिपतेस्तदा ॥ वाक्यं हृष्टमनाः कृष्णो जगाद जगतो गुरुः ॥ ८८ ॥ अहो युद्धाभिसंतप्तौ देशकालोचितौ त्वया॥बान्धवप्रतिरूपेण संसिक्तौ वचनाम्बुना ॥८९॥ देशकालविशिष्टस्य हितस्य मधुरस्य च ॥ वाक्यस्य दुर्लभा लोके वक्तारश्चेदिसत्तम ॥ ९० ॥ चेदिनाथ सनाथौ स्वस्संवृत्तौ तव दर्शनात् ॥ नावयोः किंचिदप्राप्यं ययोस्त्वं बन्धुरीदृशः ॥ ९१ ॥ जरासंधस्य निधनं ये चान्ये तत्समा नृपाः ॥ पर्याप्तौ त्वत्सनाथौ स्वः कर्तुं चेदिकुलोद्वह ॥ ९२ ॥ यदूनां प्रथमो बन्धुस्त्वं हि सर्वमहीक्षिताम् ॥ अतः प्रभृति संग्रामान्द्रक्ष्यसे चेदिसत्तम ॥ ९३ ॥ चाक्रं मौशलमित्येवं संग्रामं रणवृत्तयः ॥ कथयिष्यन्ति लोकेऽस्मिन्ये धरिष्यन्ति पार्थिवाः ॥ ९४ ॥ राज्ञां पराजयं युद्धे गोमन्तेऽचलसत्तमे ॥ श्रवणाद्धारणाद्वापि स्वर्गलोकं व्रजन्ति हि ॥ ९५ ॥ तद्गच्छाम महाराज करवीरं पुरोत्तमम् ॥ त्वयोद्दिष्टेन मार्गेण चेदिराज शिवाय वै ॥ ९६ ॥ ते स्यन्दनगतास्सर्वे पवनोत्पातिभिर्हयैः भेजिरे दीर्घमध्वानं मूर्तिमन्त इवाग्नयः ॥ ९७ ॥

साथ मिलकर करना चाहते हैं॥९२॥ सब राजोंमें प्रथम तुमही यदुवंशियोंके श्रेष्ठ बंधु हो, आजसे हे चेदिराज ! तुम संग्रामोंको देखोगे कि ॥९३॥ जो राजा जीते रहेंगे वे चक्रमूसलसे संग्राम होता है इस प्रकार कहा करेंगे ॥ ९४ ॥ गोमंत नाम पर्वतश्रेष्ठमें राजोंकी पराजय हुई थी यह वार्ता श्रवण और धारणसे मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है ॥९५॥ हे महाराज ! इस कारण हम पुरश्रेष्ठ करवीर पुरको जाते हैं. हे चेदिराज ! तुम्हारे कहे मार्गसे चलते हैं तुम्हारा मंगल हो॥९६॥इस प्रकार वे सब पवनके समान वेगवाले घोडोंके रथमें स्थित हो मूर्तिमान् अग्निके समान चले ॥ ९७ ॥

वे तीन रात्री मार्गमें विताकर करवीर पुरमें पहुंचे, और मंगलके निमित्त देवताओंके समान वे उस देशमें स्थित हुए॥९८॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां करवीरपुरगमनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥ युद्धदुर्मद शृगालने उनको आया हुआ देखकर यह जाना कि इन्होंने मेरा पुर घेर लिया,तत्काल वह इन्द्रके समान बलिष्ठ अपने पुरसे निकला ॥१॥ सूर्यके समान प्रकाशमान रणगामी रथमें स्थित हो आयुधोंसे पूर्ण नेमीके शब्दसे पूर्ण॥२॥ मंदराचल पर्वतके समान चित्रविचित्र आभूषणोंसे सज्जित अक्षय बाणवाले सागरके समान ध्वनिसे पूर्ण ॥ ३ ॥ पर्व-

ते त्रिरात्रोषिताः प्राप्ताः करवीरं पुरोत्तमम् ॥ शिवाय च शिवे देशे निविष्टास्त्रिदशोपमाः ॥ ९८ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे खिलेषु विष्णुपर्वणि करवीरपुराभिगमनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तानागतान्विदित्वाथ शृगालो युद्धदुर्मदः ॥ पुरस्य घर्षणं मत्वा निर्जगामेन्द्रविक्रमः ॥ १ ॥ रथेनादित्यवर्णेन भास्वता रणगामिना ॥ आयुधप्रतिपूर्णेन नेमिनिर्घोषहासिना ॥ २ ॥ मन्दराचलकल्पेन चित्राभरणभूषिणा ॥ अक्षय्यसायकैस्तूणैः पूर्णेनार्णवघोषिणा ॥ ३ ॥ हर्यश्वेनाशुगतिना सक्तेन शिखरेष्वपि ॥ हेमकूबरगर्भेण दृढाक्षेणातिशोभिना ॥ ४ ॥ सुबन्धुरेण दीप्तेन पतत्रिवरगामिना ॥ खगतेनेव शक्रस्य हर्यश्वेन रथाद्रिणा ॥५॥ सावित्रे नियमे पूर्णे यं ददौ सविता स्वयम् ॥ आदित्यरश्मिभिरिव रश्मिभिर्यो निगृह्यते ॥६॥ तेन स्यन्दनमुख्येन द्विषत्स्यन्दनघातिना ॥ स शृगालोऽभ्ययात्कृष्णं शलभः पावकं यथा ॥ ७ ॥ चापपाणिस्सुतीक्ष्णेषुः कवची हेममालिकः ॥ सितप्रावरणोष्णीषः पावकाकारलोचनः ॥ ८ ॥

तोंपरभी न रुकनेवाले वेगवान् घोडोंसे युक्त, सुवर्णका जुआ और आगेकी बम्ब दृढधुरीसे अत्यन्त शोभायमान ॥ ४ ॥ दीप्तिमान् बंधुर (मनोहर दीप्तिमान्) और गरुडके समान वेगवान रथपर ऐसे चला जैसे पर्वत समान रथमें बैठ इन्द्र आकाशमें जाता है॥५॥ सविता अर्थात् सूर्यने नेम पूर्ण होनेसे इसको यह रथ दिया था,और सूर्यकी किरणोंके सदृश लगामोंसे जो ग्रहण किया जाता था ॥ ६ ॥ इस प्रकार शत्रुके रथघाती उस रथपर चढ़ वह शृगाल कृष्णके ऊपरको आया जैसे शलभ अग्निपर धावमान होता है ॥ ७ ॥ धनुष लिये, कवच पहरे, सुवर्णकी माला गलेमें डाले, तीक्ष्ण

बाण लिये, श्वेत छत्र पगडी धारे, अग्निकी समान नेत्र ॥ ८ ॥ वारंवार ज्या फटकारता, दुस्सह धनुष चढ़ाता, रोषकी पवन उगलता हुआ, अग्निके ज्वालामंडलके समान ॥९॥ गहनोंकी कान्तिसे दीप्तिमान सुमेरुपर्वतके समान रथमें स्थित पर्वतराजके समान शृगाल दृष्टिगोचर हुआ ॥१०॥ उसके महाशब्द और रथके पहियोंके शब्दसे और भारीपनसे पृथ्वी भयातुर हो चलायमानसी होगई ॥११॥ उस लक्ष्मीवान्‌को मूर्तिमान् पर्वतके समान लोकपालोंकी कान्तिके समान शृगालको देख श्रीकृष्ण कम्पित न हुए॥१२॥ शृगालभी बडे वेगसे शीघ्रगामी रथपर वासुदेवके समीपही युद्ध करनेको

मुहुर्मुहुर्ज्याचपलं विक्षिपन्दुस्सहं धनुः ॥ निर्वमन्रोषजं वायुं सानलज्वालमण्डलम् ॥ ९ ॥ भाभिर्भूषणपंक्तीनां दीप्तो मेरुरिवाचलः ॥ रथस्थ इव शैलेन्द्रः शृगालः प्रत्यदृश्यत ॥ १० ॥ स्यारसितशब्देन रथनेमिस्वनेन च ॥ गुरुत्वेन च नाम्यन्ती चचालोर्वी भयातुरा ॥ ११ ॥ तमापतन्तं श्रीमन्त मूर्तिमन्तमिवाचलम् ॥ शृगालं लोकपालाभं दृष्ट्वा कृष्णो न विव्यथे ॥ १२ ॥ शृगालश्चापि संरब्धस्स्यन्दनेनाशुगामिना ॥ समीपे वासुदेवस्य युयुत्सुः प्रत्यदृश्यत ॥ १३ ॥ वासुदेवं स्थितं दृष्ट्वा शृगालो युद्धलालसः ॥ अभिदुद्राव वेगेन मेघराशिरिवाचलम् ॥ १४ ॥ वासुदेवस्स्मितं कृत्वा प्रतियुद्धाय तस्थिवान् ॥ तद्युद्धमभवत्ताभ्यां समरे घोरदर्शनम्॥उभाभ्यामिव मत्ताभ्यां कुञ्जराभ्यां यथा वने ॥१५॥ शृगालस्त्वब्रवीत्कृष्णं समरे समुपस्थितम् ॥ युद्धरागेण तेजस्वी मोहाच्चलितगौरवः॥१६॥ गोमन्ते युद्धमार्गेण यत्त्वया कृष्ण चेष्टितम्॥ अनायकानां मूर्खाणां नृपाणां दुर्बले बले ॥१७॥

आया ॥१३॥ वासुदेवको स्थित देख युद्धकी लालसासे शृगाल बडे वेगसे दौडा जैसे जलराशी पर्वतपर छूटती है ॥१४॥ श्रीकृष्णभी हँसकर युद्धके निमित्त स्थित हुए उन दोनोंका महाघोर दर्शन युद्ध हुआ; वे दोनों ऐसे युद्ध करने लगे जैसे दो मतवाले हाथी वनमें युद्ध करते हों ॥१५॥ समरमें उपस्थित श्रीकृष्णसे युद्धकी इच्छा करनेवाला तेजस्वी शृगाल मोहसे गौरव छोड कहने लगा॥१६॥हे कृष्ण ! गोमंत युद्धमें जो आपकी चेष्टा हुई है वह नायकहीन दुर्बल राजोंकी सेनापर हुई है ॥ १७ ॥

हे कृष्ण ! मैंने वह क्षत्रियोंका पराजय सुन लिया है जो उस रणोत्सवोंमें कृपण क्षत्रियोंकी वार्ता हुई हैं ॥ १८ ॥ सो इस समय स्थित होकर देखो कि मैं राजोंके यथार्थ पदमें स्थित हूं मुझसे युद्धमें उपस्थित हो कहां जा सकता है ॥ १९ ॥ मैं सेनासहित तुमसे युद्ध नहीं करूंगा, और इकलेमें हमारा तुम्हारा दोनोंहीका संग्राम होगा ॥ २० ॥ मनुष्योंके मारनेसे क्या है हम तुम दोनों स्थित हैं धर्मयुद्धमेंसे कोई एक निधनको प्राप्त होगा ॥ २१ ॥ तुम्हारे मारनेसे इस लोकमें एक मैंही वासुदेव रहूंगा, और मेरे मरनेसे तुमही एक वासुदेव रहोगे ॥ २२ ॥ शृगालके वचन सुन क्षमावान् श्रीकृष्णजी उस ईर्षा करनेवा-

स मे सुविदितः कृष्ण क्षत्रियाणां पराजयः ॥ कृपणानामसत्त्वानामयुद्धानां रणोत्सवे ॥ १८ ॥ तिष्ठेदानीं यथाकामं स्थितोऽहं पार्थिवे पदे ॥ क्व यास्यासि मया रुद्धो रणेष्वपारिनिष्ठितः ॥ १९ ॥ न चाहमेकं सबलो युक्तस्त्वां योद्धुमाहवे ॥ अहमेकस्त्वमप्येको द्वौ युद्धावरणे स्थितौ ॥ २० ॥ किं जनेन निरस्तेन त्वं वाहं च रणे स्थितः ॥ धर्मयुद्धेन निधनं व्रजत्वेकतरो रणे ॥ २१ ॥ लोकेऽस्मिन्वासुदेवोऽहं भविष्यामि हते त्वयि ॥ हते मयि त्वमप्येको वासुदेवो भविष्यसि ॥ २२ ॥ शृगालस्य वचश्श्रुत्वा वासुदेवः क्षमापरः ॥ ईर्ष्यन्तं प्रहरस्वेति तमुक्त्वा चक्रमाददे ॥ २३ ॥ ततस्सायकजालानि शृगालः क्रोधमूर्च्छितः ॥ चिक्षेप कृष्णे घोराणि युद्धाय लघुविक्रमः ॥ २४ ॥ शस्त्राणि यानि चान्यानि मुशलाद्यानि संयुगे ॥ पातयामास गोविन्दे स शृगालः प्रतापवान् ॥ २५ ॥ शृगालप्रहितैरस्त्रैः पावकज्वालमालिभिः ॥ निर्दयाभिहतः कृष्णः स्थितो गिरिरिवाचलः ॥ २६ ॥ सोऽस्त्रप्रहाराभिहतः किंचिद्रोषसमन्वितः ॥ चक्रमुद्यम्य गोविन्दश्शृगालस्य परिक्षिपन् ॥ २७ ॥

लेसे प्रहार कर यह कह चक्र धारण किया ॥ २३ ॥ तब शृगाल क्रोधसे मूर्च्छित हो युद्ध करनेके निमित्त श्रीकृष्णपर घोर बाण प्रहार करने लगा ॥ २४ ॥ जो और मूसलादि शस्त्र हैं संग्राममें वह प्रतापी शृगाल श्रीकृष्णके ऊपर प्रहार करने लगा ॥ २५ ॥ उस शृगालके अग्निकी समान अस्त्र निर्दयतासे छोडे हुएसे ताडित होकरभी श्रीकृष्ण पर्वतकी समान अचल रहे ॥ २६ ॥ तब उसके अस्त्रप्रहारसे हत हो कुछेक क्रोधयुक्त हो गोविंद भगवान्ने चक्र उठाकर

शृगालके ऊपर मारा॥२७॥उस रथमें स्थित दुर्मद शृगाल महाअभिमानी महाबलीको युद्धमें प्रहार किया॥२८॥उसको नष्टकर वह चक्र फिर श्रीकृष्णके हाथमें आ गया, और वह शृगाल चक्र लगनेसे विदीर्णहृदय हो प्राणहीन होकर पृथ्वीमें गिरा जैसे वज्रसे ताडित हो पर्वत गिरता है, और रुधिरकी धारा उसके शरीरसे वहने लगी॥२९॥ वज्रके लगनेसे पर्वतकी समान उस राजाको गिरा हुआ सुनकर उसकी सेना व्याकुल हो पलायन करने लगी॥३०॥कोई दुःखी हो नगरमें प्रविष्ट हुए कोई स्वामीके शोकसे पीडित हो रुदन करने लगे ॥ ३१ ॥ कोई उसके श्रेष्ठ कर्म स्मरण करते हुए शोच करने लगे कोई

त रथस्थं प्रमाणस्थं शृगालं युद्धदुर्मदम् ॥ जघान समरे चक्रं जातदर्पं महाबलम् ॥२८॥ ततस्सुदर्शनं चक्रं पुनरायाद्गुरोः करे ॥ चक्रेणोरसि निर्भिन्नस्स गतासुर्गतोत्सवः ॥ पपात क्षतजस्रावी शृगालोऽद्रिरिवाहतः ॥ २९ ॥ निशम्य तं निपतितं वज्रपातादिवाचलम् ॥ तस्य सैन्यान्यपययुर्विमनांसि हते नृपे ॥ ३० ॥ केचित्प्रविश्य नगरं कश्मलाभिहता भृशम् ॥ रुरुदुर्दुःखसंतप्ता भर्तृशोकाभिपीडिताः ॥३१॥ केचित्तत्रैव शोचन्तस्स्मरन्तस्सुकृतानि च ॥ पतितं भूपतिं भूमौ न त्यजन्ति स्म दुःखिताः ॥ ३२ ॥ ततो मेघनिनादेन स्वरेणारिविमर्दनः ॥ कृष्णः कमलपत्राक्षो जनानामभयं ददौ ॥ ३३ ॥ चक्रोचितेन हस्तेन राजतांगुलिपर्वणा ॥ न भेतव्यं न भेतव्यमिति तानभ्यभाषत ॥ ३४ ॥ नास्य पापस्य दोषेण निराबाधकरं जनम् ॥ घातयिष्यामि समरे नेदं शूरव्रतं मतम् ॥ ३५ ॥ अश्रुपूर्णमुखा दीनाः क्रन्दमाना भृशं तदा ॥ पतितो वै शृगालाख्यो भ्रष्टस्सन् दीनमानसः ॥ ३६ ॥ ते स्म पश्यन्ति पतितं धरण्यां धरणीपतिम् ॥ चक्रनिर्दारितोरस्कं भिन्नशृङ्गमिवाचलम् ॥ ३७ ॥

पृथ्वीमें पडे हुए राजाको देख दुःखी हो छोड गये ॥३२॥ तब मेघगंभीरवाणीसे शत्रुघाती कमललोचन श्रीकृष्णने सब मनुष्योंको अभय दिया ॥३३॥ चंदीकी अंगुली पर्ववाले चक्र उचित हाथ उठाकर (मत डरो) इस प्रकार श्रीकृष्णने कहा ॥ ३४ ॥ इसके पापके दोषसे युद्धमें दूसरे पुरुषोंका संहार नहीं करूंगा, क्यों कि यह शूरोंका व्रत नहीं है ॥ ३५ ॥ आंसुओंसे पूर्णमुख दीन अत्यन्त विलाप करते हुए यह शृगाल भ्रष्ट और दीन हो पतित हो गया ॥३६॥ वे सब पृथ्वीमें पडे उस राजाको देखने लगे कि चक्रसे उसका हृदय यों विदीर्ण कर दिया है

जैसे वज्रसे गिरि विदीर्ण होता है ॥ ३७ ॥ वे प्रजा और मंत्री सब विलाप करने लगे आंसू भरे दीन और शोकके वशीभूत हो गये ॥ ३८ ॥ उनके और पुरवासियोंके रोनेके शब्दोंसे महाव्याकुलता हुई; और पुत्रोंसहित रोती हुई उसकी रानी बाहर आई ॥ ३९ ॥ वह अपने श्लाघनीय राजाको पृथ्वीमें पडा हुआ देखकर हृदयको पीटती अत्यन्त कातर स्वरसे विलाप करने लगी ॥ ४० ॥ उर शिर जानु यह सब निर्दय ताडन करके वे स्त्री बुरे स्वरसे रुदन करने लगीं ॥ ४१ ॥ और वे सब स्त्री दुःखसे व्याकुल मृदित और क्लिन्न लोचन हो भुजा फैलाकर जडकटी वेलकी समान राजाके ऊपर

विलपन्ति स्म ते सर्वे साचिवास्सप्रजा भृशम् ॥ साश्रुपातेक्षणा दीनाश्शोकस्य वशमागताः ॥ ३८ ॥ तेषां रुदितशब्देन पौराणां विस्वरैस्स्वरैः ॥ महिष्यस्तस्य निष्पेतुस्सपुत्रा रुदिताननाः ॥ ३९ ॥ तास्तं निपतितं दृष्ट्वा श्लाघ्यं भूमिपतिं पतिम् ॥ स्तनानारुज्य करजैर्भृशार्ताः पर्यदेवयन् ॥ ४० ॥ उरांस्युरसिजांश्चैव शिरोजान्याकुलान्यपि ॥ निर्दयं ताडयन्त्यस्ता विस्वरं रुरुदुः स्त्रियः ॥ ४१ ॥ तस्योरसि सुदुःखार्ता मृदिताः क्लिन्नलोचनाः ॥ पेतुरूर्ध्वभुजास्सर्वाश्छिन्नमूला लता इव ॥ ४२ ॥ तासां बाष्पाम्बुपूर्णानि नेत्राणि नृपयोषिताम् ॥ वारिविप्रहतानीव पङ्कजानि चकाशिरे ॥ ४३ ॥ ताः पतिं पतितं भूमौ रुदन्त्यो हृदि ताडिताः ॥ लालप्यमानाः करुणं योषितः पर्यदेवयन् ॥ ४४ ॥ पुत्रं चास्य पुरस्कृत्य बालं प्रश्रुतलोचनम् ॥ शुकदेवं पितुः पार्श्वे द्विगुणं रुरुदुः स्त्रियः ॥ ४५ ॥ अयं ते वीर विक्रान्तो बालः पुत्रो न पण्डितः ॥ त्वद्विहीनः कथमयं पदे स्थास्यति पैतृके ॥ ४६ ॥ कथमेकपदे त्यक्त्वा गतोऽस्यन्तःपुरं परम् ॥ अतृप्तास्तव सौख्यानां किं कुर्मो विधवा वयम् ॥ ४७ ॥

गिर पडीं ॥ ४२ ॥ उन राजस्त्रियोंके नेत्र जलसे पूर्ण कमलकी समान प्रकाशित हुए ॥ ४३ ॥ वह पतिको पृथ्वीमें पडा देख रोती हुई हृदयको पीटने लगीं, और महादुःखसे विलाप करती हुई करुणा स्वरसे रुदन करने लगीं ॥ ४४ ॥ बालक और जल भरे नेत्रवाले इसके पुत्र शुकदेवको आगे कर पिताके निकट बैठाय वे स्त्री महाविलाप करने लगीं ॥ ४५ ॥ और बोलीं हे वीर ! हे बली ! यह तुम्हारा बालक पुत्र पण्डित नहीं है, तुम्हारे विना किस प्रकार यह तुम्हारे स्थानपर स्थित होगा ॥ ४६ ॥ एकसाथही अन्तःपुरको त्यागन कर आप चले गये, हम तुम्हारे सुखसे तृप्त न होकर क्या करें

विधवा हो गई हैं ॥४७॥ उस राजाकी स्त्रियोंमें श्रेष्ठ पद्मावती नाम स्त्री रोती हुई पुत्रके लिये श्रीकृष्णके निकट आकर बोली ॥४८॥ हे वीर ! जो कि आपने युद्धके विधानसे हमारे पतिको मार डाला, उस मृतक हुए राजाका यह पुत्र तुम्हारी शरण है ॥ ४९ ॥ जो यह पति तुमको प्रणाम करता या तुम्हारा वचन मानता तो एकही प्रहारसे मरकर इस दशाको प्राप्त न होता॥५०॥जो यह मूढ तुमको अपना बंधु मानता तो इस प्रकार कृपणके समान पृथ्वीमें न पडा होता ॥ ५१ ॥ हे पापरहित ! इस तुम्हारे बांधवके इस प्रकार दुःखी होनेसे आप इसकी संतानकी रक्षा कीजिये. हे वीर !

तस्य पद्मावती नाम महिषी प्रमदोत्तमा ॥ रुदती पुत्रमादाय वासुदेवमुपस्थिता ॥४८॥ यस्त्वया पातितो वीर रणप्रोक्तेन कर्मणा ॥ तस्य प्रेतगतस्यायं पुत्रस्त्वां शरणं गतः ॥ ४९ ॥ यदि त्वां प्रणमेतासौ कुर्याद्वा शासनं तव ॥ नायमेकप्रहारेण जनस्तप्येत दारुणम् ॥ ५० ॥ यदि कुर्यादयं मूढस्त्वयि बान्धवकं विधिम् ॥ नैवं परीतः कृपणस्सेवेत धरणीतलम् ॥ ५१ ॥ अथमस्य विपन्नस्य बान्धवस्य तवानघ ॥ सन्तती रक्ष्यतां वीर पुत्रः पुत्र इवात्मजः ॥ ५२ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा महिष्या यदुनन्दनः ॥ मृदुपूर्वमिदं वाक्यमुवाच वदतां वरः ॥ ५३ ॥ राजपत्नि गतो रोषस्सहानेन दुरात्मना ॥ प्रकृतिस्था वयं जाता देवि सैषोऽस्मि बान्धवः ॥५४॥ रोषो मे विगतस्साध्वि तव वाक्यैरकल्मषैः ॥ योऽयं पुत्रश्शृगालस्य ममाप्येष न संशयः ॥५५॥ अभयं चाभिषेकं च ददाम्यस्मै सुखाय वै ॥ आहूयन्तां प्रकृतयः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा ॥ ५६ ॥ पितृपैतामहे राज्ये तवपुत्रोऽभिषिच्यताम् ॥ ततः प्रकृतयस्सर्वाः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा ॥ ५७ ॥

इस पुत्रको अपने पुत्रके समान जानो ॥५२॥ उस रानीके यह वचन सुन श्रीकृष्ण बोलनेमें श्रेष्ठ कोमल वचन बोले ॥५३॥ हे राजपत्नी ! मेरा रोष तो इस दुरात्माकेही साथ नष्ट हो गया, अब हम अपने स्वभावमें स्थित हुए, वही तुम्हारे बंधु हैं ॥ ५४ ॥ हे साध्वी ! तुम्हारे पापरहित वचन सुनकर हमारा क्रोध जाता रहा, सो यह शृगाल राजाका पुत्र है, इसे मेराही जानो, इसमें सन्देह नहीं ॥५५॥ इसके सुखके निमित्त इसको अभय और अभिषेक देता हूं पुरोहित प्रजा और मंत्रियोंको बुलाओ ॥ ५६ ॥ पिता पितामहोंके राज्यमें तुम्हारे पुत्रको अभिषेक किया जायगा,

समय सब प्रकृति पुरोहित मंत्री उसके अभिषेकके निमित्त ॥ ५७ ॥ बलराम और श्रीकृष्णके निकट उपस्थित हुए, तब श्रीकृष्णने उस राजपुत्रको सिंहासन पर बैठाया ॥ ५८ ॥ अपने हाथसे उसका दिव्य अभिषेक किया, शृगालके पुत्रको करवीरपुरके राज्यमें अभिषिक्त कर कृष्णने उसी दिन वहांसे प्रस्थान किया ॥ ५९ ॥ जिस प्रकार इन्द्र स्वर्गको जाता है, इसी प्रकार युद्धमें शृगालको जो रथ सूर्यसे प्राप्त हुआ था उसीपर स्थित हो श्रीकृष्ण चले ॥ ६० ॥ धर्मात्मा परम तपस्वी शुकदेवभी माताके सहित बालक वृद्ध युवती प्रजा मंत्रियोंके सहित ॥ ६१ ॥

अभिषेकार्थमाजग्मुर्यंतो वै रामकेशवौ ॥ ततस्सिंहासनस्थं तु राजपुत्रं जनार्दनः ॥ ५८ ॥ अभिषेकेण दिव्येन योजयामास वीर्यवान् ॥ अभिषिच्य शृगालस्य करवीरपुरे सुतम् ॥ कृष्णस्तदहरेवाशु प्रस्थानमभ्यरोचयत् ॥ ५९ ॥ रथेन हरियुक्तेन तेन युद्धार्जितेन वै ॥ केशवः प्रस्थितोऽध्वानं वृत्रहा त्रिदिवं यथा ॥ ६० ॥ शुकदेवोऽपि धर्मात्मा सह मात्रा परंतप ॥ सबालवृद्धयुवतीमुख्याः प्रकृतयस्तथा ॥ ६१ ॥ शिबिकायामथारोप्य शृगालं युद्धदुर्मदम् ॥ संहतादूरमार्गेण पश्चिमाभिमुखा ययुः ॥ ६२ ॥ नैधनस्य विधानेन चक्रुस्ते तस्य सत्क्रियाम् ॥ सत्कारं कारयामासुः पितॄणां पारलौकिकम् ॥ ६३ ॥ उद्दिश्योद्दिश्य राजानं श्राद्धं कृत्वा सहस्रशः ॥ ततस्ते सलिलं दत्त्वा नामगोत्रादिकीर्तनैः ॥ ६४ ॥ पितर्युपरते घोरे शोकसंविग्नमानसः ॥ कृत्वोदकं तदा राजा प्रविवेश पुरोत्तमम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शृगालवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ तौ तु स्वल्पेन कालेन दमघोषेण संगतौ ॥ अथाध्वविधिना तौ तु पञ्चरात्रोषितौ पथि ॥ १ ॥

दुर्मद शृगालको पालकीमें आरोपण कर सब इकट्ठे हो बहुत दूर पश्चिमकी ओर चले गये ॥ ६२ ॥ और पितृमेधके विधानसे उन्होंने पिताका और पितरोंका पारलौकिक सत्कार कराया ॥ ६३ ॥ राजाके उद्देश्यसे सहस्र विधि श्राद्ध करके नाम गोत्रादिका कीर्तन करके जलदान करने लगे ॥ ६४ ॥ पिताके मरणसे महाशोकाकुल मन हो जलक्रिया कर राजपुत्र मंदिरमें आया ॥ ६५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शृगालवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ७॥ वैशंपायन बोले; तब वे थोडेही समयमें दमघोषके साथ साथ पांच रात्रि मार्गमें निवास कर ॥ १ ॥

दमघोष शिशुपालसे मिल एक रात वहां रह वे दोनों वीर वसुदेवपुत्र बडे आनन्दसे मथुरा नगरमें प्राप्त हुए॥२॥तब सब यदुवंशी श्रीकृष्णको लेनेके निमित्त सेना लिये आये॥३॥प्रजाओंके समूह यथोचित मंत्री आदि बालवृद्धों सहित उस पुरीमें लेनेको चले॥४॥अनेक प्रकारके बाजे बजाकर पुरुषसिंहकी स्तुति करते थे, गली बजारमें ध्वज पताका छा गई, और चारों ओर शोभित होती थीं ॥ ५ ॥ वह परम शोभित पुरी परम प्रसन्न हुई और इन भाइयोंके आनेसे महेन्द्रके समान आनेकी प्रसन्नता मानी ॥६॥ राजमार्गमें गानेवाले प्रसन्न हो गाने लगे, तथा यादवोंकी प्रसन्न करनेवाली अनेक

दमघोषेण संगम्य एकरात्रोषिताविव ॥ जग्मतुस्सहितौ वीरौ मुदा परमया युतौ ॥ नगरीं मथुरां प्राप्तौ वसुदेवसुतावुभौ ॥२॥ ततः प्रत्युद्गतास्सर्वे यादवा यदुनन्दनौ ॥ सबला हृष्टमनस उग्रसेनपुरोगमाः ॥३॥ श्रेण्यः प्रकृतयश्चैव मन्त्रिणश्च यथोचिताः ॥ सबालवृद्धा सा चैव पुरी समभिवर्तत ॥४॥ नन्दितूर्याण्यवाद्यन्त स्तूयेतां पुरुषर्षभौ॥रथ्याः पताकामालिन्यो भासन्ति स्म समन्ततः ॥५॥ हृष्टा प्रमुदिता सर्वा पुरी परमशोभिता ॥ भ्रात्रोस्तयोरागमने यथैवेन्द्रमहे तथा ॥ ६ ॥ मुदितास्तत्र गायन्ति राजमार्गेषु गायकाः ॥ स्तवाशीर्बहुला गाथा यादवानां प्रियंकराः ॥७॥ गोविन्दरामौ संप्राप्तौ भ्रातरौ लोकविश्रुतौ ॥ स्वे पुरे निर्भयास्सर्वे क्रीडध्वं यादवास्सुखम् ॥८॥ न तत्र कश्चिद्दीनो वा मलिनो वा विचेतनः ॥ मथुरायामभूत्कश्चिद्रामकृष्णसमागमे ॥९॥ वयांसि साधुवाक्यानि प्रहृष्टा गोहयद्विपाः ॥ नरनारीगणाश्चैव भेजिरे मानसं सुखम् ॥१०॥ शिवाश्च प्रववुर्वाता विरजस्का दिशो दश ॥ दैवतान्यपि सर्वाणि हृष्यन्त्यायतनेष्वथ ॥११॥ यानि लिङ्गानि लोकस्य वृत्तानीह कृते युगे ॥ तानि सर्वाण्यदृश्यन्त तयोरागमने तदा ॥१२॥ ततः काले शिवे पुण्ये स्यन्दनेनारिमर्दनौ ॥ हरियुक्तेन तौ वीरौ प्रविष्टौ मथुरां पुरीम् ॥ १३ ॥

स्तुति उच्चारण कीं ॥७॥ आलोकविख्यात कृष्ण बलराम आ गये सब यदुवंशी निडर हो क्रीडा करें॥८॥उस समय वहां कोई दीन मलीन वा चेतनारहित नहीं था. रामकृष्णके समागममें मथुरामें सबही प्रसन्न थे ॥९॥ प्रसन्न हो पक्षी अच्छे शब्द करने लगे, हाथी घोडे मधुर स्वरसे बोलने लगे नर नारियोंकोभी मानसी सुख प्राप्त हुआ ॥१०॥ पवन मंद २ चलने लगी, दशों दिशा प्रसन्न हो गई और सम्पूर्ण देवताओंकी प्रतिमा श्रीकृष्णके आनेसे प्रसन्न हुई ॥११॥ सब चिन्ह सतयुगके हैं, वह सब चिन्ह कृष्ण बलरामके आनेसे हो गये ॥१२॥ तब पवित्र समयमें वह दोनों शत्रुघाती

श्रेष्ठ घोडे जुते हुए रथमें स्थित हो मथुरा पुरीमें प्रविष्ट हुए॥१३॥उस रम्य पुरीमें जब रामकृष्ण प्रविष्ट हुए, उस समय यादव इस प्रकार उनके पीछे पीछे चले जैसे देवता इन्द्रके पीछे चलते हैं॥१४॥वह दोनों यादव अपने पिता वसुदेवके घरमें प्रसन्न हो प्रविष्ट हुए जैसे चन्द्रमा सूर्य पर्वतमें प्रविष्ट होते हैं ॥१५॥ वे उस अपने गृहमें आयुधोंको रखकर दोनों यदुश्रेष्ठ वसुदेवकुमार प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ फिर वसुदेवके चरणोंको प्रणाम कर उग्रसेन राजा तथा दूसरे यदुवंशियोंको ॥१७॥ यथायोग्य पूजन और सबसे अभिनन्दित हो प्रसन्न मनसे माताके स्थानमें गये ॥१८॥ इस प्रकारसे

प्रविशन्तं पुरीं रम्यां गोविन्दं राममेव च॥ अनुजग्मुर्यदुगणाश्शक्रं देवगणा इव॥१४॥ वसुदेवस्य भवनं पितुस्तौ यदुनन्दनौ ॥ प्रविष्टौ हृष्टवदनौ चन्द्रादित्याविवाचलम् ॥ १५ ॥ तत्रायुधानि संन्यस्य गृहे स्वे स्वैरचारिणौ ॥ मुमुदाते यदुवरौ वसुदेवसुतावुभौ ॥१६॥ ततस्तु वसुदेवस्य पादौ समभिपीडच च ॥ तत्रोग्रसेनं राजानमन्यांश्च यदुपुङ्गवान् ॥१७॥ यथान्यायं पूजयित्वा तौ सर्वैश्चाभिनन्दितौ ॥ जग्मतुर्हृष्टमनसौ मातुरेव निवेशनम् ॥१८॥एवं तावेकनिर्माणौ मथुरायां शुभाननौ ॥ उग्रसेनानुगौ भूत्वा कंचित्कालं मुमोदतुः ॥१९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामकृष्णयोर्मथुरायां प्रत्यागमनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ७॥ वैशम्पायन उवाच ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य स्मृत्वा गोपेषु सौहृदम् ॥ जगामैको व्रजं रामः कृष्णस्यानुमते स्थितः ॥१॥ स गतस्तत्र रम्याणि ददर्श विपुलानि वै ॥ भुक्तपूर्वाण्यरण्यानि सरांसि सुरभीणि च ॥२॥ स प्रविष्टस्तु वेगेन तं व्रजं कृष्णपूर्वजः ॥ वन्येन रमणीयेन वेषेणालंकृतः प्रभुः ॥ ३ ॥

वे सुन्दर मुखवाले मथुरामें उग्रसेनके अनुगामी हो बहुत समयतक क्रीडा करते रहे ॥१९॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ वैशंपायन बोले; कुछ दिनों उपरान्त व्रजवासियोंकी सुहृदताका विचार कर बलरामजी श्रीकृष्णकी सम्मतिसे गोकुलको गये ॥१॥ वहां पहुंचकर वह अत्यन्त श्रेष्ठ वन नदी और सरोवर देखने लगे, और मनोहर गन्ध चारों और आ रही है ॥२॥ इस प्रकार देख

बहुत शीघ्रतासे व्रजमें प्रविष्ट हुए, उस समय इनका वेष वनकी वस्तुओंसे पूर्ण था ॥ ३ ॥ वह शत्रुघाती प्रीतिपूर्वक उनसे कहने लगे और जैसी पूर्व प्रीति करते थे उसी प्रकारका वर्ताव किया ॥४॥ उन पूर्व परिचितोंको उसी प्रकारसे प्रसन्न किया, इस प्रकार गोपियोंसे मधुर वचनोंसे बोले ॥५॥प्यारे मधुरभाषी गोपभी उनसे इसी प्रकार कहने लगे, कारण कि रमाने हारोंमें श्रेष्ठ बलरामजी प्रवाससे कुछ दिनोंमें आये थे ॥६॥ हे महाबाहो यदुओंके आनन्द देनेहारे ! आपका कल्याण हो. हे तात ! आज हम बहुत प्रसन्न हुए जो आपका दर्शन करते हैं॥७॥हे वीर ! हम

स तानभाषत प्रीत्या यथापूर्वमरिंदमः ॥ गोपांस्तेनैव विधिना तथान्यायं यथावयः ॥ ४ ॥ तथैव प्राह तान्सर्वांस्तथैव परिहर्ष-यन् ॥ तथैव सह गोपीभिर्योजयन्मधुराः कथा॥५॥ तमूचुः स्थविरा गोपाः प्रियं मधुरभाषिणः॥रामं रमयतां श्रेष्ठं प्रवासात्पुनरा-गतम ॥६॥ स्वागतं ते महाबाहो यदूनां कुलनन्दन ॥ अद्य स्म निर्वृतास्तात यत्त्वां पश्यामहे वयम् ॥७॥ प्रीताश्चैव वयं वीर यत्त्वं पुनरिहागतः ॥ विख्यातस्त्रिषु लोकेषु रामश्शत्रुभयंकरः ॥ ८ ॥ वर्द्धनीया वयं वीरं त्वया यादवनन्दन ॥ अथवा प्राणिनस्तात रमन्ते जन्मभूमिषु ॥९॥ त्रिदशानां वयं मान्या ध्रुवमद्यामलानन ॥ ये स्म दृष्टास्त्वया तात काङ्क्षमाणास्तवागमम् ॥ १० ॥ दिष्ट्या ते निहता मल्लाः कंसश्च विनिपातितः ॥ उग्रसेनोऽभिषिक्तश्च माहात्म्येन जनेन वै ॥११॥ समुद्रे च श्रुतोऽस्माभिस्तिमिना सह विग्रहः ॥ वधः पञ्चजनस्यैव जरासंधेन विग्रहः ॥ गोमन्ते च श्रुतोऽस्माभिः क्षत्रियैस्सह विग्रहः ॥ १२ ॥

बहुत प्रसन्न हुए जो कि आप यहां आये. हे राम शत्रुघाती ! आप त्रिलोकीमें विख्यात हैं॥८॥ हे वीर यादवनंदन राम ! आपको हमारी वृद्धि करनी उचित है अथवा हे तात ! प्रसन्न हो आप जन्मभूमिमें रमण कीजिये॥९॥हे निर्मलमन ! आज हम देवताओंके भी मान्य हैं,जो कि हम आपके आनेकी वाट देखते थे आज आप आ गये ॥१०॥ भागसेही आपने मल्ल मारे और कंसका निपातन किया और महात्माजनोंके सहित उग्रसेनका अभिषेक किया॥११॥हमने सुना है कि समुद्रके निकट तिमिसे आपका विग्रह हुआ गोमन्तपर्वतमें क्षत्रियोंसे विग्रह हुआ यह हमने सुना

है॥१२॥दरदका वध और जरासंधका पराजय और वहां आयुधोंका मिलना और संग्राम होना यह हमने सब कुछ सुन लिया है ॥ १३ ॥ करवीर पुरमें शृगालका वध उसकेपुत्रका अभिषेक और नगरवासियोंका शान्त करना ॥ १४ ॥ मथुरामें प्रवेश और देवताओंकी स्तुति पृथ्वीकी प्रतिष्ठा और राजोंका बशमें करना ॥१५॥ और आपका आगमन देख हम पूर्वके समान भाग्यवान हो गये हैं इसी कारण हम बांधवोंके सहित हृष्टपुष्ट हो गये हैं ॥ १६ ॥ तब बलरामजीने उन सब यादवोंसे कहा कि आप हमारे बांधव हो ॥ १७ ॥ यहीं हमारी बालक अवस्था बीती और

दरदस्य वधश्चैव जरासंधपराजयः ॥ तत्रायुधावतरणं श्रुतं नः परमाहवे ॥ १३ ॥ वधश्चैव शृगालस्य करवीरपुरोत्तमे ॥ तत्सुतस्याभिषेकश्च नागराणां च सान्त्वनम् ॥ १४ ॥ मथुरायां प्रवेशश्च कीर्तनीयस्सुरोत्तमैः ॥ प्रतिष्ठिता च वसुधा पार्थिवाश्च वशीकृताः ॥ १५ ॥ तव चागमनं दृष्ट्वा समाग्यास्स्म यथा पुरा ॥ तेन स्म परितुष्टा वै हृषिताश्च सबान्धवाः ॥१६॥ प्रत्युवाच ततो रामस्सर्वांस्तानभितः स्थितान् ॥ यादवेष्वपि सर्वेषु भवन्तो मम बान्धवाः ॥१७॥इहावयोर्गतं बाल्यमिह चैवावयो रतम् ॥ भवद्भिर्वर्द्धिताश्चैव यास्यामो विक्रियां कथम् ॥१८॥ गृहेषु भवतां भुक्तं गावश्च परिरक्षिताः ॥ अस्माकं बान्धवास्सर्वे भवंतोबद्धसौहृदाः ॥१९॥ ब्रुवत्येवं यथातत्त्वं गोपमध्ये हलायुधे ॥ संहृष्टवदना भूयो बभूवुर्व्रजयोषितः ॥२०॥ ततो वनान्तरगतो रेमे रामो महाबलः ॥ एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ते रामाय विदितात्मने ॥ २१ ॥ गोपालैर्देशकालज्ञैरुपानीयत वारुणी ॥ सोऽपिबत्पाण्डुराभ्राभस्तत्कालं ज्ञातिभिर्वृतः ॥ २२ ॥ वनान्तरगतो रामः पानं मदसमीरणम् ॥ उपनिन्युस्ततस्तस्मै वन्यानि विविधानि च ॥ २३ ॥

यहीं हमने क्रीडा की और आपके पाले पोसे हुए हम तुम्हें कैसे भूल सक्ते हैं ॥ १८ ॥ आपके घरोंमें भोजन किया, गौओंकी रक्षा की;तुम सब सुहृद हमारे बन्धु हो ॥१९॥ गोपोंके बीचमें बलरामजीके ऐसा कहनेपर व्रजयोषिता बहुत प्रसन्न हुई ॥२०॥ तब वनान्तरमें जाकर बलरामजी विहार करने लगे,इसी समय विदितआत्मा बलरामजीके प्राप्त होनेसे॥२१॥देशकालके जाननेवाले गोपाल उनके निमित्तवृक्षोंके मदकी वारुणी लाये सो उस समय ज्ञातिजनोंसे आवृत्त बलरामजीने श्वेतवर्णनिर्मल ताडी पान की ॥२२॥ फिर बलरामजी मदकी गन्धवाले दूसरे वनमें गये तब उनके

निमित्त गोप अनेक प्रकारके वनके मूल फल फूल लाये ॥ २३ ॥ अनेक प्रकारके रमणीय मनोहर फल फूल पवित्र गन्धयुक्त हृदयके प्रिय भोजनके योग्य ॥ २४ ॥ शीघ्रतासे लाये हुए कमल खिले हुए दूसरी जातिके कमल लेकर सुन्दर केशवाले शिरपर वक्रीभूत हुए मुकुट और एकही कानमें पहने हुए कुण्डलसे शोभित ॥ २५ ॥ पीले चन्दनसे आर्द्रवनमालासे शोभायमान उस समय मालासे बलरामजीका हृदय ऐसा शोभायमान होता था जैसे कैलास पर्वतसे मंदराचल ॥ २६ ॥ मेघकी समान नील वस्त्र धारे अंधकारमें चन्द्रमाकी समान सुन्दर शरीरसे विराजमान ॥ २७ ॥ सर्पकी समान

प्रत्यग्ररमणीयानि पुष्पाणि च फलानि च ॥ मेध्यांश्च विविधान्गन्धान्भक्ष्यांश्च हृदयंगमान् ॥ २४ ॥ सद्यो हृतानि पद्मानि विकचान्युत्पलानि च ॥ शिरसा चारुकेशेन किंचिदावृतमौलिना ॥ श्रवणैकावलम्बेन कुण्डलेन विराजता ॥ २५ ॥ चन्दनार्द्रेण पीतेन वनमालावलम्बिना ॥ विबभावुरसा रामः कैलासेनेव मन्दरः ॥ २६ ॥ नीले वसानो वसने प्रत्यग्रजलदप्रभे ॥ रराज वपुषा शुभ्रस्तिमिरौघे यथा शशी ॥ २७ ॥ लाङ्गलेनावसिक्तेन भुजगाभोगवर्तिना ॥ तथा भुजाग्राश्लिष्टेन मुशलेन च भास्वता ॥ २८ ॥ स मत्तो बलिनां श्रेष्ठो रराजाघूर्णिताननः ॥ शैशिरीषु त्रियामासु यथा स्वेदालसश्शशी ॥ २९ ॥ रामस्तु यमुनामाह स्नातुमिच्छे महानदि ॥ एहि मामभिगच्छ त्वं रूपिणी सागरंगमे ॥ ३० ॥ संकर्षणस्य मत्तोक्तां भारतीं परिभूय सा ॥ नाभ्यवर्तत तं देशं स्त्रीस्वभावेन मोहिता ॥ ३१ ॥ ततश्चुक्रोध बलवान्रामो मदसमीरितः ॥ चकार स हलं हस्ते कर्षणाधोमुखं बली ॥ ३२ ॥

हलके चिह्नवाली भुजाओंसे शोभित, और मूसलके धारणसे दूसरी भुजासे शोभायमान ॥ २८ ॥ बलवालोंमें घूमते हुए मुखसे ऐसे लक्षित होते थे जैसे शिशिरकी रात्रियोंमें स्वेदसे आलस्य हुआ चन्द्रमा लक्षित होता है ॥ २९ ॥ उस समय रामने यमुनासे कहा हे महानदि ! मैं स्नान करनेकी इच्छा करता हूं. हे सागरकी जानेहारी ! तू मूर्ति धारण कर मेरे निकट आ ॥ ३० ॥ इस प्रकार बलरामकी मत्त वाणी सुनकर यमुनाने अनसुनी की और स्त्रीस्वभावसे मोहित हो उनके निकट नहीं आई ॥ ३१ ॥ तब मदके कारण बलरामजीको क्रोध हुआ, और उन बलीने उसके खैंचनेको हल हाथमें

लिया॥३२॥उस पृथ्वीपर जो कमलोंकी माला हलके कर्षणसे गिरी तो वह कमलकोशसे सुगंधियुक्त परागसे अरुण जलको त्यागने लगे॥३३॥ वह आगेसे झुके हुए हलसे उस नदीका कूल (किनारा)ग्रहण कर रूठी हुई स्त्रीकेसमान बलरामजीने उस यमुनाको ग्रहण कर खैंचा॥३४॥ वह यमुनाजी विव्हल जलकेसोतोंसे युक्त हलकेअनुसार चलनेवाली भयभीतहो वहनदी जोकि बडे वेगसेटेढी वहतीथी उनकेनिकट चलने लगी॥३५॥ हलसे व्याकुल वेगगामीपहियोंके समान चलती बलरामजीके भयसे व्याकुल हो स्त्रीके समान व्याकुल होगई॥३६॥ पुलिनरूपी नितम्ब बिम्बा

तस्यामुपरि मदिन्यां पेतुस्तामरसस्रजः ॥ मुमुचुः पुष्पकोशैश्च वासरेण्वरुणं जलम् ॥ ३३ ॥ स हलेन नताग्रेण कूले गृह्य महा-
नदीम् ॥ चकर्ष यमुनां रामो व्युत्थितां वनितामिव ॥ ३४ ॥ सा विह्वलजलस्रोता ह्रदप्रस्थितसंचया ॥ व्यावर्तत नदी भीता
हलमार्गानुसारिणी ॥ ३५ ॥ लाङ्गलादिष्टवर्त्मा सा वेगगा चक्रगामिनी ॥ संकर्षणभयत्रस्ता योषेवाकुलतां गता ॥ ३६ ॥
पुलिनश्रोणिबिम्बौष्ठी मृदितैस्तोयताडितैः ॥ फेनमेखलसूत्रैश्च च्छिन्नैरम्बुदगामिनी ॥ ३७ ॥ तरङ्गविषमापीडा चक्रवाकोन्मुख-
स्तनी ॥ वेगगम्भीरवक्राङ्गी त्रस्तमीनविभूषणा ॥ ३८ ॥ सितहंसेक्षणापाङ्गी काशक्षौमोच्छ्रिताम्बरा ॥ तीरजोद्धूतकेशान्ता जल-
स्खलितगामिनी ॥ ३९ ॥ लाङ्गलोल्लिखितापाङ्गी क्षुभिता सागरंगमा ॥ मत्तेव कुटिला नारी राजमार्गेण गच्छति ॥ ४० ॥
कृष्यते सातिवेगेन स्रोतस्खलितगामिनी ॥ उन्मार्गा नीतमार्गा सा येन वृंदावनं वनम् ॥ ४१ ॥

(लालपद्म) के समान ओष्ठवाली मृदितऔर ताडित जलोंसे युक्त फेनरूपी मेखलासूत्रवाली सागरगामिनी॥३७॥विषम तरंगरूपी आपीड (शिरका भूषण) वाली उन्मुख हुए चक्रवाकरूपी स्तनवाली गंभीर वेगसे टेढे अंगवाली व्याकुल मीनरूपी भूषण धारण करनेहारी॥ ३८ ॥ श्वेत हंसरूप दृष्टि कटाक्षवाली काशरूप क्षौम वस्त्र धारण करनेहारी किनारे पर स्थित वृक्षरूपी केश और जलके स्खलित प्रवाहरूप गमन करनेहारी॥३९॥ हलके अग्रभागसे क्षुभित हुई,क्षुभित सागरमें जानेहारी मत्त हुई कुटिल नारीके समान राजमार्गमें गमन करती है॥४०॥टूटते हुए किनारेसे गमन करती

शीघ्रतासे खींचने लगी, वह उन्मार्गगामिनी वृन्दावनके निकट लाई गई॥४१॥इसप्रकार वह यमुना वृन्दावनके मध्यमें प्राप्त हुई और जलके रहने-हारे पक्षी आदि रोते हुए उसके साथ थे॥४२॥ वह नदी जब वृंदावनमें प्राप्त हुई, तब स्त्रीरूप धारण कर बलरामजीसेबोली ॥४३॥ हे नाथ ! मैं इस उलटे कर्मसे भयमान हो गई हूं आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये यह मेरा रूप जल विपरीत हुआ जाता है॥४४॥ हे राम ! आपने नदियोंमें मुझको असती किया, आपने मुझे अपने मार्गसे भ्रष्ट किया इससे मैं व्यभिचारिणी हुई॥४५॥वेगसे गर्वित हुई मेरी सौत मुझसे पहले सागरको प्राप्त हुई,

वृन्दावनस्य मध्येन सा नीता यमुना नदी ॥ रोरूयमाणेव खगैरन्विता तोयवासिभिः ॥ ४२॥ सा यदा समतिक्रान्ता नदी वृंदावनं वनम् ॥ तदा स्त्रीरूपिणी भूत्वा यमुना राममब्रवीत् ॥ ४३ ॥ प्रसीद नाथ भीतास्मि प्रतिलोमेन कर्मणा ॥ विपरीतमिदं रूपं तोयं च मम जायते ॥ ४४ ॥ असत्यहं नदीमध्ये रौहिणेय त्वया कृता ॥ कर्षणेन महाबाहो स्वमार्गव्यभिचारिणी ॥ ४५ ॥ प्राप्तां मां सागरे पूर्वं सपत्न्यो वेगगर्विताः ॥ फेनहासैर्हसिष्यन्ति तोयव्यावृत्तगामिनीम् ॥४६॥ प्रसादं कुरु मे वीर याचे त्वां कृष्ण पूर्वज ॥ सुप्रसन्नमना नित्यं भव त्वं सुरसत्तम ॥४७॥ कर्षणायुधकृष्टास्मि रोषोऽयं विनिवर्त्यताम् ॥ मूर्ध्ना गच्छामि चरणौ तवैषा लाङ्गलायुध ॥४८॥ मार्गमादिष्टमिच्छामि क्व गच्छामि महाभुज॥ वैशम्पायन उवाच॥ प्रणयावनतां दृष्ट्वा यमुनां लाङ्गलायुधः॥ प्रत्युवाचार्णववधूं मदक्लान्त इदं वचः॥४९॥लाङ्गलादिष्टमार्गा त्वमिमं मे प्रियदर्शने॥देशमम्बुप्रदानेन प्लावयस्वाखिलं शुभे ॥५०॥

अब जलके उलटे चलनेसे फेनोंको विस्तार कर मेरा हास्य करेगी ॥४६॥ हे वीर ! हे कृष्णके बडे भ्राता ! मैं आपकी प्रार्थना करती हूं मेरे ऊपर प्रसन्न हो. हे देवताओंमें श्रेष्ठ! आप नित्यही श्रेष्ठ और प्रसन्न मन हूजिये ॥ ४७ ॥ मैं आपके क्रोधसे खींच गई हूं इसकारण यह क्रोध त्याग दीजिये. हे हलधर ! मैं शिरसे आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूं ॥४८॥ हे महाभुज ! मार्ग बताइये मैं कहां जाऊं, वैशंपायन बोले, बलरामजीने इस प्रकार यमुनाको प्रणय और दीनतायुक्त देखा, तब मदसे क्लान्त हुए उस सागरकी वधूसे इस प्रकार कहने लगे ॥४९ ॥ हे शुभे ! यह जो हलसे

दिखाया मार्ग है इस समस्त स्थानको तुम जलसे पूर्ण कर दो ॥ ५० ॥ हे सागरगामिनी ! यही संदेशा तुम्हारे प्रति कहा है अब तुम शान्त हो जाओ और यथासुख गमन करो ॥ ५१ ॥ जबतक लोक रहेगा तबतक मेरा यश विख्यात होगा, इस प्रकार वे सब व्रजवासी यमुनाका कर्षण देखकर ॥ ५२ ॥ धन्य हो २ ऐसा कह बलरामजीको प्रणाम करने लगे तब नदीको और महाभाग व्रजवासियोंको विदाकर ॥ ५३ ॥ प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ बलरामजी शीघ्रतासे मथुरामें चले आये ॥ ५४ ॥ मथुरामें जाकर बलरामने श्रीकृष्णके मंदिरमें प्रवेश कर पृथ्वीके साररूप

एष ते सुभ्रु संदेशः कथितः सागरंगमे ॥ शान्तिं व्रज महाभागे गम्यतां च यथासुखम् ॥ ५१ ॥ यावत्स्थास्यति लोकोऽयं तावत्स्थास्यतु मे यशः ॥ यमुनाकर्षणं दृष्ट्वा सर्वे ते व्रजवासिनः ॥ ५२ ॥ साधु साध्विति रामाय प्रणामं चक्रिरे तदा ॥ तां विसृज्य महाभागां तांश्च सर्वान्व्रजौकसः ॥ ५३ ॥ ततस्संचिन्त्य मनसा रामः प्रहरतां वरः ॥ पुनः प्रतिजगामाशु मथुरां रोहिणी-सुतः ॥ ५४ ॥ स गत्वा मथुरां रामो भवने मधुसूदनम् ॥ परिवर्तमानं ददृशे पृथिव्यां सारमव्ययम् ॥ ५५ ॥ तथैवाध्वन्यवेषेण सोपश्लिष्य जनार्दनम् ॥ प्रत्यग्रवनमालेन वक्षसाभिविराजता ॥ ५६ ॥ स दृष्ट्वा तूर्णमायान्तं रामं लाङ्गलधारिणम् ॥ सहसोत्थाय गोविन्दो ददावासनमात्मनः ॥ ५७॥ उपविष्टं तदा रामं पप्रच्छ कुशलं व्रजे ॥ बान्धवेषु च सर्वेषु गोषु चैव जनार्दनः ॥५८॥ प्रत्युवाच ततो रामो भ्रातरं साधुभाषिणम् ॥ सर्वत्र कुशलं कृष्ण येषां कुशलमिच्छसि॥ ॥ ५९ ॥

कृष्णको उस स्थानमें स्थित हुए देखा ॥ ५५ ॥ और आप उसी प्रदेश योग्य वेश पहरे श्रीकृष्णसे मिले, उनके हृदयमें पडी हुई वनमाला शोभित होती थी ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्णने हलधरको शीघ्र आता देखकर तत्काल उठकर उनके बैठनेको आसन दिया ॥ ५७ ॥ बलरामजीके बैठने पर श्रीकृष्णने सब वत्स और गौओंकी व्रजमें कुशल पूंछी ॥ ५८ ॥ तब मनोहर बोलनेवाले भाईसे बलरामजी बोले; हे कृष्ण ! तुम जिनकी कुशल चाहते हो वे सब

प्रसन्न हैं ॥५९॥ तब उनकी विचित्र अर्थयुक्त पुरानी कथा होने लगी, वसुदेवकेही आगे रामकृष्ण कथोपकथन करने लगे ॥ ६० ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥ वैशंपायन बोले; इसी समय लोकप्रवृत्तिके जाननेहारे बहुतसे मनुष्य श्रीकृष्णके स्थानमें प्राप्त हुए, जो स्थान लोकपालोंके गृहके समान था ॥१॥ जिस स्थानमें बहुतसे यादवोंकी सभा थी वहां वे वार्ता कहनेवाले मनुष्य श्रीकृष्णकी संज्ञासे एक सभामें स्थित हुए॥२॥ जब श्रेष्ठ यदुवंशी सभामें स्थित हुए, तब वे मनुष्य राजोंके वचन कहने लगे ॥३॥ हे कृष्ण !

ततस्तयोर्विचित्रार्थाः पौराण्यश्चाभवन्कथाः ॥ वसुदेवाग्रतः पुण्या रामकेशवयोस्तदा ॥६०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि यमुनाकर्षणं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता लोकप्रावृत्तिका नराः ॥ चक्रायुधगृहं सर्वे लोकपालगृहोपमम् ॥१॥ तेष्वात्ययिकशंसीषु लोकप्रवृत्तिकेष्विह॥कृतसंज्ञा यदुश्रेष्ठास्समेताः कृष्णसंसदि॥२॥ समागतेषु सर्वेषु यदुमुख्येषु संसदि ॥ प्रावृत्तिका नराः प्राहुः पार्थिवात्ययिकं वचः ॥ ३ ॥ जनार्दन नरेन्द्राणां पार्थिवानां समागमः ॥ भविष्यति क्षितीशानां समूहानित्यनेकशः ॥४॥ त्वरितास्तत्र गच्छन्ति नानाजनपदेश्वराः ॥ कुण्डिने पुण्डरीकाक्ष भोजपुत्रस्य शासनात् ॥५॥ प्रकाशं स्म कथास्तत्र श्रूयन्ते मनुजेरिताः ॥ रुक्मिणी किल नामास्ति रुक्मिणः प्रथमा स्वसा ॥ ६ ॥ भावी स्वयंवरस्तत्र तस्याः किल जनार्दन ॥ इत्यर्थमेते सबला गच्छन्ति मनुजाधिपाः ॥७॥ तस्यास्त्रैलोक्यसुन्दर्यास्तृतीयेऽहनि यादव ॥ रुक्मभूषणभूषिण्या भविष्यति स्वयंवरः ॥ ८ ॥ राज्ञां तत्र समेतानां हस्त्यश्वरथगामिनाम् ॥ द्रक्ष्यामश्शतशस्तत्र शिबिराणि महात्मनाम् ॥९॥

छोटे बडे राजोंका समागम होगा,और राजोंके महा समूह आवेंगे॥४॥और अनेक देशोंके पति बहुत शीघ्रतासे वहां जाते हैं.हे कृष्ण!भोजके पुत्रकी आज्ञासे यह सब कुण्डनपुरको जाते हैं ॥५॥ हमने वहां तुम्हारी मनुष्योंसे कही कथा सुनी रुक्मकी बहनरुक्मिणी नाम परम सुन्दरी है ॥६॥ हे जनार्दन ! उसका स्वयंवर बहुत शीघ्र होगा इस कारण अनेक राजा सेनासहित जाते हैं॥७॥हे यादव! उस त्रिलोकसुन्दरीका आजसेतीसरेदिन सुवर्णके गहनोंसे भूषित कर स्वयंवर किया जायगा ॥८॥ हाथी घोडे रथपर चलनेवाले इकट्ठे हुए राजोंके सहस्रों डेरे उस स्थानपरदेखोगे ॥९॥

सिंहशार्दूलके समान अभिमानी मत्त हाथीके समान चलनेवाले परस्पर स्पर्धा करनेहारे सदा युद्धप्रिय॥१०॥वे बडी २ सेनाको ले जयके निमित्त गये हैं.वे सब राजा रुक्मिणीके पानेकी लालसासे निरुद्ध हो गये हैं, कि क्या हम भिल्लोंके समान एकान्तचारी हैं, जो एक स्थानमें पडे रहें, यदि हम गमन नहीं करेंगे तो उत्साहरहित हो जायंगे॥११॥ यह वचन श्रीकृष्णके हृदयमें शल्यके समान चुभ गये, और तत्काल यदुवंशियोंकी सेनाको ले वहांसे चले॥१२॥ वे बली यादव सबही संग्रामकी लालसा किये गर्वित देवताओंके समान रथमें स्थित हो चले॥१३॥ आगे सेनाको

सिंहशार्दूलदृप्तानां मत्तद्विरदगामिनाम् ॥ सदा युद्धप्रियाणां हि परस्परममर्षिणाम् ॥ १० ॥ जयाय शीघ्रं सहिता बलौघेन समन्विताः ॥ निरुद्धाः पृथिवीपालः किमेकान्तचरा वयम् ॥ निरुत्साहा भविष्यामो गच्छामो यदुनन्दन ॥११॥ श्रुत्वैतत्केशवो वाक्यं हृदि शल्यमिवार्पितम् ॥ निजगाम यदुश्रेष्ठो यदूनां सहितो बलैः ॥ १२ ॥ यादवास्ते बलोदग्रास्सर्वे संग्रामलालसाः ॥ निर्ययुस्स्यन्दनवरैर्गर्वितास्त्रिदशा इव ॥ १३ ॥ बलाग्रेण नियुक्तेन हरिरीशानसंमतः ॥ चक्रोद्यतकरः कृष्णो गदापाणिर्व्य-रोचत ॥१४॥ यादवाश्चापरे तत्र वासुदेवानुयायिनः ॥ रथैरादित्यसंकाशैः किङ्किणीप्रतिनादितैः ॥ १५ ॥ उग्रसेनं तु गोविन्दः प्राह निश्चितदर्शनः ॥ तिष्ठ त्वं नृपशार्दूल भ्रात्रा मे सहितोऽनघ ॥१६॥ क्षत्रिया विकृतिप्रज्ञाश्शास्त्रनिश्चितदर्शनाः ॥ पुरीं शून्या-मिमां वीरजघन्येऽभिपतन्ति ह ॥१७॥ अस्माकं शङ्कितास्सर्वे जरासंधवशानुगाः ॥ मोदन्ते सुखिनस्तत्र देवलोके यथामराः ॥१८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भोजराजो महायशाः ॥ कृष्णस्नेहेन विक्लवं बभाषे वचनामृतम ॥ १९ ॥

लिये श्रीकृष्ण चक्र और गदा हाथमें लिये शोभित हुए॥१४॥ और श्रीकृष्णके पीछे चलनेवाले दूसरे यादव की कर्णोंसे शब्दायमान सूर्यके समान रथोंमें बैठकर चले॥१५॥ निश्चितदर्शी श्रीकृष्ण उग्रसेनसे बोले;हे पापरहित ! आप हमारे भाईसहित यहां स्थित रहिये॥१६॥ कारण कि क्षत्री कपटबुद्धि और राजनीतिके जाननेहारे होते हैं ऐसा न हो मेरे पीछे पुरीको शून्य जानकर घेरें॥१७॥ जरासंधके वशवर्ती सब हमसे शंकित हैं, वे वहां देवलोकमें देवतोंके समान आनन्द करते हैं ॥॥१८॥वैशंपायन बोले; महायशस्वी उग्रसेन श्रीकृष्णके वचन सुन कृष्णके स्नेहसे व्याकुल हो

अमृतके समान मनोहर विकार भरे वचन बोले ॥१९॥ हे कृष्ण!महाबाहो हे यदुओंके आनन्द देनेहारे हे शत्रुसूदन ! जो मैं इस समय कहता हूँ सो तुम सुनो॥२०॥तुम्हारे विना हम कोईभी सुखसे स्थित होनेको समर्थ नहीं हैं.न इस पुरमें न और कहीं हम रह सक्के,जैसे पतिव्रता स्त्री विना पतिके नहीं रह सक्ती॥२१॥ हे तात! तुम्हारी बाहुबलके आश्रय हो हम सनाथ हुए हैं. हे मान देनेहारे!राजा तो क्या हम इन्द्रसे भी नहीं डरते ॥ २२ ॥ हे यदुश्रेष्ठ ! आप जहां जहां विजयके निमित्त जांय वहां वहां हमकोभी साथ लेते जांय॥२३॥देवकीपुत्र राजाके यह वचन सुनकर कुछ

कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्द्धन श्रूयतां यदहं त्वद्य वक्ष्यामि रिपुसूदन ॥ २० ॥ त्वया विहीनास्सर्वे स्म न शक्तास्सुखमासितुम् ॥ पुरेऽस्मिन्विषयान्ते वा पतिहीना इव स्त्रियः ॥ २१ ॥ त्वत्सनाथा वयं तात त्वद्वाहुबलमाश्रिताः ॥ बिभीमो न नरेन्द्राणां सेन्द्राणामपि मानद ॥ २२ ॥ विजयाय यदुश्रेष्ठ यत्र यत्र गमिष्यसि ॥ तत्र त्वं सहितोऽस्माभिर्गच्छेथा यादवर्षभ ॥ २३ ॥ तस्य राज्ञो वचः श्रुत्वा सस्मितं देवकीसुतः ॥ यथेष्टं भवतामद्य तथा कर्तास्म्यसंशयम् ॥२४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा तु वै कृष्णो जगामाशु रथेन वै ॥ भीष्मकस्य गृहं प्राप्तो लोहितायति भास्करे ॥२५॥ प्राप्ते राजसमाजे तु शिविराकीर्णभूतले ॥ रङ्गं सुविपुलं दृष्ट्वा राक्षसीं तनुमाविशत् ॥२६॥ वित्रासनार्थं भूपानां प्रकाशार्थं पुरातनम् ॥ मनसा चिन्तयामास वैनतेयं महाबलम् ॥ २७ ॥ ततश्चिन्तितमात्रस्तु विदित्वा विनतात्मजः ॥ सुखलक्ष्यं वपुः कृत्वा निलिल्ये केशवान्तिके ॥२८॥ तस्य पक्षनिपातेन पवनोद्भ्रान्तकारिणा ॥ कम्पिता मनुजास्सर्वे न्युब्जाश्च पतिता भुवि ॥ २९ ॥

हास्य कर बोले जो आप कहते हैं वैसे ही होगा, इसमें संदेह नहीं ॥२४॥ वैशंपायन बोले; यह कर श्रीकृष्ण शीघ्र रथमें स्थित हो वहांसे चले, और सूर्यके छिपते २ कुण्डनपुरमें पहुंच गये॥२५॥वहां राजसमाज प्राप्त हो रहा था;पृथ्वी डेरोंसे पूर्ण थी,इस प्रकार रंगभूमि देख श्रीकृष्ण अपनी काम क्रोधसे प्रधान मूर्तिमें प्रविष्ट हुए ॥२६॥ राजोंके भय देने और यशको प्रकाश करनेके अर्थ मनमें महाबली गरुडका स्मरण किया॥ २७ ॥ गरुडजी उनके चिन्ता करतेही सुखसे देखने योग्य शरीर कर श्रीकृष्णके निकट स्थित हुए॥२८॥पवनके उद्भ्रान्त करनेवालेउनके पंखोंके निपातसे

सब मनुष्य कांप गये,और नीचेको मुख किये गिर पडे ॥ २९ ॥ वे सब गरुडसे हत हो सर्पके समान चेष्टा करने लगे, पर्वतके समान श्रीकृष्ण अचल रहे, और उन सबको गिरा हुआ देखकर ॥ ३० ॥ इन राजोंके गिरनेसेही श्रीकृष्णने गरुडका आगमन जान लिया दिव्य माला पहरे, दिव्य चंदन लगाये, गरुडको देखा ॥ ३१ ॥ कि पंखोंके पवनसे वारंवार पृथ्वीको कंपित करते हुए, और पृष्ठकी ओरके प्रहारमें आसक्त सर्पोंके समान जीभ चाटते हुए ॥३२॥ विष्णुके हस्तस्पर्शके सुखको मानते हुए नीचेको मुख किये चरणोंसे पाण्डुरंगके सर्पोंको खैंचते हुए ॥३३॥ सुवर्णके पत्रोंसे शोभित धातुओंसे अर्चित पर्वतके समान धैर्यवान् अमृतके लानेवाले सर्पराजके नाशक ॥३४॥ वाहन और ध्वजाके लक्षणयुक्त ध्वजासहित अपने

गरुडाभिहतास्सर्वे प्रचेष्टन्तो यथोरगाः ॥ तान्संनिपतितान्दृष्ट्वा कृष्णो गिरिरिवाचलः ॥ ३० ॥ स राज्ञः पक्षपातेन मेने पतगसत्तमम् ॥ ददर्श गरुडं प्राप्तं दिव्यस्रगनुलेपनम् ॥ ३१ ॥ पक्षपातेन पृथिवीं चालयन्तं मुहुर्मुहुः ॥ पृष्ठासक्तैः प्रहरणैर्लेलिह्यन्तमिवोरगैः ॥३२॥ वैष्णवं हस्तसंश्लेषं मन्यमानैरवाङ्मुखैः ॥ चरणाभ्यां प्रकर्षन्तं पाण्डुरं भोगिनां वरम् ॥३३॥ हेमपत्रैरुपचितं धातुमन्तमिवाचलम् ॥ अमृतारम्भहर्तारं द्विजिह्वेन्द्रविनाशनम् ॥३४॥त्रासनं दैत्यसङ्घानां वाहने ध्वजलक्षणम् ॥ तं दृष्ट्वा सध्वजं प्राप्तं सचिवं सांपरायिकम् ॥ ३५ ॥ धृतिमन्तं गरुत्मन्तं जगाद मधुसूदनः ॥ दृष्ट्वा परमसंहृष्टः स्थितं देवमिवापरम् ॥३६॥ तुल्यसामर्थ्यया वाचा गरुत्मन्तमवस्थितम् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ स्वागतं खेचरश्रेष्ठ सुरसेनारिमर्दन ॥ विनताहृदयानन्द स्वागतं केशवप्रिय ॥ ३७ ॥ व्रज पत्ररथ श्रेष्ठ कैशिकस्य निवेशनम् ॥ वयं तत्रैव गत्वाद्य प्रतीक्षामस्स्वयंवरम् ॥ ३८ ॥

आपत्तिमें हितकारी मंत्री गरुडको आया देख ॥ ३५ ॥ धैर्यवान् गरुडजीसे श्रीकृष्ण बोले; मैं तुमको दूसरे देवताके समान स्थित देखकर बहुत प्रसन्न हुआ हूं तुल्य सामर्थ्य और वचनसे स्थित हुए गरुडजीसे श्रीकृष्ण बोले; हे आकाशगामियोंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारा स्वागत हो. हे देवसेनाके शत्रुओंके नाशक केशवप्रिय ! विनताके हृदयके आनंददाता तुम भले आये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे गरुडजी ! तुम इस समय विदर्भके स्वयंवर स्थानमें जाओ और हमभी वहां जाकर स्वयंवरकी प्रतीक्षा करते हैं ॥ ३८ ॥

वहां हाथी घोडे रथपर चढनेवाले राजोंको जो सहस्रों इकट्ठे हुए हैं देखेंगे॥३९॥इस प्रकार महाबाहु श्रीकृष्ण गरुडसे कहकर महात्मा विदर्भकीपुरीमें गये ॥४०॥ वह श्रीमान् गरुडके सखा महारथी यादवोंके सहित देवकीनंदन श्रीकृष्ण जब विदर्भनगरीमें प्राप्त हो गये ॥४१॥ तब सब प्रसन्न हो अपने निवासस्थानमें स्थित हुए वे सबराजा शस्त्रआयुधधारी बलशाली थे॥४२॥वैशंपायन बोले;इसी समय राजनीति जाननेमें पंडित राजा कैशिक बहुत प्रसन्न हो उठकर प्रसन्न मनसे ॥४३॥ स्वयं अर्घ्य और आचमन देकर श्रीकृष्णको विधिपूर्वक सत्कार कर अपने पुरमें लाया ॥ ४४ ॥

राज्ञां तत्र समेतानां हस्त्यश्वरथगामिनाम् ॥ द्रक्ष्यामः शतशस्तत्र समेतानां महात्मनाम् ॥३९॥ एवमुक्त्वा महाबाहुर्वैनतेयं महाबलम् ॥ जगामाथ पुरीं कृष्णः कैशिकस्य महात्मनः ॥४०॥ वैनतेयसखश्श्रीमान्यादवैश्च महारथैः ॥ विदर्भनगरीं प्राप्ते कृष्णे देवकिनन्दने ॥४१॥ हृष्टाः प्रमुदितास्सर्वे निवासायोपचक्रमुः ॥ सर्वे शस्त्रायुधधरा राजानो बलशालिनः ॥४२॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतस्मिन्नेव काले तु राजा नयविशारदः ॥ कैशिकस्तत उत्थाय प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥४३॥ अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा स राजा कैशिकस्स्वयम् ॥ सत्कृत्य विधिवत्कृष्णं स्वपुरं संप्रवेशयत् ॥ ४४ ॥ पूर्वमेव तु कृष्णाय कारितं दिव्यमन्दिरम् ॥ विवेश सबलश्श्रीमान्कैलासं शंकरो यथा ॥ खाद्यपानादिरत्नौघैरार्चितो वासवानुजः ॥ ४५ ॥ सुखेन उषितः कृष्णस्तस्य राज्ञो निवेशने ॥ पूजितो बहुमानेन स्नेहपूर्णेन चेतसा॥४६॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥४७॥

प्रथमही उसने श्रीकृष्णके निमित्त सुन्दर मंदिर निर्माण कराया था उसमें श्रीमानने इस प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार शिवजी प्रवेश करते हैं और खानपानके अनेक पदार्थोंसे श्रीकृष्णकी सम्यक् प्रकार पूजा की ॥४५॥ उस राजाके स्थानमें श्रीकृष्ण सुखसे रहे और स्नेह भरे चित्तसे महामान करके उसने उनका अनेक प्रकार पूजन किया ॥ ४६ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

वैशंपायन बोले; गरुडजीके सहित श्रीकृष्णकी आया सुनकर वे सब राजा मनमें चिन्ता करने लगे॥१॥वे महाबली राजा सभामें स्थित हो वे चतुर मंत्रशास्त्रके जाननेवाले सम्मति करनेको स्थित हुए॥२॥भीष्मकी परम मनोहर सुवर्णमय सभामें बडे चित्र विचित्र आसनोंमें वे सब राजा सभामें बैठे, जैसे देवता देवसभामें बैठते हैं ॥३॥ उनके बीचमें महाबली जरासंध उन राजोंसे कहने लगा, जैसे इंद्र देवताओंसे कहते हैं॥४॥ जरासंध बोले; हे श्रेष्ठ राजाओ हे महाद्युतिमान् भीष्मकजी हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ! मेरे वचन सुनो॥५॥ जो यह कृष्ण नाम विख्यात वसुदेवका बली पुत्र है और जो

वैशम्पायन उवाच ॥ ते कृष्णमागतं दृष्ट्वा वैनतेयसहाच्युतम् ॥ बभूवुश्चिन्तयाविष्टास्सर्वे नृपतिसत्तमाः ॥ १ ॥ ते समेत्य सभां राजन्राजानो भीमविक्रमाः ॥ मन्त्राय मन्त्रकुशला नीतिशास्त्रार्थवित्तमाः ॥२॥ भीष्मकस्य सभां गत्वा रम्यां हेमपरिष्कृताम् ॥ सिंहासनेषु चित्रेषु विचित्रास्तरणेषु च ॥ निषेदुस्ते नृपवरा देवा देवसभामिव ॥३॥ तेषां मध्ये महाबाहुर्जरासंधो महाबलः ॥ बभाषे स महातेजा देवान्देवेश्वरो यथा ॥ ४ ॥ जरासन्ध उवाच ॥ श्रूयतां भो नृपश्रेष्ठा भीष्मकश्च महामतिः ॥ कथ्यमानं मया बुद्ध्या वचनं वदतां वराः ॥५॥ योऽसौ कृष्ण इति ख्यातो वसुदेवसुतो बली ॥ वैनतेयसहायेन संप्राप्तः कुण्डिनं त्विह ॥६॥ कन्याहेतोर्महातेजा यादवैरभिसंवृतः ॥ अवश्यं कुरुते यत्नं कन्यावाप्तिर्यथा भवेत् ॥ ७ ॥ यदत्र कारणं कार्यं सुनयोपेतमृद्धितम् ॥ कुरुध्वं नृपशार्दूला विनिश्चित्य बलाबलम् ॥८॥ पदातिनौ महावीर्यौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ वैनतेयं विना तस्मिन्गोमन्ते पर्वतोत्तमे ॥ कृतवन्तौ महाघोरं भवद्भिर्विदितं हि तत् ॥९॥ वृष्णिभिर्यादवैश्चैव भोजान्धकमहारथैः॥समेत्य युद्ध्यमानस्य कीदृशो विग्रहो भवेत् ॥१०॥

गरुडकी सहायतासे कुण्डिनपुरमें प्राप्त हुआ है ॥ ६ ॥ यह महातेजस्वी अनेक यादवोंको साथ ले कन्याकेही निमित्त आया है, और जिस प्रकार कन्या मिले उसका यह यत्न अवश्य करेगा ॥ ७ ॥ अब जो इसमें कहने योग्य कार्य है उसे विचार कर करना चाहिये और बलाबल देखकर वही किया जाय ॥८॥ पैदलही महावीर इन वसुदेवके पुत्रोंने गरुडके विनाही गोमन्तपर्वतमें इन्होंने महाघोर युद्ध किया था सो आपको विदितही है ॥९॥ वृष्णि यादव भोज और महारथी अंधकोंके मिलनेसे अब संग्राम मचेगा तो न जाने कैसा घोर विग्रह मचेगा ॥१०॥

अब कन्याके निमित्त यत्न करते हुए गरुडपर स्थित विष्णुजीके सामने युद्धमें कौन स्थित होसकता है देवतासहित इन्द्रभी स्थित नहीं हो सक्के॥ ११॥ और जो कन्या इसको न दी जायगी तो यह देवताओंसहित ग्रहण कर लेगा॥ १२॥सुना है कि पहले एकार्णवसागरमें इसीने पृथ्वीको पातालमेंसे निकाला था,वही यह विष्णु भगवान् है ॥ १३॥ इन्होंने वाराहरूप धारण करके पृथ्वीका उद्धार किया और वाराहने हिरण्याक्ष दैत्यको मार डाला ॥ १४॥ और महाबली पराक्रमी महाबली हिरण्यकश्यप दैत्य ऋषि गन्धर्व किन्नरोंसे अवध्य था॥ १५॥ यक्ष राक्षस नागोंसे न आकाशमें न पृथ्वीमें न भीतर न

कन्यार्थं यततानेन गरुडस्थेन विष्णुना ॥ कः स्थास्यति रणे तस्मिन्नपि शक्रस्सुरैस्सह ॥ ११ ॥ यदा चास्मै नापि सुता कदाचित्संप्रदीयते ॥ ततो ह्ययं बलादेनां नेतुं शक्तस्सुरैस्सह ॥ १२ ॥ पुरा एकार्णवे घोरे श्रूयते मेदिनी त्वियम् ॥ पातालतलसंमग्ना विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १३ ॥ वाराहं रूपमास्थाय उद्धृता जगदादिना ॥ हिरण्याक्षश्च दैत्येन्द्रो वराहेण निपातितः ॥ १४ ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव महाबलपराक्रमः ॥ अवध्योऽमरदैत्यानामृषिगन्धर्वकिन्नरैः ॥ १५ ॥ यक्षराक्षसनागानां नाकाशे नावनिस्थले ॥ न चाभ्यन्तररात्र्यह्नोर्न शुष्केणार्द्रकेण च ॥ १६ ॥ अवध्यस्त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्रस्त्वपराजितः ॥ नारसिंहेन रूपेण निहतो विष्णुना पुरा ॥ १७ ॥ वामनेन तु रूपेण कश्यपस्यात्मजो बली ॥ आदित्या गर्भसंभूतो बलिर्बध्वा सुरोत्तमः ॥ १८ ॥ सत्यरज्जुमयैः पाशैः कृतपातालसंश्रयः ॥ कार्तवीर्यो महावीर्यस्सहस्रभुजविग्रहः ॥ १९ ॥ दत्तात्रेयप्रसादेन मत्तो राज्यमदेन च ॥ जामदग्नयो महातेजा रेणुकागर्भसंभवः ॥ २० ॥

बाहर न रातमें न दिनमें न गीले न सूखे किसी पदार्थसे वधके योग्य नहीं था ॥ १६ ॥ वह अपराजित दैत्यपति त्रिलोकीमें अवध्य था उसे भगवान् विष्णुने नरसिंहरूप धारण कर मारा ॥ १७ ॥ और कश्यपके पुत्र महाबली दितिसे उत्पन्न हुए बलीको वामनजीने बांध लिया ॥ १८ ॥ सत्य रज्ज्जुमय पाशोंसे बांधकर उसे पातालमें भेजदिया और महाबली सहस्र भुजावाला कार्तवीर्य ॥ १९ ॥ दत्तात्रेयके प्रसादसे और राजाके मदसे मत्त हो गया था उसको रेणुकागर्भसे उत्पन्न हुए महातेजस्वी परशुरामने ॥ २० ॥

त्रेता और द्वापरकी संधिमें उन शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठने वज्रके समान तीक्ष्ण कुठारवाले परशेसे उस सात द्वीपके ईश्वर राजाकी सब भुजा छेदन करके उस हैहय राजाका वध किया यहभीरूप छिपाये विष्णुजीही थे ॥ २१ ॥ इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए रामचन्द्रने पहले त्रिलोकविजयी वीर रावणका वध किया था ॥ २२ ॥ पहले विष्णुने तारकामय संग्राममें आठ भुजा धारे गरुडपर स्थित हो ॥२३॥ वरदानसे गर्वित हुए दानवोंको मार डाला जो कालनेमि दैत्य देवताओंको भय देनेवाला था॥२४॥उसे सहस्र किरणवाले चक्रसे मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया, संग्राममें भगवानने महायोग

त्रेताद्वापरयोस्संधौ रामश्शस्त्रभृतां वरः ॥ पर्शुना वज्रकल्पेन सप्तद्वीपेश्वरो नृपः ॥ विष्णुना निहतो भूयश्छद्मरूपेण हैहयः ॥२१॥ इक्ष्वाकुकुलसंभूतो रामो दाशरथिः पुरा ॥ त्रिलोकविजयं वीरं रावणं संन्यपातयत् ॥२२॥ पुरा कृतयुगे विष्णुस्संग्रामे तारकामये ॥ षोडशार्द्धभुजो भूत्वा गरुडस्थो हि वीर्यवान् ॥ २३ ॥ निजघानासुरान्युद्धे वरदानेन गर्वितान् ॥ कालनेमिश्च दैतेयो देवानां च भयप्रदः ॥ २४ ॥ सहस्रकिरणाभेन चक्रेण निहतो युधि ॥ महायोगबलेनाजौ विश्वरूपेण विष्णुना ॥ २५ ॥ अनेन प्राप्तकालास्ते निहता बहवोऽसुराः ॥ वने वनचरा दैत्य महाबलपराक्रमाः ॥ २६ ॥ निहता बालभावेन प्रलम्बारिष्टधेनुकाः ॥ शकुनीं केशिनं चैव यमलार्जुनकावपि ॥ २७ ॥ नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा ॥ कंसं च बलिनां श्रेष्ठं सगणं देवकीसुतः ॥ २८ ॥ निहनद्गोपवेषेण क्रीडमानो हि केशवः ॥ एवमादीनि दिव्यानि च्छद्मरूपाणि चक्रिणा ॥ २९ ॥ कृतानि दिव्यरूपाणि विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि भवतां हितकाम्यया ॥ ३० ॥

बलसे यह वार्ता सम्पादन की है॥२५॥इसीने समय प्राप्त होनेपर बहुतसे असुरोंको मार डाला है,और वनमें वनचारी अनेक दैत्य मार डाले॥२६॥ प्रलम्बासुर अरिष्ट और धेनुक बाललीलासे ही मार डाले शकुनी (पूतना) केशी दैत्य यमलार्जुन ॥ २७ ॥ कुवलयापीड हाथी चाणूर और मुष्टिक और महाबली कंसको देवकीपुत्रने समूहसहित मार डाला ॥२८॥ यह सब काम गोपवेशसे क्रीडा करते हुए इन्ही दोनोंने कियेहैं, इस प्रकार गुप्तरूपधारी विष्णुके चरित्र हैं॥२९॥इसी प्रकार समर्थ विष्णु भगवान्ने अनेक दिव्य चरित्र किये हैं सो मैं तुम्हारे चित्तकी कामनासे कहूंगा ॥३०॥

सो मैं तो राक्षसोंके नाशक श्रीकृष्णको विष्णु मानता हूं यह नारायण जगत्‌की योनि पुराण पुरुष हैं॥३१॥यही सबके स्रष्टा गुप्त प्रगट सनातन हैं सब लोकका अदृश्य और सबसे नमस्कृत हैं॥३२॥अनादि मध्य निधन क्षर अक्षर शाश्वत स्वयंभू अज स्थाणु चर अचरसे जीते न जाय॥३३॥ त्रिविक्रम त्रिलोकेश देवताओंके शत्रुओंका नाश करनेहारे यही श्रीकृष्णहैं मथुराके युद्धमें यह बात मैंने निश्चय जान लीथी॥३४॥बडे चक्रवर्ती राजोंके कुलमें साधारण मनुष्योंका गरुड वाहन कैसे हो सकता है॥३५॥विशेष कर कन्याके निमित्त इन जनार्दनके उद्योग करनेपर गरुडके आगे

तं मन्ये केशवं विष्णुं सुराद्यमसुरान्तकम् ॥ नारायणं जगद्योनिं पुराणं पुरुषं ध्रुवम् ॥३१॥ स्रष्टारं सर्वभूतानां व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥ अदृश्यं सर्वलोकानां सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ ३२ ॥ अनादिमध्यनिधनं क्षरमक्षरशाश्वतम् ॥ स्वयंभुवमजं स्थाणुमजेयं सचराचरैः ॥ ३३ ॥ त्रिविक्रमं त्रिलोकेशं त्रिदशेन्द्रारिनाशनम् ॥ इति मे निश्चिता बुद्धिर्जातोऽयं मथुरामधि ॥ ३४ ॥ कुले महति वै राज्ञां विपुले चक्रवर्तिनाम् ॥ कथमन्यस्य मर्त्यस्य गरुडो वाहनं भवेत् ॥ ३५ ॥ विशेषेण तु कन्यार्थे विक्रमस्थे जनार्दने॥कस्स्थास्यति पुमानद्य गरुडस्याग्रतो बली ॥ ३६ ॥ स्वयंवरकृतेनासौ विष्णुस्स्वयमिहागतः ॥ विष्णोरागमने चैव महान्दोषः प्रकीर्तितः ॥ ३७ ॥ भवद्भिरनुचिन्त्येदं क्रियतां यदनन्तरम् ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं विब्रुवमाणे तु मगधानां जनेश्वरे ॥ ३८ ॥ सुनीथोऽथ महाप्राज्ञो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ सुनीथ उवाच ॥ सम्यगाह महाबाहुर्मगधाधिपतिर्नृपः ॥ ३९ ॥ समक्षं नरदेवानां यथावृत्तं महाहवे ॥ गोमन्ते रामकृष्णाभ्यां कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥४०॥ गजाश्वरथसंबाधा पत्तिध्वजसमाकुला ॥ निर्दग्धा महती सेना चक्रलाङ्गलवह्निना ॥ ४१ ॥

कौन बली पुरुष ठहर सकेगा॥ ३६ ॥स्वयंवरमें यह विष्णु स्वयं आये हैं,इससे वह एक महान् दोष उपस्थित हुआ है॥३७॥अब आप विचार इसमें कीजिये. वैशम्पायन बोले;जरासंधके ऐसा कहने पर॥३८॥महाबुद्धिमान सुनीथराजा कहने लगा कि, राजा जरासन्धने सत्य कहाहै॥३९॥जो मनुष्य देवताओंके सन्मुख संग्राममें महादृश्य हुआ है जो रामकृष्णने गोमंतमें दुष्कर कर्म किया है ॥४०॥ हाथी घोडे पैदल रथ ध्वजाओंसे संकुल हमारी

बडी सेना चक्र और हलकी अग्निसे इन दोनोंने भस्मकर दी॥४१॥सो श्रीमान् जरासंधने होनहार भली बात विचारी, इस प्रकार राजसेनाके बोलने पर दारुण कृत्यका स्मरण किया कि ॥४२॥ उस समय इन दोनोंके युद्धमें स्थित होनेपर दुर्निवार और महाघोर सेनाका क्षय हुआ था ॥ ४३ ॥ और अब आपने गरुडआना देख लिया कि जिनके पक्षाघातसे गगनचर घूम गये थे ॥४४॥ और हम सब व्याकुल होकर कहने लगे थे कि यह क्या उत्पात है ॥४५॥ जब गरुडपर स्थित हो श्रीकृष्ण युद्ध करेंगे तब हम सरीखे मनुष्य कैसे इनके सन्मुख युद्धमें स्थित हो सकेंगे ॥ ४६ ॥

तेनायं मागधश्श्रीमाननागतमचिन्तयत् ॥ ब्रुवते राजसेनायामनुस्मृत्य सुदारुणम् ॥ ४२ ॥ पदात्योर्युध्यतोस्तत्र बलकेशवयोर्युधि ॥ दुर्निवार्यतरो घोरो ह्यभवद्वाहिनीक्षयः ॥४३॥ विदितं वस्सुपर्णस्य स्वागतस्य नृपोत्तमाः ॥ पक्षवेगानिलोद्धूता बभ्रमुर्गगनेचराः ॥४४॥ समुद्राः क्षुभितास्सर्वे चचालाद्रिर्मही मुहुः ॥ वयं सर्वे सुसंत्रस्ताः किमुत्पातेति विक्लवाः ॥ ४५॥ यदा संनह्य युध्येत आरूढः केशवः खगम् ॥ कथमस्मद्विधश्शक्तः प्रतिस्थातुं रणाजिरे ॥ ४६ ॥ राज्ञां स्वयंवरो नाम सुमहान्हर्षवर्धनः ॥ कृतो नरवरैराद्यैर्यशोधर्मस्य वै विधिः ॥ ४७ ॥ इदं तु कुंडिनपुरमासाद्य मनुजेश्वराः ॥ पुनरैवैष्यते क्षिप्रं महापुरुषविग्रहम् ॥ ४८ ॥ यदि सा वरयेदन्यं राज्ञां मध्ये नृपात्मजा ॥ कृष्णस्य भुजयोर्वीर्यं कः पुमान्प्रसहिष्यति ॥४९॥ विज्ञापितमिदं दोषं स्वयंवरमहोत्सवम्॥तदर्थमागतःकृष्णो वयं चैव नराधिपाः ॥५०॥ कृष्णस्यागमनं चैव नृपाणामतिगर्हितम् ॥ कन्याहेतोर्नरेन्द्राणां यथा वदति मागधः॥५१॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे सुनीथवाक्येऽष्टचत्वारिंशोऽध्याय॥४८॥

स्वयंवर राजोंका वर्ष बढानेहारा होता है, यह पहले राजोंने यश और धर्मकीविधि की थी ॥ ४७ ॥ परन्तु कुंडिनपुर नगरको प्राप्त हो यह सब राजा महायुद्धकोप्राप्त होंगे॥४८॥ यदि कन्या किसी दूसरेको वरण करे तो कृष्णका भुजवीर्य कौन सह सकेगा ॥ ४९ ॥ यह स्वयंवर महोत्सवमें महादोष हुआ है, हम सब राजा और यह कृष्ण उसीके निमित्त आये हैं ॥५०॥ कृष्णका आना राजोंके निमित्त बहुत बुरा है, कन्याके निमित्त राजोंका आना अच्छा नहीं हुआ यह जरासंधने सत्य कहा॥५१॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषाटीकायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

वैशंपायन बोले; जब महात्मा सुनीथने यह वचन कहे तब करूषदेशका अधिपति महावीर दन्तवक्र बोला ॥ १ ॥ दन्तवक्र बोला; जो कुछ सुनीथ और जरासंधने कहा है हमारे निमित्त वह हित है, और युक्तिपूर्वक है॥२॥मैं विद्वेष और अहंकारसे न अपने जीवनके अभिमानसे इस अमृततुल्य वचनमें दोष देता हूं ॥३॥ वाक्यरूपी सागर नीतिशास्त्र होनेसे महागम्भीर राजसभामें उस सबको कौन कह सकता है ॥ ४ ॥ किंतु जो स्मरणके निमित्त मैं कहता हूं सो आप सुनिये यदि वासुदेव आये हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है ॥ ५ ॥ जैसे हम सब आये हैं इसी प्रकार श्रीकृष्ण भी

वैशम्पायन उवाच ॥ इत्येवमुक्ते वचने सुनीथेन महात्मना ॥ करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥ दन्तवक्र उवाच ॥ यदुक्तं मागधेनात्र सुनीथेन नराधिपाः ॥ युक्तपूर्वमहं मन्ये यदस्माकं वचो हितम् ॥ २ ॥ न च विद्वेषणेनाहं न चाहंकारवादिना ॥ न चात्मविजिगीषुत्वाद्दूषयामि वऽमृतम् ॥ ३ ॥ वाक्यार्णव महागाधं नीतिशास्त्रार्थबृंहितम् ॥ क एष निखिलं वक्तुं शक्तो वै राजसंसदि ॥ ४ ॥ किं त्वनुस्मरणार्थेऽहं यद्ब्रवीमि शृणुष्व मे ॥ आगतो वासुदेवेति किमाश्चर्यं नराधिपाः ॥ ५ ॥ यथागता वयं सर्वे कृष्णोऽपीह तथागतः ॥ किमत्र दोषो गौण्यो वा कन्याहेतोस्समागताः ॥६॥ यदस्माभिस्समेत्यैक्यात्कृतं गोमन्तरोधनम् ॥ तत्र युद्धकृतं दोषं कथं वै वक्तुमर्हथ ॥ ७ ॥ वनवासे स्थितौ वीरौ कंसव्यामोहहेतुना ॥ देवर्षिवचनाद्राजन्वृन्दावनतटे स्थितौ ॥ ८ ॥ तावाहूय वधार्थेन उभौ रामजनार्दनौ ॥ नागेनोद्दीपितौ वीरौ हत्वा नागं विवेशतुः ॥९॥ ततस्ववीर्यमाश्रित्य निहतो रङ्गसागरे ॥ गतासुरिव चासीनो मथुरेशस्सहानुगः ॥ १० ॥

आये हैं इसमें दोष और गौणता क्या है, सब कन्याके निमित्त आये हैं ॥ ६ ॥ जो हम सबने मिलकर गोमन्तपर्वतको रोका था वहांके युद्धके दोष कैसे कह सकते हो ॥ ७ ॥ वह वीर कंसके मोह करनेको वनवासमें स्थित थे, हे राजन् ! देवर्षि नारदके वचनसे वृन्दावनके तटमें स्थित हुए थे ॥८॥ उससे मारनेके निमित्त इन दोनोंको बुलाया, और कुवलयापीड हाथीको मार यह दोनों भीतर प्रविष्ट हुए ॥ ९ ॥ तब अपने पराक्रमसे

युद्धमें कंसको मार डाला यह मथुरापति अपने अनुचरों सहित प्राणहीन हो पृथ्वीपर गिरा ॥१०॥ जिसने कंसको मारा और वयमें अधिक हमारे साथ वैर किया उसको यदि हमने रोका तो क्या दोष है॥११॥हमारी सेनाका बडा बल देखकर राम और केशव वित्रस्त हो गये थे, और अपने पुर और सेना छोडकर गोमन्तपर चले गये थे॥१२॥वहांभी हम इनके मारनेको गये,यह युवा न होकरभी पदातिरणमें प्राप्त हुए॥१३॥ रथ घोडे हाथी मनुष्योंकी सेना लेकर हमने युद्ध किया,और पर्वतको घेरकर क्षत्रधर्मसे उसे दीप्तिमान् किया ॥ १४ ॥ दावाग्निके मुखमें प्राप्त हो दुर्विनीत दोनों

किमत्र विहितो दोषो येनास्माभिर्वयोऽधिकैः ॥ उपरोधपरा राजन्वयं सर्वे समागताः ॥ ११ ॥ सेनातिबलमालोक्य वित्रस्तौ रामकेशवौ ॥ पुरं बलं समुत्सृज्य गोमन्ते च गतावुभौ ॥ १२ ॥ तत्रापि गतमस्माभिर्हन्तुं समरयोधिभिः ॥ अप्राप्तयौवनाभ्यां च पदातिभ्यां रणाजिरे ॥१३॥ रथाश्वनरनागेन नास्माभिर्विग्रहः कृतः ॥ कृत्वोपरोधं शैलस्य क्षेत्रधर्मेण दीपितः॥१४॥ दावाग्नि मुखमाविश्य दुर्विनीततपस्विनौ ॥ विनीत इति मन्यामस्सर्वे क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ प्रतियुद्धे कृते त्वेवं दूषयाम जनार्दनम् ॥ १५ ॥ यत्र यत्र प्रयास्यामो वयं तत्र भवेत्कलिः ॥प्रीत्यर्थं प्रयतिष्यामो कृष्णेन सह भूमिपाः ॥१६॥ इदं कुण्डिनपुरं कृष्णो नागतः कलिहेतुना ॥ कन्यानिमित्तागमने कस्य युद्धं प्रयच्छति ॥ १७ ॥ मर्त्येऽस्मिन्पुरुषेन्द्रोऽसौ न कश्चित्प्राकृतो नरः ॥ देवलोकेषु देवेषु प्रवरः पुरुषोत्तमः ॥१८॥ देवानामपि कर्तासौ लोकानां च विशेषतः ॥ न चैव बालिशा बुद्धिर्न चेर्ष्या नापि मत्सरः ॥ १९ ॥ न स्तब्धो न कृशो नार्तः प्रणतार्तिहरस्सदा ॥ एष विष्णुः प्रभुर्देवो देवानामपि दैवतम् ॥ २० ॥

तपस्वी हमने जाना था कि नम्र हो जांयगे,परन्तु इन्होंने सब श्रेष्ठक्षत्रियोंसे युद्ध किया, उस विषयमें जनार्दनका क्या दोष है ॥१५॥ जहां जहां हम जाते हैं वहीं२क्लेश होता है इस कारण हे राजाओ ! श्रीकृष्णसे प्रीति करनी उचित है ॥ १६ ॥ विरोधके कारणही कृष्ण यहां आये हैं कन्याके निमित्त आये हैं तो किसको युद्ध देंगे ॥१७॥ अर्थात् युद्धमें नहीं आये हैं मृत्युलोकमें वह पुरुषोंके इन्द्र और स्वर्गमें देवताओंके इन्द्र हैं, यही पुरुषोत्तम हैं ॥१८॥यही देवता और लोकोंके कर्ता हैं, यह बालबुद्धि ईर्षी और मत्सर करनेवाले नहीं हैं ॥१९॥ न स्तब्ध, न क्लेश, न दुःखी

हैं सदा दीनोंके दुःख हरतेहैं, यह विष्णुदेव देवताओंकेभी देवता हैं ॥ २० ॥ स्वयंवरमें आनेका तो बहाना है, किन्तु अपना रूप प्रकाश करनेको आये हैं, शत्रुनाश करनेको यह कृष्ण अनेक शस्त्रोंसहित जाते हैं ॥ २१ ॥ इस यात्रामें तो जानो कि श्रीकृष्ण प्रीतिके निमित्त आये हैं कारण कि इनके साथ भोजवंशी और बडे बडे यदुवंशीभी हैं तथा वृष्णि और अंधकवंशी हैं॥२२॥हे राजाओ ! अर्घ्य आचमन दे इन महात्मा केशवका हम सत्कार करें ॥ २३ ॥ इस प्रकार कृष्णसे प्रीति कर हम सब निर्भय दुःखहीन हो निवास करेंगे ॥ २४ ॥ इस प्रकार बुद्धिमान वक्रदन्तके वचन सुन

आगतो गरुडेनेह छद्मप्राकाश्यहेतुना ॥ नानास्त्रसहितो याति कृष्णश्शत्रुविनाशने ॥ २१ ॥ इमां यात्रां विजानिध्वं प्रीत्यर्थं ह्यागतो हरिः ॥ सहितो यादवेन्द्रैश्च भोजवृष्ण्यन्धकैरिह ॥ २२ ॥ अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा आतिथ्यं च नराधिपाः ॥ करिष्याम वयं सर्वे केशवाय महात्मने ॥ २३ ॥ एवं संधानतः कृत्वा कृष्णेन सहिता वयम् ॥ वसामो विगतोद्वेगा निर्भया विगतज्वराः ॥ २४ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दन्तवक्रस्य धीमतः ॥ शाल्वः प्रवदतां श्रेष्ठस्तानुवाच नराधिपान् ॥ २५ ॥ शाल्व उवाच ॥ किं भयेनास्य नस्सर्वे न्यस्तशस्त्रा भवामहे ॥ संधानकरणाद्धेतोः कृष्णस्य भयकम्पिताः ॥२६॥ परस्तवेन किं कार्यं विनिन्द्य बलमात्मनः ॥ नैष धर्मो नरेन्द्राणां क्षात्रे धर्मे च तिष्ठताम् ॥२७॥ महत्सु राजवंशेषु संभूताः कुलवर्द्धनाः ॥ तेषां कापुरुषा बुद्धिः कथं भवितुमर्हति ॥२८॥ अहं जानामि वै कृष्णमादिदेवं सनातनम् ॥ प्रभुं सर्वामरेन्द्राणां नारायणपरायणम् ॥ २९ ॥ वैकुण्ठमजयं लोके चराचरगुरुं हरिम् ॥ संभूतं देवकीगर्भे विष्णुं लोकनमस्कृतम् ॥ ३० ॥

बोलनेवालोंमें चतुर उन राजोंसे राजा शाल्व बोला ॥२५॥ तुम सब भयके मारे कैसे शस्त्र डाले देते हो, जो कृष्णके भयसे कम्पित हो संधि करते हो ॥२६॥ अपने बलकी निन्दा करके पराई स्तुति करनेसे क्या फल होता है, क्षत्रियधर्ममें स्थित राजोंका यह धर्म नहीं है ॥ २७ ॥ तुम सब कुल बढानेहारे बडे राजवंशोंमें उत्पन्न हुए हो सो तुम्हारी कायरोंकेसी बुद्धि किस प्रकार होती है॥२८॥मैं श्रीकृष्णको आदिदेव सनातन जानता हूं वह सब राजोंके प्रभु हैं, नारायण परायण॥२९॥वैकुंठस्वरूप अजीत लोकके चराचरके स्वामी देवकीके गर्भमें जन्म ले सब लोकसे नमस्कृत॥३०॥

कंसके मारने, पृथ्वीके भार उतारने, हमारे नष्ट करने, लोककी पालना करनेको ॥ ३१ ॥ विष्णु भगवान् अंशावतारसे कृष्ण हुए हैं, हम उनकी चेष्टाको जान गये, हे राजो ! विष्णुके संग हम संग्राम कर ॥ ३२॥ इनके चक्रकी अग्निमें दग्ध हो यमके स्थानमें जांयगे. हे राजन् ! मैं तत्त्वज्ञानसे जानता हूं कि समयसे आयु क्षीण हो जाती है ॥ ३३ ॥ और यहभी देखो अकालमें कोई मरता नहीं, काल प्राप्त होनेपर कोई जीता नहीं, ऐसा निश्चय करनेहारा फिर किसका भय करे ॥ ३४ ॥ वही भगवान् विष्णु तपसे जगत्‌का क्षय देखकर समयपर दैत्योंको मारते हैं, यथाकालसे योग जाननेवाला कामक्रोधादि

कंसराजवधार्थाय भारावतरणाय च ॥ अस्माकं च विनाशाय लोकसंरक्षणाय च ॥ ३१ ॥ अंशावतरणे कृत्स्नं जाने विष्णोर्विचेष्टितम् ॥ संग्राममतुलं कृत्वा विष्णुना सह भूमिपाः ॥ ३२ ॥ चक्रानलविनिर्दग्धा यास्यामो यमसादनम् ॥ तत्त्वं जानामि राजेन्द्राः कालेनायुःक्षयो भवेत् ॥ ३३ ॥ नाकाले म्रियते कश्चित्प्राप्ते काले न जीवति ॥ एवं विनिश्चयं कृत्वा न कुर्यात्कस्यचिद्भयम्॥३४॥ स एव भगवान्विष्णुरालोक्य तपसः क्षयम् ॥ निहन्ता दितिजेन्द्राणां यथाकालेन योगवित् ॥ ३५ ॥ बलिं वैरोचनिं चैव बद्ध्वाऽवध्यं महाबलम् ॥ कृतवान्देवदेवेशः पातालतलवासिनम् ॥ ३६ ॥ एवमादीनि वै विष्णोश्चेष्टानि च नराधिपाः ॥ तस्मादयुक्तं भवतां विग्रहार्थं विचारणम् ॥ ३७ ॥ न च संग्रामहेतोर्हि कृष्णस्यागमनं त्विह ॥ यस्य वा कस्य वा कन्या वरयिष्यति तस्य सा ॥ किमत्र विग्रहो राज्ञां प्रीतिर्भवति वै ध्रुवम् ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं कथयमानानां नृपाणां बुद्धिशालिनाम् ॥ न किंचिदब्रवीद्राजा भीष्मकः पुत्रकारणात् ॥ ३९ ॥

शत्रुओंको जीतता है ॥ ३५ ॥ उस देवेशने विरोचनके पुत्रको बांधकर पातालतलका वासी किया ॥ ३६ ॥ हे राजाओ ! इस प्रकारकी विष्णुभगवा-नूकी चेष्टा है इस कारण विग्रहके निमित्त विचार करना ठीक नहीं है ॥ ३७ ॥ कृष्ण यहां संग्रामके निमित्त नहीं आये हैं, जो कोई कन्या वरण करे इसी निमित्त आये हैं इसमें राजाओंमें विग्रह क्या ? प्रीतिही बढेगी ॥ ३८॥ वैशंपायन बोले; बुद्धिमान् राजाके ऐसा कहनेपर पुत्रके मारे राजा भीष्मक कुछभी

न कह सका ॥ ३९ ॥ महाबली वीर्यमें युक्त परशुरामजीसे अस्त्र सीखे हुए रणमें प्रचण्ड अपने पुत्रका मनमें स्मरण करते बोले ॥४०॥भीष्मक बोले; मेरा पुत्र तौ बलके अभिमानसे श्रीकृष्णको सहन नहीं कर सका और युद्धके अभिमानमें लगा हुआ किसीसे भयभीत नहीं होता है ॥ ४१ ॥ कृष्णके भुजबलसे लज्जित होता है इसमें संदेह नहीं, इससे महापुरुषके विग्रह श्रीकृष्णसे अवश्य युद्ध होगा इसमें संदेह नहीं ॥ ४२ ॥ यह दोषी और अभिमानी मेरा पुत्र किस प्रकारसे जीता है, मैं कृष्णसे अपने पुत्रका जीवन नहीं देखता हूं ॥ ४३ ॥ कन्याके निमित्त पिताको आनन्द देनेहारे ज्येष्ठ पुत्रके साथ

महावीर्यमदोत्सिक्तं भार्गवास्त्राभिरक्षितम् ॥ रणप्रचण्डातिरथं विचिन्त्य मनसा सुतम् ॥ ४० ॥ भीष्म उवाच ॥ कृष्णं न सहते नित्यं पुत्रो मे बलदर्पितः ॥ नित्याभिमानी च रणे न बिभेति च कस्यचित् ॥ ४१ ॥ कृष्णस्य भुजवीर्येण ह्रियते नात्र संशयः ॥ भविष्यति ततो युद्धं महापुरुषविग्रहम् ॥ ४२ ॥ द्वेषी चैवाभिमानी च कुतो जीवति मे सुतः ॥ जीवितं नात्र पश्यामि मम पुत्रस्य केशवात् ॥ ४३ ॥ कन्याहेतोस्सुतं ज्येष्ठं पितॄणां नन्दिवर्द्धनम् ॥ कारयिष्ये कथं युद्धं पुत्रेण सह केशवम् ॥ ४४ ॥ न च नारायणं देवं वरामिच्छति रुक्मवान् ॥ मूढभावो मदोन्मत्तः संग्रामेष्वनिवर्तकः ॥ नियतं भस्मसाद्याति तूलराशिर्यथानलात् ॥ ४५ ॥ करवीरेश्वरश्शूरश्शृगालश्चित्रयोधिना ॥ क्षणेन भस्मसान्नीतः केशवेन बलीयसा ॥ ४६ ॥ वृन्दावने वसञ्छ्रीमान्केशवो बलिनां वरः ॥ उद्धृत्यैकेन हस्तेन सप्ताहं धृतवान्गिरिम् ॥ ४७ ॥ दुष्करं कर्म संस्मृत्य मनस्सीदाति मे भृशम् ॥ ४८ ॥

श्रीकृष्णसे किस प्रकार युद्ध करा सकता हूं ॥४४ ॥ रुक्मवान् नारायण देवका वर होना नहीं चाहते, वह मूढभाव मदोन्मत्त संग्राममें निवृत्त होनेवाला नहीं परन्तु रुई जैसे अग्निमें भस्म हो जाती है, इस प्रकार श्रीकृष्णसे वह नष्ट हो जायगा ॥ ४५ ॥ करवीरपुरका स्वामी महायोधा शृगाल बलवान् केशवने क्षणमात्रमें नष्ट कर दिया ॥ ४६ ॥ बलियोंमें बली केशव वृन्दावनमें रहते थे तब इन्होंने सात दिन गोवर्द्धन पर्वतको एकही हाथपर धारण किया था ॥ ४७ ॥ इनका दुष्कर्म विचार कर मेरा मन बहुत व्याकुल होता है ॥ ४८ ॥

स्वयं इन्द्र देवताओंके सहित वृन्दावनमें आये और श्रीकृष्णका अभिषेक कर उपेन्द्रपद दिया ॥ ४९ ॥ जैसे यमुनामें कालीनागका दमन किया जो कि विषाग्निकी समान घोर और कालान्तककी समान था ॥ ५० ॥ आरे घोडेका रूप धारे महाबली केशी दानव देवताओंकोभी दुरासद श्रीकृष्णने मार डाला ॥ ५१ ॥ बहुत कालसे सागरमें डूबे हुए सांदीपनगुरुपुत्रको पंचजन दैत्यको मार यमराजके स्थानसे ले आये ॥ ५२ ॥ गोमंत पर्वतमें इन दोनोंको बहुतसे राजाओंने घेर लिया था और वहां महायुद्ध हुआ, इन्होंने हाथी घोडोंको नष्ट कर महाभय दिया ॥ ५३ ॥ हाथीसे हाथी, रथीसे

नगेन्द्रे सहसागम्य दैवतैस्सह वृत्रहा ॥ आभिषिच्याब्रवीत्कृष्णमुपेन्द्रोति शचीपतिः ॥ ४९ ॥ यथा वै दमितो नागः कालियो यमुनाह्रदे ॥ विषाग्निज्वालितो घोरः कालान्तकसमप्रभः ॥ ५० ॥ केशी चापि महावीर्यो दानवो हयविग्रहः ॥ निहतो वासुदेवेन दैवैरपि दुरासदः ॥ ५१ ॥ सान्दीपनिसुतश्चैव चिरनष्टो हि सागरे ॥ दैत्यं पञ्चजनं हत्वा आनीतो यममन्दिरात् ॥ ५२ ॥ गोमन्ते सुमहद्युद्धं बहुभिर्वेष्टितावुभौ ॥ कृत्वा वित्रासजननं नागाश्वरथसंक्षयम् ॥ ५३ ॥ गजेन गजवृन्दानि रथेन रथयोधिनः ॥ सादिनश्चाश्वयोधेन नरेण च पदातिनः ॥ जघ्नतुस्तौ महावीर्यौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ ५४ ॥ न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ न नागा न च दैत्येन्द्रा न पिशाचा न गुह्यकाः ॥ ५५ ॥ कृतवन्तस्तथा घोरं गजाश्वरथसंक्षयम् ॥ तमनुस्मृत्य संग्रामं भृशं सीदति मे मनः ॥ ५६ ॥ न मया श्रुतपूर्वो वा दृष्टपूर्वः कुतोऽपि वा ॥ तादृशो भुवि मर्त्योऽन्यो वासुदेवात्सुरोत्तमात् ॥ ५७ ॥ सम्यगाह महाबाहुर्दन्तवक्रो महीपतिः ॥ सान्त्वयित्वा महावीर्यं संविधास्याम यत्क्षमम् ॥ ५८ ॥

॥१४३॥

रथी, घुडसवारसे घुडसवार पैदलसे पैदलको महावीर्यवान् दोनों वसुदेवकुमार मारने लगे ॥ ५४ ॥ देवता गंधर्व नाग यक्ष उरग राक्षस दैत्येन्द्र पिशाच गुह्यक ॥ ५५ ॥ कोईभी ऐसा हाथी घोडे रथोंका नाश नहीं कर सक्के उस घोर संग्रामको स्मरण कर मेरा मन व्याकुल होता है ॥ ५६ ॥ न मैंने ऐसा देखा न सुना जैसे पृथ्वीमें मैंने श्रीकृष्णको देखा है ॥ ५७ ॥ महाबाहु दंतवक्रने सत्य कहा कि हम महावीर्यवान् श्रीकृष्णको समझाकर

संधि कर लें ॥५८॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार बलाबलके निर्णयको विचारते हुए श्रीकृष्णके प्रसन्न करनेके निमित्त जानेके लिये राजाने इच्छा की ॥५९॥ राजा विचारकरता हुआ बडे बडे राजनीति जाननेवाले सूत मागध बंदिजनोंद्वारा स्तुति आदिमंगलशब्दोंसे बोधित हुआ ॥ ६० ॥ प्रातःकाल होतेही पूर्वकालकी क्रिया कर सब राजा अपने २ विश्रामभवनमें स्थित हुए ॥ ६१ ॥ जो राजा रात्रिकी सभामें स्थित नहीं थे वे आये तब उनसे यह निवेदन किया गया ॥६२॥ कृष्णका अभिषेक सुन कोई राजा तो प्रसन्न हुए, कोई दीन भीत और कोई उदासीन रहे ॥६३॥ हाथी

वैशम्पायन उवाच ॥ इति संचिन्त्य मनसा बलाबलविनिश्चयम् ॥ गमनाय मतिं चक्र प्रसादयितुमच्युतम् ॥५९॥ चिन्तयानो नरेन्द्रस्तु बहुभिर्नयशालिभिः ॥ सूतमागधबन्दिभ्यो बोधितः स्तुतिमङ्गलैः ॥६०॥ प्रभातायां रजन्यां तु कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः ॥ उपविष्टा नृपाः सर्वे स्वेषु विश्रामवेश्मसु ॥ ६१ ॥ ये विसृष्टास्तु राजानो विदर्भायां नराधिपैः ॥ तैरागम्य स्वभूपेषु रहो गत्वा निवेदितम् ॥६२॥ श्रुत्वा कृष्णाभिषेकं तु केचिद्धृष्टा नराधिपाः ॥ केचिद्दीनतरा भीता उदासीनास्तथा परे ॥ ६३ ॥ त्रिधा प्रभिन्ना सा सेना नरनागाश्वमालिनी ॥ महार्णव इव क्षुब्धा अभिषेकेण चालिता ॥६४॥ नृपाणां भेदमालोक्य भीष्मको राजसत्तमः ॥ व्यतिक्रममचिन्त्यं च कृतं नृपतिना स्वयम् ॥६५॥ विचिन्त्य मनसा राजा दह्यमानेन चेतसा ॥ जगाम नरदेवानां समाजे प्रतिबोधितुम् ॥६६॥ एतस्मिन्नन्तरे दूताः संप्राप्ताः क्रथकैशिकौ ॥ लेखमुद्धृत्य शिरसा विविशुस्ते नृपार्णवम् ॥ ६७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

घोडे रथवाली वह सेना तीन प्रकार विभक्त हुई, अभिषेककी वार्ता सुन महासागरके समान क्षुभित हो गई ॥ ६४ ॥ राजा श्रेष्ठ भीष्मकने राजोंका भेद देखकर राजाने स्वयं उस (व्यतिक्रम) राजोंके अनादरका विचार किया ॥ ६५ ॥ दह्यमानचित्त हो मनसे विचार कर राजा स्वयं राजोंके निकट पधारे ॥ ६६ ॥ इसी समय क्रथकैशिकके समीपसे शिरपर लेखको धारण किये दूत राजाके निकट प्राप्त हुए ॥ ६७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषाटीकायां रुक्मिणीस्वयंवरो नाम एकोनपंचाशत्तमोध्यायः ॥ ४९ ॥

जनमेजय बोले; देवताओंकोभी दुरासद कंसको मारकर भी श्रीकृष्णने न तो अभिषेक स्वीकार किया, न राज्यासनपर स्थित हुए ॥ १ ॥ कन्याके निमित्त आये हुए श्रीकृष्णका अतिथिसत्कार न किया, इस महाअपमानको प्राप्त होकर कृष्ण किस कारणसे शान्त हुए ॥ २ ॥ महाबली पराक्रमी विनतानन्दन गरुडजी किस कारणसे क्षमायुक्त रहे;हे भगवन् ! यह मुझसे कहिये इसका मुझे परम कुतूहल है॥३॥ वैशंपायन बोले जिस समय गरुड और श्रीकृष्ण विदर्भनगरीमें प्राप्त हुए उस समय कैशिकने वसुदेवकी मनसे चिन्ता की ॥ ४ ॥ कि श्रीकृष्णको देखनेसे हमारे सब पाप क्षय हों

जनमेजय उवाच ॥ हत्वा कंसं महावीर्यं देवैरपि दुरासदम् ॥ नाभिषिक्तः स्वयं राज्ये नोपविष्टो नृपासने ॥१॥ कन्यार्थे चागतः कृष्णस्तत्रापि न कृतोऽतिथिः ॥ अमानमतुलं प्राप्य क्षान्तवान्केन हेतुना ॥ २ ॥ विनतायास्सुतश्चैव महाबलपराक्रमः ॥ स चापि क्षमया युक्तः कारणं किमपेक्षितः ॥ एतदाख्याहि भगवन्परं कौतूहलं हि मे ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ विदर्भनगरीं प्राप्ते वैनतेये महाच्युते ॥ मनसा चिन्तयामास वासुदेवाय कैशिकः ॥ ४ ॥ दृष्टाश्चर्यं हि नः सर्वांत्राजन्यान्प्रवदाम्यहम् ॥ वसुदेवसुते दृष्टे ध्रुवं पापक्षयो भवेत् ॥ ५ ॥ विशुद्धभावः कृष्णस्य आवयोर्दृष्टतत्त्वतः ॥ अतः पात्रतरः कोऽन्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥६॥ कृष्णात्कमलपत्राक्षाद्देवदेवाज्जनार्दनात् ॥ तस्यावां किं प्रदास्याव आतिथ्यकरणे नृप ॥ ७ ॥ पात्रमासाद्य वै राजन्यथा धर्मो न लुप्यते ॥ एवमन्योन्यसंचिन्त्य भ्रातरौ क्रथकैशिकौ ॥ ८ ॥ स्वं राज्यं दातुकामौ तु जग्मतुः केशवान्तिकम् ॥ देवमासाद्य तौ वीरौ विदर्भनगराधिपौ ॥ ९ ॥

गये यह मैं सत्यही कहता हूं ॥ ५ ॥ हमने श्रीकृष्णका त्रिलोकीमें. विशुद्ध भाव देखा है इनके समान दूसरा पवित्र कौन है ॥ ६ ॥ देवदेव जनार्दन कमललोचन श्रीकृष्णको हम अतिथि सत्कारमें क्या दे सकते हैं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! यात्राको प्राप्त होकर जिसप्रकार अपना धर्म नष्ट न हो सो करना चाहिये ऐसा विचार कर वह दोनों भ्राता क्रथ औरकैशिक ॥८॥ अपना राज्य देनेकी इच्छासे केशवके समीप आये, वे दोनों विदर्भ

नगरके राजा अधिपति थे॥९॥ शिरसे हरिको प्रणाम कर वह दोनों बोले; आज हमारे जन्म सफल और आज हमारा यश सफल हुआ आपके घर आनेपर आज हमारे पितर तृप्त हो गये ॥१०॥ चंवर व्यजन छत्र सिंहासन सेना बडे कोषयुक्त यह हृष्ट पुष्ट पुरी और हम सब तुम्हारेही हैं ॥ ११ ॥ हे महाबाहो ! तुम इन्द्रके अभिषेक किये उपेन्द्र हो और हमने इस राज्यपर आपको अभिषेक किया है और आपको देते हैं ॥१२॥ हमारा जो कार्य अनेक राजाने कियाहै उसे स्वयं जरासंध अन्यथा करनेको समर्थ नहीं है ॥ १३ ॥ द्युतिमान् मगध देशका राजा जरासंधभी राजों

ऊचतुस्तौ महाभागौ प्रणम्य शिरसा हरिम् ॥ अद्यावां सफलं जन्म अद्यावां सफलं यशः ॥ अद्यावां पितरस्तृप्ता देवे चावां गृहागते ॥ १० ॥ चामरं व्यजनं छत्रं ध्वजं सिंहासनं बलम् ॥ स्फीतकोशा पुरी चेयमावाभ्यां सुहिता तव ॥ ११ ॥ उपेन्द्रस्त्वं महाबाहो देवेन्द्रेणाभिषिक्तवान् ॥ आवामिह हि राज्ये त्वामभिषिक्तं ददामि ते ॥ १२ ॥ आवयोर्यत्कृतं कार्यं बहुभिः पार्थिवैरपि ॥ न शक्यतेऽन्यथा कर्तुं जरासन्धेन वा स्वयम् ॥ १३ ॥ शत्रुस्ते मागधो राजा जरासन्धो महाद्युतिः ॥ कथां ते ब्रुवते नित्यं नृपाणामभयप्रदः ॥ १४ ॥ सिंहासनमनध्यास्यं पुरं चास्य न विद्यते ॥ कथं राजसमाजेऽस्मिन्नस्यते देवकीसुतः ॥१५॥ कृष्णोऽपि सुमहावीर्यो ह्यभिमानी महाद्युतिः ॥ न चागमिष्यते वास्मिन्कन्यार्थे च स्वयंवरे ॥१६॥ पार्थिवेषूपविष्टेषु स्वेषु सिंहासनेषु वै ॥ कथमास्यति नीचेषु आसनेषु महाद्युतिः ॥ १७ ॥ इति संचिन्त्यमानस्तु श्रुत्वासौ भीष्मको नृपः ॥ आवयोः सह संमन्त्र्य विग्रहोपशमार्थिना ॥ १८ ॥

का अभय करनेहारा आपकी कथाको कहता है॥१४॥दूसरे राजा सिंहासनपर बैठेंगे परन्तु श्रीकृष्णका यह पुर नहीं है,सो नीचे समाजमें देवकीपुत्र राजसमाज में कैसे स्थित होंगे ॥१५॥ श्रीकृष्णभी अभिमानी महाकान्तिमान हैं वह ऐसा होनेपर स्वयंवरमें न आवेंगे ॥१६॥ परन्तु जब राजा अपने सिंहासनपर स्थित होंगे तब भगवान् नीचे आसनमें कैसे सुशोभित होंगे॥१७॥यह सब विचार कर भीष्मक राजाने विग्रह शान्त करनेको हमारे

साथ सम्मति करके॥१८॥तुम्हारे रहनेके निमित्त यह उत्तम घर बनाया है तुम देवताओंके आदिदेव और सब लोकोंसे नमस्कार किये गये हो॥१९॥ इस मनुष्यलोकमें आप राजेन्द्रपदवीको प्राप्त हूजिये, राजोंके समाजमें आपको कष्ट न हो॥२०॥हे राजेन्द्र !आप इस विदर्भ नगरमें विचरिये, और प्रातःकाल मनोहर सिंहासनपर विराजिये ॥ २१ ॥ और विधिदृष्ट कर्मसे आत्माको अधिवासन कराओ और जिस प्रकार राजा चले जायंगे वैसा मैं आपकी शिक्षासे करूंगा ॥२२॥ ऐसा कहकर उन सुरश्रेष्ठको हाथ जोड प्रणाम कर नृपोंसे युक्त स्थानमें दूतोंको भजने लगे ॥२३॥ इस प्रकार देवदूत

तव विश्रामहेतोर्हि कारितेदं गृहोत्तमम् ॥ देवानामादिदेवोऽसि सर्वलोकनमस्कृतः ॥१९॥ मानुष्ये मर्त्यलोकेऽस्मिन्राजेन्द्रत्वं समाचर ॥ समाजे मनुजेन्द्राणां मा भूदासनसंकटम् ॥२०॥ विदर्भनगरे चैषां राजेन्द्रत्वं विचेष्टय ॥ आस्यतामासने शुभ्रे श्वः प्रभाते महाद्युते ॥२१॥ अधिवास्याद्य चात्मानं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ यथागमिष्यन्ति नृपाः करिष्ये देवशासनात् ॥ २२ ॥ एवमुक्त्वा सुरश्रेष्ठं प्रणिपत्य कृताञ्जली ॥ प्रेषायामासतुर्वीरौ रङ्गमध्ये नृपैर्वृते ॥ २३ ॥ एवं दूतस्य वचनं यथोक्तं वज्रपाणिना ॥ लिखित्वा सुमहातेजाः कैशिक प्राह शासनम् ॥ २४ ॥ कैशिक उवाच ॥ विदित वो नृपाः सर्वे वैनतेयसहाच्युतः ॥ आगतोऽतिथिरूपेण विदार्भनगरीं हरिः ॥ २५ ॥ प्राप्तमालोक्य पात्रोऽर्यमिति संचिन्त्य भूपतिः ॥ प्रददौ वासुदेवाय स्वं राज्यं धर्महेतुना ॥ २६ ॥ इदमासनमास्स्वेति भ्राता मे चोदिते ततः ॥ वागुक्ता चाशरीरेण केनापि व्योमचारिणा ॥ २७ ॥ देवदूत उवाच ॥ न युक्तमासनं दातुं त्वयासीनं नराधिप ॥ इदमस्यासनं दिव्यं सर्वरत्नविभूषितम् ॥ २८ ॥

के वचनको स्वयं पत्रके ऊपर लिखकर महातेजस्वी कैशिकने यह वचन कहे ॥२४॥ कैशिक बोले; हे राजो ! यह आप सब कोई जानते हैं कि श्रीकृष्ण गरुडके साथ अतिथिरूपसे विदर्भदेशमें आनकर प्राप्त हुए हैं ॥२५॥ इनको पात्ररूप आया देखकर राजोंने विचारकर धर्मके कारण स्वयं अपना राज्य प्रदान किया है ॥ २६ ॥ इस आसनके ऊपर बैठें इस प्रकार जब मेरे भ्राताने कहा तब आकाशकी अशरीरिणी वाणीने कहा॥२७॥ देवदूत बोला हे राजन् ! अपने बैठे हुए सिंहासनपर केशवको बैठना उचित नहीं यह दिव्य आसन सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित॥२८॥

सुवर्णका विश्वकर्माका बनाया परम सुन्दर है सिंहके लक्षणसे युक्त इन्द्रने भेजा है ॥२९॥ इसके ऊपर बैठे हुए देवताओंके ईश्वर चराचरके गुरुको अनेक राजोंके सहित अभिषेक करो ॥ ३० ॥ कुंडिनपुरमें कन्याके निमित्त बहुतसे राजा आये हैं जो कोई इनके अभिषेकमें न प्राप्त होगा वह इन्द्रका वध्य होगा ॥ ३१ ॥ यह आठ कलशे जो निधियोंके अंशसे उत्पन्न हैं राजराज महात्मा धनेशके अक्षयस्वरूप हैं ॥ ३२ ॥ यह दिव्य सुवर्ण रत्नके बने दिव्य आभरणोंकी योनिवाले राजेन्द्रके अभिषेकके निमित्त राजोंके समूहमें प्राप्त हुए हैं ॥ ३३ ॥ हे राजो ! यह तुमको

जाम्बूनदमयं शुभ्रं रचितं विश्वकर्मणा ॥ प्रेषितं देवराजेन सिंहलक्षणलक्षितम् ॥ २९ ॥ अत्रोपविष्टं देवेशं चराचरनमस्कृतम् ॥ अभिषिञ्चन्तु राजेन्द्रं बहुभिः पार्थिवैस्सह ॥३०॥ आगताः कुण्डिनगरे कन्याहेतोर्नराधिपाः ॥ नागमिष्यति यः कश्चित्सोऽस्य वध्यो भविष्यति ॥३१॥ इमे चैवाष्ट कलशा निधीनामंशसंभवाः ॥ अक्षया राजराजस्य धनेशस्य महात्मनः ॥ ३२ ॥ दिव्याः काञ्चनरत्नाढ्या दिव्याभरणयोनयः ॥ राजेन्द्रस्याभिषेकार्थमागच्छन्ति नृपैर्वृताः ॥ ३३ ॥ एष शक्रस्य संदेशः कथितो वो नराधिपाः ॥ लेखेनाहूय तान्सर्वानभिषिञ्चन्तु केशवम् ॥ ३४ ॥ कैशिक उवाच ॥ इति संचोद्य खस्थोऽसौ देवदूतो गतो दिवम् ॥ दत्त्वासनं च कृष्णाय बालार्कसदृशप्रभम् ॥३५॥ तेनाहं नोदयिष्यामि भवद्भिर्यैः समागताः ॥ दुर्निवार्यतरं घोरं शक्रस्य स्वयमीरितम् ॥३६॥ युष्माभिर्दर्शने युक्तमद्भुतं भुवि दुर्लभम् ॥ कलशैरभिषिञ्चन्तं स्वयमेव नभस्तलात् ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वाश्चर्यं हि नस्सर्वा ध्रुवं पापक्षयोभवेत् ॥ स्नापनार्थं च कृष्णाय देवदेवाय विष्णवे ॥ ३८ ॥

इन्द्रका संदेशा कहा है, इस लेखसे सब राजाओंको बुलाकर श्रीकृष्णका अभिषेक करो ॥ ३४ ॥ कैशिक बोले; इस प्रकार प्रेरणा करके देवदूत तो स्वर्गको चला गया और प्रातःकाल सूर्यके समान कान्तिमान् आसन श्रीकृष्णके निमित्त दे गया है ॥३५॥ इसीसे मैं तुमसे कहता हूं, जितने राजा आये हों सब सुनो इन्द्रका कथन दुनिर्वार और घोर है॥३६॥ पृथ्वीमें दुर्लभ दर्शन श्रीकृष्णके दर्शन करने तुमको उचित है, स्वयं जिनका आकाशके कलशोंसे अभिषेक होता है॥३७॥इस आश्चर्यको देखकर हम सबका अवश्य पापक्षय हो जायगा, देवदेव श्रीकृष्णके स्नान करानेके निमित्त ॥३८॥

हे श्रेष्ठ राजाओं! आओ और किसी प्रकारका भय मत करो कारण कि हमारे तुम्हारे निमित्तही कृष्णका संधान है ॥ ३९ ॥ यह भगवान् सब राजोंके अभय करनेहारे हैं, हमने श्रीकृष्णका तत्त्वसे उज्ज्वल भाव देखा है ॥ ४० ॥ विशेष करके हृदयमें जरासंधका भी वैर नहीं है, जो इसमें कार्यकारण है सो आप विचारो ॥ ४१ ॥ वैशंपायन बोले; शापसे भयातुर हो वह राजा विचार करने लगे, और महात्मा केशवके विषयमें फिर वे राजा सुनने लगे ॥४२॥ उस समय मेघके समान गंभीर स्वरसे आकाशको पूर्ण करती हुई देवराजकी आज्ञासे आकाशवाणी हुई ॥ ४३ ॥

आगच्छध्वं नृपश्रेष्ठा न भयं कर्तुमर्हथ ॥ आवयोः कृतसंधानो युष्मदर्थं जनार्दनः ॥३९॥ सर्वेषां मनुजेन्द्राणामभयं कुरुते हरिः ॥ विशुद्धभावः कृष्णस्तु आवयोर्दृष्टतत्त्वतः ॥ ४० ॥ मागधस्य विशेषेण न वैरं हृदि दृश्यते ॥ यदत्र कारणं कार्यं तद्भवद्भिर्विचिन्त्यताम् ॥ ४१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं संचिन्तयामासुर्नृपाश्शापभयार्दिताः ॥ भूयश्शुश्रुवू राजेन्द्राः केशवाय महात्मने ॥४२॥ मेघगम्भीरनादेन स्वरेणापूरयन्नभः ॥ वागुवाचाशरीरेण देवराजस्य शासनात् ॥४३॥ चित्राङ्गद उवाच ॥ त्रैलोक्याधिपतिश्शक्रः प्रजापालनहेतुना ॥ आज्ञापयति युष्माकं नृपाणां हितकाम्यया॥४४॥ न युक्तं वसतान्योन्यं कृष्णेन सह वैरिणा॥ वसध्वं प्रीतिमुत्पाद्य स्वराष्ट्रेषु नृपोत्तमाः ॥ ४५ ॥ प्रणतार्तिहरः कृष्णः प्रतिसेनान्तकोऽनलः ॥ अनेन सह संप्रीत्या मोदध्वं विगतज्वराः ॥४६॥ मानुषाणां नृपा देवा नृपाणां देवतास्सुराः ॥ सुराणां देवता शक्रश्शक्रस्यापि जनार्दनः ॥४७॥ एष विष्णुः प्रभुर्देवो देवानामपि दैवतम् ॥ जातोऽयं मानुषे लोके नररूपेण केशवः ॥ ४८ ॥ अजेयस्सर्वलोकेषु देवदानवमानवैः ॥ कार्तिकेयसहायस्य अपि शूलभृतस्स्वयम् ॥ ४९ ॥

चित्रांगद बोला; त्रिलोकीका स्वामी इन्द्र प्रजापालन राजोंके हितकी इच्छासे तुमको आज्ञा देता है ॥४४॥ कि तुम श्रीकृष्णसे वैर करके स्थित नहीं हो सक्के, इनसे प्रीति उत्पन्न करके तुम अपने राज्यमें स्थित हो॥४५॥यह श्रीकृष्ण दीनोंके दुःख हरनेहारे शत्रुसेनाके नाशक हैं,इनके साथ प्रीति करके तुम आनन्दपूर्वक स्थित हो ॥ ४६ ॥ मनुष्योंके राजाही देवता हैं, राजोंके सुर देवता हैं, देवताओंके देवता इन्द्र और इन्द्रके देवता यह जनार्दन हैं ॥४७॥ यह विष्णु भगवान् देवताओंके भी देवता हैं, यह इस लोकमें मनुष्यरूपसे अवतार ले आये हैं ॥४८॥ ये सब लोकोंमें देवता मनुष्य

दानवोंसे अजेय हैं, मानो कार्तिकेयकी सहायतावाले साक्षात् त्रिशूलधारी शिव हैं ॥४९॥ उन देवाधिदेव महात्मा केशवको देवताओंके साथ अभिषेककी इच्छा करता हूं इससे आगे क्या चाहिये ॥५०॥ इन राजेन्द्रके अभिषेकमें देवताओंका अधिकार नहीं है, इसी कारण मैं सर्वलोकनमस्कृत जनार्दनका अभिषेक नहीं करता हूं, इसमें राजाओंकाही अधिकार है ॥५१॥ विदर्भनगरमें तुम जाकर क्रथ कैशिकके सहित विधिपूर्वक इस कार्यको करो. हे राजाओ ! ॥५२॥ इन्द्रने यह संधिका समय जानकरही मुझे तुम्हारे समझानेको भेजा है॥५३॥ विदर्भनगरमें श्रीकृष्णकी स्थिति सुनकर इन

तस्मै देवाधिदेवाय केशवाय महात्मने ॥ अभिषेक्तुं सुरैस्सार्द्धं किमिच्छेयमतः परम् ॥ ५० ॥ न चाधिकारो देवानां राजेन्द्रस्याभिषेचने ॥ तेनाहं नाभिषिञ्चामि सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ नृपाणामधिकारोऽयं राजेन्द्रस्य निवेशने ॥ ५१ ॥ गत्वा यूयं विदर्भायां क्रथकैशिकयोः सह ॥ संचिन्त्य विधिदृष्टेन कुरुध्वं नृपसत्तमाः ॥५२॥ प्रीतिसंधानकालोऽयमिति संचिन्त्य वासवः ॥ बोधनार्थं विसृष्टोऽहं युष्माकं मनुजेश्वराः ॥५३॥ विदर्भनगरे कृष्णश्श्रावितोऽस्याधिवासनम् ॥ राजेन्द्रत्वाभिषेकार्थं राजानौ क्रथकैशिकौ ॥ ताभ्यां सह नृपश्रेष्ठाः कृत्वा समुहदुत्सवम् ॥५४॥ अभिषेकेण सत्कृत्य प्रतिगृह्यास्य दक्षिणाम् ॥ आगमिष्यथ संहृष्टाः पुनरेव स्वयंवरम् ॥५५॥ जरासंधःसुनीथश्च रुक्मी चैव महारथः ॥ शाल्वःसौभपतिश्चैव चत्वारो राजसत्तमाः ॥ रङ्गस्याशून्यहेतोर्हि तिष्ठन्तु इह पार्थिवाः ॥५६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमाज्ञां सुरेशस्य श्रुत्वा चित्राङ्गदेरिताम् ॥ गमनाय मतिं चक्रुः सर्व एव नृपोत्तमाः ॥५७॥

राजेन्द्रके अभिषेकके निमित्त क्रथ कैशिक राजोंक सहित आप इस उत्सवको अनुभव कीजिये ॥५४॥ अभिषेकसे सत्कार कर इनको दक्षिणमें ग्रहण कर प्रसन्न होकर स्वयंवरमें आओ॥५५॥ जरासंध सुनीथ महारथी रुक्मी शाल्व सौभपति यह चारों बडे राजा रंगभूमि शून्य न हो जाय इस कारण यह चारों यहीं स्थित रहें॥५६॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार चित्रांगदकी कही इन्द्रकी वाणी सुन सर्व राजोंने यहां जानेकी इच्छा की ॥५७॥

जरासंध राजाने सब राजोंको आज्ञा दी वे भीष्मकको आगे कर सेनासहित चले ॥ ५८ ॥ महाबाहु भीष्मक अपनी सेनासहित पुत्रके दोषसे महादुःखी चित्त हो चला ॥ ५९ ॥ जहां महाबाहु श्रीकृष्ण कैशिकके डेरेमें स्थित थे, जिसकी ध्वजा पताका दूरसे प्रकाशित होती थीं ॥ ६० ॥ यह सब शुभ वार्तासे स्नान करानेको आये हैं, दिव्य रत्नोंकी कान्तिसे आकीर्ण दिव्य ध्वजाओंसे व्याप्त ॥ ६१ ॥ दिव्य वस्त्र और पताकाओंसे अलंकृत दिव्य गहनोंसे भूषित दिव्य मालाओंसे व्याप्त दिव्य गंधसे अधिवासित ॥ ६२ ॥ चारों ओर सुन्दर वितानोंसे व्याप्त दिव्य गन्धर्व अप्सराओंसे समाकीर्ण ॥ ६३ ॥

अनुज्ञाता नरेन्द्रेण जरासंधेन धीमता ॥ भीष्मकं पुरतः कृत्वा प्रयाताः स्वबलैर्वृताः ॥ ५८ ॥ भीष्मकश्च महाबाहुस्स्वबलेन समन्वितः ॥ जगाम पार्थिवैस्सार्द्धं दह्यमानेन चेतसा ॥ ५९ ॥ यत्र कृष्णो महाबाहुः कैशिकस्य निवेशने ॥ दूरादेव प्रकाशन्ती पताकाध्वजमालिनी ॥ ६० ॥ शुभा देवसमा रम्या स्नानहेतोरिहागता ॥ दिव्यरत्नप्रभाकीर्णा दिव्यध्वजसमाकुला ॥ ६१ ॥ दिव्याम्बरपताकाढ्या दिव्याभरणभूषिता ॥ दिव्यस्रग्दामकलिला दिव्यगन्धाधिवासिता ॥ ६२ ॥ विमानयानैश्श्रीमद्भिस्समन्तात्परिवारिता ॥ दिव्याप्सरोगणाश्चैव विद्याधरगणास्तथा ॥ ६३ ॥ गन्धर्वा मुनयश्चैव किन्नराश्च समन्ततः ॥ उपगायन्ति देवेशमम्बरान्तरमाश्रिताः ॥ ६४ ॥ स्तुवन्ति मुनयश्चैव सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ देवदुन्दुभयश्चैव स्वयमेवानदन्दिवि ॥ ६५ ॥ पञ्चयोनिसमुत्थानि गन्धचूर्णान्यनेकशः ॥ समन्तात्पात्यमानानि चाकाशस्थैर्दिवौकसैः ॥ ६६ ॥ स्वयमागत्य देवेन्द्रो देवैस्सह शचीपतिः ॥ विमानवरमारुह्य सप्रकाशस्स्थितोऽम्बरे ॥ ६७ ॥

गन्धर्व मुनि किन्नर यह सब जिनकी स्तुति गान कर रहे हैं और आकाशमें स्थित हैं ॥ ६४ ॥ मुनि सिद्ध और अप्सरा स्तुति करती हैं, और आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभी बजती हैं ॥ ६५ ॥ मूल छाल पत्र पुष्प फल अर्थात् मंदार पारिजात सन्तानक कल्पवृक्ष हरिचन्दन वृक्षोंकी सुगंधिका चूर्ण देवता आकाशसे त्याग करते थे ॥ ६६ ॥ देवताओंसहित शचीपति स्वयं आकर विमानमें स्थित हो आकाशमें स्थित हुए ॥ ६७ ॥

आठों लोकपाल अपनी २ दिशामें स्थित हुए गाते नाचते और अनेक प्रकारसे स्तुति करते थे ॥६८॥ इस प्रकार महाशब्द सुनकर वे सब राजा प्रसन्ननेत्र हो सभामें प्रविष्ट हुए ॥६९॥ महाबाहु कैशिक राजोंमेंसे आनकर सबको यथायोग्य सत्कार कर बैठाता हुआ ॥७०॥ इन राजोंके समागममें श्रीकृष्णसे निवेदन करनेपर सर्व मंगल पूजित श्रीमान् श्रीकृष्णजी बाहर आये ॥ ७१ ॥ तब आकाशमें स्थित कंठमें वस्त्र बंधे हुए घडोंके जल आमके रससहित मेघोंके समान वर्षाने लगे ॥७२॥ दिव्य सुवर्ण समूह और दिव्य पुष्पोंसे युक्त गंध चूर्ण राजोंके अभिषेकके निमित्त देकर॥७३॥

अष्टौ ये लोकपालास्ते स्वासु दिक्षु समास्थिताः ॥ उपगायन्ति नृत्यन्ति स्तुवन्ति च समन्ततः ॥ ६८ ॥ श्रुत्वा सुतुमुलं नादं सर्व एव नराधिपाः ॥ विस्मयोत्फुल्लनयना विविशुस्ते सभां शुभाम् ॥ ६९ ॥ कैशिकश्च महाबाहुरुपगम्य नराधिपान् ॥ प्रवेशयामास बली प्रतिपूज्य यथाविधि ॥ ७० ॥ निवेदिते सुरश्रेष्ठ पार्थिवानां समागमे ॥ निर्जगाम हरिश्श्रीमान् सर्वमङ्गलपूजितः ॥७१॥ ततोऽम्बरस्थास्ते दिव्याः कलशाश्चैलकण्ठिनः ॥ सहकारसमायुक्ता ववर्षुर्जलदा इव ॥ ७२ ॥ दिव्यकाञ्चनरत्नौघैर्दिव्यपुष्पसमन्वितैः ॥ गन्धचूर्णविमिश्रैश्च राजेन्द्रस्याभिषेचने ॥७३॥ यथोक्तविधिपूर्वेण अभिषिच्य जनार्दनम् ॥ दर्शयित्वा नरेन्द्राणां दिव्यैराभरणैश्शुभः ॥ ७४ ॥ दिव्याम्बरविचित्रैश्च दिव्यमाल्यानुलेपनैः ॥ सत्कृत्य विधिवद्राज्ञ उपविष्टो जनार्दनः ॥ ७५ ॥ शुभे देवसभे रम्ये स्नानहेतोरिहागते ॥ उपास्यमानो यदुभिर्विदर्भैश्च नराधिपैः ॥ ७६ ॥ वैनतेयश्च बलवान्कामरूपी नराकृतिः ॥ दक्षिणं पार्श्वमाश्रित्य आसनस्थो महाबलः ॥ ७७ ॥

यथोक्त विधिपूर्वक जनार्दनका अभिषेक कर और दिव्य आभरणोंसे श्रीकृष्णको दर्शनीय करके॥७४॥ दिव्य वस्त्र और दिव्य मालासे अनुलेपनसे सत्कार करके विधिपूर्वक जनार्दनका अभिषेक किया ॥७५॥ सुन्दर देवताओंके दिये सिंहासनमें श्रीकृष्ण बैठे,जब बैठे तब यदुवंशी और विदर्भदेशवासी उनकी उपासना करने लगे॥७६॥उस समय वह गरुडजी कामरूपधारी होनेसे मनुष्यका आकार धारण किये दक्षिणपार्श्वमें स्थित हुए॥७७॥

क्रथ और कैशिक वीर वामपार्श्वमें स्थित हुए, महात्मा राजा देवताओंकी अनुमतिसे स्थित हुए ॥ ७८ ॥ बाईं ओर वृष्णि अंधक महारथी सात्यकी आदि महावीर स्थित हुए ॥ ७९ ॥ सूर्यकी समान कान्तिमान् दिव्य वस्त्र बिछे हुए बिछौनेपर देवताओंके साथ इन्द्रकी समान श्रीकृष्णको स्थित देखा ॥ ८० ॥ वे राजा प्रसन्नतापूर्वक उनके मंत्रियोंसे सुनाये गये जब सब राजा यथायोग्य पूजा कर चुके ॥ ८१॥ और सुखपूर्वक अपने आसनोंपर बैठे, उस समय सब शास्त्रका जाननेवाला महापंडित कैशिक ॥ ८२ ॥ यथायोग्य श्रीकृष्णका पूजन कर बोला; हे राजो ! तुम ज्ञानहीन हो जो इनको

क्रथकैशिकौ च वीरौ वामपार्श्वे तथासने ॥ उपविष्टौ महात्मानौ देवस्यानुमते नृपौ ॥ ७८ ॥ तथैव वामपार्श्वे तु वृष्ण्यन्धकमहारथाः ॥ सात्यकिप्रमुखा वीरा उपविष्टा महाबलाः ॥ ७९ ॥ भास्करप्रतिमे दिव्ये दिव्यास्तरणविस्तृते ॥ सुखोपविष्टं श्रीमन्तं देवैरिव शचीपतिम् ॥ ८० ॥ सचिवैः श्रावितास्सर्वे प्रविष्टास्ते नराधिपाः ॥ यथार्हेण च संपूज्य राजानस्सर्व एव ते ॥ ८१ ॥ सुखोपविष्टास्ते स्वेषु आसनेषु नराधिपाः ॥ कैशिकस्तु महाप्राज्ञस्सर्वशास्त्रार्थवित्तमः ॥ ८२ ॥ पूजयित्वा यथान्यायमुवाच वदतां वरः ॥ कौशिक उवाच ॥ अविज्ञाता नृपास्सर्वे मानुषोऽयमिति प्रभो ॥ ८३ ॥ भवन्तमुपरुद्धानां देव त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ न मे वैरः प्रवसति एकाहमपि कौशिक ॥ ८४ ॥ विशेषेण नरेन्द्राणां क्षत्रधर्मेऽवतिष्ठताम् ॥ योद्धव्यमिति धर्मेण अधर्मे तु पराङ्मुखे ॥ ८५ ॥ तेषां किं हेतुना कोपः कर्तव्यस्त्ववनीश्वराः ॥ यद्वृत्तं तदतिक्रान्तं ये मृतास्ते दिवं गताः ॥ ८६ ॥ एष धर्मो नृलोकेऽस्मिन् जायन्ते च म्रियन्ति च ॥ तस्मादशोच्यं भवतां मृतार्थे च नराधिपाः ॥ क्षन्तव्यं रोचतेऽस्माकं वीतवैरा भवन्तु ते ॥ ८७ ॥ ॥१४८॥

मनुष्य मानते हो ॥ ८३ ॥ हे देव ! जो इन्होंने तुमसे विरुद्धाचरण किया उसे क्षमा कीजिये ॥ ८४ ॥ श्रीकृष्णजी बोले; हे कैशिक ! मेरे हृदयमें एक दिनभी वैर स्थित नहीं होता और क्षत्रधर्ममें स्थित क्षत्रियोंपर विशेष करके मेरा वैर नहीं है, धर्मसे युक्त और पराङ्मुखसे अधर्म होता है ॥ ८५ ॥ हे राजो ! उनपर क्रोध करनेसे क्या है जो हो गया सो बीत गया जो मृतक हुए वे स्वर्गको गये ॥ ८६ ॥ लोकका जन्म और मरणही है, इस कारण

हे राजाओ ! अब मृतक हुओंका तो शोच करना उचित नहीं, अब उसे क्षमा करो और वैरहीन हो ॥ ८७ ॥ वैशंपायन बोले, ऐसा कह श्रीकृष्ण उनको समझाकर कैशिकका मुख देख वह महाकान्तिमान् चुप हुए ॥ ८८ ॥ इसी समय नीति जाननेवाले भीष्मक यथायोग्य श्रीकृष्णकी पूजा कर बोलनेमें चतुर बोले ॥ ८९ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ॥ छ ॥ भीष्मक बोले, बालभावसे मेरा पुत्र पुत्रीको स्वयंवरमें देनेकी इच्छा करता है, परन्तु मेरी इच्छा नहीं ॥ १ ॥ कारण कि स्वयंवरको मैं बालभाव समझता हूं, जो कि एक एकको देखकर वर ले

वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा नरेन्द्रांस्तानाश्वास्य मधुसूदनः ॥ कैशिकस्य मुखं वीक्ष्य विरराम महाद्युतिः ॥ ८८ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मको नयकोविदः ॥ पूजयित्वा यथान्यायमुवाच वदतां वरः ॥ ८९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ भीष्मक उवाच ॥ पुत्रो मे बालभावेन भगिनीं दातुमिच्छति ॥ स्वयंवरे नरेन्द्राणां न चाहं दातुमुत्सहे ॥ १ ॥ अतीव बालभावत्वाद्दातुमिच्छेन्मतिर्मम ॥ एका ह्येकं समालोक्य वरयिष्याति मे मतिः ॥ २ ॥ अतः प्रसादयिष्ये त्वां पुत्रदुर्नयहेतुना ॥ प्रसादं कुरु देवेश क्षंतुमर्हसि मे प्रभो ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ बालभावेन पुत्रेण चालितं नृपमण्डलम् ॥ यदा भवति वै प्रौढः कीदृशोऽविनयो भवेत् ॥ ४ ॥ सूर्येन्दुसदृशाँल्लोकांस्तपसोपार्जितश्रियः ॥ लोकेऽस्मिन्नरदेवानां महाकुलसमुद्भवान् ॥ ५ ॥ एकस्यापि नृपस्याग्रे मोहाद्यो वितथं वदेत् ॥ न स तिष्ठाति लोकेऽस्मिन्निर्देहद्दण्डवाहिना ॥ ६ ॥ एष धर्मो नरेन्द्राणामिति ते विदितं प्रभो ॥ लोकधर्मं पुरस्कृत्य पुरा गीतं स्वयंभुवा ॥ ७ ॥

ऐसा कहा जाता है ॥ २ ॥ इस कारण पुत्रकी दुर्नीतिके कारण आपको प्रसन्न करता हूं. हे प्रभो ! प्रसन्न हो मुझे क्षमा कीजिये ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण बोले, तुम्हारे पुत्रने बालभावसे राजमण्डलको चलायमान कर दिया है जब यह बडा होगा तो कैसा अविनयी होगा ॥ ४ ॥ जो तपसे उत्पन्न किये सूर्य चन्द्रमाकी समान कान्तिमान् लोक महाकुलमें उत्पन्न हुए राजोंको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ एक किसी राजाके आगे भी मोहसे असत्य बोलता है वह इस लोकमें नहीं रहता और उसपर अग्निरूपी दंड पडता है ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! वह राजाके धर्म आपको विदितही हैं; लोकधर्मको देखकर यह ब्रह्माजीने

पूर्वकालमें कह दिया है ॥ ७ ॥ हे मनुजेश्वर ! उनमें तुम्हारा अग्रज पुत्र उनके अगुआ कैसे हुआ है. हे राजेन्द्र ! राजोंकी सभामें यह आप मिथ्या कहते हैं ॥ ८ ॥ कि इस प्रकार कार्य करता हुआ तुम्हारा पुत्र तुमको अविज्ञात कैसे है, यह मुझे महासन्देह है ॥ ९ ॥ सूर्य चन्द्रमाकी समान कान्तिमान् आये हुए राजोंके यथायोग्य सत्कार किये हैं ॥ १० ॥ इसी प्रकार रथ घोडे हाथियोंका महासंघट्ट हो रहा है. हे राजन् ! आपने अबतक अपने पुत्रकी चेष्टा कैसे न जाना ॥ ११ ॥ इस चतुरंगबलके आनेमें विपद न हो यह आपने क्यों कर जाना, इसमें मुझे महासंदेह है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! मेरे

कथं तव सुतस्तेषामग्रतोमनुजेश्वर ॥ वक्तुमर्हति राजेन्द्र वितथं राजसंसदि ॥ ८ ॥ तादृशं रङ्गमतुलं कारयंस्तनयस्तव ॥ कथं त्वया ह्यविज्ञात इति मे संशयो महान् ॥ ९ ॥ आगतानां नरेन्द्राणामनलार्केन्दुवर्चसाम् ॥ यथार्हेण तु संपूज्य आतिथ्यं कृतवानसि ॥ १० ॥ रथाश्वनरनागानां विमर्दमतुलं तथा ॥ कथं न ज्ञातवान्राजंस्तव पुत्रस्य चेष्टितम् ॥ ११ ॥ विषादो न भवेदत्र चतुरङ्गबलागमे ॥ कथं न ज्ञायते राजन्निति मे बुद्धिसंशयः ॥ १२ ॥ ममागमनमेवेह प्रायेण न हितं तव ॥ अतो न कृतमातिथ्यमपात्राय नरेश्वर ॥ १३ ॥ पात्रेभ्यो दायतां कन्या मामपास्य नरेश्वर ॥ ममागमनदोषेण कथं कन्यां न दास्यसे ॥ १४ ॥ कन्याविघ्नं च कुर्वाणो नरके परिपच्यते ॥ इति धर्मविदैर्गीतं मन्वादिभिर्नरोत्तमैः ॥ १५ ॥ अतोर्थे न प्रविष्टोऽहं रङ्गमध्ये विशांपते ॥ विदित्वा न कृताातिथ्यं नरदेव तवालयम् ॥ १६ ॥ ह्रियाभिभूतो राजन्द्र पार्थिवोऽहं नराधिप ॥ विदर्भनगरे राजन्बलविश्रामहेतुना ॥ १७ ॥

आगमनसे तुमने हित न माना. हे राजन् ! इसी कारण अपात्रका सत्कार नहीं किया गया ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मुझे छोडकर आप पात्रके निमित्त कन्यादान कीजिये मेरे आगमनके दोषसे आप किस प्रकार कन्याको नहीं देते हैं ॥ १४ ॥ कन्यादानमें विघ्न करनेहारे नरकमें पडते हैं, यह धर्म जाननेवाले मनु आदिकोंने कहा है ॥ १५ ॥ इसी कारण हे राजन् ! मैं तुम्हारी सभामें नहीं गया. हे नरदेव ! मुझे अपने स्थानमें जानकरभी आपने अतिथिसत्कार न किया ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इसी कारण मैं लाजयुक्त हो पृथ्वीपति होकरभी सेनाके विश्राम करनेके कारणसे विदर्भनगरमें न प्रविष्ट हुआ ॥ १७ ॥

हमारा अतिथिसत्कार कैशिकने प्रिय अतिथिकी समान किया, और जैसे स्वर्गमें गरुड केशव रहते हैं, इसी प्रकार इनके यहां रहे॥ १८॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार वाग्वज्र प्रहार करते हुए श्रीकृष्णके वचनोंपर मनोहर वचनरूपी जलोंसे अग्निके बुझानेहारे वचन राजा कहने लगे ॥ १९ ॥ भीष्मक बोले, हे लोकेश लोकपति! प्रसन्न हो मेरी रक्षा करो मैं अज्ञानान्धकारमें पडा हुआ हूं आप मुझे ज्ञाननेत्र दीजिये ॥ २० ॥ हम मनुष्य हैं, हमारी यह मानवी दृष्टि है, इससे आपको यथार्थ नहीं जान सक्के, विना विचार किये काम सिद्ध नहीं होते ॥ २१ ॥ हे देवताओंकेभी देव! तुमको शरण मैं प्राप्त हुआ देख मेरी

आवाभ्यां कृतमातिथ्यं कैशिकस्तु प्रियातिथिः ॥ उषितौ च यथा स्वर्गे पुरा गरुडकेशवौ ॥ १८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमेवं ब्रुवाणं तं कृष्णं वाग्वज्रचोदितम् ॥ श्लक्ष्णवाचाम्बुनासिच्य शमितोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ १९ ॥ भीष्मक उवाच ॥ प्रसीद देव लोकेश पाहि मां लोकशासन ॥ अज्ञानतमसाविष्टं ज्ञानचक्षुष्प्रदो भव ॥ २० ॥ मानुष्ये मांसचक्षुष्ट्वादसम्यग्विदिता वयम् ॥ न प्रसिद्ध्यन्ति कर्माणि क्रियतामविचारणात् ॥२१॥ भवन्तं शरणं प्राप्य देवानामपि दैवतम् ॥ सम्यग्भवतु मे दृष्टिः संपश्यन्तु च मे क्रियाः ॥२२॥ अनिष्पन्नामपि क्रियां नयोपेतां विचक्षणाः ॥ फलदां हि प्रकुर्वन्ति महासेनापतिर्यथा ॥ २३ ॥ भवन्तं शरणं प्राप्य नातिबाधति मे भयम् ॥ यन्मया चिन्तितं कार्यं तद्भवाञ्छ्रोतुमर्हति ॥२४॥ न दातुमिच्छेत्कन्यां वै पार्थिवेभ्यस्स्वयंवरे ॥ प्रसादं कुरु देवेश न कोपं कर्तुमर्हसि ॥२५॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ वचनेन किमुक्तेन त्वया राजन् महामते ॥ स्वकन्यां दास्यसे नेति कोऽत्र नेता तवानघ॥२६॥

दृष्टि श्रेष्ठ हो जाय, मेरी क्रिया सम्पन्न हो जाय ॥ २२ ॥ चतुरपुरुष प्राप्त न होनेवाली क्रियाकोभी नीतिसे फलवाली कर देते हैं, जैसे सेनापति सेनाको बढाता है ॥ २३ ॥ अब तुम्हारी शरण प्राप्त हो मुझे भय प्राप्त नहीं है, जो कार्य मैंने विचारा है यह आप सुनिये ॥ २४ ॥ राजोंके सन्मुख कन्याको स्वयंवरमें मेरा पुत्र तुमको कन्या देनी नहीं चाहता अथवा कदाचित् तुम्हें वरै इससे पुत्र स्वयंवरकी इच्छा नहीं करता. हे देवेश! आप क्रोध न करके प्रसन्न हूजिये ॥२५॥ श्रीकृष्ण बोले; हे राजन्! महाबुद्धिमान् तुम्हारे कहे इन वचनोंसे क्या है जो आप अपनी कन्या न दोगे तो हे पापरहित! इसमें

तुम्हारा नियंता कौन होगा ॥ २६ ॥ मुझे दो औरको मत दो यह दोनों बात मैं नहीं कह सकता, केवल रुक्मिणीका दिव्यमूर्तित्वही इस मेरे सम्बन्धमें कारण है ॥ २७ ॥ प्रथम तौ मेरुकूटमें देवताओंने अंशावतार लेनेकी इच्छा की, तब लक्ष्मीसे कहा प्रथम तुम अपने स्वामीके सहित जाओ ॥२८॥ मनुष्यलोकमें कुंडिन नगरमें राजा भीष्मककी रानीके गर्भसे तुम जन्म लो. हे सुश्रोणि ! ऐसा करनेसे इन्द्रकी रक्षा होगी ॥ २९ ॥ हे राजन् ! इससे मैं तुमसे कहता हूं यह बनावटका वचन नहीं है. यह सुनकर विचार कर इच्छानुसार करो ॥ ३० ॥ रुक्मिणी तुम्हारी कन्या साधारण मानुषी नहीं है यह

मा देहीति न चाख्येयं ददस्वेति न मे वचः ॥ रुक्मिण्या दिव्यमूर्तित्वं संबन्धे कारणं मम ॥ २७ ॥ मेरुकूटे पुरा देवैः कृतमंशावतारणम् ॥ तदा निसृष्टा सा पूर्वं गच्छ त्वं पतिना सह ॥ २८ ॥ मानुष्ये कुण्डिनगरे भीष्मकस्याङ्गनोदरे ॥ जायस्व विपुलश्रोणि प्रत्यवेक्ष्य च वासवम् ॥ २९ ॥ तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि राजन्नकृतकं वचः ॥ श्रुत्वा स्वयं विनिश्चित्य यद्युक्तं तत्करिष्यति ॥ ३० ॥ रुक्मिणी नाम ते कन्या न सा प्राकृतमानुषी ॥ श्रीरेषा ब्रह्मवाक्येन जाता केनापि हेतुना ॥ ३१ ॥ न च सा मनुजेन्द्राणां स्वयंवरविधिक्षमा ॥ एका त्वेकाय दातव्या इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ३२ ॥ न च तां शक्यसे राजँल्लक्ष्मीं दातुं स्वयंवरे ॥ सदृशं वरमालोक्य दातुमर्हसि धर्मतः ॥ ३३ ॥ अतोऽर्थं वैनतेयोऽयं विघ्नकारणहेतुना ॥ आगतः कुण्डिनगरे देवराजेन चोदितः ॥ ३४ ॥ अहं चैवागतो राज्ञां द्रष्टुकामो महोत्सवम् ॥ तां च कन्यां वरारोहां पद्मेन रहितां श्रियम् ॥ ३५ ॥ क्षन्तव्यमिति यत्प्रोक्तं त्वया राजन्ममाग्रतः ॥ युक्तिपूर्वमहं मन्ये कलुषाय न पार्थिव ॥ ३६ ॥

लक्ष्मी ब्रह्माके वचनसे किसी प्रकार जन्म ले आई है ॥ ३१ ॥ यह राजोंके स्वयंवरविधिमें समर्थ नहीं है एकही किसीको देनी चाहिये यह धर्मकी मर्यादा है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! आप उस लक्ष्मीको स्वयंवरमें देनेके योग्य नहीं हो सदृश वर देखकर आप उसे धर्मपूर्वक प्रदान कीजिये ॥ ३३ ॥ इसी कारण विघ्ननिवारणके निमित्त यह गरुडजी इन्द्रके भेजे कुण्डिन पुरमें आये हैं ॥ ३४ ॥ और मैंभी राजोंका महोत्सव देखनेको आया था, उस श्रेष्ठ मुखवाली कन्याको कमलरहित लक्ष्मीसमान देखनेकी इच्छा थी ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! जो आपने मुझसे कहा कि क्षमा करो सो यह मैं युक्तिपूर्वक मानता हूं

हीनताके निमित्त नहीं॥२६॥कारण कि मैं पहलेही कह चुका हूं मैं तुम्हारे राज्यमें सौम्यरूप हो आया हूं और इसी कारण हे भगवन्! मैं क्षान्त हुआ हूं ॥२७॥ क्षमा शील गुण बहुत हैं वह दोष दूर करने समर्थ हैं फिर हे राजन् ! हम सरीखे पुरुषोंके हृदयमें पाप कैसे वस सकता है ॥२८॥ और सत्कुलमें उत्पन्न सत्यसम्पन्न धर्मवादी आप सरीखे महात्माओंमें कलुष कैसे प्रवृत्त हो सकता है ॥२९॥ जब मैं सेनासहित आता हूं तब युद्ध नहीं करता सहनशील होता हूं शत्रुकी सेनामें मैं सेना ले नहीं जाता किन्तु इकला जाता हूं ॥४०॥ गरुडपर स्थित असहनशील सेनामें जाता हूं उस

पूर्वमेव मयाख्यातं येनास्मि विषये तव आगतस्सौम्यरूपेण तेनैव क्षान्तवान्विभो ॥ ३७ ॥ क्षान्तेषु गुणबाहुल्यं दोषापहरणं क्षमा ॥ कथमस्मद्विधे राजन्कलुषो वसते हृदि ॥ ३८ ॥ कुलजे सत्त्वसंपन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ॥ भवादृशे कथं राजन्कलुषो भुवि वर्तते ॥३९॥ क्षान्तोऽयमिति मन्तव्यं मम सेनासहागतम् ॥ न चाहं सेनया सार्द्धं यास्यामि रिपुवाहिनीम् ॥४०॥ अक्षान्तश्चारिसेनायां यास्यामि द्विजवाहने ॥ स्थितस्सोमार्कसंकाशान्यायुधानि करैर्वृतः ॥ ४१ ॥ मान्योऽस्माकं त्वया राजन्वयसा च पिता समः ॥ पालयस्व पुरीं सम्यक् क्षत्रेषु पितृवद्वस ॥ ४२ ॥ कलुषो नाम राजेन्द्र वसेत्कापुरुषेषु वै ॥ शूरेषु शुद्धभावेषु कलुषो वसते कथम् ॥४३॥ जानीध्वमेषा मे वृत्तिः पुत्रेषु पितृवद्वयम् ॥ इमावपि च राजानौ विदर्भनगराधिपौ ॥४४॥ आतिथ्यकरणेऽस्माकं स्वराज्यं दत्तवानुभौ ॥ तेन दानफलेनास्य दश पूर्वा दिवं गताः ॥ ४५ ॥

समय हाथमें आयुध चन्द्रसूर्यके समान विदित होता हूं ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! हम तुमको पिताके समान जानकर मान्य कर करते हैं अच्छी प्रकार पुरीकी पालना करो, क्षत्रियोंमें पिताके समान वास करो ॥ ४२ ॥ हे राजेन्द्र ! कायर पुरुषोंमें कलुष वास करता है शुद्धभाववाले पुरुषोंमें कलुष नहीं वसता है ॥ ४३ ॥ यह हमारी वृत्ति है, कि पितरोंमें हम पिताके समान भाव रखते हैं, और यह विदर्भ देशके दोनों राजाने ॥ ॥ ४४ ॥ अतिथिसत्कारमें अपने सब राज्य हमको दे दिया इसके दानफलसे दश पितर स्वर्गको चले गये॥ ४५ ॥

और आगेके होनेवाले पुत्र पौत्र दश प्राणी आगे होनेवाले राजा भी देवलोकको जांयगे ॥ ४६ ॥ यह बहुत समयतक अकंटक राज्य करके इच्छानुसार मोक्षसुखके आनंदको प्राप्त होंगे ॥४७॥ जो महाभाग्यवान् राजा अभिषेक करनेको आये हैं, वेभी समयपर स्वर्गमें जांयगे ॥ ४८ ॥ तुम्हारा कल्याण हो मैं अब गरुडके सहित भोजराजसे पालित मनोहर मथुरा पुरीको जाता हूं ॥ ४९ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार भीष्मकसे यदुनंदनने कहा, तब राजा और विदर्भवंशियोंसे सलाह करके श्रीकृष्ण सभामेंसे निकल कर रथके निकट गये॥५०॥तब राजर्षि भीष्मक

भविष्याश्चैव राजानः पुत्रपौत्रा दशावराः ॥ तेऽपि तत्रव यास्यन्ति देवलोकं नराधिपाः ॥४६॥ अनयोस्सुचिरं कालं भुक्त्वा राज्यमकण्टकम् ॥ यदाभिलाषो मोक्षस्य यास्येते निर्वृतिं सुखम् ॥४७॥ नरेन्द्राश्च महाभागा येऽभिषेचितुमागताः ॥ कालेन तेऽपि यास्यन्ति देवलोकं त्रिविष्टपम् ॥४८॥ स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि वैनतेयसहायवान् ॥ नगरीं मथुरां रम्यां भोजराजेन पालिताम् ॥४९॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा तु राजानं भीष्मकं यदुनन्दनः ॥ राज्ञश्चैवमुपामन्त्र्य वैदर्भाभ्यां विशेषतः ॥ सभान्निष्क्रम्य देवेशो जगाम रथमन्तिकम् ॥५०॥ ततः प्रहृष्टो राजर्षिर्भीष्मकः किल केशवम् ॥ ते सर्वे च महीपाला विषण्णवदनाऽभवन्॥५१॥ आद्यं स्वायंभुवं रूपं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ सहस्रपात्सहस्राक्षं सहस्रभुजविग्रहम् ॥ ५२ ॥ सहस्रशिरसं देवं सहस्रमुकुटोज्ज्वलम् ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ ५३ ॥ दिव्याभरणसंयुक्तं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ कृष्णं रक्तारविन्दाक्षं चन्द्रसूर्याग्निलोचनम् ॥ ५४ ॥ दृष्ट्वा स राजा राजेन्द्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥ वाङ्मनःकायसंयुक्तं स्तोतुमारब्धवांस्तदा ॥ ५५ ॥

प्रसन्न हुआ, परन्तु केशवको जाता देख वे सब राजा विवर्णवदन हुए॥५१॥ आद्य,स्वयंभूका रूप,सुरासुरसे नमस्कृत,सहस्र चरण,सहस्र नेत्र,सहस्र भुजावाले ॥५२॥ सहस्र शिर, सहस्र मुकुटके समान उज्ज्वल दिव्य माला वस्त्रधारी, दिव्य गंधका अनुलेपन लगाये ॥ ५३ ॥ दिव्य आभरणसे संयुक्त, दिव्य आयुधधारी, लाल कमलनेत्र चन्द्रसूर्यके समान, अग्निके समान नेत्र ॥ ५४ ॥ कृष्णराजेन्द्रको देखकर वह राजा हाथ जोडकर प्रणाम

कर वाणी मन कायासे श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे ॥ ५५ ॥ भीष्मक बोला; हे देवदेव अनादिनिधन ! आपके निमित्त नमस्कार है, हे शाश्वत आदि-देव नारायण परायण ! ॥ ५६ ॥ स्वयंभु, विश्वस्थाणु, ब्रह्मस्वरूप, पद्मनाभ जटाधारी दंडी पिंगल॥५७॥ हंसप्रभ हंसरूप चक्ररूपके निमित्त नमस्कार है वैकुंठ ! अज परमात्मारूपके निमित्त नमस्कार है ॥ ५८ ॥ सद्भावयुक्त पुराण पुरुषके निमित्त नमस्कार है, पुरुषोत्तम युक्त निर्गुण पुरुषके निमित्त नमस्कार है ॥ ५९ ॥ हे सुरोत्तम ! मैं तुम्हारा भक्त हूं मुझे वर दो. हे लोकनाथ ! तुम विष्णु और ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो ॥ ६० ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार

भीष्मक उवच ॥ देवदेव नमस्तुभ्यमनादिनिधनाय वै ॥ शाश्वतायादिदेवाय नारायणपरायण ॥५६॥ स्वयंभुवे च विश्वाय स्थाणवे वेधसाय च॥ पद्मनाभाय जटिने दंडिने पिङ्गलाय च ॥५७॥ हंसप्रभाय हंसाय चक्ररूपाय वै नमः ॥ वैकुण्ठाय नमस्तस्मै अजाय परमात्मने ॥ ५८ ॥ सदसद्भावयुक्ताय पुराणपुरुषाय च ॥ पुरुषोत्तमाय युक्ताय निर्गुणाय नमोऽस्तु ते ॥ ५९ ॥ वरदो भव मे नित्यं त्वद्भक्ताय सुरोत्तम ॥ लोकनाथोऽसि नाथ त्वं विष्णुस्त्वं विदितात्मनाम् ॥ ६० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं स्तुत्वा महादेवं नृपाणामग्रतो नृपः॥ महार्हमणिमुक्ताभिर्वज्रवैदूर्यहासिनम् ॥ ६१ ॥ शातकुम्भस्य निचयं कृष्णाय प्रददौ नृपः ॥६२॥ पुनश्चक्रे नमस्कारं वैनतेये महाबले ॥ ६२ ॥ भीष्मक उवाच ॥ नमस्तस्मै खगेन्द्राय नमो मारुतरंहसे ॥ कामरूपाय दिव्याय काश्यपाय च वै नमः ॥ ६३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इति संक्षेपतः स्तुत्वा सत्कृत्य वरभूषणैः ॥ ततो विसर्जयामास कृष्णं कमललोचनम् ॥ ६४ ॥ अनुजग्मुर्नृपाश्चैव प्रस्थितं वासवानुजम् ॥ प्रतिगृह्य च सत्कारं नृपानामन्त्र्य वीर्यवान् ॥ ६५ ॥

भीष्मजीने महादेवकी स्तुति राजोंके सन्मुख की, फिर महामणी मोती वज्र वैदूर्यकी कान्तिको लेजानेहारे ॥ ६१ ॥ सुवर्णके कुंभ श्रीकृष्णके निमित्त दिये फिर पीछे गरुडजीको नमस्कार किया ॥ ६२ ॥ भीष्मक बोले; खगेन्द्र पवनकी समान गमन करनेवाले कामरूप दिव्यशरीर कश्यपपुत्रके निमित्त नमस्कार है ॥ ६३ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार संक्षेपसे स्तुति कर भूषण भेंट देकर श्रीकृष्णको राजाने विदा किया ॥ ६४ ॥ श्रीकृष्णके चलनेपर

राजा उनके पीछे चले वह वीर्यवान् सत्कार ग्रहणकर और उनसे पूछकर ॥६५॥ दशों दिशाओंको प्रकाश करते हुए गरुडजीको आगेकर जो कि सौम्यरूप किये हुए थे ॥ ६६ ॥ वडे भारी रथसमूहोंसे घिरे हुए भेरी पटह बाजोंके शब्द शंख दुन्दुभीके शब्दोंसे॥६७॥हाथियोंके चिंघाड और घोडोंके हींसने,शूरोंके सिंहनाद रथोंके शब्दोंसे॥६८॥ महामेघके समान तुमुल शब्द हुआ. कृष्णचन्द्रके चले जानेपर वह आसन लेकर ॥ ६९ ॥ सभामेंसे देवता स्वर्गको गये इधर बडी भारी सेनाके सहित ॥७०॥ एक कोश जाकर श्रीकृष्णकी आज्ञा पाय वे सब राजा फिर स्वयंवरमें आये

जगाम मथुरां कृष्णो द्योतयानो दिशो दश ॥ वैनतेयं पुरस्कृत्य सौम्यरूपं खगोत्तमम् ॥ ६६ ॥ महता रथवृन्देन परिवार्य समन्ततः ॥ भेरीपटहनादेन शङ्खदुन्दुभिनिस्वनैः ॥६७॥ बृंहितेन च नागानां हयानां हेषितेन च ॥ सिंहनादेन शूराणां रथनेमिस्वनेन च ॥ ६८ ॥ तुमुलस्सुमहानासीन्महामेघरवोपमः ॥ गते कृष्णे महावीर्ये आदाय वरमासनम् ॥ ६९ ॥ सभामादाय देवाश्च प्रययुस्त्रिदशालयम् ॥ महता चतुरङ्गेण बलेन परिवारिताः ॥ ७० ॥ क्रोशमात्रमुपव्रज्य अनुज्ञाते जनार्दने ॥ प्रययुस्ते नृपास्सर्वे पुनरेव स्वयंवरम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कृष्णाभिषेको नाम एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः प्रयाते वसुदेवपुत्रे नराधिपा भूषणभूषिताङ्गाः ॥ सभां समाजग्मुः सुरेन्द्रकल्पाः प्रबोधनार्थं गमनोत्सवास्ते ॥ १ ॥ सभागतान्सोमरविप्रकाशान्सुखोपविष्टान्रुचिरासनेषु ॥ समीक्ष्य राजा सुनयार्थवादी जगाद वाक्यं नरराजसिंहः ॥ २ ॥ स्वयंवरकृतं दोषं विदित्वा वो नराधिपाः ॥ क्षन्तव्यो मम वृद्धस्य दुदग्धस्य फलोदयम् ॥ ३ ॥ ॥१६२॥

॥ ७१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां कृष्णाभिषेको नाम एकपचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ वैशम्पायन बोले; श्रीकृष्णके जाने पर वे सब राजा अनेक प्रकारके भूषण धारण करके इन्द्रके समान वे राजा उस उत्सवके देखनेको चले ॥१॥ वे चन्द्रसूर्यके समान सभामें जाकर अपने आसनोंपर बैठे और राजा राजनीतिके कहनेवालोंको देख उनके बीचमें वचन बोला ॥ २ ॥ हे राजो ! तुम स्वयंवरके

दोष देखकर मुझ वृद्धके दुर्दैव फलके उदय होनेको देखकर क्षमा करो ॥ ३ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार वह उन सब राजोंके प्रति कहकर उन सब राजोंको जो मध्यदेशके थे भीष्मकने विदा किया ॥४॥ फिर पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणके राजोंको विदा किया, वे सब महाबली प्रसन्नमन राजा ॥५॥ यथायोग्य पूजन करके जाते हुए जरासंध, सुनीथ, महाबली दंतवक्र ॥ ६ ॥ सौभ, महाबली शाल्व राजा, महाकूर्म क्रथ, कैशिक और प्रवर वंशके राजा॥ ७ ॥ राजर्षि वेणुदारिक काश्मीराधिपति इत्यादि बहुतसे दक्षिण पथके राजा ॥८॥ एकान्तके वचन सुननेको भीष्मके निकट स्थित रहे

वैशम्पायन उवाच ॥ एवमाभाष्य तान्सर्वान्सत्कृत्य च यथाविधि ॥ ततो विसर्जयामास नृपांस्तान्मध्यदेशजान् ॥ ४ ॥ पूर्व-पश्चिमजांश्चैव उत्तरापथिकानपि ॥ तेऽपि सर्वे महेष्वासाः प्रहृष्टमनसो नराः ॥५॥ यथार्हेण च संपूज्य जग्मुस्ते नरपुङ्गवाः ॥ जरा-संधस्सुनीथश्च दन्तवक्रश्च वीर्यवान् ॥ ६ ॥ शाल्वस्सौभपतिश्चैव महाकूर्मश्च पार्थिवः ॥ क्रथकैशिकमुख्याश्च नृपाः प्रवरवंशजाः ॥ ७ ॥ वेणुदारिश्च राजर्षिः काश्मीराधिपतिस्तथा ॥ एते चान्ये च बहवो दक्षिणापथिका नृपाः ॥ ८ ॥ श्रोतुकामा रहोवाक्यं स्थिता वै भीष्मकान्तिके ॥ तान्वै समीक्ष्य राजेन्द्रस्स राजा भीष्मको बली ॥९॥ स्नेहपूर्णेन मनसा स्थितांस्तानवनीश्वरान् ॥ त्रिवर्गसहितं श्लक्ष्णं षड्गुणालंकृतं शुभम् ॥१०॥ उवाच नयसंपन्नं स्निधगम्भीरया गिरा ॥ भीष्मक उवाच ॥ भवतामवनीशानां समालोक्य नयान्वितम् ॥११॥ वचनं व्याहृतं श्रुत्वा कृतवान्कार्यमीदृशम् ॥ क्षन्तव्यं भवतां सद्भिर्वयं नित्यापराधिनः ॥१२॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा तु राजा स भीष्मको नयकोविदः ॥ उवाच सुतमुद्दिश्य वचनं राज संसदि ॥ १३ ॥

उनको देखकर महाबली राजा भीष्मक ॥ ॥९॥ स्नेहपूर्वक मनसे स्थित उन सब राजोंसे धर्म अर्थ काम और उन छः गुणोंके लक्षणपूर्वक॥१०॥ नीतिके भरे हुए वचन गंभीर वाणीसे बोले. भीष्मक बोले; नीतिमान् मेरे राजोंको देखकर ॥११॥ और वचन सुनकर मैंने यह कार्य किया था परन्तु आप हमारे वचन क्षमा करना, हम सदाके अपराधी हैं ॥ १२ ॥ वैशंपायन बोले; नीति जाननेवाले भीष्मकने इस प्रकार वचन

कहकर राजसभामेंही पुत्रसे वचन कहे ॥१३॥भीष्मक बोले;पुत्रकी चेष्टा देखकर मेरे नेत्र कातर हुए हैं,मैं जानता हूं हमारा यह पुत्र बालक है कारण कि पुरुषोत्तम पुरुष ॥ १४ ॥ कीर्तिमानोंमें श्रेष्ठ यथाभाग्य बलसे युक्त हो इस संसारमें अपनी कीर्ति स्थापन करते हैं, जो अपने बाहुबलसे स्वीकार की है ॥१५॥ स्त्रियोंमें श्रेष्ठ महाभागा देवकी धन्य है जिसने त्रिलोकीमें श्रेष्ठ केशवको गर्भमें रक्खा है ॥१६॥ कमललोचन श्रीकृष्ण लक्ष्मी से पूजितका जो अपने नेत्रोंसे नित्यप्रति मुख देखती है ॥१७॥ वैशंपायन बोले;राजसभामें राजाके ऐसा कहनेपर महा द्युतिमान् शाल्व राजाने कहा

भीष्मक उवाच ॥ पुत्रस्य चेष्टामालोक्य त्रासाकुलितलोचनः ॥ मन्ये बालानिमाँल्लोकान्स एष पुरुषः परः ॥१४॥ कीर्तिं कीर्तिमतां श्रेष्ठो यशश्च यशभाग्बली ॥ स्थापिता भुवि मर्त्येऽस्मिन्स्वबाहुबलमूर्जितम् ॥१५॥ धन्या खलु महाभागा देवकी योषितां वरा ॥ पुत्रं त्रिभुवनश्रेष्ठं कृत्वा गर्भेण केशवम् ॥१६॥ कृष्णं कमलपत्राक्षं श्रीपुञ्जममरार्चितम् ॥ नेत्राभ्यां स्नेहपूर्णाभ्यां वीक्षते मुखपङ्कजम् ॥१७॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं लालप्यमानं तु राजानं राजसंसदि ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा शाल्वराजो महाद्युतिः ॥१८॥ शाल्व उवाच ॥ अलं खेदेन राजेन्द्र सुताय रिपुमर्दिने ॥ क्षत्रियस्य रणे राजन्ध्रुवं जयपराजयौ ॥१९॥ नियता गतिर्मर्त्यानामेष धर्मस्सनातनः ॥ बलकेशवयोरन्यस्तृतीयः कः पुमानिह ॥ २० ॥ रणे योधयितुं शक्तस्तव पुत्रं महाबलम् ॥ रथातिरथवृन्दानामेक एव रणाजिरे ॥२१॥ रिपून् बाधयितुं शक्तो धनुर्गृह्य महाभुजः ॥ भार्गवास्त्रं महारौद्रं देवैरपि दुरासदम् ॥२२॥ सृजतो बाहुवीर्येण कः पुमान्प्रसहिष्यति ॥ अयं तु पुरुषः कृष्णो ह्यनादिनिधनोऽव्ययः ॥ २३ ॥

॥१८॥शाल्व राजा बोले; हे राजन् ! आप युद्धके निमित्त खेद न करिये कारण कि क्षत्रियोंको युद्धमें जय या पराजय अवश्य होती ही है ॥१९॥ मनुष्योंकी यही गति है यही सनातन धर्म है बलराम कृष्णके सिवाय संसारमें इस समय तीसरा पुरुषही कौन है ॥२०॥ जो युद्धमें महाबली तुम्हारे पुत्रसे युद्ध कर सके, यह इकलाही सहस्रों रथियोंके बीचमें ॥ २१ ॥ धनुष धारण कर यह महाबाहु शत्रुओंके निवारण करनेको समर्थ है, महारौद्र देवताओंको भी दुरासद है ॥ २२ ॥ इसने अपने बाहुबलसे जो पराक्रम किया है उसे दूसरा पुरुष कौन सह सकेगा,

और यह कृष्ण अनादिनिधन अविनाशी है ॥ २३ ॥ इनको तो इस लोकमें स्वयं शिव भी नहीं जीत सकते। हे राजन् ! आपका पुत्र भी सब शास्त्रार्थके तत्वका जाननेवाला है ॥ २४ ॥ देव ईशानरूप कृष्णको जानकर युद्ध नहीं करता, हां इस समय युद्धमें यवनोंका अधिपति जीत सकता है ॥ २५ ॥ यह कालयवन राजा श्रीकृष्णसे भी अवध्य है, क्योंकि उसके निमित्त गर्गमुनिने किया ॥ २६ ॥ बारह वर्षतक लोहका चूर्ण भोजनकर शिवका आराधन किया है, पुत्रकी इच्छासे गार्ग्य मुनिने शिवको प्रसन्न किया और वर लिया ॥ २७ ॥ यही वर शिवसे मांगा

तं विजेता नृलोकेऽस्मिन्नापि शूलधरस्स्वयम् ॥ तव पुत्रो महाराज सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥२४॥ विदित्वा देवमीशानं न योधयति केशवम् ॥ अद्य तस्य रणे जेता यवनाधिपतिर्नृप ॥२५॥ स कालयवनो नाम अवध्यः केशवस्य ह ॥ तप्त्वा सुदारुणं घोरं तपः परमदुश्चरम् ॥ २६ ॥ रुद्रमाराधयामास द्वादशाब्दनयोऽशनः ॥ पुत्रकामेन मुनिना तोष्य रुद्रात्सुतो वृतः ॥ २७ ॥ माथुराणामवध्योऽयं भवेदिति च शंकरात् ॥ एवमस्त्विति रुद्रोऽपि प्रददौ मुनये सुतम् ॥२८॥ एवं गार्गस्य तनयः श्रीमान् रुद्र-वरोद्भवः ॥ माथुराणामवध्योऽयं मथुरायां विशेषतः ॥२९॥ कृष्णोपि बलवानेष माथुरे जातवानयम् ॥ स जेष्यति रणे कृष्णं मथुरायां समागतः ॥३०॥ मन्यध्वं यदि वा युक्तां नृपा वाचं मयेरिताम् ॥ तत्र दूतं विसृजध्वं यवनेन्द्रपुरं प्रति ॥३१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ श्रुत्वा सौभपतेर्वाक्यं सर्वे ते नृपसत्तमाः ॥ कुर्म इत्यब्रुवन् हृष्टा जरासंधं महाबलम् ॥ ३२ ॥ स तेषां वचनं श्रुत्वा जरासन्धो महीपतिः ॥ बभूव विमना राजन्ब्रह्मणो वचनं स्मरन् ॥ ३३ ॥

कि मेरा पुत्र मथुराके राजासे अवध्य हो, ऐसा ही हो, कहकर शिवजीने वर दिया ॥ २८ ॥ इस प्रकार श्रीमान् गार्ग्यका पुत्र रुद्रदेवकी कृपासे उत्पन्न हुआ है, यह माथुरवंशियोंसे अवध्य है, और विशेष कर मथुराके राजोंसे अवध्य है ॥ २९ ॥ यह बलवान् कृष्ण मथुरामेंही उत्पन्न हुए हैं, वह मथुरामें आकर अवश्य कृष्णको जीतेगा ॥ ३० ॥ जो तुम राजाओ मेरे वचन मानो तो यवनेन्द्रके नगरमें अपना दूत भेजो ॥ ३१ ॥ वैशंपायन बोले; वे सब राजा सौभपतिके वचन सुन 'यही करेंगे' ऐसा कह सब महाबली जरासंधसे बोले ॥३२॥ जरासंधभी उनके यह वचन सुन

फिर उस आकाशवाणीको विचार कर कि इसकी मृत्यु दूसरेके हाथ है विमन हो रहा था ॥ ३३ ॥ फिर जरासंध बोला; प्रथम समयमें राजा भयसे व्याकुल हो मेरा आश्रय करके अपने हरे हुए राज्यको भृत्य बलवाहनसहित प्राप्त हुए थे ॥३४॥ जो मुझको दूसरे केवलके आश्रित करनेको इस प्रकार कहते हैं, जैसे कन्या अपने पतिको छोडकर जारकी इच्छा करती है ॥ ३५ ॥ अहो दैव महाबली है उसका पराक्रम कोई नहीं जानता कि मैं अब कृष्णसे डरकर दूसरे राजाका आश्रय लूंगा ॥ ३६ ॥ निश्चय योगभ्रष्ट होकर पराई सेनाके आश्रयसे मेरा मरण श्रेय है, परन्तु दूसरे राजाका

जरासंध उवाच ॥ मां समाश्रित्य पूर्वस्मिन्नृपा नृप भयार्दिताः ॥ प्राप्नुवन्तु हृतं राज्यं सभृत्यबलवाहनम्॥३४॥इहाहं चोद्यते भूपैः परसंश्रयहेतुना ॥ कन्येव स्वपतिद्वेषादन्यं रतिपरायण ॥३५॥ अहो सुबलवद्दैवमशक्यं विनिवर्तितुम् ॥ यदहं कृष्णभीतोऽन्यं संश्रयामि बलाधिकम् ॥३६॥ नूनं योगविहीनोऽहं कारयिष्ये पराश्रयम् ॥ श्रेयो हि मरणं मह्य न चान्यं संश्रये नृपाः ॥३७॥ कृष्णो व बलदेवो वा यो वासौ वा नराधिपाः ॥ हन्तारं प्रतियोत्स्यामि यथा ब्राह्मप्रचोदितः ॥३८॥ एषा मे निश्चिता बुद्धिरेतत्सत्पुरुषव्रतम् ॥ अतोऽन्यथा न शक्तोऽहं कर्तुं परसमाश्रयम् ॥ ३९ ॥ भवतां साधुवृत्तानामाबाधं न करोति सः ॥ तेन दूतं प्रदास्यामि नृपाणां रक्षणाय वै ॥ ४० ॥ व्योममार्गेण यातव्यं यथा कृष्णो न बाधते ॥ गच्छन्तमनुचिन्त्यैवं प्रेषयध्वं नृपोत्तमाः ॥४१॥ अयं सौभपतिश्श्रीमाननलार्केन्दुविक्रमः ॥ रथेनादित्यवर्णेन प्रयाति स्वपुरं बली ॥ ४२ ॥

आश्रय भला नहीं ॥३७॥ कृष्ण बलदेव अथवा कोई राजे हों, दुःखकीबात है ब्रह्मवाणी सुनकरभी म उन्हींका प्रेरा हुआ मारनेवालेके संग युद्ध करता हूं ॥ ३८ ॥ यहीं मेरी निश्चित बुद्धि और पुरुषव्रत है इसी कारण मैं दूसरेका आश्रय नहीं कर सकता ॥ ३९ ॥ परन्तु तुम श्रेष्ठ चरित्रवालोंको कृष्ण पीडा न दें इस कारण तुम्हारी रक्षाको मैं उनके निकट अपना दूत भेजता हूं ॥४०॥ वह दूत आकाशमार्गसे जायगा जिससे कृष्णसे पीडित न हो सके. हे राजो ! विचार करऐसाही दूत भेजो ॥४१॥ यह श्रीमान् सौभपति अग्नि सूर्य चन्द्रमाके समान बलवान् है सूर्यवर्णके रथसे

अपने पुरको जाता है ॥ ४२ ॥ यहाँ राजोंके समागमसे यवनेन्द्रके पास गमन करे और दूतकर्ममें नियुक्त हो हमारे वचनसे श्रीकृष्णसे विग्रह करने को कहें ॥ ४३ ॥ वैशंपायन बोले; फिर राजाने बडे बली सौभपतिसे कहा, हे मान देनेहारे ! जाओ और सब राजोंकी सहायता करो ॥४४॥ जैसे यवनेन्द्र आवे, और श्रीकृष्णको जीते जैसे जैसे हम प्रसन्न हों वही नीति करो ॥ ४५ ॥ इस प्रकार उन सबको आज्ञा दे धर्मसे भीष्मककी पूजा कर राजा जरासंध सेना ले अपने नगरको गया॥४६॥शाल्व राजाभी धर्मपूर्वक उनसे पूजित हो महाबली आकाशगामी रथके द्वारा गया॥४७॥

यवनेन्द्रो यथाभ्येति नरेन्द्राणां समागमम् ॥ वचनं च तथास्माभिर्दूत्ये नः कृष्णविग्रहे ॥ ४३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ पुनरेवाब्रवीद्राजा सौभस्य पतिमूर्जितम् ॥ गच्छ सर्वनरेन्द्राणां साहाय्यं कुरु मानद॥४४॥यवनेन्द्रो यथायाति यथा कृष्णं विजेष्यति ॥ यथा वयं च तुष्यामस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ४५ ॥ एवं संदिश्य सर्वांस्तान्भीष्मकं पूज्य धर्मतः ॥ प्रययौ स्वपुरं राजा स्वेन सैन्येन संवृतः ॥ ४६ ॥ शाल्वोऽपि नृपतिश्रेष्ठस्ताभ्यां संपूज्य धर्मतः ॥ जगामाकाशमार्गेण रथेनानिलरंहसा ॥ ४७ ॥ तेऽपि सर्वे महीपाला दक्षिणापथवासिनः ॥ अनुव्रज्य जरासंधं गतास्स्वनगरं प्रति ॥ ४८ ॥ भीष्मकस्सह पुत्रेण तावुभौ चिन्त्य दुर्नयम् ॥ स्वे गृहे न्यवसद्दीनः कृष्णमेवानुचिन्तयन् ॥ ४९ ॥ विदिता रुक्मिणी साध्वी स्वयंवरनिवर्तनम् ॥ कृष्णस्यागमनाद्धेतोर्नृपाणां दोषदर्शनम् ॥ ५० ॥

और वे दूसरे दक्षिणापथवासी राजा जरासंधका गमन कर अपने २ नगरको गये ॥४८॥ पुत्रके सहित राजाभी इस दुर्जयको विचारते हुए कृष्णकी चिन्तामें दीन हो क्रथ कैशिक अपने गृहमें स्थित हुए ॥ ४९ ॥ साध्वी रुक्मिणीने जाना कि स्वयंवर निवृत्त हो गया और कृष्णके आनेसे राजोंका दोष देखकर ॥ ५० ॥

सखीके बीचमें जाकर लज्जित हो कहने लगी मैं दूसरे राजाओंकी होना नहीं चाहती, यह मेरा सत्य वचन है कि मैं कृष्णको वरण करूंगी ॥५१॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ वैशंपायन बोले; यवनोंका अधिपति काल यवन राजा धर्मपूर्वक प्रजा पालन करता था ॥१॥ वह तीनों वर्गको जानता, छः गुणोंका आजीवन करनेवाला सातों व्यसनमें चित्त न लगानेवाला, गुणोंमें प्रीति करनेवाला (पद) स्थान वृद्धि यह त्रिवर्ग है, संधि विग्रह यान आसन द्वैधीभाव आश्रय यह छः गुण, द्यूत मांस सुरा वेश्या और तीन वर्गोंमें अनभिज्ञता यह सात व्यसन हैं॥२॥

गत्वा तु सा सखीमध्ये उवाच व्रीडितानना ॥ न चान्येषां नरेन्द्राणां पत्नी भवितुमुत्सहे ॥ कृष्णात्कमलपत्राक्षात्सत्यमेतद्वचो मम ॥ ५१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरो नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ यवनानां बलोदग्रः स कालयवनो नृपः ॥ बभूव राजा धर्मेण रक्षिता पुरवासिनाम् ॥१॥ त्रिवर्गविदितः प्राज्ञष्षड्गुणानुपजीवकः ॥ सप्तव्यसनसंमूढो गुणेष्वभिरतस्सदा ॥ २ ॥ श्रुतिमान्धर्मशीलश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ सांग्रामिकविधिज्ञश्च दुर्गलाभानुसारणः ॥ ३ ॥ शूरोऽप्रतिबलश्चैव मन्त्रिप्रवरसेवकः ॥ सुखासीनस्सभां रम्यां सचिवैः परिवारितः ॥ ४ ॥ उपास्यमानो यवनैरात्मविद्भिर्विपश्चितैः ॥ विविधाश्च कथा दिव्याः कथ्यमानाः परस्परम् ॥ ५ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु दिव्यगन्धवहोऽनिलः ॥ प्रववौ मदनाबोधं चकार सुखशीतलः ॥ ६ ॥ किंस्विदित्येकमनसस्सभायां ये समागताः ॥ उत्फुल्लनयनास्सर्वे राजा चैवावलोक्य सः ॥७॥ अपश्यन्त रथं दिव्यमायान्तं भास्करोपमम् ॥ शातकुम्भमयैः शुभ्रै रथाङ्गैरुपशोभितम् ॥ ८ ॥

श्रुतसम्पन्न धर्मशील सत्यवादी जितेन्द्रिय संग्रामकी विधिके जाननेहारे दुर्गके लाभके अनुसरण करनेवाले ॥ ३ ॥ शूर महाबली श्रेष्ठ मंत्रियोंको सेवने वाला, सचिवोंसहित मनोहर सभामें सुखसे बैठा था ॥४॥ बडे२ विद्वान् यवन उसकी उपासना करते थे, और परस्पर अनेक प्रकारकी कथा कहते थे ॥५॥ उसी समय दिव्य गंधयुक्त पवन चलने लगी उसका सुखशीतल स्पर्शकारी कामोद्दीपन करता था ॥६॥ वे सभावाले एकमनसे कहने लगे कि यह क्या है सबके नेत्र खिल गये, और वोह राजाभी वह देखकर ॥ ७ ॥ आकाशसे आते हुए दिव्य रथको देखने लगा, जो

सूर्यके समान कान्तिमान् सुवर्णके दिव्य पहियोंसे शोभित था॥८॥दिव्य रत्नोंकी कान्तिसे युक्त ध्वजापताकासहित मनके समान दिव्यघोडे (कलके) लगे हुओंसे चलायमान ॥ ९ ॥ मानो ब्रह्माने चन्द्रमा सूर्यके प्रतिबिंब सुवर्णके बनाकर उस रथको बना व्याघ्रके श्रेष्ठ चर्मसे भूषित किया ॥१०॥ शत्रुओंका दुःख देनेहारा मित्रोंके आनन्दका बढानेहारा शत्रुओंके रथका नाशक रथ दक्षिण ओरसे आता देख ॥ ११ ॥ और उसमें बैठे हुए श्रीमान् सौभपतिको देख अर्घ्यपात्र लानेके निमित्त राजा॥१२॥यवनेन्द्रके मंत्रके जाननेवाले मंत्रिने कहा,तब वह महाबाहु स्वयं आसनसे उठकर

दिव्यरत्नप्रभाकीर्णं दिव्यध्वजपताकिनम् वाहितं दिव्यतुरगैर्मनोमारुतरंहसैः ॥ ९ ॥ चन्द्रभास्करबिम्बानि कृत्वा जाम्बूनदेन तम् ॥ रचितं वै विश्वकृता वैयाघ्रांबरभूषितम् ॥१०॥ रिपूणां त्रासजननं मित्राणां हर्षवर्द्धनम् ॥ दक्षिणादिशुपायान्तं रथं पररथारुजम् ॥ ११ ॥ तत्रोपविष्टं श्रीमन्तं सौभस्य पतिमूर्जितम् ॥ दृष्ट्वा परमसंहृष्टश्चार्घ्यं पाद्येति चासकृत् ॥१२॥ उवाच यवनेन्द्रस्य मन्त्री मन्त्रविदां वरः ॥ तत्रोत्थाय महाबाहुस्स्वयमेव नृपासनात् ॥१३॥ प्रत्युद्गम्यार्घ्यमादाय रथावतरणे स्थितः ॥ शाल्वोऽपि च महातेजा दृष्ट्वा राजानमागतम् ॥१४॥ मुदा परमया युक्तं शक्रप्रतिमतेजसम् ॥ अवतीर्य सुविश्रब्ध एक एव रथोत्तमात्॥१५॥ विवेश परमं प्रीतो मित्रदर्शनलालसः ॥ दृष्ट्वार्घमुद्यतं राजा शाल्वो राजर्षिसत्तमः ॥ १६ ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा नार्घार्होऽस्मि महाद्युते ॥ दूतोऽहं मनुजेन्द्राणां सकाशाद्भवतोऽन्तिकम् ॥१७॥ प्रेषितो बहुभिस्सार्द्धं जरासंधेन धीमता ॥ तेन मन्ये महाराज नार्घार्होऽस्मीति राजसु॥१८॥कालयवन उवाच॥जानाम्यहं महाबाहो दौत्येन त्वामिहागतम्॥साहित्ये नरदेवानां प्रेषितो मागधेन वै॥१९॥

॥१३॥अर्घ लेकर रथकेस्थान और रथके उतरनेकी वाट देखनेलगा,महातेजस्वीशाल्वनेभी राजाको देखकर॥१४॥परम आनन्दसे इन्द्रकेसमान तेज वाले उस एकही रथश्रेष्ठसे उतरकर ॥१५॥ परमप्रसन्नहो मित्रके दर्शनकी लालसासे उस स्थानमें प्रविष्टहुए और राजर्षिश्रेष्ठ शाल्वनेराजाको अर्घलिये देखकर॥१६॥मनोहर वचनसे कहा,हे महाकान्तिमान ! मैं अर्घके योग्य नहीं हूं,कारण कि मैं इस समय राजोंके निकटसे दूतबनकर तुम्हारे निकट आया हूं॥१७॥बहुत राजोंसे सम्मतिकर जरासन्धने भेजा है. हे महाराज ! मैं इस समय अर्घ्यके योग्य नहीं॥१८॥कालयवन बोला; हे महाभुज !

तुम दूत बनकर आये हो यह वार्ता मैं जानता हूं जो कि आपको राजोंने मनुष्य राजोंके हितके निमित्त भेजा है॥१९॥हेराजन् ! इसीकारण अर्घ पाद्यादिके सत्कारसे हम तुम्हारी पूजा करते हैं, हे महाबुद्धिमान्॥२०॥तुम्हारा सत्कार करनेसे सब राजोंका सत्कार हो जायगा; हे जनेश्वर ! मेरे साथ श्रेष्ठ आसनमें स्थित हो॥२१॥वैशंपायन बोले; अपने हाथसे आलिंगन करके कुशल पूछकर वह दोनों सुखपूर्वक सुन्दर सिंहासनपर स्थित हुए ॥ २२ ॥ कालयवन बोला; जिसके भुजाबलके आश्रित हो हम सब राजा उद्वेगरहित ऐसे निवास करते हैं जैसे देवता इन्द्रके सहारेसे॥२३॥

तेन त्वामर्चये राजन्विशेषेण महामते ॥ अर्घपाद्यादिसत्कारैरासनेन यथाविधि ॥२०॥ भवत्यभ्यर्चिते राज्ञां सर्वेषामर्चिते भवेत्॥ आस्यतामासने शुभ्रे मया सार्द्धं जनेश्वर ॥२१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स हस्तालिङ्गनं कृत्वा पृष्ट्वा च कुशलामयम् ॥ सुखोपविष्टौ सहितौ शुभे सिंहासने स्थितौ ॥२२॥ कालयवन उवाच ॥ यद्बाहुबलमाश्रित्य वयं सर्वे नराधिपाः ॥ वसामो विगतोद्विग्ना देवा इव शचीपतिम् ॥ २३ ॥ किमसाध्यं भवेदस्य येनासि प्रेषितो मयि ॥ वद सत्यं वचस्तस्य किमाज्ञापयति प्रभुः ॥ करिष्ये वचनं तस्य अपि कर्म सुदुष्करम् ॥ २४ ॥ शाल्व उवाच ॥ यथा वदति राजेन्द्र मगधाधिपतिस्तव ॥ तथाहं संप्रवक्ष्यामि श्रूयतां यवनाधिप ॥ २५ ॥ जरासंध उवाच ॥ जातोऽयं जगतां बाधी कृष्णः परमदुर्जयः ॥ विदित्वा तस्य दुर्वृत्तमहं हन्तुं समुद्यतः ॥ २६ ॥ पार्थिवैर्बहुभिस्सार्द्धं समग्रबलवाहनैः ॥ उपरुध्य महासैन्यैर्गोमन्तमचलोत्तमम् ॥ २७ ॥ चेदिराजस्य वचनं महार्थं श्रुतवानहम् ॥ यदा तयोर्विनाशाय हुताशनमयोजयम् ॥ २८ ॥

उस राजाको क्या असाध्य है,जो उसने तुमको मेरे निकट भेजा है,शीघ्र कहो वह जरासंध हमारे निमित्त क्या आज्ञा करता है,उसकेवचन मानकर मैं दुष्कर कार्यभी करूंगा ॥२४॥ शाल्व बोला; हे राजेन्द्र ! जैसे मगध देशके राजाने तुमसे कहा है. हे यवनाधिप ! सो मैं तुमसे कहता हूं श्रवण करो॥२५॥जरासंधने कहा है कि जगत्में उपाधि करनेवाले कृष्णने जन्मलिया है उसकी दुर्वृत्त जानकर मैं उसके मारनेको उत्कंठितहुआ॥॥२६॥ अनेक राजा और बहुतसी सेना लेकर मैंने उसको पर्वतश्रेष्ठ गोमंतमें रोक लिया ॥२७॥ वहां मैंने शिशुपालके अर्थभरे वचन सुनकर उनके जला-

नेको अग्नि लगा दी ॥२८॥ तब प्रलयाग्निके समान सहस्रों ज्वालाओंसे पूर्ण उसको देख तालकी ध्वजावाले बलराम उस पर्वतसे कूदे ॥ २९ ॥ सागरके समान सेनाके बीचमें प्राप्त हो उसे मर्दन कर उस दुराधर्षने हाथी घोडे और रथ तथा मनुष्योंको नष्ट किया ॥३०॥ सर्पके समान विचरते हुए हलसे मनुष्य हाथी घोडोंको खैंचकर मूसलप्रहारसे नष्ट कर दिये॥३१॥हाथीसे हाथी रथसे रथ घुडसवारसे घुडसवार पैदलसे पैदलको॥३२॥ राजारूप सैकडों सूर्यके समान तेजधारियोंके मध्यमें अनेक मार्गोंसे विचरते थे,जैसे गरमीमें सूर्य विचरता है ॥३३॥ रामके पीछे श्रीकृष्णभी सूर्यके

ज्वालाशतसहस्राढ्यं युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥ दृष्ट्वा रामो गिरेः कूटादाप्लुतो हेमतालधृक् ॥ २९ ॥ विनिष्पत्य महासेनां मध्ये सागरसन्निभाम् ॥ आजघान दुराधर्षो नराश्वरथदन्तिनाम् ॥३०॥ सर्पन्तमिवसर्पेन्द्रं विकृष्याकृष्म लाङ्गलम् ॥ नरनागाश्ववृन्दानि मुशलेन व्यपोथयत् ॥ ३१ ॥ गजेन गजमास्फाल्य रथेन रथयोधिनम् ॥ हयेन च हयारोहं पदातेन पदातिनम् ॥ ३२ ॥ समरे स महातेजा नृपार्कशतसंकुले ॥ विचरन्विविधान्मार्गान्निदाघे भास्करो यथा ॥ ३३ ॥ रामादनन्तरं कृष्णः प्रगृह्यार्कसमप्रभम् ॥ चक्रं चक्रभृतां श्रेष्ठस्सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥३४॥ प्रविचाल्य महावीर्यः पादवेगेन तं गिरिम् ॥ शत्रुसैन्ये पपातोच्चैर्यदुवीरः प्रतापवान् ॥ ३५ ॥ प्रनृत्यन्निव शैलेन्द्रस्तोयधाराभिषेचितः ॥ घूर्णमानो विवेशोर्वीं विनिर्वाप्य हुताशनम् ॥ ३६ ॥ आदीप्यमानशिखरादवप्लुत्य जनार्दनः ॥ जघान वाहिनीं राजंश्चक्रव्यग्रेण पाणिना ॥३७॥ विक्षिप्य विपुलं चक्रं गदापातादनन्तरम्॥नरनागाश्ववृन्दानि मुशलेन व्यचूर्णयत् ॥ ३८ ॥

समान कान्तिमान् चक्र धारण कर वह चक्रधारियोंमें श्रेष्ठ सिंहके समान क्षुद्ररूपी राजोंको ॥३४॥ चरणके वेगसेही महाबुद्धिमान्ने उस पर्वतको चलायमान करके वह प्रतापी यदुवीर सेनाके मध्यमें कूद पडे॥३५॥वह पर्वत जलधारोंसे अभिषेकित हो नृत्य करतासा अग्निको बुझाय घूमता हुआ पृथ्वीमें प्रविष्ट हुआ ॥३६॥ उसके दीप्तिमान शिखरसे श्रीकृष्ण कूदकर चक्र हाथमें लिये सेनाका नाश करने लगे ॥३७॥फिर चक्र छोड गदाके

आघातसे नर और हाथियोंके समूह मुशलसे चूर्ण करने लगे ॥ ३८ ॥ क्रोधाग्निसे चक्र और लांगलकी अग्निसे वह महासेना भस्म हो गई यद्यपि सूर्यसदृश राजा उसका पालन करते थे ॥ ३९ ॥ मनुष्य हाथी घोडोंका नाश प्यादे और ध्वजाओंसहित रथियोंकी सेना क्षणमात्रमें पैदल जाने योग्य कर दी ॥ ४० ॥ चक्ररूपी अग्निसे सेनाको भयातुर देखकर महारथियोंसे चारों ओरसे घेरकर ॥ ४१ ॥ वहां मैं उन भ्रातायुक्तके साथ युद्ध करता हुआ तब उनके बड़े भ्राता हलधारी गदा हाथमें ले मेरे सन्मुख हुए ॥ ४२ ॥ बारह अक्षौहिणी सेनाको मारकर भिन्न केसरी (सिंह) के समान सुनन्द हलको छोडकर गदासे मुझे ताडन किया ॥ ४३ ॥ वह वज्रपातके समान मेरे ऊपर प्रहार किया, परन्तु स्वामी कार्तिकेयके

क्रोधानिलसमुद्धूतचक्रलाङ्गलवह्निना ॥ निर्दग्धा महती सेना नरेन्द्रार्काभिपालिता ॥३९॥ नरनागाश्वकलिलं पत्तिध्वजसमाकुलम् ॥ रथनीकं पदाताभ्यां क्षणेन विदलीकृतम् ॥ ४० ॥ सेनां प्रमग्नामालोक्य चक्रानलभयार्दिताम् ॥ महता रथवृन्देन परिवार्य समन्ततः ॥४१॥ तत्राहं युद्ध्यमानस्तु भ्रातास्य बलवान्बली ॥ स्थितो ममाग्रतश्शूरो गदापाणिर्हलायुधः ॥४२॥ द्वादशाक्षौहिणीर्हत्वा प्रभिन्न इव केशरी ॥ हलं सौनन्दमुत्सृज्य गदया मामताडयत् ॥४३॥ वज्रपातनिभं वेगं पातयित्वा ममोपरि ॥ भूयः प्रहर्तुकामो मां वैशाखेनास्थितो महीम् ॥ ४४ ॥ वैशाखं स्थानमास्थाय गुहः क्रौञ्चं यथा पुरा ॥ तथा मां दीर्घनेत्राभ्यामीक्षते निर्दहन्निव ॥४५॥ तादृग्रूपं समालोक्य बलदेवं रणाजिरे ॥ जीवितार्थी नृलोकेऽस्मिन्कः पुमान्स्थातुमर्हति ॥ ४६ ॥ गृहीत्वा स गदां भीमां कालदण्डमिवोद्यताम् ॥ कुलांकुशेन निर्धूतां स्थित एवाग्रतो मम ॥ ४७ ॥ ततो जलदगम्भीरस्वरेणापूरयन्नभः ॥ वागुवाचाशरीरेण स्वयं लोकपितामहः ॥ ४८ ॥

समान दृढ होनेपर फिर प्रहारकी इच्छा की ॥४४॥ जैसे अस्त्रसे मर्मस्थानको प्राप्त हो स्वामी कार्तिकेयने क्रौंच पर्वतको विदीर्ण किया था, इसी प्रकार बलराम बडे बडे नेत्रोंसेमुझको भस्म करने लगा ॥ ४५ ॥ युद्धमें बलरामका इस प्रकार रूप देखकर कौन पुरुष इस लोकमें जीवित रह सकता है ॥ ४६ ॥ वह कालदण्डके समान भयंकर गदाको ग्रहण कर हलके सहित मेरे आगे स्थित हुए ॥ ४७ ॥ तब मेघस्वरसे आकाशको पूर्ण करते हुए साक्षात् पितामह अशरीरिणी वाणीसे बोले ॥ ४८ ॥

हे पापरहित ! इस राजाके ऊपर प्रहार न करना, यह तुमसे अवध्य है इसका वध दूसरे पुरुषसे कल्पित है इसी कारण इसके वधमें प्रवृत्त मत हो ॥४९॥मैंभी यह वचन सुन चिन्तासे व्याकुल हो निवृत्त हुआ,कारण कि वह वचन सब प्राणियोंके हरनेहारे ब्रह्माजीनेही कहा था॥५०॥इसकारण राजोंके हितकी कामनासे मैं तुमसे कहता हूं; हे राजर्षि ! मेरे वचन सुनकर आप वह पूर्ण कीजिये ॥ ५१ ॥ महातपसे पुत्रकी इच्छासे शिवजीका आराधन कर मथुरावासियोंसे अवध्य तुमको तुम्हारे पिताने प्राप्त किया है॥५२॥महामुनिने बारह वर्षतक लोहचूर्ण भक्षणकर शिवजीका तप किया,

प्रहर्तव्यो न राजायमवध्योऽयं तवानघ ॥ कल्पितोऽस्य वधोऽन्यस्माद्विरमस्व हलायुध ॥ ४९ ॥ श्रुत्वाहं तेन वाक्येन चिन्ताविष्टो निवर्तितः ॥ सर्वप्राणहरं घोरं ब्रह्मणा स्वयमीरितम् ॥ ५० ॥ तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि नृपाणां हितकाम्यया ॥ श्रुत्वा त्वमेव राजेन्द्र कर्त्तुमर्हसि तद्वचः॥५१॥तपसोग्रेण महता पुत्रार्थी तोष्य शंकरम् ॥ प्राप्तवान्नरदेवं त्वामवध्यं माथुरैर्जनैः ॥५२॥ महामुनिश्चायसचूर्णमश्नन्नुपस्थितो द्वादशवार्षिकं व्रतम् ॥ सुरासुरैस्संस्तुतपादपङ्कजस्स लब्धवानीप्सितकामसम्पदम् ॥ ५३ ॥ तपोबलाद्गार्ग्यमुनेर्महात्मनो वरप्रभावाच्छकलेन्दुमौलिनः ॥ भवन्तमासाद्य जनार्दनो हिमं विलीयते भास्कररश्मिना यथा ॥५४॥ यतस्व राज्ञांवचनप्रचोदितो व्रजस्व यात्रां विजयाय केशवम् ॥ प्रविश्य राष्ट्रं मथुरां च सेनया निहत्य कृष्णं प्रथयन्स्वकं यशः ॥ ५५ ॥ माथुरो वासुदेवोऽयं बलदेवस्सबान्धवः ॥ तौ विजेष्यसि संग्रामे गत्वा तां मथुरां पुरीम् ॥ ५६ ॥

वह सुरासुरोंसे पूजित चरणकमलवाले शिवजीसे मन इच्छित कामनाकी प्राप्ति की ॥५३॥ तपके बलसे महातपा गर्गमुनिने चन्द्रमौलि शिवजीके वरदानके प्रभावसे तुमको पाया है, सो तुमको पाकर श्रीकृष्ण ऐसे लीन हो जायंगे जैसे सूर्यकी प्रभासे बर्फ जल जाता है॥५४॥इसकारण राजाके वचन मानकर श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेकी यात्रा करो, मथुरामें प्रवेश कर श्रीकृष्णको मार अपना यश विस्तार करते हुए॥५५॥मथुरामें वासुदेव

और बलरामको बांधवसहित जयकर संग्राममें मथुरा पुरी जीत लो॥५६॥शाल्व बोला; इस प्रकार राजोंमें श्रेष्ठ राजा जरासंधने राजोंके हितकारक यह वचन कहे हैं, वह सब अपने मंत्रियोंकेसहित विचार कर हे राजन्! बुद्धिपूर्वक अपने योग्य कार्य करो॥५७॥इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥ ७ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार राजोंके कहे वचन सुनकर राजा शाल्वसे प्रसन्न हो यवनाधिपति कहने लगा॥१॥ कालयवन बोला;मैं धन्य और अनुगृहीत हुआ मेरा जन्म सफल हुआ जो अनेक राजोंसे मुझे कृष्णके निग्रहमें नियुक्त कियाहै॥२॥वह त्रिलोकीमें

शाल्व उवाच ॥ इत्येवं नरपतिभास्करप्रगीतं वाक्यं ते कथितमिदं हितं नृपाणाम् ॥ तत्सर्वं सह सचिवैर्विमृश्य बुद्ध्या यद्युक्तं कुरु मनुजेन्द्र चात्मनिष्ठम् ॥ ५७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शाल्ववाक्यं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं कथयमानं तं शाल्वराजं नृपाज्ञया ॥ उवाच परमप्रीतो यवनाधिपतिर्नृपः ॥ १ ॥ कालयवन उवाच॥धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम ॥ कृष्णनिग्रहहेतोर्यन्नियुक्तो बहुभिर्नृपैः ॥ २ ॥ दुर्जयस्त्रिषु लोकेषु सुरासुर गणैरपि ॥ तस्य निग्रहहेतोर्मामवधार्य जयाशिषम् ॥ ३ ॥ प्रहृष्टै राजसिंहैस्तैरवधार्यो जयो मम ॥ तेषां वाचाम्बुवर्षेण विजयो मे भविष्यति ॥ ४ ॥ करिष्ये वचनं तेषां नृपसत्तमचोदितम् ॥ पराजयोऽपि राजेन्द्र जयेन सदृशो मम ॥ ५ ॥ अद्यैव तिथिनक्षत्रं मुहूर्तं करणं शुभम् ॥ यास्यामि मथुरां राजन्विजेतुं केशवं रणे ॥ ६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमाभाष्य राजानं सौभस्य पतिमूर्जितम् ॥ सत्कृत्य च यथान्यायं महार्हमणिभूषणैः ॥ ७ ॥

सुर और असुरोंसेभी दुर्जेय हैं,उनके निग्रहके कारण मुझमें जयके आशीर्वाद धारण कर॥३॥प्रसन्न हो उन राजसिंहोंने मेरी जय विचारीहै,उनकी अमृतभरी वाणीसे अवश्य मेरी जय होगी॥४॥ उन श्रेष्ठ राजोंके कहे वचन मैं अवश्य करूंगा, हे राजेन्द्र! ऐसे समयमें पराजयभी जयके बराबर है॥५॥आजही तिथि नक्षत्र करण मुहूर्त उत्तम है, हे राजन्! श्रीकृष्णको रणमें जीतनेके निमित्त मथुराको जाता हूं ॥६॥ वैशंपायन बोले; सौभपति

शाल्वराजासे इस प्रकार वचन कह, और यथायोग्य मणिभूषणसे सत्कार करके ॥७॥ सिद्धिके निमित्त राजाने ब्राह्मणोंको बहुतसा धन दिया, और पुरोहितके निमित्तभी बहुतसा धन दिया ॥८॥ विधिपूर्वक अग्निहोत्र कर कौतुक मंगलविधान कर जनार्दनके जीतनेकी इच्छासे राजाने विधिपूर्वक प्रस्थान किया ॥९॥ हे राजन् ! शाल्वभी कृतार्थ होकर प्रसन्न चित्तसे यवनेन्द्रको आलिंगन कर अपने पुरमें प्राप्त हुए ॥१०॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्वणि कालयवनवाक्यं नाम चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ जन्मेजय बोले; इन्द्रके तुल्य पराक्रमी श्रीकृष्णने विदर्भ नगरसे

ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं सिद्धादेशाय वै नृपः ॥ पुरोहिताय राजेन्द्र प्रददौ बहुशो धनम् ॥ ८ ॥ हुत्वाग्निं विधिवद्राजा कृतकौतुकमङ्गलः ॥ प्रस्थानं कृतवान्सम्यग् जेतुकामो जनार्दनम् ॥ ९ ॥ शाल्वोऽपि भरतश्रेष्ठ कृतार्थो हृष्टमानसः ॥ यवनेन्द्रं परिष्वज्य जगाम स्वपुरं नृपः ॥१०॥ इति श्रीहरिवंशे कालयवनवाक्यं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥ जनमेजय उवाच ॥ विदर्भनगराद्याते शक्रतुल्यपराक्रमे ॥ किमर्थं गरुडो नीतः किं च कर्म चकार सः ॥१॥ न चारुरोह भगवान्वैनतेयं महाबलम् ॥ एतन्मे संशयं ब्रह्मन्ब्रूहि तत्त्वं महामुने ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु राजन्सुपर्णेन कृतं कर्मातिमानुषम् ॥ विदर्भनगरीं गत्वा वैनतेयो महाद्युतिः ॥३॥ असंप्राप्ते च नगरीं मथुरां मधुसूदने ॥ मनसा चिन्तयामास वैनतेयो महाद्युतिः ॥४॥ यदुक्तं देवदेवेन नृपाणामग्रतः प्रभो ॥ यास्यामि मथुरां रम्यां भोजराजेन पालिताम् ॥५॥ इति तद्वचनस्यान्ते गमिष्येति विचिन्तयन् ॥ कृताञ्जलिपुटः श्रीमान्प्रणिपत्याब्रवीदिदम् ॥ ६ ॥

मथुराकी ओर आनेमें गरुडजीको किस निमित्त साथ लिया और उसने क्या कर्म किया ॥ १ ॥ भगवान् महाबली गरुडके ऊपर स्थित नहीं हुए. हे महामुने ! तत्वसे मेरे इस सन्देहको आप दूर कीजिये ॥२॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! जो गरुडने मनुष्योंका दुस्साध्य कर्म किया है; वह सुनो महाद्युतितिमान् गरुड विदर्भनगरीमें जाकर॥३॥ मथुरानगरीमें मधुसूदनके प्राप्त होनेके पहिले महाकान्तिमान् गरुडजी मनमें विचार करने लगे ॥४॥ जो देवदेवने राजोंके आगे वचन कहे हैं कि मैं भोजराजसे पालित मथुरापुरीको जाता हूं ॥ ५ ॥ इस प्रकार उनके जानेके वचन विचारते हुए हाथ

जोडकर श्रीमान् गरुडजी इस प्रकार बोले॥६॥गरुडजी बोले;हे देव ! रैवतकी कुशस्थली नगरीको जाता हूं रैवत गिरि परम मनोहर नन्दनवनके समान है ॥ ७ ॥ रुक्मीसे उद्वासित मनोहर पर्वत और सागरके तटसे युक्त वृक्ष,गुल्मलताओंसे आच्छादित फूलोंकी रेणुसे विभूषित ॥८॥ गजेन्द्र और सर्पोंसे आकीण रीछ वानरोंसे सेवित, वाराह, महिषोंसे भरी, अनेक मृगयूथोंसे युक्त ॥९॥ उसे सब प्रकारसे देख तुम्हारे निवास करने योग्य विचार कर यदि वहां तुम्हारे निमित्त मनोहर नगरी हो जाय इस प्रकार उसके सब कंटक निकाल कर मैं आपके समीप आऊंगा॥१०॥ वैशंपायन

गरुड उवाच ॥ देव यास्यामि नगरीं रैवतस्य कुशस्थलीम् ॥ रैवतं च गिरिं रम्यं नन्दनप्रतिमं वनम् ॥ ७ ॥ रुक्मिणो-द्वासितां रम्यां शैलोदधितटाश्रयाम् ॥ वृक्षगुल्मलताकीर्णां पुष्परेणुविभूषिताम् ॥ ८ ॥ गजेन्द्रभुजगाकीर्णामृक्षवानरसेविताम् ॥ वराहमहिषाक्रान्तां मृगयूथैरनेकशः ॥९॥ तां समन्तात्समालोक्य वासार्थं ते क्षमां क्षमम् ॥ यदि स्याद्भवतो रम्या प्रशस्ता नग-रीति च ॥ कण्टकोद्धरणं कृत्वा आगमिष्ये तवान्तिकम् ॥१०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं विज्ञाप्य देवेशं प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥ जगाम पतगेन्द्रोऽपि पश्चिमाभिमुखो बली ॥११॥ कृष्णोऽपि यदुभिस्सार्द्धं विवेश मथुरां पुरीम् ॥ स्वैरिण्य उग्रसेनश्च नागरा-श्चैव सर्वशः ॥ प्रत्युद्गम्यार्चयन्कृष्णं प्रहृष्टजनसंकुलम् ॥१२॥ जनमेजय उवाच ॥ श्रुत्वाभिषिक्तं राजेन्द्रं बहुभिर्वसुधाधिपैः ॥ किं चकार महाबाहुरुग्रसेनो महीपतिः ॥१३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ श्रुत्वाभिषिक्तं राजेन्द्रं बहुभिः पार्थिवोत्तमैः ॥ इन्द्रेण कृत-संधानं दूतं चित्राङ्गदं कृतम् ॥१४॥ एकैकं नृपतेर्भागं शतसाहस्रसंमितम् ॥ राजेन्द्रे त्वर्बुदं दत्तं मानवेषु च वै दश ॥ १५ ॥

बोले;देवेशको इसप्रकार कह प्रणाम कर महाबली गरुडजी पश्चिमकी ओरको गये ॥११॥ कृष्णभीयदुवंशियोंके साथ मथुरापुरीमें प्रविष्ट हुए,नर्तकी वेश्या,राजा उग्रसेन और सब नगरवासी प्रसन्न मनसे पूजा कर श्रीकृष्णको लेनेके निमित्त आये ॥ १२ ॥ जन्मेजय बोले;अनेक राजोंसे श्रीकृष्णका अभिषेक हुआ सुनकर महाबाहु उग्रसेनने क्या किया॥१३॥वैशंपायन बोले;अनेक राजोंसे श्रीकृष्णका अभिषेक हुआ सुनकर तथाचित्रांगद दूतके कहे हुए इन्द्रके संधानयुक्त वचन विचार कर ॥१४॥ एक २ मण्डलेश्वर राजाके निमित्त एक एक लक्ष,महाराजाको एक अर्बुद और मनुष्यमात्रको

दश सहस्र द्रव्य दिया॥१५॥जो उस अभिषेकमें प्राप्त हुए थे,वह कोईभी खाली न गये,निधि यादवरूप होकर हरिके चिन्तित धनको देतीहुई॥१६॥ इस प्रकार श्रीमान् निधिपति देवताओंसे अनुमोदित हुए हैं, यह लोकमें वार्ता विख्यात करनेवाले आत्मिक (निज) जनोंसे सुनकर॥१७॥ देवताओंके स्थानोंमें बडी पूजा की, वसु देवके भवनमें दोनों ओर ध्वजा लग गई ॥१८॥ नटोंके नाच बाजे गाने चारों ओर होने लगे, राजाने पुरी ध्वजा पताकाओंसे पूर्णकर दी ॥१९॥ कंसराजकी सभा विचित्र वस्त्रोंसे पूर्ण थी, उसेभी भोजराजने अनेक प्रकारकी ध्वजा पताका लगवा दी थीं ॥२०॥ तोरण

ये तत्र समनुप्राप्ता न रिक्तास्ते गृहं गताः ॥ शंखो यादवरूपेण प्रददौ हरिचिन्तितम्॥१६॥एवं निधिपतिश्श्रीमान्दैवतैरनुमोदितः॥
इति श्रुत्वात्मिकजनाल्लोकप्रावृत्तिकान्नरात् ॥१७॥चकार महतीं पूजां देवतायतनेष्वपि ॥ वसुदेवस्य भवने तोरणोभयपार्श्वतः॥१८॥
नटानां नृत्यगेयानि वाद्यानि च समन्ततः ॥ पताकाध्वजमालाढ्यां कारयामास वै नृपः ॥१९॥ कंसराजस्य च सभां विचित्रा-
म्बरसुप्रभाम् ॥ पताका विविधाकारा दापयामास भोजराट् ॥२०॥ तोरणं गोपुरं चैवसुधापङ्कानुलेपनम् ॥ कारयामास राजेन्द्रो
राजेन्द्रस्यासनालयम् ॥ २१ ॥ नटानां नृत्यगेयानि वाद्यानि च समन्ततः ॥ पताका वनमालाढ्याः पूर्णकुम्भास्समन्ततः॥२२॥
राजमार्गेषु राजेन्द्र चन्दनोदकसेचितम् ॥ वस्त्राभरणकं राजा दापयामास भूतले ॥२३॥ धूपं पार्श्वोभये चैव चन्दनागुरुगुग्गुलैः ॥
गुडं सर्जरसं चैव दह्यमानं ततस्ततः ॥ २४ ॥ वृद्धस्त्रीजनसंघैश्च गायद्भिः स्तुतिमङ्गलम् ॥ अर्घं कृत्वा प्रतीक्षन्ते स्वेषु स्थानेषु
योषितः ॥ २५ ॥ एवं कृत्वा पुरानन्दमुग्रसेनो नराधिपः ॥ वसुदेवगृहं गत्वा प्रियाख्यानं निवेद्य च ॥ २६ ॥

पुरके द्वारमें मनोहर सुगंधि द्रव्योंका अनुलेपन कराया, हे राजेन्द्र ! राजोंके आसनोंके स्थान सुन्दर बनवाये ॥ २१ ॥ नटोंके नाच बाजोंके शब्द चारों ओरसे सुनाई आने लगे, पताका वनमाला और जलसे पूर्ण कलश द्वारे द्वारेपर रक्खे थे ॥२२॥ हे राजेन्द्र ! राजमार्गमें चन्दनके जलका छिडकाव हुआ था,और राजाने पृथ्वीमें श्रेष्ठ वस्त्रोंका स्पर्श कराया था,दोनों पार्श्वसे चन्दन अगर गूगलकी सुगन्धि आती थी,गूगल रालकी सुगन्धि फैल रहीथी॥२३॥२४॥ वृद्ध स्त्री जनस्तुति मंगलगान करतीथीं,स्त्रीअर्घ लिये अपने अपने स्थानोंमें देखतीथीं॥२५ इसप्रकार राजाउग्रसेनने नगरमें

आनंद करके वसुदेवके घर जाय इस मनोहर संवादको कथन कर ॥२६॥ बलरामके संग सम्मति कर रथके निकट प्राप्त हुए; हे राजन् ! उसी समय महाशंखध्वनी हुई॥२७॥ पांचजन्य शंखका शब्द सुन मथुरापुरवासी स्त्री बालक वृद्ध सूत मागध बंदी ॥ २८ ॥ युक्त महासेना बलरामको आगे करके निकली और बुद्धिमान् उग्रसेनने अर्घ्यपाद्य लेकर गमन किया॥२९॥राजाउग्रसेन उनकी दृष्टिके सन्मुख स्थितहो श्रेष्ठ रथसे उतर पैरों पैरों आगे मार्ग में चले॥३०॥दिव्य रत्नसंयुक्त रथमें दिव्यआभूषण धारे तिनकीप्रभासे कान्तिमान् श्रीकृष्णको देखकर॥३१॥जिनका हृदय वनमालासे व्याप्त,सूर्यके

रामेण सह संमन्त्र्य निर्गतो रथमन्तिकम् ॥ तस्मिन्नेवान्तरे राजञ्छंखध्वनिरभून्महान् ॥२७॥पाञ्चजन्यस्य निनदं श्रुत्वा मधुरवासिनः ॥ स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च सूता मागधबन्दिनः ॥२८॥ विनिर्ययुर्महासेना रामं कृत्वाग्रतो नृप ॥ अर्घं पाद्यं पुरस्कृत्य उग्रसेनेन धीमता ॥२९॥ दृष्टिपन्थानमासाद्य उग्रसेनो महीपतिः ॥ अवतीर्य रथाच्छुभ्रात्पादमार्गेण चाग्रतः ॥ ३० ॥ दृष्ट्वासीनं रथे रम्ये दिव्यरत्नविभूषितम् ॥ अङ्गेष्वाभरणं चैव दिव्यरत्नप्रभायुतम् ॥ ३१ ॥ वनमालोरसं दिव्यं तपन्तमिव भास्करम् ॥ चामरं व्यजनं छत्रं खगेन्द्रध्वजमुच्छ्रितम् ॥ ३२ ॥ राजलक्षणसंपूर्णमासन्नार्कमिवोज्ज्वलम् ॥ श्रियाभिभूतं देवेशं दुर्निरीक्ष्यतरं हरिम् ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वा स राजा राजेन्द्रं हर्षगद्गदया गिरा ॥ बभाषे पुण्डरीकाक्षं रामं बलनिषूदनम् ॥ ३४ ॥ रथेन न मया गन्तुं युक्तपूर्वेति चिन्त्य वै ॥ अवतीर्णो महाभाग गच्छ त्वं स्यन्दनेन च ॥३५॥ विष्णुना छद्मरूपेण गत्वेमां मथुरां पुरीम् ॥ अनुप्रकाशितात्मानं देवेन्द्रत्वं नृपार्णवे ॥३६॥ तमहं स्तोतुमिच्छामि सर्वभावेन केशवम् ॥ प्रत्युवाच महातेजा राजानं कृष्णपूर्वजः ॥३७॥

समान प्रकाशमान चँवर व्यजन छत्र गरुडध्वजसे अलंकृत॥३२॥राजलक्षणसे पूर्ण, सूर्यके समान प्रकाशमान,लक्ष्मीसे व्याप्त देवेश दुर्निरीक्ष्य श्रीकृष्ण को॥३३॥ देखकर राजा प्रसन्नतासे गद्गद वाणी हो कमलनेत्र शत्रुबलके नाशक बलरामजीसे राजाने कहा॥३४॥ मुझे रथमें बैठे रहना उचित नहीं, इस प्रकार युक्तिपूर्वक चिन्तन कर उग्रसेन रथसे उतर पडे और बलरामजीसे कहा तुमही रथमें बैठकर चलो ॥ ३५ ॥ और जब यह गुप्तरूप विष्णु मथुरापुरीमें प्रवेश कर जायंगे उन राजरूपी सागरमें अपने आत्मा रूपके प्रकाश न करनेवाले राजेन्द्रत्व पानेवाले देवेन्द्र ॥ ३६ ॥ केशवकी सब

भावसे स्तुति करनेकी इच्छा करता हूँ; तब महातेजस्वी बलरामजीने राजासे कहा ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! जाते हुए देवसत्तमकी स्तुति करना तुमको उचित नहीं, यह जनार्दन विना स्तुति कियेही तुमसे प्रसन्न हैं ॥३८॥ संतुष्ट हुएकी स्तुतिसे क्या है, तुम्हारे दर्शनसेही स्तुतिहो जाती है; क्योंकि राजेन्द्रभावको प्राप्त हो वे तुम्हारे मन्दिरमें आते हैं इसीसे तुमने दिव्य स्तोत्रोंसे जो मनुष्यकृत नहीं स्तुति करीही है इस प्रकार वे दोनों श्रीकृष्णके समीप आये ॥३९॥ ॥४०॥ तब अर्घ्य देनेमें उद्यत राजा उग्रसेनको देखा बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण रथको खडा करके नृपश्रेष्ठ उग्रसेनसे

न युक्तं नृपते स्तोतुं व्रजन्तं देवसत्तमम् ॥ विना स्तोत्रेण संतुष्टस्तव राजन् जनार्दनः ॥ ३८ ॥ तुष्टस्य स्तुतिना किं ते दर्शनेन तव स्तुतिः ॥ राजेन्द्रत्वमनुप्राप्य आगतस्तव वेश्मनि ॥ ३९ ॥ न त्वया स्तुतवान्राजन् दिव्यैः स्तोत्रैरमानुषैः ॥ एवमाब्रुवमाणौ तौ संप्राप्तौ केशवान्तिकम् ॥ ४० ॥ अर्घोद्यतभुजं दृष्ट्वा स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ उवाच वदतां श्रेष्ठ उग्रसेनं नराधिपम् ॥४१॥ यन्मया चाभिषिक्तस्त्वं मथुरेशो भवत्विति ॥ युक्तमन्यथा कर्तुं मथुराधिपते स्वयम् ॥ ४२ ॥ अर्घ्यमाचमनीयं च पाद्यं चास्मै निवेदितम् ॥ न दातुमर्हसे राजन्नेष मे मनसः प्रियः ॥ ४३ ॥ तवाभिप्रायं विज्ञाय ब्रवीमि नृपते वचः ॥ त्वमेव माथुरो राजा नान्यथा कर्तुमर्हसि ॥ ४४ ॥ स्थानभागं च नृपते दास्यामि तव दक्षिणम् ॥ यथा नृपाणां सर्वेषां तथा ते स्थापितोऽग्रतः ॥ ४५ ॥ शतसाहस्त्रिको भागो वस्त्राभरणवर्जितः ॥ अरुहस्व रथं शुभ्रं चामीकरविभूषितम् ॥ ४६ ॥

बोले ॥४१॥ हे मथुरानाथ ! जब कि मैंने तुम्हें मथुराके अधिपत्यमें अभिषेक किया है तो यह वार्ता मुझे अन्यथा करनी उचित नहीं ॥ ४२ ॥ अर्घ्य आचमन और पाद्य आपको निवेदन किया; हे राजन् ! वही तुम हमको मत दीजिये, हमारा मन इसीमें प्रसन्न है ॥४३॥ हे राजन् ! मैं तुम्हारा अभिप्राय जानकर वचन कहता हूँ, कि आप मथुराके राजा होकर यह अन्यथा न कीजिये ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! स्थानभाग दक्षिणामें आपको दूंगा जो कि सब राजोंमें प्रथम आपको स्थापित किया है ॥४५॥ वस्त्रादिसे रहित केवल एक लक्ष कांचन भाग आपके निमित्त स्थित है,

आप सुवर्णभूषित रथमें आरोहण कीजिये ॥ ४६ ॥ हे मनुजेश्वर ! चमर, व्यजन, छत्र, ध्वजा, दिव्य आभरण युक्त मुकुट जिसकी सूर्यके समान कान्ति है ॥४७॥ हे महाभाग ! उसे धारण कर इस पुरीकी पालना कीजिये पुत्र पौत्रसहित आनन्द हो पुरीकी पालना करो ॥ ४८ ॥ सब शत्रुसमूहको जीत भोजवंशको बढाओ, देवादिदेव मनोहर शेषरूप शौरि बलरामजीके निमित्त इन्द्र ॥४९॥ देवराजने दिव्य भूषण और वस्त्र भेजे हैं, और सब मथुरावासियोंको भागमें दश दश दीनार (१००० सुवर्ण) ॥५०॥ सूत मागध बंदियोंमें प्रत्येकको सहस्र २ मुद्रा दी हैं, वृद्ध स्त्रीजन

चामरं व्यजनं छत्रं ध्वजं च मनुजेश्वर ॥ दिव्याभरणसंयुक्तं मुकुटं भास्करप्रभम् ॥ ४७ ॥ धारयस्व महाभाग पालयस्व पुरीमिमाम् ॥ पुत्रपौत्रैः प्रमुदितो मथुरां परिपालय ॥ ४८ ॥ जित्वारिगणसंघांश्च भोजवंशं विवर्द्धय ॥ देवदेवाद्यनन्ताय शौरिणा वज्रपाणिना ॥४९॥ प्रेषितं देवराजेन दिव्याभरणमम्बरम् ॥ माथुराणां च सर्वेषां भागा दीनारका दश ॥ ५० ॥ सूतमागधबन्दीनामेकैकस्य सहस्रिकम् ॥ वृद्धस्त्रीजनसंघानां गणिकानां शतं शतम् ॥५१॥ नृपेण सह तिष्ठन्ति विकद्रुप्रमुखाश्च ये ॥ दशसाहस्रिको भागस्तेषां धात्रा प्रकल्पितः ॥ ५२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं संपूज्य राजानं माथुराणां चमूमुखे ॥ कृत्वा सुमहदानन्दां मथुरां मधुसूदनः ॥ ५३ ॥ दिव्याभरणमाल्यैश्च दिव्याम्बरविलेपनैः ॥ दीप्यमानस्समन्ताच्च देवा इव त्रिविष्टपे ॥ ५४ ॥ भेरीपटहनादेन शंखदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ बृंहितेन च नागानां हयनां हेषितेन च ॥ ५५ ॥ सिंहनादेन शूराणां रथनेमिस्वनेन च ॥ तुमुलस्सुमहानासीन्मेघानन्द इवाम्बरे ॥ ५६ ॥

और वेश्याओंको सौ सौ॥५१॥ और जो विकद्रु आदि यादव राजाके साथ स्थित होते हैं उनको दस दस सहस्र सुवर्ण मुद्रा इन्द्रने दी हैं॥५२॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार सेनाके सन्मुख राजाका सत्कार कर श्रीकृष्ण मथुरामें महा आनन्द कर॥५३॥दिव्य आभूषण माला दिव्य अनुलेपनसे दीप्तिमान हो स्वर्गमें प्राप्त देवताके समान शोभित हुए॥५४॥ भेरी पटहके नाद शंख नगाडोंके शब्द हाथियोंकी चिंघाड घोडोंका हींस ॥ ५५ ॥ शूरोंके सिंहनाद रथके पहियोंके शब्द महान् होने लगे; जैसे आकाशमें मेघोंका शब्द होता है ॥५६॥

बन्दियोंसे स्तुतिको प्राप्त हुए ॥ ५७ ॥ स्वभावसेही व्रत पूर्ण होनेसे प्रथम देखनेसेभी अधिक अहंकार न होनेके कारण विस्मयको न प्राप्त हुए ॥५८॥ आते हुए सूर्यके समान अपने शरीरसे प्रकाशमान मथुरावासी श्रीकृष्णको देखकर पदपदमें नमस्कार करने लगे ॥ ५९ ॥ यही श्रीमान् नारायण क्षीर-सागरमें शयन करनेहारे हैं यही शेषशय्या छोड मथुरापुरीमें प्राप्त हुए हैं ॥ ६० ॥ इन्होंनेही देवताओंसे अजेय बलीको बांधकर तीन लोकका राज्य वज्रपाणि इन्द्रके निमित्त दे दिया ॥ ६१ ॥ सम्पूर्ण दैत्य और महाबली कंसको मारकर भोजराजके निमित्त मथुराको दानकर केशीहन्ता श्रीकृ-

बन्दिभिः स्तूयमानं च नमश्चक्रुरपि प्रजाः ॥ दत्त्वा दानमनन्तं च न ययौ विस्मयं हरिः ॥५७॥ स्वभावोन्नतभावत्वाद्दृष्टपूर्वा त्ततोऽधिकम् ॥ अनहंकारभावाच्च विस्मयं न जगाम ह ॥५८॥ दीप्यमानं स्ववपुषा आयान्तं भास्करप्रभम् ॥ दृष्ट्वा मथुरवासिन्यो नमश्चक्रुः पदे पदे ॥५९॥ एष नारायणश्श्रीमान्क्षीरार्णवनिकेतनः ॥ नागपर्यङ्कमुत्सृज्य प्राप्तोऽयं मथुरां पुरीम् ॥६०॥ बध्वाबलिं महावीर्यं दुर्जयं त्रिदशैरपि ॥ शक्राय प्रददौ राज्यं त्रैलोक्यं वज्रपाणये ॥६१॥ हत्वा दैत्यगणान्सर्वान्कंसं च बलिनां वरम् ॥ भोजराजाय मथुरां दत्त्वा केशिनिषूदनः ॥६२॥ नाभिषिक्तस्स्वयं राज्ये न चासीनो नृपासने ॥ राजेन्द्रत्वं च संप्राप्य मथुरामाविशत्ततः ॥६३॥ एवमन्योन्यसंजल्पं श्रुत्वा पुरनिवासिनाम् ॥ बन्दिमागधसूतानामिदमूचुर्गणाधिपः ॥६४॥ किं वा शक्यामहे वक्तुं गुणानां ते गुणोदधे ॥ मानुषेणैकजिह्वेन प्रभावोत्साहसंभवान् ॥६५॥ स तत्र भोगी नागेन्द्रः कदाचिच्चिद्देव बुद्धिमान् ॥ द्विसाहस्रेण जिह्वेन वासुकिः कथयिष्यति ॥६६॥ किंत्वद्भुतमिदं लोके मानवेन्द्रेषु भूतले ॥ न भूतं न भविष्यं च शक्रादासनमागतम् ॥६७॥

ष्णने ॥ ६२ ॥ न तो राज्यमें अपना अभिषेक कराया और न स्वयं राज्यमें बैठे और राजेन्द्रपनको प्राप्त हो मथुरामें प्रविष्ट हुए ॥ ६३ ॥ इस प्रकार पुरवासियोंके अन्योन्य वचनोंको सुनकर बंदि मागध सूतोंके गणोंके अधिपति इस प्रकार बोले ॥६४॥ हे गुणनिधे ! हम तुम्हारे गुण क्या वर्णन करें हम मनुष्य एक जिह्वासे आपका उत्साह क्या कह सकें ॥६५॥ कदाचित् शेषजी जिनपर आप शयन करते हैं वह अथवा वासुकी नाग दो सहस्र जिह्वासे तुम्हारे गुण कथन करें ॥६६॥ किन्तु लोकमें और मानवेन्द्रोंमें यह बड़ी अद्भुत बात है, न हुआ न होगा कि इन्द्रके यहांसे

आसन आया ॥६७॥ सभाका आना, स्वयं कलशोंसे स्नान कराना ऐसा अद्भुत कार्य तो न कभी देखा न सुना इस बातको तो हम अद्भुत मानते हैं ॥ ६८ ॥ महाभागा देवकी स्त्रियोंमें श्रेष्ठपरम उत्तम है जो देवताओंमें श्रेष्ठ आप केशवको गर्भमें धारण किया है ॥६९॥ कमललोचन देवताओंसे पूजित श्रीकृष्णके मुखको स्नेहभरे नेत्रोंसे देखती है ॥ ७० ॥ इस प्रकार मनुष्योंके पृथक्२कहे हुए वचन सुनकर रामकृष्ण उग्रसेनको आगे करके ॥ ७१ ॥ कान्तिसे पूर्ण प्राकारके द्वारपर आये, तब आचमन पाद्य देकर पूजा की गई ॥७२॥ तब बुद्धिमान उग्रसेन केशवकेरथके आगे कृष्णको

सभावतरणं चैव कलशैरागतं स्वयम् ॥ न श्रुतं न च दृष्टं वा तेन मन्यामहेऽद्भुतम् ॥ ६८ ॥ धन्या देवीमहाभागा देवकी योषितां वरा ॥ भवन्तं त्रिदशश्रेष्ठं धृत्वा गर्भेण केशवम् ॥ ६९ ॥ कृष्णं पद्मपलाशाक्षं श्रीपुञ्जममरार्चितम् ॥ नेत्राभ्यां स्नेहपूर्णाभ्यां वीक्षते मुखपङ्कजम् ॥७०॥ इति संजल्पमानानां शृण्वन्तौ पृथगीरितम् ॥ उग्रसेनं पुरस्कृत्य भ्रातरौ रामकेशवौ ॥७१॥ प्राकारद्वारि संप्राप्तावर्चयामास वै तदा ॥ अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा पाद्यं पाद्येति चाब्रवीत् ॥७२॥ उग्रसेनस्ततो धीमान्केशवस्यरथाग्रतः ॥ प्रणम्य शिरसा कृष्णं गजमारुह्य वीर्यवान् ॥ घनवत्तोयधारेण ववर्ष कनकाम्बुभिः ॥ ७३ ॥ घनौगैर्वर्षमाणस्तु संप्राप्तः पितृवेश्मनि ॥ मथुराधिपतिश्श्रीमानुवाच मधुसूदनम् ॥७४॥ राजेन्द्रत्वमनुप्राप्य युक्तं मे नृपवेश्मनि ॥ स्थापितुं देवराजेन दत्तं सिंहासनं प्रभो ॥७५॥ नेष्यामि मथुरेशस्य सभां भुजबलार्जिताम् ॥ प्रसादयिष्ये भगवन्न कोपं कर्तुमर्हसि ॥ ७६ ॥ देवकी वसुदेवश्च रोहिणी च विशांपते ॥ न किंचित्कारणे शक्ता हर्षक्लमविमोदिता ॥ ७७ ॥

प्रणाम करके स्थित हुए ॥ ७३ ॥ और धनकी वर्षा करते हुए पिताके द्वारपर आये, तब श्रीमान् मथुराके पति श्रीकृष्णसे बोले ॥ ७४ ॥ अब तुम राजेन्द्रको प्राप्त हो;हे प्रभो!आपको देवराजने दिया हुआ सिंहासन राजगृहमें स्थापित करना योग्य है ॥ ७५ ॥ मैं तुम मथुरेशकी भुजाओंके बलसे जीती हुई सभाको नहीं चाहता;हे भगवन् !मैं आपको प्रसन्न करता हूं आप क्रोध करनेके योग्य नहीं हैं ॥ ७६ ॥ हे राजन् ! देवकी वसुदेव और रोहिणी यह प्रसन्नतासे इस प्रकार मोहको प्राप्त हैं कि यह कुछ करनेको समर्थ नहीं हैं ॥ ७७ ॥

हे राजन् ! तब कंसकी माताने श्रीकृष्णकी पूजा की और अनेक दिशा जातिसे जो धन कंस ले आया था ॥७८॥ देशकाल देखकर वह धन श्रीकृष्णके चरणकमलमें निवेदन कर दिया तब उग्रसेनको बुलाकर मनोहर वाणीसे बोले ॥७९॥ श्रीकृष्ण बोले न मुझे मथुराकी इच्छा है, न मैं धन चाहता हूं, यह तुम्हारे पुत्रका वधभी कालका किया हुआ है ॥ ८० ॥ आप अनेक यज्ञ करके अनेक दक्षिणा दीजिये और मेरे बाहुबलके आश्रय हो शत्रुकी सेना जय करो॥८१॥कंसके नाश होनेके भय और संतापको त्यागन करो, और यह सब धन ले जाओ, यह मेरा दिया हुआ फिर

कंसमाता ततो राजन्नर्चयामास केशवम् ॥ नानादिग्देशजानीतं कंसेनोपार्जितं धनम् ॥ ७८ ॥ देशकालं समालोक्य पादयुग्मे न्यवेदयत् ॥ उग्रसेनं समाहूय उवाच श्लक्ष्णया गिरा ॥७९॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ न चाहं मथुराकांक्षी न मया वित्तकांक्षया ॥ घातितस्तव पुत्रोऽयं कालेन निधनं गतः॥८०॥ यजस्व विविधान्यज्ञान्ददस्व विपुलं धनम् ॥ जयस्व रिपुसैन्यानि मम बाहुबलाश्रयात् ॥८१॥ त्यजस्व मनसस्तापं कंसनाशोद्भवं भयम् ॥ नयस्व वित्तनिचयं मया दत्तं पुनस्तव ॥ ८२ ॥ इति प्राश्वास्य राजानं कृष्णस्तु हलिना सह॥प्रविवेश ततश्श्रीमान्मातापित्रोरथान्तिकम्॥८३॥आनन्दपरिपूर्णाभ्यां हृदयाभ्यां महाबलौ॥पितृमात्रोस्तु पादान्वै नमश्चक्रतुरानतौ॥८४॥तस्मिन्मुहूर्ते नगरी मथुरा तु बभूव सा ॥ स्वर्गलोकं परित्यज्यावतीर्णेवामरावती॥८५॥वसुदेवस्य भवनं समीक्ष्य पुरवासिनः॥मनसा चिन्तयामासुर्देवलोकं न भूतलम् ॥८६॥ विसृज्य मथुरेशं तु महिषीसहितं तदा ॥ भवनं वसुदेवस्य प्रविश्य बलकेशवौ ॥८७॥ न्यस्तशस्त्रावुभौ वीरौ स्वगृहे स्वैरचारिणौ॥ततःकृताह्निकौ भूत्वा सुखासीनौ कथान्तरे॥८८॥

तुम्हारेही निमित्त हो ॥८२॥ इस प्रकार राजाको समझाकर बलराम सहित श्रीकृष्णजी माता पिताके समीपको गये ॥ ८३ ॥ आनन्दसे परिपूर्ण हुए हृदयसे वह दोनों महाबली पितामाताके चरणोंको नमस्कार करते हुए ॥ ८४ ॥ उस मुहूर्तमें मथुरा नगरी महाशोभित हुई मानो अमरावती स्वर्गको छोडकर पृथ्वीमें आई ॥८५॥ पुरवासी वसुदेवके घरको देखकर मनसे विचारने लगे कि यह देवलोकही है, पृथ्वीतल नहीं है ॥८६॥ तब स्त्रीसहित उग्रसेनको विदा करके वसुदेवके मंदिरमें बलराम और केशव गये ॥ ८७ ॥ वहां दोनों वीर शस्त्र रखकर स्वच्छन्द फिरने

लगे,और आह्निक कर्म करके सुखसे कथान्तरमें बैठेथे कि इसीअवसरमें महाउत्पात हुआ,आकाशमें बादल घूमने लगे,पृथ्वीपर पर्वत चलायमान हो गये॥८८॥८९॥सब सागर क्षुभित सर्प भ्रान्त और सब यादव घबडाकर औंधे हो पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ९० ॥ उन्हें गिरा देखकरभी राम कृष्ण निश्चल हो रहे और बडी पवनसे गरुडका आगमन जाना ॥९१॥ उन सनातन मंत्री धैर्यवान् गरुडजीको आये हुए देखकर श्रीकृष्णजी उनसे बोले ॥९२॥ उन्होंने दिव्य माला और अनुलेपन लगाये हुएको देखकर तिनसे वोह सौम्यरूपी प्रणाम करके आसनके ऊपर बैठाया गया॥९३॥हे पक्षिश्रेष्ठ,

एतस्मिन्नेव काले तु महोत्पातो बभूव ह ॥ बभ्रमुश्च घनाकाशे चेलुश्च भुवि पर्वताः ॥ ८९ ॥ समुद्राः क्षुभितास्सर्वे विभ्रान्तो भोगिनां वरः ॥ कम्पिता यादवास्सर्वे न्युब्जाश्च पतिता भुवि ॥९०॥ तौ तान्निपतितान्दृष्ट्वा रामकृष्णौ तु निश्चलौ ॥ महता पक्षवातेन विज्ञातौ पतगोत्तमम् ॥९१॥ ददर्श समनुप्राप्तं दिव्यस्रगनुलेपनम् ॥ प्रणम्य शिरसा ताभ्यां सौम्यरूपी कृतासनः ॥ ॥ ९२ ॥ तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं सचिवं साम्परायिकम् ॥ धृतिमन्तं गरुत्मन्तमुवाच बलिसूदनः ॥ ९३ ॥ स्वागतं खेचरश्रेष्ठ सुरसेनारिमर्दन ॥ विनताहृदयानन्द स्वागतं केशवप्रिय ॥ ९४ ॥ तमुवाच ततः कृष्णः स्थितं देवमिवापरम् ॥ तुल्यसामर्थ्यया वाचा आसीनं विनतात्मजम् ॥ ९५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ यास्यामः पतगश्रेष्ठ भोज्यस्यान्तःपुरं महत् ॥ तत्र गत्वा सुखासीना मन्त्रयामो मनोऽनुगम् ॥ ९६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रविष्टौ तौ महावीर्यौ बलदेवजनार्दनौ ॥ वैनतेयतृतीयौ च गुह्यं मन्त्रमथाब्रुवन् ॥९७॥ अवध्योऽसौ कृतोऽस्माकं सुमहच्च रिपोर्बलम् ॥ वृतस्सैन्येन महता महद्भिश्च नराधिपैः ॥ ९८ ॥

हे देवशत्रुकी सेनाके मर्दन करनेहारे ! आपका शुभागमन हो, हे विनतानन्दन केशवप्रिय ! तुम्हारा मंगल हो ॥९४॥ तब फिर देवताके समान स्थित हुए उससे श्रीकृष्णजी बोले,उस समय गरुडजी अपनी तीक्ष्ण और पूर्ण सामर्थ्य वाणीसे स्थितहो गये॥९५॥तब श्रीकृष्ण बोले; अब हम भोजराज के बडे अन्तःपुरमें जाते हैं,वहां जाकर महाप्रसन्नतासे हम तीनजन मंत्रणा करेंगे॥९६॥वैशंपायन बोले; जब बलराम श्रीकृष्ण गरुडके साथ एक स्थानमें प्राप्त हो मंत्रणा करने लगे ॥ ९७ ॥ कि यह बडा भारी शत्रु जरासंध और उसकी सेना अवध्य है वह अनेक राजा और बहुतसी सेनासे

युक्त है ॥ ९८ ॥ जरासंधकी इतनी अधिक सेना है कि हम बहुत वर्षोंमेंभी उसका क्षय नहीं कर सके ॥ ९९ ॥ इसकारण हे गरुड ! मैं तुमसे कहता हूं कि अब मथुरा पुरीमें निवास करनेसे हमारा मंगल न होगा॥ १००॥गरुडजी बोले; जब मैं देवदेवको नमस्कार कर इस स्थानसे गयाथा हे देव!आपके निवासके निमित्त मैंने कुशस्थली स्थान भूमि देखनेको चला॥ १०१॥आकाशमें जाताहुआ उसे चारोंओरसे देख हे देवताओंमें श्रेष्ठ!मैंने अनेक लक्षणयुक्तवहपुरी देखी॥ १०२॥जो सागर और जलके देशोंके जलके वहावसे शीतल,चारोंओर समुद्रसे वेष्टितदेवताओंकोभी अभेद्य॥ १०३॥

बहुलानि च सैन्यानि हन्तुं वर्षशतैरपि ॥ न शक्ष्यामः क्षयं कर्तुं जरासंधस्य वाहिनीम् ॥९९॥ अतोऽर्थं वैनतेय त्वां ब्रवीमि मथुरां पुरीम् ॥ वसतोरावयोश्श्रेयो न भवेदिति मे मतिः ॥१००॥ गरुड उवाच ॥ देवदेवं नमस्कृत्य गतोऽहं भवतोऽन्तिकात् ॥ वासार्थ-मिक्षितुं भूमिं तव देव कुशस्थलीम् ॥ १ ॥ गत्वाहं खे समास्थाय समन्तादवलोक्य ताम् ॥ दृष्ट्वाहं विबुधश्रेष्ठ पुरीं लक्षणपूजि-ताम् ॥ २ ॥ सागरानूपविपुलां प्रागुदक्प्लवशीतलाम् सर्वतोदधिमध्यस्थामभेद्यां त्रिदशैरपि ॥ ३ ॥ सर्वरत्नाकरवतीं सर्वकाम-फलद्रुमाम् ॥ सर्वर्तुकुसुमाकीर्णां सर्वतस्सुमनोहराम् ॥४॥ सर्वाश्रमाधिवासां च सर्वकामगुणैर्युताम् ॥ नरनारीसमाकीर्णां नित्यमो-दविवर्द्धिनीम् ॥५॥ प्राकारपरिखोपेतां गोपुराट्टालमालिनीम् ॥ विचित्रचत्वरपथां विपुलद्वारतोरणाम् ॥६॥ यन्त्रार्गलविचित्राढ्यां हेमप्राकारशोभिताम् ॥ नरनागा श्वकलिलां रथसैन्यसमाकुलाम् ॥७॥ नानादिग्देशजाकीर्णां दिव्यपुष्पफलद्रुमाम् ॥ पताकाध्वज-मालाढ्यां महाभवनशालिनीम् ॥ ८ ॥

सम्पूर्णरत्नोंकी खानसेभरी,सब कामफल देनेहारे वृक्षोंसे सबऋतुओंके फलोंसे तथा चारों ओरसे मनोहरतासेव्याप्त॥ १०४॥सम्पूर्ण आश्रमोंके रहने योग्य सम्पूर्ण काम और गुणोंसे पूर्ण नरनारियोंसेपूणनित्य आनन्दकी बढानेहारी॥ १०५॥प्राकार और परिखासे युक्त गोपुर फाटक और अटारियोंसे भरी पुरी विचित्र चौराहोंसेव्याप्त अनेक द्वारोंपर ध्वजा शोभित है॥ १०६॥कलें और मूसलोंसे महाविचित्रसुवर्णके परकोटसे शोभित, मनुष्य नाग हाथी और रथकीसेनासे संकुल॥ १०७॥अनेकप्रकारके देशोंकेउत्पन्नहुए दिव्यपुष्पवृक्षोंसे समाकीर्ण,ध्वजा पताका और महाभवनोंसे शोभित॥ १०८॥

शत्रुओंको आनेही महाभय देनेहारी, मनुजेन्द्रोंके रहने योग्य सब नगरोंसे श्रेष्ठ॥ १०९॥ सुन्दर रैवत पर्वत वहीं है; हे देव! उसको देवताओंकी निवासभूमि जानिये यह नन्दनवनके समान श्रेष्ठ पुर और द्वारके भूषणरूप ॥ ११० ॥ उस नगरीमें चलकर हे सुरोत्तम! वहां निवास कीजिये, कुमारियोंका प्रचार ऐसा करनेसे मनोहर हो जायगा ॥ ११॥ उसका नाम द्वारवती तीनों लोकमें विख्यात होगा, यह पुरी इन्द्रकी अमरावतीके समान होगी ॥ ११२॥ जो थोडी भूमि होगी तो सागर भी समान भूमि दे देगा विश्वकर्मा उसमें अनेक वस्तु निर्माण करेगा॥ ११३॥ मणिमुक्ता मूंगे हीरे वैडूर्य मणिकी कांतिवाले

भीषणीं रिपुसंघानां मित्राणां हर्षवर्द्धनीम् ॥ मनुजेन्द्राधिवासेभ्यो विशिष्टां नगरोत्तमाम् ॥९॥ रैवतं च गिरिंश्रेष्ठं कुरु देव सुराल-यम् ॥ नन्दनप्रतिमं दिव्यं पुरद्वारस्य भूषणम् ॥११०॥ कारयस्वाधिवासं च तत्र गत्वा सुरोत्तम ॥ कुमारीणां प्रचारश्च सुरमण्यो भविष्यति॥ ११॥ नाम्ना द्वारवती ज्ञेया त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ भविष्यति पुरी रम्या शक्रस्येवामरावती॥१२॥यदि स्यात्संवृतां भूमिं प्रदास्यति महोदधिः ॥ यथेष्टं विविधं कर्म विश्वकर्मा करिष्यति ॥ १३ ॥ मणिमुक्ताप्रवालाभिर्वज्रवैदूर्यसप्रभैः ॥ दिव्यैरभिप्रा-युतैर्दिव्यरत्नैस्त्रिलोकजैः ॥१४॥ दिव्यस्तम्भशताकीर्णान्स्वर्गे देवसभोपमान् ॥ जाम्बूनदमयाञ्छुभ्रान्सर्वरत्नविभूषितान् ॥ १५ ॥ दिव्यध्वजपताकाढ्यान्देवगन्धर्वपालितान् ॥ चन्द्रसूर्यप्रतीकाशान्प्रासादान्कारय प्रभो ॥१६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं कृत्वा तु संकल्पं वैनतेयोऽथ केशवम् ॥ प्रणम्य शिरसा ताभ्यां निषसाद कृतासनः॥ १७॥कृष्णोऽपि रामसहितो विचिन्त्य हितमीरितम् ॥ प्रकाशं कर्तुकामौ तो विसृज्य विनतात्मजम् ॥ १८ ॥

दिव्य प्रयोजनसे तथा दिव्य त्रिलोकीके रत्नोंसे पूर्ण॥ ११४॥ सैंकडों दिव्यस्तंभोंसे व्याप्त स्वर्गमें देवताओंकी सभाके समान सुवर्णके बने हुए मनोहर सब रत्नोंसे विभूषित॥ ११५॥ दिव्य ध्वजापाताकाओंसे व्याप्त, देवता गन्धर्वोंसे पालित, चन्द्रसूर्यके समान प्रकाशमान महल बनवाइये॥ ११६॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार गरुडजी श्रीकृष्णसे सम्मति करके उन्हें प्रणाम कर हाथ जोडखडे हुए॥ ११७॥ कृष्णने भी बलरामसहित इस वार्तामें यत्नपूर्वक हितविचार कर लिया और

प्रकाशसे यह कर्म करनेकी इच्छासे उन्होंने गरुडको विदा किया॥११८॥ हे राजन्!बडे मोलके भूषणोंसे विधिपूर्वक सत्कार कर वे दोनों सुरलोकमें स्थित हुए देवताके समान प्रसन्न हुए ॥ ११९ ॥ उसके यह वचन सुन महायशस्वी भोजराज स्नेहसे विस्रब्ध हुए वचनामृत श्रीकृष्णसे कहने लगा ॥१२०॥ हे कृष्ण महाभुज ! यदुवंशियोंके आनन्द बढानेहारे हे रिपुसूदन ! जो मैं कहूं सो आप सुनिये ॥१२१॥तुम्हारे विना हम रहनेको समर्थ नहीं न इस नगरमें रह सक्के हैं न दूसरेमें जसे पति विना स्त्री नहीं रह सक्ती ॥ १२२ ॥ हे तात ! हम तुमसे सनाथ हो तुम्हारी बाहुबलका

सत्कृत्य विधिवद्राजन्महार्हवरभूषणैः॥ मोदेते सुखिनौ तत्र सुरलोके यथामरौ ॥१९॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भोजराजो महायशाः॥ कृष्णं स्नेहेन विस्रब्धं बभाषे वचनामृतम् ॥१२०॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्द्धन॥ श्रूयतां वचनं त्वाद्य वक्ष्यामि रिपुसूदन॥२१॥त्वया विहीनास्सर्वे स्म न शक्तास्सुखमासितुम् ॥ पुरेऽस्मिन्विषयान्ते वा पतिहीना इव स्त्रियः ॥२२॥ त्वत्सनाथा वयं तात त्वद्बाहुबलमाश्रिताः ॥ बिभीमो न नरेन्द्राणां सेन्द्राणामपि मानद ॥२३॥ विजयाय यदुश्रेष्ठ यत्र यत्र गमिष्यसि ॥ तत्र त्वं सहितोऽस्माभिर्गच्छेथा यादवर्षभ ॥ २४ ॥ तस्य राज्ञो वचश्श्रुत्वा सस्मितं देवकीसुतः॥ यथेष्टं भवतामद्य तथा कर्तास्म्यसंशयम् ॥१२५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि मन्त्रोदाहरणे रुक्मिणीस्वयंवरे राजेन्द्राभिषेचनसमाप्तिर्नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ वैशम्पायन उवाच॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य सभ्यांस्तान्यदुसंसदि ॥ बभाषे पुण्डरीकाक्षो हेतुमद्वाक्यमुत्तमम् ॥१॥ यादवानामियं भूमिर्मथुरा राष्ट्रमालिनी ॥ वयं चैवेह संभूता व्रजे च परिवर्द्धिताः ॥ २ ॥

आश्रय किये, हे दान दनेहारे ! हम नरेंद्र अथवा इंद्रसेभी नहीं डरते ॥ १२३ ॥ हे यदुश्रेष्ठ ! जहां जहां आप विजयके निमित्त जांयगे; हे यादवश्रेष्ठ ! वहां हमारे साथ आप चलिये ॥ १२४ ॥ उन राजाके यह वचन सुन हँसते हुए श्रीकृष्णजी बोले जो तुम कहो मैं अवश्य वही करूंगा ॥ १२५ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ वैशंपायन बोले; किसी समय सभामें उन सभाके मनुष्योंसे श्रीकृष्णने हेतुयुक्त उत्तम वाक्य कहे ॥ १ ॥ यह राज्यवाली मथुरा यादवोंकी भूमि है हम यहीं उत्पन्न होकर व्रजमें बढे हैं ॥ २ ॥

इस समय शत्रु पराजित हुए दुःखभी सब दूर हुए और जरासंधसे महावैरभी हो गया ॥३॥ वाहन और पैदलभी हमारे अनंत हैं, विचित्ररत्न और मित्रभी बहुत हैं ॥४॥ परन्तु यह मथुरा भूमि थोडी और शत्रुओंसे गम्य है, यहां शत्रु आ सक्ते हैं, हमारे वृद्धि बल और मित्र यहीं बढे हैं ॥५॥ एक कोटी कुमार तथा पैदलसमूहोंका यहां रहनेसे थोडा कष्ट देखा जाता है ॥ ६ ॥ हे यदुश्रेष्ठो! अब यहांका रहना हमें अच्छा नहीं लगता, इस कारण दूसरी पुरीमें प्रवेश करेंगे सो तुम हमारा यह अपराध क्षमा करो ॥७॥ जो यह मेरे अभिप्रायका वचन तुम्हारे अनुकूल हो तो जो कुछ इस

तदिदानीं गतं दुःखं शत्रवश्च पराजिताः ॥ नृपेषु जनितं वैरं जरासंधेन विग्रहः ॥३॥ वाहनानि च नस्सन्ति पादातं चाप्यनन्तकम्॥ रत्नानि च विचित्राणि मित्राणि च बहूनि च ॥४॥ इयं च माथुरी भूमिरल्पा गम्या परस्य तु ॥ वृद्धिश्चैव परास्माकं बलतो मित्रतस्तथा ॥५॥ कुमारकोटचो याश्चेमाः पदातीनां गणाश्च ये ॥ एषामपीह वसतां संमर्दमुपलक्षये ॥६॥ अत्र नो रोचते मह्यं निवासो यदुपुङ्गवाः॥ पुरीं निवेशयिष्यामि मम तत्क्षन्तुमर्हथ ॥७॥ एतद्यदनुरूपं वो ममाभिप्रायजं वचः ॥ भवाय भवतां काले यदुक्तं यदुसंसदि ॥८॥ तमूचुर्यादवास्सर्वे हृष्टेन मनसा तदा ॥ साध्यतां यदभिप्रेतं जनस्यास्य भवाय वै ॥९॥ ततस्संमन्त्रयामासुर्वृष्णयो मन्त्रमुत्तमम् ॥ अवध्योऽसौ कृतोऽस्माकं सुमहच्च रिपोर्बलम् ॥ १० ॥ कृतस्सैन्यक्षयश्चापि महानिह नराधिपैः ॥ बहुलानि च सैन्यानि हन्तुं वर्षशतैरपि ॥ न शक्ष्यामो ह्यतस्तेषामपयाने भवन्मतिः॥११॥तस्मिंश्चैवान्तरे राजा स कालयवनस्तदा ॥ सैन्येन तद्विधेनैव मथुरामभ्युपागमत् ॥१२॥ ततो जरासंधबलं दुर्निवार्यमभूत्तदा ॥ ते कालयवनं चैव श्रुत्वेदं प्रतिपेदिरे ॥ १३ ॥

सभामें तुम्हारे मंगलके निमित्त कहा है सो करो ॥ ८ ॥ तब सब यादव प्रसन्न होकर बोले हमारे मंगलके निमित्त जो इच्छा हो सो करो ॥ ९ ॥ तब वृष्णिवंशी श्रेष्ठ सम्मति करने लगे कि यह राजा और सेनाभी हमसे अवध्य है ॥ १० ॥ और महान राजोंकी सेनाकाभी क्षय हुआ है; फिर महासेनाके मारनेको तो सौ वर्षमेंभी समर्थ नहीं हैं, इस कारण हमारी इच्छा यहांसे जानेकी है ॥ ११ ॥ उसी समय वोह कालयवन राजा महासेनाको साथ लिये मथुरापुरीमें आया ॥ १२ ॥ तब तो जरासंधकी सेना दुर्निवार्य हो गई, वे कालयवनका आना सुनते चले आये ॥ १३ ॥

तब श्रीकृष्णने यादवोंसे कहा; हे सत्यसंगरो ! आजही पवित्र दिन है हम अपनी सेनासहित चलें॥१४॥तब श्रीकृष्णकी आज्ञासे सब यादव वहांसे चले वह सेना सागरके समूहके समान चली ॥१५॥ अपनी २ स्त्रियोंको साथ ले वसुदेवको आगेकर सन्नद्ध हुए मतवाले हाथी और रथ घोडोंपर सवार हुए ॥ १६ ॥ वे अपने जन ज्ञाति और बांधव दुन्दुभि बजाकर वे सब यादव मथुराको छोड निकल खडे हुए॥१७॥सुवर्णके रथ मतवाले हाथी आज्ञामात्रसेही कूदनेवाले घोडे चाबुकके उठातेही चलनेवाले॥१८॥ अपनी २ सेनाओंको शोभासे ले जाते हुए वे सब यदुवंशी प्रसन्न हो पश्चिमकी

केशवः पुनरेवाह यादवान्सत्यसंगराः ॥ अद्यैव दिवसः पुण्यो निर्यामस्स्वबलानुगाः ॥ १४ ॥ ततो निश्चक्रमुः सर्वे यादवाः कृष्णशासनात् ॥ ओघा इव समुद्रस्य बलौघप्रतिनादिताः ॥ १५ ॥ संगृह्य ते कलत्राणि वसुदेवपुरोगमाः ॥ सुसन्नद्धैर्गजैर्मत्तै रथैरश्वैश्च दंशितैः ॥ १६ ॥ आहत्य दुन्दुभीन्सर्वे स्वजनज्ञातिबान्धवाः ॥ निर्ययुर्यादवास्सर्वे मथुरामपहाय वै ॥१७॥ स्यन्दनैः काञ्चनापीडैर्मत्तैश्च वरवारणैः ॥ सूतैः प्लुतैश्च तुरगैः कशापार्ष्णिप्रणोदितैः ॥ १८ ॥ स्वानि स्वानि बलाग्राणि शोभयन्तः प्रकर्षिणः ॥ प्रत्यङ्मुखा ययुर्हृष्टा वृष्णयो भरतर्षभ ॥ १९ ॥ ततो मुख्यतमास्सर्वे यादवा रणकोविदाः ॥ अनीकाग्राणि कर्षन्तो वासुदेवपुरोगमाः ॥ २० ॥ ते स्म नानालताचित्रं नालिकेरवनायुतम् ॥ कीर्णं नागबलैः कान्तं केतकीखण्डमण्डितम् ॥ २१ ॥ तालपुन्नागबकुलद्राक्षावनघनं क्वचित् ॥ अनूपं सिन्धुराजस्य प्रपेतुर्यदुपुङ्गवाः ॥ २२ ॥ ते तत्र रमणीयेषु विषयेषु सुखप्रियाः ॥ मुमुदुर्यादवास्सर्वे देवास्स्वर्गगता इव ॥ २३ ॥ पुरवास्तु विचिन्वन्त्यः कृष्णस्तु परवीरहा ॥ ददर्श विपुलं देशं सागरेणोपशोभितम् ॥ २४ ॥ वाहनानां हितं चैव सिकताताम्रमृत्तिकम् ॥ पुरलक्षणसंपन्नं कृतास्पदमिव श्रिया ॥ २५ ॥

ओर गमन करने लगे ॥ १९ ॥ तब रणमें कोविद सम्पूर्ण यादव श्रीकृष्णके आगे सब अपनी२सेना लिये ॥२०॥ अनेक लताओंसे युक्त नारियल के वनसे शोभित, नागरपानसे युक्त केतकीके खण्डसे मंडित ॥२१॥ कहीं ताल पुन्नाग बकुल दाखके वनसे युक्त सिंधुराजके अनूप देशको सब यादव प्राप्त होते हुए॥२२॥ वे सुखकी इच्छा करनेहारे उन रमणीय देशोंमें सब प्रसन्न होने लगे, जसे देवता स्वर्गमें प्रसन्न होते हैं ॥ २३ ॥ शत्रुहन्ता श्रीकृष्णके पुरवास्तु (स्थान) को देखते हुए सागरके अनूप शोभित विपुलदेशको देखा॥२४॥ जो वाहनोंका हित सुन्दर ताम्र मृत्तिका और

पुरके लक्षणसे सम्पन्न मानो लक्ष्मीका स्थानही है ॥२५॥ सागरकी पवनसे युक्त सागरके जलसे सेवित, सिंधुराजका विषय पुरके लक्षणसे शोभित था ॥ २६॥ रैवत पर्वत उसके निकटही था उसके शिखर मंदिरके समान चारों ओरसे विराजमान होते थे ॥२७॥ वहां एकलव्य द्रोणने चिरकालतक निवास किया था, वह अनेक पुरुषोंसे युक्त सम्पूर्ण रत्नोंसे विराजित था॥२८॥वही उन राजा कृष्णकी विहारभूमि बनी उसका नाम द्वारवती यज्ञ के निमित्त अठपहलू स्थानके समान बनाईगई ॥२९॥श्रीकृष्णने वहीं निवास करनेकी इच्छाकी यादवोंनेभी वहां सेनाका रहना अच्छा जाना॥३०

सागरानिलसंवीतं सागराम्बुनिषेवितम् ॥ विषयं सिन्धुराजस्य शोभितं पुरलक्षणैः ॥ २६ ॥ तत्र रैवतको नाम पर्वतो नातिदूरतः ॥ मन्दरोदारशिखरस्सर्वतोऽभिविराजते ॥ २७ ॥ तत्रैकलव्यसंवासो द्रोणेनाध्युषिताश्चिरम् ॥ प्रभूतपुरुषोपेतस्सर्वरत्नसमाकुलः ॥ २८ ॥ विहारभूमिस्तत्रैव तस्य राज्ञस्सुनिर्मिता ॥ नाम्ना द्वारवती नाम स्वायताष्टापदोपमा ॥ २९ ॥ केशवेन मतिस्तत्र पुर्यर्थं विनिवेशिता ॥ निवेशं तत्र सैन्यानां रोचयन्ति स्म यादवाः ॥ ३० ॥ ते रक्तसूर्यदिवसे तत्र यादवपुङ्गवाः ॥ सेनापालांश्च संचक्रुस्स्कन्धावारनिवेशनम् ॥३१॥ ध्रुवाय तत्र न्यवसत्केशवस्सह यादवैः ॥ देशे पुरनिवेशाय स यदुप्रवरो विभुः ॥३२॥ तस्यास्तु विधिवन्नाम वास्तूनि च गदाग्रजः ॥ निर्ममे पुरुषश्रेष्ठो मनसा यादवोत्तमः ॥ ३३ ॥ एवं द्वारवतीं चैव पुरीं प्राप्य सबान्धवाः ॥ सुखिनो न्यवसन्राजन्स्वर्गे देवगणा इव ॥ ३४ ॥ कृष्णोऽपि कालयवनं ज्ञात्वा केशिनिषूदनः ॥ जरासंधभयाच्चैव पुरीं द्वारवतीं ययौ ॥३५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारावतीप्रयाणं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

वे सब यादव लाल सूर्य होनेके समय वहां निवास करते हुए,और सेनावालोंने वहां डेरे छावनी करनेकी इच्छाकी॥३१॥वह श्रीकृष्ण यादवोंकेसहित निश्चल हो वसे,वह यदुवर उस देशमें पुरकेनिवेश करनेके निमित्त स्थितहुए।३२॥पुरुषश्रेष्ठ यादवोत्तमने उसपुरीमें अनेकप्रकारके घर और नाम मन सेही बनाये॥३३॥इस प्रकार बंधुओंसहित द्वारवती पुरीमें प्राप्त हो स्वर्गमें देवताओंके समान वे सब सुखसे निवास करने लगे॥३४॥ इस प्रकार श्रीकृष्णके शीनिषूदन कालयवनको आया जान जरासंधके भयसे द्वारकापुरीमें चले गये ॥३५॥इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥

जन्मेजय बोले;हे भगवन् ! महात्मा श्रीकृष्णके उत्तम चरित्र विस्तारसे सुननेकी इच्छा करता हूं।।१।।कि किस कारणसे उन मधुसूदनने मध्यदेश के अधिष्ठान लक्ष्मीके केवल धाम मथुरापुरीको विना युद्धके त्याग दिया ।।२।। जो पृथ्वीकी शिरोरत्न बहुत धन धान्यसे युक्त श्रेष्ठ पुरुषोंकी अधिष्ठान जलसे पूर्ण अन्नादिसे पूर्ण मथुराको।।३।।विनाही युद्धके श्रीकृष्णने किस कारण छोड़ दिया, और उस कालयवनने श्रीकृष्णसे क्यों वैर किया।।४।। और श्रीकृष्ण जलके दुर्गवाली द्वारकामें प्राप्त हो महाबाहु महायोगी महातपस्वीने क्या किया।।५।।उस कालयवनका कितना बलऔर वह किससे

जनमेजय उवाच ।। भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महात्मनः ।। चरितं वासुदेवस्य यदुश्रेष्ठस्य धीमतः ।।१।। किमर्थं च परित्यज्य मथुरां मधुसूदनः ।। मध्यदेशस्य ककुदं धाम लक्ष्म्याश्च केवलम् ।।२।। शृङ्गं पृथिव्यास्स्वालक्ष्यं प्रभूतधनधान्यवत् ।। आर्याढ्यजलभूयिष्ठमधिष्ठानवरोत्तमम् ।।३।। आयुद्धेनैव दाशार्हस्त्यक्तवन्द्विजसत्तम ।। स कालयवनश्चापि कृष्णे किं प्रत्यपद्यत ।।४।। द्वारकां च समासाद्य वारिदुर्गां जनार्दनः किं चकार महाबाहुर्महायोगी महातपाः ।।५।। किंवीर्यः कालयवनः केन जातश्च वीर्यवान् यमसह्यं समालक्ष्य व्यपयातो जनार्दनः ।। ६ ।। वैशम्पायन उवाच ।। वृष्णीनामन्धकानां च गुरुर्गार्ग्यो महामनाः ।। ब्रह्मचारी पुरा भूत्वा न स्म दारान्स विन्दति ।।७।। तथाहि वर्तमानं तमूर्ध्वरेतसमव्ययम् श्यालोऽभिशस्तवान्गार्ग्यमपुमानिति राजनि ।। ८ ।। सोऽभिशस्तस्तदा राजन्नगरे त्वजितं जये ।। अलिप्संस्तु स्त्रियं चैव तपस्तेपे सुदारुणम्।।९।।ततो द्वादशवर्षाणि सोऽयश्चूर्णमभक्षयत् ।। आराधयन्महादेवमचिन्त्यं शूलपाणिनम् ।। १० ।।

उत्पन्न हुआ था जिसको असह्य देखकर श्रीकृष्ण वहांसे चले गये।।६।।वैशंपायन बोले;वृष्णि और अंधकोंके गुरु महात्मा गार्ग्यजी पहले ब्रह्मचारी रहे थे यह स्त्रीके निकट नहीं जाते थे ।। ७ ।। इस प्रकार ऊर्ध्वरेता अविनाशी गार्ग्यसे इनके सालेने सभामें कहा कि, गार्ग्य नपुंसक है ।।८।। तब यह इस वचनसे क्रोधित हो पुत्रकी प्राप्तिके निमित्त घोर तप करने लगे परंतु स्त्रीकी वहांभी इच्छा न की ।। ९ ।। बारह वर्षतक लोहचूर्णका भक्षण किया

केवल अचिन्त्य शूलपाणि महादेवकी आराधना करते रहे॥१०॥तब शिवजीने प्रसन्न होकर उनकी इच्छानुसार वृष्णि और अंधकोंका जीतनेवाला सर्व तेजोमय पुत्र दिया ॥ ११ ॥ तब पुत्रकी वांछा करनेवाला यवनाधिपति उस वरदानको सुन देवतासे पुत्र पाया जान ॥१२॥ उस गार्ग्यको अपने स्थानमें ले आया और यवनाधिपतिने उसको गोपस्त्रियोंके बीचमें रक्खा॥१३॥ वहां एक गोपाली अप्सरा गोपकी स्त्रीका वेष धारण किये रहती थी उसने इनका दुर्धर अच्युत गर्भ धारण किया॥१४॥शिवजीकी इच्छासे उस मानुष्यरूपवाली अप्सरामें महाबली शूर कालयवन उत्पन्न

रुद्रस्तस्मै वरं प्रादात्समर्थं युधि निग्रहे ॥ वृष्णीनामन्धकानां च सर्वतेजो मयं सुतम् ॥११॥ ततश्शुश्राव तं राजा यवनाधिपति-र्वरम् ॥ पुत्रप्रसवजं देवादपुत्रः पुत्रकामिता ॥१२॥ स नृपस्तमुपानाय्य सान्त्वयित्वा द्विजोत्तमम् ॥ तं घोषमध्ये यवनो गोपस्त्रीषु समासृजत् ॥१३॥ गोपाली त्वप्सरास्तत्र गोपस्त्रीवेषशधारिणी ॥ धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्द्धरमच्युतम् ॥ १४ ॥ मानुष्यां गार्ग्यभार्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः ॥ स कालयवनो नाम जज्ञे शूरो महाबलः ॥१५॥ अपुत्रस्याथ राज्ञस्तु ववृधेऽन्तः पुरे शिशुः ॥ तस्मिन्नुपरते राजन्स कालयवनो नृपः ॥१६॥ युद्धाभिकामो नृपतिः पर्यपृच्छद्द्विजोत्तमान् ॥ वृष्ण्यन्धककुलं तस्य नारदेन निवेदितम् ॥१७॥ ज्ञात्वा तु वरदानं तन्नारदान्मधुसूदनः ॥ उपप्रैक्षत तेजस्वी वर्द्धन्तं यवनेषु तम् ॥१८॥ समृद्धो हि यदा राजा यवनानां महाबलः ॥ तत एवं नृपा म्लेच्छास्संश्रित्यानुययुस्तदा ॥ १९ ॥ शकास्तुषारा दरदाः पारदाश्शृङ्गलाः खसाः ॥ पह्लवाश्शतशश्चान्ये म्लेच्छा हैमवतास्तथा ॥ २० ॥

हुआ ॥१५॥ वह बालक उसका पुत्र राजाके अन्तःपुरमें वृद्धिको प्राप्त होने लगा; हे राजन् ! उसके मृतक होने पर वह कालयवनही राजा हुआ ॥१६॥ उसने युद्धकी इच्छासे ब्राह्मणोंसे शूरका नाम पूछा तब नारदने कहा तुम्हारे योग्य वृष्णि और अंधकका कुल है ॥१७॥ और उसके वरदान का समाचार नारदजीसे सुनकर श्रीकृष्णने बढते हुए कालयवनकी उपेक्षा की॥१८॥ जिस समय वह महाबली यवनोंका राजा समृद्ध हुआ तब म्लेच्छ राजा भी इसके आश्रितहो अनुगामी हुए॥१९॥शक तुष दरद पारद शृंगल खस पह्लव और सैंकडों हिमालयके पार्श्वके म्लेच्छ ॥२०॥

टीढी दलके समान दस्यु और तिन यवनोंसे युक्त हो वह राजा अनेक प्रकारके आयुधधारी भयंकर मूर्तिवालोंके साथ मथुरामें प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ हाथी घोडे खिच्चड ऊंट इनके दश सहस्र और अरबोंसे बडी भारी सेनाके भारसे पृथ्वी कंपित होने लगी ॥२२॥ उसकी सेनाकी रजसे सूर्य आच्छादित हो गया सेनाके मूत्र गोबरसे एक प्रकारकी नदी बन जाती थी ॥ २३ ॥ जिस स्थानमें घोडे और ऊंटोंकी महा लीद पडी थी उस स्थानका नाम अश्वशकृत् हो गया ॥ २४ ॥ उसका महासेनासहित आना सुनकर वृष्णि अन्धकके अग्रणी वासुदेवको बुलाकर ज्ञातिवालोंसे बोले ॥ २५ ॥ यह

स तैः परिवृतो राजा दस्युभिश्शलभैरिव ॥ नानावेषायुधैर्भीमैर्मथुरामभ्यवर्तत ॥२१॥ गजवाजिखरोष्ट्राणामयुतैरर्बुदैरपि ॥ पृथिवीं कम्पयामास सैन्येन महतावृतः॥२२॥ रेणुना सूर्यमार्गं तु समवच्छाद्य पार्थिवः ॥ मूत्रेण शकृता चैव सैन्येन ससृजे नदीम्॥२३॥ अश्वोष्टशकृतां राशेर्निस्सृतेति जनाधिप ॥ ततोऽश्वशकृदित्येव नाम नद्या बभूव ह ॥ २४ ॥ तत्सैन्यं महदायाद्दै श्रुत्वा वृष्ण्यन्धकाग्रणीः ॥ वासुदेवस्समानाय्य ज्ञातीनिदमुवाच ह ॥२५॥ इदं समुत्थितं घोरं वृष्ण्यन्धकभयं महत् ॥ अवध्यश्चापि नश्शत्रुर्वरदानात्पिनाकिनः ॥ २६ ॥ सामादयोभ्युपायाश्च विदितास्तस्य सर्वशः ॥ मत्तो मदबलाभ्यां तु युद्धमेव चिकीर्षति ॥२७॥ एतावानिह वासश्च कथितो नारदेन मे ॥ एतावति च वक्तव्यं सामैव परमं मतम् ॥ २८ ॥ जरासंधश्च नो राजा नित्यमेव न मृष्यते ॥ तथान्ये पृथिवीपाला वृष्णिचक्रप्रतापिताः ॥२९॥ केचित्कंसवधाच्चापि विरक्तास्तद्गता नृपाः ॥ समाश्रित्य जरासंधमस्मानिच्छन्ति बाधितुम् ॥३०॥ बहवो ज्ञातयश्चैव यदूनां निहता नृपैः ॥ वर्द्धितुं नैव शक्ष्यामःपुरेऽस्मिन्निति केशवः ॥ ३१ ॥

महाघोर वृष्णि अंधकोंको भय प्राप्त हुआ है और शिवजीके वरदानसे हमारा शत्रु अवध्य है।॥२६॥सामादिक उपाय यह सब जानता है इससे मत्त हो हमसे संग्रामकी इच्छा करता है॥२७॥नारदजीने यहां हमारा इतनेही दिन रहना कहा है और यही कहना कि साम उपायही हमारा परम सम्मत है ॥ २८ ॥ जरासंधराजा तो हमको सहनही न करता है, इस प्रकार दूसरे राजाभी वृष्णियोंसे व्याकुल हैं ॥२९॥ कुछ राजा कंसके मारनेसेभी विरक्त हो रहे हैं वे राजा जरासंधके आश्रित हो हमारे बाधा देनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३० ॥ राजोंने यदुओंकी बहुत जाति नष्ट कर दी इस कारण

अब हम इस पुरमें नहीं रह सक्के इस कारण श्रीकृष्णने ॥३१॥ वहांसे जानेकी इच्छा कर कालयवनके पास दूत भेजा, और अञ्जन पर्वतके समान घडेमें महासर्पको ॥३२॥ जो घोरविषयुक्त था उसे घडेमें बंद कर उसपर मुहर लगा दूतके हाथ भज दिया ॥ ३३ ॥ इससे श्रीकृष्णने उसको भय दिया कि मैं इस सर्पके समान दुष्टोंका कालरूप हूं, दूतने जाकर कालयवनको वह घट दिखाया ॥ ३४ ॥ कृष्ण कालसर्पके समान हैं, यह वार्ता कालयवन उसे देखकर जान गया, कि यादवोंने भय दिया है ॥३५॥ तब उस घडेको महाघोर चटियोंसे भर दिया, वह महा विषैला तीक्ष्ण सर्प उन

अपयाने मतिं कृत्वा दूतं तस्मै ससर्ज ह ॥ ततः कुम्भे महासर्पं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ॥ ३२ ॥ घोरमाशीविषं कृष्णं कृष्णः प्राक्षेपयत्तदा ॥ ततस्तं मुद्रयित्वा तु स्वेन दूतेन हारयत् ॥ ३३ ॥ निदर्शनार्थं गोविन्दो भीषयामास तं नृपम् ॥ स दूतःकालयवने दर्शयामास तं घटम् ॥ ३४ ॥ कालसर्पोपमः कृष्ण इत्युक्त्वा भरतर्षभ ॥ तत्कालयवनो बुद्ध्वा त्रासनं यादवैः कृतम् ॥ ३५ ॥ पिपीलिकानां चण्डानां पूरयामास तं घटम् ॥ स सर्पो बहुभिस्तीक्ष्णैस्सर्वतस्तैः पिपीलिकैः ॥ ३६ ॥ भक्ष्यमाणः किलाङ्गेषु भस्मीभूतोऽभवत्तदा ॥ तं मुद्रयित्वा तु घटं तथैव यवनाधिपः ॥ प्रेषयामास कृष्णाय बाहुल्यमुपवर्णयन् ॥ ३७ ॥ वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा योगं विहतमात्मनः ॥ उत्सृज्य मथुरामाशु द्वारकामभिजग्मिवान् ॥ ३८ ॥ वैरस्यान्तं विधित्संस्तु वासुदेवो महायशाः ॥ निवेश्य द्वारकां राजन्वृष्णीनाश्वास्य चैव ह ॥ ३९ ॥ पदातिः पुरुषव्याघ्रो बाहुप्रहरणस्तदा ॥ आजगाम महावीर्यो मथुरां मधुसूदनः ॥४०॥ तं दृष्ट्वा निर्ययौ हृष्टस्स कालयवनो रुषा ॥ प्रेक्षापूर्वं च कृष्णोऽपि निश्चकर्ष महाबलः ॥४१॥

चैंटियोंने ॥३६॥ प्रत्येक अंगमें भक्षण कर दिया, तब वह भस्मीभूत हो गया इसी प्रकार कालयवनके उस घडेपर अपनी मुहर लगाकर उसे अपनी बहुतायत दिखानेको श्रीकृष्णके पास भेज दिया ॥३७॥ वासुदेव महायोगी उसे देखकर मथुराको छोड शीघ्रही द्वारकाको चले गये ॥ ३८ ॥ और महायशस्वी वासुदेव वैरका अंत करनेकी इच्छासे द्वारकामें वृष्णियोंको बसाय उन्हें आशा भरोसा दे ॥ ३९ ॥ वह पुरुषसिंह महाबली कृष्ण बाहुसे प्रहार करनेकी इच्छासे पैरों पैरों मथुरामें आये ॥ ४० ॥ उनको देखकर कालयवन राजा बडे क्रोधसे प्रसन्नतापूर्वक उनके पकडनेको सेनासे निकला

और उन्हें पकडनेकी इच्छा करने लगा॥४१॥और इसी इच्छासे यवनेश्वर उनके पीछे हुआ परन्तु वह राजा योगेश्वरके पकडनेको समर्थ न हुआ ॥४२॥ मांधाताका पुत्र महायशस्वी राजा मुचुकुन्द, जिसने पहले देवासुरयुद्धमें महापराक्रम प्रकाश किया था ॥४३॥ तब देवताओंने वर मांगनेको कहा तब इसने निद्रा मांगकर कहा कि मुझ थके हुए ॥४४॥ सोते हुएसो जो कोई जगावे हे देवताओ ! मैं भस्म करनेमें समर्थ हूं, मेरी क्रोधभरी दृष्टि उसको भस्म कर दे ऐसा वारंवार कहा ॥ ४५ ॥ तथास्तु यह बात इन्द्रने देवताओंके सहित कही, वह देवताओंसे आज्ञा ले अद्रिराज पर्वतपर आया

अथान्वगच्छद्गोविन्दं जिघृक्षुर्यवनेश्वरः ॥ न चैनमशकद्राजा ग्रहीतुं योगधर्मिणम् ॥ ४२ ॥ मान्धातुस्तु सुतो राजा मुचुकुन्दो महायशाः ॥ पुरा देवासुरे युद्धे कृतकर्मा महाबलः ॥ ४३ ॥ वरण च्छन्दितो देवैर्निद्रामेव गृहीतवान् ॥ श्रान्तस्य तस्य वागेवं तदा प्रादुरभूत्किल ॥ ४४ ॥ प्रसुप्तं बोधयेद्यो मां तं दहेयमहं सुराः ॥ चक्षुषा क्रोधदीप्तेन एवमाह पुनः पुनः ॥ ४५ ॥ एवमस्त्विवति तं शक्र उवाच त्रिदशैस्सह स सुरैरभ्यनुज्ञात अद्रिराजमुपागमत् ॥ ४६ ॥ स पर्वतगुहां कांचित्प्रविश्य श्रमकर्शितः ॥ सुष्वाप कालमेतं वै यावत्कृष्णस्य दर्शनम् ॥ ४७ ॥ तत्सव वासुदेवाय नारदेन निवेदितम् ॥ वरदानं च देवेभ्यस्तेजस्तस्य च भूपतेः ॥ ४८ ॥ कृष्णोऽनुगम्यमानश्च तेन म्लेच्छेन शत्रुणा ॥ तां गुहां मुचुकुन्दस्य प्रविवेश विनीतवत् ॥४९॥ शिरःस्थाने तु राजर्षेर्मुचुकुन्दस्य केशवः ॥ संदर्शनपदं त्यक्त्वा तस्थौ बुद्धिमतां वरः ॥ ५० ॥ अनुप्रविश्य यवनो ददर्श पृथिवीपतिम् ॥ स तं सुप्तं कृतान्ताभमाससाद सुदुर्मतिः ॥ ५१ ॥

॥४६॥वह श्रमसे व्याकुल हो पर्वतकी किसी गुफामें जाय कृष्णके दर्शनकालके समयतक सोता रहा ॥ ४७ ॥ वह सब वार्ता नारदजीने श्रीकृष्ण जीसे कह दी थी, देवताओंका वर और जैसा उसका तेज था ॥ ४८ ॥ वह म्लेच्छ शत्रु श्रीकृष्णके पीछे पीछे जाता था, यह विनीतवत् उस मुचुकुन्दकी गुहामें प्रवेश कर गये ॥४९॥ श्रीकृष्ण राजर्षि मुचुकुन्दके शिरकी ओर उसके दर्शनका मार्ग छोडकर स्थित हुए कारण कि बडे बुद्धिमान थे ॥ ५० ॥ यवननेभी पीछे प्रवेश कर उस राजाको देखा, वह दुर्मति उस शयन करनेवाले कालके समानके निकट गया ॥ ५१ ॥

उसे वासुदेव जानकर उस दुष्टने अपने नाशके निमित्त उसे चरणसे प्रहार किया, जैसे शलभ अग्निमें प्रवेश करता है ॥५२॥चरण छूतेही राजर्षि मुचुकुन्द जाग उठा, पांवके छूने और निद्राके भंग होनेसे उसे क्रोध आया ॥ ५३ ॥ तब इन्द्रके वरका स्मरण कर उसने उसकी ओर देखा वह क्रोधसे देखतेही चारों ओरसे अग्निकी समान जल उठा ॥ ५४ ॥ जैसे सूखे वृक्षको वज्र भस्म कर देता है इस प्रकार उसे अग्निसे भस्म कर दिया, इस प्रकार उस नेत्रसे निकले तेजसे वह क्षणमात्रमें भस्म हो गया ॥ ५५ ॥ तब बुद्धिमान् श्रीकृष्णने बहुत कालसे सोते हुए श्रीमान्

वासुदेवं तु तं मत्वा घट्टयामास पार्थिवम् ॥ पादेनात्मविनाशाय शलभः पावकं यथा ॥५२॥ मुचुकुन्दस्तु राजर्षिः पादस्पर्शप्रबोधितः ॥ निद्राच्छेदेन चुक्रोध पादस्पर्शेन तेन च ॥ ५३ ॥ संस्मृत्य स वरं शक्रादवैक्षत तमग्रतः ॥ स दृष्टमात्र क्रोधेन संप्रजज्वाल सर्वशः ॥५४॥ ददाह पावकस्तं तु शुष्कं वृक्षमिवाशनिः ॥ क्षणेन कालयवनं नेत्रतेजोविनिर्गतः ॥ ५५ ॥ तं वासुदेवश्श्रीमन्तं चिरसुप्तं नराधिपम् ॥ कृतकार्योऽब्रवीद्धीमानिदं वचनमुत्तमम् ॥५६॥ राजंश्चिरप्रसुप्तोऽसि कथितो नारदेन मे ॥ कृतं मे सुमहत्कार्यं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥५७॥ वासुदेवमुपालक्ष्य राजा ह्रस्वं प्रमाणतः ॥ परिष्कृतं युगं मेने कालेन महता तदा ॥५८॥ उवाच राजा गोविन्दं को भवान्किमिहागतः ॥ कश्च कालः प्रसुप्तस्य यदि जानासि कथ्यताम् ॥ ५९ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ सोमवंशोद्भवो राजा ययातिर्नाम नाहुषः ॥ तस्य पुत्रो यदुर्ज्येष्ठश्चत्वारोऽन्य यवीयसः ॥ ६० ॥

राजा मुचुकुन्दसे इस प्रकार श्रेष्ठ वचन कहे ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! मुझसे नारदजीने कहा कि तुम बहुत समयसे सोते ही आपने मेरा बडा कार्य किया आपका मंगल हो अब मैं जाता हूं ॥ ५७ ॥ वासुदेवका रूप देखकर राजा अपना विचार समझ कि मुझे सोते हुए इतना समय बीत गया कि कोई युग बदल गया;कारण कि बहुत छोटे मनुष्य उत्पन्न होते हैं॥५८॥तब राजाने गोविंदसे कहा तुम कौन हो और यहां कैसे आये हो और मुझे सोते हुए कौनसा काल बीत गया,और अब क्या समयहै यदि जानते हो तो कहो॥५९॥श्रीकृष्ण बोले;नहुषका

पुत्र ययाति राजा चन्द्रमाके वंशमें हुआ, उसका बडा पुत्र यदु श्रेष्ठ और चार छोटे थे ॥ ६० ॥ यदुवंशमें उत्पन्न हुए वसुदेवका मैं पुत्र हूं. हे राजन् ! आप यहां आये हुए मुझको वासुदेव जानिये ॥ ६१ ॥ मैंने नारदजीसे सुना था कि आप त्रेतायुगसे सोते हो और अब यह कलियुग आ गया है, अब दूसरा तुम्हारा क्या कार्य करूं सो कहो ॥ ६२ ॥ श्रीकृष्ण बोले;हे राजन् ! आपने देवताओंसे वर पाय मेरे शत्रुको भस्म कर दिया, जो सौ वर्षमेंभी युद्धमें मुझसे नहीं मारा जा सकता ॥ ६३ ॥ वैशंपायन बोले;कृष्णके यह वचन सुन वह गुहासे निकला और कृतकार्य बुद्धि-

यदुवंशात्समुत्पन्नं वसुदेवात्मजं विभो ॥ वासुदेवं विजानीहि नृपते त्वामिहागतम् ॥ ६१ ॥ त्रेतायुगे प्रसुप्तोऽसि विदितो मेऽसि नारदात् ॥ इदं कलियुगं विद्धि किमन्यत्करवाणि ते ॥६२॥ मम शत्रुस्त्वया दग्धो देवदत्तवरो नृप ॥ अवध्यो यो मया संख्ये भवेद्वर्षशतैरपि ॥ ६३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इत्युक्तस्स तु कृष्णेन निर्जगाम गुहामुखात् ॥ अन्वीयमानः कृष्णेन कृतकार्येण धीमता ॥६४॥ ततो ददर्श पृथिवीमावृतां ह्रस्वकैर्नरैः ॥ स्वल्पोत्साहैरल्पबलैरल्पवीर्यपराक्रमैः परेणाधिष्ठितं चैव राज्यं केवलमात्मनः॥६५॥प्रीत्या विसृज्य गोविन्दं प्रविवेश महद्वनम् ॥ हिमवन्तमगाद्राजा तपसे धृतमानसः॥६६॥ ततस्स तप आस्थाय विनिर्मुच्य कलेवरम् ॥ आरुरोह दिवं राजा कर्मभिस्स्वैर्जिताशुभैः॥६७॥वासुदेवोऽपि धर्मात्मा उपायेन महामनाः ॥ घातयित्वात्मनश्शत्रुं तत्सैन्यं प्रत्यपद्यत ॥६८॥ प्रभूतरथहस्त्यश्ववर्मशस्त्रायुधध्वजम्॥आदायोपययौ धीमान्स सैन्यं निहतेश्वरम्॥६९॥

मान् श्रीकृष्णजी उसके पीछे चले॥६४॥उसने पृथ्वीको छोटे प्रमाणके मनुष्योंसे आच्छादित देखी जो थोडे उत्साहवाले अल्पबली और अल्पवीर्य बलके पराक्रमवाले थे,और अपना राज्यभी दूसरे पुरुषोंसे अधिष्ठित देखा ॥ ६५ ॥ तब प्रेम पूर्वक श्रीकृष्णको विदाकर महावनमें प्रविष्ट हुआ इस प्रकार राजा तपस्यामें मन लगाय हिमालय पर्वतको गया ॥६६॥ तब वह तपमें स्थित शरीर त्याग अपने श्रेष्ठ कर्मोंसे स्वर्गको प्राप्त हुआ ॥६७॥ धर्मात्मा वासुदेव इस उपायसे अपने शत्रुका वध कराकर उसकी सेनामें प्राप्त हुए॥६८॥ अनेक हाथी घोडे रथ कवच शस्त्र आयुध ध्वजा इस मृतक

स्वामीवाली सेनाको लेकर श्रीकृष्ण उनके निकटसे चले गये ॥६९॥और प्रसन्नमन हो वह सब उग्रसेनको निवेदन किया, और श्रीकृष्णने उस सेनाके महाधनसे द्वारकापुरीकी पूर्ण शोभा कर दी ॥ ७० ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां कालयवनवधो नाम सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥ वैशंपायन बोले;जब विमल प्रभात होनेपर सूर्य उदय हुआ श्रीकृष्ण जप करके वनान्तमें स्थित हुए॥१॥दुर्गस्थानके देखनेकी इच्छासे उस स्थानमें विचरनेलगे,तब कुलमें अग्रणी यादव यदुनन्दनके निकट उपस्थित हुए॥२॥रोहिणी नक्षत्रके दिन ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराय और अनेक पुण्य

निवेदयामास ततो नराधिपे तदुग्रसेने प्रतिपूर्णमानसः ॥ जनार्दनो द्वारवतीं च तां पुरीमशोभयत्तेन धनेन भूरिणा ॥ ७० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कालयवनवधो नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः प्रभाते विमले भास्करे उदिते तदा ॥ कृतजाप्यो हृषिकेशो वनान्ते निषसाद ह ॥१॥ परिचक्राम तं देशं दुर्गस्थानदिदृक्षया ॥ उपातस्थुः कुलप्राग्र्या यादवा यदुनन्दनम् ॥२॥ रोहिण्यामहनि श्रेष्ठे स्वस्ति वाच्य द्विजोत्तमान् ॥ पुण्याहघोषैर्विपुलैर्दुर्गत्या-रब्धवान्क्रियाम् ॥ ३ ॥ ततः पङ्कजपत्राक्षो यादवान्केशिसूदनः ॥ प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो देवान्वृत्ररिपुर्यथा ॥४॥ कल्पितेयं मया भूमिः पश्यध्वं देवसद्मवत् ॥ नाम चास्याः कृतं पुर्याः ख्यातिं यदुपयास्यति ॥५॥ इयं द्वारवती नाम पृथिव्यां निर्मिता मया ॥ भविष्यति पुरी रम्या शक्रस्येवामरावती॥६॥तान्येवास्याः कारयिष्ये चिह्नान्यायतनानि च ॥ चत्वरात्राजमार्गांश्च सम्यगन्तः-पुराणि च ॥ ७ ॥ देवा इवात्र मोदन्तु भवन्तो विगतज्वराः ॥ बाधमाना रिपून्उग्रानुग्रसेनपुरोगमाः ॥ ८ ॥

शब्दोंसे दुर्गकी क्रिया प्रारंभ की ॥३॥ तब कमलनयन केशीनाशी श्रीकृष्ण कहनेवालोंमें श्रेष्ठ यादवोंसे इसप्रकार बोले, जिस प्रकार इन्द्र देवताओंसे बोलते हैं ॥४॥ यह मैंने देवस्थानके समान भूमि कल्पना की है, तुम इसको देखो इस पुरीका नामकरण भी किया है जिससे यह विख्यात हो जायगी ॥ ५ ॥ यह मैंने पृथ्वीमें द्वारवती निर्माण की है, यह शक्रकी अमरावतीके समान मनोहर पुरी होगी ॥ ६ ॥ वहीं इसके चिन्ह स्थान कराये जांयगे, चौराहे राजमार्ग अन्तःपुर बनेंगे ॥ ७ ॥ तुम इसमें देवताओंके समान

प्रसन्न हो विहार करो, और उग्रसेनके सहित यहां रहते हुए बडे बडे शत्रुओंको बाधा दे सकोगे॥८॥रहनेके घर ग्रहण करो, दो तीन बडे २ बजारोंसे राजमार्गकी कल्पना करो, राजमार्ग और महलोंकी जो गति है उसको ठीक करो ॥९॥ मंदिर बनाने वस्तु बनानेमें चतुर सहस्रों शिल्पी बुलानेको दूत भजो देशोंमें वस्तु भेजनेवाले जन नियुक्त किये जांयगे ॥१०॥ ऐसे कहनेपर यादव गृह बनानेमें तत्पर हुए, यथायोग्य स्थानोंमें उन्होंने घर बनाये ॥११॥ तब वे सब यादव श्रेष्ठ सूत्र ग्रहण कर उसकी नाप तोल करने लगे; हे राजन् ! पुण्य दिनमें ब्राह्मणोंकी पूजा करके ॥ १२ ॥

गृह्यन्तां वेश्मवास्तूनि कल्प्यन्तां त्रिकचत्वराः ॥ मीयन्ता राजमार्गाश्च प्रासादस्य च या गतिः ॥ ९ ॥ प्रेष्यन्तां शिल्पिमुख्यानां युक्तानां वेश्मकर्मसु ॥ नियुज्यन्तां च देशेषु प्रेष्यकर्मकरा जनाः ॥ १० ॥ एवमुक्ते तु यदवो गृहसंग्रहतत्पराः ॥ यथानिवेशं संहृष्टाश्चक्रुर्वास्तुपरिग्रहम् ॥११॥ सूत्रहस्तास्ततो मानं चक्रुर्यादवसत्तमाः ॥ पुण्येऽहनि महाराज द्विजातीनभिपूज्य च ॥ १२ ॥ वास्तुदैवतकर्माणि विधिना कारयन्ति च ॥ स्थपतीनथ गोविन्दस्तत्रोवाच महामतिः ॥ १३ ॥ अस्मदर्थे सुविहितं क्रियतामत्र मन्दिरम् ॥ विविक्तचत्वरपथं सुनिविष्टेष्टदैवतम् ॥ १४ ॥ ते तथेति महाबाहुमुक्त्वा स्थपतयस्तदा ॥ दुर्गकर्माणि संस्कारानुपकल्प्य यथाविधि ॥१५॥ यथान्यायं निर्ममिरे दुर्गाण्यायतनानि च ॥ स्थानानि निदधुश्चात्र ब्रह्मादीनां यथाक्रमम् ॥१६॥ अपामग्नेस्सुरेशस्य दृषदोलूखलस्य च ॥ चातुर्दैवानि चत्वारि द्वाराणि निदधुश्च ते ॥१७॥ शुद्धाक्षमैन्द्रं भल्लाटं पुष्पदन्तं तथैव च ॥ तेषु वेश्मसु युक्तेषु यादवेषु महात्मसु ॥ १८ ॥

वास्तु और देवकर्म उन्होंने विधिपूर्वक किये,फिर श्रीकृष्णने कारीगरोंसे कहा॥१३॥हे शिल्पियो ! हमारे योग्य सुन्दर मंदिर निर्माण करो जो श्रेष्ठ चारों मार्ग अर्थात् चौपरका बजार और सुन्दर इष्ट देवताओंके मंदिरसे युक्त हो ॥ १४ ॥ वे कारीगर बहुत अच्छा इस प्रकार श्रीकृष्णसे कहकर दुर्गकार्योंकी सामग्री विधिपूर्वक कल्पित करके ॥ १५ ॥ यथायोग्य दुर्गके स्थान निर्माण करने लगे, और उन्होंने यथाक्रमसे ब्रह्मादिकके स्थान बनाये ॥ १६ ॥ फिर जल अग्नि इन्द्र दृषद उलूखल इन चारों देवताओंके क्रमसे चार द्वार बनाये ॥ १७ ॥ क्षुद्राक्ष ऐन्द्र भल्लाट पुष्पदन्त इनके

मन्दिर महात्मा यादवोंके मंदिरोंमें रचे ॥ १८ ॥ पुरीमें शीघ्र प्रवेशके निमित्त श्रीकृष्णने विचार किया, और उन देवकी उज्ज्वल नेत्रकी प्रकाश करनेवाली बुद्धि प्रादुर्भूत हुई ॥ १९ ॥ वह पुरीकी प्रिय करनेवाली, और यदुवंशियोंका हित करनेहारी थी, प्रजापतिके पुत्र देवताओंके मुख्य कारीगर विश्वकर्मा ॥ २० ॥ आनकर इस पुरीको स्थापित करेंगे उसके आगमनके कारण प्रभुने मनसे ध्यान किया, और एकान्तमें देवताओंके सन्मुख स्थित हुए ॥ २१ ॥ उसी समय महाबुद्धिमान् शिल्पाचार्य देवताओंमें श्रेष्ठ विश्वकर्मा कृष्णके सन्मुख उपस्थित हुआ ॥ २२ ॥ हे विष्णो धृतव्रत ! मुझे

पुर्याः क्षिप्रं निवेशार्थं चिन्तयामास माधवः ॥ तस्य देवोत्थिता बुद्धिर्विमलक्षिप्रकारिणी ॥ १९ ॥ पुर्याः प्रियकरी सा वै यदूनामभिवर्द्धिनी ॥ शिल्पिमुख्यस्तु देवानां प्रजापतिसुतः प्रभुः ॥ २० ॥ विश्वकर्मा स्वमत्या वै पुरीं संस्थापयिष्यति ॥ मनसा समनुध्याय तस्यागमनकारणात् ॥ त्रिदशाभिमुखः कृष्णो विविक्ते समपद्यत ॥ २१ ॥ तस्मिन्नेव ततः काले शिल्पाचार्यो महामतिः ॥ विश्वकर्मा सुरश्रेष्ठः कृष्णस्य प्रमुखे स्थितः ॥ २२ ॥ विश्वकर्मोवाच ॥ शक्रेण प्रेषितः क्षिप्रं तव विष्णो धृतव्रत ॥ किंकरस्समनुप्राप्तश्शाधि मां किं करोमि ते ॥ २३ ॥ यथासौ देवदेवो मे शंकरश्च यथाव्ययः ॥ तथा त्वं देवमान्यो मे विशेषो नास्ति वः प्रभो ॥ २४ ॥ त्रैलोक्यज्ञापिकां वाचमुत्सृजस्व महाभुज ॥ एषोऽस्मि परिहृष्टार्थः किं करोमि प्रशाधि माम् ॥ २५ ॥ श्रुत्वा विनीतं वचनं केशवो विश्वकर्मणः ॥ प्रत्युवाच यदुश्रेष्ठः कंसारिरतुलं वचः ॥ २६ ॥ श्रुतार्थो देवगुह्यस्य भवान्यत्र वयं स्थिताः ॥ अवश्यं त्विह कर्तव्यं सदनं मे सुरोत्तम ॥ २७ ॥

इन्द्रने आपके निकट भेजा है, मैं आपका दास आपके समीप प्राप्त हूं कहिये आपका क्या प्रिय करूं ॥ २३ ॥ जैसे देव आदिदेव महादेव मेरे मान्य हैं
हे प्रभो ! इसी प्रकार आप हैं, कुछ इसमें विशेष नहीं है ॥ २४ ॥ हे महाभुज ! वह त्रिलोकीमें क्या बात है जिसको आपने बुलाया है, वह मैं आपके कार्यको कटिबद्ध हूं मुझे आप आज्ञा दीजिये मैं क्या करूं ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण विश्वकर्माके विनीत वचन सुन वह कंसारी देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी बोले ॥ २६ ॥ जिस कारण मैं यहां स्थित हूं उस देवगुह्य कार्यको तुम जानतेही हो. हे सुरोत्तम ! अब कार्य यह है कि हमारे योग्य स्थान बनाना

चाहिये॥२७॥हे सुव्रत ! अपनी कारीगरीका चमत्कार दिखानेको मेरे प्रभाव योग्य गृहोंसे युक्त पुरी निर्माण करो॥२८॥इस पृथ्वीमें ऐसे उत्तम घर बनाओ जैसी स्वर्गमें अमरावती पुरी है, वही तुमको करनी चाहिये. हे महामते ! तुम इस कार्यमें समर्थ हो॥२९॥ जैसे वैकुंठमें है वैसाही मेरा स्थान यहां बनाओ, मनुष्य मेरी लक्ष्मी और यदुपुरीका दर्शन करें॥३०॥ ऐसे वचन सुनकर महाबुद्धिमान् विश्वकर्मा अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्णसे बोला॥३१॥ हे प्रभो ! जो कुछ आपने कहा है यह मैं सब करूंगा और यह पुरी जनोंको पर्याप्त न होगी, चारों सागर इसमें अपना रूप धारे विचरेंगे ॥३२॥

तदियं पूः प्रकाशार्थं निवेश्या मयि सुव्रत ॥ मत्प्रभावानुरूपैश्च गृहैश्चेयं समन्ततः ॥२८॥ उत्तमा च पृथिव्यां वै यथा स्वर्गेऽमरावती ॥ तथेयं हि त्वया कार्या शक्तो ह्यसि महामते ॥२९॥ मम स्थानमिदं कार्यं यथा वै त्रिदिवे तथा ॥ मर्त्याः पश्यन्तुमे लक्ष्मीं पुर्यां यदुकुलस्य च ॥३०॥ एवमुक्तस्ततः प्राह विश्वकर्मा मतीश्वरः ॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणं देवामित्रविनाशनम् ॥ ३१ ॥ सर्वमेतत्करिष्यामि यत्त्वयाभिहितं प्रभो ॥ पुरीत्वियं जनस्यास्य न पर्याप्ता भविष्यति॥३२॥भविष्यति च विस्तीर्णा वृद्धिरस्यास्तु शोभना ॥ चत्वारः सागराः ह्यस्यां विचरिष्यंति रूपिणः॥३३॥यदीच्छेत्सागरः किंचिदुत्स्रष्टुमपि तोयराट् ॥ ततस्स्वायतलक्षण्या पुरी स्यात्पुरुषोत्तम॥३४॥एवमुक्तस्ततः कृष्णः प्रागेव कृतनिश्चयः ॥ सागरं सरितां नाथमुवाच वदतां वरः ॥३५॥समुद्र दश च द्वे च योजनानि जलाशये॥प्रतिसंह्रियतामात्मा यद्यस्ति मयि मान्यता॥३६॥अवकाशे त्वया दत्ते पुरीयं मामकं बलम्॥पर्याप्तविषया रम्या समग्रं विसहिष्यति॥३७॥ततः कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा नदनदीपति॥स मारुतेन योगेन उत्ससर्ज जलाशयम्॥३८॥

शोभावाली होंगी चारों सागर इसमें अपना रूप धारे विचरेंगे (अर्थात् सब रत्नोंसे पूर्ण होगी)॥३३॥हे कृष्ण ! यदि कुछ थोडासा स्थान सागर त्याग दे तो हे पुरुषोत्तम ! यह पुरी सम्पूर्ण गुणोंकी खान हो जायगी॥३४॥ यह सुनकर पहलेही निश्चय किये हुए श्रीकृष्णने नदीपति सागरके प्रतिवचन कहे श्रीकृष्ण बोलने वालोंमें श्रेष्ठ थे यह बोले ॥ ३५ ॥ हे सागर ! यदि तुम मेरा मान्य करते हो यह तो बारह योजन पृथ्वी खाली कर दो ॥ ३६ ॥ तुम्हारे अवकाश देनेसे पुरीमें मेरी सेना इसमें पूर्ण हो सुखसे निवास करेगी ॥ ३७ ॥ सागर यह श्रीकृष्णके वचन सुनकर पवनके योगसे

जलाशयको त्यागने लगा ॥ ३८ ॥ तब विश्वकर्माने पुरीमें वस्तुका स्थान विचार और सागरका किया श्रीकृष्णका सत्कार देख ॥ ३९ ॥ यदुनन्दन श्रीकृष्णसे विश्वकर्माने कहा; हे गोविन्द ! आजसे लेकर इसमें सब वास करो ॥ ४० ॥ हे प्रभो ! मैंने इस पुरीको मनसेही निर्माण किया है थोडेही कालमें अनेक गृहोंसे पूर्ण होगी ॥ ४१ ॥ यह पुरी सुन्दर द्वार तोरण वन्दनवारसे पूर्ण होगी, ऊंची सुन्दरी अटारी केयूररूप पृथ्वीके ककुदके समान होगी ॥ ४२ ॥ कृष्णका अन्तःपुर स्नानगृह उस पुरीमें देवपूजित विश्वकर्माने बनाया ॥ ४३ ॥ तब वह मनोहर द्वारावती पुरी निर्मित हो गई और

विश्वकर्मा ततः प्रीतः पुर्यास्संलक्ष्य वास्तु तत् ॥ गोविन्दे चैव सन्मानं कृतवान्सागरस्तदा ॥ ३९ ॥ विश्वकर्मा ततः कृष्णमुवाच यदुनन्दनम् ॥ अद्यप्रभृति गोविन्द सर्वे समधिरोहत ॥ ४० ॥ मनसा निर्मिता चेयं मया पूः प्रवरा विभो ॥ आचिरेणैव कालेन गृहसंबाधमालिनी ॥ ४१ ॥ भविष्यति पुरी रम्या सुद्वारा प्राग्र्यतोरणा ॥ चयाट्टालककेयूरा पृथिव्यां ककुदोपमा ॥ ४२ ॥ अन्तःपुरं च कृष्णस्य परिचर्याक्षयं महत् ॥ चकार तस्यां पुर्यां वै देशे त्रिदशपूजिते ॥ ४३ ॥ ततस्सा निर्मिता कान्ता पुरी द्वारावती तदा ॥ मानसेन प्रयत्नेन वैष्णवी विश्वकर्मणा ॥ ४४ ॥ विधानविहितद्वारा प्राकारवरशोभिता ॥ परिखाचयसंगुप्ता साट्टप्राकारतोरणा ॥४५ ॥ कान्तनारीनरगणा वणिग्भिरुपशोभिता ॥ नानापण्यगणाकीर्णा खेचरीव च गां गता ॥४६॥ प्रपावापीप्रसन्नोदा उद्यानैरुपशोभिता ॥ समन्ततस्संवृताङ्गी वनितेवायतेक्षणा ॥ ४७ ॥ समृद्धचत्वरवती वेश्मोत्तमघनाचिता ॥ रथ्याकोटिसहस्राढ्या शुभ्रराजपथोत्तरा॥ ४८ ॥ भूषयन्ती समुद्रं सा स्वर्गमिन्द्रपुरी यथा ॥ पृथिव्यां सर्वरत्नानामेका निचयशालिनी ॥ ४९ ॥

विश्वकर्माने वह पुरी मनकेही प्रयत्नसे निर्मित की ॥ ४४ ॥ द्वारोंपर अनेक विधान प्राकार (परकोटे) से शोभित परिखासमूहसे रक्षित अटारी प्राकार तोरण, वन्दनवारसे युक्त ॥ ४५ ॥ मनोहर स्त्री पुरुषोंसे भरी पुरी दुकानोंसे शोभायमान अनेक व्यापारकी वस्तुसे पूरित पृथ्वीमें आई हुई आकाशचारिणीकी समान ॥ ४६ ॥ पौवाय जल कुण्डके भाग, उद्यानसे शोभायमान; चारों ओरसे भूषण वसन पहरे दीर्घ नेत्रवाली स्त्रीकी समान शोभित ॥ ४७ ॥ समृद्धिमान्, चौराहेवाली उत्तम घने घरोंसे युक्त, करोडों गली और राजमार्गोंसे शोभायपान ॥ ४८ ॥ स्वर्गको इन्द्रपुरीकी समान वह सागरको भूषित

॥१७२॥

करती हुई पृथ्वीमें सब रत्नोंकी प्राप्तिका एकही स्थान ॥ ४९ ॥ देवताकेभी पुण्य निवासस्थान सामंतोंको क्षोभ करनेवाली और महालोंसे आका-
शको ॥ ५० ॥ अप्रकाशित करती हुई पृथ्वीके महाराज्यमें जनसमूहसे शब्दायमान सागरके प्रवाहसे शीतल पवनसे युक्त ॥ ५१ ॥ अनूप पवित्र मनो-
हर देशोंसे जनोंका मन हरनेहारी स्त्रीकी समान शोभित तारोंसे युक्त स्वर्गकी समान द्वारका शोभित होती थी ॥ ५२ ॥ सुवर्णके बने हुए सूर्यकी समान
परकोटेसे शोभित, सुवर्णकी समान चमकवाले गम्भीर शब्दोंसे पूर्ण घर ॥ ५३ ॥ शुभ्र मेघकी समान द्वार और महलोंकी छतोंसे शोभित कहीं कहीं बडे

सुराणामपि सुक्षेत्रा सामन्तक्षोभकारिणी ॥ अप्रकाशं तदाकाशं प्रासादैरुपकुर्वती ॥ ५० ॥ पृथिव्यां पृथुराष्ट्रायां जनौघप्रतिनादिता ॥
ओघैश्च वारिराजस्य शिशिरीकृतमारुता ॥ ५१ ॥ अनूपोपवनैः कान्तैः कान्त्या जनमनोहरा ॥ सतारका द्यौरिव सा द्वारका प्रत्य-
राजत ॥ ५२ ॥ प्राकारेणार्कवर्णेन शातकौम्भेन संवृता ॥ हिरण्यप्रतिवर्णैश्च गृहैर्गम्भीरनिस्स्वनैः ॥ ५३ ॥ शुभ्रमेघप्रतीकाशैर्द्वा-
रैस्सौधैश्च शोभिता ॥ क्वचित्क्वचिदुदग्राग्रैरुपावृतमहापथा ॥ ५४ ॥ तामावसत्पुरीं कृष्णस्सर्वै यादवनन्दनाः ॥ अभिप्रेतजनाकीर्णां
सोमः खमिव भासयन् ॥ ५५ ॥ विश्वकर्मा च तां कृत्वा पुरीं शक्रपुरीमिव ॥ जगाम त्रिदिवं देवो गोविन्देनाभिपूजितः ॥ ५६ ॥
भूयश्च बुद्धिरभवत्कृष्णस्य विदितात्मनः ॥ जनानिमान्धनौघैश्च तर्पयेयमहं यदि ॥ ५७ ॥ स वैश्रवणसंस्पृष्टं निधीनामुत्तमं
निधिम् ॥ शङ्खमाह्वयतोपेन्द्रो निशि स्वे भवने प्रभुः ॥ ५८ ॥

मार्गोंसे भूषित बनी ॥ ५४ ॥ उस पुरीमें श्रीकृष्णने सब यदुवंशियोंसहित निवास किया, और श्रेष्ठ जनोंसे पूर्ण वह पुरी ऐसी शोभित हुई जैसे चन्द्रमा
अपनी किरणोंसे प्रकाश करता है ॥ ५५ ॥ इस प्रकार विश्वकर्माने इन्द्रपुरीकी समान उस पुरीको निर्माण करके श्रीकृष्णको अर्पण की और उनसे
सत्कृत हो विश्वकर्मा स्वर्गको गया ॥ ५६ ॥ तब पूर्णज्ञानध्यान श्रीकृष्णकी यह इच्छा हुई कि मैं इस पुरीको सब धनोंसे तृप्त कर दूं ॥ ५७ ॥ तब
उन्होंने कुबेरके यहांकी उत्तम निधि शंखको रात्रीमें अपने यहां बुलाया ॥ ५८ ॥

वह निधिपति शंख श्रीकृष्णका बुलाना जानके द्वारकाके पतिके समीप रात्रिमें आया ॥ ५९ ॥ वह शंख हाथ जोड विनयसे पृथ्वीमें स्थित हुआ, और कृष्णसे कहने लगा जैसे कुबेरसे वचन कहता हो ॥ ६० ॥ हे भगवन् ! देवताओंके धर्मकी रक्षा करनेहारे मुझको क्या कार्य करना चाहिये. हे महाभुज यदुनन्दन ! जिस कार्यकी इच्छा हो उसमें हमको नियुक्त कीजिये ॥ ६१ ॥ तब उस उत्तम गुह्यकसे श्रीकृष्णजी बोले; जो हमारे यहां पुरुष थोडे धनवाले हैं उनको धनसे पूर्ण कर दो ॥ ६२ ॥ मैं इनको अन्न धनहीन कृश देखना नहीं चाहता इस नगरीमें जिसे धनकी इच्छा हो उसे तुम धनप्रदान करो ॥ ६३ ॥ वैशंपायन बोले; निधिराज केशवकी आज्ञा शिरपर धारण कर निधियोंको द्वारवतीके घर घरमें रहनेकी आज्ञा देता

स शंखः केशवाह्वानं ज्ञात्वा हि निधिराट् स्वयम् ॥ आजगाम समीपं वै तस्य द्वारवतीपतेः ॥५९॥ स शंखः प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयादवनिं गतः ॥ कृष्णं विज्ञापयामास यथा वैश्रवणं तथा ॥६०॥ भगवन्किं मया कार्यं सुराणां वित्तरक्षिणा ॥ नियोजय महाबाहो यत्कार्यं यदुनन्दन ॥६१॥तमुवाच हृषीकेशश्शंखं गुह्यकमुत्तमम् ॥ जनाः कृशधनायेऽस्मिंस्तान्धनेनाभिपूरय ॥ ६२॥ नेच्छाम्यनशितं द्रष्टुं कृशं मलिनमेव च ॥ देहीति चैव याचन्तं नगर्यां निर्द्धनं नरम् ॥ ६३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ गृहीत्वा शासनं मूर्ध्ना नीधिराट् केशवस्य ह ॥ निधीनाज्ञापयामास द्वारवत्यां गृहे गृहे ॥६४॥ धनौघैरभिवर्षध्वं चक्रुस्सर्वं तथा च ते ॥ नाधनो विद्यते तत्र क्षीणभाग्योऽपि वा नरः ॥ ६५ ॥ कृशो वा मलिनो वापि द्वारवत्यां कथञ्चन ॥ द्वारवत्यां पुरि पुरा केशवस्य महात्मनः ॥ ६६ ॥ चकार वायोराह्वानं भूयश्च पुरुषोत्तमः ॥ तत्रस्थ एव भगवान्यादवानां प्रियंकरः ॥६७॥ प्राणयोनिस्तु भूतानामुपतस्थे गदाधरम् ॥ एकमासीनमेकान्ते देवगुह्यधरं प्रभुम् ॥ ६८ ॥ किं मया देव कर्तव्यं सर्वगेनाशुगामिना ॥ यथैव दूतो देवानां तथैवास्मि तवानघ ॥ ६९ ॥

हुआ ॥ ६४ ॥ वे सब याचकोंके यहां धनकी वर्षा करने लगी द्वारकामें कोई निर्धनी वा हतभाग्य दृष्टिगोचर नहीं होता था ॥ ६५ ॥ कोईभी द्वारकामें कृश और मलीन दृष्टिगोचर नहीं होता था, इस प्रकार महात्मा केशवकी द्वारका पुरी हुई ॥ ६६ ॥ फिर पुरुषोत्तमने वायुका आह्वान किया इस प्रकार यादवोंके प्रिय करनेवाले भगवान्‌के आह्वान करने पर ॥ ६७॥ वह वायु श्रीकृष्णके निकट प्राप्त हुआ उस समयमें वह देवताओंमेंभी गुप्तस्वरूप प्रभु एकान्तमें स्थित थे ॥ ६८ ॥ तब उसने कहा; हे प्रभो ! शीघ्रगामी मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूं जैसे मैं देवताओंका दूत हूं इसी प्रकार तुम्हारा ॥६९॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने एकान्तमें उस जगत्के प्राणरूप पवनके उपस्थित होने पर कहा ॥ ७० ॥ हे पवन! तुम देवेश इन्द्रके निकट जाओ और उनकी सम्मतिसे यहां सुधर्मा सभा लाओ ॥ ७१ ॥ यह सहस्रों धर्मात्मा बली यादव हैं, यह सब उसमें प्रवेश करेंगे इससे कृत्रिमा सभा न होनी चाहिये ॥ ७२ ॥ जो अक्षया मनोहर कामरूपिणी यथेच्छ गमन करनेहारी है, वह सब यदुओंको धारण करेगी जैसे देवतोंको धारण करती है ॥७३॥ महापराक्रमी कृष्णके यह वचन ग्रहण कर वायु अपनी उत्तम गतिसे स्वर्गमें गये॥७४॥वह सम्पूर्ण देवताओंके सन्मुख श्रीकृष्णके वाक्य

तमुवाच ततः कृष्णो रहस्यं पुरुषो हरिः ॥ मारुतं जगतः प्राणं रूपिणं समुपस्थितम् ॥७०॥ गच्छ मारुत देवेशमनुमान्य सहामरैः ॥ सभां सुधर्मामादाय देवेभ्यस्त्वमिहानय ॥ ७१ ॥ यादवा धार्मिका ह्येते विक्रान्ताश्च सहस्रशः ॥ तस्यां विशेयुरेते वै नतु या कृत्रिमा भवेत् ॥ ७२ ॥ या ह्यक्षया सभा रम्या कामगा कामरूपिणी ॥ सा यदून्धारयेत्सर्वान्यथैव त्रिदशांस्तथा ॥ ७३ ॥ संगृह्य वचनं तस्य कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ वायुरात्मोपमगतिर्जगाम त्रिदिवालयम् ॥७४॥ सोऽनुमान्य सुरान्सर्वान्कृष्णवाक्यं निवेद्य च ॥ सभां सुधर्मामादाय पुनरायान्महीतलम् ॥७५॥ सुधर्माय सुधर्मां तां कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ॥ देवो देवसभां दत्त्वा वायुरन्तरधीयत ॥ ७६ ॥ द्वारवत्यास्तु सा मध्ये केशवेन निवेशिता ॥ सुधर्मा यदुमुख्यानां देवानां त्रिदिवे यथा ॥७७॥ एवं दिव्यैश्च भोगैश्च जलजैश्चाव्ययो हरिः ॥ द्रव्यैरलंकरोति स्म पुरीं स्वां प्रमदामिव ॥ ७८ ॥ मर्यादाश्चैव संचक्रे श्रेणीश्च प्रकृतीस्तथा ॥ बलाध्यक्षांश्च युक्तांश्च प्रकृतीशांस्तथैव च ॥ ७९ ॥ उग्रसेनं नरपतिं काश्यं चापि पुरोहितम् ॥ सेनापतिमनाधृष्टिं विकद्रुं मन्त्रिपुङ्गवम् ॥८०॥

निवेदन कर सभा सुधर्मा लेकर फिर पृथ्वीमें आया॥७५॥महापराक्रमी धर्मात्मा श्रीकृष्णके निमित्त देवी सुधर्मा देवसभा प्रदान करके वायु अन्तर्धान हो गया ॥ ७६ ॥ वह सभा श्रीकृष्णकी द्वारकापुरीमें रक्खी वह जैसे स्वर्गमें देवताओंकी इसी प्रकार यदुओंकी हुई ॥७७॥ इस प्रकार अविनाशी भगवान् दिव्य भोग अर्थात् स्वर्गभोग भूमि और जलके भोगसे द्वारका पुरीको भूषित करते हुए जैसे अपनी स्त्रीको कोई भूषित करता है॥७८॥ फिर प्रजाओंकी श्रेणीकी मर्यादा की बलाध्यक्षोंको प्रजाओंका स्वामी बनाया॥७९॥उग्रसेनको राजा और सांदीपनको अपना पुरोहित किया अनाधृष्टिको

सेनापति, और विकद्रुको मंत्री बनाया ॥ ८० ॥ दश[1] वृद्धोंको यादवोंके कुलका रक्षक किया, इसी प्रकार बुद्धिमान श्रीकृष्णने दूसरे कार्योंमें दूसरोंको स्थापित किया ॥ ८१ ॥ रथोंमें अतिरथी श्रीकृष्णका सारथी दारुक हुआ, और योधाओंमें मुख्य सात्यकी योधा किया ॥८२॥ इस प्रकार निन्दारहित श्रीकृष्ण पुरीमें सबको यथायोग्य अधिकारोंपर स्थापित कर वह लोकस्रष्टा पृथ्वीमें यदुओंके साथ प्रसन्न हुए ॥ ८३ ॥ रेवतकी शीलयुक्त रेवती कन्यासे श्रीकृष्णकी सम्मति ले बलदेवजीने विवाह किया। ८४॥इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां द्वारवतीनिर्माणं नामा-

यादवानां कुलकरान्स्थविरान्दश तत्र वै ॥ मतिमान्स्थापयामास सर्वकार्येष्वनन्तगान् ॥ ८१ ॥ रथेष्वतिरथो यन्ता दारुकः केशवस्य वै ॥ योधमुख्यश्च योधानां प्रवरस्सात्यकिः कृतः ॥८२॥ विधानमेवं कृत्वाथ कृष्णः पुर्यामनिन्दितः ॥ मुमुदे यदुभिस्सार्द्धं लोकस्रष्टा महीतले ॥ ८३ ॥ रेवतस्याथ कन्यां च रेवतीं शीलसंमताम् ॥ प्राप्तवान्बलदेवस्तु कृष्णस्यानुमते तदा ॥ ८४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारावतीनिर्माणं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतस्मिन्नेव काले तु जरासंधः प्रतापवान् ॥ नृपानुद्योजयामास चेदिराजप्रियेप्सया ॥ १ ॥ सुताया भीष्मकस्याथ रुक्मिण्या रुक्मभूषणः ॥ शिशुपालस्य नृपतेर्विवाहो भविता किल ॥ २ ॥ दन्तवक्रस्य तनयं सुवक्रममितौजसम् ॥ सहस्राक्षसमं युद्धे मायाशतविशारदम् ॥ ३ ॥ पौण्ड्रस्य वासुदेवस्य तथा पुत्रं महाबलम् ॥ सुदेवं वीर्यसंपन्नं पृथगक्षौहिणीपतिम् ॥ ४ ॥ एकलव्यस्य पुत्रं च वीर्यवन्तं महाबलम् ॥ पुत्रं च पांड्यराजस्य कलिङ्गाधिपतिं तथा ॥ ५ ॥

ष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ वैशंपायन बोले; इसी समय जरासंधने चेदिराजके प्रिय करनेकी इच्छासे राजोंको इकट्ठा किया ॥ १ ॥ कि भीष्मककी कन्या रुक्मभूषण रुक्मीकी बहन रुक्मिणीसे शिशुपालका विवाह होगा ॥ २ ॥ दन्तवक्रका पुत्र सुवक्र महाबली युद्धमें इन्द्रके समान सैंकडों मायाका ज्ञाता ॥३॥ पौंड्र वासुदेवके महाबली पुत्रको तथा वीर्यसम्पन्न सुदेवको जो अक्षोहिणीका पति था ॥ ४ ॥ एकलव्यके महाबली पुत्रको तथा

[1] उद्धव, वासुदेव, कंक, विपृथु, श्वफल्क, चित्रक, गद, सत्यक, बलभद्र, पृथु यह गुप्त मंत्र करनवाले थे।

कलिंगाधिपतिको ॥ ५ ॥ कृष्णके अप्रिय करनेवाले राजा वेणुदारिको अंशुमंत क्राथ श्रुतधर्माको ॥६॥ शत्रुसे रहित कालिंग तथा गान्धाराधिपति महावीर्य प्रसह्य कौशाम्बि नगरीके स्वामीको ॥ ७ ॥ भगदत्त, महासेन, शल, शाल्व, महावली, भूरिश्रवा, महासेन; महाबली कुन्तिवीर्य, यह सब स्वयंवरके निमित्त भोजराजके स्थानमें प्राप्त हुए ॥८॥ जनमेजय बोले; वेदविदाम्बर रुक्मी कौनसे देशमें उत्पन्न हुआ था; हे द्विजश्रेष्ठ ! यह किस देशमें प्रगट हुआ था ॥ ९ ॥ वैशंपायन बोले; राजर्षि ज्यामघके विदर्भ नामक पुत्र था वह विंध्याचलके दक्षिण पार्श्वमें विदर्भ नगरीमें रहता था ॥ १० ॥

कृताप्रियं च कृष्णेन वेणुदारिं नराधिपम् ॥ अंशमन्तं तथा क्राथं श्रुतधर्माणमेव च ॥ ६ ॥ निवृत्तशत्रुं कालिङ्गं गान्धाराधिपतिं तथा ॥ प्रसह्य च महावीर्यं कौशाम्ब्यधिपमेवच॥७॥भगदत्तो महासेनश्शलश्शाल्वो महाबलः ॥ भूरिश्रवा महासेनः कुन्तिवीर्यश्च वीर्यवान् ॥ स्वयंवरार्थं संप्राप्ता भोजराजनिवेशने ॥ ८ ॥ जनमेजय उवाच ॥ कस्मिन्देशे नृपो जज्ञे रुक्मी वेदविदां वरः ॥ कस्यान्ववाये द्युतिमान्संभूतो द्विजसत्तम ॥ ९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ राजर्षेर्यादवस्यासीद्विदर्भो नाम वै सुतः ॥ विन्ध्यस्य दक्षिणे पार्श्वे विदर्भायां न्यवेशयत् ॥१०॥ क्रथकैशिकमुख्यास्तु पुत्रास्तस्य महाबलाः ॥ बभूवुर्वीर्यसंपन्नाः पृथग्वंशकरा नृपाः ॥ ११ ॥ तस्यान्ववाये भीमस्य जज्ञिरे वृष्णयो नृपाः ॥ क्रथस्य त्वंशुमान्वंशे भीष्मकः कैशिकस्य तु ॥ १२ ॥ हिरण्यरोमेत्याहुर्यं दाक्षिणात्येश्वरं नृपाः ॥ अगस्त्यगुप्तामाशां यः कुण्डिनस्थोऽन्वशान्नृपः ॥ १३ ॥ रुक्मी तस्याभवत्पुत्रो रुक्मिणी च विशांपते रुक्मिी चास्त्राणि दिव्यानि द्रुमात्प्राप महाबलः ॥ १४ ॥

उसके महाबली मुख्य पुत्र क्रथ कैशिक थे, वे महाबली राजा पृथक् वंश करनेवाले हुए ॥ ११ ॥ उस भीमके वंशमें वृष्णिवंशी राजा उत्पन्न हुए, क्रथके वंशमें अंशुमान और कैशिकके भीष्मक हुए ॥ १२ ॥ जिसको दक्षिण देशका राजा हिरण्यरोमा कहते हैं, जो दक्षिण देशमें कुंडिनपुरका राज्य करता था ॥ १३ ॥ उसका पुत्र रुक्म और पुत्री रुक्मिणी थी, रुक्मीको दिव्य अस्त्र विद्रुमसे प्राप्त हुए थे ॥ १४ ॥

और जमदग्निके पुत्र परशुरामसे उसने ब्रह्मास्त्र पाया था, वह नित्यही अद्भुतकर्मा श्रीकृष्णके साथ स्पर्धा रखता था ॥ १५ ॥ और हे राजन्! रुक्मिणीके समान उस समय जगत्में कोई रूपवाली स्त्री नहीं थीजिसके श्रवणमात्रसेही श्रीकृष्णने उसकी इच्छा की थी ॥१६॥ गुणश्रवण मात्रसेही उस रुक्मिणीनेभी इच्छा करनेवाले श्रीकृष्णकी इच्छा की, और कहा,वह तेज वीर्य और पराक्रमसे युक्त मेरे स्वामी होंगे॥१७॥ रुक्मी महाबलीने द्वेषके कारण उसे श्रीकृष्णको नहीं दिया, और कंसके मारनेसे महातेजवाले कृष्णने मांगीभी परन्तु उसने द्वेषसे नहीं दी ॥ १८ ॥ और सुनीथके पुत्र

जामदग्न्यात्तथा रामाद्ब्राह्ममस्त्रमवाप्तवान् ॥ प्रास्पर्द्धत स कृष्णेन नित्यमद्भुतकर्मणा ॥ १५ ॥ रुक्मिणी त्वभवद्राजन्रूपेणासदृशी भुवि ॥ चकमे वासुदेवस्तां श्रवादेव महाद्युतिः ॥ १६ ॥ स तया चाभिलषितश्श्रवादेव जनार्दनः ॥ तेजोवीर्यबलोपेतस्स मे भर्ता भवेदिति ॥ १७ ॥ तां ददौ नच कृष्णाय द्वेषाद्रुक्मी महाबलः ॥ कंसस्य वधसंतापात्कृष्णायामिततेजसे ॥ याचमानाय कंसस्य द्वेष्योऽयमिति चिन्तयन् ॥१८॥ चैद्यस्यार्थे सुनीथस्य जरासन्धस्तु भूमिपः ॥ वरयामास तां राजा भीष्मकं भीमविक्रमम् ॥ १९ ॥ चेदिराजस्य तु वसोरासीत्पुत्रो बृहद्रथः ॥ मगधेषु पुरा येन निर्मितोऽसौ गिरिव्रजः ॥ २० ॥ तस्यान्ववाये जज्ञेऽसौ जरासंधो महाबलः ॥ वसोरेव तदा वंशे दमघोषोऽपि चेदिराट् ॥ २१ ॥ दमघोषस्य पुत्रास्तु पञ्च भीमपराक्रमाः ॥ भगिन्यां वसुदेवस्य श्रुतश्रवसि जज्ञिरे ॥ २२ ॥ शिशुपालो दशग्रीवो रैभ्योऽथोपदिशो बली ॥ सर्वास्त्रकुशला वीरा वीर्यवन्तो महाबलाः ॥ २३ ॥ ज्ञातेस्समानवंशस्य सुनीथः प्रददौ सुतम् ॥ जरासंधस्तु सुतवद्ददर्शैनं जुगोप च ॥ २४ ॥

शिशुपालके निमित्त जरासंध राजाने महाबली भीष्मकसे मांगी ॥ १९ ॥ चेदिराजका वसुसे बृहद्रथ पुत्र हुआ जिसने प्रथम मगधदेशमें गिरिव्रजकी रचना की ॥ २० ॥ उसके वंशमें महाबली जरासंध उत्पन्न हुआ, और वसुके वंशमें दमघोष पुत्र चेदिदेशका राजा हुआ ॥ २१ ॥ दमघोषके महाबली पराक्रमी पांच पुत्र हुए; वसुदेवकी बहिन श्रुतश्रवामें उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ शिशुपाल हयग्रीव रैभ्य उपदिश बली यह वीर सर्वास्त्रमें कुशल वीर्यवान् महाबली हुए॥२३॥ ज्ञातिके समान वंशमें सुनीथने अपने पुत्रको दिया, जरासंधने इसको पुत्रके समान देखकर रक्षा की ॥२४॥

जरासंधको आगे करके वृष्णियोंके महाबलीशत्रुके सहारे शिशुपालने वृष्णियोंसे अप्रिय करके वैरकर लिया॥२५॥ जब श्रीकृष्णने इसके जामाता कंसको मार डाला, उसी दिनसे जरासंध कृष्ण और यदुवंशियोंसे युद्ध करने लगा॥२६॥और भीष्मकसे शिशुपालके निमित्त रुक्मिणी मांगी, और वीर्यवान् भीष्मकनेभी देना स्वीकार कर लिया ॥२७॥ तब जरासंध शिशुपालको लेकर दन्तवक्रके साथ विदर्भ देशको गया ॥२८॥ और पौण्ड्र वासुदेव सहित अंग वंग कलिंग देशोंका राजा महाबली चला ॥ २९ ॥ रुक्मीने सन्मानके निमित्त सब राजोंकी अगोंनी करी और अच्छे पूजन

जरासंधं पुरस्कृत्य वृष्णिशत्रुं महाबलम् ॥ कृतान्यागांसि चैद्येन वृष्णीनां चाप्रियैषिणा ॥२५॥ जामाता त्वभवत्तस्य कंसस्त स्मिन्हते युधि ॥ कृष्णार्थं वैरमभवज्जरासंधस्य वृष्णिभिः ॥ २६ ॥ भीष्मकं वरयामास सुनीथार्थे च रुक्मिणीम् ॥ तां ददौ भीष्मकश्चापि शिशुपालाय वीर्यवान् ॥२७॥ ततश्चैद्यमुपादाय जरासंधो नराधिपः ॥ ययौ विदर्भान्सहितो दन्तवक्रेण यायिना ॥२८॥ अनुज्ञातश्च पौण्ड्रेण वासुदेवेन धीमता ॥ अङ्गवङ्गकलिङ्गानामीश्वरस्स महाबलः॥२९॥ मानयिष्यंश्च तान्रुक्मी प्रत्युद्गम्य नराधिपान् ॥ वरया पूजयोपेतांस्तान्निनाय पुरीं प्रति ॥ ३० ॥ पितृष्वसुः प्रियार्थं च रामकृष्णवुभावपि ॥ प्रययुर्वृष्णयश्चान्ये रथैस्तत्र बलान्विताः ॥३१॥ क्रथकैशिकभर्ता तान्प्रतिगृह्य यथाविधि ॥ पूजयामास पूजार्हान्बहिश्चैव न्यवेशयत् ॥ ३२ ॥ श्वो भाविनि विवाहे च रुक्मिणी निर्ययौ बहिः ॥ चतुर्युजा रथेनैन्द्रे देवतायतने शुभे ॥ ३३ ॥ इन्द्राणीमर्चयिष्यन्ती कृतकौतुक-मङ्गला ॥ दीप्यमानेन वपुषा बलेन महतावृता ॥ ३४ ॥

सत्कारसे उनको पुरीमें ले आया ॥३०॥ बुआकी प्रीतिसे श्रीकृष्ण और बलदेवभी यादवोंकी सेना ले उस स्थानमें गये॥३१॥ क्रथ कैशिकदेशके राजाने उनका यथायोग्य सत्कार किया,और पूज्य योग्योंका सत्कारकर पुरके बाहर डेरा कराया॥३२॥कल विवाहका दिनहै इस कारण रुक्मिणी चार घोडोंके रथमें बैठकर इन्द्राणीके मंदिरमें पूजन करनेको चली॥ ३३ ॥ विवाहके मंगलाचार करके इन्द्राणीकी पूजा करनेको दीप्तिमान् शरीरसे

युक्त बहुतसी सेनाके बीचमें चली॥३४॥उस समय श्रीकृष्णने उसे साक्षात् लक्ष्मीकाही स्वरूप जाना, मानो देवतामंदिरके निकट महारूपवती लक्ष्मी स्वर्गसे आई हो ॥३५॥ अथवा अग्निकी दीप्तिमान् होती हुई शिखा अथवा भूमिमें प्राप्त माया पृथ्वीकी समान गम्भीर पृथ्वीतलसेही निकली हुई॥३६॥ चन्द्रमाकी किरणोंके समान सौम्य स्त्रीकी समान शरीरधारी पद्मरहित लक्ष्मीकी समान अथवा लक्ष्मीकी सहायतासे युक्त, कृष्णने जिसको मनसेही देखा, जो देवताओंको दुर्निरीक्ष्य थी ॥३७॥ श्याम और सुन्दर यथेष्ट नेत्रोंवाली लाल ओष्ठ और लाल नेत्रोंके भागवाली पीन ऊरु (जंघा)

तां ददर्श तदा कृष्णो लक्ष्मीं साक्षादिव स्थिताम् ॥ रूपेणाग्र्येण संपन्नां देवतायतनान्तिके ॥३५॥ वह्नेरिव शिखां दीप्तां मायां भूमिगतामिव ॥ पृथिवीमिव गम्भीरामुत्थितां पृथिवीतलात्॥३६॥मरीचिमिव सोमस्य सौम्यां स्त्रीविग्रहां भुवि ॥ श्रीमिवाग्र्यां विना पद्मं भविष्यां श्रीसहायिनीम् ॥ कृष्णेन मनसा दृष्टां दुर्निरीक्ष्यां सुरैरपि ॥३७॥ श्यामावदाता सा ह्यासीत्पृथुचार्वायतेक्षणा ॥ ताम्रोष्ठाननापाङ्गी पीनोरुजघनस्तनी ॥३८॥ बृहती चारुसर्वाङ्गी तन्वी शशिसितानना ॥ ताम्रतुङ्गनखी सुभ्रूर्नीलकुञ्चितमूर्धजा ॥३९॥ अत्यर्थं रूपतः कान्ता पीनश्रोणिपयोधरा ॥ तीक्ष्णशुक्लैस्समैर्दन्तैः प्रभासाद्भिरलंकृता ॥४०॥ अनन्या प्रमदा लोके रूपेण यशसा श्रिया ॥ रुक्मिणी रूपिणी देवी पाण्डुरक्षौमवासिनी ॥४१॥ तां दृष्ट्वा ववृधे कामः कृष्णस्य प्रियदर्शनाम् ॥ हविषेवानलस्यार्चिर्मनस्तस्यां समादधत् ॥४२॥ रामेण सह निश्चित्य केशवस्तु महाबलः ॥ तत्प्रमाथेऽकरोद्बुद्धिं वृष्णिभिः प्रणिधाय च ॥४३॥

स्तनवाली ॥३८॥ बडी मनोहर अंगोंवाली, चन्द्रमाके समान मुख, लाल और ऊंचे नखोंसे युक्त, नील और कुंचित केशवाली ॥३९॥ अत्यन्तही मनोहर बडे पीन श्रोणी और पयोधरवाली तीक्ष्ण श्वेत और समान दांतोंसे युक्त प्रकाशमान और अलंकृत॥४०॥रूप यश और श्रीमें जिसके समान कोई स्त्री नहींहै,पाण्डुर और क्षौम वस्त्र धारण करनेवाली देवी रुक्मिणी॥४१॥प्रियदर्शनाको देख श्रीकृष्णकी इच्छा उसमें अधिक हुई जैसे अग्निमें घृत पडे इस प्रकार इनके सन्ताप अधिक हुआ॥४२॥तब महाबली श्रीकृष्णने बलरामसे सलाह कर तथा यादवोंसे पूछकर रुक्मिणीके हरणकी इच्छा

की ॥४३॥ जब देवकार्य कर रुक्मिणी मंदिरसे निकली, तब श्रीकृष्णने सहसा सबको हटा। कर उसे हाथ पकड रथमें बिठा लिया ॥ ४४ ॥ और शत्रुओंको आता देख बलरामने महावृक्ष उखाड कर उनको नष्ट किया, और उनकी आज्ञासे सब यादव उनके चारों ओर हो गये॥४५॥ वह बडी २ ध्वजावाले महारथोंको ले हाथी और घोडोंसहित बलरामके चारों ओर हो गये॥४६॥और कृष्ण रुक्मिणीको ले बहुत शीघ्र पुरीकी ओरको चले, और सात्यकी तथा बलरामको सब युद्धका भार सौंप दिया॥४७॥ अक्रूर विपृथु गद कृतवर्मा चक्रदेव सुदेव सारण महाबल ॥४८॥ त्रिगर्तशत्रु

कृते तु देवताकार्ये निष्क्रामन्तीं सुरालयात् ॥ उन्मथ्य सहसा कृष्णः स्वं निनाय रथोत्तमम् ॥ ४४ ॥ वृक्षमुत्पाट्य रामोऽपि जघानापततः परान् ॥ समनह्यन्त दाशार्हास्तदाज्ञप्ताश्च सर्वशः ॥ ४५ ॥ ते रथैर्विविधाकारैस्समुच्छ्रितमहाध्वजैः ॥ वाजिभिर्वारणैश्चैव परिवव्रुर्हलायुधम् ॥ ४६ ॥ आदाय रुक्मिणीं कृष्णो जगामाशु पुरीं प्रति ॥ रामे भारं समासज्य युयुधाने च वीर्यवान् ॥ ४७ ॥ अक्रूरे विपृथौ चैव गदे च कृतवर्मणि ॥ चक्रदेवे सुदेवे च सारणे च महाबले ॥ ४८ ॥ निर्वृत्तशत्रौ विक्रान्ते भङ्गकारे विदूरथे ॥ उग्रसेनात्मजे कङ्के शतद्युम्ने च केशवः ॥४९॥ राजाधिदेवे मृदुरे प्रसेने चित्रके तथा ॥ अतिदान्ते बृहद्दुर्गे श्वफल्के सत्यके पृथौ ॥ ५० ॥ वृष्ण्यन्धकेषु चान्येषु मुख्येषु मधुसूदनः ॥ गुरुमासज्य तं भारं ययौ द्वारवतीं प्रति ॥५१॥ दन्तवक्रो जरासंधः शिशुपालश्च वीर्यवान् ॥ सन्नद्धा निर्ययुः क्रुद्धा जिघांसन्तो जनार्दनम् ॥ ५२ ॥ अङ्गवङ्गकलिङ्गैश्च सार्द्धं पौण्ड्रैश्च वीर्यवान् ॥ निर्ययौ चेदिराजस्तु भ्रातृभिः स महारथैः ॥ ५३ ॥

विक्रान्त भंगकार विदूरथ उग्रसेनपुत्र कंक सुद्युम्न ॥ ४९ ॥ राजाधिदेवमृदुर प्रसेन, चित्रक अतिदान्त बृहद्दुर्गे, श्वफल्क सत्यक, पृथु ॥ ५० ॥ तथा औरभी वृष्णि अंधकोंमें जो मुख्य २ थे उनको श्रीकृष्ण युद्धका भार समर्पण कर आप बहुतशीघ्र द्वारकाको चले ॥ ५१ ॥ इधर दन्तवक्र, जरासंध, महाबली शिशुपाल,श्रीकृष्णके मारनेकी इच्छासे बडे क्रोधकर निकले ॥५२॥ अंग वंग कलिंग पौंड्रकके साथ वह बली भाइयोंके सहित

शिशुपाल युद्ध करनेको चला॥५३॥उन युद्ध करने वालोंको महाबली यदुवंशियोंने ग्रहण किया, और बलरामको आगे कर युद्ध करने लगे, जैसे इन्द्रको आगे कर मरुत युद्ध करते हैं॥५४॥वेगसे आतीहुई जरासंधकी महासेनाको सात्यकीने छःछः बाणोंसे सबको विद्ध किया॥५५॥अक्रूरने दन्तवक्रको नौ बाणोंसे विद्ध किया, कारूष (दन्तवक्र) ने उनको दश बाणोंसे विद्ध किया ॥५६॥ विपृथुने सात बाणोंसे शिशुपालको विद्ध किया, शिशुपालने उसको आठबाणोंसे विद्ध किया ॥५७॥ गवेषणने चेद्यको छः बाण मारे अतिदान्तने आठ बृहद्दुर्गने पांच बाण मारे ॥५८॥ तब शिशुपालने

तान् प्रत्यगृह्णन्संरब्धा वृष्णिवीरा महारथाः ॥ संकर्षणं पुरस्कृत्य वासवं मरुतो यथा ॥ ५४ ॥ आपतन्तं हि वेगेन जरासंधं महाबलम् ॥ षड्भिर्विव्याध नाराचैर्युयुधानो महामृधे ॥५५॥ अक्रूरो दन्तवक्रं तु विव्याध नवभिः शरैः ॥ तं प्रत्यविद्ध्यत्कारूषो बाणैर्दशभिराशुगैः ॥५६॥ विपृथुः शिशुपालं तु शरैर्विव्याध सप्तभिः ॥ अष्टभिः प्रत्यविद्ध्यत्तं शिशुपालः प्रतापवान् ॥५७॥ गवेषणस्तु चैद्यं तु षड्भिर्विव्याध मार्गणैः अतिदान्तस्तथाष्टाभिर्बृहद्दुर्गश्च पञ्चभिः ॥ ५८ ॥ प्रतिविव्याध तांश्चैद्यः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ जघानाश्वांश्च चतुरश्चतुर्भिर्विपृथोः शरैः ॥ ५९ ॥ बृहद्दुर्गस्य भल्लेन शिरश्चिच्छेद चारिहा ॥ गवेषणस्य सूतं तु प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ६० ॥ हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा विपृथुस्तु महाबलः आरुरोह रथं शीघ्रं बृहद्दुर्गस्य वीर्यवान् ॥६१॥ विपृथोः सारथिश्चापि गवेषणरथं द्रुतम् ॥ आरुह्य जवनानश्वान्नियन्तुमुपचक्रमे ॥६२॥ ते क्रुद्धाः शरवर्षेण सुनीथं समवाकिरन् ॥ नृत्यन्तं रथमार्गेषु चापहस्ताः कलापिनः ॥ ६३ ॥

प्रत्येकको पांच बाणोंसे विद्ध किया; विपृथुके घोडे चार बाणोंसे मार डाले ॥५९॥ तब शत्रुघातीने भालेसे बृहद्दुर्गका शिर छेदन कर डाला, और गवेषणके सारथिको यमलोक पहुंचा दिया॥ ६० ॥ महाबली विपृथु घोडे मरे रथको त्याग करके शीघ्रही बृहद्दुर्गके रथपर चढ गया, कारण कि वह महाबली था ॥६१॥ और विपृथुका सारथीभी बहुत शीघ्र गवेषणके रथमें चढ कर घोडोंके चलानेकी इच्छा करने लगा ॥ ६२ ॥ तब वे बडा क्रोधकर बाणवर्षासे सुनीथको आच्छादन करने लगे, मानो धनुषबाण हाथमें लिये मार्गमें नृत्य करते हैं ॥६३॥

चक्रदेवने बाणोंसे दंतवक्रको विदीर्ण किया, और युद्धमें छः रथोंको पांच२बाणोंसे विद्ध किया ॥ ६४ ॥ तब उन वीरोंने नर्मप्रहारी दश बाणोंसे उसको विद्ध किया तब बलीने दश बाणोंसे चक्रदेवको विद्ध किया ॥ ६५ ॥ उसने दूरसेही विदूरथको पांच बाणोंसे विद्ध किया, विदूरथनेभी उसको छः बाणोंसे विद्ध किया ॥ ६६ ॥ फिर तीस बाणोंसे बलीने उस महाबलवान्‌को विद्ध किया, कृतवर्माने तीनबाणोंसे संग्राममें राजपुत्र पौंड्रकको विद्ध किया ॥ ६७ ॥ और इसके सारथीको मारकर उसकी ध्वजा छेदन कर दी तब पौंड्रने क्रोध कर उसे छः बाणोंसे विद्ध

चक्रदेवो दन्तवक्रं बिभेदोरसि पत्रिणा ॥ षड्रथं पञ्चभिश्चैव विव्याध युधि मार्गणैः ॥६४॥ ताभ्यां स विद्धो दशभिर्बाणैर्मर्मातिगैः शितैः ॥ ततो बली चक्रदेवं बिभेद दशभिः शरैः ॥६५॥ पञ्चभिश्चापि विव्याध सोऽपि दूराद्विदूरथम् ॥ विदूरथोऽपि तं षड्भिर्विव्याधाजौ शितैः शरैः ॥६६॥ त्रिंशता प्रत्यविध्यत्तं बली बाणैर्महाबलम् ॥ कृतवर्मा बिभेदाजौ राजपुत्रं त्रिभिः शरैः॥ ६७ ॥ न्यहनत्सारथिं चास्य ध्वजं चिच्छेद सोच्छ्रितम् ॥ प्रतिविव्याध तं क्रुद्धः पौण्ड्रः षड्भिः शिलीमुखैः ॥ ६८ ॥ धनुश्चिच्छेद चाप्यस्य भल्लेन कृतवर्मणः ॥ निवृत्तशत्रुः कालिङ्गं बिभेद निशितैः शरैः ॥ तोमरेणांसदेशे तं निर्बिभेद कलिङ्गराट् ॥ ६९ ॥ गजेनासाद्य कङ्कस्तु गजमङ्गस्य वीर्यवान् ॥ तोमरेण बिभेदाङ्गं बिभेदाङ्गश्च तं शरैः ॥७०॥ चित्रकश्च श्वफल्कश्च सत्यकश्च महारथः ॥ कलिङ्गस्य तथानीकं नाराचैर्बिभिदुः शतैः ॥ ७१ ॥ तं निसृष्टद्रुमेणाजौ वङ्गराजस्य कुञ्जरम् ॥ जघान रामः संक्रुद्धो वङ्गराजं च संयुगे ॥ ७२ ॥ तं हत्वा रथमारुह्य धनुरादाय वीर्यवान् ॥ संकर्षणो जघानोग्रैर्नाराचैः कैशिकान्बहून् ॥ ७३ ॥

किया ॥६८॥ और भालेसे कृतवर्माके धनुषको छेदन कर दिया, और निवृत्तने शत्रु कालिंगके नौ बाण मारे ॥६९॥ वीर्यवान् कंकने तो हाथीपर चढकर अंगराजाके हाथीके निकट जाकर तोमरसे अंगपर प्रहार किया अंगनेभी उसपर बाणोंका प्रहार किया ॥७०॥ चित्रक श्वफल्क महारथ यह सब कलिंगकी सेनाको बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ७१ ॥ पीछे बलरामजीने वृक्षसे वंगवासी राजाके हाथीको मार डाला ॥ ७२ ॥ उसको मार

रथमें स्थित हो उन महाबलीने धनुष लेकर बडे बडे बाणोंसे संग्राममें कैशिकोंका वध कर डाला ॥ ७३ ॥ फिर बडे बली कारुषके पतिको छः बाणोंसे
मार क्रोध कर सैकडों मगधवंशियोंको मार डाला ॥ ७४ ॥ जब महाबाहु बलरामजीने उन्हें मारा फिर जरासंधके सन्मुख हुए बलरामजीको आता
देख तीन बाण जरासंधने मारे ॥ ७५ ॥ तब बलरामजीने क्रोध कर जरासंधको आठ बाण मारे और भालेसे इसकी सोनेकी ध्वजा काट डाली ॥ ७६ ॥
उनका वह देवासुरकी समान घोर युद्ध हुआ, बाणवर्षासे दोनों एक दूसरेपर प्रहार करते थे ॥ ७७ ॥ हाथियोंपर सहस्रों हाथी गिरने लगे रथोंसे रथी

षड्भिर्निहत्य कारूषान्महेष्वासान्स वीर्यवान् ॥ शतं जघान संक्रुद्धो मागधानां महाबले ॥ ७४ ॥ निहत्य तान्महाबाहुर्जरासंधं ततोऽ-
भ्ययात् ॥ तमापतन्तं विव्याध नाराचैर्मागधस्त्रिभिः ॥ ७५ ॥ तं बिभेदाष्टभिः क्रुद्धो नाराचैर्मुसलायुधः ॥ चिच्छेद चास्य भल्लेन
ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ॥ ७६ ॥ तद्युद्धमभवद्धोरं तेषां देवासुरोपमम् ॥ सृजतां शरवर्षाणि निघ्नतामितरेतरम् ॥ ७७ ॥ गजैर्गजा हि
संक्रुद्धाः संनिपेतुः सहस्रशः ॥ रथै रथाश्च संरब्धाः सादिनश्चापि सादिभिः ॥ ७८ ॥ पदातयः पदातींश्च शक्तिचर्मासिपाणयः ॥
छिन्दन्तश्चोत्तमाङ्गानि विचेरुर्युधि ते पृथक् ॥७९ ॥ असीनां पात्यमानानां कवचेषु महास्वनः ॥ शराणां पततां शब्दः पक्षिणामिव
शुश्रुवे ॥ ८० ॥ भेरीशंखमृदङ्गानां वेणूनां च मृधे ध्वनिम् ॥ जुगूह घोषः शस्त्राणां ज्याघोषश्च महात्मनाम् ॥ ८१ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीहरणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ कृष्णेन
ह्रियमाणां तां रुक्मी श्रुत्वा तु रुक्मिणीम् ॥ प्रतिज्ञामकरोत्क्रुद्धः समक्षं भीष्मकस्य ह ॥ १ ॥

और घुडसवारोंसे घुडसवार डट गये ॥ ७८ ॥ पैदलसे पैदल ढाल तलवार लेकर युद्ध करने लगे, और शिर च्छेदन करते हुए वह युद्धमें पृथक् विचरने
लगे ॥ ७९ ॥ जिस समय जैसे कवचोंमें तलवार लगती थी तौ महाशब्द होता था, बाणोंके गिरनेके शब्द पक्षियोंकी समान सुनाई आते थे ॥ ८० ॥
भेरी शंख मृदंग और बांसुरीके शब्दको उस युद्धमें शूरवीरोंके शस्त्र अस्त्रोंका शब्द, महात्माओंके धनुषकी ज्याका शब्द आच्छादन कर देता हुआ ॥ ८१ ॥
इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायामेकोनषष्टितमोऽध्ययः ॥ ५९ ॥ वैशंपायन बोले; रुक्मीने सुना कि श्रीकृष्णने रुक्मिणीको हरण किया है, तब

॥१७८॥

क्रोधकर भीष्मकके सामने प्रतिज्ञा की ॥ १॥ रुक्मी बोला, कृष्णको युद्धमें न मारे, रुक्मिणीको बिना लौटाये मैं कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूंगा, यह सत्यही कहता हूं ॥ २॥ ऐसा कह तीक्ष्ण बाण ले वह वीर ध्वजावाले रथमें स्थित हो बडी सेना साथ ले युद्ध करनेको बडे वेगसे चला ॥ ३ ॥ दक्षिणपथवासी राजा उसके पीछे चले, क्रथ, अंशुमान्, श्रुतर्वा,वीर्यवान् वेणुदारी ॥ ४ ॥ औरभी दूसरे भीष्मकके पुत्र श्रेष्ठ रथी रथमें स्थित हो और क्रथ कैशिक वंशके मुखिया सब महारथ ॥ ५ ॥ दूर चलकर नर्मदानदीके किनारे प्रियाके सहित स्थित श्रीकृष्णको क्रोधकर देखने लगे ॥ ६ ॥ मदसे विह्वल

रुक्म्युवाच ॥ अहत्वा युधि गोविन्दमनानीय च रुक्मिणीम् ॥ कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २ ॥ आस्थाय स रथं वीरः समुदग्रायुधध्वजम् ॥ जवेन प्रययौ क्रुद्धो बलेन महता वृतः ॥ ३ ॥ तमन्वयुर्नृपाश्चैव दक्षिणापथवर्तिनः ॥ क्राथोऽशुमाञ्छ्रुतर्वा च वेणुदारिश्च वीर्यवान् ॥ ४ ॥ भीष्मकस्य सुताश्चान्ये रथेन रथिनां वराः ॥ क्रथकैशिकमुख्याश्च सर्व एव महारथाः ॥ ५ ॥ ते गत्वा दूरमध्वानं सरितं नर्मदामनु ॥ गोविन्दं ददृशुः क्रुद्धाः सहैव प्रियया स्थितम् ॥ ६ ॥ अवस्थाप्य च तत्सैन्यं रुक्मी मदबलान्वितः ॥ चिकीर्षुर्द्वैरथं युद्धमभ्ययान्मधुसूदनम् ॥ ७ ॥ स विव्याध चतुःषष्ट्या गोविन्दं निशितैः शरैः ॥ तं प्रत्यविध्यत्सप्तत्या बाणैर्युधि जनार्दनः ॥ ८ ॥ यतमानस्य चिच्छेद ध्वजं चास्य महाबलः ॥ जहार च शिरः कायात्सारथेस्तस्य वीर्यवान् ॥ ९ ॥ तं कृच्छ्रगतमाज्ञाय परिवव्रुर्जनार्दनम् ॥ दाक्षिणात्या जिघांसन्तो राजानः सर्व एव हि ॥ १० ॥ तमंशुमान्महाबाहुर्विव्याध दशभिः शरैः ॥ श्रुतर्वा पञ्चभिः क्रुद्धो वेणुदारिश्च सप्तभिः ॥ ११ ॥

हो रुक्मी सब सेनाको वहीं छोड द्वन्द्वयुद्ध करनेकी इच्छासे श्रीकृष्णके निकट आया ॥ ७ ॥ और आतेही गोविंदके चौसठ बाण मारे, तब श्रीकृष्णने उसके सत्तरह बाण मारे ॥ ८ ॥ और महाबली भगवान्ने इसकी ध्वजा छेदन कर दी, और श्रीकृष्णने इसके सारथीका शिरभी काट डाला ॥ ९ ॥ तब रुक्मीको संकटमें पडा देख दक्षिणपथके सब राजाओंने आकर श्रीकृष्णको घेर लिया ॥ १० ॥ इसमें महाबाहु अंशुमान्ने दश,

श्रुतवर्माने पांच, वेणुदारीने सात बाणसे गोविंदको विद्ध किया ॥ ११ ॥ तब गोविन्दने अंशुमानूकी छातीमें प्रहार किया, जिससे वह राजा व्याकुल हो रथमें पडा ॥१२॥ और श्रुतवर्माके चार घोडे चार बाणोंसे छेदन कर दिये, वेणुदारीकी ध्वजा काटकर उसकी दक्षिण भुजा छेदन कर दी॥१३॥ इसी प्रकार श्रुतवर्माके पांच बाण मारे, तब वह व्याकुल होकर ध्वजाके आश्रय स्थित हो गया ॥१४॥ तबक्रथ कैशिक वंशके सब महारथी वर्षा करते हुए श्रीकृष्णके सम्मुख हुए॥१५॥ श्रीकृष्णने उस युद्धमें अपने बाणोंसे उनके बाण छेदन कर डाले तब उनके गिरते हुए बाणोंने इनका समूह नष्ट

ततोऽशुमन्तं गोविन्दो बिभेदोरसि वीर्यवान् ॥ निषसाद रथोपस्थे व्यथितः स नराधिपः ॥१२॥ श्रुतवर्णो जघानाश्वांश्चतुर्भिश्च-तुरः शरैः ॥ वेणुदारेर्ध्वजं छित्त्वा भुजं विव्याध दक्षिणम् ॥१३॥ तथैव च श्रुतवर्णं शरैर्विव्याध पञ्चभिः ॥ शिश्रिये स ध्वजं श्रान्तो न्यषीदच्च व्यथान्वितः ॥१४॥ मुञ्चन्तः शरवर्षाणि वासुदेवं ततोऽभ्ययुः ॥ क्रथकैशिकमुख्याश्च सर्व एव महारथाः ॥१५॥ बाणैर्बाणांश्च चिच्छेद तेषां युधि जनार्दनः ॥ जघान चैषां संरब्धः पतमानश्च ताञ्छरान् ॥१६॥ पुनरन्याश्चतुःषष्ट्या जघान निशितैः शरैः ॥ क्रुद्धानापततो वीरानाद्रवत्स महाबलः ॥१७॥ विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा रुक्मी क्रोधवशंगतः ॥ पञ्चभिर्नि-शितैर्बाणैर्विव्याधोरसि केशवम् ॥१८॥ सारथिं चास्य विव्याध सायकैर्निशितैस्त्रिभिः ॥ आजघान शरेणास्य ध्वजं च नतपर्वणा ॥१९॥ केशवस्त्वरितं दृष्ट्वा क्रुद्धो विव्याध मार्गणैः ॥ धनुश्चिच्छेद चाप्यस्य यतमानस्य रुक्मिणः ॥ २० ॥

किया ॥१६॥ फिर दूसरे चौसठ राजाओंको तीक्ष्ण बाणोंसे मार डाला जो क्रोध करके वीर आये उनका महाबली कृष्णने वध किया ॥१७॥ इस प्रकार अपनी सेनाको नष्ट होता देख रुक्मीको बडा क्रोध आया, तब श्रीकृष्णके हृदयमें पांच बाण मारे ॥ १८ ॥ तीक्ष्ण तीन बाणोंसे इनके सारथीको विद्ध किया, और नतपर्व बाणसे इनकी ध्वजा पर प्रहार किया ॥ १९ ॥ तब श्रीकृष्णने यह देख तत्काल इसको बाणोंसे विद्ध किया, और यत्नमें तत्पर इस रुक्मीका धनुष छेदन कर डाला॥२०॥

तब कृष्णके मारनेकी इच्छासे रुक्मीने दूसरा धनुष लिया, और दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करने लगा ॥२१॥ तब महाबली कृष्णने अस्त्रोंसे इसके अस्त्र निवारण कर फिर तीन बाणोंसे इसके धनुष और रथको छेदन कर दिया ॥२२॥ वह रथ और धनुषके छिन्न हो जानेसे ढाल तलवार लेकर गरुडके समान वेगसे रथसे उतर पडा॥२३॥ उसके कूदतेही श्रीकृष्णने उसका खड्ग छेदन कर डाला और फिर क्रोधकर तीन बाण इसके हृदयमें मारे॥२४॥ तब वह महाबाहु शब्द करता हुआ पृथ्वीमें गिर पडा, और वज्र लगनेसे वृत्रासुरके समान राजा मूर्च्छित हो पृथ्वीमें गिरा॥२५॥ फिर केशवने उन

अथान्यद्धनुरादाय रुक्मी कृष्णजिघांसया॥प्रादुश्चकार चान्यानि दिव्यान्यस्त्राणि वीर्यवान्॥२१॥अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तस्य कृष्णो महाबलः॥पुनश्चिच्छेद तच्चापं रथेषां च त्रिभिः शरैः ॥ २२ ॥ स च्छिन्नधन्वविरथः खड्गमादाय चर्म च ॥ उत्पपात रथाद्वीरो गरुत्मानिव वीर्यवान्॥२३॥तस्याभिपततः खड्गं युधि चिच्छेद केशवः ॥ नाराचैश्च त्रिभिः क्रुद्धो बिभेदैनमथोरसि॥२४॥ सपपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन् ॥ विसंज्ञो मूर्च्छितो राजा वज्रेणेव महासुरः॥२५॥तांश्च राज्ञः शरैः सर्वान्पुनर्विव्याध माधवः॥रुक्मिणं पतितं दृष्ट्वा व्यद्रवन्त नराधिपाः॥२६॥विचेष्टमानं तं भूमौ भ्रातरं वीक्ष्य रुक्मिणी॥पादयोर्न्यपतद्विष्णोर्भ्रातुर्जीवितकांक्षिणी॥२७॥ तामुत्थाप्य परिष्वज्य सान्त्वयामास केशवः ॥ अभयं रुक्मिणे दत्त्वा प्रययौ स्वपुरीं ततः॥२८॥वृष्णयोऽपि जरासंधं भङ्क्त्वा तांश्चैव पार्थिवान् ॥ प्रययुर्द्वारकां हृष्टाः पुरस्कृत्य हलायुधम्॥२९॥ प्रयाते पुण्डरीकाक्षे श्रुतर्वाभ्येत्य संगरे॥रुक्मिणं रथमारोप्य प्रययौ स्वां पुरीं प्रति ॥३०॥ अनानीय स्वसारं तु रुक्मी मानमदान्वितः ॥ हीनप्रतिज्ञो नैच्छत्स प्रवेष्टुं कुण्डिनं पुरम् ॥३१॥

सब राजोंको बाणोंसे विद्ध किया, रुक्मीको गिरा हुआ देख राजा पलायन करने लगे॥२६॥ रुक्मिणी अपने भ्राताको पृथ्वीपर व्याकुल पडा हुआ देखकर भ्राताके जीवनकी इच्छासे श्रीकृष्णके चरणोंमें गिर पडी ॥२७॥ श्रीकृष्णने उसे उठाय आलिंगन कर समझाया और रुक्मीको अभय दे अपनी पुरीको गमन किया ॥२८॥ यदुवंशीभी राजा जरासंध तथा दूसरे राजोंको परास्त कर बलरामको आगे कर प्रसन्नतासे द्वारका पुरीको चले ॥२९॥ पुण्डरीकाक्षके चले जानेपर श्रुतर्वा युद्धभूमिमें आया और रुक्मीको रथमें बैठाय अपनी पुरीको ले गया ॥३०॥ मदसे पूर्ण रुक्मी अपनी

बहनके लानेमें समर्थ न हुआ इससे हीन प्रतिज्ञा होनेके कारण उसने कुंडिनपुरमें प्रवेश न किया ॥ ३१ ॥ तब उसने विदर्भदेशमें रहनेके निमित्त दूसरा बडा नगर बनाया, वह पृथ्वीमें भोजकटनामसे विख्यात हुआ ॥ ३२ ॥ महातेजस्वी वह दाक्षिणादेशामें राज्य करने लगा, और बडी बाहुवाले भीष्मक कुंडिनपुरमें रहे ॥ ३३ ॥ जब बलराम यादवोंसहित द्वारकामें पहुंचे तब श्रीकृष्णने विधिपूर्वक रुक्मिणीका पाणिग्रहण किया ॥ ३४ ॥ और उस अपनी प्रियाके साथ आनन्दपूर्वक रमण करते रहे, जैसे सीताके संग राम और पुलोमीके साथ इन्द्र प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ वही रुक्मिणी श्रीकृष्णकी

विदर्भेषु निवासार्थं निर्ममेऽन्यत्पुरं महत् ॥ तद्भोजकटमित्येव बभूव भुवि विश्रुतम् ॥ ३२ ॥ तत्रौजसा महातेजा दक्षिणां दिशमन्वशात् ॥ भीष्मकः कुण्डिने चैव राजोवास महाभुजः ॥ ३३ ॥ द्वारकां चापि संप्राप्ते रामे वृष्णिबलान्विते ॥ रुक्मिण्याः केशवः पाणिं जग्राह विधिवत्प्रभुः ॥ ३४ ॥ ततः सह तया रेमे प्रियया प्रीयमाणया ॥ सीतयेव पुरा रामः पौलोम्येव पुरंदरः ॥ ३५ ॥ सा हि तस्याभवज्ज्येष्ठा पत्नी कृष्णस्य भामिनी ॥ पतिव्रतागुणोपेता रूपशीलगुणान्विता ॥ ३६ ॥ तस्यामुत्पादयामास पुत्रान्दश महारथान् ॥ चारुदेष्णं सुदेष्णं च प्रद्युम्नं च महाबलम् ॥ ३७ ॥ सुषेणं चारुगुप्तं च चारुबाहुं च वीर्यवान् ॥ चारुविन्दं सुचारुं च भद्रचारुं तथैव च ॥ ३८ ॥ चारुं च बलिनां श्रेष्ठं सुतां चारुमतीं तथा ॥ धर्मार्थकुशलास्ते तु कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ३९ ॥ महिषी सप्त कल्याणीस्ततोऽन्या मधुसूदनः ॥ उपयेमे महाबाहुर्गुणोपेताः कुलोद्भवाः ॥ ४० ॥ कालिन्दीं मित्रविन्दां च सत्यां नाग्नजितीमपि ॥ सुतां जाम्बवतश्चापि रोहिणीं कामरूपिणीम् ॥ ४१ ॥

ज्येष्ठ पटरानी हुई, वह पतिव्रता रूप शील और गुणोंकी खान थी ॥ ३६ ॥ उसमें श्रीकृष्णने महारथी दश पुत्र उत्पन्न किये, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, महाबली प्रद्युम्न ॥ ३७ ॥ सुषेण, चारुगुप्त, महाबली चारुबाहु, चारुविंद, सुचारु, भद्रचारु ॥ ३८ ॥ बलवानोंमें श्रेष्ठ चारु और चारुमती नाम एक कन्या हुई वे धर्म अर्थमें कुशल विद्याविशारद युद्धमें दुर्मद हुए ॥ ३९ ॥ मधुसूदनकी सात पटरानी थीं उनकोभी महाबाहु श्रीकृष्णने गुणयुक्त जानकर ग्रहण किया था ॥ ४० ॥ कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, नाग्निजिती, जाम्बवन्तकी कन्या कामरूपधारिणी, रोहिणी जिसको श्रुतिकीर्तिभी

कहते हैं ॥ ४१ ॥ मद्रराजकी कन्या सुशीला सुन्दर नेत्रवाली, सत्राजीतकी कन्या सत्यभामा, सुन्दर हास्यवाली लक्ष्मणा ॥ ४२ ॥ शैब्यकी कन्या सूक्ष्मशरीरवाली जिसके समान रूपवान् कोई पृथ्वीमें नहीं थी साक्षात् अप्सराओंके समान रूपवाली थी, यह आठों पटरानी थीं और सोलह सहस्र और भी स्त्री थीं, इन सब स्त्रियोंको हृषीकेश योगमार्गके आश्रित हो समानही भजते थे ॥ ४३ ॥ सब अनेक प्रकारके वस्त्र धारे सम्पूर्ण कामनाओंसे पूर्ण सुखके उचित उन स्त्रियोंमेंसहस्रों पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४४ ॥ सब शास्त्रार्थमें

मद्रराजसुतां चापि सुशीलां शुभलोचनाम् ॥ सत्राजितीं सत्यभामां लक्ष्मणां चारुहासिनीम् ॥ ४२ ॥ शैब्यस्य च सुतां तन्वीं रूपेणाप्सरसोपमाम् ॥ स्त्रीसहस्राणि चान्यानि षोडशातुलविक्रमः ॥ उपयेमे हृषीकेशः सर्वा भेजे स ताः समम् ॥ ४३ ॥ पराध्यवस्त्राभरणाः कामैः सर्वैः सुखोचिताः ॥ जज्ञिरे तासु पुत्राश्च तस्य वीराः सहस्रशः ॥ ४४ ॥ शास्त्रार्थकुशलाः सर्वे बलवन्तो महारथाः ॥ यज्वानः पुण्यकर्माणो महाभागा महाबलाः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीहरणं नाम षष्ठितमोऽध्यायः ॥६०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः काले व्यतीते तु रुक्मी महति वीर्यवान् ॥ दुहितुः कारयामास स्वयंवरमरिन्दम ॥ १ ॥ तत्राहूता हि राजानो राजपुत्राश्च रुक्मिणा ॥ समाजग्मुर्महावीर्या नानादिग्भ्यः श्रियान्विताः ॥ २ ॥ तत्राजगाम प्रद्युम्नः कुमारैरपरैर्वृतः ॥ सा हि तं चकमे कन्या स च तां शुभलोचनाम् ॥ ३ ॥ शुभाङ्गी नाम वैदर्भी कान्तिद्युतिसमन्विता ॥ पृथिव्यामभवत्ख्याता रुक्मिणस्तनया तदा ॥ ४ ॥

कुशल बलवंत और महारथी थे सब यज्ञकर्ता पवित्र कर्म करनेवाले महाभाग्यवान् और महाबली हुए ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां रुक्मिणीहरणं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ वैशंपायन बोले; कुछ समय बीतनेपर महाबली रुक्मीने अपनी पुत्रीका स्वयंवर किया॥१॥ रुक्मीने उसमें बहुतसे राजा और राजपुत्रोंको बुलाया वे महाबली लक्ष्मीसे युक्त अनेक देशोंसे आये ॥ २ ॥ तहां और कुमारोंके साथ प्रद्युम्नजीभी आये उस कन्याने उनको और उन्होंने उस कन्याको लेनेकी इच्छा की ॥ ३ ॥ वह

शुभांगी नाम विदर्भकुमारी कांति और द्युतिके सहित रुक्मकी कन्या अपने गुणोंसे पृथ्वीमें विख्यात हो गई थी ॥४॥ जब सब महात्मा राजा आनकर बैठ गये तब वैदर्भीने प्रद्युम्न कुमारकोही वरण किया, कारण कि यह शत्रुनाशक थे ॥५॥ वह सम्पूर्ण अस्त्रोंमें कुशल सिंहके समान चलनेहारे युवा श्रीकृष्णके पुत्र रूपमें अद्वितीय थे ॥६॥ और यह राजपुत्रीभी अवस्थारूप गुणमें अद्वितीय थी नारायणी चन्द्रसेना उनपर आसक्त हुई ॥७॥ स्वयंवर हो चुकनेपर सब राजा अपने पुरोंको गये, और वैदर्भीको लेकर प्रद्युम्न द्वारकामें गये ॥ ८ ॥ दमयन्तीके साथ नलके समान

उपविष्टेषु सर्वेषु पार्थिवेषु महात्मसु ॥ वैदर्भी वरयामास प्रद्युम्नमरिसूदनम् ॥ ५ ॥ स हि सर्वास्त्रकुशलः सिंहसंहननो युवा ॥ रूपेणाप्रतिमो लोके केशवस्यात्मजोऽभवत् ॥६॥ वयोरूपगुणोपेता राजपुत्री च साभवत् ॥ नारायणी चन्द्रसेना जातकामा च तं प्रति ॥७॥ वृत्ते स्वयंवरे जग्मू राजानः स्वपुराणि ते ॥ उपादाय च वैदर्भीं प्रद्युम्नो द्वारकां ययौ ॥ ८ ॥ रेमे सह तया वीरो दमयन्त्या नलो यथा ॥ स तस्यां जनयामास देवगर्भोपमं सुतम् ॥९ ॥ अनिरुद्धमिति ख्यातं कर्मणाप्रतिमं भुवि ॥ धनुर्वेदे च वेदे च नीतिशास्त्रे च पारगम् ॥१०॥ अभवत्स यदा राजन्ननिरुद्धो वयोऽन्वितः ॥ तदास्य रुक्मिणः पौत्रीं श्रीमतीं रुक्मिसन्निभाम् ॥ पत्न्यर्थं वरयामास नाम्ना रुक्मवतीति सा ॥ ११ ॥ अनिरुद्धं गुणैर्दातुं कृतबुद्धिर्नृपस्ततः ॥ प्रीत्या हि रौक्मिणेयस्य रुक्मिण्याश्चाप्युपग्रहात् ॥ १२ ॥ विस्पर्द्धन्नपि कृष्णेन वैरं त्यज्य महायशाः ॥ ददामीत्यब्रवीद्राजा प्रीतिमान् जनमेजय ॥१३॥

वह वीर उसके साथ विहार करने लगा, और उसमें देवताके समान पुत्र उत्पन्न किया ॥९॥ उसके समान कोई पराक्रमी न था, इससे उसका अनिरुद्ध नाम हुआ, धनुर्वेद और नीतिशास्त्रका पारगामी हुआ॥१०॥हे राजन् ! जब अनिरुद्धजी बडे हुए तब उन्होंने सुवर्णके समान रुक्मिकी पोतीके साथ विवाहनेकी इच्छा की, उसका नाम रुक्मवती था ॥ ११ ॥ रुक्मीने अनिरुद्धको सर्वगुणयुक्त देखकर उसे देना स्वीकार किया, और रुक्मिणीक प्यारकी चाहसे बडी प्रसन्नतासे ॥१२॥ यद्यपि कृष्णसे वैर रखता था तथापि वैर त्यागकर प्रसन्न हो उस महायशस्वीने कहा कि मैं

अपनी कन्या दे दूंगा. हे जन्मेजय ! ॥ १३ ॥ तब श्रीकृष्णजी बलरामजी रुक्मिणी तथा अपने पुत्रोंके साथ दूसरे यदुवंशी और सेनाको लेकर विदर्भ देशको गये ॥ १४ ॥ रुक्मने सुहृद और ज्ञातिके सब लोग एकत्रित किये रुक्मीके बुलाये हुए वे सम्पूर्ण राजा आये थे ॥ १५ ॥ हे महाराज ! शुभतिथि और अच्छे नक्षत्रमें अनिरुद्धका विवाह उत्सवके साथ पूर्ण होगया ॥१६॥ उस स्थानमें अनिरुद्धने वैदर्भीका पाणिग्रहण किया, वहां विदर्भदेशीय और यादवोंका परम उत्सव हुआ ॥१७॥ देवताओंके समान पूजित हो वृष्णि तहां क्रीडा करने लगे, तब अश्मक देशका राजा

केशवः सह रुक्मिण्या पुत्रैः संकर्षणेन च ॥ अन्यैश्च वृष्णिभिः सार्द्धं विदर्भान्सबलो ययौ ॥ १४ ॥ संयुक्ता ज्ञातयश्चैव रुक्मिणः सुहृदश्च ये ॥ आहुता रुक्मिणा तेऽपि तत्राजग्मुर्नराधिपाः ॥ १५ ॥ शुभे तिथौ महाराज नक्षत्रे चाभिपूजिते ॥ विवाहः सोऽनिरुद्धस्य बभूव परमोत्सवः ॥१६॥ पाणौ गृहीते वैदर्भ्यास्त्वनिरुद्धेन तत्र वै ॥ वैदर्भयादवानां च बभूव परमोत्सवः ॥ १७ ॥ रेमिरे वृष्णयस्तत्र पूज्यमाना यथामराः ॥ अथाश्मकानामधिपो वेणुदारिरुदारधीः ॥ १८ ॥ अक्षः श्रुतर्वा चाणूरः क्रथश्चैवांशुमानपि ॥ जयत्सेनः कलिङ्गानामधिपश्च महाबलः ॥ १९ ॥ पाण्ड्यश्च नृपतिः श्रीमानृषीकाधिपतिस्तथा ॥ एते संमन्त्र्य राजानो दाक्षिणात्या महर्द्धयः ॥ २० ॥ अभिगम्याब्रुवन्सर्वे रुक्मिणं रहसि प्रभुम् ॥ भवानक्षेषु कुशलो वयं चापि रिरंसवः ॥ प्रियद्यूतश्च रामोऽसावक्षेष्वनिपुणोऽपि च ॥२१॥ ते भवन्तं पुरस्कृत्य जेतुमिच्छाम तं वयम् ॥ इत्युक्तो रोचयामास रुक्मी द्यूतं महारथः ॥२२॥ ते शुभां काञ्चनस्तम्भां कुसुमैर्भूषिताजिराम् ॥ सभामाविविशुर्हृष्टाः सिक्तां चन्दनवारिणा ॥२३॥

वेणुदारी बडी बुद्धिसे युक्त ॥१८॥ श्रुतर्वा चाणूर क्रथ अंशुमान् जयतसेन कलिंग देशका महाबली राजा ॥१९॥ श्रीमान् पांड्य राजा और हृषीकाधिपति यह दक्षिण देशके राजा परस्पर सम्मति करके ॥२०॥ महाधनवान् यह सब एकान्तमें जाकर रुक्मीसे बोले तुम अक्षोंमें कुशल हो और हमारी खेलनेकी इच्छा है, और बलरामभी अक्षोंमें अकुशल पर द्यूतप्रिय हैं ॥२१॥ सो आपको आगे कर हम बलरामको जीतनेकी इच्छा करते हैं, यह सुनकर महारथी रुक्मीने द्यूत खेलनेकी इच्छा की ॥२२॥ वह मनोहर सुवर्णके स्तंभोंसे पूर्ण फूलोंसे शोभित अंगवाली चन्दनके जलसे

छिडकी हुई सभामें गये॥२३॥सुन्दर माला और अनुलेपन धारण किये वह सब कोई उस सभामें प्रवेश करके सोनेकेसे आसनोंमें जीतनेकी इच्छासे बैठे ॥ २४ ॥ उन छली पासा खेलनेवालोंमें चतुर राजाने बलदेवजीको बुलाया, बलरामजीने कहा अवश्य हम खेलनेको चलते हैं, और दाव लगाकर खेलने लगे॥२५॥दक्षिणदेशके राजोंने छलसे जीतनेकी इच्छा की थी, मणिमुक्ता और असरफी सहस्र उस स्थानमें लाई गईं॥२६॥ तब उनका प्रीतिविनाशी द्यूत प्रारम्भ हुआ, घोर क्लेशका स्थान और दुर्मतियोंका क्षय करनेवाला ॥२७॥ द्यूत प्रारम्भ हुआ, तब बलरामजीने दश सहस्र

तां प्रविश्य ततः सर्वे शुभ्रस्रगनुलेपनाः॥सौवर्णेष्वासनेष्वासांचक्रिरे विजिगीषवः ॥२४॥ आहूतो बलदेवस्तु कितवैरक्षकोविदैः॥ बाढमित्यब्रवीद्धृष्टः सह दीव्याम पुण्यताम् ॥ २५ ॥ निकृत्त्या विजिगीषन्तो दाक्षिणात्या नराधिपाः ॥ मणिमुक्ताः सुवर्णं च तत्रानिन्युः सहस्रशः ॥ २६ ॥ ततः प्रावर्तत द्यूतं तेषां रतिविनाशनम् ॥ कलहस्यास्पदं घोरं दुर्मतीनां क्षयावहम् ॥ २७ ॥ निष्काणां च सहस्राणि सुवर्णस्य दशादितः ॥ रुक्मिणा सह संपाते बलदेवो ग्लहं ददौ ॥ २८ ॥ तं जिगाय ततो रुक्मी यतमानं महाबलम् ॥ तावदेवापरं भूयो बलदेवं जिगाय सः ॥ २९ ॥ असकृज्जीयमानस्तु रुक्मिणा केशवाग्रजः ॥ सुवर्णकोटी जग्राह ग्लहं तस्य महात्मनः ॥ ३० ॥ जितमित्येव हृष्टोऽथ तमाहूतिरभाषत ॥ श्लाघ्यमानश्च चिक्षेप प्रहसन्मुशलायुधम् ॥ ३१ ॥ अविद्यो दुर्बलः श्रीमान्हिरण्यममितं मया ॥ अजेयो बलदेवोऽयमक्षद्यूते पराजितः ॥ ३२ ॥ कलिङ्गराजस्तच्छ्रुत्वा प्रजहास भृशं तदा ॥ दन्तान्संदर्शयन् हृष्टस्तत्राकुद्ध्यद्धलायुधः ॥ ३३ ॥

सुवर्ण निष्क लगाया,और रुक्मीको सम्पातमें बलदेवसे पासे दिये गये॥२८॥यत्नशील महाबली रुक्मीने उनको जीत लिया,तब बलरामजीने उतनाही धन फिर लगा दिया॥२९॥ उसेभी रुक्मीने एकही बातमें जीत लिया,तब बलरामजीने एक करोड सुवर्ण लगाया ॥ ३० ॥ यह जीता इस प्रकार कुटिलतासे कहता हुआ श्लाघ्यमान बलदेवजीके हल मूसलपर आक्षेप करता हुआ बोला॥३१॥मैंने अविद्यादुर्बल बलदेवजीको जीत लिया यह अजेय बलदेव आज द्यूतमें हार गये ॥ ३२ ॥ यह सुन कलिंग राजा ऊंचे स्वरसे हँसने लगा, और प्रसन्न हो दांत दिखाने लगा, तब बलरामजीको क्रोध

आया॥३३॥और भीष्मकके पुत्रकी तीक्ष्ण पराजयसूचक वाक्यरचना सुनकर मनको रोका ॥ ३४ ॥ धर्मके जाननेवाले बलरामजीने क्रोधको रोक लिया यद्यपि धर्षण प्राप्त होकर महाबली बलरामको क्रोध हुआ ॥३५॥ तथापि मनमें धीरज धारण कर बोले कि अपने मैं दशकरोड सुवर्ण लगाता हूं॥३६॥हे राजन् ! पासे डालकर इनको ग्रहण करो, कृष्णनेत्र लालनेत्र वाले अर्थात् क्रोधके समय द्यूतके स्थानमें ॥ ३७ ॥ बलरामजीने रुक्मीको इस प्रकारसे बुलाया, इसपर उसने और कुछ न कहकर बहुत अच्छा यही शब्द कहा॥३८॥तब रुक्मी राजाने पृथ्वीपर पासोंको फेंका,

रुक्मिणस्तद्वचः श्रुत्वा पराजयनिमित्तजम् ॥ निगृह्यमाणस्तीक्ष्णाभिवाग्भिर्भीष्मकसूनुना ॥ ३४ ॥ रोषमाहारयामास जितरोषोऽपि धर्मवित् ॥ संक्रुद्धो धर्षणां प्राप्य रौहिणेयो महाबलः ॥ ३५ ॥ धैर्यान्मनः सन्निधाय ततो वचनमब्रवीत् ॥ दशकोटिसहस्राणि ग्लह एको ममापरः ॥ ३६ ॥ एनं संपरिगृह्णीष्व पातयाक्षान्नराधिप ॥ कृष्णाक्षाँल्लोहिताक्षांश्च देशेऽस्मिंस्त्वधिपांसुले ॥ ३७ ॥ इत्येवमाह्वयामास रुक्मिणं रोहिणीसुतः ॥ अनुक्त्वा वचनं किंचिद्बाढमित्यब्रवीत्पुनः ॥ ३८ ॥ अक्षान्रुक्मी ततो हृष्टः पातयामास पार्थिवः ॥ चातुरक्षे तु निर्वृते निर्जितः स नराधिपः ॥३९॥ बलदेवेन धर्मेण नेत्युवाच ततो बलम् ॥ धैर्यान्मनःसमाधाय स न किंचिदुवाच ह ॥ ४० ॥ बलदेवं ततो रुक्मी मया जितमिति स्मयन् ॥ बलदेवस्तु तच्छ्रुत्वा जिह्मं वाक्यं नराधिप ॥ ४१ ॥ भूयः क्रोधसमाविष्टो नोत्तरं व्याजहार ह ततो गम्भीरनिर्घोषा वागुवाचाशरीरिणी ॥ ४२ ॥ बलदेवस्य तं क्रोधं वर्धयन्ती महात्मनः ॥ सत्यमाह बलः श्रीमान्धर्मेणैष पराजितः ॥ ४३ ॥

जब चतुरंगसे अंकित पासे पृथ्वीमें डाले जब चार वार पासे पृथ्वीमें डाल लिये,(धनके भाग करके एक वार दाव पडनेसे चौपाई दूसरेमें आधा तीसरेमें तिहाई चौथेमें सब)तब वह राजा जीत लिया गया ॥ ३९ ॥ यह बलदेवजीने धर्मसे कहा उस समय रुक्मी बोला मैं नहीं हारा, तब फिर बलराम मनमें धैर्य रखकर कुछभी न बोले ॥४०॥ तब रुक्मी बलरामजीसे हँसता हुआ बोला मैंने जीत लिया; हे राजन् ! उस समय उसके यह कुटिल वचन सुन ॥४१॥ फिरभी क्रोधमें भरकर कुछ न बोले,तब बडे गम्भीर स्वरसे आकाशवाणी हुई॥४२॥वह वाणी बलदेवजीका क्रोध बढाती हुई

कि यह बलरामजी सत्य कहते हैं इन्होंने धर्मसे रुक्मीको जीत लिया है ॥४३॥ विना कहेभी इनको कर्मसे जय प्राप्तहै प्रतिवादियोंको ऐसी वार्ता मनसे तो जाननेही योग्यहै, चाहें वाणीसे न कहें, कारण कि दुरात्माओंका यही स्वभाव है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार आकाशसे कहे हुए सत्य वचनको सुनकर बलरामजी तत्काल उठ खडे हुए, और सुवर्णके समान कांतिमान् उससे॥४५॥रुक्मिणीके ज्येष्ठ भ्राताको पृथ्वीमें पछाडकर मार डाला, विवादमें क्रोधितहुए राम आक्षेप करनेवाले रुक्मीको चरणप्रहारसे मथन कर मारने लगे॥४६॥और फिर बडे वेगसे झपटकर कलिंगाधिपति जयत्सेनके निकट

अनुक्त्वा वचनं किंचित्प्राप्तो भवति कर्मणा ॥ मनसा समनुज्ञातं तत्स्यादित्यवगम्यताम् ॥४४॥ इति श्रुत्वा वचस्तथ्यमन्तरिक्षात्सुभाषितम् ॥ संकर्षणस्तथोत्थाय सौवर्णेनोरुणा बली ॥ ४५॥ रुक्मीण्या भ्रातरं ज्येष्ठं निजघान महीतले ॥ विवादे कुपितो रामः क्षेप्तारं किल रुक्मिणम् ॥ जघानाष्टापदेनैव प्रमथ्य यदुनन्दनः ॥४६॥ ततोऽपसृत्य संक्रुद्धः कलिङ्गाधिपतेरपि ॥ दन्तान्बभञ्ज संरम्भादुन्ननाद च सिंहवत् ॥ ४७ ॥ खड्गमुद्यम्य तान्सर्वांस्त्रासयामास पार्थिवान् ॥ स्तम्भं सभायाः सौवर्णमुत्पाट्य बलीनां वरः ॥४८॥ गजेन्द्र इव संस्तम्भं कर्षन्संकर्षणस्ततः ॥ निर्जगाम सभाद्वारात्त्रासयामास कैशिकान् ॥ ४९ ॥ रुक्मिणं निकृतिप्रज्ञं स हत्वा यादवर्षभः ॥ वित्रास्य विद्विषः सर्वान्सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥५०॥ जगामशिबिरं रामः स्वयमेव जनावृतः ॥ न्यवेदयत्स कृष्णाय तत्र सर्वं यथाभवत् ॥५१॥नोवाच स तदा कृष्णः किंचिद्रामं महाद्युति॥निगृह्य च तदात्मानं कृच्छ्राद्श्रूण्यवर्तयत् ॥५२॥

जाकर उसकेदांत उखाड लिये और सिंहके समान शब्द किया ॥४७॥शेष राजोंको खड्ग धारण कर भयभीत किया, और उस सभाका एकसोनेका स्तंभ उखाडकर महाबली बलराम॥४८॥गजेन्द्रके समान उस स्तंभको इधर उधर खैंचते हुए कैशिकवंशको पीडा देते हुए सभाके द्वारसे निकले॥४९॥ इस प्रकार पुरुषश्रेष्ठ हीनबुद्धि रुक्मीको मारकर सब शत्रुओंको ऐसे विद्रावण करा जैसे सिंह क्षुद्र मृगोंको वित्रासित करता है ॥ ५० ॥ स्वयं बलराम संगियों सहित अपने डेरेमें आये, वहांका सब वृत्तान्त श्रीकृष्णसे कह दिया ॥५१॥ महाद्युतिमान् श्रीकृष्णने बलरामजीसे कुछभी न कहा

॥१८३॥

और रुक्मिणीने धीरज धारण कर कष्टसे आंसु रोक लिये ॥ ५२ ॥ और बोली जिस समय शत्रुघातीको पहले श्रीकृष्णने नहीं मारा था कारण कि वह रुक्मिणीका ज्येष्ठ भ्राता था उसके स्नेहके कारणसे नहीं मारा ॥ ५३ ॥ वह द्यूतमंडलमें रामके हाथसे मृतक हुआ, और आठ पैर परही मार दिया, यह राजा इन्द्रके तुल्य था ॥ ५४ ॥ उस महाबली भीष्मकपुत्रके मरनेपर जो कि द्रुम भार्गवके समान था जिसने द्रुम और भार्गवसे शिक्षा पाई थी ॥ ५५ ॥ सत्क्रियामें कुशल, नित्य कर्ममें तत्पर उसके मरनेपर वृष्णि और अधक सब उदासमन हो गये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

न हतो वासुदेवेन यः पूर्वं परवीरहा॥ज्येष्ठो भ्राताथ रुक्मिण्या रुक्मिणीस्नेहकारणात्॥५३॥स रामकरमुक्तेन निहतो द्यूतमण्डले ॥ अष्टापदेन बलवान्राजा वज्रधरोपमः ॥ ५४ ॥ तस्मिन्हते महावीर्ये नृपतौ भीष्मकात्मजे द्रुमभार्गवतुल्ये वै ॥ द्रुमभार्गवशिक्षिते ॥ ५५ ॥ कृतौ च युद्धकुशले नित्ययाजिनि पातिते ॥ वृष्णयश्चान्धकाश्चैव सर्वे विमनसोऽभवन् ॥ ५६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ रुक्मिणी च महाभागा विलपन्त्यार्तया गिरा ॥ विलपन्तीं तथा दृष्ट्वा सान्त्वयामास केशवः ॥ ५७ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं रुक्मिणो निधनं यथा ॥ वैरस्य च समुत्थानं वृष्णिभिर्भरतर्षभ ॥५८॥ वृष्णयोऽपि महाराज धनान्यादाय सर्वशः ॥ रामकृष्णौ समाश्रित्य ययुर्द्वारवतीं प्रति ॥ ५९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ॥ ६१ ॥ राजोवाच ॥ भूय एव तु विप्रर्षे बलदेवस्य धीमतः ॥ माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि शेषस्य धरणीभृतः ॥ १ ॥ अतीव बलदेवं तं तेजोराशिमनिर्जितम् ॥ कथयन्ति महात्मानं ये पुराणविदो जनाः ॥ २ ॥

हे राजन् ! यह रुक्मीका निधन सब तुम्हारे आगे वर्णन किया जिस प्रकार वृष्णिवंशियोंके साथ इसका वैर हुआ था ॥ ५८ ॥ हे महाराज ! वृष्णि अनेक प्रकारके धन ले रामकृष्णके साथ द्वारकामें चले आये ॥ ५९ ॥ इति श्रीमहा० खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ जन्मेजय बोले; हे भगवन् ! शेषरूप धरणी धारण करनेवाले बलरामजीका माहात्म्य फिरभी सुननेकी मेरी इच्छा है ॥१॥ महातेजस्वी महाबली जीतनेमें नहीं आते ऐसा बलदेवजीको पुराणवेत्ता कहते हैं ॥ २ ॥

हे प्रिय! मेरी इच्छा उनके कर्तव्य सुननेकी है, जिनको अनन्त नाग आदिदेव जनेश्वर कहते हैं ॥३॥ वैशंपायन बोले; पुराणोंमें यही नागराज और धरणीधर कहलाते हैं, यही शेष तेजोनिधि श्रीमान् निश्चल पुरुषोत्तम हैं ॥ ४ ॥ यही योगाचार्य महावीर्यवान् देवमंत्रमें मुख्य महाबली हैं, जिन्होंने गदायुद्धमें जरासंधको जीत लिया, परन्तु मारा नहीं ॥ ५ ॥ पृथ्वीतलमें बहुतसे राजा विख्यात हैं, जो जरासंधके अनुगामी हुए, उन सबको जीत लिये ॥६॥ दश सहस्र हाथियोंके बलसे युक्त भीमपराक्रमी पवनकुमार भीमसेनको बलरामजीने बाहुयुद्धमें वारंवार जीता था ॥७॥ जब जाम्बवती-

तस्य कर्माण्यहं विप्र श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ अनन्तं यं विदुर्नागमादिदेवं जनेश्वरम् ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ पुराणे नागराजोऽसौ पठ्यते धरणीधरः ॥ शेषस्तेजोनिधिः श्रीमानकम्प्यः पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ योगाचार्यो महावीर्यो देवमन्त्रमुखो बली ॥ जरासन्धं गदायुद्धे जितवान्यो न चावधीत् ॥५॥ बहवश्चैव राजानः प्रथिताः पृथिवीतले ॥ अन्वयुर्मागधं सर्वे ते चापि विजिता रणे ॥ ६ ॥ नागायुतबलप्राणो भीमो भीमपराक्रमः ॥ असकृद्बलदेवेन बाहुयुद्धे पराजितः ॥ ७ ॥ दुर्योधनस्य कन्यां तु हरमाणो न्यगृह्यत ॥ साम्बो जाम्बवतीपुत्रो नगरे नागसाह्वये ॥ ८ ॥ राजाभिः सर्वतो रुद्धो हरमाणो बलात्किल ॥ तदुपश्रुत्य संरुद्ध आजगाम महाबलः ॥ ९ ॥ रामस्तस्य तु मोक्षार्थमागतो नालभच्च तम् ॥ ततश्चुक्रोध बलवानद्भुतं चाकरोन्महत् ॥१०॥ अनिवार्यमभेद्यं च दिव्यमप्रतिमं बले ॥ लाङ्गलास्त्रं समुद्यम्य ब्रह्ममन्त्राभिमन्त्रितम् ॥ ११ ॥ प्राकारवप्रे विन्यस्य पुरस्य च महाद्युतिः ॥ प्रक्षेप्तुमैच्छद्गङ्गायां नगरं कौरवस्य तत् ॥ १२ ॥

पुत्र साम्बने दुर्योधनकी कन्याको स्वयंवरमें हरणकिया, तब कौरवोंने उसे हस्तिनापुरमें पकडरक्खा॥८॥उस बलसे हरण करनेवालेको सब राजोंने रोक लिया यह समाचार सुन शीघ्रतासे बलरामजी वहां गये॥९॥रामउनके छुडानेको गये परन्तु साम्बकी प्राप्ति न हुई, तबबली बलरामने क्रोधकर महाअद्भुत कर्म किया॥१०॥जो किसीसे निवारणन हो सके, भेद न होसके, जो दिव्य जिसके समान कोई बली नहीं कर सकता, उन्होंने ब्रह्ममंत्रसे अभिमंत्रित कर अपने लांगलअस्त्रको उठाकर॥११॥और उन कान्तिमाननेउस पुरके परकोटेमें उसे गाडकर उन कौरवोंकेनगरकी गंगामें फैंकनेकी

इच्छा की॥ १२॥उस पुरको चलायमान देख राजा दुर्योधनने भार्यासहित साम्बको तत्काल छोड दिया॥ १३॥और स्वयं आप बलरामजीका शिष्य हो गया, उन्होंने कुरुपतिको गदायुद्धमें शिष्य किया॥ १४॥हे राजन्! उसी दिनसे हस्तिनापुर आनकर गंगाके सन्मुख झुका हुआ दीखता है॥ १५॥ यह रामका पृथ्वीमें महाअद्भुत कर्म है, और जो पहले इन्होंने भांडीर वनमें किया था सो तुमसे कहही दिया॥ १६॥ बलरामजीने प्रलम्बासुरको एक घूसेमेंही मार डाला था महावीर्य धेनुकको वृक्षके ऊपर दे मारा, यह गर्दभरूपधारी दैत्य प्राणहीन हो पृथ्वीमें गिर पडा॥ १७॥लवणसागरमें जानेवाली

तद्विघूर्णितमालक्ष्य पुरं दुर्योधनो नृपः॥ साम्बं निर्यातयामास सभार्यं तस्य धीमतः॥ १३॥ ददौ शिष्यं तदात्मानं रामस्य सुमहात्मनः॥ गदायुद्धे कुरुपतिं शिष्यं जग्राह तं च सः॥१४॥ ततः प्रभृति राजेन्द्र पुरमेतद्विघूर्णितम्॥ आवर्जितमिवाभाति गङ्गामभिमुखं नृप॥ १५॥ इदमत्यद्भुतं कर्म रामस्य कथितं भुवि॥ भाण्डीरे कथितं राजन्यत्कृतं शौरिणा पुरा॥ १६॥ प्रलम्बं मुष्टिनैकेन यज्जघान हलायुधः॥ धेनुकं तु महावीर्यं चिक्षेप नगमूर्द्धनि॥ स गतायुः पपातोर्व्यां दैत्यो गर्दभरूपधृक्॥ १७॥ लवणजलगमा महानदी द्रुतजलवेगतरङ्गमालिनी॥ नगरमभिमुखं यदाहृता हलविधृता यमुना यमस्वसा॥ १८॥ बलदेवस्य माहात्म्यमेतत्ते कथितं मया॥ अनन्तस्याप्रमेयस्य शेषस्य धरणीभृतः॥१९॥ इति पुरुषवरस्य लाङ्गलेर्बहुविधमुत्तममन्यदेव च॥ यदकथितमिहाद्य कर्म ते तदुपलभस्व पुराणविस्तरात्॥ २०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बलदेवमाहात्म्यं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥ ६२॥

शीघ्र जलके वेग और तरंगोंवाली महानदी यमकी भगिनी यमुनाको जब विहारकी इच्छासे बुलाया तब उसके न आनेपर हलसे खैंच लिया॥ १८॥ हे राजन्! यह मैंने तुमसे बलदेवका माहात्म्य कहा, यही अत्यन्त अप्रमेय और पृथ्वीके धारण करनेहारे शेषजी हैं॥१९॥ हलधारी बलरामजीके और भी उत्तम २ अनेक चरित्र हैं, जो हमने यहां नहीं कहे हैं, वह और दूसरे बडे पुराणोंसे जानने योग्य हैं॥२०॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि

भाषायां बलदेवमाहात्म्यं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ ॥ छ ॥ जन्मेजय बोले; वीर्यवान् रुक्मीके मरनेपर और विष्णु भगवान्के द्वारकामें जानेसे जो कुछ श्रीकृष्णने किया; हे महामुने ! वह आप हमसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार यादवनन्दन यादवोंके साथ वह महावीर्य द्वारकामें निवास करने लगे ॥ २ ॥ और अनेक प्रकार धन रत्नोंको प्राप्त हुए, और कमलनयन जो रत्न लाये थे वह राक्षसोंके यहांसे ले आये थे ॥३॥ जिन जिन दैत्योंने उनका विघ्न किया था, महाबाहु श्रीकृष्णने वरदान पाये हुए उन राक्षसोंका वध किया ॥ ४ ॥ उनमेंसे एक नरक

जनमेजय उवाच ॥ प्रत्येत्य द्वारकां विष्णुर्हते रुक्मिणि वीर्यवान् ॥ अकरोद्यन्महाबाहुस्तन्मे वद महामुने ॥ १ ॥ वैशम्पायन
उवाच ॥ स तैः परिवृतः श्रीमान्पुरीं यादवनन्दनः ॥ द्वारकां भगवान्विष्णुः प्रत्यवैक्षत वीर्यवान् ॥२॥ प्रत्यपद्यत रत्नानि विवि-
धानि वसूनि च ॥ यथार्हं पुण्डरीकाक्षो नैर्ऋतान्प्रत्यवारयत् ॥ ३ ॥ तत्र विघ्नं चरन्ति स्म दैतेयाः सह दानवैः ॥ तान् जघान
महाबाहुर्वरदप्तान्महासुरान् ॥ ४ ॥ विघ्नं चास्याकरोत्तत्र नरको नाम दानवः ॥ त्रासनः सर्वदेवानां देवराजरिपुर्महान् ॥ ५ ॥ स
बभौ मूर्तिलिङ्गस्थः सर्वदेवाधिबाधिता ॥ देवतानामृषीणां च प्रतीपमकरोत्तदा ॥६॥ त्वष्टुर्दुहितरं भौमः कशेरुमगमत्तदा ॥ गज-
रूपेण जग्राह रुचिराङ्गीं चतुर्दशीम् ॥ ७ ॥ प्रमथ्य तां वरारोहां नरको वाक्यमब्रवीत् ॥ नष्टशोकभयो मोहात्प्राग्ज्योतिषप-
तिस्तदा ॥ ८ ॥ यानि देवमनुष्येषु रत्नानि विविधानि च ॥ बिभर्ति च मही कृत्स्ना सागरेषु च यद्वसु ॥ ९ ॥

नाम दानवने इनका विघ्न किया था,वह सब देवताओंको त्रास देनेवाला और इन्द्रका महाशत्रु था ॥५॥ वह अपनी प्रत्यक्ष मूर्ति धारण किये देवताओंको बाधा देता था,और देवता तथा ऋषियोंको बाधा देता था ॥ ६ ॥एक दिन भौमासुर त्वष्टाकी कन्याके निकट कसेरू स्थानमें गया, और उस सदा चतुर्दश वर्षवाली शोभन अंगयुक्तवालीको गजरूपसे ग्रहण किया ॥७॥ उस वरारोहाको मथन करके नरकने यह वचन कहे अर्थात् वह प्राग्ज्योतिष पुरका राजा शोकमोहसे रहित होकर कहने लगा॥८॥जितने देवता और मनुष्योंमें रत्न हैं;और सागर पर्यन्त पृथ्वी जितना धन धारण

॥१८९॥

करती है ॥९॥ आजसे लेकर उसके सहित सम्पूर्ण राक्षस दैत्योंके साथ मुझको भट देंगे ॥१०॥ इस प्रकारके उत्तम रत्न और अनेक वस्त्र उस भौमने सम्पूर्ण संग्रह किये उनका भोग नहीं किया॥११॥जो गन्धर्वोंकी कन्या हैं वह महाबली नरकासुरने हरणकर लीं,जो देवता मनुष्योंमें अप्सराओंके सात गण हैं॥१२॥सोलह सहस्र एक शत कन्या एकवेणीका व्रत धारे सब सतीमार्गमें तत्पर थीं ॥१३॥ वैशंपायन बोले;उस भौमासुरने अपने प्राग्ज्योतिष पुरमें मणिपर्वत बनाया, और दीनतासे रहित अलकामें मुरदैत्यका राज्य था ॥ १४ ॥ मुरके दश पुत्र राक्षस प्राग्ज्योतिषपुरकी पालना करते थे, और

अद्यप्रभृति तानीह सहिताः सर्वनैर्ऋताः ॥ ममैवोपाहरिष्यन्ति दैत्याश्च सह दानवैः ॥१०॥ एवमुत्तमरत्नानि वस्त्राणि विविधानि च ॥ स जहार तदा भौमस्तच्च नाधिचकार सः ॥११॥ गन्धर्वाणां च याः कन्या जहार नरको बली ॥ याश्च देवमनुष्याणां सप्त चाप्सरसा गणाः ॥१२॥ चतुर्दश सहस्राणि एकविंशच्छतानि च ॥ एकवेणीधराः सर्वाः सतीमार्गमनुव्रताः ॥ १३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तासां पुरवरं भौमोऽकारयन्मणिपर्वतम् ॥ अलकायामदीनात्मा मुरोः स्वविषयं प्रति ॥१४॥ ताश्च प्राग्ज्योतिषपतिं मुरोश्चव दशात्मजाः ॥ नैर्ऋताश्च यथा मुख्याः पालयन्त उपासते ॥ स एष तमसः पारे वरदत्तो महासुरः ॥ १५ ॥ न चासुरगणैः सर्वैः सहितैः कर्म तत्पुरा ॥ कृतपूर्वं तदा घोरं यदकार्षीन्महासुरः ॥ १६ ॥ आदर्तिं धर्षयामास कुण्डलार्थे महासुरः ॥ यं मही सुषुवे देवी यस्य प्राग्ज्योतिषं पुरम् ॥१७॥ द्वारपालश्च चत्वारस्तस्यासन्युद्धदुर्मदः॥हयग्रीवी निसुन्दश्च वीरः पञ्चनदस्तथा॥१८॥ मुरुः पुत्रसहस्रैश्च वरदत्तोऽसुरो महान्॥ आदेवयानमावृत्य पन्थानं समुपस्थितः॥ वित्रासनः सुकृतिनां विरूपैःराक्षसैः सह॥१९॥

इसकी उपासना करतेथे,और यह राक्षस कृष्ण वर्णमें अंधकारसेभी बडा था॥१५॥वह कर्म पहले सब असुरोंनेभी मिलकर नहीं किये थेजो घोर कर्म इस महाअसुरने किये॥१६॥इस महाअसुरने अदितिकेकुण्डल छीनलिये,इसको पृथ्वी देवीनेउत्पन्न किया था,इसके प्राग्ज्योतिष पुर विख्यात हुआ॥१७॥ युद्धमें घोर उसके चार द्वारपालयुद्धमें बडे दुर्मद हयग्रीव,विसुन्द,वीर,पंचनद थे॥१८॥और वृद्धिको प्राप्त हुआ मुर सहस्र पुत्रोंकेसहित देवयान मार्गमें

स्थित हुआ पुण्यात्माओंको देखता राक्षसोंके साथ स्थित हुआ॥१९॥उसके मारनेके निमित्त शंख चक्र धारण करनेवाले भगवान्‌ने वसुदेवके यहां जन्म लिया॥२०॥उस पुरुषोंमें इन्द्र,लोकमें विख्यात तेजवाले भगवान्‌के निवासके निमित्त देवताओंने द्वारका स्थित की थी,वह द्वारका पुरी अत्यन्त शोभायमान थी, मानो इन्द्रलोकसे आनकर प्राप्त हो गई है, सागरमें परिक्षिप्त पांच पर्वतोंसे शोभायमान थी ॥२१॥२२॥ उस देवताओंके समान सुवर्णसे भूषित पुरीमें एक तोरणादि सहित दाशाहा नाम सभा थी,और एक योजन उसका लम्बाव चौडाव था ॥ २३ ॥ वहां रामकृष्ण आदिक सब

तद्वधार्थं महाबाहुः शङ्खचक्रगदासिभृत् ॥ जातो वृष्णिषु देवक्यां वसुदेवाज्जनार्दनः ॥ २० ॥ तस्थाय पुरुषेन्द्रस्य लोकप्रथिततेजसः ॥ निवासो द्वारका देवैरुपायादुपपादिता ॥ २१ ॥ अतीव हि पुरी रम्या द्वारका वासवक्षयात् ॥ महार्णवपरिक्षिप्ता पञ्चपर्वतशोभिता ॥२२॥ तस्यां देवपुराभायां सभा काञ्चनतोरणा ॥ सा दाशार्हीति विख्याता योजनायामविस्तृता ॥ २३ ॥ तत्र वृष्ण्यन्धकाः सर्वे रामकृष्णपुरोगमाः ॥ लोकयात्रामिमां कृत्स्नां परिरक्षन्त आसते ॥२४॥ तत्रासीनेषु सर्वेषु कदाचिद्भरतर्षभ ॥ दिव्यगन्धो ववौ वायुः पुष्पवर्षं पपात ह ॥२५॥ ततः किलकिलाशब्दः प्रभाजालाभिसंवृतः ॥ मुहूर्तमन्तरिक्षेऽभूत्ततो भूमौ प्रतिष्ठितः ॥ २६ ॥ मध्ये तु तेजसस्तस्य पाण्डुरं गजमास्थितः ॥ वृतो देवगणैः सर्वैर्वासवः समदृश्यत ॥ २७॥ रामकृष्णौ च राजा स वृष्ण्यन्धकगणैः सह ॥ प्रत्युद्ययुर्महात्मानं पूजयन्तः सुरेश्वरम् ॥२८॥ सोऽवतीर्य गजात्तूर्णं परिष्वज्य जनार्दनम् ॥ सस्वजे बलदेवं च तं च राजानमाहुकम् ॥ २९ ॥

वृष्णि और अंधक इस सम्पूर्ण लोकयात्राकी रक्षा करते स्थित थे ॥ २४ ॥ एक समय वह सब बैठे थे, उस समय सुन्दर पवन चलने लगी और फूलोंकी वर्षा हुई ॥ २५ ॥ तब कान्तिजालसे युक्त किलकिला शब्द होने लगा, पहले एक मुहूर्तमात्र आकाशमें और फिर पृथ्वीमें हुआ ॥२६॥ मध्यमें उसके एक पाण्डुरंगका तेज था,थोडे समयमें देखा तो सम्पूर्ण देवताओंके साथ इन्द्र दिखाई दिया ॥ २७ ॥ रामकृष्ण उग्रसेन वृष्णि और अंधकगणोंके साथ भगवान् उठे. और प्रत्युद्गमन करके पूजा की॥२८॥इन्द्र शीघ्रही हाथीसे उतर नारायणका आलिंगन करबलराम और उग्रसेनसे

मिला ॥२९॥ और दूसरे यदुवंशियोंसे यथायोग्य देश कालानुसार इन्द्र मिले और रामकृष्णसे पूजित हो सभामें प्रविष्ट हुए ॥३०॥ देवेन्द्र अलंकृत हो उस समय सभाको शोभित करने लगे, अर्घादि आचारको विधिपूर्वक ग्रहण करके ॥३१॥ वैशंपायन बोले; वह महातेजस्वी इन्द्र श्रीकृष्णसे बोला और बोलते समय हाथसे इनका शिर बडे आश्वासन देकर स्पर्श किया ॥३२॥ हे देवकीनन्दन मधुसूदन ! तुम मेरे वचन सुनो, हे असुरहन्ता ! जिस कार्यके निमित्त मैं तुम्हारे पास आया हू वह सुनो ॥ ३३ ॥ ब्रह्माके बलसे दर्पित हुआ एक नरक नाम दैत्य है, उस दितिपुत्रने बलसे इन्द्रकी माता

वृष्णीनन्यान्सस्वजे च यथाकालं यथावयः ॥ पूजितो रामकृष्णाभ्यामाविवेश स तां सभाम् ॥ ३० ॥ तत्रासीनोऽभ्यलंकृत्वा सभांताममरेश्वरः ॥ अर्घादिसमुदाचारं प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ॥ ३१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथोवाच महातेजा वासवो वासवानुजम् ॥ सान्त्वपूर्वं करेणास्य संस्पृश्य वदनं शुभम् ॥ ३२ ॥ देवकीनन्दन वचः शृणु मे मधुसूदन ॥ येन त्वाभिगतोऽस्म्यद्य कार्येणामित्रकर्शन ॥ ३३ ॥ नैर्ऋतो नरको नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः ॥ अदित्याः कुण्डले मोहाज्जहार दितिनन्दनः ॥ ३४ ॥ देवानां विप्रिये नित्यमृषीणां च स वर्त्तते ॥ तं च देवान्तरं प्रेक्ष्य जहि त्वं पापपूरुषम् ॥ ३५ ॥ अयं त्वां गरुडस्तत्र प्रापयिष्यति कामगः ॥ कामवीर्योऽतितेजस्वी वैनतेयोऽन्तरिक्षगः ॥ ३६ ॥ अवध्यः सर्वभूतानां भौमः स नरकोऽसुरः ॥ निषूदयित्वा तं पापं क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ॥ ३७ ॥ इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो देवराजेन केशवः ॥ प्रतिजज्ञे महाबाहुर्नरकस्य निबर्हणे ॥ ३८ ॥ ततः सहैव शक्रेण शङ्खचक्रगदासिभृत् ॥ प्रतस्थे गरुडेनाथ सत्यभामासहायवान् ॥ ३९ ॥

अदितिके कुण्डल हरण किये ॥ ३४ ॥ बृहस्पति देवता ऋषियोंके अपकारमें लगा रहता है. हे देव! अन्तर देखकर आप उसका संहार कीजिये, कारण कि वह बडा पापी है ॥३५॥ और वहांपर जानेके समय गरुडजी आपके निकट स्थित रहेंगे, यह गरुडजी आकाशमें यथेच्छ गमन करनेवाले तेजस्वी यथेच्छ वीयवान् हैं ॥३६॥ और वह भौम नामक दैत्यभी सब प्राणियोंसे अवध्य है, उस पापीको मारकर आप शीघ्रही आइये॥३७॥इस प्रकार इन्द्रने श्रीकृष्णसे कहा; तब महाबाहुने नरकके मारनेकी वार्ता ग्रहण की॥ ३८ ॥तब इन्द्रके साथ शंख चक्र गदा पद्म धारण करनेवाले कृष्ण सत्यभामाको

साथ ले गरुडपर बैठकर चले सत्यभामा पृथ्वीका अंश है और उसे देवताओंने कहा जब स्वयं इसे तू मारनेको कहेगी तब यह मारा जायगा इस कारण सत्यभामाको अपने साथ लिया॥३९॥यहां इन्द्र कर्मानुसार सात वायुके स्कंधोंको ले देवताओंको साथ ले इन्द्र स्वर्गलोकको चले गये;और महाश्रेष्ठ यदुवंशियोंने उन्हें जाते देखा॥४०॥जब हाथीपर स्थित हो इन्द्र गया तब गरुडके ऊपर श्रीकृष्ण स्थित हुए और दूर होनेसे वह दोनों चन्द्रसूर्यके समान प्रकाशित हुए ॥४१॥ तब आकाशसे अप्सराओं गन्धर्वोंने केशवकी स्तुति की, तब इन्द्र अन्तर्धान हुए ॥४२॥ देवराज इन्द्र इस प्रकार कर्तव्य

क्रमेण सप्तस्कन्धान्स मरुतां सहवासवः ॥ पश्यतां यदुसिंहानामूर्ध्वमाचक्रमे बली ॥ ४० ॥ वारणेन्द्रगतः शक्रो गरुडस्थो जनार्दनः ॥ विदूरत्वात्प्रकाशेते सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ४१ ॥ अन्तरिक्षे च गन्धर्वैरप्सरोभिश्च केशवः ॥ स्तूयमानोऽथ शक्रश्च क्रमेणान्तरधीयत ॥ ४२ ॥ समाधायेतिकर्तव्यं वासवो विबुधाधिपः ॥ स्वमेव भवनं प्रायात्कृष्णः प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥ ४३ ॥ पक्षानिलहतो वायुः प्रतिलोमं ववौ तदा ॥ ततो भीमरवा मेघा बभ्रमुर्गगनेचराः ॥ ४४ ॥ क्षणेन समनुप्राप्तो द्विजेनाकाशगेन वै दूरादेव च तान्दृष्ट्वा प्रययौ यत्र ते स्थिताः ॥ ४५ ॥अपश्यद्द्वारि तत्रस्थां हस्त्यश्वरथवाहिनीम् ॥ क्षुरान्तान्मौरवान्पाशान्षट्स-हस्रान्ददर्श ह ॥ ४६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ गरुडस्योपरि श्रीमाञ्छङ्खचक्रगदाधरः ॥ बिभ्रन्नीलाम्बुदाकारं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ४७ ॥ वनमालाकुलोरस्कः श्रीवत्साङ्कितभूषणः ॥ किरीटमूर्द्धा सूर्याभः सविद्युदिव चन्द्रमाः ॥ ४८ ॥

कार्य पूर्ण करके अपने घरको गया, और श्रीकृष्णचन्द्र प्राग्ज्योतिषपुरको गये॥४३॥तब गरुडके पक्षसे हत होकर वायु उलटी चलने लगी, तब आका-शमें बडे भयंकर मेघ घूमने लगे, शब्द हुआ॥४४॥क्षणमात्रमें वह आकाशगामी पक्षीके द्वारा वहां पहुँच गये, और दूरसे उन मुरके पुत्रोंको देखकर जहां थे वहां उनके निकट गये॥४५॥और उनके द्वारेपर हाथी घोडोंकी महासेना देखी, और पाषाणादिकेभी छेदन करनेवाले तीक्ष्ण छः सहस्र मुरके पाशोंको देखा॥४६॥वैशंपायन बोले; शंख चक्र धारण किये गरुडपर स्थित नील मेघके समान कान्तिमान पीले वस्त्र धारे चतुर्भुज॥४७॥वनमालासे

व्याप्त हृदय श्रीवत्सके अंकरूप भूषणवाले किरीट शिरपर धारे सूर्य विजली और चन्द्रमाके समान प्रकाशमान॥४८॥श्रीकृष्णको देखा उस समय उनकी ज्याका शब्द वज्रपातके समान सुनाई आता था,तव दानवोंने जाना कि स्वयं विष्णुजी यहां आ गये हैं॥४९॥तबक्रोधसे दूने लाल नेत्र कर कालान्तकके समान महादानव मुर शक्ति लेकर श्रीकृष्णके ऊपरको दौडा॥५०॥ और सुवर्णभूषित वज्रकी महाशक्तिको फैंका जलती हुई उल्काके समान उस महाशक्तिको आता देख ॥५१॥ श्रीकृष्णने एक रुक्मपुंखबाण चढाया और वीर्यवान् वासुदेवने उसके दो खण्ड कर किये॥५२॥जब बिज-

ज्यां विकूजन्महाशब्दः श्रूयतेऽशनिनिःस्वनः ज्ञात्वा च दानवः सर्वं स्वयं विष्णुरिहागतः ॥ ४९ ॥ क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो मुरुः कालान्तकोपमः ॥ अभ्यधावत वेगेन शक्तिं गृह्य महासुरः ॥ ५० ॥ चिक्षेप सुमहाशक्तिं वज्रकाञ्चनभूषिताम् ॥ तामापन्ततीं शक्तिं तु महोल्कां ज्वलितामिव ॥ ५१ ॥ समाधत्त शरं चैकं रुक्मपुङ्खं जनार्दनः ॥ द्विधाच्छिनत्क्षुरप्रेण वासुदेवः स वीर्यवान् ॥ ५२ ॥ शक्तिं चिच्छेद तत्रासौ विद्युत्पुञ्ज इव ज्वलन् ॥ पुनश्च क्रोधरक्ताक्षो मुरुर्गृह्य महागदाम् ॥ ५३ ॥ इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण विकृष्ट इव निःस्वनः ॥ आकर्णमुक्तं चिक्षेप अर्धचन्द्रं सुरोत्तमः ॥ ५४ ॥ मध्यदेशे तु चिच्छेद गदां तां रुक्मभूषिताम् ॥ पुनश्चिच्छेद भल्लेन दानवस्य शिरो रणे ॥ ५५ ॥ संच्छिद्य पाशान्सर्वांस्तन्मुरुं हत्वा सबान्धवम् ॥ सोऽग्र्यात्रक्षोगणान्हत्वा नरकस्य महाबलान् ॥ ५६ ॥ शिलासंघानतिक्रम्य भगवान्देवकीसुतः ॥ अपश्यद्दानवं सैन्यं निसुन्दं च महाबलम् ॥ ५७ ॥ हयग्रीवं च दितिजं तथान्यांश्चित्रयोधिनः ॥ रोधयामास तन्माग स्वसैन्येन महाबलः ॥ ५८ ॥

लीके पुंजके समान जलती हुई शक्ति खण्डित हुई, तब मुरने लालनेत्र कर गदा ग्रहण की ॥५३॥ और स्वांस लेकर इन्द्रके वज्रके समान उसका प्रहार किया;तब श्रीकृष्णने कर्णपर्यन्त धनुष खैंचकर अधचन्द्र बाण छोडा ॥ ५४ ॥ और मध्यस्थानसे वह सुवर्णभूषित गदा तोड दी, और फिर युद्धमें एक भालेसे उस दानवका शिर छेदन कर दिया॥५५॥सब पाशोंको छेदन कर और बांधवसहित उसका वध करके नरकके महाबली अग्रगामी राक्षसोंको मारकर॥५६॥भगवान् देवकीपुत्र शिलाओंके समूहको अतिक्रमण कर दानवोंकी सेना और महाबली निसुन्दको देखते हुए॥५७॥हयग्रीव

दितिपुत्र तथा दूसरे चित्रयुद्ध करनेवालोंने सेना लेकर श्रीकृष्णका मार्ग रोक दिया ॥५८॥ बलियोंमें श्रेष्ठ निसुन्दने शीघ्रतासे रथमें स्थित होकर उसने सुवर्णपृष्ठका महाधनुष धारणकिया जोदूसरोंको प्राप्तहोना कठिन था॥५९॥और निसुन्दने दश बाणोंसे मधुसूदनको विद्धकिया,तब श्रीकृष्णने उसके सत्तर बाण मारे॥६०॥और आकाशमें स्थितही उसके सब बाण श्रीकृष्णने काटडाले तब उन सेनाके लोगोंने चारोंओरसे घेर लिया॥६१॥ और क्षणमात्रमें बाणोंकेसमूहसे श्रीकृष्णको आच्छादनकर दिया तब उनसब दानवोंको देखकर श्रीकृष्ण महाक्रोधितहुए॥६२॥तबदिव्यमेघ अस्त्रसे श्रीकृष्णने बडी भारी सेनाको महाबाणवर्षासे आच्छादित कर दिया॥६३॥और पर्जन्य अस्त्रके प्रभावसे सम्पूर्ण सेनाके लोगोंको पांचपांच बाणोंसे

निसुन्दो बलिनां श्रेष्ठो रथमारुह्य सत्वरम् ॥ जग्राह कार्मुकं दिव्यं हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥५९॥ विव्याध दशभिर्बाणैर्निसुन्दो मधुसूदनम् ॥ केशवश्चापि सप्तत्या विव्याध निशितैः शरैः ॥६०॥ अप्राप्तांश्चान्तरिक्षे ताञ्छरांश्चिच्छेद माधवः ॥ ते सर्वे सैनिकाः कृष्णं समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ६१ ॥ शरजालेन महता छाद्यमानः सुरोत्तमः ॥ दृष्ट्वा तान्दानवान्सर्वान्सक्रोधो मधुसूदनः ॥ ६२ ॥ ततो दिव्येन चास्त्रेण पार्जन्येन जनार्दनः ॥ महता शरवर्षेण वारयामास तद्बलम् ॥ ६३ ॥ पञ्चपञ्चशरैस्तेषु एकैकेन च तान्बहून् ॥ पार्जन्यस्य प्रभावेण सर्वान्मर्मस्वताडयत् ॥६४॥ दुद्रुवुर्भयसंत्रस्ता भग्नास्ते दानवा रणे ॥ स्वसैन्यं विद्रुतं दृष्ट्वा निश्चक्राम पुनर्मृधे ॥६५॥ विसृजञ्छरवर्षाणि छादयामास केशवम् ॥ न विभाति रणे सूर्यो नापि व्योम दिशो दश ॥६६॥ शरैः संछादयामास निसुन्दो गरुडध्वजम् ॥ सावित्रं नाम दिव्यास्त्रं जग्राह पुरुषोत्तमः ॥६७॥ तेन बाणेन तान्बाणांश्चिच्छेद समरे हरिः ॥ बाणैर्बाणांश्च संछिद्य तस्य कृष्णो महाबलः ॥६८॥ छत्रमेकेन बाणेन रथेषां च त्रिभिः शरैः ॥ पुनश्चिच्छेद तानश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः शरैः ॥६९॥

विद्ध किया,और सबके मर्मस्थानोंमें बाणका प्रहार किया ॥ ६४ ॥ तब वे दानव भग्न हो भयसेपलायन करने लगे, युद्धमें अपनी सेनाको व्यग्र देख निसुंद फिर युद्ध करनेको निकला॥६५॥और बाणवर्षासे उसने श्रीकृष्णको आच्छादित कर दिया,उस समययुद्धमें सूर्य आकाश दशों दिशा विदित नहीं होती थीं ॥६६॥ इस प्रकार निसुन्दने गरुडध्वजको आच्छादन कर दिया तब श्रीकृष्णने सावित्र नामक दिव्य अस्त्रको ग्रहणकिया ॥६७॥ उस युद्धमें श्रीकृष्णने वे सब बाण छेदन कर डाले, इस प्रकार महाबलीकृष्णने अपने बाणोंसे उसके बाण छेदन कर डाले॥६८॥एक बाणसे रथेशको और

चार बाणोंसे उसके रथके चारों घोडोंपर प्रहार किया ॥ ६९ ॥ पांच बाणसे सारथी और एक बाणसे ध्वजा छेदन कर दी और फिर एक तीक्ष्ण बाणसे श्रीकृष्णने॥७०॥भल्लरूप बाण उसके शिरमें मारा जिसके लगतेही वह गिर पडा वह इकलाही सहस्र वर्षतक देवताओंके साथ युद्ध करता रहा था॥७१॥इस निसुन्दके मृतक होनेपर प्रतापवान् हयग्रीव बडी भारी शिला ग्रहण कर हाथमें घुमाता हुआ आया ॥ ७२ ॥ और उसको श्रीकृष्णके चारों ओर फैंकने लगा तब अस्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने पर्जन्य अस्त्र ग्रहण कर॥७३॥दिव्य अस्त्रसे उस शिलाके सात खण्ड कर दिये और वह

सारथिं पञ्चभिर्बाणैर्ध्वजमेकेन चिच्छिदे ॥ शरैकेन वपुः कृष्णः सुतीक्ष्णेन शितेन वै ॥७०॥शिरश्चिच्छेद भल्लेन निसुन्दस्य सुरोत्तमः ॥ यः सहस्रसमास्त्वेकः सर्वान्देवानयोधयत् ॥७१॥ निसुन्दं पतितं दृष्ट्वा हयग्रीवः प्रतापवान् ॥ शिलां प्रगृह्य महतीं तोलयामास दानवः ॥७२॥ आविध्य सहसामुञ्चच्छिलां शैलसमां प्रभुः ॥ गृहीत्वा दिव्यपार्जन्यमस्त्रमस्त्रविदांवरः ॥ ७३ ॥ दिव्यास्त्रेण शिलां विष्णुः सप्तधाकृत तेजसा ॥ तद्विदार्य महच्चाश्म पातयामास भूतले ॥७४॥ ततस्तैः शार्ङ्गनिर्मुक्तैर्नानावर्णैर्महाशरैः ॥ यथा देवासुरं युद्धमभवद्भरतर्षभ ॥ नानाप्रहरणाकीर्णं तथा घोरमवर्तत ॥७५॥ ततः शार्ङ्गविनिर्मुक्तैर्नानावर्णैर्महाशरैः ॥ गरुडस्थो महाबाहुर्निजघान महासुरान् ॥ ७६ ॥ महालाङ्गलनिर्भिन्नाः शङ्खशक्तिनिपातिताः ॥ विनेशुर्दानवाः सर्वे समासाद्य जनार्दनम् ॥७७॥ केचिच्चक्राग्निनिर्दग्धा दानवाः पेतुरम्बरात् ॥ संनिकर्षगताः केचिद्गतासुविकृताननाः ॥ ७८ ॥ असृजञ्छरवर्षाणि वृष्टिमन्त इवाम्बुदाः ॥ विकृताङ्गासुराः सर्वे कृष्णबाणप्रपीडिताः ॥ ७९ ॥

महाशिलाको विदीर्ण कर पृथ्वीमें गिरा ॥७४॥ तब फिर शार्ङ्गधनुषसे निकले हुए नानावर्णके अनेक बाण चले जैसे देवतासुर संग्राम उस प्रकार अनेक प्रहारयुक्त महाघोर संग्राम हुआ ॥७५॥ तब शार्ङ्गधनुष पर बाण चढाय गरुडपर स्थित हो श्री कृष्ण दानवोंको मारने लगे ॥७६॥ वहां लांगल (हल)से विदीर्ण हुए शंखके शब्दसेही निपातित कृष्णको प्राप्त हो सब दानव नष्ट होने लगे ॥७७॥ तब दानव चक्राग्निसे भस्म हो आकाशसे गिरने लगे, कोई उसकी निकटताकोही प्राप्त होकर विकृतमुख हो प्राणहीन हुए॥७८॥जैसे बादलोंसे वर्षा होती है इस प्रकार बाणवर्षाके लगनेसे दानवोंके शरीर छेदन

होने लगे ॥ ७९ ॥ वे रुधिरसे रंगे फूले हुए टेसूके समान दीखते थे, वे चित्रयोधा भग्न हो पलायन करने लगे, उनके अस्त्र टूट गये ॥ ८० ॥ फिर क्रोधसे लाल नेत्र कर वायुके वेगसे वह दानव दश व्याम ऊंचे वृक्षपर चढकर ॥ ८१ ॥ और उस वृक्षको उखाड कर बडे वेगसे दौडा, और मेघके समान बडे वेगसे श्रीकृष्णके ऊपर उसे फेंका ॥८२॥ उस वृक्षके वेगमें पवनसे बडा शब्द होने लगा तब श्रीकृष्णने सहस्र बाणसे ॥ ८३ ॥ सहस्रो खंड कर दिये, तब उसकी विचित्र शोभा हुई और फिर एक बाण हयग्रीवके हृदयमें ॥ ८४ ॥ स्तनोंके बीचमें प्रहार किया, वह अग्निके समान

शोणिताक्ताः स्म दृश्यन्ते पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ व्यद्रवन्त सुवित्रस्ता भग्नास्त्राश्चित्रयोधिनः ॥ ८० ॥ पुनश्च क्रोधरक्ताक्षो वायुवेगेन दानवः ॥ दशव्यामोच्छ्रितं वृक्षं समारुह्य वनस्पतिम् ॥८१॥ वृक्षमुत्पाट्य वेगेन प्रतिगृह्याभ्यधावत ॥ चिक्षेप सुमहावृक्षं शिक्षया सुघनाकृतिः ॥ ८२ ॥ वृक्षवेगानिलाद्भूतः शुश्रुवे सुमहास्वनः ॥ ततः शरसहस्रेण यतमानो जनार्दनः ॥८३॥ नैकधा तं प्रचिच्छेद चित्रभक्तिनिभाकृतिम् ॥ पुनश्चैकेन बाणेन हयग्रीवस्य चोरसि ॥ ८४ ॥ विव्याध स्तनयोर्मध्ये सायको ज्वलनप्रभ ॥ विवेश सोऽतिवेगेन हृदं भित्वा विनिर्गतः ॥ ८५ ॥ तं जघान महाघोरं हयग्रीवं महाबलम् ॥ अपारतेजा दुर्द्धर्षः स वै यादवनन्दनः ॥८६॥ मध्ये लोहितगङ्गस्य भगवान्देवकीसुतः ॥ औदकायां विरूपाक्षं पाप्मानं पुरुषोत्तमः॥८७॥ अष्टौ शतसहस्राणि दानवानां परंतप ॥ निहत्य पुरुषव्याघ्रः प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ॥८८॥ हत्वा पञ्चनदं नाम नरकस्य महासुरम् ॥ ततः प्राग्ज्योतिषं नाम दीप्यमानमिव श्रिया ॥ ८९ ॥

तीक्ष्ण बाण बडे वेगसे इसके हृदयको भेदकर पार हो गया ॥ ८५ ॥ इस प्रकार महाबली हयग्रीव घोर दानवको मारा, उस सयम दुर्धर्ष यादवनन्दनका अपार तेज हुआ ॥ ८६ ॥ जैसे लाल गंगा अर्थात् सिन्धुके प्रदेशके मध्यमें जलकी परिखायुक्त पुरीमें स्थित हो इस प्रकार उस रुधिरनदीके बीचमें भगवान् देवकीपुत्र स्थित थे, और भगवान् विरूपाक्ष तथा पापी ॥ ८७ ॥ आठ सौ हजार दानवोंको मारकर प्राग्ज्योतिष पुरमें प्राप्त हुए ॥८८॥ पंचनद नाम नरकके महाअसुरको मारकर पीछे अपनी कान्तिसे दीप्तिमान् प्राग्ज्योतिष पुरको ॥८९॥

प्राप्त हुए तहां भी महायुद्ध हुआ तब भगवान्‌ने पांचजन्य नामक शंखको बजाया ॥ ९० ॥ प्रलयकालके मेघके समान उसका महाशब्द सुनाई आने लगा, त्रिलोकीमें भीम गंभीर शब्द सुनाई दिया यह सुनकर नरकके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये ॥ ९१ ॥ लोहेके आठ पहियोंके रथमें जो तीन नलीयुक्त अद्वितीय था सुवर्णकी जिसकी वेदी चित्र विचित्र दीर्घ स्थानवाला ॥ ९२ ॥ सुवर्णकी वज्ररूप बडी ध्वजासे शोभित, सुवर्णके दण्डकी पताकासे मनोहर, वैदूर्यमणि जटित कूबरवाला ॥ ९३ ॥ दूसरेके रथोंके तोडनेवाले रथपर जिसमें सहस्र घोडे जुते हुए लोहेके जालोंसे युक्त

पुरमासादयामास युद्धं तत्राभवन्महत् ॥ ततः प्रध्मापयच्छङ्खं पाञ्चजन्यं महाबलः ॥ ९० ॥ शुश्रुवे सुमहाशब्दः संवर्तनिनदो यथा ॥ श्रूयते त्रिषु लोकेषु भीमगम्भीरनिःस्वनः ॥ तं श्रुत्वा नरकश्चासीत्क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ९१ ॥ लोहचक्राष्टसंयुक्तं त्रिनल्वप्रतिमं रथम् ॥ रत्नकाञ्चनचित्राढ्यं वेदिकाभोगविस्तरम् ॥ ९२ ॥ वज्रध्वजेन महता काञ्चनेन विराजितम् ॥ हेमदण्डपताकाढ्यं वैदूर्यमणिकूबरम् ॥ ९३ ॥ युक्तमश्वसहस्रेण रथं पररथारुजम् ॥ लोहजालैश्च संछन्नं चित्रभक्तिविराजितम् ॥ ९४ ॥ रथमध्यगतो वीरस्ससंध्य इव भास्करः ॥ नानाप्रहरणाकीर्णं रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ ९५ ॥ वज्रं रथोरच्छदमिन्दुवर्णं व्यानद्धमुक्तानलतुल्यतेजाः ॥ किरीटमूर्द्धार्कहुताशनाभः कर्णौ तथा कुण्डलयोर्ज्वलन्तौ ॥ ९६ ॥ धूम्रवर्णा महाकाया रक्ताक्षा विकृताननाः ॥ नानाकवचिनः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ९७ ॥ खड्गचर्मधराः केचित्केचित्तूणधनुर्भृतः ॥ शक्तिहस्तास्तथा केचिच्छूलहतास्तथापरे ॥ ९८ ॥ गजवाजिरथौघैश्च कालयन्तश्च मेदिनीम् ॥ निर्ययुर्नगरात्सर्वे सुसन्नद्धाः प्रहारिणः ॥ ९९ ॥

विचित्र रत्नोंसे शोभायमान ॥ ९४ ॥ संध्या कालके सूर्यके समान वह वीर रथमें स्थित हुआ अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे वह उसका सुवर्णका रथ भर रहा था ॥ ९५ ॥ इस रथका छादन वज्रसे निर्मित चन्द्रमाकी कांति जडे हुए मुक्ता और अग्निके समान तेजस्वी, शिरके ऊपर सूर्यके समान कान्तिमान् मुकुट, कानोंमें प्रज्ज्वलित कुण्डल धारण किये ॥ ९६ ॥ धूम्रवर्ण बडे बडे शरीरवाले क्रूरमूर्ति लालनेत्र सम्पूर्ण दैत्य दानव राक्षस अनेक प्रकारके कवच धारण किये ॥ ९७ ॥ कोई धनुष तरकस लिये कोई शक्ति और शूल हाथमें लिये ॥ ९८ ॥ घोड़े हाथी रथोंके समूहसे पृथ्वीको

चलायमान करते प्रहार करनेकी इच्छासे राक्षस नगरसे निकले ॥ ९९ ॥ दैत्योंके समूहमें कालकी समान रूप धारे नरकासुर चला तब भेरी शंख मृदंगोंका तथा सहस्रों दूसरे बाजोंका शब्द होता था ॥ १०० ॥ वह बाजे मेघोंके समान सुनाई आते थे, जिधर श्रीकृष्ण थे उसी ओरको वे सब दुष्टात्मा गये ॥ १ ॥ और गरुडको घेरकर वे सब कोई मिलकर युद्ध करने लगे और महाबाणवर्षासे श्रीकृष्णको घेर लिया ॥ २ ॥ शक्ति शूल गदा प्रास तोमर बाण इनके सहस्रों प्रहारसे उन्होंने आकाशको आच्छादन कर दिया ॥ ३ ॥ तब कृष्णमेघकी समान कृष्णने शार्ङ्गधनुष ग्रहण करके चढाया तब मेघकी समान शब्दयुक्त उस चापका शब्द होने लगा ॥ ४ ॥ और श्रीकृष्ण दानवोंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे बडे संग्राममें बाणवर्षासे सेना

वृतो दैत्यगणैः सार्द्धं नरकः कालसंनिभः ॥ भेरीशङ्खमृदङ्गानां पणवानां सहस्रशः ॥ १०० ॥ वाद्यमानानि शुश्राव जीमूतनिनदोपमः ॥ यतः कृष्णस्ततो गत्वा सर्वे ते विकृताननाः ॥ १ ॥ परिवार्य गरुत्मन्तं सर्वेऽयुध्यन्त संगताः ॥ महता छादयामासुः शरवर्षेण सैनिकाः ॥ २ ॥ शक्तिशूलगदाप्रासांस्तोमरान्सायकान्बहून् ॥ आकाशं छादयामासुर्विमुञ्चन्तः सहस्रशः ॥ ३ ॥ कृष्णः कृष्णोऽम्बुदाकारः शार्ङ्गं गृह्य धनुस्ततः ॥ विस्फार्य सुमहच्चापं धनुर्जलदनिस्वनम् ॥ ४ ॥ व्यसृजच्छरवर्षाणि दानवानां जनार्दनः ॥ शरवर्षेण तत्सैन्यं व्यद्रवत्तु महाहवात् ॥ ५ ॥ तद्युद्धमभवद्घोरं घोररूपेण रक्षसा ॥ भग्नव्यूहाश्च ते सर्वे कृष्णबाणप्रपीडिताः ॥ ६ ॥ केचिच्छिन्नभुजाश्चैव छिन्नग्रीवाशिराननाः ॥ केचिच्चक्राद्द्विधाच्छिन्नाः केचिद्बाणार्दितोरसः ॥ ७ ॥ केचिद्द्विधाकृताः शक्त्या गजाश्वरथवाहनाः ॥ केचित्कौमोदकीभिन्नाः केचिच्चक्रविदारिताः ॥ ८ ॥ एवं विमाथिता सर्वा नराश्वरथवाहिनी ॥ तत्रासीन्नरकेणास्य युद्धं परमदारुणम् ॥ ९ ॥ यत्समासेन वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ त्रासनः सुर सद्मानां नरकः पुरुषोत्तमम् ॥ ११० ॥

पलायन करने लगी ॥ ५ ॥ वह घोररूप राक्षससे घोर युद्ध हुआ, और कृष्णके बाणसे पीडित हो उनकी व्यूह भग्न हो गई ॥ ६ ॥ किसीकी छिन्न गर्दन किसीकी छिन्न भुजा छिन्न शिर कोई दो खण्ड और किन्हीका हृदय दो खण्ड हो गया ॥ ७ ॥ कोई शक्तिसे दो टुकडे हो गये कोई गज अश्व रथ वाहनसे हीन हो गये कोई कौमोदकी गदासे भिन्न हो गये, और कोई चक्रसे विदीर्ण हो गये ॥ ८ ॥ इस प्रकार नरकासुरका परम घोर युद्ध होने लगा ॥ ९ ॥ सो मैं संक्षेपसे कहता हूं तुम सावधान होकर सुनो, वह सब भूतोंका त्रास देनेहारा नरकासुर श्रीकृष्णको ॥ ११० ॥

मधुके समान युद्ध कराने लगा, और मेघके समान नरकासुरके नेत्र लाल हो गये॥ ११॥और उठे हुए इन्द्रधनुषके समान उसने चाप ग्रहण किया, और सूर्यके समान बाण श्रीकृष्णने ग्रहण किया॥ १२॥और युद्धमें दिव्यास्त्रसे रथको पूर्ण कर दिया, इसप्रकार बली नरकासुरने उत्तमास्त्रका प्रहार किया॥ १३॥ वज्रके समान प्रकाशमान उसके अस्त्रको श्रीकृष्ण आया हुआ देखकर महाभाग मधुसूदनने अपने चक्रसे उसे छेदन कर डाला॥ १४॥और श्रीकृष्णने एक बाणसे इसका रथ नष्ट कर दिया, रथ ध्वजा घोडोंको दश बाणसे नष्ट कर दिया॥ १५॥एक बाणसे मधुसूदनने इसका कवचतोड दिया तब यह कवच-

योधयामास तेजस्वी मधुवन्मधुसूदनम् ॥ क्रोधरक्तान्तनयनो नरको घनसंनिभः ॥ ११ ॥ जग्राह कार्मुकं वीरः शक्रचापमिवो· च्छ्रितम् ॥ तथार्ककिरणप्रख्यं बाणं जग्राह केशवः ॥ १२ ॥ दिव्येनास्त्रेण समरे पूरयामास तं रथम् ॥ उत्तमास्त्रं महापातं मुमोच नरको बली ॥१३॥ वज्रविस्फूर्जिताकारमायान्तं वीक्ष्य केशवः ॥ चिच्छेदास्त्रं महाभागश्चक्रेण मधुसूदनः ॥१४॥ व्यहनत्स रथं चास्य शरैकेण जनार्दनः ॥ सरथं सध्वजं साश्वं जघान दशभि शरैः ॥१५॥ तनुत्रं चैव चिच्छेद शरेण मधुसूदनः ॥ ततो विमुक्तकवचः सर्पस्येव तनुर्यथा ॥१६॥ हताश्वोऽपि रणे वीरो वितनुत्रश्च दानवः ॥ जग्राह विमलज्वालं लोहभारार्पितं दृढम् ॥१७॥ आविध्य सहसा मुक्तं शूलमिन्द्राशनिप्रभम् ॥ तदापतत्स संप्रेक्ष्य शूलं हेमपरिष्कृतम् ॥१८॥ द्विधा छिन्नं क्षुरप्रेण कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ तद्युद्धमभवद्घोरं घोररूपेण रक्षसा ॥ १९ ॥ शस्त्रपातंमहाघातं नरकेण महात्मना ॥ मुहूर्तं योधयामास नरकं मधुसूदनः ॥ १२० ॥ अथोग्रचक्रश्चक्रेण प्रदीप्तेनाकरोद्द्विधा ॥ चक्र द्विधाकृतं तस्य शरीरमपतद्भुवि ॥ २१ ॥

रहित हो सर्पके समान॥१६॥घोडोंके मरनेसे यह वीर पृथ्वीमें फिरने लगा, और ज्वालाके समान कान्तिवाले लोहेके बने दृढकवचको ग्रहण करता हुआ॥१७॥उस इन्द्रके वज्रके समान शूलको एक साथही उसने देखकर प्रहार किया सुवर्णसे जटित उस शूलको देखकर॥१८॥कृष्णने अपने तीक्ष्ण चक्रसे उसके दो खण्ड कर दिये इस प्रकार वह घोररूप राक्षसके साथ महायुद्ध हुआ ॥१९॥ और महात्मा नरकासुरसे शस्त्रपातका युद्ध होने लगा, मधुसूदनने नरकासुरके साथ एक मुहूर्तभरतक युद्ध किया ॥१२०॥ तब उन्होंने तीक्ष्ण चक्रसे उनके दो खण्ड कर डाले, चक्रसे दो भाग हुआ उसका

शरीर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ २१ ॥ जैसे वज्रसे दो भाग हुआ पर्वतका शृंग गिरता है, इस प्रकार देवेश कृष्णको प्राप्त हो वह सूर्यकी समान अस्त हो गया ॥ २२ ॥ चक्रसे छिन्नशिर हो वह दानव पृथ्वीमें गिर पडा जैसे वज्रप्रहारसे भिन्न हो गेरूका पर्वत गिरता है ॥ २३ ॥ भूमिअपने पुत्रको पृथ्वीमें पडा हुआ देख कुण्डल लेकर श्रीकृष्णके निकट आई और बोली ॥ २४ ॥ हे गोविंद ! यह आपहीने दिया और आपहीने नष्ट कर दिया, आपकी क्रीडा बालकके समान है ॥ २५ ॥ हे देव ! यह आपहीके कुण्डल हैं आप प्रजाका पालन कीजिये ॥ १२६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु

विभक्तं कुलिशेनैव गिरेः शृङ्गं द्विधाकृतम् ॥ कृष्णमासाद्य देवेशं जगामास्तमिवांशुमान् ॥२२॥ चक्रोत्कृन्तितगात्रोऽसौ दानवः पतितो रणे ॥ वज्रप्रहारनिर्भिन्नं यथा गैरिकपर्वतम् ॥ २३ ॥ भूमिस्तु पतितं पुत्रं निरीक्ष्यादाय कुण्डले ॥ उपातिष्ठत गोविन्दं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २४ ॥ दत्तस्त्वयैव गोविन्द त्वयैव विनिपातितः ॥ यथेच्छसि तथा क्रीड बालः क्रीडनकैरिव ॥ २५ ॥ इमे ते कुण्डले देव प्रजास्तस्यानुपालय ॥ १२६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि नरकवधे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ निहत्य नरकं भौमं वासवोपमविक्रमम् ॥ वासवावरजो विष्णुर्ददर्श नरकालयम् ॥ १ ॥ अथार्थगृहमासाद्य नरकस्य जनार्दनः ॥ ददर्श धनमक्षय्यं रत्नानि विविधानि च ॥२॥ मणिमुक्ताप्रवालानि वैदूर्यस्य च संचयान्॥ मासारगल्वकूटानि तथा वज्रस्य संचयान् ॥ ३ ॥ जाम्बूनदमयान्यस्य शातकुम्भमयानि च ॥ प्रदीप्तज्वलनाभानि शीतरश्मिनिभानि च ॥ ४ ॥ शयनानि महार्हाणि तथा सिंहासनानि च ॥ हिरण्यदण्डरुचिरं शीतरश्मिसमप्रभम् ॥ ५ ॥ ददर्श तन्महच्छत्रं वर्षमाणमिवाम्बुदम् ॥ जातरूपस्य शुभ्रस्य धाराः शतसहस्रशः ॥ ६ ॥

हरिवंशे विष्णुपर्वणि नरकवधे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार इन्द्रके समान पराक्रमी नरकासुरको मारकर वासव इन्द्रके अनुज विष्णु भगवान्‌ने नरकासुरका स्थान देखा ॥ १ ॥ फिर जनार्दनने नरकासुरके घरमें प्राप्त होकर अक्षय और अनेक प्रकारके धन और रत्न देखे ॥ २ ॥ मणि मुक्ता प्रवाल वैदूर्य मरकत चन्द्रकान्तमणि तथा हीरा ॥ ३ ॥ सुवर्णके घडे प्रदीप्त ज्वालाके समान और चन्द्रमाके समान कान्तिमान ॥ ४ ॥ बडे मोलके शयन और सिंहासन सुन्दर हिरण्यदण्ड चन्द्रमाकी किरणोंके समान शीतल ॥ ५ ॥ पर्वत बादलके समान महाछत्र

जिसमें सुन्दर सुवर्णधारा गिरतीसी दीखती थीं ॥६॥ यह छत्र नरकासुरने वरुणसे लाया था हमने ऐसा सुना है जितने धन हैं रत्न हैं वह सब नरकासुरके घरमें थे ॥७॥ इतना धन कुबेर यम और इन्द्रकेभी नहीं था, इस प्रकार रत्नोंका संचय न हमने कहीं देखा न सुना ॥८॥ भौमासुर निसुन्द और हयग्रीव दानवके मरनेपर वह रत्न और कन्यारत्न लाये गये॥९॥और जो कोशरक्षक दानवके शिष्ट पुरुष थे उन्होंने वह सब वस्तु श्रीकृष्णको दी जिनकी उनको आवश्यकता हुई ॥ १० ॥ दैत्य बोले; हे भगवन् ! यह अनेक प्रकारके मणिरत्न हैं, और भीमरूप हस्ती अंकुशोंसे मूंगे जडे रहते

वरुणादाहृतं पूव नरकेणेति नः श्रुतम् ॥ यावद्रत्नं गृहे दृष्टं नरकस्य धनं बहु ॥७॥ नैव राज्ञः कुबेरस्य न शक्रस्य यमस्य च ॥ रत्नसंनिचयस्तादृग्दृष्टपूर्वो न च श्रुतः ॥ ८ ॥ हते भौमे निसुन्दे च हयग्रीवे च दानवे ॥ उपानिन्युस्ततस्तानि रत्नान्यन्तःपुराणि च ॥ ९ ॥ दानवा हतशिष्टा ये कोशसंचयरक्षिणः ॥ केशवाय महार्हाणि यान्यर्हति जनार्दनः ॥ १० ॥ दैत्या ऊचुः ॥ इमानि मणिरत्नानि विविधानि बहूनि च ॥ भीमरूपाश्च मातङ्गाः प्रवालविकृताङ्कुशाः ॥ ११ ॥ हेमसूत्रा महाकक्षाश्चापतोमरशालिनः ॥ रुचिराभिः पताकाभिः शबला रुचिराङ्कुशाः ॥१२॥ ते च विंशतिसाहस्रा द्विस्तावत्यः करेणवः ॥ अष्टादशसहस्राणि देशजाश्चोत्तमा हयाः ॥१३॥ गोषु चापि भवेत्कामो यावत्तव जनार्दन ॥ तावतीः प्रापयिष्यामो वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ॥ १४ ॥ आविकानि च सूक्ष्माणि शयनान्यासनानि च ॥ कामव्याहारिणश्चैव पक्षिणः प्रियदर्शनाः ॥ १५ ॥ चन्दनागरुकाष्ठानि तथा कालीयकान्यपि ॥ वसु यत्त्रिषु लोकेषु धर्मेणाधिगतं तव ॥ १६ ॥

हैं ॥११॥ सुवर्णके सूत्र महासीढीवाले चाप तोमरसे युक्त रुचिर पताका और नाना वर्णके अंकुशयुक्त ॥ १२ ॥ वे चालीस सहस्र हथिनी और अठारह सहस्र उत्तम देशके घोडे विद्यमान हैं ॥१३॥ हे जनार्दन ! जो आपकी इच्छा गौओंकी हो तो उतनीही गौ हम वृष्णि और अंधकवंशियोंके घर पहुंचादें॥१४॥ छोटे मेंढोंके बच्चे शयन आसन और मनोहर बोलनेवाले यह सुन्दरदर्शन पक्षी॥१५॥चन्दन अमरु काष्ठ तथा कालागरु काष्ठ जो कुछ

त्रिलोकीका दिव्य है वह सब आपहीका है ॥ १६ ॥ आपकी आज्ञासे सब वृष्णि और अंधकोंके घरोंमें भेज सके हैं देवता गन्धर्वोंका जो धन है वह सब नरकासुरके यहां विद्यमान है ॥ १७ ॥ वैशंपायन बोले; इस सब धनको देख और उसकी परीक्षा करके श्रीकृष्णने दानवों द्वारा सब द्वारका पुरीमें पहुंचवा दिया ॥ १८ ॥ और उस हिरण्यवर्ण नाम वरुणके छत्रको भगवान् स्वयं लेकर गरुडपर चढे ॥ १९ ॥ तब महा पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुडजी मूर्तिमान मेघकी समान मणिपर्वतके निकटको चले ॥ २० ॥ तब पवित्र पवन चलने लगी, दिशा निर्मल हो गई सुवर्णकान्त मणि अपने तेजसे सूर्यको हंसने लगी॥ २१ ॥

प्रापयिष्यमि तत्सर्वं वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ॥ देवगन्धर्वरत्नानि पन्नगानां च यद्वसु ॥ तानि सर्वाणि स तीह नरकस्य निवेशने ॥ १७ ॥
वैशम्पायन उवाच ॥ तच्च सर्वं हृषीकेशः परिगृह्य परीक्ष्य च ॥ सर्वमाहारयामास दानवैर्द्वारकां पुरीम् ॥ १८ ॥ ततस्तद्वारुणं छत्रं
स्वयमुत्क्षिप्य माधवः ॥ हिरण्यवर्षं वर्षन्तमारुरोह विहंगमम् ॥ १९ ॥ गरुडं पतगश्रेष्ठं मूर्तिम तामिवाम्बुदम् ॥ ततोऽभ्ययाद्गि-
रिश्रेष्ठमभितो मणिपर्वतम् ॥ २० ॥ तत्र पुण्या ववुर्वाता ह्यभवंश्चामलाः प्रभाः ॥ मणीनां हेमवर्णानामभिभूय दिवाकरम् ॥ २१ ॥
तत्र वैदूर्यरत्नानि ददर्श मधुसूदनः ॥ सतोरणपताकानि द्वाराणि शिखराणि च ॥ २२ ॥ विद्युद्ग्रथितमेघाभः प्रबभौ मणिपर्वतः ॥
हेमाचित्रवितानैश्च प्रासादैरुपशोभितः ॥ २३ ॥ तत्र ता वरहेमाभा ददर्श मधुसूदनः ॥ गन्धर्वसुरमुख्यानां प्रिया दुहितरस्तथा ॥ २४ ॥
ददर्श पृथुलश्रोणीः संरुद्धा गिरिकन्दरे ॥ नरकेण समानीता रक्ष्यमाणाः समंततः ॥ २५ ॥ त्रिविष्टपसमे देशे तिष्ठन्तीरपराजिताः ॥
निर्विशन्त्यो यथा देव्यः सुखिन्यः कामवर्जिताः ॥ २६ ॥

वहां मधुसूदनने वैदूर्यमणि रत्नोंको देखा द्वारेपर तोरण पताका और शृंगोंपर वृक्ष शोभित हैं ॥ २२ ॥ वह मणिपर्वत मेघयुक्त बिजलीकी समान कान्तिमान् हुआ सुवर्णके चित्र विचित्र वितान और महलोंसे शोभित हो रहा ॥ २३ ॥ उस पर्वतके ऊपर सुन्दर वर्णवाली उन कन्याओंको श्रीकृष्णने देखा, वहीं गन्धर्व और देवताओंकी प्यारी कन्या देखी ॥ २४ ॥ वह श्रेष्ठ श्रोणीयुक्त कन्या पर्वतकी कन्दरामें देखी गई जिनको नरकासुर ले आया था, और उनकी चारों ओरसे रक्षा होती थी ॥ २५ ॥ उस स्वर्गकी समानमें तिरस्कारहीन वे सब प्रवेश करती थीं; मानो कामसे रहित देवी सुखकी इच्छासे

इसमें प्रविष्ट हुई हैं ॥ २६ ॥ वे एकवेणी धारण किये सम्पूर्ण स्त्री सब काले वस्त्र पहरे जितेन्द्रिय हुई श्रीकृष्णके चारों ओर स्थित हो गईं ॥ २७ ॥ व्रत और उपवाससे शरीर दुर्बल हो रहे श्रीकृष्णके दर्शनकी इच्छा करती हुई श्रीकृष्णके आगे आकर सब हाथ जोड स्थित हुईं॥२८॥नरक और मुर महा असुरको मरा जानकर हयग्रीव निसुन्दका मरण सुन सबने श्रीकृष्णको घेर लिया ॥२९॥ जो वृद्ध दानव इनकी रक्षा करते थे उन सबने हाथ जोडकर श्रीकृष्णकी प्रार्थना की ॥३०॥ उन सब स्त्रियोंने जिस समय श्रीकृष्णको देखा, उस समय उन सबने श्रीकृष्णको पतित्वमें स्वीकार

परिवव्रुर्महाबाहुमेकवेणीधराः स्त्रियः ॥ सर्वाः काषायवासिन्यः सर्वाश्च नियतेन्द्रियाः ॥ २७ ॥ व्रतोपवासतन्वंग्यः कांक्षन्त्यः कृष्णदर्शनम् ॥ समेत्य यदुसिंहस्य सर्वाश्चक्रुः स्त्रियोऽञ्जलीन् ॥२८॥ नरकं निहतं ज्ञात्वा मुरं चैव महासुरम् ॥ हयग्रीवं निसुन्दं च ताः कृष्णं पर्यवारयन् ॥२९॥ ये चासां रक्षिणो वृद्धा दानवा यदुनन्दनम् ॥ कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणिपेतुर्वयोऽधिकाः॥३०॥ तासां परमनारीणामृषभाक्षं निरीक्ष्य तम् ॥ सर्वासामेव संकल्पः पतित्वेनाभवत्ततः ॥३१॥ तस्य चन्द्रोपमं वक्त्रं निरीक्ष्य मुदितेन्द्रियाः ॥ संप्रहृष्टा महाबाहुमिदं वचनमब्रुवन् ॥३२॥ सत्यं च यत्पुरा वायुरिहास्मान्वाक्यमब्रवीत् ॥ सर्वभूतमतिज्ञश्च देवर्षिरपि नारदः ॥३३॥ विष्णुर्नारायणो देवः शङ्खचक्रगदासिभृत् ॥ सभौमं नरकं हत्वा भर्ता च भविता स वः ॥ ३४ ॥ सुप्रियं बत पश्यामश्चिरश्रुतमरिन्दमम् ॥ दर्शनेन कृतार्थां हि वयमद्य महात्मनः ॥३५॥ ततस्ताः सान्त्वयामास प्रमदा वासवानुजः ॥ सर्वाः कमलपत्राक्षीर्दृष्ट्वा चोवाच माधवाः ॥ ३६ ॥

किया ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णका चन्द्रमाके समान मुख देखकर प्रसन्न हो महाबाहु श्रीकृष्णसे बोलीं ॥३२॥ जो प्रथम वायुने और नारद ऋषिने हमसे वचन कहे थे, वह सब सत्य हुए सब भूतकी गति जाननेवाले नारदजीने कहा था ॥३३॥ शंख चक्र गदा धारण करनेवाले नारायण देव पृथ्वीके पुत्र नरकासुरको मारकर तुम्हारे स्वामी होंगे ॥ ३४ ॥ हे शत्रुनाशक ! बहुत दिनसे सुने हुए शत्रुनाशक परमप्रिय तुमको आज हम देखती हैं आज हम आप महात्माके दर्शनसे कृतार्थ हो गईं ॥३५॥ तब श्रीकृष्णने उन सब स्त्रियोंकी सान्त्वना की और उन सब कमललोचनियोंको देखकर श्रीकृष्ण

बोले ॥ ३६ ॥ तुम धन्य हो इस प्रकार योग्य वचनोंसे उनका सत्कार करकर दासीदासयुक्त विमानोंपर उनको चढाकर भजा ॥ ३७ ॥ पवनके समान वेगवाले सहस्रों राक्षस उनको लेकर चले, उस समय पालकी ले चलनेका बडा भारी शब्द हुआ ॥ ३८ ॥ उस पर्वतराजका जो परमपूजित शृंग है,वह उज्ज्वल सूर्य चन्द्रमाकी समान मणि कांचनकी तोरणसे ॥ ३९ ॥ पक्षिगण हस्ती मृग सर्प वृक्षोंसे आकीर्ण,शाखामृगोंसे व्याप्त, पत्थरकी शिलाओंसे युक्त ॥ ४० ॥ न्यंकु वराह रुरु मृगोंसे शोभित, झरने, ऊंचे शिखर, विचित्र तट और वृक्षोंसे पूर्ण ॥ ४१ ॥ बहुत अद्भुत अचिन्त्य

यथार्हतः पूजयित्वा समाभाष्य च केशवः ॥ यानैः किंकरसंयुक्तैरुवाह मधुसूदनः ॥३७॥ किङ्कराणां सहस्राणि रक्षसां वातरंहसाम् ॥ शिबिकां वहतां तत्र निर्घोषः सुमहानभूत् ॥ ३८ ॥ तस्य पर्वतराजस्य शृङ्गं यत्परमार्चितम् ॥ विमलार्केन्दुसंकाशं मणिकाञ्चनतोरणम् ॥३९॥ सपक्षिगणमातङ्गं समृगव्यालपादपम् ॥ शाखामृगगणाकीर्णं सुप्रस्तरशिलातलम् ॥ ४० ॥ न्यङ्कुभिश्च वराहैश्च रुरुभिश्च निषेवितम् ॥ सप्रपातं महासानुं विचित्रशिखरद्रुमम् ॥ ४१ ॥ अत्यद्भुतमचिन्त्यं च मृगवृन्दविलोडितम् ॥ जीवञ्जीवकसङ्घैश्च बर्हिभिश्च निनादितम् ॥ ४२ ॥ दप्यतिबलो विष्णुर्दोर्भ्यामुत्पाट्य भासुरम् ॥ आरोपयामास बली गरुडे पक्षिणां वरे ॥ ४३ ॥ मणिपर्वतशृङ्गं च सभार्यं च जनार्दनम् ॥ उवाह लीलया पक्षी गरुडः पततां वरः ॥ ४४ ॥ स पक्षबलविक्षेपैर्हिमाद्रिशिखरोपमम् ॥ दिक्षु सर्वासु संह्रादं जनयामास पक्षिराट् ॥४५॥ आरुजन्पर्वताग्राणि पादपांश्च समुत्क्षिपन् ॥ संजहार महाभ्राणि विजहार च कानिचित् ॥ ४६ ॥

मृगसमूहोंसे विलोडित, चकोरोंके जोडोंसे भरा, मोरोंसे शब्दायमान ॥४२॥ उस स्थानकोभी महाबली विष्णुने अपनी भुजाओंसे उखाडकर पक्षिश्रेष्ठ गरुडके ऊपर रख लिया ॥ ४३ ॥ मणिपर्वतका शृंग और भार्यासहित जनार्दनको पक्षिश्रेष्ठ गरुडजी उसे लीलासेही उठाकर चले ॥ ४४ ॥ वह पक्षिराज हिमालय पर्वतके शिखरके समान अपने पंखोंके चालनसे सब दिशा शब्दायमान करते हुए ॥ ४५ ॥ पर्वतोंके अग्रभाग तोडते,

वृक्षोंको उखाडते, बडे बडे बादलोंको चीरते और किसीको हरण करते हुए ॥ ४६ ॥ चन्द्र और सूर्यकेभी विषय (देश) को अतिक्रमण करके जनार्दनके वशमें स्थित हो गरुडजी पवनके वेगके समान गये ॥ ४७ ॥ देवगन्धर्वोंसे सेवित सुमेरुपर्वतमें प्राप्त होकर सब देवस्थान श्रीकृष्णने देखे ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! विश्वेदेवा मरुत साध्य तथा प्रकाशमान अश्विनीकुमारको देखते हुए गये ॥ ४९ ॥ इस प्रकार पुण्यतम लोकको प्राप्त हो श्रीकृष्ण इन्द्रके मन्दिरको प्राप्त हो मंदिरमें प्रविष्ट हुए॥५०॥गरुडसे उतरकर इन्द्रको देखा शतक्रतु देवराज इस समय श्रीकृष्णको

विषयं समतिक्रम्य देवयोश्चन्द्रसूर्ययोः ॥ ययौ वातजवः पक्षी जानार्दनवशे स्थितः ॥ ४७ ॥ स मेरुगिरिमासाद्य देवगन्धर्वसेवितम् ॥ देवसद्मानि सर्वाणि ददर्श मधुसूदनः ॥ ४८ ॥ विश्वेषां मरुतां चैव साध्यानां च नराधिप ॥ भ्राजमानान्यतिक्रामन्नश्विनोश्च ॥ परंतप ॥ ४९ ॥ प्राप्य पुण्यतमाँल्लोकान्देवलोकमरिंदम ॥ शक्रसद्म समासाद्य प्रविवेश ॥ जनार्दनः ॥ ५० ॥ अवतीर्य स ताक्ष्यात्तु ददर्श विबुधाधिपम् ॥ प्रीतश्चैवाभ्यनन्दत्तं देवराजः शतक्रतुः ॥ ५१ ॥ प्रादाय कुण्डले दिव्ये ववन्दे तं तदाच्युतः ॥ सभार्यो विबुधश्रेष्ठं नरश्रेष्ठो जनार्दनः ॥ ५२ ॥ अर्चितो देवराजेन रत्नैश्च प्रतिपूजितः ॥ सत्यभामा च पौलोम्या यथावदभिनन्दिता ॥ ५३ ॥ वासवो वासुदेवश्च जग्मतुः सहितौ तदा ॥ आदित्या भवनं दिव्यं देवमातुर्महर्द्धिमत् ॥ ५४ ॥ तत्रादितिमुपास्यन्तीमप्सरोभिः समन्ततः ॥ ददर्शाते महात्मानौ महाभागां तपोऽन्विताम् ॥ ५५ ॥ ततस्ते कुण्डले दिव्ये प्रादाददितिनन्दनः ॥ ववन्दे तां शचीभर्ता मातरं स्वां पुरंदरः ॥ ५६ ॥

देख बहुत प्रसन्न हुए ॥ ५१ ॥ तब श्रीकृष्णने उसको दोनों कुण्डल दे नमस्कार किया और नरश्रेष्ठ जनार्दन भार्यासहित इन्द्रसे पूजित हुए ॥ ५२ ॥ और आपनेभी देवराजका सत्कार किया,इधर सत्यभामा और इन्द्राणी परस्पर मिलीं ॥५३॥ तब वासुदेव और इन्द्र यह दोनों सूर्यके समान प्रकाशमान अदितिके मंदिरमें गये ॥५४॥ उस समय अदितिकी अप्सरा उपासना करतीं थीं, तब इन दोनों महाभाग्यवान् तपोयुक्तने उस अदितिका दर्शन किया॥५५॥तब अदितिनन्दनने वे दिव्य कुण्डल उनको दे दिये और शचिकेस्वामी इन्द्रने अपनी माताके चरणोंको प्रणाम किया ॥५६॥

जनार्दनको आगे कर उनके इसके कर्मकी श्लाघा की और बडे प्रेमसे अदितिने दोनोंको हृदयसे लगाया॥५७॥ और अनुकूल आशीर्वाद देकर प्रसन्न किया पौलोमी और सत्यभामाभी प्रेमसे मिलीं॥५८॥और पूजनीय अदितिके चरणकमल उन दोनोंने ग्रहण किये,तब देवमाता प्रेमपूर्वक बोली॥५९॥ और प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णसे यह वचन कहे; हे पुत्र ! तुम सब प्राणियोंसे अवध्य और अधृष्य होगे ॥ ६० ॥ जैसे यह देवराज अजित और लोकपूजित हैं,इसी प्रकार यह प्रियदर्शन सुखी सत्यभामा जगत्‌में विख्यात हो ॥ ६१ ॥ सब लोकोंमें विख्यात दिव्यगन्धवाली मनोहर सत्यभामा

जनार्दनं पुरस्कृत्य कर्म चैव शशंस तत् ॥ अदितिस्तौ सुतौ प्रीत्या परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥ ५७ ॥ आशीर्भिरनुकूलाभिरुभा-
वप्यवदत्तदा॥ पौलोमी सत्यभामा च प्रीत्या परमया युते ॥ ५८ ॥ अगृह्णीतां वरार्हाया देव्यास्ते चरणौ शुभौ ॥ ते चाप्यभ्य-
वदत्प्रेम्णा देवमाता यशस्विनी ॥ ५९ ॥ यथावदब्रवीच्चैवं जनार्दनमिदं वचः ॥ अधृष्यः सर्वभूतानामवध्यश्च भविष्यसि ॥६०॥
यथैव देवराजोऽयमजितो लोकपूजितः॥ भवत्वियं वरारोहा नित्यं च प्रियदर्शना ॥ ६१ ॥ सर्वलोकेषु विख्याता दिव्यागन्धामनो-
रमा ॥ सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां सुभगा स्थिरयौवना ॥ ६२ ॥ जरां न यास्यति वधूर्यावत्त्वं कृष्ण मानुषः ॥ एवमभ्यार्चितः
कृष्णो देवमात्रा महाबलः ॥ ६३ ॥ देवराजाभ्यनुज्ञातो रत्नैश्च प्रतिपूजितः ॥ वैनतेयं समारुह्य सहितः सत्यभामया ॥ ६४ ॥
देवाक्रीडं परिक्रामन्पूज्यमानं सुरर्षिभिः ॥ स ददर्श महाबाहुराक्रीडे वासवस्य ह ॥ ६५ ॥ दिव्यमभ्यर्चितं देवैः पारिजातं
महाद्रुमम् ॥ नित्यपुष्पधरं दिव्यं पुण्यगन्धमनुत्तमम् ॥ ६६ ॥

सौभाग्यवती और स्त्रियोंमें रत्न सुन्दर दृढयौवनवाली होगी ॥६२॥ हे कृष्ण ! जबतक तुम मनुष्यलोकमें जरारहित रहोगे, तबतक तुम्हारी बधूको भी वृद्धावस्था नहीं व्यापेगी, इस प्रकार देवमाताने महाबली कृष्णका सत्कार किया ॥ ६३ ॥ और देवराज इन्द्रने रत्नोंसे पूजित किया फिर सत्यभामाके सहित गरुडपर चढकर ॥ ६४ ॥ देवताओंके विहारस्थानमें क्रीडा करते ऋषियोंसे पूजित होते हुए महाबाहु श्रीकृष्णने इन्द्रका विहारस्थान नन्दनवन देखा ॥६५॥ उसमें वह दिव्य देवताओंसे पूजित पारिजातक वृक्ष नित्य पुष्पवान् दिव्य और पवित्र गन्धवाला है ॥६६॥

जिसको प्राप्त हो मनुष्योंको अपनी पूर्वजातिका स्मरण होता है, देवता उसकी रक्षा करते हैं इस प्रकार देवताओंसे रक्षित उस वृक्षको महाबली श्रीकृष्णने ॥६७॥ उखाडकर गरुडकी पीठपर रख दिया और वह सत्यभामा दिव्य अप्सराओंके गणोंको देखे हुए॥६८॥पीछेकीओर सत्यभामा स्त्रीसे देखे हुए श्रीकृष्ण वायुवेगसे द्वारवतीमें प्राप्त हुए॥६९॥श्रीकृष्णका यह कार्य सुनकर इन्द्रने उनको शूर मानकर कहा वह जो चाहे सो कर सक्ते हैं वीर हैं ॥७०॥ इस प्रकारसे वह देवता और ऋषियोंसे पूजित हो शत्रुनाशी कृष्ण देवलोकसे द्वारकाको गये ॥७१॥ सो महाबाहु बडे मार्गको

यमासाद्य जनः सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥ संरक्ष्यमाणं देवैस्तं प्रसह्यामितविक्रमः ॥ ६७ ॥ उत्पाट्यारोपयामास विष्णुस्तं गरुडोपरि ॥ सोऽपश्यत्सत्यभामा च दिव्यमप्सरसां गणम् ॥ ६८॥ पृष्ठतः सत्यभामा च दिव्या योषा च वीक्षिताम् ॥ प्रायात्ते ता द्वारवतीं वायुजुष्टेन वै पथा ॥ ६९ ॥ श्रुत्वा तं देवराजंस्तु कर्म कृष्णस्य तत्तदा ॥ अनुमेने महाबाहुः कृतकर्मेति चाब्रवीत् ॥ ७० ॥ स पूज्यमानस्त्रिदशैः सप्तर्षिगणसंस्तुतः ॥ प्रतस्थे द्वारकां कृष्णो देवलोकादरिन्दम ॥ ७१ ॥ सोऽभिपत्य महाबाहुर्दीर्घमध्वानमल्पवत् ॥ पूजितो देवराजेन ददृशे यादवीं पुरीम् ॥ ७२ ॥ तथा कर्म महत्कृत्वा भगवान्वासवानुजः ॥ उपायाद्द्वारकां कृष्णः श्रीमान्गरुडवाहनः ॥ ७३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणं द्वारकाप्रवेशो नामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ जनमेजय उवाच ॥ प्रादुर्भावे मुनिश्रेष्ठ माथुरे चरितं शुभम् ॥ शृण्वन्नैवाधिगच्छामि तृप्तिं कृष्णस्य धीमतः ॥ १ ॥ द्वारकायां निवसतः कृतदारस्य षड्गुणम् ॥ चरितं ब्रूहि कृष्णस्य सर्वं हि विदितं तव ॥ २ ॥

लघुमार्गके समान होकर देवराजसे पूजित हो अपनी पुरी देखते हुए॥७२॥इन्द्रके अनुज भगवान् इस प्रकार आश्चर्य कर्म करके गरुडवाहन श्रीकृष्ण प्रसन्न हो द्वारकामें आये ॥ ७३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणद्वारवतीप्रवेशो नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥ जन्मेजय बोले; हे मुनिश्रेष्ठ ! मथुरानिवासी श्रीकृष्णके श्रेष्ठ चरित्र सुनकर मेरी तृप्ति नहीं होती है॥१॥द्वारकामें निवास कर विवाह करने उपरान्त ऐश्वर्ययुक्त श्रीकृष्णके चरित्र कहिये सम्पूर्ण ऐश्वर्य ज्ञान यश लक्ष्मी वैराग्य और स्वधर्म इन छः का नाम ऐश्वर्य है। सर्वज्ञता, तृप्ति,अनादि बोध,स्वतंत्रता,

नित्य अलुप्तशक्ति, अनन्त शक्ति, यह छः गुण कहाते हैं॥ २॥ वैशम्पायन बोले; हे जन्मेजय ! जिस समय कृष्णने दारपरिग्रह की उस समय उन्होंने अपने योग्य जो चरित्र किये सो सुनो ॥ ३ ॥ महातेजस्वी प्रतापी वासुदेव स्त्रीको प्राप्त होकर रुक्मिणीसहित रैवत पर्वतपर गये ॥ ४ ॥ व्रतपारणके समय रुक्मिणीके सहित पूजन कर और ब्राह्मणोंको तृप्त करके श्रीकृष्ण द्वारकामें आये ॥ ५ ॥ वहां नारदकी आज्ञासे श्रीकृष्णने कुमार भ्राता पुत्रोंको भेजा ॥६॥ पीछे सोलह सहस्र स्त्री परमसौभाग्यसे युक्त उन श्रीकृष्णके पीछे चलीं॥७॥ वहां श्रीकृष्णने ब्राह्मणोंको यथेच्छ पदार्थ दिये, नित्य धर्म

वैशम्पायन उवाच ॥ जनमेजय कृष्णस्य कृतदारस्य भारत ॥ निबोध चरितं चित्रं तस्यैव सदृशं प्रभो ॥३॥ प्राप्तदारो महातेजा वासुदेवः प्रतापवान् ॥ रुक्मिण्या सहितो देव्या ययौ रैवतकं नृप ॥ ४ ॥ उपवासावसानं हि रुक्मिण्याः प्रतिपूजयन् ॥ तर्पयिष्यन्स्वयं विप्रान् जगाम मधुसूदनः ॥ ५ ॥ कुमाराः प्रययुस्तत्र पुत्रभ्रातर एव च ॥ प्रेषिता वासुदेवेन नारदस्याभ्यनुज्ञया ॥ ६ ॥ षोडश स्त्रीसहस्राणि जग्मुरेव च धीमतः ॥ ऋद्ध्या परमया राजन्विष्णोरेवानुरूपया ॥ ७ ॥ ततस्तत्र द्विजातीनां कामान्प्रादादधोक्षजः ॥ अर्थिनां धर्मनित्यानां बन्दिनामिष्टवादिनाम् ॥८॥ कल्याणनामगोत्राणां महतां पुण्यकर्मणाम् ॥ योनैः श्रौतैश्च मार्षैश्च शुद्धानां कुरुनन्दन ॥ ९ ॥ तर्पयित्वा द्विजान्कामैरिष्टैरिष्टः सतां गतिः ॥ ज्ञातीन्संतर्पयामास यथार्ह भक्तवत्सलः ॥ १० ॥ उपवासावसानेऽथ भगवान्स विशेषतः ॥ बहु मेने प्रियां भार्यां रुक्मिणीं भीष्मकात्मजाम् ॥ ११ ॥ वसतस्तस्य कृष्णस्य सदारस्यामितौजसः ॥ सहासीनस्य रुक्मिण्या नारदोऽभ्याययौ मुनिः ॥ १२ ॥

करनेवाले अर्थी तथा इष्ट वचन कहनेवाले बंदियोंके॥८॥तथा बडे पुण्यकर्म करनेवालोंके कल्याण नाम और गोत्र तथा योनिसंबन्ध और अध्ययन संबन्ध और ऋषिजसंबन्धसे युक्त हुए श्रीकृष्ण ॥९॥ यथेच्छ पदार्थोंसे ब्राह्मणोंको तृप्त करके और इष्ट पदार्थ प्रदान कर सत्पुरुषोंकी परम गति भक्तवत्सल भगवान्ने अपने ज्ञातिके पुरुषोंको सब प्रकारसे तृप्त किया ॥१०॥ और विशेष करके भगवान्ने उपवासके अन्तमें भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको बहुत प्रिय मानते हुए॥११॥इस प्रकार स्त्रीसहित महापराक्रमीश्री कृष्णके निवास करनेपर एक समय रुक्मिणीसहित बैठे हुए भगवान्के

निकट नारद मुनि आये ॥१२॥ अप्रमेय आत्मा इन्द्रके अनुज श्रीकृष्णने नारदजीको आया देख शास्त्रविधानसे उनकी पूजा की ॥१३॥ उन सत्पुरुषोंके पूजनीयमुनिने श्रीकृष्णसे पूजित होकर श्रीकृष्णके निमित्त कल्पवृक्षका फूल दिया ॥१४॥ वह श्रेष्ठ फूल लेकर श्रीकृष्णने रुक्मिणीको दिया, कारण कि वह श्रीकृष्णके निकटही स्थित थी॥१५॥हे राजन्!कमलनयनी निन्दारहित रुक्मिणीने उस पुष्पको ग्रहणकर श्रीकृष्णकी इच्छा जानकर उस पुष्पको शिरपर धारण किया ॥१६॥ त्रिलोकीके रूपसर्वस्व नारायणकी मन हरनेहारी रुक्मिणी उस दैवीफूलसे दूनी शोभाको प्राप्त हो गई ॥१७॥

आगतं चाप्रमेयात्मा मुनिमिन्द्रानुजस्तदा ॥ शास्त्रदृष्टेन विधिना अर्चयामास केशवः ॥१३॥ सोऽर्चितो वासुदेवेन मुनिरर्च्यतमः सताम् ॥ पारिजाततरोः पुष्पं ददौ कृष्णाय भारत ॥१४॥ तद्वृक्षराजकुसुमं रुक्मिण्याः प्रददौ हरिः ॥ पार्श्वस्था सा हि कृष्णस्य भोज्या नरवराऽभवत् ॥ १५ ॥ प्रतिगृह्य तु तत्पुष्पं कामारणिरनिन्दिता ॥ शिरस्यमलपत्राक्षी ददौ कृष्णेङ्गितानुगा ॥ १६ ॥ त्रैलोक्यरूपसर्वस्वं नारायणमनोहरा ॥ शुशुभे देवपुष्पेण द्विगुणं भैष्मकी तदा ॥ १७ ॥ तां नारदस्तथोवाच मुनिर्ब्रह्मसुतस्तदा॥ तवैवौपयिकं पुष्पमेकं देवि पतिव्रते ॥ १८ ॥ अलंकृतं पुष्पमेतत्संसर्गात्तव सर्वथा ॥ अत्यर्हा च मता मे त्वमेतत्पुष्पाद्धृतव्रते ॥१९॥ कल्याणगुणसंपन्ने सततं भर्तृवत्सले ॥ अम्लानमेतत्सततं पुष्पं भवति कामिनि ॥ २० ॥ संवत्सरपरं कालं कालज्ञे गुणसंमते ॥ ईप्सितानपि गन्धांश्च ददाति वदतां वरे ॥२१॥ शीतोष्णे चेप्सिते देवि पुष्पमेतत्प्रयच्छति ॥ स्रवत्यपि रसान्देवि मनसा काङ्क्षितान्वरान् ॥२२॥ सेव्यमानं च सौभाग्यं ददाति वरवर्णिनि ॥ स्रवत्यपि तथा गन्धानीप्सितान्प्रीतिवर्द्धनान् ॥२३॥

तब ब्रह्मपुत्र नारदजीने उस रुक्मिणीसे कहा; हे देवी पतिव्रते ! यह पुष्प तुम्हारेही योग्य है॥१८॥यह पुष्प सर्वथा तुम्हारे संसर्गसे शोभित हुआ है. हे व्रत धारण करनेहारी ! इस पुष्पसे तुम अत्यन्त योग्य हो गई हो ॥ १९ ॥ हे श्रेष्ठ गुणोंसे संपन्न हे नित्यप्रति पतिव्रत धारण करनेहारी भामिनी ! यह पुष्प कभी लीन नहीं होता, सदा खिला रहता है ॥२०॥ हे गुणसंनते, हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! वर्षदिनतक महासुगन्धि देता है ॥ २१ ॥ शीत उष्ण कालमेंभी वांछित सुगन्ध देता है, और मनवांछित रसोंको देता है॥२२॥निरन्तर सेवन करनेसे यह सौभाग्यकोदेता है, और प्रीति बढानेहारी

मनोहर गन्धियोंको प्रदान करता है ॥ २३ ॥ हे देवी ! तुम जिन २ फूलोंकी इच्छा करोगी, यह वृक्षराजका पुष्प उन उन पुष्पोंको देगा ॥ २४ ॥ हे धर्मिष्ठे ! यही ऐश्वर्य और पुत्रभी देता है, यही शुद्धबुद्धि करता है, इसके धारण करनेसे अशुभ बुद्धि नहीं होती ॥ २५ ॥ इसके धारणसे जैसे वर्णकी इच्छा करोगी वह सब धारण कर सकोगी, स्थूल सूक्ष्म इच्छानुसार रूप हो जायगा ॥ २६ ॥ अनिष्ट गंध दूर करनेवाला यही फूल रात्रीमें प्रकाशभी करता है. हे कमललोचनी ! ॥ २७ ॥ सन्तानके फूलकी माला फूलोंका मण्डप इन सबको तथा वस्त्रादिको विचार करतेही प्रदान करता है ॥ २८ ॥ भूख

यानि यानि च पुष्पाणि त्वं देव्यभिलषिष्यसि ॥ कुसुमं वृक्षराजस्य तानि तानि प्रदास्यति ॥ २४ ॥ एतदेव भगाधानं धर्मिष्ठे पुत्रदं तथा ॥ मतिं च नाशुभे धत्ते धार्यमाणं सदा शुभे ॥ २५ ॥ यद्यदिच्छसि वर्णं च तत्सर्वं धारयिष्यति ॥ स्वल्पं वा यदि वा स्थूलं छन्दतस्ते भविष्यति ॥२६॥ अनिष्टगन्धहरणं तत्समं गन्धवर्द्धनम् ॥ प्रदीपकर्म रात्रौ च करोति कमलेक्षणे ॥ २७॥ संतानकस्रजो माल्यं पुष्पवस्त्रादिवाच्युतम् ॥ पुष्पमण्डपमुख्यानि चिन्तितेन प्रदास्यति ॥ २८॥ बुभुक्षा वा पिपासा वा ग्लानिर्वाप्यथ वा जरा ॥ देववद्धारयन्त्यास्ते स्वच्छन्देन भविष्यति ॥ २९ ॥ अनुगीतानि गीतानि दास्यत्यपि च चिन्तिते ॥ सुवादित्रान्समधुरांस्तथैव तव संमतान् ॥ ३० ॥ पूर्णे संवत्सरे देवि पुष्पमेतत्तवान्तिकात् ॥ निर्वर्त्स्यते तरुवरं समयेन प्रयास्यति ॥ ३१ ॥ कृतिरेषा हि भद्रं ते पारिजातस्य सुप्रभे ॥ निसर्गतः सर्गकृता सत्कारार्थं सुरद्विषाम् ॥ ३२ ॥ उमा देववरस्येष्टा हिमालयसुता सती ॥ धारयन्तीश्वरी नित्यं पुष्पाण्येतानि सुप्रभे ॥ ३३ ॥ अदितिश्च सपौलोमी महेन्द्रसुतारणी ॥ सावित्री देवमाता च श्रीश्च सर्वगुणोचिता ॥ ३४ ॥

प्यास ग्लानि जरा इसके धारण करनेसे नहीं होती, किन्तु इसे धारण कर देवताकी समान स्वच्छन्द हो जाता है ॥ २९ ॥ विचार करतेही इसे गीत और अनुगीत विद्या बाजोंको प्राप्त हो जाता है, जो मधुर बाजे तुम्हें इष्ट हों वह सब प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥ हे देवी ! एक वर्ष पूर्ण होनेपर यह पुष्प तुम्हारे हाथसे फिर कल्पवृक्षके निकट चला जायगा ॥ ३१ ॥ हे सुप्रभे ! यह इस वृक्षका स्वभावही है, स्वभावसेही ब्रह्माने ईश्वरके सत्कारके निमित्त इसे निर्माण किया है ३२ ॥ हिमालयकी सुता सती पार्वती शिवकी प्रिया ईश्वरी इस पुष्पको नित्य धारण करती है ॥ ३३ ॥ और अदिति इन्द्राणी महेन्द्रकी सुता

अरणी सावित्री देवताओंकी माता लक्ष्मी सब गुणोंमें उचित ॥३४॥ इस प्रकार औरभी देवपत्नी देवता वसुदेवता यह सम्पूर्ण एकही वर्षतक एक पुष्प धारणकर सकते हैं ॥ ३५ ॥ तुम सोलह सहस्र स्त्रियोंमें श्रीकृष्णकी अधिक प्रिया हो. हे भोजनन्दिनी ! यह मैं जानता हूं ॥ ३६ ॥ हे सर्वेश्वरकी प्रिये ! यह तुम्हारी सपत्नीभी सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त हैं, परन्तु तैंने अपने गुणोंसे सबका तिरस्कार कर दिया है॥३७॥अब तेरा प्रकाश सौभाग्य और यश अनिवार्य होगा, जो श्रीकृष्णने तुझको मन्दारका पुष्प दिया है॥३८॥आज सत्राजितकी कन्या सत्यभामा जो अपनेको सदा सौभाग्ययुक्त मानती

देवपत्न्यस्तथैवान्या देवाश्च वसुदेवताः ॥ संवत्सरपरः कालः सर्वेषां न तु संशय ॥ ३५ ॥ षोडशस्त्रीसहस्राणां मध्ये त्वं खलु वर्तसे ॥ अद्येष्टां वासुदेवस्य वेद्मि त्वां भोजनन्दिनि॥३६॥सपत्न्यस्ते गुणोपेते सर्वाः सर्वेश्वरप्रिये॥अवमानावसेकेन त्वयासिक्ताद्य भामिनि ॥ ३७ ॥ प्रकाशमद्य सौभाग्यमनिवार्यं यशश्च ते ॥ मन्दारकुसुमं दत्तं यत्ते मधुनिघातिना ॥ ३८ ॥ अद्य सात्राजिती देवी ज्ञास्यते वरवर्णिनी ॥ सौभाग्याद्यं सदा वेत्ति यात्मानं सुभगं सती ॥ ३९ ॥ साम्बमाता च गान्धारी भार्याश्चान्या महात्मनः ॥ सौभाग्यार्थोद्यताकांक्षमद्य मोक्ष्यन्ति निःस्पृहाः ॥ ४० ॥ सौभाग्यकरथो जैत्रस्तव देव्यद्य निःसृतः ॥ मनोरथरथानां यः सहस्रैरपि दुर्जयः ॥ ४१ ॥ अद्याहमवगच्छामि सर्वथा सर्वशोभने ॥ आत्मा द्वितीयः कृष्णस्य भोजे त्वमिति भामिनि ॥ ४२ ॥ त्रैलोक्यरत्नसर्वस्वमददाद्यत्तवाच्युतः ॥ जीवितातिशयस्तेन त्वया प्राप्तो हरिप्रिये ॥ ४३ ॥ नारदेनैवमुक्तं तु तथ्यं वाक्यं नराधिप ॥ तत्रस्थाः शुश्रुवुः प्रेष्याः प्रेषिताः सत्यभामया ॥ ४४ ॥

है, और अपनेको बहुत मानती है॥३९॥ साम्बकी माता जाम्बवती गान्धारी तथा और जो श्रीकृष्णकी भार्या हैं वह जो सौभाग्यकी महाआकांक्षा रखती हैं, आज उनकी वह बात जाती रहेगी ॥४०॥ हे देवी ! तेरे सौभाग्यका रथ जय करनेहारा है, और प्रकाशित हो रहा है, जो सहस्रों मनोरथोंसेभी दुर्जय है ॥ ४१ ॥ हे शोभने ! इस समय मैं तुमको श्रीकृष्णकी आत्मास्वरूप मानता हूं सर्वथा शोभावाली ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्णने तुमको त्रिलोकीके सम्पूर्ण रत्न दिये हैं हरिको तुमने पाया इसे तुम्हारा जीना सफल है ॥४३॥ हे राजन् ! नारदके इस प्रकार सत्यवाक्य कहनेपर सत्यभा-

माकी भेजी हुई दासियोंने यह सब वचन सुने॥४४॥तथा दूसरी रानियोंकी दासियोंने यह कहा सुना, और नारदके कहे हुए गुण देख सुनकर॥४५॥ इस सम्पूर्ण बातको सुनकर स्त्रीस्वभावसे उन दासियोंने सब अन्तःपुरमें यह बात प्रकाश कर दी॥४६॥यह रुक्मिणीकी बात कानोंकानोंमें होने लगी, और उन सबने सम्मति की कि रुक्मिणी अवश्य गुणवती है ॥ ४७ ॥ वह योग्य ज्येष्ठ पुत्रमाता पूजनीय है, इस प्रकार वे प्रसन्न होकर कहने लगीं ॥ ४८ ॥ परन्तु रुक्मिणीके सौभाग्य उदयको श्रीकृष्णकी नित्यप्रिया सत्यभामा॥४९॥ रूपयौवनसे सम्पन्न सौभाग्यसे गर्वित, अभिमानयुक्त

देवीनां च तथान्यासां पत्नीनां च विशांपते ॥ दृष्ट्वा हृताः सविशेषं च नारदेनाभ्युदाहृतम् ॥४५॥ तच्च श्रुत्वा सुनिखिलं प्रेष्याभिः स्त्रीस्वभावतः ॥ प्रकाशीकृतमेवासीद्विष्णोरन्तःपुरे तदा ॥ ४६ ॥ कर्णाकर्णि ततो देव्यः कौलीनमिव संघशः ॥ मन्त्रयांचक्रिरे हृष्टा रुक्मिण्यातिगुणोदयम् ॥ ४७ अर्हेति पुत्रमातेति ज्येष्ठेति च समागताः ॥ प्रायेण प्रवदन्ति स्म हृष्टा दामोदरस्त्रियः ॥ ४८ ॥ ममृषे न सपत्न्यास्तु तत्सौभाग्यगुणोदयम् ॥ सत्यभामा प्रिया नित्यं विष्णोरतुलतेजसः ॥ ४९ ॥ रूपयौवनसंपन्ना स्वसौभाग्येन गर्विता ॥ अभिमानवती देवी श्रुत्वैवेर्ष्यावशंगता ॥ ५० ॥ समुत्सृजन्ती वसनं सकुङ्कुमं शुचिस्मिता शुक्लतमैकमंशुकम् ॥ जग्राह रोषाकुलितेन चेतसा वह्निस्तदा श्रीरिव वर्द्धितेन्धना ॥५१॥ दन्दह्यमाना ज्वलनेन वर्द्धता ईर्ष्यासमुत्थेन गतप्रभेव ॥ क्रोधान्विता क्रोधगृहं विविक्तं विवेश तारेव वनं सतोयम् ॥ ५२ ॥ बद्ध्वा ललाटे हिमचन्द्रशुक्लं दुकूलपट्टं प्रियरोषचिह्नम् ॥ पर्यन्तदेशे सरसेन देवी विलिप्य सा लोहितचन्दनेन ॥ ५३ ॥

देवी सुनकर ईर्षाके वशीभूत हुई ॥ ५० ॥ उसने श्रेष्ठ वस्त्र कुमकुमयुक्त त्यागन कर दिये, और क्रोधित चित्तसे श्वेत वस्त्र धारण कर लिये, इस प्रकार अग्निशिखाके समान प्रज्वलित हो उठी॥५१॥ दह्यमान अग्निके समान हो ईर्षा अधिक होनेसे प्रभाहीन हो वह क्रोधागार (कोपभवन) में प्रविष्ट हुई जैसे तारे जलके मेघमें प्रविष्ट होते हैं ॥५२॥मस्तकमें श्वेत वस्त्र लपेट जो हिमसे शुक्ल हुए चन्द्रमाके समान प्रियसे क्रोध करनेका चिन्ह स्वरूप था, और सम्पूर्ण मस्तकमें देवीने लाल चन्दन लगा लिया ॥ ५३ ॥

वारंवार स्मरण कर क्रोधसे शिरको कम्पित करती हुई स्थित, बडी उत्तम शय्या बिछोना त्यागकर सब गहने छोड एकवेणी बांध ली ॥ ५४ ॥
दासीजनोंके वचनसे अकारण अर्थमें प्राप्तकी हुई सत्यभामाने अपने मुखका चूर्ण नखोंसे छुटा डाला, और मुख नीचा करवारंवार श्वास लेने
लगी ॥५५॥ इति श्रीमहाभरते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे सत्यभामाक्रोधो नाम पंचषष्टितमोऽध्यायः॥६५॥वैशंपायन बोले;सब कुछ
जाननेवाले श्रीकृष्ण रुक्मिणीके निकट नारदजीको बैठा छोड आप यहांसे चले॥१॥और शीघ्रसत्यभामाके भवनमेंगये जोरैवतके समीप विश्वकर्माने

संस्मृत्या संस्मृत्य शिरः सरोषं प्रकम्पमाना समुपोपविष्टा॥दीर्घोपधाने शयनेऽपनीय विभूषणान्येव निबद्धवेणी॥५४॥अकारणार्थेन
विकृष्यमाणा प्रेष्याजनस्याभिजनान्वितापि ॥ विचूर्णयामास कुशेशयं सा निःश्वस्य निःश्वस्य नखैर्नतभ्रूः॥५५॥इति श्रीमहाभारते
खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे पञ्चषष्टिमोऽध्यायः ॥६५॥ वैशम्पायन उवाच ॥ उपविष्टं मुनिं ज्ञात्वा रुक्मिण्या
सह केशवः ॥ निश्चक्रामाप्रमेयात्मा व्यपदेशेन सर्ववित् ॥ १ ॥ जगाम त्वरितश्चैव सत्यभामागृहं महत् ॥ रम्ये रैवतकोद्देशे
निर्मितं विश्वकर्मणा ॥२॥ अभिमानवतीमिष्टां प्राणैरपि गरीयसीम् ॥ जानन्सात्राजितीं विष्णुर्विवेश शनकैरिव ॥ ३॥ रुषिता-
मिव तां देवीं स्नेहात्संकल्पयन्निव ॥ भीतभीतः स शनकैर्विवेश मधुसूदनः ॥ ४ ॥ सेवकं द्वारदेशे तु तिष्ठेत्युक्त्वा विवेश ह ॥
नारदस्योपचारार्थं प्रद्युम्नं विनियुज्य सः॥५॥स ददर्श प्रियां दूरात्क्रोधागारगतां तदा ॥ प्रेष्यामिव स्थितां कोपान्निःश्वसन्तीं मुहु-
र्मुहुः ॥ ६ ॥ करजाग्रावलीढं तु पंकज मुखपङ्कजे ॥ संश्लेषयित्वा निःश्वस्य विहसन्तीं पुनः पुनः ॥ ७ ॥

निर्माण किया था॥२॥ अभिमानसे युक्त प्राणोंसेभी अधिक प्रियाको जानकर विष्णु शनैः शनैः प्रविष्ट हुए ॥ ३ ॥ रोषित हुई उसदेवीको स्नेहसे
जानते हुए डरेके समान सहजमें मधुसूदन चले ॥ ४ ॥ सेवकको द्वारदेशमें तुम यहीं खडे रहो, ऐसा कहकर आप भीतर गये, और नारदके सत्कार
करनेको प्रद्युम्नको आज्ञा दी ॥५॥ उन्होंने दूरसेही कोपभवनमें प्राप्त हुई प्रियाको देखा जो क्रोधसे दासीके समान स्थित हुई वारंवार श्वास लेती
थी ॥६॥ बायें हाथमें लिये कमलको मुखकमलपर धारण करती शोक करती हुई और श्वास लेकर क्रीडाकमलकाभी तिरस्कार करती हुई ॥ ७ ॥

कुछेक आकुलतासे अग्रभागवाले चरणसे पृथ्वीको लिखती हुई,और मुख नीचा किये वारंवार व्याकुल हुई ॥८॥ वायें हाथरूपी कमलपर मुखकमल धारण किये सब अंगोंसे सुन्दर कमल नेत्रवाली ध्यान करती हुई ॥ ९ ॥ तथा दासीके हाथसे चन्दन ग्रहण कर वह उसे प्रसन्नतापूर्वक लेकर पीछे निन्दासहित निर्दयतासे फेंकती थी ॥१०॥ तथा शयनसे उठकर वारंवार गिर पडती थी,इस प्रकार प्रियाकी अनेक चेष्टा श्रीकृष्णने देखी ॥ ११ ॥ जब वह अपना मुख लपेट बिछौने पर पड रही तब इसी समय जनार्दन उसके निकट जाकर॥१२॥ हमें कोई मत बताना ऐसा दासियोंसे सैनसे कह

किंचिदाकुलिताग्रेण चरणेन वसुंधराम् ॥ कृत्वा पृष्ठेऽथ वदनं विहरन्तीं पुनः पुनः ॥ ८ ॥ कर पद्मे पुनः सव्ये मुखपद्मं निवेश्य च ॥ वनितां चारुसर्वाङ्गीं ध्यायन्तीं कमलेक्षणाम् ॥९॥ सरसं चन्दनं गृह्य प्रेष्याहस्तादनिन्दिताम् ॥ प्रह्लादयित्वा हृदयं क्षिपन्तीं निर्दयं पुनः ॥ १० ॥ पुनरुत्थाय शयनात्पतन्तीं च पुनः पुनः ॥ तास्ताश्चेष्टाः प्रियायाश्चाः तथान्या ददृशे हरिः ॥ ११ ॥ अवगुण्ठ्य यदा वक्त्रमुपधाने न्यवेशयत् ॥ इदमन्तरमित्येवं तदा गत्वा जनार्दनः ॥१२॥ प्रेष्याजनं स संज्ञाय अनाख्येयोऽस्मि संज्ञया ॥ सशङ्कितप्रचारश्च वारितोऽन्वगमत्स ताम् ॥१३॥ प्रहाय व्यजनं चैव स्थित्वा स पारिपार्श्वतः॥ शनैरिवासृजद्वातं जहास जनकैरिव ॥१४॥ स पारिजातपुष्पस्य संसर्गादनुवासितः ॥ बभार भगवान्गन्धं दिव्यं मानुषदुर्लभम् ॥१५॥ अत्यद्भुतं सुगन्धं च जिघ्रित्वा विस्मयान्विता ॥ अपावृणोन्मुखं सत्या किमेतदिति चाब्रवीत् ॥१६॥ सोत्थिता पृष्ठतो देवमपश्यन्ती शुचिस्मिता ॥ पर्यपृच्छदथो प्रेष्या गन्धस्य प्रभवे तदा ॥ १७ ॥

शंकासे सबका आना बंदकर आप उसके समीप गये ॥ १३ ॥ और पंखा ग्रहण कर उसके पीछे खडे हो शनैः शनैः हँसते हुए सहजसे पवन करने लगे ॥१४॥ वह भगवान् पारिजातके फूलकी सुगन्धीसे अनुवासित हो मनुष्योंको दुर्लभ दिव्य गंध धारण किये थे ॥ १५ ॥ अद्भुत सुगन्धिको सूंघ महाविस्मित हो सत्यभामा मुख उघाडकर बोली यह क्या है॥१६॥उठकर पीछेखडे हुए श्रीकृष्णको उस मनोहर हास्यवालीने न देखकर दासीसे

पूछा यह गंध कहांसे आती है ॥१७॥ वह पूछनेपर कुछ न बोली और जांघोंके बल पृथ्वीमें बैठ हाथ जोड नीचेको मुख किये रह गई॥१८॥वह अपूर्व जो कभी देखी नहीं ऐसी गन्धको सोचने लगी, कि क्या यह पृथ्वीसे निकलती है, एक ओर मुख किये उसने कहा कि, यह गन्ध है कहां॥१९॥ यह कहांसे आती है, इस प्रकार विचार वह चारों ओर देखने लगी तब अकस्मात् लोकप्रिय केशवको देवीने देखा॥२०॥ठीक है ऐसा कहकर उसने नेत्रोंमें जलभर लिया, और प्रियके कोपसे पूर्ण हो वह कुछ कहनेको समर्थ न हुई ॥२१॥ होठ फडकने लगे, नीचेको मुख कर लिया, एक मुहूर्ततक

ताः पृष्टास्त्वप्रभाषन्त्यो जानुभ्यां धरणीं गताः ॥ अधोमुख्यस्ततस्तस्थुः कृताञ्जलिपुटास्तदा ॥ १८ ॥ तदपूर्वमदृष्टेव गन्धं मुञ्चति मेदिनी ॥ कथमेकतरस्तस्या गन्धोऽयमिति तत्खलु ॥१९॥ किं त्विदं स्यादिति च सा विवेक्षन्ती समन्ततः ॥ ददृशे केशवं देवी सहसा लोकभावनम् ॥ २० ॥ युज्यतीति ततोवाच सहसास्राविलेक्षणा ॥ अवतिक्तेव रोषेण बभूव प्रणयान्विता ॥ २१ ॥ सा प्रस्फुरितचार्वोष्ठी निःश्वस्याधोमुखी तदा ॥ मुहूर्तमसितापाङ्गी तस्थावन्यमुखी शुभा ॥ २२ ॥ निबध्य भ्रुकुटिं वामां सम्यग्विक्षिप्य लोचने ॥ निवेश्य वदनं हस्ते शोभसीत्यब्रवीद्धरिम् ॥२३॥ तस्याः सुस्राव नेत्राभ्यां वारि प्रणयकोपजम् ॥ कुशेशयपलाशाभ्यामवश्यायजलं यथा ॥२४॥ समुत्पत्य जलं तत्र पतितं वदनाम्बुजात् ॥ प्रतिजग्राह पद्माक्षः कराभ्यामति-सत्वरः ॥ २५ ॥ अथोरसि पतत्तोयं श्रीवत्साङ्कोऽम्बुजेक्षणः ॥ प्रियानयनजं देवः परिमृज्येदमब्रवीत् ॥ २६ ॥ स्रवत्यसितप-त्राक्षि किमर्थं तव भामिनि ॥ तोयं सुन्दरि नेत्राभ्यां पुष्कराभ्यामिवोदकम् ॥ २७ ॥

वह कृष्णकी ओर न देखकर स्थित रही॥२२॥फिर नेत्रोंको कुटिल कर भ्रुकुटी चढाय मुखको हाथपर रख 'अब शोभा पाता है' यह श्रीकृष्णसे कहा ॥२३ ॥ स्नेहके क्रोधसे सत्यभामाके नेत्रोंसे जल टपकने लगा, जैसे कमलके पत्तोंसे ओसका जल गिरता है ॥ २४ ॥ जब नेत्रोंसे निकल मुखकमलसे जल गिरा, उसे श्रीकृष्णने अपने हाथोंसेही ग्रहण कर लिया ॥२५॥ और श्रीवत्सअंगवाले कमललोचन श्रीकृष्णने उसे अपने हृदयपर धारण किया, और उस प्रियाके नेत्रोंके जलको हृदयमें लगाकर बोले ॥२६॥ हे सुन्दरी भामिनी ! किस कारण अपने नेत्रोंसे जल प्रवाहित करती

हो, जिस प्रकार कमलोंसे जल प्रवाहित होता है ॥ २७ ॥ हे सुन्दरी! तुम्हारे मुख प्रभातमें पूर्ण चन्द्रमाकी, मध्याह्नमें कमलके समान प्रकाश करता है,तो आज उस पहिले शरीरकी शोभाको क्या हुआ ॥ २८ ॥ किस कारण कुमकुम धो डाली, रंगे कपडे त्याग दिये, और महारजत द्रव्यके रंगे वस्त्र त्यागन कर क्यों शुक्ल वस्त्र धारण किये हैं ॥२९॥ महारजत और केशरके रंगे कपडे बहुत प्रिय थे. हे प्रिये ! देवताओंकी पूजाको छोड- कर और समय स्त्रियोंको शुक्ल वस्त्र धारण करने उचित नहीं ॥३०॥ हे सुगात्री ! कहो तुम्हारे शरीरमें भूषण किस कारण नहीं हैं. हे वरवर्णिनी ! यह पत्रलेखाका स्थान तुम्हारे आंसुओंसे क्योंकर व्याप्त है ॥ ३१ ॥ हे प्रियदर्शने ! तुमने क्यों यह श्वेत वस्त्र धारण किये हैं, और माथेपर चन्दन

प्रभाते पूर्णचन्द्रस्य मध्याह्ने पङ्कजस्य च ॥ बिभर्ति तव किं वक्त्रं वपुस्तव मनोहरे ॥२८॥ किमर्थं कौङ्कुमं वासो महारजतमेव च ॥ नानुगृह्णासि सुश्रोणि शुक्लं वासो नु गृह्यते ॥२९॥ वासस्येते तवाभीष्टे महारजतकौङ्कुमे ॥ देवाभिगमनादूर्ध्वं शुक्लं नेष्टं हि तत्स्त्रियाः ॥ ३० ॥ किंचानाभरणं गात्रं सुगात्रि तव कथ्यताम् ॥ चित्रकस्थानमाक्रान्तं कस्मादवरवर्णिनि ॥ ३१ ॥ श्वेतेन तव पादेन वाससा प्रियदर्शने ॥ ललाटं सेव्यते कस्माच्चन्दनेन सुगन्धिना ॥३२॥ सरसेनायतापाङ्गि कान्तेन हृदयप्रिये ॥ प्रभोपमर्द केनापि कारणेनाननस्य च ॥ करोषि मम वात्यर्थं मनो ग्लापयसि प्रिये ॥ ३३ ॥ प्रसृतश्चन्दनरसः कपोलप्रणयी तव ॥ दत्रलेखासपत्नत्वं प्राप्तो नातिविराजते ॥ ३४ ॥ रत्नैश्चाभरणैर्मुक्ता तव ग्रीवा न शोभते ॥ ग्रहनक्षत्ररहिता द्यौरिवाव्यक्तशारदी ॥३५॥ पूर्णचन्द्रसपत्नेन स्मेरेणाबहुभाषिणा ॥ किमु नो भाषसे माद्य मुखेनोत्पलगन्धिना ॥ ३६ ॥ अर्द्धाक्ष्णापि हि तावन्मां किमर्थं न निरीक्षसे ॥ मुञ्चस्येव सनिश्वासं तोयमञ्जनदुर्दिनम् ॥ ३७ ॥

किस कारणसे धारण किया॥३२॥ हे हृदयकी प्यारी,हे दीर्घलोचनी ! सरस और मनोहर जो तुम्हारा रूप है किस कारणसे यह तुम्हारा चंद्रमुख मलीन है. हे प्रिये ! इस रूपसे मुझे अत्यन्त ग्लानिकी प्राप्ति होती है॥३३॥चन्दनरससे युक्त होनेयोग्य यह तुम्हारा कपोल पत्रलेखाकी पत्ररचनायुक्त होनेसेभी शोभित नहीं लगता॥३४॥रत्न और आभरणसे हीन तुम्हारी ग्रीवा शोभा नहीं देती,जिस प्रकार ग्रह नक्षत्र विना शरदऋतुमें अन्तारिक्ष अच्छा नहीं लगता॥३५॥पूर्ण चन्द्रमाके समान हास्ययुक्त कमलकी सुगन्धीवाले मुखसे तुम किस कारण आज मुझसे नहीं बोलती हो ॥३६॥ और आधे

खुले नेत्रोंसेभी क्षणमात्रको मुझे क्यों नहीं देखती हो, यह निश्वास और अंजनसहित नेत्रोंके आंसुओंकी अधिकताको त्यागो ॥ ३७ ॥ हे इन्दीवरके समान श्यामशरीरवाली मनस्विनी ! रोओ मत, और अंजन बिगडे हुए जलको त्यागनकर मुखकी शोभा मत दूर करो ॥ ३८ ॥ हे देवी ! जगत्में तो मैं तुम्हारा दास विख्यात हूं हासमुखी पूर्वकालके समान मुझसे क्यों नहीं बोलती हो ॥ ३९ ॥ हे देवी ! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड किया है जिस कारण तुम अपनी आत्माको अधिक कष्ट देती हो॥४०॥ मन कर्म वचनसे मैंने तुम्हारा अनिष्ट नहीं किया है; हे मनोहर अंगवाली ! सर्वथा यह मैं तुमसे सत्य कहता हूं॥४१॥हे शोभने ! अनेकमानवती सम्पूर्ण स्त्रियोंमें स्नेह और बहुमानता तुम्हारे सिवाय दूसरीमें नहीं

अलिमिन्दीवरश्यामे रुदितेन मनस्विनि ॥ जलमञ्जनकल्माषं मा मोक्षीराननद्विषम् ॥ ३८ ॥ त्वदीयोऽहं यदा देवि ख्यातो जगति किंकरः ॥ न ज्ञापयसि किं मां त्वं पुरेव वरवर्णिनि ॥ ३९ ॥ किमकार्षमहं देवि विप्रियं तव भामिनि ॥ येनातिमात्रमात्मानमायासयसि सुंदरि ॥ ४० ॥ मनसा कर्मणा वाचा न त्वामतिचराम्यहम् ॥ सर्वथा सर्वचार्वङ्गि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४१ ॥ बहुमानोपमान्यासु स्त्रीषु सर्वासु शोभने ॥ स्नेहश्च बहुमानश्च त्वामृतेऽन्यासु नास्ति मे ॥ ४२ ॥ नैव त्वां मदनो जह्यान्मृतेऽपि मयि मामकः ॥ इति मे निश्चितं विद्धि चेतः सुरसुतोपमे ॥४३॥ क्षमादयश्च मेदिन्यां शब्दाद्याश्चाम्बरे गुणाः ॥ ध्रुवं पङ्कजगर्भाभे त्वयि स्नेहस्तथा मम ॥४४॥ रुचिरग्नौ यथा दिव्या प्रभा चैव दिवाकरे ॥ कान्तिश्च शाश्वती चन्द्रे स्नेहस्त्वयि तथा मम ॥४५॥ एवं वादिनमात्मेष्टं सत्यभामा जनार्दनम् ॥ शनैरुवाच नेत्राभ्यां प्रमृज्य सुभगा जलम् ॥ ४६ ॥ मदीयस्त्वमिति ह्यासीन्मम नित्यं मनः प्रभो ॥ अद्य साधारणं स्नेहं त्वयि तावद्गतास्म्यहम् ॥ ४७ ॥

है ॥ ४२ ॥ हे देवकन्याके समान ! तुमको काम नहीं त्यागेगा; हे देवी ! यह मेरे चित्तका निश्चय है ॥४३॥ क्षमा आदि गुण पृथ्वीमें शब्दादि गुण आकाशमें हैं हे कमलगर्भाभे ! इसी प्रकार मेरे अचल स्नेह तुममें विद्यमान है ॥ ४४ ॥ जैसे अग्निमें रुचि सूर्यमें दिव्य प्रभा रहती है और चन्द्रमामें निरन्तर कान्ति है ॥ ४५ ॥ इस प्रकार प्रिय वचन कहते हुए श्रीकृष्णसे सत्यभामा नेत्रोंका जल पोंछ सहजमें कहने लगी ॥ ४६ ॥ हे प्रभो ! तुम मेरे हो यह मेरे मनमें सदाही था, परन्तु आज आपको मैंने जान लिया कि मेरे ऊपर साधारण स्नेह है ॥ ४७ ॥

मैंने पूर्वकालमें आपके हृदयका भाव नहीं जाना, अब जान गई कि आपका प्रेम लोकके दिखानेका है ॥ ४८ ॥ जीते हुए मैंने संसारमें जाना था कि दूसरे मेरे तुम हो और तुम्हारी दूसरी मैं हूं, यह बात मैंने विचारी थी, परन्तु यह सत्य नहीं हुआ; हे कृष्ण ! बहुत कहनेसे क्या है तुम्हारे हृदयका भाव जान गई ॥४९॥ केवल वाणीमात्रसेही मुझसे मीठे वचन कहते हो, मेरे विषय तुम्हारा प्रेम बनावटी है और जगह स्वाभाविक है ॥ ५० ॥ हे पुरुषोत्तम ! तुम सीधे स्वभाववाले भक्तोंको सर्वथा तिरस्कार करते हो, मुझे सीधी जानकर तुम ठगके समान व्यवहार

नाज्ञासिषमहं पूर्वमनित्यं कालपर्ययम् ॥ अद्य लोकगतिं कृत्स्नामवगच्छामि न ध्रुवम् ॥४८॥ अमृताया द्वितीयोऽपि जन्मोहि मम सर्वथा ॥ किमत्र बहुनोक्तेन हृदयं वेद्मि तेऽच्युत॥४९॥वाङ्मात्रमेव पश्यामि माधुर्यं संप्रयुज्यसे ॥ मयि स्नेहश्च कृतक-स्तवान्यत्र न कृत्रिमः ॥५०॥ ऋजुस्वभावां भक्तां च सर्वथा पुरुषोत्तम ॥ अवजानासि जानन्मां कैतवीं वृत्तिमास्थितः ॥५१॥ एतावत्खलु पर्याप्तं दृष्टं द्रष्टव्यमव्ययम् ॥ श्रुतं चाप्यथ यच्छ्राव्यं दृष्टः स्नेहफलोदयः ॥५२॥ यदि त्वहमनुग्राह्या मामनुज्ञातु-मर्हसि ॥ तपस्येहं परं कृत्वा निश्चयं पुरुषोत्तम ॥५३॥ भर्तुश्च्छन्देन नारीणां तपो वा व्रतकानि वा ॥ निष्फलं खलु यद्भर्तुरच्छ न्देन क्रियेत हि ॥५४॥ इतीदमुक्त्वा पुनरेव शोभना मुमोच तोयं नयनोद्भवं सती ॥ ग्रहाय पीतं हरिवाससः शुभा पटान्तमा-धाय मुखे शुचिस्मिता ॥५५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

करते हो ॥५१॥ जो देखना था वह देख लिया स्नेहका फलभी देख लिया ॥ ५२ ॥ जो मेरे ऊपर अनुग्रह है तो अब आज्ञा दीजिये, कि मैं जाकर कठिन तप करूंगी; हे पुरुषोत्तम ! ॥ ५३ ॥ कारण कि स्वामीकी आज्ञासेही स्त्रियोंके तपव्रत सफल होते हैं, विना आज्ञाके करनेसे निष्फल हो जाते हैं ॥ ५४ ॥ ऐसे वचन कहकर वह फिर नेत्रोंसे जल बहाने लगी, और अंचलसे मुख आच्छादनकर श्रीकृष्णके डुपट्टेको ग्रहण कर वह मनोहर हँसनेवाली रुदन करने लगी ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

वैशंपायन बोले; हे राजन् ! प्रणयमें क्रुद्ध हुई अभिमानवती अपनी प्रियासे श्रीकृष्ण फिर बोले॥१॥श्रीभगवान् बोले; हे कमललोचने ! तुम्हारा शोक मेरे शरीरको भस्म किये देता है, वह ऐसा क्या कारण है जिससे तुम इतनी क्रुद्धहो॥२॥मैं तुझे अपने प्राणोंकी सौगन्द दिवाता हूं, मेरे सुननेके योग्य हो तो इस कारणको कहो. हे सर्वांगसुन्दरी ! भर्ताका कल्याण चाहो तो कहो॥३॥तब सत्यव्रतमें स्थित अपने स्वामीसे सत्यभामा गद्गदवाणीसे नीचेको मुख किये बोली॥४॥हे मान देनेहारे !पहले तुमनेही तो मेरा सौभाग्य स्थापन किया है; हे केशीनाशन कमललोचन ! यह वार्ता जगत्में विख्यात

वैशम्पायन उवाच ॥ नारायणः सत्यभामां पुनरेवैष भारत ॥ प्रोवाच प्रणयात्क्रुद्धामभिमानवतीं सतीम् ॥१॥ भगवानुवाच ॥ दहन्तीव ममाङ्गानि शोकः कमललोचने ॥ किमु तत्कारणं येन त्वमेवमतिविक्लवा ॥ २ ॥ शापितासि मम प्राणैराचक्ष्वानत्ययो यदि ॥ श्रोतव्यं यदि भक्तेन भर्त्रा सर्वाङ्गशोभने ॥ ३ ॥ ततः प्रोवाच भर्तारं सत्या सत्यव्रते स्थितम् ॥ बाष्पगद्गदया वाचा तथैवाधोमुखी स्थिता ॥ ४ ॥ त्वयैव स्थापितं पूर्वं सौभाग्यं मम मानद ॥ जगत्यमलपत्राक्ष यत्ख्यातं केशिनाशन ॥ ५ ॥ शिरो वहामि चेष्टत्वात्तवाहं देवं गर्विता ॥ सर्वसीमन्तिनीमध्ये स्पृहणीयास्मि सर्वथा ॥ ६ ॥ साहमद्यावहास्यामि सपत्नीनां जनस्य च ॥ इति प्रेष्याभिराख्यातं श्रुत्वा तथ्यं ततस्ततः ॥ ७ ॥ यत्पारिजातकुसुमं दत्तवान्नारदस्तव ॥ तत्किलेष्टजने दत्तं त्वयाहं परिवर्जिता ॥ ८ ॥ रत्नातिशयदानेन तस्यामभ्यधिकः किल ॥ स्नेहश्च बहुमानश्च प्रकाशं गमितस्त्वया ॥ ९ ॥ ताम-स्तौषीत्समक्षं ते प्रियां स किल नारदः ॥ तमश्रौषीश्च हृष्टस्त्वं प्रियायाः संस्तवं किल ॥ १० ॥

है ॥५॥ इस कारण मैं गर्वित हुई प्रौढिको धारण करती थी मैं सर्वथा सब स्त्रियोंके बीचमें माननीय थी ॥ ६ ॥ सो आज मैं सपत्नीजनकी हँसीके योग्य हुई यह बात मैंने दासियोंसे सत्य सुनी है ॥ ७ ॥ जो कमलका फूल नारदजीने तुमको दिया है सो तुमने मुझे न देकर अपनी प्यारीको दिया ॥८॥ रत्नादि देनेसे आपने उसमें अधिक स्नेह प्रगट किया है इससे उनमें तुम्हारा स्नेह और बहुत मान प्रगट हो गया है ॥९॥ और नारदने

तुम्हारे सन्मुख उनकी बहुत बड़ाई की है, और तुमभी अपनी प्रियाकी स्तुति सुन बहुत प्रसन्न हुए हो ॥१०॥ यदि नारदसे वे स्तुति करी जाती है तो हम दुर्भागिनियोंका नाम लेना क्या है ॥११॥ प्रेमका रस देकर यदि पश्चात्ताप करते हो तो हे प्रभो ! आप मुझे तप करनेकी आज्ञा दीजिये प्रसन्न हूजिये ॥ १२ ॥ हे कमललोचन ! तुम औरमें प्रेम रखते हो यह तो स्वप्नमेंभी नहीं देखा चाहती थी, सो प्रत्यक्ष देखा सुना ॥ १३ ॥ महातेजस्वी मुनिकी इच्छा रुक्मिणीकी बडाई करनेमें हो परन्तु तुमने उनकी बडाई क्यों सुनी तुम जो वहां थे यही मुझे क्रोध है ॥ १४ ॥ सत्पुरुषोंने कहा है प्राणी लोकमें मानके निमित्तही जीते हैं सो अब मैं मानरहित जीनेकी इच्छा नहीं करती हूं ॥१५॥ जिनसे मेरी रक्षा थी अब उन्हींसे मुझको भय है,

स्तोतव्यो यदि तावत्स नारदेन तवाग्रतः ॥ दुर्भगोऽयं जनस्तत्र किमर्थमनुशब्दितः ॥ ११ ॥ प्रणयस्य रसं दत्त्वा पश्चात्तापः प्रभो यदि ॥ अनुज्ञां मे प्रयच्छस्व तपः कर्तुं प्रसीद मे ॥ १२ ॥ स्वप्नेनापि न दृष्टाहं श्रद्दध्यां पुष्करेक्षण ॥ यदन्यदेव निर्वृत्तमश्रौषं पश्यतस्तव ॥ १३ ॥ कामं कामोऽस्तु तस्यैव मुनेरतुलतेजसः ॥ अत्र मन्युस्तु मे देवं सांनिध्यं तव तत्र यत् ॥१४॥ मानार्थं जीव्यते लोके सद्भिरित्युक्तवानसि ॥ तदेवं सति नेच्छामि जीवितुं मानवर्जिता ॥ १५ ॥ ममाभवद्यतो रक्षा भयमद्य ततो मम ॥ सर्वतो रक्षते यो मां स मां नाद्याभिरक्षति ॥ १६ ॥ हा गतिं कां गमिष्यामि त्यक्ता देव त्वया विभो ॥ कुमुद्वतीगतां नूनं गतिं यास्याम्यसंगता ॥ १७ ॥ किमकार्षमहं मोहादीश्वराणां प्रियाप्रियम् ॥ प्रिया भूत्वाप्रिया भूता यद्यहं तव मानद ॥ १८ ॥ वसन्तकुसुमैश्चित्रं सदा रैवतकं गिरिम् ॥ प्रियाभूत्वाऽप्रिया भूता कथं द्रक्षाम्यहं पुनः ॥ १९ ॥

जो मेरी सब प्रकारसे रक्षा करता था अब वह नहीं करता ॥ १६ ॥ हे विभो ! अब आपसे त्यागी हुई मैं किस गतिको प्राप्त हूंगी, अथवा चन्द्रमाकी किरणके स्पर्शसे खिलनेवाली विना उसके मूंदनेवाली कुमुदिनीकी गतिको प्राप्त हो जाऊंगी ॥१७॥ क्या कुछ मैंने देवताओंका अज्ञानसे प्रिय और अप्रिय किया था; हे मान देनेहारे ! जो मैं तुम्हारी प्यारी होकर अब कुप्यारी हो गई ॥ १८ ॥ हे विभो ! वसन्तके फूलोंसे चित्र विचित्र हुए रैवतगिरिको तुम्हारी प्यारी होकर मैंने देखा था अब कुप्यारी होकर कैसे देखूंगी ॥ १९ ॥

और कोकिलादिके शब्दसे मिली हुई पुष्पोंकी सुगंधी ले चलनेवाली पवनको मैं दुर्भगा होकर किस प्रकार सेवन करूंगी ॥ २० ॥ हे देव ! आपकी गोदीमें स्थित होके मैं जलक्रीडा करी थी सो अब दुर्भागिनी हो मैं समुद्रको कैसे देखूंगी ॥ २१ ॥ सत्राजितकी पुत्रीकी समान कोई मेरा प्रिय नहीं इस प्रकार जिसके निमित्त तुम कहा करते थे वह वाणी तुम्हें याद है क्या ? अथवा अब किसे स्मरण होगा ॥ २२ ॥ जिस सासने मुझे बडे मानसे देखा था वह अब मुझे तुमसे तिरस्कृत हुई देखेंगी क्योंकि मैं दुर्भगा हूं ॥ २३ ॥ हे मान देनेहारे ! तुम्हारे गूढ और स्निग्ध

परपुष्टस्वनोन्मिश्रं पुष्पगन्धवहं शुचिम् ॥ कथं नामानिलं द्वेष्या सेवेयं दुर्भगा सती ॥ २० ॥ जलक्रीडां तवाङ्कस्था देव कृत्वा महोदधौ ॥ कथं दौर्भाग्यमापन्ना पश्येयमपि सागरम् ॥ २१ ॥ सात्राजिति प्रिया नान्या त्वत्तो मेऽस्तीति विद्धि माम् ॥ यदवोचः क्व तद्यातमथवा कः स्मरिष्यति ॥ २२ ॥ यद्द्राक्षीद्धि मां श्वश्रूर्बहुमानेन नन्दिनी ॥ अवज्ञातां त्वया राज्ञीं नूनं दौर्भाग्यकार्शिताम् ॥ २३ ॥ किं नु गूढेन मे प्रेम्णा सुस्निग्धेनापि मानद ॥ यत्समानां जनैर्देवो मां न पश्यति नित्यदा ॥ २४ ॥ नाहं त्वां कितवं धूर्तमज्ञासिषमरिंदम ॥ अद्य ज्ञातोऽसि तत्पक्षचञ्चलो जनवञ्चकः ॥ २५ ॥ स्वरवर्णेङ्गिताकारैर्निगूढो देव यत्नतः ॥ चौर ज्ञातोऽसि तत्पक्षवाङ्मात्रमधुरः शठः ॥ २६ ॥

प्रेमसेभी क्या है जिस प्रेमसे जनोंके सन्मुख मुझे नित्य नहीं देखते ॥ २४ ॥ हे शत्रुसूदन ! मैंने तुम्हें छली और धूर्त नहीं जाना था आज मैंने जाना कि तुम दूसरीको प्यार करते और मुझे ठगते हो ॥ २५ ॥ तुम स्वर वर्ण और आकारसे बहुत गूढ हो सो मैंने जान लिया तुम चोरकी

१ दूसरा अर्थ—हे भगवन् ! आप संसारशत्रुके मारनेवाले हो इससे पहले आपका सर्वात्म्य नहीं जाना था अब जाना है जन्मादिहीन तुम मेरी सपत्नमायाके पक्षमें चंचल हो अर्थात् मायायुक्त होकर तुम्हारा चंचलपन जाना जाता है न कि चिदंशसे ॥ २५ ॥ मन वाणीसे परे मुझे कैसे जाना इसपर कहती है तुम स्वर वर्ण आकार इंगित चिह्नसे निष्प्रगट हो यत्नसेही तुमको (शठ) मध्यस्थ मैंने जाना है. वागादिके उद्बोधक होनेसे प्रत्यगात्मा होनेसे तुमको मैंने जाना है कि साक्षिवत् असंग हो इसीसे चोरकी समान प्रच्छन्न और मायापक्षमें ब्राह्मलौकिक ऐश्वर्यसे तुम्हारी काया जरामरणरहित है संकल्पमात्रसेही तुमको भोग प्राप्त होते हैं वाणीमात्रसे मधुर अर्थात् वेदके कर्ता हो कारण कि आप शठ उदासीन हो क्योंकि भोक्ता नहीं हो ॥ २६ ॥

समान प्रच्छन्न केवल वाणीमात्रकेही मीठा बोलनेवाले शठ हो ॥ २६ ॥ इस प्रकार ईर्षाको प्राप्त हुई अभिमानवती सत्यभामाके प्रति श्रीकृष्णजी सान्त्वपूर्वक वंचन कहने लगे ॥ २७ ॥ हे प्राणेश्वरी ! हे कमललोचनी ! ऐसा मत कहो, बहुत कहनेसे क्या है तुम मुझे अपना प्रिय जानो ॥ २८ ॥ हे देवी ! अक्लिष्टकर्मा नारदजीने मेरे प्रिय करनेके निमित्त वह पारिजातका फूल रुक्मिणीको दिया था ॥ २९ ॥ चतुरता और मेरे अनुरोधसे नारदजीने फूल दिया इसमें सन्देह नहीं; हे शुचिस्मिते ! प्रसन्न हो और हमारा एक अपराध दूर करो ॥ ३० ॥ हे अतिकोपने ! जो तुमको पारिजातके

एवमीर्ष्यावशं प्राप्तां देवीं सात्राजितीं हरिः ॥ अभिमानवतीं देवः सान्त्वपूर्वमथाब्रवीत् ॥ २७ ॥ मैवं पद्मपलाशाक्षि प्राणेश्वरि वद प्रिये ॥ किमत्र बहुनोक्तेन त्वदीयमवगच्छ माम् ॥ २८ ॥ तत्पारिजातकुसुमं तस्या देवि ममाग्रतः ॥ नारदो मत्प्रियं कुर्वन्मुनिरक्लिष्टकर्मकृत् ॥ २९ ॥ दाक्षिण्यादनुरोधाच्च दत्तवान्नात्र संशयः ॥ प्रसीदैकापराधं मे मर्षयस्व शुचिस्मिते ॥ ३० ॥ पारिजातकपुष्पाणि यदीच्छस्यतिकोपने ॥ तदा दातास्मि सुश्रोणि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३१ ॥ स्वर्गास्पदादानयित्वा पारिजातं द्रुमेश्वरम् ॥ गृहे ते स्थापयिष्यामि यावत्कालं त्वमिच्छसि ॥ ३२ ॥ एवमुक्ता तु हरिणा प्रोवाच हरिवल्लभा ॥ यद्येवं स द्रुमः शक्यस्त्विहानायितुमच्युत ॥ ३३ ॥ मन्युरेष प्रमृष्टो हि भवेद्बहुगुणं मम ॥ सीमन्तिनीनां सर्वासामाधिका स्यामधोक्षज ॥ ३४ ॥ तथास्तु प्रथमः कल्प इति तां मधुसूदनः ॥ प्रोवाचाप्रतिमो देवो जगतः प्रभवाप्ययः ॥ ३५ ॥

फूलोंकी इच्छा है तो तुमको अनेक फूल ला दूंगा यह मैं सत्य कहता हूं ॥ ३१ ॥ और स्वर्गसे वृक्षराज कल्पवृक्षकोही लाकर जबतक तुम्हारी इच्छा होगी तबतक तुम्हारे घरमें स्थापन कर दूंगा ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्णके यह वचन सुन वह हरिवल्लभा बोली यदि ऐसा है तो वृक्ष मेरे यहां स्थापन करो ॥ ३३ ॥ तो मेरा क्रोध दूर हो जायगा और मैं बहुत प्रसन्न हूंगी. हे अधोक्षज ! तब मैं सब स्त्रियोंमें अधिक हो जाऊंगी ॥ ३४ ॥ जगत्के उत्पन्न पालन करनेहारे उपमारहित भगवान्ने उसके यह वचन सुनकर कहा ऐसाही होगा, कारण कि उनके सान्त्वन करनेका यही उपाय था ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्णके यह वचन सुन वह प्रसन्न हुई, वह सत्पुरुषोंकी पूजनीय श्रीकृष्णकी प्रिया प्रसन्न हुई ॥ ३६ ॥ तब सर्वेश सर्वभावन जगन्नाथने स्नान किया और सत्पुरुषोंके सर्व कामना देनेवाले भगवान्‌ने आवश्यकीय कर्म किया ॥ ३७ ॥ और उस समय नारदजीका ध्यान किया तब मुनिश्रेष्ठ स्नानके निमित्त सागरमें आये ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! उनको आता हुआ देखकर सत्पुरुषोंके गति श्रीकृष्णने सत्यभामाके सहित विधिपूर्वक पूजा की ॥ ३९ ॥ सत्यभामाने स्वयं मुनिके चरण धोये और स्वयं श्रीकृष्णने झारीसे जल लिया ॥ ४० ॥ तब नियतात्मा जगद्गुरु श्रीकृष्णने सुखसे बैठे हुए मुनिराजके निमित्त

तथेत्युक्तेति कृष्णेन तुतोष समितिंजय ॥ सत्यभामा सतामिष्टा कंसनाशनवल्लभा ॥ ३६ ॥ ततः स्नातो जगन्नाथः सर्वेशः सर्वभावनः ॥ चकारावश्यकं सर्वं सर्वकामप्रदः सताम् ॥ ३७ ॥ दध्यौ च नारदं देवः स्नातो देवमुनिर्नृप ॥ अभ्याजगाम स्नानान्ते मुनिश्रेष्ठो महोदधौ ॥ ३८ ॥ तमागतं नरपते सतां गतिरधोक्षजः ॥ सत्यया सह धर्मात्मा यथाविधि अपूजयत् ॥ ३९ ॥ पादौ प्रक्षालयांचक्रे मुनेः सात्राजिती स्वयम् ॥ जलं देवः स्वयं कृष्णो भृङ्गारेण ददौ तदा ॥ ४० ॥ अथोपकल्पयामास सुखासीनाय केशवः ॥ परमान्नं स मुनये प्रयतात्मा जगद्गुरुः ॥ ४१ ॥ तल्लोककर्त्रा सत्कृत्य दत्तं मुनिरुदारधीः ॥ बुभुजे वदतां श्रेष्ठः श्रद्धया परया युतः ॥ ४२ ॥ उपस्पृश्य ततस्तृप्तः प्रददौ चाशिषः प्रभो ॥ ताश्च प्रीतेन मनसा प्रतिजग्राह केशवः ॥ ४३ ॥ ततः सात्राजितीं देवीं प्रणतां नारदोऽब्रवीत् ॥ प्रसार्य दक्षिणं हस्तं सजलं जलजेक्षणाम् ॥ ४४ ॥ यथेदानीं तथैव त्वं भव देवि पतिव्रता ॥ सविशेषं च सुभगा भव मत्तपसो बलात् ॥ ४५ ॥ इत्युक्ता मुनिमुख्येन सत्यभामा हरिप्रिया ॥ उत्तस्थौ महता युक्ता हर्षेण तु नराधिप ॥ ४६ ॥

श्रेष्ठ अन्न दिया ॥ ४१ ॥ लोककर्त्ता उदार बुद्धिमान् भगवान्‌ने सत्कार कर वह अन्न मुनिके निमित्त दिया और वह बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ परम श्रद्धासे भोजन करने लगे ॥ ४२ ॥ तब जल पान कर तृप्त हो नारदजीने आशीर्वाद दिये और प्रसन्न मनसे भगवान्‌ने ग्रहण किये ॥ ४३ ॥ तब प्रणाम करती हुई कमलनेत्री सत्यभामासे नारदजी जलसहित अपना दक्षिण हाथ फैलाकर कहने लगे ॥ ४४ ॥ हे देवी ! जैसी अब है इसी प्रकार तू सदा पतिव्रता रहेगी और मेरे तपके बलसे विशेष सौभाग्यवती हो ॥ ४५ ॥ मुनिके ऐसा कहने पर भगवान्‌की प्यारी सत्यभामा महाप्रसन्न होकर उठ खडी

हुई ॥४६॥ तब श्रीकृष्ण भगवान् नारदजीकी आज्ञा ले देव ब्राह्मणोंके दिये हुएसे बचे हुए अन्नका भोजन करने लगे ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! तब सत्यभामाभी आवश्यकीय कार्य करके स्वामीकी आज्ञासे अन्तरगृहमें गई ॥ ४८ ॥ और कृष्णहीकी आज्ञासे फिर देवी बाहर आई और महात्मा ऋषिको नमस्कार कर श्रीकृष्णके समीप स्थित हुई ॥४९॥ तब एक मुहूर्त विश्राम कर नारदजी श्रीकृष्णसे बोले; हे कृष्ण ! आपसे पूछकर अब मैं इन्द्रलोकको जाता हूं ॥५०॥ वहां आदिदेव ईशान महेश्वरको नमस्कार करके देवता और गन्धर्व तथा अप्सराओंके गण जिनके गुण गाते

स कृष्णोप्यभ्यनुज्ञां तु लब्ध्वा मुनिवरात्तदा ॥ बुभुजे विघसं धीमानप्रमेयपराक्रमः ॥४७॥ ततस्त्वाश्यकं कृत्वा सत्यभामापि भारत ॥ अनुज्ञया तदाभर्तुर्विवेशान्तर्गृहं मुदा ॥ ४८ ॥ ततो विनिर्गता देवी कृष्णस्यैवाभ्यनुज्ञया ॥ स्थिता पार्श्वे च कृष्णस्य नमस्कृत्वा महात्मने ॥४९॥ ततो मुहूर्तमासित्वा नारदः कृष्णमब्रवीत् ॥ आपृच्छे त्वां गमिष्यामि शक्रलोकमधोक्षज ॥५०॥ तत्राद्यं देवमीशानं नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ गास्यन्ति देवगन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः ॥ ५१ ॥ मासि मास्युचितं ह्येतन्माहेन्द्र-सदने प्रभो ॥ पूजार्थं देवदेवस्य गान्धर्वं नृत्यमेव च ॥ ५२ ॥ अन्तर्हितो देवदेवः सोमः सप्रवरो विभुः ॥ पश्यत्यमरमुख्येन कृतं भक्त्याद्रिघातिना ॥ ५३ ॥ निमन्त्रितोऽहं पूर्वेद्युः पुष्पं दत्तं महाद्युते ॥ पारिजातस्य भद्रं ते तरुराज्ञो महात्मनः॥ ५४ ॥ यदेतदाहृतं स्वर्गात्त्वदर्थं तु मया विभो ॥ देवोपभोग्यमेतद्धि तरुराजसमुद्भवम् ॥ ५५ ॥ इष्टः स वृक्षः सततं शच्याः पुष्कर-लोचन ॥ सौभाग्यमाहवत्येव पूज्यमानोऽपि नित्यशः ॥ ५६ ॥

हैं ॥५१॥ हे प्रभो ! महेन्द्रके स्थानमें महीने महीने यह उत्सव होता है देवदेवकी पूजाके निमित्त गन्धर्व जन नृत्य करते हैं ॥५२॥ वह देवदेव शिव उमा सहित प्रमथादिगणोंके साथ अन्तर्ध्यान रहकर इन्द्रका कृत्य भक्ति सब कुछ देखते हैं ॥५३॥हे महाद्युतिमान् ! पहले दिन मुझे वहां निमंत्रित किया था सो यह पुष्प वृक्षराजका प्राप्त हुआ ॥ ५४ ॥ सो आपके निमित्त मैं स्वर्गसे इसे यहां लाया हूं यह तरुराजका फूल देवताओंके उपभोगके निमित्त है ॥ ५५ ॥ हे कमललोचन ! इन्द्राणीको यह वृक्ष सदा प्यारा है यह नित्य पूजित हो सौभाग्य बढाता है ॥ ५६ ॥

यह पारिजातका महावृक्ष पुण्यक नाम व्रत करनेको अदितिके धर्मवृद्धि करनेको महात्मा कश्यपजीने रचा है ॥५७॥ प्रथम महातपस्वी कश्यपको सेवासे अदितिने प्रसन्न किया था तब वह मरीचके पुत्र महातपस्वी कहने लगे वर मांगो ॥ ५८ ॥ तब उसने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ ! जिसके करनेसे मैं सम्पूर्ण गहनोंसे भूषित और सौभाग्यसे पूर्ण रहूं सब कामना पूर्ण हों॥५९॥हे तपोधन ! मेरा नृत्य और गीत इच्छानुसार हो जाय हे तपस्विराज ! नित्य कुमारी जिस प्रकारसे रहूं ॥६०॥रुज और शोकरहित जिस प्रकार मैं सदा रहूं तथा पतिमें भक्तिवाली और धर्मशील रहूं सो करो ॥ ६१ ॥

पुण्यं कर्तुं तदा सृष्टः पारिजातो महाद्रुमः ॥ आदित्या धर्मनित्येन कश्यपेन महात्मना ॥५७॥ पुरादित्या महातेजास्तोषितः किल कश्यपः ॥ वरेण च्छन्दयामास मारीचस्तपसो निधिः ॥५८॥ सोवाच सुभगा येन भवेयं मुनिसत्तम ॥ स्वलंकृता कामतश्च सर्वैरेव विभूषणैः ॥५९॥ ईप्सितं गीतनृत्यं च भवेन्मम तपोधन ॥ कुमारी नित्यदा चैव भवेयं तपसो निधे ॥६०॥ विरजा शोकरहिता भवेयमिति नित्यदा ॥ पतिभक्तिमती चैव धर्मशीला तथैव च ॥ ६१ ॥ पारिजातं ततोऽस्राक्षीददित्याः प्रियकाम्यया ॥ सर्वकामप्रदैः पुष्पैरावृतं नित्यगन्धदैः ॥६२॥ त्रिशाखं सर्वदा दृश्यं सर्वभूतमनोहरम् ॥ सर्वपुष्पाणि दृश्यन्ते तस्मिन्नेव महाद्रुमे ॥६३॥ ईदृशान्यपि पुष्पाणि बिभर्त्येकापि रूपिणी ॥ बहुरूपाणि चाप्यन्या पद्मानि च ततोऽपरा ॥६४॥ मन्दारादपि वृक्षाच्च सारमुद्धृत्य कश्यपः ॥ तस्मादेष तरुश्रेष्ठः सर्वेषां श्रेष्ठतां गतः ॥ ६५ ॥ ततस्तत्र निबध्याथ कश्यपं प्रददौ शुभे ॥ अदितिर्मम पुण्यार्थं सौभाग्यार्थं तथैव च ॥ ६६ ॥

तब उन्होंने दितिके प्रिय करनेकी इच्छासे कल्पवृक्ष उत्पन्न किया और वह सब कामनाके देनेवाला सुगंधित पुष्पोंसे व्याप्त है ॥६२॥ उसकी तीन शाखायें देखने योग्य सब प्राणियोंको मनोहरस्वरूप हैं उस महातेजस्वी वृक्षमें सब कामना देनेवाले पुष्प दीखते हैं॥६३॥इस प्रकारके फूल तथा अन्य प्रकारके फूलभी यह धारण करता है अनेकरूप तथा कमलरूप पुष्पभी यहधारण करता है॥६४॥ मन्दारके वृक्षोंसे सारग्रहण करके कश्यपजीने यह श्रेष्ठ वृक्ष बनाया है,इस कारण यह सबसे श्रेष्ठ है॥६५॥उसमें कश्यपको बांधकर उसमें अदितिनेपुण्य और सौभाग्यके निमित्त देनाविचारा॥६६॥

तब अदितिने पुण्यके निमित्त मुझे फूलोंकी माला कण्ठमें वेष्टनकरके मेरे निमित्तकश्यपको दान किया॥६७॥तब उसके मोलमें मैंने कश्यपको छोड दिया इसी प्रकार इन्द्राणीने सौभाग्यके निमित्तइन्द्रको दान किया॥६८॥रोहिणीने चन्द्रमाको ऋद्धिने कुबेरको दानकिया है,इस प्रकार पारिजात सौभाग्यका देनेहारा है इसमें सन्देह नहीं ॥६९॥ गंगाके ऊपर होनेसे इसको पारिजात कहते हैं ॥७०॥ और कोई नहीं जाननेवाले मनुष्य इसको दारु अर्थात् वृक्ष है इस कारण इसे कोविदार कहते हैं ॥ ७१ ॥ मंदार कोविदार पारिजात इन नामोंसे वृक्ष जाना जाता है जिसका यह उत्तम

अदित्या कश्यपो दत्तः पुण्यार्थं च तथा मम ॥ पुष्पदाम्ना वेष्टयित्वा कण्ठे पुण्यार्थमात्मवान् ॥ ६७ ॥ निष्क्रयेण मया मुक्तः कश्यपस्तु तपोधनः ॥ इन्द्रो दत्तस्तथेन्द्राण्या सौभाग्यार्थं ततो मम ॥६८॥ सोमश्चाप्यथ रोहिण्या ऋद्ध्या च धनदस्तथा ॥ एवं सौभाग्यदो वृक्षः पारिजातो न संशयः ॥ ६९ ॥ पारिजातो विष्णुपद्याः पारिजातेतिशब्दितः ॥ मन्दारपुष्पैर्युक्तो मन्दारस्तेन कथ्यते ॥७०॥ कोऽप्ययं दारुरित्याहुरजानन्तो यतो जनाः ॥ कोविदार इति ख्यातस्ततः स सुमहातरुः॥७१॥ मन्दारः कोविदारश्च पारिजातश्च नामभिः ॥ स वृक्षो ज्ञायते दिव्यो यस्यैतत्कुसुमोत्तमम् ॥ ७२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे सप्तषष्टितमोध्यायः ॥ ६७ ॥ वैयम्पायन उवाच ॥ ततो जिगमिषुं तत्र नारदं मुनिसत्तमम् ॥ प्रोवाच भगवान्विष्णुरप्रमेयपराक्रमः ॥१॥ महर्षे धर्मतत्त्वज्ञः स्वर्गं गत्वा त्वयानघ ॥ दृष्ट्वा सदस्यान्देवस्य त्रिपुरघ्नस्य धीमतः ॥ २ ॥ अनाज्ञया मद्वचनाद्विज्ञाप्यः पाकशासनः ॥ संभावयित्वा भ्रातृत्वं पौराणं वेत्सि यन्मुने ॥ ३ ॥

फूल है ॥ ७२ ॥ इति श्रीमहा० खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ वैशंपायन बोले; तब जानेकी इच्छा करनेवाले नारदजीसे महापराक्रमी विष्णुभगवान् बोले॥ १ ॥ हे महर्षे ! हे धर्मके तत्व जाननेवाले ! आप स्वर्गमें जाकर त्रिपुरके मारनेवाले देवको इन्द्रसभामें देखकर मेरे वचनसे मुझे इन्द्रका छोटा भाई वर्णन करो; हे मुने ! तुम पुराणोंमें कहां भ्रातृपन जानते हो ॥ २ ॥ ३ ॥

यह कहो कि जिस श्रेष्ठ वृक्षको भगवान् कश्यपने रचाहै, यह अदितिके सुखके निमित्त धर्मात्माने निर्माण किया था ॥ ४ ॥ वह श्रेष्ठ वृक्ष महापुण्य और सौभाग्यको देता है, तुमने जो प्रथम दान किया था सो वृक्षके सहित ॥ ५ ॥ देवियोंने धर्मकी इच्छासे इस वृक्षके साथ अपने २ पतियोंको दान किया है, यही वार्ता सुनकर हमारी स्त्रीभी इसके देनेकी इच्छा करती है॥६॥पुण्य दान धर्म और मेरी प्रीतिके निमित्त महावृक्ष पारिजातको द्वारकामें लाकर ॥ ७ ॥ दान देनेपर फिर उस वृक्षको ले जाना.हे भगवन् ! आप जाकर यह बात इन्द्रसे कहना ॥ ८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस कार्यमें सम्यक् प्रयत्न

यमस्राक्षीन्मुनिश्रेष्ठो भगवान्कश्यपस्तरुम् ॥ पारिजातं पुरादित्याः सुखार्थं धर्मसत्तमः ॥४॥ स पुण्यमतिसौभाग्यं ददाति तरु-सत्तमः ॥ तव दत्तं पुरा दानं वृतेन तरुमुत्तमम् ॥ ५ ॥ देवीभिर्धर्मनित्याभिर्धर्मार्थममरोत्तम ॥ दत्तं श्रुत्वाकांक्षन्ति दातुं पत्न्यो मम प्रभो ॥ ६ ॥ पुण्यार्थं दानधर्मार्थं मम प्रीत्यर्थमेव च ॥ आनाययद्द्वारवतीं पारिजातं महाद्रुमम् ॥ ७॥ दत्ते दाने पुनः स्वर्गे तरुं त्वं नेतुमर्हसि ॥ स वाच्य एवं भगवान्बलभिद्भगवंस्त्वया ॥ ८ ॥ तथा तथा प्रयत्नश्च कार्योऽस्मिन्मुनिसत्तम ॥ यथा तरु-वरं दद्यात्पारिजातं सुरेश्वरः ॥९॥ तत्र दूतगुणं तावत्पश्यामस्ते तपोधन ॥ संभाव्या सर्वकृत्यानां संपद्धि त्वयि मे मता ॥ १० ॥ एवं नारायणेनोक्तो नारदो भगवानृषिः ॥ प्रहस्योवाच केशिघ्नमिदं वाक्यं तपोधनः ॥ ११ ॥ बाढमेवं प्रवक्ष्यामि यदुमुख्य सुरेश्वर ॥ नतु दास्यति देवेन्द्रः पारिजातं कथंचन ॥ १२ ॥ मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं दानवैस्त्रिदशैस्तथा ॥ निक्षिप्य तोयधौ पूर्वं पारि-जातः समाहृतः ॥ १३ ॥ मन्दरात्पर्वतश्रेष्ठान्नयितुं प्रेषितः पुरा ॥ पारिजातं हरेणापि लोककर्त्रा जनार्दन ॥ १४ ॥

करना; जिस कारण सुरेश्वर कल्पवृक्ष प्रदान कर दे ॥ ९ ॥ हे तपोधन ! इस बातमेंभी आपका दूतगुण देखेंगे, सब कार्योंमें तुमहीको संपत्ति देनी चाहिये ॥ १० ॥ इस प्रकार नारायणके वचन सुनकर भगवान् ऋषि नारदजी हँस करके केशिनिषूदनसे यह वचन कहने लगे ॥११॥ हे कृष्ण!जो आपने कहा है वह मैं कह दूंगा परंतु इन्द्र कल्पवृक्ष किसी प्रकार नहीं देगा ॥ १२ ॥ पर्वतश्रेष्ठ मन्दरको पहले देवता और दैत्योंने समुद्रमें डालकर समुद्र मथा था उससे पारिजात उत्पन्न हुआ है ॥ १३ ॥ पहले लोककर्ता भगवान् शिवजीने मंदराचलसे कल्पवृक्ष लानेको मुझे भेजा था ॥१४॥

तब फिर शिवजीसे इन्द्रने स्वयं जाकर कहा; हे भगवन् ! यह नन्दनवनमें इंद्राणीके विहार करनेको होना चाहिये और स्थानमें नहीं जायगा ॥ १५॥ तब महादेवजीने कहा अच्छा यह तुम्हारेही पास रहे,तब शिवने पारिजात ग्रहण नहीं किया और चित्रकंदरावाले मंदरपर्वतमें॥ १६॥कल्पवृक्ष शचीके विहारकी वस्तु है ऐसा विचार कर उसे तो वहीं छोड दिया.हे महाबाहो ! इस प्रकार महेन्द्रने पूर्वकालमें कल्पवृक्षको त्याग दिया ॥ १७ ॥ और साक्षात् पार्वतीके मन बहलानेको दोसौ कोशके घेरमें शिवजीने मंदरकी कंदरामें कल्पवृक्षका वन रचा ॥१८॥ हे कृष्ण ! उस पर्वतश्रेष्ठमें सूर्यकी

स्वयं विज्ञापितो गत्वा ततः शक्रेण शंकरः ॥ आक्रीडद्रुम उद्याने शच्याः स्यादिति याचितः ॥ १५ ॥ तथास्त्विति वरो दत्तो महादेवेन चानघ ॥ न च नीतः पारिजातो मन्दरं चित्रकन्दरम् ॥ १६ ॥ क्रीडावृक्षः स शच्येति व्यपदेशेन मोक्षितः ॥ महेन्द्रेण महाबाहो पारिजातस्ततः पुरा ॥ १७ ॥ प्रियार्थमुमया साक्षात्परिजातवनं हरः ॥ गव्यूतिशतविस्तीर्णं मन्दरस्यैव कन्दरम् ॥१८॥ न तत्र सूर्यभाः कृष्ण प्रविशन्ति नगोत्तमे ॥ न च चन्द्रप्रभा शीता नैव कृष्ण सदागतिः ॥ १९ ॥ शीतोष्णे छन्दतस्तत्र शैलपुत्र्या भवन्ति हि ॥ स्वयंप्रभं वनं तद्धि महादेवस्य तेजसा ॥ २० ॥ वर्जयित्वा महादेवौ सगणौ यदुनन्दन ॥ मां चान्यस्तद्वनं दिव्यं न प्रयाति कथंचन ॥ २१ ॥ स्रवन्ति तत्र वार्ष्णेय पारिजाताः समन्ततः॥सर्वरत्नानि मुख्यानि मनसा कांक्षितानि वै॥२२॥ गणास्तान्युपभुञ्जन्ति प्रवराणां महात्मनाम् ॥ आज्ञया देवदेवस्य लोकनाथस्य केशव ॥२३॥ पारिजाताद्बहुगुणं फल तेषां तथा वनम् ॥ अभिमानं प्रभाश्चैव गुणा भूरिगुणास्तथा ॥ २४ ॥

कान्ति प्रवेश नहीं करती, न चन्द्रमा और न वायुकी गति है ॥ १९ ॥ और वहां शीतगर्मीकी वांछा करनेवाले पुरुषोंको वे सब शैलपुत्रीसे प्राप्त होते हैं महादेवके तेजसे वह भवन दीप्तिमान है ॥२०॥ हे यदुनन्दन ! महादेव उनके गण और मैं उनको छोडकर और कोईभी स्थानमें नहीं जा सकते ॥ २१ ॥ हे कृष्ण ! उस स्थानमें सहस्रों पारिजात मनमें इच्छा किये हुए अनेक प्रकारके रत्नोंको प्रदान करते हैं ॥ २२ ॥ हे केशव ! देवदेव लोकनाथके गण उन रत्नोंको भोगते हैं,वे उन्हीं महात्माओंके योग्य हैं ॥२३॥ उनके फल पारिजातसेभी अधिक गुणवाले हैं,

॥२०६॥

अभिमान प्रभा और गुण यह उनमें सबसे अधिक है ॥ २४ ॥ वे मूर्तिमान वृक्ष सोमदेव वृक्षध्वज शिवजीको पूजनेको प्रवरोंसहित उपस्थित होते हैं ॥२५॥ वे रुद्रके तेजसे युक्त दुःखसे हीन सुखसे युक्त हैं वे मन्दराचलके वृक्ष पार्वतीके प्रिय हैं ॥२६॥ एक समय अंधक नाम महाघोर पापी वरदानसे मोहित राक्षस वहां प्रवेश कर गया ॥ २७ ॥ वह वृत्रासुरसे दशगुणवाले, सब प्राणियोंके अवध्य था उसे देवदेव शिवजीने मार डाला, कारण कि शिवजी शत्रुके मारनेहारे हैं ॥२८॥ इस प्रकार कठिनतासे प्राप्त हुए पारिजातको तुम्हें न देंगे, हे पुष्कराक्ष ! यह मैं सत्य कहता हूं इन्द्र

मूर्त्तिमन्तश्च ते वृक्षाः सोमं देवं वृषध्वजम् ॥ उपतिष्ठन्ति सततं प्रवरैः सह केशव ॥ २५ ॥ रौद्रेण तेजसा जुष्टा दुःखैर्हीनाः सुखान्विताः ॥ तरवो मन्दरे ते हि दयिताः शैलकन्यया ॥ २६ ॥ प्रविवेशान्धको नाम घोरस्तत्र महाबलः ॥ दैतेयो वरदानेन दर्पितः पापनिश्चयः ॥ २७ ॥ स हतो देवदेवेन हरेणामित्रघातिना ॥ अवध्यः सर्वभूतानां वृत्राद्दशगुणं बली ॥ २८ ॥ एवं दुःखं न ते देव पारिजातं प्रदास्यति ॥ पुष्कराक्ष सहस्राक्षः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥२९॥ सततं सहितो देव्या शच्या स हि वरद्रुमः ॥ सर्वकामप्रदः कृष्ण तथेन्द्राय महौजसे ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मुने तद्युज्यते साधु महादेवेन धीमता ॥ यच्छचीकारणं कृत्वा न नीतः स तरुः पुरा ॥ ३१ ॥ स ज्येष्ठः सर्वभूतानां लोककृत्प्रभवोऽव्ययः ॥ पारावर्यस्य सदृशं कृतवानिति मे मतिः ॥ ३२ ॥ अहं यवीयान् देवस्य सर्वथा बलघातिनः ॥ लालनीयश्च भगवन् जयन्त इव सत्तम ॥ ३३ ॥ सर्वथा भगवांस्तावदुपायैर्बहुस्तरैः ॥ करोतु यत्नं प्रीत्यर्थं शक्तो ह्यसि तपोधन ॥ ३४ ॥

नहीं देगा ॥ २९ ॥ निरंतर वह वृक्ष शचीके सहित हे कृष्ण ! वह सब कामका देनेहारा है, महापराक्रमी इन्द्र उससे जय पाता है ॥ ३० ॥ श्रीभगवान् बोले; हे मुने ! यह सत्य है जो बुद्धिमान् महादेवजीने शचीके कारण उस वृक्षको न लिया ॥ ३१ ॥ वह लोककर्ता अविनाशी प्रभु सब प्राणियोंके ज्येष्ठ अर्थात् बडे हैं उन्होंने लोकमर्यादाके सहितही किया है ऐसा मैं मानता हूं ॥ ३२ ॥ और मैं तो सर्वथा बलघाती इन्द्रका लघुभ्राता हूं इन्द्रको जयन्तके समान सदा हमारा लालन पालन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! इस कारण सर्वथा बडे बडे उपायोंसे तुम प्रीतिके

निमित्त यत्न करो, कारण कि तुम समर्थ हो ॥३४॥ हे मुने ! मैंने सत्यभामाके पुण्यके निमित्त प्रतिज्ञा की है कि मैं स्वर्गसे पारिजातको यहां ले आऊंगा ॥ ३५ ॥ सो हे तपोधन ! अब मैं उसे अन्यथा कैसे कर सकता हूं. हे पापरहित ! जो मैंने पूर्वमें कभी झूठे वचन नहीं कहे हैं ॥ ३६ ॥ मेरे प्रतिज्ञाभंग होनेसे लोकोंका क्षय हो जायगा. हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस कारण कि मुझमें गुणोंके साथ गुणोंके धर्म इकट्ठे हुए सब स्थित हैं, अब अन्यथा कैसे हो सकते हैं॥३७॥देवता गन्धर्व राक्षस यक्ष असुर पन्नग इनमें कोई भी ऐसा समर्थ नहीं है जो मेरी प्रतिज्ञा भंग करनेको समर्थ हो॥३८॥

मया मुने प्रतिज्ञातं पुण्यर्थं सत्यभामया ॥ स्वर्गादिहानयिष्यामि पारिजातमिति प्रभो ॥ ३५ ॥ मया तदनृतं कर्तु कथं शक्यं तपोधन ॥ नानृतं हि वचो विप्र प्रोक्तं पूर्वं मयानघ ॥ ३६ ॥ मयि भग्नप्रतिज्ञे वै लोकानां विप्लवो भवेत् ॥ यन्मया हि मुनिश्रेष्ठ लोकधर्मा गुणान्विताः ॥ परिवार्याः स्थितौ सर्वे स कथं ह्यनृतं वदेत् ॥ ३७ ॥ न देवगन्धर्वगणा न चासुरा नैव च यक्ष-पन्नगाः ॥ मम प्रतिज्ञामपहन्तुमुद्यता मुने समर्थाः खलु भद्रमस्तु ते ॥ ३८ ॥ स पारिजातं यदि न प्रदास्यति प्रयाच्यमानो भवतामरेश्वरः ॥ ततः शचीव्याममृदितानुलेपने गदां विमोक्ष्यामि पुरंदरो रसि ॥३९॥ इति प्रवाच्यो यदि सामपूर्वकं मयाच्यमानो न तरुं प्रयच्छति ॥ सुनिश्चयं मद्गमनाय सर्वथा त्वयाऽपि कार्यः खलु तत्र निश्चयः ॥४०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे नारदकृष्णभाषणं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ नारदोऽथ मुनिर्गत्वा महेन्द्रसदनं प्रति ॥ तां रात्रिमवसत्तत्र ददृशे च महोत्सवम् ॥ १ ॥

यदि तुम्हारे मांगनेसे इन्द्र पारिजात वृक्ष न देंगे तो इन्द्राणीसे अनुलेपन किये इन्द्रके हृदयमें गदाप्रहार करूंगा ॥३९॥ प्रथम सामपूर्वक जाकर कहना यदि वह इस प्रकारसे वृक्ष न देगा तो यह तुम अवश्य समझ लेना कि मुझे उस स्थानमें आना पडेगा ॥४०॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायामष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ वैशंपायन बोले; नारदजी महेन्द्रक स्थानमें जाकर उस रात्री वहां रहे,और महोत्सव देखा ॥ १ ॥

वहां बारह आदित्य, आठ वसु, औरभी देवताओंमें श्रेष्ठ राजर्षि विद्वान् जो कर्मोंसे स्वर्गमें प्राप्त हुए हैं ॥ २ ॥ नाग, यक्ष, सिद्ध, चारण, तपोधन, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, मनु ॥ ३ ॥ महात्मा सुपर्ण, मरुत, औरभी सैकडों देवताओंके समूह उस स्थानमें विद्यमान थे ॥ ४ ॥ सबसे ऊपर सोमदेव महेश्वर अपने गणोंके सहित उस स्थानमें स्थित हुए ॥ ५ ॥ वह सर्वभावन देवता और मुनियोंसे युक्त हुए थे, जिन ऋषियोंका सहस्र कल्पान्तरमेंभी क्षय नहीं होता है ॥ ६ ॥ जिनको देवेश्वरकी समान देवता नित्य सेवन करते हैं, जो आत्मज्ञानके गर्वसे हीन धर्ममार्गमें स्थित ॥ ७ ॥ रुद्र तथा कश्यपके

तत्रादित्या महात्मानो वसवश्च सुरोत्तमाः ॥ राजर्षयश्च विद्वांसः स्वर्गताः कर्मभिः शुभैः ॥ २ ॥ नागा यक्षाश्च सिद्धाश्च चारणाश्च तपोधनाः ॥ ब्रह्मर्षयश्च शतशो देवर्षिमनवस्तथा ॥ ३ ॥ सुपर्णाश्च महात्मानो मरुतश्च महाबलाः ॥ दिवौकसां निकायाश्च शतशोऽन्ये समागताः ॥ ४ ॥ उपर्युपरि सर्वेषां सोमदेवो महेश्वरः ॥ तस्थावमितविक्रान्तः स्वैर्गणैः परिवारितः ॥ ५ ॥ देवर्षिभिर्मुनिश्रेष्ठैः संवृतः सर्वभावनः ॥ कल्पान्तरसहस्रेषु क्षयो येषां न विद्यते ॥ ६ ॥ यानर्चयन्ति सततं देवा देवेश्वरोपमाः ॥ आत्मज्ञा नावलेपान्धा ये च धर्मपथि स्थिताः ॥ ७ ॥ रुद्राश्च काश्यपा देवमध्युपासन्त भारत ॥ स्कन्दश्च भगवानग्निर्गङ्गा च सरितां वरा ॥ ८ ॥ अर्चिष्मांस्तुम्बुरुश्चैव भारिश्च वदतां वरः ॥ नेतारो देवदेवानामेते हि तपसान्विताः ॥ ९ ॥ एताननुविधीयन्ते सर्वदेवगणा नृप ॥ धर्मनित्यास्तपोनित्याः सतां मार्गमुपाश्रिताः ॥ १० ॥ ये त्विमे मानुषा देवा अर्चयन्ति शुभार्थिनः ॥ तानर्चयन्ति ह्यमरास्तथा राजञ्छुभार्थिनः ॥ ११ ॥ पितृकृत्येषु देवानां संन्यासं ये त्वनुष्ठिताः ॥ स्वाध्यायवन्तः कौरव्य सदा नियमचारिणः ॥ १२ ॥

पुत्र शिवकी उपासना करते हैं. स्कंद, भगवान् अग्नि, नदीश्रेष्ठ गंगा ॥ ८ ॥ अर्चिष्मान्, तुम्बरु, बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ भारी गन्धर्व यह देवता देवताओंकेभी शिक्षक नित्यप्रति तपमें स्थित हो ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण देवताओंके गण इनके नित्य अनुगामी हैं, नित्य धर्म और तप करनेवाले सत्पुरुषोंके मार्गमें स्थित हैं ॥ १० ॥ जो कोई शुभकी इच्छासे इनकी पूजा करते हैं उनको देवताभी पूजन करते हैं ॥ ११ ॥ जो देवताओंके कृत्यमें वर्तमान हैं जो संन्यासमें वर्त्तमान हैं हे कौरव्य ! जो वेदपाठ करते और सदा नियममें तत्पर हैं, वे यहां विद्यमान हैं ॥ १२ ॥

श्रीमान् चित्ररथ राजा, गन्धर्व देशका स्वामी प्रसन्न हो पुत्रसहित देवताओंके बाजे बजा रहे थे ॥ १३ ॥ ऊर्णायु चित्रसेन हाहा हूहू डुम्बर तुम्बरु यह सब गा रहे थे ॥ १४ ॥ पीछे आत्मवान् भगवान् महादेवजी तिस उपस्थानको सेवन करते हुए और इन्द्रके वृत्तान्तसे प्रसन्न होते हुए शिव कैलासको गये ॥ १५ ॥ १६ ॥ शिवजीक जानेपर दूसरे सब राजाभी अपने २ स्थानोंमें चले गये, इन्द्रसे पूजित हो सब देवता अपने अपने स्थानोंको गये ॥ १७ ॥ जब सब कोई चले गये और इंद्र सुखसे अपने आसनमें सभाके लोगोंके सहित बैठे उस समय

गन्धर्वाधिपतिः श्रीमांस्तत्र चित्ररथो नृप ॥ सपुत्रो वादयामास देववाद्यानि हृष्टवत् ॥१३॥ ऊर्णायुश्चित्रसेनश्च हाहा हूहूस्तथैव च ॥ डुंबरस्तुम्बुरुश्चैव जगुरन्ये च षड्गुणान्॥१४॥ उर्वशी विप्रचित्तिश्च हेमा रम्भा च भारत ॥ हेमदन्ता घृताची च सहजन्या तथैव च ॥१५॥ जुजोष भगवान्देवस्तदुपस्थानमात्मवान् ॥ वृत्तेन तुष्टः शक्रस्य जगाम जगतो गतिः ॥ १६ ॥ गते भूतपतौ सर्वे नृपा जग्मुर्यथागतम् ॥ महेन्द्रेणार्चिता देवाः स्वानेव निलयान्गताः ॥ १७ ॥ ततः सर्वेषु यातेषु सुखासीनं पुरंदरम् ॥ सदस्यैः स्वै सहासीनं नारदोऽभिययौ मुनिः ॥ १८ ॥ तमिन्द्रः पूजयामास समुत्थाय तपोधनम् ॥ दिदेश कुशगर्भं च पीठमात्मनोपमम् ॥ १९ ॥ नारदोऽथ महातेजा महेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥ दूतोऽहममरश्रेष्ठ विष्णोरतुलतेजसः ॥ २० ॥ किंचित्कार्यं पुरस्कृत्य प्रेषितोऽस्मि महात्मना ॥ आनर्तादार्तिहरणं तस्यैवानघतेजसः ॥ २१ ॥ प्रीतिवाक्यानि हृद्यानि प्रयुज्य मुनये तदा ॥ ततः प्रहृष्टो भगवानब्रवीत्पाकशासनः ॥ २२ ॥

नारदजी आये ॥ १८ ॥ इन्द्रने उठकर तपोधन नारदका पूजन किया, और कुशाओंका बहुत उत्तम अपने आसनके समान आसन दिया ॥ १९ ॥ तब महातेजस्वी नारदजीने महेन्द्रसे इस प्रकार वचन कहे; हे अमरश्रेष्ठ ! हे महातेजस्वी ! मैं विष्णुका दूत हूं ॥२०॥ किसी कार्यके निमित्त महातमाने मुझे भेजा है द्वारकासे मैं कुछ उन्हींके कार्यके निमित्त आया हूं ॥ २१ ॥ तब मुनिसे अनेक प्रिय वाक्य कहकर प्रसन्न हो हो इन्द्र कहने

लगा ॥२२॥ हे मुने ! शीघ्र कहिये हमको उन्होंने क्या आज्ञा की है बहुत समयपर महात्मा कृष्णने मुझे स्मरण किया ॥२३॥ नारदजी बोले; हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे छोटे भ्राताके देखनेको गया था, उस द्वारकापुरीमें जो कश्यप वंशियोंका हित करनेहारे हैं ॥ २४ ॥ उनको मैंने रैवतक पर्वतमें बैठे देखा है वे वीर रुक्मिणीसहित बैठे शिवकी स्तुति करते हैं ॥ २५ ॥ हे पापरहित ! मैंने उनको पारिजातका फूल दिया था कि जिससे उन महातेजस्वीकी पत्नी आश्चर्यमय हो जाय ॥ २६ ॥ सो उसे देख उनकी पत्नी परम विस्मित हुई उस वृक्षराजसे उत्पन्न हुए अनेक कामना देनेवाले

किमाह पुरुषश्रेष्ठः शीघ्रमाचक्ष्व मे मुने ॥ चिरस्य खलु कृष्णेन संस्मृतोऽस्मि महात्मना ॥२३॥ नारद उवाच ॥ महेन्द्रेन्द्रानुजं द्रष्टुं गतोऽहं भ्रातरं तव ॥ कथंचिद्द्वारकां तत्र काश्यपानां यशस्करम् ॥२४॥ तं तु रैवतकेऽद्राक्षं तदासीनमरिंदमम् ॥ रुक्मिण्या सहितं वीरं स्तुवन्तं वृषभध्वजम् ॥२५॥ पारिजाततरोः पुष्पं तस्य दत्तं मयानघ ॥ विस्मापनार्थं देवेश पत्नीनाममुरुतेजसः॥२६॥ तद्दृष्ट्वा तस्य पत्न्यस्तु विस्मयं परमं ययुः ॥ बहुकामप्रदं पुष्पं वृक्षराजसमुद्भवम् ॥ २७ ॥ गुणास्तासां मया ख्यातास्तस्य पुष्पस्य मानद ॥ सृष्टिश्च पारिजातस्य कश्यपेन महात्मना ॥२८॥ अदित्या कश्यपो दत्तः पुण्यार्थं च यथा मम ॥ पुष्पदाम्ना वेष्टयित्वा कण्ठे पुण्यार्थमात्मवान् ॥२९॥ त्वं च दत्तो यथा शच्या देवाश्चान्ये सुरेश्वर ॥ निष्क्रयश्च यथा दत्तः कश्यपाद्यैर्म-हर्षिभिः ॥ ३० ॥ तच्छ्रुत्वा तस्य पत्न्येका सत्यभामेति विश्रुता ॥ पुण्यकार्थं मनश्चक्रे दयिता ते यवीयसः ॥ ३१ ॥ तया चाभ्याथतो भर्ता देव देव्या गणेश्वरः ॥ प्रतिजज्ञे स धर्मार्थं यवीयांस्तव मानद ॥ ३२ ॥

पुष्पको देकर ॥ २७ ॥ हे मान देनेहारे ! मने उसके गुण उनसे कहे और यहभी कहा यह पारिजात महात्मा कश्यपजीका है, उन्होंने इनकी रचना की है ॥ २८ ॥ अदितिने कश्यपको पुण्यके निमित्त मुझे प्रदान किया गलेमें फूलोंकी माला डालकर धर्मार्थ मुझे पुण्य किया ॥ २९ ॥ हे इन्द्र ! जैसे शचीने तुमको दिया था इसी प्रकार और देवताओंने कश्यपादि महात्माओंने इसको मोल दिया है॥३०॥यह वचन सुनकर उनकी सत्यभामा नामक एक पत्नी तुम्हारे छोटे भ्राताकी भार्याने पुण्य कार्य करनेकी इच्छा की ॥ ३१ ॥ उसने इस विषयमें श्रीकृष्णसे प्रार्थना की जैसे देवी पार्वती

शिवसे कोई प्रार्थना करती है तब धर्मकार्य करनेकी श्रीकृष्णने प्रतिज्ञा की ॥ ३२ ॥ वीर्यवान् महाबली विष्णुने मुझसे कहा हे देवेश ! जो कुछ मुझसे कहा है सो आप श्रवण कीजिये ॥ ३३ ॥ यह तुमारे लालना करने योग्य अच्युतने प्रणाम कर तुमसे कहा है कि नारद ! तुम उनसे श्रेष्ठ पारिजातका वृक्ष ले आओ ॥ ३४ ॥ हे अरिसूदन ! तुम्हारी वधूका मनोरथ सफल हो, हे देवेश ! विशेष करके धर्मकार्यके निमित्त तुम्हारी वधू इसकी इच्छा करती है ॥ ३५ ॥ हे लोकगणेश्वर ! यह दुर्लभ कल्याणवाला लोक है सो मेरे प्रतापसे मनुष्य देवताओंके कल्याणको देखें ॥ ३६ ॥ वैशंपायन बोले, हे

ततो मामुक्तवान्वीरो विष्णुर्बलवतां वरः ॥ यथावत्सुरमुख्येश ब्रुवतः शृणु भावतः ॥ ३३ ॥ लालनीयो यवीयांस्तु प्रणिपत्याच्युतोऽब्रवीत् ॥ आनयेयं सुरश्रेष्ठ पारिजातं वरद्रुमम् ॥ ३४ ॥ मनोरथोऽस्तु सफलो वध्वास्तेऽसुरसूदन ॥ धर्मकृत्ये विशेषेण वध्वास्ते सुरसत्तम ॥ ३५ ॥ अयं दर्शितकल्याणो लोको लोकगणेश्वर ॥ पश्यन्त्वमरकल्याणं मत्प्रभावाच्च मानवाः ॥ ३६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ वासुदेववचः श्रुत्वा महेन्द्रः कुलनन्दन ॥ नारदं वदतां श्रेष्ठमिदं वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३७ ॥ भजासनं द्विजश्रेष्ठ युक्तमुक्तं त्वया द्विज ॥ संदेशं प्रतिदास्यामि विष्णोरतुलतेजसः ॥ ३८ ॥ आसीने नारदे शक्रो लब्धानुज्ञोऽथ नारदात् ॥ स्वमासनं ततो भेजे तस्यैव सदृशं प्रभो ॥ ३९ ॥ उपविष्टः सुरपतिरथोवाच तपोधनम् ॥ निरीक्ष्य स्वबलं वीर्यं हर्षदं वृत्रनाशनः ॥ ४० ॥ शक्र उवाच ॥ महर्षे कुशलं पृष्ट्वा वक्तव्यस्ते जनार्दनः ॥ वचनान्मम धर्मज्ञ सर्वभूतसुखावहः ॥ ४१ ॥ मदनन्तरमीशस्त्वं जगतो नात्र संशयः ॥ त्वदीयः पारिजातश्च रत्नान्यन्यानि चाच्युत ॥ ४२ ॥

राजन् ! इन्द्र इस प्रकार वासुदेवके वचन सुन बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ इन्द्र नारद मुनिसे ऐसे वचन कहने लगा ॥ ३७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! आपने अच्छा कहा आसनपर विराजो, अतुलतेजस्वी विष्णुके प्रीतिमें संदेशा देता हूं ॥ ३८ ॥ नारदके बैठनेपर इन्द्र उनकी आज्ञा पाकर उसीके समान अपने आसनपर बैठ गये ॥ ३९ ॥ तब इन्द्र बैठकर नारदजीसे बोला अपने बल वीर्य और पार्षदोंको देखकर बोला ॥ ४० ॥ इन्द्र बोले; हे महर्षे ! मेरी ओरसे कुशल कहकर जनार्दन भगवान्से कहना. हे धर्मज्ञ ! मेरे वचनसे सर्वलोकके सुख देनेवाले भगवान्से कहना ॥ ४१ ॥ कि मेरे उपरान्त जगत्के ईश

तुमही हो इसमें सन्देह नहीं, हे अच्युत! यह पारिजात और सब रत्न तुम्हारेही हैं ॥४२॥ परन्तु तुम पृथ्वीमें भार उतारनेको गये हो मनुष्यरूप हो सब वृत्तियोंके कार्यसिद्धिमें तत्पर रहो ॥ ४३ ॥ प्रतिज्ञा पूर्ण करके फिर आपको देवलोकमें आना है; हे अधोक्षज ! मैं आपकी वधूके सब इष्ट काम पूरे करूंगा ॥ ४४ ॥ हे केशव ! स्वर्गके रत्न पृथ्वीमें ले जानेकी आवश्यकता नहीं, थोडेसेके निमित्त मनुष्यलोकमें जाना ठीक नहीं; यह मर्यादा पहले हो चुकी है ॥४५॥ हे महाबल ! यदि हम मर्यादाको छोडकर वर्तें तो फिर प्रजापति समूह कदाचित्भी प्रतिज्ञा न करेंगे ॥४६॥

त्वं तु भारावतरणं कर्तुं देव महीं गतः ॥ मानुष्यं सर्ववृत्तानां स्थितः कार्यस्य सिद्धये ॥ ४३ ॥ त्वयि तीर्णप्रतिज्ञे हि पुनः प्राप्ते त्रिविष्टपम् ॥ पूरयिष्यामि वध्वास्ते इष्टान्कामानधोक्षज ॥ ४४ ॥ स्वर्गीयानि च रत्नानि न नेतव्यानि केशव ॥ स्वल्पार्थं मानुषं लोकमिति पूर्वकृता स्थितिः ॥४५॥ उत्क्रम्य हि स्थितिं दैवीं प्रवर्तामि महाबल ॥ यद्यहं किं प्रवक्ष्यन्ति प्रजापतिगणाः प्रभो ॥ ४६ ॥ ब्रह्मणा सह पुत्रेण सपौत्रेण महात्मना ॥ नियमाः सर्वकृत्यानां स्थापिता जगतो ध्रुवाः ॥ ४७ ॥ प्रजापतिकृतं मागमपास्य व्रजतो मम ॥ श्रुत्वा प्रजापतिर्धीमाञ्छापमप्युत्सृजेत्प्रभुः ॥ ४८ ॥ अस्माभिर्भिद्यमानं हि मर्यादासेतुबन्धनम् ॥ भेत्स्यन्त्यशङ्किता दैत्या दैत्यदक्षास्तथाऽपरे ॥ ४९ ॥ स्त्रीनिमित्तमितो नीते पारिजाते द्रुमेश्वरे ॥ स्वर्गौकसो भविष्यन्ति विमनस्काश्च मानद ॥ ५० ॥ उपभोगा मनुष्याणां विहिता ये स्वयंभुवा ॥ तैस्तु तुष्यतु मे भ्राता संपश्यन्कालपर्ययम् ॥ ५१ ॥ इहापि तात त्रिदिवे मम यः स्यात्परिग्रहः ॥ त्रिदिवस्थोऽपि तं कृष्णः सर्वं भोक्तुमिहार्हति ॥ ५२ ॥

ब्रह्माने महात्मा पुत्र पौत्रसहित जगत्के चलनेमें सब कृत्योंका नियम स्थापित कर दिया है ॥४७॥ यदि मैं प्रजापतिके मार्गको छोडकर चलूं तो प्रजापति सुनकर अवश्य हमको शाप देंगे ॥ ४८ ॥ जब हम मर्यादारूपी सेतुका बंधन तोड देंगे तब दैत्य और दैत्योंके अनुयायी निःशंक हो उस मर्यादाको नष्ट कर देंगे ॥४९॥ स्त्रीके निमित्त वृक्ष यदि जाय तो यहांके देवता विमन हो जांयगे ॥ ५० ॥ ब्रह्माने जो मनुष्योंके उपभोगका विधान किया है. हे भ्राता ! कालका गमन विचार उसीसे संतुष्ट होना उचित है ॥ ५१ ॥ हे तात ! यहां स्वर्गमें जो हमारी भार्या है यह इससे प्रेम करती है, और कृष्ण

स्वर्गमें आकर इन सबका भोग कर सक्के हैं ॥ ५२ ॥ और जो आमिषभोजन करनेसे जनार्दन पुष्ट और अभिमानी होकर मांगते हैं,जो धर्म छोडकर पापमही प्रवृत्त होते हैं ॥ ५३ ॥ तो श्रीकृष्णजी जगत्में स्त्रीवशमें है, यह बात विख्यात होनेसे उनको अपयश लगेगा ॥५४॥ इस समय जनार्दन मनुष्योंमें मनुष्यरूपसे हैं, तो इस समय उनको ज्येष्ठ भ्राताके वचन मानने चाहिये ॥५५॥ हे नारद ! स्वर्गका रत्न लुप्त होनेसे मेरा अपमान है, और जातीसे तिरस्कारका होना विशेष दुःखका कारण है ॥५६॥ मधुसूदन क्रमसे धर्म अर्थ और कामको सेवन करे यह सत्पुरुषोंके धर्म ब्रह्माने स्थापन किये हैं ॥ ५७ ॥ यदि मैं पारिजातको पृथ्वीमें देदूं फिर शची आदि कोई मेरा बहुत मान नहीं करेंगी ॥ ५८ ॥ हे मुने ! संसारके मनुष्य पृथ्वीपरही

हृष्टो ह्यामिषभोज्यानामभिमानाज्जनार्दनः ॥ततो धर्मं समुत्सृज्य पापमेवानुवर्तते ॥ ५३ ॥ स्त्रीवश्यता ख्याप्यमाना कृष्णस्य हि महात्मनः ॥ जगत्ययशसा योगं जनयेदिति मे मतिः ॥ ५४ ॥ मानुष्यं मानुषे प्राप्तो यदेतन्मधुसूदनः ॥ कुर्यान्निर्बन्धनीयं यद्भ्राता ज्येष्ठेन नारद ॥ ५५ ॥ स्वर्ग्यरत्नविलोपेन धर्षणा स्यान्ममानघ ॥ ज्ञातितो धर्षणा चैव विशेषेणैव गर्हिता ॥ ५६ ॥ धर्ममर्थं च कामं च क्रमेण मधुसूदनः ॥ सेवत्वेष सतां धर्मान्स्थापितान्पद्मयोनिना ॥ ५७ ॥ महीतलं पारिजातमर्पयिष्याम्यहं यदि ॥ पौलोमीमादितः कृत्वा को नु मां बहु मंस्यते ॥ ५८ ॥ पारिजात महीपृष्ठे दृष्ट्वा पृष्ट्वा च मानुषाः ॥ स्वर्गार्थं नोद्यमिष्यन्ति दृष्ट्वा स्वर्गफलं क्षितौ ॥ ५९ ॥ पारिजातगुणान्मर्त्या जुषन्ति यदि नारद ॥ देवतानां मनुष्याणां न विशेषो भविष्यति ॥ ६० ॥ तत्र यत्क्रियते कर्म इह तद्भुज्यते नरैः ॥ स्वर्गार्थं न यतिष्यन्ति पारिजातगुणान्विताः ॥ ६१ ॥ सर्वरत्नवरः स्वर्गे पारिजातस्तपोधन ॥ तुल्यं देवसमैर्मर्त्यैः सर्वदैव जगद्भवेत् ॥ ६२ ॥

कल्पवृक्ष और कर्मोंके फलकी प्राप्ति देख स्वर्गके निमित्त उद्योग नहीं करेंगे ॥ ५९ ॥ हे नारद ! यदि मनुष्य पारिजातके गुणको पृथ्वीमेंही सेवन करेंगे तो देवता और मनुष्योंमें विशेष क्या होगा ॥ ६० ॥ जो वहां मनुष्य करते हैं वह यहां पाते हैं वह गुणयुक्त सन्तान जब कल्पवृक्षके गुणोंसे युक्त मनुष्य हो जांयगे, तब कल्पवृक्षके निमित्त यत्न करेंगे ॥ ६१ ॥ हे तपोधन ! स्वर्गमें सब रत्नोंमें श्रेष्ठ यह पारिजातही है मनुष्यभी इसे पाकर देवता हो जांयगे, तब सब जगत् देवत्व हो जागया ॥६२॥

जब पृथ्वीमेंही स्वर्गफलकी प्राप्ति हुई तो मनुष्य यज्ञादिक न करेंगे, और देवताओंके तुल्य हो इष्टापूर्तादिभी न करेंगे ॥ ६३ ॥ यज्ञ जप आह्निक कर्म नित्य हमको तृप्त करते हैं, हे तपोधन ! अब तो श्रद्धासे मनुष्य स्वर्गकी इच्छासे हमारे निमित्त कर्म करते हैं ॥ ६४ ॥ फिर पारिजातके गुणोंसे युक्त होकर कुछ न करेंगे और तिन कर्मोंसे हीन होनेसे हम तेजविहीन हो जांयगे ॥६५॥ यहांसे धान्यकी वर्षा होती है, पृथ्वीमें पुरुष उसीसे जीते हैं और वे पुरुष हमको दानयज्ञसे तृप्त करते हैं ॥ ६६ ॥ यदि मनुष्योंको भूख प्यास न लगे रोग जरा मृत्यु रतिकी इच्छा न हो ॥ ६७ ॥ हे

यज्ञैर्मर्त्या न यक्ष्यन्ति लब्धस्वर्गफला भुवि ॥ न पूर्तानि प्रदास्यन्ति तुल्यत्वममरैर्गताः ॥ ६३ ॥ यज्ञैर्जप्याह्निकैश्चैव नित्यमाप्याययन्ति नः ॥ मानुषाः स्वर्गमिच्छन्तः श्रद्दधानास्तपोधन ॥ ६४ ॥ तत्सर्वं न करिष्यन्ति पारिजातगुणान्विताः ॥ निस्तेजसो भविष्याम ते गतास्तद्विहीनताम् ॥ ६५ ॥ इतः सुवृष्ट्या सस्यैस्ते जीवन्ति पुरुषा भुवि ॥ आप्याययन्तस्तेऽप्यस्मान्दानैर्यज्ञैस्तथैव च ॥ ६६ ॥ न बुभुक्षा पिपासा वा बाधते यदि मानुषान् ॥ रोगो जरा वा मृत्युर्वा धर्मज्ञरतिरेव च ॥ ६७ ॥ दौर्गन्ध्यं वा सुघोरा वा ईतयः कर्मसंभवाः ॥ किमुद्योगं करिष्यन्ति पारिजातगुणान्विताः॥६८॥ सर्वथा नयनं तत्र पारिजातस्य न क्षमम् ॥ इति वाच्यस्त्वयाविप्र विष्णुरक्लिष्टकर्मकृत् ॥ ६९ ॥ यथा यथा च मे भ्राता तुष्यत्येतद्विचारयन् ॥ तथा तथा त्वया कार्यं कार्यं मत्प्रीतिमिच्छता ॥ ७० ॥ हाराश्च मणयश्चैव चन्दनान्यगुरूणि च ॥ वस्त्राणि च विचित्राणि वध्वास्त्वं द्वारकां नय ॥ ७१ ॥ योग्यानि यानि मर्त्यानां यावदिच्छति केशवः ॥ न स्वर्गपरिमोषं तु कर्तुमर्हति साम्प्रतम् ॥ ७२ ॥

धर्मज्ञ ! इसी प्रकार महाघोर गंध कर्मोद्भव ईति भीति दुःख यह कुछ न हो तो फिर मनुष्य पारिजातके गुणयुक्त होकर कोई उद्योग न करेंगे ॥६८॥ बहुत क्या पारिजातका वहां ले जाना सवथा अनुचित है. हे नारद ! इस प्रकार महापराक्रमी विष्णुसे मेरी ओरसे कहना ॥ ६९ ॥ तिस प्रकार हमारे भ्राता इस वार्ताको विचार कर संतुष्ट हों वह कार्य हमारी प्रीतिकी इच्छासे तुमको करना चाहिये ॥ ७० ॥ हार मणि चन्दन अगर अनेक प्रकारके विचित्र वस्त्र वधूके निमित्त द्वारकाको ले जाओ ॥७१॥ मनुष्योंके योग्य जितने वस्त्रादि श्रीकृष्ण इच्छा करें, ले जाओ परन्तु स्वर्गके रत्न

हरण करना केशवको उचित नहीं ॥ ७२ ॥ यथेच्छ मनोहर रत्न मैं देता हूं, चित्र विचित्र बहुतसे भूषण यह सब देता हूं, परन्तु हे मुने ! पारिजात वृक्षको जो देवताओंका परम प्यारा है किसी प्रकार नहीं दे सकता ॥ ७३ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां पारिजातहरणे इन्द्रवाक्यं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ ॥ छ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! इन्द्रके वचन सुन नारदजी धर्म और वाक्यके जाननेवाले इन्द्रसे कहने लगे ॥ १ ॥ हे बलनिषूदन ! हे महाबाहो ! यह तुम्हारा कहना उचित है जिस कारणसे तुम मेरे बहुत मान्य हो ॥ २ ॥ मुझसे श्रीकृष्णने जब कहा था तबही

ददामि रत्नानि यथेप्सितान्यहं बहूनि चित्राणि विभूषणानि च ॥ न पारिजातं च कथंचन द्रुमं मुने प्रदास्यामि दिवौकसां प्रियम् ॥ ७३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे इन्द्रवाक्यं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ देवराजवचः श्रुत्वा नारदः कुरुनन्दन ॥ प्रोवाच वाक्यं वाक्यज्ञो धर्मात्मा धर्मवित्तमः ॥ १ ॥ अवश्यमेव वक्तव्यं हितं बलनिषूदन ॥ मया तव महाबाहो बहुमानोऽस्ति मे त्वयि ॥ २ ॥ उक्तो मया वासुदेवो जानता भवतो मतम् ॥ न दत्तः पारिजातोऽयं हरस्यापि त्वया पुरा ॥ ३ ॥ हेतवश्च मया तस्य दर्शितास्ते समासतः ॥ न चावगतवान्देवः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४ ॥ उपेन्द्रोऽहं महेन्द्रेण लालनीयः सदेति माम् ॥ उवाच पुण्डरीकाक्षो दत्तमुत्तरमेव च ॥ ५ ॥ पुनः पुनर्मया वास्य हेतवो देव दर्शिताः ॥ ततो न बुद्धिर्व्यावृत्ता वृत्रनाशन तस्य वै ॥ ६ ॥ अपि चाप्युक्तवान्देवो वाक्यान्ते मधुसूदनः ॥ प्रत्याह पुरुषश्रेष्ठः सरोषमिव वासव ॥ ७ ॥

मैंने उनसे कहा था कि यह पहले शिवने मांगा था उनकोभी नहीं दिया गया ॥ ३ ॥ वोह कारण मैंने संक्षेपसे उनको सुना दिया था परन्तु उन्होंने इस वार्ताको कुछ न गिनकर मुझे आपके पास भेज दिया यह मैं आपसे कहता हूं ॥ ४ ॥ उन्होंने यह कहा कि मैं उपेन्द्र हूं महेन्द्रको हमारा सदा लालन पालन करना उचित है, जब ऐसा पुण्डरीकाक्षने कहा तब मैंने उसके उत्तरमें ॥ ५ ॥ वारंवार बहुतसे हेतु दिखाये. हे इन्द्र ! परन्तु वृक्षके लेनेकी श्रीकृष्णने बुद्धि कमती नहीं की ॥ ६ ॥ और वाक्यके अन्तमें उन्होंने क्रोध कर कह दिया है; हे इन्द्र ! वह तुम पुरुषोत्तमकी वार्ता सुनो ॥ ७ ॥

देवता गन्धर्वगण राक्षस पिशाच पन्नग (सर्प) इनमेंसे कोईभी मेरी प्रतिज्ञा भंग करनेको समर्थ नहीं, तुम्हारा मंगलहो ॥८॥ यदि तुम्हारे मांगनेसे इन्द्र पारिजात वृक्ष न देगा तो शचीके हाथसेलिप्तचन्दनवाली इन्द्रकी चौडी छातीमें गदाप्रहार करूंगा॥९॥हे महेन्द्र!तुम्हारे भ्राता उपेन्द्रका यह परम निश्चय है अब इसमें जो उचित हो सो करो॥१०॥हे देवेश!अब मैं जो हितकी वार्ता कहता हूं सो सुनो,मेरी इच्छा है कि तुम द्वारका जानेको पारिजात देदो ॥११॥ हे राजन् ! जिस समय नारदजीने यह सत्य वार्ता कही तो उस समय इन्द्र क्रोध करके बोला ॥ १२ ॥ यदि मुझ बडे भाईमें अप-

न देवगन्धर्वगणा न राक्षसा न चासुरा नैव च पन्नगोत्तमाः॥मम प्रतिज्ञामपहन्तुमुद्यता मुने समर्थाः खलु भद्रमस्तु ते॥८॥सपारिजातं यदि न प्रदास्यति प्रयाच्यमानो भवता पुरंदरः ॥ ततः शचीव्यामृदितानुलेपने गदां विमोक्ष्यामि पुरंदरोरसि ॥ ९ ॥ उपेन्द्रस्य महेन्द्राय भ्रातुस्ते निश्चयः परः ॥ यदत्र मन्यसे न्याय्यं संप्रधार्य कुरुष्व तत् ॥१०॥ तत्त्वं हितं च देवेश श्रूयतां वदतो मम ॥ नयनं पारिजातस्य द्वारकां मम रोचते ॥११॥ नारदेनैवमुक्तस्तु सुव्यक्तं बलदेहभित् ॥ रोषाविष्टः सहस्राक्षोऽब्रवीदेतन्नराधिपः ॥ १२ ॥ अनागसि मयि ज्येष्ठे सोदरे यदि केशवः ॥ एवं प्रवृत्तः किं शक्यं कर्तुमद्य तपोधन ॥१३॥ बहूनि प्रतिलोमानि पुरा स कृतवान्मयि ॥ कृष्णो नारद सोढानि भ्रातेतिस्म मया सदा ॥ १४ ॥ खाण्डवे चार्जुनरथं पुरा वाहयता सता ॥ मदीया वारिता मेघाः शमयन्तोऽग्निमुद्धतम् ॥ १५ ॥ गोवर्द्धनं धारयता विप्रियं च कृतं मम ॥ तथा वृत्रवधे प्राप्ते साहाय्यार्थं वृतो मया ॥१६॥ समोहमिति सर्वेषां भूतानामिति चोक्तवान् ॥ स्वबाहुबलमाश्रित्य वृत्रश्च निहतो मया ॥१७॥

राधके विना केशव क्रोध करते हैं, तो हे तपोधन ! ऐसा करनेसे वह मेरा क्या कर सकते हैं॥१३॥पहलेभी उन्होंने बहुत कुछ हमारे विरुद्ध किया है, सो हे नारदजी ! भ्राता जानकर हमने यह सब सहनकर लिया था ॥ १४ ॥ एक समय खाण्डववनमें अर्जुनके साथ रथमें बैठे हुए इन्होंने जो मेघ मैंने अग्नि बुझानेको भेजे थे उनको शान्त कर दिया ॥१५॥ फिर गोवर्द्धन धारण कर इन्होंने मेरा अप्रिय किया, फिर वृत्रवधमें जब मैंने इनसे सहायता मांगी ॥ १६ ॥ तो प्रमट कह दिया, मैं तो सब प्राणियोंमें समान हूं, तब अपने बाहुबलके आश्रित हो मैंने वृत्रासुरको मारा ॥ १७ ॥

हे नारद! जब देवासुरसंग्राम हुआ था तब उन्होंने अपनी इच्छासेही युद्ध किया था सो क्या तुमको खबर नहीं है॥१८॥ बहुत कहनेसे क्या है अब श्रीकृष्णका किया हुआ ज्ञातिकलह प्रारम्भ हो यह ज्ञातिक्लेश हम नहीं करना चाहते, हे नारद ! इसमें तुम हमारे साक्षी हो॥१९॥ यदि केशव मेरी छातीमें गदा मारनेको उद्यत हैं तो शचीको दुःखी करें इसमें और गुण क्या दीख सक्ता है ॥२०॥ और अदितिके सहित उपवासमें प्राप्त हुए मेरे पिता कश्यपजीसे यह वार्ता कहो ॥ २१ ॥ अजितात्मा मेरे भ्राता रज और तमसे आवृत हैं और कामके वश हो स्त्रीके वाक्यसे मुझसे ऐसे कठोर

देवासुरेषु प्राप्तेषु संग्रामेषु च नारद ॥ युध्यत्यात्मेच्छया कृष्णो मुने सुविदितं तव ॥ १८ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन तस्माद्दिष्ट्या प्रवर्तताम् ॥ ज्ञातिभेदो न नः कार्यः साक्षी त्वं मम नारद ॥१९॥ ममोरसि गदां मोक्तुमुद्यतो यदि केशवः ॥ अनुशब्दश्चाथ पौलोमीं गुणः क इह दृश्यते ॥ २० ॥ उदवासगतो धीमान्पिता नः कश्यपः प्रभुः ॥ अदित्या सह मे मात्रा तयोर्वाक्यमिदं भवेत् ॥ २१ ॥ अजितात्मा मम भ्राता रजसा तमसा वृतः ॥ कामेन च स्त्रियो वाक्यादेव मामुक्तवान्गुरुम् ॥ २२ ॥ धिक् स्त्रियः सर्वथा विप्र धिक् राजसमतिं तथा ॥ यत्राधिक्षिप्तवान्विष्णुरेवं मां स्त्रीजितो द्विज ॥२३॥ न दृष्टं कश्यपकुले व्यपदेश्यं महामुने ॥ नैव दक्षकुलं दृष्टं मातुम यत्र संभवः ॥ २४ ॥ न ज्येष्ठता न राजत्वं देवानां प्रतिमानितम् ॥ कामरागाभिभूतेन कृष्णेन खलु नारद ॥२५॥ पुत्रदारसहस्रैर्हि भ्रातानघ विशिष्यते ॥ सद्वृत्ते ज्ञानसंपन्न इति ब्रह्मा पुराब्रवीत् ॥ २६ ॥ नास्ति भ्रातृसमो बन्धुराहार्य इतरो जनः ॥ इति मामब्रवीन्माता पिता चैव प्रजापतिः ॥ २७ ॥

वचन कहे हैं ॥२२॥ हे विप्र ! सर्वथा स्त्री और राजको धिक्कार है जिससे कि स्त्रीके वशीभूत हुए विष्णु भगवान्ने हमसे ऐसे वचन कहे ॥ २३ ॥ हे महामुने ! कश्यपके कुलमें हम उत्पन्न हुए न तो कृष्णने यह बात विचारी और न मेरी माताका दक्षकुल देखा जिससे मेरी उत्पत्ति है ॥२४॥ देवताओंकी ज्येष्ठता और राजपन श्रीकृष्णने कुछ न माना. हे नारद ! कृष्ण कामके रागसे अभिभूत हो रहे हैं ॥२५॥ सहस्रों पुत्र और दारोंसे भ्राता अधिक है सद्वृत्त है और ज्ञानसम्पन्न है तो ब्रह्माने पहले यह वार्ता कही थी ॥२६॥ भाईके समान और कोई इतर जन बन्धु नहीं है

यह वार्ता मुझसे माता पिता और प्रजापतिने कही है ॥२७॥ फिर सगे भ्रातामें तो यह बात विशेष करके है यह पिता कश्यपजीने कहा है जिस समय दानव अभिमानपूर्वक पाप करके मेरे साथ विरोध करते हैं,उस समय मैं उनका वध करता हूं ॥ २८ ॥ हे नारदजी ! यद्यपि यह बात आपके सामने कहनी योग्य नहीं है,तथापि समय आनेसे कहता हूं॥२९॥हे मुने!जिस समय यज्ञपुरुषका शिर जो धनुषकोटिपर मुख लगाये हुए खडे थे जब दीमकने उस कोटिको खा लिया तब उनका शिर छिन्न हो गया;हे नारद! देवताओंके वरदानसे छिन्नशिर विष्णुके स्नेहसे मैंने उनका शरीर धारण किया,और

सोदरे तु विशेषं तु पिता मे कश्यपोऽब्रवीत ॥ हन्ता मया विरुद्धयन्ते दानवाः पापनिश्चया ॥ २८ ॥ काममेतन्न वक्तव्यं स्वयमात्मस्तवान्वितम् ॥ प्राप्तस्त्ववसरो विप्र यदिहाद्योच्यते मया ॥ २९ ॥ धनुर्ज्यायां मुनिश्रेष्ठ छिन्नायां हि पुरानघ ॥ धन्वीभिरमराणां च वरदानान्महामुने ॥ ३० ॥ उत्कृत्तशिरसो विष्णोः पुरा देहो धृतो मया ॥ संधिते च शिरो यत्नाच्छिन्नं रौद्रेण तेजसा ॥ ३१॥ अहं विशिष्टो देवानामित्युक्त्वा पुनरच्युतः ॥ धनुरारोप्य दर्पेण स्थितो नारद केशवः ॥ ३२ ॥ किं मां पिता वा माता वा वक्ष्यतीति मया मुने ॥ स्नेहेन च स्थितं विष्णोः शरीरं मुनिसत्तम ॥ ३३ ॥ ऐन्द्रं वैष्णवमस्यैव मुने भागमहं ददौ ॥ यवीयांसमहं प्रेम्णा कृष्णं पश्यामि नारद ॥ ३४ ॥ संग्रामेषु प्रहर्तव्यं तेन पूर्वं तपोधन ॥ राजा किलाहं समरे प्रहराम्यग्रतो ध्रुवम् ॥ ३५ ॥ प्रादुर्भावेषु सर्वेषु स्वशरीरमिवानघ ॥ यतो रक्ष्यामि धर्मज्ञ केशवं भक्तिमाश्रितम् ॥ ३६ ॥

तीक्ष्ण रुद्रतेजसे छिन्न हुए शिरको मैंने यत्नसे जोड दिया ॥३०॥३१॥ मैं देवताओंमें श्रेष्ठ हूं,इस प्रकार श्रीकृष्णने कहकर धनुष धारण किया और बडे दर्पसे स्थित हुए॥३२॥अब इस कार्यसे मुझे माता पिता क्या कहेंगे जिन विष्णुका स्नेहसे शरीर पहले मैंने धारण किया था ॥ ३३ ॥ हे मुने ! इन्द्र और विष्णुका भागभी मैंने इन्हींको दिया;हे नारद ! मैं छोटे भ्राता कृष्णको बडे प्रेमसे देखता हूं ॥ ३४ ॥ हे तपोधन ! यद्यपि संग्राममें पहले उन्हेंही युद्ध करना चाहिये क्योंकि मैं राजा हूं, तथापि संग्राममें आगे मुझेही प्रहार करना पडता है॥३५॥सम्पूर्ण कार्योंमें मैंने भक्तिभावसे आश्रित हुए

केशवकी रक्षा करी है, जैसे कोई अपने शरीरकी रक्षा करता है॥३६॥हे मुने ! यह विष्णु बनाये हुए मेरे स्थानको तोडकर लोकोंके ऊपर अधिक भुवनोंको जाते हैं॥३७॥हे मुने ! उस तिरस्कारको भी हम पीठ पीछे करके विचारते हैं कि भ्राताके गौरवसे श्रीकृष्ण पालना करनेके योग्य है॥३८॥ हे नारद ! यह मेरा छोटा भाई बालक होनेसे पुत्रके समान है; हे नारद! ऐसा मात पिताने कहा है कि गोविंद मानी हैं ॥३९॥ तो भी हम प्यार करते हैं इससे हमारे प्यारोंमें श्रीकृष्ण बहुत इष्टहैं और उनका ऐसा स्नेह है कि हम वैरीही हो गये ॥४०॥ सर्वज्ञ बलवान शूर पात्र और मान्यके

इदं भङ्क्त्वा मदीयं च भवनं विष्णुना कृतम् ॥ उपर्युपरि लोकानामधिकं भुवनं मुने ॥ ३७ ॥ अवमानः स च मया पृष्ठतः क्रियते मुने ॥ लालनीयो मया बाल इत्येवं भ्रातृगौरवात् ॥ ३८ ॥ बालोऽयं मम पुत्रेति यवीयानिति नारद ॥ पित्रा मात्रा च गोविन्दो मानी च परिभाषितः ॥ ३९ ॥ इष्टस्तत्र जनानां च केशवः सुविशेतः ॥ वयं द्वेष्या न संदेहस्तत्र स्नेहोऽतिरिच्यते॥४०॥ सर्वज्ञो बलवाञ्छूरः पात्रं मानयिता तथा ॥ केशवेत्येव च ध्यानं यत्तद्वितथतां गतम् ॥ ४१ ॥ गच्छ नारद वक्तव्यः केशवो वचनान्मम ॥ आहूतो न निवर्तेयं समरं प्रति शत्रुभिः ॥ ४२ ॥ यदीच्छसि तदागच्छ सह्यं ते यत्त्वमिच्छसि ॥ प्रहरस्व च पूर्वं त्वं भार्याजित यथेच्छसि ॥ ४३ ॥ रथाङ्गनाथ शार्ङ्गेण गदया नन्दकेन च ॥ प्रहरारुह्य गरुडं दृढो भूत्वा जनार्दन ॥ ४४ ॥ प्रहृते प्रहरिष्यामि यथाशक्त्या च केशव ॥ अहो धिग्यदि मां स्नेहो विक्लवं न करिष्यति ॥ ४५ ॥

माननेवाले हैं यह हमारा विचार सर्वथा असत्य है ॥४१॥ हे नारद ! जाकर हमारी ओरसे श्रीकृष्णसे कहो कि इन्द्रको जो कोई शत्रु समरमें बुलाता है उससे यह निवृत्त नहीं होता है॥४२॥और जो तुम्हारी युद्धकी इच्छा है तो आओ जो तुम करोगे उसे सहन कर लेंगे. हे भार्याओंसे जीते हुए ! प्रथम आपही हमारे ऊपर प्रहार कीजिये,इसमें जो इच्छा हो सो करो ॥ ४३ ॥ हे जनार्दन ! चक्र गदा नन्दक शार्ङ्ग धनु धारण कर गरुडपर चढ दृढ होकर प्रहार कीजिये ॥४४॥ हे केशव ! आपके प्रहार करनेपर यथाशक्ति मैं प्रहार करूंगा. अहो ! जो मुझे स्नेह आर्द्र न करे

तो मुझे धिक्कार है ॥४५॥ हे मुनिराज ! जबतक श्रीकृष्ण संग्राममें मुझे जीत न लेंगे तबतक मैं पारिजात नहीं दूंगा ॥ ४६ ॥ हे तपोधन ! मुझे अपने बडे भ्राताको वह छोटे बुलातेहैं, फिर मैं उन स्त्रीक वशीभूत हुए हरिको किस प्रकारसे क्षमा करूंगा ॥४७॥ हे भगवन् ! आप अभी कृष्णकी पालनाकी हुई द्वारकापुरीमें जाइये; विवादमें स्थित हुए उन अज्ञानी अच्युतसे कहना चाहिये॥४८॥ हे तपोधन! मेरे वचन स्मरण करते हुए तुमको श्रीकृष्णसे यह कहना चाहियेकि विना जीते पारिजात क्या पलाशपत्रभी उसको नहीं मिल सकता ॥ ४९ ॥ और फिर हमारे प्रिय करनेकी इच्छासे

यावन्न संग्रामगतो जितोऽहं चक्रपाणिना ॥ पारिजातं न दस्यामि तावद्वो मुनिसत्तम ॥४६॥ मां समाह्वयते ज्येष्ठं यवीयान् स तपोधन ॥ अहं तं मर्षयिष्यामि किमर्थं स्त्रीजितं हरिम् ॥ ४७ ॥ अद्यैव गच्छ भगवन्द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ विवादे संस्थितः सोऽज्ञ इति वाच्यस्त्वयाऽच्युतः ॥४८॥ पलाशपत्रार्द्धमपि त्वयाजितो न पारिजातस्य तव प्रदास्यति ॥ इति प्रवाच्यो मधुसूदन-स्त्वया वचो मदीयं स्मरता तपोधन ॥ ४९ ॥ पुनः प्रवाच्यो भगवंस्त्वयाच्युतो मम प्रियार्थं खलु निर्विशङ्कितम् ॥ न मायया हर्त्तुमिहार्हसि द्रुमं सुयुद्धमेवास्तु धिगस्तु जिह्मताम् ॥ ५० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे इन्द्रवाक्यं नाम सप्ततितमोध्यायः ॥ ७० ॥ ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ महेन्द्रवचनं श्रुत्वा नारदो वदतां वरः ॥ विविक्ते देवराजानमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ कामं प्रियाणि राजानो वक्तव्या नात्र संशयः ॥ प्राप्तकालं तु वक्तव्यं हितमप्रियमप्युत ॥ २ ॥ अनियुक्तपुरो भागो न स्यादिति वदन्ति हि ॥ सुलोकगतितत्त्वज्ञो नयविज्ञानकोविदः ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णसे निःशंक हो तुम्हें यह वार्ता कहनी चाहिये ॥५०॥ आप मायासे वृक्ष न लीजिये किन्तु युद्ध करके लीजिये कुटिलताको धिक्कार है ॥ ५१ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे इन्द्रवाक्यं नाम सप्ततितमोऽध्यायः॥७०॥वैशम्पायन बोले;बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ नारदजी महेन्द्रके वचन सुनकर एकांतमें इंद्रसे इस प्रकार वचन बोले ॥१॥ हे इन्द्र ! राजोंके प्रति मेरे वचन निःसंदेह कहने चाहिये, और समय प्राप्त होनेपर हिताहितकी वार्ता अवश्य कहनी चाहिये॥२॥ विना आज्ञा पाये कहना उचित नहीं है यह वार्ता सुलोकको गतिके तत्त्व जाननेवाले नीतिवान् विज्ञान पण्डित जानते

हैं ॥ ३ ॥ कार्याकार्यकी प्राप्तिमें आप मुझसे पूछा करते थे इस कारण आज मैं आपसे कहता हूं यदि रुचे तो ग्रहण करो ॥ ४ ॥ जो हितकारी बन्धु हैं उनको विना पूछेभी पराभवकी इच्छा न करनेवालोंको कहना चाहिये, जो न्यायी समयकी प्राप्ति जानकर हितकी वार्ता कहते हैं ॥ ५ ॥ सत्पुरुषोंको उचित है कि हितकारी अप्रिय वचनभी कहने चाहिये, यही प्रेमकी अनृणता है, जो पूर्वकालमें सत्पुरुषोंने सत्कार की है॥६॥असत्यमें, धर्मके भंग होनेमें, शुश्रषा न करनेमें, अप्रियमें सत्पुरुषोंके प्रिय और हितकारी दोनों प्रकारके वचन नहीं कहने चाहिये ॥७॥ परंतु तुम्हें यह वार्ता

कार्याकार्ये समुत्पन्ने परिपृच्छति मां भवान् ॥ यतस्ततः प्रवक्ष्यामि गृह्यतां यदि रोचते ॥ ४ ॥ अनुक्तेनापि सुहृदा वक्तव्य जानता हितम्॥न्याय्यं च प्राप्तकालं च पराभवमनिच्छता ॥ ५ ॥ वक्तव्यं सर्वथा सद्भिरप्रियं चापि यद्धितम् ॥ आनृण्यमेत-स्नेहस्य सद्भिरेवाहृतं पुरा ॥६॥ अनृते धर्मभङ्गे च न शुश्रूषति चाप्रिये ॥ न प्रियं न हितं वाच्यं सद्भिरेवेति निन्दिताः ॥ ७ ॥ सर्वथा देव वक्तव्यं श्रूयतां शृण्वतां वर ॥ श्रुत्वा च कुरु सर्वज्ञ मम श्रेयस्करं वचः ॥ ८ ॥ अन्योन्यभेदो भ्रातृणां सुहृदां वा बलान्तक ॥ भवत्यानन्दकृद्देव द्विषतां नात्र संशयः ॥९॥ हितानुबन्धसहितं कार्यं ज्ञेयं सुरेश्वर ॥ विपरीतं च तद्बुद्ध्वा नित्यं बुद्धिमतां वर ॥१०॥ यत्स्यात्तापकरं पश्चादाराब्धं कार्यमीदृशम् ॥ आरम्भेन्नैव तद्विद्वानेष बुद्धिमतां नयः ॥११॥ विपाकमस्य कार्यस्य नानुपश्यामि शोभनाम् ॥ यदत्र कारणं देव निबोध विबुधाधिप ॥ १२ ॥

नहीं, इससे मैं कहता हूं. हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! सुनो, हे सर्वज्ञ ! सुनकर आप हमारे कल्याण करनेवाले वचन करिये ॥८॥ हे बलनिषूदन ! सुहृदोंका अथवा दो भ्राताओंका परस्पर भेद होना तुम्हारे शत्रुओंको आनन्द देनेवाला होगा, इसमें सन्देह नहीं॥९॥हे सुरेश्वर!हितके अनुबंधयुक्त कार्यको जानना चाहिये; हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! उसको विपरीत जानकर ॥१०॥ जो पीछे दुःख देताहै तुमने इस प्रकारका कार्य आरम्भ कियाहै, ऐसे कार्यको बुद्धिमान प्रारंभ न करे यह बुद्धिमानोंकी नीति है ॥११॥ इस कार्यका परिणाम मैं अच्छा नहीं देखता हूं. हे इन्द्र ! जो इसमें कारण है सो आप

जानिये ॥ १२ ॥ जो एकही ईश्वर इस संसारके कारण इस जगत्में स्थित है मायासेही यह कारण स्थूल सूक्ष्म देहनामक क्षेत्रको प्रकाश करते हैं इसीको पण्डितोंने क्षेत्रज्ञ कहा है ॥ १३ ॥ उस अप्रगट परमात्माका प्रगट भाग हिरण्यगर्भादि हैं,जो सब संसारका बीज है, उसका आत्मा सब संसारका प्रकाशक परंदेव है ॥ १४ ॥ प्रकृतिका प्रथम भाग यशस्विनी उमा देवी है, और यह उसका मुख्य अंश सम्पूर्ण भोग्य बस्तु संज्ञावाला है॥१५॥ उस व्यक्तिके प्रथम गुण रुक्मिणी आदि हैं, प्रकृति देवी अविनाशिनी है उमा वा रुक्मिणीसे युक्त देव शिव अथवा विष्णु गुणी है॥१६॥

य एको विश्वमध्यास्ते प्रधानं जगतो हरिः ॥ प्रकृत्या यं परं सर्वे क्षेत्रज्ञं वै विदुर्बुधाः ॥ १३ ॥ तस्याव्यक्तस्य यो व्यक्तो भागः सर्वभवोद्भवः ॥ तस्यात्मा परमो देवो विष्णुः सर्वस्य धीमतः ॥ १४ ॥ प्रकृत्याः प्रथमो भाग उमा देवी यशस्विनी ॥ व्यक्तः सर्वमयो विश्वस्त्रीसंज्ञो लोकभावनः ॥ १५ ॥ रुक्मिण्याद्या स्त्रियस्तस्या व्यक्तत्वे प्रथमो गुणः ॥ अव्यया प्रकृतिर्देवी गुणी देवो महेश्वरः ॥ १६ ॥ न विशेषोऽस्य रुद्रस्य विष्णोश्चामरसत्तम ॥ गुणिनश्चाव्ययः शास्ता सदा च प्रथमो गुणः ॥ १७ ॥ नारायणो महातेजाः सर्वकृल्लोकभावनः ॥ भोक्ता महेश्वरो देवः कर्त्ता विष्णुरधोक्षजः ॥ १८ ॥ ब्रह्मा देवगणाश्चान्ये पश्चात्सृष्टा महात्मना ॥ महादेवेन देवेश प्रजापतिगणास्तथा ॥१९॥ एवं पुराणपुरुषो विष्णुर्देवेषु पठ्यते ॥ अचिन्त्यश्चाप्रमेयश्च गुणेभ्यश्च परस्तथा ॥ २० ॥ अदित्या तपसा विष्णुर्महात्माराधितः पुरा ॥ वरेण च्छन्दिता तेन परितुष्टेन चादितिः ॥ २१ ॥

हे देवताओंमें श्रेष्ठ ! विष्णु और शिवमें कोई भेद नहीं है, इस कारण शिवभी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते, किंतु उस गुणीकाभी जो शासन करनेवाला अविनाशी परिणाम न होनेवाला सदा सबसे प्रथम स्थित हैं ॥ १७ ॥ महातेजस्वी नारायण लोककर्ता सबके रचनेवाले हैं, महेश्वर देव भोक्ता और अधोक्षज सबके कर्ता हैं॥१८॥ब्रह्मा और दूसरे इन्द्रियादिके अभिमानी देवता पीछे बनाये गये हैं; हे देवेश ! महादेवने प्रजापतिके गण रचे हैं॥१९॥ इस प्रकार पुराणपुरुष देवताओंमें पढे जाते हैं अचिंत्य और अप्रमेय तथा गुणोंसे परे हैं ॥२०॥ अदितिनेही तपसे महात्मा विष्णुका आराधन किया

था, तब उन्होंने प्रसन्न हो अदितिको वरदान देनेको कहा ॥२१॥ तब अदितिने कहा हे भगवन् ! मैं तुम्हारी समान पुत्र होनेकी इच्छा करती हूं, यह वार्ता प्रणाम कर उसने नारायणसे कही ॥२२॥ तब भगवान्ने त्रिलोकीमें मेरे समान कोईभी नही है, इस कारण मैं अंशसे तेरा पुत्र हूंगा॥२३॥ हे सुरेश्वर ! वह सब कुछ करनेवाले इस प्रकार तुम्हारे भ्राता हुए वही महातेजस्वी नारायण हैं, जिनको उपेन्द्र कहते हैं॥२४॥हे देव ! हरि अपनी इच्छासेही कश्यपके पुत्र हुए हैं, और अपने उन उन भावोंसे जगत्की उत्पत्ति पालन और नाश करते हैं ॥२५॥ वह सबके नाथ जगत्के कर्ता हर्ता

तयोक्तस्त्वत्समं पुत्रमिच्छामीति सुरोत्तम ॥ प्रणिपत्य च विज्ञाय नारायणमधोक्षजम् ॥ २२ ॥ तेनोक्तं भुवने नास्ति मत्समः पुरुषोऽपरः ॥ अंशेन तु भविष्यामि पुत्रः खल्वहमेव ते ॥ २३ ॥ स जातः सर्वकृद्देवो भ्राता तव सुरेश्वर ॥ नारायणो महातेजा यमुपेन्द्रं प्रचक्षते ॥ २४ ॥ इच्छन्नेव हरिर्देव काश्यपत्वमुपागतः ॥ तैस्तैर्भावैर्विकुरुते भूतभव्यभवाप्ययः ॥ २५ ॥ प्रादुर्भावं गतो देवो जगतो हितकाम्यया ॥ माथुरं जगतो नाथः कर्ता हर्ता च केशवः ॥ २६ ॥ यथा पललपिण्डः स्याद्व्याप्तः स्नेहेन मानद ॥ तथा जगदिदं व्याप्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २७ ॥ ब्रह्मण्यदेवः सर्वात्मा तैस्तैर्भावैर्विकुर्वति ॥ जगत्यतिगुणो देवो वैकुण्ठः सर्वभावनः ॥ २८ ॥ अतः समस्तदेवानां पूज्य एव च केशवः ॥ पद्मनाभश्च भगवान्प्रजासर्गकरो विभुः ॥ २९ ॥ अनन्तो धारणार्थं च बिभर्ति च महद्यशः ॥ यज्ञ इत्यपि सद्भिश्च कथ्यते वेदवादिभिः ॥ ३० ॥ श्वेतः कृतयुगे देवो रक्तस्त्रेतायुगे तथा ॥ द्वापरे च तथा पीतः कृष्णः कलियुगे विभुः ॥ ३१ ॥

भगवान् केशव देवताओंकी प्रार्थनासेही मथुरामें अवतार ले आये हैं॥२६॥हे मान देनेहारे ! जिस प्रकार मांसपिंड सर्वत्र स्नेहसे व्याप्त होता है, इसी प्रकार विष्णु भगवान्ने सब जगत् व्याप्त कर रक्खा है॥२७॥वह सर्वात्मा ब्रह्मण्य देव उन उन धर्मोंसे विकारमें प्राप्त होते हैं, जगत्में वह सर्वभावन वैकुण्ठपति गुणोंमें सबसे अधिक हैं ॥२८॥ इस कारण केशव सब देवताओंके पूज्य हैं यह भगवान् पद्मनाभ प्रजाके उत्पन्न करनेहारे हैं ॥ २९ ॥ वह पृथ्वी धारण करनेको शेषरूप हो महायश प्राप्त कर रहे हैं, वेदवादी उनको यज्ञरूप कहते हैं ॥ ३० ॥ यही देव कृतयुगमें श्वेत, त्रेतामें लाल,

द्वापरमें पीले, और कलियुगमें श्यामरूप हुए हैं ॥३१॥ इन्ही भगवान्‌ने दिव्यरूप धारण कर हिरण्याक्षको मारा और इस पृथ्वीको जलमें डूबनेसे नारायणने धारण किया ॥ ३२ ॥ तब जगत्‌के हितकी कामनासे इन्होंने वाराहरूप धारण किया और नृसिंहरूप धारण कर हिरण्यकशिपुको मारा ॥३३॥ वामनरूप धारण कर विष्णुने पृथ्वीको जीत लिया था, तब देवने सर्पबन्धनसे राजाको बांध लिया ॥३४॥ और देवदानवोंकी साधारण लक्ष्मीकोभी ग्रहण कर लिया परन्तु उदार पराक्रमी विष्णुने यह कार्य तुम्हारेही निमित्त किया था॥ ३५ ॥ जिसका तप नष्ट हो जाता है और जो

अवधीत्स हिरण्याक्षं दिव्यरूपधरो हरिः ॥ दधाराप्सु निमज्जन्तीमेष देवो वसुंधराम् ॥३२॥ वाराहं वपुराश्रित्य जगतो हितकाम्यया ॥ जघ्ने हिरण्यकशिपुं नारसिंहवपुर्हरिः ॥३३॥ जिगाय जगतीं चैव विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ बबन्ध च बलिं देवः श्रीमान्पन्नगबन्धनैः ॥ ३४ ॥ देवदानवसंभूतामाकामयदपि श्रियम् ॥ त्वय्यनन्तः पुरा विष्णुरुदारोऽमितविक्रमः ॥ ३५ ॥ सावशेषं तपो यस्य तन्निहन्ति जनार्दनः ॥ अलीकेष्वपि वर्तन्तं व्रतमेतन्महात्मनः ॥ ३६ ॥ जघ्ने च दानवान्मुख्यान्देवानां ये च शत्रवः तव प्रियार्थं गोविन्दो धर्मनित्यः सतां गतिः ॥ ३७ ॥ रामत्वमपि चावाप्य जघ्ने रावणमात्मवान् ॥ भूत्वा कामगुणांश्चैव जघान द्विरदं हरिः ॥ ३८ ॥ हिताय जगतोऽद्यापि लोके वसति मानुषे ॥ उपेन्द्रो जगतां नाथः सर्वभूतोत्तमोत्तमः ॥ ३९ ॥ जटी कृष्णाजिनी दण्डी दृष्टपूर्वो मया हरिः ॥ दैतेयेषु चरन्देवस्तृणेष्वग्निरिवोद्धतः ॥४०॥ अद्राक्षमपि गोविन्दं दानवैकार्णवं जगत् ॥ कुर्वाणं दानवैर्हीनं जगतो हितकाम्यया ॥ ४१ ॥

कुत्सित मार्गमें चलता है उसका श्रीकृष्ण वध करते हैं यह उनका व्रत है ॥ ३६ ॥ जो देवताओंके शत्रु हैं, उन दानवोंकाही वे वध करते हैं. हे इन्द्र ! सत्पुरुषोंकी परम गति श्रीकृष्णजी तुम्हारे निमित्तही यह सब कार्य करते हैं ॥ ३७ ॥ इन्होंनेही रामावतार ले युद्धमें रावणको मारा था, असुरोंको ऐसे मारते हैं जैसे कि सिंह हाथीको मारता है ॥३८॥ अबभी जगत्‌के मंगलके निमित्त वे मनुष्यलोकमें निवास करते हैं, वे उपेन्द्र जगत्‌के नाथ सब प्राणियोंमें उत्तम हैं ॥२९॥ जटाधारे मृगचर्म ओढे दण्ड लिये हरिको तृणोंमें अग्निके समान विचरता हुआ देखा है॥४०॥ हे इन्द्र ! जग-

त्के हितके निमित्त गोविन्दने संसार दानवोंसे हीन कर दिया कारण कि एक समय दानव बहुत बढ गये थे ॥ ४१ ॥ इस कारण जनार्दन अवश्य द्वारकामें पारिजात ले जायँगे.हे अमरश्रेष्ठ ! इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४२ ॥ भ्राताके स्नेहसे अभिभूत हुए तुम कृष्णपर प्रहार नहीं करोगे. हे वासव ! कृष्णभी अपना बडा जानकर तुमपर प्रहार नहीं करेगा ॥४३॥ हे देव ! यदि आप मेरा कहना न सुनें तो आप अपने धर्मज्ञ मंत्रियोंसे इस विषयमें पूछ लीजिये॥४४॥ वैशंपायन बोले;हे जन्मेजय ! जब इस प्रकारसे नारदजीने इन्द्रसे कहा तब इन्द्रने जगत्के गुरु नारदजीसे यह वचन कहे ॥४५॥

अवश्यं पारिजातं ते नयिष्यति जनार्दनः ॥ द्वारकाममरश्रेष्ठ नानृतं च ब्रवीम्यहम् ॥ ४२ ॥ भ्रातृस्नेहाभिभूतस्त्वं न कृष्णे प्रहरिष्यसि ॥ नापि कृष्णस्त्वयि ज्येष्ठे प्रहरिष्यति वासव ॥ ४३ ॥ नैव चेच्छ्रोष्यति प्रोक्तं मया देव कथंचन ॥ पृच्छ त्वं नयधर्मज्ञान्ये हितास्तव मन्त्रिणः ॥ ४४ ॥ वैशम्पायन उवाच॥ नारदेनैवमुक्तस्तु महेन्द्रो जनमेजय ॥ इदमुत्तरमीशोऽथ प्रत्युवाच जगद्गुरुम् ॥ ४५ ॥ एवंविधप्रभावं त्वं कृष्णं वदसि यद्द्विज ॥ एवमेतत्सुबहुशः श्रुतं खलु मया मुने ॥ ४६ ॥ यतश्चैवंविधः कृष्णस्ततोऽहं तस्य वै तरुम् ॥ न प्रदास्यामि दातव्यं सतां धर्ममनुष्मरन् ॥४७॥ महाप्रभावो नाल्पार्थे रुष्येदिति विचिन्तयन् ॥ व्यवस्थितोऽहं भद्रं ते मुने सर्वगुणादिति ॥ ४८ ॥ महाप्रभावाः सततं भवन्ति हि सहिष्णवः ॥ श्रोतारश्चैव सततं वृद्धानां ज्ञानचक्षुषाम् ॥ ४९ ॥ महात्मा कारणे नाल्पे कृष्णो धर्मभृतां वरः ॥ भ्रात्रा ज्येष्ठेन सर्वज्ञो विरोधं गन्तुमर्हति ॥ ५० यथैव मम मातुः स वरं प्रादादधोक्षजः ॥ तथैव तस्याः पुत्राणां ज्येष्ठानां सोढुमर्हति ॥ ५१ ॥

हे नारद ! यदि तुम कृष्णका इस प्रकारका प्रभाव कहते हो तो मैंने बहुत सुना है ॥ ४६ ॥ जो इस प्रकारसे कृष्ण हैं तो मैं उनको वृक्ष नहीं दूंगा, कारण कि सत्पुरुषोंका यही धर्म है ॥ ४७ ॥ महाप्रतापी थोडेसेके निमित्त क्रोध नहीं करते, ऐसा विचारकर मैं इस कार्यमें स्थित हूं ॥ ४८ ॥ विशेषकर महाप्रतापी सहनशील होते हैं, और महाज्ञानवाले और सदा ज्ञानचक्षुवाले वृद्धोंके वचन सुनते हैं ॥ ४९ ॥ सो महात्मा कृष्ण थोडेसेके निमित्त अपने ज्येष्ठ भ्राताके साथभी विरोध नहीं करेंगे कारण कि वह सर्वज्ञ हैं॥५०॥जिस प्रकारसे मेरी माताको इन भगवान्ने वर दिया है इसी

प्रकार उसके ज्येष्ठ पुत्रोंकी सब वार्ताभी सहन करेंगे॥ ५१॥जिस प्रकार जनार्दन स्वयं अपनी इच्छासे उपेन्द्र हुए इसी प्रकार वह अपने भ्राता इन्द्रका सन्मानभी करेंगे ॥ ५२ ॥ और पहले ज्येष्ठभावको नहीं प्राप्त हुए तो मधुसूदन अब ज्येष्ठभावको प्राप्त हो जाय ॥ ५३ ॥ इस प्रकार इन्द्रने नारदजीके प्रति निश्चित शब्द कहकर उन धर्मात्माने उनको विदा कर दिया, तब वह तपोधन नारदजी यदुश्रेष्ठोंसे पालना की हुई उस मनोहर कुशस्थली अर्थात् द्वारकामें गये ॥ ५४ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि पण्डितज्वालाप्रसादकृतभाषायामेकसततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

यथैवोपेन्द्रतां यातः स्वयमिच्छन् जनार्दनः ॥ तथैव भ्रातुरिन्द्रस्य सन्मानं कर्तुमर्हति ॥ ५२ ॥ ज्यैष्ठ्यमेतेन देवेन नारब्धं किं पुरातने ॥ अथेदानीमपीच्छेत्स ज्येष्ठोऽस्तु मधुसूदनः ॥५३॥ सुनिश्चितं बलरिपुमीक्ष्य नारदो विसर्जितस्त्रिदशवरेण धर्मभृत् ॥ ययौ पुरीं यदुवृषभाभिरक्षितां कुशस्थलीं धृतिमांस्तपोधनः ॥५४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे नारदस्य स्वर्गात्पुनरागमनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथैत्य द्वारकां रम्यां नारदो मुनिसत्तमः ॥ ददर्श पुरुषश्रेष्ठं नारायणमरिंदमम् ॥ १ ॥ स्ववेश्मनि सुखासीनं सहितं सत्यभामया ॥ विराजमानं वपुषा सर्वतेजोऽतिगामिना ॥२॥ तमेवार्थं महात्मानं चिन्तयन्तं दृढव्रतम् ॥ केवलं योजयन्तं च वाक्यमात्रेण भाविनीम् ॥३॥ दृष्ट्वैव नारदं देवः प्रत्युत्थाय अधोक्षजः ॥ पूजयामास च तथा विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ४ ॥ सुखोपविष्टं विश्रान्तं प्रहस्य मधुसूदनः ॥ वृत्तान्तं परिपप्रच्छ पारिजाततरुं प्रति ॥ ५ ॥ अथाचष्ट मुनिः सर्वं विस्तरेण तपोधनः ॥ इन्द्रानुजायेन्द्रवाक्यं निखिलं जनमेजय ॥ ६ ॥

वैशंपायन बोले; मुनिश्रेष्ठ नारदजीने मनोहर द्वारकापुरीमें आकर नारायणका दर्शन किया ॥ १ ॥ सत्यभामाके सहित अपने मंदिरमें बैठे हुए और सर्वत्र तेजयुक्त अपने शरीरसे विराजमान थे ॥ २ ॥ उसही अर्थको दृढव्रततासे विचारते हुए और वचनमात्रसे भामिनीको समुझा रहे थे ॥ ३ ॥ नारदजीको देखतेही श्रीकृष्ण खडे हो गये, और विधिपूर्वक शास्त्रानुसार उनका पूजन किया ॥ ४ ॥ जब नारदजी सुखसे बैठ गये तब श्रीकृष्णजी बैठ गये और हँसकर पारिजातका वृत्तान्त पूछने लगे ॥ ५ ॥ हे जन्मेजय! यह वचन सुनकर नारदजीने इन्द्रके कहे सब वचन सुना दिये ॥ ६ ॥

यह सब वचन सुनकर भगवान् नारदजीसे बोले; हे धर्मवालोंमें श्रेष्ठ! कलको मैं अमरपुरीमें जाऊंगा ॥ ७ ॥ यह कह नारदजीके साथ भगवान् सागरके तटपर गये और एकान्तमें नारायणने कहा ॥ ८ ॥ हे तपोधन ! महेन्द्रके भवनमें जाकर तुम अब यह वचन कहो और अभिवादन कर देवेन्द्रसे यों समझाओ ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! युद्धमें इन्द्र स्थित नहीं हो सकता, और कल्पवृक्षके लानेकाभीं तुम निश्चय जानो ॥ १० ॥ यह कृष्णके वचन सुन नारद इन्द्रलोकको गये, और देवेन्द्रके निकट श्रीकृष्णके वचन सुनाये ॥ ११ ॥ तब यह वचन इन्द्रने बृहस्पतिसे कहे; हे कुरुनन्दन ! यह वचन सुन बृह-

श्रुत्वा कृष्णस्तु तत्सर्वं नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ अमरावतीं पुरीं यास्ये श्वोऽहं धर्मभृतां वर ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा नारदेनैव सहितः सागरं ययौ ॥ संदिदेश ततस्तत्र विविक्तो नारदं हरिः ॥ ८ ॥ महेन्द्राभवनं गत्वा अद्य ब्रूहि तपोधन ॥ अभिवाद्य महात्मानं मद्वाक्यममरोत्तमम् ॥ ९ ॥ न युद्धे प्रमुखे शक्र स्थातुमर्हसि मे प्रभो ॥ पारिजातस्य नयने निश्चित त्वमवेहि माम् ॥ १० ॥ एवमुक्तस्तु कृष्णेन नारदस्त्रिदिवं गतः ॥ आचचक्षेऽथ कृष्णोक्तं देवेन्द्रस्यामितौजसः ॥ ११ ॥ ततो बृहस्पतेः शक्रः शशंस बलनाशनः ॥ श्रुत्वा बृहस्पतिर्देवमुवाच कुरुनन्दन ॥ १२ ॥ अहो धिग्ब्रह्मसदनं मयि याते शतक्रतो ॥ दुर्नीतमिदमारब्धमत्र भेदो हि दारुणः ॥ १३ ॥ अनाख्यात्वा कथं नाम भवता भुवनेश्वर ॥ ममैतत्कृत्यमारब्धं देव केनापि हेतुना ॥ १४ ॥ अथवा भवितव्येन कर्मजेन प्रयुज्यते ॥ जगद्वृत्तञ्च विविधं न शक्यमनिवर्तितुम् ॥ १५ ॥ सहसैव तु कार्याणामारम्भो न प्रशस्यते ॥ तदेतत्सहसारब्धं कार्यं दास्यति लाघवम् ॥ १६ ॥

स्पतिजी बोले ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! धिक्कार है तुमको जो मेरे ब्रह्मलोकमें जानेपर यह दुर्नीत कर बैठे यह महाभेद होगा ॥ १३ ॥ हे भुवनेश्वर ! तुमने किस प्रकार मेरे विना कहे यह कृत्य आरंभ किया ॥ १४ ॥ अथवा होनहार कर्मको क्या करे. हे इन्द्र ! संसारमें कोई प्रारब्धको नहीं मेट सक्ता ॥ १५ ॥ किसी कार्यका एकसाथ आरम्भ करना भला नहीं सो यह तुम्हारा साहसका कार्य तुम्हारी लघुताका हेतु होगा ॥ १६ ॥

तब महात्मा बृहस्पतिजीसे इन्द्रने कहा जो होना था सो हो गया, परन्तु अब क्या किया जाय यह आप कहिये ॥१७॥ तब होनहार व्यतीतके तत्त्व जाननेवाले महात्मा नीचेको मुख कर विचारते हुए यह वचन बोले॥१८॥अपने पुत्रके साथ यत्नसे जनार्दनसे युद्ध करो.हे इन्द्र ! मैं वही वार्ता करूंगा जिससे न्याय होगा ॥१९॥ ऐसा कह बृहस्पति क्षीरसागरमें गये और यह सब वार्ता महात्मा कश्यपजीसे कही ॥२०॥ यहवचन सुन कश्यपजी क्रोधसे बृहस्पतिजीसे कहने लगे भाई ! यह अवश्य होनहार है इसका अन्यथा नहीं होगा ॥२१॥ देवशर्मा महर्षि गौतमकी भार्याकी इच्छा करते

बृहस्पतिं महात्मानं महेन्द्रस्त्वब्रवीद्वचः ॥ एवं गतेऽद्य यत्कार्यं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १७ ॥ तमुवाचाथ धर्मात्मा गतानागततत्त्ववित् ॥ अधोमुखश्चिन्तयित्वा बृहस्पतिरुदारधीः ॥ १८ ॥ यतस्व सह पुत्रेण योधयस्व जनार्दनम् ॥ तथा शक्र करिष्यामि यथा न्याय्यं भविष्यति ॥ १९ ॥ बृहस्पतिस्त्वेवमुक्त्वा क्षीरोदं सागरं गतः ॥ आचष्ट मुनये सर्वं कश्यपाय महात्मने ॥२०॥ तच्छ्रुत्वा कश्यपः क्रुद्धो बृहस्पतिमभाषत ॥ अवश्यं भाव्यमेतद्धि सर्वथा नात्र संशयः ॥२१॥ इच्छतः सदृशीं भार्यां महर्षेर्देवशर्मणः ॥ अपध्यानकृतो दोषः पतत्येष शतक्रतोः ॥ २२ ॥ तस्य दोषस्य शान्त्यर्थमारब्धश्च मुने मया ॥ उदवासः स दोषश्च प्राप्त एव सुदारुणः ॥ २३ ॥ तद्गमिष्यामि मध्येऽस्य सहादित्या तपोधन ॥ उभौ तौ वारयिष्यामि दैवं संवदते यदि ॥ २४ ॥ बृहस्पतिस्तु धर्मात्मा मारीचमिदमब्रवीत् ॥ प्राप्तकालं त्वया तत्र भवितव्यं तपोधन ॥ २५ ॥

हुए उनके शाप कारण मनुष्यसे पराभवकी प्राप्ति इन्द्रको हुई ॥२२॥ हे मुने ! इस दोषकी शांतिके निमित्त यद्यपि यहां आकर मैंने जलमें रहना आरम्भ किया है, तथापि वह दारुण दोष आनकर प्राप्त हुआ॥२३॥सो मैं इस विरोधके मध्यस्थ होकर इसे निवारण करूंगा और अदितिके साथ वहां जाऊंगा, यदि दैव अनुकूल रहा तो इन दोनोंको निवारण करूंगा ॥२४॥ तब धर्मात्मा बृहस्पतिजी इस प्रकारसे कश्यपजीसे बोले; हे तपोधन ! समय प्राप्त होनेपर तुमको निवारण करना योग्य है ॥२५॥

बहुत अच्छा यह वचन कश्यपजी कहकर बृहस्पतिजीको भजकर भूतगणोंके ईश्वर रुद्रदेवको पूजन करनेके निमित्त चले गये ॥ २६ ॥ वहां सौम्यस्वभाव महात्मा शिवजीका पूजन कर वरकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् अदितिके साथ कश्यपजी उन्हें प्रसन्न करने लगे॥२७॥तब कश्यपजी अनेक स्तुतियोंसे ईशानदेव शिवजीको प्रसन्न करने लगे वेदोक्त और अपने रचे स्तोत्रोंसे जगत्पतिकी आराधना करने लगे॥२८ ॥ कश्यपजी बोले, महापराक्रमी अथवा महापादविक्षेपवाले संसारके रचनेवाले ईश्वर जगत्के उत्पन्नकर्ता धर्मके देखनेहारे, कर्म करनेवालोंपर अनुग्रह करनेहारे, सर्वात्मक

तथेति कश्यपश्चोक्त्वा संप्रस्थाप्य बृहस्पतिम् ।। जगामार्चयितुं देवं रुद्रं भूतगणेश्वरम् ॥ २६ ॥ तत्र सौम्यं महात्मानमानर्च्य वृषभध्वजम् ॥ वरार्थी कश्यपो धीमानदित्या सहितः प्रभुः ॥ २७ ॥ तुष्टाव च तमीशानं मारिचः कश्यपस्तदा॥वेदोक्तैः स्वकृतैश्चैव स्तवैः स्तुत्यं जगद्गुरुम् ॥ २८ ॥ कश्यप उवाच ॥ उरुक्रमं विश्वकर्माणमीशं जगत्स्रष्टारं धर्मदृश्यं वरेशम् ॥ ससर्व त्वां धृतिमद्धाम दिव्यं विश्वेश्वरं भगवन्तं नमस्ये ॥ २९ ॥ यो देवानामधिपः पापहर्ता तं तं विश्वं येन जगन्मयत्वात् ॥ आपो गर्भं यस्य शुभा धरित्र्यो विश्वेश्वरं तं शरणं प्रपद्ये ॥ ३० ॥ शालावृकान्यो यतिरूपो निजघ्ने दत्तानिन्द्रेण प्रणुदो हितानाम् ॥ विरूपाक्षं सुदर्शनं पुण्ययोनिं विश्वेश्वरं शरणं यामि मूर्ध्ना ॥ ३१ ॥ भुंक्ते य एको विभुर्जगतो विश्वमग्र्यं धाम्नां धाम सुकृतित्वान्न धृष्यः ॥ पुष्यात्स मां महसा शाश्वतेन सोमपानां मरीचिपानां वरिष्ठः ॥ ३२ ॥

सत्वकी धारणसे युक्त,दिव्यस्वरूप विश्वेश्वर भगवान्को नमस्कार करता हूं॥२९॥जो देवताओंके स्वामी पापके हरनेहारे जगन्मय होनेसे जो जगत्में व्याप्त हैं; जिसके गर्भमें सब जगत्का कार्यरूप जल स्थित है उस विश्वेश्वर नाथकी मैं शरणमें प्राप्त होता हूं ॥३०॥ जो वेदान्तविचारहीन अजितेन्द्रिय यतियोंको शालावृकोंसे भक्षण कराता है,और जो इन्द्रियरूप शालावृकोंको यतिरूप होकर नष्ट करता है,शमदमादिरूप मित्रोंका प्रेरक है,उस विरूप नेत्र सुन्दरदर्शनवाले पुण्ययोनि विश्वेश्वरकी शरणमें शिरझुकाकर प्राप्त होताहूं॥ ३१॥जो एकही विभु जगका स्वामी,सर्वश्रेष्ठ संसारमें शुद्धजनोंकी पालना

करता है, जो सूक्ष्मविश्वकोभी भोक्ता या संहार करता है, जो चक्षुसूर्यादिका प्रकाशक है, शब्दब्रह्मरूप होनेसे किसीके धर्षणमें नहीं आता, सो परमात्मा मेरा पालन करे, जो कर्मकाण्डी चंद्र किरण पानमात्रसे निर्वाह करनेवाले महामुनियोंमें श्रेष्ठोंको स्वर्गलोक देनेहारे हैं ॥३२॥ अथवा वेदसे पतिपाद्य पांच कोशयुक्त संसारके कारण कृत कार्य महाबलिष्ठ दानवोंके बाधक यज्ञमें आहुतिस्वरूप यज्ञिय संस्कृतरूप विश्वेश्वर देवके मैं शरण जाता हूं ॥३३॥ जिनके अधिष्ठानसे यह सब जगत् इन्द्रजालमात्र है और शरणमें आये हुओंको सुखका देनेवाला है जो अन्तरिक्ष चलनेवाले रथमें स्थित हो गमन करता है, वह विश्वेश्वर नित्यप्रति मुझे सुख देनेहारे हों ॥ ३४ ॥ अन्तःकरणमें विचरनेवाले, चिन्मय, जिनसे वेदकी रमणीय शाखा उत्पन्न हुई हैं,

अथर्वाणं सुशिरसं भूतयोनिं कृतिनं वीरं दानवानां च बाधम् ॥ यज्ञे हुतिं यज्ञियं संस्कृतं वै विश्वेश्वरं शरणं यामि देवम् ॥ ३३ ॥ जगज्जालं विततं यत्र विश्वं विश्वात्मानं प्रीतिदेवं गतानाम् ॥ य ऊर्ध्वगं रथमास्थाय याति विश्वेश्वरः सुमना मेऽस्तु नित्यम् ॥ ३४ अन्तश्चरं रोचनं चारुशाखं महाबलं धर्मनेतारमीड्यम् ॥ सहस्रनेत्रं शतवर्त्मानमुग्रं महादेवं विश्वसृजं नमस्ये ॥ ३५ ॥ शुचिं योगं शंसनं शान्तपापं शर्वं शंभुं शंकरं भूतनाथम् ॥ धुरंधरं गोपतिं चन्द्रचिह्नं हृषीकाणामयनं यामि मूर्ध्ना ॥३६॥ आशुः शिशानं वृषभं रोरुवाणं कृतं धर्मं वितथं चाशुशेषम् ॥ वसुंधरं समृजिकं समं त्वां धृतव्रतं शूलधरं प्रपद्ये ॥३७॥

वह महाबली धर्मके नेता स्तुति करने योग्य सहस्रनेत्र सौ मार्गोंसे विदित कर्मफलके देनेहारे उग्रस्वरूप संसारके उत्पन्न करनेहारे महादेवको प्रणाम करता हू ॥ ३५ ॥ असंग, योगसे प्राप्त होने योग्य, वेदसे प्रशंसित पापहीन प्रलयमें सबका संहार करनेहारे सुखके हेतु करनेहारे जगत्की धुर धारण करनेहारे, गोइन्द्रियोंके पति, चन्द्रमौलि कालादिकोंके आश्रय शिवको शिरसे प्रणाम करता हूं ॥ ३६ ॥ शीघ्र प्रसन्न होनेवाले वा फल देनेहारे रागादि दोषोंके नष्ट करनेहारे, शमादि गुणोंके वर्षानेवाले, प्रातःसवनादिके क्रमसे गर्जनवाले, अनुष्ठान किये हुए यज्ञादि धर्मके फलको शीघ्र भुगाकर शेष करनेवाले, कर्मसे उत्पन्न हुए पुण्यके धारण करनेहारे, बुद्धिके अवधिरूप व्रतधारी शूलधारी महादेवकी शरणको प्राप्त होता हूं ॥३७॥

महावीर्यवान् कर्मफलके धारण करनेवाले,आदि,यज्ञकेअंगभावसे हीन यज्ञकरनेवालोंके याज्यस्वरूप,यज्ञके आरंभ विषय हविके भोक्ता जगत्में श्रेष्ठ ब्राह्मण-रूप धर्मके धारण करनेहारे शिवकी मैं शरणहोता हूं॥३८॥इन्द्रियादि गुणोंसे परे तुरीयस्वरूप हो विष्णुस्वरूपसे आपकायश त्रिलोकीमें व्याप्त है, मरण-धर्मसे क्षोभ करनेवालेमनोहररूप शुद्धात्मापुरुषअबाधितचैतन्यस्वरूप दुष्कर्म कार्योंको मोहनेवाले आपकोनमस्कार है॥३९॥योगिजनोंको ओंकारस्वरूप अर्थात् प्रपंचरूप ओंकारके शिरमेंभीअर्धमात्रास्वरूप हिंसाशून्य धर्मस्वरूपदृढव्रत क्षेपणक्रियारूप शूर धनुषविद्याकेज्ञाता,अस्त्र प्रयोग करनेहारे,पशुपति प्रजाके सृष्टि अवसानमें शान्त करनेहारे आपको नमस्कार है ॥४०॥ वह एकही अद्वितीय मित्र है भूत भविष्यत् वर्तमानमें अग्निस्वरूप हो हविको

अनन्तवीर्यं धृतकर्माणमाद्यं यज्ञाशेषं जयता चाभियाज्यम् ॥ हविर्भुजं भुवनानां सदैवं ज्येष्ठं द्विजं धर्मभृतां प्रपद्ये ॥ ३८ ॥
परं गुणेभ्यः पृश्निगर्भस्वरूपं यशः शृङ्गं व्यूहनं कान्तरूपम् ॥ शुद्धात्मानं पुरुषं सत्यधामं संमोहनं दुष्कृतिनां नमस्ये ॥३९॥
युक्तोंकारं स्वशिरसं चारुकर्म दृढव्रतं दृढधन्वानमाजम् ॥ शूरं वेत्तारं धनुषोऽस्त्रातिरेकं पतिं पशूनां शमनं नमस्ये ॥ ४० ॥ एको
रातिश्चैव भूतं भविष्यं सर्वातिथिर्यो हि जुषंत्यरिघ्नः॥ अरिंतुदोऽनुत्तमः संविभागी विभाजको मां भगवान्पातु देवः ॥४१॥ य एको
याति जगतां विश्वमीशो य एकोऽदान्मरुतां प्राणमग्र्यम् ॥ येनानृशंस्याच्छाश्वतं साम जुष्टं स मां जुष्यात्सुकृतिश्रेयसेऽद्य ॥४२॥
ब्रह्मासृजद्यो भुवनोत्तमोत्तमं तृप्तो विद्वान्ब्राह्मणः षड्गुणस्य ॥ सृष्ट्वा रसं व्याहृतिस्थं समग्रं समायादिः बहुरूपोरिहाङ्गैः ॥४३॥

भक्षण करता,कामादिदोषोंके नाशक,राक्षसोंके नाशक सब वस्तुओंके विभाग करनेहारे,सबसे श्रेष्ठ भगवान् हमारी सदा रक्षा करें ॥ ४१ ॥ जगत्का ईश्वरभी जो संसारमेंप्रविष्ट है जैसे चन्द्रमा जलमें प्रविष्ट हो,जिसने मरुतोंकोभी प्राणदानकिया है जिसने दयालुताके कारण निरन्तर साम मैत्रीका सेवन किया है,वह हमको पुण्योंसे संगठित करे ॥४२॥ ब्रह्माने सत्यलोककी रचना की है कारण कि वह ब्रह्मवित् अर्थात् ब्रह्मके जाननेवाले हैं,इसी कारण ऐश्वर्य ज्ञानयश लक्ष्मीवैराग्य आदिधर्मोंसे पूर्णऔर पूर्णहोनेसे सबप्रपंच निर्माण कर स्वयं उसमें प्रविष्ट होरहा है कामादिदोषोंकेनाशकरनेहारे सर्वज्ञता आदिसे तृप्त अनादिबोधस्वतंत्र सदा अलुप्तशक्तिअनन्तशक्ति मानादि गुणोंसे सम्पन्न सब लोकोंमें सब सामग्रीको रचकर अनेकप्रकारकी मायासे युक्त

होता है॥४३॥अतीन्द्रिय अर्थोंकेभी ज्ञापक जन्मरहित, सबके आत्माओंके ज्ञाता, विषयोंके जाननेहारे, उनके स्पर्शसुखके भोक्ता, जीवन करनेहारे परमानन्दस्वरूप, वायुकेभी प्राणपति, गंगा और गौरीके ईश, यज्ञादिके करनेवाले उसके फलको देनेवाले सारस्यके उत्पन्न करनेवाले॥॥४४॥त्रिनेत्र पुष्टिदु,ब्राह्मणोंके धर्म देनेवाले,यज्ञके करनेवाले, श्रेष्ठोंकेभी श्रेष्ठ, शत्रुओंके जीतनेवाले, देवोंकेभी देवकी मैं शरणको प्राप्त होता हूं॥४५॥अग्निरूपसे देवताओंके मुख,दुष्कर्मकारियोंको कालस्वरूप त्रिवृत्त आदि स्तोम स्तोत्र सौमयोगयुक्त संसारवृक्षके नाशक कर्मके साक्षी प्राणियोंके लयस्थान भूतपति गुणज्ञाता गुणाकार रुद्रकी मैं शरण जाता हूं ॥४६॥ अनुद्धत यश करनेवाले, आदि अंत मध्यमें स्थित,यज्ञ करनेवालोंके निमित्त साम्यरूप, वेद

व्यञ्जनोजनोऽथ विद्वान्समग्रः स्पृशिः शंभुः प्राणदः कृत्तिवासाः ॥ रसो ध्रुवः पवमानस्य भर्ता सपत्नीशः शंकरः सारधाता ॥४४॥ त्र्यम्बकं पुष्टिदं वो ब्रुवाणं धर्मं विप्राणां वरदं यज्वनां च ॥ वराद्वरं रणजेतारमीशं देवं देवानां शरणं यामि रुद्रम् ॥४५॥
आस्यं देवानामान्तकं दुष्कृतीनां त्रिवृत्स्तोमं वृक्षहं कर्मसाक्ष्यम् ॥ भूतायनं भूतपतिं गुणज्ञं गुणाकारं शरणं यामि रुद्रम् ॥४६॥
अनुद्धृतं यज्ञकर्तारमन्तं मध्यं चाद्यं यज्ञकृतां साम्यरूपम् ॥ वेदव्रतेषु बहुधा गीतमीशमभित्रिविष्टपं शरणं यामि रुद्रम् ॥४७॥
महाजिन व्रतिनं मेखलालं सुतोषणं क्रोधघवं विपापम् ॥ भूतं क्षेत्रज्ञं गुणिनं वा कपर्दिनं नतोऽस्मीशं वन्दनं वन्दनानाम् ॥४८॥
देवं देवानां पावनं पावनानां कृतिं कृतीनां महतो महान्तम् ॥ शतात्मानं संस्तुतं गोपतीनां पतिं देवं शरणं यामि रुद्रम् ॥४९॥
अन्तश्चरं पुरुषं गुह्यसंज्ञं प्रभास्वन्तं प्रणवं विप्रदीपम् ॥ हेतुं परं परमस्याक्षरस्य शुभं देवं गुणिनं सन्नतोऽस्मि ॥५०॥

जाननेवालोंसे वहुधा गाये हुए,ईश्वर स्वर्गमें व्याप्त होकर सब प्रकारसे शासना करनेवाले रुद्रदेवकी मैं शरण होता हूं॥४७॥ महागजचर्म धारण करनेवाले, व्रतधारी,मेखलासे अलंकृत थोडेही परिश्रमसे प्रसन्न होनेवाले,क्रोधके नाशक पापरहित नित्यसिद्ध देह इन्द्रिय अहंकारादिके प्रकाशक, गुणी जटाजूटके धारण करनेवाले वन्दनीयोंकेभी वन्दनीय शिवजीकी मैं शरणहूं॥४८॥ देवताओंके देवता पवित्रोंके पवित्र करनेवाले कृतियोंके कृति अर्थात् यज्ञोंकेभी यज्ञ बडोंकेभी बडे अनन्तमूर्ति इन्द्रियोंकेभी देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त रुद्रदेवकी शरणको प्राप्त होता हूं ॥ ४९ ॥सब प्राणियोंके अन्तरमें

विराजनेवाले,गुप्तरूप प्रकाशरूप, दूसरेके प्रकाशरहित, जीव नामक प्रतिबिम्बके हेतुभूत,गुणनिधान शंकर देवको नमस्कार है॥५०॥जगत् और जीवके प्रादुर्भावके कारण सूक्ष्म सब प्राणियोंसे पृथक् और सबमें मिले हुए सम्पूर्ण जगत्के आकारसे उत्पन्न हुए सबके लय करनेवाले महादानी आम्रादिमें माधुर्यरूपसे व्याप्त, हर्षस्वरूप मनोहर शिव सब ओरसे हमारी रक्षा करें॥५१॥अन्तर्यामिरूपसे सबके निकटमें रहनेवाले साधन और श्रद्धा करनेवालोंके समीपवर्ती, 'अहं ब्रह्मास्मि' इस ज्ञानवृत्तिके दाता, गणोंके पति महाश्रेष्ठ कर्म करनेवालोंके अधिपति इच्छा किये हुए अर्थोंके पूरण करनेवाले अथवा सर्वज्ञादि गुणोंसे पूर्ण ॥ ५२ ॥ अन्तर बाहर स्थित होनेवाले,सब क्लेशों तथा पापोंके दूर करनेवाले सबके स्वयं करनेवाले निमित्तकारण,

प्रसूतिरुभयोर्न प्रसूतश्च सूक्ष्मः पृथग्भूतेभ्यो न पृथक् चैकभूतः ॥ स्वयं भूतः पातु मां सर्वसादः प्रदः स्वापः संमदः पातु रत्नम् ॥५१॥आसन्नः सन्नतरः साधनानां श्रद्धावतां श्राद्धवृत्तिप्रणेता ॥ पतिर्गणानां महतां सत्कृतीनां पायान्मेषः पूरणः षड्गुणानाम् ॥ ५२ ॥ अन्तर्बहिर्वृजिनानां निहन्ता स्वयं कर्ता भूतभावी विकुर्वन् ॥ धृतायुधः सुकृतिनामुत्तमौजा प्रणुद्यान्मे वृजिन देवदेवः ॥५३॥ येनोद्धतास्त्रैः पुरा मायिनो वै दग्धा घोरेण वितथान्ताः शरेण ॥ महत्कुर्वन्तो वृजिनं देवतानां ज्यायानीशः पातु विश्वोदधाता ॥५४॥ भागीयसां भागमतोऽन्तमिच्छन्मखो दाक्षो येन कृत्तोऽन्वधावत् ॥ विद्वान्यज्ञस्यादिरथान्तः स देवः पायादीशो दक्षयज्ञान्तहेतुः ॥ ५५ ॥

भूत और भविष्यके उत्पादन कारण, क्रोधादि विकारके करनेवाले आयुधोंके धारण करनेहारे,उत्तम पराक्रमी देवदेव मेरे और साधुओंके पाप दूर करें ॥५३॥ जिसने महामाया करनेवाले अस्त्रधारी राक्षसोंको अपने बाणसे नाश कर दिया, वह देवताओंके पति इन्द्रके अघ प्रकाश करनेवाले विश्वके धारण करनेहारे ईश्वर हमारी रक्षा करें ॥५४॥ दक्षके यज्ञमें केवल अपनेही भागकी इच्छा करनेवाले, वहां देवताओंके वधकी इच्छा करनेवाले तथा उस यज्ञके विध्वंस करनेवाले सब कुछ जाननेवाले यज्ञके आदिस्वरूप दक्षके यज्ञका अन्त करनेहारे देव हमारी रक्षा करें ॥ ५५ ॥

जो जगत् उत्पन्न करके लय करता है,ऐसे अतिगुप्तरूप महेश्वरसे अन्य पालन करनेहारे विष्णु धन्य हैं, जिससे कि वह शमादि संस्कारसे युक्त हैं, उत्तम हैं,जिस यज्ञमें अग्नि और इन्द्र मुख्य हैं,उस यज्ञको और जगत्के अभेदभाव देखते हुए नारायण हमारी रक्षा करें कारण कि ऐश्वर्यादि छः गुणोंके नित्य आश्रय हैं ॥ ५६ ॥ कार्य उत्पत्ति संहार जिसके नित्य हैं, जिसके प्रसादसे सत्यगुणकी अधिकाई युक्त विष्णु उत्पन्न हुए हैं, जो इन्द्रादिकोंकेभी रक्षक दुष्टात्माओंको कालस्वरूप और जगत्को मातापिताके तुल्य पालन करके जगत् पीडन करनेवालोंको क्रोधसे नष्ट करनेवाले ॥ ५७ ॥ जिनके महातेजसमूहसे प्रथम विष्णु सूक्ष्म अंश विराट् ब्रह्मा हिरण्यगर्भ सनकादि पुत्रोंके सहित तथा मरीचि

अन्यो धन्यः संस्कृतश्चोत्तमश्च जगत्सृष्ट्वा योऽस्ति सर्वातिगुह्यः॥स मां मुखप्रमुखे पातु नित्यं विचिन्वानः प्रथमः षड्गुणानाम्॥५६॥ गुणत्रैकाल्यं यस्य देवस्य नित्यं सत्त्वोद्रेको यस्य भावात्प्रसूतः ॥ गोप्ता गोप्तॄणां सन्नदो दुष्कृतीनामाद्यो विश्वस्य बाधमानस्य क्रुद्धः ॥५७॥ धाम्नो यस्य हरिरग्रोऽथ विश्वो ब्रह्मा पुत्रैः सहितश्च द्विजाश्च ॥ पराभूता भवने यस्य सोमो जुषत्वेष श्रेयसे साधु गोप्ता ॥५८॥ यस्माद्भूतानां भूतिरन्तोऽथ मध्यं धृतिर्भूतिर्यश्च गुहाश्रुतिश्च ॥ गृहाभिभूतस्य पुरुषेश्वरस्य महात्मनः संभृडवेग्रस्य तस्य ॥ ५९ ॥ यल्लिङ्गाङ्कं त्र्यम्बकः सर्वमीशो भगलिङ्गाङ्कं यद्धचुमा सर्वधात्री ॥ नान्यत्तृतीयं जगतीहास्ति किंचिन्महादेवात्सर्व-सर्वेश्वरोऽसौ ॥ ६० ॥

आदि ब्राह्मणोंके सहित हुए हैं, वे जिस उमासहितके स्थानमें प्रवेश न पाकर पराभूत होते हैं वह मंगलकर्ता रक्षक देव हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥५८॥ जिससे आकाशादि भूतोंकी उत्पत्ति होती है,नाश और स्थिति होती है.इसी,कारण जिस किसी पराभव हुए मनुष्यके शिवके शरणागत होनेसे धृति आदिरूप अनुग्रह गुह्य वस्तुका श्रवण होता है,इस कारण उस महात्मा सर्वेश्वरके शरणको प्राप्त होते हैं, जो शरणमें आये पुरुषोंके व्यसन भंग करते हैं ॥ ५९ ॥ सबके ईश्वर त्र्यम्बक देवलिंग अंकयुक्त हैं, और सबके उत्पन्न करनेहारी धात्री भग अंक है, अर्थात् माहेश्वरी प्रजामें प्रमाण है कि और किसी चिन्हसे प्राणी उत्पन्न नहीं होते केवल लिंगांक और भगांकसे होते हैं,इस कारण महादेवसे पृथक् इस जगत्में कुछभी नहीं,इसी कारण शिवजी

सर्वेश्वर हैं यही सब शास्त्रका पक्षपातरहित सार है ॥ ६० ॥ जब भगवान् शिवकी इस प्रकार स्तुति की तब धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ कश्यपजीको उन्होंने दर्शन दिया ॥ ६१ ॥ और प्रसन्न हो वह देवेश कश्यपजीसे कहने लगे; हे प्रजापते ! जिस कारण तुमने हमारी स्तुति की है वह हमने सब जान लिया है ॥ ६२ ॥ इन्द्र और उपेंद्र महात्मा दोनों देवता स्वस्थताको प्राप्त होंगे, और महात्मा धर्मधारी श्रीकृष्ण कल्पवृक्षको ले जांयगे ॥ ६३ ॥ इन्द्र तो देवशर्मा मुनिसे शापित है. कारण कि तपसे दीपित हुए उन ऋषिके तपमें विघ्न करनेके निमित्त इन्द्रने उनकी भार्याकी इच्छा की थी ॥ ६४ ॥ हे

इति संस्तूयमानस्तु भगवान्वृषभध्वजः ॥ दर्शयामास धर्मात्मा कश्यपं धर्मधृग्वरम् ॥ ६१ ॥ उवाच चैनं देवेशः प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ येन संस्तौषि कार्येण त्वं तज्जाने प्रजापते ॥ ६२ ॥ इन्द्रोपेन्द्रौ महात्मानौ देवौ प्रकृतिमेष्यतः ॥ पारिजातं तु धर्मात्मा नयिष्यति जनार्दनः ॥ ६३ ॥ अपध्यातो महेन्द्रो हि मुनिना देवशर्मणा ॥ अस्याकांक्षत्पुरा भार्यां तपोदीप्तस्य कश्यप ॥ ६४ ॥ गम्यतां तत्र धर्मज्ञ दाक्षायिण्या सह त्वया ॥ आदित्या शक्रसदनं श्रेयस्ते पुत्रयोर्ध्रुवम् ॥ ६५ ॥ इति हरवचनं निशम्य विद्वान्कमलभवात्मजसूनुरप्रमेयः ॥ त्रिदशगणगुरुं प्रणम्य रुद्रं मुदितमनाः सुमनौकसं जगाम ॥ ६६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे कश्यपकृतरुद्रस्तोत्रं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ विष्णुर्महातेजा मुहूर्ताभ्युदित्ते रवौ ॥ मृगयाव्यपदेशेन ययौ रैवतकं गिरिम् ॥ १ ॥ आरोप्यैकरथे देवः सात्यकिं नरपुङ्गवम् ॥ प्रद्युम्नमनुगच्छेति प्रोक्त्वा कुरुकुलोद्वह ॥ २ ॥

धर्मज्ञ ! तुम अपनी भार्यासहित वहां जाओ, तुम इन्द्रभवन जाओगे तौ मंगल होगा ॥ ६५ ॥ इस प्रकार महाबलिष्ठ उपमारहित ब्रह्माजीके पुत्र कश्यपजीने शिवजीके वचन सुनकर देवताओंके गुरु रुद्रको प्रणाम कर प्रसन्न हो देवलोकको प्रस्थान किया ॥ ६६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां कश्यपकृतरुद्रस्तोत्रं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ वैशंपायन बोले; तब महातेजस्वी विष्णु प्रातःकाल होतेही मृगयाके बहानेसे रैवतक पर्वतको गये ॥ १ ॥ एकही रथमें नरश्रेष्ठ सात्यकीको बैठालकर और पीछे आओ इस प्रकार श्रीकृष्ण

प्रद्युम्नसे कहकर ॥ २ ॥ रैवतकपर्वतपर जाकर दारुक सारथीसे बोले; हे दारुक ! इस समय तुमही हमारे रथको ग्रहण करो ॥३॥ हे सौम्य ! आधे दिनतक तुम हमारी बाट देखते घोडोंकी रक्षा करो. हे सौम्य ! मैं रथमेंही चढकर द्वारकाको जाऊगा ॥ ४ ॥ ऐसी आज्ञा दे जयके निमित्त हुए भगवान् सात्यकीके साथ महाबल पराक्रम युक्त गरुडके ऊपर चढे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! शत्रुनाशक प्रद्युम्न पृथक् दूसरे रथपर स्थित हुए; हे राजन् ! वह रथ आकाशगामी था. श्रीकृष्णके पीछे चला ॥ ६ ॥ एक निमेषमात्रहीमें बुद्धिमान् श्रीकृष्ण नन्दन वनमें पारि-

रैवतं च गिरिं देवो गत्वा दारुकमब्रवीत् ॥ मदीयं रथमेनं त्वं ग्रहायेहैव दारुक ॥३॥ प्रतिपालय मां सौम्य दिनार्द्धं वारयन्हरीन् ॥
रथेनैव प्रवेष्टाहं द्वारकां सूतसत्तम ॥ ४ ॥ इति संदिश्य भगवानारुरोह जयोद्यतः ॥ तार्क्ष्यं ससात्यकी धीमानप्रमेयपराक्रमः ॥ ५ ॥
पृथग्रथेन कौरव्य प्रद्युम्नः शत्रुसूदनः ॥ आकाशगामिना राजन्पृष्ठतः कृष्णमन्वयात् ॥६॥ निमेषान्तरमात्रेण नन्दनं काननं हरिः ॥
देवोद्यानं ययौ धीमान्पारिजातजिहीर्षया ॥ ७ ॥ ददर्श तत्र भगवान्देवयोधान्दुरासदान् ॥ नानायुधधरान्वीरान्नन्दनस्थानधोक्षजः
॥ ८ ॥ तेषां संपश्यतामेव पारिजातं महाबलः ॥ उत्पाट्यारोपयामास पारिजातं सतां गतिः ॥९॥ गरुडं पक्षिराजानमयत्नेनैव
भारत ॥ उपस्थितो विग्रहवान्पारिजातः स केशवम् ॥ १० ॥ सान्त्वितो वासुदेवेन पारिजातश्च भारत ॥ उक्तश्च वृक्ष मा भैस्त्वं
केशवेन महात्मना ॥ ११ ॥ तं प्रस्थितं तरुं दृष्ट्वा पारिजातमधोक्षजः ॥ अमरावतीं पुरीं श्रेष्ठां ततश्चक्रे प्रदक्षिणाम् ॥ १२ ॥

जात लेनेकी इच्छासे गये ॥ ७ ॥ वहां भगवान्ने बडे दुरासद योधाओंको देखा, वे वीर अनेक आयुध धारण किये थे इस प्रकार श्रीकृष्ण नन्दनस्थानमें पहुँचे ॥ ८ ॥ उन सबके देखतेही पारिजात उखाड लिया, और गरुडके ऊपर स्थापन किया, तो पारिजात वृक्ष शरीर धारण कर उपस्थित हुआ ॥ ९ ॥ १० ॥ तब श्रीकृष्णने पारिजातको समझाया बुझाया और उन महात्माने कहा कि तुम किसी प्रकारसे भय मत करो ॥ ११ ॥ उस वृक्षको प्रस्थान करता देखकर श्रीकृष्णने श्रेष्ठ अमरावती पुरीकी प्रदक्षिणा करी ॥ १२ ॥

इधर उन नन्दनवनकी रक्षा करनेवालोंने जाकर इन्द्रसे पारिजातवृक्षका हरना वर्णन किया ॥ १३ ॥ तब इन्द्र ऐरावतपर चढकर बाहर निकला और जयंत उसके पीछे २ चला॥१४॥और पूर्वके द्वारकी ओर प्राप्त हुआश्रीकृष्णको देखकर इन्द्र कहने लगा;हे शत्रुनाशक ! यह क्या बात है॥१५॥ तब गरुडपर स्थित हुए श्रीकृष्ण प्रणाम कर इन्द्रसे बोले यह श्रेष्ठ वृक्ष तुम्हारी वधू पुण्यकार्यके निमित्त लिये जाती है॥१६॥तब फिर इन्द्रने कहा;हे कमललोचन ! ऐसा मत कीजिये हे अच्युत ! विना युद्ध किये आप वृक्ष नहीं ले जा सक्ते हैं ॥१७॥हे महाबाहु केशव ! इस कारण पहले मेरे ऊपर प्रहार

ते तु नन्दनगोप्तारः पारिजातो द्रुमोत्तमः॥ह्रियतीति महेन्द्राय गत्वा नृप शशंसिरे ॥ १३ ॥ अथैरावतमारुह्य निर्ययौ पाकशासनः ॥ जयन्तेन रथस्थेन पृष्ठतोऽऽनुगतः प्रभुः ॥ १४ ॥ पूर्वमभ्यागतं द्वारं केशवं शत्रुनाशनम् ॥ दृष्ट्वोवाच प्रवृत्तं भोः किमिदं मधुसूदन ॥ १५ ॥ प्रणम्य गरुडस्थोऽथ केशवः शक्रमब्रवीत् ॥ वध्वास्ते पुण्यकार्याय नीयतेऽयं वरद्रुमः ॥ १६ ॥ तमुवाच ततः शक्रो मा मैवं पुष्करेक्षण ॥ अयोधयित्वा न तरुर्नयितव्यस्त्वयाच्युत ॥ १७ ॥ प्रहरस्व महाबाहो प्रथमं मयि केशव ॥ प्रतिज्ञा सफला तेऽस्तु मुक्त्वा कौमोदकीं मयि ॥ १८ ॥ ततः कृष्णः शरैस्तीक्ष्णैर्देवराजगजोत्तमम् ॥ बिभेदाशनिसंकाशैः प्रहसन्निव भारत ॥१९॥ विव्याध गरुडं वज्री दिव्यैः शरवरैस्तथा ॥ बाणांश्चिच्छेद सहसा केशवस्य तरस्विनः ॥२०॥ यान्यान्मुमोच देवेन्द्रस्तांस्तांश्चिच्छेद माधवः ॥ माधवेन प्रयुक्तांश्च चिच्छेद बलवृत्रहा ॥ २१ ॥ महेन्द्रस्य च शब्देन धनुषः कुरुनन्दन ॥ शार्ङ्गस्य च निनादेन मुमुहुः स्वर्गवासिनः ॥ २२ ॥ तयोर्वर्तति संग्रामे गरुडस्थो महाबलः ॥ पारिजातं जयन्तोऽथ हर्तुमभ्युद्यतो बली ॥२३॥

कीजियें,मेरे ऊपर कौमोदकी गदाप्रहारकरके आपकी प्रतिज्ञा सफल हो ॥१८॥ तब श्रीकृष्णने तीक्ष्ण बाणोंसे देवराजके श्रेष्ठ हाथीको हंसते हुए वज्रके समान प्रहारोंसे विद्ध किया॥१९॥ इधर इन्द्रनेभी दिव्यबाणोंसे गरुडको विद्ध किया, और वेगवान् श्रीकृष्णके बाणोंको छेदन कर दिया ॥२०॥ जो जो बाण इन्द्रने छोडे उन उनको श्रीकृष्णने छेदन कर दिया,और श्रीकृष्णके छोडे बाणोंको इन्द्रने छेदन कर दिया ॥२१॥ हे राजन् ! इन्द्र और श्रीकृष्णके शार्ङ्गधनुषके शब्दसे सब स्वर्गवासी मोहको प्राप्त हो गये ॥ २२ ॥ जिससमय इन दोनोंका संग्राम होता था, उस समय बली जयन्तने

गरुडके ऊपरसे पारिजातके हरणकी इच्छा की ॥२३॥ तब श्रीकृष्णने प्रद्युम्नसे जयन्तके निवारण करनेको कहा, तब प्रतापी रुक्मिणीपुत्रने उसका निवारण किया ॥२४॥ जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ जयन्त और रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न यह दोनों हँसते २ रथमें स्थित हो एक दूसरेको सब शरीरमें विद्ध करने लगे ॥२५॥ इस ओर रथमें स्थित हुए कमललोचन प्रद्युम्नने महाविषैले बाणोंसे जयन्तको ताडित किया ॥२६॥ हे कौरवनन्दन ! वह संग्राम बडा भयंकर हुआ जिस समय प्रद्युम्न और जयन्तका संग्राम हुआ ॥ २७॥ जगत्‌में अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबली इन्द्र और उपेन्द्रके पुत्र वे दोनों एकदूसरेके अस्त्रका परिहास परस्पर करने लगे ॥२८॥ हे महाबाहो ! उस संग्रामको देवता मुनि सिद्ध चारण महाविस्मित हो देखने लगे ॥ २९ ॥ तब

प्रद्युम्नमथ कंसघ्नो वारयेति तदाब्रवीत् ॥ ततस्तं वारयामास रौक्मिणेयः प्रतापवान् ॥२४॥ जयन्तो जयतां श्रेष्ठो रौक्मिणेयमथेषुभिः ॥ सर्वगात्रेषु विहसन्नाजघान रथे स्थितः ॥ २५ ॥ रथस्थ एव रथिनं कामस्तु कमलेक्षणः ॥ ऐन्द्रिमभ्यर्दयामास बाणैराशीविषोपमैः ॥ २६ ॥ सन्निपातस्तुमुलो बभूव कुरुनन्दन ॥ जयन्तस्य च वीरस्य रौक्मिणेयस्य चोभयोः ॥ २७ ॥ कृतप्रतिकृतं युद्धे चक्रतुस्तौ महाबलौ ॥ सहेन्द्रोपेन्द्रतनयौ जगत्यस्त्रभृतां वरौ ॥२८॥ देवाश्च मनुयश्चैव ददृशुर्विस्मयान्विताः ॥ तं संग्रामं महाघोरं सिद्धाश्चैव सचारणाः ॥२९॥ ततस्तु प्रवरो नाम देवदूतो महाबलः ॥ पारिजातं पुनर्हर्तुमियेष कुरुनन्दन ॥३०॥ सखा स देवराजस्य महास्त्रविदरिंदमः ॥ अवध्यो वरदानेन ब्रह्मणः कुरुनन्दन ॥३१॥ ब्रह्मणस्तपसा सिद्धो जम्बुद्वीपाद्दिवं गतः ॥ स्वशक्त्या नृप संयातः सखित्वं बलघातिना ॥३२॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य कृष्णः सत्यकिमब्रवीत् ॥ अत्रस्थ एव प्रवरं शरैर्वारय सात्यके ॥ ३३ ॥ न त्वत्र निर्दयं बाणा मोक्तव्याः सात्यके त्वया ॥ अस्य ब्राह्मणचापल्यं सोढव्यं खलु सर्वथा ॥ ३४ ॥

एक महाबली प्रवर नामक देवदूत फिर पारिजातके हरण करनेकी इच्छा करने लगा॥३०॥यह देवराजका सखा महा अस्त्रका ज्ञाता,शत्रुनाशी था; हे कुरुनन्दन ! ब्रह्माके वरदानसे यह अवध्यभी था ॥३१॥ यह ब्राह्मण था जम्बुद्वीपमें तपसे सिद्ध होकर स्वर्गको गया था; हे राजन् ! अपनी सामर्थ्यसे यह राजा इन्द्रका सखा हुआ ॥ ३२ ॥ उसे आता हुआ देख श्रीकृष्ण सात्यकीसे बोले; हे सात्यके ! इस स्थानमें स्थित हुए इस देवदूतको बाणोंसे निवारण करो ॥ ३३ ॥ परन्तु हे सात्यकी ! निर्दयी होकर यहां बाणोंका प्रहार मत करना, सब प्रकार इस ब्राह्मणकी चपलता

सहनी उचित है ॥३४॥ तब उस ब्राह्मण श्रेष्ठने गरुडमें स्थित श्रीकृष्णको रथमें स्थित सात्यकीको साठ बाणोंसे वेधा ॥३५॥ हे राजन् ! तब सात्यकी पुरुष श्रेष्ठने अपने बाणोंसे उसका धनुष छेदन करके इस प्रकार वचन कहे॥३६॥ब्राह्मणको मत मारो अपने मार्गमें स्थित रहो यादवोंको अपराध करनेपरभी ब्राह्मणोंको मारना उचित नहीं ॥ ३७ ॥ हे कुरुनन्दन!यह वचन सुन वह बोला; हे शूर!दया करनेका काम नहीं शूर सब प्रकारसे संग्राममें यह करते हैं ॥३८॥ हे यादव!यद्यपि मैं परशुरामका शिष्य हू प्रवर मेरा नाम और इन्द्रका सखा हूं ॥ ३९ ॥ आपको

ततः षष्ट्या रथेषूणां गरुडस्थं द्विजस्तदा ॥ आजघान महाबाहो सात्यकिं प्रवरो भृशम् ॥ ३५ ॥ शिनेर्नप्ता धनुस्तस्य क्षिपतः सायकान्नृप ॥ चिच्छेद पुरुषव्याघ्रो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणो नाभिहन्तव्यस्तिष्ठ तिष्ठ स्ववर्त्मनि ॥ अवध्या यादवानां हि स्वापराधेऽपि हि द्विजाः ॥ ३७ ॥ प्रवरस्तु प्रहस्यैनमुवाच कुरुनन्दन ॥ अलं क्षान्त्या नृणां शूर युद्धच सर्वात्मना रणे ॥३८॥ जमदाग्न्यस्य रामस्य शिष्योऽहमपि यादव ॥ नामतः प्रवरो नाम सखा शक्रस्य धीमतः ॥ ३९ ॥ न देवा योद्धुमिच्छन्ति मन्यन्तो मधुसूदनम् ॥ आनृण्यं सौहृदस्याहमधिगन्तास्मि माधव ॥४०॥ ततस्तयोस्तदा रौद्रः संग्रामो ववृधे नृप ॥ अस्त्रैर्दिव्यैर्नरव्याघ्र शैनेयद्विजमुख्ययोः ॥४१॥ द्यौश्चचाल तदा राजन् ह्यचलाश्च सहस्रशः ॥ तस्मिन्वर्तति संग्रामे तेषामतिमहात्मनाम् ॥ ४२ ॥ नातिशिष्ये रणे कार्ष्णिरैन्द्रिमस्त्रभृतां वरम् ॥ ऐन्द्रिः कार्ष्णिं महात्मानं मायिनं शूरसत्तमम् ॥४३॥ हन्त गृह्ण प्रतीच्छेति तावुभौ योधसत्तमौ युयुधाते नरश्रेष्ठ परस्परजयैषिणौ ॥ ४४ ॥

मधुसूदन जानकर देवता तो युद्ध करनेकी इच्छा नहीं करते, इस कारण हे माधव ! मैं इन्द्रसे अनृण होनेकी इच्छा करता हूं ॥ ४० ॥ हे राजन् ! तब इन दोनोंका महासंग्राम होने लगा उस सात्यकी और प्रवरने दिव्यास्त्र प्रयोग करने प्रारम्भ किये ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! उस समय स्वर्ग तथा और भी सहस्रों अचल वस्तु चलायमान हो गई, जब उन महात्माओंका इस प्रकार संग्राम हुआ ॥४२॥ तब अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ जयन्तसे प्रद्युम्न न बढ सके तब जयन्तने माया करनेवाले महात्मा शूरोंमें श्रेष्ठ कार्ष्णि (प्रद्युम्न) को ॥ ४३॥ अब 'पकडो, ठहरो' ऐसा कहकर

वे योधाओंमें श्रेष्ठ जयकी इच्छासे परस्पर दारुण संग्राम करने लगे ॥४४॥ तब प्रद्युम्नको प्रतापी जयन्तने दिव्य अस्त्रसे कहकर विद्ध किया ॥४५॥ जब कि वह दीप्तिमान् उनकी ओर जाता था तब बाणसमूहसे प्रद्युम्नने उसे रोक दिया;यह एक अद्भुत बात हुई॥ ४६ ॥ तब वह दीप्तिमान् अस्त्र रणभूमिपतित हुआ. हे कौरव्य ! गिरते हुए उस अस्त्रने दानवहंता महात्मा प्रद्युम्नका ॥४७॥ रथ दग्ध कर दिया, परन्तु इनके प्रतापके कारण प्रद्युम्नको भस्म करनेमें समर्थ न हुआ ॥४८॥ हे राजन् ! रोकी हुई अग्नि अग्निको नहीं जलाती है,रथके भस्म होनेसे महाबाहु प्रद्युम्नने विचार किया॥४९॥

अथ शार्ङ्गायुधसुतं शचीपुत्रः प्रतापवान् ॥ विभाष्याभ्यहनद्राजन्दिव्येनास्त्रेण सत्वरः ॥ ४५ ॥ सोऽस्त्रं तदभिदीप्यन्तमापतन्तं शितैः शरैः ॥ तस्तम्भे बाणजालेन तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४६ ॥ ततस्तद्दीप्यमानं तु पपात रणमूर्द्धनि ॥ रौक्मिणेयस्य कौरव्य घोरं दानवमर्दनम् ॥४७॥ तेनास्त्रेण रथो दग्धः प्रद्युम्नस्य महात्मनः नादहत्तत्सुघोरं तं रौक्मिणेयं नराधिप ॥ ४८ ॥ दहत्याग्निं न खल्वग्निरुद्धतोऽति विशांपते ॥ दग्धात्रथान्महाबाहू रौक्मिणेयः प्रचक्रमे ॥ ४९ ॥ अथ नारायणसुतो विरथो रथिनां वरः ॥ स्थितो धनुष्मानाकाशे जयन्तमिदमब्रवीत् ॥५० ॥ महेन्द्रपुत्र दिव्यं त्वं यदस्त्रं मुक्तवानसि ॥ नाहमीदृशरूपाणां शक्यो हन्तुं शतैरपि ॥ ५१ ॥ प्रयत्नं कुरु शिक्षाणां यत्नं मेऽद्य प्रदर्शय ॥ नास्ति मेऽतिशयं कर्त्ता संग्रामेऽमरनन्दन ॥ ५२ ॥ आसीन्मे साध्वसं दृष्ट्वा रथस्थं त्वां धृतायुधम् ॥ बिभेमि तव नेदानीं युद्धे दृष्टबलोऽबलम् ॥५३॥ मनसा स्मर्यतां सैष पारिजातस्त्वया तरुः ॥ शक्यं न खलु हस्ताभ्यां स्प्रष्टव्यो यस्त्वया ह्यसौ ॥ ५४ ॥

तब वह नारायणके पुत्र रथियोंमें श्रेष्ठ रथहीन होनेके कारण आकाशमें धनुष लेकर खडे हुए और जयन्तसे बोले ॥५०॥ हे महेन्द्रपुत्र ! जो तुमने दिव्यास्त्रका प्रयोग किया है सो ऐसे सैंकडों अस्त्रभी मेरा वध नहीं कर सक्ते ॥५१॥ अब तू शिक्षाका प्रयत्न मुझको दिखा; हे देवनन्दन ! संग्राममें मुझसे अधिक पराक्रम करनेवाला कोई नहीं॥५२॥रथपर आयुध लिये तुम्हें बैठे देख मुझे बडा संभ्रम हुआ, मैं तुझसे डरता नहीं हूं युद्धमें बलाबल देखा जाय ॥ ५३ ॥ अब तुम पारिजात वृक्षको मनमें स्मरण कर लो, क्योंकि अब तुम हाथसे तो किसी प्रकार इसे नहीं छू सक्ते ॥ ५४॥

जो कि तुमने अस्त्रके तेजसे मायामय रथ भस्म कर दिया है, ऐसे सहस्रों रथ मैं मायासे उत्पन्न कर सकता हूं ॥ ५५ ॥ ऐसे कहने पर महाबली जयन्तने अस्त्र त्यागन किया,जो कि तपसे और अपने तेजसे युक्त था॥५६॥उस महावेगवान् अस्त्रको प्रद्युम्नने बाणजालसे निवारण किया,तब फिर जयन्तने और चार अस्त्रप्रयोग किये॥५७॥हे राजन् ! उन अस्त्रोंने सम्पूर्ण दिशायें रोक लीं,और अन्तरिक्षमें स्थित महात्मा प्रद्युम्नको जो कि पांचवें अस्त्रके समान प्रकाशित थे ॥५८॥ वह अमरोंमें श्रेष्ठ जयन्त महाउल्काके समान बाणोंका प्रहार करने लगा, जो कि महाघोर अस्त्र उसने प्रद्युम्नके

रथो मायामयो दग्धस्त्वया यो ह्यस्त्रतेजसा ॥ ईदृशानां सहस्राणि स्रष्टुं शक्तोऽस्मि मायया ॥५५॥ एवमुक्तो जयन्तश्च मुमोचास्त्रं महाबलः ॥ तपसोपचितं तेन स्वयमेवातितेजसा ॥५६॥ तत्प्रद्युम्नो महावेगं शरजालैरवारयत् ॥ चत्वार्यस्त्राणि दिव्यानि मुमुचे चापराणि सः ॥ ५७ ॥ दिक्षु सर्वासु रुरुधुस्तान्यस्त्राण्यथ भारत ॥ रौक्मिणेयं महात्मानमन्तरिक्षे च पञ्चमम् ॥ ५८ ॥ महोल्कासदृशान्बाणानस्त्राण्यमरसत्तमः ॥ मुमोच यानि घोराणि प्रद्युम्नं प्रति सर्वतः ॥ ५९ ॥ तानि सर्वाणि बाणौघैः कार्ष्णिरस्त्राण्यवारयत् ॥ जयन्तं चापरैर्बाणैर्विव्याध निशितैस्तदा ॥६०॥ ततो नादः समुत्सृष्टो ह्यमरैः पुण्यकर्मभिः ॥ दृष्ट्वा स्थैर्यं च शैघ्र्यं च प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥ ६१ ॥ प्रवरस्यापि बाणेन शितेन शिनिपुङ्गवः ॥ चिच्छेदेष्वासनं वीरो हस्तावापं च भारत ॥ ६२ ॥ ततोऽन्यत्स तु जग्राह महत्तद्धनुरुत्तमम् ॥ महेन्द्रदत्तं प्रवरो महाशनिसमस्वनम् ॥६३॥ स तेन वीरो महता धनुषा विप्रसत्तमः ॥ शरान्मुमोच विविधानकरश्मिनिभांस्तदा ॥ ६४ ॥

प्रति प्रहार किये ॥ ५९ ॥ उन सब अस्त्रोंको अपने बाणोंसे प्रद्युम्नने निवारण कर दिया, और बडे तीक्ष्ण बाणोंसे जयन्तको विद्ध किया ॥६०॥ तब पुण्यकर्मा देवताओंका शब्द होने लगा, महात्मा प्रद्युम्नकी शीघ्रता और दृढता देखकर सब चकित हो गये॥६१॥प्रवरके धनुषको जब शूरवीर सात्यकीने हस्तत्राणसहित छेदन किया ॥६२॥ तब प्रवरने महावज्रके समान शब्दवाले इन्द्रके धनुषको ग्रहण कर ॥६३॥ उस धनुषको हाथमें लेकर

वह महावीर सूर्यकी किरणोंके समान तीक्ष्ण बाण छोडने लगा ॥६४॥ और महापराक्रमी सात्यकीका विचित्र धनुष छेदन कर दिया, और सात्यकीका सम्पूर्ण शरीर विद्ध कर दिया ॥६५॥ हे कुरुनन्दन ! तब दूसरा धनुष लेकर सात्यकीने बडे भार सहन करनेवाले प्रवरको संग्राममें विद्ध किया ॥६६॥ दोनोंने तीक्ष्ण बाणोंसे एक दूसरेके बख्तर छेदन कर डाले, मर्ममें लगे हुए बाणोंसे शरीरसे रुधिर मांस निकलने लगा॥६७॥फिर प्रवरवीरने आठ धारके बाणसे सात्यकीका धनुष छेदन करके तीन बाणोंसे इसे ताडित किया॥६८॥तब इन्होंने ज्योंहीं और धनुष लेनेकी इच्छा की इसी समय लघु-

चकर्त च धनुश्चित्रं शैनेयस्यामितौजसः ॥ विव्याध सर्वगात्रेषु बाणैरपि च सात्यकिम् ॥ ६५ ॥ धनुरादाय शैनेयस्ततोऽन्यत्कुरुनन्दन ॥ दृढं भारसहं धीमान्विव्याध प्रवरं रणे ॥ ६६ ॥ उच्चकर्ततुरन्योन्यवर्मणी तौ शितैः शरैः ॥ गात्रेभ्यश्चैव मांसानि मर्मभिद्भिः शरोग्रमैः ॥६७॥ अथाष्टधारबाणेन पुनरिष्वासनं द्विधा ॥ चिच्छेद प्रवरो वीरस्त्रिभिश्चैनमताडयत् ॥६८॥ अन्यदिष्वासनं तं तु ग्रहीतुमनसं द्विजः ॥ गदया ताडयामास क्षेप्यया लघुहस्तवान् ॥६९॥ सोऽसिं चर्म च जग्राह सात्यकिः प्रहसन्निव ॥ न जग्राह धनुर्धीमान्गदयाभिहतो भृशम् ॥ ततः शरशतान्येव मुमोच प्रवरस्तदा ॥ ७० ॥ विहस्तमिव विज्ञाय सात्यकिं यदुनन्दनम् ॥ प्रद्युम्नोऽस्य ददौ खड्गं निर्मलाकाशसन्निभम् ॥ ७१ ॥ तस्य चिच्छेद भल्लेन निस्त्रिंशं प्रवरस्तदा ॥त्सरुदेशेऽपातयच्च प्रवरः प्रहसन्निव ॥ ७२ ॥ व्यधमच्च तथा चर्म शितैर्बाणैरजिह्मगैः ॥ आजघान च शक्त्यैनं हृदि विप्रो ननाद च ॥ ७३ ॥ तं विक्लवमिव ज्ञात्वा पारिजातजिहीर्षया ॥ तार्क्ष्याभ्याशे रथेनैव स तस्थौ प्रवरस्तदा ॥ ७४ ॥

हस्त दिखाते हुए प्रवरने गदासे ताडन किया॥६९॥तब हँसते हुए सात्यकीने ढाल तलवार ग्रहण की ओर गदासे ताडितहोनेके कारण धनुष ग्रहण नहीं किया तब प्रवरने सैंकडों बाण छोडे ॥७०॥ तब सात्यकीको खाली हाथ देखकर प्रद्युम्नने आकाशके समान निर्मल खड्ग इसको दिया ॥७१॥ तब प्रवरने भालोंसे उस खड्गको छेदन कर दिया और हँसते हुए मूठदेशसे काटकर फेंक दिया॥७२॥ और सीधे चलनेवाले तीक्ष्ण बाणोंसेढालको भेदन कर दिया, और एक शक्ति सात्यकीके हृदयमें मारकर प्रवरने बडा शब्द किया ॥ ७३ ॥ उसको व्याकुल जानकर पारिजातके लेनेकी इच्छासे रथमें

स्थित हुआ प्रवर गरुडके समीपमें आया ॥७४॥ तब गरुडजीने अपने पंखोंके वेगसे उसको फेंक दिया,वह दो कोश रथसहित जाकर गिर पडा और मूर्च्छित हो गया ॥७५॥ तब जयन्तने उस ब्राह्मणको गिरा हुआ देख समझा बुझाकर उसको रथमें बैठाया ॥७६॥ इधर सारथीको मूर्च्छित और वारंवार पतित देखकर प्रद्युम्नने उन्हें समझाकर हृदयसे लगाया ॥७७॥ तब दक्षिणहाथसे मधुसूदनने सात्यकीको स्पर्श किया स्पर्शमात्रसेही सात्यकी रोगरहित हो गया ॥ ७८ ॥ दहिनी ओर प्रद्युम्न, बाईं ओर सात्यकी उसपारिजातके स्थित हुए,यह दोनोंही महायुद्ध करनेवाले थे ॥७९॥ जयन्त

तं पक्षपुटवेगेन चिक्षेप गरुडस्तदा ॥ गव्यूतिमेकां सरथः स पपात मुमोह च ॥७५॥ तं जयन्तो नियत्याथ पतितं ब्राह्मणं नृप ॥ समाश्वास्य रथं शीघ्रं समारोपितवांस्तदा ॥ ७६ ॥ शैनेयमपि मुह्यन्तं पतन्तं च मुहुर्मुहुः ॥ आश्वासयानः प्रद्युम्नः पितृव्यं परिषस्वजे ॥ ७७ ॥ तं हि पस्पर्श हस्तेन सव्येन मधुसूदनः ॥ विरुजः स्पर्शमात्रेण सात्यकिः समपद्यत ॥ ७८ ॥ प्रद्युम्नो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु शिनिपुङ्गवः ॥ तस्थतुः पारिजातस्य युद्धशौण्डतरावुभौ ॥ ७९ ॥ जयन्तः प्रवरश्चैव रथेनैकेन भारत ॥ संपतन्तौ महेन्द्रेण प्रहस्योक्तौ महात्मना ॥ ८० ॥ नासन्नमभिगन्तव्यं गरुडस्य कथंचन ॥ बलवानेष पततां राजा च विनतासुतः ॥८१॥ दक्षिणे चैव सव्ये च पार्श्वे मम धृतायुधौ ॥ उभौ स्थितौ युद्ध्यमानं मामेव हि प्रपश्यतम् ॥ ८२ ॥ एवमुक्तौ स्थितौ वीरौ ततः शक्रस्य पार्श्वयोः ॥ ददृशाते युद्ध्यमानौ देवराजजनार्दनौ ॥८३॥ अथेन्द्रो गरुडं बाणैर्महाशनिसमस्वनैः ॥ विव्याध सर्वगात्रेषु महास्त्रप्रवरैस्तथा ॥ ८४ ॥ स तान्बाणानगणयन्वैनतेयः प्रतापवान् ॥ ससाराभिमुखो वीरः शक्रनागमरिंदमः ॥ ८५ ॥

और प्रवर यह एकही रथमें बैठकर चले तब महात्मा महेन्द्रने इनसे कहा॥८०॥कि किसी प्रकारसेभी तुम गरुडके समीप मत जाना,यह पक्षियोंका राजा विनतानन्दन महाबली हैं ॥८१॥ तुम दोनों आयुध धारण किये मेरे दहिने बायें स्थित रहो, और युद्ध करते मुझे देखते रहो ॥ ८२ ॥ ऐसा कहनेपर वे दोनों वीर इन्द्रके निकट स्थित हुए,तब इन्द्र और कृष्ण युद्ध करने लगे ॥ ८३ ॥ तब इन्द्रने वज्रके समान तीक्ष्णबाणोंसे और महास्त्रसे सब शरीरमें गरुडको विद्ध किया॥८४॥प्रतापवान् गरुडजी उन बाणोंको कुछभी न गिनते हुए शत्रुनाशक महावीरतासे हाथीके सम्मुख चले ॥८५॥

हे राजन्! उसी समय महाबली वे गरुड और हाथी महाबलके आश्रय हो असह्य प्राणपणसे युद्ध करने लगे॥८६॥तब ऐरावत हाथी अपने दांत और शिरसे गरुडको ताडन करने लगा॥८७॥तब महाबली गरुडने अपने नखरूपी अंकुशसे तथा पक्षोंके आघातसे इन्द्रके हाथीको ताडन किया॥८८॥ एक मुहूर्तमात्र तो हाथी और गरुडका महासंग्राम होता रहा उसके देखनेवालोंको भय और जगत्‌को विस्मय हो गया॥८९॥हे राजन् ! तब गरुडने ऐरावत हाथीके शिरदेशमें प्रहार किया,नखरूपी कराल अंकुश और चरणोंसे महाबलीने प्रहार किया ॥९०॥ तब वह ऐरावत प्रहारसे व्याकुल हो

उभौ तौ सहसा राजन्बलिनौ गजपक्षिणौ ॥ प्रयुद्धौ वीर्यसंपन्नौ महाप्राणौ दुरासदौ ॥८६॥ रदनैः पन्नगरिपुं करेण शिरसा तदा ॥ ऐरावतो गजपतिराजघान नदंस्तथा ॥ ८७ ॥ तथा नखाङ्कुशैस्तीक्ष्णैर्वैनतेयो बलोत्कटः ॥ तथा पक्षनिपातैश्च शक्रनागं जघान ह ॥ ८८ ॥ मुहूर्त्तं सुमहानासीत्संपातो गजपक्षिणोः ॥ विस्मापनीयो जगतः प्रेक्षितणां भयावहः ॥ ८९ ॥ मूर्ध्न्यथैरावतं तार्क्ष्यस्ताडयामास भारत ॥ नखांकुशकरालेन चरणेन महाबलः ॥९०॥ संप्रहाराभिसंतप्तो निपपात त्रिविष्टपात् ॥ पारियात्रे गिरिश्रेष्ठे द्वीपेऽस्मिन् जनमेजय ॥९१॥ पतन्तमपि तं शक्रो न मुमोच महाबलः ॥ कारुण्यादथ सौहार्दात्पूर्वाभ्युपगमादपि ॥९२॥ कृष्णोऽप्यन्वगमच्चैनं पृष्ठतः प्रभवाव्ययः ॥ पारिजातवता धीमान्गरुडेन महाबलः ॥९३॥ स तस्थौ पर्वतश्रेष्ठे पारियात्रे तु वृत्रहा ॥ ऐरावते समाश्वस्ते संग्रामो ववृधे पुनः ॥ ९४ ॥ शरैराशीविषप्रख्यै रत्नयुक्तैः सुतेजितैः ॥ अन्योन्यं कुरुशार्दूल शक्रकेशवयोर्महान् ॥ ९५ ॥ ततो वज्रायुधो वज्रमशनिं च पुनः पुनः ॥ मुमोच गरुडे राजन्नैरावतरिपौ नृप ॥ ९६ ॥

स्वर्गसे गिरा.हे जन्मेजय ! जहां वह गिरा था वह पारियात्र द्वीप कहाता है॥९१॥ उस गिरते हुएको महाबली इन्द्रने न छोडा कारण कि करुणा सुहृदता और पूर्वसमयके उपकार स्मरण हो आये ॥९२॥ अविनाशी कृष्णभी इनके पीछे चले और महाबली गरुड पारिजात लिये हुए थे॥ ९३ ॥ इन्द्र पर्वतश्रेष्ठ पारियात्रमें स्थित हुआ,ऐरावतके सावधान होनेपर संग्राम फिर वृद्धिको प्राप्त हुआ॥९४॥आशीविषके समान तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे हे राजन् ! परस्पर इन्द्र और श्रीकृष्णका महासंग्राम होने लगा॥९५॥ तब इन्द्रने वारंवार अपने वज्र और अशनी आयुधको ऐरावतके शत्रु गरुडके

ऊपर निपातित किया॥९६॥गरुडजी वारंवार इन्द्रका प्रहार सहन करने लगे यह बलवालोंमें स्वभावसे और तपोबलसे अवध्य थे ॥९७॥ परंतु वज्रको मानते हुए एक २ प्रहारमें एक एक पक्ष त्यागन करने लगे, कश्यपसे उत्पन्न हुए भ्राता देवराजका वज्र ॥९८॥ उस गरुडने आक्रमण कर पर्वतपर डाल दिया; हे राजन् ! वह सब ओरसे शीर्ण होता हुआ पृथ्वीमें प्रविष्ट हुआ ॥९९॥ तब वह पर्वत कृष्णके महामानसे शब्द करने लगा, तब अधोक्षज श्रीकृष्णने देखा कि यह किंचित् शेष रहा है॥१००॥ उसे छोड फिर गरुडसहित भगवान् आकाशमें स्थित हुए तब सबके उत्पन्न

वज्राशनिनिपातांस्तान्सेहे शक्रस्य पक्षिराट् ॥ अवध्यो बलिनां श्रेष्ठो निसर्गेण ततो बलात् ॥९७॥ मुमोच पक्षमेकैकं मानयन्नशनिं सदा ॥ वज्रं च देवराज्ञोऽथ भ्रातुः कश्यपसंभवः ॥ ९८ ॥ आक्रम्यमाणस्तार्क्ष्येण न्यमज्जन्नृपते गिरिः ॥ विवेश धरणीं राजञ्छीर्यमाणः समन्ततः ॥ ९९ ॥ चुकूज बहुमानेन कृष्णस्य स तु पर्वतः ॥ तं चाद्राक्षीत्ततः कृष्ण किंचिच्छेषमधोक्षजः ॥ १०० ॥ तं मुक्त्वा गरुडेनाथ तस्थौ देवो विहायसि ॥ प्रद्युम्नं च तदोवाच सर्वकृल्लोकभावनः ॥१॥ इतो द्वारवतीं गत्वा रथमानय मा चिरम् ॥ सदारुकं महाबाहो मत्तेजोबलमाश्रितः ॥२॥ वक्तव्यो बलभद्रश्च राजा च कुकुराधिपः ॥ श्वो जित्वेन्द्रं त्वागमिष्ये द्वारकामिति मानद ॥३॥ तथेत्युक्त्वा तु धर्मात्मा प्रद्युम्नः पितरं विभुः ॥ गत्वा यथोक्तमुक्त्वा च यादवेन्द्रबलावुभौ ॥ ४ ॥ नाडिकान्तरमात्रेण पुनस्तं देशमाययौ ॥ दारुकेण समायुक्तं रथमास्थाय भारत ॥ १०५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे कृष्णेन्द्रयुद्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

करनेवाले लोकभावन भगवान् प्रद्युम्नसे कहने लगे॥१॥इधरसे तुम द्वारका पुरी जाकर शीघ्र हमारा रथ लाओ.हे महाबाहो ! दारुकके सहित मेरे बल और तेजके आश्रित हो॥२॥बलराम और राजा उग्रसेनसे कहना कि हे मान देनेहारे ! कल हम इन्द्रको जीतकर तुम्हारे पास आवेंगे॥३॥धर्मात्मा प्रद्युम्नने पितासे बहुत अच्छा कहकर द्वारकामें जाकर दोनों यादवेन्द्रोंसे समाचार सुनाया॥४॥और एक घडीमें फिर उसी स्थानमें आ गये.हे राजन् ! उस समय प्रद्युम्न दारुकके प्रेरे रथके ऊपर स्थित होकर आये थे ॥ १०५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातह-

रणे कृष्णेन्द्रयुद्ध त्रयःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥ वैशंपायन बोले; श्रीकृष्ण उस रथमें चढकर पारियात्र पर्वतपर गये,जहां इन्द्रऐरावतके ऊपर स्थित थे ॥ १ ॥ वह पारियात्र पर्वत श्रीकृष्णको आया देखकर माषराशीके समान शिथिल हो पृथ्वीमें प्रवेश कर गया ॥२॥ वह महात्मा वासुदेवका प्रभाव जानता था उनके रथकी गति न रुके उस कारण उनके प्रिय करनेको पृथ्वीमें प्रवेश कर गया; हे राजन्!यह देखकर श्रीकृष्ण उस पर्वतसे बहुत प्रसन्न हुए ॥३॥ हे राजन् ! तब श्रीकृष्ण युद्ध करनेके निमित्त चले और पारिजातके सहित गरुड उनके पीछे पीछे चला ॥ ४ ॥ प्रद्युम्न और

॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तमारुह्य रथं कृष्णः पारियात्रं गिर ययौ ॥ यत्रैरावतमास्थाय स्थितः सुरपतिः प्रभुः ॥ १ ॥ पारियात्रो गिरिश्रेष्ठो दृष्ट्वायान्तं जनार्दनम् ॥ शाणपादसमो भूत्वा प्रविवेश वसुंधराम् ॥ २ ॥ ग्नियार्थं वासुदेवस्य प्रभावज्ञो महात्मनः ॥ तस्य प्रीतो हृषीकेशः पर्वतस्य जनाधिप ॥ ३ ॥ ततः प्रयातं युद्धार्थमच्युतं कुरुनन्दन ॥ सपारिजातो गरुडः पृष्ठतोऽनुययौ तदा ॥४॥ प्रद्युम्नः सात्यकिश्चापि गरुडस्थौ महाबलौ ॥ गतावुभौ रक्षणार्थं पारिजातमरिंदमौ ॥ ५ ॥ ततस्त्वस्तं गतः सूर्यः प्रवृत्ता रजनी नृप ॥ उपस्थितं पुनर्युद्धं शक्रकेशवयोरिह ॥ ६ ॥ सुप्रहाराहतं दृष्ट्वा विष्णुरैरावतं गजम् ॥ नातिकल्पं महातेजा देवराजानमब्रवीत् ॥ ७ ॥ गरुडाभितः पूर्वं नातिकल्पो गजोत्तमः ॥ ऐरावतो महाबाहो रात्रिश्च समुपोह्यते ॥ ८ ॥ श्वः प्रभाते यथा कामं प्रवर्तस्व यथेच्छसि ॥ एवमस्त्विति कृष्णं तु देवराजोऽब्रवीत्प्रभुः॥९॥उवास पुष्कराभ्याशे देवराजः पुरंदरः ॥ व्रजं गिरिमयं कृत्वा धर्मात्मा नृपसत्तम ॥ १० ॥

सात्यकी यह दोनों गरुडपर स्थित हुए यह दोनों शत्रुनाशक महाबली पारिजातकी रक्षा करनेमें तत्पर थे॥५॥हे राजन् ! तब सूर्य अस्त हो गया, और रात्री आई उस समय इन्द्र और केशवका युद्ध होने लगा ॥६॥विष्णुने अपने प्रहारसे ऐरावतको पतित देख साधारण सामर्थ्यसे इन्द्रसे वचन कहे ॥७॥ हे इन्द्र ! गरुडके प्रहारसे हत होकर ऐरावतमें अब युद्ध करनेकी सामर्थ्य नहीं है, इससे रात्रीमें विश्राम करो ॥८॥फिर प्रातःकाल इच्छापूर्वक युद्ध करना, कृष्णके ऐसा कहने पर इन्द्र कहने लगे ऐसा ही हो ॥ ९ ॥ हे राजन् ! उस रातको धर्मात्मा इन्द्र वज्रको पर्वतसमूहमय करके

कमलोंके समीप रात्रीको रहे ॥ १० ॥ उस समय वहां ब्रह्मा कश्यप अदिति और सब देवता मुनि ॥ ११ ॥ साध्य विश्वेदेवा अश्विनीकुमार आदित्य रुद्र वसु आये ॥१२॥ हे राजन् ! नारायण अपने सात्यकी और पुत्रके सहित प्रसन्न हो उस पर्वत पारियात्रमें स्थित हुए ॥ १३ ॥ हे राजन् ! जो कि वह पर्वत भक्तिसे शाणके प्रमाण हो गया था इसी कारण महाद्युति श्रीकृष्णने उस पर्वतको वर दिया॥१४॥हे महापर्वत ! तुम्हारा नाम शाणपाद विख्यात होगा, अपने पवित्र ऊपरके भागसे हिमालयके तुल्य होगे ॥१५॥ हे पर्वतश्रेष्ठ ! फिर तुम ज्यौंके त्यौं होकर अनेक चित्र-

ब्रह्मा ततो जगामाथ कश्यपश्च महानृषिः ॥ अदितिश्चैव सर्वे च देवा मुनय एव च ॥ ११ ॥ साध्या विश्वे च कौरव्य नासत्यावश्विनौ तथा ॥ आदित्याश्चैव रुद्राश्च वसवश्च जनेश्वर ॥ १२ ॥ नारायणश्च पुत्रेण सत्यकेन च भारत ॥ सहोवाच गिरौ रम्ये पारियात्रे प्रहृष्टवत् ॥१३॥ यत्स शाणप्रमाणोऽस्य भक्त्या समभवन्नृप ॥ वरं प्रादात्ततस्तस्य पर्वतस्य महाद्युतिः ॥१४॥ शाणपाद इति ख्यातो भविष्यसि महागिरे ॥ पुण्येनार्द्धेन तुल्यो हि पुण्यो हिमवतः शुभः ॥ १५ ॥ एवमेव च भूयिष्ठो भव पर्वतसत्तम ॥ मेरुणा स्पर्द्धमानो हि बहुचित्रमृगैर्युतः ॥ रमे त्वां पश्यमानोऽहं बहुचित्रमृगायुतम् ॥ १६ ॥ तथा दत्त्वा वरं तस्य पर्वतस्य तु केशवः ॥ दध्यौ गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठां नमस्कृत्वा वृषध्वजम् ॥१७॥ अथाययौ विष्णुपदी स्मृता कृष्णेन भारत ॥ संपूज्य तां ततः कृष्णः कृत्वा स्नानमधोक्षजः ॥१८ ॥ उदकं च गृहायाथ बिल्वं च हरिरव्ययः ॥ देवमावाहयामास रुद्रं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ १९ ॥ ततः प्राप्तो महादेवः सोमः सप्रवरो विभुः ॥ तस्थावुपरि बिल्वस्य तथा गङ्गोदकस्य च ॥ २० ॥

विचित्र मृगोंसे युक्त हो मेरुकी स्पर्द्धा कर सकोगे, अनेक चित्रविचित्र मृगोंसे युक्त तुमको देखकर मैं रमण करूंगा॥१६॥इसप्रकार श्रीकृष्णने उस पर्वतको वर देकर शिवजीको नमस्कार कर नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजीका ध्यान किया ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णके स्मरण करतेही गंगाजी उपस्थित हुई श्रीकृष्ण उनका पूजन करके उनमें स्नान कर ॥ १८ ॥ इस प्रकार जलको गुहामें रख अविनाशी हरिने बेलपत्र और देवादिदेव सर्वेश्वर शिवका आवाहन किया ॥ १९ ॥ उसी समय शिव उमासहित और गणोंसहित प्राप्त हुए और गंगाजल तथा बिल्वपत्रके ऊपर स्थित हुए ॥ २० ॥

॥२२६॥

श्रीकृष्णने पारिजातके फूलोंसे उनकी पूजा की और श्रेष्ठ स्तुतियोंसे संसारके कर्ता ईश्वरकी प्रार्थना करने लगे ॥ २१ ॥ श्रीकृष्ण बोले; हे देव ! क्रीडा करनेमें तत्पर प्रकाशमान जीवोंको रुवानेसे, मायाके पींजरेमें जीवोंके रोकनेसे, द्रावण करनेसे रोदन आदिके करानेसे अथवा तुमही संसार और मुक्ति देते हो अथवा अत्यन्त शब्द करनेसे प्रपंचके द्रावण अर्थात् नष्ट करनेसे जीवोंके आवरण नष्ट करनेसे तुम रुद्र और स्वप्रकाशस्वरूप हो भक्तोंके भक्त, वत्सलोंके वत्सल मुझे कीर्तिसे युक्त करो मैं तुम्हारी शरण हुआ हूं ॥२२॥ तुम भोगमें आसक्त और विरक्त जीवोंके पति हो अपने कर्मसे आप पशुपतिनामसे विख्यात हो. हे देव ! आपसे अधिक कोईभी देव वीरोंके शत्रुओंका मारने-

तं पारिजातकुसुमैरर्चयामास केशवः ॥ तुष्टाव वाग्भिरीशेशं सर्वकर्त्तारमीश्वरम् ॥ २१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ रुद्रो देवस्त्वं रुदनाद्द्रावणाच्च रोरूयमाणो द्रावणाच्चातिदेवः ॥ भक्तं भक्तानां वत्सलं वत्सलानां कीर्त्या युङ्क्ष्वेशाद्य प्रभवाम्यन्तरेण ॥ २२ ॥ ग्राम्यारण्यानां त्वं पतिस्त्वं पशूनां ख्यातो देवः पशुपतिः सर्वकर्मा ॥ नान्यस्त्वत्तः परमो देवदेव जगत्पतिः सुरवीरारिहन्ता॥२३॥ यस्मादीशो महतामीश्वराणां भवानाद्यः प्रीतिदः प्राणदश्च ॥ तस्माद्धि त्वामीश्वरं प्राहुरीशं सन्तो विद्वांसः सर्वशास्त्रार्थतज्ज्ञाः॥२४॥ भूतं यस्माज्जगदत्यन्तधीर त्वत्तोऽव्यक्तादक्षरादक्षरेश ॥ तस्मात्त्वामाहुर्भव इत्येव भूतं सर्वेश्वराणां महतामप्युदारम् ॥ २५ ॥ यस्माज्जितैरभिषिक्तोऽसि सर्वैर्देवासुरैः सर्वभूतैश्च देव ॥ महेश्वरं विश्वकर्माणमाहुस्त्वां वै सर्वे तेन देवातिदेव ॥२६॥ पूज्यो देवैः पूज्यसे नित्यदा वै शश्वच्छ्रेयः कांक्षिभिर्वरदामेयवीर्य ॥ तस्माद्विख्यातो भगवान्देवदेवः सतामिष्टः सर्वभूतात्मभावी ॥ २७ ॥

वाला नहीं है ॥ २३ ॥ तुम महान् ईश्वरोंके भी ईश्वर हो, आपही प्रीति और प्राणके देनेवाले हो इसी कारण संत महात्मा सम्पूर्ण शास्त्रार्थके तत्त्व जाननेवाले तुम्हें सब श्रेष्ठ ईश्वर कथन करते हैं ॥ २४ ॥ अव्यक्त अर्थात् जीवके समान अप्रसिद्ध आपसेही यह संसार हुआ है. हे अत्यन्त धीर अक्षरेश ! इसी कारण आपको भव कहते हैं कि आप सबके ईश्वर और उदार हो ॥२५॥ जिस कारण जीते हुए सम्पूर्ण देवता असुर और प्राणियोंने तुम्हारा अभिषेक किया है, हे अतिदेव ! इस कारण सम्पूर्ण देवता तुमको महेश्वर और विश्वकर्मा कहते हैं ॥२६॥ आप नित्य कल्याणकी

इच्छा करनेवाले देवतोंसे पूजित हो आप वर देनेवाले अमोघ वीर्य हो इस कारण आप देवदेवनामसे विख्यात सत्पुरुषोंके इष्ट सब प्राणियोंको आत्मामें अनुभव करनेवाले हो ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! भूमि अन्तरिक्ष और स्वर्ग, अथवा प्राण अपान व्यान अथवा अग्नि वायु सूर्य वा भूत भविष्य वर्तमान इनके आप प्रतिष्ठा और लयके स्थान हो. हे लोकोंकी उत्पत्तिके कारण, हे अप्रमेय, हे देवेशोंके स्वामी ! इन तीन कार्योंके करनेसे आपको त्र्यम्बक कहते हैं ॥२८॥ हे भगवन् ! तुम शत्रुओंको मारते हो इससे तुमको शर्व कहते हैं, शत्रु आपको प्राप्त नहीं हो सकते,फिर आप राजादिभावसे शासना करते हो अन्तर्बाहर व्याप्त होनेसे आप शंकर हो सत्पुरुषोंको आप सुखदायक सब शब्दोंके प्रमाविषय होकर अवच्छेदक हो; हे श्रीकर ! ऋक्

भूमित्रयाणां देव यस्मात्प्रतिष्ठा पुनर्लोकानां भावनामेयकीर्तिः ॥ त्र्यम्बकेति प्रथमं तेन नाम तवाप्रमेय त्रिदशेशनाथ ॥ २८ ॥ शर्वः शत्रूणां शासनादप्रमेयस्तथा भूयः शासनाच्चेश्वरेण ॥ सर्वव्यापित्वाच्छंकरत्वाच्च सद्भिः शब्दस्येशानः श्रीकरार्काग्र्यतेजाः ॥ २९ ॥ संसक्तानां नित्यदा यत्करोषि शमं भ्रातृव्यान्यद्व्यनैषीः समस्तान् ॥ तस्माद्देवः शंकरोऽस्यप्रमेयः सद्भिर्धर्मज्ञैः कथ्यसे सर्वनाथः ॥३०॥ दत्तः प्रहारः कुलिशेन पूर्वं तवेशान सुरराज्ञातिवीर्य ॥ कण्ठे नैल्यं तेन ते यत्प्रवृत्तं तस्मात्ख्यातस्त्वं नीलकण्ठेति कल्पः ॥३१॥ यल्लिङ्गाङ्कं यच्च लोके भगाङ्कं सर्वं सोम त्वं स्थावरं जङ्गमं च ॥ प्राहुर्विप्रास्त्वां गुणिनं तत्त्वविज्ञास्तथा ध्येयामम्बिकां लोकधात्रीम् ॥ ३२ ॥

यजु साम इन अपर विद्याओंके आप कर्ता हो; आपका तेज सूर्यकाभी प्रकाश करनेवाला है ॥२९॥ आप भक्तोंको सदा सुख करते हो,आपने सब असुरोंको शिक्षा दी है, यह कार्य उनके हितके निमित्त किया इस कारण आप शंकर हो और अप्रमेय हो इस कारण धर्मके जाननेवाले सत्पुरुष आपको सबका स्वामी कहते हैं ॥ ॥३०॥ हे महाबली ! जब देवताओंके पति इन्द्रने वा विष्णुने तुम्हारे वज्र मारा था तबसे आपका गला नीला हो गया, इस कारण तुमको नीलकंठ कहते हैं आपने ऐसी कृपा की कि वज्र और चक्रका अपमान न हो इस कारण कण्ठमें नीलता धारण की, प्रहार करनेवालोंका यश विख्यात किया इस कारण आप मेरी रक्षा करो कारण कि समर्थ हो ॥ ३१ ॥ संसारमें जो प्रजा लिंग और भगके

चिन्हसे युक्त हैं वह स्थावरजंगमात्मक सब जगत्में तुम्हारा और पार्वतीका रूप है तत्त्ववेत्ता ब्राह्मण तुमको गुणी कहते हैं तथा लोकजननी अम्बिकाको त्रिगुणात्मिका कहते हैं ॥ ३२ ॥ और "अजामेकां लोहितकृष्णशुक्लाम् इति श्रुतेः" यह प्रकृति मायानेही महानको प्रगट किया है वह महान् क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिवाला है आप यज्ञदीक्षा और योगियोंको परमात्मारूप अग्निमें प्रक्षेपरूप हो. हे देव ! आपके समान कोई अद्भुत नहीं है, भूत भविष्य और वर्तमानमेंभी कोई नहीं जो दृश्य है यह सब त्रिकालमेंभी नहीं हैं, फिर उसके अन्तरकी वस्तु तुम्हारे समान कैसे हो ॥ ३३ ॥ मैं ब्रह्मा कपिलेदेव अनन्त और ब्रह्माजीके बली सब पुत्र, हे देवदेव ! सब आपहीसे उत्पन्न हुए हैं इस कारण आप सबके ईश कारणात्मा स्तुतिके योग्य

वेदैर्गीता सा हि तत्त्वं प्रसूता यज्ञो दीक्षाणां योगिनां चातिरूपः॥नात्यद्भुतं त्वत्समं देव भूतं भूतं भव्यं भवदेवाथ नास्ति ॥३३॥ अहं ब्रह्मा कपिलो योऽप्यनन्तः पुत्राः सर्वे ब्रह्मणश्चातिवीराः ॥ त्वत्तः सर्वे देवदेव प्रसूता एवं सर्वेशः कारणात्मा त्वमीड्यः ॥ ३४ ॥ इति संस्तूयमानस्तु भगवान्गोवृषध्वजः ॥ प्रसाय दक्षिणं हस्तं नारायणमथाब्रवीत् ॥३५॥ मनीषितानामर्थानां प्राप्तिस्ते सुरसत्तम ॥ पारिजातं च हर्तासि मा भूत्ते मनसो व्यथा ॥ ३६ ॥ यथा मनाकमाश्रित्य तपस्त्वमकरोः प्रभो ॥ तथा मम वरं कृष्ण संस्मृत्य स्थैर्यमाप्नुहि ॥ ३७ ॥ अवध्यस्त्वमजेयश्च मत्तः शूरतरस्तथा॥भवितासीत्यवोचं यत्तत्तथा न तदन्यथा ॥३८॥ यश्च स्तवेन मां भक्त्या तोष्यतेऽमरसत्तम ॥ त्वया कृतेन धर्मज्ञ धर्मभाक्संभविष्यति ॥ समरे च जयं विष्णो प्राप्य पूजां तथोत्तमाम् ॥ ३९ ॥ बिल्वोदकेश्वरो नाम भविताहमिहानघ ॥ देवेश्वर त्वयास्थापि देवसिद्धोपयाचनः ॥ ४० ॥

हो ॥ ३४ ॥ इस प्रकार स्तुतिको प्राप्तहो भगवान् शिवजीने हाथ उठाकर नारायणसे कहा॥ ३५॥ हे सुरश्रेष्ठ! आपको मनोरथोंकी सफलता प्राप्त होगी,तुम पारिजात हरण कर सकोगे,मनमें व्यथा मत करो॥ ३६॥ हे प्रभो!जिस प्रकार मैनाकका आश्रय करके तुमने तप किया था वैसेही हे कृष्ण! मेरे वरको स्मरण कर तुम दृढता धारण करो ॥ ३७॥ तुम अवध्य और अजेय तथा मुझसेभी अधिक शूर होगे इसमें सन्देह नहीं मेरा वचन असत्य नहीं होता ॥ ३८॥ हे धर्मज्ञ ! जो कोई इस तुम्हारे स्तोत्रसे मेरा पूजन करेंगे, वे धर्मभागी होंगे, समरमें जय और उत्तम सत्कार पावेंगे ॥ ३९॥ हे पापरहित इस तुम्हारे पूजे हुए स्थानमें मैं बिल्वोदकेश्वर नामसे विख्यात हूंगा; हे देवेश्वर ! इस स्थानमें तुमसे स्थापित किया सिद्धोंको वर दूंगा ॥ ४० ॥

हे केशव! इस स्थानमें जो भक्तिमान् मेरी भक्तिसे पूजा कर तीन रात्री निवास करेगा, वह इच्छित लोकोंको प्राप्त होगा ॥ ४१ ॥ इस अविंध्य देशमें गंगा होगी यहां गंगास्मरणवाले मंत्र पढकर स्नान करनेसे गंगास्नानके समानही स्नान होगा ॥ ४२ ॥ हे जनार्दन ! दानवोंका जो षट्पुर नाम नगर है वहां दैत्य पृथ्वीके अन्तरमें पराक्रमसे निवास करते हैं ॥ ४३ ॥ हे कृष्ण ! यह दुरात्मा दैत्य जगत् और देवताओंके कंटकस्वरूप हैं वे इस पर्वतके देशमें गुप्त निवास करते हैं ॥ ४४ ॥ हे पापरहित ! वे ब्रह्माके वरदानसे देवता और दानवोंसे अवध्य हैं, इससे हे केशव ! गुप्त

इहस्थो पोषितो विद्वान्भक्तिमान्मम केशव ॥ त्रिरात्रमीप्सितांल्लोकान्गमिष्यति जनार्दन ॥ ४१ ॥ अविन्ध्या नाम देशेऽस्मिन् गङ्गा चैव भविष्यति ॥ गङ्गास्नानसमं स्नानं मन्त्रतो भविता तथा ॥ ४२ ॥ षट्पुरं नाम नगरं दानवानां जनार्दन ॥ अत्रान्तर्द्धरणीदेशे पराक्रम्य महाबलाः ॥ ४३ ॥ एते दैत्या दुरात्मानो जगतो देवकण्टकाः ॥ छन्ना वसन्ति गोविन्द सानावस्य महागिरेः ॥ ४४ ॥ अवध्या देवदेवानां वरेण ब्रह्मणोऽनघ ॥ मानुषान्तरितस्तस्मात्त्वमेतान् जहि केशव ॥ ४५ ॥ एवमुक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ परिष्वज्य महात्मानं वासुदेवं जनाधिप ॥ ४६ ॥ ततो याते महादेवे प्रभातायां नराधिप ॥ तस्यां निशायां गोविन्दः स्तूय पर्वतमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ तवाधःपर्वतश्रेष्ठ निवसन्ति महासुराः ॥ अवध्या देवदेवानां वरेण ब्रह्मणः पुरा ॥४८॥ निर्गमिष्यन्ति तेनैव मया रुद्धा महाबलाः ॥ द्वारे निरुद्धे तत्रैव विनंक्षयन्ति ममाज्ञया ॥ ४९ ॥ त्वयि सन्निहितश्चाहं भविष्यामि महागिरे ॥ अधिष्ठाय महाघोरान्निवत्स्यामि च पवत ॥ ५० ॥

मनुष्यरूप धारण कर आप इनको जीतिये ॥ ४५ ॥ ऐसा कहकर महादेव वहांही अन्तर्ध्यान हो गये और चलते समय जनार्दनको आलिंगन करते गये ॥४६॥ हे राजन् ! महादेवके चले जानेसे जब प्रातःकाल हुआ उस रात्रीमें श्रीकृष्ण पर्वतकी स्तुति करके बोले ॥ ४७ ॥ हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुम्हारे नीचे महादैत्य निवास करते हैं, वह ब्रह्माके वरसे देवता और दानवोंसे अवध्य हैं ॥ ४८ ॥ मुझसे रोके हुए वे महाबली नहीं निकलेंगे और द्वार रुक जानेसे मैंही महाघोर जन्तुओंको विनष्ट करूंगा ॥ ४९ ॥ ५० ॥

हे पर्वतश्रेष्ठ ! इस पर्वतपर आकर प्राणी यदि मेरा दर्शन करेंगे उनको सहस्र गोदान करनेका फल प्राप्त होगा ॥५१॥ जो तेरे पत्थरसे मेरी मूर्ति बनाकर पूजन करेंगे वे भक्त शुश्रूषा करनेवाले मेरी गतिको प्राप्त होंगे॥५२॥इस प्रकार श्रीकृष्णने उस पर्वतपर अनुग्रह की उसी दिनसे श्रीकृष्ण उस पर्वतमें निवास करने लगे॥५३॥हे कौरवनाथ ! विष्णुलोकके जानेको इच्छा करनेवाले वहां पाषाणकी प्रतिमा बनाकर विष्णुका पूजन करते हैं॥५४॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे कृष्णकृतशिवस्तुतिर्नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ वैशम्पायन बोले; तब महाबली

आरुह्य मूर्ध्नि मद्रूपं दृष्ट्वा पर्वतसत्तम ॥ गोसहस्रप्रदानस्य फलं प्राप्स्यति शाश्वतम् ॥ ५१ ॥ त्वत्तोऽश्मभिश्च प्रतिमां कारयित्वा हि भक्तितः ॥ शुश्रूषयन्ति ये नित्यं मम यास्यन्ति ते गतिम् ॥ ५२ ॥ इति तं पर्वतं कृष्णो वरदोऽनुगृहीतवान् ॥ तदाप्रभृति देवेशस्तत्र सन्निहितोऽच्युतः ॥ ५३ ॥ पाषाणैः प्रतिमां तात कारयित्वा च कौरव ॥ शुश्रूषन्ति कृतात्मानो विष्णुलोकाभिकांक्षिणः ॥५४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे कृष्णकृतशिवस्तुतिर्नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो रथवरं कृष्णः समारुह्य महामनाः ॥ बिल्वोदकेश्वरं देवं नमस्कृत्य ययौ नृपः ॥ १ ॥ महेन्द्रमाह्वयामास रथस्थो मधुसूदनः ॥ सत्कृतं पुष्कराभ्यासे सर्वैर्देवगणैः सह ॥२॥ ततः शक्रो जयन्तोऽथ हरिभिर्युक्तमुत्तमम् ॥ आरुरोह रथ देवः सर्वकामप्रदः सताम् ॥३॥ ततो रथस्थयोर्युद्धमभवत्कुरुनन्दन ॥ देवयोर्दैवयोगेन पारिजातकृते तदा ॥ ४ ॥ ततोऽहनद्रणे विष्णुर्बाणैः शत्रुबलार्दनः ॥ सैन्यानि देवराजस्य बाणजालैरजिह्मगैः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण रथके ऊपर स्थित बिल्वोदकेश्वरदेवकोप्रणाम करके चले॥१॥रथमें स्थित हुए श्रीकृष्णने महेन्द्रको आव्हान किया जो पुष्करके समीपमें सब देवताओं सहित स्थित था॥२॥तब इन्द्र और जयन्त उत्तम घोडे जुते हुए रथमें जो सत्पुरुषोंको सब कामना देनेवाला था स्थित हुए॥३॥हे कुरुनंदन ! तब उन दोनोंका रथके ऊपर युद्ध होने लगा; यह युद्ध दैवयोगसे पारिजातके निमित्त हुआ॥४॥तब विष्णुने कुटिलगतिवाले तीक्ष्ण बाणोंसे देवराजकी

सेनाका संहार किया ॥ ५॥ यद्यपि इन्द्र और कृष्ण दोनों बडे बली हैं तथापि इन्द्रने विष्णुको और विष्णुने इन्द्रको प्रहार नहीं किया ॥ ६ ॥ जनार्दनने महेन्द्रके प्रत्येक घोडेको दश २ बाणोंसे जो महातीक्ष्ण अस्त्रयुक्त थे विद्ध किया॥७॥और इन्द्रने तीक्ष्णबाणोंसे श्रीकृष्णके शैब्य सुग्रीव मेघपुष्प बलाहक घोडोंको विद्ध किया॥८॥तब श्रीकृष्णने ऐरावत हाथीको सहस्र बाणोंसे प्रहार किया महाबली इन्द्रने महाबाणोंसे गरुडको विद्ध किया ॥९॥ इस प्रकार वे महाबली नारायण और इन्द्र उस दिन पृथ्वीमें स्थित होकर युद्ध करने लगे ॥१०॥ हे राजन्! जलमें स्थित नौकाके

उपेन्द्रं न महेन्द्रोऽथ नैव विष्णुः सुरेश्वरम् ॥ ताडयामासतुर्वीरौ शस्त्रैः शक्तावपि प्रभो ॥ ६ ॥ एकेकमश्वं दशभिर्महेन्द्रस्य जनार्दनः ॥ विव्याध विशिखैस्तैणैरस्त्रयुक्तैर्जनेश्वर ॥ ७ ॥ शैब्याद्यानपि देवेन्द्रः शरैरमरसत्तमः ॥ छादयामास राजेन्द्र घोरैर-स्त्राभिमन्त्रितैः ॥ ८ ॥ स च बाणसहस्रैश्च कृष्णो गजमवाकिरत् ॥ गरुडं च महातेजा बलभिद्धरिवाहनम् ॥९॥ भूयिष्ठाभ्यां रथाभ्यां तौ तदहः शत्रुदारुणौ ॥ युयुधाते महात्मानौ नारायणसुराधिपौ ॥ १० ॥ चकम्पे वसुधा कृत्स्ना नौर्जलस्थेव भारत ॥ दिशां दाहेन दिग्देशाः संवृताश्च समन्ततः ॥११॥ चेलुर्गिरिवराश्चैव पेतुश्च शतशो द्रुमाः ॥ पेतुश्च धरणीपृष्ठे मर्त्या धर्मगुणा-न्विताः ॥ १२ ॥ निर्घाताः शतशश्चान्ये पेतुस्तत्र नराधिप ॥ ऊहुश्च सरितः सर्वाः प्रतिस्रोतो विशांपते ॥ १३ ॥ विष्वग्वाता ववुश्चैव पेतुरुल्काश्च निष्प्रभाः ॥ मुहुर्मुहुर्भूतसङ्घा रथनादेन मोहिताः ॥१४॥ प्रजज्वाल जले चैव वह्निर्जनपदेश्वर ॥ युयुधुश्च ग्रहैः सार्द्धं ग्रहा नभसि सर्वतः ॥१५॥ ज्योतींषि शतशः पेतुः स्वर्गाच्च धरणीतलम् ॥ दिशां गजाः प्रकुपिता नागाश्च धरणीतले ॥१६॥

समान पृथ्वी कंपित होने लगी और दिग्दाह होनेसे सब देश रक्तवर्ण हो गये॥११॥पर्वत चलायमान हुए सैंकडों पर्वत सैंकडों वृक्ष पृथ्वीपर गिरने लगे और मर्त्यधर्म गुणक प्राणी पृथ्वीपर गिरने लगे ॥१२॥ हे राजन्! और दूसरे देवता उनके शब्दसे पृथ्वीपर गिर पडे. हे राजन्! वे नदियोंके प्रति स्रोतमें वहने लगे ॥१३॥ प्रतिकूल पवन चलने लगी, उल्कापात होने लगे तारे कान्तिहीन रथके शब्दसे प्राणी वारंवार मोहित होने लगे ॥ १४ ॥ जलमें अग्नि जलने लगी और आकाशमें ग्रहोंमें युद्ध होने लगा॥ ॥१५॥ स्वर्गसे सैंकडों तारा पृथ्वीपर गिरने लगीं. दिशाओंके हाथी और पृथ्वीतलमें

नाग क्रोधित हुए ॥१६॥ गर्दभके समान श्याम और लाल मेघ आकाशमें छा गये और रूखी रुधिरकी वर्षा कर बडा शब्द करने लगे॥१७॥ उन दोनों वीरोंको युद्ध करता देखकर पृथ्वी स्वर्ग आकाश तथा राजोंमें कोईभी सुखी न हुआ॥१८॥जगत्के मंगलकी इच्छासे मुनिगण मंत्र जपने लगे, ब्राह्मण और महात्मा शीघ्र उनमें स्थित हुए ॥१९॥ तब महातेजस्वी ब्रह्माजी कश्यपजीसे कहने लगे तुम वधू अदितिके साथ जाकर दोनों पुत्रोंको युद्धसे निवारण करो ॥२०॥ बहुत अच्छा ब्रह्माजीसे कश्यपजी यह वचन कहकर रथमें बैठ उन नरश्रेष्ठके समीप गये ॥२१॥ अदितिके

गदभारुणसंस्थानैश्छिन्नाभ्रैश्चावृतं नभः ॥ विनदद्भिर्महारावान्रूक्षशोणितवर्षिभिः ॥ १७॥ न भूर्न द्यौर्न गगनं नरेन्द्रवृषभाभवन् ॥ खस्थानि सुरवीरौ तु दृष्ट्वा युद्धगतौ तदा ॥ १८ ॥ जेपुर्मुनिगणा मन्त्रान् जगतो हितकाम्यया ॥ ब्राह्मणाश्च महात्मानो ह्यतिष्ठंस्तेषु सत्वराः ॥ १९ ॥ ततो ब्रह्मा महातेजाः कश्यपं वाक्यमब्रवीत् ॥ गच्छ वध्वा सहादित्या पुत्रौ वारय सुव्रत ॥ २० ॥ स तथेति तदा देवमुक्त्वा पद्मभवं मुनिः ॥ जगाम रथमास्थाय तस्थौ नरवरान्तिके ॥२१॥ स्थितं तु कश्यपं दृष्ट्वा सहादित्या तदान्तरा उभौ रथाभ्यां धरणीमवतीर्णौ महाबलौ ॥ २२ ॥ न्यस्तशस्त्रौ च तौ वीरौ ववन्दतुररिंदमौ ॥ पितरौ धर्मतत्त्वज्ञौ सर्वभूतहिते रतौ ॥ २३ ॥ उभौ गृहीत्वा हस्ताभ्यामदितिस्त्वब्रवीद्वचः असोदराविवैवं किमन्योन्यं हन्तुमिच्छतः ॥ २४ ॥ स्वल्पमर्थं पुरस्कृत्य प्रवृत्तमतिदारुणम् ॥ सदृशं नेति पश्यामि सर्वथा मम पुत्रयोः ॥ २५ ॥ श्रोतव्यं यदि मातुश्च पितुश्चैव प्रजापतेः ॥ न्यस्तशस्त्रौ स्थितौ भूत्वा कुरुतं वचनं मम ॥ २६ ॥

सहित कश्यपजीको स्थित देखकर यह दोनों महाबली रथोंसे पृथ्वीमें उतर पडे ॥२२॥ और दोनोंने शस्त्र रखकर प्रणाम किया,यह कश्यप अदिति इन दोनोंके माता पिता धर्मका तत्व जाननेवाले सब प्राणियोंके हितमें तत्पर थे ॥ २३ ॥ उस समय अदितिने दोनोंके हाथ पकडकर यह वचन कहे कि तुम असहोदर भ्राताके समान किस प्रकार परस्पर एक दूसरेके मारनेकी इच्छा करते हो ॥ २४ ॥ थोडीसी वार्ताके निमित्त तुमने यह दारुण कर्म किया यह कार्य सर्वथा हमारे पुत्रोंके योग्य नहीं है ॥ २५ ॥ यदि माता और प्रजापति पिताका वचन सुनते हो तो शस्त्र

रखकर हमारा वचन सुनो ॥२६॥ बहुत अच्छा यह वचन कहकर वे दोनों वीर परस्पर वचन कहते हुए गंगास्नान करनेको गये ॥ २७ ॥ इन्द्र बोले; तुम सब लोकके प्रभु हो हमने तुमको राज्यमें स्थित किया है फिर राज्यमें स्थापित कर तुम क्यों मेरा निरादर करते हो ॥ २८ ॥ भ्राता होकरभी मेरा ज्येष्ठपन खोकर हे कमलपत्राक्ष कृष्ण ! फिर कैसे शान्त (नष्ट) करनेकी इच्छा करते हो ॥ २९ ॥ इस प्रकार वे गंगाजीमें स्नान कर फिर आये जहां महात्मा कश्यप अदिति विद्यमान थे॥३०॥मुनियोंने उस देशके नाम प्रियसंगम कहा है,जहां वे दोनों कमललोचन अपने माता

तथेत्युक्त्वा च तौ देवौ स्नातुकामौ महाबलौ ॥ गङ्गां जग्मतुरेवाथ प्रजल्पन्तौ परस्परम् ॥ २७ ॥ शक्र उवाच ॥ त्वं प्रभुर्लोककृत्कृत्स्नराज्येऽहं स्थापितस्त्वया ॥ स्थापयित्वा कथं नाम पुनर्मामवमन्यसे ॥ २८ ॥ भ्रातृत्वमुपगम्यैव ज्येष्ठत्वं चाप्यपोह्य च ॥ कथं कमलपत्राक्ष निर्वाणं कर्तुमिच्छसि ॥ २९ ॥ स्नातौ तु जाह्नवीतोये पुनरभ्यागतौ नृप ॥ यत्रादितिः कश्यपश्च महात्मानौ दृढव्रतौ ॥ ३० ॥ प्रियसंगमनं नाम तं देशं मुनयोऽवदन् ॥ यत्र तौ संगतौ चोभौ पितृभ्यां कमलेक्षणौ ॥ ३१ ॥ ततः शक्रस्य कौरव्य दत्त्वा वाचाभयं तदा ॥ यत्र देवगणाः सर्वे समेता धर्मचारिणः ॥ ३२ ॥ ततो ययुर्विमानैस्तु देवाः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥ ऋद्ध्या परमया युक्तास्तेषामेवानुरूपया॥३३॥कश्यपश्चादितिश्चैव तथाशक्रजनार्दनौ॥विमानमेकमारुह्य गता राजंस्त्रिविष्टपम्॥३४॥ ते शक्रसदनं प्राप्ता रम्यं सर्वगुणान्वितम् ॥ ऊषुरेकत्र कौरव्य मुदिता धर्मचारिणः ॥ ३५ ॥ शची तु कश्यपं पत्न्या सहितं धर्मवत्सला ॥ उपाचरन्महात्मानं सर्वभूतहिते रतम् ॥ ३६ ॥

पितासे मिले ॥३१॥ हे कौरव्य ! तब इन्द्रको वाचाका अभय देकर जहां सब धर्मचारी देवता स्थित थे ॥३२॥ सब देवता विमानोंमें स्थित हो स्वर्गको गये और अपने अनुरूप ऋद्धिसे युक्त हो ॥३३॥ कश्यप अदिति इन्द्र जनार्दनभी एक विमानमें स्थित हो स्वर्गको गये ॥ ३४ ॥ तब वे सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त इन्द्रके भवनको प्राप्त होकर बैठे ॥३५॥ शची धर्मवत्सला कश्यप महात्माकी पत्नीसहित भूतके हितकारी महात्माकी सेवा करने

लगी ॥३६॥ तब उस रात्रिके वीतनेसे धर्मके तत्त्वकी जाननेवाली अदिति श्रीकृष्णसे सब प्राणियोंके हितकारक वचन इस प्रकारसे कहने लगी ॥ ३७ ॥ हे उपेन्द्र ! द्वारिकामें जाओ और पारिजात ले जाओ और अपनी वधूके उसके मनके अनुसार पुण्य प्राप्त कराओ ॥ ३८ ॥ जब इस सत्यरूपी पुण्यकी प्राप्ति हो जाय तब तुम फिर इस वृक्षको हे पुरुषश्रेष्ठ ! यथास्थानमें स्थापित कर दो ॥ ३९ ॥ जब यशस्विनी देवमाताने यह कहा; तब इन्द्र बोले;ऐसाही होगा तत्काल नारदजीने सर्व धर्मयुक्त यही वचन कहे॥४०॥तब श्रीकृष्ण मातापिताको प्रणाम कर और शचीसहित

ततस्तस्यां प्रभातायां रजन्यामब्रवीद्धरिम् ॥ अदितिर्धर्मतत्त्वज्ञा सर्वभूतहितं वचः ॥३७॥ उपेन्द्र द्वारकां गच्छ पारिजातं नयस्व च ॥ वध्वा संप्रापयस्वेश पुण्यकं हृदये स्थितम् ॥ ३८ ॥ पुण्यके सत्यया प्राप्ते पुनरेष त्वया तरुः ॥ नन्दने पुरुषश्रेष्ठ स्थाप्यः स्थाने यथोचिते ॥ ३९ ॥ एवमस्त्विति कृष्णेन देवमाता यशस्विनी ॥ उक्ता धर्मगुणैर्युक्ता नारदेन महात्मना ॥ ४० ॥ ततोऽभिवाद्य पितरं मातरं च जनार्दनः ॥ महेन्द्रं सह शच्याथ प्रतस्थे द्वारकां प्रति ॥४१॥ ददौ कृष्णाय पौलोमी नियोगान्कुरुनन्दन॥ सर्वासामेव कृष्णस्य भार्याणां धर्मचारिणी ॥४२॥ दिव्यानां सर्वरत्नानां वाससां च मनस्विनी ॥ नानारागविरक्तानां सदैवारजसामपि ॥ ४३ ॥ भार्याणां च सहस्राणि यानि षोडश माधवे ॥ प्रतिगृह्य महातेजाः प्रययौ द्वारकां प्रति ॥ ४४ ॥ संपूज्यमानो द्युतिमान् खेचरैः पुण्यकर्मभिः ॥ ससात्यकिः सपुत्रश्च प्राप्तो रैवतकं गिरिम् ॥ ४५ ॥ स तत्र स्थापयित्वा च पारिजातं वरद्रुमम् ॥ सत्यकं प्रेषयामास द्वारकां द्वारशालिनीम् ॥ ४६ ॥

महेन्द्रको अभिवादन कर द्वारिकाको चले ॥४१॥ हे कुरुनंदन ! तब इन्द्राणीने कृष्णकी सब भार्याओंके निमित्त अदितिके कहनेसे ॥४२॥ उस धर्मचारिणी बुद्धिमतीने दिव्य रत्न और वस्त्र अनेक प्रकारके रंगयुक्त जो कभी मैले नहीं हो सकते थे॥४३॥सो श्रीकृष्णकी सोलह सहस्र स्त्रियोंके निमित्त दिये महातेजस्वी श्रीकृष्ण वे सब लेकर द्वारिकाको गये ॥४४॥ उस समय आकाशचारी महात्माओंने उनका पूजन किया सात्यकी और पुत्रसहित वह रैवत पर्वतपर आये ॥४५॥ वहां उस श्रेष्ठ वृक्ष पारिजातको स्थापन कर कृष्णने द्वारवाली द्वारकामें सत्यकको भेजा ॥४६॥

श्रीकृष्ण बोले;मैं इन्द्रभवनसे पारिजातको यहां ले आया हूं तुम यह बात भीमवंशमें उत्पन्न हुए यादवोंसे कहो क्योंकि तुम इस वंशके बढानेहारे हो ॥ ४७॥ आज द्वारवतीमें पारिजातका प्रवेश किया जायगा नगरकी शोभा की जाय ॥ ४८ ॥ यह कह सत्यक गया और यह समाचार सुनाकर फिर लौटि आया कुमार नगरवासी साम्बको आदि लेकर हे प्रभो ॥ ४९ ॥ आगे पारिजातको गरुडके ऊपर आरोपण करके रथिश्रेष्ठ प्रद्युम्न मनोहर द्वारकापुरीमें प्रविष्ट हुआ ॥ ५० ॥ शैब्य सुग्रीवादि घोडे जुते रथमें बैठकर पीछे पीछे

श्रीकृष्ण उवाच ॥ पारिजातमिहानीतं महेन्द्रसदनान्मया ॥ निवेदय महाबाहो भैमानां भैमवर्द्धन ॥ ४७ ॥ अद्य द्वारवतीं चैव पारिजातमहं द्रुमम् ॥ प्रवेशयिष्ये नगरे शोभा प्रक्रियतां शुभा ॥४८॥ इत्युक्तः सत्यको गत्वा तथोक्त्वा पुनरागतः॥कुमारैर्नागरैः सार्द्धं साम्बप्रभृतिभिः प्रभो ॥४९॥ ततोऽग्रतः पारिजातमारोप्य गरुडे तदा ॥ प्रद्युम्नो द्वारकां रम्यां विवेश रथिनां वरः ॥५०॥ शैब्यादिहययुक्तेन रथेनानुययौ हरिः ॥ तस्याथ रथमुख्येन सत्यकः साम्ब एव च ॥५१॥ ये त्वन्ये नृप वार्ष्णेया यानैर्बहुविधै-स्तथा ॥ ययुः प्रहृष्टास्तत्कर्म पूजयन्तो महात्मनः ॥५२॥ सत्यकाद्विस्तरं श्रुत्वा यादवा नागरास्तथा ॥ विस्मयं परमं जग्मु-रप्रमेयस्य कर्मणा ॥५३॥ तं दिव्यकुसुमं वृक्षं दृष्ट्वानर्तनिवासिनः ॥ राजन्न ततृपुर्द्दष्टाः पश्यमाना महोदयम् ॥ ५४ ॥ तमद्भुत-मचिन्त्यं च मदकेलिकलाण्डजम् ॥ वृक्षोत्तमं पश्यतां वै वृद्धानामगमज्जरा ॥५५॥ ये त्वन्धचक्षुषः सर्वे तेऽभवन्दिव्यचक्षुषः ॥ विरोगा रोगिणश्चासन्घ्रात्वा गन्धं वनस्पतेः ॥ ५६ ॥

श्रीकृष्णजी चले उनकेही मुख्य रथपर सत्यक, साम्ब चले ॥ ५१ ॥ और जो दूसरे यदुवंशी थे वेभी अनेक प्रकारकी सवारियोंमें चढकर उन महात्माके कर्मकी बढ़ाई करते चले ॥ ५२ ॥ यादव और नगरवासी सत्यकके मुखसे विस्तारपूर्वक उस कथाको सुनकर उनके अप्रमेय कर्मसे परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ५३ ॥ द्वारकावासी उस दिव्यपुष्पोंके वृक्षको देखकर देखतेही रहे परन्तु हे राजन्! वे तृप्त न हुए॥५४॥ उस अद्भुत अचिंत्य वृक्षको देखकर जिसमें मत्त हो पक्षी विहार करते थे उसको देख पुरुषोंका वृद्धपन जाता रहा॥५५॥ नेत्रहीनभी उसकी सुगंधि

पाकर नेत्रयुक्त हो गये और रोगीजन उसकीसुगंधि पातेही रोगरहित हो गये॥५६॥उसके ऊपर कोकिला शब्दकरती थीं यह देखकर द्वारिकावासी प्रसन्न हो जनार्दनकी वन्दना करने लगे॥५७॥अनेक प्रकारके बाजे गाना बजाना यह सब उस वृक्षमें होता था उसे मनुष्य सुनने लगे ॥५८॥ जिस गंधकी जिससमय मनुष्यने मनमें इच्छाकी तत्काल उसको वैसीही सुगंधिआने लगी॥५९॥तब भगवान्‌ने मनोहर द्वारकापुरीमें प्रवेश करके महात्मा वसुदेव और देवकीका दर्शनकिया॥६०॥उग्रसेन शूरसेनभ्राता बलरामजी,तथा दूसरे वृद्ध यादव जो देववत् मान्य करनेके योग्य थे॥६१॥

लपन्तः कोकिलाञ्छ्वेताञ्छ्रुत्वानर्तनिवासिनः ॥ बभूवुर्हृष्टमनसो ववन्दुश्च जनार्दनम् ॥ ५७ ॥ नानाविधानि तूर्याणि गेयानि मधुराणि च ॥ शुश्रुवुस्तस्य वृक्षस्य नातिदूरं गता नराः ॥५८॥ यो यं संकल्पयामास गन्धं हृद्यं नरस्तथा ॥ स तदैव तमाजघ्रे पारिजातसमुद्भवम् ॥ ५९ ॥ ततः प्रविश्य रम्यां तु द्वारकां यदुनन्दनः ॥ वसुदेवं महात्मानं ददृशे देवकीं तथा ॥ ६० ॥ कुकुराधिपतिं चैव बलं भ्रातरमेव च ॥ वृद्धाश्च यादवानां ये मानार्हानमरोपमान् ॥६१॥विसृज्य तान्वै भगवाननादिनिधनोऽच्युतः॥ संपूज्य च यथान्यायं स्वमेव भवनं गतः ॥ ६२ ॥ स सत्यभामया वासं विवेश मधुसूदनः ॥ पारिजातं तरुश्रेष्ठं ग्रहाय गदपूर्वजः ॥ ६३ ॥ सा देवी पूजयामास प्रहृष्टा वासवानुजम् ॥ प्रतिजग्राह तं चापि पारिजातं महाद्रुमम् ॥ ६४ ॥ मनीषितेन स तरुरल्पो भवति भारत ॥ महांश्च वासुदेवस्य तदद्भुतमभून्महम् ॥ ६५ ॥ कदाचिद्द्वारकां सर्वां प्रच्छादयति भारत ॥ कदाचिद्धस्तधार्यस्तु भवत्यङ्गुष्ठसन्निभः ॥६६॥ ननन्द सत्या कौरव्य देवी प्राप्य मनोरथम् ॥ पुण्यकार्थं तु संभारन्संभर्तुमुपचक्रमे॥६७॥

फिर अनादिनिधन भगवान्‌ने उनकी पूजा करके उनको विदा किया और न्याययुक्त सत्कार कर अपने स्थानमें गये॥६२॥ और मधुसूदन सत्यभामाके मंदिरमें प्रविष्ट हुए और पारिजातभी वहीं ले गये ॥६३॥ देवी सत्यभामाने कृष्णकी पूजा की और पारिजात वृक्षको ग्रहण किया ॥६४॥ ७ राजन्! इच्छा करतेही वह वृक्ष बहुत छोटा हो जाता है और बडाभी हो जाता है यह होनेसे वासुदेवका भवन बडा अद्भुत हुआ॥६५॥ कभी तो उसके द्वारा भगवान् सारी द्वारिकापुरीको आच्छादित कर देते और कभी वह अंगुष्ठके समान छोटा हो जाता ॥ ६६ ॥ हे राजन्! सत्यभामा उसके

प्राप्त होनेसे बहुत प्रसन्न हुई उसके मनोरथ पूर्ण हुए फिर व्रतकी पुण्य सामग्री करनेकी इच्छा की ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! जम्बूद्वीपमें जितने द्रव्य हैं वह सब योग्य द्रव्य महात्माकृष्णने उपस्थित कर दिये॥६८॥तब वंशी श्रीकृष्णने सब गुणोंसे युक्त नारदजीका स्मरण किया क्योंकि श्रीकृष्णसे उन्होंने कहा था कि सत्यभामा व्रत करके हम नारदजीको इसे संकल्प कर देंगी ॥६९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पंडितज्वाला-प्रसादमिश्रकृतभाषायां पारिजातानयनं नाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ वैशंपायन बोले;तब महात्मा श्रीकृष्णके ध्यान करते ही महात्मा नार-

यानि द्रव्याणि कौरव्य जम्बूद्वीपे तु कानिचित् ॥ योग्यानि तानि कृष्णेन संभृतानि महात्मना ॥ ६८ ॥ मुनिं तदा संस्मृत-वान्स नारदं जनार्दनः सर्वगुणोचितं वशी ॥ प्रतिग्रहार्थं व्रतकस्य सत्यया यथोपदिष्टस्य पुरंदरानुजः ॥ ६९ ॥ ७ ॥ इति श्रीमहा-भारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातानयनं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ कृष्णस्य कौरव्य ध्यातमात्रस्तपोधनः ॥ आजगाम मुनिश्रेष्ठो नारदो वदतां वरः ॥ १ ॥ संपूजयित्वा विधिवद्वासुदेवो विशांपते ॥ प्रतिग्रहार्थं विधिवच्छ्रीमान्भक्त्या न्यमन्त्रयत् ॥ २ ॥ तत काले च संप्राप्ते स्नातं देवो महामुनिम् ॥ संपूज्य माल्यैर्गन्धैश्च भोजयामास भारत ॥ ३ ॥ सार्वकामिकमन्नाद्यं सर्वभूतकृदन्वयः ॥ सत्यया प्रियया सार्द्धं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥४॥ पुष्पदामा-वसज्याथ कण्ठे कृष्णस्य भाविनी ॥ बबन्ध कृष्णं सुभगा पारिजाते वनस्पतौ ॥ ५ ॥ अद्भिर्ददौ नारदाय ततोऽनुज्ञाप्य केश-वम् ॥ देवी धेनुसहस्रं च काञ्चनस्य च पर्वतम् ॥ ६ ॥

दजी उस स्थानमें आये ॥ १ ॥ हे राजन् ! वासुदेवने विधिपूर्वक उनकी पूजा की और पूजा ग्रहणके निमित्त श्रीमान्ने भक्तिसे उनका निमंत्रण किया ॥ २ ॥ फिर समयपर प्राप्त हो स्नान किये उन मुनिको माला और गंधसे पूजन कर श्रीकृष्णने भोजन कराया ॥ ३ ॥ सब कामनाके देनेवाले अन्न और भोजन सत्यभामाके सहित श्रीकृष्णने उनको प्रदान किये और प्रसन्नतासे सब कार्य किये ॥४॥ तब सत्यभामाने श्रीकृष्णके गलेमें फूलोंकी माला डालकर पारिजातमें बांध दिया ॥५॥और श्रीकृष्णकी अनुज्ञासे नारदजीको जल देकर देवीने सहस्र धेनु सुवर्णका पर्वत ॥ ६ ॥

सुवर्ण चांदी मिले हुए मणिरत्न तिलमिले हुए धान्य तथा औरभी सहस्रों वस्तु ॥ ७ ॥ मुनिश्रेष्ठ नारदजीको दिये वे सब ग्रहण कर प्रसन्न हो भोजनकर फिर श्रीकृष्णसे बोले ॥ ८ ॥ हे कृष्ण ! तुम अब हमारे हुए, जलके साथ सत्यभामाने तुमको प्रदान किया है, सो तुम अब हमारे साथ चलो, जो हम कहें सो करो ॥ ९ ॥ यह मुख्यवार्ता है कि दासको स्वामीका कार्य करना चाहिये, यह सुन श्रीकृष्णने कहा बहुत अच्छा, तब चलते हुए नारदजीके पीछे श्रीकृष्ण चलने लगे ॥ १० ॥ तब मुनिश्रेष्ठने अनेक प्रकारके हास्य-युक्त वचन कहकर अभी यहां बैठो मैं जाता हूं,इस प्रकार वह हास्यरसमें कुशल मुनि कहने लगे॥११॥फिर इनके गलेसे फूलोंकी माला निकाल-

हिरण्यरूप्यमिश्रं च मणिरत्नप्रभस्य च ॥ तिलमिश्रस्य च तथा धान्यैरन्यैर्युतस्य च ॥७॥ प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं नारदो मुनि-सत्तमः ॥ स संप्रहृष्टो भुक्त्वाथ भूयः केशवमब्रवीत् ॥८॥ भो केशव मदीयस्त्वमद्भिर्दत्तोऽसि सत्यया ॥ स त्वं मामनुगच्छस्व कुरु यद्यद्ब्रवीम्यहम्॥९॥प्रथमः पक्ष इत्येवमब्रवीन्मधुसूदनः॥व्रजन्तमनुवव्राज नारदं च जनार्दनः ॥१०॥ परिहासं बहुविधं कृत्वा मुनिवरस्तदा ॥ तिष्ठस्व गच्छामीत्युक्त्वा परिहासविचक्षणः ॥११॥ अपनीय ततः कण्ठात्पुष्पदामैनमब्रवीत् ॥ कापिलां गां सवत्सां भो निष्क्रयार्थं प्रयच्छ मे॥१२॥कृष्णाजिनं तिलैः पूर्णं प्रयच्छ च सकाञ्चनम् ॥ एषोऽत्र निष्क्रयः कृष्ण विहितो वृषके-तुना ॥१३॥ तथेत्युक्त्वा हृषीकेशस्तथा चक्रे जनाधिप ॥स उवाच मुनिश्रेष्ठं हसित्वा मधुसूदनः ॥१४॥ वरं वरय धर्मज्ञ यस्ते नारद काङ्क्षितः ॥ तत्ते दाताऽस्म धर्मज्ञ परा प्रीतिर्हि मे त्वयि ॥ १५ ॥ नारद उवाच ॥ नित्यमेवास्तु मे प्रीतो भवान्विष्णो सनातन ॥ त्वत्प्रसादात्तु सालोक्यं व्रजेयं ते महामते ॥ १६ ॥

कर बोले; हे कृष्ण ! मुझको अपना मूल्य सवत्सा कपिला गौ दीजिये ॥१२॥ कृष्णाजिन तिलोंसे पूर्ण कांचन मुझे दीजिये. हे कृष्ण ! शिवजीने इसका यही मोल विधान कर दिया है ॥१३॥ हे राजन् ! बहुत अच्छा यह कहकर श्रीकृष्णने उनके सब वचन किये, और हँसते हुए मधुसूदन श्रीकृष्ण उनसे बोले ॥ १४ ॥ हे धर्मज्ञ नारद ! जो तुम्हारी इच्छा हो सो वर मांगो; हे धर्मज्ञ ! वह मैं तुमको दूंगा, कारण कि तुममें मेरी परम प्रीति है ॥१५॥ नारदजी बोले;यही मांगता हूं कि सनातन देव मेरे ऊपर सदा प्रसन्न रहे. हे महामते ! तुम्हारेप्रसादसे मैं तुम्हारे सालो

ंत्यको जाऊं ॥ १६ ॥ हे नारायण ! आपकी संगतिसे मैं योनिसे उत्पन्न न हूं और दूसरे जन्ममेंभी मैं ब्राह्मण हूँ ॥ १७ ॥ हे भारत ! यह वचन सुन विष्णु भगवान् बोले ऐसाही होगा, तब यह वचन सुन नारदजी प्रसन्न हुए ॥ १८ ॥ तब अतुलतेजस्वी विष्णुकी सोलह सहस्र स्त्रियोंको सत्यभामाने निमंत्रित किया ॥ १९ ॥ उन सबके निमित्त सत्यभामाने वह दिव्य भूषण वस्त्र दिये, जो शचीने सबके निमित्त दिये थे ॥ २० ॥ तब वहां स्थित हुआ पारिजात अपने गुणोंसे वृद्धिको प्राप्त हुआ, तब वासुदेवकी आज्ञासे महात्मा नारदजीने ॥ २१ ॥ और महात्मा श्रीकृष्णने पारिजातके

अयोनिजो भवेयं ते नारायण सतां गते ॥ भवेयं ब्राह्मणश्चैव पुनर्जात्यन्तरेष्वपि ॥ १७ ॥ एवमस्त्विति तं देवो विष्णुः प्रोवाच भारत ॥ तुतोष च ततो धीमान्नारदो मुनिसत्तमः ॥ १८ ॥ षोडशस्त्रीसहस्राणि विष्णोरतुलतेजसः ॥ निमन्त्रितानि कौरव्य सत्यया हरिकान्तया ॥ १९ ॥ तासां ददौ सन्नियोगमेकैकं हरिवल्लभा ॥ शच्या यो वासुदेवस्य पुरा दत्तो नराधिप ॥ २० ॥ पारिजातो वसंस्तत्र ततः प्रववृते तदा ॥ आज्ञया वासुदेवस्य नारदेन महात्मना ॥ २१ ॥ निमन्त्रिता गणाः सर्वे केशवेन महात्मना ॥ विभूतिं पारिजातस्य ददृशुः कुरुनन्दन ॥ २२ ॥ पाण्डवांश्चानयामास सहैव पृथया हरिः ॥ द्रौपद्या च महातेजास्तथैव च सुभद्रया ॥२३॥ श्रुतश्रवां च ससुतां भीष्मकं ससुतं तदा ॥ अन्यानपि च कौरव्य मित्रसंबन्धिबान्धवान् ॥ २४ ॥ रेमे च सह पार्थेन फाल्गुनेन जनार्दनः ॥ सान्तःपुरो महातेजाः परमर्द्ध्या वसन्नृप ॥ २५ ॥ संवत्सरे ततो याते केशिहामरसत्तमः ॥ पारिजातं पुनः स्वर्गमानयत्सर्वभावनः ॥ २६ ॥ तत्रादितिं कश्यपं च दृष्ट्वा स्वजननीं प्रभुः ॥ शक्रेण सहितो धीमानप्रमेयपराक्रमः ॥ २७ ॥

देखनेके निमित्त अपने बांधवोंको बुलाया; कि वे आकर उस वृक्षका ऐश्वर्य देखें ॥ २२ ॥ कुन्तीसहित पाण्डवोंको बुलाया, द्रौपदी और सुभद्राभी आईं ॥ २३ ॥ शिशुपालकी माता श्रुतश्रवा और शिशुपाल पुत्रसहित भीष्मक, हे कौरव्य ! औरभी मित्रसम्बन्धी बांधवोंको बुलाया ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण अर्जुनके आनेसे बहुत प्रसन्न हुए, वह महातेजस्वी अन्तःपुरमें परमऋद्धिसे संयुक्त हो वसने लगे ॥ २५ ॥ इस प्रकार संवत्सरके व्यतीत होनेसे केशीके मारनेवाले श्रीकृष्णने वह वृक्ष फिर स्वर्गलोकमें पहुँचा दिया ॥ २६ ॥ वहां प्रभुने अदिति और कश्यप अपने मातापिताको इन्द्रके सहित देखा, जो

॥२३३॥

प्रभु बुद्धिमान् और महापराक्रमी हैं॥२७॥तब प्रणाम करते हुए श्रीकृष्णसे माता अदिति बोली;हे अमरश्रेष्ठ ! तुम दोनोंमें नित्यप्रति सुन्दर प्रीति रहे ॥२८॥ हे जनार्दन ! तुम हमारे मनोरथ पूरे करो, तब कृष्ण अपनी मातासे बोले ऐसाही हो ॥२९॥ इस प्रकार मातापितासे आमंत्रण कर इन्द्रसे वह महात्मा वासुदेव समयके अनुसार वचन बोले॥३०॥कि महात्मा महादेवने इस प्रकार संदेशा दिया है,कि तुम भूमिके अन्तरमें रहनेवाले असुरोंका वध करो॥३१॥सो मैं दश दिनमें उन असुरोंको मारना चाहता हूं,वहां वह महात्माओंमें श्रेष्ठ स्थित होंगे॥३२॥ वह वीर जयन्त उस

तमुवाचादितिर्माता प्रणतं मधुसूदनम् ॥ सौभ्रात्रमस्तु वामेवं नित्यं चामरसत्तम ॥२८॥ मनोरथं मम त्वं च पूरयस्व जनार्दन ॥ तथेत्येवाब्रवीत्कृष्णस्ततो मातरमात्मवान् ॥ २९ ॥ आमन्त्रयित्वा पितरौ देवराजानमब्रवीत् वासुदेवो महातेजाः कालप्राप्तमिदं वचः ॥ ३० ॥ महादेवेन देवेश संदिष्टोऽस्मि महात्मना ॥ अन्तर्भूमितले वध्यानसुरान्प्रति मानद ॥ ३१ ॥ तदितो दशरात्रेण हन्ताहमसुरोत्तमान् ॥ तत्रोपविष्टान्स्थातव्यं प्रवरेण महात्मना ॥ ३२ ॥ जयन्तेन च वीरेण दानवानां जिघांसया ॥ एकोऽत्र मानुषो देवो देवपुत्रस्तथा परः ॥३३॥ अवध्याः किल ते देवैर्ब्रह्मणो वरदर्पिताः ॥ अस्माभिः किल हन्तव्या मानुषत्वमुपागते ॥३४॥ तथेति कृष्णं स हरिः प्रीतरूपस्तथाब्रवीत् ॥ सस्वजाते ततो देवावन्योन्यं जनमेजय ॥३५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे स्वर्गे पारिजातस्थापनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥ जनमेजय उवाच ॥ पुण्यकानां ममोत्पत्तिं कथयस्व द्विजोत्तम ॥ द्वैपायनप्रसादेन सर्वं हि विदितं तव ॥ १ ॥

स्थानमें स्थिति करे,और दानवोंके वधकी इच्छासे वहां स्थित हों.बस एकही मानुषरूपी देवता और दूसरा इन्द्रपुत्र वहां रहे॥३३॥कारण कि वे ब्रह्माके वरदानके कारण देवतोंसे अवध्य हैं,मानुषरूपधारी हमसेही वध करनेके योग्य हैं ॥३४॥तब प्रसन्न हो इन्द्रने बहुत अच्छा ऐसा कहा; हे जन्मेजय ! तब वे दोहीं देवता वहांसे चले ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे स्वर्गे पारिजातस्थापनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ जन्मेजय बोले; हे वैशंपायन ! हमारे ऊपर कृपा करके पुण्यककी उत्पत्ति कहिये, कारण कि व्यासके प्रसादसे

आपको सब कुछ विदित है ॥ १ ॥ वैशंपायन बोले; हे धर्मवालोंमें श्रेष्ठ ! जो पुण्यक विधि प्रथम पार्वतीने कही है, और जो विधान है सो आप श्रवण कीजिये ॥२॥ जिस समय महाबली श्रीकृष्ण स्वर्गसे पारिजात वृक्ष ले आये, तब मुनिश्रेष्ठ नारदजी द्वारकापुरीको गये ॥३॥ हे राजन् ! जिस समय देवता और असुरोंका घोर संग्राम हुआ था.हे पापरहित ! जब देवकी आज्ञासे घोर षट्पुरका वध किया गया ॥ ४ ॥ तब कृष्णके सहित धर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ नारदजीसे भीष्मकपुत्री आसन देनेके पश्चात् पूछने लगी ॥ ५ ॥ वहां देवी जाम्बवती और सत्यभामा गंधारराजकी पुत्री

वैशम्पायन उवाच ॥ उमया पुण्यकविधिर्नरेन्द्रोत्पादितः पुरा ॥ शृणु येन विधानेन लोके धर्मभृतां वर ॥२॥ स्वर्गान्नीते पारिजाते कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ ययौ द्वारवतीं धीमान्नारदो मुनिसत्तमः ॥३॥ देवासुरे नृपश्रेष्ठ संग्रामे समुपस्थिते ॥ षट्पुरस्य वधे घोरे महादेवाज्ञयाऽनघ ॥ ४ ॥ कृष्णेन सहितं विप्रं नारदं धर्मवित्तमम् ॥ आसीनं परिपप्रच्छ रुक्मिणी भैष्मिकी नृप ॥ ५ ॥ तत्र जाम्बवती देवी सत्यभामा च भामिनी ॥ गान्धारराजपुत्री च योगयुक्ता नराधिप ॥६॥ देव्यश्च नृप कृष्णस्य बह्व्योऽन्या वै समागताः ॥ कुलशीलगुणोपेता धर्मशीलाः पतिव्रताः ॥७॥ रुक्मिण्युवाच ॥ मुने धर्मभृतां श्रेष्ठ धर्मज्ञानभृतां वर ॥ उत्पत्तिं पुण्यकानां त्वं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥ ८ ॥ विधिं च फलयोगं च दानकालं तथैव च ॥ कौतूहलं नस्तत्सिद्धिं वदस्व वदतां वर ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ शृणु वैदर्भि धर्मज्ञे सपत्नीभिः सहानघे ॥ पुण्यकानां विधिः प्रोक्तो यथा देवि पुरा मया ॥ १० ॥ चचारोमा व्रतं देवी पुण्यकानां शुचिव्रता ॥ व्रतावसानेऽथ तया सख्यो देवि निमन्त्रिताः ॥ ११ ॥

योगयुक्त होकर हे राजन् ! ॥ ६ ॥ और भी श्रीकृष्णकी बहुतसी स्त्री जो श्रेष्ठगुणयुक्त पतिव्रता थीं उस स्थानमें आईं॥७॥रुक्मिणी बोली; हे धर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! हे श्रेष्ठज्ञानयुक्त ! तुम पुण्यक व्रतकी उत्पत्ति मुझसे वर्णन कीजिये ॥८ ॥ उसकी विधि फल योगदानका समय और सिद्धि कहिये;हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! इसके सुननेका हमको बडा कौतूहल है ॥९॥ नारदजी बोले;हे धर्म जाननेवाली रुक्मिणी ! अपनी सपत्नीजनोंके सहित श्रवण करो;हे दवी! जिस प्रकार उमाने पूर्वकालमें पुण्यक विधि कही है ॥ १० ॥ एक समय शुचिव्रता देवीने पुण्यक व्रत किया था और

व्रतकी समाप्तिमें देवीने अपनी सखियोंको निमंत्रण दिया॥ ११॥ महापराक्रमी दक्षकी अदिति आदि कन्या और पुलोमकी कन्या पतिव्रता शची ॥ १२॥ सोमकी प्रिया महाभागा रोहिणी, इसी प्रकार फाल्गुनी पूर्वा रेवती हे राजन् !॥ १३॥ हे कुरुनंदन ! शतभिषा मघा उनको महादेवीने बुलाकर इनके साथ आराधना की ॥ १४ ॥ गंगा सरस्वती वेणी गोदावरी नदी हे भारत ! वैतरणी गंडकी ॥ १५॥ हे राजन् ! इसी प्रकार दूसरी नदी लोपामुद्रा औरभी सती जो जगत्को धारण कर रही हैं ॥ १६ ॥ सुंदर गिरिनंदिनी और सुंदरव्रतवाली अग्निकी कन्या, अग्निकी प्रिया स्वाहा, यशस्विनी

अदित्याद्याः सुताः सर्वा दक्षस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ पौलोमी च शची देवी ख्याता लोके पतिव्रता ॥ १२ ॥ रोहिणी च महाभागा सोमस्य दयिता सती ॥ फाल्गुनी च तथा पूर्वा रेवती च विशां पते ॥ १३ ॥ तथा शतभिषा चैव मघा च कुरुनन्दन ॥ एताभिर्हि महादेवी पूर्वमाराधिता सती ॥ १४ ॥ गङ्गा सरस्वती चैव वेणी गोदा च निम्नगा ॥ तथा वैतरणी चैव गण्डकी या च भारत ॥ १५ ॥ अन्याश्च सरितो रम्या लोपामुद्रा च भारत ॥ सत्यश्चान्या जगद्देवि धारयन्ति हि ताः शुभाः ॥१६॥ शुभाश्च गिरिनन्दिन्यो वह्निकन्याश्च सुव्रताः ॥ स्वाहा वह्निप्रिया देवी सावित्री च यशस्विनी ॥ १७ ॥ ऋद्धिः कुबेरकांता च जलेशमहिषी तथा ॥ भार्या पितृपतेश्चैव वसुपत्न्यस्तथा च याः ॥ १८ ॥ ह्रीः श्रीर्धृतिस्तथा कीर्तिराशा मेधा च सुव्रताः ॥ प्रीतिर्मतिश्च ख्यातिश्च सन्नीतिश्च ॥ तपोधनाः ॥ १९ ॥ देव्यः सत्यस्तथैवान्याः सर्वभूतहिते रताः ॥ तासां व्रतावसाने च पूजां चक्रेऽम्बिका तदा ॥ २० ॥ तिलरत्नमयं दत्त्वा पर्वतं सर्वधान्यवत् ॥ वासोभिर्भूषणैर्मुख्यैर्नानारागैः सुमध्यमे ॥ २१ ॥

सावित्री ॥१७॥ कुबेरकी प्रिया ऋद्धि, वरुणकी महारानी, यमकी भार्या, वसुकी स्त्री ॥१८॥ ह्री, श्री, धृति, कीर्ति, आशा, मेधा, शोभनव्रतवाली प्रीतिमति, ख्याति, सन्नति, यह तपसे युक्त ॥ १९ ॥ सत्या तथा दूसरे सब प्राणियोंकी हित करनेवाली देवी इन सबकी पूजा व्रतके अंतमें पार्वतीने की ॥ २० ॥ और तिल रत्नमय सब धान्य सहित पर्वतदान किया, वस्त्र भूषण और अनेक प्रकारके अंगराग दिये ॥ २१ ॥

वह तपस्विनी देवी उस पूजाको ग्रहण कर वे पतिव्रता बैठकर अनेक प्रकारकी कथा कहने लगीं ॥ २२ ॥ उनके बीचमें जो देवीने पुण्यक कथा कही और हे पतिव्रते ! जो पुण्यककी विधि है ॥ २२ ॥ उनकी मतिसे युक्त हो सब पतिव्रताओंके बीचमें अरुंधतीने पुण्यककी श्रेष्ठ विधि पूछी ॥ २४ ॥ तब पार्वतीने उनको प्रीतिसे पुण्यकविधिको वर्णन किया.हे रुक्मिणी ! जब वह सब प्राणियोंकी प्रीति करनेवाली कहती थीं, तब मैं भी वहां था ॥ २५ ॥ वह रत्नपर्वत पार्वतीने मुझेहीं दिया था; हे शुभे ! वह मैंने लेकर ब्राह्मणको सोंप दिया ॥ २६ ॥ तब उमा साध्वी

प्रतिगृह्य तु तां पूजां दत्तां देव्या तपोधनाः ॥ उपविष्टाः कथाश्चित्राः कुर्वन्त्यो भर्तृदेवताः ॥ २२ ॥ पुण्यकार्थं कथास्तासामासन्देवी शशंस याः ॥ विधिं च पुण्यकस्याथ सतीनां भर्तृदेवते ॥ २३ ॥ तासां मतेन साध्वीनां सर्वासां सोमनन्दिनी ॥ पर्यपृच्छदुमां देवीं पुण्यकानां विधिं वरा ॥ २४ ॥ उमा तासां प्रियार्थं तु पुण्यकान्यब्रवीत्तदा ॥ समक्षं मम वैदर्भि सर्वभूतहिते रता ॥२५॥ ममैव चोमया दत्तः स तदा रत्नपर्वतः ॥ प्रतिगृह्य मया चैव कृतो ब्राह्मणसाच्छुभे ॥ २६ ॥ उमा त्वरुन्धतीं साध्वीमामन्त्र्य यदभाषत ॥ शृणु कल्याणि वक्ष्यामि सर्वाभिः सहिता शुभे ॥ २७ ॥ पुण्यकानां विधिं कृत्स्नं यथावदनुपूर्वशः ॥ यथा चैव मया दृष्टस्तत एष विधिः शुभे ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पुण्यकविधिकथनं नाम सप्तसप्ततिमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ उमोवाच ॥ सर्वज्ञाहं यदा भर्तुः प्रसादेन शुचिस्मिते ॥ तदा पुरा ममादिष्टो दृष्टः पुण्यविधिः शुभः ॥ १ ॥ सनातनः पुण्यविधिरिति बुद्ध्यावगम्यताम् ॥ महादेवप्रसादेन मया दृष्टस्त्वरुन्धति ॥ २ ॥

अरुंधतीको आमंत्रण कर बोली; हे कल्याणि ! सुनो. सबके सहित तुमसे कहती हूं ॥ २७ ॥ मैं यथा योग्य पुण्यक विधि कहता हूं. हे शुभे ! जिस प्रकार मैंने यह विधि देखी है ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु विष्णुपर्वणि पुण्यकविधानकथनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ पार्वती बोली;हे पापरहित ! जो कि मैं स्वामीके प्रसादसे सब कुछ जाननेवाली हूं सो मैंने स्वामीके सहितही इस व्रतकी विधि जानी है ॥ १ ॥ सनातन पुण्यक व्रतकी विधि इस प्रकारसे जानो; हे अरुंधती ! जो मैंने महादेवके प्रसादसे इसकी विधि देखी है ॥ २ ॥

॥२३९॥

हे अनिन्दिते ! सब पवित्र पुण्यदायक व्रत मैंने किये हैं, और सबमें अपने स्वामीकी आज्ञा मानी है॥३॥जो कि सतीत्वधर्माचरण नित्य निंदारहित है, सो उनके करनेके योग्य पुण्यककी विधि पुराणोंमें लिखी है॥४॥हे अरुंधती ! दान उपवास पुण्य तथा दूसरे सुकृतभी और पुण्यकव्रतभी जो सती नहीं है उनके करनेसे कुछ फल नहीं देते हैं ॥५॥ जो भर्ताकी वंचना करती हैं जो स्त्री योनिदुष्ट हैं वे योनिके दोषसे पुण्यफलको प्राप्त नहीं होती, क्योंकि वे नरकको जानेवाली हैं॥६॥पतिव्रता सुशीला स्त्री जगत्‌के धारण करनेमें समर्थ होती है, वह अनन्यधर्मसे युक्त हो नित्य सत्यमार्गमें स्थित

पुण्यकानि च सर्वाणि चीर्णवत्यस्म्यनिन्दिते ॥ अनुज्ञयां भगवतो भर्त्तुः शर्वस्य धीमतः ॥ ३ ॥ सतीत्वं धर्मचरणं यस्यानित्यमखण्डितम् ॥ पुण्यकानां विधिस्तस्याः पुराणैः परिकीर्तितः ॥ ४ ॥ दानोपवासपुण्यानि सुकृतान्यप्यरुन्धति ॥ निष्फलान्यसतीनां हि पुण्यकानि तथा शुभे ॥ ५ ॥ या वञ्चयन्ति भर्तारं योनिदुष्टाश्च याः स्त्रियाः ॥ योनिदोषात्पुण्यफलं नाश्नन्ति निरयंगमाः ॥ ६ ॥ साध्व्यो जगद्धारयन्ति सुशीलाः पतिदेवताः ॥ अनन्या धर्मनित्याश्च सतीपथानमाश्रिताः ॥ ७ ॥ अवाग्दुष्टाः शौचयुक्ता धृतिमत्यः शुभव्रताः ॥ सततं सायुवादिन्यो धारयन्ति जगत्खलु ॥ ८ ॥ व्याधितः पतितो वापि दीनो वापि कथंचन ॥ न त्यक्तव्यः स्त्रिया भर्ता धर्म एषः सनातनः ॥ ९ ॥ अकार्यकारिणं वापि पतितं वापि निर्गुणम् ॥ स्त्री पतिं तारयत्येव तथात्मानं शुभानने ॥ १० ॥ योनिदुष्टस्त्रियो नास्ति प्रायश्चितं हतैव सा ॥ वाग्दुष्टे विहितं सद्भि प्रायश्चितं पुरातने ॥ ११ ॥ भर्तुश्छन्देन कर्तव्यं व्रतकं सर्वदा स्त्रिया ॥ उपवासोऽपि वा सत्ये कांक्षन्त्या सुकृतां गतिम् ॥ १२ ॥

रहती है ॥७॥ वाणीकी दुष्टतासे रहित शौचतासे युक्त धृतिमान् सुंदरव्रतवाली, साधुवादवाली, स्त्री सदा जगत्‌को धारण करती हैं ॥८॥ व्याधियुक्त, पतित, दीन अथवा किसी प्रकारकाभी पति हो; स्त्रियोंको उसका त्याग नहीं करना चाहिये यह सनातन धर्म है ॥ ९ ॥ जो अकार्य करनेवाला पतित निर्गुण पतिहै उसको और अपनेकोभी साध्वी स्त्री तार देती है ॥१०॥ योनिदुष्ट हुई स्त्रीका प्रायश्चित्तही नहीं है, हां वाणीसे दुष्ट हुई स्त्रीका पुरातन ऋषियोंने प्रायश्चित्त कहा है ॥ ११ ॥ स्त्रियोंको व्रत सदा पतिके आधीन हो करना चाहिये, और श्रेष्ठ गति चाहनेवालीको उपवासकी विधि

करना चाहिये ॥१२॥ सहस्र कल्पान्तरमेंभी उस स्त्रीकीं गति नहीं होती है;वह योनिदोषसे सहस्रों तिर्यक् योनि पाती है ॥ १३ ॥ और कदाचित् वह स्त्री मनुष्ययोनिमें जन्म लेती है तो वह कुत्तेका भोजन करनेवाली चाण्डालयोनिमें जन्म पाती है ॥१४॥ हे तपोधने ! स्त्रियोंका पूजनीय सदा पतिही है जिसके ऊपर स्वामी प्रसन्न हो वही धर्मचारिणी स्त्री है॥१५॥जिनके मन दूसरे कौतूहलोंमें है उनकेभी अच्छे लोक नहीं मिलते हैं, जिनका मन सद्भावसे स्वामीमें लगा हुआ नहीं है ॥१६॥ मनकर्मवाणीसे जो स्त्री पतिकी सेवा नहीं करती;हे सौम्ये ! उनको पुण्यके फलका देनेवाला एक

कल्पान्तरसहस्रेषु न स्त्री सा लभते गतिम् ॥ तीर्यग्योनिसहस्रेषु पच्यते योनिविप्लवात् ॥ १३ ॥ यदि सा नाम मानुष्यं स्त्री लभेदसती सती ॥ चण्डालयोनौ दुर्मेधा जायते कुक्कुराशना ॥ १४ ॥ भर्ता देवः सदास्त्रीणां सद्भिर्दृष्टास्तपोधने ॥ यस्या हि तुष्यते भर्ता सा सती धर्मचारिणी ॥ १५ ॥ कौतूहलहतानां तु स्त्रीणां लोको न शोभनः ॥ भर्तर्येव मनो यासां सद्भावेन व्यवस्थितम् ॥ १६ ॥ कर्मणा मनसा वाचा पतिं नातिचरन्ति याः ॥ तासां पुण्यफलं सौम्ये पुण्यकैः समुदाहृतम् ॥ १७ ॥ पुण्यकानां विधिं कृत्स्नं स्वर्लोकप्रतिशोभने ॥ निबोध सह सर्वाभिर्दृष्टो यस्तपसा मया ॥१८॥ स्नात्वा स्त्री प्रातरुत्थाय पतिं विज्ञापयेत्सती ॥ उपवासार्थमथ वा व्रतकार्थं धृतव्रते ॥ १९ ॥ श्वशुराभ्यां च चरणौ सततं सत्तमस्य च ॥ ग्रहायोदुम्बरं पात्रं सकुशं साक्षतं तथा ॥ २० ॥ गोशृङ्गं दक्षिणं सिच्य प्रतिगृह्णीत तज्जलम् ॥ ततो भर्त्तुः सती दद्यात्स्नातस्य प्रयतस्य च ॥ २१ ॥ आत्मनोऽपि निषेक्तव्यं ततः शिरसि तज्जलम् । त्रैलोक्यसर्वतीर्थेषु स्नानमेतदुदाहृतम् ॥ २२ ॥

॥२३६॥

पुण्यकही व्रत है ॥ १७ ॥ हे शोभने ! पुण्यक व्रतकी सम्पूण विधि जो स्वर्गलोकमें सुखदायक है, वह मैंने दखी है तुम श्रवण करो ॥ १८ ॥ प्रातःकाल स्त्री उठकर स्नान कर पतिकी आज्ञा ले उपवास या व्रत करनेको कहे ॥ १९ ॥ हे शुभे ! फिर श्वशुरादिके चरणोंको प्रणाम कर कुश चावलके सहित औदुम्बरका पात्र ग्रहण कर ॥ २० ॥ दहिने गौके सींगको धोकर उस जलको ग्रहण कर स्नान करके नियमित हुए पतिके निमित्त भर्ताको दे ॥२१॥ फिर वह जल अपने ऊपर छिडके यह त्रिलोकीके सब तीर्थोंके स्नानके समान है ॥ २२ ॥

उपवास और व्रतमें यह करना चाहिये यह स्त्रीपुरुषोंके निमित्त श्रेष्ठ स्नान कहा है॥२३॥हे अरुंधति! मैंने हरके तपके तेजसे देखा है कि शयन आसन इस प्रकारके प्राप्त होते हैं, जिनका कभी क्षय नहीं होता ॥ २४ ॥ शब्दपूर्वक चरणोंको स्वयं प्रक्षालन करना, आंसुओंका प्रपात क्रोध क्लेश करने पर उपवास और व्रत करनेवाली स्त्रियोंका व्रतफल नष्ट हो जाता है ॥२५॥ हे चन्द्रसंभवे ! सदा शुक्लवस्त्र स्त्रियोंको श्रेष्ठ है अन्तर्वास उपवास और व्रतमें ॥२६॥ पादुकाके निमित्त वेत्रादि तृणके खडाऊं व्रतमें करने चाहिये कारण कि उपवासमें ऐसीही विधि कही है ॥२७॥ अंजन रोचन गंध

उपवासेषु कर्तव्यमेतद्धि व्रतकेषु च ॥ स्नानमेतद्धि सामान्यं स्त्रीणां पुंसां च भाविनि ॥२३॥ अरुन्धति मया दृष्टं तपसा हरतेजसा ॥ अशल्यविद्धं शयनमासनं च तथाविधम् ॥२४॥ स्वयं प्रक्षालनं चापि पादयोरनुशब्दितम् ॥ अश्रुप्रपातो रोषश्च कलहश्च कृतः सति ॥ उपवासाद्व्रताद्वापि सद्यो भ्रंशयति स्त्रियः॥२५॥शुक्लमेव सदा वासः प्रशस्तं चन्द्रसम्भवे ॥ अन्तर्वासो परं चैव उपवासे व्रते तथा ॥२६॥ पादुकार्थं तृणैः कार्यं सर्वदा व्रतके सति ॥ उपवासेऽपि च विधिरेष एव प्रवर्तितः ॥२७॥ अञ्जनं रोचनं चापि गन्धान्सुमनसस्तथा ॥ व्रतके चोपवासे च नित्यमेव विवर्जयेत् ॥२८॥ दन्तकाष्ठं शिरःस्नानमुद्वर्तनमथापि वा ॥ विवर्जितं मृदा सर्वं शौचार्थं तु विधीयते ॥२९॥ बिल्वामृतफलैर्नित्यं श्रीफलैश्च समाचरेत् ॥ प्रक्षालनं वै शिरसः सदा मृन्मिश्रितैर्जलैः ॥३०॥ शिरसोऽभ्यञ्जनं सौम्ये नैव तावत्प्रशस्यते ॥ न पादयोर्न गात्रस्य स्नेहेनेति स्थितिः स्मृता ॥ ३१ ॥ गोयानमुष्ट्रयानं च खरयानं च वर्जितम् ॥ नग्नस्नानं च सततं व्रते चाप्युपवासके ॥ ३२ ॥

फूल लगाना सूंघना पहरना यह व्रत और उपवासमें नहीं करना चाहिये ॥२८॥ दँतौन शिरसे स्नान उद्वर्तन (उबटन लगाना) यह नहीं करे,मृत्तिका सब शौचके निमित्त विधान की गई है ॥ २९ ॥ बेल हरीतकी आमले वा श्रीफल नारियलके फलोंसे मिलाकर शिरको धोना चाहिये उसमें किंचित् मृत्तिका मिलानी उचित है॥३०॥मसालेसे शिरका धोना उचित नहीं है चरण और शरीरमें तेल न लगावे यहीइसकी मर्यादा है॥३१॥गोयान ऊंटकी

सवारी खरयान इनके ऊपर चढना उचित नहीं है, व्रत और उपवासमें नग्न होकर स्नान करना उचित नहीं है ॥३२॥ हे अरुन्धति ! नदी और सोते जलसे स्नान करना अत्यन्त उचित है, शोभन सरोवर बावडी वा दूसरे कमलयुक्त सरोवरमें ॥३३॥ जाकर स्नान करना सदा उचित है, जो यह न हो तो वह व्रती स्त्री घटके जलसेही स्नान करे॥३४॥स्नान नये घडोंसेही करना चाहिये यह पुरातन विधि है शिरसे स्नान करनेसे सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु विष्णुपर्वणि पारिजातहरणेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ पार्वती बोली; पतिव्रता स्त्री इसी प्रकार विधि

नदीजलं प्रस्रवजं प्रशस्तं सोमनन्दिनि ॥ शुभे तडागे वाप्यादौ विस्तीर्णे जलजायुते ॥३३॥ गत्वा स्नानं प्रशस्तं तु सदैव खलु सर्वथा ॥ अलाभे त्ववरुद्धा स्त्री घटस्नानं समाचरेत् ॥३४॥ नवैश्च कुम्भैः स्नातव्यं विधिरेष पुरातनः ॥ स्नानं च कार्यं शिरसा तपःफलमवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥
उमोवाच ॥ विधिनैतेन कृत्स्नेन स्त्री सदा भर्तृदेवता ॥ चरेत्संवत्सरं दान्ता षण्मासान्मासमेव च ॥१॥ स्त्रियो ह्यावाहयेत्साध्वी-रेकादश समाधिना ॥ स्वयं चैव विधिर्दृष्टो व्रतकानां मया शुभः ॥२॥ अद्भिर्दद्यात्सतीः सर्वा या मूलव्रतिनी भवेत् ॥ तासां तु निष्क्रयो देयः कालदेशानुरूपतः ॥ ३ ॥ ततो मासान्तशुक्लस्य तिथौ च नवमी तथा ॥ आराधयित्वा कर्तव्यं व्रतकस्यापवर्ज-नम् ॥ ४ ॥ उपवासमहोरात्रं व्रतकं चापि निश्चितम् ॥ आदौ चान्ते च कुर्वीत व्रतकस्यापि सिद्धये ॥ ५ ॥

करके एक वर्ष छः महीने वा एकमहीनेतक करे ॥ १ ॥ और वह पतिव्रता निमंत्रित स्त्री ग्यारह स्त्रियोंका आवाहन करे यह व्रत करनेकी विधि मैंने देखी है॥२॥जो व्रत करनेवाली हैं वह उनको जल आदिसे अर्चन करे और देशकालके अनुसार उनको प्रथम उनके पतिसे दक्षिणा देकर मोल ले,फिर आचार्यको प्रदान करे पीछे उनको मूल्य देकर आचार्यसे लेकर उनके स्वामियोंको दे यह बात देशकालके अनुसार करनी चाहिये ॥३॥ जब महीनेके शुक्लपक्षकी नौमीआवे तब उनका आराधन कर व्रत समाप्त करना चाहिये॥४॥एक दिन रात उपवास इस व्रतके आदि और अन्तमें करना चाहिये॥५॥

॥२३७॥

तब स्वामी क्षौर करावे और अपने नख कतरवाने चाहिये ॥६॥ फिर विवाहके समान इस व्रतमें स्नान विधि पूर्वक मंडपकी कल्पना, माला धारण ॥७॥ घडोंसे स्नान करके इस नीचे लिखे मंत्रको उच्चारण करे, और स्वामीके चरणोंको नमस्कार कर मन अथवा वाणीसे कहे ॥ ८ ॥ जलदेवी ऋषियोंकी जन्मदात्री ऋषियोंकी उत्पन्न करनेहारी आदित्य लोकमें निवास करनेहारी सुखविधायक हिरण्यवर्णयुक्त निर्मल शुद्ध करनेवाली वह हमको अपने श्रेष्ठ मंगलसे युक्त करे ॥९॥ यह सर्वत्र जलोंका वर्णन किया मंत्र है,अब पुराणोंमें लिखे हुए स्त्रियोंके योग्य मंत्रोंको हमसे सुनो॥१०॥

क्षुरकर्म ततो भर्तुरात्मनश्चैव कारयेत् ॥ उत्सादनं च स्नानं च तस्मिन्नहनि संस्मृतम् ॥६॥ ततो विवाहवत्स्नानं विहितं पुण्यके शुभे ॥ मण्डनं चैव विहितं माल्यधारणमेव च ॥ ७ ॥ कुम्भैस्तु स्नाप्यमानेमं साध्वी मन्त्रमुदीरयेत् ॥ भर्तुः पादौ नमस्कृत्य मनसा वाथ वा गिरा ॥ ८ ॥ आपो देव्य ऋषीणां हि विश्वधात्र्यो दिव्या मदन्त्यो याः शङ्करा धर्मधात्र्यः ॥ हिरण्यवर्णाः पावकाः शिवतमेन रसेन श्रेयसो मां जुषन्तु ॥ ९ ॥ अपामेष स्मृतो मन्त्रः सर्वत्रान्यत्र मे शृणु ॥ मन्त्राः पुराणविहिताः स्त्रीणां सर्वाङ्गशोभने ॥ १० ॥ शुभाग्यया गुणिनी युक्तधमा भर्त्रा साकं मम दास्या वरेण ॥ मा कर्मणा मनसा वापि वाचा भर्तुर्भवेयं रुषती स्यां वशङ्गा ॥ ११ ॥ सपत्नीनामधि नित्यं भवेयं सपुत्रा स्यां सुभगा चारुरूपा ॥ संपन्नहस्ता गुणवादिनी च सर्वात्मना स्यां मा दरिद्रा भवेयम् ॥ १२ ॥ पतिश्च मे स्यात्सुमुखो मत्प्रतीक्षो नित्यं मद्भक्तः स्यान्मन्मतिर्मद्गतिश्च ॥ प्रीतिश्च नौ स्याच्चक्रवाकानुरूपा मनोविरागो न भवेत्साधुवत्स्यात् ॥ १३ ॥

स्वामीको मंगल करनेवाले धनादिसे क्षीण न होनेवाले, वरके हेतु निषिद्ध कर्म करनेकोभी योग्य मैं कर्म मन वाणीसेभी क्रोध करके कभी स्वामीके वशीभूत होनेसे पृथक् न हूं ऐसा करो ॥११॥ मैं अपने गुणोंसे सदा सपत्नीजनोंसे ऊपर रहूं, सुन्दर रूप गुणवाले पुत्रोंसे युक्त हूं,दानादिसे मुक्तहाथवाली गुण कहनेवाली, सब प्रकारसे होकर कभी दरिद्री न हूं ॥१२॥ मेरापति शोभनमुखवाला मेरी प्रतीक्षा करनेवाला नित्य मेरेमें प्रीति करनेवाला मेरा भक्त मेरी मति मेरी गतिसे युक्त हो, हम दोनोंकी चकवाचकवीके समान प्रीति हो मनमें परस्पर विराग उत्पन्न न हो, साधु चित्त रहे॥ १३ ॥

साध्वी स्त्रियोंके उत्तमलोकको हम प्राप्त हों, जिनसे यह सब जगत् धारण कराया जाता है जो पतिमें भक्ति करके पिता और श्वशुर इन दोनोंके कुलको पवित्र कर देती है॥१४॥भूमि, वायु, जल, आकाश, अग्नि, अन्तःकरण क्षेत्रज्ञ प्रकृति महान् और अहंकार यह मेरी साक्षीमें नियुक्त होकर मेरे निश्चय और व्रतको स्मरण करें॥१५॥ जिन्होंने देहधारियोंकी यह भौतिक विधि प्रारम्भ की है सत्वादि भूत और जगत्के बीजको किया है वे सब कोई इस मेरे व्रतमें साक्षी हों, इस मेरे व्रतमें नित्य निश्चयकी प्राप्ति हो॥ १६ ॥ चन्द्रमा आदित्य पुण्यके साक्षी यमराज सब दिशा आत्मा यह सब कोई

लोकान्साध्वीनामुत्तमानां व्रजेयं याभिः सर्वं धार्यते विश्वरूपम् ॥ उभे कुले याः शुभाः पावयन्ति पितुर्भर्तुश्च पतिभक्त्योर्जिताश्च ॥ १४ ॥ भूमिर्वायुर्जलमाकाशमग्निरन्तः क्षेत्रज्ञः प्रकृतिर्यो महांश्च ॥ अहङ्कारश्च मम साक्ष्ये नियुक्ताः स्मरेयुर्मे निश्चयं च व्रतं च ॥ १५ ॥ यैरारब्धो देहिनां भौतिकोऽयं विधिः सत्त्वाद्यैर्भूतयुक्तैः सबीजैः ॥ सन्त्वेते मे साक्षिणः सर्वसंस्था व्रते चास्मिन्निश्चये चापि नित्यम् ॥ १६ ॥ चन्द्रादित्यौ पुण्यसाक्षी यमश्च दिशः सर्वा दश चात्मा च मेऽयम् ॥ सन्त्वेते वै साक्षिणः सर्वसंस्था व्रते चास्मिन्निश्चये चापि नित्ये ॥ १७ ॥ मन्त्रैरेतैः पुराणोक्तैः सर्वद्रव्याभिमन्त्रिणम् ॥ व्रतचर्यात्प्रभृति वै पुराणे समुदाहृतम् ॥ १८ ॥ स्नात्वाथ वाससी दद्याद्भर्तुः कर्त्यं स्वयं शुभे ॥ अथात्मकर्तितं न स्याच्छुभे विघ्नेन केनचित् ॥ १९ ॥ वासोऽन्यदेव दद्याच्च श्वेतं मुख्यं नवं शुचि ॥ स्वकर्तितं च सूत्रं तु वाससा तेन मिश्रयेत् ॥ २० ॥ ततो द्विजं शुचिं दान्तं ज्ञानविज्ञानकोविदम् ॥ भोजयेच्च यथाशक्त्या सह भर्त्रा सुमध्यमे ॥ २१ ॥

मेरे व्रतमें साक्षी होकर मेरे इस निश्चयको करें॥१७॥ इन पुराणके कहे हुए मंत्रोंसे सब द्रव्योंको अभिमंत्रित कर पुराणमें कही हुई व्रतचर्याकी विधिको करे॥१८॥ हे अरुंधति! स्नान करके भर्ताके कते हुए वस्त्र दान करे अपने कते न हों कदाचित् उसमें कोई विघ्न हो जाय तो॥ १९ ॥ औरभी नवीन श्वेत वस्त्र प्रदान करे और अपना कता हुआ सूत उसपर रख दे॥ २० ॥ फिर कोई ज्ञान विज्ञानमें पंडित पवित्र ब्राह्मण बुलाकर अपने

स्वामीके साथ भोजन करावे अर्थात् जब स्वामी भोजन करे तबहीं वह भोजन करे॥२१॥हे महातपस्विनी! ब्राह्मणकेनिमित्त एक जोडा वस्त्रका देना चाहिये शय्या आसन घर धान्य दास दासी ॥ २२ ॥ शक्तिके अनुसार अलंकार रत्नका पर्वत सब धान्य मिलाकर तिलोंके साथ दे ॥ २३ ॥ हे अरुंधति ! अनेक २ प्रकारके वस्त्रोंके ढके हुए हाथी घोडे गौ अपनी शक्तिके अनुसार दान करने चाहिये ॥२४॥ लवण व मक्खनकी, गुड मधु व सुवर्णकी पार्वतीपरमेश्वरकी प्रतिमा देनी चाहिये ॥२५॥ इसी प्रकार सब गन्ध सब रस फूल चांदी उदुम्बर ॥२६॥ सब फल वस्त्र तस्बीर (चित्र)

ब्राह्मणस्यापि दातव्यं वासोयुग्मं महातपे ॥ शय्यासनं गृहं धान्यं दासं दासीं तथैव च ॥२२॥ अलंकारः शक्तितश्च रत्नपर्वत एव च ॥ सर्वधान्यसमुन्मिश्रस्तिलैश्च सविशेषतः ॥२३॥ वासोभिश्च प्रतिच्छन्नो नानावर्णैररुन्धति ॥ हस्त्यश्वावचयश्चैव देया गौरेव च ध्रुवम् ॥२४॥ लवणप्रतिमां दद्यान्नवनीतस्य चापराम् ॥ गुडस्य मधुनश्चैव सुवर्णस्य च शोभनाम् ॥२५॥ तथैव सर्वगन्धानां रसानां पृथगेव च ॥ तथा सुमनसां दद्याद्रूप्यमौदुम्बरस्य च ॥२६॥ फलानां चैव सर्वेषां वाससामपि नन्दिनि ॥ चित्रप्रतिकृतिं चैव काष्ठस्य प्रतिमां तथा ॥२७॥ शिलां प्रतिकृतिं चैव दध्नोऽथ पयसस्तथा ॥ सर्पिषा दूर्वया चैव या चान्यामप्यभीप्सति ॥२८॥ कालदेशानुरूपं च देयं विभवतः सति ॥ अल्पं वा बहुलं वापि भर्तुश्छन्देन सर्वदा ॥२९॥ तिलपात्रं प्रदातव्यं न देयं ननु शोभने ॥ गौस्त्ववश्यं प्रदातव्या कपिला कांस्यमेव च ॥३०॥ कृष्णाजिनं च सुभगे सतिलं वाससान्वितम् ॥ आदर्शश्चैव कूर्चश्च तथाजिन मनिन्दिते ॥३१॥ एतद्दत्त्वा सर्वकामानाप्नोति वरवर्णिनि ॥ पुरोधिका पुत्रवती सुभगा रूपभागिनी ॥ ३२ ॥

अथवा काष्ठकी प्रतिमा ॥२७॥ शिलाकी प्रतिमा दही सर्पि (घी) दूर्वासे स्नान कराकर अथवा जिसकी इच्छा हो॥२८॥ अपने वित्तके अनुसार देशकाल देख थोडा बहुतजो इच्छा हो सो भर्ताकी आज्ञासे दान करे॥२९॥हे शोभने!तिलका भरा पात्र देना चाहिये किन्तु भर्ताकी आज्ञाके विना न दे और कपिला गौ तथा कांसीका पात्र अवश्य प्रदान करे॥३०॥कृष्णाजिन(मृगचर्म)तिल और वस्त्रोंके सहित आदर्श(दर्पण)कुशमुष्टिका आसन और अजिन (चर्मका) वस्त्र दे ॥ ३१ ॥ हे वरवर्णिनि ! इनको देकर सब कामनाओंको स्त्री प्राप्त होती है वह सबसे अग्रगण्य पुत्रवती सुभगा और

रूपभागिनी होती है॥३२॥भरे हाथवाली धनाढ्य सुन्दरनेत्रवाली स्त्री होती है और इच्छासेही वह रूपगुणके अनुसार कन्याको प्राप्त होतीहै॥३३॥ उसकी कन्या श्रेष्ठ और विद्वान् होती है और पुत्रवती धनाढ्य और सदा शीलयुक्त होती है ॥३४॥ हे अरुंधति ! यह व्रत प्रथम मैंने किया था इस कारण यह पृथ्वीमें उमाव्रतके नामसे विख्यात है ॥ ३५ ॥ इस कारण स्त्री इस उत्तम व्रतको करके और दान करके सब कामनाओंको पाती हैं ॥ ३६ ॥ हे अरुंधति ! इस व्रतको करनेसेही देवदेव शिवजीने पूर्वकालमें मुझे अपने सब प्रकार प्रिय करनेमें अभिषेक किया था ॥ ३७ ॥

मृष्टहस्ता धनाढ्या च स्त्री भवत्यमलेक्षणा ॥ इच्छया लभते चैव कन्या रूपगुणान्विताः ॥ ३३ ॥ भवन्ति सुभगाश्चार्यास्तथैव च पुरोधिकाः ॥ पुत्रवत्यो धनाढ्याश्च शीलवत्यश्च नित्यदा ॥३४॥ अरुन्धति कृतं ह्येतन्मयैव प्रथमं यतः ॥ उमाव्रतकमित्येव ख्यातमत्र महीतले ॥ ३५ ॥ एतदेवोत्तमं स्त्रीणां व्रतं तस्मात्समाचरेत् ॥ सर्वकामानवाप्नोति दत्त्वैवैतदनिन्दिते ॥३६॥ एतद्व्रतकरो ह्येव देवदेवो वृषध्वजः ॥ पुराभिषिक्तवान्सौम्ये प्रियार्थं मम सर्वकृत् ॥३७॥ व्रतकस्यावसानेऽथ देयं भोज्यं च नित्यदा ॥ स्त्रीणां कामाः प्रदेयाश्च सदृशः कालदेशयोः ॥ ३८ ॥ एकैकस्य प्रदातव्यं व्रतकं वरवर्णिनि ॥ छन्दतो ब्राह्मणानां तु देयमन्नं सदक्षिणम् ॥ ३९ ॥ पायसं तत्र दातव्यं व्रतके नान्यदिष्यते ॥ नात प्राणिवधः कार्यः पुराणे नियता श्रुतिः ॥ ४० ॥ अथ द्वितीयं वक्ष्यामि व्रतं सोमसमुद्भवे महादेवप्रसादेन दृष्टवत्यस्मि यच्छुभे ॥ ४१ ॥ सर्वाः पुत्रफला नार्यः सद्भिरेतदुदाहृतम् तस्मादन्विष्यतीं दद्यात्सपुत्रकरकान् शुभे ॥ ४२ ॥

व्रतके अवसानमें नित्य भोजन देना चाहिये,और देशकालके अनुसार स्त्रियोंकोभी अभिलषित पदार्थ देने चाहिये ॥३८॥ एक एक ब्राह्मणको अन्न और दक्षिणा दनी चाहिये ॥ ३९ ॥ और पायस (खीर) आदि इच्छानुसार देनी चाहिये व्रतमें किसी प्रकार प्राणीके वधकी इच्छा न करनी चाहिये इसकी श्रुतिपुराणमें विख्याति है ॥ ४० ॥ हे अरुंधति ! अब दूसरा व्रत कहती हूं कारण कि महादेवके प्रसादसे मैं सर्वज्ञ हूं ॥ ४१ ॥ सत्पुरुषोंने कहा है कि स्त्री पुत्र होनेसे फलवाली हैं इस कारण पुत्रकी इच्छा करनेवाली स्त्रियोंको करुयेका जिनमें जलकी टोंटी हो दान करना

चाहिये॥४२॥यह पूर्व कही विधि ज्येष्ठ आषाढमें हो यह कार्य करें ॥४३॥ तब हे शुभे ! एक महीना वा दो महीने पूर्ण होनेसे शर्करा जल मिला पानी करुयेमें भरकर दे ॥ ४४ ॥ घी; दूध, दही, मधु; हे चन्द्रप्रभे ! इनसे व जलसे पूर्ण करके करुये दे ॥ ४५ ॥ एक किसी ज्ञानवृद्ध सुन्दरव्रतवालेके निमित्त जितनी इच्छा हो उतने टोंटी सहित करुए दे ॥ ४६ ॥ और जो स्त्री अपनी इच्छासे कन्याकी इच्छा करे वह कन्याकी इच्छाकर कुछ द्रव्यदान करे अवश्य उसे सन्तान होगी इसमें सन्देह नहीं ॥४७॥ गौ कञ्चन अथवा इच्छानुसार दक्षिणा दे, हे शुचिस्मिते ! अवश्य ब्राह्मणके

ज्येष्ठाषाढौ शुभौ मासौ पुरोक्तं विधिमाचरेत्॥ अथवा ज्येष्ठमेवैकमाषाढं वा समाचरेत् ॥ ४३ ॥ ततो मासद्वये पूर्णे मासे वा वरवर्णिनि ॥ सपुत्रकरकान्दद्यात्फाणितप्रतिपूरितान् ॥ ४४ ॥ सर्पिषः पयसश्चैव दध्नोऽथ मधुनोऽनघे ॥ जलस्य च तथा दद्यात्पूरयित्वा शशिप्रभे ॥ ४५ ॥ एकस्मै ज्ञानवृद्धाय सुव्रताय जितात्मने ॥ सपुंत्रकरकान्दद्याद्यावन्तो मनसः प्रियाः ॥ ४६ ॥ इच्छेत स्त्री दुहितरं स्त्रीणां कामकरं ततः ॥ किंचिद्द्रव्यं सुताकामात्सुतां प्राप्नोत्यसंशयः ॥ ४७ ॥ गौर्वाथ काञ्चनं वापि दक्षिणा चैव शस्यते ॥ विप्रस्याच्छादनं देयमवश्यं तु शुचिस्मिते ॥ ४८ ॥ यज्ञोपवीतं व्रतके दद्यान्नारी शुचिव्रता ॥ सपुत्रकरकाणां तु विधिरुक्तो विपश्चिता ॥ ४९ ॥ अपत्याख्यानयोगेन ब्राह्मणेभ्यः शुचिव्रता ॥ संवत्सरं सुसंपूर्णं व्रतधर्मानुपालिनी ॥ ५० ॥ कारकानपि दद्याच्च पूर्णे संवत्सरे शुभे ॥ अनुज्ञया सदा भर्तुः सत्यवादिन्यरुन्धति ॥ ५१ ॥ सुवर्णसूत्रं विप्राय कौमुद्यां दातुमर्हति ॥ यज्ञोपवीतं विप्रस्य व्रतं संस्थाप्य कामिकम् ॥ ५२ ॥

निमित्त वस्त्रादि प्रदान करे ॥४८॥ व्रतमें स्त्री यज्ञोपवीतभी प्रदान करे, यह विद्वानोंने पुत्रके निमित्त टोंटीवाले करुयेकी विधि वर्णन की है॥४९॥ पुत्रके निमित्त पुष्प आदि पुँल्लिंग नक्षत्रोंमें ब्राह्मणोंको दान करने चाहिये;हे सुन्दर हास्यवाली ! इस प्रकार एकवर्षतक व्रत करती रहे ॥ ५० ॥ और व्रतान्तमें करुओंको दान करे; हे सत्यवादिनी अरुंधति ! यह सब कार्य पतिकी आज्ञासेही करना चाहिये ॥ ५१ ॥ कार्तिकी पूर्णिमाके दिन

ब्राह्मणको सुवर्णसूत्र प्रदान करे,ब्राह्मणको यज्ञोपवीत देनेसे व्रतकी स्थिति होती है॥५२॥यज्ञोपवीत करुआ शक्तिके अनुसार दक्षिणा दनेसे सती स्त्रीजनोंकी सब कामना पूर्ण होती है ॥५३॥ स्त्री किसी प्रकारभी नये धान्यको भक्षण न करे और जबतक यह करे फूलभी न पहरे ॥ ५४ ॥ हे धर्मज्ञ ! एकवार भक्षण करके पुण्यक व्रत करनेको योग्य है; हे शुभे! पहले ब्राह्मण और फिर भर्ताको दे ॥५५॥ इस प्रकार रूपशालिनी स्त्री धनधान्यसे युक्त होकर सौभाग्यवती होती है ॥५६॥ जो स्त्री एकवर्षतक बैंगन नहीं खाती है वह स्त्री कभी पुत्रका विनाश नहीं देखती है ऐसा

यज्ञोपवीतं करकं दक्षिणां च स्वशक्तितः ॥ प्रयच्छती सती स्त्रीभ्यः सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ ५३ ॥ नवं न भक्षयेत्किंचिन्नारी धान्यमथो फलम् ॥ पुष्पाणि नोपयुञ्जीत यावदेवं समाचरेत् ॥ ५४ ॥ एकभक्तेन धर्मज्ञे पुण्यकं कर्तुमर्हति ॥ ब्राह्मणाय तथा देयं भर्तुश्च तदनन्तरम् ॥ ५५ ॥ एवं संवत्सरं कृत्वा सुभगा रूपशालिनी ॥ भवत्यविधवा चैव स्त्री धनस्य तथेश्वरि ॥ ५६ ॥ वार्ताकानि न खादेद्या स्त्री पूर्णं परिवत्सरम् ॥ न सा पुत्रविनाशं हि पश्यतीत्यवगम्यताम् ॥ ५७ ॥ शशकं मृगमांसं वा नित्यमेव विवर्जयेत् ॥ नाप्नोति मरणं नारी प्राप्नोति पतिदेवताम् ॥ ५८ ॥ अलाबुं वर्जयेन्नारी तथैवोत्पादिकामपि ॥ अलाबुं काञ्चनीं दद्याद्या भर्तुः सुखमिच्छति ॥ ५९ ॥ पूर्णे संवत्सरे दद्यादेकैकं शाकमादृता ॥ सदक्षिणं पुत्रवती भवत्येका पुरोधिका ॥ ६० ॥ स्वयं प्रक्षालयाना स्त्री स्वपादावेवमादितः ॥ प्रतिष्ठां लभते नित्यमुद्वेगं नाधिगच्छति ॥ ६१ ॥ दिवा या सूर्यपूतेन वर्तयेत्स्त्री पतिव्रता ॥ एकं संवत्सरं पूर्णं रात्रावन्नं विवर्जयेत् ॥ ६२ ॥

जानो ॥५७॥ शशक और मृगका मांस सदा वर्जना चाहिये ऐसी स्त्री पतिव्रता मरणको नहीं प्राप्त होती ॥ ५८ ॥ स्त्रीको तुम्बीफल और उत्पादिक (उपोदकीं, पोई) भी खानीं उचित नहीं है, जो भर्ताके सुखकी इच्छा करे वह सुवर्णकी तुम्बी प्रदान करे ॥ ५९ ॥ संवत्सरके पूर्ण होनेपर आदरसे एक एक शाक प्रदान करे, और दक्षिणासहित देनेसे वह स्त्री अधिक हो सकती है ॥ ६० ॥ जो स्त्री आदिसे स्वयं अपने चरण धोती है वह नित्य प्रतिष्ठाको प्राप्त होकर उद्वेगको नहीं प्राप्त होती है ॥ ६१ ॥ दिनमें सूर्यसे पवित्र हुए अन्नसे जो

पतिव्रता स्त्री वर्तती है और पूरे वर्षतक जो रात्रीमें अन्न नहीं खाती॥६२॥हे अमरवर्णिनि! उसका पुत्र बहुत दिन जीता, और वह सौभाग्यवती होती है,वह अपनी सम्पूर्ण सपत्निजनोंमें प्रबल होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६३ ॥ संवत्सर पूर्ण होकर सुवर्णका सूर्य दान करना चाहिये, जो ब्राह्मण उसके योग्य दरिद्र और विद्वान् हो उनको दान करना चाहिये ॥६४॥ फल पुष्प और भक्षद्रव्य अच्छे चारित्रयुक्त ब्राह्मणको देने चाहिये ॥६५॥ जो सूर्यके अस्त होनेपर स्त्री भोजन करती है, चन्द्रमा नक्षत्रसे पवित्र हुए विविध भोज्य पदार्थ ॥ ६६ ॥ सुवर्णका चन्द्रमा नक्षत्र ग्रह

सा जीवपुत्रा सुभगा भवत्यमरवर्णिनि ॥ अधितिष्ठति सर्वांश्च सपत्न्यो नात्र संशयः ॥ ६३ ॥पूर्णे संवत्सरे दद्यात्सौवर्णं सूर्यमुत्तमम् ॥ ब्राह्मणायाभिरूपाय दरिद्राय यशस्विने ॥ ६४ ॥ फलानि वाथ पुष्पाणि भक्ष्याण्यपि च सुव्रता ॥ दद्यादनस्तमितके चरितव्रतका तथा ॥ ६५ ॥ या तथास्तमिते सूर्ये भुङ्क्ते स्त्री नियता सती ॥ चन्द्रनक्षत्रपूतानि भोज्यानि वरवर्णिनि ॥ ६६ ॥ सा दद्यात्काञ्चनं चन्द्रं नक्षत्राणि ग्रहानपि ॥ अभिरूपाय विप्राय वासश्च लवणान्वितम्॥६७॥चन्द्रशीतलगात्री सा भवत्यमरवर्णिनि ॥ सुभगा दर्शनीया च पुत्रवत्यपि भाविनी ॥६८॥ पौर्णमास्यां तु सततं प्राप्ते सोमोदयेऽङ्गना ॥ अर्घं दद्यात्सुमनसां साक्षतं सुकुशं तथा ॥ ६९ ॥ यावकं च बलिं दद्याद्दध्ना च सह संयुतम् ॥ एवं या कुरुते नित्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ७० ॥ अदृष्ट्वा या तु नाश्नाति सूर्यं नारी पतिव्रता ॥ दुर्दिने वाथवा व्यभ्रे सेष्टान्कामानवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥

यथायोग्य श्रेष्ठ ब्राह्मण लक्षणयुक्तके निमित्त देना चाहिये वस्त्र और लवणभी दान करे ॥६७॥ हे अरुन्धति ! वह चन्द्रमाके समान शीतल शरीरवाली होती है वह सौभाग्यवती और पुत्रवती दर्शन योग्य होती है॥६८॥ पूर्णमासीके दिन जब चन्द्रोदय होय तब कुश जल अक्षतसहित दान दे॥६९॥ गुड घीसहित गोधूम दहीयुक्त दे, इस प्रकार करनेवाली स्त्री सब कामनाको प्राप्त होती है ॥ ७० ॥ जो पतिव्रता स्त्री सूर्यके देखे विना भोजन नहीं

करती है, दुर्दिन अथवा अवरमें विना दर्शन किये भोजन नहीं करती,वह सब कामनाको प्राप्त होती हैं ॥७१॥ ब्राह्मणके निमित्त शक्तिके अनुसार कांचन देना चाहिये ऐसा करनेसे वह सुन्दर और दर्शनीय होतीहै ॥ ७२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे व्रतकथनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ भगवतीं बोली; जो अपने शरीरसे इस पुण्यक व्रतको करती है और जिस प्रकार इससे परमसुखकी प्राप्ति होती है; हे अरुन्धति ! उन वरोंके सहित मैं कहती हूं तुम श्रवण करो ॥१॥ जो कृष्णपक्षकी अष्टमीको व्रत करती है और कन्द मूल फल भक्षण करती है,और पतिव्रता ब्राह्मणके निमित्त अपना अन्न देती है॥२॥श्वेत वस्त्र देकर अच्छे आचरणसे गुरुब्राह्मणकी पूजा करती है ऐसा संवत्सर व्रत

काञ्चनं शक्तितो दद्यात्सा विप्राय मनस्विनी ॥ सुभगा दर्शनीया च भवत्यमरवर्णिनि ॥ ७२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे व्रतकथनं नामैकोनाशीतितमोऽध्याय ॥ ७९ ॥ भगवत्युवाच ॥ निर्वेष्टव्यं शरीरं यैर्व्रतकैः पुण्यकैरपि ॥ अरुन्धति प्रवक्ष्यामि सहैताभिर्वरेण तु ॥ १ ॥ कृष्णाष्टमीं या क्षिपति स्याद्वा मूलफलाशिनी ॥ ब्राह्मणायैकमशनं स्वं दत्त्वा भर्तृदेवता ॥२॥ शुक्लवस्त्रा शुभाचारा गुरुदैवतपूजका ॥ एवं संवत्सरं कृत्वा ततो दद्याद्द्विजातये ॥३॥ गोवालरज्जुसुकृतं चामरं च ध्वजं तथा ॥ दक्षिणापूर्णमिष्टान्नं शक्त्या वापि शुचिव्रते ॥ ४ ॥ ऊर्मिवन्तः स्वरालाग्रा श्रोणिदेशावलम्बिनः ॥ तस्या भवन्ति केशास्तु भक्तिमत्या हि भर्तरि ॥५॥ शिरो निर्वेष्टुकामा तुगो मयेन शिरः सती ॥ प्रक्षालयेन्मलं धात्र्या बिल्वेन श्रीफलेन च ॥ ६ ॥ गोमूत्रं च सदा प्राश्येच्छिरःस्नानं च मिश्रयेत् ॥ कृष्णां चतुदशीं त्वेतत्कर्तव्यं वरवार्णिनि ॥ ७ ॥

करके जो व्रतकी वस्तु ब्राह्मणके निमित्त देती है ॥३॥ गोबालक बछडेयुक्त रस्सी सुकृत चामर ध्वजा दक्षिणा पूर्वक मिष्टान्न हे सुन्दर हास्यवाली ! अपनी शक्तिसे युक्त देती है॥४॥ सर्पगरुडके समान कोटिमें लगे हुए श्रोणिदेशमें अवलम्बित हुए केशव और भगवान्‌में भक्ति करनेसे उसके बाल बडे होते हैं ॥५॥ और जिस समय शिर धोनेकी इच्छा हो तो गोबर आमले बेल श्रीफल इनको समान भाग ले पीसकर शिर धो डाले ॥ ६ ॥ गोमूत्रसे अवश्य आचमन करे और गोवर किंचित् डालकर शिरसे स्नान करे और कृष्णचतुर्दशीको यह विधि अवश्व करनी चाहिये ॥७॥

इसके करनेसे स्त्री विधवा नहीं होती,सदा दुःखरहित सौभाग्यवती होती है और शिरके रोगसे कभी इसका शरीर तप्त नहीं होता है ॥ ८ ॥ जो अपना माथा दर्शनीय करना चाहे हे शुचिस्मिते ! वह नित्य प्रति पडवाके दिन एकवार भोजन किया करे ॥ ९ ॥ और एक वर्षतक उस दिन दुग्धका भोजन करे फिर ब्राह्मणको चांदीका वस्त्र प्रदान करे ॥ १० ॥ उस श्रेष्ठ स्त्रीका मनोहर ललाट हो जाता है संदेह नहीं, जो श्रेष्ठ भ्रूकी इच्छा करे वह द्वितीयाका व्रत करे ॥ ११ ॥ और उपवासके अनन्तर शाकका भोजन करे फिर संवत्सर बीतनेसे ब्राह्मणसे स्वस्तिवाचन करावे ॥ १२ ॥

भवत्यविधवा चैव सुभगा विज्वरा तथा ॥ शिरोरोगैर्नैव चास्य शरीरमभितप्यते ॥ ८ ॥ दर्शनीयं ललाटं या कांक्षति स्त्री शुचिस्मिते ॥ तिथिं प्रतिपदं नित्यं सा क्षिपेदेकभोजना ॥ ९ ॥ पयसा च तथाश्नीयाद्यावत्संवत्सरो गतः ॥ ब्राह्मणाय ततो दद्यात्पटं रूप्यमयं शुभम् ॥१०॥ ललाटं रूपसम्पन्नमाप्नोति स्त्री सुमध्यमा ॥ सततं स्त्री द्वितीयायां भ्रुवोरिच्छेत्सुरूपताम् ॥११॥ अनन्तरोपवासेन शाकाभक्ताशना सती ॥ ततः संवत्सरे पूर्णे ब्राह्मणं स्वस्ति वाचयेत् ॥ १२ ॥ फलैः परिणतैः सौम्यैर्माषाणां दक्षिणान्वितैः ॥ लवणेन च भद्रं ते घृतपात्रेण चानघे ॥ १३ ॥ आत्मनः शोभनौ कर्णाविच्छती स्त्री सुमध्यमा ॥ नक्षत्रे श्रवणे प्राप्ते ध्रुवं भुञ्जीत यावकम् ॥१४॥ ततः संवत्सरे पूर्णे कर्णौ दद्याद्धिरण्मयौ ॥ घृते प्रक्षिप्य विप्राय पयसा सहिते शुभे ॥ १५ ॥ नासामिच्छेल्ललाटान्तामव्यङ्गां व्याधिवर्जिताम् ॥ तिलगुल्मं सदा सिञ्चेद्यावत्पुष्पेद्धिरक्षितः ॥ १६ ॥ अनन्तरोपवासेन सेक्तव्यः सलिलैः सदा ॥ तस्मादवाप्य पुष्पाणि घृते प्रक्षिप्य दापयेत् ॥ १७ ॥

पके फल सोनेके उर्द और दक्षिणा दे लवण और घृतपात्र दे.हे पापरहित ॥ १३ ॥ जो स्त्री अपने कान अच्छे करना चाहे वह श्रवण नक्षत्रके दिन यावक (आधे पके जौ) भोजन करे ॥ १४ ॥ फिर संवत्सर बीतनेपर सोनेके कान प्रदान करे उन्हें घी और दूधमें डालकर दे ॥ १५ ॥ जो अपनी नासिका श्रेष्ठ और व्याधिरहित करना चाहे वह तिलके गुल्मको सदा सिंचन करे जबतक धान्योत्पत्ति हो ॥ १६ ॥ उपवासके अनन्तर उसपर जल छिडकना चाहिये और उन तिलोंके फूल लेकर घीके घडेमें डाले ॥ १७ ॥

हे अरुन्धति ! जो स्त्री अपनी आंखोंको अच्छा करना चाहे वह पय (दूध) वा घृतका भोजन उसके उपरान्त करे ॥१८॥ तब एक वर्षके पूर्ण होनेपर कमलपत्रसे मंडित और उसी प्रकार कमलपत्र दुग्धमें रखकर॥१९॥हे सती ! वह दूधसहित पात्र ब्राह्मणको दे.हे अरुन्धति!इनके दान करनेसे मृगकेसे नेत्र हो जाते हैं॥२०॥जो स्त्री अपने श्रेष्ठ ओष्ठकरना चाहे वह एक एक वर्षतक मिट्टीके बर्तनमें जलपान करे॥२१॥और नवमीके दिन जो विना मांगे मिल जाय उसीका भोजन करे, फिर संवत्सर बीतनेपर मूंगोंका दानकरे॥२२॥हे शोभने!ऐसा करनेसे वहस्त्री कंदुरीके समान ओष्ठवाली होजाती

स्वक्षी भवेयमिति या स्त्री कांक्षत्यमृतोद्भवे ॥ अनन्तर वै भुञ्जाना पयसाथ घृतेन वा ॥ १८ ॥ ततः संवत्सरे पूर्णे पद्मपत्राणि मण्डिता ॥ तथैवोत्पलपत्राणि न्यसेत्क्षीरे शुचिस्मिते ॥१९॥ प्लवमानानि विप्राय ततो दद्यात्सती सति ॥ कृष्णसारसमीनाक्षी तद्दत्त्वा भवति स्म व ॥२०॥ इच्छेदोष्ठौ चारुरूपौ या स्त्री धर्मगुणान्विता ॥ सा मृन्मयेन तु पिबेदुदकं वत्सरं सती ॥ २१ ॥ अयाचितेन भुञ्जीत नवम्यां धर्मभागिनी ॥ ततः संवत्सरे पूर्णे विद्रुमं दातुमर्हति ॥२२॥ तेन बिम्बफलाभौष्ठी स्त्री भवत्येव शोभने॥ सुभगाथ वपुः पुत्रधनाढ्या गोमती तथा ॥२३॥ या चारुरूपानिच्छेत दन्तानमरवर्णिनि ॥ शुक्लाष्टमीं न साश्नीयाद्भक्तद्वयमनिन्दिता ॥ २४ ॥ ततः संवत्सरे पूर्णे दद्याद्रौप्यमयान्सती ॥ दन्तान्प्रक्षिप्य धर्मज्ञे पयस्यतिगुणोदिते ॥ २५ ॥ तेन सा जातिपुष्पाभान्दन्तान्प्राप्नोति सा सती ॥ सौभाग्यमपि चाप्नोति सपुत्रत्वं तथानघे ॥२६॥ सर्वमेव मुखं कान्तमिच्छेद्या रुचिरानने ॥ सा पूर्णमास्यां स्नात्वा तु प्राप्य चन्द्रोदये शुभे ॥ २७ ॥

है और सुन्दर शरीर पुत्र धनादिसे युक्त गोमान् होती है॥२३॥हे अरुन्धति ! जो अपने दांतोंको लाल वर्ण करना चाहती है वह निन्दारहित शुक्लाष्टमीको भातका भोजन न करे॥२४॥फिर संवत्सरके पूर्ण होनेपर वह सती चांदीके दांत बनवाय दूधमें डालकर दान करे ॥२५॥ तो उससे उसके दांत चमेलीके समान हो जाते हैं. हे पापरहित ! उसको सौभाग्य और पुत्रकीभी प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! जो अपने

मुखको मनोहर करना चाहती है वह पूर्णमासीको स्नानकर चन्द्रोदय प्राप्त होनेमें ॥२७॥ दूधसे सिद्ध किये यावक (गदराये जौ) को ब्राह्मणके निमित्त देकर जब एक वर्ष पूर्ण हो जाय तब चांदीका चन्द्रमा बनाकर॥२८॥फूले कमलमें रखकर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करावे उसके दानसे स्त्रीके मुखकी पूर्णचन्द्रमाके समान शोभा होती है ॥२९॥ जो स्त्री अपने स्तनोंको तालफलके समान करना चाहे वह दशमीके दिन मौन हो विना मांगेसे मिले भोजनको खाय ॥३०॥ संवत्सर पूर्ण होनेपर सोनेके दो बैल बनाकर दक्षिणाके सहित श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रदान करे ॥३१॥ ऐसा

यावकं पयसा सिद्धं दत्त्वा विप्राय भामिनि ॥ ततः संवत्सरे पूर्णे चन्द्रं रूप्यमयं शुभम् ॥२८॥ पद्मे फुल्ले तु विन्यस्य ब्राह्मणान्स्वस्ति वाचयेत् ॥ पूर्णचन्द्रमुखी तेन दानेन स्त्री शुभा भवेत् ॥२९॥ स्तनाविच्छति या नारी तृणराजफलोपमौ ॥ अयाचितं दशम्यां सा नित्यमश्नीत वाग्यता ॥ ३० ॥ संवत्सरे ततः पूर्णे द्वे बिल्वे काञ्चने शुभे ॥ सदक्षिणे ब्राह्मणाय प्रयच्छति धृतात्मने ॥ ३१ ॥ सौभाग्यं परमाप्नोति बहुपुत्रांस्तथैव च ॥ सदोन्नतौ स्तनौ सा स्त्री बिभर्त्यमरवर्णिनि ॥ ३२ ॥ शातोदरत्वमिच्छन्ती क्षिपेदेकान्तभोजिनी ॥ पञ्चम्यां तत्र भोक्तव्यमन्नं तोयेन नित्यदा ॥३३॥ ततः संवत्सरे पूर्णे दद्याज्जातिलतां शुभे ॥ फुल्लां सदक्षिणां धन्ये ब्राह्मणाय धृतात्मने ॥ ३४ ॥ हस्ताविच्छति या नारी रूपयुक्तौ सुमध्यमे ॥ द्वादशीं सा क्षिपत्त्वेवं शाकैः सर्वैरनिन्दितैः ॥ ३५ ॥ संवत्सरे ततः प्राप्ते रौक्मे पद्मे ददातु सा ॥ ब्राह्मणायाभिरूपाय तथा पद्मद्वयं शुभम् ॥ ३६ ॥

करनेसे वह सौभाग्य और बहुतसे पुत्रोंको प्राप्त होती है. हे अरुंधति! उस स्त्रीके स्तन सदा ऊंचे रहते हैं ॥ ३२ ॥ जो अपना पेट पतला करना चाहे वह एकांतमें भोजन करे, और पंचमीके दिन नित्य जलसे भोजन करना चाहिये ॥३३॥ फिर हे शुभे!वर्षदिन पूर्ण होनेपर जातिलता दान करनी चाहिये,जो फूलयुक्त हो उसे धीमान् ब्राह्मणको दक्षिणासहित दे ॥ ३४ ॥ हे सुमध्यमे ! जो स्त्री अपने दोनों हाथोंको सुन्दर करनेकी इच्छा करे वह द्वादशीको निंदारहित शाकोंको भोजन करे॥३५॥संवत्सरके पूर्ण होनेपर दो सुव र्णके कमल प्रदान करे वह दो कमल श्रेष्ठ ब्राह्मणको देने

चाहिये ॥ ३६ ॥ हे सुव्रते ! जो स्त्री अपनी श्रोणी (नितम्ब) को अच्छा करना चाहे वह त्रयोदशीको विना मांगे मिल जाय ऐसा एकवार भोजन करे ॥३७॥ वर्षदिनके पूर्ण होनेपर लवणका दान करे. हे वरानने ! प्रजापतिके मुखके आकारका सुवर्ण से॥ ३८ ॥ आकार बनाकर सब शरीरका देना चाहिये, वह धर्म जाननेवाली अंजन करके शनैः चूर्ण करे ॥ ३९ ॥ पूर्ण रत्न और लाल वस्त्र दान करना चाहिये इससे स्त्रियोंके नितम्ब रक्त और श्रेष्ठ हो जाते हैं ॥ ४० ॥ जो स्त्री अपनी मनोहर वाणी होनेकी इच्छा करे वह लवण न खाय एक वर्ष व मास इसी प्रकार बितादे

श्रोणीं विशालामन्विच्छेत्स्त्री क्षिपत्वेव सुव्रते ॥ त्रयोदशीमेकभक्तमश्नात्वेवमयाचितम्॥३७॥ततः संवत्सरे पूर्णे लवणं संप्रयच्छतु प्रजापतिमुखाकारं कृत्वा तत्र वरानने॥३८॥काञ्चनं चैव दातव्यं तदाकारस्य सर्वदा ॥ अञ्जनेन च धर्मज्ञा शनकैरवचूर्णयेत्॥३९॥ रत्नानि चैव पूर्णानि वासो रक्तं च दापयेत् ॥ तेन श्रोणीमभिमतां स्त्री सौम्ये प्रतिपद्यते॥४०॥मधुरां वाचमिच्छन्ती वर्जयेल्लवणं सती ॥ संवत्सरं वा मासं वा प्रयच्छेल्लवणं ततः ॥४१॥ सदक्षिणं ब्राह्मणाय परं माधुर्यमिच्छती ॥ शुकवाक्याच्छतगुणं भवत्य मरवर्णिनि ॥ ४२ ॥ गूढगुल्फशिरौ पादाविच्छन्त्या सोमनन्दिनि ॥ षष्ठ्यां षष्ठ्यां वरारोहे भोक्तव्यं सलिलोदनम्॥४३॥अग्निर्वा ब्राह्मणो वापि न स्प्रष्टव्यः पदा सदा ॥ यदा पदा स्पृशेत्तं च वन्देत तपसान्विते॥४४॥पादेन नैव पादौ तु प्रक्षालयतुमर्हति ॥ एतैर्नित्यव्रतैर्युक्ता धर्मज्ञा पतिदेवता ॥४५॥ कूर्मौ रूप्यमयौ दद्याद्ब्राह्मणाय पतिव्रते॥तौ वराय ब्राह्मणाय स्थापयित्वा घृतेऽनघे॥४६॥

फिर लवणका दान करे ॥४१॥ दक्षिणा ब्राह्मणोंको देकर परम मधुरताकी इच्छा करे. हे अमरवर्णिनि! वह तोतेके वाक्यसे सौगुन अधिक कंठवाली होती है ॥ ४२ ॥ हे सोमनंदिनी ! जो अपनी गुल्फ गूढ और शिर चरण सुंदर करना चाहे वह प्रत्येक छठको जल और भातका भोजन करे॥४३॥ अग्नि और ब्राह्मणोंको चरणोंसे कदाचित् छूना न चाहिये. हे तपस्विनी ! जो कदाचित् छू जांय तो प्रणाम करे ॥४४॥ पैरसे पैरको नहीं धोवे, इस प्रकार धर्म्मज्ञ पतिदेवता इन व्रतोंसे युक्त होकर ॥४५॥ हे पतिव्रते ! ब्राह्मणोंको चांदीके दो कच्छप बनाय प्रदान करे. हे पापरहिते ! वह घृतमें

स्थापन कर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दे ॥ ४६ ॥ और नीचे मुखवाले सुवर्णके दो कमल बनवाकर लालद्रव्यसे संयुक्त कर दे ॥ ४७ ॥ जो अपने सब शरीरको श्रेष्ठ करना चाहे वह रजोवती होनेमें तीन रात्री पर्यंत अशुद्ध होकर स्नानादिशुद्धिसे व्रत करे॥४८॥ शुक्लपक्षकी छठमें वा क्वारके महीनेमें माता और पिताको तिथिदेवता माने ॥४९॥ और ब्राह्मणोंको घृत और लवण प्रदान करे इस प्रकार वह पतिव्रता घरका संमार्जन करे॥५०॥ हे मानिनि!घरका लीपना और बलिकर्म करे किसीको दुष्ट वचन न कहे,और अपनेको चतुराईसे युक्त करे॥५१॥हे यशस्विनी ! वह कभी भी झूठ न

पद्मे चाधोमुखे कृत्वा दद्याद्विप्राय नन्दिनि ॥ रक्तैर्द्रव्यैर्मिश्रयित्वा काञ्चनेनाभ्यलंकृतौ ॥४७॥ सर्वमेव तु या गात्रमिच्छत्यतिमनोहरम् ॥ त्रिरात्रं पुष्पकाले सा करोतु पतिदेवता ॥ ४८ ॥ कौमुद्यामथवा षष्ठ्यां माघ्यां चाश्वयुजे तथा ॥ मातरं पितरं चैव मन्यते तिथिदैवतम् ॥४९॥ घृतं च नित्यं विप्रेभ्यो ददातु लवणं तथा ॥ संमार्जनं गृहे चैव करोतु पतिदेवता ॥ ५० ॥ उपलेपनं च धर्मज्ञे बलिकर्म च मानिनि ॥ वाग्दुष्टा चैव मा शुभ्रे भवत्वात्मार्थपंडिता ॥५१॥ पर्यश्नातु च सा कश्चिदपि दासं यशस्विनी ॥ बलिं सृजत्वतथ्यं च परित्यजतु भामिनि ॥५२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे व्रतकविधानेऽशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥ उमोवाच ॥ बान्धवान्सगुणानिच्छेदेकभक्तेन नित्यदा ॥ सप्तमीं सप्तमीं नित्यं क्षपेत्स्त्री पतिदेवता ॥१॥ ततः संवत्सरे पूर्णे वृक्षं दद्याद्धिरण्मयम् ॥ सदक्षिणं ब्राह्मणाय शुभबन्धुमती भवेत् ॥ २ ॥

बोले,और देवताओंके निमित्त बलिदान करे तो सबसे अधिक हो जाती है इसमें असत्य भाषण न करे॥५२॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भा.टी. पारिजातहरणे व्रतकविधाने अशीतितमोऽध्यायः॥८०॥पार्वतीजी बोलीं;जो अपने बन्धुओंको गुणी होनकी इच्छा करे वह नित्य एक समय भोजन करे, प्रत्येक सप्तमीमें ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥१॥ संवत्सरके पूर्ण होनेमें सुवर्णका वृक्ष प्रदान करे; ब्राह्मणको दक्षिणा दे, तो

बन्धुवाली हो सकती है ॥ २ ॥ जो स्त्री एक वर्षतक करंजुएमें दीपक बालती है, हे अरुन्धति ! और वर्ष पूर्ण होनेपर सोनेका दीपक दान करे है ॥ ३ ॥ वह स्त्री स्वामीको प्यारी और पुत्रवती होती है. हे शुभे ! सब अपनी सौतोंमें अधिक और दीपककी समान प्रकाशमान होती है ॥ ४ ॥ हे अरुन्धति ! जो स्त्री सबसे पीछे भोजन करती है और क्रूर वचन नहीं कहती है. हे सौम्ये ! वह नित्य पातिव्रता होती और कभी सुखरहित नहीं होती है ॥ ५ ॥ सदा पवित्रतायुक्त और कभी कठोर वचन न कहनेवाली जो नित्य अपने सासससुरकी सेवा करती है ॥ ६ ॥ उसे व्रत और उपवासमें

करञ्जे दीपकं दद्यात्सदा या प्रमदा वरे ॥ पूर्णे संवत्सरे दद्यात्सौवर्णं दीपकं ततः ॥ ३ ॥ रुच्या सा स्त्री भवेद्भर्तुरिष्टा पुत्रवती तथा ॥ सपत्नीनामधि तथा दीपवज्ज्वलते शुभे ॥ ४ ॥ या शेषभोजिनी नित्यं नैव च स्यादरुंतुदा ॥ न च स्याद्व्यशना सौम्ये नित्यं च पतिदेवता ॥ ५ ॥ शौचान्विता च सततं न च रूक्षाभिभाषिणी ॥ श्वश्रूश्वशुरयोर्नित्यं शुश्रूषाभिरता सखी ॥ ६ ॥ किं तस्या व्रतकैः कार्यं किं वा स्यादुपवासकैः ॥ या भर्तृदेवता नित्यं सत्यधर्मगुणान्विता ॥ ७ ॥ विधवा स्त्री तु या हि स्याद्दैवयोगात्सती सति ॥ तस्या वक्ष्यामि यो धर्मः पुराणोक्तः सुमध्यमे ॥ ८ ॥ पतिं संकल्पयित्वा सा चित्रस्थं वाथ मृन्मयम् ॥ तस्य पूजां सदा कुर्यात्सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ९ ॥ तत एवाभ्यनुज्ञां सा नित्यं याचेत सुव्रता ॥ व्रतके चोपवासे च भोजने च विशेषतः ॥ १० ॥ भर्तृलोकान्व्रजत्येव न चेद्व्युच्चरते पतिम् ॥ शाण्डिली सूर्यवद्भाति सततं पतिदेवता ॥ ११ ॥ अद्यप्रभृति सर्वेषां देवानां चैव योषितः ॥ द्रक्ष्यन्ति पुण्यकविधिं पौराणो यः सनातनः ॥ १२ ॥

क्या प्रयोजन है, जो सदा सब धर्मगुणसे युक्त पतिव्रता है ॥७॥ और जो स्त्री दैवयोगसे विधवा हो जाय, हे श्रेष्ठे ! उसके निमित्तभी पुराणोक्त धर्म वर्णन करती हूं ॥८॥ वह अपने पतिको चित्र वा मृत्तिकामें कल्पित कर सत्पुरुषोंका धर्म स्मरण करती हुई उसकी पूजा सदा करे ॥९॥ और सब काममें उसकी आज्ञा ग्रहण करे; व्रत उपवास और विशेष कर भोजनमें आज्ञा ले ॥ १० ॥ उस प्रकार पतिकी आज्ञामें रहनेवाली स्त्री पतिके लोकको जाती है और वह पतिव्रता सूर्यकी समान प्रकाशित होती है ॥ ११ ॥ आजसे लेकर सम्पूर्ण देवताओंकी स्त्री सनातन पुराणोंमें सन्तानककी विधि देखेंगी ॥ १२ ॥

नारदजी सम्पूर्ण पुराणविधिके जाननेवाले होंगे, वह धर्मात्मा उपवास और व्रतोंको जानेंगे॥१३॥अदिति तपसे इन्द्राणि और अरुन्धति ! तुम इन पुण्यकव्रतोंके प्रवृत्त करनेमें सदा॥१४॥ कीर्तिको प्राप्त होगी, और सती स्त्रियें इसके विख्यात वा कीर्तन करनेसे गुणयुक्त होंगी,यही उपरोक्त स्त्रीजन उपवासकी विधिको जानती हैं ॥ १५ ॥ जिस समय महात्मा विष्णुकी इन सब भार्याओंका प्रादुर्भाव होगा, वह यह सब सनातन व्रत पुण्यक विधिको जानेंगी ॥१६॥ स्त्रीधर्ममें सब धर्मोंसे यह विशेष है कि पतिकी भक्ति करे और दुष्टता न करे तथा वाणीकी दुष्टता न करे॥१७॥नारदजी बोले;

मुनिश्च नारदः कृत्स्नं पौराणं ज्ञास्यते विधिम् ॥ उपवासस्य धर्मात्मा व्रतकानां तथैव च ॥ १३ ॥ अदितिस्तपसेन्द्राणी त्वं च सोमसुते वरे ॥ प्रवर्तने पुण्यकानां व्रतकानां च सर्वदा ॥१४॥ कीर्तनीयाः सतीनां हि भविष्यथ गुणान्विताः ॥ उपवासव्रतविधिं यथावदिह कृत्स्नशः ॥१५॥ प्रादुर्भावेषु सर्वेषु भार्या विष्णोर्महात्मनः ॥ ज्ञास्यन्ति पुण्यकविधिं नित्यमेव सनातनम् ॥ १६ ॥ सविशेषं च धर्माणां स्त्रीधर्मेषु प्रशस्यते ॥ पतिभक्तिरदुष्टत्वमवाग्दुष्टत्वमेव च ॥१७॥ नारद उवाच ॥ एवमुक्तास्तु ताः साध्व्यो महादेव्या तपोधनाः ॥ जग्मुर्हृष्टा महादेवीं प्रणिपत्य हरप्रियाम् ॥ १८ ॥ अदितिर्व्रतकं चक्रे शृणु यद्धर्मचारिणी ॥ उमाव्रतविधिः सर्वः पूर्वोद्दिष्टस्तया कृतः ॥ १९ ॥ पारिजाते निबध्याथ मम दत्तस्तु कश्यपः ॥ अदितिव्रतकं नाम तद्दत्तं सत्यभामया ॥ २० ॥ तदेव व्रतकं दत्तं सावित्र्या धर्मनित्यया ॥ तैरेव युक्तैः संयुक्तमिदं त्वभ्यधिकं कृतम् ॥ २१ ॥

हे तपोधन ! जब महादेवीने उन पतिव्रता स्त्रियोंसे इस प्रकार कहा तब वे सब हरप्रिया महादेवीको प्रणाम कर गईं ॥ १८ ॥ हे धर्मचारिणी ! अदितिने इस व्रतको किया है उसने सब उमाके व्रतविधिको पूर्व कहे अनुसार किया ॥१९॥ उन्होंने कश्यपको पारिजातसहित मेरे निमित्त दिया वही अदितिके व्रतसे सत्यभामाने हमको दिया है ॥२०॥ उसी प्रकार व्रत कर सावित्रीने दिया उन्हीं व्रतोंसे युक्त होकर इस व्रतको उन्होंने अधिक किया

है ॥२१॥ संध्याकालके प्राप्त होनेपर स्थानस्थानमें पूजन और नमस्कार तथा जपसे दूना फल होता है॥ २२ ॥ सती स्त्री सावित्री और आदित्य व्रतको करके भर्ता पिताके कुल और अपनेकोभी तार देती है ॥२३॥ इन्द्राणीनेभी इस उमाव्रतको विधिपूर्वक किया है अथवा जो इन्द्राणीके व्रतको करती है,लाल वस्त्र और आमिषभोजन॥२४॥ चौथे दिनके प्राप्त होनेमें फिर पुण्यक विधि कर एक दिनरात्रि उपवास कर सौ घटका दान करना चाहिये॥२५॥हे यशकी करनेवाली ! माघके महीनेमें जो गंगास्नान है वह गंगाव्रत है,उसमें प्रातःकालके समय स्नान करना बहुत उत्तम है ॥ २६ ॥

संध्याकाले तु संप्राप्ते स्थाने स्थाने तथैव च ॥ पूजनं वा नमस्कारो जपश्च द्विगुण स्मृतः ॥ २२ ॥ सावित्री व्रतकं कृत्वा तथादित्याव्रतं सती ॥ भर्तुः कुलं पितृकुलमात्मानं चैव तारयेत् ॥२३॥ इन्द्राणी व्रतकं चक्रे तदेवौमं यथाविधि॥रक्तमभ्यधिकं वासो भाजनं चैव सामिषम् ॥२४॥ चतुर्थे दिवसे वापि पुण्यकार्थं विधिः पुनः ॥ अहोरात्रोपवासश्च देयं कुम्भशतं तथा ॥२५॥ गङ्गया व्रतकं दत्तं तदेवौमं यशस्करि ॥ स्नानमभ्यधिकं त्वत्र प्रत्यूषस्यात्मनो जले ॥२६॥ अन्यस्मिन्वा जले माघशुक्लपक्षे हरिप्रिये ॥ एतद्गङ्गाव्रतं नाम सर्वकामप्रदं स्मृतम् ॥ २७ ॥ सप्त सप्त च सप्ताथ कुलानि हरिवल्लभे ॥ स्त्री तारयति धर्मज्ञा गङ्गाव्रतकचारिणी ॥ २८ ॥ देयं कुम्भसहस्रं तु गङ्गाया व्रतके शुभे ॥ तारणं पारणं चैव तद्व्रतं सार्वकामिकम् ॥ २९ ॥ यमभार्या चकाराथ व्रतं यामरथं शुभम् ॥ हेमन्ते तत्त कर्त्तव्यमाकाशे हरिवल्लभे ॥ ३० ॥ इमानि चैव वाक्यानि ब्रूयादाकाशमास्थिता ॥ स्नात्वा शुचिसमाचारा नमस्कृत्य पतिं शुभे ॥ ३१ ॥

हे रुक्मिणी ! अथवा माघके शुक्लपक्षमें जहां कहीं स्नान करे वा गंगाजलसे स्नान करे वह गंगाव्रतही है जो सब कामनाओंका देनेवालाहै॥२७॥ हे हरिवल्लभे ! वह सात सात कुलोंको धर्मकी जाननेवाली स्त्री तार देती है जो इस गंगाव्रतको करती है ॥ २८ ॥ इस गंगाव्रतमें सहस्र घटोंका दान करना चाहिये यह व्रत पापोंसे छुडाकर सब मनोरथोंको देता है और तार देता है॥२९॥धर्मराजकी भार्याने यामरथ व्रतको किया था; हे हरिवल्लभे ! हेमन्तऋतुमें आकाशमें व्रत करे जो स्थान ढका न हो ॥३०॥ और आकाशमें स्थित हो इन वाक्योंको बोले, स्नानकर पवित्र हो पतिको

प्रणाम कर ॥ ३१ ॥ मैं जिस रथसे चलती हूं उसको हिमपृष्ठपर धारण करता है मैं पतिव्रता जीवपुत्रा अर्थात् जीवित पुत्रवाली हूंगी ॥ ३२ ॥ सपत्नीजनोंसे अधिष्ठित होकर आरोग्यताको देखूं भर्ता और पुत्रसहित बहुत दिनोंतक सुखपूर्वक जिऊं ॥ ३३ ॥ पतिलोकको जाकर मैं प्रिय हूं, चैल अर्थात् सुन्दर वस्त्रोंसे संयुक्त अपने जनोंके इष्ट गुणोंसे युक्त हूं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणसे मधुररसयुक्त स्वस्तिवाचन करावे कृष्ण तिल और खीरका भोजन करावे ॥ ३५ ॥ हे अमरवर्णिनि ! देवियोंनेभी इस प्रकारके व्रत किये हैं. हे रुक्मिणी ! यह प्रथम महादेवीने वर्णन किया

चराम्यहं यामरथं हिमं पृष्टेन धारये ॥ पतिव्रता जीवपुत्रा भवेयं च पुरोधिका ॥३२॥ सपत्नीरधितिष्ठेयं पश्येयं चैव मा यमम् ॥ सभर्तृपुत्रा जीवेयं चिरं च सुखमेव च ॥३३॥ पतिलोकं च गच्छेयं भवेयं नन्दिनी तथा ॥ सुचैला मृष्टहस्ता च स्वजनेष्टा गुणान्विता ॥३४॥ एवं कृत्वा ततो विप्रं मधुना स्वस्ति वाचयेत् ॥ तिलैरपि तथा कृष्णैः पायसेन तु भोजयेत् ॥३५॥ एवं व्रतानि देवीभिः कृतान्यमरवार्णिनि ॥ महादेव्या पुरोक्तानि रुद्रपत्न्या हरिप्रिये ॥३६॥ अहं ब्रवीमि तपसा मदीयेन समन्विता ॥ सर्वा द्रक्ष्यथ पुण्यानि व्रतकानि तथैव च ॥३७॥ पौराणान्युमया देव्या यानि दृष्टानि वै पुरा ॥ कल्याणगुणयुक्तानि पावनानि शुभानि च ॥३८॥ वैशम्पायन उवाच ॥ रुक्मिणी व्रतकं चक्रे दृष्ट्वा व्रतकविस्तरम् ॥ उमाया वरदानेन दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥३९॥ उमाव्रतेषु सर्वेषु वृषदानं तथाधिकम् ॥ रत्नमालाप्रदानं च तथान्नं सार्वकामिकम् ॥४०॥ तथा जाम्बवती चक्रे पुरोमाव्रतकं यथा ॥ ददावभ्यधिकं सा तु रत्नवृक्षं मनोहरम् ॥ ४१ ॥ सत्या ददौ तथैवाथ पुरोमाव्रनकं यथा ॥ पीतमभ्यधिक वासस्तया दत्तमुमाव्रते ॥ ४२ ॥

है ॥ ३६ ॥ मैं कहता हूं कि मेरे तपसे युक्त होकर तुम सम्पूर्ण पवित्र व्रतोंको देखोगी ॥ ३७ ॥ उमादेवीने जो पहले पुराणमें देखे हैं, वे व्रत कल्याणगुणोंयुक्त पवित्र और शुभ हैं ॥ ३८ ॥ वैशंपायन बोले व्रतका विस्तार देखकर रुक्मिणीने इस व्रतको किया, और पार्वतीके वरदानसे दिव्यनेत्रसे देखकर ॥ ३९ ॥ सम्पूर्ण उमाके व्रतोंमें अधिक वृषदान है, रत्नमालाका दान तथा सब कामना देनेवाला व्रत है ॥ ४० ॥ और यही उमाव्रत पहले जाम्बवतीने किया था उसने अधिक रत्नोंके सहित उस मनोहर वृक्षको दान किया ॥ ४१ ॥ सत्यभामाने भी उमाव्रतमें अधिक

पीला वस्त्र प्रदान किया ॥ ४२ ॥ रोहिणी उत्तराफाल्गुनी और मघा नक्षत्रमें व्रत कर जो दान किया जाता है उससे कुलकी महावृद्धि होती है ॥ ४३ ॥ हे कुरुनन्दन! शतभिषानेभी पुण्यलक्षणवाले व्रतमें दान किया जिससे वह सम्पूर्ण नक्षत्रोंमें मुख्य हुई ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते

रोहिण्याथ च फाल्गुन्या मघया च पुरातने ॥ व्रतानि खलु दत्तानि बहूनि कुलवर्द्धने ॥ ४३ ॥ ददौ शतभिषा चैव व्रतकं पुण्यलक्षणम् ॥ येन नक्षत्रमुख्यत्वं जगाम कुरुनन्दन ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे उमाव्रतकथनसमाप्तिः पारिजातहरणकथनसमाप्तिर्नाम चैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे उमाव्रतकथनसमाप्तिपारिजातहरणकथनसमाप्तिर्नाम चैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पूर्वार्द्धं समाप्तम् ॥

जन्मेजय बोले; हे वैशम्पायन ! धर्मज्ञ व्यासशिष्य तपोधन पारिजातके हरणमें आपने षट्पुरका कीर्तन किया॥१॥और हे तपोधन ! यहभी कहा कि उसमें बडे बडे दारुण असुर निवास करते हैं.हे मुनिश्रेष्ठ! उनका और अंधकवध कीर्तन करिये॥२॥वैशंपायन बोले, जब रौद्रकर्मा शिवने त्रिपुरका नाश किया उसमें बडे बडे प्रधान असुरश्रेष्ठ थे ॥३॥ वे कमती बढती साठ सहस्र थे जो त्रिपुरमें रहनेवाले रुद्रकी बाणअग्निसे दग्ध न हुए ॥४॥ वे ज्ञातिवधसे तप्त हो कठिन तप करने लगे सत्पुरुषोंके इष्ट महर्षिगणोंसे सेवित जम्बूमार्गमें जाकर ॥५॥ सूर्यके सन्मुख मुख कर एक लक्ष वर्षपर्यन्त

जनमेजय उवाच ॥ वैशम्पायन धर्मज्ञ व्यासशिष्य तपोधन ॥ पारिजातस्य हरणे षट्पुरं परिकीर्तितम् ॥ १ ॥ निवासोऽसुरमुख्यानां दारुणानां तपोधन ॥ तेषां वधं मुनिश्रेष्ठ कीर्तयस्वान्धकस्य च ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ त्रिपुरे निहते वीरे रुद्रेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ तत्र प्रधाना बहवो बभूवुरसुरोत्तमाः ॥ ३ ॥ शराग्निना न दग्धास्ते रुद्रेण त्रिपुरालयाः ॥ षष्टिः शतसहस्राणि न न्यूनान्यधिकानि च ॥ ४ ॥ ते ज्ञातिवधसंतप्ताश्चक्रुर्वीराः पुरा तपः ॥ जम्बूमार्गे सतामिष्टे महर्षिगणसेविते ॥ ५ ॥ आदित्याभिमुखा वीराः सहस्राणां शतं समाः ॥ वायुभक्षा नृपश्रेष्ठ स्तुवन्तः पद्मसंभवम्॥६॥ तेषामुदुम्बरं राजन्गण एकः समाश्रितः ॥ वृक्षं तत्रावसन्वीरास्ते कुर्वन्तो महत्तपः ॥ ७ ॥ कपित्थवृक्षमाश्रित्य केचित्तत्रोषिताः पुरा ॥ सृगालवाटीस्त्वपरे चेरुरुग्रं तथा तपः ॥ ८ ॥ वटमूले तथा चेरुस्तपः कौरवनन्दन ॥ अधीयन्तो परं ब्रह्म वटं गत्वासुरात्मजाः ॥ ९ ॥ तेषां तुष्टः प्रजाकर्ता नरदेव पितामहः ॥ वरं दातुं सुरश्रेष्ठः प्राप्तो धर्मभृतां वरः ॥ १० ॥

वायु भक्षण करते ब्रह्माकी स्तुति करने लगे॥६॥हे राजन् ! उनका एक गण उदुम्बरके वृक्षको प्राप्त होकर उस वृक्षका आश्रय कर महातप करने लगा ॥७॥ और कोई कैथके वृक्षके आश्रय हो महातप करने लगे कोई शृगालवाटी वृक्षके आश्रित हो महातप करने लगे ॥ ८ ॥ हे कौरवनंदन ! कोई वटमूलके आश्रित हो महातप करने लगे कोई वटवृक्षके आश्रित हो वेदपाठ करने लगे॥९॥ हे राजन् ! ब्रह्मा उनके तपसे महाप्रसन्न हो गये.

हे राजन्! धर्म जाननेवाले देवताओंमें श्रेष्ठ उनको वरदान देनेके निमित्त प्राप्त हुए॥१०॥हे राजन्! ब्रह्माने उनसे कहा वर मांगो वे शिवसे द्रोह करनेके कारण कुछ वरदान न मांगते हुए॥११॥परन्तु हे राजन्! उन्होंने ज्ञानियोंकी चितिपर जानेकी इच्छा की.हे कुरुनंदन! तब सर्वज्ञब्रह्माजीने उनसे कहा॥१२॥संसारके उत्पन्न और पालन करनेवाले महात्माकी चितिपर पहुंचनेकी किसको सामर्थ्य है तुम इसमें वृथा परिश्रम मत करो॥१३॥ अनादि मध्य निधन सोमदेव महेश्वर हैं उनकी असूया करके जो देवताभी स्वर्गमें वास करनेकी इच्छा करे तो नहीं कर सकते॥१४॥ तब कितने

वरं वरयतेत्युक्तास्ते राजन्पद्मयोनिना ॥ नेषुस्तद्वरदानं तु द्विषतस्त्र्यम्बकं विभुम् ॥११॥ इच्छंतोऽपचितिं गन्तुं ज्ञानिनां कुरुनन्दन ॥ तानुवाच ततो ब्रह्मा सर्वज्ञः कुरुनन्दन ॥ १२ ॥ विश्वस्य जगतः कर्तुः संहर्तुश्च महात्मनः ॥ कः शक्तोऽपचितिं गन्तुं मास्तु वोऽत्र वृथा श्रमः ॥ १३ ॥ अनादिमध्यनिधनः सोमो देवो महेश्वरः ॥ तमसूयसुखं स्वर्गे वस्तुमिच्छन्ति ये सुराः ॥ १४ ॥ ते नेषुस्तत्र केचित्तु दुरात्मानो महासुराः ॥ अथेषुरपरे राजन्नसुरा भव्यभावनाः ॥ १५ ॥ नेषुर्यं सुदुरात्मानस्तानुवाच पितामहः ॥ वरयध्वं वरं वीरा रुद्रक्रोधमृतेऽसुराः ॥ १६ ॥ त ऊचुः सर्वदेवानामवध्याः स्याम हे विभो ॥ पुराणि षट् च नो देव भवत्वन्तर्महीतले ॥ १७ ॥ सर्वकामसमृद्धार्थं षट्पुरं चास्तु नः प्रभो ॥ वयं च षट्पुरं गत्वा वसेम च सुखं विभो ॥ १८ ॥ रुद्रादुग्रं भयं न स्याद्येन नो ज्ञातयो हताः ॥ निहतं त्रिपुरं दृष्ट्वा भीताः स्म तपसां निधे ॥ १९ ॥

एकोंने इच्छा नहीं की जो दीर्घदर्शी थे और कितनेएक दुरात्मा राक्षस इस बातकी इच्छा करने लगे कि हम बदला लेंगे॥१५॥ जिन्होंने इच्छा न की उनसे ब्रह्माजी बोले; हे वीरो! रुद्रके क्रोधके विना और वरदान मांगो॥१६॥तब उन्होंने कहा हम सब देवताओंसे अवध्य हों और पृथ्वीके भीतर हमारे छः पुर हो जांय ॥ १७ ॥ हे प्रभो! वह हमारे छः पुर सब कामकी समृद्धिके निमित्त हों. हे विभो! हम उस षट्पुरमें जाकर सुखसे वास करें ॥ १८ ॥ और जिन रुद्रने हमारी जातिके लोगोंको मारा है उनसे हमें उग्र भय नहीं. हे तपोनिधि! हम त्रिपुरको नष्ट देखकर डर गये

हैं ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी बोले; हे असुरो ! तुम देवता और असुरोंसे अवध्य हो वह सन्मार्गमें स्थित सतपुरुषोंके प्रिय होनेसे तुमको वध नहीं करेंगे ॥२०॥ और जो तुम मोहसे ब्राह्मणघात किसी प्रकार करोगे तो नाश हो जाओगे क्योंकि ब्राह्मणही जगत्के गतिस्वरूप हैं ॥२१॥ ब्राह्मणके हित करनेवाले नारायणसेभी डरना चाहिये कारण कि भगवान् जनार्दन सब प्राणियोंका हित करते हैं ॥२२॥ हे राजन् ! तब ब्रह्मासे विदा हो वह राक्षस महादेवकी भक्ति हृदयमें धारण कर ध्यान करने लगे ॥ २३ ॥ तब शिवजीने स्वयं उनको दर्शन दिया वह प्रभु उमाके सहित श्वेत वृषभपर चढकर

पितामह उवाच ॥ असुरा भवतावध्या देवानां शङ्करस्य च ॥ न बाधिष्यथ चेद्विप्रान्सत्पथस्थान्सतां प्रियान् ॥ २० ॥ विप्रोपघातं मोहाच्चेत्करिष्यथ कथंचन ॥ नाशं यास्यथ विप्रा हि जगतः परमा गतिः ॥ २१ ॥ नारायणाद्भिभेतव्यं कुर्वद्भिर्ब्राह्मणाहितम्॥सर्वभूतेषु भगवन् हितं धत्ते जनार्दनः॥२२॥ते गताअसुरा राजन्ब्राह्मणा ये विसर्जिताः॥येऽपि भक्ता महादेवमसुरा धर्मचारिणः ॥ २३ ॥ स्वयं हि दर्शनं तेषां ददौ त्रिपुरनाशनः ॥ श्वेतं वृषभमारुह्य सोमः सप्रवरः प्रभुः ॥ उवाचेदं च भगवानसुरान्स सतांगतिः ॥ २४ ॥ वैरमुत्सृज्य दम्भं च हिंसां चासुरसत्तमाः॥ मामेव चाश्रितास्तस्माद्वरं साधु ददामि वः ॥२५॥ यैर्दीक्षिताः स्थ मुनिभिः सत्क्रियापरमैर्द्विजैः ॥ सह तैर्गम्यतां स्वर्गः प्रीतोऽहं वः सुकर्मणा ॥ २६ ॥ इह ये चैव वत्स्यन्ति तापसा ब्रह्मवादिनः ॥ अपि कापित्थिकावृक्षे तेषां लोको यथा मम ॥ २७ ॥ इह मासान्तपक्षान्तौ यः करिष्यति मानवः ॥ वानप्रस्थे च विधिना पूजयन्मां तपोधन ॥ २८ ॥

आये ॥ २४ ॥ वह कहने लगे; हे असुरो ! तुम वैर और हिंसाको छोड मेरे आश्रित हुए हो इस कारणसे वर मांगो मैं दूंगा ॥२५॥ सत्क्रियामें स्थित जिन मुनियोंसे दीक्षित हुए हो उनके सहित स्वर्गको जाओ मैं तुमसे प्रसन्न हूं॥२६॥जो तपस्वी ब्रह्मचारी यहां निवास करते हैं और दूसरे कैथके वृक्षमें हैं उनको मेरे लोककी प्राप्ति होगी ॥ २७ ॥ यहां मासान्त पूनो और पक्षान्त अमावसमें जो मनुष्य वानप्रस्थकी विधिसे पूजन

करेंगे ॥२८॥ वह उतना फल प्राप्त करेंगे जितना फल सहस्र वर्ष तप करनेसे प्राप्त होताहै वह यहां तीन रात व्रत करनेसे मनोभिलषित फललाभ और गति प्राप्त होती है ॥२९॥ आकद्वीपमें निवास करनेसे दूना फल प्राप्त होता है और दूरदेशमें निवास करनेसे तुम्हारा मंगल न होगा यह मैं वरदान देता हूं ॥ ३० ॥ जो श्वेतवाहन नामवाले मेरा पूजन करेगा वह सब प्रकार उभयचित्त होकर भी मेरी गतिको प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥ उदुम्बर वाटमूल ब्राह्मण तथा कपित्थ शृगालवाटी धर्मात्मा दृढव्रत ॥३२॥ तथा ब्रह्मवादी मुनियोंको विशेषकर जो मनुष्य पूनज करेंगे वे यथेच्छ

वर्षाणां स सहस्रं तु तपसां प्राप्स्यते फलम् ॥ कृत्वा त्रिरात्रं विधिवल्लप्स्यते चेप्सितां गतिम् ॥ २९ ॥ अर्कद्वीपे निवसतो द्विगुणं तद्भविष्यति ॥ न विदेशे च भद्रं वो वरमेतद्ददाम्यहम् ॥ ३० ॥ श्वेतवाहननामानं यश्च मां पूजयिष्यति ॥ सर्वतोभय-चित्तोऽपि गतिं स मम यास्यति ॥ ३१ ॥ औदुम्बरान्वाटमूलान्द्विजान्कापित्थिकानपि ॥ तथा सृगालवाटीयान्धर्मात्मानो दृढव्रतान् ॥ ३२ ॥ मुनींश्च ब्रह्मवादीयान्सविशेषेण ये नराः ॥ पूजयिष्यन्ति सततं ते यास्यन्तीप्सितां गतिम् ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वाथ महादेवो भगवान् श्वेतवाहनः ॥ तैरेव सहितः सर्वै रुद्रलोकं जगाम वै ॥ ३४ ॥ जम्बूमार्गं गमिष्यामि जम्बूमार्गे वसाम्यहम् ॥ एवं संकल्पमानोऽपि रुद्रलोके महीयते ॥३५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि उत्तरार्द्धे षट्पुरवधे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतस्मिन्नेव काले तु चतुर्वेदषडङ्गवित् ॥ ब्राह्मणो याज्ञवल्क्यस्य शिष्यो धर्मगुणान्वितः ॥ १ ॥ ब्रह्मदत्तेति विख्यातो विप्रो वाजसनेयिवान् ॥ अश्वमेधः कृतस्तेन वसुदेवस्य धीमतः ॥ २ ॥

गतिको प्राप्त होंगे ॥ ३३ ॥ यह वचन कहकर भगवान् श्वेतवाहन महादेव उन सब असुरोंके साथ रुद्रलोकको चले गये ॥ ३४ ॥ जम्बूमार्गको जाऊंगा जम्बूमार्गमेंही वास करूंगा इस प्रकार संकल्प करनेवाला रुद्रलोकमें जाता है ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि षट्पुरवधे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ वैशंपायन बोले; इसी समय चार वेद और षडङ्गका जाननेवाला याज्ञवल्क्यका शिष्य गुणवान् ब्राह्मण ॥ १ ॥ वाजसनेयी शाखाका पढनेवाला ब्रह्मदत्त ब्राह्मण था उसने वसुदेवका अश्वमेध यज्ञ संपादन किया था ॥ २ ॥

वह संवत्सरतक षट्पुरमें रहनेवाला दीक्षामें दीक्षित रहा मुनियोंसे सेवित आवर्ताके सुन्दरतटमें स्थित हुआ ॥ ३ ॥ वसुदेवका सखा और उनका सहाध्यायीभी था और हे महाराज ! यह उपाध्याय क्षीरका हवन करनेवाला अध्वर्यु था ॥ ४ ॥ हे राजन् ! देवकीके सहित वसुदेव तहां गये; जहां वह यजन करता षट्पुरमें स्थित था. इस प्रकार गये जैसे बृहस्पतिके यहां इन्द्र जाते हैं ॥ ५ ॥ वहां ब्रह्मदत्तका बहुत अन्न और दक्षिणावाला यज्ञ हो रहा था उसकी महात्मा दृढव्रत मुनि श्रेष्ठ उपासना कर रहे थे ॥६॥ व्यास, मैं, याज्ञवल्क्य, सुमन्तु, जैमिनि, धृति-

स संवत्सरदीक्षायां दीक्षितः षट्पुरालयः ॥ आवर्तायाः शुभे तीरे सुनद्या मुनिजुष्टया॥३॥सखा च वसुदेवस्य सहाध्यायी द्विजोत्तमः ॥ उपाध्यायश्च कौरव्य क्षीरहोता महात्मनः॥४॥वसुदेवस्तत्र यातो देवक्या सहितः प्रभो ॥ यजमाने षट्पुरस्थं यथा शक्रो बृहस्पतिम् ॥ ५ ॥ तत्सत्रं ब्रह्मदत्तस्य बह्वन्नं बहुदक्षिणम् ॥ उपासन्ति मुनिश्रेष्ठा महात्मानो दृढव्रताः ॥ ६ ॥ व्यासोऽहं याज्ञवल्क्यश्च सुमन्तुर्जैमिनिस्तथा ॥ धृतिमान् जाबलिश्चैव देवलाद्याश्च भारत॥७॥ ऋद्ध्यानुरूपया युक्तं वसुदेवस्य धीमतः ॥ यत्रेप्सितान्ददौ यामान्देवकी धर्मचारिणी॥८॥वासुदेवप्रभावेन जगत्स्रष्टुर्महीतले॥तस्मिन्सत्रे वर्तमाने दैत्याः षट्पुरवासिनः॥९॥ निकुम्भाद्याः समागम्य तमूचुर्वरदर्पिताः ॥ कार्यतां यज्ञभागो नः सोमं यास्यामहे वयम् ॥ कन्याश्च ब्रह्मदत्तो नो यजमानः प्रयच्छतु ॥ १० ॥ बह्वयः सन्त्यस्य कन्याश्च रूपवन्त्यो महात्मनः ॥ आहूय ताः प्रदातव्याः सर्वथैव हि नः श्रुतम् ॥ ११ ॥

मान् जाबालि और देवलादि बैठे थे॥७॥ वसुदेवकी ऋद्धिके अनुसार धर्मचारिणी देवकीने अनेक धन रत्न दिये ॥८॥ जगत्‌के बनानेवाले वासुदेवके प्रभावसे पृथ्वीतलमें उस यज्ञमें स्थित षट्पुरवासी दैत्य॥९॥निकुंभादि दैत्य आकर मददर्पित होकर कहने लगे हमाराभी यज्ञमें भाग दो हम सोमको प्राप्त होंगे और ब्रह्मदत्त यजमान हमको अपनी कन्या दे॥१०॥इसके यहां रूपवन्ती बहुत कन्या हैं वह बुलाकर देनी चाहिये यह सब हमने

सुना है॥११॥ब्रह्मदत्त बडे बडे सुन्दर रत्न प्रदान करे अन्यथा यज्ञ न करे यह हम आज्ञा देते हैं॥१२॥यह वचन सुन ब्रह्मदत्त उन महाअसुरोंसे बोला हे असुरो ! पुराणोंमें तुम्हारा यज्ञभाग विधान नहीं किया गया है॥१३॥ यज्ञमें मैं तुमको सोमपान कैसे दे सकता हूं मैं वेदभाष्यमें कोविद मुनिश्रेष्ठोंसे पूछता हूं ॥१४॥ और जो कन्या मैंने देनेको कही है वह अन्तरवेदीमें सदृश पतिको दूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ १५ ॥ सान्त्ववादसे रत्न तुमको दे सकता हूं यह विचार किया जाय बलसे मैं नहीं दूंगा क्योंकि श्रीकृष्णके आश्रित हूं॥१६॥यह सुन निकुंभादि पापी षट्पुरके

रत्नानि च ब्रह्मदत्तो विशिष्टानि ददातु नः ॥ अन्यथा तु न यष्टव्यं वयमाज्ञापयामहे ॥ १२ ॥ एतच्छ्रुत्वा ब्रह्मदत्तस्तानुवाच महासुरान् ॥ यज्ञभागो न विहितः पुराणेऽसुरसत्तमाः ॥ १३ ॥ कथं सत्रे सोमपानं शक्यं दातुं मया हि वः ॥ पृच्छतेह मुनिश्रेष्ठान्वेदभाष्यार्थकोविदान् ॥ १४ ॥ कन्या हि मम या देयास्ताश्च संकल्पिता मया ॥ अन्तर्वेद्यां प्रदातव्याः सदृशानामसशयम् ॥ १५ ॥ रत्नानि तु प्रयच्छामि सान्त्वेनाहं विचिन्त्यताम् ॥ बलान्नैव प्रदास्यामि देवकीपुत्रमाश्रितः ॥ १६ ॥ निकुम्भाद्यास्तु रुषिताः पापाः षट्पुरवासिनः ॥ यज्ञवाटं विलुलुपुर्जह्रुः कन्याश्च तास्तथा ॥ १७ ॥ तद्दृष्ट्वा संप्रवृत्तान्तु दध्यावानकदुन्दुभिः ॥ वासुदेवं महात्मानं बलभद्रं गदं तथा ॥ १८ ॥ विदितार्थस्ततः कृष्णः प्रद्युम्नमिदमब्रवीत् ॥ गच्छ कन्यापरित्राणं कुरु पुत्राशु मायया ॥ १९ ॥ यावद्यादवसैन्येन षट्पुरं याम्यहं प्रभो ॥ स ययौ षट्पुरं वीरः पितुराज्ञाकरस्तदा ॥ २० ॥ निमेषान्तरमात्रेण गत्वा कामो महाबलः ॥ कन्यास्ता मायया धीमानपजह्रे महाबलः ॥ २१ ॥

निवासी यज्ञस्थानको नष्ट कर कन्या हरण कर ले गये ॥१७॥ उस अनर्थको देखकर वसुदेवने श्रीकृष्ण बलराम और गदाका ध्यान किया ॥१८॥ उस अर्थको तत्काल श्रीकृष्णने जानकर अनिरुद्धसे कहा;हे पुत्र !शीघ्र जाकर कन्याकी मायासे रक्षा करो॥१९॥जबतक यादवसेनाको साथ लेकर मैं षट्पुरको पयान करूं. तब वह वीर पिताकी आज्ञासे षट्पुरको गया॥२०॥एक निमेष अन्तरमें उस स्थानमें पहुंच उस महाबलीने मायासे उन

कन्याओंको हरण किया ॥२१॥ और मायाकी दूसरी कन्या बनाकर वहां रख दी और मत डरो यह वचन महात्माने देवकके प्रति कहे॥२२॥ हे राजन् ! तब वे दैत्य सब इनकी मायामयी कन्याओंको हरण कर प्रसन्न हो षट्पुरमें प्रविष्ट हुए ॥ २३ ॥ और उस यज्ञमें विधिपूर्वक सब कर्म होने लगे जिससे विशिष्ट और बहुत गुणसे युक्त सब कार्य हो गया॥२४॥ हे राजन् ! इसी अवसरमें वे राजा वहां आनकर प्राप्त हुए जिनको उस यज्ञमें निमंत्रण दिया गया था ॥ २५ ॥ जरासंध दन्तवक्र शिशुपाल पाण्डव धृतराष्ट्र मालवदशी राजा गणोंके सहित ॥ २६ ॥ रुक्मी आह्वृति

मायामयीश्च कृत्वान्या न्यस्तवान्रुक्मिणीसुतः ॥ मा भैरिति च धर्मात्मा देवकमुक्तवांस्तदा ॥२२॥ मायामयीस्ततो हृत्वा सुता ह्यस्य दुरासदाः ॥ षट्पुरं विविशुर्दैत्याः परितुष्टा नराधिप ॥२३॥ कर्म चासार्यते तत्र विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ यद्विशिष्टं बहुगुणं तदभूच्च नराधिप ॥२४॥ एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राजानस्तत्र भारत ॥ सत्रे निमन्त्रिताः पूर्वं ब्रह्मदत्तेन धीमता ॥ २५ ॥ जरासन्धो दन्तवक्रः शिशुपालस्तथैव च ॥ पाण्डवा धार्त्तराष्ट्राश्च मालवास्सगणास्तथा ॥२६॥ रुक्मी चैवाह्वृतिश्चैव नीलो वा धर्म एव च ॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ शल्यः शकुनिरेव च ॥२७॥ राजानश्चापरे वीरा महात्मानो दृढायुधाः ॥ आवासिता नातिदूरे षट्पुरस्य च भारत ॥२८॥ तान्दृष्ट्वा नारदः श्रीमानचिन्तयदनिन्दितः ॥ क्षत्रस्य यादवानां च भविष्यति समागमः ॥ २९ ॥ अत्र हेतुरहं युद्धे तस्मात्तत्प्रयताम्यहम् एवं संचिन्तयित्वा निकुम्भभवनं गतः ॥३०॥ पूजितः स निकुम्भेन दानवैश्च तथा-परैः ॥ उपविष्टः धर्मात्मा निकुम्भमिदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

नील धर्म विन्द अनुविन्द अवन्तिके राजा शल्य शकुनि ॥२७॥तथा औरभी वीर राजा महात्मा दृढ आयुधधारी यह षट्पुरके बहुतही समीपमें वसे ॥ २८ ॥ उनको देखकर श्रीमान् निन्दारहित नारदजी विचार करने लगे कि यहां क्षत्रिय और यादवोंका समागम होगा ॥ २९ ॥ इनके युद्ध करनेमें मैं हेतु होनेका यत्न करूं, यह विचार कर नारदजी निकुंभके भवनमें गये ॥ ३० ॥ वह निकुंभ और दूसरे दैत्योंसे

पूजित हुए तब वह धर्मात्मा बैठकर निकुंभसे कहने लगे ॥ ३१ ॥ आप यदुवंशियोंसे विरोध कर कैसे स्वस्थ हुए बैठे हो जो ब्रह्मदत्त है वह हरिका सखा है ॥ ३२ ॥ ब्रह्मदत्तकी पांच सौ भार्याओंको वसुदेवकी पुत्रके प्रिय करनेको लाये हैं ॥ ३३ ॥ दो सौ ब्राह्मणोंकी सौ क्षत्रियोंकी सौ वैश्योंकी तथा सौ शूद्रोंकी ॥ ३४ ॥ स्त्रियोंके द्वारा धर्मात्मा दुर्वासाकी सेवा की गई है उस पुण्यकर्मा मुनिने उनके प्रति वरदान दिया है ॥ ३५ ॥ कि तुम्हारे सबके एक एक कन्या और एक एक पुत्र होगा वे वरदानके कारण सब महारूपवान् हो गई हैं ॥ ३६ ॥ हे असुर ! जब जब उनके साथ भर्ताका समागम

कथं विरोधं यदुभिः कृत्वा स्वस्थैरिहास्यते ॥ यो ब्रह्मदत्तः स हरिः स हि तस्य विभुः सखा ॥ ३२ ॥ शतानि पञ्च भार्याणां ब्रह्मदत्तस्य धीमतः ॥ आनीता वसुदेवस्य सुतस्य प्रियकाम्यया ॥ ३३ ॥ शतद्वयं ब्राह्मणीनां राजन्यानां शतं तथा ॥ वैश्यानां शतमेकं च शूद्राणां शतमेव च ॥ ३४ ॥ ताभिः शुश्रूषितो धीमान्दुर्वासा धर्मवित्तमः ॥ तेन तासां वरो दत्तो मुनिना पुण्यकर्मणा ॥ ३५ ॥ एकैकस्तनयो राजन्नेकैका दुहिता तथा ॥ रूपेणानुपमाः सर्वा वरदानेन धीमतः ॥ ३६ ॥ कन्या भवन्ति तनयास्तस्यासुर पुनः पुनः ॥ सङ्गमे सङ्गमे वीर भर्तृभिः शयने सह ॥ ३७ ॥ सर्वपुष्पमयं गन्धं प्रस्रवन्ति वराङ्गनाः ॥ सर्वदा यौवने न्यस्ताः सर्वाश्चैव पतिव्रताः ॥ ३८ ॥ सर्वा गुणैरप्सरसां गीतनृत्यगुणोदयम् ॥ जानन्ति सर्वा दैतेय वरदानेन धीमतः ॥ ३९ ॥ पुत्राश्च रूपसंपन्नाः शास्त्रार्थकुशलास्तथा ॥ स्वे स्वे स्थिता वर्णधर्मे यथावदनुपूर्वशः ॥ ४० ॥ ताः कन्या भैममुख्यानां दत्ताः प्राणेन धीमता ॥ अवशेषं शतं त्वेकं यदानीतं किल त्वया ॥ ४१ ॥ तदर्थं यादवान्वीर योधयिष्यासि सर्वथा ॥ सहायार्थं तु राजानो व्रियन्तां हेतुपूर्वकम् ॥ ४२ ॥

होता है तब तब उनके एक एक कन्या और एक एक पुत्र होता है ॥ ३७ ॥ सब स्त्रियोंके शरीरसे पुष्पमयी गन्ध निकलती है वे सदा यौवनवती रहती हैं और वे सब पतिव्रता हैं ॥ ३८ ॥ सब गुणोंमें अप्सराकी समान नृत्य और गीत गानेवाली हैं; हे दैत्यराज ! आप बुद्धिमान् हो जानते हो कि वरदानसे ॥ ३९ ॥ उनके पुत्र रूपसे सम्पन्न और शास्त्रार्थमें कुशल हैं अपने वर्णधर्ममें कुशल हैं ॥ ४० ॥ वह कन्या प्रायः उस बुद्धिमान्ने मुख्य यादवोंको दी शेष एक सौ थीं जो अब तुम ले आये हो ॥ ४१ ॥ जिनके वास्ते वीर यादवोंसे सर्वथा युद्ध होगा सो अपनी सहायके निमित्त तुमभी

हेतुपूर्वक राजोंको वरण करो ॥ ४२ ॥ ब्रह्मदत्तकी कन्या और विविध प्रकारके रत्नोंको सहायके निमित्त राजोंको प्रदान करो ॥ ४३ ॥ जो राजा आवें उनका अतिथिसत्कार करो यह कहने पर उन असुरोंने प्रसन्न हो यह वार्ता स्वीकार की ॥ ४४ ॥ उन पांच सौ कन्या और तरह तरहके रत्नोंको लेकर यथायोग्य वे राजोंके निमित्त नरेन्द्रसे विभक्त की गईं ॥ ४५ ॥ केवल पाण्डुके पुत्रोंको नहीं दी गई, कारण कि नारदजीने उनको निषेध कर दिया था ॥ ४६ ॥ उन राजोंने प्रसन्न हो उन असुरोंसे कहा सब कामसे युक्त हो तुमने स्वयं हमारा सत्कार किया है ॥ ४७ ॥ न्यायपू-

ब्रह्मदत्तसुतार्थं च रत्नानि विविधानि च ॥ दीयन्तां भूमिपालानां सहायार्थं महात्मनाम् ॥ ४३ ॥ आतिथ्यं क्रियतां चैव ये समेष्यन्ति वै नृपाः ॥ एवमुक्ते तथा चक्रुरसुरास्तेऽतिहृष्टवत् ॥ ४४ ॥ लब्ध्वा पञ्चशतं कन्या रत्नानि विविधानि च ॥ यथार्हेण नरेन्द्रैस्ता विभक्ता भक्तवत्सलाः ॥४५ ॥ ऋते पाण्डुसुतान्वीरान्वारिता नारदेन ते ॥ निमिषान्तरमात्रेण तत्र गत्वा महात्मना ॥४६॥ तुष्टैस्तैरसुरा ह्युक्ता राजन् भूमिपसत्तमैः ॥ सर्वकामसमृद्धार्थैर्भवाद्भिः खगमैः स्वयम् ॥ ४७ ॥ अर्चिताः स्म यथान्यायं क्षत्रं किं वः प्रयच्छतु ॥ क्षत्रं चार्चितपूर्वं हि दिव्यैर्वीरैर्भवाद्भिधैः ॥ ४८ ॥ निकुम्भोऽथाब्रवीद्धृष्टः क्षत्रं सुररिपुस्तदा ॥ अनुवर्णयित्वा क्षत्रस्य माहात्म्यं सत्यमेव च ॥ ४९ ॥ युद्धं नो रिपुभिः सार्द्धं भविष्याति नृपोत्तमाः ॥ साहाय्यं दातुमिच्छामो भवाद्भिस्तत्र सर्वथा ॥५० ॥ एवमस्त्विति तानूचुः क्षत्रियाः क्षीणकिल्विषाः ॥ पाण्डवेयानृते वीरान् श्रुतार्थान्नारदाद्विभो ॥ ५१ ॥ क्षत्रियाः सान्निविष्टास्ते युद्धार्थं कुरुनन्दन ॥ पत्न्यस्तु ब्रह्मदत्तस्य यज्ञवाटं गता अपि ॥ ५२ ॥

र्वक तुमसे हम पूजित हुए हैं, तुमको हम क्या प्रदान करें; पहलेभी दिव्य वीरोंने क्षत्रियोंका सत्कार किया है ॥ ४८ ॥ तब देवशत्रु निकुंभ उन क्षत्रियोंसे बोला, और क्षत्रियमाहात्म्य और सत्यताको सराहकर बोला ॥ ४९ ॥ हे राजाओ ! हमारा युद्ध शत्रुओंके साथ होगा उसमें सब प्रकार आपको सहायता करनी चाहिये ॥ ५० ॥ तब उन पापरहित क्षत्रियोंने कहा ऐसाही होगा, पाण्डवोंके सिवाय और सबसे यह वार्ता हुई, कारण कि नारदने उनको निषेध किया था ॥ ५१ ॥ हे कुरुनन्दन ! वे क्षत्रिय युद्ध करनेको तैयार हो गये, और वे ब्रह्मदत्तकी स्त्री यज्ञस्थानको प्राप्त होकर स्थित

हुई ॥ ५२ ॥ इधर सेनासहित श्रीकृष्ण षट्पुरमें पहुँचे, और हे राजन् ! महादेवके वचनोंको मनमें धारण किये रहे ॥ ५३ ॥ आहुकराजाको द्वारका-पुरीमें स्थापित कर उस सेनाके सहित पुरवासियोंके हितकी इच्छासे ॥ ५४ ॥ यज्ञस्थानके समीपही वह प्रभु स्थित हुए, बडे कल्याणयुक्त देशमें वसुदेवसे प्रेरित हो ॥ ५५ ॥ सेनाकी रक्षामें दूरतक योधाओंको स्थापित कर फिरनेके निमित्त प्रद्युम्नको सेनाकी रक्षामें नियुक्त करी ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्वणि भाषायां षट्पुरवधे कृष्णस्य षट्पुरगमने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ वैशंपायन बोले; जिस समय

कृष्णोऽपि सेनया सार्द्धं प्रययौ षट्पुरं विभुः ॥ महादेवस्य वचनमुद्वहन्मनसा नृप ॥ ५३ ॥ स्थापयित्वा द्वारवत्यामाहुकं पार्थिवं तदा ॥ स तया सेनया सार्द्धं पौराणां हितकाम्यया ॥ ५४ ॥ यज्ञवाटस्याविदूरे देवो निविविशे विभुः ॥ देशे प्रवरकल्याणे वसुदेवप्रचोदितः ॥ ५५ ॥ दत्तगुल्माप्रतिसरं कृत्वा तं विधिवत्प्रभुः ॥ प्रद्युम्नमटने श्रीमान्रक्षार्थं विनियुज्य च ॥५६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि षट्पुरवधे कृष्णस्य षट्पुरगमने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ मुहूर्ताभ्युदिते सूर्ये जनचक्षुषि निर्मले ॥ बलः कृष्णः सात्यकिश्च तार्क्ष्यमारुरुहुस्तदा ॥ १ ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणा दंशिता युद्धकाङ्क्षिणः ॥ बिल्वोदकेश्वरं देवं नमस्कृत्य सुरोत्तमम् ॥ २ ॥ आवर्ताया जले स्नात्वा रुद्रेण वरदत्तया ॥ गङ्गायाः कुरुशार्दूल रुद्रवाक्येन पुण्यया ॥ ३ ॥ प्रद्युम्नमग्रे सैन्यस्य वियाति स्थाप्य मानदः ॥ रक्षार्थं यज्ञवाटस्य पाण्डवान्विनियुज्य च ॥ ४ ॥ शेषां सेनां गुहाद्वारि भगवान्विनियुज्य च ॥ जयन्तमथ सस्मार प्रवरं च सतां गतिः ॥ ५ ॥

सूर्यका उदय और मनुष्यके नेत्र निर्मल हुए तब बलराम कृष्ण और सात्यकी गरुडपर चढे ॥ १ ॥ गोधा अंगुलीत्राण बांधे, युद्धकी इच्छा किये सुरोंमें उत्तम बिल्वोदकेश्वर देवको प्रणाम कर ॥ २ ॥ रुद्रकी वर दी हुई आवर्ताके जलमें स्नान करा; हे कुरुशार्दूल ! वह शिवके वचनसे गंगारूप है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! आकाशमें सेनाके अग्रभागमें प्रद्युम्नको स्थापित करके और यज्ञकी रक्षामें पाण्डवोंको नियुक्त कर ॥ ४ ॥ शेष सेनाको

भगवान् गुहाके द्वारेमें स्थित करके जयन्त और प्रवरका स्मरण किया ॥ ५ ॥ वे स्मरण करते ही आ गये उनको देखकर प्रद्युम्नके समान आकाशमें स्थित किया ॥ ६ ॥ तब कृष्णके वचनसे रणके बाजे बजाये गये, जलज मुरज आदि अनेक प्रकारके बाजे बजे ॥ ७ ॥ साम्ब और गदने मकरव्यूहकी रचना की सारण भोज उद्धव वैतरण ॥८॥ धर्मात्मा अनाधृष्टि पृथु विपृथु कृतवर्मा दंष्ट्र निचक्षु शत्रुसूदन ॥९॥ धर्मात्मा सनत्कुमार चारुदेष्ण यह सब अनिरुद्धके सहायक हो पृष्टदेशमें सेनाकी रक्षा करने लगे ॥१०॥ शेष यादवोंकी सेना व्यूहके मध्यमें स्थित हुई; हे राजन् !

तावापेततुरेवाथ स्वयं चापश्यतां तथा ॥ वियत्येव नियुक्तौ तौ प्रद्युम्न इव भारत ॥६॥ ततः कृष्णस्य वचनादाहतो रणदुन्दुभिः ॥ जलजा मुरजाश्चैव वाद्यान्येवापराणि च ॥ ७ ॥ माकरो रचितो व्यूहः साम्बेन च गदेन च ॥ सारणश्चोद्धवश्चैव भोजो वैतरणस्तथा ॥८॥ अनाधृष्टिश्च धर्मात्मा पृथुविपृथुरेव च ॥ कृतवर्मा च दंष्ट्रश्च निचक्षुररिमर्दनः ॥९॥ सनत्कुमारो धर्मात्मा चारुदेष्णश्च भारत ॥ अनिरुद्धसहायौ तौ पृष्ठानीकं ररक्षतुः ॥ १० ॥ शेषा यादवसेना तु व्यूहमध्ये व्यवस्थिता ॥ रथैरश्वैर्नरैर्नागैराकुला कुलवर्द्धन ॥ ११ ॥ षट्पुरादपि निष्क्रान्ता दानवा युद्धदुर्मदाः ॥ आरुह्य मेघनादश्च गर्दभानपि हस्तिनः ॥१२॥ मकरान्छिशुमारांश्च द्रुतानपि च भारत ॥ महिषानपि खड्गांश्च उष्ट्रानपि च कच्छपान् ॥ १३ ॥ एतैरेव रथैर्युक्ता विविधायुधपाणयः ॥ किरीटापीडमुकुटैरङ्गदैरपि मण्डिताः ॥१४॥ नानर्दमानैर्विविधैस्तूर्यैर्नेमिस्वनाकुलैः ॥ प्रध्मायमानैः शङ्खैश्च महाम्बुदसमस्वनैः ॥१५॥ तासामसुरसेनानामुद्यतानां जनेश्वर ॥ निकुम्भो निर्ययावग्रे देवानामिव वासवः ॥ १६ ॥

वह रथ हाथी घोडोंसे पूर्ण थी ॥ ११ ॥ इधर युद्धदुर्मद दानव षट्पुरसे निकले, वे मेघके समान शब्दवाले गधे और हाथियोंपर चढे ॥ १२ ॥ मकर नाके द्रुत महिष खड्ग ऊंट ॥ १३ ॥ तथा अनेक प्रकारके आयुध हाथमें लिये रथोंपर चढे, किरीट मुकुट और बाजुओंसे शोभायमान ॥१४॥ अनेक प्रकारके रथोंके पहियोंके शब्दोंसे व्याप्त महामेघके समान शंख बजनेपर ॥१५॥ हे राजन् ! उस असुरसेनाके उद्यत

होनेपर देवताओंमें इन्द्रके समान निकुंभ युद्ध करनेको आगे चला ॥१६॥ वे बली दानव पृथ्वी और स्वर्गमें बढने लगे,वारंवार शब्द करते और ताली बजाते थे ॥ १७ ॥ इधर चेदिराजको आगे कर राजोंकी सेना तैयार हुई. हे जन्मेजय ! वह असुरोंके सहायमें कृतनिश्चय हुई ॥ १८ ॥ सौ भाइयोंसहित दुर्योधन चेदिराजके आगे हुआ वह गन्धर्वनगरके समान रथोंमें स्थित हुए ॥१९॥ द्रुपद स्यन्दनादि राजामहानाद करने लगे रुक्मी आ हुति युद्धमेंनिश्चय कर स्थित हुए, वे तालवृक्षक समान अपने धनुषको धुनने लगे ॥ २० ॥ शल्य शकुनि भगदत्त जरासंध त्रिगर्त विराट्

भूमिं द्यां च ववृधिरे दानवास्ते बलोत्कटाः ॥ नदन्तो विविधान्नादान्क्ष्वेडन्तश्च पुनः पुनः ॥१७॥ राजसेनापि संयत्ता चेदिराजपुरोगमा ॥ असुराणां सहायार्थं निश्चिता जनमेजय ॥ १८ ॥ दुर्योधनं भ्रातृशतं चेदिराजानुजाग्रगम् ॥ स्थितं रथैर्नरव्याघ्र गन्धर्वनगरोपमैः ॥ १९ ॥ कठिना नादिनो वीरा द्रुपदस्यन्दनास्तथा ॥ रुक्मी चैवाऽऽहृतिश्चैव तस्थतुर्निश्चितौ रणे ॥ तालवृक्षप्रतीकाशे धुन्वानौ धनुषी शुभे ॥२०॥ शल्यश्च शकुनिश्चोभौ भगदत्तश्च पार्थिवः ॥ जरासंधस्त्रिगर्तश्च विराटश्च सहोत्तरः ॥ २१ ॥ युद्धार्थमुद्यता वीरा निकुम्भाद्या जयैषिणः ॥ युयुत्समाना यदुभिर्देवैरिव महासुराः ॥ २२ ॥ ततो निकुम्भः समरे शरैराशीविषोपमैः ॥ ममर्द समरे सेनां भैमानां भीमदर्शनाम् ॥ २३ ॥ सेनापतिरनाधृष्टिर्ममृषे तत्र यादवः ॥ ममर्द घोरैर्बाणौघैश्चित्रपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ २४ ॥ न रथोऽसुरमुख्यस्य ददृशे न च वाजिनः ॥ न ध्वजो न निकुम्भस्तु सर्वे बाणाभिसंवृताः ॥ २५ ॥ स परीत्य ततो वीरो निकुम्भो मायिनां वरः ॥ अस्तम्भयदनाधृष्टिं मायया भैमसत्तमम् ॥ २६ ॥

उत्तर ॥ २१ ॥ यह वीर और निकुंभादि जयके निमित्त उद्यत हुए, और यदुवंशियोंके साथ ऐसे युद्धकी इच्छा करने लगे, जैसे दैत्य देवतोंसे॥२२॥ तब आशीविषवाले बाणोंसे निकुंभने युद्धमें यदुओंकी भयंकर सेनाका मर्दन करना आरंभ किया॥२३॥ अनाधृष्टि सेनापति उनको सहन करने लगा, और उसको पुंख लगे घोर बाणोंसे मर्दन करने लगा ॥ २४ ॥ तब वह रथ घोडे आदि उसके कुछभी नहीं दीखते थे न ध्वजा दीखती थी,निकुंभ सब प्रकार बाणसे आच्छादित हो रहा था ॥ २५ ॥ तब वह मायावालोंमें श्रेष्ठ निकुंभ मायासे भैमश्रेष्ठको स्तंभित करता हुआ ॥ २६ ॥

फिर उसके स्तंभित कर षट्पुरसंज्ञित गुफामें रोककर मायाबलके आश्रित हो वह वीर ॥ २७ ॥ निकुंभने फिर कृतवर्मा, चारुदेष्ण, भोज और वैतरण ॥२८॥ सनत्कुमार ऋक्ष निशठ और उल्मुक इन सम्पूर्णोंको तथा दूसरोंकोभी महागुफामें रोका ॥२९॥ हे जन्मेजय ! मायासे ढका हुआ उसका शरीर नहीं दीखता था, इस प्रकार षट्पुर गुफामें यादवोंको ले जाते हुए॥३०॥निकुंभको देखकर और भैमोंका घोर कदन जानकर कृष्णचंद्र बलदेवजी और सात्यकि ॥३१॥ काम सांब अनिरुद्ध और अन्य बहुतसे वीर भैम कुपित हुए ॥ ३२ ॥ तब कृष्णचंद्र अपने शार्ङ्गधनुषको चढाकर प्रवृत्त हुए

स्तम्भयित्वानयद्वीरं गुहां षट्पुरसंज्ञिताम्॥रुद्ध्वा चाभ्यगमद्वीरो मायाबलमुपाश्रितः॥२७॥पुनरेव निकुम्भस्तु कृतवर्माणमाहवे ॥ आनयच्चारुदेष्णं च भोजं वैतरणं तथा ॥ २८ ॥ सनत्कुमारमृक्षं च तथैव निशठोल्मुकौ ॥ बहूंश्चैवापरान्भोजान्मायाबलसमाश्रितः ॥२९॥ न तस्य ददृशे देहो मायाच्छन्नो जनेश्वर ॥ नयतो यादवान्घोरान्गुहां षट्पुरसंज्ञिताम् ॥३०॥ तद्दृष्ट्वा कदनं घोरं भैमानां भयवर्द्धनः ॥ चुकोप भगवान्कृष्णो बलः सत्यक एव च ॥३१॥ सविशेषं तथा कामः साम्बश्च परवीरहा ॥ अनिरुद्धश्च दुर्धर्षो भैमाश्च बहवोऽपरे ॥३२॥ ततः शार्ङ्गायुधः शार्ङ्गं कृत्वा सज्यं नरेश्वर ॥ दानवेषु प्रवृत्तेषु तृणेष्विव हुताशनः ॥३३॥ तं दृष्ट्वा दानवा देवमभिदुद्रुवुरीश्वरम् ॥ शलभाः कालपाशार्त्ताः प्रदीप्तमिव पावकम् ॥ ३४ ॥ समुत्सृज्य शतघ्नीश्च परिघांश्च सहस्रशः ॥ शूलानि चाग्नितुल्यानि प्रदीप्तांश्च परश्वधान् ॥ ३५ ॥ पर्वताग्राणि वृक्षांश्च घोराश्च विपुलाः शिलाः ॥ उत्क्षिप्य च गजान्मत्तान्रथानपि हयानपि ॥३६॥ नारायणाग्निस्तान्सर्वान्ददाह प्रहसन्निव ॥ बाणार्चिषा महातेजा जगद्धितकरो हरिः ॥३७॥

दानवोंमें ऐसे व्याप्त हुए जैसे तृणमें अग्नि ॥ ३३ ॥ तब उन ईश्वरको देखकर यह सम्पूर्ण दानव ऐसे सन्मुख दौडे जैसे कालपाशमें बंधे दीप्त अग्निके सन्मुख पतंग जाते हों ॥३४॥ यह दानव ऊंचेपर चढकर सहस्रों शतघ्नी लोहेके मूसल और अग्निकेसमान तेजवाले शूल और प्रदीप्त फरसे ॥३५॥ और पर्वतोंके शृंग, वृक्ष भारी शिलाको सामने फेंककर पीछे मदोन्मत्त हस्ती और घोडोंको फेंकने लगे ॥ ३६ ॥ इन सभोंको हँसते हुएके समान

नारायणरूप अग्निबाणोंसे भस्म करने लगे; तब वे जगत्के हित करनेवाले कृष्णचंद्र इनके ॥३७॥ बाणोंको ऐसे सहने लगे जैसे शरदकी वर्षाको गोपति सहन करता है ॥३८॥ और नारायणके बाणोंको असुर ऐसे नहीं सह सके जैसे वर्षाको रेतका पुल नहीं सह सकता ॥ ३९ ॥ हे भारत ! कृष्णचंद्रके सन्मुख असुर ऐसे नहीं ठहरते हुए जैसे मुख फाडे हुए सिंहके आगे वृषभ नहीं ठहर सकता॥४०॥ तब वध्यमान हुए असुर नारायणके भयसे पीडित हुए जीनेकी आशासे आकाशमें भागने लगे ॥ ४१ ॥ तिनको देखकर इंद्रका पुत्र जयंत और प्रवर यह दोनों अग्निके समान घोरबा-

शारदं वर्षणं यद्वत्सेहे धीरो गवां पतिः ॥ तद्वद्यदुवृषः सेहे बाणवर्षमरिन्दमः ॥३८॥ न सेहिरेऽसुरा बाणान्नारायणधनुश्च्युतान् ॥ वर्षं पर्जन्यविहितं वालुकासेतवो यथा ॥ ३९ ॥ न शेकुः प्रमुखे स्थातुं कृष्णस्यासुरसत्तमाः ॥ व्यादितास्यस्य सिंहस्य वृषभा इव भारत ॥ ४० ॥ ते वध्यमानाः कृष्णेन दिवमाचक्रमुस्तदा ॥ जीविताशां वहन्तस्तु नारायणभयार्दिताः ॥ ४१ ॥ तानाकाशगता-नैन्द्रिर्जयन्तः प्रवरस्तथा ॥ निजघ्नतुः शरैर्घोरैर्ज्वलितार्चिसमैः प्रभो ॥ ४२ ॥ निपेतुरसुराणां तु शिरांसि धरणीतले ॥ तृणराज-फलानीव मुक्तानि शिखरात्तरोः ॥ ४३ ॥ निपेतुर्बाहवश्छिन्ना दैत्यानां वसुधातले ॥ कालेनोपहता वीराः पञ्चवक्त्रा इवोरगाः ॥४४॥ रौक्मिणेयस्ततः सृष्ट्वा घोरां मायामयीं गुहाम् ॥ अदृश्य निष्क्रमं वीरः क्षत्रं प्रक्षेप्तुमुद्यतः ॥ ४५ ॥ गदेन सह धर्मात्मा सारणेन सुतेन च ॥ साम्बेन चापरैश्चापि पूर्वं येन प्रवेशिताः ॥ ४६ ॥ प्रमथ्य तरसा कर्णं यतन्तं रणमूर्द्धनि ॥ जग्राह बलवान्कार्ष्णिः प्रस्फुरन्तं ततस्ततः ॥४७॥ विनद्य च गुहां वीरो घोरां मायामयीं नृप ॥ दुर्योधनं च राजानं विराटद्रुपदावपि ॥ ४८ ॥

णोंसे हनन करने लगे ॥ ४२ ॥ कटे हुए असुरोंके शिर पृथ्वीपर ऐसे गिरने लगे जैसे शिखरसे छूटे तृणराजके फल गिरें ॥ ४३ ॥ और कटी हुई दैत्योंकी भुजा पृथ्वीपर ऐसे गिरीं जैसे कालसे हत हुए पांच मुखोंवाले सर्प ॥४४॥ तब प्रद्युम्न मायामयी घोरगुफाको रचकर तिसमें क्षत्रियोंको गेर-नेके निमित्त अदृश्य होकर वह वीर धर्मात्मा ॥ ४५ ॥ सारण शठ और सांबके सहित निकले॥४६॥ रणमें जतन करते हुए कर्णको मथकर बल-वान् प्रद्युम्नने उस स्फुरायमान होते हुएको ग्रहण कर ॥ ४७ ॥ प्रद्युम्नने घोरशब्द करके मायामयी गुहामें दुर्योधन, विराट, द्रुपद ॥ ४८ ॥

शकुनि, शल्य, नील, भीष्मजी, विंद, अनुविंद, जरासंध ॥४९॥ त्रिगर्त, मालव और वासत्य ये सम्पूर्ण राजा और महाबलवान् धृष्टद्युम्नसे आदि लेकर पांचालके अस्त्रज्ञाता राजा ॥ ५० ॥ आव्हति मामा रुक्मी शिशुपाल भगदत्त इन सम्पूर्ण राजाओंको घोरगुफामें रोककर यह वचन कहने लगे ॥ ५१ ॥ हे राजाओ ! तुमसे गुरुसम्बंध है उसे मानकर मैं तुमको गुफामें प्रक्षेप करता हूँ ॥ ५२ ॥ कि बिल्वोदकेश्वर महादेवजीने यह आज्ञा मुझे दी है कि राजाओंको गुफामेंगेर दो ॥ ५३ ॥ और आसुरीमायासे निकुंभने जिनको गुहामें रोका है उन निकुंभकेरोके हुए यादवोंको

शकुनिं चैव शल्यं च नीलं चापि नदीसुतम् ॥ विन्दानुविन्दौ राजानौ जरासन्धं च भारत ॥ ४९ ॥ त्रिगर्तान्मालवांश्चैव वासन्त्यांश्च महाबलान् ॥ धृष्टद्युम्नादिकांश्चैव पाञ्चालानस्त्रकोविदान् ॥ ५० ॥ तथाभृतिमुवाचेदं मातुलं रुक्मिमेव च ॥ शिशुपालं च राजानं भगदत्तं च भारत ॥ ५१ ॥ संबन्धं च गुरुत्वं च मानयामि नराधिपाः ॥ गुहामिमां घोररूपां यत्र प्रक्षेपयामि वः ॥ ५२ ॥ बिल्वोदकेश्वरेणाहमाज्ञप्तः शूलपाणिना ॥ प्रक्षेप्तव्या नरेन्द्रास्ते गुहायामिति धीमता ॥५३॥ आश्रित्य शाम्बरी मायां निकुम्भेन महात्मना ॥ प्रक्षिप्तान्यादवांश्चैव मोक्षयिष्यामि सर्वथा ॥ ५४ ॥ इत्युक्तो शिशुपालस्तु राजा सेनापतिस्तथा ॥ शरैस्ततर्द तान्भैमान् प्रद्युम्नं च विशेषतः ॥ ५५ ॥ बिल्वोदकेश्वरं देवं रौक्मिणेयो नमस्य च ॥ आरभनृपतिं बन्धुं शिशुपालं महाबलम् ॥ ५६ ॥ ततः पाशसहस्राणि गृह्याय प्रवरोत्तमः ॥ शैलादिरब्रवीद्वीरं रौक्मिणेयं महाबलम् ॥ ५७ ॥ बिल्वोदकेश्वरो देवः प्राह त्वां यदुनन्दन ॥ सर्वं कुरु तथा रात्र्यां चोक्तस्त्वं भो यथा मया ॥ ५८ ॥

मैं छुटाऊंगा ॥ ५४ ॥ यह सुनकर राजसेनापति शिशुपालने घोरशरोंसे भैमोंको और प्रद्युम्नको आच्छादन किया ॥ ५५ ॥ तब प्रद्युम्न बिल्वोदकेश्वरको नमस्कार करके और महाबल शिशुपालको बांधनेका मनोरथ करने लगे ॥ ५६ ॥ तब सहस्रों पाश पकडनेको महादेवजीने उसे दिये और इन महाबली रुक्मिणीनंदनसे ॥ ५७ ॥ बिल्वोदकेश्वर महादेवजी कहने लगे; हे प्रद्युम्न ! जो प्रतिज्ञा तुमने की है सो

पूरी करो ॥ ५८ ॥ इन कन्यारत्नके लोभी राजाओंको बांध लो. हे वीर ! तुम पाशत्यागन करनेके योग्य हो ॥ ५९ ॥ हे महाबाहो ! तुम असुरोंको निश्शेष कर दो, और कृष्णचंद्र ॥ ६० ॥ भगदत्तसे ऐसेही कह दो, तब प्रद्युम्नजीने शिशुपाल, रुक्मी और आव्हृति इनको और दूसरे राजाओंको ॥ ६१ ॥ महादेवजीकी दी उत्तमपाशसे बांध लिया; और बांधकर मायामयी गुफामें ऐसे डाल दिया ॥ ६२ ॥ जैसे विना श्वासके सर्पोंको डालते हैं,और अपने पुत्र अनिरुद्धको तिनकी रक्षामें नियुक्त किया ॥ ६३ ॥ इस प्रकार उन सबोंको बांधकर सेनापति और

कन्यार्थे रत्नलुब्धांस्तु बद्ध्वा चेमान्नराधिपान् ॥ पाशैस्त्वमेव मोक्तं च प्रमाणं यदुनन्दन ।५९॥ असुरांस्तु महाबाहो निःशेषान्कर्तुमर्हसि ॥ एवमेव च वक्तव्यस्त्वया वीर जनार्दनः ॥६०॥ ततः स भगदत्तं च शिशुपालं च भूमिप ॥ आभृतिं चैव रुक्मिं च शेषांश्चान्यान्नराधिपान् ॥ ६१ ॥ बबन्ध हरदत्तैस्तैः पाशैरुत्तमवीर्यधृक् ॥ मायामयीं गुहां चैवमानयत्कुरुनन्दन ॥ ६२ ॥ बद्ध्वा च रौक्मिणेयोऽथ निःश्वसन्त इवोरगान् ॥ अनिरुद्धं चकाराथ रक्षितारं स्वमात्मजम् ॥६३॥ तेषां निरवशेषेण बबन्ध यदुनन्दनः ॥ सेनापतीन्क्षत्त्रियांश्च कोशाध्यक्षांश्च भारत ॥६४॥ हस्त्यश्वरथवृन्दांश्च चकार च तथात्मसात् ॥ अव्यग्रस्तु ततो हन्तुमसुरानुद्यतः प्रभो ॥ ६५ ॥ सन्नद्ध एव चोवाच ब्रह्मदत्तं द्विजोत्तमम् विस्रब्धं वर्ततां कर्म मा भैः पश्य धनञ्जयम् ॥६६॥ न देवेभ्यो नासुरेभ्यो नागेभ्यो द्विजसत्तम ॥ भयं हि विद्यते तस्य गोप्तारो यस्य पाण्डवाः ॥ ६७ ॥

कोशपति ॥ ६४ ॥ हस्ती अश्व रथोंके समूह इन सम्पूर्णोंको अपने आधीन किया, तब सावधान हुआ असुरोंको मारनेके निमित्त उद्योग करने लगा ॥६५॥ और कवच बांधे ब्रह्मदत्त द्विजसे कहने लगा कि, हे ब्रह्मदत्त ! भय मत करो और अच्छी तरह यज्ञको समाप्त करो ॥ ६६ ॥ और देखो ! यह अर्जुन तुम्हारे रक्षक हैं, क्योंकि ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मदत्त जिनके पांडव सहाय हैं; तिनको देवता असुर नाग मनुष्य आदि किसीसे भय नहीं होता ॥ ६७ ॥

॥२६४॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई